



123943
LBSNAA

एत्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी

L.B.S. National Academy of Administration

मसूरी

MUSSOORIE

पुस्तकालय

LIBRARY

— 123943

अवधि संख्या

Accession No.

15163

वर्ग संख्या

Class No.

CLH

891 431

पुस्तक संख्या

Book No.

प्रवीण PRA

* ॐ *

अभिनन्दनम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नेकनामदार, महामहिमशाली, साहित्यधुरंधर, छात्रतेजप्रदीप

श्री १०८ प्रातःस्मरणीय श्रीमंत मानसिंहजी महाराज बहादुर

की नेकी हज़ूर में

मंगल प्रशस्ति

++*++

कावित्त.

असवंतगढाधीश, गुनवंत नीतिमंत, महाराज मानसिंह, अति मतिमंत हैं ।
साहित्य के सुधानिधी, कलाओं के कलानिधी, विद्याओं के वारिनिधी, नवनिधिवंत हैं ।
धर्म के धारनहार, ज्ञानी के ज्ञान में प्यार, दीनजन दुःखहार, पूर्ण पुण्यवंत हैं ।
शशिसम शांतिसार, सुधामय बानोबहार, जसहंस जगत में, वदे प्रेमवंत हैं ॥१॥

मात-पितु प्रभुसम, जेठभाई प्राणसम, वैसो प्रेम परिवार, प्रेम सब साथ है ।
जोधपुर सरदार, रत्नसिंह काका सा के, कुमार वे मोहनजी, बस्या आप पास है ।
पूना के निवास मांही, ताप चढ्यो तन मांही, मोतीमरो जमदूत, भयो काल पास है ।
प्रवीनसागर प्यारो, दूजो नहिं लागे सारो, अनेकों को एक सार, बस्यो मन खास है ॥२॥

बांकी बात पूरनके, करन प्रवीनग्रन्थ, छपवाने काज धन, व्यय बोत कीनो है ।
भागवान नरवीर, ऐसो काज कौन करे, ग्रंथ साथ जगत में, जस बोत चीन्यो है ।
पाठशाला धर्मशाला, औषध की शाला बड़ी, जप तप पाठादि में, बोत दान दीनो है ।
धन्य धन्य नरदेव, आयु बधो चिरकाल, भने गनपत सत्, मान बोत लीनो है ॥३॥

भवदीय शुभाकांक्षी—

ग० ज० शास्त्री

(संपादक)

ग्रन्थ-समर्पण

++卐++ ++卐++

स्वर्गस्थ प्रिय लघुबन्धु !

श्री० मोहनमिहजी महाराज,

मु० हिम्मतनगर.

आपने —

इस मोहमय संसार में जन्म पाने पर भी, मोह रहित होकर परम आनन्द की प्राप्ति की, और अपना नाम मोह-न ऐसा सार्थक किया ।

कलाओं में प्रवीण सम कुशाग्र बुद्धि से रमसागर रूप परमात्मा में मन एकाग्र किया । “प्रवीणमागर” गत ज्ञान-विज्ञान से अपने प्रेमी परिवार को वैसे प्रेम में मग्न किया और अमार संसार का मूढम सार लेकर स्थूल का त्याग किया ।

लघु वय होने पर भी आप में विनय, विवेक, दक्षता, चातुर्य, साहित्य-प्रेम आदि अनेक गुण दिखाई दिये । इन गुणों से आकर्षित होकर यह ग्रन्थ आपको स्मरणाञ्जलि के रूप में समर्पित करता हूँ और आपकी पवित्र स्मृति चिर-जीवित चाहता हूँ ।

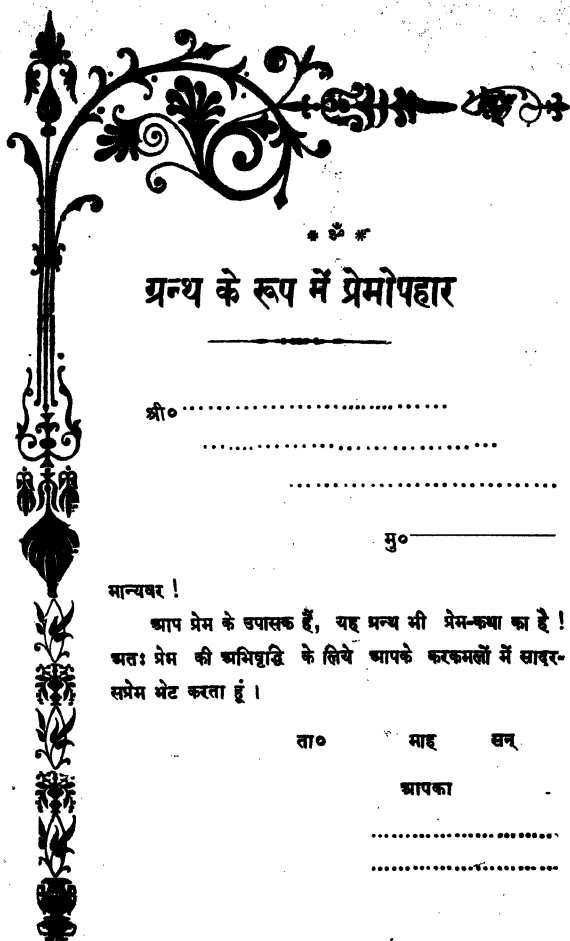
बियोगी बन्धु:—

मान.

धर्म और शील की अप्रतिम-प्रतिमा !



स्व० श्रीमान् महाराज श्री मोहनसिंहजी देव, हिम्मतनगर ।



ग्रन्थ के रूप में प्रेमोपहार

श्री०

.....

.....

मु०

मान्यवर !

आप प्रेम के उपासक हैं, यह ग्रन्थ भी प्रेम-कथा का है !
अतः प्रेम की अभिवृद्धि के लिये आपके करकमलों में सादर-
सप्रेम भेंट करता हूँ ।

ता० माह सन्

आपका

.....

.....



सपादकीय दो शब्द

(विषय-प्रवेश)

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।



व्य-पठन से यश, धन, व्यवहारज्ञान, दुःखनाश, आनन्द और कांतासंमित उपदेश प्राप्त होता है । इस उद्देश से श्री गह्वरामनजी कवि ने “प्रवीणसागर” नामक यह बृहत् काव्य लिखा और ब्रजसाहित्य का पुरस्कार किया । काव्यशास्त्र के नियमानुसार इसके अंग तैयार किये, और मूर्तिमान काव्य खड़ा किया । इसमें प्रवीण और सागर का उदाहरण देकर शास्त्रीय नियम सुगम किये हैं । अतः यह ग्रन्थ पाठकों के लिये स्वयं शिक्षक याने (सैल्फ टीचर ऑफ कलचर) जैसा हो गया है ।

काव्य के अङ्ग ।

भानुकवि कहते हैं कि—

छंद चरन भूषण हृदय, कर मुख भावऽनुभाव ।

चख थायी श्रुति मंचरी, काव्य के अंग सुहाव ॥

तदनुसार ग्रंथकर्त्ता ने अपने काव्य के छंदों से “चरन” अलंकारों से “हृदय” विभावों से “कर” अनुभाव से “मुख” संचारी भाव से “कण” और स्थायी

भाव से “चक्षु”, ऐसे षट् अंग तैयार किये। इसमें व्यंग जीव, और रस आत्मा दिखाई पड़ता है।

रसों में शृंगार और इसमें भी संयोग से अधिक “वियोग” का वर्णन विस्तारयुक्त दिया है और वियोगी दंपति प्रवीण और सागर का वियोग बताया है, एवं वियोग के पूर्व में उन दोनों का पूर्वराग किस प्रकार शुरू होता है ? और इसमें भावोदय, विभाव, अनुभाव आदि की विशिष्टता कैसे २ प्रकारों से हुई, इन सबका पत्रव्यवहार छंदों में, अलङ्कारों में और चित्रों में गुप्त रीति से हुआ, इन सबका वर्णन इस ग्रंथ में है।

छंद कैसे दिये हैं ?

छंद—सम, अर्धसम, विषम, साधारण और दंडक आदि मात्रिक और वैसे वार्षिक छंद भी इसमें दिखाई पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त छः राग और ३६ रागिनियां, वाद्यों की गतें, स्वर, ताल, प्राम, मूर्छना, उनके माप और झुटि आदि काल बगैरह का वर्णन किया है।

उपरोक्त छंद और राग-रागिनियों में उक्त दम्पति का पत्रव्यवहार हुआ है, साथ ही उपपात्रों का संवाद छंदोमय है। इस प्रकार छंदों द्वारा इस काव्यमूर्ति के चरन संपादित किये हैं और छंदों से अलङ्कारों को प्रगट कर काव्यका हृदय प्रत्यक्ष करवाया है।

अलङ्कार कैसे दिये हैं ?

“अलंकारोक्ति-इत्यलंकारः” अर्थात् जो शब्द, अर्थ और शब्दार्थों को अलंकृत बनाता है उसका नाम है “अलंकार”। वैसे अलंकार इस ग्रन्थ में पुनरुक्त-वदाभास, अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष और चित्र आदि शब्दालंकार दिये हैं, और उपमान, उपमेय, वाचक, धर्म आदि से पूर्णोपमा, लुप्तोपमा बगैरह ‘अर्थालंकार’ साध्य किये हैं व संसृष्टि, सङ्कर आदि से उभयालंकार सिद्ध किये हैं। वैसे ही अलंकारों से भाव अनुभाव आदि की उत्पत्ति की है और उदाहृत ऐसा प्रवीण और सागर का प्रेम व्यक्त किया है।

विभाव कैसे दिये हैं ?

विभावों में दो प्रकार हैं !! आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव । इन दोनों में प्रथम नायक-नायिका का परस्पर आलंबन होता है । कहा है कि— “आलंब्यते येन तत् आलंबनम्” अर्थात् जिस रस में नायक-नायिका परस्पर के आधार बनते हैं, जीवन-सर्वस्व समर्पित करते हैं, अधिक क्या ? अपना २ आत्म निवेदन करते हैं व एक-हृदय बनते हैं, वैसा आलंबन नायक और नायिका का ही होता है, अन्य साधारण व्यक्तियों का नहीं । क्योंकि सामान्यों में वैसी योग्यता नहीं पाई जाती है । वैसी योग्यता समझने के लिये नायक और नायिका का भेद जानना आवश्यक है । अतः इस ग्रन्थ में उसका विस्तार दिया है । इसके उदाहरण में सागर किस योग्यता का नायक है, और प्रवीण किस योग्यता की नायिका है, इन दोनों के लक्षण देकर योग्यता सिद्ध की है । और वैसे लक्षण बताने के लिये भारतीनन्द और कुसुमावलि का संवाद दिया है । इस संवाद के पठन से सागर के दत्त नायक होने का और प्रवीण के पद्मिनी नायिका होने का निश्चय होता है ।

आलंबन विभाव का सहचारी पूर्व राग होता है । वह दर्शन से, श्रवण से, स्पर्श से, इंद्रजाल से, चित्र और फोटो आदि से होता है । उदाहरण में—सागर का आगमन, प्रवीण के यहां होता है, दोनों का दृष्टि-मिलन होता है ! तुरन्त ही लक्षणों की परीक्षा होती है और पूर्वराग के साथ आलंबन होता है । दृष्टि-दर्शन के अनन्तर सागर बिदा होता है, कोकिला वारांगना सागर के दरबार में जाती है और प्रवीण का परिचय देती है, इसके काव्य संगीत में गाती है, नखशिख तक सर्वाङ्ग-सुन्दर देह का वर्णन करती है और अलौकिक गुणों का वर्णन करती है । इस प्रकार नायिका का वर्णन सुनने से सागर के मन में “श्रवण पूर्वराग” पैदा होता है । तब वारांगना बिदा होती है । सागर अपना वैसा प्रेम व्यक्त करने के लिये पत्र लिखता है । भारतीनन्द पत्र लेकर मनछापुरी जाता है और वह पत्र प्रवीण की सखी कुसुमावलि को देता है । कुसुम स्वप्न के भिस से पत्र देती है । इस प्रकार पूर्वराग का परिचय होने के बाद काम की दश दाशयें

उक्त दोनों को प्राप्त होती हैं । अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, रोग, जड़ता और मरण ये सब कामदशायें कहाती हैं । अर्थात् परस्पर मिलने की अभिलाषा पैदा होती है । कब मिलन होगा ? इसकी चिंता करते हैं । परस्पर एक दूसरे को याद करते हैं, गुणों का कथन करते हैं, मिलन नहीं होने से उद्वेग भी करते हैं, प्रलाप करते हैं, उन्माद जैसी अवस्था बताते हैं, बीमार पड़ते हैं, जड़ जैसे बनते हैं और दोनों की मरण-तुल्य स्थिति हो जाती है, वह परिस्थिति पत्रों द्वारा लिख भेजते हैं । प्रवीण की बीमारी के प्रसंग पर सागर वैद्य के वेश में आता है, निदान, चिकित्सा, मूत्रस्थान आदि विषयों की चर्चा करता है और प्रवीण के पास जाता है, साथ ही प्रवीण के मन की भी चिकित्सा करता है । प्रेम का प्याला और पान देकर विदा होता है, इस प्रकार प्रथम नेत्रप्रीति होने के बाद—चिंता, आसक्ति, संकल्प, निद्राभंग, क्रुशता, विषयनिवृत्ति, लज्जानाश और उन्माद जैसी दशायें होती हैं ।

उपर्युक्त कथनानुसार उक्त पात्रों में काम रस की वृद्धि होती है, रसभाव बढ़ता है । उस भाव को उद्दीपन विभाव कहते हैं—

उद्दीपन विभाव ।

वैसी रस-भाव की वृद्धि सखा और सखियों से होती है, दूत और दूतियों से होती है । विट्, चेट, विदूषक जैसे भी सहायक होते हैं । इसमें पटञ्चतु, पवन, परिमल, चन्द्र, चन्द्रिका, एकान्त, कोयलकूजन आदि रस को बढ़ाते हैं । इस उदाहरण में यहां सागरकुमार कुमारी प्रवीण को एकान्त में मिलना चाहता है, इसलिये अपने राज्य की सीमा पर नैनतरंग की ओर शिकार के भिस जाता है । वहां नदी का किनारा, उपवन जैसा वन और पर्वतश्रेणी देखकर प्रसन्न होता है, उस भूमि पर शिवमंदिर की रचना करवाता है, साथ ही बाग और उस बगीचे में सुरंगयुक्त महल बनवाता है, और सुरंगद्वारा मंदिर में जाने की योजना की जाती है । फिर शिवप्रतिष्ठा का महात्सव करता है । इस प्रसंग में अनेक राजालोगों का आगमन होता है । मनछापूरी नरेश, अपने रनिवास के साथ आते हैं, साथ ही प्रवीण का भी आगमन होता है । सागर सुरंग द्वारा मंदिर

में पहुँचता है। सखी के साथ प्रवीण का प्रवेश होता है और दोनों का प्रेमसमय वार्तालाप होता है। अचानक आकाशवाणी होती है, जो सिद्ध के आगमन की आगाही देती है। सिद्ध आता है और स्वप्नेश्वरी का विधान बताता है। उस विधान से स्वप्न में मिलान होने लगता है, और पत्रव्यवहार में परस्पर के उद्दीपित ऐसे विचार दिये जाते हैं। इस प्रकार दोनों विभावों से कवि ने अपने काव्य के दोनों हाथ बतलाये हैं।

अनुभाव का अनुभव।

शास्त्रकारों ने “अनुभाव” के मुख्य तीन प्रकार बताये हैं। इनमें प्रथम सात्विक, दूसरा कायिक, और तीसरा मानसिक बताया है। सात्विक अनुभाव को स्वाभाविक कहते हैं, कायिक अनुभाव कृत्रिम कहाता है, और मानसिक अनुभाव अन्तःकरण-जन्य है।

सात्विक अनुभाव के समय स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय और जृंभा ऐसी नव प्रकार की दशायें पैदा होती हैं। कायिक भाव पैदा होने से लीला, विलास, विच्छिन्नी आदि बारह दशायें दिखाई पड़ती हैं, साथ ही नायिका को “मान” पैदा होता है। इस मान में भी लघु मान, मध्यम मान और गुरु मान के प्रकार दिखाई पड़ते हैं। तब नायक वैसेमान छुड़ाने का प्रयत्न करता है, और क्वचिन् साम अर्थात् आश्वासन, कभी भेद, कभी दान, क्वचिन् नमन, उपेक्षा और रसांतर भी करता है।

उपरोक्त शास्त्रीय नियमों के अनुसार उदाहरणरूप प्रवीण दीपोत्सव के निमित्त द्वारावती जाती है और सागर को चिट्ठी लिखती है। इस समय प्रवीण को स्तंभ आदि नव प्रकार का सात्विक अनुभाव होता है, और सागर को भी चिट्ठी बांचनेसे वैसा ही अनुभव होता है। प्रवीण अपने निश्चयानुसार द्वारावती जाती है और चिट्ठी के संकेतानुसार सागर भी मित्रों सहित वहाँ आता है। सागर गोस्वामी का वेश लेता है और ब्रजराजजी ऐसा नाम धारण करता है। उन दोनों का मन्दिर के एक भाग में—एकांत में—मिलन होता है। खूब गुप्त वार्तालाप करते हैं, उस समय कायिक चेष्टायें प्रगट होती हैं और दोनों बिछोह

के समय मानसिक अनुभाव का अनुभव करते हैं। जब अपने २ स्थान पर जाते हैं तब नायिका को मान पैदा होता है, वह मानिनी बनती है और मानयुक्त पत्र लिखती है। इसमें अपना गुरुमान बताती है। जब मध्यम मानवती बनती है तब मध्यमान के और क्वचिन् लघुमान के आधीन भी होती है। तब वैसे २ पत्र लिखती है। सागरपत्र पढ़ता है और पत्रों के उत्तर देकर उनके द्वारा मान छुड़ाने का यत्न करता है। वैसे यत्नों में साम, दान, भेद आदि को उपयोग में लेता है। उन दोनों का पत्रव्यवहार यदि वाचकवृन्द बांचे तो उनके हृदय में भी मानसिक अनुभाव का अनुभव हो सकेगा। इस प्रकार अनुभाव से कवि ने अपने काव्य का मुख तैयार किया है।

सञ्चारी भाव ।

स्थायीभाव में रहते हुए भी जो जलतरंगवत् उत्पन्न हो २ कर उसमें ही विलीन होते हैं उनको सञ्चारी भाव कहते हैं। सञ्चारी भाव की दशायें तैंतीस हैं। निर्वेद, ग्लानी, शङ्का, अमूया, भ्रम, मद, धृति आदि उनके पृथक् २ नाम हैं। इनमें नायक का प्रवास होता है। वह प्रवास तीन प्रकार का कहते हैं। किसी को शाप से होने वाला प्रवास “शापज” कहा जाता है। किसी को कार्यवशान् होने वाला प्रवास “कार्यज” और किसी प्रकार के भय से होने वाला प्रवास “संभ्रमज” कहा जाता है। वारणवशान् वैसे किसी प्रवास के अंतर्गत नायक को काम-दशायें प्राप्त होती हैं और प्रवासपत्तिका नायिका को भी वैसे दशायें भोगनी पड़ती है। उन दशाओं के नाम भी निश्चित बताये गये हैं। कहते हैं कि असौष्ठव, ताप, पांडुकृशता, अरुचि, अधृति, अनालंब, तन्मयता, उन्माद, मूर्च्छा और मरण इस प्रकार क्रमवार दश दशायें हैं। साथ ही करुणदशा कष्टप्रद होती है। वैसी दशा देखकर पत्थर जैसा हृदय भी रोने लगता है। ऐसे प्रसंग में आकाशवाणी से आश्वासन मिलता है, शाप मिटता है, भय नष्ट होता है और काम पूरा होता है।

उक्त नियमानुसार सागर को प्रवीण का विछोह कष्टप्रद होता है। वह निर्वेद से संन्यास लेता है, घोर आवाज करता है, अलस जगाता है, मनछापुरी को बेचैन करता है, प्रवीण की ड्योड़ी पर आता है, अलस जगाता है। प्रवीण का हृदय

हिचमिचाता है, प्रवीण पड़ने लगती है, कुसुम पकड़ रखती है, प्रवीण गले का मोतीहार निकालती है और सागर के गले में डालती है, सागर वहां से विदा होता है, इस समय प्रवीण और सागर को उपरोक्त दश दशायें क्रमानुसार प्राप्त होती हैं। सागर बद्धीवन जाता है और सुरतानन्द पहाड़ में पांच दिन रहता है। वहां प्रभानाथ सिद्ध आता है। उनके साथ भक्ति, कर्म, ज्ञान, सांख्य, वेदांत आदि की चर्चा होती है। आकाश-वाणी का अर्थ विशद होता है, सागर वापिस लौटता है और मनछापूरी के बाग में आता है, प्रवीण को खबर देता है, प्रवीण संकेत से उत्तर देती है। सागर नैनतरंग जाना है, संकेत के अनुसार वियोग भिटता नहीं है, तब वे दोनों आत्मघात की तैयारी करते हैं, इतने में प्रभानाथ प्रगट होते हैं, शाप की अवधि भिटती है, मर्यादा के बूरज टूटते हैं, प्रवीण आती है, दोनों मिलते हैं, दम्पति-जन्य आदर्श-प्रेम प्रसिद्ध होता है, पिता द्वारा किया हुआ प्रवीण का वाग्दान व्यर्थ जाता है और “लकड़े को मकड़ी” जैसा विवाह सागर से सहन किया जाता है, आखिर पूर्वजन्म के दम्पति, चारित्र्य सुगंध के साथ परस्पर में मिलते हैं। इसमें स्थायीभाव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

दम्पति की पवित्रता ।

उपरोक्त कष्टकारक दशायें प्राप्त होने पर भी दम्पति ने अपना चारित्र्य सुरक्षित रक्खा। प्रवीण के यहां राज्य-वैभव था, उत्तम खान-पान आदि थे, इच्छा-नुसार उपभोगों के साधन थे, परन्तु अपने पति के सिवाय अन्य कोई वस्तु उसे प्रिय नहीं लगती थी। प्रवीण आदर्श मती थी और सागर सत्पुरुष था, पूर्वभव की करनी से उनका परस्पर वियोग हुआ था।

संयोग शृंगार ।

यह शृंगार का दूसरा विभाग है, इसमें रस का विस्तार नहीं है। शृंगार के विषय में वात्स्यायन मुनि का कामसूत्र विश्वविख्यात है, इसका सार लेकर इस ग्रन्थ में संयोग का बयान करवाया है। इसमें स्त्री के अंगों में काम का निवास, प्रत्येक तिथि के अनुसार काम की उत्पत्ति, अष्टविध आलिंगन, सप्तविध चुंबन, अष्टदश हाव आदि का विवेचन है, और यह चन्द्रकला के साथ सागर के विवाह के

प्रसंग में वर्णन किया है, यह वर्णन लहर १६ वीं में है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में संयोग और वियोग शृंगार का वर्णन सोदाहरण दिया है।

ग्रन्थ की ८४ वीं लहर में स्पष्ट कहा है कि—

तृतीय लहरी आरम्भ में कह्यो कहूं अब अंत ।

राधा सोई प्रवीण है सागर राधाकंत ॥

अर्थात् कलाप्रवीण श्रीराधाजी हैं, और श्रीकृष्णजी रससागर हैं, ऐसा ही तृतीय लहर के आरम्भ में भी कह चुके हैं, उस बात को ही स्पष्टतया यहां (८४ लहरी) में भी कथन किया है इससे ऐसा अनुमान होता है कि श्री राधाजी और श्री कृष्णजी का प्रेम वर्णन इसमें है, परन्तु व्यावहारिक लोगों के शिक्षणार्थ उन दिव्य नायक और नायिका का प्रेम दिव्य होने से वैसा प्रेम प्राप्त होना कठिन है, अतः प्रवीणसागर के नाम से दिव्यादिव्य याने मानवी प्रेम का वर्णन किया है।

ग्रन्थ की रचना ।

इस ग्रन्थ के नायक-नायिका प्रवीण और सागर मुख्य पात्र होने से ग्रन्थ का नाम “प्रवीणसागर” रक्खा गया है। ग्रन्थ के ८४ प्रकरण बनाये हैं। उन प्रत्येक का नाम ‘लहर’ रक्खा है। इसमें काव्य के अंग उपप्रकरण जैसे लगते हैं, और विभावादि पांच इसके अधिकरण बताये हैं। इसमें रस एकमा व्यापक हो रहा है, यह इसकी व्यंजना का महत्व है। वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और न्यंगार्थों से विविध पद्य-रचना अनुपम लगती है। इससे कवि की अनुपम प्रतिभा दिखार्ई पड़ती है, और मानसशास्त्र के अनुसार व्यक्तिगत मानस प्रत्यक्ष दिखार्ई पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ मानस-परीक्षा की तालीरूप हुआ है।

सारग्राही ग्रन्थ ।

ग्रन्थकर्त्ता ने इस ग्रन्थ में प्रसंगानुसार अनेक शास्त्रों का रहस्य संग्रहीत किया है। उनका पूर्ण परिचय ग्रन्थ बांचने से ही होगा, परन्तु यहां स्वल्प-कथन उचित ही है जैसा कि— चारवेद, वेदों के अंग, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, मोक्षशास्त्र और इनके अतिरिक्त अनेक इहलौकिक और पारलौकिक शास्त्रों का सार इसमें है।

ग्रन्थ-रचना-शैली ।

इस ग्रन्थ की रचना-शैली पुरानी सीमांसा के अनुसार है । कहा है कि—

“उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् ।

अर्थवादोपपत्तिश्च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ॥”

तदनुसार यहां शिवशाप से उपक्रम है । शिवशाप मिटने में उपसंहार है । काव्यशास्त्रके नियम वतलाकर उदाहरण में प्रवीण और सागर का चरित्र-वर्णन अभ्यासरूप है । अनेक शास्त्रों का रहस्य-संग्रह यह ग्रन्थ की अपूर्वता है । आदर्श दम्पती बनानेकी शिक्षारूप फल का कथन है । इस प्रकार अर्थवाद और उपपत्ति के प्रतिपादन से, ग्रन्थ का तात्पर्यनिर्णय बनाया गया है ।

ग्रन्थ का संशोधन ।

उपरोक्त शैली में ग्रन्थ का संशोधन-कार्य मैंने हाथ में लिया । छोटे और बड़े किन्तु त्रुटि में ग्रंथ उपस्थित किये । साथ ही पुराने हस्तलिखित भी प्राप्त किये । इन सबकी विषयवार समालोचना की, सूचियां बनाई और ग्रन्थ को व्यवस्थित बनाने का व्यवसाय किया ।

ग्रन्थ का स्वल्प इतिहास ।

राजकोट नरेश श्री महारासनजी कवि ने यह ग्रन्थ संवत् १८३८ में लिखा । इसकी कुछ थोड़ीसी नकलें हस्तलिखित तैयार करवाई और रजवाड़ों में अभिप्रायार्थ भेजीं । तदनन्तर एक नकल ईडर राज्य में भी आई, इसके मूल पंथों का कुछ भाग ईडर के ‘शिला प्रेम’ में संवत् १८६७ में छपा और आगे राजकोट नरेश श्री बाबाजी राव की ओर से अहमदाबाद के प्रेस में छपा, जिसके पूर्वभाग में श्री रणमल कवि की, और उत्तर भाग में श्री दत्तपतराम कवि की वैसी गुर्जर टीकायें हैं । दूसरा पुस्तक गुजराती टीका में श्री महादेव रामचन्द्र जागुप्रेजी ने सन् १८१४ में छपवाया और यह ग्रंथ श्रीमान् जसवंतगढ़ नरेशों की ओर से आज प्रसिद्ध हो रहा है । उपरोक्त दोनों ग्रंथों की तुलना इस नये ग्रंथ के साथ की जाय तो ज्ञात होगा कि उन पूर्व ग्रंथों में अनेक महत्व के

विषय छूट गये हैं। एक में चित्रों की रचना, अष्टविध विवाह, नारी निंदा, नारी प्रशंसा आदि विषय नहीं हैं, तो दूसरे में विप्रलंभका प्रवास, करुण वि० लं० शृंगार, आश्चर्यकारक गणित, नक्षत्र तथा तारा आदि का विज्ञान वगैरह महत्व के विषय नहीं हैं। इन सब विषयों की समीक्षा कर हमने भीमांसा-शैली के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक में व्यवस्था की है। इसमें अपपाठ भी शुद्ध किये हैं और उपपाठ नोटों में संग्रहीत किये हैं तथा हस्तलिखित प्रतियों में मिलान कर अभिनव संस्करण के साथ हिन्दी में टीका दी है।

श्री जसवंतगढ़ महाराज का स्तुत्य-प्रयत्न।

नेकनामदार, क्षत्रियकुलावतंस, श्रीमंत महाराज श्री मानसिंहजी साहब बड़े ही विद्याविलासी, साहित्यप्रेमी और धर्मनिष्ठ हैं। श्रीमान के ही स्तुत्य प्रयत्न से इस पुराने ग्रन्थ का जीर्णोद्धार हुआ है और यह ग्रन्थ आपने अपने लघुबन्धु श्रीमान् मोहनसिंहजी महाराज के स्मरणार्थ प्रगट करवाया है।

जोधपुर के सरदार नामदार श्री रतनसिंहजी महाराज के कुमार श्री मोहनसिंहजी महाराज हिस्मतनगर पधारे। लघुबन्ध होने पर भी आप बहुत ही सुशील, धार्मिक और साहित्यविलासी थे, और महँम महाराजा साहब को अत्यन्त प्रिय थे, और नेकनामदार प्रातःस्मरणीय साहित्यविलासी, कृपालु, श्रीजी साहब बहादुर ने अपने ६० डी० सी० बनाये थे। श्रीमान् जसवंतगढ़ नरेशों के निकट सहवास में निवास करते थे। उन उक्त श्रीमान् को प्रवीणसागर अत्यन्त प्रिय था, परन्तु वे इसका पुनः संस्करण चाहते थे। आप पुनः की ओर पधारे और वहाँ ही देवलोक को प्राप्त हुए।

तदनन्तर प्रातःस्मरणीय श्री जसवंतगढ़ महाराज ने यह ग्रन्थ छपवाने की योजना की। संपादकीय कार्य श्री पद्मसिंहजी कामदारजी ने करना स्वीकार किया और ५८ फॉर्म तक काम हुआ, परन्तु उक्त कामदारजी ने शास्त्रों से अपरिचित होने से ग्रन्थ मंशोधन का कार्य हस्तलिखित (ड्राफ्ट) जैसा कुछ न किया। अतः ग्रंथ वैसा ही छपने लगा। खेद है कि इसमें प्रवीण की कुंडली उलटी छप गई है। नायिकाभेद की तालिका भी व्यवस्थित नहीं है और श्रुतुओं

का वर्णन भी अपूर्ण है । इस दरम्यान में कामदारजी क्षयरोग से पीड़ित हुए और देबलोक को प्राप्त हुए । इस कारण ग्रन्थ-शुद्धि न होने से उपरोक्त फॉर्म, वैसे ही छप गये और काम बंद हो गया । फिर मुझे आज्ञा मिली, तदनुसार मैं संपादकीय कार्य करने लगा और मैंने यथाशक्ति-यथामति काम किया । इसमें मुझे प्रसंगानुसार जिन महदय व्यक्तियों ने, छात्रों ने और प्रेस मैनेजर आदि महाशयोंने सहयोग दिया, और इतना प्रचंड शास्त्रीय ग्रन्थ स्वल्प समय में छपवा दिया उन सब मज्जनों का मैं अतीव आभारी हूं ।

अन्त में नेकनामदार श्रीमंत जमवंतगढ़ महाराज को कोटिशः धन्यवाद हैं, जिन्हों के परम प्रेम, औदार्य और परम कृपा से यह ग्रंथ प्रगट हो रहा है । अनः परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह श्रीमान को दीर्घायु करे ।

अंतिम प्रार्थना ।

विद्वानों से प्रार्थना है कि कहां मैं मन्दमति ? और कहां सागर समान यह ग्रंथ ? जिममें मंदगचल पर्वत जैसे भी परमाणु लगते हैं, तो मेरे जैसे की तो जान ही क्या ? इसलिए यदि ग्रन्थ संशोधन में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उसकी ओर विशेष ध्यान न देते हुए, सार को ही ग्रहण करने का प्रयत्न करेंगे, और मुझे उन त्रुटियों से अवश्य अवगत करावेंगे ताकि उपकार के साथ आगामी संस्करण के प्रकाशन के समय उनका ध्यान रक्खा जा सके ।

विद्वज्जनचशंबदः

ग० ज० शास्त्री

संपादक.

प्रवीण-सागर की * संचित कथा *

स्थान—कैलास

विचित्रानन्द और पुष्पावती ।

आज शिवरात्रि का महोत्सव है । देव, दानव, मानव की भारी भीड़ हो रही है, पूजन-अर्चन ठाट में हो रहा है । रात के बारह बज गये हैं । विचित्रानन्द पत्नी के प्रेम में पड़ा है ! पत्नी चित्रकला जागृत है ! उमका प्रिय, घोर निद्रा में है !

बाहर से आवाज़ ।

जोर से आवाज़ आने लगी ! रे चित्रा चित्रा ! किवाड़ खोल, किवाड़ खोल । मैं हूँ पुष्पा !! चित्रकला—रे बहिन ! तू कहां से ? क्यों २ आई ? घबराहट में किवाड़ खोला ।

डरती, उमासँ लेती—कहने लगी शाप २ शिवजी का शाप... आज का दिन पवित्र है, शिवार्चन का है । पवित्र व्रत का है और तुम दोनों घर में पड़े सो रहे हो !! पुष्पावती ने कहा ।

विचित्रानन्द उठा !! शाप की बात सविस्तर सुनी !! कारण समझ गया, और दोनों दम्पती कांपने लगे, सोच करने लगे ! आत्मा को धिक्कारने लगे !

दौड़ते हुए छः मित्र आये ! और चित्रा की सहेलियां भी × × × × × उन्हीं का भूलोक में पतन !

नेहनगर में महोत्सव ।

सौराष्ट्र की राजधानी नेहनगर है ! वह प्रदीप राजा से सुशोभित है । वहां बड़ा महोत्सव है ! महोत्सव पुत्रजन्म का है । मनहंस ज्योतिषी का आगमन हुआ । राजसभा में फलादेश प्रकट किया । यह तो शिवलोक से देव का अवतार हुआ है ना ! नाम रक्खो रसमागर !!

मनछापुरी में महोत्सव ।

गुजरात की राजधानी मनछापुरी है, वहां राजा नीतिपाल राज्य करता है, महोत्सव का कारण कन्या का जन्म होना है । नीलकंठ पंडित ने जन्मकुण्डली बनाई है, जातक देखा—यह कन्या तो देवी का अवतार है !! शिवलोक से उसका पतन हुआ है ! दूषित मंगल है ! इस योग से उसका पति कोई देव ही होगा । मनुष्य नहीं × × × यह कन्या विद्या-कला में प्रवीण होगी । अतः इसका नाम कलाप्रवीण रहेगा ।

उसी नगर में ब्राह्मण के यहां उत्सव ।

मनछापुरी में चतुरानन नामक ब्राह्मण है, वेद-शास्त्र में पारंगत है । उसके यहां जातकर्म महोत्सव हो रहा है । एक दिव्य कन्या का जन्म हुआ है । स्वयं जातक देख रहा है । अतः कन्या के शुभ लक्षणों से नाम रक्खो कुसुमावलि । अपनी पत्नी को जातक का रत्न कहा और पूर्वभव में उसके शिव-दासी होने का कथन किया ।

सागर का बालचरित्र ।

सागर बाल्यकाल से ही अभ्यास करने लगा ! रसिक होने से रसपूर्वक अभ्यास करने लगा । चार वेद, उपवेद, षट्शास्त्र, राजनीति आदि का पठन किया, व्यायाम का शिक्षण लिया, छः मित्रों के साथ गाढ़ी मैत्री थी, वे (१) भारतीनंद (२) रविज्योति (३) वीरभद्र (४) मन्त्रमाल (५) रत्नप्रताप और (६) उमराव, यह छः मित्र थे ।

शिकार के लिये प्रयाण ।

मेघ की गर्जना हो रही है, बिजली चमक रही है, शिकार के लिये तैयारी हो रही है, चतुरंग मेना के साथ प्रयाण किया ; शृंगालों की आवाज सुनी । उपरोक्त कवियों ने फल कथन किया और शास्त्र के प्रमाण दिये । पशु, पक्ष्यादि की वाणी का विचार बताया, पहाड़ी पशुओं का शिकार करने की गीति बताई । शर छोड़ने का विवेचन किया । बारह प्रकार के स्थलचर शिकार और जलचर शिकार के चार प्रकार बनलाये । नीतिपाल की सीमा पर छावनी रक्खी ।

प्रवीण का बालचरित्र ।

प्रवीण विविध काव्यकलाओं का अभ्यास करने लगी । विद्या में प्रवीण निष्णात हुई, चतुर सखियों के साथ विनोद करने लगी । काव्य बनाने लगी । उसके माता-पिता ने विवाह करने का विचार किया । मिथ में कूराबाद नगर है, वह राजा तरणतेज से शासित है । पाटवी कुमार रंगराव हैं । उसका विवाह करने की इच्छा है । राजगुरु शशिधर योजक हैं । राजगुरु गुजरात में आता है । उसने नीतिपाल राजा के यहां मुकाम किया और रंगराव के लिये प्रवीण की याचना की । राजगुरु सामुद्रिकशास्त्र में विद्वान् था । उसने इस शास्त्र में वर-कन्या का शुभाशुभ लक्षण कथन किया और अपनी वाणी से नीतिपाल को प्रसन्न किया और नीतिपाल ने भी अपनी पुत्री प्रवीण का विवाह के निमित्त वाग्दान दिया ।

दामी दौड़ती हुई आई और हँसती हुई कहने लगीं ! बाई साहब ! आपका विवाह रंगराव के साथ कर दिया । प्रवीण बोल उठी—अरे यह क्या ? मेरी मरजी के बिना यह क्या ? मेरे पिता का कैसा साहस !! जब तक स्त्री-पुरुष की पसंदगी परस्पर न होवे तब तक विवाह की बात कैसी ? हताशा !! दिलगीर !! कहकर बंचैन हुई ।

शिकारी सेनाओं का युद्ध ।

अब दूसरी ओर से नीतिपाल शिकार के लिये निकला । साथ में बड़ा सैन्य

था । सागर सैन्य के निकट आ पहुँचा । उन दोनों की सेनाएं युद्ध करने लगीं, निमित्त सिर्फ शिकार का ही था । उसमें सागर की विजय हुई ।

सागर का मनछापुरी में आगमन ।

सागर का यह पराक्रम देखकर नीतिपाल प्रसन्न हुआ । मनुहार से अपने नगर में ले गया । सागर मनछापुरी में ठहरा और आज्ञा पाकर नेहनगर जाने की तैयारी की । प्रयाण के समय प्रवीण भ्रमों में वैठी हुई थी, उसने सागर की छवि देखी । दोनों की एक नजर हुई । परस्पर के हृदयों में एक दूसरे की छवि बस गई । सागर अपने देश की ओर गमन करने लगा ।

प्रदीप राजा का साहस का काम ।

इसी बीच राजा प्रदीप ने अपने पुत्र सागर का लघ्न निश्चित किया । लघ्न संबंध में प्रामाण्य राजा की पुत्री चन्द्रकला के साथ किया । सागर ने आने पर जब यह बात सुनी तो उसका मन में मोच हुआ, परन्तु गुरुजनों की मर्यादा के आधीन होना पड़ा और लग्न हो गया । वामशास्त्र के अनुसार आर्तिगन, चुंबन, हाव-भाव करना चाहता था । पद ऋतुओं के अनुसार विविध विहार चाहता था, और काव्य, शास्त्र और संगीत कला का विनोद करना चाहता था, परन्तु बेचारी चन्द्रकला अज्ञ दिग्दर्शि पड़नी थी । सागर मन में खिन्न होना था ।

वारांगनाओं का आगमन ।

आकाश में चन्द्रिका छिंटक रही है । प्रवीण की आगामी में संगीत हो रहा है । जानने में आया कि कोकिला और चातुकी वारांगनायें आई हैं, उनका यह संगीत है । प्रवीण के प्रश्नों का उत्तर देती हैं और गीत, वाद्य व नृत्य के प्रयोग बताती हैं । प्रवीण प्रसन्नता से अपने छन्द गायी हैं । वारांगनायें मीग्य लेती हैं । इस प्रकार आनन्द लेकर वारांगनाओं ने वहां से बिदाई ली ।

नेहनगर की ओर गमन ।

सागर से प्रार्थना की, उसने सादर स्वीकार कर प्रवेश किया । रात्रि के समय जलसा जमाया, सुरीले संगीत से सागर प्रसन्न हुआ, मौका देखकर प्रवीण

कृत छन्द गाया—“हं वियोगी जनो मिलो”, इससे तो और भी आनन्द का पार नहीं रहा। प्रवीण की पहचान के लिये उसका ग्राम, ठाम, नाम, कुल आदि पूछा। वारांगनाओं ने अंतर और बाहिरांपिका छन्दों में परिचय करवाया, नख-शिख अवयवों का वर्णन किया और विदाई ली।

प्रवीण के परिचय की इच्छा।

सागर बाग में गया, मित्रों के साथ चर्चा की। मित्रों की प्रेरणा से प्रवीण को पत्र लिखा। पहचान के लिये भारतीयनन्द पसन्द किया। भारतीयनन्द सौदागर बना। मनछापपुरी में घोड़ों की तलाश करने लगा, राज में खबर पड़ी। गुप्तचर उक्तिवर को भेजा। उसके साथ अश्वविद्या की चर्चा की और नीतिपाल का राज्य-कुटुम्ब और रणवास का वृत्तान्त समझ लिया और प्रवीण की मुख्य मन्त्री की बात जान ली। दूसरे दिन संन्यासी बना। चतुरानन के घर गया। मठान्नाय द्वारा अपना परिचय दिया। एकान्त में निवास मिला। संगीत के साथ ब्रह्मज्ञान देने लगा, प्रतिष्ठा बढ़ाई। विश्वास वर्द्धित किया। कुसुमावलि को आकर्षित कर लिया, सागर के साथ प्रवीण की दृष्टि-मिलान होने की बात कही। कुसुम, नायक की परीक्षा करने लगी, इसमें नायक-नायिका भेद का स्थूल वर्णन किया और सागर को यदि ज्ञान हो तो, उसकी ओर से वैसे भेद आप बताओ, यह पूछा। उत्तर में संन्यासी ने भेदों का वर्णन किया। १, ८६, ६२४ इतने नायिकाभेद स्पष्ट बताये। वैसे सब नायक-नायिका भेदों का ज्ञान सागर को होने की बात कही। तब प्रसन्न होकर सागर का पत्र लिया और दरबार में गमन किया।

स्वप्न के मिश्र पत्र का आविष्कार।

प्रवीण के मन्दिर में शांति फैली है। दासीगण अन्य कार्यों में मग्न हैं !! केवल अकेली कुसुम ही है !! क्यों आज बड़ी गम्भीर जैसी हो रही है ? मौन धारण कर बैठी है ? प्रवीण ने ऐसा पूछा। (कुसुम का उत्तर) क्या कहें ? देवी ? बात तो सुनने लायक है ? परन्तु ...। कुसुम ने कहा, अरे परन्तु क्या ? कह दे २... (प्रवीण ने कहा)। कुसुम कहने लगी, मुझे स्वप्न हुआ है। इसमें मैंने एक

कौतुक देखा !! आपके पास कुमार सागर बैठा है । आप दोनों मधुपान कर रहे हो, एक दूसरे के मुख में से पान तोड़ रहे हो !!

हट हट ये क्या ? मेरी भी मसखरी !! ऐसा कहकर फूल की छड़ी मारी और हँसने लगी !! तब कुसुम बोली मैं ब्रह्मकुमारी हूँ, भिन्नया स्वप्न सत्य कर देती हूँ । आप क्या दोगी ? उत्तर में—हाँ हाँ क्या सत्य है बनाओ !! कुसुम ने पत्रयुक्त थैली निकाली और प्रवीण के हाथ में दी । कौतुक से प्रवीण ने ली और पत्र निकाला । पत्र खोला, जिसमें पद्यमय वृत्तान्त लिखा देखा ।

प्रवीण पत्र बाँचने में लीन ।

प्रवीण पत्र देखकर देह की भान भूल गई । वृत्तान्त बाँचने में लीन हो गई । अहा ! कैसी पद्य-रचना है, कैसे सुन्दर छन्द, कैसी मनोहर लंग्वन-छटा ! अहा ! कैसा मेरी ओर भाव ! मन, मछली जैसा तड़कने लगा । पूरा पढ़ते २ तो मूर्च्छा आ गई, अश्रुधारा बहने लगी । दिन गया, रात गई, नींद न लगी । कुसुम घबराने लगी, उसने प्रवीण को सचेत किया, प्रवीण ने प्रण किया, सागर को बरने का निश्चय किया ।

शिवदर्शन की इच्छा ।

पिताजी से आज्ञा ली, शृंगार सजे, सवारी के साथ गमन किया, शिव समीप गई और पूजा और प्रार्थना की । कुमारीव्रत का सङ्कल्प किया । माता-पिता को खेद हुआ । सब अपने राजमन्दिर आये ।

सागर के पत्र का उत्तर ।

कुसुम ने याद दिलाई कि संन्यासी राह देखता होगा, उत्तर कब लिखना है ? प्रसन्न होकर प्रवीण पत्र लिखने बैठी । मधुभार छन्द में पत्र लिखा । कुसुम को दिया । कुसुम अपने घर आई और पत्र संन्यासी को दिया ।

संन्यासी का गमन ।

संन्यासी नेहनगर आया । कवि की पोशाक में राजमन्दिर गया । एकान्त में सागर से मिला । कुमारी का पत्र दिया और सब मौखिक समाचार कहे ।

सागर ने पत्र पढ़ा, व्याकुल हुआ और प्रतिभास पत्र लिखना निश्चित किया तथा अपनी विरहदशा का पत्र लिखा ।

प्रवीण के दर्शन की इच्छा ।

मातों मित्र मिले, मनसूबा किया, विलायती पोशाक में सागर मनछापुरी गये, बाग में उतरे । कुसुम से मिलाप हुआ, इसकी ओर से प्रवीण को समाचार मिले ।

प्रवीण की बीमारी ।

समाचार मिलने ही प्रवीण बीमार हो गई । बाग में से हकीम को बुलाया । हकीम महल में गया । आयुर्वेद की चर्चा से अपना उत्तम परिचय दिया । राजा लोग राजी हुए । प्रवीण के पाम ले गये । हकीम ने प्रवीण को देखा, निरम्बा और मधुर मधु का प्याला दिया, पान का बीड़ा दिया और बिदा हुआ । दर्शन से सागर का हृदय थड़का, विचारमग्न हुआ, मित्रों के साथ अपने देश गया । चुपके से राजभवन में पैठ गया ।

अब एकान्त में मिलने की इच्छा ।

सागर ने मन में सोचा कि एकान्त में प्रवीण कैसे मिले ? नैनतरंग नामक गांव है, इसके समीप सुन्दर वन है, छोटे २ पर्वतों की श्रेणी है, नदी का प्रवाह बह रहा है, उपवन समान वन है, ऐसा देखकर सागर खुश हुआ । वहां शिवमन्दिर बनाने लगा, आस-पास बगीचा बनाया, इसमें एक महल बनाया, महल और मन्दिर के बीच में सुरंग रखी, गुप्त मिलने की यह योजना की । शिवप्रतिष्ठा का महोत्सव शुरू किया, महकुटुम्ब नीतिपाल को आमंत्रण दिया, अनेक राजा महाराजाओं को आमंत्रित किया । अवसर पर सबका आगमन हुआ । नीतिपाल के साथ प्रवीण भी आई । सबका स्वागत किया और योग्य स्थान में उतारा दिया ।

सिद्ध के वेश में सागर ।

सागर ने साधु का वेश लिया, साथ में भारतीनन्द भी लिया, दोनों सुरंग द्वारा मन्दिर में गये और सिद्धासन से बैठ गये । जाप्ता करने के लिये कुसुम पुकारने

लगी। मन्दिर के द्वार खोल दिये गये, बैठे हुए सिद्ध ने इशारा किया। रणिबाम के लोगों को बाहर बैठाया, प्रवीण को अन्दर प्रवेश कवाया, प्रवीण सिद्ध के समीप जाकर बैठी, प्रेम की बातें शुरू हुईं, कुसुम मन्त्रघोष करने लगी और ममय बीतने लगा।

आकाशवाणी का कथन।

आकाश-वाणी की आवाज हुई, कहा कि—ऋः ऋतु बीतने के बाद सिद्ध का दर्शन होगा, वह जैसा कहेगा वैसा करना। दोनों की बातें वन्द हुईं, प्रवीण बाहर आई, रणिबामियों ने दर्शन किया, और अपने स्थान पर गये, साथ में प्रवीण भी चली। सिद्ध के आने तक सागर बगीचे के बङ्गले में रहा और प्रतिपक्ष परस्पर पत्रव्यवहार होने लगा।

दोनों की ऋतुगत विरह-दशा।

मलय-पवन प्राणों को पीड़ा देता है, ध्रौष्म का ताप हृदय को तपता है, वर्षा के बादल उत्साह को दबा देते हैं, शरद की चांदनी ज्वाला जैसी लगती है, हेमन्त का हिम अग्नि की वर्षा जैसा लगता है, ऐसी दोनों की दशा हो रही है और भिन्न के आने की दोनों प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आत्मघात का निश्चय।

दोनों अपने २ स्थान में हैं, विरह-वेदना असह्य लगती है, विचारते हैं कि आकाशवाणी की बात गलत है, अब तो आत्मघात करेंगे और दूसरा जन्म पावेंगे तथा दाम्पन्य-सुख का आनन्द लेंगे।

प्रभानाथ का दर्शन।

प्रातःकाल में सागर ने स्नान किया, पूजा-साहित्य लिया, ताला खोल दिया, मन्दिर में प्रवेश किया और सिद्ध का दर्शन हुआ। आप कौन? कहां से और किस हेतु से पधारे हैं? उत्तर में—मैं प्रभानाथ हूं, ज्वालामुखी पहाड़ में मेरा निवास है, देवी पार्वतीजी की आज्ञा से यहां आना हुआ है। तुमको संदेश देना है, धीरज रक्खो और आत्मघात का विचार तजो। सिद्ध की बात को

सुनकर सागर प्रसन्न हुआ, स्तुतिपूर्वक नमन किया, स्वाभाविक और भाविक प्रेम की चर्चा की, स्वप्रेमश्री का विधान बताया, एक वर्ष की अवधि सुनाई और अदृश्य हुए। सिद्ध प्रवीण के पाम प्रगट हुए, विधान कहा और वहां से भी अदृश्य हो गये।

दीपोत्सव का आनन्द कहां मिले ?

प्रवीण ने कुसुम के साथ विरह की चर्चा की, अपना गुप्त विचार कह दिया। कुसुम की सम्मति मिली, अपने पिताजी से द्वारिका-गमन की आज्ञा ली, पिताजी ने बन्दोबस्त करवाया, सागर को मन्देश भेजा। सागर भी मित्रों के साथ तैयार हुआ, स्वप्रेमश्री का ध्यान किया, आदेशानुसार गोस्वामी का वेश लिया, और नाम ब्रजराजजी ऐसा धारण किया। दूसरी ओर से प्रवीण का भी आगमन हुआ। उमने भी द्वारावती में एक सुन्दर स्थान में मुकाम किया।

गोमतीतट पर पहिचान।

गोमतीतट के एक ओर ब्रजराजजी आये हैं, दूसरी ओर स्नान के लिये प्रवीण आदि आये हैं। दूरबीन से देखा, सागर के होने की बात निश्चित की। ब्रजराज देवालय में गये, कथा करने लगे, प्रवीण ने पत्र लिखा, पत्र लेकर कुसुम देवालय में गई, ब्रजराज को प्रणाम किया, पान-चीड़े में पत्र रक्खा और महाराज को दिया।

देवालय में दोनों का समागम।

राजभोग का समय बीता, महाराज ब्रजराजजी बिराजे हैं, राजलोक का आगमन हुआ। कुसुम जात्रे के लिये आई, ब्रजराजजी ने इशारा किया, सब बाहर चले गये, राणियों को प्रवेश करवाया, सभामंडप में सब बैठे, प्रवीण ने गभारे में प्रवेश किया और ब्रजराजजी के पाम बैठी। महाराज प्रेम का मन्त्र सुनाने लगे, पूजा की विधि बताने लगे और भी प्रेम की बातें हुईं। प्रवीण वहां से निकली, अवाशिष्ट सवने दर्शन-पूजन किया। इस प्रकार दीपोत्सव का आनन्द द्वारावती में लिया।

द्वारावती से दोनों का वियोग ।

अब दोनों अपने २ स्थान में गये । प्रवीण ने पत्र लिखा । कोकिल, कीर, हंस, पतंग, नट, भ्रमर आदि के निमित्त अपना विरह-दुःख लिखा । सागर का उत्तर वैसा ही अन्यांक्ति में आया । इस प्रकार प्रतिदिन-पत्रव्यवहार होने लगा । प्रेम की पहिचान के निमित्त अंतर्लापिका, वहिर्लापिका, इनके उलट-सुलट भेद-युक्त पत्रव्यवहार होने लगा । इनमें भी आद्य-मध्य, अंत्याक्षरी प्रभोत्तर के पत्र लिखे जाने लगे । तदनन्तर चित्राकृति काव्य लिखने लगे । इस प्रकार ११३ चित्रकाव्य हुए । इसके पश्चात् श्लेश-भेद काव्यों की प्रतिस्पर्धा होने लगी । इनमें अभिन्नपद, सप्तार्थ, द्वयार्थ, त्रयार्थ, पञ्चार्थ ऐसे श्लेश-युक्त पत्रव्यवहार की झड़ी लग गई, और प्रेम का पूरा बहने लगा ।

सागर का संन्यास ।

इतनी तन्मयता और कष्ट उठाने पर भी वियोग मिटता नहीं है । इस पर सागर ने खूब सोचा और संन्यास ले लिया । स्तुति छः मित्रों ने भी संन्यास ले लिया । इनमें से सागर गुरु और अन्य साथ के छः शिष्य बने । शिवजी की मृत्ति की । दश महाविद्याओं का ध्यान किया । शकुनों के भेद बनाये, ब्रह्मशब्द की चर्चा और नव रस का प्रवचन किया ।

प्रवीण के बाग में आगमन ।

प्रातःकाल का समय है । मालिन पुष्प लेंने के लिये आई । उसने मान संन्यासी ध्यानस्थ देखे । आश्चर्य हुआ और कुसुम के पास गई, और सब बात कही । कुसुम बाग में आई और देखकर हंसने लगी । वाह ! यह प्रपञ्च क्यों ? यह कहकर प्रवीण की दशा कह सुनाई ।

अलख जगावन ।

संन्यासी अलख जगाने लगे । फिरते २ प्रवीण के महल की ओर आये । प्रवीण बारी में से देखने लगी । संन्यासी बारी के पास आये । प्रवीण नीचे गिरने

लगी, किन्तु कुसुम ने पकड़ ली। प्रवीण ने गले का मोती का हार संन्यासी पर डाला। जड़ाऊ की प्याली और हीरे की बिंदी भी उसे दी।

वहां से हिमालय-गमन।

सागर ने वहां से बर्द्रीनाथ की ओर गमन किया। वह बर्द्रीनाथ आ पहुंचा। वहां से चलकर मुरतानन्द पर्वत पर पांच दिन मुकाम किया। वहां प्रभानाथ सिद्ध आये। नारी-निंदा का बयान करवाया। उत्तर में सागर ने नारी-प्रशंसा से स्त्रियों की महिमा सिद्ध की। सिद्ध ने मित्रों सहित सागर का पूर्वभव कथन किया। चर्चा प्रमंग में परमेश्वर के दो रूप, भक्ति के भेद, भक्तों का परिचय, अष्टांगयोग, योग के भेद, हठयोग, दशाविध यम-नियम, सिद्धान्त वाक्य लक्षण, आमनों के पर्याय, प्राणायाम के प्रकार, त्रिनाड़ी, पट्चक्र, दशमुद्रा, दशनाड़ी, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि का वर्णन किया। साथ ही राजयोग की रीति तथा सांख्ययोग का सार भी कथन किया और शिव के समीप जाकर वापिस आने तक धैर्य रखने के विषय में सूचित किया।

हिमालय से मनछापुरी आगमन।

सागर अब मनछापुरी की ओर आने लगे, मार्ग में दो संन्यासी मिले, संवाद हुआ। कर्जदार द्विजों को मोती दिये। मोतियों का हिसाब बताया। सात मालियों को मोतियों का दान और हिसाब, विविध यन्त्र बनाने की रीतियाँ, नक्षत्र तारकादि का विज्ञान, उत्तर-दक्षिण एवं मध्यचारी तारों का ज्ञान, नक्षत्रों में मास कथन, रास्ते के नगरों का कथन और भूमिति का ज्ञान आदि विषयों की चर्चा मित्रों के साथ होती रही, और अहमदाबाद से ४८ कोस पर विद्यमान मनछापुरी नगर में सब आये व बाग में मुकाम किया।

कुसुम ने प्रवीण का वृत्तान्त कथन किया।

सागर ! जबसे तुम गये तब से प्रवीण ने संन्यासिनी का वेष धारण किया है। खान-पान, रंग-राग तथा सम्पत्ति के उपभोग आदि छोड़ दिये हैं। एक आपको ही वरने का ध्यान लगा है। मन की इच्छा पूरी न होती देखकर जहर

खाकर मरने लगी थी, परन्तु सिद्धोक्त अवधि-कथन की राह ने उसको वैसा करने से रोक दिया ।

अवधि पूरी हुई और शिवरात्रि आई ।

सब वृत्तान्त सागर ने सुन लिया । प्रवीण को चिट्ठी लिखकर आश्वामन दिया । सागर नैनतरंग के शिवालय में गया । शिवरात्रि का समय आया । प्रमानाथ सिद्ध प्रगट हुए । वहां बड़ा उत्सव मनाया । मनछापुरी से राजकुटुम्ब भी आया । साथ में प्रवीण भी थी । सागर के माता-पिता भी आये तथा उनकी गृहदेवी भी पुत्र के साथ पधारी । शिवोत्सव करने में मध्याह्न हुआ । प्रवीण और सागर एकत्र होकर शिव की प्रार्थना करने लगे । आकाश में से विमान आये ।

सिद्ध का सम्भाषण ।

हजारों की सभा में सिद्ध भाषण करने लगे—“आज यह दम्पती शिवलोक में जा रहे हैं, कारण यह है कि प्रवीण ने अपने पतिव्रत्य की रक्षा की है । आदर्श जीवन बिताया है । राजवैभव, खान-पान, सुखों के उपभोग जैसे भोग-विलासों के साधन होने पर भी परपुरुष की ओर कभी दृष्टि नहीं की है, और अतिकष्ट होने पर भी पति के बिनाय अन्य पुरुष के साथ व्रत तक नहीं की है । इस पुण्य प्रभाव से अपने असली स्थान को जा रही हैं” ।

सारांश यह है कि दोनों दम्पती ने विद्या, कला, विज्ञान और ब्रह्मज्ञान अपनी चर्चा में प्रगट किया, जिसमें श्रोतृमन्त्र बहुत ही कृतार्थ हुआ । ज्ञान-दृष्टि से थोड़ासा विचार करें तो सागर परमात्मा का रूप है और प्रवीण मानवबुद्धि का स्वरूप है । अथवा यों भी कह सकते हैं कि सागर श्रीकृष्णजी का रूप हैं और प्रवीण श्रीराधाजी का रूप हैं । कवि ने रस के विस्तार के लिए उन्हीं राधाकृष्णजी के नाम में रूपान्तर कर प्रवीण और सागर के मिलन के उपकार के लिए प्रेम की पहिचान करवाई है । ॐ शम् ।

❀ विषय-सूची ❀

++❀++ ++❀++

लहर—१ ली

मङ्गलाचरण (गणेश-स्तुति) पृष्ठ १-३ । शारदा-स्तुति पृ० ३ । ॐकार-
नमन पृ० ६ । शङ्कर-स्तुति पृ० ८ । राधाकृष्ण-नमन पृ० १० । ग्रन्थाग्म
का समय, विद्यागुरु श्री रामकृष्ण को नमन पृ० ११ ।

लहर—२ री

ब्रह्मा-स्तुति पृ० १२ । रसमय-जगदुत्पत्ति पृ० १३ । नवरसमय जगत् ,
नवरस भेद पृ० १४ । रसमिलन से रस की उत्पत्ति पृ० १५ । रसों की चतुर्विध
वृत्ति, रसदोष, रसाभास पृ० १६ । रस विरोध पृ० १७ । प्रेम-नेम का निरूपण
पृ० १८-१९ । पूर्व कवियों का स्मरण पृ० २० । अविनाशी प्रेम, प्रेमसय
परब्रह्म सत्य है, प्रेमरूप राधाकृष्ण विहार पृ० २२ ।

लहर—३ री

राधाकृष्ण युगल स्वरूप वर्णन पृ० २३ । राधाकृष्ण शृंगार पृ० २४ ।
राधाजी का वशीकरण पृ० २५ । मयियों का वार्तालाप पृ० २७-२८ । श्री राधिका
वर्णन पृ० २९ । श्रीकृष्ण वर्णन पृ० ३० । अपने मन का उपदेश, श्रीकृष्ण
प्रार्थना पृ० ३३ ।

लहर—४ थी

ग्रन्थ का उपक्रम — (मरुवती वर्णन), ग्रन्थ का बीज पृ० ३४ । ग्रन्थोत्पत्ति
का कारण, प्रबीणमागर की पूर्वजन्म कथा प्रारम्भ, कैलाम वर्णन पृ० ३५-३६ ।

शिवरात्रि-महोत्सव पृ० ३७ । देव-दानव-मानवों का आगमन, सभारचना, शिव-पार्वती-पूजन पृ० ४४ । शिवगण विचित्रानन्द चित्रकला के प्यार में पृ० ४६ । विकटानन्द की चुगली, शङ्कर का क्रोध, शिवशाप पृ० ४७ । पुष्पावती को शाप पृ० ४८ । उमाजी के पास गमन पृ० ४९ । दम्पती का शिव-पार्वती स्तवन, पार्वतीजी की शिव से प्रार्थना पृ० ५१ । शाप तो भोगना ही पड़ेगा ऐसा शिवकथन पृ० ५१ । मनुष्यलोक में उन दम्पती का और पुष्पावती का पतन पृ० ५२ ।

लहर—५ वीं

प्रेम के पृथक् २ नाम, इस ग्रन्थ में अलंकारादिकों का क्रम नहीं है पृ० ५३ । वैसे ही रस और अलंकारादिकों का वर्णन है । रसादिकों में तो सबका ध्येय एक है पृ० ५५ । ब्रह्माण्ड के चौदह लोकों का वर्णन पृ० ५६ । भूलोक-विस्तार पृ० ५७ । पृथ्वी, मेरु, देव, किन्नर आदि के स्थान पृ० ५८ । द्वीप, समुद्रादि के परिमाण पृ० ५८ । दिग्गजों के नाम, खण्डों का वर्णन पृ० ५९ । पृथक् २ खण्डों के नाम पृ० ६० ।

लहर—६ ठी

सौराष्ट्र की राजधानी नेहलगर और प्रदीप राजा का वर्णन पृ० ६१ । प्रदीप की शासनपद्धति, शिवशाप में विचित्रानन्द का जन्म पृ० ६२ । मनहंस ज्योतिषी और जन्मकुण्डली, सभा में जानक कथन पृ० ६३-६४ । जानक-शास्त्र में ग्रहों के उच्च, नीच, शत्रु, मित्रादि भेदकथन पृ० ६५ । केन्द्र, त्रिकोण, उपचयगत, ग्रहों का फल पृ० ६७ । कुमार का ग्रहजातक फल पृ० ६९ । कुमार का जन्मचक्र पृ० ७० ।

लहर—७ वीं

गुजरात में मनछापूरी राजधानी और नीतिपाल राजा का वैभव वर्णन पृ० ७४ । नीलकंठ पंडित का आगमन और प्रवीण का जन्मचक्र पृ० ७६ । जातक-फलकथन, मंगल का माठा फल पृ० ८० । उसी नगर में चतुरानन ब्राह्मण का निवास, शिवशाप में पुष्पावती का जन्म, उसका कुसुमावलि नाम, प्रवीण

का बालचरित्र और शास्त्राभ्यास पृ० ८१ । प्रवीण की काव्य रचने की शैली पृ० ८२ ।

लहर—८ वीं

सागर का चरित्रवर्णन, विद्याभ्यास, व्यायाम, राजनैतिक ज्ञान पृ० ८५ । विस्तृत दिनचर्या पृ० ८६ । सागर के मित्रों के नाम पृ० ८७ ।

लहर—९ वीं

मेना के साथ शिकार के लिए गमन पृ० ८९ । शृगालों का बोलना, पशु-पक्ष्यादि की भविष्यवाणी का कथन, आठ दिक् स्वामी और पाहुनों का महफल विचार पृ० ९३ । उनका कोष्ठक, दिशान्तर्गम स्थान पृ० ९४ । ज्वालादि प्रहर भाव पृ० ९५ । निज शकुन पृ० ९६ ।

लहर—१० वीं

जङ्गल का मार्ग, सैन्य और वर्षा का एकत्र वर्णन पृ० ९७ । पहाड़ और शिकारी पशुओं का वर्णन पृ० ९९ । भूमि, पशु, घेर, ऋतु की हवा से नीर छोड़ने का वर्णन पृ० १०१ । बाघ प्रकार के शिकारों का वर्णन पृ० १०२ । चार प्रकार के जलचर शिकार, चिराग का प्रकाश पृ० १०४ । नीतिपाल की सरहद पर छावनी पृ० १०५ । वहां वेग नाम का शिकार पृ० १०६ ।

लहर—११ वीं

प्रवीण के लगन सम्बन्ध का विचार, सिंध में क्रूरवाद और तरणतेज राजा, उसका रंगराव कुमार, उसके विवाह का विचार पृ० १०७ । शशिधर राजगुरु को भिजवाना, राजगुरु का गुजरात में आगमन पृ० १०८ । नीतिपाल की ओर से सत्कार, रंगराव के लिए प्रवीण की याचना पृ० १०९ । शशिधर की ओर से सामुद्रिक लक्षण कथन पृ० ११० । जामातृ शुभाशुभ लक्षण पृ० १११ । कन्या के शुभाशुभ लक्षण पृ० ११२-११३ । नीतिपाल का प्रवीण के साथ विवाह करने का निश्चय, बात सुनने से प्रवीण बेचैन पृ० ११४ । शशिधर की बिदायगी पृ० ११५ ।

लहर—१२ वीं

नीतिपाल की सहेलान, उसमें चतुरंग सेना का वर्णन पृ० ११६ । गज, हस्ति, रथ और पैदल वर्णन पृ० ११७-१२० । ३६ प्रकार के वादित्र व आयुध वर्णन पृ० १२२ । सेना सहित नीतिपाल का शिकार के लिए गमन, सागर की छावनी और नीतिपाल को छावनी के बीच में आठ कोम का अन्तर वर्णन पृ० १२४ ।

लहर—१३ वीं

सागर सैन्य और नीतिपाल सैन्य का युद्ध पृ० १२६ । सागर के मत्तर योद्धाओं का नाश पृ० १२७ । स्वयं सागर युद्ध करने लगा, नीतिपाल के हजार वीरों का नाश पृ० १३० । नीतिपाल की सैन्य भागने लगी, स्वयं नीतिपाल रण में खड़ा रहा पृ० १३४ । इसमें कवि की विनति पृ० १३५ । सागर की ओर गमन, दोनों राजाओं के मिलन की युक्ति, दोनों का मिलन पृ० १३७ ।

लहर—१४ वीं

उन दोनों राजाओं का पांच रात्रि तक जङ्गल में साथ रहना पृ० १३६ । नीतिपाल की मनुहार, मनछापूरी की ओर सागर का आगमन पृ० १४० । पाटवीकुमार रुद्रमेन का स्वागत, पिता को प्रणाम, सागर को भेटना, मनछापूरी में प्रवेश पृ० १४१ । सागर का महल में निवास पृ० १४५ । एक पक्ष के बाद सागर का स्वदेशगमन पृ० १४६ । प्रयाण का समय और प्रवीण का भरोखे में से देखना पृ० १४६ । दोनों की दृष्टि का मिलन पृ० १४६ । सागर का नेहनगर में प्रवेश, पिता को प्रणाम पृ० १५१ ।

लहर—१५ वीं

रससागर का उद्वाह प्रसंग, मेवाड़ में मुदितपुर, मंग्रामसेन राजा, चन्द्रकला कन्या के साथ विवाह का वाग्दान, लग्न, मुहूर्त और कुलिकादि दोषों का विचार पृ० १५३ । गोधूल वेला का निश्चय, गणेशजी की स्थापना पृ० १५४ । मंगलसूत्र

का बन्धन पृ० १५५ । बरात का मुदितपुर की ओर गमन पृ० १५६ ।
रणजीत भाई की ओर से स्वागत पृ० १५८ । जनिवास में उतारा पृ० १५९ ।
मवारी चढ़ना, तोरण मारना पृ० १६१ । तोरण की वन्दना, मण्डप प्रवेश,
मधुपर्क विधि, वेदी के चारों ओर कनककलशों का स्थापन पृ० १६२ । कन्या
का शृंगारवर्णन पृ० १६३ । कन्या का मण्डप में आगमन पृ० १६४ । वैदिक
विधि से लग्न पृ० १६५ । गणेश मात्रकाओं का वन्दन पृ० १६६ ।

लहर—१६ वा

शयनगृह और दासियों की चौकी, काममंत्र का आराधन पृ० १६७ ।
प्रातःकाल में जनिवास गमन, वरात का सम्मान पृ० १६८ । बरात का नेह-
नगर में गमन पृ० १६९ । सागर चन्द्रकला की रतिक्रीड़ा, कोकशास्त्रानुसार
काम का अंगों में निवास पृ० १७० । अष्टविध आर्लिगन पृ० १७१ ।
सप्तविध चुंबन पृ० १७२ । हावभाव के लक्षण पृ० १७३ । अष्टादश हाव
पृ० १७४ । भीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर व बसन्त कीड़ा का वर्णन
पृ० १७५-१८२ ।

लहर—१७ वीं

कोकिला, चातुकी की मंत्र पृ० १८३ । मनछापुरी में आगमन पृ० १८४ ।
प्रवीण का गानसम्बन्धी प्रश्न पृ० १८५ । उत्तर में सात सुरों के नाम, ग्राम,
सप्रस्वर पहिचान पृ० १८६ । छः राग, भैरवादि रागिनियां पृ० १८९ ।
मालकोश, पञ्च रागिनियां पृ० १९१ । हिंडोर और उसकी पञ्च रागिनियां
पृ० १९३ । दीपक और उसकी पंच रागिनियां पृ० १९५ । श्रीराग, पंच रागिनियां
पृ० १९६ । मेघराग, पंच रागिनियां पृ० १९८ । दश दोष रहित तीस रागिनियां
और छः राग, दश दोष पृ० २०० । कालमाप, कालस्वामी पृ० २०१ । क्षण
से श्रुति तक का काल पृ० २०२ । अणु आदि की समझ, जन्तुशब्द संज्ञा
से काल कथन पृ० २०२ । षोडश ताल के नाम पृ० २०३ ।

लहर—१८ वीं

कलाप्रवीण की काव्यरचना, सागररूप का स्मरण पृ० २०५ । सहोदरियों की सभा, कुमारीमण्डल, मनोव्यथा वर्णन पृ० २०७ । वारांगनाओं को नवीन कवित्त सुनाये, मृदंग भेदों का प्रश्न पृ० २०६ । उत्तर में - मृदंग के चालीस भेदों का वर्णन, नृत्य में भेदों की स्पष्टता पृ० २१० ।

लहर—१९ वीं

वारांगनाओं का नेहनगर की ओर गमन. दरबार में सागर-मिलन पृ० २१२-२१३ । सागर को संगीत सुनाना, वसन्त, विहाग और पंजाब राग गाया, त्रियोगी जनों का मिलन सूचन पृ० २१४-२१५ । हममें प्रवीण का प्रेमकथन गाया, प्रवीणकृत तीन कवितायें सुनाई, सागर को प्रवीण का स्मरण करा दिया, यह कवित्त कहां से प्राप्त किये ऐसा सागर का प्रश्न पृ० २१६-२१७ । यह तो प्रवीणकृत छन्द है, सागर ने वह फिर से गवाया पृ० २१८-२१९ ।

लहर—२० वीं

प्रवीण का देश, गांव और नाम पृच्छना. उत्तर में—गुजगन, मनछापुरी, मूर्यवंश और सुजान ऐसा नाम कहा पृ० २२० । प्रवीण का नख-शिख्य वर्णन, और वैसा अन्य वर्णन किया पृ० २२२-२३२ । सागर की प्रवीण की आंग उत्कण्ठा पृ० २३२ ।

लहर—२१ वीं

सागर और मित्रों की चर्चा, सागर को प्रवीण-मिलन की चिंता पृ० २३६ । बागवर्णन पृ० २३७ । मित्रों ने चिंतन की बात पृच्छी, मित्रों के निवेदन में प्रवीण की ओर पत्र लेखन, भारतीनन्द की दूत-कार्य के लिए पमन्दगी पृ० २३६ । कवि कार्य करने के लिए तैयार हुआ पृ० २४० ।

लहर—२२ वीं

भारतीनन्द ने पत्र लिखा और मनछापुरी की ओर गमन किया, एकान्त में उतारा किया पृ० २४१ । मौदागर का रूप लिया और दूती की खोज की

पृ० २४२ । उक्तिवर भारतीनन्द का मिलाप, अश्वपरीक्षा का प्रश्न पृ० २४४ ।
अश्वों के उत्तम आदि चार भेद, चतुर्वर्णीकृत अश्वपरीक्षा पृ० २४५ । अश्वों का
खोटभेद, अश्वरंग खोटी भेद पृ० २४६ । अशुभ भ्रमरिका स्थानभेद, अश्व
मुभगरंग पृ० २४८ । भ्रमरियों का शुभस्थान पृ० २४९ । अश्वलक्षण
परीक्षा पृ० २५० ।

लहर—२३ वीं

भारतीनन्द उक्तिवर चर्चा पृ० २५२ । राजकुटुंब का वर्णन पृ० २५३ ।
नीतिपाल के कुमार-कुमारी की प्रशंसा पृ० २५४ । कुमारी के पाम चतुरांगन की
पुत्री कुसुम का रहना पृ० २५४ । भारतीनन्द का वेश पलटना, योगी के वेश में
चतुरांगन की ओर गमन पृ० २५५ । मठास्नाय कथन, पट्टविध संन्यास कथन
पृ० २५७-२५९ ।

लहर—२४ वीं

संन्यासी कुसुम की गद्द देवता हैं, वह घर की ओर आती हैं, संन्यासी
घर में देखा, रूप से संन्यासी खुश हुआ पृ० २६१ । ब्रह्मचर्चा और संगीत से
कुसुम प्रमत्त हुई पृ० २६३ । कुसुम के समस्त गात्रों में संगीत, प्रवीण के छंद
कान्हडा राग में गाये पृ० २६४ । वचन देकर पूछने लगी, उत्तर में—दृष्टि
मिलन की पूर्व बात कही पृ० २६६ ।

लहर—२५ वीं

संन्यासी कुसुमावलि चर्चा, प्रवीण पाद्विनी हैं, संन्यासी ने नायक नायि-
काओं के लक्षण पूछे, कुसुम ने चार प्रकार के नायक कहे पृ० २६८ ।
अनुकूल, दक्ष, शठ, धूर्तों के लक्षण कहे पृ० २७० । चतुर्विध नायिकाओं के
भेद पाद्विनी, चित्रणी पृ० २७१ । शंखिनी, हस्तिनी के भेद पृ० २७२ ।
सागर को कितने भेदों की खबर है ? आप नायिकाओं के लक्षण कहाँ पृ० २७३ ।
नायिका भेद संख्या वर्णन, ३६ भेद कथन पृ० २७५ । मुग्धा, मध्या,
प्रौढा के चार चार भेद पृ० २७६ । फिर और भी २४ लक्षण पृ० २७७ ।

स्वाधीन-पतिकादि चार भेद, खंडिता आदि के चार, स्वयं दूतिकादि तीन, रति गुप्तादि चार पृ० २७६ । अनूढादि भेद, मध्या, मानवती आदि चार के लक्षण पृ० २८० । गर्वितादि तीन भेद, उन सबका हिसाब, उत्तमादि तीनों का लक्षण पृ० २८१ । दिव्या, अदिव्याओं का लक्षण, क्रिया-विदग्धादि के लक्षण पृ० २८२ । इन सबकी विस्तृत संख्या १८६६२४ पृ० २८३ । यह सब भेद सागर जानता है, कुसुम की प्रमत्तता पृ० २८४-२८६ ।

लहर—२६ वीं

सागर का पत्र संन्यासी ने दिया, कुसुम ने लिया और प्रवीण के पास गई पृ० २८७ । कुसुम स्वप्न की बात प्रवीण को सुनाने लगी पृ० २९० । स्वप्न-कथन रूप में प्रवीण को सागर की ओर का ख्याल दिया पृ० २९२ । सागरलिखित पत्र दिया, प्रवीण पत्र पढ़ने लगी पृ० २९५ । २७ पत्रयुक्त पत्र पृ० २९६-३०१ ।

लहर—२७ वीं

प्रवीण मछली की भांति तड़कने लगी, पूरा पत्र पढ़ने में मूर्च्छा आ गई पृ० ३०२ । फिर अश्रुधारा में पढ़ न सकी पृ० ३०३ । प्रेमाग्नि धक्कने लगी, नौद न लगी, इस बात को सुलाने का कुसुम का यत्न पृ० ३०४ । तीन दिन के बाद सागर के साथ बगने का निश्चय, शिवमन्दिर की ओर जाने के लिए पिताजी से प्रार्थना पृ० ३०५ । अनुज्ञा मिली, शृंगारमज्जित गमन पृ० ३०७ । शिवपूजा-प्रार्थना पृ० ३०८ । तोमर छन्द में वन्दना पृ० ३०९ । कुमारीव्रत धारण, वैश्वे व्रत में हाहाकार पृ० ३१० । नीतिपाल को खेद पृ० ३११ ।

लहर—२८ वीं

पत्रोत्तर कब भेजना है ? संन्यासी राह देख रहा है, प्रवीण की अभिमारिका दशा, द्वादश आभरण और मालह शृंगार वर्णन पृ० ३१४ । मधुभार छंद में पत्र लेखन, जोगिनी का रूप धारण पृ० ३१६ । प्रवीण का पत्र

कुसुम ने संन्यासी को दिया पृ० ३१७ । संन्यासी का अपने उतारे की ओर गमन, नेहनगर जाने का विचार पृ० ३१६ ।

लहर--२६ वीं

भारतीनन्द सागर को मिला, एकान्त में सब बात कही, प्रवीण का पत्र दिया, सागर पत्र बांचने लगा पृ० ३२० । पत्र सम्बन् १६४० वैशाख पूनम का था पृ० ३२४ । रमसागर दशा वर्णन पृ० ३२७ । प्रतिमाम पत्र लिखने का मनसूबा पृ० ३२६ ।

लहर--३० वीं

विरह दशा का पत्रव्यवहार, प्रवीण के दर्शन की इच्छा, मातों मित्र चले पृ० ३३० । मनछापुगी पहुंचे, विलायती पोशाक धारण की पृ० ३३१ । कुसुमावलि ने पहिचाना, कुसुम का प्रश्न, आप अमाध्य रोग मिटाते हो ? पृ० ३३३ । प्रवीण बीमार हैं तो यह यंत्र दो पृ० ३३४ । एक बार मिलने का उपाय करो पृ० ३३४ । सागर ने पत्र कुसुम को दिया पृ० ३४२ ।

लहर--३१ वीं

प्रवीण-कुसुम चर्चा, कुसुम ने वैद्य का संदेश सुनाया पृ० ३४४ । वैद्य का पत्र दिया पृ० ३४५ । प्रवीण ने पीड़ित होने का बहाना किया, दर्द की दशा का वर्णन पृ० ३४७ । प्रवीण की व्याधि दशा पृ० ३४८ । विलायती वैद्य की खोज और हजूर में बुलाने की अर्ज पृ० ३४९ । वैद्य के साथ संवाद, नस नाड़ियों के नाम, वात, पित्त, कफ की नाड़ी, आदान, निदान और चिकित्सा पृ० ३५१ । त्रिदोष के लक्षण, अन्तःपुर में जाने के लिए वैद्य को आज्ञा पृ० ३५२ । वैद्य का अन्दर गमन पृ० ३५३ ।

लहर--३२ वीं

कुसुम ने कुमारी को वैद्य का आगमन कहा, वैद्य ने मधुर मधु और पान का बीड़ा दिया, तबीब का कथन पृ० ३५६ । कलाप्रवीण की दशा, नैनो का वर्णन पृ० ३५७ । प्रवीण की वाणी का वर्णन पृ० ३५८ । तबीब का कथन पृ० ३६० ।

वैद्य अंगों को देखता है पृ० ३६१ । वैद्य की विदायगी पृ० ३६१ ।
वैद्य का मित्रों के साथ स्वदेश गमन पृ० ३६३ । सागर चुपके से महल
में पृ० ३६५ ।

लहर—३३ वीं (विप्रलम्भ शृंगार वर्णन)

विप्रलम्भ के चार प्रकार—(पूर्वराग, करुण, मान और प्रवास) पृ० ३६६ ।
उन चारों के लक्षण, दश दशाओं के नाम पृ० ३६७ । उनके पृथक् २ लक्षण
पृ० ३६८ । राजतंत्र से उनकी साम्यता, उन दशाओं के आधीन सागर
पृ० ३७० । वैसी ही प्रवीण की दशा पृ० ३७२ । वैसे ही परस्पर की ओर
पत्रव्यवहार पृ० ३७८ ।

लहर—३४ वीं (उपालम्भ के भेद)

परमेश्वर को उपालम्भ पृ० ३७९ । इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी,
चित्रगुप्त और नमीव वगैरह को उलाहना देना पृ० ३८०-३८० ।

लहर—३५ वीं (अरण्य में शिवस्थापन)

प्रवीण की ओर से पत्र पृ० ३८१ । नैनतरंग के पास शिवमन्दिर, सुरंग
से मन्दिर में और बगीचे में गमन योजना पृ० ३८२ । वन, उपवन, पर्वत,
नदीतट वर्णन पृ० ३८३ । नीतिपाल को सपरिवार आमंत्रण पृ० ३८४ ।
उसके लिए कवि का मनझापुरी गमन और निमन्त्रण पृ० ३८५ । सागर का
गुप्त पत्र कवि ने कुसुम को दिया, पत्र से प्रवीण की तैयारी, बगीचे में मुकाम
पृ० ३८६ । राजवर्ग का सागर से स्वागत पृ० ३८७ । भारी उत्सव
पृ० ३८७-३८९ ।

लहर—३६ वीं (कवि-कुसुम-चर्चा)

चर्चा-कथन में दोनों के हाल पृ० ४००-४०२ । पतंग, चातक, कोयल,
मोन, हंस, मोर, भ्रमर, पपीहा आदि के दृष्टांत पृ० ४०३ । मकड़ी, मगर,
चंद्र के दृष्टांत पृ० ४०७-४०९ ।

लहर-—३७ वीं (शिवाभिषेक)

सुमुहूर्त अभिषेक की योजना, प्रवीण मिलान का संकेत दिन पृ० ४१० । प्रवीण का शृंगार सजना पृ० ४११ । सागर और कवि ने यांगीवेश धारण किया, सुरंग द्वारा मंदिर में प्रवेश पृ० ४१२ । प्रवीण रथ पर बैठी, यहां कवि-सागर शिव-प्रार्थना करने लगे पृ० ४१३ । प्रवीण का मंदिर की ओर गमन पृ० ४१६ । सागर कुमुमावलि को मिलान का निवेदन करने लगा पृ० ४२० ।

लहर-—३८ वीं (कलाप्रवीण की शिवपूजा)

कुमुमावलि ने रणवास को समझाया, मंदिर में दो यांगी बैठे हैं, दर्शन और स्पर्श करने से सुखदाता हैं, प्रथम प्रवीण का प्रवेश पृ० ४२२ । शेष सब ही बाहर मंडप में बैठे पृ० ४२३ । प्रवीण सिद्ध के पास जा बैठी, सागर-सिद्ध के साथ चर्चा करने लगी, शिष्य मोलह शृंगार वर्णन करने लगा पृ० ४२४ । कुमुम मंत्र घोष करने लगी, आकाश-वाणी हुई, छः ऋतु बीतने बाद सिद्ध आवेगा, वह जैसा वहेगा वैसा करना पृ० ४२५-४२८ । प्रवीण मंदिर के चौक में आई, दोनों का तब विछोर पृ० ४३२ ।

लहर-—३९ वीं (दम्पती पटु ऋतु विरह वर्णन)

सागर सिद्ध के आने तक मंदिर में ही रहा, प्रति पत्र पत्र लिखना निश्चय किया, छः ऋतु का विरह-पत्र सोदाहरण, प्रथम शरद विरह वर्णन पृ० ४३४ । हेमंत विरह वर्णन, शिशिर विरह वर्णन पृ० ४३५ । वसंत विरह वर्णन पृ० ४३६ । ग्रीष्म, वर्षा विरह वर्णन पृ० ४३७ । समग्र पटु ऋतु विरह वर्णन पृ० ४३९ । ऋतु-गत परिवर्तित पदार्थों से विरह-व्यथा पृ० ४४०-४४४ ।

लहर-—४० वीं (प्रवीण का वसंतगत विरह)

मलय का पवन वहेगा, भँवर गुंज करेंगे पृ० ४४६ । वृक्ष, लता, कमल, कोकिल कूजन से विरह पृ० ४४६ । फाल्गुन और बाग वर्णन, चातक मोर

आदि का मौन वर्णन पृ० ४४८ । वसंतरूपी मुनिवर आये हैं पृ० ४४९ !
विरहीजन सागर का सम्हारने लगे पृ० ४५० । वसंत में किम प्रकार भुलाया
जा सके ? पृ० ४५१ । इस प्रकार प्रवीण ने सागर की ओर पत्र भेजा
पृ० ४५२ ।

लहर—४१ वीं (सागर वसंत-प्रीण विरह)

सागर और मित्र चर्चा, सागर की वसंत विरह चर्चा, वैसा पत्र प्रवीण
की ओर पृ० ४५३ । हमारे लिये वसंत मस्त हो रहा है पृ० ४५४-४५५ ।
वसंत के रूप में पशुपति आये हैं पृ० ४५७ । वसंत कपटी है पृ० ४५८-
४५९ । अब तक वसंत पूर्णिमा नहीं आई पृ० ४६१ । (प्रीणवर्णन)—प्रीण
के दिनों में मित्र आइये पृ० ४६२ ।

लहर—४२ वीं (प्रवीण का वर्षा-विरह)

यह तो नागों की टोली है !! पृ० ४६४ । प्रीति की पीड़ा अनोखी है
पृ० ४६५-४७५ ।

लहर—४३ वीं (सागर वर्षा-विरह वर्णन)

वैसा अंबर देखकर विरही कैसे बचे ! पवन चला, पूर्वानुराग की तरंगें
हिलोरे लेने लगीं, प्राण पतंग बना है, इस प्रकार विरह-वृद्धि का पत्र प्रवीण की
ओर भेजा पृ० ४७६-४८८ ।

लहर—४४ वीं (सागर को सिद्ध का दर्शन)

सिद्ध कब आवेंगे ! उत्तर में—ज्वालामुखी के पार 'प्रमथनाथ' तपस्वी रहते
हैं पृ० ४८९ । वे पूर्णाभिषेकी हैं, आराधना में तत्पर हैं पृ० ४९० । उमाजी
की आज्ञा, यहां दोनों का आत्मघात करने का विचार पृ० ४९१ । शिवालय
में सिद्ध-सागर के साथ वार्तालाप पृ० ४९३ । मन की बात जानी पृ० ४९६ ।
मिथ्या बातें छोड़ो, शिव-शक्ति का ध्यान करो पृ० ४९७ ।

लहर--४५ वीं (प्रेम-महिमा वर्णन)

सागर ने आकाशवाणी की स्मृति दिलाई पृ० ४६८ । उसी प्रातःकाल में आत्मघात का निश्चय, प्रेम के बिना इष्ट-साधन कैसे होंगे ? सिद्ध प्रेम की रीति कहने लगे पृ० ४६९ । ये तो तुम्हारी परीक्षा ली, प्रेम की यही पहिचान है पृ० ५०० । प्रेम प्रशंसा और उसके प्रकार पृ० ५०३ । योग्यतानुसार प्रेम की प्राप्ति पृ० ५०४ । प्रेम की मात्रा न्यूनधिक होती है, चतुराई से बढ़ती है पृ० ५०५ । प्रेम में ब्रह्म ठहराना पृ० ५०८ ।

लहर--४६ वीं (प्रेम की महिमा)

सब शास्त्रों में ब्रह्म (प्रेम) दीखता है--मग्न होते हैं--तिरते हैं पृ० ५१० । प्रेम-वृत्त पर चढ़ा कभी उतरता नहीं है पृ० ५१३ । प्रेम की उदासी चतुर जन पा सकता है पृ० ५१४ । प्रेमी जन को सुरत का रंग चढ़ता है पृ० ५१६ । प्रेम के साथ चित्त के वर्णन से शील और शोषणता लगती है पृ० ५२० । प्रेमरूपी परमात्मा को प्रणाम पृ० ५२१ ।

लहर--४७ वीं (भाविक और स्वाभाविक प्रेम)

कितनेक स्वाभाविक प्रेम के आधीन हैं, और दूसरे भाविक के!! पृ० ५२२ । सिद्धोक्त स्वाभाविक प्रेम वर्णन पृ० ५२३ । भाविक प्रेम वर्णन पृ० ५२८ । सिद्धोक्त स्वप्रेमश्री विधान पृ० ५३२ । तंत्रमार्ग से मंत्र-विधान पृ० ५३३ । सब विधि प्रवीण की ओर भेजी पृ० ५३६ । सिद्ध ने विदायगी ली पृ० ५३६ ।

लहर--४८ वीं (प्रवीण का पत्र)

कलाप्रवीण विरह-पार्ती वर्णन पृ० ५३७ । आप हृदय के इतने कठोर क्यों ? सागर दुलारे ! आप कब आओगे ? पृ० ५४३ । इस असाध्य रोग का निदान बतलाइये पृ० ५४७ ।

लहर--४९ वीं (सागर-विरहदशा पत्र)

मेरा शरीर किस तरह से बेधा पृ० ५४९ । एक बार तो आइये पृ० ५५० । इन बातों से प्रेम की हंसी होती है पृ० ५५३ ।

लहर—५० वीं (प्रवीण और कुसुमावलि का विरह वार्तालाप)

यह सब भाग्य की कुटिल गति है पृ० ५५८ । वनवासी के रूप में मिलूंगी पृ० ५५९ । अब सागर और मित्रों में वार्ता चली पृ० ५६४ । सब देव प्रवीण के अंग में हैं पृ० ५६६ ।

लहर—५१ वीं (कलाप्रवीण कुसुम संवाद) [विरहांतर नायिकाभेद]

स्वाधीन-पतिका भेद पृ० ५७१ । अभिसंधिता भेद, मुदिता भेद पृ० ५७२ । दिग्धा भेद, वासकमजा भेद पृ० ५७३ । अनुशयना भेद, अभिसारिका भेद पृ० ५७४ । खंडिता भेद पृ० ५७५ । प्रवत्स-पतिका भेद, प्रोपित-पतिका भेद पृ० ५७६ । कलाप्रवीण वर्णन पृ० ५७७ ।

लहर—५२ वीं (द्वारिकानाथ प्रयाण प्रसंग)

मित्र को मिलने के लिये प्रवीण का द्वारावती गमन पृ० ५८३ । जाने के लिये पिता ने प्रबंध किया पृ० ५८५ । इस सूचना का पत्र सागर की ओर भेजा पृ० ५८६ । आधी रात में सानों मित्रों ने रास्ता लिया पृ० ५८९ । किसी राजा के बाग में मुकाम पृ० ५९० । चित्रेश्वरी ध्यान, स्वप्न में संदेश पृ० ५९१ । गुसाईजी का दर्शन, मंत्रोपदेश पृ० ५९३ । गोमाईजी का वेश धारण, द्वारावती बाग में मुकाम पृ० ५९५ ।

लहर—५३ वीं (द्वारावती-प्रवेश प्रसंग)

गोस्वामी (सागर) का शृंगार वर्णन पृ० ६०० । प्रभान का कार्य वर्णन पृ० ६०१ । तीर्थ तट वर्णन, दुर्वीन से देखने लगी पृ० ६०५ । दामी कवि के पास गई पृ० ६०७ । नाम ब्रजराजजी है पृ० ६०८ । प्रवीण को आनंद पृ० ६०९ ।

लहर—५४ वीं (प्रवीण का सागर के प्रति मनुहार पत्र)

कुसुम देवालय में पैदल चली, वहां सागर का दर्शन पृ० ६१२ । मनछा-पुरी में प्रवीण के पास रहती हूं, पत्रयुक्त पान-पटी दी, बांचन किया पृ० ६१३ ।

श्लोक लिखने का पत्र निकाला, प्रवीण की ओर भेजा पृ० ६१५ । सागर का पत्र बांचा पृ० ६२० ।

लहर—५५ वीं (देवालय में प्रवीण-सागर-मिलन प्रसंग)

सागरोक्त श्रीपति स्तुति पृ० ६२३ । प्रवीण शृंगार वर्णन पृ० ६२६ ।

लहर—५६ वीं

देवालय में प्रवीण-सागर वार्तालाप पृ० ६३२ । राजकुमारी पूजा करना चाहती है—विधान बनाओ पृ० ६३३ । महाराज पूजा का विधान कहने लगे पृ० ६३४ । प्रेम का उपदेश पृ० ६३५ । महाराज (सागर) के पाम प्रवीण रही पृ० ६३७ । पुरानी पहिचान आकर मिली पृ० ६३८ । प्यारे ! किम बड़ी मिलोगे ? पृ० ६४२ ।

लहर—५७ वीं (मन्त्रोपदेश, श्रीपति पूजन भेद)

अन्य स्त्रियों में देरी की चर्चा—उच्चार सीखने में देरी पृ० ६४५ । ब्रज-राज को प्रणाम पृ० ६४८ । कोकिल, कीर, पतंग, हंस, नट, भ्रमर आदि अन्योक्ति पृ० ६५०-६५५ ।

लहर—५८ वीं (दंपति विरहदशा—मन शिक्षा)

प्रवीणोक्त मन शिक्षा पृ० ६५६ । सागर मन शिक्षा पृ० ६५८ । प्रेम के वाग में जाकर प्रवीण को मिलना पृ० ६६४ ।

लहर—५९ वीं (दंपति पत्र भेद समस्या)

प्रति माम पत्र लेखन पृ० ६६६ । अंग कांपता है, द्वितीया चंद्र वाद्यनख है पृ० ६६७ । सागर का पत्र पृ० ६६८ । वर्णविश्लेष पृ० ६६९ । समस्या के भेदों से पत्र लेखन, इन बावन अक्षरों का भेद ढूंढो पृ० ६७१ । स्वर्णों के उदात्तादि भेद, व्यंजनों के भेद, गुरु लघु विचार पृ० ६७२ । तालवादि स्थान

और प्रयत्नों का विचार पृ० ६७३ । भारत-भागवतादि में भी प्रेम की पहचान पृ० ६७४ । सागरोक्त समस्या भेद पृ० ६७५ । चित्रालंकार पृ० ६७६ । वैसे अपार पत्र आते हैं पृ० ६७८ ।

लहर--६० वीं (दंपती-प्रेम द्रढाव पत्र भेद प्रसंग)

पतंग और दीपक दृष्टान्त, समुद्र और लहरों का उदाहरण पृ० ६७९ । चातक लुपित ही है पृ० ६८० । पंजाबी भाषा में सबैया पृ० ६८५ ।

लहर--६१ वीं (अंतर्लापिका-बहिर्लापिका)

प्रवीणोक्त बहिर्लापिका पृ० ६९० । सागर का नाम 'महेगमन'—अंतर्लापिका पृ० ६९१ । बहिर्लापिका प्रश्नोत्तर, विरह कथन पृ० ६९२ । वर्ग-वर्णोपरि बहिर्लापिका, अंक-भेद बहिर्लापिका पृ० ६९३ । उलट भेद अंतर्लापिका, अंतर्लापिका प्रश्नोत्तर पृ० ६९५ । सागरोक्त आद्याक्षरी अंतर्लापिका पृ० ६९६ । मध्याक्षर अन्तर्लापिका पृ० ६९७ । अभिधान भेद अन्तर्लापिका (जिमें महेरामन और सुजान का उल्लेख) पृ० ६९९ । गगोपरी अन्तर्लापिका, चतुराक्षरे अन्तर्लापिका पृ० ७०० ।

लहर--६२ वीं (प्रवीणोक्त गोमूत्रिकादि चित्र भेद)

द्विपदी गोमूत्रिका पृ० ७०६ । अश्वगति, त्रिपदी, कपाट बंध पृ० ७०७ । पर्वतबंध, त्रिवर्ण चक्राकार पृ० ७०९ । शिखर बंध पृ० ७१३ । होजबंध, सर्वतोभद्र पृ० ७१५ । सरोता बंध पृ० ७१६ । स्वस्तिकाकृति पृ० ७१७ ।

लहर--६३ वीं (सागरोक्त गोमूत्रिका भेद)

गोमूत्रिका बंध चित्र पृ० ७२० । अश्वगति, त्रिपदी, षोडश दल कमल, छत्रि प्रबंध, नाग पाश, जाली बंध, अष्टकोण वर्तुल, चौपर बंध, चौकी, सीढी, कपाट, नाग पाश पृ० ७२०-७३६ ।

लहर--६४ वीं (प्रवीणोक्त चित्रकाव्य)

कर्णिकाद्यमध्यान्त कमलबंध, पंचचक्र, नालिकेर, रथचक्र, कमल, चतु-
गुच्छ, अष्टदल कमल, लहरी, चतुर्दल कर्णिका कमल, अष्टदल पुष्प, सुमन,
कुसुम, रथचक्र, नाग-शिशु, नवफणा नाग, नागशिशु, केतकी, चतुःत्रिशूल, मह-
लता, चतुर्वर्ण चक्र, मुकुट, द्वि० मुकुट, नराकृति और धनुष्य, चौकी, चक्राकृ-
ति, खड्गबंध, गजबंध, हस्ति, आद्यंतमुख सर्प, कटार, देवालय, हार, ताउम,
वीणा, सतार, दर्पण, चक्र, अष्टादश कमल, मुष्टिका, हार, माला, धनुष्य,
चामर, द्वि० चामर, खड्ग, त्रिपदी, कपाट पृ० ७३७-७७४ ।

लहर--६५ वीं (सागरोक्त चित्रकाव्य)

षोडश दल कमल, अष्टदल कमल, द्वादश खंड स्वस्तिक, षोडशदल,
जलागार, वृत्त, चौकी, सर्वतो भद्र, पुनर्चौकी, पुष्पांतरे चक्राकृति, मनीमाल,
अष्टदल उज्जीर, मयूर, गोरख, षोडशदल, पुष्पवृत्तमहलता, चक्राकार, पंखा,
अमृत कलश, अश्वबंध, नागपाश, वीणा, खड्ग, कटार, अश्व, पताका, कमल
पृ० ७८३-८०८ ।

लहर--६६ वीं (दंपती श्लेष-भेद काव्य)

प्रवीणोक्त अभिन्नपदश्लेष से विरह-दशा कथन पृ० ८१७ । सप्तार्थ श्लेष
पृ० ८२० । द्वयार्थ श्लेष पृ० ८२३ । त्रयार्थ श्लेष पृ० ८२५ । पंचार्थ श्लेष
पृ० ८२६ । सागर पूर्ण प्रेमदशा पृ० ८२८ । सातों मित्रों को छोटी सवारी
की आज्ञा पृ० ८३० । शिकार की ओर प्रयाण, शिव मंदिर गमन पृ० ८३२ ।

लहर--६७ वीं (सागर मित्रचर्चा)

एकांत में मित्रों के साथ बातें पृ० ८३३ । सागरोक्त मन द्रढाव पृ० ८३४ ।
सागर आप संन्यास तीजिये पृ० ८३७ । मित्रों ने भी अपना प्रेम व्यक्त किया
पृ० ८३८ ।

लहर--६८ वीं (सागर योगीरूप धारण प्रसंग)

छः मित्रों के साथ सागर संन्यासी बना पृ० ८४२ । शिवजी की स्तुति पृ० ८४३ । दश मश विद्या का ध्यान पृ० ८४३ । सागरोंक नवीन शकुन भेद पृ० ८५० । शब्द ब्रह्म निरूपण पृ० ८५१ । नवरस नाम पृ० ८५३ ।

लहर--६९ वीं (योगियों का प्रयाण वर्णन)

स्तान, व्याघ्र-चर्म धारण, एकप्र ध्यान, जटा पृ० ८५७ । प्रवीण को संपत्ति विपत्ति हो रही है, अवधूतों की चर्चा मालिनी ने कुसुम को सुनाई पृ० ८६१ । कुसुम बाग में आई, यह प्रपंच क्यों ? पृ० ८६१ । कुसुम ने प्रवीण की दशा का वर्णन किया पृ० ८६५ ।

लहर--७० वीं (सागर और प्रवीण प्रसंग)

मनछापुरी के बाग का वर्णन पृ० ८६७-८६८ । संन्यासी ने पत्रिका लिखी, उत्तर लेकर इस बाग में आना पृ० ८६९ । पत्र वापिस लिया, नवीन वाक्य लिखा पृ० ८७१ । दारा, सिकंदर, फूल, पन्ना, मुहम्मद, बहराम, मजनू ने प्रेम किया था पृ० ८७३ । नामाक्षर का गणित पृ० ८७६ । प्रवीण ने योगिनी रूप लिया पृ० ८७७ ।

लहर--७१ वीं (योगेश्वर चर्चा और फेरी गमन)

गली २ में अलख जगाने लगे पृ० ८७८ । फिरते २ प्रवीण के महल की बारी की ओर आए, प्रवीण बेभान हुई, संन्यासी का सन्मान करो पृ० ८८४ । संन्यासी खिड़की के नीचे खड़े रहे पृ० ८८५ । प्रवीण दर्शन में मग्न हो गई, गरम अश्रु पड़ने लगे, कुसुम प्रवीण को पकड़े रही, प्रवीण ने मोती माला, जड़ाऊ प्याली, हीरक-जटित बिन्दी अंगोछे में बांध कर योगी के पास डालदी, योगी ने अंगोछा लिया, गमन किया पृ० ८८७ । 'कोई आजब तमाशा देखा' इसके दस पृथक् २ अर्थ पृ० ८८९ । प्रवीण ने प्रत्युत्तर लिखा पृ० ८९३ । बाग में कुसुम की ओर से भेजा पृ० ८९७ ।

लहर--७२ वीं (संन्यासियों का अरण्यगमन)

सागर ने अनेक भेद युक्त कविता बनाई, स्वप्न में मिलन की बात लिखी, पत्र और कवित्त प्रवीण की ओर भेजा, एक वर्ष के बाद यहां आयेंगे पृ० ६०१। तपस्वी जंगल में चले, प्रवीण ने एकांत में पत्र बांचा पृ० ६०२। प्राण जाने की इच्छा करती, अवाधि की बात से प्राण रोंका, सिद्ध के दर्शन के लिये सागर यति ने उत्तर दिशा का मार्ग लिया पृ० ६०४। सात पखवाड़े में बद्रिकाश्रम आये पृ० ६०५। सुरतानंद पर्वत पर पांच दिन रहे पृ० ६०६। प्रभानाथ सिद्ध ने ज्वालामुखी पर्वत का आश्रम छोड़ा, सुरतानंद की ओर आये, सागर ने पूजन किया पृ० ६०७।

लहर--७३ वीं (प्रवीण विरह-दशा वर्णन)

प्रवीण हाय २ उच्चारती है, कामदेव बाण से बाँध रहा है, तुम्हारे साथ ही अलग्व जगाऊंगी, मैं विभूति की गोली होकर सागर की झोली में रहूंगी, हे मुजान ! तेरे लिये अयोग्य है, महल में गुप्त रूप से रह, सार वाली वस्तुएं अमार हो रही हैं, मेरी कर्म गति कैसी खराब है ! पृ० ६०८-६३१।

लहर--७४ वीं (कुसुमावलि की सिखावन)

रुदन करने से देव को दया आती नहीं है, तू मिथ्या दुःख मान रही है, विरह-दुःख कल्पनामात्र है, तन दुःख वर्णन, मन दुःख वर्णन पृ० ६३७। जैसे प्रभु रक्खे उसी में खुश रहना चाहिये पृ० ६४१। प्रभु-प्रेम स्थिर है पृ० ६४३। सत्यब्रह्म को क्यों नहीं भजती ? पृ० ६४५। सत्य दुःखों का लक्षण पृ० ६४७। मन-कल्पित दुःख पृ० ६४६। समुद्र का दृष्टान्त पृ० ६५२। एक दरिद्री और राजा का दृष्टान्त पृ० ६५३।

लहर--७५ वीं (प्रिय का प्रवास और कुसुम का परिहास)

कुसुम ! तेरा उपदेश मुझे जरा भी नहीं रुचता पृ० ६५७। वे कहां गये ? साथ कौन है ? पृ० ६५८। पहाड़ी मार्गों पर सागर कैसे चलेंगे ? पृ० ६५९। मना कर आओ, अलख जगाकर काम को जगा गया पृ० ६६०। कुसुम परिहास करती है, स्वप्न में मिलता ही है, प्रवीण उत्तर में—“भेंडक

की तो जान जाय और कौवे को हंसी आवे” पृ० ६६१ । प्रवीण ! ठंडी पवन में रह, ब्राह्मण-पठित दोहा गर्भ सप्तशतिका मंत्र पृ० ६६३ । श्लोकांतर्गत वह दोहा पृ० ६६४ । कुसुम प्रवीण का संवाद पृ० ६६७-६७६ । अष्ट प्रकार विवाह भेद पृ० ६७७-६७९ ।

लहर—७६ वीं (कुसुमोक्त प्रेम-प्रशंसा)

धैर्य धारण कर वर्ष की अवधि बिताओ पृ० ६८० । प्रेम की बात सब से न्यायी है पृ० ६८५ । भाविक प्रेम वर्णन पृ० ६८६ । प्रह्लाद, ध्रुव, ब्रजबाला, उषा, शकुंतला, मालविका, उर्वशी, और वामनवदत्ता आदि प्रेम में मुग्ध हुए पृ० ६८७ । मालती, हीरा और रांभा, रंगरेजिन और आलम, काम-कंदला और माधवानल, छैल बटाउ और मोहिना, मोजदिन और महताब, पुष्पसेन, पद्मावती इत्यादि का प्रेम देखो पृ० ६८८ । स्वाभाविक प्रेम पृ० ६८९ । जड़प्रेमी लोह चुंबकादि पृ० ६९० । दोहद वृत्त वर्णन पृ० ६९२ ।

लहर—७७ वीं (प्रवीण का योगिनी रूप धारण)

दैव प्रतिकूलता से सुख नहीं मिलता, राजा और दीन का दृष्टान्त पृ० ६९५ । दैव की अनुकूलता में दीन का दृष्टान्त पृ० ६९७ । समुद्र का दृष्टान्त पृ० ६९८ । प्रवीण की प्रतिज्ञा, संसार सुख मेरे लिये हराम है पृ० १००० । आकाश वाणी की ओर से धन्यवाद पृ० १००२ । प्रवीण का योगिनी रूप पृ० १००५ । वे सब प्रवीण की दशा से दुःखी हुए पृ० १००८ । गुर्जरी, कच्छी, महाराष्ट्री, मरुदेशी, माथुरी, यावनी और गीर्वाणा इन छः सखियों का उपदेश पृ० १००९-१०११ । मात-पिता प्रति सखि उक्ति पृ० १०१२ । प्रवीण प्रति मात-पिता की उक्ति पृ० १०१३ । कलाप्रवीण का एक ही सिद्धान्त पृ० १०१६ ।

लहर—७८ वीं (सागर-सिद्ध संवादे—नारी निंदा)

सिद्धोक्त शिक्षाकथन पृ० १०१६ । सागर का उत्तर पृ० १०२० । सिद्ध-कथन पृ० १०२३ । स्त्री शरीर से घृणा, सागरोक्त नारी प्रशंसा पृ० १०३३ । सिद्धोक्ति से नारी निंदा पृ० १०३५ । सागरोक्त नारी प्रशंसा पृ० १०३६-१०४६ ।

लहर--७९ वीं (सार्ता का पूर्वभव और विविध योग कल्पना)

मन का संशय दूर करो पृ० १०४७ । पूर्व भव कहो पृ० १०४९ । सिद्धोक्त पूर्व भव का वृत्तांत पृ० १०५१ । ईश्वर के दो रूप पृ० १०५७ । भक्ति भेदाभिधान पृ० १०५८ । नवधा भक्ति पृ० १०६१ । प्रेम लक्षणा, परालक्षणा पृ० १०६७ । भक्तों का परिचय पृ० १०६९ । अष्टांग योग पृ० १०६९ । सद्गुरु की दुर्लभता पृ० १०७१ । योग के भेद पृ० १०७२ । हठयोग पृ० १०७३ । दशाविध यम पृ० १०७५ । दश विध नियम पृ० १०७९ । सिद्धांत वाक्य लक्षण पृ० १०८१ । भिन्न २ आसनों का लक्षण पृ० १०८५ । प्राणायामादि पंचांग कथन पृ० १०८९ । त्रयनाड़ी भेद पृ० १०९० । षड् चक्रों का अनुक्रम पृ० १०९१ । दश मुद्रा लक्षण पृ० १०९५ । दश नाड़ियों के दश स्थान पृ० १०९७ । प्रत्याहार, धारणा, पंच तत्त्व, ध्यान, समाधि आदि पृ० १०९८-१११५ ।

लहर--८० वीं (सांख्य योग तथा शिवरात्रि की अवधि कथन)

राजयोग की रीति और सांख्य योग का सार कथन पृ० १११६ । ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है पृ० १११७ । तो प्यारी प्रवीण में भी ब्रह्म है पृ० १११९ । गुरु न मिले तो उपदेश व्यर्थ जाता है पृ० ११२० । काम विरह की दश दशाओं का लक्षण पृ० ११२० । सागर विरहव्यथा वर्णन पृ० ११२१ । सिद्ध ने ऐसी दशा देखी, दया आई, शिवजी के पास जाकर यहां आऊंगा, धैर्य धरो, छः मित्रों को भी त्रास पृ० ११२४ । सिद्ध शिवजी से मिले, वृत्त निवेदन किया, इस बार शिवरात्रि आवेगी तब उन्हें यहां बुलालेंगे, नैनतरंग शिव मंदिर की ओर विमान भेजेंगे पृ० ११२७ । प्रभानाथ सागर के पास आये, शिवजी की आज्ञा सुनाई, सागर को शांति पृ० ११२९ । शिव पंचाक्षर मंत्रोपदेश पृ० ११३० । मनछापुरी जाकर सिद्ध ने प्रवीण को समाचार वहे पृ० ११३१ । सिद्ध ज्वालामुखी की ओर गये पृ० ११३२ । सार्ता मित्रों का मनछापुरी की ओर गमन विचार पृ० ११३३ । सुरतानन्द से बद्दीनाथ आगमन और पांच दिन सुकाम पृ० ११३४ ।

लहर--८१ वीं (आश्चर्यकारक गणित कथन प्रसंग)

बद्रीनाथ में दुखियों का दुःख पूछता है पृ० ११३५ । संन्यासी का वृत्तान्त पृ० ११३६ । दो कर्जदार ब्राह्मणों को मोती दिये पृ० ११३७-११३८ । मोतियों का हिसाब पृ० ११३९ । सात मालियों के उच्चास मोतियों का हिसाब, यंत्र बनाने की रीति पृ० ११४१ । त्रिपंक्ति पंचदश संख्यांक यंत्र, वैसा २४ संख्यांक यंत्र, पंचपंक्ति पंचषष्ठी संख्यांक यंत्र, वैसा ही सप्तपंक्ति व नवपंक्ति यंत्र पृ० ११४३ । चतुःपंक्ति ३४ और ६४ संख्यांक यंत्र पृ० ११४४ । इत्र के हिसाब, नींबू के हिसाब पृ० ११४५ । फलों का गणित पृ० ११४७ ।

लहर--८२ वीं (सागर की मुसाफरी और नक्षत्र तारादिकथन)

तीन मास में पांचसौ कोस चले पृ० ११४८ । हरद्वार से हस्तिनापुर के बीच वन में यात्रियों की टोली, अर्धरात्रि के समय में नक्षत्र-तारा परिचय पृ० ११४९-११५० । उत्तर, दक्षिण और मध्यचारी ताग कथन पृ० ११५१ । नक्षत्रोपरि मास कथन पृ० ११५३ । हरद्वार से सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, गाजियाबाद, हस्तिनापुर, अलवर, जयपुर, किरानगढ़, अजमेर—जहां पुंकर तीर्थ है—वहां से आबू, सिद्धपुर और अहमदाबाद पहुंचे, वहां से ४८ कोस पर मनछापुरी में आये पृ० ११५४-११५६ ।

लहर--८३ वीं (प्रवीण-सागर का कैलास गमन)

मनछापुरी से नैनतरंग गमन पृ० ११६७ । पुजारी से पुत्र-प्राप्ति का शुभ संदेश प्राप्त हुआ पृ० ११६९ । शङ्कर-स्तुति पृ० ११७७ । शिवरात्रि का महोत्सव पृ० ११७९ । विमानों सहित देव, गंधर्व अप्सराओं का आगमन पृ० ११७९ । प्रवीण का आगमन पृ० ११८० । सखा-सखियों का मिलान पृ० ११८१ । दिव्यज्योति का प्राकट्य पृ० ११८१ । लोगों में आश्चर्य पृ० ११८३ । कैलास गमन पृ० ११८७ ।

लहर--८४ वीं (ग्रन्थ की महिमा)

दंपती-वर्ग को उपदेश पृ० ११९३ । प्रवीण और सागर श्रीराधाकृष्णजी हैं पृ० १२०३ । ग्रन्थकर्ता की विनय पृ० १२०५-१२०७ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

श्री प्रवीणसागर ग्रन्थ प्रारम्भ्यते ॥

मंगलाचरण—जातिस्वभाव अलंकार.

गणपतिस्तुति—दोहा

वरन करन अशरन शरन, वंदन अरुण शरीर ।

चंदधरन वारन वदन, हरन शरन जन भीर ॥ १ ॥

वरन (वर्ण) अर्थात् अक्षर करनेवाले, क्योंकि शीघ्रता के साथ सुन्दर लिखने वाले गणपति के समान कोई नहीं इसीलिए महाभारत लिखते समय व्यास ऋषि ने गणेशजी को ही लेखक निश्चित किया था अथवा गणेशपुराण में जगत का कर्ता गणेशजी को माना है तदनुसार वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को उत्पन्न करने वाले, अथवा वर का बहु-वचन वरने होने से वरों को देने वाले, सेवक जनों को बहुत देनेवाले, निराश्रितों को आश्रय देने वाले, सिंदूर से लाल हुआ शरीर जिसका, भाल में चन्द्रमा धारण करनेवाले, हाथी के समान मुख वाले, तथा शरण में आने वाले के दुःख दूर करने वाले ऐसे गणेशजी को वंदन अर्थात् नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

(१) कोई शंका करे कि वरन शब्द बहुवचन में क्यों प्रयुक्त किया गया, तो उत्तर यह है कि यदि किसी मनुष्य पर कोई देवता प्रसन्न होवे तो एक बार दान अथवा मनोवांछित वरदान देता है परन्तु गणेशजी सदा प्रसन्न रहते हुए बार बार वरदान देने वाले हैं, तथा हरेक मांगालिक कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करने वाले हैं, इसलिये ग्रन्थकर्ता ने बहुवचन में प्रयुक्त किया है ।

इस मंगलाचरण में ग्रन्थकर्ता ने 'वन्दन' शब्द को दो अलग २ अर्थों में प्रयोग किया है। "वन्दन अरुण शरीर" अर्थात् सिंदूर से लाल शरीर और दूसरा 'वन्दन' अर्थात् वन्दना किन्वा नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ग्रन्थकर्ता प्रथम मंगलाचरण किया करते हैं जो तीन प्रकार का होता है: —

१—नमस्कारात्मक—जिसमें इष्टदेव अथवा ईश्वर को नमस्कार किया जाता है ;

२—आशीर्वादात्मक—जिसमें आशीर्वाद दिया जावे ।

३—विषय सूचनात्मक—जिसमें ग्रन्थ के विषय की सूचना दी जावे ।

इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्ता ने प्रथम प्रकार का मंगलाचरण लिया है ।

सवैया

शैल सुतासुत सिंधुर आनन, संकट गंज सदाशिव नंदा,
एकरदी मुरदी वरदी वर, चंदन भाल विराजित चंदा;
मूषक रूढ प्ररूढ महातम गायक गूढ गिरागुन वृंदा,
नायक देव महासिद्धिदायक, पायक पच्छ विनायक वंदा ॥ २ ॥

शैल जो हिमालय उनकी सुता पार्वती उनके पुत्र, मदभर हाथी के मुखवाले, कर्षों को नाश करने वाले; शिवपुत्र, एक दांत वाले, मुरदी अर्थात् सुन्दर दांत वाले अथवा (स्वर दी) राग के सप्त स्वर के शब्दों द्वारा उच्चारण करनेवाले अथवा उदात्त अनुदात्त स्वरित जो तीन स्वर हैं उनके देनेवाले, अर्थात् वर्णोच्चार की शिक्षा देनेवाले, अथवा (सुहृदी) उदार हृदय वाले, सिंदूरचर्चित कपाल में चन्द्रमा धारण करने वाले, चूहे पर सवार, प्रौढ माहात्म्य वाले, गुण के समूह गूढार्थवाणी के गानेवाले

(१) ईश्वर की प्रति में "पायक दुःख सदा सुखकन्दा" ऐसा पाठ है ।

(२) जिस समय व्यासजी महाभारत लिखना प्रारंभ किया तो ऐसे लखक की आवश्यकता पड़ी जो व्यासजी कविता करते जावें वैसे ही साथ के साथ लिखता जावे । ऐसा किसी के न मिलने पर गणेशजी से इस कार्य के लिए कहा । गणेशजी

सर्वदेवों में मुख्य, अनेक सिद्धियों के दाता, सेवक जनों के सहायक, इस प्रकार जो विनायक देव गणेशजी हैं उन्हें नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

दोहा

वरन उक्ति जुत एकरद, नितप्रति करहु नवीन ।

बुधि दीजै वरनत बने, सागर कथा प्रवीन ॥ ३ ॥

हे एक दांत वाले गणपति ! मेरी वाणी में सुन्दर वर्ण और बुद्धि में नवीन उपज नित्य देते रहिए कि जिससे इस प्रवीणसागर कथा का वर्णन भली प्रकार हो सके ॥ ३ ॥

अथ शारदास्तुति—दोहा

बीन लीन बरदायिनी, बानी वरन बिस्तार ।

दीन मान सरसायिनी, जनसरनौ विधितार ॥ ४ ॥

अथ शारदास्तुति अश्वगति कोष्टकबंध भेद यथा ॥

बी	न	ली	न	ब	र	दा	यि	नी
बा	नि	व	र	न	वि	स	ता	र
दी	न	मा	न	स	र	सा	यि	नी
ज	न	स	र	नौ	वि	धि	ता	र

ने उत्तर दिया कि लिखते समय मेरी कलम न रुके बराबर लिखने को मिलता रहे तो मैं लिखने को उद्यत हूं । व्यासजी ने कहा कि ठीक है परन्तु तुम भी बिना अर्थ समझे कुछ मत लिखना । गणेशजी ने इसे स्वीकार किया । व्यासजी ने यह युक्ति की कि स्थान २ पर गूढार्थ वाले श्लोक बना देते, जिसके अर्थ सोचने को गणेशजी को समय लगता इतने में वे फिर नये श्लोक बनालेते फिर भी गणेशजी अति शीघ्रता से गूढार्थ समझ लेते और आगे लिखने लग जाते, इसलिये यहां पर इन्हें कवि ने “गूढार्थ वाणी के गाने वाले” विशेषण लिखा है ।

॥ अथ त्रिपदी चित्र ॥

बी	ली	ब	दा	नी	स	न	ब	वा
न	न	र	यि	र	ता	बि	र	नी
दी	मा	स	सा	नी	ध	नौ	स	ज

अथ द्विपदी गोमुत्रिका चित्र भेद

बी	न	ली	न	ब	र	दा	यि	नी	बा	नी	ब	र	न	बि	स	ता	र
दी	न	मा	न	स	र	सा	यि	नी	ज	न	स	र	नौ	बि	ध	ता	र

हे वीणा धारण करने वाली सरस्वति ! आप वर देने वाली वाणी और अक्षरों के विस्तार करने वाली, निर्धनों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली तथा शरण में आए हुआँ को संसार-सागर से पार करने वाली हो, आप हमें भी इस प्रवीणसागर ग्रन्थ से पार करो, तात्पर्य यह कि ग्रन्थ पूर्ण करो, पार उतारो ।

दूसरा प्रकार—वीणा नामक वाद्य के बजाने में निमग्न वरदायिनी तथा अक्षरों का विस्तार करने वाली वाणी कहिए सरस्वति ! आप निर्धन लोगों के मन (बुद्धि) को बढ़ाती हो और शरण में आए हुए को भव-सागर से पार करने वाली हो, अथवा 'जन सरनौ' मनुष्य और देवता को इस भव-समुद्र से तारने के लिए नौकारूप हो, इसलिए इस प्रवीण-सागर ग्रन्थ को पूरा कर मुझे पार उतारो ॥ ४ ॥

सवैया

वेद पुरान बतावन पावन, गावन बीन बजावनहारी,

पत्र मराल+मृणाल चखी, सुदयालहि वाल विचच्छन नारी;

(१) असल प्रति में मृणाल पाठ है, परन्तु मृणाल शब्द का अर्थ कमल नहीं होता, सरोज का अर्थ कमल होता है । मृणाल का अर्थ कमल की डंडी होता है शुद्ध पाठ इस तरह है, "पत्रमृणाल मराल चखी, सुदयालही" अर्थात् पत्र मृणाल-कमल के पत्र-पत्ते पर बिराजनेवाली, मराल-हंसवाहन वाली, चखी-सुन्दर नेत्रवाली, दयाल-दयायुक्त (पहचलसिंह) नोट—मृणाल-पत्र का अर्थ कमल भी होता है ।

व्यापक विश्व जनो जस जापक, कापक ताप रसा रिक्तवारी,
शंकर सुरसुके बरदायिनि, कीजे कृपा अति बालकुमारी ॥५॥

पवित्र वेद और पुराण के बताने वाली अथवा पवित्र ब्रह्मविद्या के गीत को गाने वाली, वीणा बजाने वाली, हंसवाहन वाली, कमल के समान नेत्र वाली, सुन्दर दयायुक्त, सदा बालिका रूप रहते हुए भी अति चतुर और विदुषी तथा समस्त संसार में व्याप्त सब की माता अर्थात् उत्पन्न करने वाली, अपने यश के जापकों के आधि, व्याधि और उपाधि तीनों प्रकार के तापों को नष्ट कर उनकी जिह्वा को सदा रमणी कर देने वाली, वर देने में अति उदार शंकर जैसे देवों को भी वर देने वाली, हे बालकुमारी सरस्वति ! आप हमारे ऊपर कृपा कीजिए, प्रसन्न होइए कि जिससे हमारी सर्व धारणा पार पड़े ॥ ५ ॥

श्लोक

सरस्वति नमस्तुभ्यं या विद्या वरदायिनी,
क्रियते त्वत्प्रसादेन प्रवीणसागरो मया ॥ ६ ॥

विद्यारूपी वरदान की देनेवाली, हे सरस्वति ! मैं नमस्कार करता हूँ। आपकी ही प्रसन्नता तथा कृपा से मैं प्रवीणसागर ग्रन्थ बनाता हूँ ॥ ६ ॥

अथ छंद भुजंगप्रयात

ऊँकार प्रेम प्रभा नाद विंदा, जयो मातुरा चातुरा भेद छंदा ।
गिरा ग्यान गोतीतगूढं गनानी जयो पार बिस्तारता वेद बानी ॥
महा मोहिनी सोहिनी मोह माया, जयो जंत्रनी मंत्र तंत्र उपाया ।
गुनाकार ज्योती निराकार गत्ती, जयो बोधना सोधना सारसत्ती ॥
दशं द्वादशं षोडशं चत्रं शष्ठी, जयो भिन्न रूपी कला पार दृष्टि ।
वंदे जोग बादं मुनिंद्रं बिचारा, जयो धारना कारना ध्यान धारा ॥
निरत्ती सुरत्ती प्रकृत्ती परेशा, जयो मंडलाकार मध्ये प्रवेशा ।
संव व्यापितं थापितं बीज बाला, जयोही प्रणव यथा मंत्र माला ।

महा मंगला रूप माहेश सिद्धी, जयो वैष्णवी इन्दिरा नेह निद्धी ।
 सदा ब्रह्म सावित्री सत्ता सुहानी, जयो भारती सारती बाक बानी ॥
 रुषीराज आराधना ग्यान गूढा, जयो गायका नायका हंस रुढा ।
 विपचीरता पुस्तकं श्वेतवासा, जयो बुद्धि दातार अंकं विकासा ॥
 सुरी आसुरी किन्नरी पाय सेवे, जयो दृष्टिसें शारदा सिद्धि देवे ।
 कुमारी कला पूरन कामधेना, जयो चंद्रबिंबा रती रूप मेना ॥
 हसंती लसंती गच्छे हार मुक्ति, जयो कंजधारा दयासिंधु दुत्ती ।
 कृपा कीजिये दीजिये सुप्रगन्धा, जयो चित्त चिंतामनी चारु कन्या ॥
 कलपलता इच्छितं सोइ पाऊं, प्रवीन कथा सागर की बनोऊं ।
 रसन्ना मन बास कीजें तिहारो, जुकती उकति सबेहीं सुधारो ॥
 पुरा प्रेमको पार कोउ न पावें, तिहारे प्रसादें यथा बुद्धि गावें ॥१॥

ओंकार रूप, प्रेम रूप, शोभा रूप, नाद रूप, बिंदुरूप, चातुर्ययुक्त, मात्रारूप, छंदों के भेद रूप अर्थात् चार वेद रूप, वाणी रूप, ज्ञान रूप, इन्द्रियों से अग्राह्य रूप, गुप्त रूप, ज्ञानी रूप वेदवाणी का विस्तार करने वाली माता सरस्वति ! आपकी जय हो ।

महाशोभायमान मोहिनी रूप, मोह उत्पन्न करने में माया रूप, यंत्र, मंत्र तथा तंत्र के उत्पन्न करने वाली सरस्वति ! आपकी जय हो ।

गुण के सम्बन्ध से साकार भासती हुई भी वस्तुतः आप निराकार हो अतः हे बोध देकर शुद्ध करने वाली सरस्वति ! आप की जय हो ।

हे दस महाविद्या (काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्न-मस्ता, भूमावती, वगला, मातंगी और कमला) रूप द्वादश रूपिणी, षोडशोपचार से पूजा के योग्य, चौंसठ योगिनी में युक्त अनेक रूप धारण करने वाली तथा चौंसठ कलाओं के पारंगता सरस्वति ! आप की जय हो ।

वड़े २ ऋषि मुनि योगचर्चा कर आप का ही विचार करते हैं । चित्त की वृत्ति को एकाम्र करनेवाले ध्यान को धारण करनेवाली स्मृति में तत्पर प्रकृति और परमेश्वर रूपसे मंडलाकार इस संसार में प्रवेश करनेवाली सरस्वति ! आपकी जय हो ।

सब संसार में व्यापकरूप और समस्त जगत् की स्थापना करनेवाली वज्र रूप, बालारूप, ओंकाररूप तथा यथार्थ मंत्र की मालारूपिणी सरस्वति ! आप की जय हो ।

महा मंगलारूप, पार्वतीरूप अथवा अष्ट योगिनी में प्रथम माहेश्वरी-रूप, अष्टसिद्धिरूप, विष्णु की शक्ति लक्ष्मीरूप, प्रेम की भण्डाररूपिणी सरस्वति ! आप की जय हो ।

सर्वदा ब्रह्मा और सावित्री की शक्ति से शोभायमान, वाक्य और वाणी के सार को देनेवाली हे सरस्वति ! आप की जय हो ।

हे गुप्तज्ञान की जाननेवाली, बड़े २ ऋषि मुनि जिसकी आराधना करते हैं, ऐसी हंसवाहिनी, गान्धर्व आदिक गायन करने वालों में मुख्य, सुस्वरज्ञ सरस्वति ! आप की जय हो ।

हे वाणी की रुचि वाली, हाथ में पुस्तक तथा शरीर पर श्वेताम्बर धारण करने वाली, बुद्धिदायिनी. अंकों की विचार करने वाली सरस्वति ! आप की जय हो ।

असुर तथा किन्नर पक्ष आदि की स्त्रियां जिन की पग सेवा करती हैं, एवम् जो दृष्टिमात्र से ही अष्ट सिद्धि की दाता है ऐसी देवी शारदा ! आप की जय हो ।

हे कुमारी ! अपने सेवकों को कला में पूर्ण करने को कामधेनु के समान तथा चन्द्रविम्ब के समान कान्ति वाली, कामदेव तथा रति के समान रूपवती भारती ! आप की सदा जय हो ।

हे हंसमुख ! गले में मोती के हार से युक्त कमल धारण करनेवाली, दया की द्वितीय समुद्र समान आप की जय हो ।

कृपा करके सुबुद्धि दीजिये चिन्तामणि हे सुन्दर कन्या ! आप की जय हो ।

हे कल्पलता रूप सरस्वति ! मेरी आप से यही प्राप्त करने की इच्छा है कि मैं प्रवीणसागर ग्रन्थ की रचना करना चाहता हूं, सो

आप मेरी जिह्वा में उक्ति और मन में विचार सुमाने के निमित्त वास करो । उक्ति और उक्ति सब सुधार का संचार करो क्योंकि चाहे कितना बड़ा पंडित हो परन्तु कोई प्रेम का पारावार नहीं पा सकता, फिर भी आपकी कृपा से यथानुद्धि मैं इस ग्रन्थ में (प्रेमसंबन्धी) कुछ कहना चाहता हूं, उसे पूर्ण करो ।

अथ शंकरस्तुति-दोहा

वाम उमा अमला जटा, उर कर उरुग अनूप,

शीश शशी चरची भसम, जय जय शंकर रूप ॥ ८ ॥

वाम अंग में पार्वती विराजमान है, जिनकी जटा निर्मल है, अमला अर्थात् गंगा जिनकी जटा में विराजमान है और हाथों में अनूप धारण किया हुआ है, मस्तक पर चन्द्रमा शोभायमान है, समस्त शरीर पर भस्म धारण किये हुए हैं, ऐसे भगवान शंकर की जय हो ।

भूलना छंद किंवा कडखा छंद

अंब अरधंग भंग शिर गंगधर, अंग सित मृग अन जंग बागें,

मारके मार गर मार घर मार घर, पारकन हार संसार आगें ।

कंद सुखद्वंद सुख वृंद हर चंद जुत, वाहन नंदी शिषि बिंदु भागें,

माल गाल मुंड बिनकाल प्रतिपाल जन, आज गजस्वाल सिर रंगरागें ॥ ९ ॥

शंकरजी कैसे हैं कि जगज्जननी अम्बाजी जिनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, लीलागार भंग के पीने वाले, मस्तक में गंगा को धारण करने वाले, गौर-शरीर, भृंग सहित डफ डमरू के बजाने वाले, कामदेव को भस्म करने वाले, गले में विष और उत्तम माला धारण करने वाले, सेवक जनों को संसारसागर से पार उतारने वाले, सुख के मूल, जन्ममरणदिक दुःख समूह को हरण करने वाले, चन्द्रमा को धारण करने वाले, नंदी पर सवार, तिलक के स्थान पर अग्निनेत्र धारण करने वाले, मुंडमाला गले में धारण करने वाले, मृत्यु रहित अजरामर रहने वाले, भक्त जनों को पालन

करने वाले, हस्ती के नव चर्म शिर पर ओढ़ने वाले तथा राग रंग में निरंतर निमग्न रहने वाले हैं ।

गतागत अन्यार्थ-सोरठा

मसान बने वास, रेभसमनतन अतिरची ।

मुदा अहिंन गुनदास, तिलकधूमशिरमुरसरी ॥ १० ॥

(शिवके पक्ष में) श्मशान और जंगल में जिनका निवास है, सारे शरीर में भस्म लगी हुई है, हर्ष से सर्प और गण जिनके दास हो रहे हैं, तिलक के स्थान पर तृतीय अग्नि नेत्र शोभित तथा मस्तक पर गंगाजी विराजमान हैं, ऐसे हे शिवजी ! कल्याण करो ॥ १० ॥

इस सोरठा को उल्टा बांचने से श्रीकृष्ण के पक्ष में निम्नलिखित प्रकार से अर्थ होता है ।

गंगा के समान उज्ज्वल कान्ति वाली, मधुवन में क्रीड़ा करती हुई, सदा निर्गुण (विनाडोरी के) माला धारण करने वाली अर्थात् श्रीकृष्ण के आर्लिंगन से जिनके छाती पर मणिमाला की छाप उठी हुई है ऐसी सदा कृष्ण संग विहार करनेवाली गोपिकाएं शरीर पर विना वस्त्र धारण किए अर्थात् बेभाव होकर वन में श्रीकृष्ण को ढूँढती हैं, परन्तु क्रोधिव घनश्याम उस वन में नहीं, अदृश्य हो गये हैं ।

टीका — हे सखी ! गंगाके समान उज्ज्वल कान्तिवाली, मिठे स्वर से गानेवाली, हमेशा विना डोरी के माला पहिनेवाली अर्थात् श्रीकृष्ण के आर्लिंगन से पहिने हुए मणिमाला की छाप जिनके छाती पर उठ आये हैं ऐसी । तात्पर्य यह कि नियमित रूपसे विहार करने वाली गोपियों में बहुत दिनों तक कामदेव के बहाने रहने वाले घनश्याम इस वन में नहीं हैं ।

कुंज कुंज पुंज पुंज मकरंद के मुरंज ।

उड़त मुगुंज गुंज रंज रंज रहे भृंग ॥

कुंद कुंद अटकी करत सदा गति गति ।

परिभृत उच्चरत सुनत जगे अनंग ॥

(१) यह सोरठा लहर ६२ वीं में ६ वां छन्द है, वहाँ देखिए ।

गहरि गहरि गजे यमुना की लहरि सुं ।
 सुमन सरोज आन छये हे रंग रंग ॥
 श्यामा श्याम हिंडोरहि गावत हिंडोरा बैठ ।
 जाटित जराव नंग भूषनसु अंग अंग ॥१४॥

कुंज कुंज (लता मंडप) में प्रफुल्लित पुष्पों से उठते हुए रस तथा पराग की सुगंध से प्रसन्न होकर भ्रमर गुंजार रहे हैं, कलिकाओं में पवन अटखेलियां कर रहा है, तथा कोयलें काम को जाग्रत करने वाले संगीत स्वर उच्चार रही हैं । इसमें फिर यमुनाजी की गंभीर लहरें वृद्धि कर रही हैं और अनेक प्रकार के रंगों से फूल और कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं, ऐसे रमणीक स्थान में श्रीकृष्ण तथा राधाजी हीरक माणिक आदि रत्न-जडित आभूषण अंग प्रत्यंग में धारण कर हिंडोल राग गान कर रही हैं ॥१४॥

अलंकार चतुर्देव स्तुति यथासंख्या-दोहा

मूषक हंस व्रषराज खग, इनही पै असवार ।

गनपति शारद हर हरी, चारहु मंगलचार ॥१५॥

मूषक, हंस, वृषभ और गरुड़ इन पर यथाक्रम सवारी करने वाले गणपति, शारदा, महादेव और विष्णु ये चारों मंगलरूप अर्थात् कल्याण करने वाले होंगे ॥ १५ ॥

अलंकार आरोहावरोह यथासंख्या-सवैया

मूष^१ मराल^२ व्रष^३ खग^४ आसन, पीत^५ तुचं^६ सित रक्त पटंजन ।

निम्नस्थ श्लोक असल प्रति में नहीं है, परन्तु राजकोट वाली प्रति में है अतः, फुट-नोट रूपमें देते हैं:—

अलंकार आरोहावरोह-श्लोक ।

विह^१गो^२ वाहनं यस्य^३ त्रिकचा^४ यस्य^५ भूषणम् ।

तद्गार्वा^१ सालपा^२ देवी^३ सा देवी^४ वरदास्तु मे ॥

(वि) गरुष (हं) हंस (गो) नंदी-बैल ये जिनके वाहन हैं, (त्रि) त्रिशूल, (क) कमंडल (चा) चाप अर्थात् धनुष ये जिनके आयुध हैं ऐसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा उनकी पत्नी (सा) सावित्री, (ज) लक्ष्मी, (पा) पार्वती ये तीनों देवियां मुझे वरदानदायी होंगी ।

दावसु तंत्रि पिनाक छड़ीकर, वंस त्रिशूल सुपोथि गुनीमनि ॥
 बंदन चंदन भूति मृगमद, कीट जटा कवरी इम कुंमनि ।
 ईशंशु शारद ईशं ब्रजेशंशु, आदिहु मंगल चार किये इन ॥१६॥

मूषक, हंस, बैल और गरुड़ ये चार जिनके वाहन हैं ऐसे गणेश, शारदा, शिव और श्रीकृष्ण; तथा पीताम्बर, गज चर्म, श्वेत और लाल जिनके वस्त्र हैं ऐसे श्रीकृष्ण, शिव, सरस्वती और गणेश; तथा फरशी, पिनाक, धनुष और फूलकी छड़ी धारण करने वाले गणेश, शारदा, शंकर और श्री कृष्ण; तथा बांसुरी, त्रिशूल, पुस्तक और माला धारण करने वाले श्रीकृष्ण, शिव, शारदा और गणेश; इसी प्रकार सिंदूर, चंदन, भस्म और कस्तूरी को शरीर में लगाने वाले गणपति, शारदा, शिव और श्रीकृष्ण; मुकुट, जटा, वेणी और गजमस्तक धारण करने वाले श्रीकृष्ण, शंकर, शारदा और गणपति इन चारों देवताओं की ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त्यर्थ मंगलाचरण रूपी आराधना करते हैं ॥ १६ ॥

चौपाई

संवत् अष्टादश परजंत, तीस आठ साला बरतंत ।
 सावन सुदि पंचमि कुजवारं, कियो ग्रंथको मंगलचारं ॥१७॥

संवत् १८३८ के वर्ष श्रावण शुक्ला ५ सोमवार को मंगलाचरण कर ग्रन्थ का आरंभ किया ॥ १७ ॥

दोहा

रामकृष्ण गुरुपद हृदे, धरि करि कहों सुग्रंथ ।
 पायो जिन परसादतें, सुगम शारदा पंथ ॥ १८ ॥

विद्यागुरु राम कृष्ण अथवा रामचन्द्रजी, एवम् भगवान् श्रीकृष्ण और गुरु इन तीनों के चरणकमलों को हृदय में धारण कर इस शुभ

ग्रन्थ का प्रारंभ करता हूं कि जिनके प्रसाद से इस शारदा रूपी वाणी के पंथ को सरल पाता हूं ॥ १८ ॥

गाथा

श्रीगुरुनाथ प्रसादे, किय चत्र देव मंगला चरनं,
प्रेम प्रकाशन ग्रंथे, प्रथम प्रवीणसागरो लहरं ॥ १९ ॥

श्री गुरु की कृपा से चारों देव का मंगलाचरण कर इस प्रेम प्रकाशक प्रवीणसागर ग्रन्थ का प्रथम लहर (तरंग) समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

लहर ? री ।

॥ अथ ब्रह्मास्तुति ॥

दोहा

जिहि कीन्ही सब सृष्टिकों, प्रेम नेम परमान,
तिहि वेधा वरनन करौं, ग्रंथ पंथ गति जान ॥ १ ॥

जिन्होंने इस समस्त संसार को प्रेम के नियमपूर्वक उत्पन्न किया है उस ब्रह्मा की ग्रन्थ-प्रणाली की स्तुति करने करता हूं ॥ १ ॥

सोरठा

चतुर वेदको जान, मैं बरन्यो यह चतुरमुख,
धरत चतुरमुख ध्यान, सोय चतुरमुख होय हैं ॥ २ ॥

ऋक् यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों का ज्ञाता होने के कारण इन्हें चार मुख वाला कहा गया है, ऐसे ब्रह्मा का जो कोई ध्यान करता है वह चतुर पुरुषों में मुख्य अथवा पंडित होता है ॥ २ ॥

छुप्पय

चतुर वेद उच्चरन, चतुर सिर मुकुट विराजे,
चतुर चतुर जिहि नैन, चतुर खग वाहन छाजे ।
चतुर वरनके जनक, चतुर जुग जोहि बनावन,
चतुर कोन दिसि चतुर, चतुर जुगजुगटिषं भगन ।
करबरह देन पंकज तनुज, अरुन रंग अंबुज लिये,
कवि मूकमती विदुषजु करन, वरन रचन बुधि दीजिये ॥ ३ ॥

चारों वेदों के उच्चारण करने वाले चारों मस्तकों पर चार मुकुट शो-
भायमान हैं, आठ नेत्र हैं, चार नीर विवेकी हंसवाहन हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय
वैश्य और शूद्र आदि चार वर्ण के उत्पन्न करने वाले सतयुग, त्रेता,
द्वापर तथा कलि इन चार युगों को युक्तिपूर्वक बनाने वाले; अग्नि, नैऋत्य,
वायव्य और ईशान चार विदिशा तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण
चार दिशा तथा चारों युगों के मध्य गगन और तारागण को उत्पन्न करने
वाले, वरदायी स्वयं नारायण की नाभि कमल से उत्पन्न, रक्तवर्ण, कमंडल-
धारी मूक जन को भी कवित्व शक्ति देने वाले अक्षरों के रचयिता हे ब्रह्मा-
जी ! बुद्धि प्रदान कीजिये कि यह ग्रन्थ सम्पूर्ण होवे ॥ ३ ॥

रसमय जगदुत्पत्ति कथन—दोहा

ब्रह्मा विष्णु महेशसो, रसमय रसिक नवीन,
तबहि बिरंची सृष्टिको, सो नव रसमय कीन ॥ ४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देव रसमय प्रेमानुरागी हैं तभी
ब्रह्मा ने इस जगत् को भी नवरसमय उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥

नवरस कथन—दोहा

है शृंगार अरु हास्य रस, करुणा रुद्र अरु वीर,
भय विभत्स अद्भुत भये, शांतसु सुभग शरीर ॥

पहिला शृंगार, दूसरा हास्य, तीसरा करुणा, चौथा रौद्र, पांचवां वीर, छठा भ-
यानक, सातवां विभत्स, आठवां अद्भुत और नववां शान्त । इस प्रकार अनेक ग्रन्थों में
नवरस का सुन्दर वर्णन है ।

नव रसमय जगत्कथन—छप्पय

के शिंगारमय लीन, केइ कृत हास्य कुतूहल ।

के करुनामय जान, केइ रस रुद्रमयी बल ॥

केइ वीर मय धीर, केइ नर धरत भयानक ।

के बिभत्स मय चित्त, केइ अद्भुतमय कौतुक ॥

ज्ञानी मुसँत जन शांत-मय, इक इक सबको लगन ।

सुर असुर नाग नर लोक जिय, सब जग नव रस-मय मगन ॥ ५ ॥

कितने शृंगार-रस में तल्लीन हैं, कितने हास्य में मुग्ध हैं, कोई करुणा रस में सराबोर है तो कितने रौद्र रसमय हैं, कितने वीर कवि वीररस में भरपूर हैं और कितने भयानक रसको धारण करते हैं, कितनों का चित्त वभित्स रसमय है और कितने अद्भुत रसमय होकर उस में ही क्रीड़ा करते हैं । ज्ञानी और साधु पुरुष शान्त रसमय हैं, इस प्रकार इस जगत् में प्रत्येक प्राणी का एक २ रस के प्रति प्रेम होने से ऐसा प्रतीत होता है कि सुर, असुर, नाग और मनुष्य आदि सारा ब्रह्माण्ड नव-रस में लीन है ॥५॥

अथ नवरस भेद कथन—अमरावलि छंद

बरने गुन देव प्रभा सुरसं मिलनं तुम, जानहुंगे रस रीत सबैं कलनं ।
प्रथमं रस श्याम सिंगार उभे बरनैं, रति कारन देव कन्हाइ कहैं भरने ॥
रस हास्य प्रकाश सुखेत गनैं त्रिगुने, उनकारन हसिय बामन देव सुने ।
करुना रस रंग कपोत समान कछो, यम देवसु नायक कारन शोक लखो ॥
अहन रस रौद्र प्रभाकवि तासु कहे, उन कारन क्रोध सदा शिवजीसों सुरहे ।
रस वीरसु चारि प्रकारन हेम दुति, कहिये सुर, इन्द्र सुकारन चाह वृति ॥
असितं रुचिहेजु भयानक येह रसैं, भय कारन कालसु ताहि कुदेव लसे ।
छवि बीभच्छ नील कहे रससों चतुरैं, तिहि कारन निंदित हे महाकालसुरें ॥
कछो रस पीत प्रभा तनहैं, विस्मय कहि कारन काम सुरं इनहैं ।
मुचंद्र कला वरनं करियं, मन मोद सोकारन देव कहे हरियं ॥६॥

अब नवों रसके रंग, गुण अर्थात् कारण, देव, शोभा और रसका सम्मेलन इन सब का वर्णन करता हूं जिससे रसिक जिज्ञासुओं को सर्व रसोंकी मनोहर रीति का ज्ञान होगा । पहिला श्याम रंग का शृंगार रस है जो संयोग और वियोग दो प्रकार का है । इस का मूल कारण रति अर्थात् प्रीति है, और देव कृष्ण भगवान् हैं । दूसरा हास्यरस, इसका रंग श्वेत, मूलकारण हँसी व देवता वामन भगवान् हैं, यह उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार का है । तीसरा करुणा रस कपोत वर्ण का, जल देवता, कारण अथवा स्थायी भाव शोक है । चौथा रौद्र रस, इसका रंग लाल, कारण (स्थायीभाव) क्रोध और देवता शंकर हैं । पांचवां वीर रस, इसका रंग स्वर्ण समान, कारण उत्साह और देवता इन्द्र हैं, यह युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर भेद से चार प्रकार का है । छठा भयानक रस, जिसका रंग श्याम, कारण भय और देवता यम है । सातवां वीभत्स है, इसका रंग नीला, मूलकारण जुगुप्सा और महाकाल देवता है । आठवां अद्भुत रस जिसका रंग पीला, मूलकारण विस्मय और काम देवता है (कई अन्य ग्रन्थों में अद्भुत रस का देवता ब्रह्मा कहा गया है) । नवम शान्त रस है । इस का रंग चन्द्रमा के समान, मूलकारण परमानन्द अथवा निर्वेद अर्थात् वैराग्य और देवता श्री हरि हैं ॥ ६ ॥

परस्पर रसोत्पत्ति कथन

रसों रसकी उत्पत्ति कही कबिहीं, गुन ताय बनाय जनाय दियें सबहीं ।
बरनंत सिंगारहु तें रस हास्य बनें, करुनाहि ते रुद्र उदे सुकवि सुगिनें ।
अद्भुतसें वीरसु वीरहीमें उपजें, रस शांत भयानक बीभच्छ मध्य भजें ॥७॥

कवियों का कथन है वि रस के परस्पर मिलने से रस की उत्पत्ति होती है, जिनके गुण बतलाकर सबको विदित कर दिया है । शृंगार रस से हास्य रस बनता है, करुणा रस से रौद्र रस का उदय सत्कवि मानते हैं । अद्भुत रस से वीर रस शूरवीर पुरुषों में उत्पन्न होता है और वीभत्स रस से शान्त तथा भयानक उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥

चतुर्विध रसवृत्ति कथन

कहिये जु प्रमान वृत्ति चित्रके गुनये, रस तीनहु तीन मिले अभिधान भये,
करुना अरु हास्य सिंगार मिलें जितहीं, वृत्ति कौसिकि नाम बतावत हैं तितहीं,
रस वीर सु अद्भुत हास्य जुरे जबतें, उन भारति वृत्ति सुनाम भयो तबतें,
भय बीभच्छ रुद्र इतेरस आन जुर्ने, यह वृत्तिसु आरभटी प्रगटी उबरे,
अद्भुत सुवीरहि रुद्र जबें समता, यह सात्विक वृत्ति भइ सु कहे कविता ॥८॥

अब रस के चार प्रकार की वृत्तियों के गुणों का प्रमाण करते हैं, वे तीन २ रस एक में मिलकर पृथक् २ नाम धारण करते हैं । करुणा, हास्य और शृंगार इन तीनों रसों का जहां सम्मेलन होता है वहां कौशिकी वृत्ति है ऐसा कहते हैं । वीर, अद्भुत और हास्य रस जब मिलते हैं तब भारती वृत्ति के सुन्दर नाम से सुशोभित होते हैं । भयानक, बीभत्स और रौद्र रसों के संयोग से उत्पन्न वृत्ति का नाम आरभटी वृत्ति कहा गया है । इसी प्रकार अद्भुत, वीर और रौद्र जब मिलते हैं तब सात्विक वृत्ति होती है ऐसा कवियों का कथन है ॥ ८ ॥

रसदोष अथवा अनरस पंचधा कथन

रसमें रस मिश्रित दो अरु तीन कहें, अनुमानत दूषन पंच प्रमान यहें ।
मधि बीभच्छ वीर सिंगार सुकाव्य कियो, करुना मिलि रौद्र तबें प्रत्यनीक भयो ॥
मिलि दंपति दोय जितें लपटें कपटें, कहे नीरस ताय सयान भरें निपटें ।
बरने कछु भोगमें शोगहु की उकती, कविताइ के भावमें वीरस ए जुगती ॥
अनुकूल इकें प्रतिकूल इकें जबहीं, विदुषं सुरसं दुःसंधान कहे तबहीं ।
बिन चाहत सो कविता बरने रसकों, पदु दूषन पात्रक दुष्ट कहे तिसको ॥९॥

परस्पर विरोधी रस दो और तीन इकट्ठा होने से प्रत्यनीक, नीरस, वीरस, दुःसंधान और पात्रदुष्ट ऐसे पांच प्रकार के दोष माने गये हैं । बीभत्स रस में वीर और शृंगार रसयुक्त कोई कविता करे अथवा करुणा रस में रौद्र रस मिलावे तो उसे प्रत्यनीक दोष समझना चाहिये । उसी

प्रकार कोई स्त्री पुरुष स्वयं एक दूसरे के हृदय में कपट रख बाहर से प्रेम दिखाकर आलिंगनादि करे उसे प्रज्ञ पुरुष प्रकट रूप में नीरस कहते हैं । कोई भोग अर्थात् काम क्रीड़ा के समय शोक की वार्ता का वर्णन करे तो उसे कविता के भाव में विरस दोष होय ऐसा कहा गया है । एक अनुकूल और दूसरा प्रतिकूल ऐसे दो इकट्ठे होंगे उसे रसिक विद्वान् पुरुष दुःसंधान दोष कहते हैं । रस की इच्छा न होने पर भी रसिक काव्य का वर्णन चतुर पुरुषों द्वारा पात्र दोष कहा गया है ॥ ६ ॥

रस शत्रुता किम्वा विरोधी रस कथन ।

कहिये निजमें रसकमें रस जो अरिहैं, सुकवी यह काव्य प्रमान नहीं करिहैं ।
रिपु भावसो बीभच्छ और सिंगार सदा, भनी वीर भयानक दोउ मिले दुखदा ॥
करुना अरु हास्य में वैर सदा रहैं, मति सागर नागर सोय कैं न कहैं ।
रस रंग सु कारन देववृत्ती वरनी, रससों रस दोष अरु अरिताइ भनी ॥ १० ॥

अब एक दूसरे परस्पर विरोधी रस का वर्णन करते हैं क्योंकि ऐसी कविता को जिसमें परस्पर विरोधी रस हो, सुकवि कभी प्रमाण नहीं करते । बीभत्स और शृंगार का सदा शत्रु भाव है इसी प्रकार वीर और भयानक रस में वैरभाव होने से इकट्ठे मिलने पर दुःखदायी होते हैं । करुणा और हास्य रस में सदा वैरभाव रहता है इसलिए समुद्र समान विशाल बुद्धि वाला जो कवि है वह ऐसी दोष वाली कविता कभी नहीं करता । इस प्रकार नवों रसों के रंग मूलकारण, देव और वृत्ति का वर्णन कर रस की मित्रता, रसदोष और रस की शत्रुता आदि का वर्णन किया है ॥ १० ॥

दोहा ।

नव रसमें सिंगार वर, सो हैं उभय प्रकार ।

इक संयोग वियोग पुनि, द्वै सिंगार निरधार ॥ ११ ॥

नव रसों में शृंगार सर्वोत्तम है सो दो प्रकार का है । प्रथम संयोग शृंगार, द्वितीय वियोग शृंगार ॥ ११ ॥

नहि संयोग सिंगार में प्रेमहुकों कछु नेम ।

दंपति हिये वियोग में, रहे अखंडित प्रेम ॥ १२ ॥

संयोग शृंगार में प्रेम का क्रम बराबर रहे, ऐसा नहीं है परन्तु वियोग शृंगार में स्त्री पुरुष के हृदय में परस्पर अखंड प्रेम व्याप्त रहता है ॥ १२ ॥

अथ प्रेमनेमानिरूपनभेद, उल्लेखालंकार-कवित्त ।

सुघर संयोगी जन चातुकी पियूष धार, विरहि विवेकी रभा घनसार मानी हैं ।
मुक्ता सिकत जोगी मनमें छिपाय राख्यो, विना भेद चाहें अहि कालकूट वानी हैं ॥
सागर या प्रेमस्वांत उरमें अजानहुके, पंकजके कोश मध्य परथो बूंद पानी हैं ।
देखो यह बारहुंको जैसो गेह तैसी देह, जैसी देह तैसो गुन प्रगट निसानी हैं ॥ १३ ॥

जिस प्रकार चातकी वर्षा की धारा को धारण करती है, इसी प्रकार सुघर संयोगी जन प्रेम को रखते हैं । जैसे स्वांति बूंद से उत्पन्न मोती को सीप छिपा कर रखती है इसी प्रकार विवेकी और महान् पुरुष प्रेम को मन में छिपा कर रखते हैं, परन्तु जैसे स्वांति-बूंद सर्प के मुख में पड़कर विष बन जाता है इसी प्रकार सर्प के समान दुष्ट और प्रेम के नियम का न जानने वाले व्यक्ति के मन में प्रेम विष समान हो जाता है । 'सागर' कहते हैं कि यह स्वांति-बूंद रूपी प्रेम अजान मनुष्य के मन में कमल पथ पर पड़े हुये जलविन्दु के समान हैं, अर्थात् थोड़े ही काल में ढलक जाने वाला है देर तक टिक नहीं सकता । देखो, यह स्वांति-बूंद जैसा स्थान मिलता है वैसा ही शरीर धारण करता है, और जैसा शरीर वैसा ही गुण प्रकट करता है यह प्रत्यक्ष है । इसी प्रकार प्रेम के भी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के स्थान हैं । संयोगी और चातक, विरही तथा कदली, सीप और योगी, ये उत्तम हैं; स्वांति-बूंद और सर्प अधम तथा अजान मनुष्य और कमल पथ यह मध्यम है । इस प्रकार इस कविता में प्रेम के तीन स्थान समझाये हैं । संयोगी चातक और वियोगी को केला, कपूर कहकर संयोगी की अपेक्षा वियोगी में विशेष प्रेम बतलाया है । वह इस

प्रकार कि चातक पक्षी गले के छिद्र से वर्षा के जल में से बहुत थोड़ा ग्रहण कर सकता है, और केला अपना पानी ग्रहण कर जलमय होकर हर्ष से कपूर उत्पन्न करता है इसलिये चातक रूपी संयोगी की अपेक्षा केला-रूपी वियोगी विशेष प्रेमपात्र है ॥ १३ ॥

दोहा ।

प्रेमतत्त्व सत्ता सकल, फैल रही संसार ।

प्रेम सधे सोई लेंहें, परम ज्योति को पार ॥ १४ ॥

प्रेम तत्त्व की सत्ता सब संसार में फैल रही है । जो पुरुष प्रेम का साधन करते हैं वे परम ज्योति को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

सवैया ।

जोग सध्यो अष्टांग कहा है, कहा भयो वेद पुरानहि बांचे ।

तीरथ व्रत कियो तो कहा है, कहा गुन गान निरंतर नांचे ॥

देवन सेव करी तो कहा अरु, मंत्र अराध्यो कहा मन कांचे ।

सागर नागरताई वृथा सब, प्रेम प्रतीत परी वह सांचे ॥ १५ ॥

आठ प्रकार के योग साधन से क्या ? इसी प्रकार वेद पुराण के पढ़ने से क्या ? तीर्थ यात्रादि व्रत किया तो भी क्या ? गुणगान कर निरंतर नृत्य करने से भी क्या लाभ ? सागर कहते हैं कि यह सब चतुराई एक प्रेम विना वृथा है । जिसने प्रेम में विश्वास किया वही इस संसार में सत्य को प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥

दोहा ।

प्रथम महा कवि जो भये, रचे प्रेम-रस ग्रन्थ;

परि प्रकाश काहु न कह्यो, प्रेम नेम को पन्थ ॥ १६ ॥

पूर्व जो २ महाकवि हुए, उन सबने प्रेम-रस मय ग्रन्थ की, रचना की, परन्तु कोई भी उस में प्रेम के नियम के मार्ग का पूर्ण वर्णन करने में समर्थ नहीं हुआ ॥ १६ ॥

अथ तस्य प्रयोजनं तोटकछंदे यथा ।

शिव शेष गनपति बानि गही, अगमं उकती निगमं सुकही ।
सनकादिक अंगिरस सविता, शुक नारदसे उशना कविता ॥
भृगु बलभीक शृंगि वसिष्ठ कवी, ऋषि राज रची बहु भांति नवी ।
इनही विध शंकर दत्त भये, पुनि गोरख ग्रंथ रचे सु नये ।
कुल वल्लभ कीन अनेक कथा, किये काव्य सुरामहिनंद यथा ॥
अमरादिक के सुर भाष कही, पुनि केउ कवी ब्रज भाषे ग्रही ।
तुलसी अरु सूर कवीर कये, कवि केशव आदि अनेक भये ॥
उन पूरन प्रेमसु ग्रंथ किये, पारिप्रच्छन भेद छिपाय दिये ।
परकाश महंत कहंत नहीं, सब जान गये मनके मनहीं ॥
घट पूरन प्रेम हले न डुले, हम तुच्छ भरे उभटंत छले ।
उन कारन बुद्धि यथा कहिये, सुरता कछु चूक परी सहिये ॥१७॥

शिव, शेष, गणपति आदि ने वाणी को लक्ष्य में रखकर वेदादि जैसे अगम (गम्य नहीं ऐसी) युक्ति से अनेक ग्रन्थों की रचना की; इसी प्रकार सनकादिक, अंगिरा, सूर्य, शुकदेव, नारद, शुकान्वार्य, भृगु, वाल्मीकि, शृंगी, वशिष्ठादि अनेक कवि तथा ऋषि मुनियों ने बहुत प्रकार से अनेक विषय के ग्रन्थों की रचना की । शंकर और गुरु दत्तात्रेय भी हुए । उनके भी पश्चात् गोरखनाथ ने नये ग्रन्थ बनाए । वल्लभकुल के गुसाइयों ने विविध भांति की कथाएं लिखीं । रामानन्द स्वामी ने भी अपनी बुद्धि अनुसार काव्य रचे । कितने ही कवियों ने देववाणी में, उनके पश्चात् तुलसीदास, सूरदास, कवीर केशव जैसे अनेक कवि ब्रज-भाषा में कविता की । इन सबों ने प्रेम से ओतप्रोत ग्रन्थों की रचना की, परन्तु गुह्य भेद छिपा दिया, क्योंकि बड़े ज्ञानी महंत आदि प्रकाशरूप में वर्णन नहीं करते मन में ही समझते रहते हैं । पानी से पूरा भरा हुआ घड़ा हिलता है परन्तु छलकता नहीं, इसी प्रकार पूर्व हुए ऋषि मुनि प्रेम से भरपूर थे अर्थात् उनका प्रेम अवल था इसलिए उनका प्रेम

छलका नहीं, परन्तु मैं मंदमति अधूरे घड़े के अनुसार छलक गया हूं और अपनी बुद्धि अनुसार कहता हूं । प्रिय वाचको ! मेरी भूलों को क्षमा करना ॥ १७ ॥

दोहा ।

घट बढ़ पद गुरु लघु बरन, उकति जुकति को भेद ।

मित सोधि सुध कीजिये, कवि मत करहु निषेद ॥

प्रेमपंथ अति अगम है, निगम सराहत जाहि ।

सुरत नितरसें सोधबो, सुगम न जानो ताहि ॥ १८ ॥

हे मित्र कविवरो ! इस ग्रन्थ में न्यून वृद्धि गुरु और लघु उक्ति उनके भेद ऐसी मेरी त्रुटियों को शुद्ध करना, निषेध मत करना । प्रेमपंथ अत्यन्त अगम है, उसका पार पाना कठिन है । इसकी महिमा वेद भी गाते हैं । सावधान होकर ध्यान में तल्लीन होकर ढूंढोगे तो पावोगे अन्यथा नहीं । सरलता से प्राप्त होने वाला नहीं है ॥ १८ ॥

अथ भेदकातिशयोक्ति अलंकार — सवैया

अंबरतैं अति ऊंचि बहे अरु; ऊंडि रसातलहुतैं अथारी ।

तूहिन के गिरसे अति शीतल; पावकमें अति जारन हारी ॥

मारहुतैं कटु मीठि सुधाहुतैं, भीनि अनुते सुमेरतैं भारी ।

जानत जान अजान न मानत, सागर बात सनेह की न्यारी ॥ १९ ॥

प्रेम की रीति आकाश से भी ऊंची और रसातल से भी गहरी, बर्फ के पहाड़ से भी शीतल और अग्नि से भी अधिक ऊष्ण, हलाहल से अधिक कड़वी और अमृत से भी अधिक मीठी, तथा अणु से सूक्ष्म और पर्वत से भी अधिक स्थूल है । इस प्रेम की बात ही न्यारी है, बड़ी विलक्षण है ॥ १९ ॥

दोहा

नासत भासत हैं जगत, सोधो सकल विवेक ।

प्रेम प्रकाशत जास मन, आसत प्रगट अनेक ॥ २० ॥

विवेक से विचार कर देखो तो यह समस्त संसार नाशवान् प्रतीत होता है, परन्तु जिनके हृदय में अखंड प्रेम का प्रकाश हुआ है उन्हें तो यह अखंड परब्रह्म सत्य है ऐसा अनेक प्रकार से आस्था उत्पन्न हो जाती है ॥ २० ॥

अथ जानिस्वभाव अलंकार—सवैया

वेद किताब अरु भू रहे सब, और वृत्ती वरतंत सनेही,

देह दशा परकों परखे वह, बेपरवाह फिरंत विदेही ।

पार लहे तो लहे परब्रह्मको, शेष महेश न पावत जेही,

सागर नासत भासत हैं जग, प्रेम प्रकाशत आसत येही ॥ २१ ॥

वेद और किताब (कुरान) में सब लोग उलझ रहे हैं, परन्तु जो सब्बे प्रेमी हैं वे और ही प्रकार से वरतते हैं । उनके देह की दशा का दूसरा कौन जान सक्ता है, क्योंकि वे प्रेम में विदेही अर्थात् देह का भान भूलकर फिरते हैं । वे ही उम परब्रह्म का पार पाने हैं जिसे शेष और महेश (शिवजी) भी पार नहीं पाते । सागर कवि कहते हैं कि यह जगन् नाशवान् प्रतीत होता है परन्तु जिन्हें प्रेम का प्रकाश प्राप्त हो गया है उन्हें यह धारणा हो जाती है कि प्रेममय परब्रह्म सत्य है ॥ २१ ॥

दोहा ❀

याही की जाने जुगति, विविध भेद विस्तार,

रसिक राधिका कृष्णको, वरनों कलुष विहार ॥ २२ ॥

इसी प्रेम के विविध प्रकार के विस्तृत भेद को जानने वाले रसिक राधाजी तथा श्रीकृष्ण के विहार का कुछ वर्णन करता हूं ॥ २२ ॥

गाथा

ग्रंथागम गति गहियं, ब्रह्मस्तुति भेद रस भावं,

प्रथम प्रेम प्रसंगे, द्वितीय प्रवीणसागरो लहरं ॥ २३ ॥

* इस स्थान पर ग्रन्थकार श्री राधा कृष्ण के विहार क्रीड़ा का वर्णन करने की धारणा तीसरी लहर से प्रारंभ किया, परन्तु चौथी लहर से विचार फिरा दिया है ।

ग्रन्थ की अगम्य गति जान ब्रह्मा की स्तुति की तथा पृथक् २ रीति से नवरस का भेद कह कर प्रेमके प्रथम प्रसंग के साथ प्रवीण-सागर ग्रन्थ की द्वितीय लहर पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

लहर ३ जी

अथ राधाकृष्ण युगल स्वरूप वर्णन यथा — दोहा.

ब्रज में राधाकृष्णजू, रच्यो सुरस सिंगार;
सो वरनन अब करत हैं, जाहि जपत संसार ॥ १ ॥

ब्रज में राधा और श्रीकृष्ण ने जो सुन्दर शृंगार-रस उत्पन्न किया था अर्थात् मत्तचे प्रेम को प्रकट रूप में ले आये थे, उसका वर्णन अब करता हूँ जिसे संसार जपता रहता है ॥ १ ॥

रमन राधिका कृष्णको, प्रेम सहित संयोग,
सो उरमें रहिये सदा, जाहि जपत तिहु लोग ॥ २ ॥

जिसका तीनों लोक जाप करता है ऐसी श्री राधाकृष्ण की प्रेम सहित संयोग क्रीड़ा की मूर्ति हमारे हृदय में निरंतर वास करे ॥ २ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—कावित्त

दोउ नैनां नैन रूप देखत अघात नाहीं, दोउ मन मैल मानौं एक मन कीने हैं ।
आसन सुखासन पै आनंद उमंग राजें, जैसे रतिनाथ रति प्रेम मद पीने हैं ।
आनन दुहूकी शोभा बरन न जात कछु, ताकी छवि देखे शशी भान छवि हीने हैं ।
नंद नंद सागर सुनागर प्रवीन राधे, वृंदावन कुंजमें सिंगार रस भीने हैं ॥ ३ ॥

श्री राधा कृष्ण दोनों अपने २ नेत्रों से एक दूसरे के रूप को देख-कर तृप्त नहीं होते, इसी प्रकार दोनों के मन ऐसे मिले हैं मानों एकही हैं तथा जिस प्रकार प्रेमरूपी मदिरा का पान कर रति और काम उमंग कर

दर्शविह्वल हो गये । इसी प्रकार दोनों कामक्रीड़ा के आसन में प्रसन्नता के साथ बैठे २ उमंग से आनंदित हो रहे हैं । दोनों के मनोहर मुख की शोभा का कोई वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि उनके मुख की शोभा को देखकर चन्द्र और सूर्य कान्तिहीन प्रतीत होते हैं । ऐसे सुन्दर और चतुर श्रीकृष्ण और सब काम में प्रवीण श्री राधाजी वृन्दावन के कुंजों में शृंगाररस से सराबोर विहार करते हैं ॥ ३ ॥

अथ उत्प्रेक्षालंकार—सवैया

मोर किरिट लसें वर राधे के, राधे के शीश प्रसून मनी को ।
वातज को मद स्याम के भाल में, स्वामिनी भाल जराव को टीको ॥
कानन कुंडल कान्ह विराजत, कान्ह प्रिया तरुना अतिनीको ।
अंकमें सोहे मयंक मुखी मनौं, वारदमें शशि शारद ही को ॥ ४ ॥

राधावर श्रीकृष्ण के शीश पर मोर मुकुट तथा राधा के सिर पर शीशफूल शोभायमान हैं । वातज मद (मृगमद कम्पूरी) का तिलक श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के भाल पर तथा स्वामिनी श्री राधाजी के ललाट पर जड़ाऊ टीका शोभित है । श्री कन्हैयाजी के कान में कुंडल विराजमान हैं एवं कान्ह प्रियाजी के कान तरौना अति सुन्दर हैं । इस प्रकार शृंगार-युक्त चंद्रमुखी राधिकाजी श्रीकृष्ण के गोद में ऐसे शोभायमान हैं मानो मेघ की काली घटा में शरद ऋतु का चन्द्रमा होवे ॥ ४ ॥

कवित्त

राधे मुख चंद्र ताको चाहत चकोर जैसे, नयन सरोज ताको चाहत अलीन ज्यों ।
अधर पीयूष ताको चाहत फनिद जैसे, सधन मुकेश ताको चाहत शशिन ज्यों ॥
कर्क कनरद ताको चाहत सुकीर जैसे, कुच हेमकुंभ ताको चाहत कपीन ज्यों ।
राजो मुरसरी ताको चाहत भगीरथ ज्यों, त्रिवलि त्रिवेनी सो प्रवीन चाहे मीन ज्यों

चतुर श्रीकृष्णजी राधिका के चन्द्रमुख को चकोर के समान, कमल-रूपी नेत्रों को भ्रमर के समान, अमृतरूपी ओठों को फनीन्द्र (सर्पराज)

के समान, काले मेघ के समान केशों को मयूर की भाँति, दाढ़िम दन्ता-
वलि (अनार के दानों के समान दाँतों) को शुक की भाँति, कनक कलस
की उपमा वाले कुचों को कृपण के समान, रोमावली रूपी गंगा को राजा
भागीरथ की भाँति तथा तृचलि रूपी त्रिवेणी को मीन की भाँति चाहते
हैं ॥ ५ ॥

सवैया

कुंज गली वन जैबो तज्यौ अरु, बैठ रहे गिरिसैं गिरधारी,
नैनन की छवि बक्र निहारबो, सो गति नैनन से भई न्यारी ।
टेढो किरिटी खुली अलक सोहे, आपनसे सब सूधि बिसारी,
औरन से मुसके नहि मोहन, कीन्हि भली ब्रपभानदुलारी ॥ ६ ॥

सखी राधाजी से कहती है कि वृन्दावन कुंज गली (लतामण्डप)
में जाना आना छोड़ श्रीकृष्ण पहाड़ की तलेठी में तेरे ध्यान में बैठे रहते
हैं । कटाक्ष अवलोकन, जो कि नेत्रों की शोभा है, जाती रही । खुले हुए
केशों पर टेढ़ाकिरीट रखना तक भूल गये । वे श्रीकृष्ण जो सदैव अनेक स्त्रियों
के साथ क्रीड़ा करते थे आज किसी से बोलते भी नहीं; इसलिये ऐ
ब्रपभानदुलारी राधिका ! तू ने जो उन्हें इस प्रकार वश में कर रक्खा है
वह अच्छा ही किया है ॥ ६ ॥

यथा संख्यालंकार—कवित्त

केश मोहे तम चाप व्याल शशी मध्य भृंग, चीतवें तुरंग बबो खग जैसे पूरहैं,
नैन अरु नासा कंज चंपकली मोर कीर, सुरमाधुरो सोकिधों कोकिला मयूरहैं ॥
अधर रद वलिन कुंद कली सुधादारौ, ग्रीवासों कपोत किधों कंचनकी चूरहैं।
कुच कटी करी हरी हरीशृंग हरी जुरी, राधाजू प्रवीन माधा मिलबो जरूरहैं ॥ ७ ॥

जिनके केश और भृकुटि क्रम से अन्धकार और धनुष के समान हैं,
तथा सर्पाकार और मुख चन्द्र के मध्य पंख फैला कर बैठे हुये अंशु के
समान शोभायमान है, वेग में आये हुए घोड़े अथवा उड़ते हुए पक्षी के

समान चपल जिन की चितवृत्ति है, तथा जिनके नेत्र और नासिका कमल और चम्पाकली के समान अथवा क्रम से मीन की भौंति चंचल और तांते की चोंच के समान सुन्दर हैं, इसी प्रकार इनका स्वरकोयल और मयूर के समान मधुर, होठ और दांत कमल और कुंद कली तथा अनार के दाने के समान हैं, जिनकी ग्रीवा कपोत अथवा सोने की चूड़ी के समान, जिनके स्तन और कटि हाथी की मूंड और सिंहनी की कटि के समान तथा पर्वत के शिखर से दुर्बल हुई सिंहनी की कटि के समान हैं, ऐसे रसिक और चतुर राधाजी से मिलना, हे माधव ! आवश्यक है । इस प्रकार श्रीराधाजी की दूती श्रीकृष्ण के पास श्रीराधाजी की प्रशंसा कर कृष्ण के हृदय में मिलने की उत्कण्ठा उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

पूर्णपमालंकार—कवित्त

कंज से अरुन रंग पाय मृदु नीके अति, हंसगति जैसी गति मंद देखि मोहियें ।
सिंहकटि जैसी कटि बीन सुभ प्रभा मान, करि कुंभसे कठोर कुचवर दोहियें ॥
अंब नव-पल्लव से कोमल अधर पान, मान जैसे चपल दग जावक निचोहियें ।
वेनी विषधर जैसी जाहि की सरल श्याम ऐसी राधे राधेनाथजूके उर सोहियें ॥

कमल के समान लाल और अत्यन्त कोमल जिनके मनोहर पग हैं तथा हंस के समान जिनकी धीमी चाल मनमोहक है, जिनकी सुन्दर शोभायमान सिंहनी के समान क्षीण कटि है तथा जिनके स्तन हाथी के कुंभ-स्थल के समान कठोर हैं और जिनके होठ और हथेलियां आम के नव-पल्लव के समान कोमल और रक्त-वर्ण हैं, जिनके नेत्र मछली के समान चंचल और जिनकी चोटी सर्प के समान सीधी तथा श्याम वर्ण है, ऐसी श्री राधिकाजी श्रीकृष्णजी के हृदय में शोभायमान हों । इस प्रकार कृष्ण को सुनाकर एक सखी दूसरी सखी को कहते हुए कृष्ण के हृदय में मोह उत्पन्न करना चाहती है ॥ ८ ॥

अथ समस्या भेद—सवैया

एक भई विपरीत गती यह मैं, दधि कंजके मध्य समानौ ।

दाढ़मको विनु अंग चुगे शुक्र, इंदुषतें छितिपै ठहिरानौ ॥
अंबुजके विकसे उलटे तिमि, इंदुषतें अंबु धुनीसे बहानौ ।
लोचन रक्ताकि बानि कपोत रटे, विन आस्य अहीसे बंधानौ ॥६॥

एक ऐसी अनहोनी बात हुई कि दूध का समुद्र कमल के अन्दर समा गया, और अनार के दाने को विना अंग का ताँता चुनने लगा, चन्द्रमाँ पृथिवी के ऊपर आ स्थित हुआ है, और कमल के खिलने से मछली उलट पड़ीं उन दोनों के बीच से पानी बह चला और विना मुख के सर्प से बंधा हुआ कबूतर कोयल की भाँति मधुर स्वर से बोलता है । (इस प्रकार एक सखी दूसरी सखी को सम्बोधन कर नायिका के रूप का वर्णन नायिक को सुनाती है) ॥ ६ ॥

सवैया

सेज विनोद समै अलि चूकिकें, बामसे श्याम कछूक गये बढ ।
भौंह चढ़ाय रही सतराय, दुहुं दग आय बहे मनु बारद ॥
मानहि मान प्रवीन प्रिया तब, जान अजान भये मदिरामद ।
लाल विहाल विलोकि सुवाल, किये तिहि काल रसाल रदच्छद ॥१०॥

एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी ! आनन्द के समय विनोद में भूल से श्रीघनश्याम ने राधाजी को कुछ कठोर वचन कहा उसे

(१) दूध का समुद्र में पयोधर जो कि विना खिले हुए कमल (कमल-कलि) के समान है आगया ।

(२) नायिका के दांत अनार के दाने के समान जिनके ऊपर नासिका तोते की चोंच के समान है ।

(३) नायिका के मुख की तुलना कवि ने चन्द्रमा से की है ।

(४) कमल के समान आँखों में मछली के समान चंचल पुतली है, उसमें से अश्रुधारा बह चली ।

(५) नायिका की चोटी (अलकावलि) को कवि ने विना मुख का सर्प और उससे धिरे हुए मुख से उच्चारित ध्वनि को कोकिल-स्वर की कल्पना की है ।

सुनते ही राधाजी श्रुति चढ़ा क्रोधित हो दोनों नेत्रों से पावस ऋतु के समान आसूँ बरसाने लगीं । यह देख कर श्यामसुन्दर ने समझा कि राधा क्रोधित होगई और मनाने से नहीं मानेंगी यह सोच अपनी भूल छुपाने के लिये मद-मत्त के समान बेभान होगये । कृष्ण को इस प्रकार बेभान देख कर राधा ने मन में सोचा कि मुझे जो कठोर वचन इन्होंने कहा है, वह जान बूझ कर नहीं बरन् मदिरा के वशीभूत होकर । ऐसा जान, उन पर प्रेम प्रकट कर रसमय होठों का चुम्बन किया, ऐसे श्री राधाकृष्ण हमारा कल्याण करें ॥ १० ॥

दोहा

मुकुर गेह चिहु दिस जटे, कीनीं जोत उद्योत ।

विना नेहसौं बारि विच, दीपक जरिबो होत ॥ ११ ॥

चारों तरफ कांच जड़े हुए मन्दिर में दीपक की ज्योति प्रगट करने से उसका प्रतिबिम्ब कांच में पड़ने से अनेक दीपक दीखने लगे, वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वगैर तेल के दीपक कांचरूपी पानी में जल रहे हों ॥ ११ ॥

कवित्त

बैठी वृषभान सुता साजिके सिंगार सार, सिषन सुधार रस बात करबो करें ।
सौं हन खवाय लाख सोह में दिया अनंत, बनी ठनी उठी पंथ पडैं परबो करें ॥
नंदलाल बेग लाइ लाखन उपाय करी, देखिये जु साम डगमग भरबो करें ।
यह के किंवार ठाढ़ी होरही नबोढा नारि, विना नेह बारी बीच दीप जरिबो करें ॥

श्रीकृष्णजी द्वारा प्रेरित दूती राधाजी को मना कर ले आई और श्री नटवरजी से कहती है कि वृषभानु-सुता राधाजी, श्रेष्ठ शृंगार करके सिखन सुधार अर्थात् केशों को संवार कर रस की बात करती थी अथवा श्रेष्ठ शृंगार सज राधाजी बैठी थीं कि मैंने जाकर अनेक शिक्षाओं से सुधार रस की बातें कर लाखों सौगन्ध दे आपके पास आने की विनती की ।

तब वह अनन्त दीपक के समान कान्ति वाली बनी ठनी उठ कर रास्ते में डग भरने लगी । इस प्रकार हे नन्दलाल ! लाखों उपाय करके शीघ्र ही लाई हूं, हे घनश्याम आप देखो कि मार्ग में किस प्रकार कदम रखती हैं । ऐसा कह दोनों खड़े होकर देखते हैं कि नवोढ़ा राधाजी संकेत गृह के द्वार में आ किवाड़ पकड़ खड़ी हुई, ऐसी प्रतीत होती हैं मानो विना तेल के दीपक जल रहा हो ॥ १२ ॥

बिछुवा अनोट पाय जेवर जराव जरी, नूपुर भनक पाय घुघरि घनी घूरे ।
कटि छुद्रघंटिका किशोरी के विराजमान, सोहत हमेल हार चौकी हियमें परे ॥
कंठ कंठमाल और सालबालहि को राजे, बिंदु भाल लाल मुखप्रभाशशि की हरे ।
चिर ओढे राधे शीश फूल नंग जोत होत, विना नेह वारि बीच दीप जरिबोकरै ॥

पग की उंगलियों में बिछुये और अंगूठों में अनवट तथा पग में जड़ाऊ जेवर पहिने हुए हैं, जिनमें अनेक घूंघरुओं की भनकार होती है । किशोर अवस्था वाली राधाजी की कमर में मेखला, गले में हमेलहार, और मध्य की चौकी हृदय पर विराजमान है, रसिक बाला के कण्ठ में मुक्तामाल, ललाट पर रत्न-जड़ित लाल बेंदी सुशोभित है, उसका सुन्दर मुख चन्द्रमा की शोभा को भी फीका करता है, शरीर पर मनो-हर चीर धारण किये हुए हैं । राधाजी ने मस्तक पर रत्नजड़ित शीश-फूल धारण किया हुआ है, जिसके नग के ज्योति की कान्ति ऐसी देदीप्यमान है मानो विना तेल के दीपक जगमगा रहा हो ॥ १३ ॥

अथ भ्रमालंकार विभ्रमहाव-सवैया ।

सांभ समय हुलसे मन आवत, गाइन संग बने गिरधारी ।

डीठ परयो वृषभान-मुता मुख, धायके आय चढ़ीजू अटारी ॥

१ तीसरे चरण का उत्तरार्ध तथा चौथे समस्त चरण का दूसरा अर्थ साथ-साथ देखो "और आप मार्ग में किस प्रकार डग भरते चलते हो यह जानने के लिये संकेत घर के दरवाजे में तुम्हारी राह देखती, किवाड़ पकड़ कर वह नवोढ़ा राधाजी वहां खड़ी हुई है, वह मानो विना तेल के जलते हुए दीपक के समान शोभायमान है ।"

गैल गहे गृहकाहुन की गृह, नंदकी गेल रही दिग न्यारी ।

ले लकुटी अधरान बजावत, वेनसु धेनकी हाँकनहारी ॥ १४ ॥

संध्या समय मन में अति हर्षित हो बने ठने श्रीकृष्ण गायों के संग व्रज में आरहे थे उनको देखने के लिये दौड़ कर अट्टालिका के ऊपर गोखड़े में मुंह निकाल देखती हुई राधिका को देखते ही मोह-विभ्रम हो श्रीकृष्ण पास की नन्दराय की गली छोड़ दूसरे घर की गली की ओर जाने लगे तथा लकुटिया को वंशी समझ अधर पर लगा कर बजाने लगे और वंशी को गाय हाँकने की लकड़ी समझ गायों को हाँकने लगे ॥ १४ ॥

दोहा—तोटक—कुंडलिया ।

गने व्रषा कन उडगननि पारावार किलोल ।

बृच्छहिं भार अटारके, कनक सैल सम तोल ॥

के तोल करे गिरधातनकों, कोउ पार लहे वृछ पातनकों ।

दाधि वाज उडगन बुंद गनै, हरिको गुन सो न सबै बरने ॥ १५ ॥

वर्षा के विन्दु, आकाश के तारे, समुद्र की लहरें, वृक्षों की पत्तियां इन सब की संख्या तथा मेरु पर्वत का तौल हो नहीं सकता, फिर भी चाहे कोई सप्त धातु वाले मेरु पर्वत का तौल करसके, वृक्षों की पत्तियों की गणना करले, समुद्र-जल की लहरें, आकाश के तारों तथा वर्षा के बूंदों की गणना करमके यह संभव हो सकता है, परन्तु हरि के सब गुणों का वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥ १५ ॥

अथ दूजो भेद उल्लेखालंकार—कवित्त

बैनन की वागेश्वरी नैननकी ऐन बधू, मैननकी ऐन सुख देन की चिंतामनी ।
ताननकी सिंधु अभिमानिनी जुधेश बंधू, अंग अंग सोहें दुति चंचलाई दामिनी ॥
गोगनकी हंसमुख जोननकी चंद अंस, टोननकी कारनसु देखिये जू कामिनी ।
मुनो नंद नंद प्रभा कहाँ बताय कहौं, भायें न निहारे वह भवजूकी भामिनी ॥

बोलने में सरस्वती के समान, आंखों की चपलता और कोमलता

में मृगी के समान, कामदेव के स्थानक के समान, सुख देने में चिन्ता-मणि के समान, गीतगायन में समुद्र जैसी, अभिमानिनी दुर्योधन जैसी, प्रत्येक अंग की कांति में शोभायमान तथा चंचलता में विधि के समान, चाल में हंस जैसी, मुखाकृति चंद्रमा के समान, देखने में मोह मंत्र के कारण की भाँति कामनी राधिकाजी शोभायमान हैं। राधा के पक्ष की सखी इस प्रकार श्रीकृष्ण से कहती है, हे नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण ! सुनिए, मैं उनकी शोभा का कहांतक वर्णन करूं जो कोई एक बार उन्हें भली प्रकार देखले तो फिर शंकर-वभू पार्वती भी उसके ध्यान में नहीं आवे ॥ १६ ॥

अथ उत्प्रेक्षाऽलंकार—सवैया

साज सिंगार चढ़ी हैं भरोखन, ठाढि हैं भानुसुता सुखदाई ।
हारनके दाबि भारनसों कुच, दोउन पाइ मनो लघुताई ॥
चूरन भार उतारि मनौ, मनमध्यन हृथ्य किये सुघटाई ।
सोहत हैं त्रिवली सुमनौ, कचकेलचके कटि है दरकाई ॥ १७ ॥

सुखदायक वृषभान-सुता राधिकाजी सोलहों शृंगार सज भरोखे चढ़ कर खड़ी हैं। उनके वक्षस्थल पर मुक्ताहार का बोझ पड़ कर मानो स्तनों को लघुता दे रहा है। चूड़ियों के भार से लचके उनके दोनों हाथ ऐसे प्रतीत होते हैं मानो अनंगदेवने खराद पर चढ़ाकर सुन्दर घाटवाला बना दिया हो। त्रिवली (पेट पर पड़े हुए तीन आंटे को कवि लोग त्रिवली कहते हैं यह सौन्दर्य का एक भाग माना गया है) इस प्रकार प्रतीत होती है मानो केशों के भार से कटि प्रदेश में दरक आगई हो ॥ १७ ॥

अथ आंतिमान अलंकार—सवैया

करि मंजन अंजन लीन निलोचन, भूषन भूषित हैं तनमें ।
अंधियारि निशा अलि संग लिये, ब्रजराजहु पै जू चली वनमें ॥
दुतिदामिनिदेखि सिखी हुलसैं, मुखचंद्र प्रकाश चकोरन में ।
सुनि नूपुर बाल मराल धसैं, सु लगी है कुलाहल कुंजनमें ॥ १८ ॥

राधाजी स्नान कर आँखों में काजल डाल नीलाम्बर वस्त्र तथा चोली पहिन, सारे अङ्ग आभूषणों से साज शोभायमान होकर अन्धेरी रात के समय सखी को साथ लेकर ब्रजराज जो श्रीकृष्णजी उनके निमित्त वन को चलीं। उस समय उनकी बिजली के समान कान्ति को देखकर मोर हर्षित हुए, चन्द्रमा के समान शोभायमान मुख के प्रकाश को देखकर चकोर के टोले आकर सामने झुकने लगे। इतना ही नहीं बरन उसके पैर में पहिने हुए भांभर की भक्तकार सुनकर हंस के बच्चे दौड़ आये। इस प्रकार सारे वन के कुंज कुंज में कोलाहल सा मच रहा है ॥ १८ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार-सवैया

शेष महेश मुनेश मुकेशसें, ध्यान हमेशहि तो गुन गावें ।
ब्रह्म सनक सनातन भृगू, बगदालिभ नारद स्वप्न न आवें ॥
वाल्मी शृंगिय शक्र शशी रवि, वासर रैन तु चित्तमें लावें ।
येंसिय आठ तेतीस नव अरू, द्वादस पार अग्यार न पावें ॥ १९ ॥

शेष, महेश मुनीश्वर और शुखदेवजी सरीखे निरन्तर ध्यानपूर्वक आप के गुण गान कर रहे हैं। ब्रह्मा, सनक, सनातन, भृगु, बगदाम्भि और नारदजी सरीखों को स्वप्न में भी दर्शन नहीं देते। वाल्मीकि, शृंगी, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य सरीखे रात दिन आपका चिन्तन करते हैं। अट्ठासी हजार ऋषि, तैंतसि करोड़ देवता, नव योगीश्वर, बारह सूर्य, ग्यारह इन्द्र आदि जिनके गुणों का पार नहीं पा सकते। ऐसे हे श्रीकृष्णजी ! आपकी महिमा अपार है ॥ १९ ॥

दोहा—हरि गुनसो सागर भर्यो, कवि कपोत की चंच ।

पियत न खूटे प्रेम पय, यातें वरन्यो रंच ॥ २० ॥

हरिगुण रूपी समुद्र भरा है, जिसका प्रेमरूपी अमृत समान पानी कबूतर की चोंच जितना कवि के मुंह से पी लेने से समाप्त नहीं हो सकता। वह क्या पी सके ! कहने का तात्पर्य यह कि परमेश्वर के समस्त गुणों में

ये किसी एक गुण का भी वर्णन करने की शक्ति शिव सनकादि में नहीं, इसलिये कवि कहता है कि किञ्चित् वर्णन किया है ॥ २० ॥

अथ मनशिखा—कवित्त

छार सम काया सब माया धूप छाया जैसी, तमोगुन तजरे तू ताजि देवो गारी को, ताजि दे बड़ाई तू आदर अनादर तज, तज शोक मोह चिंता भूठ नेह नारी को, तप जप दान पुण्य विना किये बैठ रहो, जानत न तेरे सिर दंड दंडधारी को, अहो मन मूढ तोसों कहा कहूं बेर बेर, राखरे भरोसो एक कुंजके बिहारी को ॥ २१ ॥

यह शरीर राख के समान नाशवान है, इसका भरोसा नहीं, सारी ममता और मोहमाया धूप और छाया के समान मिथ्या है। अतएव हे मूर्ख मन ! तू तमोगुण को तज गाली आदि दुष्ट वचन कहने की आदत छोड़ दे। अपने में से अपनापन, आदर-अनादर, शोक, मोह, चिन्ता आदि दुर्गुणों को भूल जा और स्त्रियों के खोटे स्नेह को अन्तःकरण से निकाल दे। अभी तू तप, जप, दान, पुण्य आदि न कर निश्चित होकर बैठा हुआ है, क्या तुझे खबर नहीं कि तेरे शिर पर दण्डधारी यमराज का दण्ड किस प्रकार पड़ेगा। हे मूढ मन ! तुझे बार बार क्या कहूं, इसलिये एकमात्र कुंज के बिहारी श्रीकृष्णचन्द्र का भरोसा रख, जिससे कि तेरा कल्याण हो जाय ॥ २१ ॥

दोहा — पार न पावत शेष से, सहस्र उहै जिहि रसन ।

प्रेमहुं से परसन रहो, रसिक राधिका कृष्ण ॥ २२ ॥

जिसके कि हजारों जिह्वा हैं, ऐसे शेषजी सरीखे जिनके गुणों का पार नहीं पा सकते, फिर मैं अल्पमति क्या लिख सकता हूं ? अतएव हे रसमय ! श्री राधावल्लभ में आपके सब प्रेम का इच्छुक हूं जिससे केवल मेरे प्रेम से ही मेरे ऊपर प्रसन्न रहो यही प्रार्थना है ॥ २२ ॥

१ ईडर तथा पुरानी हस्तलिखित प्रति में “पछार सम माया सब काया” का पाठ है ।

गाहा—युक्ति युक्ति वरदाता, रसमय रूप राधिका कृष्ण ।

वरनन प्रेम प्रकासे, तृतीय प्रवीणसागरो लहरं ॥ २३ ॥

मुक्ति युक्ति और उदारपने से प्रीति के देने वाले तथा रसमय जिनका रूप है ऐसे श्रीराधाकृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह तीसरी लहर समाप्त हुई ॥ २३ ॥

लहर ४ थी

अथ ग्रंथाद्य सरस्वती वर्णन—सवैया

श्रीहरि की पत्नी सविता-मुत्त, ता रिपु को जिन वाहन कीनैं ।

शंकर की पत्नी तिन वाहन, ता अपको पति भालमें दीनैं ॥

दूहिन की पत्नी तनुजा सब, केत गये कवि सो सुनि लीनैं ।

तूहि है आदि जुगादि उपावन, तू द्रग नेक सबैं जग भीनैं ॥१॥

श्री हरिः भगवान् विष्णुजी की पत्नी श्रीलक्ष्मीजी का पिता समुद्र और समुद्र का पुत्र मोती, जिसको चरने वाला हंस जिनका वाहन है ऐसे वे सरस्वतीजी जिनको श्रीशंकर की स्त्री पार्वती के वाहन सिंह के भोजन मृग, उसका पति चन्द्र को मस्तक पर धारण किये हैं; जो कि प्रकाशक है, ऐसे श्रीसरस्वतीजी, जो कि ब्रह्माजी की स्त्री सावित्री के शरीर से उत्पन्न हुए, ऐसा कविजन कह गये हैं, वह हमने सुना है, परन्तु हे सरस्वति ! तुम सब की आदि हो, सारे जगत् को तुम्हीं उत्पन्न करती हो, और तुम्हारी ही असीम कृपा में यह समस्त संसार लीला-लहरमय सम्पत्ति सहित आनन्दयुत रह रहा है ॥ १ ॥

अथ ग्रंथबीज—सोरठा

यह विधि भयो सुग्रंथ, जानो जाननहार सब ।

विरह प्रेम दोउ पथ, बन बन ज्यों ज्वाला बढ़त ॥ २ ॥

जैसे वन में बांसों के परस्पर मिलन (रगड़) से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही वियोग और प्रेम के अन्दर ही अन्दर मन्थन होने से इस उत्तम ग्रन्थ की रचना हुई है, ऐसा सब जानने वाले जानें ॥ २ ॥

सोरठा—बढ्यो प्रेम बिस्तार, कहूं ताको निर्माण करि ।

उच्छव शिव उच्चार, प्रथम कथा कैलास की ॥ ३ ॥

जिस प्रकार प्रेम का विस्तार हुआ, उसका निर्माण कर शिव-रात्रि उत्सव की जो बातें शिव और पार्वती में हुई, वहीं से प्रारंभ कर पहिले कैलाश की कथा कहता हूं ॥ ३ ॥

अथ प्रथम कथा, कैलाशवर्णन—छन्द प्रमानिका

अखंड धाम ईश्वरं, रजंत रज्जतं गिरं; महेश्वरं विराजितं सुराजनीतं साजितं । धरंत जोग ध्यानियं, उभे दशा समानियं, प्रियामु पारवत्तियं, जटेश जोगगत्तियं । रमंत रीभरत्तियं, जुगादि आदि जत्तियं, हरम्य रम्य सोहितं, द्रुहीन से विमोहितं । दरी अनेक श्रंगियं रजंत रंग रंगियं, भरं भरंत निर्भरं, सलील स्रोतमुम्भरं । नदी अल्लक नदियं, बहंत घोषसदियं पशू गजेंद्र आदियं, वदे भ्रगेंद्र नादियं । अटार भार भुल्लियं, अनंत बाग फुल्लियं, प्रसून भार भुम्मितं । मधूसु तंतु चुंवितं । सुरंज कुंज छुट्टियं, पिकं मयूर रट्टियं, ब्रह्म सुबेलि बुट्टियं, विकास वास छुट्टियं । सुवास सीत-धीरियं, सदा बहे समीरियं, मराल सारसं सरं, कलीतकंठ उच्चरं । मुनींद्र जोग सद्वियं, विलोक मोद बद्धियं, गिरं गिरं सुरं प्रभा, सुजच्छ किन्नरं सभा । गिरा उच्चार गायका, अनेक नृत्य नायका, अगा अगापगा मंगं, कृतं कुलाहलं खगं, लखंत ईश्वरं पुरं, गृहं गृहं पुरंदरं ॥ ४ ॥

जिसमें हर समय ईश्वर का निवास है, ऐसे सोने में सुहागा के समान कैलाश पर्वत शोभायमान है । जहां श्री महादेव विराज रहे हैं, जहां समस्त राजनीति चलती है, जो योग की समाधि से ध्यान धरते हैं, जिनको मान अपमान सब समान है, जिनकी प्रिया पार्वती है, जो जटा को धारण करनेवाले योगविद्या के ईश्वर, प्रसन्न होकर प्रेम सहित पार्वती के

साथ विहार करने वाले जगत् के आदिकारण, यति रूप, ऐसे श्रीशङ्करजी जहां विराजमान हैं ऐसे श्रीकैलाश पर्वत पर मनोहर अटारियें शोभायमान हैं, जिसके दर्शनमात्र से ब्रह्माजी सरीखे मोहित हो जाते हैं, जिसमें अनेक गुफायें और रंग रंग के शिखर दीखते हैं, जिन में से पानी के झरने झर कर नदी के प्रवाह के रूप में बहते हैं, जहां अनेक कुण्ड भरे हैं, जिनसे नन्दा और अलखनन्दा नाम की दो नदियां बड़े वेग से बहती हैं, जहां हाथी आदि अनेक जानवर निर्भयतापूर्वक रहते हैं, जहां सिंह गर्जना करते हैं, जहां अढ़ार भार वनस्पतियाँ झूम रही हैं, जहां अनेक बाग बगीचे खिल रहे हैं तथा फलों के भार से टहनियां झुकी जा रही हैं, भंवरे पुष्पों का रस पीने को चुम्बन कर रहे हैं, कुंजों में से सुगन्धयुत पवन चारों ओर बह रही है, जहां कोयल तथा मोर मधुर स्वर से कुहकहा रहे हैं, जहां वृक्षवेल तथा अनेक प्रकार के पौधा प्रफुल्लित होने से उसकी सुगन्धि की महक चारों ओर फैल रही है, जहां शीत, मन्द और सुगन्ध ऐसे तीनों प्रकार का पवन प्रत्येक समय चलता रहता है, जहां हंस तथा सारस आदि पक्षीगण सुन्दर कण्ठ और मधुर वाणी से आलाप करते हैं, जहां बड़े-बड़े मुनिजन योग साधते हैं जिनके कि दर्शनमात्र से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, ऐसे श्री कैलास पर्वत की प्रत्येक चोटी पर कांतिवान् देव, यक्ष तथा किन्नरों की सभायें हैं । वहां गायकजन उच्च स्वर से गान करते हैं और जहां अनेक अप्सरायें नृत्य कर रही हैं तथा पर्वत से निकली हुई नदियों के तटों पर पक्षीगण कोलाहल कर रहे हैं ऐसे श्री महादेवजी के नगर कैलाश की छवि देखते हुए घर घर इन्द्र के समान शिवजी के गण शोभायमान हैं ॥ ४ ॥

छप्पय—महाराज माहेश, बाग कैलास विराजै,
 उमया आप समीप, गान गंधर्व कुल साजै ।
 चारन किन्नर जच्छ, भूत प्रेतादि भयंकर,
 केविराज बिच सभा, केऊ कर जोरित किंकर ।

करि विजय अरज कीन्हीं तहां, महमाया माहेश प्रत,
महाराज महारात्री निकट, यह उच्छ्रव कीजै महत ॥ ५ ॥

एक समय कैलाश पर्वत पर श्रीशंकरजी बाग में सभा करके बैठे हुए थे, साथ ही उमाजी भी थीं । उनके सामने गंधर्वजन आकर गान कर रहे थे तथा चारण, किन्नर, यक्ष, भूत, प्रेतादि भयंकर आकृति वाले कई एक गण सभा के बीच में बैठे हुए थे कर्मचारी गण हाथ जोड़ सामने खड़े थे । ऐसे रमणीक समय में भी पार्वतीजी बड़ी विनयता के साथ प्रार्थना की कि हे महाराज ! महारात्रि शिवरात्रि का सुदिन निकट आ रहा है, अतएव उस समय महोत्सव करने की तैयारियां प्रारंभ कीजिये ॥ ५ ॥

अथ उमावाक्य—दोहा ।

महाराज इक मास प्रति, आवर्हिगी महा रैन ।

बड़ो महोच्छ्रव कीजिये, सबैं बड़े सुख चैन ॥ ६ ॥

हे प्रभो ! एक मास बीतने पर दूसरे मास के लगते ही महारात्री आयेंगी अतएव उस समय एक बड़ा महोत्सव कीजिये, जिससे प्रत्येक के हृदय को सुख चैन प्राप्त हो ॥ ६ ॥

हरि वेधा सुर असुर नग, किन्नर जच्छ मुनिंद ।

सिंधु नाग दंपति सबैं, मिलें तो महत अनंद ॥ ७ ॥

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, देव, असुर, पर्वत, किन्नर, मुनि, समुद्र तथा नाग, यह सब अपनी स्त्रियों सहित यहां आकर मिलें तो बहुत आनन्द प्राप्त हो ॥ ७ ॥

कविवाक्य—दोहा ।

तब हरजू मन हरष भये, उमा अरज मुनि लीन ।

सर्वगती नामा सुगन, उन प्रति आयस दीन ॥ ८ ॥

उमाजी की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीशंकरजी अपने मनमें बहुत हर्षित हुए और सर्वगति नामक उत्तम गण को समस्त देवताओं को निमंत्रण देने की आज्ञा प्रदान की ॥ ८ ॥

अथ छन्दमौक्तिकदाम

सदाशिव आयसके परमान, उमा मुखकी उर धारि सुबान ।
 किये सर्वगति विदाय सुदूत, गयो चलि एक पुरी पुरदूत ॥
 गयो चलि एक महा सिध नग्र, सबै कहि बात श्रियंपति अग्र ।
 गयो इक ब्रह्मपुरी गन तास, कही प्रति टुहिन बात प्रकाश ॥
 गयो इक नग्र जहां दुर नाद, कह्यो उन श्रीमुख को सम्वाद ।
 गयो इक जंम धरंम सुधाम, लह्यो जन ईश बुलावन नाम ॥
 गयो इक सिंधु अपंपति थान, कह्यो उनसे हरको फरमान ।
 गयो इक नागपुरी निरधार, कह्यो सब आदिमु अन्त विचार ॥
 गयो इक राज जहां नगराज, कह्यो उन शंभु महोच्छव साज ।
 गयो इक जच्छसु किन्नर बास, कह्यो महाराज बुलावन पास ॥
 सबै वह आयस को उर धार, मिले महाराजकु के दरबार ।
 मर्यादिक सेव सबैहि संभार, करें गन षोडश ही उपचार ॥
 करी बनिता बनिता प्रति सेव, महोच्छव रीत रची महादेव ॥ ६ ॥

श्री शंकर भगवान् की आज्ञानुसार तथा श्री पार्वतीजी के मुखारविन्द से निकले हुए अमूल्य शब्दों को अपने हृदय में धार, सर्वगति नामक गण ने देवताओं को बुलाने के निमित्त अनेक दूसरे दूतों को भिन्न भिन्न स्थान पर भेजा । जिनमें से एक दूत इन्द्रपुरी पहुंचा, एक श्री वैकुण्ठधाम पहुंचा, जहां पर उसने श्री लक्ष्मीपति के साथ शिवरात्रि महोत्सव के सम्बन्ध में सारी बातें कह सुनाई । एक दूत श्री ब्रह्मपुरी पहुंचा और वहां पर भी ब्रह्माजी से प्रत्येक बात कही, एक दूत राजसों के राजनगर में गया और वहां उसने श्री शिव-पार्वती के संवाद के साथ ही साथ श्रीमुख से निकली हुई पूर्ण आज्ञा सुनाई, एक दूत श्रीधर्मराज की यमपुरी में गया और श्रीशंकरजी ने आपको श्री शिवरात्रि महोत्सव पर बुलाया है, ऐसी प्रार्थना की, एक दूत समुद्र में, जहां श्रीवर्णजी की नगरी है, गया और श्री शिवजी की आज्ञा कह सुनाई, एक दूत पाताल नागलोक में

गया और वहां उसने आदि से अन्त तक महोत्सव सम्बन्धी सारे विचार प्रगट किये । एक दूत पर्वतों के राजा श्री हिमालय-पर्वत के नगर में गया और उस में श्री शंकर के महोत्सव की कथा कह सुनाई । एक दूत श्रीकिन्नर तथा यक्ष की राजधानी में गया और वहां उसने श्रीशंकरजी ने आप को बुलवाया है ऐसी प्रार्थना की । इस प्रकार सारे देवगणों ने श्री शंकरजी का निमन्त्रण प्राप्त कर, उनकी आज्ञा हृदय में धार, श्रीशंकर के दरबार, कैलाश पर्वत पर आ इकट्ठे हुए । इन सब की मर्यादानुसार संभाल के साथ १६ प्रकार के उपचार के साथ श्रीशिवगणों ने इनको पूज्य कर सेवा करने लगे । और गणों की स्त्रियां आई हुई देवताओं की स्त्रियों की पूजा कर सेवा करने लगीं । इस प्रकार महोत्सव की योजना कर श्रीशंकर महोत्सव प्रारम्भ हुआ ॥ ६ ॥

दोहा—आये पुर कैलास सब, दंपति देव अनेक ।

सेव करत शिवजन सकल, एक एक प्रति एक ॥ १० ॥

श्रीकैलाशपुरी में आये हुए समस्त महमानों की सेवार्थ प्रत्येक देवता के साथ एक २ गण और देव-पत्नियों के साथ शिव-गण पति, उपस्थित हो आज्ञा पालन तथा पूजन करने लगीं ॥ १० ॥

ज्ञानकथा चरचा चले, राग रंग सुविलास ।

आयो तब उच्छ्व दिवस, सब मन मोद प्रकास ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीकैलाश पर्वत पर एकत्रित हुए सारे सुरसमुदाय द्वारा अनेक स्थान पर ज्ञानसम्बन्धी चर्चा हो रही है, कहीं राग-रंग याने गाना बजाना, संगीत नृत्य आदि विनोद हो रहा है । इस प्रकार आनन्दमय समय व्यतीत होने लगा । इसही के बीच श्रीमहाशिवरात्रि का सुदिवस आया, जिससे कि सारे समाज के हृदय में आनन्द का श्रोत बहने लगा ॥ ११ ॥

सांभ समय शिवजी सभा, रची तालके रोध ।

तहां मुर मिलि बैठे सबै, रजत छांह निग्रोध ॥ १२ ॥

महारात्री को सायंकाल के समय तालाब के तट पर तरुवर की छाया में श्रीशंकरजी ने सभा इकट्ठी की । जहां आये हुए देव, किन्नर, यक्षादि सर्व लोक नमन कर मर्यादापूर्वक अपने स्थान पर विराजे ॥ १२ ॥

छप्पय-एक ओर गिरि शृंग, एक दिसि गंग गहर गति ।

एक ओर वन बाग, एक रस ताल उच्छरति ॥

बट समीप प्रासाद, उठत नल अंबु चतुर दिस ।

सीत मंद अरु सुरभि, स्वसन गति करत इच्छ बस ॥

सब भिन्न भिन्न सिंगार धरि, तित शंकर कीन्हीं सभा ।

वरनाव करत कैसे बने, परम देव अकलित प्रभा ॥ १३ ॥

एक ओर कैलाश पर्वत के शिखर हैं, एक ओर गंगाजी का प्रवाह गंभीरता से बह रहा है, एक ओर वन और उपवन बगीचा आदि शोभा-यमान हैं और एक ओर तालाब का सुन्दर कंचनमय जल पवन से उछाले मार रहा है । वहीं बट के निकट सुन्दर देवमन्दिर के आंगन में फुआरे का जल चारों ओर उड़ रहा है और शीत-मन्द तथा सुगन्धमय, इस प्रकार तीन भांति के पवन की लहरें इच्छानुसार चल रही हैं । उस स्थान पर श्रीशंकरजी ने मनोहर सभा की स्थापना की । जिसमें हीरा, माणक तथा जवाहिरात से सुसज्जित समस्त देवगण आ-आकर बैठे हैं । जिसका वर्णन अवर्णनीय है । इनका वर्णन नहीं हो सकता । क्योंकि वे शंकर महा-देव हैं, उनकी सभा की अद्भुत शोभा है ॥ १३ ॥

ईश विष्णु विधि इन्द्र, चन्द्र दिनमयंद धर्म यम ।

अगपति अहिपति अनंत, आपपति आप अनुक्रम ॥

निकषामुत सुधनंद, केऊ ऋषिराज बिराजें ।

धरें छत्र छहगोर, ठोर ठोरन प्रति छाजें ॥

समीप खड़े शिवगन सकल, हुकम प्रति हाजिर रहैं ।

गंधर्व सुगान नृति नायका, कौन तास उपमा कहैं ॥ १४ ॥

(१) ईडर तथा हस्तालिखित प्रतियों में गति पाठ है ।

ईश, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, दिनकर (सूर्य), धर्मवान यमराज, पर्वताधिपति हिमालय, नागेन्द्र तक्षक और शेष, जलपति वरुणदेव के साथ समुद्र, निकषा के सारे राक्षस पुत्र, धनपति कुबेर और अनेक महा-मुनि जन अपने २ स्थान पर आकर बैठे हैं । जिनके सर पर शोभायमान छत्र, उड़ते हुये चंद्र स्थान २ पर छा रहे हैं । आज्ञाकारी सन्मुख खड़े हुए शिवदूत, मर्यादापूर्वक प्रत्येक मेवार्थ उपस्थित हैं । गन्धर्वगण गायन गा रहे हैं । नायिकायें नृत्य कर रही हैं । इस प्रकार श्रीकैलाश पर्वत पर दिव्य-समाज विराज रहा है जिसकी कि महिमा कौन वर्णन कर सकता है ॥ १४ ॥

दोहा—उत आभा सुर गान गति, भुक्त बाग वन कुंज ।

यह कछु यक बरनन करौं, ख विहंग मधु गुंज ॥ १५ ॥

इस प्रकार एक ही स्थान पर एकत्रित हुई दिव्य-समाज की शोभा किस प्रकार बनी है, जहां कि देवतागण गन्धर्वों की गायन की गति में लीन हो रहे हैं और बाग, बगीचा तथा वन और कुंजों में लतायें, बेलें नवपल्लव होकर झूम रही हैं । जिनमें अनेक प्रकार के पक्षिगण मधुर स्वर अलाप रहे हैं और भंवरं गुंजार रहे हैं जिसका कि यहां कुछ ही वर्णन किया है ॥ १५ ॥

अथ सभामंडप वर्णन, छंद भुजंगप्रयात ।

वसंता गमं कुंजके पुंज फुल्ले, भुके मंजुलं मंजरी अंग भुल्ले ।
मधु माधवी चंपकं अंब मोरें, कली केतकी कुंद फुंदा भुकोरें ॥
हरी उमरी बेलि खिले हजारी, तुरा जाहि जासुद तैसी तजारी ।
तरं केसरं ब्रच्छ तालं तमालं, लता नागबेली चमेली सुलालं ॥
जुही निंब अन्नार नारिंगं जंभं, थली वक्कुली निर्मली रंभ थंभं ।
बदे चातुकी कोकिला मोर बानी, प्रसारे फुहारे भरे पात पानी ॥
लता बाग नीठं सरं लहर लागैं, भरे नीर पूरं समीरं त्रिभागैं ।
बकं बत्तकं सारसं कोकतुंदं, मधु मंडियं कंज केऊ कुमदं ॥

झिली दहरं मद नईं भनके, तरं मंजरं नीरके तीर तके ।
 नए रंगसे चित्र थंभा नवीनौ, तहां राजितं देव दीवान कीनौ ॥
 समाजं कला गान संगीत साधैं, उभै मेक ग्रामं सुरं लोक आधैं ।
 प्रदंगान के द्वादशं किन मोरें, तंत्री आदि दे तार वज्जे टकोरें ॥
 चतुर पंच दोही जुकती उचारें, सतं मुच्छना तीन विद्या त्रिचारें ।
 षटं पंच रागं त्रिया राग पट्टं, दुअं चत्र अट्टं धुवा लाग दट्टं ॥
 अदोसं दसं तार आलाप अट्टं, सधैं गानके तान चौबीस सट्टं ।
 अरोही सुरोही सुचाही असत्तं, सुगानं दशं अष्टतालं समस्तं ॥
 खरे अत्य खासे सभा खास खेलं, करे प्रेमबत्तं कथा काम केलं ॥ १६ ॥

वसन्त ऋतु के आने से कुंज का समूह प्रफुल्लित हो रहा है, और वहां पर झुकी हुई सुन्दर टहनियों पर सुगन्ध लेने के लिये आकर बैठे हुये भंवरे मस्त हो भूम रहे हैं । जहां मधुमाधवी (मांगरे की बेल), लता, चम्पा और आम्रामोर खिल रहे हैं । जहां केवड़ा तथा डोलर के फूलों के गुच्छे पवन के सपाटे से भूम-भूम भूल रहे हैं । जहां चन्दन, उमर बेला तथा गुल-हजारा खिल रहे हैं । जहां गलतुश, जुई, जामूद, तजारा, केशर, ताड़, तमाल, लता, नागरबेल, चमेली, गुल्लाला, जुई, निंबू, दाड़िम, नारंगी, अनार, स्थलकमल, फूल, तथा केले के वृक्षों के स्थल तथा फूल, फलों सहित पूर्ण रूप से प्रकाशमान हो शोभा पा रहे हैं । जिनकी शोभा बढ़ाने के निमित्त पपैया, कोयल, मोरादि पक्षी अपनी मधुर बोली में बोल अत्यन्त आनन्द उपजा रहे हैं । जहां फुवारे का पानी उड़कर आम पास के पौधों को मीच रहा है, जिससे वृक्षों के पत्तों में पानी भी भर रहा है, जो कि अतीव शोभायमान है । जहां लतामण्डप तथा बगीचे के पास ही सरोवर का पानी मौज में आ उछालें खा रहा है, जहां नगरके लोग पानी भरते हैं । इसके अतिरिक्त शीत मन्द और सुगन्धमय तीन प्रकार की पवन चल रही है ।

(१) पोस्त की ढोडी को तजारा कहते हैं, इसी ढोडी को तीन नोक के शस्त्र से चीरा दे दूध टपका कर उससे अमीम बनाते हैं ।

जहां बगुले, बतख, सारस तथा चकवा आदि पक्षियों के समूह शोभायमान हैं। जहां भंवरे कमल पर मधुरस पीते हुए मंडरा रहे हैं। जहां कई एक मुकुर पुष्पों पर बैठे हैं। जहां मींगुर तथा मंडक मदमस्त हो गलगलार नाद कर रहे हैं। जहां वृक्षों की टहनियां कबे फलों के भार से जल में डूबी जा रही हैं। जहां सभामण्डप के अन्दर विविध प्रकार के रंगमय चित्रों से स्थम्भ शोभायमान हैं। जहां रमणीक देवसमाज एक ही स्थान पर एकत्रित होकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा है। उस देवसभा में संगीत-शास्त्र के नियमानुसार गायन की धूम मच रही है। वह इस प्रकार कि तीन भ्राम, लांक चौदह जिनके आधे मात, इन मात स्वरों से गायन हो रहे हैं। और बारह प्रकार के ताल से मृदंग बज रहा है, बीणा, सितार, सुन्दरियों के ताल तथा टंकोरे, मधुर लग रहे हैं। चार और पांच, नव और दो, ऐसे ग्यारह युक्तियों के साथ सात, तेरह, एकवीस मूर्च्छना का उच्चारण कर रहे हैं। जहां तीस रागणी, छः राग तथा चौंसठ कला सहित तथा दश प्रकार के दोष रहित, आठ प्रकार के अलाप के साथ चौरामी प्रकार के ताल में, स्वरों के चढ़ाव उतार के अठारह प्रकार के तालों सहित सुन्दर गायन हो रहा है। उस रमणीक स्थान पर अनेक सभ्य शिवगण आवश्यक कार्य के लिये मर्यादापूर्वक खड़े हैं। जहां सभी देवगण प्रेमकी बातों के साथ क्रीड़ा चर्चा चला विनोद कर रहे हैं ॥ १६ ॥

दोहा—और बाग शिवकी सभा, उमा औरही बाग ।

एक एक हूँते सरस, नृत्य भेद रस राग ॥ १७ ॥

एक बाग में श्रीशंकर तथा समस्त देवताओं की सभा तथा दूसरे बाग में महामाया श्रीपार्वतीजी तथा समस्त देवांगनाओं की सभा विराज रही है। जहां एक २ से सरस, संगीत शास्त्रानुसार अनेक प्रकार के नाच, तमाशे तथा संगीत हो रहे हैं ॥ १७ ॥

सोरठा—आप आप रस रीत, बाग बाग प्रति देव चय ।

नृत्य भेद संगीत, ठौर ठौर प्रति देखियत ॥ १८ ॥

अपने-अपने स्वभावानुकूल, पृथक्-पृथक् बागों में देवतागण एकत्रित हो अनेक प्रकार के नाच, रंग तथा संगीत के अनुसार गायन करने हुए स्थान-स्थान पर देखने में आते हैं ॥ १८ ॥

अथ छन्द मौक्तिक दाम

जहां तहां धात धरा भूत शृंग, जहां तहां बोलत बृच्छ विहंग ।
जहां तहां भूत पिशाचन भुंड, जहां तहां होम हुताशन कुंड ॥
जहां तहां छन्द उचार ब्रतीत, जहां तहां अप्सर गीत संगीत ।
जहां तहां जूथ मिले त्रिदिवेश, जहां तहां मन्त्र उचार महेश ॥
जहां तहां आपहि आप समान, जहां तहां सोहें सभा शुभ धान ।
जहां तहां डोलत देव विमान, जहां तहां गंधर्व साधत गान ॥
जहां तहां बाजत बीन भ्रदंग, जहां तहां किन्नर चंग उपंग ।
जहां तहां वांसुरि सिंगि पिनाक, जहां तहां डोरु बजैं डफ डाक ॥
जहां तहां कंबु सुभल्लर नद, जहां तहां नोवत पंचश शब्द ।
जहां तहां पूजन पंच प्रकार, जहां तहां षोडश ही उपचार ॥
जहां तहां वृंद वधू विबुधेश, जहां तहां किन्नर जच्छ सुवेश ।
जहां तहां आसुरि नागनि नग्य, सुपूजित त्रंबक अंबिक जग्य ॥ १९ ॥

कैलाश पर्वत पर स्थान-स्थान पर सोना, रूपादिक धातुओं की चोटियां शोभायमान हैं । स्थान स्थान पर वृक्षों की टहनियों पर पक्षीगण बोल रहे हैं और चारों ओर भूत तथा पिशाचों के समूह दृष्टि-गोचर हो रहे हैं । जहां स्थान स्थान पर हवन तथा यज्ञ करने के कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित हो रही है । स्थान-स्थान पर व्रतधारी ब्राह्मणगण वेदों का उच्चारण कर रहे हैं । स्थान-स्थान पर अफसरायें संगीत शास्त्र के अनुसार गीत गा रही हैं । स्थान-स्थान पर देवताओं के समूह एकत्रित हो श्रीशंकर के महामंत्र का उच्चारण कर रहे हैं इसी तरह स्थान-स्थान पर देव के साथ देव, नाग के साथ नाग हिल मिल के बैठे हैं । इस प्रकार स्थान-स्थान पर सभायें तथा सुन्दर स्थल शोभायमान हो रहे हैं । स्थान-स्थान पर

देव-विमान डोल रहे हैं। स्थान-स्थान पर गन्धर्व गण, संगीतशास्त्र तथा गायन की साधना कर रहे हैं। स्थान-स्थान पर वीणा तथा मृदंग बज रहे हैं। स्थान-स्थान पर किन्नर गण चंग और उपंग नाम के वाद्य कर रहे हैं। इसी तरह स्थान-स्थान पर बांसुरी, शृंगी तथा पिनाक नामक बाजों का घोर नाद छा रहा है। स्थान-स्थान पर डाक, डमरू तथा ढफ बज रहे हैं। स्थान स्थान शंख तथा झालर बज रहे हैं और स्थान-स्थान पर नगारे और पांच प्रकार के बाजों के शब्द गड़गड़ हो रहे हैं। स्थान-स्थान पर पांच प्रकार की पूजा हो रही है। स्थान-स्थान पर सालह उपचार हो रहे हैं। स्थान स्थान पर देवताओं तथा देवांगनाओं के समूह और किन्नर तथा सुन्दर वेश वाले यक्ष शोभायमान हैं। स्थान-स्थान पर अमुरों की स्त्रियां, नागाणियां आदि मिल कर शिव-पार्वती की उत्सव में पूजा करती हैं ॥ १६ ॥

दोहा—डोर नटो क्रमचार गति, सारु कीर मन रंज ।

गान तान कुवलयहुपै, करत किलालप गुंज ॥ २० ॥

खेल करती हुई नटनी की नजर जिस तरह डोर पर रहती है उसी प्रकार चार और दृष्टियाँ गति करती हैं। मैना तथा तोते का ध्यान सब को प्रसन्न करने में है, गायक का ध्यान तान तथा सप्त स्वरों के अलापने में है और भंवरे का ध्यान कमल पर गुंजार करने में है।

दूसरा अर्थ—जिस तरह अधर रक्खी हुई डोर पर नटनी नाच अन्य स्त्रियों को आश्चर्य में डाल देती है, ऐसे ही अनेक खेल हो रहे हैं। क्रम-बद्ध पहलवान लोग अनेक दांव पेच सहित कसरत और कुश्ती कर रहे हैं। तोता मैना आदि पक्षी अपने कोमल कक्षाय से इस सुअवसर की शोभा को बढ़ा रहे हैं। गायक गण अपने सुमधुर गायनों तथा साथ के समस्त

१ क्रमबद्ध मल्ल उनका प्रमाणः—

दोहा—भैसा मंडा भूपती, कुरड़ अरु क्रमचार ।

लड़ने से पीछे हटें, पांचों ये नादार ॥

२ गुजराती टीकाकार ने इस प्रकार किया है ।

साजों की ध्वनि के साथ सर्व-समाज को आनन्द ही आनन्द प्राप्त करा रहे हैं । और भंवरे कमल पर चारों तरफ गुंगू कर सारे बन को गुंजार रहे हैं ॥ २० ॥

धूम धाम दिशि दिशि लगी, मह निशि जाग्रन होत ।

चहुं दिशि लगी चिराक मनु, अर्क कोटि उद्योग ॥ २१ ॥

शिवरात्री का जागरण होने के कारण चारों दिशाओं में धूम-धाम मच रही है । चारों तरफ दीपक ही दीपक जल रहे हैं जिसमें कि प्रतीत होता है कि मानो करोड़ों मूर्त्य एक ही साथ उग आये हों ॥ २१ ॥

तब हि हर्षि गन गनवधू, हर हजूरमह लीन ।

आज निशा हाजर रहन, निज मुख आयस दीन ॥ २२ ॥

उस समय श्री शंकरजी बड़े प्रेम के साथ समस्त गणों तथा उनकी पत्नियों को बुला कर कहा कि आज की रात्रि सब लोग यहीं पर उपस्थित रहना, ऐसी स्वयं आज्ञा की ॥ २२ ॥

अथ शापपतन प्रसंग—दोहा

एक भृत्य हर महत हित, नाम विचित्रानन्द ।

उत आवन चूक्यो मुरत, उमें भई मति मन्द ॥ २३ ॥

सदैव भगवान् शंकर का हितचिन्तक तथा उनकी असीम दया से उक्त पद पाया हुआ ऐसा एक विचित्रानन्द नामक गण और उसकी स्त्री किसी कार्यवश तथा मन्दबुद्धि होने के कारण भगवान् शंकर की उस आज्ञा को भूलने से मभामें उपस्थित नहीं हुआ ॥ २३ ॥

चित्रकला त्रिय हेत रति, मगन भयो मदपान ।

बस विलास चूक्यो मुरत, हर हजूरकी जान ॥ २४ ॥

अपनी अत्यन्त प्यारी चित्रकला नामकी स्त्री के प्यार में बंध, मद्य-पान कर, रतिविलास में आनन्दित हो गया । यही कारण था कि वह भगवान् शंकरजी की सेवा में उपस्थित होने में असमर्थ रहा ॥ २४ ॥

छप्पय—उहीं बरत महि उग्र, याद उनहीकौं कीनी ।

करि किंकर दिशि दृष्टि, नांउ विचित्रानन्द लीनौ ॥

उनहीसे रिपुभाव, उतें विकटानन्द ठाढे ।

सुनत ईश उच्चार, मोद मनमें अति बाढ़े ॥

अनुमान समय कीन्हीं अरज, महाराज वह है नहीं ।

तिय चित्रकला रसिक, मगन महारस पांनहीं ॥ २५ ॥

किर उसी समय उमके मन्द भाग्य के लिये श्रीशंकरजी ने उसे ही याद किया, और जिम ओर सेवकजन बैठे थे उमी तरफ विचित्रानन्द कह आवाज दी । वहां विकटानन्द नामक गण पास ही बैठा हुआ था, उमका विचित्रानन्द के साथ वैर भाव होने के कारण शंकरजी का वचन सुन मनमें बहुत प्रसन्न हुआ तथा मुअवसर जान प्रार्थना की कि हे महाराज ! विचित्रानन्द तो इस समय उपस्थित नहीं है । वरन् वह अपनी स्त्री-चित्रकला के प्रेम में रम पान कर क्रीड़ा में मगन है ॥ २५ ॥

दोहा—विकटानन्द की वानि सुनि, कछुक छोह मन धार ।

सुनत सभा सामीप जन, क्यों ईश उच्चार ॥ २६ ॥

विकटानन्द के ऐसे शब्द सुनते ही भगवान शंकर क्रोधित हो, इतने जोर से इस प्रकार बोले कि सारी सभा सुनले ॥ २६ ॥

उनको आजहि की निशा, सुख संयोग सनेह ।

प्रातहुतें बहु काल लागि, पहुँ ब्रह्म दुख वेह ॥ २७ ॥

इन दोनों की आज की ही रात्रि सुख, संयोग तथा स्नेह से कटेगी परन्तु प्रातःकाल ही बहुत समय के लिये वे अपने को विरह वेदना में पायेंगे ॥ २७ ॥ चौपाई ।

सुनत एक शिवकी मुख बानी, सभा सकल करुना मन आनी ।

महादेव मनमें मुरझाये, कहा प्रसंग विकटानन्द लाये ॥

१ असल प्रति में—में नही-मानही-ऐसा पाठ है । पहपसिंह,

२—देह-ऐसा पाठ है । पहपसिंह,

विकटानन्द मोद मन बाढ्यो, सहज आपको कारज साध्यो ।
 एक एक प्रति उचरत वानी, जित तित उकति शापकी जानी ॥
 उमा दासि पुष्पावति प्यारी, चित्रकला से अति हितकारी ।
 वह सुनि बात महा दुख पाई, चित्रकला के निकट सिधायी ॥
 जाय भरोखन के तट टेरी, एहो भटु अरज सुन मेरी ।
 चित्रकला वानी सुनि बोली, अंदर लई देहरी खोली ॥ २८ ॥

एका-एक श्रीशंकरजी के मुख से भयंकर शाप की बाणी सुन सारी सभा के हृदय में दया उमड़ उठी और बड़े-बड़े देवतागण अपने हृदय में विचार करने लगे कि इस समय विकटानन्द ने कैसा बुरा प्रसंग छेड़ा है । किन्तु विकटानन्द तो इस समय अत्यन्त प्रमत्त हुआ क्योंकि उसका सोचा हुआ कार्य सहज ही में सफल होगया । इस सम्बन्ध में एक दूसरे से चर्चा होने लगी और इस प्रकार इस शाप की सूचना सब जगह पहुंच गई । उस समय महामाया पार्वतीजी की अत्यन्त प्यारी पुष्पावती नामक दासी थी जो कि चित्रकला की एक सहकारी होने के नाते, यह बुरा समाचार सुन अति दुःखित हुई और चित्रकला के घर की ओर चली और उसके भरोखे के पास पहुंच उसने आवाज़ दी कि हे सखी ! उठ, मेरी प्रार्थना सुन और शीघ्र द्वार खोल । अपनी प्यारी सखी के शब्द सुन चित्रकला एक दम उठी और द्वार खोल अपनी प्यारी सखी को अन्दर ली ॥ २८ ॥

सोरठा-चित्रकला पति दोय, विवश बारुनी रस बनें ।

बूझन लागे सोय, कहां सु आये आप इत ॥ २९ ॥

चित्रकला तथा उसका पति विकटानन्द इस समय मद्य-पान के कारण पराधीन हो पुष्पावती से पूछने लगे कि तुम इस समय कहां से और क्यों आये हो ? ॥ २९ ॥ अथ छन्द-उद्धोर

पुष्पावती बोलन चाइ, एते बीच गल गहिराइ ।

नैनां बार लागी धार, कीनी नीठही उच्चार ।
दीन्हों ईश उच्छव याद, भाष्यो शापको संवाद ॥
लागी बानि चेरी कान, भूमी परैं ज्यौं बिनु प्रान ।
होय सचेत बूभयो फेर, बहु पछिताय तिनही वेर ॥ ३० ॥

पुष्पावती बोलना ही चाहती थी कि गद्गद् हो उसका कण्ठ बन्द होगया और उसके नेत्रों से श्रावण तथा भादों में पानी के समान चारों ओर आंसुओं की धारा बहने लगी । और बहुत ही धीमे स्वर से शिवजी के उत्सव की याद दिला, शाप दिये जाने की सारी गाथा कह सुनाई । पुष्पावती के वचन कानों तक पहुंचते ही स्त्री-पुरुष दोनों ही मूर्छित हो निष्प्राण की भाँति पृथ्वी पर गिर गये और बहुत देर के बाद चेतना आने पर फिर पूछा और उसी समय हृदय में बहुत पश्चात्ताप करने लगे ॥ ३० ॥

दोहा—सुं दंपति यौं उचरत, सुन पुष्पावति सोय ।

श्रीशङ्कर को शाप हुब, क्योंसु निवारन होय ॥ ३१ ॥

फिर वे चतुर दम्पति बोले कि हे पुष्पावती ! अब तू हमें यह बना कि श्रीशंकरजी के शाप का किस प्रकार निवारण होगा ॥ ३१ ॥

दोहा—तब पुष्पावति यौं कहत, और न कछु उपाय ।

मिटे शापको ताप सब, उमा अराधो जाय ॥ ३२ ॥

तब पुष्पावती कहने लगी कि इसका अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं केवल श्रीउमाजी के पास जा, उनकी आराधना कर, उन्हें प्रसन्न करो तो तुम्हारे शाप का सारा सन्ताप निवारण हो सकता है ॥ ३२ ॥

दोहा—गये तहां गन गन वधू, जहां कपर्दी नारि ।

पद-बन्दन करिके प्रथम, अस्तुति करी उचारि ॥ ३३ ॥

पीछे दोनों जहां श्री शंकरजी की अर्धाङ्गिनी श्री उमाजी सभा एकत्रित कर विराजमान थीं, वहां पहुंचे और सर्व प्रथम चरणारविन्द को नमन कर अत्यन्त नम्रता से स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

अथ उमास्तुति-सवैया

सोई बड़ो सबतें जगमें नर, उग्र अद्रिष्ट उही जग पाय ।
 वाक्यविशारद नारदमो शुक, बारदके पति देखि सराये ॥
 जो अलतानि चहैं मनमें तो, सोई छनमें अलतान कहाये ।
 हैं अतपैं जगमातु कृपाजुत, तेरि कटाच्छ हुमायुं की छांये ॥ ३४ ॥

हे सकल जगन् की माता उमाजी ! इस संसार में वही व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ है जिस पर आपकी कृपादृष्टि है । वाक्यरचना में निपुण नारद तथा शुकदेव जैसे तथा मेघ का पति इन्द्र आदि तक आपकी महिमा का गान करते हैं । तुम्हारा भक्त यदि बादशाह बनने का इच्छुक हो तो आप शीघ्र ही उसे बादशाह बना सकती हो । अतएव हे जगदम्बा ! हम अनाथ सेवकों पर तुम प्रमत्त हो, क्योंकि आपकी कृपा-दृष्टि हुमायुं पक्षी की भांति मंगलमय फल देने वाली है ॥ ३४ ॥

दोहा-मात सुदृष्टि प्रतापतें, मिटे जु अथ दुख ओघ ।

सुख संपति धृति संपजै, आपन वचन अमोघ ॥ ३५ ॥

हे माताजी ! आपकी कृपा के प्रताप से घोर पाप और महादुःख के पर्वत भी आये हों वे भी टल जाते हैं ? तथा सुख सम्पत्ति और धैर्य प्राप्त होते हैं, आपकी वाणी अटल है ॥ ३५ ॥

अमपैं श्री महाराज हर, कही शाप की बान ।

माता तुमपै होत हैं, मुश्किल ही आसान ॥ ३६ ॥

हमें शंकर भगवान ने जो शाप दिया है, वह हे माताजी ! निवारण होना आसान तो नहीं, परंतु आपकी कृपा के मामले कौनसी बड़ी बात है ॥ ३६ ॥

उमा-उक्ति सोरठा

तुमसे भई जु चूक, अचल चले नहीं हर वचन ।

करिहौं अरज अचूक, मैं तुम कारन जायके ॥ ३७ ॥

श्री पार्वतीजी कहने लगीं कि तुम में जो भारी भूल हुई है और उससे जो जो शाप मिला है वह भगवान् शंकर की वाणी अचल है, उसे अमेट करने की किसी की सामर्थ्य नहीं, फिर भी मैं तुम्हारे लिये श्रीचरण में जा प्रार्थना करूंगी ॥ ३७ ॥

कृपय-सुनि गन दंपति अरज, उमा करुना चित लाये ।
 सुख आसन आरोहि, जहां हर तहां सिधाये ॥
 करी अरज कर जोर, आपको एह न उचित ।
 भलो बुरो निज दास, कहो कितियक इनकी मत ॥
 यह चूक दंड लायक तऊ, सुनहु विनय अशरण शरण ।
 भव एक मनुज विरहा भुगति, फिर प्रापति है तुम चरन ॥३८॥

शिवगण विचित्रानन्द तथा उमकी स्त्री की नम्र प्रार्थना सुन दयामयी श्री पार्वती के हृदय में दया उमड़ आई और सुग्वासन में विराजमान हो जहां भगवान शंकर अपनी सभा सहित विराजमान थे वहां पहुंचीं और दोनों कर जोड़ प्रार्थना की कि हे महाराज ! छोट से दोष पर रुष्ट हो आपने इस दम्पति को जो शाप दिया है वह उचित नहीं, क्योंकि ये चाहें जैसे हों पर हैं आपके दास और फिर इनकी बुद्धि ही कितनी ? हां इन्होंने जो भूल की है उसके दण्ड के पात्र यह जरूर हैं इसलिए हे अशरण-शरण ! मेरी इस दोनतापूर्ण प्रार्थना को सुनिये कि एक जन्म तक मनुष्ययोनि में वियोग दुःख भोगकर फिर तुम्हारे चरणकमलों में आवें, ऐसी कृपा कीजिये ॥ ३८ ॥

दोहा—तुम फुरमायो काल बहु, सो अब करिये माफ ।

इसको सुच्छम कालमें, होय निवारण शाप ॥ ३९ ॥

हे महाराज ! आपने लम्बे समय तक वियोग दुःख भोगने को कहा है वह अब दया कर क्षमा करो और श्रीमुख से दिया हुआ शाप शीघ्र समाप्त हो, ऐसी योजना कीजिये ॥ ३९ ॥

अथ शिवोक्त-दोहा.

उमया करुणामय निरखि, हरष भयो तिहु नैन ।

आवेंगे तुम लाये ते, यौं हर जपै बैन ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्री उमाजी को दयायुक्त देख त्रिनेत्रधारी श्री शंकर भगवान् अति प्रसन्न हुए और बोले कि हे पार्वतीजी ! तुम्हारी इच्छानुसार वे शाप भोग यहां आवेंगे ॥ ४० ॥

चौपाई

श्री उमया निज थानक आये, सकल कथा गनको समुभाये ।

बीती निशा प्रात दरसाये, सकल सुरासुर धाम सिधाये ॥

गन गनप्रिय सुर देहसु छंडे, मनुज लोक अवतारसु मंडे ।

पुष्पावती प्रेम तस बैधी, मनुज-देह उन संग निमंधी ॥ ४१ ॥

श्री शंकर भगवान के ऐसे वचन सुन पार्वतीजी अपने स्थान पर आई और सारी गाथा गण को कह सुनाई । रात्रि समाप्त हुई और प्रभात होते ही देव दानव आदि सभी अपने २ गृह गये और शाप पाये हुए गण तथा गणपति देवलोक से शरीर त्याग मनुष्यलोक में जन्मे । साथ ही पुष्पावती ने अपनी प्रिय सखी के प्रेम में बंध, उन्हीं के साथ, भूलोक में जन्म लिया ॥ ४१ ॥

पुष्पावती प्रेम द्रढाव, यथासंख्यालंकार-सवैया

अंग पतंग कुरंग भुजंगम, कंज शिखा सुर पुंगिन लैहें ।

मोर पपीह चकोर अपंकज, घोर वृषा शशिसूर चहैहें ॥

हारन भीन मराल जुराफहि, काष्ठ जलं सर जोरि जुरैहें ।

देहकुं छेह दहैं इतने परि, नेहकुं छेह प्रवीन न दैहें ॥ ४२ ॥

भंवरा, पतंग, मृग तथा सर्प—कमल, दीपक की जोत तथा मुरली (पुंगी) के मोह ही में बंधता है । बंधन होने पर भी प्रेम के नाते उनका त्याग नहीं करते और प्रेम के कारण ही उन्हें जपते रहते हैं । मोर, पपैया, चकोर और कमल यह भी तो मेघनाद, स्वांति-वृष्टि, चन्द्र तथा मूर्य के दर्शनार्थ कितने आतुर रहते हैं ? हारल, मछली, हंस और जुराफ जिस तरह काष्ठ के टुकड़े, सरोवर और अपनी

१ हारल पक्षी का बच्चा बढ़ा होने पर अपने जन्मस्थान से एक लकड़ी का टुकड़ा अपने पैर में लेकर उड़ता है और उस टुकड़े को अपने सारे जीवन भर अपने साथ रखता है । यदि भाग्य-वश वह टुकड़ा कहीं अटक जाय तो उसके पीछे तड़प तड़प कर मर जाता है, मगर अपने जीवन पर्यंत उस टुकड़े का त्याग नहीं करता ।

२ जुराफ पक्षी का जोड़ा साथ जुड़ा ही हुआ होता है । नर और मादा के पंरों में प्राकृतिक गांठ पड़ी रहती है । यह अपना आधा दिवस तो अपने उदर पोषणार्थ चारा शोधने में लगाते हैं और शेष दिवस काष्ठ एकत्रित करने में । इस तरह १२ वर्ष तक काष्ठ एकत्रित करने के

जोड़ी के साथ अत्यन्त प्रेम से जुड़े रहते हैं और वियोग होने के समय एक साथ मरते हैं । अतएव देखो ! चतुर तथा रसिक जन अपनी देह का त्याग कर देते हैं, परन्तु स्नेह प्रेम का विछोह नहीं करते ॥ ४२ ॥

दोहा—पशु पक्षी सब प्रेम बस, तजत आपको प्रान,
धिक तिहि बिछुरे ना मरें, तजी देह यह जान ॥ ४३ ॥

पशु पक्षी आदि तो सभी प्रेमाधीन हैं और प्रेम के लिये ही अपने प्रेमी के साथ प्राण तज देते हैं, परन्तु धिक्कार है उन्हें जो अपना जीवन एक दूसरे से पृथक् होने पर भी बिता रहे हैं । वे मरते क्यों नहीं ॥ ४३ ॥

गाढ़ा—उच्छ्व हर कैलासं, दंपति मिलन मुरासुर बृंदं,
गन शंकर मुख शापं, चत्र प्रवीन सागरो लहरं ॥ ४४ ॥

भगवान् शंकर के कैलास का उत्सव, वहां सुर असुरों का उनकी स्त्रियों सहित मेला तथा विचित्रानन्द के लिये श्रीशंकर के मुख से निकला हुआ शाप इस प्रकार प्रवीणसागर की चौथी लहर समाप्त होती है ॥ ४४ ॥

पश्चात् इनके हृदय में काम-वासना उत्पन्न होती है और एकत्रित किये काष्ठ पर काम-विकार के जोर से गिर पृथक् हो जाते हैं । यह एक दूसरे से पृथक् हुए पक्षी बार बार एक-दूसरे के वियोग में मूरते हैं और मर जाने की प्रार्थना करते हैं । उस समय प्रभु की अपार माया द्वारा अपने अपने काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है और दोनों जल कर मर जाते हैं । बाद में वह राख का ढेर वहाँ पर जम जाता है और बारह वर्ष पश्चात् उसमें से जुराफ दूसरा छोटा जोड़ा (बच्चे) उत्पन्न हो जाता है । ईश्वर की अपार लीला कितनी अलौकिक है । यह एक दन्तकथा चली आती है और यह जोड़ा भी इसी प्रकार जुड़ा हुआ होता है ॥

जुराफ अफ्रीका का जंगली पशु है, इसकी टांगें और गर्दन ऊंट के समान लंबी, शिर हिरन जैसा, पूंछ और खुर गाय के समान । यह आँखों से बिना गर्दन घुमाये चौरफ देख सकता है । पारिवारिक रीति से यह मुन्ड बांध कर रहता है, और दुरमन के आने की सूचना देने को चरते समय चार जुराफ मुन्ड के हृद् गिर्द पहरा देते हैं । इस समय संसार के सब पशुओं में यही एक बड़ा पशु देखने में आता है । न तो इसका जोड़ा जुड़ा हुआ होता है न यह अग्नि से भस्म होकर पैदा होता है, संभव है कवियों ने मृगमुन्ड के समान इसमें अधिक प्रेम मान कर उल्लेख किया लेकिन पशु का पक्षी कैसे बना डाला । (मानसिंह)

इस कारण यह प्रतीत होता है कि कुकन पक्षी विशेष देखने में न आने से उसका विव-

लहर ५ मी ।

प्रेमाभिधान कथन—छप्पय.

स्नेह राग अनुराग, रक्त आरक्त आशकत,
प्रीति नगन मन मिलन, प्रणय लय साच कहत हित ।
चितबन्धन इक चित्त, निरन्तर ध्यान बिनांतर,
मुखद अरू संतोष, प्रगट दाय चाह परस्पर ।
मिलाप मेल मनमान पुनि, उभै एक अरुभन अद्विट,
बन्धान अनुसंधान इह, प्रेम नाम जानहुं प्रकट ॥ १ ॥

स्नेह, राग, अनुराग, रक्ति, आशक्ति, प्रीति, लगन, मनमिलन, प्रणयलय, सांच, हित, चित-बन्धन, एकचित्त, निरन्तर ध्यान, बिन अन्तर, मुखद, सन्तोष, परस्पर चाहना, मिलाप, मेल, मनमान, दोनों की एकता, अरजन, अद्वि, बन्धान, अनुसंधान, ये प्रेम के ही नाम हैं ॥ १ ॥

अथ अनुक्रम दोषनिवारण—दोहा.

अलंकार संगीत रस, हाव भाव छंद होय ।

याको अनुक्रम ना गह्यो, समय कहैहैं सोय ॥ २ ॥

रण जुराफे के साथ जोड़ कर उसे पत्नी मान लिया । कुकन के विषय में प्रसिद्ध है कि यह गाने में चतुर और सुरीला होता है, यह वर्षा-ऋतु में उत्पन्न होकर वसंत के अंत तक भर युवा अवस्था को प्राप्त होता है तब लकड़ियां इकट्ठी करके उन पर बैठ कर गाना गाता है, इसकी चोंच में अनेक छिद्र होते हैं जिससे भांति भांति के स्वर निकलते हैं, जब यह गाने में मग्न होता है उस समय इसकी चोंच के उन छिद्रों से उवाला प्रगट होकर लकड़ियां जल उठती हैं उसी में यह जल मरता है और फिर वर्षा-ऋतु आने पर खाल के ढेले में अन्धा पैदा होकर कुछ समय बाद उसमें से दूसरा कुकन पत्नी निकल आता है । हिं-स-को- (पहपसिंह)

१ इस छप्पय में प्रेम के यह अष्टाईस नाम दिये हैं, किन्तु इनमें से वास्तविक तो दस बारह ही हैं, शेष तो यहां जचते तक नहीं । हां हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में इसके और भी अनेक नाम हैं:—

संस्कृत—अनुरक्ति, अनुरति, अनुरंजन, रति, हाई, नियता, रभति, चेतोमू, रक्ता विभाव, संराम ।

हिन्दी—प्यार, छोह, मरोह, लाग, मोह, माया, भाव, दुकाट, लाड, वेह इत्यादि ।

२ ईबरवाले तथा हस्तालिखित प्रति में (अनुभो अरु) पाठ है ।

इस ग्रन्थ में अलंकार, संगीत, रस, हाव-भाव और छन्दादि का अनुक्रम नहीं रक्खा है, किन्तु कथा का क्रम जहां जो होना चाहिये, उसी का वर्णन है ॥२॥

कथाजु प्रेम प्रसंग की, यथाजोग सब घात,
ज्यों धर गिर नद निर्भरन, सागर सबें समात ॥ ३ ॥

पृथ्वी, पर्वत, नद और नदियां, यह सब ही अन्त में समुद्र में मिलती हैं, इसी प्रकार इस ग्रन्थ में भी प्रेम प्रसंग की कथाओं में बीती हुई घटनाओं के साथ अलंकार, रस, संगीत आदि का वर्णन है ॥ ३ ॥

अथ द्रष्टांतलंकार—सवैया.

रंग मिल्यो वह रूप भयो रहें, पै सबही में कहावत पानी,
भारति भेद अनेक भये परि, अंक उचार अकार को बानी ।
मत्तहि मत्त लगैं मुनि सोधत, बोध सबैं करतार कहानी,
भूषन भाव दशा रस भाषत, सागर त्योंहि स्नेह समानी ॥४॥

जिस तरह पानी में अनेक प्रकार के रंग मिला देने से रंग अपने असली रूप को भूल, दूसरे रंग में रंग जाता है, तां भी वह पानी ही कहलाता है न कि कोई रंग कहलाने लगता, हां पानी के रूप में अवश्य कुछ भेदभाव हो जाता है, परन्तु उनका उच्चारण केवल एक पानी ही के नाम से होता है । जिस तरह अनेक मुनिजन अपने २ मतानुसार सृष्टि के स्रजता की खोज करते हैं—सब का एकही मत नहीं होता—परन्तु सबका ध्येय एक ही है । इसी तरह अलंकार, स्थायि, सात्विकादिभाव, देश दिशा और नौ रस ये सब सागर कहता है कि एक स्नेह ही में समा जाते हैं ॥४॥

अथ चौद लोकाभिधान अधिष्ठाता नाम वर्णन ।

यथाक्रमालंकार—छंद मरहट्टा.

सब जगकी धरनी, वह कवि बरनी, है शक्ती आधार,
तिनपैं बाराहं, सब इल साहं, बढरह है बिस्तार ।

उनही पर कच्छं, धरिय सुलच्छं, पीठहु के परमान,
 उन ऊरध लगंगं, श्वेत पनगंगं, शेष सहस्र फन जान ।
 पहिले पातालं, वासुकि व्यालं, सुजकहि राजसुहात,
 तिनपैं दूजो दल, कहत रसातल, राजें कवचनिवात ।
 तृतीय सुमहातल, कद्रुसुतन कुल, काली अधिपति तास,
 कहि तुर्य तलातल, बसत असुरकुल, मय दानव सुनिवास ।
 सुतलं शुभ भनियं, पंचम गनियं, नृपति जहां बलिराज,
 बितुलं सुविशेषं, षष्ठम लेखं, शिव हटकेश्वर साज ।
 अतलं सप्तम कहि, बलिदानव रहि, राज करत शुभ रूप,
 अठमं भनि भूरं, मनुज सपूरं, वैवस्वत मनु भूप ।
 नवमं भुवरं भनि, जहां शिवके गन, वीरभद्र मनिभद्र,
 दशमं सुरलोकं, सकल असोकं, सुर संजुत रहे इंद्र ।
 महं अग्यारम, साजति संयम, राजत ऋषिय अनेक,
 जनलोक सुवारम, जिह ब्रह्मचारम, साजत सकल विवेक ।
 तप लोक त्रयोदश, वानपुरुष बस, नर नारी धरि नेह,
 सतलोक निवासी, बसत संन्यासी, लोक चतुर्दश एह ।
 तिनके परधाता, जगत विख्याता, सृष्टि उपावनहार,
 तिन पर हरधामं, अति अभिरामं, सकल लोक संहार ।
 पुनि विष्णुथानं, पद निरवानं, पोषण सृष्टि प्रमान,
 तिनपर परिब्रह्मं, निगम अगमं, पावत कोइ सुजान ॥ ५ ॥

सारे संसार को धारण करनेवाली पृथ्वी एक महान् शक्ति के आधार पर है ऐसा कविजन कहते हैं । उस शक्ति पर बड़े और विशाल दांतवाला बाराह-रूपी ईश्वर पृथ्वी को धारण कर रहा है । इस बाराह के ऊपर कछुआ ध्यान धर पीठ पसार बैठा है और उस कछुए पर हजार फणिवाला, श्वेत वर्णधारी, फणि-धर शेषनाग है । उस शेषनाग के ऊपरवाले पहले फण को पाताल कहते हैं । जहां नागलोक की बस्ती है, जहां पर वासुकी नाम का नाग-राजा राज्य करता है । उस फण के दूसरे हिस्से को रसातल कहते हैं, जहां रसातल निवात, कवच

आदि अनेक दैत्य बसे हुए हैं । तीसरे दल को महादल कहते हैं जहां कद्रू के पुत्र अनेक फणियाले सर्प रहते हैं और वहां के काली नामक सर्पराज अधिपति हैं । चौथा पड़ तलातल करके है, जिसमें असुरों के अनेक कुल बसे हुए हैं और वहां दैत्य दानवों का इन्द्रमय दानव राज्य करता है । ५ वां पड़ सुतल नाम का है, जहां विरोचन का पुत्र बलिगजा राज्य करता है । छठा वितल नाम का पड़ है, जहां हारकेश्वर नाम के शंकर राज्य करते हैं । सातवां पड़ अतल नामक है, जहां पर बलि दानव सर्व प्रकार राज्य करते हैं । इन सात पातालों के ऊपर आठवां भूलोक है, और वह मनुष्य आदि प्राणियों से भरा हुआ है, वहां का वैवस्वतमनु नाम का राजा है । उसके ऊपर नवां भुवरलोक है, जहां वीरभद्र और मणिभद्र आदिक शिवगण रहते हैं । उसके ऊपर दसवां सुरलोक है जहां शोक रहित सारे देवताओं सहित महाराजा इन्द्र रहता है । उसके ऊपर ११ वां महर लोक है, जहां समयानुसार मन को वश में करने वाले अनेक ऋषिगण रहते हैं । उसके ऊपर १२ वां जनलोक है, जहां ममस्त विवेकों को जानने वाले और ब्रह्मचर्य के पालनेवाले निवास करते हैं । उसके ऊपर १३ वां तपलोक है, जहां इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले वानप्रस्थी स्त्री-पुरुष स्नेह सहित रहते हैं । उसके ऊपर १४ वां सत्य लोक है, जहां महा त्यागी संन्यासीगण निवास करते हैं । इन चौदह लोकों पर ब्रह्मलोक है, जहां सृष्टि के सृजनहार श्री ब्रह्माजी रहते हैं उसके ऊपर शिवलोक है जो अत्यन्त ही शोभायमान है, जहां सबके संहारकर्ता श्री शंकर भगवान् रहते हैं । इसके बाद विष्णुलोक है, जहां सृष्टि के पोषक भगवान् विष्णु विराजते हैं । उसके ऊपर वेद तक नहीं जान सकते ऐसे चिदात्मा परब्रह्म व्याप रहे हैं, उस ब्रह्म को कोई ही महान् पुरुष जान सकता है ॥ ५ ॥

दोहा ।

चौद लोक को यह कह्यो, सुच्छम भेद विचार ।

भूरलोक की सकल अब, कहूं बात विस्तार ॥ ६ ॥

इस प्रकार चौदह लोकों का संक्षिप्त में विचार किया है, किन्तु भू-लोक को मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं ॥ ६ ॥

छप्पय ।

प्रथी कोटि पंचास, जगत जोजन सब जानहु,
मध्य मेरु मंडान, प्रगट तिहि कहूं प्रमानहु,
जोजन लच्छ सुजान, यहै दीरघ घर ऊपर,
वाके शृंग विशेष, बसत गंधर्व सुर किन्नर,
बत्तीस सहस्र जोजन प्रथुल, सप्त धातु गिरराज शिर,
सोलह हजार जोजन सकल, प्रथुल धरा परि एह पर ॥ ७ ॥

पृथ्वी का पचास करोड़ योजन का विस्तार है, यह सारा संसार जानता है। उसके बीच में स्थापित मेरु पर्वत का प्रत्यक्ष प्रमाण कहा है। यह पृथ्वी पर से एक लाख योजन ऊंचा है। जिसके अनेक शिखरों पर गंधर्व, देव तथा किन्नर आदि रहते हैं। और उसकी लम्बाई-चौड़ाई का विस्तार छत्तीस हजार योजन है, जिसमें से सोना, रूपा आदि सान धातुएं निकलती हैं और उसका पृथ्वी पर विस्तार सोलह हजार योजन का है ॥ ७ ॥

दोहा-मध्य मेरु आवर्त हैं, इक इक द्वीप समंद,

जिहि प्रमाण अभिधानजुत, कबो सु कहें कविंद ॥ ८ ॥

मध्य मेरु पर्वत और चारों ओर फिरने से अनेक द्वीप तथा समुद्र फैले हुए हैं जिनके कि नाम प्रमाण सहित पूर्व कवियों के लेखानुसार कहता हूं ॥ ८ ॥

छंद मनहंस

लख एक जोजन जंबुद्वीप सु जानिये; पुनि द्विगुन तापर चार सिंधु बस्वानिये;
पलवच्छ द्वीप सुद्विगुन, मान विचारिये; रसइच्छु सागरं द्वीगुनं फिर धारिये.
कुशद्वीप जोजन द्वीगुनं सुप्रमान से, दाधि वाहनी तिन द्विगुन भाषत वान से.
कहि कौंच द्वीप सुताहि द्वीगु लच्छ हैं; घृतसिंधु तापर द्वीगुनं परतच्छ हैं.
गुन शाकद्वीप सुफेर द्वीगुन जोजनं, अकुपार दाधि तापर जोजन द्विगुनं.
द्विगुनो सुतातें द्वीप, शालमली कहैं, पुनि द्विगुन तासे मान चौरसमंद हैं.
पुनि द्विगुन तिनसे द्वीप, पुष्कर सो कबो; शुध नीरसिंधु प्रमान द्वीगुन ही रखो.
तिन ऊपरें मरियाद, गिरि आवर्न हैं, फिर आदरस धर हेंम, आभा धर्त हैं.
दिगपाल गजता ऊपरे ठाढे रहैं, तिन पार कोउ ना लहैं, आगे शून्य हैं ॥ ९ ॥

जम्बू द्वीप के विस्तार का प्रमाण एक लाख योजन है और उसके चारों ओर फिरा हुआ द्विगुण विस्तारवाला चार समुद्र (चारों दरियाओं) ने घेर रक्खा है । चार समुद्र से द्विगुण विस्तार वाला प्लक्ष द्वीप है । प्लक्ष द्वीप के चारों ओर इससे द्विगुणा मानवाला इक्षुरस (गन्ने के रस) का समुद्र आरहा है । इस इक्षुरस समुद्र से द्विगुण योजन का कुशद्वीप है । कुशद्वीप से दुगुना और चारों ओर फैला हुआ वारुणी (मदिरा) का समुद्र है, ऐसा पण्डित जन कहते आये हैं । इस प्रकार वारुणी समुद्र से द्विगुण लक्ष योजन का विस्तार वाला कोंच द्वीप है, उस कोंच द्वीप से दुगुना घृत (घी का) समुद्र प्रसिद्ध है । उस घृतसमुद्र से द्विगुण योजन वाला दधि (दही) का समुद्र है । उससे द्विगुना शाल्मली द्वीप है । उससे दुगुना मानवाला क्षीर (दूध) का समुद्र है और उससे दुगुना पुष्कर द्वीप है । उधर पुष्कर द्वीप से दुगुना योजनवाला (भीठे जल वाला) समुद्र इसके चारों ओर लोका-लोक नाम का पर्वत फैला हुआ है । उससे भी दूर सोने की शोभा को धारण की हुई कांच के समान निर्मल पृथ्वी है । और उसके ऊपर पृथ्वी को थामे हुए दिशाओं के दश हाथी खड़े हैं । उसके बाद शून्य है, उसका पार कोई पा नहीं सकता ॥ ९ ॥

अथ दिग् हास्तिनामानि-दोहा.

ऐरावत पुंडरीक पुनि, वामन कुमुद सु नीक,

अंजन पुष्पसुदंत कहि, सार्वभौम सुप्रतीक ॥ १० ॥

ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक, इस प्रकार आठ दिग्गजरूपी हाथी पृथिवी को थामे हुए खड़े हैं ॥ १० ॥

अथ दिग्हास्तिनी नामानि

अभ्रमु कपिळा पिंगळा, अनूपमा सु प्रमान ।

ताम्रकर्णि शुभ्रदंति कहि, वाम अंजना जान ॥ ११ ॥

अभ्रमु, कपिला, पिंगला, अनुपमा, ताम्रकर्णि, शुभ्रदन्तिका, वामना तथा अंजना, यह आठ दिग्पाल वी स्त्रियों हैं ॥ ११ ॥

अंत द्वीप के खंड द्वै, इक इक पंच प्रमान ।

आदि जंगु नव खंड इह, कहुं ताके अभिधान ॥ १२ ॥

पूर्व कथित पुष्कर नाम के द्वीप के दो भाग हैं—शेष पांच द्वीपों के पांच पांच भाग हैं । पहिले जम्बू द्वीप के नव खण्ड हैं । उनके नाम कहता हूँ ॥ १२ ॥

मेराव्रत जंबू सुमीध, हैं अठ कुल गिरि बांस ।

वाहीते अंतर परचो, नव खंड भये प्रकाश ॥ १३ ॥

मेरु पर्वत से मिले हुए जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत के अतिरिक्त दूसरे अन्य आठ कुल के आठ गिरि हैं । और इन्हीं पहाड़ों की आड़ से पृथिवी के नव विभाग विभक्त हैं और इसी कारण नव खण्ड कहे हैं ॥ १३ ॥

जंबूद्वीप के नवखंड वर्णन—छप्पय.

मध्य इलावृत खंड, केतुमालह पूरव पर ।

हिस्मकुरु अरु रम्य, तीन एही दिश उत्तर ॥

भद्रखंड वारुनी, भरत किन्नर हरि दच्छन ।

नवह खंड दिशि नाम, भेद यह कहत विचच्छन ॥

तिन मध्य मुख्य जानहु भरत, जहां सकल शुभ हैं जुगत ।

धन धान्य मान सनमान युत, भोग भोग अरु हरिभगत ॥ १४ ॥

जम्बू द्वीप के बीच में इलावृत नाम का खण्ड है, उसके पूर्व की ओर तुमाल खण्ड है, ऊपरी दिशा में हिरण्य, कुरु तथा रम्य यह तीन खण्ड हैं, पश्चिम में भद्राश्व नाम का खण्ड है, दक्षिण में चरत, किन्नर और हरि यह तीन खण्ड हैं इस प्रकार यह नौ खण्ड हैं जिनके नाम, भेद तथा दिशा आदि बड़े आदमी कहते हैं । इन नौ में से भरतखण्ड मुख्य है, जिसमें सारा जगत् करके सब प्रकार की वस्तुयें वर्णनीय हैं, धन, धान्य, मान, सम्मान, भोग, योग के साथ ही हरि भक्तजन रहते हैं ॥ १४ ॥

गाहा—संज्ञा प्रेमसु संख्या, चतुर्दश लोकं नाम अधिपतियं ।

द्वीपखंड परमानं, पंच प्रवीणसागरो लहरं ॥ १५ ॥

प्रेम की संख्या, चौदह लोकों के नाम तथा उनके अधिपतिगण, द्वीप के नव खण्ड और उनका प्रमाण इत्यादि जिसमें वर्णन है, ऐसी यह प्रवीणसागर की पांचवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

श्री ईश्वरदुर्गराजधान्यान्तर्गतेन यशवंतगाढाधीश्वराणां राजश्रिया विराजितानां श्रीमतां मानसिंहजीवर्मेणा आश्रितेन पृथुसिंहसंपादनस्य श्रीमोहनसिंहजीसमा-
र्कग्रन्थस्य प्रवीणसागरस्य सरलटीकाय षष्ठमस्तरंग प्रारभ्यते :

लहर ६ ठी

दोहा—अब प्रवीणसागर कथा, धुरतें कहत बनाय ।

देश नगर पितु तास कुल, सो सब देत सुनाय ॥ १ ॥

अब प्रवीणसागर की कथा प्रारम्भ से विस्तारपूर्वक रचना कर कहता हूँ ।

देश, नगर और उनके कुल यह सब सुनाये देता हूँ ॥ १ ॥

अथ रससागरोद्भव स्थान कथन—छंद चंचला.

चत्रशष्टि संख्य देश, भर्तृखंड पेख, बानि वेष देखतं, सुराष्ट्र देश है विशेष ।
निद्विरिद्धि को सुधाम, है तहां जु नेह नग्र, मान दान जान लच्छ, सुख है तहां समग्र ॥
बार हैं सहस्र ग्राम, साम नाम ते अवीह, कोश सातसैं प्रमान, खग्व बान आनकीह ।
फौज एक लाख है, हजार बीस पच फेर, जोध जुध मंडिके, उदंड शत्रु कीध जेर ।
भोम काज आय आय, सेव हैं अनेक भूप, या विधि प्रदीप भूप, चंद्र वंशमें अनूप ॥
एक सत्त मत्त सो, उपंत द्वारपै गयंद, मेघ ज्यों गजंत है, सहस्र धूंदभी अमंद ।
देशदेश देशपति, शत्रु सो सदा डरंत, राम राजसो उमंग, राज नीतसे करंत ॥ २ ॥

भरतखण्ड के अन्दर चौंसठ देश हैं, प्रत्येक देश की भाषा, पहराव, रूढि, विवेक और सभ्यता आदि गुणों को देखते हुए सौराष्ट्र देश अन्य देशों से सर्वोपरि है और जो कोष तथा रिद्धि सिद्धि से भरपूर है । जिसके राजा प्रदीप की राजधानी का नेहनगर नामक सुप्रसिद्ध शहर बड़ा शोभायमान है । जिसके अन्दर पुण्य, दान, ज्ञान-संपादन करने के लिये विविध प्रकार की शालायें, द्रव्य उपार्जनार्थ व्यापार की समस्त सुविधायें आदि अनेक प्रकार के सुख हैं । १२ हजार ग्रामों पर राजसत्ता है, जहां की प्रजा इस राजा के तेज से निडर और आनन्दपूर्वक रहती है वहां के इस प्रतापी राजा ने अपने राज्य के सातसौ कोस के क्षेत्रफल पर अपने बाहु-बल तथा तलवार के जोर से सत्ता स्थापित की यहां के सैन्य दल की संख्या एक लाख और पच्चीस हजार की है तथा शूरवीर योद्धाओं के बड़े पराक्रम से बड़े बड़े युद्ध तथा संग्राम कर बड़े-बड़े मदोन्मत्त शत्रुओं को मार भगाया है, एक ही नहीं बरन अनेक राजागण भूमिका उपार्जन हित आ इसके पैर पूजते हैं । इस प्रकार की चतुर्विध स्मृद्धियुक्त यह गुणज्ञ चंद्रवंशशिरोमणि प्रदीप राजा

प्रसिद्ध हो भोगता है । जिसके सभामण्डप के पास बड़े और विकराल मदयुक्त एकसौ हाथियों की गर्जना से सारा मैदान गाज रहा है । जहां दुंदुभी वगैरह हजारों बाजे सदैव बजा करते हैं जिनकी ध्वनि से अनेक देश के राजा और दुरमन नित्य डरते रहते हैं । इस प्रकार भगवान् रामचन्द्रजी की तरह अखंडित राजनीति से राजा अपना राज्य चलाता है ॥ २ ॥

दोहा—यह प्रदीप जगमें प्रसिध, इहि विधि राज अखंड ।

मंडे सुजस महिमंडले, दंडे पिशुनउ दंड ॥ ३ ॥

जगत्प्रसिद्ध हो राजा प्रदीप निर्भयतापूर्वक राज्य करता है, जिसकी कि प्रशंसा भूमण्डल भर में फैल रही है जो चोर तथा डाकुओं को शिक्षापूर्ण दण्ड देता है ॥ ३ ॥

सो प्रदीप नृप गृह उदित, कुल मंडन सुकुमार,

जोइ विचित्रानंद भो, हर किंकर अवतार ॥ ४ ॥

प्रसिद्ध राजा प्रदीप के सुगृह कुलमंडन सुकुमार उसी विचित्रानन्द का जन्म हुआ जो शिव का गण था ॥ ४ ॥

छप्पय—उदय होत नृप नंद, उदित आनंद सकल उर ।

बजत दुंदुभी द्वार, सजत सिंगार ललन पुर ॥

गृह गृह मंगलचार, छंद बंदिन विस्तारत ।

पाय दान सनमान, शब्द जय जय उच्चारत ॥

दुज वेद भेद संगीत नृत, ठौर ठौर शोभत सभा ।

ध्वज धाम धाम कंचन कलश, पर पुरंद मानहु प्रभा ॥ ५ ॥

राजा के यहां कुंवर के जन्म लेने के कारण सब ही के हृदय में आनन्द छा रहा है तथा राज्य के द्वार पर और शहर में नौबत और दुन्दुभी की ध्वनि हो रही है । पुरवासी स्त्रियां विविध प्रकार के शृंगार सज, घर घर मंगलगीत गाने लगीं । बन्दीजन तथा भाट चारणादि कविता रच, गुण गा राजद्वार से पाये हुए दान तथा आदर स्त्कार से जय जय शब्द उच्चारण करने लगे । ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं, नायिकायें संगीत के भेद प्रमाण

नृत्य तथा गायन कर रहे हैं । इस प्रकार पर सभायें हो रही हैं । घर-घर ध्वजापताका के साथ सुवर्ण के कलश शोभायमान हो रहे हैं । इस प्रकार के उत्सव से नगर, इन्द्रकी राजधानी के समान शोभायमान हो रहा है ॥ ५ ॥

दोहा-वाही समय प्रदीप नृप, उर उमंग अति लाय,
कही गनक मनहंस प्रति, जातक ग्रहसु बनाय ॥ ६ ॥

उस समय में राजा प्रदीप हृदय में अति प्रसन्न हो मनहंस नामक जोशी से राजकुमार की जन्मकुंडली तैयार कर लाने की आज्ञा दी ॥ ६ ॥

सोरठा-भूत भविष्य चित लाय, ग्रह निर्णय कीनो गनक ।

सो नृप सनमुख आय, बैठे तब ब्रूमत विभू ॥ ७ ॥

भूत और भविष्य का चित्त में विचार ला; जोशी ग्रहों का निर्णय कर राजा की सभा में आया, बैठने पर राजा पूछने लगे ॥ ७ ॥

अथ नृपवाक्य मनहंस गनक प्रति-चौपाई.

अहो गनक मनहंस प्रवीने, जन्मकुंडली तुम ग्रह कीने ।
कछु प्रकाश करिके विस्तारो, जो ब्रूमें सो अनुक्रम धारो ॥
राशि स्वामि गृह कौन कहावो, उच्च नीच अभिधान जताओ ।
मित्र शत्रु ग्रह भेदसु कैसे ?, क्रूर सौम्य कहो खेचर जैसे ॥
केन्द्र त्रिकोन उपचय ए को हैं, भेद दृष्टि भासो तुम जो हैं ।
द्वादश भाव कहां कहां देखे, जिन अदृष्ट जातक अवरेखे ॥
किहि थानक पर ग्रह को हैं, ताको सुफल बताओ जो हैं ।
भिन्न भिन्न एतो सप्तभाओ, पुनि इनाम ले निलय सिधाओ ॥ ८ ॥

ज्योतिष गणित शास्त्र में प्रवीण ऐसे हे मनहंस जोशी ! तुमने जो जन्म-कुंडली तय्यार की है, उस में जो जो मैं पूछूं विस्तारपूर्वक उत्तर दो । राशि का स्वामी कौन है ? कौनसे ग्रह और उनमें उच्च नीच क्या है, बतावें ? परस्पर ग्रहों में एक दूसरे के साथ शत्रु-मित्रता का भेद तथा क्रूर और सौम्य आदि भी बताओ । साथ ही केन्द्र, त्रिकोण तथा उनके उपचार क्या हैं । दृष्टि का जो भेद होय उनके १२ भावों में क्या क्या दीखता है ? जिससे कि जातक शास्त्र

अदृष्ट (अदृश्य) की परीक्षा करता है ? कौन स्थान पर कौन पा ग्रह है ? और उनका जो फल हो पृथक्-पृथक् बता इनाम ले अपने घर पधारो ॥ ८ ॥

अथ मनहंस गणक वाक्य—दोहा.

तब पंडित यौ उच्चरिय, यह मत गानित समंद ।

कहाँ उक्ति संच्छेप करि, चित दे सुनो नरिंद ॥ ९ ॥

तब पण्डितजी ऐसे कहने लगे कि इस गणित शास्त्र का मत अपार है विस्तार कर पार पायें, ऐसा नहीं अतएव यह संच्छेप में कहता हूँ सो हे नृप-शिरो-मणि ! आप ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ९ ॥

अथ पंडितोक्त लग्नस्वामि भेद—छप्पय.

मेष भौम वृष शुक्र, मिथुन बुध कर्क चंद्र भनि ।

सिंह रवी बुध कन्य, तुला को स्वामि शुक्र गनि ॥

वृश्चिक कुज धन गुरु, मकर अरु कुंभ शनि कहि ।

मीन स्वामि वरगुरु, राशि स्वामि इह विधि लहि ॥

शुभ काज समय करियत समंध, ग्रहनायक गति बल लहैं ।

बुधजन विचार यह विधि सबें, कवि जातक प्रश्न सु कहैं ॥ १० ॥

मेष राशि का स्वामी मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चंद्र, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धन का गुरु, मकर तथा कुंभ राशि का शनि और मीन राशि का सुरगुरु अर्थात् बृहस्पति स्वामी हैं । राशियों के अधिपति का योग इस प्रकार ग्रहण करके समस्त कार्य तथा सम्बन्ध करते समय ग्रह का स्थान तथा उसकी गति के अनुसार बल प्राप्त करता है । इस प्रकार विद्वान् जनों के अपने विचार आंतिष शास्त्र में हैं ऐसे कविजनों ने, प्रश्न करने पर, राजा को इस प्रकार कहा ॥ १० ॥

अथ उच्च नीच भेद—छंद तोमर

रवि मेष उच्च सु जान, शशि वृष सु उच्च पिछान ।

धरनंद मकर सु उच्च, बुध कन्य दीर्घ सूच ॥

गुरु कर्क उच्च कहंत, भृगु मीन उच्च रहंत ।

तुल मंद उच्च त्रिचारि, तमराज मिथुन सुनारि ॥

ग्रह नीच कहें अब तेह, जपे सु जोतिष जेह ।
तुल तरनि नीच सुजोय, अलि नीच निशिकर होय ॥
करके सुभौम असिद्ध, गत मीन बुध निषिद्ध ।
मकरें अमरगुरु नीच, भृगु नीच कन्या बीच ॥
गत नीच मेष सुमंद, धनका सुनीच निशिंद ॥ ११ ॥

सूर्य मेष राशि का श्रेष्ठ जानिये, चन्द्र वृषभ का, मंगल मकर का, बुध कन्या का, गुरु कर्क राशि का, शुक्र मीन का, शनि तुला का, राहु मिथुन का तथा कन्या राशि का होय तो श्रेष्ठ समझिये। अब ज्योतिष शास्त्र में इन ग्रहों को कहाँ कहाँ बुरा कहा है, उसका वर्णन करता हूँ सूर्य तुला राशि का, चन्द्र वृश्चिक का, मंगल कर्क का, बुध मीन का, गुरु मकर का, शुक्र कन्या का, शनिश्चर मेष का और राहु धन राशि का होय तो दूषित समझिये ॥ ११ ॥

अथ ग्रहमित्रशत्रुभेद-दोहा

शशि मंगल गुरु तीन ए, रवि के जानहु मित्र ।
शुक्र शनैश्चर सूर के, सदा कहत हैं शत्रु ॥ १२ ॥

शशि अर्थात् चन्द्रमा, मंगल तथा गुरु यह तीनों सूर्य के मित्र हैं तथा शुक्र और शनि यह दोनों शत्रु हैं ॥ १२ ॥

दिनकर बुध द्वै चंद्र के, मित्र कहैं सब कोय ।
सब ग्रह और समान हैं, कोउ शत्रु नाहि होय ॥ १३ ॥

सूर्य तथा बुध यह दोनों ग्रहों को सब कोई चन्द्र के मित्र कहते हैं और शेष उनके लिये समान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उसका न कोई शत्रु है और न कोई मित्र ही ॥ १३ ॥

सुरगुरु सूर सु सोम त्रय, कुत्रके मित्र कहाय ।
वैरभाव बुध एक से, कहैं जातक कविराय ॥ १४ ॥

सुरगुरु अर्थात् बृहस्पति, सूर्य तथा चन्द्र यह तीनों मंगल के मित्र कहाते हैं, उसका केवल बुध ही के साथ वैमनस्यता है, ऐसा जातक कवि-जन कहते आये हैं ॥ १४ ॥

दिनकर भार्गव बुध सुहृद, शत्रुभाव शशि जान ।

औरें समता भाव सब, यहै गनक अनुमान ॥ १५ ॥

सूर्य और शुक्र यह दोनों बुध के मित्र हैं, और चन्द्र के साथ शत्रुता है, शेष सारे ही ग्रहों के साथ समान भाव है, इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के जानकारों का अनुमान है ॥ १५ ॥

मंगल हंस हिमांशु त्रय, सखा शिखंडिज एह ।

उशना बुध अरि हैं उभय, सदा हीन फल देह ॥ १६ ॥

मंगल, सूर्य तथा चन्द्र यह तीनों बृहस्पति के सखा अर्थात् मित्र हैं और शुक्र तथा बुध शत्रु हैं, जो कि सदैव बुरे ही फल के दायक हुआ करते हैं ॥ १६ ॥

शशिमुत शनि प्रिय शुक्र के, सरस भावको देत ।

देव निशाकर से सदा, याकों रहत अहेत ॥ १७ ॥

चन्द्रमा का पुत्र बुध और शनि यह दोनों शुक्र के मित्र हैं, यह सरल फलदायक हैं । सूर्य तथा निशाकर अर्थात् चन्द्र के साथ इनका सदैव वैर-भाव है ॥ १७ ॥

असुर पुरोहित बुधहु से, मंदसु वद्वभ भाव ।

रवि शशि कुज रिपु तीन हैं, कहे जातक कविराव ॥ १८ ॥

शुक्र तथा बुध के साथ शनिश्चर का सखा-भाव (मैत्री-भाव) है । सूर्य, चन्द्र और मंगल यह रिपुभाव रखते हैं, ऐसा जातक शास्त्री-जन कहते आये हैं ॥ १८ ॥

अथ क्रूरसौम्य भेद-दोहा

रवि मंगल शनि राहु यह, क्रूर कहावत चत्र ।

शशि सुरगुरु बुध शुक्र ए, सौम्य सुजानहु मित्र ॥ १९ ॥

सूर्य, मंगल, शनि और राहु यह चारों क्रूर ग्रह कहलाते हैं । और चन्द्र, बृहस्पति, बुध और शुक्र को सौम्य जानना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ केंद्रादि स्थानभाव-सोरठा

केंद्र भुवन यह जान, प्रथम वेद सप्तम सुदश ।

सौम्य ऊंच निज थान, सो सुखदा क्रूरा दुखद ॥ २० ॥

पहिला, चौथा, सातवां और दशवां यह चार केन्द्र भुवन जाने, सौम्य ग्रह अपने स्थान के ऊपर हों तो यह शुभकर हैं । और यदि यह क्रूर ग्रहों में हों तो दुःखदायक होते हैं ॥ २० ॥

कहैं त्रिकोण सुतास, नवम और पंचम उभे ।

शुभ तहां सौम्य निवास, क्रूर अशुभ थानक इते ॥ २१ ॥

नववें और पांचवें स्थान को त्रिकोण भुवन कहते हैं, वहां सौम्य ग्रह हों तो शुभ और क्रूर ग्रह हों तो अशुभ हैं ॥ २१ ॥

त्रय षट् अरु अग्यार, यह उपचय अभिधान ग्रह ।

क्रूर सु ग्रह ऊँच सार, सौम्य अशुभ थानक यहे ॥ २२ ॥

तीसरा, छठा और ग्यारहवें स्थानक को उपचय भुवन कहते हैं, इस भुवन में यदि क्रूर ग्रह ऊपर हों तो शुभ और यदि सौम्य ऊपर हों तो अशुभ फलदायक होते हैं ॥ २२ ॥

अथ दृष्टिभेद-छप्पय यथा

तृतीय दशम द्वै भौन, शनी संपूरन देखिहि ।

और सु खग इहि थान, पंच विश्वा सब पेखिहि ॥

थिर नव पंचम ताय, लखे पूरन गुरु अमर ।

इहि थानक ग्रह अवर, चरन द्वय दृष्टि तास सर ॥

चत्र अरु अष्ट थानक इते, लोहितांग पूरन लखें ।

इहि ठोर अवर ग्रह चरन त्रय, देखते सो देवो दखें ॥ २३ ॥

तीसरे और दशवें, इन दोनों भुवनों को शानि सब प्रकार देखता है तथा अन्य दूसरे सब ग्रहों को पांच विश्वा देखता है । और नववें तथा पांचवें भुवन को गुरु सम्पूर्ण रीति से देखता है । शेष दूसरे ग्रह उसे दो पाया देखते हैं । चौथे तथा आठवें स्थान को मंगल पूर्ण रूप से देखता है तथा दूसरे अन्य ग्रह उसे तीन पाया देखते हैं । इस प्रकार भविष्य कुशल के जानने वाले ही कहते आये हैं ॥ २३ ॥

अथ द्वादशभुवन परीक्षा-छंद सुभग

प्रथम सु ग्रह थान, तनु प्रकृति परमान, सुख दुख अनुसंधान, वृन्द रूप पहिचान.

द्वितीय भुवन भेद, धनवृद्धि परिच्छेद, निजकुटुंब मुख खेद, अभिप्राय यह जान।
 तृतीय मुकहि धाम, उनसहज अभिराम, पुनि पराक्रम ताम, किंकर सुमति काम।
 चातुरे ग्रहमात्र, गृह ग्राम पदचात्र, कृषि कर्मजन यात्र, अवलोकि आराम।
 पंचमहि आगार, बुधि पुत्र विस्तार, शुभ शास्त्र सुविचार, विधि मंत्र लखि मर्म।
 गृह षष्ठ में केत, रिपु रोग फल देत, मातुलह पख हेत, कहि क्रूरता कर्म।
 सपतालये जात, बिनता गमन बात, बानिज्यगत आत, अवलोकवो एह।
 यह अष्टमे बास, उन छिद्र परकास, शंखादि दुख तास, कह कष्ट हैं देह।
 नोम निलय भाग, धर्मशील वैराग, तप तीर्थ जप जाग, एतो करो लच्छ।
 दशमें सदन एह, निज कर्म पितु देह, नृप द्वारको नेह, व्यापार पाच्छि।
 आसपद दश एक, इम अश्व कितेक, सुखपाल सुविवेक, मनि अंबर निहार।
 शदम दश सु दोय, व्ययदंडविधिजाय, कहे बंध कलु होय, निरबंध निरधार॥२४॥

प्रथम भुवन को तनु-भुवन कहते हैं, जिससे सुख दुःखादि, शरीर के रूप रंग तथा गुण, प्रकृति, साहस, उन्न आदि जाने जाते हैं। दूसरे का नाम धन-भुवन है जिससे कि धन का हानि-लाभ, तथा अपने कुटुम्ब के प्रति सुख दुःख जाना जाता है। तीसरे का नाम सहज-भुवन है, जिससे कि बल, पराक्रम तथा कर्मचारी सहोदर आदि का सुख जाना जाता है। चौथा मातृ-भुवन है, जो कि घर, ग्राम, तथा खेतीबाड़ी और चतुष्पदादि का सूचक होता है। पांचवें स्थान का नाम संतान-भुवन है जिससे कि विद्या, अपनी होशियारी, नम्रता, विवेक, पुत्रोत्पत्ति आदि बातें जानी जाती हैं। छठे का नाम रिपु-भुवन है, जिससे कि शत्रु और रोग की उत्पत्ति, समुद्राल की तरफ से प्रीति, दुष्टता आदि जाने जाते हैं। सातवें स्थानक का नाम जाया-भुवन है जिससे कि स्त्री-गमन, व्यापार में हानि-लाभ आदि जाने जाते हैं। आठवें स्थानक को छिद्र-भुवन कहते हैं, जिससे शरीर के प्रति होने वाले संकट, वेदना, आयुष्य बल शास्त्रादि त्रास, घात आदि जाने जाते हैं। नववें भुवन का नाम भाग्य-भुवन है, जिससे कि तप, जप, शील, वैराग्य, यज्ञ, तीर्थ आदि धर्मसम्बन्धी बातें जानी जाती हैं। दशवें को कर्म-भुवन कहते हैं जिससे राज की ओर से मान, अपमान, राजा की प्रीति,

व्यापार में लाभ, पिता का सुख आदि जाना जाता है । ग्यारहवें स्थानक को लाभ-भुवन कहते हैं जिसमें हाथी, घोड़ा, सुखपाल, माण, माणिक आदि वस्त्र आभूषणों की प्राप्ति जानी जाती है । बारहवें स्थानक को व्यय-भुवन कहते हैं जिससे कि प्रत्येक प्रकार की व्यय-हानि जानी जाती है ॥ २४ ॥

अथ ग्रहस्थानभेद-दोहा.

महाराज यह जानिये, सुत उतपति भूष रास ।

जो जो थानक परे, कहो सु गनक प्रकाश ॥ २५ ॥

हे महाराज ! आपके कुंवर का जन्म मीन राशि में हुआ है । इस पर राजा ने कहा कि हे मनहंस जोशी ! यह ठीक, परन्तु कौन कौन भुवन में कौन कौन ग्रह रहे हैं और वे क्या क्या फलदाता हैं सो कहो ॥ २५ ॥

छप्पय-प्रथम शुक्र पहिचान, पंचमे चंद्र अंगिरस ।

राहु षष्ठमें रहत, मूर बुध नौमहुं के बस ॥

दशमे कुज निरधार, मंद एकादश आये ।

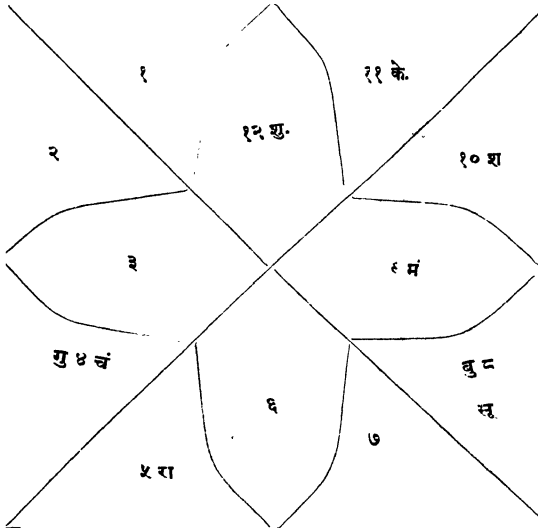
द्वादश केतु कहंत, गनक खेचर सुदहाये ॥

केंद्र त्रिकोन उपचय किते, सौम्य क्रूर मुदृश ग्रहैं ।

स्वग्रह नीच उच्च ग्रह मुद्द लखि, सो प्रकाश प्रापति कहैं ॥ २६ ॥

पहिले भुवन में शुक्र, पांचवें भुवन में चन्द्र और बृहस्पति, छठे भुवन में राहु, नववें भुवन में सूर्य तथा बुध, दशवें भुवन में मंगल, ग्यारहवें में शनि और बारहवें में केतु है । इस प्रकार १२ ग्रहों का जोशियों ने निर्णय किया । केन्द्र, त्रिकोण और उपचय ऐसे कितने ग्रह हैं उसी प्रकार सौम्य, क्रूर और शुभ के देने वाले कितने हैं । नीच ऊंच और मित्र किस फल को देने वाले हैं ॥ २६ ॥

छप्पय नं० २६ के आधार पर महाराजकुमार श्री ७ रससागरस्य जन्मकुंडलिका



अथ फलभाव-छंद भुजंगप्रयात.

वसें आदि थानं भृगुत्ता प्रसंगं, रतीनाथ रूपं गती और अंगं ।
 महावीर बाहू बली नाद रचं, उदारं सुशीलं प्रिया प्रेममत्तं ॥
 रहे पंचमे सोम ताके प्रमाने, सुमेधा सुवृत्ती सबें शास्त्र जाने ।
 नवीन कृता भारती भेद तंत्रं, सदा इष्ट उपासनी वेदमंत्रं ॥
 पुनी पंचमे ए प्रभावं सुजीवं, दशं चत्र विद्या अभ्यासी सदीवं ।
 गुनालंकृतं दीनबन्धू सुदाता, सुखी संततं भोमि भुक्ता सु ख्याता ॥

षटं थान राहू परे येह रीतं, चढ़ें शत्रु जीतं रु आपें अजीतं ।
 प्रतापं उदे प्राक्रमे होत सिद्धी, दिनां ही दिनां राज रिद्धी सुवृद्धी ॥
 रवी नौम भावे महा भाग्यकारी, वृतं तीरथं देव सेवोपचरी ।
 अनूगगसे वृद्ध वैरागवंतं, बड़े बोधके सोध तापं तपंतं ॥
 शशीधनु नौमे बसे एह गत्ती, सुज्ञाता उदे अदृष्टं धर्ममत्ती ।
 परब्रह्म सोधत बोधं सत्तं, तपं तीरथं जोगवृत्ती चहंतं ॥
 दशम्भे कुजं ता फलं ये प्रकृती, शुभं राजजोगं बहें चक्रवृत्ती ।
 सुखं साजको भोग तासों कहावे, करे जास अभ्यास सोई उभावे ॥
 स्थितं मंद एकादशे सो उपासी, उरं अंतरं भाव लावे उदासी ।
 उदासी बढेंत पराक्रम धारे, पराक्रमको छोरि बोधं विचारे ॥
 गयो द्वादशं केतु ताके मुजोगं, जुरावें कहूं प्रेम तासैं बियोगं ।
 मनं व्याकुलं कष्टकारी मुधारे, ग्रहें नौग्रहं भेद भिन्न विचारें ॥ २७ ॥

हे नृपेन्द्र ! प्रथम भुवन में शुक्र विराजने से राजकुमार कामदेव के समान रूपवान शरीर, गोरा, कान्तिवान, बाहुबल में महावीर, पराक्रमी तथा शूरवीर, संगीतप्रेमी, उदार और सुशील तथा पत्नि-प्रेम में मस्त रहेगा । पांचवें भुवन में चन्द्रमा हैं, अतः महा बुद्धिमान्, समस्त निष्ठावान्, समस्त शास्त्रों का मर्मज्ञ तथा नवीन प्रकार से कान्य का रचने वाला तथा सदैव वेदों के मंत्रों द्वारा अपने इष्ट का उपासक होगा । पांचवें भुवन में सुरुगुरु (बृहस्पति) हैं, इसका प्रभाव ऐसा है कि सद्गुण रूपी अलंकारवान्, कुंवर चौदह विद्याओं का जानकार, दीनों के प्रति दयाभाव रखनेवाला, परोपकारी, दातार, सदा सुखवान और अपनी प्रशंसा के साथ पृथिवीपति होगा । छठे भुवन में राहु होने से युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सदैव अजीत रहेगा, प्रतापवान् पराक्रमी होकर दिन प्रतिदिन अपने राज्यभण्डार की वृद्धि करेगा । नववें भुवन में सूर्य है, सो यह अत्यन्त उकृष्ट होने से व्रत, तीर्थ और देवार्चन करनेवाला, अद्वापूर्वक वैराग्य में मन लगाने वाला, गुह्य ज्ञान का उपदेश मिलने से तप के तपाने से तपस्वी होगा । शीश अर्थात् चन्द्रमा का पुत्र बुध नववें भुवन में होने के कारण ज्ञानी, भाग्यवान्, धर्म के प्रति प्रीति रखने वाला, परमात्मा की उपासना करने से सत्य

वस्तु को पहिचानने वाला होगा—तप, तीर्थ तथा योग्यवृत्ति का इच्छुक रहेगा। दशवें भुवन में मंगल है, यह राजयोग के विषय में अति उत्तम है और इससे चक्रवृत्ति हो समस्त सुख और पदार्थों का भोक्ता होगा। और जिस जिस विद्या में मन लगायेगा उस उम विद्या में पूर्ण सफल होगा। ग्यारहवें भुवन में शनिश्चर है जिससे उपासना वाला होगा, किन्तु अपने सुकोमल हृदय के प्रति उदासीभाव रहेगा। उदासी भाव होने से पराक्रमी होगा पराक्रम के साथ महाज्ञान की खोज करेगा। बारहवें भुवन में केतु है जिसका प्रभाव ऐसा है कि यह किसी न किसी का वियोग करायेगा, वियोग की पीड़ा से व्याकुल हो अपने आपको कष्ट में डालेगा, इस प्रकार नव ग्रहों का फल है ॥ २७ ॥

दोहा—यही अनुक्रम राज सुनि, जन्मकुंडली भेव ।

दिये वसन मनि माल हय, बिदा किये दुजदेव ॥ २८ ॥

इस प्रकार एक के पीछे एक जन्मकुंडली के भेदों को सुन नृप प्रदीप ने उस ब्रह्मदेव को छोड़ा आदि, मणि मालादि आभूषण तथा वस्त्रादि दे बिदा किया ॥ २८ ॥

गाथा—“जन पद” नग्र सुनामं, भूप्रदीपं अयन उत्पत्ति ।

सुच्छम गनक प्रकारं, षष्ठ प्रवीण सागरो लहरं ॥ २९ ॥

देश तथा नगर का नाम, राजा प्रदीप के घर कुंवर की उत्पत्ति, और अनेक ज्योतिष शास्त्र के प्रकार वाली प्रवीणसागर की यह छठी लहर समाप्त हुई ॥ २९ ॥

लहर ७ मी

अथ कलाप्रवीनोत्पत्ति कथन-दोहा ।

शाप परें मृत लोक भो, चित्रकला अवतार ।

संज्ञा देश नरेश पुर, कहौं सु कछु बिस्तार ॥ १ ॥

श्रीशंकर भगवान् के शाप से चित्र-कला का भी इस मृत्यु लोक में जन्म हुआ, जिसका नामाभिधान, देश, शहर और उसके राजा का कुछ वर्णन यहां पर करता हूं ॥ १ ॥

छंद पद्धरी.

चत्र शष्टि भरत, जनपद प्रमान, उन संधि देश, लघु लघु सु आन ।
दीपंत सरस, गुज्जर सुदेश, वरनं सु वसें, चत्र विविध बेश ॥
भुअ धान दान, सन्मान भोग, जग प्रसिध सुजश, जहां भक्ति जोग ।
ऐसे समाज, गुज्जर अनूप, राजंत तहां, सहि पुहवि रूप ॥
मनछापुरी सु, तिहि देश मद्धि, सुख अचल भोम, रति रिद्धि सिद्धि ।
राजान राज, राजंत तित्ति, नामं सु नीतपालं नृपाति ॥
सूरज्ज वंश, कुलमें सरंस, नामंत शीश, अनिशह नरेश ।
नव खंड सुजश, क्रिय अरि नमाय, अनुसरहिं शरन, षट्त्रीस आय ॥
इक सहस कोस, गिरदी अमल्ल, उन सत्रसहस, पुर हैं अदल्ल ।
लख दोय बाज, पखखर लगंत, पयदल असंख, आबस पुलंत ॥
सत दोय करी, मद सोय, सुखपाल और, रथ सहस दोय ।
बिबि सहस द्वार, दुंदुभि बजंत, पचरंग निसान, दो सहस पंत ॥
पुनि और किते, बाजंत पुरः, सोरह हजार, बानैत सूर ।
यह नीतपाल, इहि विधि प्रताप, अरि लीन जीत, अनजीत आप ॥
राजंत मनछापुरीय राज, सोहंत नगर सुरपुर समाज ।
बनि सहर पास, चहुं ओर बाग, फल फूल भूल रहे मनहु फाग ॥
तरु तरु सुभृंग, भंकार तथ्य, सुर पिक अनेक, सहकार सथ्य ।
कई ताल सरित, वापी सुकूप, पनिहार घाट, घट जात रूप ॥

(१) एक और एक (दो)

परचंड मंड, जहां सुर प्रसाद, वह मिलन व्योम, मनु लगे बाद ।
 सुचि विप्र तहां, जुर करत सेव, भाषंत अमित, श्रुति वेद भेव ॥
 ओपे प्रकार, गिरि सम उत्तंग, भैभीत शत्रु, निज पुर अभंग ।
 वह सो भ्रषन, तिन बुरज बान, पेखंत प्रशुन, छूटे सुप्रान ॥
 जुगती सु सहर, चौसर बजार, चलि आत बनिज, जन दिसहि चार ।
 लख कोटि अरब, धन होत लेख, व्यापार भारभीर सु विशेष ॥
 निज राजमहल, सोहत अनूप, रुचिसों जु रच्ये, विधि धरानि रूप ।
 कलशं सुहेम, ता शशी केत, दुति देवराज, ग्रह प्रभा देत ॥
 बिच राजमहल, भामनि विशेष, दुरि जातरूप, सुर ललन देख ।
 परसिद्ध जगत, माधि नीतपाल, बिलसंत राज, सुख आत विसाल ॥ २ ॥

इस भरत-खण्ड में मुख्य चौमिठ देश हैं तथा इमकी सरहद से लगे हुए अनेक दूसरे छोटे-छोटे देश हैं, जिसमें गुजरात देश अन्यन्त फलदायक तथा देदीप्यमान है, जहां विशेष कर विविध जाति के लोग वाम कर रहे हैं, जहां दान, धन, सन्मान सर्व प्रकार से होता है, इससे मारी प्रजा अनेक प्रकार के वैभव भोगती है, जिसका सुयश संसार भर में विख्यात है, जहां भक्ति-पूर्वक परब्रह्म की पूर्ण आराधना होती है, इस प्रकार गुजरात देश अनुपम तथा सुखी है । मनच्छापुरी नामक बड़ा शहर समस्त संसार में सुप्रसिद्ध है । वह इस देश के मध्य-प्रदेश में शोभायमान है । जहां संसार के अन्त तक नाश नहीं । अच्छा सुख, भोग-विलास तथा समृद्धि से परिपूर्ण है । जहां सूर्यवंशी, अति श्रेष्ठ, नृपशिरोमणि नीतिपाल राजा राज्य करता है, जिसको छत्तीस कुलके राजा सदैव मस्तक झुकाते हैं, तथा जिसने नौ खण्ड में शत्रुओं को परास्त कर अपनी पूर्ण कीर्ति फैला रखी है । एक हजार कोस की गिरद में जिसकी सत्ता है और सत्तर हजार ग्राम जिसकी सत्ता में हैं, दो लाख घोड़े सवार तथा असंख्य पैदल सैनिक आज्ञा पालन करते हैं । जिसके यहां सुखपाल के साथ दो हजार रथ और मदोन्मत्त हाथी भूम रहे हैं, दो हजार दुन्दुभि राजद्वारे पर बजने के साथ ही अनेक

रंग विरंगे निशान फहरा रहे हैं। इसके अतिरिक्त शहर में अनेक और दूसरे बाजे बज रहे हैं, धनुष बाण धारण किये हुए १६ हजार योद्धा सैन्य में शोभायमान हैं ऐसे पृथ्वी पर महा प्रतापी नीतिपाल नरेन्द्र अरि अर्थात् शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अपने बाहुबल द्वारा अर्जीत कहलाये हैं। राजा की मनच्छापुरी इन्द्रपुरी के समान शोभायमान है, शहर के चारों ओर बाग-बगीचे लग रहे हैं जहां फल, फूल तथा लतायें लग रही हैं जिन्हें देखने से प्रतीत होता है कि मानो वसन्त खिल रही हो। वृक्ष-वृक्ष पर भंवरे गुंजार रहे हैं, आम की टहनियों पर बैठी हुई अनेक कायल मधुर स्वर से बोल रही हैं, अनेक तालाब, नदियों और पानी से भरे हुए कुओं के पनघटों पर स्त्रियां चकाचौंध कर देने वाले कनक-कलश को लिये हुए आती जाती हैं। जहां ऊंचे प्रचण्ड देवालय गगन के साथ बात करने का अनन्य वाद हों, ऐसा प्रतीत होता है। जहां विशुद्ध ब्राह्मण देवपूजा, अनेक प्रकार से, वेद, श्रुति आदि के मंत्रों द्वारा हाथ जोड़ स्तुति कर रहे हैं। पहाड़ के समान ऊंचा नगर का कोट शोभायमान है। ऐसे भंग न होने वाले शहर से शत्रु भयभीत हो पड़ते हैं। बलवानों को नाश करने वाले अनेक तीखे बानधारी किले के ऊपर डट रहे हैं, जिनके देखने मात्र से कायरों के प्राण निकल जाते हैं युक्ति के साथ चौपाटी पर नगर का चौपड़ बाजार है चारों तरफ व्यापारीगण आ लाखों, करोड़ों और अरबों की बेची तथा खरीदारी करते हैं। बाजार में व्यापार जोर से चलने के कारण जनता की भरपूर भीड़ लग रही है। राजमहल अनुपम शोभायमान हैं। उस महल में मानों विधि न समस्त अपनी इच्छानुसार सारी पृथ्वी का रूप लाकर रखवा हो। ऐसे महल के शिखरों पर अनेक कनक कलश चमक रहे हैं। जैसे देवराज अर्थात् इन्द्र के गृह की शोभा हो, ऐसा शोभायमान है उसके अन्दर रहने वाली स्त्रियों का रूप देखकर देवांगनायें भी लज्जा को प्राप्त होती हैं। इस प्रकार जगत्-विख्यात नीतिपाल राजा अनेक प्रकार के सुखको भोगता हुआ राज करता है ॥२॥

दोहा*-नीतिपाल वह ग्रह सुता, चित्रकला भव लीन ।

नीलकंठ पंडित सु तिहि, जन्मकुंडली कीन ॥ ३ ॥

नीतिपाल राजा के ग्रह चित्रकला नामक कुमारी का जन्म हुआ, उसकी नीलकण्ठ पण्डित ने जन्म-कुंडली तैयार की ॥ ३ ॥

सोरठा-यह ग्रह भाव बनाय, नीलकंठ नृप पै गये ।

नीतिपाल द्रुग लाय, बोले ग्रह फल बरानिये ॥ ४ ॥

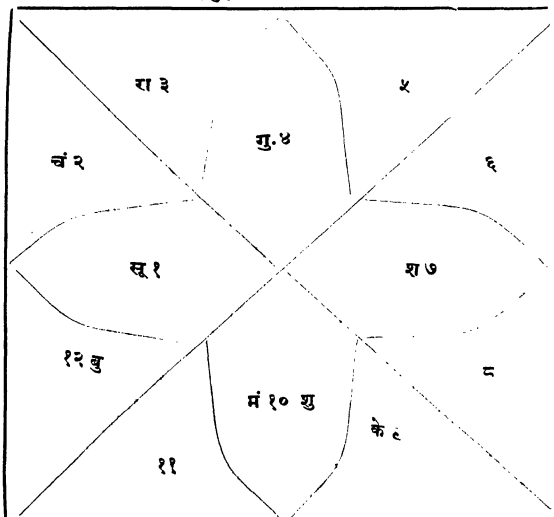
इस प्रकार नीलकण्ठ पण्डित ग्रह, भाव आदि सोच महाराज नीतिपाल के पास गये उस समय कुण्डली को देख महाराज श्री नीतिपाल ने कहा कि हे पण्डित ! तुम जो जन्मकुण्डली तैयार कर लाये हो, उसके फलों का वर्णन करो ॥ ४ ॥

ग्रहलग्न फल भाव-छप्पय

कर्क लगन तनु भुवन, तहां सुरुगुरु अधिकारिय ।

तुल चातुर शनि बसत, षटम धन केतु बिचारिय ॥

* ग्रहों ऊपर से बनाई हुई कलाप्रवीण राजकुमारी की जन्मकुंडलिका ।



(१) रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु, ये नव ग्रह हैं ।

संक्षेप से इनका विवरण लिखता हूँ ।

- (रवि) सूर्य पृथ्वी से चार करोड़ पैंसठ लाख मील दूर है । व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना अतः ४३३००० कोश है । घन-फल से देखें तो सूर्य ने जो स्थान घेर रक्खा है उसमें इस पृथ्वी जैसे १२५०००० पिण्ड समा सकें । सूर्य पृथ्वी से बड़ा है लेकिन पृथ्वी के समान ठोस नहीं होने के कारण वजन (तौल) में पृथ्वी का चौथाई है । चन्द्रमा के समान सूर्य में भी धब्बे हैं जो घटते बढ़ते हैं ।
- (सोम) चन्द्रमा पृथ्वी से २३८८०० मील दूर है । इस पृथ्वी के चौरफ घूमने में २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनट और ११॥ सेकेंड लगते हैं । भास्कराचार्य के मत से चन्द्रमा जलमय है । यह खुद प्रकाशमान नहीं है सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है ।
- (मङ्गल) यह सूर्य से १४१५००००० मील दूर है । यह पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से दूना है । दुरबीन के जरिये इस में स्थल और नहरें अधिक दिखाई देती हैं ।
- (बुध) यह सूर्य से ३६०००००० मील दूर रह कर ८८ दिन में उसकी परिक्रमा करता है । इसका व्यास ३१०० कला व्यास ७२०००००० मील है । यह १ घण्टे में १ लाख मील चलता है । आकार पृथ्वी का १८ अंश है ।
- (बृहस्पति) यह सूर्य से ४४३०००००० मील दूर और व्यास ६३००० मील है । परिक्रमा काल ४३३३ दिन है । व्यास में पृथ्वी से ११ गुणा विशेष है । दुरबीन से इसके पृष्ठ पर समानान्तर रेखायें दिखाई देती हैं । अभी यह बाल ग्रह माना जाता है । इसको निर्माण हुए अधिक समय नहीं हुआ ।
- (शुक्र) यह पृथ्वी से एक करोड़ कोश और सूर्य से तीन करोड़ पैंतीस लाख कोश दूर है । व्यास में यह ७०० मील है ।
- (शनि) सूर्य से अन्तर ८८३०००००० मील व्यास ७५८०० मील । इसका आकार विचित्र है । इसके बाहर चौरफ बहुत बड़ा वलय है । वलय से इसके पिण्ड की दूरी ५६०० मील जो चौड़ाई में ११२०० मील और व्यास १७२८०० मील है ।
- (राहु) पुराणानुसार नव ग्रहों में से एक । इसके पिता का नाम विप्रचित और माता का नाम सिंहिका था ।
- (केतु) इसको पुच्छल तारा भी कहते हैं । इसका शिर राहु और धड़ केतु के नाम से प्रसिद्ध है । (हि०श०) पृथ्वी

मकर सप्त कुज शुक्र, मीन नववें बुध मानहु ।
 *मेष दशम गृह भानु वृषभ शशि ग्यारम थानहु ॥
 द्वादसे मिथुन राहू रहत, जिहि जिहि जैसे फल दहें ।
 निश्चय निहारि जातक जुगति, करि उदार सो सो कहें ॥५॥

कर्क लग्न है, और उसके भुवन का अधिपति बृहस्पति है, चौथे भुवन में शनि तुला का पड़ा हुआ है । छठे भुवन में केतु धन का है, सातवें भुवन में मंगल और शुक्र मकर के हैं, नववें भुवन में बुध मीन का हो रहा है । दशवें गृह में सूर्य मेष का है । वृषभ राशि का चन्द्र ग्यारहवें भुवन में है और बारहवें भुवन में राहु मिथुन का है यह जो जो गृह जिस जिस के फल के दाता हैं वे सब ज्योतिष शास्त्र की युक्ति के साथ निश्चय कर उदार नीलकण्ठ पण्डित राजा के पास बैठ कर कहने लगा ॥ ५ ॥

अथ नीलकण्ठोक्त ग्रहलग्न भावफल-छप्पय
 प्रथम देवगुरु गते, चंद्र आनन ब्रन कुंदन ।
 एन नैन शुक्र घ्राण, करक रद कोकिल कुंजन ॥
 तन कोमल दल कमल, बेनि विषधर कटि केहर ।
 अरु रंभा नख नीक, अरुन पद रसन अधर कर ॥
 करता सुकाव्य संगीत रस, सुबुधिशील शीतल प्रकृति ।
 रतिराज रीत कोविद मुरस, गुरु सुभाव मन हंस गति ॥ ६ ॥

प्रथम भुवन में देवगुरु बृहस्पति है, जिसके कारण इसका मुख चन्द्रमा के समान, रंग कुंदन जैसा, आँखें मृग के समान, नाक तोते की चोंच के समान झुका हुआ, दांत अनार के दाने के समान, कण्ठ कोकिला के समान कमल-स्थल के समान अंग, महा विषधर शेष नाग के समान काला स्याह सर के बालों का चोटा, तथा सिंहनी के समान जिसकी कमर है । कदली-स्थम्भ के समान हथेली, हीरा के समान नख तथा पग के तले, जीभ, होठ और हाथ लाल हैं, उत्तम काव्य रचने वाली, संगीत में कुशल, बुद्धिमान, सुशील, कामक्रीडा में निपुण, नौ प्रकार के रसों के भेदों को जाननेवाली, उदारस्वभाव, गति हंस के समान, इस प्रकार महाराज ! आपकी राजकन्या मुरतन होगी ॥ ६ ॥

* असल प्रति में “ उर वरल आय वसल एकादशी धावहु ” पाठ है ।

छंद त्रोटक

चतुरं मुवसें खग मंद जिहीं, अति उन्नत थान हरम्य तिहीं ।
 उन ग्राम घने बन बाग लता, सबसे अरुची मन व्याकुलता ॥
 पटमैं ग्रह केतु जिहीं रहतं, अति चातुरताइ उदार चितं ।
 तन व्याधि न व्यापत तासु यथा, भय आतुर मानसि आधि व्यथा ॥
 भृगु सप्तम थानक जामु रहैं, अति चातुरता पति तासु कहैं ।
 वह दंपतिको मन एक सदा, सुख होय लखें अलखें दुखदा ॥
 सपतं ग्रहमें पुनि भोम रहे, मन कंथ मिलें तन नां मिलिहैं ।
 विरहा तन तापसु आतुरता, मुरनं न प्रियं सुरता सुरता ॥
 नववें शशि सनु सुशीलवती, तप तीरथ सेवित पुण्यमती ।
 गुनवान सुमंत्र संगीत पढ़ें, रति संभृति देवन सेव बढ़ें ॥
 दशवें रवि उच्च ग्रहे गति हैं, परताप बड़ो दिनहीं प्रति हैं ।
 विविधं वह राज मुनीत लहैं, क्रम कीरति योग विशेष कहैं ॥
 दश एकम जामु शशी मुवसें, रतनांबर ईभ अनेक असें ।
 बुधि दीनदयाल कमी न धनं, सुचिता रुचि प्रेम प्रकाश मनं ॥
 बसि द्वादश राहु रह्यो जिनको, अनुराग विराग बढ़ें तिनको ।
 भयभीत सु चित्त नहीं थिरता, ग्रह ए फल जातक उच्चरता ॥ ७ ॥

चौथे स्थान में जिसे शनि हां तो उम बड़े विशाल रमणीय महल,
 ग्राम्य, वन, बाग, बगीचे आदि अनेक सुख-साधन मिलें परन्तु अरुचि तथा
 मन की व्यग्रता बनी रहेगी । छठे भुवन में जिसका केतु हां तो चतुर, उदार तथा
 उसका शरीर किसी भी दिन दुखी न हो, परन्तु हृदय में भय, आतुरता तथा चित्त
 सदैव वृथा ही चर-चर जला करे । शुक्र जिसका सातवें स्थान में पड़ा हो उस स्त्री को
 चतुर तथा ठिकाने का पति मिले, स्त्री पुरुष का निरंतर एक मन रहे, तथा एक दूसरे
 को देख कर आनन्द और वियोग का दुःख मानें । सातवें भुवन में मंगल
 हो तो इच्छानुसार पति मिले, किन्तु एक-दूसरे का मिलाप न होने से वियोग में
 जला करें, तथा विरह दुःख के प्राप्त होने से अधीरता और आतुरता रहे,
 अपने शरीर की खूब-सूती पर अभिरता और उसका तिरस्कार करे, जिस

प्रकार अपने सुख का सब भंडार चुक गया हो इस प्रकार अनुमद कर तथा अपनी सारी सुध बुध रति-राग में ही व्यतीत किया करे । नववें स्थान में शशि सुत बुध हो तो स्त्री शीलवान, पतिव्रता, तप और तीर्थ करने वाली, पुण्येश्वरी, गुणवान, सुमतिवाली तथा संगीत विद्या की मर्मज्ञ और देवार्चन की अन्यन्त प्रेमी होय । दशवें भुवन में सूर्य उच्च का हो तो महान् प्रतापवान हो । तथा उसकी कीर्ति दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़े, अनेक राज खटपट की रीति नीति की जानकार, कीर्तिवान तथा योग की जानने वाली हो । ग्यारहवें भुवन में चन्द्रमा हो तो वह रत्नादि से जड़ित आभूषणों, हाथी तथा अनेक घोड़ों को प्राप्त करे और बुद्धिमान, दीनों के प्रति उदार, नाश न होने वाली स्मृद्धि-वान लक्ष्मीवान हो, प्रत्येक वस्तु पर रुचि और मन में प्रेमका प्रकाश हो । बारहवें भुवन में जिसे राहु हो वह प्रेम और वैराग्य की उन्नति करे, सदा भयभीत चित्त के साथ धीरज और अस्थिर मन वाली हो । इस प्रकार जातक शास्त्र ग्रहों के फल को कहते हैं ॥ ७ ॥

दोहा—मित्र दृष्टिको परखिये, उच्च नीच सम हेत ।

जाही को जैसी लगन, सो तैसो फल देत ॥ ८ ॥

ज्योतिष के पक्ष में मित्र की दृष्टि ऊंची नीची तथा मध्यम ऊपर से जानिये, जिमका जैसा लगन होता है वह वैसे ही फल का देने वाला होता है ॥ ८ ॥

मित्र के पक्ष में उत्तम मध्यम और अधम, यह तीन प्रकार के मित्र हांते हैं वे वैसा ही काम करते हैं जैसी उनकी प्रकृति होती है । अतः मित्र की दृष्टि से परीक्षा कीजिये कि उसकी मुक्त पर उत्तम, मध्यम और अधम प्रीति है अर्थात् जैसी प्रीति होगी वे वैसे ही फल के दाता होते हैं ॥ ८ ॥

अथ नीतिपाल वाक्य—सोरठा

नीलकण्ठ खग थान, कहे सुफल जाने सवें ।

यह मंगल दुखदान, कहा करै ईश्वर अगम ॥ ९ ॥

हे नीलकण्ठ पण्डित ! तुमने जिन ग्रहों के फल को कहा वह सब तो ठीक हैं, किन्तु सातवें भुवन में मंगल पड़ा है, वह बहुत दुखदायक मालूम होता है इसका उपाय क्या है ? ईश्वर की गति अपार है, उसका पार किसी ने नहीं जाना है ॥ ९ ॥

दोहा—इतनी कहि कीन्हें विदा, दुजन दान बहु दीन

नाम सुभग नृपने दियो, कुंवरी कलाप्रवीन ॥ १० ॥

ऐसा कह ब्राह्मण को बहुत दान दे विदा किया, तत्पश्चात् राजा ने अपनी इच्छानुसार राजकुमारी का कलाप्रवीण नाम रक्खा ॥ १० ॥

अथ कुसुमावलि उत्पत्ति प्रसंग—दोहा

ता पुरमें दुज रहत हैं, चतुरानन अभिधान ।

गृह हय गय फंदन अरथ, राजद्वार सनमान ॥ ११ ॥

उसी नगर में एक चतुरानन नाम का ब्राह्मण रहता है उसके घर पर हाथी, घोड़ा और रथ हैं जो सुन्दर बेल बूटेंदार चानणी में सजे हैं, उसका राज दरबार में अच्छा मान है ॥ ११ ॥

आगेहीं उमया भ्रता, पुष्पावती सु नाम ।

सो कुसुमावलि भई सुता, वह चतुरानन धाम ॥ १२ ॥

पहिले श्री उमाजी की दासी पुष्पावती का नाम कह आये हैं, वही इस ब्राह्मण के घर कुसुमावली नाम की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥

अथ कलाप्रवीन बालचरित्र वर्णन—छंद उद्गारे

शिशुता बेस में परवीन, ललना सरस आभा लीन ।

बाधर रैन बाढ़त गात, मानहु जल बड़ें जलजात ॥

बानी बाल मुख तुतरंत, कोकिल कलभ कल उचरंत ।

तनया मिलत जूथ नरेश, समता शील कुल बय बेस ॥

गावत बाग बीच सुजाय, खेलत ताल नूपुर लाय ।

मानहु हंस शूक पिक सार, लागे एक बेर उच्चार ॥

कर तन लटक जूथ कुमारि, मानहु कनक कुंज बयारि ।

फूलन गेंद मारत हेत, फरकी मीनकी गति लेत ॥

ऐसी रीति खेल अनंत, कीजत जोइ चाहें चंत ।

तब कछू समझी नृप जान, दीन्हों पढ़नको फरमान ।

लागे गुरु पढ़ावन हेत, मुखसे बरन विकसे लेत ॥

व्रतविधि संग्रती अभिधान, काव्य सु नीति शास्त्र सुबान ।

साहित जातक संगीत, श्रुति पढ़ि कोक जानी रीत ॥ १३ ॥

बाल्यकाल से ही प्रवीण विलाशवती होकर मनोहर शोभा धारण करने लगी, उसके दर्शनों से जैसे शान्तचन्द्रिका में नहाते हों, अमृत शरोवर में गाते लगाते और शीतल आनन्द की वाटिका में फिरते हों, ऐसा आनन्द अनुभव होता है जिस प्रकार सरोवर में उत्पन्न हुआ जलजात कमल पानी के बढ़ने से बढ़ता है उसी प्रकार कलाप्रवीण का शरीर रात दिन बढ़ने लगा । बाल्यकाल में तोतली बोली बोलनेसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोयल का बच्चा मधुर स्वर से उच्चारण कर रहा हो । समान स्वभाववाली, शीलवान्, कुलवान् एक समान आयु वाली आदि अनेक सुन्दरतायें हैं, ऐसी राजकुमारियों के समुदाय में मिल, बाग में जाकर मधुर आलाप से गाती है । साथ ही नूपुर के झनकार में खेलती है । जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हंस, तोता, कोयलादि पक्षियों के टोले एक ही समय आम के वृक्ष पर कलकल सहित माधुर्यता से स्वरोच्चारण करते हों । वे कुमारियां गाते समय कमर तक झुक झुक एक दूसरी के प्रति इशारे करती हैं । जैसे बन की लतायें पवन से नीचे लचक जाती हों, ऐसा प्रतीत होता है । वहां एक दूसरी परस्पर फूलों को मारती हैं, उसे बचाने का, बड़ी फुर्ती से इधर उधर घूम जाती हैं जैसे पानी में मछली घूमती हैं । इस प्रकार नाना भांति के अनन्त खेल २ कर आनन्द मनाती हैं । कई दिन बाद राजा नीतिपाल ने कुमारी को योग्य समझ पढ़ने की आज्ञा दी । विद्यागुरु अत्यन्त स्नेह से पढ़ाने लगे । गुरुमुख से निकलते ही कुमारी एकदम अपने हृदय में लिख लेती हो इस प्रकार व्रतविधि, धर्म, शास्त्र, काव्यनीति, साहित्य तथा संगीत ज्योतिष विद्या, वेद, पुराण, कोकशास्त्र आदि सीख कर सकल विद्यानिधि होगई ॥ १३ ॥

दोहा-संग सहेली सब पढ़ी, कुसुमावलि तिहि साथ ।

को न प्रवीण प्रवीनसी, काव्य करन समराथ ॥ १४ ॥

कुमारी कलाप्रवीण के साथ की कुसुमावलि सहित सारी सहेलियां पढ़ीं तो सही किन्तु काव्यरचना में कलाप्रवीण के समान कोई नहीं हुई ॥ १४ ॥

तब नृप दुज दच्छा दर्ई, भई कुमरि वय संघ ।

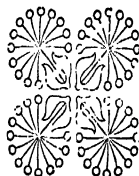
नीतिपाल निज मन मुदित, सोधन लगे समंघ ॥ १५ ॥

इस प्रकार कुमारी को सकल गुणसम्पन्न जान विद्यागुरु को दक्षिणा दी ।
इसके बाद राजा नीतिपाल ने कुमारी को सम्बन्ध योग्य जान मन में अत्यन्त हर्ष
लाकर योग्य वर ढूँढने लगे ॥ १५ ॥

गाहा-मनछापूरी प्रसंग, राज मुनीतिपाल रजधानी ।

उद्भव कलाप्रवीने, सप्त प्रवीनसागरो लहरं ॥ १६ ॥

मनछापूरी के सम्बन्ध वाली, नीतिपाल राजा तथा उसकी राजधानी का
वर्णन, कलाप्रवीण का जन्मचरित्रयुक्त प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह सातवीं
लहर समाप्त हुई ॥ १६ ॥



लहर ८ मी ।

अथ रससागर चरित्रवर्णन, दोहा

नृप प्रदीप आतमज तस, ग्रहो न गनक प्रमान ।

सोधि सुभग दीन्हों सुतिहि, रससागर अभिधान ॥ १ ॥

महाराजा प्रदीप ने कुँवर का नाम जोशी के कहने के अनुसार न रख अपनी इच्छानुसार रससागर रक्खा ॥ १ ॥

बढ़त बेस दिन दिन बढ़े, रूप सुमति रति रंग ।

चढ़त सु शशिसागर लहर, यों रससागर अंग ॥ २ ॥

जिस तरह प्रतिदिन चन्द्रमा की कला तथा लहर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार रससागर की आयु, रूप, सुमति, रतिरंग आदि बढ़ने लगे ॥ २ ॥

सोरठा—सप्त वर्ष हुआ संग, पंडित ढिग बैठे पढ़न ।

जो गुरु कहत प्रबन्ध, सो सहसा सीखत सबैं ॥ ३ ॥

कुँवर सात वर्ष के हुए ही थे कि पंडित के पास पढ़ने लगे । विद्यागुरु जो जो विषय बताते हैं उन्हें वह सहज ही में सीख लेता है ॥ ३ ॥

छप्पय—प्रथम बरन पहिचान, अंक मत्ता सु अनुक्रम ।

पिंगल छंद समान, अमर व्याकरण स्मृति ध्रम ॥

पंच काव्य षट शास्त्र, राजनीति सब जानी ।

गनक भेद साहित्य, समुक्त संगीत सुबानी ॥

पुनि कोककला अनुमान पढ़ि, भिन्न वेद भेद सुग्रहें ।

महाराज रीक्त मनहंस, दुज द्वादश पुर दच्छा दहें ॥ ४ ॥

प्रथम अक्षर का ज्ञान होते ही अनुक्रमानुसार गणितादि अंकों का अभ्यास किया । पिंगल के छन्दों का प्रमाण, अमर इत्यादि कोष, व्याकरण, मनुस्मृति आदिक धर्मशास्त्र, रघुवंश, माघ, कुमार, किरात और नैषध यह पंच काव्य, वेदान्त, न्याय, सांख्य, मीमांसा, पातंजली आदि छः शास्त्र, राजनीति, ज्योतिष भेद, साहित्य और संगीत, शास्त्र आदि जान लिये । साथ ही कोकशास्त्र की कला

को जानी, वेद के पृथक् पृथक् भेदों का अभ्यास किया । इस प्रकार कुँवर के अभ्यास से मनहंस पंडित के ऊपर प्रसन्न हो राजा प्रदीप ने उसे १२ ग्राम दक्षिणा में दिये ॥ ४ ॥

दोहा—बांक बनेंटी अरु पटा, धनुविद्या सब साध ।

बाज फिरावन राजविधि, आखेटक आराध ॥ ५ ॥

लेजम, लाठी, पटा खेलने तथा बाण विद्या आदि कला को सीखकर घोड़ा फेरने की रीति, राज्यसम्बन्धी विषय तथा शिकार के भेद आदि भी जान लिये ॥ ५ ॥

सोरठा—राजनीति की रीति, रससागर जानें सबै,

सोय कहों करि प्रीत, मुच्छम भेद सुसंग्रह ॥ ६ ॥

राजकुमार रससागर राजनीति की समस्त रीति जानता है जिसे बड़े प्रेम से सूक्ष्म रीति से सुनाता हूँ ॥ ६ ॥

अथ राजनीति वर्णन—छंद रोला ।

राजनीति की रीत, एह रससागर जानें । करि मज्जन नित प्रात, देव-शेवा अनुमानें ॥ हय गय शाला देखि, अस्त्र विद्या आराधन । आरोहे आरूढ, बाग बन नगर निहारन ॥ कोट खंघ कैवाँन, शिलहखाना सु निहारें । किंकर निज निज थान, सावधान सु संभारें । प्रजा अरज पहिचान, तामु तकशीर सुधारत । जिहि जिहि जैसो दोष, दंड तैसो तिहि डारत ॥ सांच बात संग्रहें, झूठ परनीत न आवें । चुगल चोर हुअरी, समय के लिये निभावें ॥ निज अमीर उमराव, पुराने मान न खंडे, दीन दुजन प्रतिपाल, गुनेगारी ग्रह दंडे ॥ पुनि प्रधान दीवान, मान दिन दिन सु बढ़ावें । सरजोर सु उथ्यपें, हुकुम हाजर सु दटावें ॥ कविकी मति वत दान, शूर सनमान सदाहीं । करें हुकुम हित काम, रीझ पावत हैं वार्हीं ॥ सेन पुरानो अटल, नयो समया सर राखें । बेध सु कारिय बेध, हेत हित कारिय दाखें ॥ कबहुं होत पल कठिन, तबहुं हिम्मत नहिं छंडे । आप विकट आगमें, ईश विश्वास सु भंडे ॥ सेवक स्वामि सु धर्म, पटो दूनो सोइ पावें ।

द्रोही धर्म जो होत, ताहिको मूल मिटावें ॥ निज पैदास निहार, षटह भाग
 सु तिहि कीजे । एह भरत भंडार, दान पुनि एक सु दीजे ॥ तीन सेन प्रति
 खरच, एककी एह द्रढाई । राज काज पर गाह, बाज गजराज खवाई ॥ नित-
 प्रति चातुर संग, मूढ समीप न आनें । भूषण वसन सुधारे, सभा रिक्तवो
 निज जानें ॥ राग रंग रीझवो, रीझ जैसी तैसी देत । कामनि विविध बिलास,
 कोक चात्रिको गत ॥ आखेटक अभ्यास, कैफ करवो कोहि दिन । मित्र
 हेत अरि दहन, खटक विसरे न कभी मन ॥ ७ ॥

राजनीति की रीतरत्नसागर जानता है, अर्थात् कुमार इस विषय में सर्व प्रकार से कुशल है । प्रतिदिन प्रभात में उठ, सुगंधित तेल मर्दन कर, गंगोदक से स्नान कर शुद्धतापूर्वक देवार्चन करता है; पश्चात् नाना प्रकार के वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित होकर अपने अङ्गरक्षकों के सहित राज तथा अश्वशाला को देखकर अस्त्र अर्थात् तीर बधिरह दूर से फेंकने के हथियारों की विद्या साधन करता है अर्थात् निशाने का अभ्यास करता है । इसके उपरान्त रत्नजडित स्वर्णभूषण से सुसज्जित पंचकल्याण घोड़े पर सवार होकर वाग बगीचा, वन उपवन, नगर आदि में भ्रमण करके कोठार, किला, खाई, शस्त्रागार आदि का निरीक्षण और पहरेदार अपने २ कार्य पर मुस्तैद हैं या नहीं इसकी जांच करने के पश्चात् राजमहिमान पर विराज प्रजा की प्रार्थना सुनते हैं । दोषी जनों के दोष का सुधार करते तथा अपराध के अनुसार दंड देते हैं । सत्य का ग्रहण करते हैं, असत्य का कभी विश्वास नहीं करते, चोर चकार तथा हुनरमन्द लोगों का, समय पर काम आने के विचार से राज्य में निर्वाह करते हैं । अपने अमीर उमराव तथा पुराने सज्जनों का कभी भी मान भंग नहीं होने देते । गरीब ब्राह्मणों का पालन करते हैं तथा अपराधी को दंड देते हैं, अपने प्रधान, दीवान आदि कर्मचारियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि करते हैं । शिर-जोर आदमी को निकाल बाहर करते हैं और सब को हुक्म के अनुसार वर्तने की उत्तेजना देते हैं । काव्यरचयिता कवियों को उनकी योग्यता के अनुसार पुरस्कार देते हैं, शूरवीरों का सन्मान करते हैं, पुरानी सेना को स्थिर रखते हुए नए सैनिक भरती कर उन्हें युद्धकला की शिक्षा देते हैं । वैरी से वैर और हेतु के साथ प्रीति करते हैं । दैव गति से कभी कठिन समय आजाने पर हिम्मत

नहीं हार बैठते, प्रत्युत ईश्वर पर विश्वास रख धैर्य से काम लेते हैं । सेव्य सेवक धर्म के अनुसार वर्ताव करने वाले दूनी तनखाह पाते हैं, पर धर्मद्रोही जनों को जड़ मूल से नष्ट कर डालते हैं । अपनी आय देख उसके छः भाग कर, एक भाग राज-भण्डार में, एक भाग दान पुण्य में, तीन भाग सेना पर व्यय करते हैं, और शेष एक भाग में हाथी, घोड़ा आदि दूसरे राज काज चलाते हैं । सदा चतुर जनों का संग करते हैं, मूर्ख को सामने भी नहीं आने देते । नित्यप्रति नये २ बखालङ्कार धारण कर राजसभा में उपस्थित होते हैं । राग रंग से प्रसन्न हो योग्य-तानुसार पुरस्कार देते हैं । कामिनी के विविध विलास तथा कोकके समस्त भेदों को भली प्रकार जानते हैं । आखेट का पूरा अभ्यास है । नशे को निंद्य समझ किसी २ दिन करते हैं । मित्र के प्रति प्रीति और शत्रु के नाश को कभी मन में से भुलाने नहीं ॥ ७ ॥

दोहा-भेद यहै जानें सबै, रससागर सुकुमार ।

रूप प्रदीप पर है सदा, राज काजको भार ॥ ८ ॥

इस प्रकार कुमार रससागर सब भेदों को जानते हैं । राज्यतंत्र का समस्त भार महाराज प्रदीप ने अपने ऊपर ले रक्खा है ॥ ८ ॥

यातें कुंवर न काज कलु, मनवत मुख विलसंत,
कुल वय सम रजपूत कवि, आवृत रहत अनंत ॥ ९ ॥

इसलिये कुमार को कोई काम न होने से मनवांछित विलास भोगते हैं तथा कुमार निरंतर समवयस्क कुलीन राजपूतों और कवियों से घिरे रहते हैं ॥ ९ ॥

गाहा-सागर मित हितकारी, भारतिनंद कवि रविजोत ।

वीरभद्र सत्रसालं, रत्नप्रतापं कुमार उमराहं ॥ १० ॥

रससागर के हितकारी मित्रों में भारतीनन्द, रविज्योत कवि, वीरभद्र, सत्र-साल, रत्नप्रताप और कुमार उमराव हैं ॥ १० ॥

छप्पय-सतरंजादिक खेल, कबहुं गुन ग्रंथ वचावैं ।

सुरापान कवि मगन, कबहुं संगीत नचावैं ॥

कबहुं भगल मल कबहुं, कबहुं नट देखत साधन ।
 देत रीझवत दान, बसन धन भूषण वाहन ॥
 आखेट करत कबहुं अरन, प्रति उदान उतरत मुदित ।
 रस रंग राग नित नित नये, दिन दिन बिहरत यह जुगत ॥ ११ ॥

कभी शतरंज, चौपड़ आदि खेल और कभी गुण वाले ग्रन्थों का पाठ सुनना, कभी मद्यपान में मग्न और कभी संगीत और नृत्य में निरत; कभी मल्लों की कुश्ती और मल्लयुद्ध तो कभी नटों के खेल देखने और प्रसन्न हो उन्हें बैठने के लिये वाहन, वस्त्र, धन और आभूषण देते हैं । किसी समय शिकार जाते हैं तब अपने क्रीड़ावन में उतर क्रीड़ा कर आनंदित होते हैं । इस प्रकार हमेशा नये नये राग रंग, मोद प्रमोद में प्रतिदिन बिहार करते हैं ॥ ११ ॥

गाहा—द्विज विद्या उपदेशं, राजनीति बरनन संछेपं ।

रससागर सुचरित्रं, अष्ट प्रवीणसागरो लहरं ॥ १२ ॥

ब्रह्मविद्या का उपदेश, राजनीतिका संक्षिप्त वर्णन तथा राजकुमार रससागर का चरित्रयुक्त यह प्रवीणसागर की आठवीं लहर समाप्त हुई ॥ १२ ॥



लहर ६ मी ।

अथ आखेटक प्रसंग—दोहा

रससागर इहि विधि रहत, अति आनंद बिलास ।

भयो बेस द्वादश वरस, आयो चातुर मास ॥ १ ॥

रससागर इस प्रकार अति आनन्दपूर्वक रहते हैं । समय बीता और कुमार की आयु बारह वर्ष की हुई, चौमासा आया ॥ १ ॥

छप्पय—रससागर इक समय, मित मिल सौध बिराजत ।

मेघराग गुनि गात, गहर धुनि अंबर गाजत ॥

सुरापान महि मगन, याद आखेटक आयो ।

पंच सहस असवार, प्रति कुमार हुकम कहायो ॥

साजि सिलह सुभट पख्खर तुरिय, बोले प्रध नौबत बजी ।

पैदल हजार पंचहु लिये, दश सहस सेना सजी ॥ २ ॥

एक समय कुमार रससागर मित्रों सहित राजभवन में बैठे हुए थे उस समय वहां गविकायें, रंडियों के मेघ राग गाने के योग्य से गहरा नाद होता था, जैसे मेघ गर्जता हो, मदिरापान में सब मग्न हो रहे थे कि आखेट का ध्यान आया । राजकुमार ने पांच सहस्र सवारों को तय्यार होने की आज्ञा भेजी । आज्ञा पाते ही सुभट गण सब आयुध से सुसज्जित हो घोड़ों पर सवार हुए, चौबदार नकीब बोलने लगे तथा नौबत बजने लगी । पांच सहस्र पैदल सेना भी साथ ली । इस प्रकार दस हजार शूरवीरों की सेना सुसज्जित हुई ॥ २ ॥

दोहा—दश गय पंच हजार हय, पैदल पंच हजार ।

रससागर महाराजको, चढयो सु सहज शिकार ॥ ३ ॥

दस हाथी, पांच सहस्र घोड़े और पांच हजार पैदल, इस प्रकार महाराज रससागर की सेना सहज रीति से शिकार के लिए चढ़ी ॥ ३ ॥

अथ छंद पद्धती

सागर कुमार साजित शिकार, लीनी सु फौज दश सहस लार ।

नौबत मुनाद छूटे निशान, दुर्जन मु त्रास दिशह दिशान ॥

बाजंत तूर भेरी विशाल, कैवान बांन केते कमाल ।
 सागोश श्वान चीते सुसंग, बेहरि मुबाज जुररा बिहंग ॥
 लगरा सुफगर तूरमचि लीन, कूही सुबास कर बासकीन ।
 शकला सुपान मीरहु शिकार, दल मिलित आय दरबार द्वार ॥
 महाराज चढ़त लीनी सलाम, धुनि सुनि लखत जन धाम धाम ।
 उच्चार मरध नीशान अग्र, निकसैं सुमध्य दित बहिर नग्र ॥
 तिहि किये मुकाम सरितासु तीर, बन्नात मोमपोसी सबीर ।
 द्वे सतह संग बानिज दुकान, परिपूर साथ सह खान पान ॥ ४ ॥

कुमार रससागर इस तरह दस हजार फौज के सहित शिकार के लिए तैयार हुए तब नौबत बजने लगी, निशानची निशान लेकर दल के आगे चलने लगे, जिससे दिशाओं के दुर्जन लोग भयभीत हो गए । तुरही और सहनाई घोर नाद करने लगे । कितने ही बाण फेंकने में निपुण शूरीर पहिले से ही मजे हुए खड़े हैं । सागोश, कुत्ता, चीता आदि पशु, बहरी, बाज़ जुररा लगरा, सुफगर, तूरमची, कुही, सुबास आदि पक्षियों के पिंजरे कितनों ही के हाथों में झूल रहे हैं; कितने ही उमराव हाथ पर शिकरा बैठा कर शिकार में आए हैं; इस प्रकार चतुरंगी दल राजद्वार में आया और ज्योंही कुमार सवार हुए त्योंही सेना की सलामी हुई । वाद्यध्वनि सुनकर नगर निवासी अटारियों पर चढ़ कर महाराज श्री को देखने लगे । चाबदारों के आवाज सहित रंगविरंगी ध्वजाओं के मध्य कुमार रससागर मंद मंद गति में मध्याह्नकाल में नगर के बाहर निकल सरिता तट पर मुकाम किया जहाँ पर बनाती मोमपोशी तम्बू लगा दिये और वहाँ दो सौ व्यापारियों की दुकानें खान पान सुविधा के लिए लगी हुई थीं ॥ ४ ॥

दोहा—शुभ पख मास अषाढ शुध, तिथि सप्तमी बुधवार ।

अमरजोग अभिजित नखत, सागर चढ़ें शिकार ॥ ५ ॥

शुभ आषाढ मास के शुक्ल पक्ष सप्तमी तिथि बुधवार को अमृत योग सहित अभिजित नक्षत्र में कुमार रससागर शिकार की चढ़ाई की ॥ ५ ॥

किन मुकाम सरिता सुतट, बिच महाराज सबीर ।

घन बरसत सरसत तरल, मुख दरसत न मिहीर ॥ ६ ॥

सरिता के शुभ तट पर सब सेना के मध्य तन्त्रु में महाराज ने सुकाम किया । उस समय वर्षा हो रही थी, हवा की सनसनाहट व बिजली की चमक हो रही थी । सघन बादलों में सूर्य के दर्शन नहीं, इस प्रकार अंधकार होने से एक दूसरे का मुख भी नहीं देख सकते थे ॥ ६ ॥

अथ वर्षावर्णन—छंद हारक.

घोर घटन जोर पटन मोर अटन पैरटें, चातुक धुनि झिल्लव गन भेक सरनके तटें ।
गाज गहर बीज सहर सीत लहर मारुतं, नील धरन शैल भरन बेल तरन आवृतं ॥
चातसुरन पंचवरन अंबरमति छाहियं, दंपतिहित चाहत चितव्रैतिविषतिलाहियं ।
बूढदरसबुंद बरसश्रातभर सूझझियं, राजकुमर साथ सूघर तास अवसर चलियं ॥

घनघोर बादल घिरे हुए मूसलाधार वर्षा हो रही है जिससे पास के वन में मोर कूज रहे हैं । चातक की ध्वनि तथा झिल्ली की झनकार सरोवर के चारों तरफ हो रही है, इसी प्रकार दादर समूह अपनी ध्वनि कर रहे हैं, घोर गर्जन के मध्य बिजली चमक रही है, हवा के ठंडे झोंके आ रहे हैं । पृथ्वी हरित-वसना सुन्दरी बनी हुई है, पहाड़ों से भरने चल रहे हैं, वृक्ष-लताओं से ऐसे आच्छादित हैं मानो लतामंडप बना रहे हैं और रंग विरंगे इन्द्र धनुष के समान दीखते हैं । आकाश में छाई हुई घटा से सूर्य अदृश्य हो रहा है । ऐसे समय में दम्पति (संयोगी स्त्री पुरुष) प्रीति से परस्पर प्रेम करते हैं, परन्तु वियोगियों के लिए तो दुःख ही है । वीरबहूटी का बाहुल्य है, नदियां वर्षा-वारि से पूरित हो झलकती हुई चल रही हैं, ऐसे समय में राजकुमार रससागर चतुर और सुघड़ पुरुषों के संग शिकार को चले ॥ ७ ॥

दोहा—घन बरसत गत “जगत=वख”, छित छहियत तमवृन्द ।

नरपति निज मित मिल सकल, हितवत करत अनंद ॥ ८ ॥

वर्षा हो रही है, जगत्-वस्तु सूर्य अदृश्य हो रहे हैं, पृथ्वी पर अन्धकार फैला हुआ है, ऐसे समय में नृपति अपने मित्रों सहित मनवांछित आनंद ले रहे हैं ॥ ८ ॥

निशिकर सुन बासर वितित, सुरगुरु तमी व्रतंत ।

गत मुजाम परिगुन धरी, शिवा-सु सुर उचरंत ॥ ९ ॥

बुधवार का दिन बीत गया, गुरुवार की रात्रि हुई तथा एक पहर ऊपर तीन घड़ी रात्रि बीती कि शृगालनी शृगाल के सहित बोलने लगी ॥ ९ ॥

सुर उत्तर ईशान विच, पुनि दच्छन चित धार ।

सो रससागर सुकवि प्रति, ब्रूभूत शकुन विचार ॥ १० ॥

यह शब्द उत्तर और ईशान्य दिशा के बीच हुआ, पुनः दक्षिण दिशा में सुनाई पड़ा । इसे सुनकर महाराज रससागर अपने विख्यात कवियों से शकुन सम्बन्धी विचार पूछने लगे ॥ १० ॥

अथ कविप्रति रससागरोक्त-दोहा.

अहो सुकवि रविजोत तुम, जानत राज वसंत ।

पशु पंखी आगम उकति, कहो मु यह वरतंत ॥ ११ ॥

हे रविज्योति कवि ! आप वसंत राजादि शकुन के भाव को जानते हो, इसलिए पशु पक्षी आदि की भाविष्यवाणी के भेद का वर्णन करो ॥ ११ ॥

अष्ट दिशा पति पाहुने, अंश दिशा मु निकेत ।

ज्वाला आदि अठ भेद कहि, कहा कहा फल देत ॥ १२ ॥

आठ दिशाओं के स्वामी, उनके पाहुने तथा सुन्दर गृह अन्तरदिशाएं ला आदि आठ भेद, ये क्या २ फल देने वाले हैं सो कहिए ॥ १२ ॥

रससागर प्रति कवि रविजोति उक्त शकुन भेद-दोहा.

करनहार करतार सो, कहनहार कहि देत ।

तुम ब्रूभूत ते ते कहौं, प्रश्न अनुक्रम लेत ॥ १३ ॥

कवि बोले, हे राजन् ! करने वाला तो परमात्मा है, हम केवल कहने वाले हैं, सो आपने जो पूछा है क्रम से कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ भेददिशा स्वामिभाव-छप्पय.

पूरव रवि ऋषिवान्, अगनि शशि क्षत्रिबन्धु रहि ।

दच्छन कुज नृप जान, बूध नैरुत बानिक कहि ॥

पच्छिम सुरगुरु विप्र, वावि भार्गव आसुरपति ।

मंद शवर उतरइ, ईश ईशानकोन स्थिति ॥

आदित्य निश दिन आप ग्रह, अनु दिन इक इक घर खसैं ।

शंकर अडोल औरै सबै, पुनि आदित निज ग्रह बसैं ॥ १४ ॥

पूर्व दिशा में कृषक का घर है, इसलिए उस दिशा का स्वामी कृषक कहलाता है और रविवार के दिन वहां रहता है, अभिकोण में क्षत्रिय का घर और वह वहां सोमवार को रहता है, दक्षिण दिशा में राजा का घर और वह वहां मंगलवार को रहता है, नैऋत्य कोण में बनिक का घर है और वह वहां बुधवार को रहता है, पश्चिम दिशा में ब्राह्मण का घर है और वह वहां गुरुवार को रहता है, वायव्य कोण में असुर-पति का घर है और वह वहां शुक्रवार को रहता है, उत्तर दिशा में भील का घर है और वह वहां शनिवार को रहता है, ईशान कोण में ईश रहता है, रविवार को रात्रि दिवस उसका स्वामी कृषक अपने घर रहता है पश्चात् प्रतिदिन एक २ घर खिसकता रहता है । इस प्रकार केवल शंकर का स्थान छोड़ सब घरों को बदलता हुआ पुनः रविवार को अपने स्थान पर आता है * ॥ १४ ॥

अथ पाहुने भेद-दोहा.

कृषिकर्ता अत नृप बनिक, दुज असुरेश निशाध ।

ज्यौं मु जगत व्यवहार है, त्यों बीरज वटि बाध ॥ १५ ॥

कृषक, क्षत्रिय, राजा, बनिक, ब्राह्मण, असुरपति और भील इनका जिस प्रकार जगत् में व्यवहार है इसी प्रकार इनके फल को समझना चाहिए अर्थात् जैसा पात्र वैसा फल समझना ॥ १५ ॥

चलत पंथ गति पाहुने, थानक थानकि जान ।

छल बल जीत अजीत यह, जानो परखि पयान ॥ १६ ॥

रास्ता चलने की गति के अनुसार चलते हुए जो घर आये वह स्थानक, उसके स्वामी का पता लगा छल, बल, जीव, हार आदि परीक्षा करके समझना ॥ १६ ॥

* किस दिशा में किसका घर है और कौन पाहुना आता है उसका कोष्टक .

दिशाओं के नाम	पूर्व.	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
किसका घर	कृषक का घर	राजपूत का घर	राजा का घर	वैश्य का घर	ब्राह्मण का घर	शाह का घर	भील का घर	महादेव का घर
रविवार.	कृषक	ब्राह्मण	राजपूत	पादशाह	राजा	भील	वैश्य	०
सोमवार.	ब्राह्मण	राजपूत	पादशाह	राजा	भील	वैश्य	कृषक	०
मंगलवार.	क्षत्री	पादशाह	राजा	भील	वैश्य	कृषक	ब्राह्मण	०
बुधवार.	पादशाह	राजा	भील	वैश्य	कृषक	ब्राह्मण	राजपूत	०
गुरुवार.	राजा	भील	वैश्य	कृषक	ब्राह्मण	राजपूत	पादशाह	०
शुक्रवार.	भील	वैश्य	कृषक	ब्राह्मण	राजपूत	पादशाह	राजा	०
शनिवार.	वैश्य	कृषक	ब्राह्मण	राजपूत	पादशाह	राजा	भील	०

अथ दिशांतर स्थान भाव—छप्पय.

उदित अग्नि विच अग्नि, अग्नि दच्छन विच कूपह ।

दछ नैरुत विच वापि, नईरुत पच्छिम बागह ॥

पच्छ वाव्य मधि काठ, वाव्य उत्तर लच्छी वद ।

उत्तर ईश रनथंभ, ईश पूरव सोनित नद ॥

अग्नी सु कूप रन नद अशुभ, वापि भाव सम जानिये ।

उपवनह काठ लच्छी सुभग, ज्वाल भेद अनुमानिये ॥ १७ ॥

पूर्व दिशा तथा अग्निकोण के बीच अग्निकुण्ड, अग्निकोण तथा दक्षिण दिशा के बीच कूआ, दक्षिण दिशा तथा नैऋत्य कोण के बीच वापी, नैऋत्य तथा पश्चिम और वायव्य के बीच काष्ठ, वायव्य तथा उत्तर दिशा के बीच लक्ष्मी, उत्तर तथा ईशान के बीच रणस्थंभ, ईशान तथा पूर्व दिशा के बीच लोहिनी नदी, अग्नि, कूआ, रणस्थंभ तथा लोहिनी नदी अशुभ है । वायव्य का भाव समान है । उपवन, वाग, काष्ठ और लक्ष्मी शुभ है । इस प्रकार ज्वालादि भेद का अनुमान समझना ॥ १७ ॥

अथ ज्वालादि प्रहर भाव—छप्पय.

सूर उदित इक जाम, ज्वाल पूरव दिश जानहु ।
अगे अगनि प्रति धूम, छांह दच्छन अनुमानहु ।
नैरुत धर निरधार, अस्त मीहि पंक कहावे ।
वाव्य वसत जलवंब, भसम उत्तर परि आवे ।
अंगार बसे ईशान तव, प्रहर प्रहर भुगता दिशा ।
चलि नीत रीत निज ग्रह रहे, वीतत इक दिन इक निशा ॥ १८ ॥

सूर्य उदय के पश्चात् एक प्रहर तक पूर्व दिशा में ज्वाला, फिर अग्निकोण में धूआं, दक्षिण में छाया, नैऋत्य में पृथ्वी, पश्चिम में कीचड़, वायव्य में जल का वंब, उत्तर में भस्म और ईशान कोण में अंगार । इस प्रकार प्रत्येक प्रहर—एक दिन व रात—(आठ प्रहर) चलकर अपने घर आते हैं ॥ १८ ॥

अथ ज्वालादि फल भाव—छप्पय.

ज्वाल अगनि भय अशुभ, धूम मनको मुरझावें ।
छांह निफल कत काम, धरा आनंदउ पावें ॥
कीच कुशल परि कष्ट, कलह शीतल सुखकारी ।
भलो विभूती भाव, अति हि संकट अंगारी ॥
मधि आदि अंत अनुमान कर, भलो बुरो फल भाव गहे ।
चितह विचार चातुर घरी, शकुन भेद कोविद सु कहे ॥ १९ ॥

अग्नि ज्वाला भय आदि अशुभकारक, धुवां मन को मुरझाने वाला, छाया निश्चित काम में असफलता कराने वाली तथा धरा अर्थात् पृथ्वी आनन्द उत्पन्न करने वाली है । पंक कुशलता देने वाला परन्तु अंत दुःखकारक है । जल शीतलतापूर्वक कार्य करे परन्तु सुखराशि है । विभूति—भस्म का भाव अत्यन्त उत्कृष्ट है इसी प्रकार अंगार बहुत दुःखदायी है । आदि, मध्य और अंत का विचार कर तदनुसार भला बुरा फल समझना । चार घड़ी चित्त में विचार कर कविराज ने शकुन भेद कहे ॥ १९ ॥

दोहा—शकुन सिंधु संक्षेप करि, कसो सुमति अनुसार ।

अब जो आपको भये, ताको कहूं विचार ॥ २० ॥

शकुन शास्त्र का भेद समुद्र समान विशाल है, उसमें से यथामति संचेप से कह सुनाया । अब जो अभी शकुन हुआ है उसकी विधि कहता हूँ ॥२०॥

अथ निजशकुन भाव-छप्पय.

शिवा सु सुर रनथंभ, कहूं आहव उपजावें ।
छांह धूम्रके मध्य, निफल जुघ मन पुरभावें ॥
पुनि दच्छन उच्चार, नृपति गृह साह सिधावें ।
जलह तहां वह जोग, रार हानि रीझऊ पावें ॥
मनुहार मान उनकी सुफिर, आप सराहोगे वैं ।
चत्र घरी जोग अनुराग चित, कहूं लग हैं सुकनी कहें ॥ २१ ॥

शृगाल का शब्द रणथंभ हुआ है सो लड़ाई का भाव उत्पन्न करता है, छांह और धूम्र के बीच में शब्द हुआ जिससे बिना काम लड़ाई उत्पन्न करता है और मन में ग्लानिकारक है । दक्षिण दिशा में जो शब्द हुआ है सो राजा के घर में वणिक गया है जिससे वहां जल का योग है जिसका फल युद्ध से आनन्द प्राप्ति है, साथ ही विपत्ती के मनुहारने से आप उनका सत्कार स्वीकार करोगे । इस चार घड़ी के शुभ शकुन के योग से ऐसा मालूम पड़ता है कि आप का मनोबोद्धित होगा ऐसा शकुनी का कथन है ॥ २१ ॥

गाहा-आखेटक सुपयानं, पावस गहन पंथ गिरि गहियं ।

शुकनभेद अनुमारं, नवम प्रवीणसागरो लहरं ॥ २२ ॥

शिकार जाने का प्रस्थान, वर्षाऋतु का वर्णन, जंगल और पहाड़ के मार्ग से चलते हुए शकुन के भेद वाली यह प्रवीणसागर ग्रन्थ की नवीं लहर समाप्त हुई ॥ २२ ॥

लहर १० मी ।

अथ आखेटकविहार-दोहा.

उभे पहर चरचा चली, कियो शयन सुख साज ।

निशि बीति आनंद भर, उठे प्रात महाराज ॥ १ ॥

इस प्रकार दो प्रहर तक वार्नीविनोद होने के उपरान्त सुख के समाज में महाराज ने शयन किया । रात्रि व्यतीत हुई प्रातःकाल महाराज आनन्द से उठे ॥ १ ॥

खानपान करिके चढ़े, गिरि भंगर पथ लीन ।

इत प्रतना महाराज उत, इंद्र आडंबर कीन ॥ २ ॥

खानपान के उपरान्त मृगया के हेतु महाराज पहाड़ी और जंगली मार्ग लिया । उस समय जिस प्रकार इधर महाराज रससागर की फौज ने चढ़ाई की उसी प्रकार आकाश में इन्द्र ने भी आडम्बर किया अर्थात् आकाश में बादल घिर आए ॥ २ ॥

अथ फौज वर्षा एकत्र भाव-वर्णन, दृष्टांतालंकार-छंद चौबोला.

सागरकी जु चढ़ी है चमूं इत, त्यों उत इंद्रघटा प्रसारी ।

सुरनके कर शेल सकलिय, त्यों उत कौंधत हैं बिजुरी ॥

बाजत आनक नाद इतैं, उतको धनधोर बजें गहरी ।

तूर बजे सहनाइ इतैं, सु उतैं धुनि मोरानि की उचरी ॥

मंद गयंद चले इतको, उत वृंद सु श्याम मिले बदरा ।

घार सु पाखर घंटनकी, इत त्यों उत सोर करे ददरा ॥

गावत हैं गुनि राग इतैं, उत राव उपावन भल्लव की ।

राजकुमार इतैं रकतांबर, त्यों उत भा नवपल्लव की ॥

बैरख और निसान इतैं, उत देव धनू छविकों जुं धरें ।

बानि बंदंत नकीब इतैं, उत चातुक त्यों ललकार करें ॥

शात्रव दस्यु इतैं दुरमें, उत मंद पतंग मयूख करो ।

सेन इतैं रससागर की, सुरराज उतैं मनु होड परो ॥ ३ ॥

पृथ्वी पर सागर की फौज चढ़ी इसी प्रकार आकाश में इन्द्रघटा छा रही है । यहां शूरवीरों के हाथों में भाला इत्यादि शक्तियां झलझलाहट करती हैं, उधर आकाश में बिजली चमक रही है । जिस प्रकार उधर दुंदुभि का शब्द हो रहा है ऐसे ही उधर आकाश में मेघों का घोर गर्जन हो रहा है । यहां जैसे तुरही और सहनाई बज रहे हैं वैसे ही आकाश में ऊंचे पर्वत और वृक्षों पर बैठे हुए मोर शोर कर रहे हैं । यहां जैसे मंद गति से हाथी चलते हैं वैसे ही आकाश में काले बादलों का वृन्द चलकर इकट्ठे हो रहे हैं । यहां जैसे घंटा और पखाज के शब्द हो रहे हैं वैसे वहां वन उपवन में दादुरध्वनि गूंज रही है । जिस प्रकार राजकुमार ने रक्ताम्बर धारण किया है वैसे ही वहां नव-पल्लव की लाली चमक रही है । यहां ध्वजा पताके रंग विरंगे हैं तो उधर इन्द्र धनुष की बहुरंगी छटा है । यहां चोवदार पुकार रहे हैं तो उधर पर्पीहा की ललकार है । यहां शत्रु छिप गये हैं तो उधर सूर्यकिरण मन्द हो रही है । इस प्रकार यहां महाराज की सैन्य और आकाश में सुरराज की सैन्य मानों दोनों होड़ कर रहे हैं ॥ ३ ॥

अथ रूपकालंकार, पुनः वर्षा-वर्णन-दोहा.

वन वनांत पल्लव वर्णां, घन कन पटा समाज ।

भ्रमभ्रनात खग वट सूर, गिरि पावस गजराज ॥ ४ ॥

जिस पर वनरूपी बगात की झूल है, और वर्षा की बूंदों से चली हुई धारा पटारूपी साज है, और जिस पर अनेक पक्षियों की गूंज घंटे के समान भ्रमकार रही है, ऐसा ऋतुराज पावस का पर्वतरूपी गजराज (हाथी) है ॥ ४ ॥

अथ रूपकालंकार-कवित्त.

बग पंत दंत क्रंत चपला कपोल चित्र, “धारा धर” सुंड दंड मंद
बुंद वरपात, झल्लव भ्रनंक लोह लंगर खनंक पाय, प्रबल समीर भर
लागी फूतकर बात, गजरव घन गाज सारसी पर्पीहा सूर, सूर धनु
रंग रंग कसन कसेहैं गात, बदर गयंद वृंद दहरन मोर सोर घुघरन
घोर चहुं ओर घंट घननात ॥ ५ ॥

बगुला की पंक्ति मानो दांत हैं, बिजली की चमक रूपी रेखा से युक्त कपोल चित्र हैं, मेघ की मूसलाधार मानो सूंड हैं और वर्षा के बूंद मानो मद भर रहा है, भिल्ली की झनकार मानो पग के लोहे लंगर की झनकार है, हवा के झोकों से वृक्षों में उत्पन्न हुआ शब्द मानो सूंड फुटकार है, सारस और पपीहा के शब्द मानो गज चिल्लाट है, इन्द्र धनुष मानो रंग विरंगी शरीर पर सजावट है, ऐसे मेघरूपी हाथी के चलने से मानो मोर और दादुरों की गूँजरूपी घुंघरू की ध्वनि हो रही है ॥ ५ ॥

दोहा—रहें वरपत वरपैं रहत, करत बलाहक छंद ।

सागरचलि गिरिवर गहें, जहां पशु पक्षी वृंद ॥ ६ ॥

कभी वर्षा होनी है, कभी रुक जाती है, इस प्रकार वर्षा मायावी क्रीड़ा कर रही है । ऐसे समय में सागरकुमार जहां पशु पक्षियों का जुत्थ वास करते हैं ऐसे गिरिराज की ओर चला ॥ ६ ॥

अथ शिकार ठोरवर्णन-छंद छवी.

आये सुराज, आखेट साज, गिरिवर उतंग ।
जल स्रवत श्रृंग, भर भरनि झार, धुनि बार धार ॥
धुनि बार बहु भांति वृच्छ, वन वेल गुच्छ ।
निज २ सु नीड, खग करत क्रीड, सरवर विसेक ॥
सरिता अनेक, बाराह बाग, मृग जाग जाग ।
वृक भालवृंद, कपि करत छंद, सामर सु जूह ॥
शशके समूह, पशु भांति भांति, वरणे न जात ।
गिरदी पहाड़, शत कोस झाड़, हरिताई देख ॥
रीभे विशेष, सर तीर आय, विधकर बुलाय ।
आयसा दीन, दश फौज कीन, खेलें पहार ॥
विधि विचार, आ पाप संग, रस रीझ रंग ।
वह गहन मांझ, दरसाई सांझ, सब लै सिकार ॥
कीनों गुंजार, महाराज ताम, दीनें इनाम ।
वह ताल तीर, कीने सवीर, निज मिसल ठोर ॥
उमराओ और, षट पित वास, महाराज पास ॥ ७ ॥

शिकार के साज सहित महाराज रससागर पहाड़ में आये । वह पहाड़ अति ऊंचा है, जहाँ पानी के भरनों से निर्मल जल कल-कल करता हुआ बहता है; अनेक प्रकार के असंख्य वृक्ष, लताओं तथा फल-फूल के गुच्छों से लदे हुए हैं, पक्षी अपने २ घोसलों में आनन्द करते हैं, अनेक सरोवर और नदियाँ हैं । जगह २ भेड़िया, वराह, व्याघ्र, मृग और रीछ के झुण्ड एवं बन्दर कलोल से कूदा कूदी कर रहे हैं । सांभर तथा शश इत्यादि के यूथ अनेक प्रकार के हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता । इस प्रकार अनेक पशु इस पहाड़ में सुख से रहते हैं ।

पहाड़ के इर्द गिर्द सौ कोश तक पुष्कल वृक्षों की झाड़ी है । इस प्रकार की महत्ता देखकर महाराज रससागर अति प्रसन्न हुए । सरोवर के तीर आकर और शिकार कराने वालों को बुलाकर फौज के दश विभाग किए और पहाड़ में शिकार खेलने की आज्ञा दी । अपने मित्रमंडली के साथ रस रंगसहित स्वच्छंदरूप से शिकार करते हुए जंगल में ही संभ्या हो गई और सब लोगों ने कुमार की सेवा में आकर जयजयकार किया । महाराज ने सबको इनाम देकर संतुष्ट किया । उसी तालाब के तीर तम्बू तान कर डेरा डाला, उमराव लोग अपने २ स्थान में रहे, परन्तु छः मित्रों को महाराज ने अपने पास रक्खा ॥७॥

दोहा-सांभ भई सदसी रची, हेरत विपिन बहार ।

सागर द्वै कविसे कबो, बरनों कवित शिकार ॥ ८ ॥

संभ्या हुई और सभा भरी तब महाराज ने जंगल की बहार देखकर दोनों कवियों से कविता में शिकार का वर्णन करने को कहा ॥ ८ ॥

अथ भारती नंदोक्त-कवित्त, शिकार भेद.

प्रथम धराको निर्धारिये कुरंग रूख, गुरकों जरूर करि डारिये सुभार में ।
छांडिये चपलताई खंडिये न सुरताको, रीझिये सुथिर आन दीजिये सुतारमें ॥
जानिये सु मारुत पिछानिये षटों ही ऋतु, ऐन नैन आयुध को न्याय एक लारमें ।
साधक को तारवो जु मारवो हिरण हेर, इतनो विचारवो तो फिरवो शिकार में ॥६॥

पहिले भूमि और हिरण के * रुख को चित्त में निश्चय कर शिकार की सरलता को देखना, फिर उस समय घेर कर लाये हुए हिरण के टोले को होशियारी से गोली किंवा तीर का निशाना एक सीध में लेकर एक नजर और स्थिरता से रहकर पशुओं को समीप आने देना, तथा छत्रों ऋतुओं को लक्ष्य में रख हवा की गति को देख, दृष्टि और शस्त्र को एक सीध में लाकर साधक को युक्ति से बचा कर हिरण को मारे। इतनी साधना हो तो शिकार में फिरना चाहिए ॥ ६ ॥

अथ पुनः रविजोतोक्त शिकार वर्णन—श्रेषालंकार—कवित्त.

आवन मिलावन को प्रथम विचार भेद, जावन फिरावन को दियो भूमि लाखिये । छरितु समे सुधार थिरता निहार थान, अंबर समारवो दुराय देख अखिये ॥ सुरता लगाइये न लाइये सु आतुरता, संकित सुदास से समीरहु न नखिये । दब्बन दबावन को पाय अनुमान पंथ, सागर शिकार के समाज को परखिये ॥ १० ॥

मृगया के आने जाने के भेद को पहिले विचार करना तथा यह भी देखना कि वह जंगल में घूमने फिरने के लिये आवेगा या नहीं । छः ऋतुओं में से वर्तमान ऋतु को लक्ष्य में धर स्थिरता की जगह देख, पहिने हुए वस्त्रों से शरीर को कस स्थिरता के साथ एक दृष्टि से स्थिर किए हुए स्थान पर, जहां हवा भी न आ सके, बैठना चाहिए तथा आने जाने से पांव के आहट का अनुमान रखना चाहिए । इस प्रकार हे रससागर कुमार ! शिकार सम्बन्धी सब सामग्री को देखना उचित है ॥ १० ॥

प्रिया मिलन उपाय यथा—उपपत्ति नायक अपनी प्यारी यहां किस उपाय से प्राप्त होगी, उससे मिलन कौन करायेगा, इत्यादि भेद को पहिले विचार करना, अर्थात् मालन, मणिहारिन आदि मिलाने वाली दूतियों या कुटनियों से मिलना । जिस स्थान पर नायिका मिलने का संकेत किया हो उस स्थान पर बिना रुकावट किस प्रकार जावें, और पीछे किस प्रकार आवें और वह अपने लाग पर चले, ऐसे स्थान का देखना । छत्रों ऋतुओं का समय मन में विचार कर जिसमें

* गुजराती टीकाकारने सुलवे 'रुख' का झाड़ अर्थ किया है, परन्तु वह संगत नहीं प्रतीत होता । कवि का आशय 'रुख' प्रतीत होता है जो उर्वृ शब्द है जिसका अर्थ 'झुकाव, रिश्वान' है ।

अनुकूलता होवे ऐसे स्थान में खड़े रहें, तथा प्रिया प्रसन्न होवे इस प्रकार वस्त्रों को सुधार कर पहिनना । संकेत स्थल में कोई देख न सके इस प्रकार शरीर को सम्हाल कर बैठना, तथा प्रिया-मिलन के समय उतावला न होना । उस स्थान पर कामक्रीड़ा से थकित होने पर भी वस्त्र से पवन संचार न करना अर्थात् शान्त रहना । उस मार्ग पर जाते हुए अपने को कोई दबावे नहीं इसका विचार प्रथम रखना, क्योंकि शिकार में जाते हुए जिस प्रकार यह विचार रखना होता है कि हम शिकार को मारें, हमें शिकार न मार सके, इसी प्रकार हे सागर ! प्रियामिलन में भी समझना ॥ १० ॥

अथ रससागरोक्त-दोहा.

यहै समग्र शिकारको, कवि तुम कह्यो प्रमाण ।

भेद किते अभिधान जुत, विध विध कह्यो विधान ॥ ११ ॥

हे कविराज ! तुमने शिकार के विषय में कहा, परन्तु अब यह बतलाओ कि इसके कितने भेद हैं, नाम सहित पूरा वर्णन कीजिए ॥ ११ ॥

अथ कवि उक्त-दोहा.

वनचर खेचर बेधके, द्वादश भेद शिकार ।

महाराज जानत सबै, पुनि हम कहैं प्रकार ॥ १२ ॥

हे महाराज ! वनचर (पशु) और खेचर (पक्षी) के भेद से शिकार के बारह भेद हैं, जिन्हें आप जानते ही हैं, परन्तु फिर भी हम उनका वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥

अथ स्थलचर द्वादश शिकार भेद अभिधान-दोहा.

घेर गाड गाडी सु कहि, नीड डोर अरु फंद ।

मूल डाव पशु पंख विधि, घंट बेग यह छंद ॥ १३ ॥

घेर, गाड, गाडी, नीड, डोर, फंद, मूल, डाव, पशु, पंख घंट और बेग ये बारह भेद शिकार के हैं ॥ १३ ॥

अथ द्वादश शिकार भेद उदाहरण-छंद मल्लिका.

आप थान एन हेर, बाज वा कुजाक घेर, अस्त्र दांव से हनंत, घेर

तासु को कहत. नीर तीर खोदि बेध, बैठ रेत गहबन्ध, पीवतं पशू प्रहार,
गाड़ तासको विचार. बेधकं गढी सुवास, दांव देख लाय पास, बेधितं
विशास धार, गाडियं यहै प्रकार. आवतं पशू द्रढाय, वृच्छ बेधकं चढ़ाय,
छांह आय अस्त्र छेद, एह नीडको सु भेद. नील वृच्छ डार हाथ, साधकं
बधीक साथ, नीठ कीन बेध बान, एह डोर को प्रमाण. कच्छ चार के नि-
कास, आगमं प्रसार पास, पीठसे करत छंद, बंध होत एक फंद. बेध
वृच्छ मूल धार, साधकं हकें शिकार, दृष्टि चोरि मारि लेत, एह मूलको
सु हेत. जानि आवनं निरंत्र, कीन काठ जोरि तंत्र, आय सो पशू दवंत,
डाव को यहै वृत्त. साधकं सु दाव लाय, आखटी पशू लगाय, बाहि को
गृहंत जाय, सो कहें पशू उपाय. बेधकं विहंग ठानि, आदि बाज पंख
आनि, वेडितं गृहे सु तास, पंख भेद ए प्रकाश. रैन दीप तंत्र कीन, साधकं
सु बीन लीन, नाद रीझ जंतु आय, घंट मो हनंत ताय. जात है पशू सु
भाज, पीठ पै हकंत बाज, पाँच के करंत घाव, एह बेगको सुभाव ॥ १४ ॥

जो अपने स्थान से बाज वा शिकरा के द्वारा हिरण को घेर कर शिकार
करते हैं उसका नाम 'घेर' शिकार है । पानी के किनारे खाई खोद के बैठ कर
पानी पीने के लिए आए हुए पशु को रास्ता रोक कर मारने का नाम 'गाड़'
शिकार है । आप एक स्थान पर गढ़ बांध बैठ जावें, अन्य तरफों से हांका
करा कर शिकार जब सामने आवे तो विश्वास कर मारने को 'गाड़ी' शिकार
कहते हैं । भागते हुए पशु को आते देख कर वृत्त पर चढ़ जावे और जब पशु
वृत्त की छाया में बैठ जावे तब शस्त्रप्रहार करके शिकार करने का नाम 'नीड'
शिकार है । साथी की सहायता से वृत्त की हरी डाली हाथ में लेकर पशु को
पास लाकर शिकार करने का नाम 'डोर' शिकार है । चरन व पानी के स्थान
पर जाल फैला कर, पशु को हांका कर उसमें फंसा कर मारने का नाम 'फंद'
शिकार है । बेधक वृत्त के मूल में छिप कर रहना और हांका द्वारा भाग कर
आए हुए पशु को मारने का नाम 'मूल' शिकार है । जानवर के आने जाने
के मार्ग में लकड़ी का ऐसा यंत्र बना देना कि उसमें आते ही दब कर पशु मर
जावे इसे 'डाव' शिकार कहते हैं । दाव देख कर शिकारी पालतू चीता आदि

पशु छोड़ कर जो शिकार को पकड़ते या मारते हैं उसे 'पशु' शिकार कहते हैं । बाज आदि शिकारी पक्षियों के द्वारा अन्य पक्षियों को पकड़ मंगाना इस शिकार का नाम 'पंख' शिकार है । रात्रि के समय दीप यंत्र करके और बीन बजाने पर जो पशु आवे उनका शिकार करे उसे 'घंट' शिकार कहते हैं । भागते हुए पशु के पीछे घोड़ा दौड़ा कर चलते हुए बार करके शिकार करने को 'वेग' शिकार कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ चतुर्विधि जलचर शिकार वर्णन—दोहा.

बंसी शस्त्र सु वेध कहैं, फंद विना न सु भेद ।

चार प्रकार सु जानिये, जलचर के परछेद ॥ १५ ॥

बंसी (कांटा), शस्त्रवेध, जाल और बीनान ये चार प्रकार जलचरों के शिकार के कहे हैं ॥ १५ ॥

सोर प्रकार शिकार के, कवि ने कहे बनाय ।

महाराज रीझे सु मन, खेल खुशी चित लाय ॥ १६ ॥

कवि ने जब इस प्रकार शिकार का सोलह प्रकार का वर्णन किया तो महाराज रसमागर अति प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥

महाराज कहि भित प्रति, यह गिरि गहन अपार ।

इक इक दिन एकैक विध, खेलें सोर शिकार ॥ १७ ॥

तब महाराज ने मित्रों से कहा कि पहाड़ का विस्तार खूब है इसलिए एक एक दिन एक २ प्रकार का शिकार अर्थात् सोलह प्रकार के शिकार यहां खेलें ॥ १७ ॥

यह द्रढाव करि के लगे, राग रंग सु विलास ।

सुरापान पीवन लगे, जगे चिराग प्रकाश ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय कर राग रंग के साथ सुरापान करने लगे, इतने में संभ्या होने से चारों तरफ चिराग का प्रकाश हुआ ॥ १८ ॥

अति सुख से बीती सु निश, प्रगटी प्रभा पतंग ।

वन वन प्रति बाहनि वही, तर तर मृगित तुरंग ॥ १९ ॥

अत्यन्त सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत हुई और प्रातःकाल सूर्य की कान्ति प्रकट होने से वन में फौज फिरने लगी, तथा वृत्त २ के नीचे मृगित घोड़े घूमने लगे ॥ १६ ॥

अथ छंद चुलीया.

नग नग मग मृग मृगित, भरनपगा पग पग सु निहारत ।
 आयस जो महाराज की, सोय प्रकार सबै पशु मारत ॥
 और जंतु अनेक में, बाघ बराह भाल वृक गाजत ।
 जोध मरत मारत किते, वीर हाक आनक धुनि बाजत ॥
 कसब करत जोई विसम, सो महाराज इनामहि पावत ।
 अगहन कौंच दरी गहन, ताहि कुजाक सु सोधत आवत ॥
 दिन प्रति खेलत ए जुगति, निश शुभ ठौर मुकाम जमावत ।
 पन्द्रह दिन बीते रमत, नीतिपाल हद नीठ सु जावत ॥ २० ॥

शिकारी लोग पहाड़ और जंगल में हिरणों को ढूँढ़ते हैं, भरनों और जलाशयों के आस पास पशु पक्षियों के पदचिह्न देखते हैं और महाराज की आज्ञा के अनुसार सब लोग पशुओं को मारते हैं। अन्य अनेक जन्तुओं में बाघ, शूकर, रीछ आदि गरजते हैं। कई योद्धा पशुओं को मारते और स्वयं मरते हैं। कितने ही शूरवीर ऊँचे स्वर से हांका करते हैं वे महाराज श्री कुंभराज से इनाम प्राप्त करते हैं। गहन गुफाओं, कोतरों और झाड़ों में घूमते हुए और कतराए हुए शिकार को ढूँढ़ लाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन युक्तिपूर्वक शिकार खेलते हैं और सन्ध्या समय अच्छे स्थान पर मुकाम करते हैं। इस तरह शिकार करते २ पन्द्रह दिन बीत गये और फौज चलते २ नीतिपाल नामक राजा की सरहद पर पहुँच गई ॥ २० ॥

सोरठा-नितप्रति हास विलास, आखेटी आये करत ।

नीतिपाल हद पास, कीय मुकाम सु आय के ॥ २१ ॥

इस प्रकार नित्य हास्य विनोद करते हुए शिकारी लोग नीतिपाल राजा की सरहद के पास आकर मुकाम किया ॥ २१ ॥

पीछे रहे प्रसार, गिरिवर शतकोसी गिरद ।
इक द्वै कोस उजार, नीतिपाल आगे अमल ॥ २२ ॥

पूर्व वर्णन किया हुआ सौ कोस के प्रसार का पर्वत पीछे रह गया और
एक दो कोस आगे नीतिपाल राजा का राज है वहां तक आ पहुंचे ॥ २२ ॥

पन्द्रह किये प्रकार, रमन वेग भेद सु रह्यो ।
खेलन प्रात विचार, पुनि चाहत पीछे फिरें ॥ २३ ॥

पन्द्रह प्रकार का शिकार खेल लिया, परन्तु सोलहवां 'वेग' नाम का शिकार
खेलना बाकी रहा, उसे प्रातःकाल पूरा करके लौटने का निर्णय किया ॥ २३ ॥

गाहा—चढ़ो चमूं बरनावे, गिरिवर गहन प्रभा परकाश ।
सोलह भेद शिकारं, दशम प्रवीण सागरो लहरं ॥ २४ ॥

चढ़े हुए दल का वर्णन, पर्वत, गहन जंगल की शोभा का प्रकाश, शिकार
भेद आदि सम्बन्ध की प्रवीण सागर ग्रन्थ की दशवीं लहर पूरी हुई ॥ २४ ॥

लहर ११ मी

अथ क्रूरावाद कलाप्रवीण संबंध प्रसंगो यथा—छप्पय.

जनपद सिंध नरेश, शहर क्रूरा सु वाद बर ।

तरणतेज अभिधान, आन दशचत्र सहस पुर ॥

उभै लच्छ अस चढ़त, बढ़त इतमाम दिनहुं दिन ।

गज रथ अरु सुखपाल, माल काहू न कमी तिन ॥

दुरजन दबंत जिनके डरन, करन सुकविदानी कहत ।

जगती सुमध्य फैलो सुजस, इंद्र और आभा लहत ॥ १ ॥

सिंध देश में सर्वोत्तम क्रूरावाद नाम का नगर है, उस नगर के तरणतेज भूपाल की चौदह हजार ग्रामों के ऊपर आन चलती है । उस राजा की सेवा में दो लक्ष घोड़सवार और उसकी धन समृद्धि तथा प्रतिष्ठा में दिन प्रतिदिन बढ़ती होती जाती है । हाथी, रथ, सुखपाल वगैरह किसी प्रकार की कमी नहीं और उस के भय से दुर्जन लोग त्रास पाते हैं । दान देने में कर्ण के समान और विख्यात कवि दानेश्वरी कहते हैं । इस प्रकार उसका यश सारे संसार में शोभायमान है, मानो दूसरा इन्द्र ही हो ॥ १ ॥

दोहा—कुमार सुघर ताको कहत, रंगराव अभिधान ।

सूर सुशील उदार अति, विद्या लहन विधान ॥ २ ॥

इस कीर्तिमान राजा के एक रंगराव नामक कुंवर हैं जो सुघड़ शूरवीर, उदार मन वाला, अति चतुर और विद्याध्ययन में अति कुशल हैं ॥ २ ॥

सोय कुमार वय संध हुय, तरणतेज सु निहार ।

सोधन करे संबंध को, यह विचार चित धार ॥ ३ ॥

राजकुमार को सम्बन्ध योग्य हुआ देखकर महाराज तरणतेज ने विवाह सम्बन्ध की शांघ करने का विचार किया ॥ ३ ॥

राज सु बोलिय राजगुरु, शशिधर नाम सु ताय ।

सोधन कुमार संबंधकी, बात सु कही बताय ॥ ४ ॥

और शशिधर नाम के राजगुरु को बुलाकर कुमार की सगाई के विषय की बात महाराज ने कही ॥ ४ ॥

छप्पय-शशिधर प्रति महाराज, यह बानी उच्चारिय ।

कुमार भये वय संध, करो संबंध निहारिय ॥

मरुत हुंढ अरु हिंद, मेद मालव प्रति जाओ ।

गुज्जर धर सोरठ, सोधि नातो सु बनाओ ॥

सामर्थ्य राज समान कुल, सम वय रूप सु ठानिये ।

आगम सु भेद जानत तुम, सामुद्रिक अनुमानिये ॥ ५ ॥

इस प्रकार शशिधर राजगुरु को महाराज ने कहा कि कुमार अब संबन्ध करने के योग्य हो गए हैं इसलिए सब प्रकार से तलाश करके अच्छे ठिकाने संबन्ध कर आओ । मारवाड़, हुंढाड़, हिन्दुस्तान, मेवाड़ और मालवा बगैरह देशों को जाओ और गुजरात तथा सौराष्ट्र देश में जाकर योग्यता से सगाई संबन्ध करो । वह सामर्थ्य में, कुल में, राज्य में अपने बराबरी का होवे । इसी प्रकार कन्या की उमर तथा स्वरूप का पता लगाओ, भावेष्ट्य भेद तो तुम जानते ही हो, परन्तु सामुद्रिक लक्षणों का भी ध्यान रखकर संबन्ध करना ॥ ५ ॥

अथ छंद उद्धोर.

शशिधर चले आयस पाय, यह सामान दीनो राय ।

दश हुंदभि दश निशान, पैदल पंच सत अनुमान ॥

हय पुनि साथ एक हजार, द्वै गजराज दीन्हें लार ।

चेरी अंतरंग सुदोय, चक्र द्वै सु बाज सजोय ॥

द्वै सुखपाल लीनी साथ, द्वै लख खरच दीन्हों हाथ ।

यह इतमाम साथ सु दीन, बिदा राजगुरु को कीन ॥ ६ ॥

आज्ञा पाकर शशिधर राजगुरु कुमार के संबंध की खोज के बास्ते जब तय्यार हुए तो राजा ने इस प्रकार सामान उन्हें दिया:—

दश हुंदुभि, दस निशान, पांचसौ पैदल, एक हजार घोड़े सवार, दो

बड़े हाथी, कन्या देखने के लिए दो जनानखाने की बांदियां, घोड़े जुड़े हुए दो रथ, दो पालकी तथा दो लाख दाम हाथखर्च के लिए । इतना सामान देकर राजगुरु को विदा किया ॥ ६ ॥

दोहा—और ठौर इक द्वै निराखि, आये गुज्जर देश ।

बहु सनमान दियो सु तिहि, नीतीपाल नरेश ॥ ७ ॥

एक दो ठिकाने देखकर राजगुरु गुजरात देश में आए, जहां राजा नीति-पाल ने बहुत प्रकार से उनका आदर सत्कार किया ॥ ७ ॥

नृप बूमयो शशिधर सु प्रति, तरणतेज आनन्द ।

आप सिधारत हो कहां, कैसो मतो नरेंद ॥ ८ ॥

फिर नीतिपाल राजा ने शशिधर पंडित से तरणतेज महाराजा का आनन्द समाचार पूछा और फिर यह जानने की इच्छा प्रकट की कि आप कहां जा रहे हैं और आपके राजा की क्या इच्छा है ॥ ८ ॥

शशिधर कहि नृप सुत सुधर, कन्या सोधन काज ।

एहि बात पर आपलों, हम पठये महराज ॥ ९ ॥

उत्तर में राजगुरु ने कहा कि हमारे नृपशिरोमणि महाराजा तरणतेज के राजकुमार अति सुधड़ और बुद्धिशाली हैं उनके लिए कन्या देखने को मैं निकला हूं और इसीलिए आपके पास मुझे भेजा है ॥ ९ ॥

नीतिपाल उक्ति—चौपाई.

तुम संबंध शोधन को आये, उचरत बात भेद हम पाये ।

साधुद्रिक सु भेद तुम पाओ, यह संछेप हमें समुझाओ ॥

दीर्घ ह्रस्व देह शुभ केते, सुच्छम ऊंच कहो शुभ जेते ।

रक्त सु प्रथुल कहो शुभ जोही, शुभ गंभीर बताओ सोही ॥

कहा जामात्र लच्छ अपलच्छन, कन्या सुभग कहा कहा दूषण ।

सकल भेद तुम जाननहारे, हम उमेद सुनवे की धारे ॥ १० ॥

राजकुमार के संबन्ध के लिये आप आए हैं यह बात तो हमें मालूम हुई, परन्तु साधुद्रिक का भेद जो आप जानते हो वह संक्षेप से हमें समझाओ कि

शरीर के कौनसे भाग लम्बे अथवा ठिगने उत्तम हैं तथा यह भी कहो कि सूक्ष्म और ऊंचे क्या २ अच्छे होते हैं । लाल और शुभ्र शरीर का कौनसा अंग लाल, शुभ्र और गंभीर शुभ है ? दामाद में क्या २ लक्षण और अप-लक्षण हैं, इसी प्रकार कन्या के भी गुण दोष क्या २ हैं ? इन सब बातों के आप जानकार हैं इसलिए सुनने की हमें बड़ी आकांक्षा है ॥ १० ॥

अथ शाशिधरोक्त-दोहा.

सामुद्रिक मुनिवर उकति, पार न पावत कोय ।

तुम बूझ्यो सो मति यथा, कहों अनुक्रम सोय ॥ ११ ॥

इस प्रकार राजा से प्रश्न किए जाने पर उत्तर में राजगुरु शाशिधर कहते हैं कि सामुद्रिक विद्या जो समुद्रमुनि की सर्वोत्तम वाणी है उस का कोई पार नहीं पाता, परन्तु आपने पूछा है अतएव अपनी बुद्धि अनुसार क्रमपूर्वक कहता हूँ ॥ ११ ॥

अथ सामुद्रिक के प्रत्यंग, शुभ लच्छन भेद-दोहा.

पंच दीर्घ ह्रस्व चतुर, पंच सूक्ष्म षट ऊंच ।

सप्त रक्त त्रय विस्तरन, त्रय गंभीर समूच ॥ १२ ॥

पांच दीर्घ यानी लम्बा, चार ठिगना, पांच सूक्ष्म, छः ऊंचा, सात लाल, तीन विस्तार वाला और तीन गंभीर ये विभाग शुभ माने गए हैं ॥ १२ ॥

अथ प्रथकांग भेद-छंद विजोहा.

जाननी द्वैकरं, नैन नासा वरं, अत्र उर उभं, पंच दीर्घ शुभं ।

ग्रीवही प्रज्जनं, जानिये जंघनं, पृष्ठ रस्वं सुहै, चार एही लहै ॥

पर्वयं अंगुली, केश रदावली, नख चर्मावरं, पंच तुच्छं नरं ।

कक्ष वक्षो जियं, कुक्ष कंधं कियं, घ्रान लिल्लाट हैं, छै शुभं ऊंच हैं ॥

पाणि पाद चखं, तालु जिह्वा नखं, आधुरं आरनं, सातश्रेष्ठं जनं ।

भाल उरं लखें, मूर्द्धनी मानुषे, तीन विस्तारितं, सो शुभं कारितं ॥ १३ ॥

घुटने, दो हाथ, आंख, नाक और छाती के बीच का भाग ये पांच लम्बे हों तो अच्छा । ग्रीवा, प्रजन, जंघा और पुट्टे ये चार लघु अच्छे हैं । अंगुली

के पोरवे, सिर के बाल, दंतावलि, नख और त्वचा ये पांचों नर्म (पतली) हों तो अच्छा । कांख, स्थन, पेट, खवा, नाक और ललाट ये छः ऊंचे हों तो अच्छा । हथेली, पग के तलवे, चड्ड, तालू, जीभ, नख और होठ ये सात लाल होवें तो अच्छे । कपाल, उर और माथा ये तीनों विस्तीर्ण शुभ-कारक हैं । कान, नाभि और उच्चारण, गंभीर होवें तां यह शुभ लक्षण हैं ॥ १३ ॥

अथ जामात्र शुभ लक्षण-छंद मंथान.

आपै विद्यावन्त, सूरापनो चित्त, ख्याता शुभं देश, तारुण्यता वेश ।
शीलं गुनं सार, रूपं शुभं धार, माधुरता वानि, शुद्धं कुलं जानि ॥
दीनं दयाकार, सोहे सु आचार, भोगं सबै भोग, काया विन रोग ।
दृढं मती कीना, पापा रती हीना, जाने निजं रीत, सारं करे प्रीत ॥
सत्यं सु भाषत, इष्टं उपासत, आपें सु उदार, जामात्र सो सार ॥ १४ ॥

विद्वान्, चित्त में शूरता, अनेक देशों में ख्याति, युवाशील, स्वभाव-युक्त तथा गुणवान्, अति रूपवान् मधुर वाणीयुक्त, दीनों पर दया करने वाला, सदाचारी, भोग शक्तियुक्त, शरीर से नीरोग, दृढ़ मति वाला, पाप का विरोधी अपने सब व्यावहारिकरीति का जानने वाला, उत्तम मित्रों से मित्रता करने वाला, सत्य और स्पष्टवक्ता, इष्टदेव की आराधना करने वाला और उदार ये गुणवान् दामाद के लक्षण हैं ॥ १४ ॥

अथ जामात्र दूषण-छंद तिलका.

मालिनं वानं, न मया सुमनं, वय जास वृद्धा ।
अधकार श्रद्धा, कुलहीन वही, तन रोग जिही ॥
अरु खंड दशा, सु अचार अशा, रतिहीन भवं ।
नित मित नवं, मन पाशुनता, क्रमहीन क्रता ॥
अदतार सदा, कुपथे स मुदा, दुर आकरती ।
गुन चोर गती, पुरुष परखे, बिन खोट लखे ॥ १५ ॥

मलीन बख वाला, जिसके मन में प्रेम नहीं, वृद्ध, पापकर्म में श्रद्धालु, सु कुलहीन,

रोगी, निर्बल स्थितिका, आचारभ्रष्ट, प्रीतिहीन, प्रतिदिन नए नए मित्र बनाने वाला, चुगलखोर, अयोग्य, नीच कर्म करने वाला, कंजूस, कुपंथ में मग्न रहने वाला, बेडौल और गुणचोर आदि कुलक्ष्णों से युक्त पुरुष का त्याग कर उत्तम पुरुष को दामाद बनाना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ कन्या शुभ लक्षण—छंद शंखनारी.

तनं हेमरंगं, रुची केशभ्रंगं, प्रभा एन नैनं ।
 मुख चंद्रेनं, तिलं फूल नासा, सरोजं सु बासा ॥
 “शुक्रं प्रीय” दंतं, रसारक्त कृतं, छवीं सुक्र जैसे ।
 शुभं श्रोन ऐसे, पिकं भाष बानी, दरं ग्रीवा जानी ॥
 शुभा ओठ बिंबा, हनुं पक्ष अंबा, उरं छीन आमं ।
 गती गूढ नाभं, कटी तुच्छ आरी, नितंब प्रसारी ॥
 वरं रंभ जंघं, सु पिंडी निपंगं, पदं पान रक्तं ।
 सु रेखा वृत्तं, न छीनं न मंसं, गति ईभ हंसं ॥
 तुछं नीद्र हांती, सुशीलं प्रकासी, सुकुमार ताई ।
 मनो कंज छाई, यह लच्छ कन्या, लिखे सु प्रगन्या ॥ १६ ॥

सुवर्ण के समान जिसके शरीर का रंग है, सिर के बाल भंवरे के समान काले और कान्तियुक्त हैं, मृगनयनी (हिरण के समान जिसकी आंखें हैं) । पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान जिसका मुख विशाल और शोभायुक्त है, निला के फूल सटश जिसकी नाक है, शरीर से जिसके कमल पुष्प की सुगंध आती है, अनारदाने के सटश दांत, लाल कमलपत्र के समान शुभ्र जिसके कान हैं, और जो कोकिला के समान मधुर वाणी, शंखाकृति ग्रीवा, कुंदन के समान लाल होठ, पके आम के सटश कपोल, नाजुक और कठिन स्तन, गंभीर नाभि, अति सूक्ष्म कटि से युक्त और मताहारी है । विस्तृत नितंब, कदली स्तंभ के समान जंघा, तरक्श के समान पिंडलियां, और हाथ तथा पग के तलवे रक्त वर्ण हैं । हाथ तथा पग में रेखाएं फैली हुई हैं जो न तो अति पतली है, न मांस से अति मोटी है । गति जिसकी हंस अथवा हस्तिनी के समान है,

हंसी और निद्रा जिसके नियमित हैं, शीलस्वभाव और प्रफुल्लित बदन जिसका सुशोभित है, इस प्रकार की कन्या सुलक्षण वाली श्रेष्ठ कही जाती है ॥ १६ ॥

अथ कन्यादूषण-छंद मालती.

कराल कुवेशं, सु पिंगल केशं, द्रुगं पुनि पिगं ।
 सुजाकृति अंग, अति विसतार, कशांग निहार ॥
 अधूर सु दंत, असीत सु कंत, प्रथू जिहि कंध ।
 मधू वृष गंध, धनी क्षुधवान, वदे अति वान ॥
 सुपाकृति कान, प्रथू लघु घ्राण, चलं गति चित्त ।
 तन विषमंत, करा गुलि ओर, रसन्न कठोर ॥
 कृता नित रोष, डरे नहि दोष, सदाचित्त लोल ।
 उनंत कपोल, अति जिहि निद्रा, कछू तन छिद्र ॥
 अधूर सकंप, नहीं मन जंप, कठोर सु बार ।
 हसंत अपार, पदंगुठ अंत, त्रजन्यं बढंत ॥
 त्रजन्य हिहेर, बढें मध्य फेर, अनामिक जाय ।
 धरा न क्षुआय, भ्रुवा प्रथु रूप, कपोलन कूप ॥
 बढें वृष जोग, कछू तन गेग, बढयो धरि अंग ।
 कुशील कुरंग, त्रया जिहि छीन, कन्या वह हीन ॥ १७ ॥

विकराल और खराब वेश, पिंगल केश, भूरी आंखें, बेडौल शरीर, अति विशाल अथवा कृश काय, हाँठ, दाँत और जीभ जिसके काले हों, विशाल कंधे वाली, शरीर से मद्य की गंध आती हो, अत्यन्त भूख वाली, बहुत बोलने वाली, सूप के समान कान वाली, चपटी और छोटी नाक, चंचल चित्त, अनघड़ शरीर, हाथ की उंगलियाँ और जीभ जिसकी कठोर हो, निरंतर क्रोध करने वाली, अस्थिर चित्त वाली, उभरे हुए कपोल, अति निद्रा वाली, शरीर में किसी प्रकार का छिद्र हो, क्रोध में होंठ कांपते हों, मन में जरा भी गंभीरता न हो, बाल कठोर हों, अत्यन्त हंसने वाली, अंगूठे के पास की तर्जनी उंगली जिसकी बड़ी हो, तर्जनी की भांति बिचली उंगली भी बड़ी हो, अनामिका उंगली जमीन पर न लगती हो, भौहें मजबूत और विस्तीर्ण हों,

कपोल बैठे हुए हों, थोड़ी उमर में भी अधिक अवस्था की प्रतीति हो ऐसे रोग-ग्रस्त शरीर वाली, शरीर के अवयव छोटे बड़े हों, उग्र स्वभाव, शरीर का रंग अच्छा न हो तथा जिसमें लज्जा न हो, इस प्रकार की कन्या हीन समझनी चाहिये ॥ १७ ॥

दोहा—सामुद्रिक जनता सुभग, गुण औगुण जामात्र ।

कन्या-गुण दूषण कहे, नृप-गुरु परखि सुपात्र ॥ १८ ॥

सामुद्रिक के जानकार शशिधर पंडित ने दामाद के गुण अवगुण तथा कन्या के भी गुण अवगुण कहे इससे राजा को राजगुरु के सुपात्रता की परीक्षा होगई ॥ १८ ॥

नीतिपाल मनहार करि, रखे दिवस दस बीस ।

रंग राउ प्रति करि मतो, क्रिय कन्या बकसीस ॥ १९ ॥

राजा नीतिपाल ने दस बीस दिन आग्रहपूर्वक राजगुरु शशिधर पंडित को अपने घर मेहमान रखवा, पश्चात् कुमार रंग राव के साथ में परामर्श करके कन्या अर्पण का निश्चय किया ॥ १९ ॥

छप्पय—बजे द्वार दुंदुभी, माल गृह गृह प्रति बंदन ।

राज समाज सु रचित, चुआ केसर अरु चंदन ॥

नृत्य भेद संगीत, नीतिपाल सुजस गावत ।

बनि बनि तरुनि समूह, कला परवीन बधावत ॥

विप्र उचार वेदह धुनी, अवि जन सह आनंद अति ।

आगम अदृष्ट अंकन उदय, वह कन्या दरसे दुचिति ॥ २० ॥

राजद्वार में नगारे बजने लगे तथा घर २ में तोरण और वन्दनवार बँधे । बड़ा भारी दर्बारा हुआ जिसमें चोवा, चन्दन, केशर आदि का सब दरबारियों पर छिड़काव हुआ । सभा में संगीत शास्त्र के अनुकूल गायन वादन तथा नृत्य होकर राजा का सुयश वर्णन हुआ । अनेक वस्त्र आभूषण से सुसज्जित हो स्त्रियां कलाप्रवीण की अभिवृद्धि करती हैं । ब्राह्मण गण वेदोच्चार कर रहे हैं और सब पुरवासी हृदय में आनन्दित हो रहे हैं, परन्तु अदृष्ट भविष्य के अंक प्रकाश होने से कन्या बेचैन तथा उदासीन है ॥ २० ॥

सोरठा-दुचिता कला प्रवीण, संकुचितसी मनसे कहे ।

कहां करमगति हीन, यह संबंध सविता दियो ॥ २१ ॥

इस प्रकार उदास कलाप्रवीण मन में संकुचित होती हुई कहने लगी, हा विधाता ! कर्मगति कैसी हीन है, विधाता कैसे भाग्य हैं जो पिताजी इस प्रकार बिना विचारे अयोग्य सम्बन्ध जोड़ रहे हैं ॥ २१ ॥

छप्पय-शशिधर प्रति महाराज, बाज बकसीस बीस किय ।

उमै सुखासन सुभग, उमै रथ ईम उमै दिय ॥

उमै जोर निज वसन, वलय कुंडल मणि मालह ।

शीशपेच शिरपाउ, कनक उपवीत दुशालह ॥

पहेराव ओर जन जन सुप्रति, वत इतमाम सबै दिये ।

लखि पत्र तरुनतेज सुप्रति, राजगुरुह विदा किये ॥ २२ ॥

फिर राजा ने राजगुरु शशिधर को २० उत्तम घोड़े इनाम में दिये, इस के साथ दो बहुमूल्य पालकी, दो रथ और दो हाथी दिए, उनके पहिने के लिए दो मूल्यवान वस्त्रों के जोड़े, कंठा, कुंडल, मणिमाला, शिरपेच, सोने के जनेऊ, और शाल दुशाला इत्यादि बहुत प्रकार की वस्तुएँ राजगुरु को दीं। इसके अतिरिक्त राजगुरु के साथ आए हुए सब मनुष्यों को उनकी योग्यता के अनुसार बहुमूल्य वस्तुएँ दीं। महाराज तरुणतेज ने एक पत्र लिख कर राजगुरु को ठाटबाट से विदा किया ॥ २२ ॥

गाहा-‘तरन-तेज’ इतमामं, संबंध जोग सामुद्रिक भेद ।

एकादश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २३ ॥

तरुणतेज महाराज के राजगुरु के साथ दिए हुए असबाब तथा विवाह करने के समय के सामुद्रिक भेद की चर्चा इत्यादि वृत्तान्त वाली प्रवीणसागर ग्रन्थ की ग्यारहवीं लहर पूरी हुई ॥ २३ ॥

लहर ११ वीं

अथ नीतिपाल सहेलान प्रसंग-दोहा.

सैल करन सेना सजी, नीतिपाल नरनाह ।

गज हय रथ पैदल चले, यह चतुरंग अथाह ॥ १ ॥

राजा नीतिपाल की चतुरंगी अथाह सेना हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल से युक्त सैर को चली ॥ १ ॥

छप्पय-बाजि निसान बहु विध, गजह शिर दरक अश्व गनि ।

मनहु सघनके महन, धरा नभ गजत चंड धुनि ॥

पुनि पताक फहरात, मनहु पचरंग जरी चक ।

सुर क्रनाल सहनाय, होत नकीब गहक एक ॥

परुखरित बाजत जयों पुलत, मनु अठारखोयन मालिय ।

करि चाह नृपति स्हेलांत कजि, चतुरंगी सेना चलिय ॥ २ ॥

विविध प्रकार से शिंगारे हुए हाथी, घोड़ों के ऊपर अनेक डंका, निशान, दुंदुभी आदि अनेक प्रकार से गड़गड़ा रहे हैं । ऐसा गंभीर नाद हो रहा है मानो सघन मेघनाद से पृथ्वी और आकाश गूंज रहे हों । ध्वजा पताका इस प्रकार फहरा रहे हैं मानो पचरंगी जरी के पर्दे हैं । क्रनाल, सहनाई और नकीब की घोर ध्वनि मिलकर शब्द करते हैं । अनेक प्रकार के साजों से सुसज्जित घोड़े और हाथी इधर उधर फिरते हुए चलते हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो अठारह अक्षोहिणी सेना एकत्रित हुई हो । इस प्रकार नीतिपाल महाराज के सहज सैर जाने की इच्छा प्रकट करने पर चतुरंगी सेना चली ॥ २ ॥

अथ गजवर्णन-दोहा.

गिरि उतंग सम अंग गनि, भा धन वदर भत्त ।

साज सहित अहिराव सम, हले सु जुत्थ इसत्त ॥ ३ ॥

ऊंचे पहाड़ के सदृश विशाल वाम और मेघ की सी कान्ति वाले,

सुरपति इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान सजे हुए हाथियों का समूह चलने लगा ॥ ३ ॥

अथ छंद हनुफाल.

मद मसत हस्ति चलंत, घन व्रसत बदर कंत ।

शिर लसत बंदन शूल, जरकसित टंपित भूल ॥

पुनि घसत लंगर पाय, गिर घसत ठोकर लाय ।

निज डसत शुंडा दंड, असित अति परचंड ॥

मद भरत भरनी समान, अरि डरत देखि उतान ।

घन घुरत घंटन घोर, तन करत कज्जर खोर ॥

शिरजरित कंचन साज, डगभरत उचरत गाज ।

शिरकुंभि सरीय सु चंग, मद लुवध गुंजित भृंग ॥

सित दिपत इम मुख दंत, मनु प्रभा वनवक पंत ।

शिर भलक अंकुश ऊप, नभ भलक चपला रूप ॥

कुंतार करत बखान, डग भरत ताम धरान ॥ ४ ॥

मदमत्त हाथियों का समूह चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो वर्षा ऋतु में बादलों का मुंड इधर उधर फिर रहा हो । उन हाथियों के मस्तक सिंदूर से चित्रित हैं और उन पर जर कसी भूल पड़ी हुई है । उनके पैरों में लंगर पड़े हुए हैं जिनकी ठोकर से पहाड़ धसक पड़ते हैं । वे अपने मुंड का अपने पर ही प्रहार करते हैं । उनका शरीर काला और अति प्रचंड है । भरने के समान जिनका मद भर रहा है । उनके शरीर की विशालता देखकर शत्रु डरते और कांपते हैं । घंटा का घोर शब्द हो रहा है । शरीर पर मानो काजल की खोल चढ़ी हुई है, जिन में शरीर पर रत्नादिक से जड़ी हुई सोने की अम्बारी शोभायमान है । इस प्रकार के हाथी जब चलते हैं तो उनके पग का शब्द गूंजता है । शुभ स्थल पर सुनहरी कलंगी शोभायमान है । मधु के लोभी भंवरे चारों ओर उड़ रहे हैं । मुख में सफेद दांत ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे अँधेरी काली घटा में वकपंक्ति * । शिर

* गुजराती टीकाकार ने उल्लेख मानो भंवरे के साथ किया है, परन्तु कवि का आशय दांतों की उल्लेख 'वकपंक्ति' से प्रतीत होता है, वही हमने किया है ॥

पर भाला और अंकुश ऐसे चमकते हैं मानो श्याम घन में बिजली चमक रही हो । महावत जैसे २ उस का बखान करता है उसी प्रकार वह पृथ्वी पर डग भरता है ॥ ४ ॥

अथ उत्प्रेक्षाङ्कार-छप्पय.

इक गज नृप आरूढ, नाम दिय तास मुकुटमनि ।

भद्र जात शोभंत, कनक हीरा मय भूषण ॥

मेघाडंबर छत्र, चौर चहुं ओर विराजत ।

मनहुं राज राजंत, सुर उदयागिरि उदित ॥

आरोह अवर उमराउ गज, के बंदीजन विरद पढ़ि ।

सोहत भूपदल रूप शुभ, मनु सुरजुत सुरराज चढ़ि ॥ ५ ॥

एक मुकुटमणि हाथी पर महाराज भी बैठे हैं । वह ऊंची जाति का हाथी है, उस के अंग पर हीरा व माणिक से जड़ा हुआ सोने का आभूषण शोभित है । सिरपर मेघाडम्बर व छत्र धारण किया हुआ है, आसपास चारों ओर चंवर डुल रहे हैं । इस प्रकार हाथी पर बैठे महाराज ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो उदयगिरि पर सूर्य उदय हो रहा हो । अन्य उमराव भी दूसरे हाथियों पर बैठे हैं, भाट चारण आदि बंदीजन महाराज का यशोगान कर रहे हैं । इस प्रकार यह समूह ऐसा प्रतीत होता है मानो सुरराज इन्द्र अपनी देव सेना के साथ चढ़ आए हों ॥ ५ ॥

अथ अश्ववर्णन-छंद मुक्तदाम.

तराकि चल्लीय जूथ तुरंग, फराकित पारत फेंट कुरंग ।

भलकत साज लगे गजगाह, छलकत आपहु की लखि छांह ॥

लटकत सैन करत लगाम, सटकत साम संभारत ताम ।

चमकत अंग सु रंग सु चंग, अनी टपटंत अफारत अंग ॥

वहे मनु छूटत नाउक बान, कियो सहगोसहु की छविकान ।

ढलकत खल्ल छटा उरढल्ल, कुमारिय गोनिन कंधनकल्ल ॥

धकै गजराज प्रकार धसतं, दरप्पन के प्रातिर्विध डरत ।

चहुं दिश चकित बीज चमंक, घुरे घन घूघर हेम घमंक ॥

बने नवरंग सु अंग विधान, मनी जट हाटक पीठ पलान ।
 वनांतसु के मखतूल विराज, समारित है जर तारजसाज ॥
 पढ़े कितनेइ सु कोतल पंत, चमू कितनेइ सुवीर चढंत ।
 प्रथीपति ता मधि नीतिमुपाल, मनू सुरराजसुरावृत माल ॥ ५ ॥

घोड़ों का जूथ नुकीं चाल में चल रहा है । कटक के फेट में आने वाले हिरणों को गिरा देता है । सिर पर गजगाह नामक आभूषण (कलंगी) चमकती है । वे घोड़े अपनी परछाई से ही चमकते हैं । सवार के लगाम के इशारे पर कोई छन छन लटकता, कोई नाचता हुआ चलता है । चाल से चलना, फलांग मारना तथा सवार भी अपने को सम्हालता हुआ, छटादार अंगों से सुशोभित शरीर को अकड़ते हुए ऐसे घोड़े दौड़ाते हैं मानों तरकश में से निकला हुआ तीर जारहा हो । उस समय खरगोश के कान की आकृति के समान कान्मेटी बदले हुए, शेर के पिछले छटादार गुच्छा के समान जिसकी केशावलि तथा विशाल छाती शोभायमान है । जिनकी गर्दन कार्तिकेय स्वामी के वाहन मोर के फूले हुए गर्दन के समान है, छेड़ने पर हाथी के समान चिड़ने और दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब से भी चमकते हैं और चारों ओर बिजली के समान कला करते हैं । गले में पड़ी हुए सोने की घूंघरमाल की घनघनाहट शोभायमान हो रही है, जिनके अंग पर जड़ाऊ रत्न और पीठ पर सुन्दर साज से सजी हुई रत्नजटित सुवर्ण जीन और उस पर मखमल का गलीचा कसा हुआ है, इस प्रकार अनेक तरह के कसे हुए कोतल घोड़ों की लाइन चल रही है । बहुत से घोड़ों पर सैन्य वीर सवारी किए हुए हैं, उन के मध्य पृथ्वीपति महाराज नीतिपाल ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे देवताओं से घिरे हुए सुरपति इन्द्र ॥ ६ ॥

अथ रथवर्णन—छंद रथोद्धता.

है अनंत फंदन बरुथनी, नीड डोर जिहि रेशमी तनी ।
 जात रूप परचंड दंड हैं, नीक जट हाटक सु इंड हैं ॥

भल्लरीय जरतार छत्रियं, भीन भवे मानिक जरत्रियं ।
 नाभि बाँक कुवजं सुरूपियं, बाज केक वृषभं सजोरियं ॥
 तास भूल मखतूल भूलितं, अन्त स्रह चकढोल भूलितं ।
 चंग सौर घुघरी घनी बजें, जूथ नृत्य अबरं मनो सजें ॥
 रंग २ सोहित पताकिय, मनो धाम कर्दम प्रभा कियं ।
 मध्य चाप इषुधी सुसाजितं, के अमाति उमराउ राजितं ॥ ७ ॥

सेना में अनेक रथ हैं जिनकी डोर रेशम की डोर से बंधी हुई है, जिनके ऊपर सोने के दंड और स्वर्णमणिक जटित वस्त्र से जिसके ऊपर छतरियां लगी हुई हैं । ओढ़नी भालर की जड़ावदार जिसमें नाना प्रकार के मोती, हीरा जड़े हुए हैं, जिनके तेज से जगमगाहट होरही है । पायदान और नीचे के अन्य भाग रुपहरी हैं कितने ही रथों में बैल जुड़े हुए हैं और कितने में घोड़े जुड़े हुए हैं उनके ऊपर मखमल व काचिवी का मुख पड़ा हुआ ऐसा प्रतीत होता है कि उस में इन्द्र के रथ की कीर्ति होने लगती है । सुन्दर और बारीक स्वर से अनेक घुंघरू के तथा बैलों के घूँघरमाल के शब्द होते हैं । इस प्रकार यह रथ का समूह चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता है कि अप्सराओं का समूह नृत्य कर रहा हो । उन रथों के ऊपर रंग विरंग के ध्वजा पताका फहराते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कर्दम ऋषि के मनरचित कामना विमान की शोभा है । उनके मध्य भाग धनुष और तरकश से सजे हुए उमरावगण विराजमान हैं ॥ ७ ॥

अथ पैदल वर्नन—छंद मोदक.

वृंद कजाकनके जु चले बनि, अग्रसु पंत वनी सुपताकनि ।
 तुर बजें करनाट सुतंसह, मौअरि के परिगाह सु वंसह ॥
 के सरनारण फेर कनालह, अंबर नील सितं पित लालह ।
 पूरब रूम कनाट फिरंगिय, हिंद सु सिंध बरारब वंगिय ॥
 बान कबाक तुफंग सुधारत, दीठ परे पशु पंखिन मारत ।
 शाम सु आयस टूक करें तन, मानु प्रभा नशरंग घटा घन ॥

आपन आपन जूथ चलें मिल, पंथहु पंथ प्रसारित पैदल ।

केंधु धसे रघुवीर अनूचर, के निकसे कनकंपुर किंकर ॥ ८ ॥

पैदल सेना चल रही है जिसके आगे २ भंडे वालों की पंक्ति है, जहां कितने ही तुरही, करनाट और तासा बजाते हैं, कितने ही मोर, मोरली भेरी, बांसुरी, महनाई और करताल वगैरह बजा रहे हैं । नील, पीत, श्वेत और रक्त वर्ण के हरेक अलग २ बन्ध पहिने हुए हैं । पुरविया, रूमी, कर्नाटकी, किरंगी, हिन्दुस्तानी, सिंधी, बराठी, अर्बस्थानी तथा बंगाली वगैरह मनुष्य सेना में सुशोभित हैं जो धनुष और कहुक बाण तथा हवाई बन्दूक धारण किये हुए हैं । कइयों ने जम्हिया, कटार वगैरह छटादार छोटे हथियार लगा रखे हैं और हाथ में तलवार, पिस्तौल, बन्दूक व भाला आदि शस्त्र सम्हाले हुए हैं । दृष्टि में आये पशु पक्षी का शिकार करते हैं और संग्राम में अपने मालिक की आज्ञानुसार शरीर के झिड़ने भिड़ने अथवा टुकड़े २ हो जाने पर भी पीछे पैर नहीं हटाते, ऐसी नवरंगी मेषघटा रूपी सेना चल रही है । सैनिक अपनी २ टुकड़ी में चलते हैं । मार्ग में चलते हुए सैनिक ऐसे प्रतीत होते हैं कि श्रीरामचन्द्र की सेना जा रही है अथवा लंकेश्वर की सेना निकल रही है ॥ ८ ॥

दोहा-चत्र अंग चतुरंगिनी, वरनें पृथक बनाय ।

“नादा-युध” पटत्रीस विधि, वजि सजि वरणों ताय ॥ ९ ॥

इस प्रकार चतुरंगी सेना का पृथक् वर्णन करके अब छत्तीस प्रकार से बजने वाले वाणों और हथियारों का वर्णन करता हूं ॥ ९ ॥

अथ पटत्रिस वाजित्राभिधान-छप्पय.

मंडल बीन रबाब, अनोप तंबूर उपंगह ।

बर वसु सुरद पिनाक, कुमायच पुंग सुरंगह ॥

बंसी परिगह बांस, कानुटक ताल सुपिंगी ।

तूर भेर सहनाय, पाव रनसंग दर सिंगी ॥

करनाट पनव आनकधुरंज, डफ सुडाक डमरुसजे ।

जलतरंग भंभ मंजीर मिलि, पटह त्रिस वाजित्र बजे ॥ १० ॥

मंडल, वीन (जंगर), स्वाज, अनोप, तंबूरा, उपंग, वर, खसु, सुरद, पिनाक, कुमायच, पंगी (पंगी या मुरली), सारंगी, वंशी, परशाह (पड़गम), बांस, कानडुक, ताल (कड़ताल), पिंगी, रणतुर, भेरी (बड़ा नगारा), सहनार्द, पाव, रणसिंहा, शंख, सिंगी, करनाट, पणव, आनक (नगाय), मुरंग, डाक, डमरू, जलतरंग, भांफ और मंजीरा इम प्रकार छत्तीस प्रकार के वाद्य बजते हैं ॥ १० ॥

अथ षट्त्रिंश आयुधाभिधान-छप्पय.

चक्र शूल धनु वज्र, वान कैवान तुफंगर ।
 फरसु कटारह छुरा, सेल खेटक गद संगह ॥
 तोमर पाश भुशंड, बांक खंजर जंबू लठ ।
 जंत्र मु अंकुश भाल, हलह मूशल खग वर बठ ॥
 जंजाल जरह गुपती गुरज, दाबपटा पिस्तौल लिय ।
 आयुध षडांगषट्त्रिंश जुत, नीतिपाल सेना चालिय ॥११॥

चक्र, त्रिशूल, धनुष, वज्र, वाण, कैवान, तुफंग (हवाई बन्दूक), (कांकबाण) फरशी, कटार, छुरा, सेल (बरछी), खेटक, गदा, शांग, तोमरपाश, भुमुंडी (बन्दूक) बांक, खंजर, लठ, जंत्र, अंकुश, भाला, हल, मूशल, ग्वांडा (तलवार), वर, बठ, जंजाल, जिरह, गुप्ती, शुरंजदाव (कुराड़ा) और पटा पिम्नौल इम प्रकार के आयुध धारण कर वा संभालकर महाराज नीतिपाल की सेना चली ॥ ११ ॥

अथ समग्र सेना वर्णन-छंद सेहेल.

यही रीतिसे नीतिपाल चढ़ें, बिरहावली वान बंदी पढ़ें ।
 षट्त्रिंश बंसावली खत्रियं, चले आसुरं चंड चारित्रियं ॥
 पटंत्रीश आयुधं अंग सजे, विषयं षटंत्रीश नादं बजे ।
 वितुंड प्रचंडं सु पंथं वहे, पराबंध वीरं सुबाजं ग्रहे ॥
 रथं संचरं कौन आरोहितं, सुखंपाल फंदा जरी सोहितं ।
 भयंकर द्रक् भरे भारियं, किते वान कैवान कटा-रियं ॥
 वहै पायकं व्यूह केते बने, इकं जोजनं काय तंबू तने ॥१२॥

इस प्रकार नीतिपाल राजा ने चढ़ाई की और बंदीजनों ने विरुदावलि गाना प्रारंभ किया । छत्तीस वंश के क्षत्रिय तथा महाचरित्र करने वाले असुरों ने भी चढ़ाई की । रण में एक तरफ छत्रों अंगों में छत्तीस प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित शूरवीर शोभायमान हैं । दूसरी ओर महाभयानक छत्तीस प्रकार के घोर और शूर नाद-युक्त बाजे बज रहे हैं । विकराल गजेन्द्र मार्ग पर चल रहे हैं, भड़कते हुए कई कोतल घोड़ों को वीरों ने पकड़ रखे हैं, कई रथ में बैठकर चल रहे हैं । कई जर के ओहारों से सुसज्जित सुखपालों में शोभायमान हैं । कितने ही में बाण, कोकबाण, कटार वगैरह भयंकर अस्त्र शस्त्र भरे हैं । कितने ही पैदल सिपाही व्यूह बनाए हुये चल रहे हैं । इस प्रकार एक योजन पर्यन्त तम्बू तानकर सेना ने पड़ाव डाला ॥ १२ ॥

अथ सैन्य संख्या-छप्पय.

असी सहस्र अस्र चढ़िय, सवा अनुमान हसत सत;
सहस्र डोल सुखपाल, लच्छ निकसित कुजाक भ्रत ।
सुतर पंच अध सहस्र, वेद सत आतस बानहुं;
बिबि सहस्र वाजित्र, दस सहस्र बनीज दुकानहु ।
निज सहर छंडि जोजन निकसि, द्वादश कोश मुकाम किय;
सहलान नीतिपालह सहज, दुर्जन गिरि गहवर दुरिय ॥ १३ ॥

एक सहस्र घोड़े, अनुमानतः सवासौ हाथी, एक सहस्र रथ और सुखपाल सहित श्वेत वस्त्रधारी एक लक्ष योद्धा, ढाई सहस्र ऊँट, चारसौ अग्निबाण छोड़ने वाले, दो सहस्र बजाने वाले, दस सहस्र बनियों की दुकानों के साथ नगर छोड़ कर एक योजन के ऊपर विश्राम कर बारह कोस पर डेरा डाला । इस प्रकार राजा नीतिपाल को सामान्यतया मैर के लिए निकला सुनकर दुर्जन लोग गिरि गुफाओं तथा जंगलों में जा छिपे ॥ १३ ॥

अथ अलंकार उल्लेख नृप-पराक्रम वर्णन-छप्पय.

राजनीति रघुवीर, सरस साहस लंकेश्वर;
प्रजापालन पृथुराज, गुनह गंभीर सु सागर ।

मधवा रमन मनोज, नचल आहव मेरू नग ।

रिपु काटन दुज राम, जगत तप तेज 'नयन नग'

माहेशरीभूवकसन सुमन, गंग नीर निरमल सुगति ।

सुर गुरु सयान धारन धरम, नीतिपाल सोहैं नृपति ॥ १४ ॥

रामचन्द्रजी के समान राजनीतिज्ञ, लंकापति रावण के समान साहसी, राजा वृथु के समान प्रजापालक, समुद्र के समान गंभीर, इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली, पर्वत के समान स्थिर, शत्रु-भेदन में परशुराम के समान, सूर्य के समान तेजस्वी, शंकर के समान दातार, गंगाजल के समान पवित्र और बृहस्पति के समान विद्वान् तथा धर्मराज के समान धारण शक्ति बाला राजा नीतिपाल शोभायमान है ॥ १४ ॥

सोरठा—नीतिपाल सहलान, करत करत आये तितें;

रससागर जिहि थान, किय मुकाम आखेट करि ॥ १५ ॥

इस प्रकार राजा नीतिपाल सैर करते हुए वहां पहुंचे जहां रससागर शिकार करके विश्राम किया हुआ है ॥ १५ ॥

दुहुं दल इक दिन आय, अष्ट कोश अंतर परे;

तहं लागि कछु न ताहि, एक एकहू की खबर ॥ १६ ॥

दोनों दल एक दिन आकर आठ कोश के अन्तर पर पड़ाव डाला, उस समय तक किसी को किसी की खबर न थी ॥ १६ ॥

गाहा—नीतिपाल सहलानं, चत्र अंग वर्णन चतुरंगि ।

नादायुध अभिधानं, द्वादश प्रवीण सागरो लहरं ॥ १७ ॥

राजा नीतिपाल की सैर, चतुरंगी सेना के चार अंगों का वर्णन, वाद्य और आयुधों के नाम वगैरह प्रसंग वाली प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह १२ वीं लहर पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

१३ वीं लहर ।

अथ नीतिपाल रससागर संग्राम प्रसंग यथा—दोहा.

दुहुं जामनि सुखभर वितित, भयो उदय नभ भान ।

कूच करन के अरण में, दुहु दल बजे निशान ॥ १ ॥

दोनों सेना ने रात्रि आनन्दपूर्वक बिताई, प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर
अरण्य में कूच करने के लिए नगारे बजने लगे । १ ॥

नीतिपाल बामी मिसल, चली निकट कंतार ।

सागरकी अग्रिम चमू, सोधत जहां शिकार ॥ २ ॥

नीतिपाल राजा की सेना की एक टोली बाएं बाजू पंक्ति बना कर चली,
और राजा रससागर की सेना, अगला भाग जहां शिकार के खोज में था
वहां पहुंची ॥ २ ॥

छप्पय—नीतिपाल दश सहस्र, चली वाईं चतुरंगन ।

रससागर सु इरोल, सहस्र उभ सोधत आरन ।

भयो जोग भारथ, रह्यो अंतर अध जोजन ।

आखेटों के अग्र, उठे बातज कोलह वन ॥

हके सु वीर तापुठि हय, कुंत असुग हानियत किते ।

सहलान दिशा सन्मुख भजे, आयुध मुख उवरे तिते ॥ ३ ॥

राजा नीतिपाल का दस हजार सैनिकों का एक जत्था, चतुरंगिनी सेना के
बाएं ओर, जहां रससागर के दो हजार घुड़सवार आगे आकर अरण्य में शिकार
का खोज कर रहे थे, वहां पहुँचा । दोनों राजाओं के बीच अभी दो कोस का
अन्तर है, इधर दोनों सेनाओं में भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया । शिकार
हूँदने वाले शिकारियों के सन्मुख जो हिरण, सूअर वगैरह अनेक पशु आते हैं
उन्हें वे मारते हैं और जो शिकार भागता है उसके पीछे घोड़ा डालते, बाण
मारते हैं । इस प्रकार जो शिकार जान बचाकर भाग निकलता है वह सैर के
लिए आए हुए नीतिपाल राजा की सेना के सन्मुख जाता है ॥ ३ ॥

अथ छंद मुकुटदाम.

हरोलिय लीन वनचर हकि, धरा गिरि बाज खुरान धमकि ।
 तरखर तुटत फँट तुरंग, कुराइन क्रौंच धसंत कुरंग ॥
 किते लागि कंटक जात दुकूल, पुनी ऋतुराज रचे मनु फूल ।
 वदे नद निहर्भर बाट उवाट, न खैंचत सिंघव सूर निराट ॥
 सु संचर पंत रहंत समग्र, असंसत पंच भये तिहि अग्र ।
 दरी अंतराय परी नहिं दीठ, निकसित जाय सहेलिय नीठ ॥ ४ ॥

हाका के शिकारी जगह २ वनचर पशुओं के चारों तरफ में शिकार करने के लिए उनके पीछे घोड़े डाल दिए । उस समय उन घोड़ों के टापों से वन व पर्वत गूँजने लगे । जोर से दौड़ते हुए घोड़े के चपेट में आकर वृक्ष टूटने लगे, क्रौंच तथा हिरण के झुंड पहाड़ों और गुफाओं में घुसने चले, उनके पीछे घोड़ा डाले हुए योद्धाओं में से कड़ियों के रंगविरंगे कपड़े कांटों में उलझ गए व ऐसे प्रतीत होने लगे मानो बसंत ऋतु में फूल खिले हों । नदी और पानी के भरने जहाँ तहाँ स्वच्छन्दता से बहते हैं । वैसे ही शिकारी भी गढ़ बेराह न देखते हुए सपाटा से घोड़े दौड़ाते हुए एक जगह हारबंध होकर रुक गए । उनमें से पांचमौ सवार आगे बढ़े परन्तु चलते २ मार्ग में एक दरी आजाने से सैर करने वाली सेना को देख नहीं पाए और उस सेना के समीप पहुँच गए ॥ ४ ॥

दोहा—सहलानी सात्रव समुभि, बाज उठाहिय वीर ।

बिरहाक वज्जीय विषम, गज्जिय नाद गहीर ॥ ५ ॥

सैलानी सेना के सैनिकों ने उन्हें शत्रु समझा और चमक कर सावधान हो गए तथा उनके सामने घोड़े डाल दिए और उन वीर योद्धाओं की भयंकर गर्जना से गंभीर नाद होने लगा ॥ ५ ॥

आखेटों खेचें सु असु, निरखि फौज सेहलान ।

सेहलानी सनमुख बहे, नवरंग खुले निशान ॥ ६ ॥

शिकारी सेना ने उस सैलानी सेना को देखकर घोड़े खींच लिए, परन्तु सैलानी सेना अपने नवरंगी निशान खोलकर आगे बढ़ी ॥ ६ ॥

अथ छंद हनूफाल,

नद गहर बज्जिय मीठ, दुहुं दल सु मिलियत दीठ;
उत उठिय आतस अग्य, “जट-धर” सु चख मनु जग्य ।
उभ वहिय वृंद असत्र, नभ गिरत मानु नखत्र ॥
तित त्रहिय त्रंबक तूर, सनमुख सु मिलियत सूर ।
परसेल पंजर पार, बिल निकस मनु अहि बार ॥
वपु बहत अति किरपान, मनु तडित पतन समान ।
भये रोष बाथ भिरंत, मद पियत मनु मदमंत ॥ ७ ॥

दोनों सेना के थोड़े एक दूसरे को देखते ही मारू बाजा बजाने लगे और आतिशबाजी छूटने लगी । ऐसा प्रतीत होने लगा मानो भगवान शंकर ने काम को भस्म करने के निमित्त अपना प्रलयकारी तीसरा नेत्र खोल दिया है । दोनों सेना के शूरवीर आमने सामने शस्त्र छोड़ने लगे, जो ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश से तारे टूट रहे हों । नगारे और रणसिंहा बजने लगे और योद्धागण आमने सामने तीक्ष्ण खंजर प्रहार करने लगे जो कवच का भेदन कर इस प्रकार निकलते हैं मानो सर्प अपने बिल से निकलता हो । जो योद्धागण तलवारों से युद्ध कर रहे हैं वे तलवारों ऐसी चमक रही हैं जैसे बिजली चमक रही हो । क्रोधान्मत्त योद्धा एक दूसरे से ऐसे भिड़ रहे हैं मानो मदमत्त भिड़ रहे हों ॥७॥

दोहा-परे सु सागर भट सितर, भयो खरो भाराथ ।

सेहलानी परसत सवा, मुरेजु सागर साथ ॥ ८ ॥

इस प्रकार महाभारत के युद्ध का दृश्य उपस्थित हो गया । इस में रस-सागर के सत्तर योद्धा काम आए तथा सैलानी सेना का सामना हो जानेपर सागर की सेना रण छोड़ कर भाग निकली ॥ ८ ॥

तज्यो खेत निज भट निरखि, क्रियो रससागर क्रुद्ध ।

चले सु तुरी उठाय तब, जोध करन को जुद्ध ॥ ९ ॥

अपने योद्धाओं को रण छोड़ जाते हुए देख कर रससागर महाक्रोधित हुआ और अपने घोड़ को सम्हाल कर स्वयं सिपाहियों के सहित युद्ध करने को सामने आया ॥ ९ ॥

छंद पद्धती.

करि रोस चलिय सागर कुमार, मिलि मुंच्छ भ्रॉह जपि मार मार ।
 ललकार सकल जोधार लीन, कोपे सुभट्ट सुरसिंधु कीन ॥
 जोधार अंग धारे जरद, निहस सु ताम निशान नद ।
 चख वीर अरुण मुख उदित चंड, पावक पहार मानहु प्रचंड ॥
 संचरे लरन आखाड़ सिद्ध, उलटयो सु मनहु परलैं उदद्ध ।
 हिंसार बाज हुआ वीर हक्क, इल धूर पूर ढंके अरक्क ॥
 सु मिले फेर दोउ दल समान, मनु सुर सुगिरि सागर मथान ।
 गिद्धन्ते व्योम सुर करत गाढ, उड़ि बक सु पंत मनु घन अषाढ़ ।
 रन सैन उभय अदरीय रार, धुरजटी उठे मनु छोह धार ।
 चहुं ओर करत बिल्लान चीम, ख कीन्ह मनहु सिंगी गिरांम ॥
 आराब लगी आतम सु आग, जटधार मनो वाडवा जाग ।
 वीरान तीर नावक सु बाण, सलब चिनंग केधों कसान ॥
 शूरान सेल घट नाट साल, विवि और ईश सलकंत व्याल ।
 धर धर परंत सर सार धार, छिति क्रोध सिद्ध गोला पछार ॥
 जोधार अंग धारे जरद, जट मनेक भये वीरभद ।
 केते कटार तन पार कीन, दुलहनि दरीच कर मनहुं दीन ॥
 महि परि उठंत केते कबंध, धर पहर दोय लगगे सु धंध ।
 जुरियत अनेक नभ देवथान, मिलियंत अछर वर चिंतमान ॥
 उमया सु पत्र रत पूर आर, हर प्रोहे सीस कते सुहार ।
 भुअ परे बाज पदमी भुशंड, परभा पहार अजगर प्रचंड ॥
 वीरान डाक डमरू बजंत, भूतं पिशाच जोगनि अपंत ।
 सविकादि पंप पोषित समूह, जयकार हुव सागरह जूह ॥ १० ॥

अत्यन्त क्रोधित हो सागर हमारे जब शत्रु के मन्मुख चले तब उनकी
 भूंछें व भृकुटी तन गई और मुख से “मारो मारो” की गर्जना बह्तरधारी सब
 योद्धाओं के साथ करते हुए कालरूप के समान ललकार कर सिंधू राग
 किया । नगाड़ों का घोर नाद होने लगा । अत्यन्त क्रोध के कारण

योद्धाओं के मुख व आँखें विकराल हो रही हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वत पर दावानल लगी हो । अखाड़े में दाव पेच का अभ्यास किये हुये थोड़े संप्राम में इस प्रकार दौड़ रहे हैं मानो प्रलयकाल का समुद्र महा-प्रलय करने को उलट पड़ा है । घोड़ों के टापों की खड़खड़ाहट तथा योद्धाओं की वीरगर्जना के साथ दोनों सेना इस प्रकार उलट पड़ी और भूल आकाश में छाजाने से सूर्य छिप गया । ऐसा प्रतीत होने लगा मानो समुद्र मंथन के लिये देव व दैत्यों का समूह एकत्रित हुआ हो । गीध आदि मांसाहारी पक्षीगण शोर करते हुए उड़ रहे हैं उन्हें देव ऐसा प्रतीत होता है माना आषाढ़ मास में वक्रपंक्ति उड़ रही हो । रणक्षेत्र में दोनों दल आमने सामने होकर एक दूसरे पर प्रहार करते हुये ऐसे प्रतीत होते हैं मानो लोभयुक्त त्रिपुरारी उठे हों । चारों ओर चीलों का चीत्कार हो रहा है मानो गिरिराज अपनिर्दिगी बजा रहे हैं । अरब की आतिशबाजी छूटने से ऐसा प्रतीत होता माना प्रलयकाल के रुद्र प्रकट हुये हों अथवा बड़बाग्नि जल उठी हो । वीरों की बाणावलि इस प्रकार प्रतीत होती है मानो पहाड़ से टिठ्ठी दल निकल रहा हो अथवा अग्नि के स्फुलिंग फर रहे हों । दोनों तरफ के वीरों के घटरूपी नाटकशाला में से बाण आर पार निकलते हैं वे मानो जटाधारी शंकर के दोनों ओर सर्प लटक रहे हों । शस्त्रों की तेज धार से कई योद्धाओं के मस्तक कट कर पृथ्वी पर ऐसे पड़ते हैं मानो सिद्ध लोग क्रोधित होकर पृथ्वी पर गोले डाल रहे हों । कवच, बस्त्र और आयुधों से सुसज्जित योद्धागण आमने सामने ऐसे दौड़ते हैं मानो शिवजी की जटा से अनेक वीरभद्र प्रकट होकर नाच रहे हों । कइयों के शरीर भेदन कर कटार ऐसी निकल रही है मानो विवाह के समय अन्तर-पट में से कन्या हाथ निकाल रही हो । कितने ही शिर कटे हुये केवल रुंड मारने दौड़ रहे हैं, इस प्रकार दो प्रहर तक लड़ाई चलती रही, जिसे देखने के लिये गगनमंडल में अनेक देवता विमानों में आ उपस्थित हुये । इसी प्रकार वर इच्छा की आशा से अनेक अप्सराएं टोली बांधे हुये उपस्थित हुई । भवानी का सिंह रक्त पीकर तृप्त हुआ । शिवजी ने भी अपने मुंडमाल में कई मुंड पिरोए । पृथ्वी पर जहां तहां घोड़े, हाथी वगैरह अनेक पशु अजगर पहाड़ की भांति भयंकर मालूम होते हैं । मांसभक्षण करने

के लिए आए हुए भूत प्रेत पिशाच व जोगनियां डफ व डमरू बजाते हुए मांसभक्षण व रुधिर-पान कर रहे हैं। काक व गीध आदि मांसाहारी पक्षियों के लिए दिवाली का त्यौहार हो रहा है। इस युद्ध में रससागर की सेना विजयिनी हुई ॥ १० ॥

दोहा—सहस्र सूर अथ सहस्र अस्र, चमरबंध नृप चार ।

हुओ पंच सिंधुर परत, रससागर जयकार ॥ ११ ॥

एक हजार शूरवीर, पांचसौ घोड़े, चार चंवरबंध राजा और पांच हाथी नाश को प्राप्त हुए, परन्तु अन्त में कुमार की जय हुई ॥ ११ ॥

छप्पय—सूर उभै अथ सहस्र, सहस्र अनुमान बज ।

सेनापति नृप सप्त, गिरे द्वादश आहव गज ॥

वाम चमू भई विचल, रारि हारित छंडयो रन ।

वान सुखासन बरह, जीत लीन सागर जन ॥

बाजित्र नाद विधि विधि बजे, महाराज सागर मुदित ।

रस वीर रुद्र वीरन रचे, दुति मुख द्वादश रवि उदित ॥ १२ ॥

दोहा—एक हजार शूरवीर, एक हजार घोड़े, सेनापति सहित सात राजा और बारह हाथी संग्राम में पड़ने में बाईं तरफ सेना भयभीत रणभूमि छोड़कर पीछे हटी। इस प्रकार शत्रु का पराजय देख उनके धनुष बाण वरौरह हथियार, हाथी, घोड़ा, मुखपाल आदि वाहन, दारू गोला खजाना इत्यादि सब वस्तुएं कुमार रससागर के मनुष्यों ने अधिकृत कीं और अनेक वाद्य बजाने लगे। इस प्रकार अपने विजय से महाराज रससागर बहुत प्रसन्न हुए। शूरवीरों के मुखमंडल वीर तथा रौद्ररस के गीत सुनकर ऐसे खिल गए मानो बारह सूर्य उदय हो रहे हों ॥ १२ ॥

दोहा—खेत छंडि सहेली खसे, इक गिरि अंतर जाय ।

सुतर चलाये राज प्रति, रनवीती कहि ताय ॥ १३ ॥

रणभूमि छोड़कर सैर करने वाली सेना पीछे हटी और एक पहाड़ की तलहटी में एकत्रित हुई और एक सांडनी सवार को राजा नीतिपाल को युद्ध की घटना सुनाने को भेजा ॥ १३ ॥

सुतरी नीतिमुपाल प्रति, वीतत कक्षो विचार ।

महाराज भरि रोष मनु, धरी अग्नि घृत धार ॥ १४ ॥

साँडनी सवार ने सब युद्ध वृत्तान्त महाराज नीतिपाल को सुनाया जिसे सुनते ही राजा का क्रोध ऐसे प्रज्वलित हुआ जैसे घृत पड़ने से अग्नि भड़क पड़े ॥ १४ ॥

अथ उत्प्रेक्षा लंकार—छप्पय.

जंभशीश धरवजर, धखे सुरपरि जालंधर ।

ध्रुव किन्नर रूप धरे, हुये मनमथ्य दहन हर ॥

शिरकाश्यपु “नरसिंह”, भीम कौरव शिर भारथ ।

कै रघु शिर लंकेश, शीश शिशुपाल जदू सथ ॥

सुतरी पुकार नरनाह सुनि, धरिय कोपकरमुच्छ धरि ।

जोगनीमाल ज्वाला जगिय, पावक मनु खांडीव परि ॥१५॥

जिस प्रकार जंभासुर पर वज्रधारी, देवताओं पर जालंधर, किन्नरों पर ध्रुव, रतिनाथ (कामदेव) पर शंकर, हिरण्यकश्यप पर नृसिंह भगवान्, कौरवों पर भीम, रावण पर रामचन्द्रजी, शिशुपाल पर यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण, उसी प्रकार साँडनी सवार की बात सुन कर राजा नीतिपाल महाक्रोधित हो मूँछपर हाथ फेरा और महा रोष से भृकुटी चढ़ गई और आँखों से ऐसी ज्वाला निकलने लगी मानो खांडव वन पर अभिज्वाला प्रज्वलित हो रही है ॥ १५ ॥

दोहा—सागर के सनमुख तवें, रूप पलटि महाराज ।

दिशि दिशि हाक हकोव हुआ, आनक विषय अवाज ॥१६॥

जब सागर के ऊपर महाराज नीतिपाल ने नजर फिरोई तो दिशा दिशा में नकीबों का स्वर होने लगा और भयंकर स्वर से दुंदुभि बजने लगी ॥ १६ ॥

अथ अलंकार एकावली—छप्पय.

दिशि दिशि हाक नकीब, हाक हाक नौबत गज ।

नौबत नौबत तूर, तूर तूरन छुट्टी घज ॥

धज धज प्रति मिलि फौज, फौजन गज चलिय ।

गज २ पर गजपति पतिहि, प्रति छत्र सु भलिय ॥

छत्र २ प्रति चमर छवि, उपमा धन दामनि बढिब ।

अनेक इन्द्र किधो उदधि, नीतिपाल बाहनि चदिय ॥ १७ ॥

दिशा दिशा में नकीब पुकारने लगे और नकीब की पुकार के साथ नौबत बजने लगी । नौबत के साथ २ रणसिंहा बजने लगा, रणसिंहा के साथ साथ ध्वजाएं फरकने लगीं, ध्वजा के साथ २ फौज मिल रही हैं, और फौज फौज में हाथी चलने लगे । हाथी २ पर सरदार बैठे हैं और प्रत्येक सरदार छत्र धारण किये हुए हैं । छत्र २ पर चंवर तुल रहे हैं उसकी शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो काली घटा में बिजली चमक रही हो । इस प्रकार नीतिपाल राजा की सेना ऐसे चली मानो अनेक इन्द्र चढ़ाई किए हों अथवा समुद्र उलट पड़ा हो ॥ १७ ॥

अथ छंद कंद

धरं नीतिपालं चमू उड्डियं धूर, समीरं चढ्यो पत्र रदी प्रभा छर ।

धरा धुजियं सैल घोंसान धोकार, भु अंगं मनो कच्छ काल तज्यो भार ॥

गजं बाज धक्कं गिरं भंगरं गाह, रसा सोधनं कीन मानो प्रथूराह ।

बहंत सरिता सरं सोषितं बार, अगस्तं लियो मानहो और औतार ॥

थपे किंकरं उथपेकेरि मंयान, जग्यो फेर मानो रघुवीर राजान ॥ १८ ॥

इस प्रकार राजा नीतिपाल की सेना ने चढ़ाई की जिससे उड़ी हुई धूलि ऐसी प्रतीत होती है मानो सूर्य की कान्ति ढकने को पवन-देव ने धूलि का बाहन बनाकर चढ़ाई की हो । नगरों की धमक से पहाड़ और पृथ्वी ऐसे गूंजने लगी मानो पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, कच्छप और वराह भगवान् ने अपने ऊपर से बोझ उतार दिया हो । पहाड़ और जंगल के मार्ग में हाथी और घोड़े ऐसे घुसे चले जा रहे हैं मानो पृथ्वी की शोध में पृथुराज निकले हों । सेना के चलने से बहती नदियों और तालाबों का पानी सूख गया, मानो अगस्त ऋषि ने फिर अवतार लिया हो । अपने अनुचरों को उत्साह और शत्रुओं को निरुत्साह देते हुए मानो रामचन्द्रजी ने अवतार लिया हो ॥ १८ ॥

प्रथीनाथ जुद्धं चले नीतिपालं, जैरैपोस जो धारलीन्हें सु जालं ।
 धरें पख्खरं पीठ गज्जं सु धज्जं, विषमं षट्त्रीश नादं सु बज्जं ॥
 तुरंगान के अग्र छूटे पताखा, भुजा दंडधारी उचारंत भाषा ।
 गजं बाज फौजं छवी छांह गीरं, हुआ मंडलं और अंत्रं महीरं ॥
 चमू नाथ ईभं चहुं ओर चोरं, भ्रमंतं भुशंडीन के कुंभ भोरं ।
 बहें फंदनं पायकं बाजवृन्दं, मिसल्लं मिसल्लं सुखल्ले समंदं ॥
 किते पंच सदी दुरदी कमालं, मनो गाज कादंबनी मेघमालं ।
 परे पख्खरं कुंजरं सोमपंती, दरी तुंग केधों दिगंपाल दंती ॥
 तुरंगं सनाही चढ़े साहि तेगं, बसू खंड मानो बहे चंड वेगं ।
 भयंकर छाये नभ अग्र भाला, जगीहें किधो वाडवा अंत ज्वाला ॥
 सुभट्टं सु कोदंड टंकार सज्जे, भये पारथं जूथ भज्जे ।
 अराबो किते आतसो कीन अग्र, महावीर धीरं सु सेना समग्रं ॥
 अरंभो प्रलयकाल फौजं उल्लटी, जुगं अंत केधों कियो रोष जट्टी ॥ १६ ॥

जिस समय राजा नीतिपाल युद्ध करने चले उस समय उन्होंने जरीन पोशाक और स्वर्णजड़ित कवच धारण किया । सुभट गण जिस समय हाथी की पीठ पर अम्बारी लगवा और ध्वजा धारण की उस समय छत्तीस प्रकार के बाजे बजने लगे । घुड़सवारों की सेना के आगे पताका फहराने लगी, योद्धा लोग भुजदंड ठोक कर क्रोध से बोलने लगे । हाथी, घोड़ा और छत्रधारी योद्धाओं का मंडल ऐसा प्रतीत होने लगा मानो पृथ्वी और आकाश के बीच एक दूसरा मर्यामंडल बना हो । मेनापतियों के हाथी पर चारों ओर चंवर दुल रहे हैं, हाथी के कुंभस्थल के चारों ओर भवरें फिर रहे हैं । साथ २ रथ, पैदल और घुड़सवारों का समूह चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र उछल पड़ा हो । कितने ही हाथी के मस्तक पर पंचशब्दी हो रही है मानो बादल में बिजली गरज रही हो । गले में पड़े हुए हारयुक्त हाथी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो पहाड़ों की गुफा की नोक अथवा दिक्पाल हाथी हैं । तेगधारी घुड़सवारों की सेना ऐसे चली मानो पृथ्वी पर पवन अथवा गरुड़ गति कर रहा हो । आकाश में भयंकर और चमकते हुए भाले के फल ऐसे शोभायमान हैं मानो बड़वाग्नि

प्रकट हुई है । कितने ही योद्धा धनुष की टंकार कर रहे हैं मानो अर्जुन आदि महाभारत के युद्ध में टंकार कर रहे हों । वन्दूक आदि अग्न्यास्त्र-धारी सेना को आगे करके महा धीरवान सेना इस प्रकार चली मानो प्रलय-काल का समुद्र उलट पड़ा है अथवा महादेव ने महा प्रलयकारी अपना तीसरा नेत्र खोल दिया है ॥ १६ ॥

दोहा—नीतिपाल इहि विधि चले, दुहुं दल भयो निहार ।

इष्ट मंत्र निज उच्चरिय, रन ठाढ़े जितवार ॥ २० ॥

इस प्रकार नीतिपाल राजा सेना लेकर चले, जब दोनों दलों का सामना हुआ तो दोनों सेना के योद्धा गए अपने २ इष्ट देवता का मंत्र उच्चारण करते हुए रणभूमि में खड़े हुए ॥ २० ॥

गुण गहीर कवि राज तब, जिहि गज बंध प्रमान ।

मन बूझन धार्यो मतो, बदी विरदको बान ॥ २१ ॥

तब राज्य से हाथी, चोबदार आदि मान-प्राप्त कविराज गुणगहीर राजा से अभिप्राय जानने के लिए उनकी सेवा में हाजिर हो स्तुतिपूर्वक प्रशंसा करने लगे ॥ २१ ॥

अथ गुणगहोर कवि उक्त नीतिपाल विरदावली—छंद छवि.

राजानराज, महिमंड माल, खल दल विषंड, दंडन उदंड ।

वर देत बंस, हिंदुआन हंस, सेना समंद, कैवान कंद ॥

षट्त्रीश क्षत्र, छाहगीर छत्र, मरदं सुगेर, जुध सत्र जेर ।

उरवी सु इंद, महिमा अमंद, भव अंश भूप, 'रज-धान' रूप ॥

कोपित कृशान, जाहर जहान, 'जग-चाख' उजाल, पोहो नीतिपाल ॥ २२ ॥

राजाओं के राजा, भूमंडल के मर्यादा रूप, दुष्टों के दमन करने वाले, उन्मत्त को दंड देने वाले, अपने कुल को उज्ज्वल करने वाले, वरदाता, हिन्दुओं के सूर्य, सेना से समुद्र के रूप, आयुधों के समूह, छत्तीस प्रकार के क्षत्रियों के छत्र रूप, पुरुषों में सुमेरु, युद्ध में शत्रुओं को विजय करने वाले, पृथ्वी के इन्द्र, अखंड महिमायुक्त, राजाओं में शिव के अंश रूप, राजधानी में

सौम्यरूपयुक्त, कोप करने पर अग्नि के समान तेजवी तथा सूर्य के समान तेजस्वी
महाराज नीतिपाल आपकी जय हो ॥ २२ ॥

दोहा—बिरद बोलि भुमि पाल प्रति, करी अरज करजोर ।

यह अर्चित आहव, कौन शत्रु शिरजोर ॥ २३ ॥

राजा नीतिपाल के समक्ष इस प्रकार स्तुति करके कवि ने हाथ जोड़ नम्रता-
पूर्वक पूछा कि महाराज ऐसी अचिन्त्य लड़ाई कैसी और ऐसा शिरजोर शत्रु
कौन है ? ॥ २३ ॥

पाउं हुकम महाराजको, लाउं खबर तहकीक ।

तब लागि आप इतै रहैं, उभय न जुरे अनीक ॥ २४ ॥

यदि महाराज की आज्ञा हो तो अभी पूरे समाचार ले आऊं तब तक आप
यहां ही रहें और दोनों सेना इकट्ठी न होने दें ॥ २४ ॥

नीतिपाल कवि अरज मुनि, एती करी उचार ।

आप वेग सुध लाइये, तबलों जुरे न रार ॥ २५ ॥

राजा नीतिपाल ने कवि की विनती सुनकर कहा कि आप जल्दी खबर
ले आओ, जब तक आप नहीं आओगे तब तक लड़ाई शुरू नहीं होगी ॥ २५ ॥

राजहुकम सुतरी बहे, प्रतना कही पुकार ।

कवि आवन लागि कलह को, निज मुख कह्यो निवार ॥ २६ ॥

राजा के हुक्म से सांडनी मवार ने सेना में जाकर महाराज का वह हुक्म
सुना दिया कि जब तक कवि वापस न आवें कोई लड़ाई न करे ॥ २६ ॥

छप्पय—राज सेना तित रहे, कवि सु चल्लिय सलाम करि ।

सहस आध असवार साज, हाटक निज गज सरि ॥

सुतर चलाये अग्र, खबर दीन्हैं सागर प्रति ।

गुनगहीर कविराज, आप मिलवे को आवत ॥

सागर उचार इतनो सुनत, चार पैड आगे चले ।

मरजाद यथा सनमान करि, महाराज सू कवि मिले ॥ २७ ॥

राजा की सेना वहीं रही और कविराज महाराज को अभिवादन कर अपने साथ पांच सौ सवार ले, सोने की अम्बारी वाले अपने हाथी पर बैठ राजकुमार रससागर की सेना की ओर चले, और रससागर को सूचना देने के लिए आगे से सांडनी सवार भेज दिया जिम्मे जाकर रससागर को खबर की कि 'गुणगहीर कविराज आप से मिलने आये हैं' । महाराज रससागर यह सुनते ही चार कदम आगे चलकर योग्य सम्मानपूर्वक कवि से मिले ॥ २७ ॥

सोरठा-वितत बात वृत्तंत, कवि बूझ्यो सागर कझो ।

तब पछिताये चिंत, परी उभय पहिचान जब ॥ २८ ॥

बीती हुई बात का वृत्तान्त कवि ने पूछा और महाराज रससागर ने सब बतलाया । जब एक दूसरे की पहिचान हुई तब पछिताने लगे ॥ २८ ॥

आशु होय असवार, कवि सु चले पहिचान करि ।

कही सकल विस्तार, नीतिपाल नृपसे कथा ॥ २९ ॥

रससागर कुमार से पहिचान करके तत्काल हाथी पर सवार हो कवि राजा नीतिपाल की सेवा में हाजिर हो सब कथा सुनाई ॥ २९ ॥

छप्पय-नीतिपाल सुनि बात, भयो मन मन्यु सु हीनो ।

वीरचंद्र परधान, बोली दीवान सु कीनो ॥

मिले महत उमराउ, एह परमान कियो सब ।

आहव भयो अचित, कछू तकसी नहिं तबर ॥

वाहनि तुच्छ शिशुता सुवय, अभय दान उन दीजिये ।

समंध आप उन आदि लाखि, मिल मनुहार सुकीजिये ॥ ३० ॥

यह वृत्तान्त सुनकर राजा नीतिपाल क्रोध रहित होगए और वीरचन्द्र प्रधान को बुलाकर वहां ही राजसभा की । सब बड़े २ उमराव लोग मिले और निश्चय किया कि यह लड़ाई अनजान में हुई, इनका कोई दोष नहीं, सेना भी इनके साथ थोड़ी और अवस्था छोटी है, इसलिए इन्हें अभयदान दिया जावे क्योंकि इनके साथ अपना सम्बन्ध है, इसलिए इनसे मिलाप कर आदर सम्मान देना चाहिये ॥ ३० ॥

चौपाई-नीतिपाल सब अरज सु मानी, मनसु बात मिलवे की ठानी ।
 दरकवाह को आयस दीन्हीं, कलह जुरन की बरजन कीन्ही ॥
 गुनगहीर कवि प्रथम पठाये, रससागर प्रति मिलन कहाये ।
 चाह मिलन जुगसेन सुचलिय, पारवार मानहुं छितिछलिय ॥३१॥

राजानीतिपाल ने सब की बात सुनकर मिलने का निश्चय किया और चोबदार को बुलाकर लड़ाई बंद करने की आज्ञा दी और गुणगहीर को आगे भेजकर रससागर से मिलने की बात कहलाई । मिलने की इच्छा से दोनों सेना इस प्रकार चली मानो मर्यादा छोड़ कर समुद्र पृथ्वी पर उछल चला हो ॥३१॥

अथ छंद पुन्रदाम.

उभै दल ग्रंथक बज्जीय तूर, मिलैधर हृंद सु बंधीय सूर ।
 उभै नृप कुंजरपै असवार, निसान नकीवन अग्र किनार ॥
 उभै दिशि बंदिन छंद उचार, सुराव्रत गान बजावन सार ।
 उभै महिनाथ चमूं गति मंद, दुती भइ, छीन मिलंत दिनंद ॥
 उभै बिब बंधित पाट बितान, बने जरतार बनात बिछान ।
 उभै नरनाह मिले तित आन, पुरातन नीति मरजाद प्रमान ॥
 उभै इक आसन एक उछीर, विराजित इंद्र मनो जुग वीर ।
 उभै उमराउ सभा किय आय, गुनी बिरदावत गानक गाय ॥
 उभै हित बात करंत अनंत, चढ़े रन सो पछितावत चित ।
 उभै मनुहार पियंत अमल्ल, खरी भइ रीभ मिटयो मन शल्ल ॥
 उभै किय तत्र मिसल्ल मुकाम, विरोचन सोम कुली दछ वाम ॥३२॥

दोनों सेना में ढोल नगारे और तुरही आदि बजने लगे, और भालाधारी थोड़ा हारबन्ध आगे बढ़े । दोनों राजा हाथी के ऊपर सवार हुए, तथा निशान और नकीब आगे पंक्ति बना कर चले । दोनों ओर बंदीजन छंद बोलकर यश-गान करने लगे । दोनों सेना में सुन्दर स्वर से बाजे बजने लगे और दोनों सेनायें धीरी २ चाल से चलने लगी । दोनों सेना के चलने से धूल उड़कर आकाश मंडल में छा गई और सूर्य की कान्ति मंद पड़ गई । दोनों सेना के बीच में

तन्मू तने, चांदनी बिछाई गई, सिंहासन डाले गए और जरीके तथा बनाती बिछावन बिछाए गए, वहां आकर दोनों राजा राजवंश की रीति व मर्यादा के अनुसार मिले। दोनों राजा एक ही गद्दी और तकिया पर विराजते हुए ऐसे दीखे मानो एक आसन पर दो इन्द्र बैठे हों। दोनों तरफ के अमीर उमरावों की सभा भरी, और दोनों ओर के गुणी भाट चारण वंदी जन यश वर्णन और गवैथे गान करने लगे। दोनों राजा परस्पर प्रेम से बातें करते और दोनों एक दूसरे पर युद्ध करने के लिये चढ़ाई की जिसका मन में पछतावा करने लगे। दोनों एक दूसरे का सत्कार कर कुसुम्भा (अमल) पिया और भली प्रकार संतुष्ट हुए। मन में से कांटा दूर हुआ। दोनों राजाओं ने वहीं सभा करके मुकाम किया और सूर्यवंशी राजा नीतिपाल तथा सोमवंशी राजा रससागर दोनों अनुक्रम से दाहिने व बाएं विराजमान हुए ॥ ३२ ॥

दोहा—नीतिपाल सागर नृपति, रीझ भई मिटि रोष ।

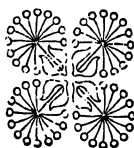
उठि सर्वार निज र गये, उर सु तज्यो अपसोस ॥ ३३ ॥

महाराजा नीतिपाल और रससागर कुमार के मध्य का रोष भिट गया और प्रीति उत्पन्न हो गई। दूसरे दिन एक दूसरे की रजा लेकर अपने-२ स्थान को गए ॥ ३३ ॥

गाथा—रससागर सु हरोलं, बामी मिसल नीतिपाल नृप ।

आहव मिलन उपावं, त्रिदश प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३४ ॥

रससागर की फौज और दायीं तरफ राजा नीतिपाल की सेना दोनों की युद्ध तैयारी, मेल मिलाप इत्यादि वृत्तान्त के साथ यह प्रवीणसागर की तेरहवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥



लहर १४ वीं ।

अथ रससागर नीतिपाल मनुहार प्रसंग-छप्पय-

दिशि दिशि तनित वितान, गान नाटक गुन सज्जे ।
जित तित जगित चिराग, त्रिविध बाजित्र सु बज्जे ॥
महागज जुग मुदित उदित, आनंद सु जन जन ।
बीत्यो तमी वृत्तांत दुती, प्रगटी नभ दिनमन ॥
शीश सवार कुंदन कलश, जर निशान रसमी जुगति ।
सोहत मुकाम मानहु सडस, द्वारामति देवाल दुति ॥ १ ॥

दिशा दिशा में वितान व तम्बू तने हुए हैं जिसमें नाटक के खेल हो रहे हैं । जगह २ दीपक का प्रकाश जगमगा रहा है । तीन प्रकार के वाद्य (१-चर्म के वाद्य जो ठोकने से बजते हैं, जैसे ढोल, पखावज आदि, २-हवा से बजने वाले, जैसे नफीरी, शहनाई, भेरी आदि, ३-तंत वाद्य जैसे सितार, बीणा, सारंगी आदि) बज रहे हैं । दोनों राजा तथा जन जन को अति आनन्द हो रहा है । इस प्रकार रात बीतने पर प्रातःकाल सूर्यनारायण की किरणों का प्रकाश तम्बू पर के स्वर्ण-कलशों और सुनहरे निशानों पर पड़ने से दोनों सेना का पड़ाव स्थल ऐसा प्रतीत होने लगा मानो द्वारकापुरी के हजारों देवालय चमक रहे हों ॥ १ ॥

दोहा-रैन पंच उतहि रहे, नीतिपाल मनि न्योत ।

निज मजलिस सागर सु मिले, कियो विदा को व्योत ॥ २ ॥

नीतिपाल राजा के आवेदन से पांच रात्रि वहीं रहे, बाद में सागर कुमार मजलिस के साथ अपनी नगरी की ओर जाने का निर्णय किया ॥ २ ॥

छप्पय-देव उदित दुंदुभी, सेन शशिवंस कराये ।

नीतिपाल सुनि नाद, आर सागर प्रति आये ॥

हित अति करि मनुहार, कोउ विधि बिदा न कीन्हें ।

बातन रीझ बनाए, मानिच्छा पुरलों लीन्हें ॥

उत रैन अहर उतही रहे, दूजे दिन नौबत बजी ।

तृप नीतिपाल सागर सहित, कूच करन सेना सजी ॥ ३ ॥

दिन निकलते ही कुमार ने कूच के लिए सेना में नगारा बजवाया, यह शब्द सुनते ही राजा नीतिपाल कुमार रससागर के पास आए और अनेक प्रकार से आप्रह्व कर जाने की अनुमति नहीं दी तथा प्रसन्नता की बात कर राजकुमार को प्रसन्न करके मनछापुरी ले जाने का निश्चय किया । पीछे उस रात वहीं रहे, और दूसरे दिन तैयार होने के लिए सेना में नौबत बजवाई और राजा नीतिपाल व कुमार रस सागर चलने को सजे ॥ ३ ॥

छंद तोटक.

रससागर नीत सुपाल मिले, मनईशपुरी वृत्तमं सु चले ।

वसुधा परि बाहनि बृंद बहे, छवि अंबर अंबुद आन लड़े ॥

गहरी धुनि आनक नाद धनें, प्रतना पति सामज शीश बने ।

कितने वन वीर अखेट करें, प्रति जोजन जाय मुकाम परें ॥

तित साजत हैं दोहु भूप सभा, नित नाटक होत पुरंद्र प्रभा ।

दश द्वादश दिवस चले जवहीं, अध जोजन इच्छपुरी तवहीं ॥

उत सैन उमैं सु सबीर गढे, भृष्टन पेखि बधाइ बड़े ।

तृप द्वार सुजाय बधाइ कही, सुनि लोग पुरं हरखे सब ही ॥ ४ ॥

रससागर कुमार तथा राजा नीतिपाल सेना सहित मनछापुरी जाने के लिए निकले उस समय पृथ्वी पर अनेक लश्कर के वृन्द ऐसे चलने लगे मानो नभ में एकत्रित हो बादलों का समूह जा रहा हो । घनघोर नगारे बज रहे हैं, सेना पति लोग हाथियों पर विराजमान हैं । कितने ही रास्ते में शिकार करते जाते हैं । इस प्रकार एक योजन जाने पर दोनों राजाओं ने मुकाम किया । वहां दोनों राजाओं की सभा भरी, नाटक का खेल होने लगा, सो मानो इन्द्र सभा भरी हो । इस प्रकार दश बारह दिन चलने पर जब मनछापुरी दो कोश रही तो दोनों सेनाएं उतर कर पड़ाव किया । नगर पास आने से सूचना के लिए एक नौकर राजद्वार में भेजा, जिससे महाराजा के शुभागमन की सूचना पा सब हर्षित हुए ॥ ४ ॥

दोहा-सुनि बधाइ हरखित सकल, गृह गृह मंगलचार ।

ठौर ठौर दुंदुभि बजे, सजि मंडन नर नार ॥ ५ ॥

महाराज के आगमन की सूचना सुन घर २ आनन्द होने लगा, स्थान २ पर दुंदुभी बजने लगी और नर नारी भांति २ के शृंगार करने लगे ॥ ५ ॥

नीतिपाल पाटित कुमार, रुद्रसेन अभिधान ।

सोय चढ़न नृप सांझुहें, किय किंकर फुरमान ॥ ६ ॥

नीतिपाल राजा के पाटवी कुमार रुद्रसेन ने राजा की अगवानी करने के लिए सेना को तैयार होने की आज्ञा दी ॥ ६ ॥

छप्पय-कुमार चढ़ें रुद्रसेन, तूर भेरी लानक बज ।

निज समान उमराउ, कुमार दस बीस चढ़े गज ॥

सोर सहस असवार, पंच पैदल सहस्र लिय ।

दिनकर अंसु व्यतीत, जाय प्रतना प्रवेश किय ॥

कीन्हें सबीर नृपसे निकट, नीतिपाल बंदन सुकारि ।

पुनि रससागरसे मिले, उर विशेष आनंद भरि ॥ ७ ॥

जिस समय राजकुमार रुद्रसेन पिताकी अगवानी के लिए चले तो ढोल सहनाई वगैरह अनेक बाद्य बजने लगे, उनके उमर के दस बारह कुमार हाथी पर सवार हुए, सोलह हजार सवार और पांच हजार पैदल सहित सूर्यास्त होते होते कुमार रुद्रसेन पिता की सेना में गया । राजा के पास तंबू तनवा अपने पूज्य पिता नीतिपाल महाराज की बंदना कर पीछे बड़े उमंग के साथ कुंवर रससागर से मिले ॥ ७ ॥

दोहा-निशि बीती नाटक रचत, भई मयुख नभ भान ।

पुर प्रसाद दरसाइ दुति, मनहुं लंक सुर थान ॥ ८ ॥

गान, तान और नाटक आदि मनोविनोद में रात व्यतीत हुई, प्रातःकाल सूर्य भगवान् ने आवाश में उदय होकर अपनी किरणें फैलाये, उस समय नगर की अट्टालिकाओं और देवालियों की शोभा ऐसी प्रतीत होने लगी, मानो सुरपुरी (इन्द्र-लोक) या अमरपुरी स्वर्णमयी लंका हों ऐसा सुशोभायमान होने लगा ॥ ८ ॥

पुर जन नृप आगम उमगि, राह निहारत नैन ।

शेष मुहूरत सहस्रकर, चले सु चढ़ि गुन सैन ॥ ६ ॥

नगर वासी महाराज के आगमन की सूचना पा अति उमंग से टक-टकी लगाए रास्ता देख रहे हैं । सूर्यास्त के पूर्व अंतिम मुहूर्त में दोनों सेनाओं ने कूच किया ॥ ६ ॥

छंद पद्धती.

दिन लगन शेषदल चलिय साज, वाजित्र नाद धर गगन गाज ।
 उपवन सु वृच्छ फूले अनंत, बीधी सु कुंज बाहनि बहंत ॥
 कलिकंठ कोर पिक चक्र मोर, विकसित प्रसून सारंग सोर ।
 सर भर सलील श्रोता सु कूह, सारम विचान जलचर समूह ॥
 ऐये चरित्र निरखत महीर, सेना सु सहर आवत समीप ।
 नृप आगमं सु जन हरख धार, निकसे सु नग्न परकार द्वार ॥
 नर नारि निकसि सामे चलंत, मानहु प्रकार विपु दल मलंत ।
 बाहनी व्योम नृप उदित चंद, सन्मुख प्रसार केशो समंद ॥
 पुर द्वार नीठ फहरे निशान, दुति देव मंद भइ समय दान ।
 दुज कवि अनेक उचरें असीस, उमराउ सीस नामे सु ईश ॥
 कैवान काट कीनी सलाम, कीनो प्रवेश पुर द्वार ताम ।
 हर सेन वाम माधि नीतिपाल, सागर सु दच्छ आरूढ व्याल ॥
 वाजंत्र घोर गानक गान, बांदि ब्रदाव लठधार बान ।
 नर नार नग्न उमड़े उझाह, वंधे सु मोद ब्रक राह राह ॥
 प्रति चौक २ सारथिक साज, अक्षत अवीर उड़ि अरुन राज ।
 हरितं सुदृव हरिता धरंत, प्रासाद पुष्प वृष्टि परंत ॥
 जिन तित सुदीप माला प्रकाश, मानो सहस्र कर सत उजास ।
 वनिता विशेष साजे सिंगार, भाँके दरीच दामनि उजार ॥
 साहा नमंत शिर हाट हाट, हाटक हमेल चिक भुक्ति पाट ।
 रजधान राज प्रविसत प्रवार, किंकर सलाम कीन्ही गुजार ॥ १० ॥

दिन के आखिरी लगन में सब दल तैयार होकर चला, उस समय बजने वाले बाधों से पृथ्वी आकाश गूंजने लगे बाग बगीचों आदि अनेक उपवनों से अनेक वृक्ष प्रकाशित हो रहे हैं, जिस मार्ग से सेना चलती है उससे पपीहा, सुआ, कोयल, चकवा, मोर आदि पक्षी बोलते हैं तथा फूले हुए फूलों पर भ्रमर मधुर स्वर से बोल रहे हैं। जल भरे हुए सरोंवर, तालाब, नदी, आदि के तीर पर सारस, सिचान आदि जलचर बैठे हुए हैं। यह सब कौतुक देखते हुए दोनों नरेश सैन्य दल सहित नगर के समीप आए। महाराज के आगमन की खबर सुन पुरवासी अति उत्साह से नगर के परकोटे के बाहर महाराज के दर्शन के लिए अति प्रसन्नता से युक्त स्त्री पुरुष चले वह ऐसा प्रतीत होता था मानो सामने से दूसरा बड़ा दल आरहा हो और उसकी शोभा ऐसी बनी मानो सेना रूपी नभमंडल में राजा रूपी चन्द्र का उदय होने से सामने अगवानी में आते हुए जनसमूह रूप समुद्र उमड़ चला हो। नगर के द्वार पर निशान उड़ने लगा, सूर्य का तेज मंद होगया और मशाल जले उस समय अनेक ब्राह्मण तथा कवि लोग आशीर्वाद देने लगे। अमीर उमराव सामन्तों ने अपने इष्ट देव की भांति मस्तक झुकाकर राजा का अभिवादन किया, कोट के रक्तकों ने सलाबी दी, राजा नगर के द्वार में आए उस समय कुंवर रुद्रसेन बाई और बीच में राजा नीतिपाल और दाहिनी ओर कुमार रससागर इस प्रकार तीनों हथी पर बैठकर चले। अनेक वाद्य बज रहे हैं, गणिकाएँ गान कर रही हैं, बन्दीजन त्रिरदावलि बोल रहे हैं और नवीब आवाजें लगा रहे हैं, नगर के स्त्री पुरुष में उत्साह उमड़ रहा है जिससे राजमार्ग में स्थान २ पर पुष्प केदार तोरण और पताका बंधे हुए हैं। बाजार बाजार में सुन्दर रंग से चौक पुरे हुए हैं। तथा जगह जगह अक्षत गुलाल और अबीर उड़ने से सारा मार्ग लाल हो रहा है। उसी प्रकार हरी दूब से दबी जमीन मानो पृथ्वी ने हरेरंग की साड़ी पहिन रखी है। सारे रास्ते में अट्टालिकाओं पर से महाराज के ऊपर पुष्प वर्षा हो रही है। स्थान स्थान पर दीपमाला का प्रकाश हो रहा है मानो सूर्य निकल आए हों, अति रूपवती स्त्रियां अनेक शृंगार से सुसज्जित हो खिड़कियों में चिक आदि परदे के अन्दर से देख रही हैं। दुकान २ पर साहूकार लोग नतमस्तक हो

महाराज को प्रणाम करते हैं, कंचन वर्ण के हमेल और रत्नजडित सुवर्ण के द्वार भुक्त रहे हैं । इस प्रकार राजमहल में जाते ही अन्दर के किंकरों ने आकर अभिवादन किया ॥ १० ॥

छप्पय-राजा निकट आराम, नाम नवरंग बाग जिहि ।
 रससागर जुत सेन, कीन सुमुकाम ठौर तिहि ॥
 संग रहे रुद्रसेन, विविध मनुहार बनायत ।
 बाग महल सुभ थान, तहां कीनी सु बिछापत ॥
 नृप नीतिपाल सूधे चले, पंच उलंघित देहरी ।
 गज तजि दिवान कीन्हों तहां, चली बधाइ सु चेहरी ॥ ११ ॥

राजमहल के समीप नवरंग नामक बाग में सेनासहित रससागर ने मुकाम किया । वहां कुमार रुद्रसेन के साथ मिलकर अनेक प्रकार रंग राग भोग रहे हैं । बाग के बीच में एक सुन्दर महल था वहां पर उत्तम जरी का बिछापन करा, रससागर को उतारा देकर राजा नीतिपाल सीधा चले और पांच द्वार पार कर हाथी पर से उतर दीवानखाना में जाकर बैठे । यह देख कर दासी लोग अंतः-पुर में बधाई देने दौड़ीं ॥ ११ ॥

दोहा-अंदर द्वार उछाह हुय, सजे सु मंडन नार ।
 दीपमाल दिशि दिशि जगी, गायक गान उचार ॥ १२ ॥

महाराज के पधारने का सुसंवाद सुन अंतःपुर में परमानन्द हो गया । उस समय रानियां तरह २ के वस्त्र आमू भूषण से सुसज्जित हुईं, और दिशा २ में दीपमाला प्रकट हुई तथा मंगलगान होने लगा ॥ १२ ॥

छप्पय-महल सोर महाराज, सोर सोरइ दासी जुर ।
 चली बधावन राय, अतिहि आनंद लाय उर ॥
 केसर अतर गुलाब, चुआ चंदन लीन्हें कर ।
 उड़त अवीर गुलाल, थार मुक्ताफल के भर ॥
 विधि विधि प्रसन्न धरि प्रथक, मंगल गावत मंद गति ।
 सिंगार सोर वृष सोर वय, आई जहां राजे नृपति ॥ १३ ॥

महाराज नीतिपाल के सोलह रानियां हैं और उनके रहने के लिए सोलह महल हैं । उन प्रत्येक महल से सोलह २ दासियां टोली बांध मन में अत्यन्त हर्षित हो महाराज को बधाई अर्पण करने चलीं । उनके हाथों में केशर, अतर, गुलाब, चोबा और चन्दन के स्वर्णमय नकशीदार पात्र हैं, इसी प्रकार अवीर, गुलाल और न्यौछावर के लिए मोतियों से भरे सोने के थाल, भांति २ के फूलों से भरी हुई अनेक छबाड़ियां लिए धीरे २ मंगलगीत गाती हुई चलीं । उन दासियों के अंग पर सोलह शृंगार सुशोभित और सब षोडस वयस्या हैं इस प्रकार की युवतियां मद से मदमाती रमरुम मनकार करती हुई जहां महाराज बिराजमान हैं वहां आईं ॥ १३ ॥

दोहा—अरचे चरचे ईश प्रति, सुमन हार पहिराय ।

निराजन धन सार किय, शशिमोती सु बधाय ॥ १४ ॥

महाराज की विधिवत पूजा कर चन्दन लगाया तथा फूलमाला पहनाई, कपूर की आरती उतारी तथा मोतियों की न्यौछावर की ॥ १४ ॥

किंकर निज कीन्हें बिदा, उर अति बढ्यो उमंग ।

महाराज प्रापित महल, बहें सहेली संग ॥ १५ ॥

इस प्रकार महाराज नीतिपाल मन में अति उमंगित हुए और तमाम अनुचरों को छुट्टी देकर आई हुई दासियों के संग महल में गए ॥ १५ ॥

खानपान शय्या सहित, करि सागर मनुहार ।

रुद्रसेन आयस लई, गये सु निज आगार ॥ १६ ॥

इधर कुमार रुद्रसेन ने खानपान और सोने के लिए शैया आदि तमाम वस्तुओं की कुमार रससागर के लिए पूर्ति और मनुहार कर पीछे आज्ञा ले कुंवर अपने महल में गए ॥ १६ ॥

आमिषादि नित नित असन, बहु व्यंजन पकवान ।

अस्त उदय कल परत नहीं, अति आनंद उद्यान ॥ १७ ॥

रससागर कुमार को निरंतर मांस, अनेक प्रकार के शाक, भांति २ के

पकवान बौरह भोजन से तथा मनोबिनोद से मूर्त्य के उदय अस्त का भी पता नहीं रहता ॥ १७ ॥

सुरा आदि विधि विधि अमल, विधि विधि गान उच्चार ।

आमंत्रण विधि विधि नये, विधि विधि नित मनुहार ॥ १८ ॥

मदिरा, अफीम आदि अनेक प्रकार के अमल, समय २ की राग रागनी गायन, नित्यप्रति नया २ आमंत्रण तथा नये प्रकार के खानपान की मज-लिसों में कुमार रससागर व्यस्त रहे ॥ १८ ॥

छप्पय-नीतिपाल मनुहार, सरस रससागर मानी ।

सागर की जु सयान, नीतिपालादि बखानी ॥

पख इक गयो प्रमाण, अरज बिदा की कीन्हीं ।

नीठ नीठ करि नीतिपाल, आयास तब लीन्हीं ॥

एकैक दान दुज कवि दिये, उर उछाह अति अति बड़े ।

बाजे निशान उदित अरून, सैन सु रससागर चढ़े ॥ १९ ॥

राजा नीतिपाल के आतिथ्य को स्वीकार करने तथा उनकी विनम्रता, विवेक तथा शूरवीरतादि गुणों के कारण राजा नीतिपाल आदि सब अमीर उमराव कुमार रससागर की बड़ाई करने लगे । इस प्रकार सुखभोग में एक पक्ष बीत गया, पीछे रससागर ने अपने नगर जाने की विदा मांगी तब महाराज नीतिपाल ने उन्हें बिदा किया । इससे अति आनन्दित हो कुमार ने कवियों तथा ब्राह्मणों को बुलाकर उनके पद के अनुसार दान दिया । प्रातःकाल सूर्य प्रकाश होते ही कुमार की सेना में कूंच का बाजा बजने लगा और कुमार सहित सब सेना स्वदेश जाने को तैयार हो गई ॥ १९ ॥

अथ छंद मुकुदाम.

चढ़े रससागरजू गजराज, सज्यो सतकुंभ सु कुंभिय साज ।

सुरंगिय पाग सु शीश लसंत, तुरा लर मोतिन की सु भुकंत ॥

कलंगिय पच्छ इमाउ सु कीन, नवग्रह शीश सु पेच मनीन ।

कनक गुलीक सु कुंडल कान, मनूं मुख विंब सु भान विहान ॥

भगा कसमीर सु रंगित भीन, भयों जर चंदन अत्तर भीन ।
 मनी जट चोकिय मोतिन माल, सुशोभित सोसनीय सु दुशाल ॥
 बिराजत नीलमणी 'भुज-बंध', शुभं बलकीन जटे 'कर-बंध' ।
 बनी मनि मुद्रिक पल्लव बीच, मनो नखतावलि रैन मरीच ॥
 रखो कटि फेंट गुलाबिय रंग, सुनेरिय म्यान कटार सु संग ।
 भरयो जर तार सु नीलतमान, कसी अशि चाप उभय करवान ॥
 कुलावन बीच भूकत निषंग, उदय मनु कोटिहि कोटि अनंग ।
 नकीवन हाक बजंत निशान, भयो दल कूच स उदित भान ॥
 महेलन नीठ चले महाराज, परी उन काननि नाद अवाज ।
 विलोकन ब्रह्मसुता परवीन, भरोखन आय दुहू दग दीन ॥ २० ॥

सोने की रत्नजड़ित अंबारी से युक्त एक हाथी पर कुमार रससागर सवार हुए उस समय सुन्दर रंग की पेचदार पगड़ी जिसमें मोती और अन्य मूल्यवान् रत्नों की झालर लगी हुई है, शिर पर धारण की । पगड़ी में हुमायूं पक्षी के पर की कलंगी लगी हुई है । उसी प्रकार तारामंडल में जगमगाती हुई महा-तेजोमय नवग्रह के समान कान्तिमय रत्नों से जड़ित सरपेच झलझला रहा है । इस प्रकार अंग प्रत्यंग पर अनेक अलंकार धारण किए हुए कुमार रससागर का गोल मुख ऐसा शोभायमान हो रहा है मानो प्रातःकाल का सूर्य विम्ब है । नकशी से भरपूर तथा नाना प्रकार के जरदोजी का काम किया हुआ और अत्तर तथा चन्दन से सुवासित केसरिया रंग का जामा धारण किया । मणिमय मूल्यवान् हार तथा मुक्ताफल मोती की माला गले में शोभायमान है, कंधे पर सोसनी रंग का दुशाला डाल रक्खा है, भुजाओं में सुन्दर नीलमणि का भुजबन्द पहुंची तथा हीराजटित सोने का कंठा धारण किए हुए हैं, हाथ की दशों उंगलियों में मणिमय मुद्रिका ऐसी चमकती हैं मानो रात्रि के समय आकाश में नक्षत्र की किरणें जगमगाती हों । सुनहरी और मीनाकारी से युक्त म्यान की कटार तथा गुलाबी दुपट्टा कमर से लिपट रहा है, नीले रंग पर जरीन तार से युक्त तथा सोने की मूँठ वाली तलवार कमर से लटक रही है, दोनों हाथों में धनुष-बाण शोभायमान है, उस समय रससागर मानो करोड़ों रतिनाथ (कामदेव)

प्रकट हुआ हो ऐसा प्रतीत होने लगा । चौबदार (नकीब) पुकार रहे हैं, नगारा बज रहा है, इस प्रकार सूर्य उदय होते २ तमाम सैन्यदल कूंच कर निकला । इस तरह ठाठ बाठ से राजकुमार सवारी सहित राजमहल के पास की गली के मार्ग से चले, उस समय अनेक बाणों को सुनकर कलाप्रवीण और कुसुमावलि भरोखे में आकर सवारी देखने लगीं ॥ २० ॥

अथ प्रवीणचरित वर्णन अलंकार जातिस्वभाव-कवित्त.

उदित मिहीर बाल, मंजित गुलाब नीर, फिरोसी सु चीर धरथो छेहरे किनार जर. बिछुआ मंजी पाय, किंकिनि शरीर मध्य, मोती म-निहार हीर, भुजबंध चूर कर. बेसर सु कीर नासा, काशमीर खोर बिंद, लोलक धुभी रजंत, कबरी कुसुम लर. नैन तीर नाग रख, वीर पानवीर देत, सुनत गहीर धुनि, धीर न सकी सु धर ॥ २१ ॥

सूर्य उदय पर कलाप्रवीण गुलाबजल से स्नान कर फिरोजी * रंग की जर्नि किनारी की साड़ी पहिनी, पग की उंगलियों में बिछुआ, पांव में लंगर, कटि में किंकणी, गले में मोती माणिक हीरा आदि का हार, हाथों में बाजूबन्द और चूड़ियां धारण किए हुए हैं । शुक चंचु के समान नासिका में नथ, कपाल में केशर का खोर और कुंकु बिन्दी लगी है, कानों में हीरा के लचकदार कुंडल लटक रहे हैं, फूलों से गुथी हुई वेणी सुशोभित है । खंजन के समान हग में अंजन की रेख है, सखियों ने पान का बीड़ा मुख में दिया है ऐसी सुकुमार राजकुमारी कलाप्रवीण बाजों का गंभीर नाद सुन कर धीरज न रख सकी अर्थान् अधीर हो उठी ॥ २१ ॥

अथ पूर्योपमा अलंकार.

उठी है चमाकि पाय धरनि धमांकि धरे, जेहर भ्रमंकी मन आतुर अती भई ।
उर अकुलाय धाय चढ़ी है भरोखे जाय, चिकछं उठाय लावत कुसुम अंगलाई ।

* गुजराती टीकाकार ने 'किनारीदार रंगीन चीर' लिखा है परन्तु मूल में 'फिरोजी सु चीर' है, जो फिरोजी रंग से तात्पर्य प्रतीत होता है ।

सागर चलंत मग झुरत दुहुन द्रग, अटा की घटान में छटान ज्यों छिपै गई ।
दोऊ मन प्रेमबाण लगे ज्यों निशान, पै अयान तनवान छेदन भये दर्ई ॥ २२ ॥

इस प्रकार बाधों के नाद से चमक कर धमक २ पृथ्वी पर चलने लगी जिससे नूपुर की भंकार हो उठी । फिर चित्त में अति आतुरता हो अकुला कर वेग से भरोखे चढ़ गई और वहां लगे हुए चिक को हटाकर प्रिय सखी कुसुमावलि को आगे कर कुमार को देखने लगी । उस समय रास्ते चलते सागर की दृष्टि अटारी पर पड़ी । इस प्रकार दोनों की चार नजर होते ही जिस प्रकार बादल में बिजली छिप जाती है वैसे ही कलाप्रवीण अटा की घटा में छिप गई, परन्तु जिस प्रकार निशाना किया हुआ बाण लगता है उसी प्रकार दोनों के मन पर प्रेमबाण लगा और जिस प्रकार बाण अनजान अवस्था में कवच का छेदन कर घाव कर देता है उसी प्रकार दोनों के मन उस प्रेमबाण से बिंध गए ॥ २२ ॥

सबैया—सागर जात गयंद चढ़े सु, प्रवीण भरोख चढ़ी उमंगी ।
दूर कियो चिक दीठ जुरी जुग, रीक भई भरि लाज लगी ॥
दामानि ज्यों सु दमंक गई चित, दोउन के सु चमंक लगी ।
होत नहीं बिरहानल ऊदित, प्रेम जरीक जगी चिनगी ॥ २३ ॥

कुमार सागर जिस प्रकार हाथी पर सवार होकर रास्ते जाते हैं उसी प्रकार महा उमंग और आतुरता वाली कलाप्रवीण भरोखे चढ़ी, चिक दूरकर देखने लगी, दोनों की दृष्टि मिलते ही अत्यन्त प्रसन्न हुई, राजकुमारी कलाप्रवीण लजा से शरमा कर स्फूर्ति से पीछे हट गई जिस प्रकार बादल में बिजली चमक कर छिप जाती है । दोनों के हृदय पर चमक लगी अर्थात् विरहान्नि का उदय तो नहीं हुआ परन्तु प्रेम की सहज चिनगारी जग उठी ॥ २३ ॥

दोहा—धन संवत रितु मास पख, बन सु उदय दिन कीन ।

जाम घरी पल धन लग्यो, सागर प्रेम प्रवीण ॥ २४ ॥

संवत्, ऋतु, मास, पक्ष और आज के उगे हुए दिवस को धन्य है,

उसी प्रकार पहर घड़ी और पल को भी धन्य है कि जिसमें सागर और प्रवीण का प्रेम लगा ॥ २४ ॥

बैठि बाल बीछोंन पर, मन पुनि चितवन चात ।

रससागर मग गमन किय, भांखी चख उरभात ॥ २५ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण पीछे हट कर सुन्दर बिछे हुए गलीचे पर बैठी तो सही परन्तु चित्त में कुछ भाता नहीं, बारंवार उसका ध्यान फिरता है और जिस मार्ग से रससागर गए हैं उसे बार २ देखती है ॥ २५ ॥

छप्पय—रससागर मग जात, हरम्य हरम्यनि प्रति हेरत ।

वह मुख निरखन चहत, कंध पुनि पीछे फेरत ॥

प्राप्त भये बजार, साह शिर नमत जितैं तित ।

निकसे नगर बहार, चटक लागी न मिटत चित ॥

दोऊ लखंत दुचिते भये, वयकिशोर कहत न बनें ।

एकेक चाह लागी सु उर, मुरभावत निज निज मनैं ॥ २६ ॥

रससागर के मार्ग जाते हुए अनुक्रम से ऊंचे से ऊंचे अट्टालिका पर चढ़ कलाप्रवीण देखती है, इसी प्रकार चन्द्रमुखी कलाप्रवीण के मुखारविन्द को देखने की अभिलाषा से रससागर भी बार बार पीछे फिर कर देखते हैं । इस प्रकार करते करते बजार में आए वहां दुकान २ पर सेठ साहूकार शिर झुकाते हैं । ऐसे करते २ नगर के बाहर निकले परन्तु चित्त में चटक लगी है वह किसी भी प्रकार दूर नहीं होती । इस प्रकार दोनों एक दूसरे से विलग होते हुए भी अवस्था छोटी होने के कारण कोई किसी को कुछ कहते नहीं, प्रत्युत जो मोह दोनों के मन में उत्पन्न हुआ है उसे भुलाने लगे ॥ २६ ॥

अथ अलंकार उत्प्रेक्षा—गाहा.

प्रेमरसो परछन्न, गुन औषधि मंत्र अंकइ मुनि ।

मानहु इसमें अनलं, जल छविताइ वेद परिब्रह्म ॥ २७ ॥

जिस प्रकार औषधि में गुप्त गुण रहता है, मंत्र के वर्णों में ऋषि और

छन्द रहते हैं, महादेव के तीसरे नंत्र में अग्नि रहती है, पानी में पवित्रता रहती है इसी प्रकार कलाप्रवीण और रमसागर के मन में गुप्त प्रेम बास करने लगा ॥ २७ ॥

प्रेमबीज उर पहियं, रहियं लाज लपटायो ।

जोवन घन बरखंत, वृच्छ अमोल उगहे आगे ॥ २८ ॥

हृदयरूपी पृथ्वी में प्रेम-रूपी बीज पड़ा और वह लाजरूपी खाद में लिपट रहा है सो जब जोवनरूपी वर्षा होगी तो उसमें से अनुपम वृक्ष उगेगा ॥ २८ ॥

अथ छन्द चन्द्रायणा.

चले सु सागर सैन, मनछा नग्रमे, नीतिपाल तारीफ, रसन की अग्रसे ।
सूर बंस हद छंदि, गये सु पहारमें, सागर चूके मुरत, लगे सु शिकारमें ॥
दिवस चले दस बीस, मुकाम मुकामसे उतरे आय उरदान, निकट निजघाम से ।
बहे सु किंकर नग्र, बधाई जा करी, ठौर ठौर उत्साह उमंग लगी भरी ॥ २९ ॥

रससागर की सेना मनछापूरी मे चली तब से नीतिपाल राजा की मराहना करते २ सूर्यवंशी राजा की हृद पार कर एक पहाड़ी जगह पर जा पहुंची । कुमार रससागर कलाप्रवीण की स्मृति का भुला शिकार खेलने लगे । इस प्रकार चलते, मुकाम करते दस बीस दिन में अपने नगर के समीप पहुंच कर अपने बाग में मुकाम किया, वहां से नौकर लोग शहर में जाकर शुभ सूचना दी जिससे सारे शहर में स्थान २ पर उत्सव व उमंग की भड़की लग गई ॥ २९ ॥

छप्पय—सांभ समय चढ़ि सैन, तूर दुंदुभि धुनि बज्जिय ।

राग रंग गुण गान, बहुत पूरह प्रवेश किय ॥

अटन अटन जन चढ़े, सुमनको घन बरषावत ।

चंदन केसर चरचि, माननी मंगल गावत ॥

निजद्वार नीठ उमराउ तब, शीशनामि गृह गृह बहें ।

सागर प्रदीप बन्दे चरण, कहि वितीत महलन गये ॥ ३० ॥

सायंकाल को सेना चली और रणसिंहा, दुंदुभि इत्यादि बाद्य बजने लगे,

राग रंग और गान तान से कुमार ने नगर में प्रवेश किया उस समय खिड़की और झरोखों में लोग चढ़कर कुमार सागर के स्वागत में फूलों की वर्षा करने लगे । केशर चन्दन चरच कर स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं । राजद्वार के पास आने पर तमाम अमीर उमराव नत-मस्तक अभिवादन कर अपने २ घर जाने लगे । फिर कुमार रससागर अपने पिता प्रदीपराज के चरण वन्दन कर सारी बात सुनाकर अपने महल में गए ॥ ३० ॥

गाथा—मिलन नृपति मनुहार, जुग दृग जुरत प्रेम उतपन्न ।

नेह सु नग्न सपत्नं, चउद प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३१ ॥

राजा नीतिपाल और रससागर का मिलना, राजा नीतिपाल का आतिथ्य, कलाप्रवीण और रससागर दोनों की एक दृष्टि होने से प्रेम की उत्पत्ति, वहां से नेहनगर में आना आदि वृत्तांत वर्णन प्रवीणसागर की यह चौदहवीं लहर समाप्त हुई ॥ ३१ ॥



लहर १५ मी

अथ रससागर उद्वाह प्रसंगो यथा—सोरठा.

रससागर महागज, भई त्रयोदश वरष वय ।

नृप प्रदीप सुख साज, किय अदर उदवाह को ॥ १ ॥

रससागर महाराज की १३ वर्ष की अवस्था हुई तब प्रदीप राजा ने प्रसन्न होकर विवाह का आरंभ किया ॥ १ ॥

छप्पय—मूलक 'मेदपुर' मुदित, नाथ संग्रामसेन जिहि ।

ताम सुता शुभ लच्छ, आन्हयें 'चंद्र-कला' तिहि ॥

शोधि शील कुल रूप, तहां संबंध ददायो ।

शुद्ध मुहूर्त धारि, लगन दुज साथ पठायो ॥

लीन्हों बधाय मुकता फलन, भवन २ उच्छव भये ।

कीने विदाय दुज देवको, मनि कुंदन भूषण दये ॥ २ ॥

मेवाड़ देश में मुदितपुर नाम का नगर है और वहां संग्रामसेन राजा राज्य करता है । उसके शुभ लक्षण वाली चन्द्रकला नाम की एक कन्या है उसका शील, उत्तम कुल और स्वरूप आदि देख उसके साथ रससागर के विवाह का इकरार किया । राजा संग्रामसेन ने शुभ मुहूर्त देख ब्राह्मण के साथ लगन-पत्रिका भिजवाई । उस लगनपत्रिका की मोतियों से निछरावल की । नगर में कुमार के लगन की बात फैलने ही घर २ में उत्सव होने लगे और लग्न लाने वाले ब्राह्मण को मणिजड़ित स्वर्ण आभूषण अलंकार आदि देकर विदा किया ॥ २ ॥

अथ लग्नभेद अवयोग—छप्पय.

कुलिक विष्टि उतपात, मृत्यु कानक यमघंटह ।

लतायोग गृहवेध, वैध्रतार्गल वितिपातह ॥

अष्ट षष्ठ में इंदु, क्रांति-साम्य सुगलात गन ।

रिक्ता दग्धा तिथ्य, प्रथम संक्रांतिहु को दिन ॥

नक्षत्र गृह न छंड़े हयन, अष्टादश अवयोग लखि ।

उदवाह समय सागर गनक, यहै लगन लीन्हों परखि ॥ ३ ॥

कुलिक, विष्टि, उत्पात, मृत्यु, काणक, यमघंट, लतायोग, गृहवेध, वैभ्रत, एकागल, व्यतिपात, आठवें तथा छठे चन्द्र, क्रान्ति साम्य, ग्लान्ति-रिक्ता तथा दग्धा तिथि, संक्रान्ति का प्रथम दिवस और वर्ष में ग्रहण से भोग किया हुआ नक्षत्र ये अठारह अपयोग को दूरकर ज्योतिषियों ने सागर के विवाह का लग्न मुहूर्त निश्चय किया ॥ ३ ॥

दोहा—सोम सूर माधव शुक्ल, दशमि देव गुरुवार ।

स्वातिम गोधूलिक समय, कियो लग्न निरधार ॥ ४ ॥

उत्तरायण सूर्य वैशाख महीना के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि तथा गुरुवार दिवस स्वाति नक्षत्र, गोधूलि बेला में लग्न का निश्चय किया ॥ ४ ॥

उभय ठौर उच्छ्व रच्यो, उर उदवाह सु धार ।

पूजे हेरंवी प्रथम, विघ्नविनाशन हार ॥ ५ ॥

हृदय में विवाह का विचार कर दोनों स्थानों पर लग्नोत्सव मनाया गया । और सर्व प्रथम विघ्नहर गणपतिपूजन का समारंभ हुआ ॥ ५ ॥

तत्र गणपति स्तुति—छंद जयमंगल.

गुनं वृंदं गनेशं, सुही चंदं सुरेशं, प्रभू दुंदी प्रचंडं, बुधी दाता वितुंडं ।
करी कुंभं विशालं, रदं मेकं रसालं, बन्धो भालं सु चंदं, चह्यो बिंदू सु बंदं ॥
अनूरागं दुक्लं, कुनै दामं प्रफूलं, हरं सनु हरंवे, उरं मोदं सु अंबे ।
खनंके सं अरुदं, गिरागम्यं सुगूढं, सुधी बुद्धी सुईशं, गना मुख्यं गिरीशं ॥
विघ्ननंदी बिदारं, अनंतं धी उदारं, शुभं आदेश सामी, नमो तुभ्यं नमामी ॥६॥

गुणों के वृन्द (भंडार) गणपति भी कैसे हैं कि जिनका इन्द्रादि देव पूजन करते हैं, जिनका विशाल पेट है, जो बुद्धि के देने वाले, लम्बी सूंड व दो सूंड वाले, विस्तृत कुंभस्थली युक्त, हाथी का मस्तक धारण किए हुए सुन्दर व रसाल एकदंत वाले हैं । जिनके कपाल में चन्द्रमा है, ललाट में तिलक के स्थानपर सिंदूर चर्चित है, लाल रंग का रेशमी वस्त्र धारण किए

हुए, विकसित रक्त, पुष्पहार पहिने, शंकर व पार्वती के पुत्र, माता के मन में हर्ष उत्पन्न कराने वाले, मूपक पर सवार, गूढ वाणी के कहने वाले, सिद्ध वृद्धि के ईश, गिरिजापति शंकर के गणों में सर्वश्रेष्ठ, बिघ्नहर आपार बुद्धि वाले, उदार और शुभ आदेश करने वाले हे गणपतिजी ! मैं आपका षोडशोपचार कर नमन करता हूँ ॥ ६ ॥

दोहा—रसमय रससागर कुमार, 'चंद्र-कला' छवि लीन ।

गणपति पूज सु 'मदन-फल', कौतुक बंधन कीन ॥ ७ ॥

चन्द्रकला की छवि में लीन हुए रमिक सागरकुमार गणपति पूजन कर अपने हाथ में मंगल—सूत्र बंधन किया ॥ ७ ॥

अथ छंद चर्चरी.

दोय ठौर गणेश पूजित, नील मंडप छाहितं ।

देश देश आमंत्र कीने, भूप दिशि २ आहितं ॥

गान गायक तान साधत, भेद वाजिस वाजितं ।

कंचनी नित नृत्य कारित, राजमंडल साजितं ॥

धाम धामनि कुंभ हाटक, पाट तार 'पता-खियं' ।

वेद भेद सु विप्र पाठित, कीरति कवि भाषियं ॥

दूब हारितं द्वारद्वारन, "बंद-गाल" सु बद्धियं ।

'रक्त-राज' अवीर उठत, साराथिक सु सद्धियं ॥

काशभीरं कपूर अत्तर, चूआ चंदन लाहितं ।

वास भूषण साज दंपति, वाम मंगल गाहितं ॥

खान पान अनेक आसव, चित्त सह आनंद हैं ।

पांडुके बलिराय अध्वर, सत्र ए रघु इन्द्र हैं ॥ ८ ॥

इस प्रकार दोनों स्थानों में गणेशपूजन हो रहा है, नीलमंडप बनाये गये हैं, देश २ में कुंकुमात्रिका भेजकर आमंत्रण किया है, जिससे अनेक देश के भूपति आमंत्रणपत्र को आदर दे लग्नमंडप में आए हुए हैं । वहां गवैया विविध राग रागिनी का गान कर रहे हैं और उसमें सारंगी स्वर दे रही

हैं, अनेक बाजें बज रहे हैं, नायिकाएं निरंतर नृत्य कर रही हैं, देश २ से आए हुए राजवंशियों का मंडप शोभायमान है । सारे नगर में घर २ कनक कलश तथा रेशमी पताका झलक रही हैं । अलग २ वेदों के भेद से ब्राह्मण लांग वेदध्वनि और कविगण यशगान कर रहे हैं । प्रत्येक घर के द्वार पर हारित दूब और तोरण बंधे हुए हैं, लाल गुलाल और अबीर उड़ रही है, रंग बिरंगे साठिया पूरे गए हैं । केशर, कपूर, अगर चोवा और चंदन आदि शरीर पर लगा, अनेक रंग रंग के वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित मोती माणिक आदि के अलंकारों से युक्त नगर के नर नारी सुशोभित हो रहे हैं । नगर रमाणियां मंगल गारही हैं और अनेक प्रकार के खान पान से सब आनन्दित हो रहे हैं । इस प्रकार यह विवाह महोत्सव पांडवों का किंवा बलिराज का अथवा रघुकुलतिलक महाराज रामचन्द्र का यज्ञ रूप हो रहा है ॥ ८ ॥

दोहा—नेहनगर अरु 'मुदित-पुर', इहि विधि भयो उछाह ।

इतैं बरायत सज भई, उतैं निहारत राह ॥ ९ ॥

नेहनगर और मुदितपुर में इस प्रकार उत्सव हो रहा है । पश्चात् नेहनगर से बरात सजी और मुदितपुर में राह देख रहे हैं ॥ ९ ॥

अथ बरात संख्या वणन-छंद वरायति.

शतं सु द्वादशं सजे सु दंतियं, असं सु पंचलच्छ पंत पंतियं ।
 सिबिक फंदनं सहस्र पंचियं, लखं सु साथ पंच पैदलं कियं ॥
 धजं दशं सहस्र बीम नादियं, कविंद सोरही हजार हालियं ।
 उभय हजार विप्र वेदबायका, हजार चार गायका सु नायका ॥
 कनक बाज साज जोध कुंजरं, कसुंभ केसरी जरी पटंवरं ।
 मनी सु मानिकं सु पञ्च मोलियं, अलंकृत अनेक देह दुत्तियं ॥
 अखंड राग रंग के उछाह से परे, न जान रात दिवस राह में ।
 कहें सु रीत होत हास्य छंदियं, चले बरातवृंद मंद मंदियं ॥
 करे कलोल नौलराज नीतियं, चलंत राह बीच मास बीतियं ।
 'मुदित-नग' नीठ देहरे दिये, बधाइपत्र पैकदे अंगे किये ॥ १० ॥

शृंगारे हुए बारह सौ हाथी और पांच लाख घोड़ों की पंक्ति चली । पांच हजार रथ और पालकी, इसी प्रकार पांच लाख पैदल, दस हजार ध्वजा, बीस हजार वाजंत्री, सोलह हजार कवि साथ चले । दो हजार वेदपाठी ब्राह्मण, चार हजार गवैये और नायिकाएं भी साथ हैं । सोने के अलंकारों से सुसज्जित घोड़े, योद्धा और हाथी भी बरात में हैं । कुम्भवा और केसरिया रंग से रंगे हुए जरी के सुन्दर कामदार वस्त्र मणिमाणिक और मोती आदि के आभूषण के धारण किए हुए बराती शरीर में महातेजस्वी दिग्वाई पड़ते हैं । हमेशा राग रंग में लीन बरात चली जाती है जिसमें रात व दिन का भी पता नहीं लगता । हंसी मजाक, आमोद प्रमोद, हास्य विनोद में लगे हुए बराती धीमी २ चाल से चल रहे हैं । नित्यप्रति नवीन २ राजनीति से कल्लोल करते हुए आनन्द के साथ चलते २ एक महीना मार्ग में व्यतीत हो गया । पश्चात् मुदितपुर के पास आकर पड़ाव किया और बधाईपत्र देकर एक सवार को आगे भेजा ॥ १० ॥

छप्पय—रससागर सुबरात, मांस इक पंथ बहाये ।

‘मुदित-पुरी’ दरसंत, सौध धज कलश लखाये ॥

कीन्हों तहां मुकाम, रखो अंतर जुग जोजन ।

बहे बधाई हार, पत्र कुंकुम दीने तिन ॥

पहुंचेसु पैक मुदितह पुरि, राजद्वार पत्र सु दिये ।

संग्रामसेन मन मोद भरि, पायक गजनायक किये ॥ ११ ॥

रससागर की बरात चलते २ एक महीना में मुदितपुर के समीप आ पहुँची, जहां से मुदितपुर राजमहल की ध्वजा और कलश दिखाई पड़ने लगे । फिर वहीं दो योजन के अंतर पर पड़ाव डाल, बधाई ले जाने वाले के साथ कुंकु केशर के छींटों से युक्त पत्र भेजा जिसे लेकर दूत मुदितपुर पहुंच राज-द्वार पर जाकर पत्र दिया । तुरंत ही राजा संग्रामसेन प्रसन्न होकर पत्र ले आने वाले को पारितोषिक में हाथी प्रदान कर गजनायक बनाया ॥ ११ ॥

दोहा—मुदित नग्न जन मन मुदित, जित तित भये उछाह ।

भूप अनुज रणजीत तिहि, आप बुलाये राह ॥ १२ ॥

इससे मुदितपुर के रहने वाले अति आनंदित हुए और जहां तहां उत्सव करने लगे । उस समय राजा ने अपने छोटे भाई रणजीतसिंह को हुजूर में बुलाया ॥ १२ ॥

कह्यो सु नीठ बरात अब, जोजन जुगल मुकाम ।

आप सिधार सामुहे, आवत अपने धाम ॥ १३ ॥

और कहा कि बरात का मुकाम दो योजन पर है इसलिए आप अगवानी के लिए सामने जाइये, क्योंकि बरात अपने यहां आती है ॥ १३ ॥

छप्पय—चढ़े राज रणजीत, चढ़े द्वै सत गजनायक ।

एक नियुत असवार, नियुत अनुमान सु पायक ॥

तूर भेर करनाल, पनव कानक धुनि बज्जे ।

केसर जरी कखंब, बसन भूषण तन सज्जे ॥

छाई गिर छत्र छायो सु नभ, उड़ि गुलाल आसव छकित ।

रवि सेस जाम रहे जा मिले, राजत राज प्रदीप जित ॥ १४ ॥

राजाज्ञा पाकर रणजीतसिंह चले, उस समय उनके साथ में दोसौ हाथी, दस लाख घोड़ेसवार और अनुमानतः दस लाख पैदल चले । रणतुरही, भेरी, करनाल, नगारा आदि बाजे बजने लगे । योद्धा लोग केसर व कुसुंबी रंग के जरी के कामदार वस्त्र और नाना प्रकार के अलंकार धारण किए हुए हैं । छत्र-धारियों के छत्र से आकाश छा गया है, अवीर गुलाल उड़ रहा है, सैनिक सुरापान में मस्त हैं, इस प्रकार सूर्य छिपते २ पहर भर दिन बाकी रहा उस समय राजा जहां प्रदीप राजा विराजमान हैं, वहां जा पहुंचे ॥ १४ ॥

दोहा—उर सु उभय आनंद भरि, नृप प्रदीप रणजीत ।

रैन नृत्य संगीत रत, चले उदित आदीत ॥ १५ ॥

राजा प्रदीप और रणजीतसिंह दोनों अति आनन्दित हो नृत्य और गान तान में रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल सूर्य उदय होने ही मुदितपुर की ओर चले ॥ १५ ॥

अथ छंद पञ्चवरी.

दोय मिले चढ़िसेन चले अनुरागसे, सांभ भये लागि नीठ विलंबित बाग से ।
पंच घरी दिन पच्छ रहे पुनि चलियं, मानहु सात समुंद छमा भर छलियं ॥
अंतर जोजन आघ चले जन नग्र से, मानु घटा नवरंग उद्धित अग्र से ।
बाजत नाद अनेक गुनीजन गाइतं, उड़ी गुलाल अबीर धरा नभ छाइतं ॥१६॥

दोनों सेना स्नेह सहित हिल मिल कर चली और सायंकाल मुदितपुर के समीप आ बाग में उतारा (डेरा) किया । पीछे पांच घड़ी दिन रहने पर फिर चले सो ऐसा प्रतीत होता था मानो मातों समुद्र उछल पड़े हों । बरात नगर के दो कोस पर आई तब नगर निवासी सब सामने चले सो ऐसा प्रतीत होने लगा मानो मेघ की नवरंग घटा चढ़ आई हो । विविध प्रकार के बाजे बजने लगे और गुणी जन गान करने लगे । अबीर और गुलाल के उड़ने से पृथ्वी और आकाश छा गया ॥ १६ ॥

छप्पय-नग्र द्वारके नीठ, बाग संग्राम सैन शुभ ।

वन अनंत बिच महल, कुंज गिरदी जोजन उभ ॥

भुक्ति फूल फल वृंद, अंग भूले मधु गुंजत ।

चौक २ जल जंत्र, कीर केकी पिक कुंजत ॥

दीन्हों बरात बासह तहां, उभय नियुत अंदर रहे ।

अन जन सबीर उपवन गिरद, मिसल देख सब ही देह ॥१७॥

पुर के द्वार के समीप संग्रामसेन का बाग है जो अपनी महत्ता के कारण अनन्त वन कहा जाता है, उसके बीच एक शोभायमान महल है जिसका घेरा दो योजन तक उत्तम वृक्षों के कुंज तक फैला हुआ है । जहां फल फूल के भार से वृक्ष झुकें हुए हैं, मधुलोभी भंवरे सुवास के गुंजार कर रहे हैं, प्रत्येक चौक पर फव्वारा उड़ रहा है । सुवा, मोर और कोयल कूक रहे हैं । ऐसे रमणीक बाग में बरात को जनवासा दिया । इस प्रकार दो लाख मनुष्य बाग के अन्दर रहे और बाक़ी मनुष्यों को उपवन के बाहर तंबू तानकर सुविधा के अनुसार सब को उतारा (डेरा) दिया ॥ १७ ॥

दोहा—उपवन बास बरात किय, सूर धरी गुन शेष ।

बींद सैन तीसह सहस, कीन्हों शहर प्रवेश ॥ १८ ॥

उपवन में जनवासा देने के उपरान्त तीन घड़ी दिन शेष रहा तब तीस हजार सेना सहित वर-राजा ने शहर में प्रवेश किया ॥ १८ ॥

अथ छंद मनहंस

रससागरं बनि बिंद पट्टन चल्लियं, सम शील कुल वयवेश भित सुमल्लियं ।
शत कुंभिं शत कुंभ साज सु साजितं, तिहि शीश राजकुमार शत सु
विराजितं । रचि काशमीर दुकूल जरकस बुट्टियं, चरचे सु अत्र गुलाब
माधुर छुट्टियं । शिरपेच कुलह सु रंग तोरन झुकिं, मनहार मुत्तिय माल
दलरि चुकिं । कर मुद्रिका भुजबंध कंकन सोहितं, मनु कोटि इंद्र अनंग
आभा मोहितं । छवि छांह गीर सु छत्र चामर छाजितं, धुज अत्र बाजित
नाद घन घुनि गाजितं । अस बीस सैस सु तास कीजत आवृतं, दश सैस
पैदल साथ गानक गावतं । लठधार बोलत बानि अत्र पताखियं, नृत भेद
रूपा रूप बंदिन भाषियं । पुर पौर कीन प्रवेश मंगल मालियं, जुरि माननी
निरखैं झरोखन जालियं । हट लेत बनिक् सलाम सौध दिवालियं, उडि
व्यौम छांय अचीर पोप गुलालियं । चकडोल गोखन गाय मंगल नारियं,
इहि रीत बिंद सुपंत राज दुवारियं ॥ १९ ॥

रससागर वर-राजा बने शहर की ओर चले उस समय अपने स्वभाव, अवस्था, कुल और वेप वाले सब मित्रों को साथ लिया । मौ हाथी सोने की अम्बारी से सजे हुए हैं जिनकी पीठ पर सौ राजकुमार विराजमान हैं । केशरी रंग के जरी बूटे वाले वस्त्र पहिने हुए हैं, शरीर अतल व गुलाबजल की सुगन्धि से सुवासित हो रहा है, कलंगी और सुन्दर रंगदार तुरा माथे पर फलक रहे हैं । गले में कंठा, मणिहार, मोती की माला, हाथों में बाजूबन्द, चौकी और जड़ाऊ, कंकण, उंगलियों में अंगूठी सहित ऐसे शोभायमान हैं मानो इन्द्र और रतिनाथ (कामदेव) की शोभा को लज्जित कर रहे हों । छत्रधारियों के छत्र व चक्र शोभायमान हो रहे हैं, ध्वजा के आगे बाघों का नाद मेघ की गंभीर गर्जना के समान हो रहा है, वर-राजा को बीस हजार घुड़सवार

(१) गुजराती प्रति में बिंद, है जो अशुद्ध प्रतीत होता है—पहपसिंह

घेर कर चल रहे हैं, दस हजार पैदल के साथ गवैये गा रहे हैं, पताका के आगे चौबदार पुकार रहे हैं, नाइकाएं दस रूपक के भेद से नृत्य कर रही हैं, बंदीजन छन्द रूपक बोलते चलते हैं। इस प्रकार नगर के द्वार में प्रवेश किया, वहां मङ्गलमाला लेकर बधाई के लिये जूथ बनाकर स्त्रियां मरोंके और खिड़कियों में से वरराजा को देख रही हैं। दुकान पर बैठे हुए साहूकार लोग अभिवादन करते हैं। सर्वत्र दिवाली हो रही है। अवीर, गुलाल और पुष्प आकाश में बिछ रहे हैं। रथ में और गोखड़ों में बैठी हुई स्त्रियां मंगल-गान कर रही हैं। इस प्रकार वरराजा राजद्वार जा पहुंचे ॥ १६ ॥

दोहा-राजद्वारहि से निकट, अटा सघन अभिधान ।

लघू बराती बास किय, बहु मनुहार सुमान ॥ २० ॥

राजद्वार के समीप सघन नाम की एक हवेली है उस में इस छोटी बरात को बड़े आदर सत्कार के साथ उतारा (डेरा) दिया ॥ २० ॥

छप्पय-लघु बरात तहँ बसित, बाज वाइन दुलहा किय ।

राजकुमार सतसंग, उमै शत पासवन लिय ॥

सहस आध सहचरी, सकल आभूषण सजि लीन्हें ।

हुज पंडित दश बीस, गमन मंडप दिश कीन्हें ॥

नृत्यभेद रूपा रचित, गानक साधे गान गत ।

बत्तीम सुकवि बोलें विरद, राजद्वार प्रविसंत तित ॥ २१ ॥

यह छोटी बरात वहां ठहरी और तोरण मारने के लिए दूल्हा ने घोड़े के ऊपर सवारी की। उस समय वरराजा ने सौराजकुमार दोमौ हजुरी पासवान और सर्ववस्त्राभूषण सुसज्जित पांच सौ दासियां और दस बीस पंडित ब्राह्मण साथ लेकर मंडप की ओर गमन किया। उस समय नाइकाएं दस रूपक के भेद के अनुसार नृत्य करती, गायकशास्त्र पद्धति के अनुसार गान करते तथा सुकविजन विरदावलि बोल रहे हैं, इस प्रकार वरराजा ने राजद्वार में प्रवेश किया ॥ २१ ॥

सोरठा-रससागर सु नरेश, बंदन बंदन माल किय ।

मंडप करत प्रवेश, स्वश्रु परिच्छन कीन तहां ॥ २२ ॥

वरराजा रससागर ने तोरण की वन्दना कर मंडप में प्रवेश किया तब मास ने अन्तर्पट लेकर आरती उतारी ॥ २२ ॥

अथ छंद पद्धति.

पुन्याह कीन पंडित उचार, संग्राम दुलह चट चरन धार ।

मधुपर्क लुद्र दधि आज्य लीन, ग्रहि ग्रहसूत्र वंदन सु कीन ॥२३॥

वहां विद्वन्मंडली स्वस्तिवाचन का उच्चारण करने लगी, और राजा संग्राम-सेन के दिए हुए कुश आसन पर वरराजा ने पग रक्खा और फिर मधु. दधि और घृत के मधुपर्क का गृह्यसूत्र की विधि के अनुसार ग्रहण कर वन्दना की ॥ २३ ॥

छंद मुक्तदाम.

घटं चत्र कुंभिय हाटक जान, जरी कउमेय तनें सु वितान ।

रची 'रंग-भूमि' सु अंगन राट, प्रवालिय खंभ पटीर कपाट ॥

सुनेरिय पंचहु रंग सुधार, दिवालन चित्र रची चित्रकार ।

मिले तहां राज वधूनके वृंद, मनो चहुं ओर प्रकाशित चंद ॥

गहे मनि मुत्तिय भूषण भूल, जरी नवरंग सु अंग दूकूल ।

भरोखन अंगन मंगल गाय, रच्यो मनु रंग महाच्छव जाय ॥

तहां अति दुलह अहर कीन, जरावसु चांकिय आसन दीन ।

बुलावन पंडित आपस पाप, सहेलिय चंद्रकला प्रति जाय ।

कियो पधरावन को सु विचार, सजे तन भिन्नहु भिन्न सिंगार ॥२४॥

वेदी के चारों कोने पर कनक कुंभ के कलश स्थापित किए हुए हैं और मंडप में जरीन तथा रेशमी चंदवा तना हुआ है, महल के आँगन में रंगभूमि रचाई गई है, जिसके खंभे प्रवाल के और पटीर के किवाड़ हैं, दीवार पर सुनेहरी तथा रंगविरंग चित्र चित्तरों ने सुधार कर बना रक्खे हैं, ऐसे मंडप में राज वधुओं की टोली विराजमान ऐसे शोभित है मानां चारों ओर चन्द्र प्रकाश हो रहा है । मणि मोतियों के फूल वाले आभूषण तथा जरी के नवरंगी वस्त्र सुन्दर अंग पर शोभायमान हैं । इस प्रकार नानाविधि शृंगार सज कर

रमणियां राजमहल के आंगन में तथा झरोखों में बैठ मंगल गान कर रही हैं सो मानो रंभा ने आकर महोत्सव रचा हो ऐसा प्रतीत होता है । वहां बरराजा को अति आदर के साथ जड़ाऊ चौकी पर आसन दिया और फिर पंडित की आज्ञा पाकर चन्द्रकला को लेने के लिए महेलियां गई और मंडप में कन्या के पधारने का शुभ विचार किया ; तथा चन्द्रकला के शरीर को अनेक प्रकार से सुसज्जित किया ॥ २४ ॥

अथ शृंगार वर्णन—अलंकार जातिस्वभाव—छंद मालिका.

अंग उबटं सु रंज, माधवी सलील मंज, चैल आरद्रं उतार, धौत वामनं सु धार. अंग पोद्धितं अनूप, केस पास अग्र धूप, नेह लाय ग्रंथि-वैन, नीरजं प्रसून श्रेन. गंधसार धारलीन, केसरं त्रिपुंड्र कीन, लेंग 'लाल-पाट' लाग, दाउदा प्रसून तार. केसरी उठोन सार, तार छेहेर किनार, नील कंचुकी कसंत, कंज सारके लसंत. जावकं रचे मुपाय, बोलुआ अनोट लाय, जैहर मंजीर बंध, किंकनी कटी सु मंध. नीक हार मुक्कमाल, चोक्रियं पनें सु लाल, दूलीरी विराज वाम, कंठ कंठ पोतशाम. बेसरं विराज नास, श्रोत्रनको विलास, अंगदं भुजा सुदंड, कंगने बलै सुमंड. पोंचि पोंचियं सु साज, मुद्रि अंगुरी विराज, पुनरंभवं सु पान, लाल बुटिका रचान. भाल मानु आध चंद, धारितं जगव विंद, विंदनी कसी बनाय, सीसफूल नीठ लाय. बेनि बेनिबंध प्राय. सो छए छवान जाय, आनन तमोर रंग, बंदनं भर्यो सु मंग. भिन्न भिन्न आनि केक, भृपनं धरे अनेक, नैन नाग रेख-धार, लैं दिठोन दीन नाग, मुक्क आननं निहार, लाजमें गडी सु वार, साथकी कुमार आय, साहिकें दही उठाय. गोन कीन मंद मंद, ज्यों छक्को भुक्कै गयंद ॥ २५ ॥

अंग में सुन्दर सुगन्धमय उबटन लगा, मधु माधवी के महकते जल में स्नान किया, भीगे वस्त्र उतारे, धुले हुए कोर वस्त्र धारण किये, भीगे अंग पोंछे, शिर के खुले हुए बालों को अगर का धूप दे फुलेल तेल डाल बेणी गुंधा, और उसमें कमल तथा फूलों की लटें पिरोई । छाती पर मलयागिरि चंदन धारण किया, मस्तक पर केशर का तिलक किया, सुनहरी कमीदे से दाऊदी फूल के

बूंदे बने हुए लाल अतलस का घेरदार लहंगा पहना तथा केशर की रंगी हुई ओढ़नी ओढ़ी जिनके किनारे तथा आंचल सुनहरी तारों से भरे हुए हैं । नीले रंग की कंचुकी कम कर पहिनी जो कमल नाल के समान शोभित है । महावर लगे हुए पांव की उंगलियों में बिछुआ, अंगूठा में अणवट और पांव में लंगर तथा भांगण पहिन कर काट में घुंघरू युक्त कटिमेखला बांध सुन्दर हीरा का अनुपम हार और मोतीमाला कंठ में धारण किये जिसमें लाल और पन्ना जड़ित चौकियां शोभायमान हैं । कपोत के समान ग्रीवा में दोलरा हार और कंठी शोभायमान हैं । नाक में बेसर, कान में भूमकदार कर्णफूल, भुजाओं में बाजूबंद, कर में कंकण और चूड़ियां, पहुंचा पर पहुंची, उंगलियों में अंगूठी शोभित हैं । नख और हथेली में मेंहदी की लाल रंग की बूंदियां हैं । कपाल मानो अर्द्धचन्द्र के समान शोभित है, उस पर जड़ाऊ चन्द्रिका और उसके ऊपर शीशफूल धारण किया । वेपरी से बंधा हुआ वेपरी भूषण पग तक लटक रहा है । पान का बीड़ा चबाने से मुख पर लाली आ गई है, मांग में सिन्दूर डाला, इस प्रकार भिन्न २ अनेक आभूषण पहिना, आंख में काजल की बारीक रेखा और कपोल पर काजल की बिन्दु लगा दर्पण में मुख देखा तो राजकुमारी लज्जित हो गई । तब पास की कुमारियों ने आकर राजकन्या को पकड़ कर हुंसियारी के साथ उसे लेकर मंद २ गति में ऐसी चलीं मानो छक्की हुई हथिनी आ रही हो ॥ २५ ॥

छप्पय—सही पंच शत संग, शील कुल बेस बराबर ।

भूषण वसन बनाय, साहि लीनी दुलही कर ॥

सहस उभै सहचरी, खमा मुख खमा उचारत ।

केसर अतर गुलाब, चुआ चन्दन है धारत ॥

जित तित भनंक जेहर लगी, पिक धुनि मंगल गाहितं ।

मानहु अनेक उदित अरक, दुलहनि मंडप आहितं ॥ २६ ॥

राजकन्या के स्वभाव, कुल, पोशाक और वय के समान ऐसी पांचसौ सहेलियां साथ में उसके वस्त्र आभूषण आदि सम्हालती हुई और दो हजार दासियां सामने 'खमा खमा' उच्चारण करती हुई चलीं । कितनी ही स्त्रियां केशर,

चन्दन, अतर, गुलाबजल, चोवा और कस्तूरी आदि सौभाग्य द्रव्य लेकर चली । उनके कांक्षण और किकिया के सुन्दर मनकार और कोयल के समान स्वर में मंगलगान होने लगे । इस प्रकार राजकन्या जिस समय लग्नमंडप में आई उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो अनेक सूर्य उदय हो गए हों ॥ २६ ॥

छंद पद्धती.

चत्र कुंभि गगन कन्या सु कीन, दुलहा सुमुख आसन सु दीन ।
अन्यान्य गंध चर्चित अपार, पहिराय कंठ पर सून हार ॥
द्विज वेदि प्रयोग कन्या सुदान, मेलाप पान कीन्हों सुपान ।
चत्रविंस तंतु चत्रं कर विसाल, आरोप कीन मंगल सुमाल ॥
एकेक ग्रंथि बंधे सुवाम, गावंत नारि पख उभय हास ।
चतुरस्र स्थंदिलं निगम चार, कीन्हें सु पंच भुव संस्कार ॥
वन्ही सु वेदमंत्रन दृढाय, गृहोक्त मंत्र आहुती लाय ।
दंपति उठाय कर कर सुधार, लाजा मुहोम कीन्हों प्रकार ॥
मंगल सु चत्र स्थंदिक भ्रमंत, कन्या सु बाम क्रिय दच्छ कंत ।
पूजे सु सप्तपदि ज्योय पाय, कंसार नार भोजन कराय ॥
उच्छिष्ट भुक्त वंघो सु विंद, उरमें विशेष बाढयो अनंद ।
दंपती देव स्वस्तीक धार, आशिशो वेद कीन्हों उचार ॥
आशिषा कीन अभिषेक ताम, सागर सु दीन दश दुजन ग्राम ।
सौभाग्यवती प्राप्ते अशीष, हेरेब श्रव नावें सु शीश ॥ २७ ॥

कन्या चौरी में आई तब वरराजा के सन्मुख आसन दे पधराया, फिर वर कन्या परस्पर अर्थात् वर ने कन्या को और कन्या ने वर को सुगन्धित चन्दन और हार पहिनाया । ब्राह्मणों ने श्लोक बोल कर और कन्यादान का संकल्प पढ़ कर कन्या का पाणीग्रहण कराया । फिर चौबीस तंतु की चार हाथ लम्बी मंगलमाला वर कन्या को पहिना एक २ के वस्त्र से गठबंधन किया । उस समय वर वधू के तरफ की स्त्रियां हंसी के गीत गाने लगीं । फिर ब्राह्मणों ने वेदविधि के अनुकूल चौरस वेदी पर पंचभू संस्कार किया । वेदमन्त्र से अग्नि की स्थापना कर गृह्यसूत्र के मन्त्रों से आहुति दी । वर कन्या को खड़ा

कर वर के हाथ में कन्या का हाथ दे लाजा होम का प्रचार कराया । वेदी की चार मंगल प्रदक्षिणा कर के वाम भाग में कन्या को विराजमान कराया । कन्या के पग से अड़ कर वरराजा ने सप्तपदी पूजन किया फिर कन्या ने वर को कसार का भोजन कराया और बचा हुआ कसार वर ने कन्या को खिलाया । जिससे वर कन्या के हृदय में अति आनन्द उत्पन्न हुआ । फिर चार सौभाग्यवती स्त्रियों ने कन्या के हाथ में कंकू और अक्षत में शिव पार्वती, ब्रह्मा सावित्री, कृष्ण रुक्मिणी और इन्द्र इन्द्राणी, चारों का नाम ले उन्हें सौभाग्य दिया और ब्राह्मणों ने कंकू का तिलक कर वेदमन्त्र के अभिषेक के साथ आशीर्वाद दिया और कुमार सागर ने ब्राह्मणों को दस गांव दक्षिणा में दिये । सौभाग्यवती स्त्रियों ने आशीर्वाद दे न्यौछावर की फिर वर कन्या ने गणपति तथा गोत्रदेवी को स्तुतिपूर्वक नमन किया ॥ २७ ॥

दोहा—शीष अंब हेरंब नय, उर आनन्द विशेष ।

रत्न महल सज्या रचित, दंपति कियो प्रवेश ॥ २८ ॥

स्त्री पुरुष दोनों ने गणपति तथा देवी को स्तुतिपूर्वक मस्तक नवा मन में अति हर्षित हो रत्नजडित महल में जहां सुख शैथ्या मजी थी वहां प्रवेश किया ॥ २८ ॥

गाहा—रससागर उद्वाहं, मुहूर्त शुद्ध दोष अभिधानं ।

पाणिग्रहण प्रसंगं, पन्द्रह प्रवीण सागरो लहरं ॥ २९ ॥

रससागर का विवाह, लग्न का शुभ मुहूर्त, दोषों का नाम और वर कन्या का हस्तमिलाप सम्बन्धी प्रवीणसागर की यह पन्द्रहवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २९ ॥

लहर १६ वीं

अथ रससागर चंद्रकला विहार प्रसंग यथा—दोहा.

दंपति महल प्रवेश करि, गये बरातीवास ।

लागे द्वार झरौख खुलि, चेरि गिरद आवास ॥ १ ॥

इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों ने महल में प्रवेश किया और अन्तःपुर के मनुष्य जनवास में गये, दासियों ने झरोखों के सब किवाड़ खोल अथवा गोखड़ा के किवाड़ बन्द कर आस पास चारों तरफ चौकी करने लगीं ॥ १ ॥

अथ शयन मुह साज वर्णन—छंद मंदाक्रान्ता.

मेजं सोहैं धवल वसनं, गंग फेनं समानं ।

छाये फूलं ललित मालिका, पाट फुंदे कसानं ॥

श्रीखंडादि मृगमदजुतं, छंडितं कासमीरं ।

मोधा अत्रं अगर धुरितं, माधवीकं उसीरं* ॥

पुंगी लौंग निकट धरितं, बालुका नागवेली ।

जातीपत्रं फलसु सुभगं, पुष्प चंपा चमेली ॥

बारी कुंभं जडित पनिका, दाम द्वारं कपूरं ।

पंखा पाटं सुरभि अनिली, दीप जोती सु भूरं ॥

मौधं हेमं मुकर जटितं, कारितं चित्रकारी ।

ठौरं २ चिकन विछितं, गेंदुकं हेम तारी ॥

नाना खेलं जित तित रचे, गायका गान साधे ।

त्रीयं प्रिये सकुचि तुदितं, मेन मंत्रं अराधे ॥ २ ॥

शैथ्या के ऊपर बिछी हुई चहर गंगा के फेन के समान उज्ज्वल शोभित है, उसके ऊपर सुगन्धित मल्लिका के सुन्दर फूल बिछाए हुए हैं, कीमती सेजबंद से सेज कसी हुई है, चंदन, कस्तूरी और केसर के छींटे लगे हुए हैं, चोवा, अत्तर, अगरबत्ती, मदिरा और सुगंधवाला महक रही है । वहां सुपारी, लबंग, पान,

*लिखित प्रति में 'माधवी कासमीर' पाठ है ।

† असल प्रति में "सलिल" पाठ है ।

जावित्री जायफल और तमालपत्र इत्यादि मुख लायक पदार्थ और चम्पा चमेली आदि सुगन्धित पुष्प रक्खे हुए हैं । रत्नजडित स्वर्णकलश पानी से भरा हुआ रक्खा है । फूलहार और कपूर से द्वार सजाया हुआ है जिसमें से सुगन्धित हवा आती है, उसमें सुन्दर पंखा रक्खा हुआ है । उत्तम दीवा से जगमग प्रकाश हो रहा है । ऐसे सुवर्ण कान्तिमय राजमहल में चारों ओर चित्तेरों से विचित्र कांच के तख्ते जड़े हुए शोभायमान हैं । जहां गलीचे बिछे हुए हैं, उनके ऊपर जरीके बड़े और छोटे तकिये रक्खे हुए हैं । महल के बाहर जहां तहां नाच आदि खेल हो रहे हैं, बालिकाएं गायन कर रही हैं, ऐसे रम्य मंदिर में स्त्री पुरुष लाज और हर्षयुक्त हो काममंत्र का आराधन कर रहे हैं ॥ २ ॥

सोरठा-विधि विधि कीन विलास, पहरायत सहचरि प्रसन ।

उमडित इस उजाम, उठे दुलह प्रमुदित बदन ॥ ३ ॥

स्त्री पुरुष ने विविध प्रकार से विलास किया उस अंतःपुर की रखवाली करने वाली दासियां प्रसन्न हुई और मवेरा होते ही सूर्य का प्रकाश होने से प्रसन्नमुख वरराजा उमंग के साथ उठे ॥ ३ ॥

सागर जाय समाज, किय बंदन गुरुजन जनक ।

नृप प्रदीप महाराज, इंद्र दान आरंभ किय ॥ ४ ॥

फिर सागरकुमार जनवाम में गए और अपने मंडली के गुरुजनों अर्थात् बड़ों तथा पिता को नमस्कार किया। फिर महाराजा प्रदीप ने इंद्रदान देना शुरू किया ॥ ४ ॥

अथ छंद सारंग.

राजं प्रदीपं समाजं तहां कीन, संग्रामसेनं बुलाये सथं लीन ।

केते मिले देश देशं महीपाल, केते कविदं दुजं गानकं जाल ॥

चेलं तंही हेम हीरा मनी माल, दीने रथं बाज गजं सुखंपाल ।

कीन्हों कविदेश मुख्य जयकार, लीन्हों विदा मास मानी मनूहार ॥ ५ ॥

महाराजा प्रदीप ने दुर्बार किया और महाराजा संग्रामसेन को भी बुला कर

साथ श्वखा जिसमें देश देश के कितने ही राजा आकर विराजमान थे । कितने ही कबीरवर, ब्राह्मण और गवैयों का समूह था । उन सबको शाल, दुशालादि वस्त्र, सुवर्ण के आभूषण, हीरा मोती और माणिक की मालाएं इसी प्रकार रथ, घोड़े, हाथी और पालकी वगैरह दान देकर वृत्त किया जिससे प्रसन्न हो कवियों ने महाराज प्रदीप को जयजयकार किया । पश्चात् संग्रामसेन के आप्रह से एक मास तक आतिथ्य स्वीकार कर वहां रहे, उपरान्त महाराज-प्रदीप ने अपने राज में जाने की आज्ञा ली ॥ ५ ॥

छप्पय-रससागर सुवरात, मुदितपुर मास विलंबित ।
नीठह नीठ विदाय, दीन संग्रामसेन तित ॥
हय गय फंदन शिविक, शकट कुंदन सु रजतभर ।
महत रत्न मणि मुक्त, जटित भूषण सुवसनजर ॥
दुहिता अमाति दुज कधि दिये, पारीबरह अपार किय ।
इक द्वै मुकाम निज संग चलि, वर बरात विद्या सुदिय ॥ ६ ॥

रससागर राजकुमार की बरात एक मास तक मुदितपुर में रही फिर बड़े आप्रह के बाद संग्रामसेन राजा की इच्छा के विरुद्ध राजा दी और विदाई में अपनी राजकुमारी को घोड़े, हाथी, रथ, पालकी, सोना चांदी से भरी हुई गाड़ियाँ, महत् रत्न, मणि, मोती और जड़ाऊ गहने तथा जरी के वस्त्र दिए । ब्राह्मण, कारभारी (पटवारी) तथा एक कवि और दासियाँ दीं । इस प्रकार अपार दान दहेज दे कुमारी को विदा करने के लिए राजा संग्रामसेन एक दो मंजिल तक खुद जाकर वर और बरात की विदाई की ॥ ६ ॥

चौपाई-निज पुर नृप संग्राम सिधाये, वर बरात संचर सु पलाये ।
मंद मंद चलि आये सुदेशं, नेहनग्र मधि कीन्ह प्रवेशं ॥
मंगलीक गृहगृह प्रति साधे, अति हुलास पुरजन मन बाधे ।
मंगल गुनो मानुन गावें, दुलहा दुलहनि महल सिधावें ॥ ७ ॥

राजा संग्रामसेन अपने नगर को पीछे फिरे और वर तथा बरात अपने देश की ओर चलने लगी । धीरे धीरे चलते चलते अपने देश में आ पहुँचे

और नेहनगर में प्रवेश किया । नगर में घर घर मंगल आनन्द होने लगा । नगर के सब लोग अति आनन्दित हुए और गवैये तथा स्त्रियां मंगल-गान गाने लगीं । इस प्रकार बर कन्या महल में पधारे ॥ ७ ॥

चंद्रकला गति कोक विधि, आर्लिगन उर धार ।

चुबन मंद सु बंध वर, दंपति करत विहार ॥ ८ ॥

चन्द्रकला अर्थात् चन्द्रमा की चढ़ती और उतरती गति के साथ साथ काम-देव के स्थान और कोकशास्त्र की रीति के अनुसार आर्लिगन का भेद मन में समझ चुन्वन तथा आसन का प्रकार धारण कर स्त्री और पुरुष दोनों सुख भोगने लगे ॥ ८ ॥

अथ चंद्रकला स्थान निरूपण—छंद अपरांतिक.

कोक की कला भेदों को, मैं चंद्रिका अंग जो रहे ।

कृष्ण पक्ष प्रतिपदा प्रतं, काम कामनी शीश वासितं ॥

द्वज लोयने तृतीया धरे, चौथ गलि सु पंचमी गरे ।

कुम्भ षष्ठी सप्तमी स्तने, अष्टमी कटे नौमि नाभिने ॥

श्रोत्रियं दशे डरु ग्यारसी, जंघ द्वादसी गुल्फ त्रीदसी ।

चत्रहीदशं पाय पृष्ठकं, मंदही तिथी पा अंगुष्ठकं ॥

वाम अंगमें मैं छ यौं द्रुते, शुक्ल पक्ष से दक्षको चढ़े ।

ज्योंहि उतरे त्यों चढ़े रनं, शीशलों गये मास पूरणं ॥ ९ ॥

चन्द्रमा की कला जिस प्रकार चढ़ती और उतरती है उसी प्रकार स्त्री के शरीर में कामदेव पृथक् २ भाग में फिरता है । जिसका भेद कोकशास्त्र में बताया है; वह इस प्रकार है कि कृष्ण पक्ष की पड़वा को काम स्त्री के मस्तक में रहता है, दूसरे दिन बाईं आंख में, तीसरे दिन अघर में, चौथे दिन कपोल में, पांचवें दिन गले में, छठे दिन कांख में, सातवें दिन बाएं स्तन में, आठवें दिन कटि में, नौवें दिन नाभि में, दशवें दिन नितंब में, ग्यारहें दिन ऊरु में, बारस को जंघा में, तेरस को गुल्फ में, चौदस को बाएं पग की तली में और अमावास्या को बाएं पग के अंगूठा में कामदेव वास करता है । इसी प्रकार शुक्ल पक्ष

में दाहिनी ओर रहता और जिस क्रम से नीचे जाता उसी क्रम से ऊपर आता है । पूर्णिमा को मस्तक में आ जाता है ॥ ६ ॥

अथ अष्टविधि आलिंगन भेद-छंद महालक्ष्मी.
आठ रीति सु आलिंगन, सोय संछेप कीन्हों बने ।
चंद्रविंबा नवं नागरं, संग रीभे रससागरं ॥
एक पाय सु चंपे पगें, दूसरो दूसरे से लगें ।
प्रीय बाला भुजामें गृहे, वृक्षरूढा सु तासैं कहें ॥
कंठ लागे प्रिया प्रीयसे, है लटकी रही हीय से ।
प्रेम बाढ़ें उभे जानिये, सो लतावेष्टितं ठानिये ॥
ओन बैठे प्रिया के पती, ओठ चुंबे सु बड़े रती ।
केस छुटे प्रिया प्रो ग्रहे, *जाघनं तास संभ्रा दहे॥
नैन भूंदे प्रिया पीयके, संग लावे कुचं हीय के ।
रीभ रीत सु बैठत हैं, +विजुकं तास भाषंत हैं ॥
दोउ सोहे विहारवंत, हीयसे होय लावे हितं ।
दंपती चित लावे भूदे, एह ऊरुषगूढं उदे ॥
रीभ ही से लपटे उभं, मंत बातं उचारे शुभं ।
ओह हांसी चख चंचल, सोय जानी तिलं तंदुलं ॥
पान पानं उरं से उरे, जंघाजंघ उभैही जुरे ।
एक गत्ती उभय हो लही, छोरनीरं सु भाषें बही ॥
भाल भालं कपोल जुरे, पानि कंठं उरं से उरे ।
वीर देवंत एक इके, संगना सोय लालाटिके ॥ १० ॥

अब आलिंगन आठ प्रकार का है उसका संछेप से वर्णन करते हैं । चन्द्र-विम्ब समान कान्ति वाला नवोदा चतुर चन्द्रकला के साथ आनन्द में लीन हो रससागर तरह २ के आलिंगन करता है । स्त्री के पग को पुरुष के बाएं पग से दबा दूसरा पांव स्त्री के दूसरे पग से लगा हाथ से आलिंगन करने को 'वृक्षरूढा' आलिंगन कहते हैं । अत्यन्त प्रेम से स्त्री पुरुष के गले लटक छाती से लटक जावे उससे अन्यान्य में जो प्रेम बढ़े तथा जो क्रीड़ा हांवे उसे 'लतावेष्टितं' आलिंगन

* अस्त्र प्रति में 'लाघव' पाठ है । + मूल में बीजक पाठ है ।

कहते हैं । प्रिया की कमर में बैठ पुरुष जो अधर चुम्बन करे उससे जो प्रीति बढ़े तथा स्त्री के छुटे हुए केशों को ग्रहण कर जो रमता है उसे 'जाघन' आलिंगन कहते हैं । अपने हाथों से पति की आंखें मीच अपने स्तन को पति की छाती से लगा जो आलिंगन है उसे "विरुद्ध वीतक" आलिंगन कहते हैं । स्त्री पुरुष परस्पर विहार की वार्तालाप करते २ परस्पर छाती से छाती तान कर आनन्द से क्रीड़ा करते हैं उसे 'उरुपगूढ' आलिंगन कहते हैं । अत्यन्त प्रेम में स्त्री पुरुष एक दूसरे से लिपट कर धीरे २ रवि वार्णा करें और भौंहों से हंसते हुए के समान चंचल नेत्र कटाक्ष कर विहार करने को 'तिलमंडल' आलिंगन कहते हैं । हाथ से हाथ, छाती से छाती, पग से पग मिलाकर स्त्री पुरुष की क्रीड़ा 'क्षीरक्षीर' आलिंगन कहलाता है । कपाल से कपाल, कपोल से कपोल मिला और हाथ कर में और हृदय से हृदय मिला परस्पर पान बीड़ा दे जो क्रीड़ा की जाती है उसका नाम 'लालाटिक' आलिंगन है ॥ १० ॥

अथ सप्तविधि चुंबन भेद—छंद सारवती.

लाय मुखं तियके मुख से, चुंबन जोर करंत लसैं ।
छोहं तिया पिय मोद लहैं, सोय मित्ता अभिधान कहैं ॥
त्रीयं प्रिय मुख मेल करें, चुंबन देत जु रीझ भरैं ।
कंप सु बाल अधूर कृतं, सो अभिधान कह फुरतं ॥
मूंदत नैन तिया पियके, आपुन के वहि रीत टके ।
ओठ सुकंत धरैं रसना, सो अवष्टुष्ट कहैं संगना ॥
जोर करे तिय कंत ग्रहे, चुंबन ले प्रातिकूल दहे ।
नेम बिना हर कोय तनैं, आंति प्रवीन बहैं वरनैं ॥
पान तिया पिय ओठ ग्रहे, चुंबन की रस रीत लहे ।
दंपति मोह बढंत चितैं, पीड़ित नाम बहैं कहतैं ॥
आपुस में अरसं परसं, लेत दुहु रस रीझ बसं ।
एकही एक जुरे अधुरं, संपुट एह कहे चतुरं ॥
चुंबन कंत करे मुखसे, आधुर ओर रसश्च प्रसैं ।
दंत लगे त्रिय नृत्य करे, मोलि बहैं अभिधान धरे ॥ ११ ॥

अपने मुख को स्त्री के मुख से मिलाकर बलात् चुम्बन करे और उससे स्त्री लुब्ध हो, उसे देख पुरुष प्रसन्न हो इसे 'मिला' चुम्बन कहते हैं। स्त्री अपने प्रिय के मुख के साथ अपना मुख कर प्रेम से चुम्बन करावे और प्रेम से बाला का अधर चूत करे उसे 'स्फुरित' चुम्बन कहते हैं। स्त्री अपने स्वामी की आंख अपने हाथों से मीच दे और स्वयं अपनी भी आंखें बन्द करके अपने जिह्वा से पति के होठ का चुम्बन करे वह 'घाटिक अनधष्ठ' चुम्बन कहा-ता है। जोर करती स्त्री को खेंचकर स्त्री की इच्छा के विरुद्ध पुरुष अनि-यमित रूप से किसी भी स्थान का चुम्बन करे वह 'भ्रान्ति' नामक चुंबन कह-लाता है। स्त्री का हाथ दबा उसके अधर का पुरुष चुम्बन करे और उससे दाम्पत्य भाव बढ़े उसे 'पीडित' चुंबन कहते हैं। स्त्री पुरुष परस्पर प्रेम में अधर से अधर मिला चुंबन करें तो उसे 'संपुट' चुंबन चतुर पुरुष कहते हैं। पुरुष मुख से चुंबन करते समय होष्ठ और जीभ को अपने मुख में ले दबा दे, उससे स्त्री तड़फने लगे उसे 'समोष्ठ' अथवा 'मंगल' चुंबन कहा गया है ॥ ११ ॥

सोरठा-हाव भाव रस रीत, दंपति रति विलसै सदा ।

सोय कहो करि प्रीति, नाम सुगुनी संचेप करि ॥ १२ ॥

इस रीति के अनुसार तथा हाव भाव से रससागर निरंतर रति विलाप करता है। उन हाव भावों के नाम व उनके गुण प्रेम से संचेप में कहता हूं ॥ १२ ॥

अथ भावभेद निरूपण-छंद पदनील.

आनन बोल विलोकन मध्य जनावत हैं, सो मन धारित बात विचिच्छन पावत हैं. ताय कहे भाव सुपंच प्रकार कहें; सोय कहो विस्तार सु सुच्छम पंथ गहैं. एक विभाव छ है अनुभाव सु औरहि हैं स्थाइय. सात्विक यों बिभिचारिय जान लहैं. पंचहु भाव के लच्छन भेद यहें बरने; तास विभाव कहंत जिही रस रीत बनें. दोय कहे तिन भेद अलंबन उदिपन; रभ्य कक्षुक निहार धरे चिशटा सु मनं. भाव विभाव उदीत अनुकरणं जु करें. ताय कहें अनुभाव सू दंपति प्रेम भरे. स्थाइ नव रति हांसिय क्रोध सु शोक

तदा. और उच्छाह भय निंदित विस्मित जान मुदा* सात्विक स्तंभ सू स्वेद रूपं सुरभंग कहे. कंप विरंग असु प्रले अठ जान लहे. बीस त्रयोदश भेद यहै विभचारि भजे. नेम बिना नवहू रस भेदन में उपजे. आदि निवेद सु ग्लानि शंका अरु आलस हैं. दैन्य सु संभृति मोह धृती चपलाइ बहें. ग्रीडमदं श्रम चित कहे हरखं गरखं. निंदसु निंद विषाद आवेग जहं सरखं. स्वप्न प्रबोध विषाद अरु उत्कंठ गने; आपसमार मती उग्रता पुनि त्रास भनैं. व्याधि अरु उनमाद भयं तरकं मरनं, नाम तथा गुन ए विभिचारियं त्रीस गनं ॥ १३ ॥

मन में धारण की हुई बात मुख से बोलने से अथवा आंख के इशारे से चतुर पुरुष समझ लेते हैं, इसलिए उसे कवि लोग 'रसभाव' कहते हैं। वह रसभाव पांच प्रकार का कहा गया है। उसका विस्तृत वर्णन करता हूं कि जिससे रसभाव के सूक्ष्म मार्ग का ज्ञान होवे। पहिला विभाव, दूसरा अनुभाव, तीसरा स्थायी भाव, चौथा सात्विक भाव और पांचवां व्यभिचारी भाव कहा गया है। इन पांचों भाव का लक्षण तथा भेद इस प्रकार वर्णित है। जिससे रसरीत उत्पन्न हो उसे विभाव कहते हैं, इस के विभावना आलंबन और उद्दीपन ये दो भेद हैं। किसी आह्लादकारक रमणीक वस्तु को देखकर मन में चेष्टा करे और विभाव भाव को उचित रीति से प्रदर्शन करे उसे 'अनुभाव' कहते हैं, जिससे नायक व नायिका दोनों प्रेम में मग्न होते हैं। स्थायीभाव के नव भेद हैं, वे इस प्रकार हैं—रति, हास्य, क्रोध, शोक, उत्साह, भय, निंदा, विस्मय और मोद। सात्विक भाव के आठ भेद ये हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। व्यभिचारी भाव के तैंतीस भेद हैं, और वह बिना नियम नवों रस में उत्पन्न होते हैं। वे भेद ये हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, आलस्य, दैन्य, स्मृति, मोह, धृति, चपलता, क्रीडा, मद, श्रम, चिंता, हर्ष, गर्व, निद्रा, निन्दा, विषाद, आवेग, जड़ता, स्वप्न, प्रबोध, विषाद, उत्कण्ठा, अपस्मार, मति, उग्रता, त्रास, व्याधि, उन्माद, भय, वितर्क और

* मुदा अर्थात् ब्रह्मानन्द में लीन, दूसरे अर्थों में सांसारिक विषयों से उपराम हो परब्रह्म में जानवसय रहे।

मरणा । इस प्रकार नाम और गुण के भेद से व्यभिचारी भाव तैंतीस प्रकार के हैं ॥ १३ ॥

अथ अष्टादश हाव निरूपण—छंद चर्चरी यथा.

दंपतिय सिंगार प्रगटित तास अंग सु भाव हैं. सोब भाव विचार सोधत अष्टदश विधि हाव हैं. प्रीय को सो भेस धारें चित प्रेम प्रकाश हैं. बाहि को अनुकरण साधे हाव लीला तास हैं. मित चाह सनेह बाढ़ित नैतमं गति आनबो; हावमें परवीन धारत सो विलासहि जानबो. तुच्छ भूषण अंग धारत शोभ होत विशेष है; साहिता मत शोधि साहित हाव विच्छित सो कहे. हास चाल विछोल जास रीत जथा कृता; सोय हाव लालित सोहिवं रूप रंग सु सोहिता. अंग भूषण वास उलटे वैन उलटे उद्यमं. प्रेमके भर रीत बदले सोय हावहि विभ्रमं. बोल समय न बोल सकियत लाज व्यूढ विचारिये. ताम के परभाव से वह हाव विहरति धारिये. मित मिल अपमान करियत चित धारत हासको. दाव एहि विवेक कहियत छोम बाढत तासको. दंत नख छत मर्द आरति मंद सुख दुख मानिये, तासके अनुकर्ण सोई हाव कुटमित जानिये. क्रोध अम भय हर्ष गर्वित कंप स्मित अभिलाषितं. उपजन इक्वेर हावसु किलहकिंचित भाषितं. मित दरशन चित चहत बात धरत न कान है. चातुरी कर हाव कहियत सो छुटायत जान है. जूनपन आनंद उपजत चित प्रेम प्रकाशितं. बालकारण विना हांसियत हाव कहियत हासितं. वाम भरि आनन्द बैठत निज समीप सु मित है; चौकि उठियत विना कारण चकित हाव कहेत है. रूप और सुहाग जोवन गर्व कामनि धारितं. ताहि को विस्तार बर्णत हाव मद सु उचारितं. कंत विछुरत विरह व्यापित चल विचल तन चित है. आरती उपचार शोधत हाव तपन कहंत है. रीझ मनवत बसन भूषण रीझवत नव खेल है. रीझवत पियसंग बसबो कहें हाव सु केल हैं. रूप सुन्दर सुभग हैं भूषण वास सभरा बनावके; प्रीय लगन उत्कंठ लागी गुन कुतूहल हाव के. आष तन सिंगार साजित आभरण अष सोहितं; हाव सोय विछेप कहियत चकित इत उत जोहितं. स्याम मंग सुजान कामनि बात निकसित कोय है. जान होय अजान बूझत हाव मुग्धित सोय है ॥ १४ ॥

दम्पति में शृंगार का उदय होने से स्त्री पुरुष के शरीर के लक्षण तथा स्वभाव पर से विचारपूर्वक देखने से अठारह प्रकार के हाव उत्पन्न होते हैं ।

अपने पति के समान वेश धारण करे अर्थात् अपने पति के वस्त्राभूषण पहिन जो स्त्री पुरुष का वेश करे और मन में प्रसुद्धित हो पति की क्रीड़ा का अनुकरण करे तो वह 'लीला' नाम का हाव है । मित्र की ममता से स्नेहयुक्त होने से अंग के अवयवों की नवीन और पृथक् गति विधि होवे उसे हाव के ज्ञाता चतुरजन 'विलास' हाव कहते हैं । थोड़े काल आभूषण पहिरने से जिसकी विशेष शोभा होवे उसे साहित्यकोविद 'विच्छिन' हाव कहते हैं । हंसना, चलना, बोलना और देखना जिसका यथार्थ प्रकट हो और रूप रंग से शोभित है उसे 'ललित' हाव कहते हैं । शरीर पर वस्त्राभूषण उलटे धारण करे, भाषण और उगम भी उलटा होवे और प्रेम में मग्न होने से रीति भी पलट जाय उसे 'विभ्रम' हाव कहते हैं । लज्जा से संकुचित हो अपने पति से बोलने के समय भी न बोल सके उसकी प्रभा को लेकर उसका 'विह्वल' हाव नाम है । स्त्री अपने हृदय में दिल्लगी तथा गर्व धारण कर अपने प्राणपति का निरादर करे उससे उत्पन्न हुए क्षोभ का नाम 'विब्बोक' हाव है । पति के देन घात, नख चूत और मर्दन की पीड़ा से मन में सुखी होते हुए बाहर किंचित दुःख प्रकट करती हुई जो स्त्री झूठा रोष प्रदर्शित करे उसे 'बुद्धमित' हाव कहते हैं । क्रोध, श्रम, भय, हर्ष, गर्व, कंप, स्थित और अभिलाषा से सब जहां एक समय में उत्पन्न हों, उसे 'किलकिंचित' नामक हाव कहते हैं । जो स्त्री चतुरता से अपने पति की स्तुति न सुने और पति का दर्शन चाहे उसे 'मोटायित' हाव कहते हैं । युवा अवस्था के कारण आनन्द उत्पन्न हो और चित्त में प्रेम का प्रकाश होने से बाला अकारण हंसे उसे 'हासित' हाव कहते हैं । स्त्री आनन्द से भरपूर हो जहां उसका मित्र हो वहां सामने जा बैठे और इस प्रकार बैठ अकारण चमक उठे उसे 'चकित' नाम का हाव कहते हैं । रूप, सौभाग्य और यौवन इत्यादि के गर्व से जो स्त्री रूप, सौभाग्य आदि का विस्तार से वर्णन करे उसे 'मद' हाव कहते हैं । अपने पति के वियोग से जिसका तन, मन विह्वल हो गया हो और कहीं भी चैन न पड़ता हो, उस पीड़ा को मिटाने के लिए ओषधि-शोधनी हो, उसे 'तपन' हाव कहते हैं । जो स्त्री अपनी इच्छानुसार वस्त्र आभूषण प्राप्त कर

इच्छानुसार विहार में मग्न रहे, अपनी प्राणप्रिया के पास रहे, उसे 'केलि' नाम का हाव कहते हैं । सुन्दर रूप वाली स्त्री, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर अपने प्रिय पति के दर्शन की उत्कण्ठा करे उसे 'कुतूहल' हाव कहते हैं । आधा शृंगार आधे अंग में पहिन और अधूरे ही आभूषण पहिन चकित हो चारों तरफ देखा करे उसे 'विक्षेप' हाव कहते हैं । चतुर स्त्री अपने पति के पाम से निकली हुई बात को जानती हुई भी अनजान होकर पूछे वहां सुगन्धित नाम हुआ ऐसा मुकवियों ने कहा है ॥ १४ ॥

दोहा—उदाहरण अरु बंध विधि, कों ग्रंथ बढ़ि जाय ।

याही ते संक्षेप करि, दीन्हों भेद जनाय ॥ १५ ॥

इस प्रकार उदाहरण तथा लक्षण की विधि कहने से ग्रन्थ बढ़ जायगा इस-लिये संक्षेप में थोड़े में भेद बतलाया है ॥ १५ ॥

अथ पद्भृतु विलास वर्णन—दोहा.

पद्भृतु प्रति भूषण वसन, नये नये मुख हेत ।

रूपे दुलह दुलहनि नये, नये नये मुख लेत ॥ १६ ॥

जहाँ ऋतुओं में नये २ वस्त्र आभूषण धारण कर नवीन २ हेतु (प्रेम) से वर वधू नये २ रूप में नये २ मुख लेते हैं ॥ १६ ॥

अथ तत्र प्रथम ग्रीष्म वर्णन—दोहा.

चेल गुलाबी केमरी, सब शीतल उपहार ।

मुक्ता मंडन की वसी, ग्रीष्म करत विहार ॥ १७ ॥

गुलाबी तथा केमरी वस्त्र धारण कर, चन्दन, सुगन्धवाला और कपूर वगैरह शीतल उपचार कर, मोती की माला धारण कर बगीचा में रह कर ग्रीष्म ऋतु में क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥

छप्पय—विपन कुंज वाटिका, फिरत जलजंत्र फुहारन ।

छवि शीतल तरु छाये, विविध जलकल विहारन ॥

बोहो धनसार गुलाब, मलय कसमीर विलेपन ।

शुभ केसरमय वसन, तास भूषण मुक्ता तन ॥

पेखंत चंद्र शीतल पवन, सुमन सेज गजरा सुभत ।

बिलसे विलास निशदिन विविध, रससागर ग्रीष्म सुरत ॥ १८ ॥

वन, कुंज और वाटिका में फिरना, फिरते हुए पानी के फुवारों की बहार लेना, वृक्ष की शीतल छाया में रहना, अनेक प्रकार की जलक्रीड़ा का बिहार करना, कपूर, गुलाब, मलयागिरि चन्दन और केसर वगैरह का लेप करना, केसर से रंगे हुए सुन्दर वस्त्र तथा मोतियों के आभूषण धारण करना, रात्रि में चन्द्रमा देखना, शीतल पवन का सेवन करना, उत्तम फूलों के गजरा पहनना, फूल की ही शैया पर सोना, इस प्रकार सारी ग्रीष्म-ऋतु में रससागर रात दिन अनेक प्रकार से विलास करते हैं ॥ १८ ॥

अथ वर्षा वर्णन-दोहा.

सुही कसुंबी पट सकल, नीक जटित सिंगार ।

अटा घटा निरखन केवल, वर्षा करत बिहार ॥ १९ ॥

लाल कुसुंबी रंग के शोभित सारे वस्त्र और हीरा के जड़ाऊ आभूषण धारण कर अटारी पर जा आकाश में छाई हुई मेघ की नवल घटा का अवलो-कन कर वर्षा-ऋतु में बिहार करते हैं ॥ १९ ॥

छप्पय-ऊंच वसत शुभ अटा, घटा प्रघटित धनमें छवि ।

निरखत गोख निकेत, सु धरगिरि हरित भयेसबि ।

मिलि दंपति मनुहार, प्यार करि अति मद पावत ।

भाव कवित सुर भेद, गुनी मल्हार सु गावत ॥

सोहत कसूमल पट सुही, कौतुक श्रावण तीज कृत ।

बिलसे विलास निशदिन विविध, रससागर वर्षा सुरत ॥ २० ॥

ऊंची शोभायमान अटारी पर रहकर मेघमंडल में छायी हुई घटा की छटा को महल के चौक में बैठ चारों तरफ देखते हैं । चारों ओर ज़मीन और पर्वतमाला हरित हो रही है । उस समय वह स्त्री पुरुष का जोड़ा परस्पर मिल कर अत्यन्त प्यार व आग्रह से मदपान करते व कराते हैं । भाव, कवित और स्वर के जानकार गुणी जन मल्हार राग का गायन करते हैं । शरीर पर कुसुंबी

रंग के वस्त्र शोभायमान हैं और श्रावण कृष्ण तृतीया (कजली तीज) के दिन कौतुक करने वाले रससागर वर्षा नाम की सारी ऋतु में अहर्निश विलास करते हैं ॥ २० ॥

अथ शरद-ऋतु वर्णन-दोहा.

अंबर जरी सु सोसनी, पना सु भूषण धार ।

चंद्रोदय जल कमल छवि, शरद सु करत विहार ॥ २१ ॥

सोसनी रंगसे रंगे हुए जरी के वस्त्र तथा पनासे जड़े हुए आभूषण धारण कर चन्द्रप्रकाश से खिले हुए कमलिनी की छवि अथवा चन्द्रमा का उदय, जल और कमल की शोभा का अवलोकन कर शरद-ऋतु में विहार करते हैं ॥ २१ ॥

छप्पय-मंदिर दीपक माल, बाल दीपक माला बनी ।

चहत चंद्र चंद्रिका, तिया पति जरह बसन तनी ॥

कर कर कमल कुमोद, प्रेम धरि दुर्गा पूजित ।

अति उज्ज्वल आगार, उमड़ि सुख अनंत अरुजित ॥

तटनी तडाग तट विमल तहां, क्रीडा जल मंजन करत ।

विलसे विलास निशादिन विविध, रससागर यह शरद रत ॥ २२ ॥

मंदिर में वत्तियों की दीपमाला के समान प्रकाशित और शोभायमान बाला पति के सहित चन्द्रप्रकाश की चाहना करती हुई जरी के वस्त्र पहिने हाथ में कमल और कुमुदिनी के पुष्प लिए हुए प्रेम से देवी अंबिका का पूजन करते हैं। अतिशय उज्ज्वल मंदिर में उमंग से अनन्त सुख में मग्न होते हैं और स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर के तट पर जाकर नहाते और जलक्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार शरद ऋतु में राजकुमार रससागर अनेक प्रकार से रात दिन विलास करते हैं ॥ २२ ॥

अथ हेमंतऋतु वर्णन-दोहा.

नील निचोल सु अंबरी, मानिक भूषण सार ।

अति ही उष्ण उपचार तन, हेमंत करत विहार ॥ २३ ॥

काला वस्त्र ओढ़ने को और शाल दुशाले, शरीर पर पहिनने को, शरीर पर

सुन्दर माणिक जटित आभूषण एवं शरीर को सुखकारक गरम उपचारों का सेवन,
इस प्रकार हेमन्त ऋतु में विहार करते हैं ॥ २३ ॥

छप्पय—भूमि भुवनमय भोग, तैल मर्दन तप तापन ।

है जल केलि हमाम, तप्त भोजन तरुनी तन ॥

बहु मृगमद तंबोल, तल्प घन तूल तलाई ।

सुजनी सुभग दुसाल, सदल सरपाउ मुहाई ॥

शुभ माणिक भूषण सकल, कोक कुतूहल रस कवित ।

बिलसे विलास निशदिन विविध, रससागर हेमन्त रत ॥ २४ ॥

तहखाने (भूमि के अन्दर खोद कर बनाए हुए मकान) में रहकर विलास करना, सुगंधमय तेल का शरीर में मर्दन करना, अग्नि अथवा सूर्य से तापना, स्नानागार में गरम जल से स्नान करना, भोजन करना, रमणी विलास करना, कस्तूरी का लेपन करना, नागरवेल के पान का चर्बण करना, खूब रुई से भरे गद्दे पर शयन करना, सुन्दर सज्जनी तथा दुशाला आढ़ना, उत्तम उत्तम तथा छेला (चीला) वाला का सभा बांधना, उत्तम शुभ्र माणिक से जटित आभूषण पहिना, कोकशास्त्र के कौतुक करना, शृंगाररस के कवित बोलना अथवा पढ़ना, इस प्रकार अनेक विधि से हेमन्त ऋतु में विलास करते हैं ॥ २४ ॥

अथ शिशिर ऋतु वर्णन—दोहा.

अंबर सर्पीं सित बसन, नीलमणीसु अपार ।

दंपति प्रेम अनंत, शिशिर सु करत विहार ॥ २५ ॥

अम्बर, माखन के समान श्वेत वस्त्र और नीलमणियों के अपार आभूषण से स्त्री पुरुष के हृदय में अत्यन्त प्रेम करते हुए शिशिर ऋतु में विहार करते हैं ॥ २५ ॥

छप्पय—पाक सहम स्वत पाक, नेह अभंग करत नित ।

भेषज मादिक भक्ष, ताम्र पारद पक्व तित ॥

आमिष उष्ण अहार, चंद्रहासह० रस अचवन ।

काम थंभ गुटिकान, तेज उपचार करत तन ॥

सनमान त्रिया नृत गान शुभ, दिर्घ दिन छीन नित ।

बिलसे विलास निशदिन विविध, रससागर यह शिशिर ऋतु ॥ २६ ॥

बलवान और पौष्टिक विविध प्रकार के सैकड़ों हज़ारों पाक खाना, निरन्तर कुलेल आदि तेल का मर्दन करना, नाना प्रकार की ओषधियों से युक्त मोदक खाना, तांबा और पारद के शुद्ध किए हुए भस्म (रस) का सेवन करना, पकाया हुआ गर्म भोजन करना, चन्द्रहासादि मादक रस का पान करना, कामन स्तंभन गोलियों का सेवन करना तथा शरीर उत्तम और तेजस्वी रहे ऐसा उपाय करना, स्त्री का मत्कार करना, नृत्य और गायन देखना व सुनना, इस प्रकार जिसकी रात लम्बी और दिन छोटा है ऐसे शिशिर-ऋतु में रससागर रात दिन अनेक प्रकार से विलास भांग करते हैं ॥ २६ ॥

अथ वसंत ऋतु वर्णन-दोहा.

श्वेत विचित्र तन वसन, सकल नंग सिंगार ।

केसर चंदन कुंकुमा, करत वसंत विहार ॥ २७ ॥

श्वेत और केशर से चर्चित वस्त्र पहिनना, मणि माणिक आदि मय नगों से जड़े हुए सुन्दर आभूषण धारण करना, केशर, चंदन और कुंकुमादि से युक्त वस्त्र ऋतु में विहार करते हैं ॥ २७ ॥

लप्य-जुवती नर कर जूथ, मुशीमहि फाग सु खेलहि ।

केसर जल पिचकार, लिये अत्तर कर तेलहि ॥

गोद अबीर गुलाल, न डर इतरेतर नांखहि ।

बोलत राग वसंत, भजें मुख गारी भाखहि ॥

वाजें मृदंग डफ बीन बहु, राजे सब लज्जा रहित ।

विलसे विलास निशादिन विविध, रससागर सु वसंत ऋतु ॥ २८ ॥

स्त्री और पुरुषों का समूह इकट्ठे मिलकर आनन्द से फाग खेलते हैं, केसर के जल से पिचकारियां भर कर ताक ताक कर मारते हैं, अत्तर और सुगंधित तेल हाथ में लगाते हैं, झोली भरी गुलाल व अबीर मुट्ठी भर २ कर निडर एक दूसरे + पर डालते हैं, वसंत राग गाते और फाग (गाली) बोलते

+ 'इतरेतर' का अर्थ गुजराती टीकाकार ने 'इधर निधर' किया है परन्तु वह ठीक नहीं प्रतीत होता, अतएव यहां 'एक दूसरे (परस्पर)' किया गया है ।

हैं, मृदंग, डफ, वीणा आदि अनेक बाजे बजते हैं और सब लज्जा राहित हो कर शोभायमान होते हैं । इस प्रकार वसंत ऋतु में राजकुमार रससागर अनेक प्रकार अहर्निश विहार करते हैं ॥ २८ ॥

अथ गाथा.

कोक कला अनुमानं, वर्णन भाव हाव सु विलासं ।

षट ऋतु कृत सु विहारं, सोर प्रवीणसागरो लहरं ॥ २९ ॥

कोकशास्त्र की रीति से चन्द्रकला के अनुसार कामदेव का स्थान, हाव भाव, विलास का वर्णन, रससागर कुमार का छः ऋतुओं में विहार का वर्णन वाली यह प्रवीणसागर की सोलहवीं लहर समाप्त हुई ॥ २९ ॥



१७ वीं लहर ।

अथ गायन प्रसंग-छंद चौपाई.

शुभ जनपद पंजाब जहां है, पुर लाहौर मुलतान तहां है ।
गायन तहां अनंत रहावें, सब संगीत रीत गृह गावें ॥
मुख्य चातुकी कोकिला दोई, सोर अठारह वर्ष वय सोई ।
रम्यस्वरूप लहत रस ग्रंथा, जानत भेद नायका पंथा ॥
राग रागनी रूप प्रवीणा, साज बजावन मुरज सु बीना ।
गूढ़ भेद जानन गुन गाथा, काव्य नवीन करन समरथा ॥
वह गायन दिन एक विचारी, जनपद सैल करन की धारी ॥ १ ॥

जहां पंजाब नाम का मनोहर देश है उसमें लाहौर और मुलतान नगर हैं, उस नगर में गायन करने वाले अनेक गवैये और नायिकाएं हैं, जो संगीत के सब नियम के अनुसार राग रागिनियों का गाना जानती हैं । इनमें भी चातुकी और कोकिला नाम की दो वीरांगनाएं मुख्य हैं, उनमें एक की अवस्था सोलह और दूसरी की अठारह वर्ष की है । दोनों ही अति रूपवान्, रस के समस्त ग्रन्थों के जानने वाली, नायिका भेद के पंथ की पारांगन, राग रागिनियों के रूप को बोलने और समझने में कुशल, बजाने के माजों में मुरज, वीणा वगैरह वाद्य बजाने वाली, गूढार्थ भेद और गुणवाली गाथाओं को जानने वाली एवं नवीन कविता करने और गाने में समर्थ हैं । उन्होंने एक दिन किसी अन्य देश में सैर के लिए जाने का विचार किया ॥ १ ॥

दोहा-कछू तास अरथ न कमी, दिय गुरुजन गृह भार ।

गायन देशाटन चली, देखन राजदुवार ॥ २ ॥

उसे किसी प्रकार के द्रव्य की कमी नहीं परन्तु केवल राजद्वार देखने के लिए घर का भार अपने बड़ों को सौंप कर परदेश में चली ॥ २ ॥

छप्पय-हय जोरित चकडोल, एक मंदोलिका सु बर ।

पंच सुतर सामान, दश सु दासी सकटी सर ॥

असो साठ असवार, आठ पंचासक पायक ।

नट अरु नायका और दस बीसक गायक ॥

जेहर जराव अंबर जरी, विधि विधि बाजित संग लिय ।

कोकिला चातुकी नाम जिहि, राजमहल गायन चलिय ॥ ३ ॥

घोड़े जुड़ा हुआ एक रथ, एक उम्दा पालकी, सामान उठाने के लिए पांच ऊँट, दस दासियाँ, दस गाड़ियाँ, साठ सवार, पचास साठ प्यादे, नट, वीराङ्गणायें और दस बीस दूसरे गवैये, भांभन, लङ्गर और दूसरे जड़ाऊ वस्त्र आदि नाना प्रकार के सामान साथ ले कोकिला तथा चातुकी नाम वाली नायिकाएँ राजद्वार की सैर करने चलीं ॥ ३ ॥

दोहा—जावे राजदुहार प्रति, गावे बीच जनान ।

पावे मौज अदृष्टवत, पुनि उठ चले विहान ॥ ४ ॥

जहां जाती हैं वहां राजदरबार में जाती हैं और अन्तःपुर में गाना करती हैं, इस प्रकार अपने गायन से प्रसन्न कर और भाग्यानुसार जो पारितोषिक प्राप्त होता है उसे ले दूसरे दिन दूसरी राजधानी को चल पड़ती हैं ॥ ४ ॥

फिरत आइ गुर्जर धरा, पुरी मनछा थान ।

खान पान सनमान किय, नीतिपाल राजान ॥ ५ ॥

इस प्रकार चलते चलते गुजरात देश में मनछापुर नामक नगर में पहुँचीं जहां पर राजा नीतिपाल राज करते हैं । राजा ने उन नायिकाओं का खानपान आदि में यथारीति सत्कार किया ॥ ५ ॥

छंद दोधक.

गायन थान इकंत जमाया, खानहि पान सबैं सुख पाया ।

सांभ सु राजदुवार सधाई, द्वार प्रवेशन आयस पाई ॥

जाय जनानहि में सिर नाई, बीन मृदंग मिलाय सु गाई ।

गायक भेद संगीत सु लीन्हों, गान प्रमान सबैं तिय कीन्हों ॥

रीभ प्रवीणकला उर आई, शासन श्री महाराज मंगाई ॥

रीभ प्रमाण इनाम सु दीन्हों, गायन का सु टिकवाहि कीन्हों ॥ ६ ॥

उन गायिकाओं ने एकान्त स्थान देख कर मुकाम किया जहां पर उन्हें खानपान आदि का सब सुख था । सन्ध्या समय हुआ तो राजमन्दिर में जाकर अन्तःपुर में जाने की आज्ञा प्राप्त की और जनाने में जाकर राणियों की वन्दना की । तदुपरान्त वीणा तथा मृदङ्ग के स्वर मिलाकर गायन करने लगीं । उनके गायन संगीतशास्त्र के नियमानुसार थे जिससे राणियों ने उनकी प्रशंसा की । कलाप्रवीण मन में अत्यन्त प्रसन्न हो महाराजा की स्वीकृति प्राप्त कर स्वेच्छा-पूर्वक उन्हें पारितोषिक दिया और कुछ अधिक दिन वहां ठहरने को कहा ॥६॥

दोहा—नितप्रति राजकुमारि मिल, सुने जु गायन गान ।

इक दिन कलाप्रवीण जू, बूझ्यो ऐह विधान ॥ ७ ॥

इस प्रकार नित्य राजकन्या मिलकर उन गायिकाओं का गायन सुनने लगी । पीछे एक दिन कलाप्रवीण ने उनसे गायनसम्बन्धी इस प्रकार प्रश्न किया ॥७॥

कलाप्रवीणोक्त—छप्पय.

कहा सप्त सुर नाम, कौन अनुमान पिछाने ।

कहा मूर्च्छना ग्राम, सुरसु केते मिलि जाने ॥

को सु भयै षट राग, कौन रागनी राग प्रति ।

कौन तास सुत सुता, रंग रूप सु कैसी गति ॥

सब मिल स्वरूप केते पृथक्, केते ताल लगाइये ।

कोकिला चातुकी भिन्न कर, एते भेद बताइये ॥ ८ ॥

सात स्वर के नाम क्या हैं ? तथा किस अनुमान से उनकी पहिचान होती है ? कितनी मूर्च्छना और कितने ग्राम हैं ? कितने स्वर एक दूसरे में मिलते हैं ? किससे छः रागों की उत्पत्ति होती है ? किन २ रागों से कौन २ सी रागिनियां हैं ? उनके पुत्र व पुत्रियां कौन २ हैं ? उनके रंग रूप की गति क्या है ? सब मिलकर कितने रूप हैं और उनके पृथक् २ रीति से कितने ताल लगते हैं हे कोकिला व चातुकी ! उनका भिन्न भिन्न रीति से वर्णन करो ॥ ८ ॥

अथ गायनोत्तर—दोहा.

अहो प्रवीण संगीत दधि, पेर न पावत पार ।

जो बूझे सो मति यथा, कहों भेद विस्तार ॥ ९ ॥

हे कलाप्रवीण ! संगीत बिद्या समुद्र की भांति विशाल है इसलिए कोई उसका पार नहीं पाता, परन्तु आपने जो भेद पूछा है उसको यथामति विस्तार-पूर्वक हम कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ स्वर नाम-छंद चंद्रायणा.

पर्ज र्षभ गंधार सु मध्यम जामिये, पंचम धैवत और निषाद बखानिये । सरिगम पधनी सप्त सुर अंक हैं, तीम ग्राम मूर्च्छना वीस एक कहें ॥ १० ॥

षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये स्वर हैं और सा री ग म प ध नी, ये सात सातों स्वरों के अंक हैं । ग्राम तीन और मूर्च्छना इक्कीस हैं ॥ १० ॥

अत्र ग्राम नामाभिधान-दोहा.

नामि कंठ कपालिका, यहै धाम निरधार ।

यह अभिधाम सु जाभिये, मंद मध्य अरु तार ॥ ११ ॥

नाभि, कंठ और कपाल ये ग्रामस्थान हैं, ये तीनों स्थल मंद, मध्य और तार नाम से जाने जाते हैं ॥ ११ ॥

अथ सप्तस्वर अनुमान भेद-छप्पय.

बराह बान सुर पर्ज, र्षभ चातुकी उचारन ।

अंगुचार गंधार, मध्य कुरची कल धारण ॥

पंचम कोकिल शब्द, बाज धुनि धैवत जाने ।

घन गर्जन सु निषाद, सप्त सुर भेद बखाने ॥

षट सुर फिरंत षडव बहें, पंच सु ओडव यारिये ।

स्वर सप्त सोय पूरन कहे, रागन धाम विचारिये ॥ १२ ॥

मोर की वांणी के समान षड्ज स्वर है । पपीहा के उबार जैसा ऋषभ स्वर है, बकरा के स्वर के समान गांधार स्वर है, मध्यम स्वर कुरची के स्वर

(१) षड्ज-यह गवहे के स्वर जैसा माना गया है । उच्चारण स्थान छः हैं-नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त है, इसी से इसका नाम षड्ज पड़ा । मूल दन्त और दन्त कंठ स्थान है । अग्नि देवता है । धर्य काल, आकृति ब्रह्मा की, हिमवार, रविवार ऋतु, छंद अनुष्टुप् और सेतति इसकी धैरव राग है ।

स्त और पंचम स्वर कोयल की बाणी के समान है। धैवत षोडश के स्वर स्वाम और वर्षाश्रुतु की गर्जना के समान निषाद स्वर होता है। जिस गाने में छत्तीं स्वर फिरे उसे स्वाडव और जिसमें पांच स्वर आवें उसे ओडव कहते हैं। जिसमें

(२) ऋषभ—यह वैल के स्वर जैसा है पर कोई २ इसे ज्ञातक के समान स्वर मानते हैं।

नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष को जाती हुई वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। देवता ब्रह्मा, श्रुतु शिशिर, वार सोम, छंद गायत्री, जाति चरित्र, वर्षा पीला, तीन इसकी श्रुतियाँ हैं। दयाव, रंजनी और रतिका पुत्र मालकोश। ऋषभ, कोमल के स्वर ग्राम बनाने से विकृत स्वर इस प्रकार होते हैं। ऋषभ, स्वर, गांधार, ऋषभ तीव्र, मध्यम गांधार, पंचम, मध्यम, धैवत, पंचम, निषाद, धैवत-कोमल, ऋषभ-निषाद।

(३) गांधार—स्वर बकरे के जैसा, इसकी श्रुतियाँ दो हैं—रोद्री और क्रोधा, जाति वैश्य, वर्षा सुनहला, देवता सरस्वती, ऋषि चंद्र, छंद श्रिष्टुम, वार मंगल, श्रुतु वसंत स्थान दोनों हाथ हैं। आकृति अग्नि और संतान हिंडोल राग है। प्रयोग कल्याणस में नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष में लगकर कई गंधों को ले जाने वाली वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। मेढ़ दो हैं, शुद्ध और कोमल, ग्रह स्वर बनाने से इस प्रकार स्वरग्राम होता है। गांधार स्वर, तीव्र, मध्यम, ऋषभ, कोमल, धैवत, गांधार, धैवत, मध्यम, निषाद, पंचम, कोमल, ऋषभ, धैवत, कोमल, गांधार, निषाद, कोमल, गांधार को ग्रह स्वर बनाने से स्वरग्राम इस प्रकार होता है। गांधार, कोमल, स्वर, मध्यम, ऋषभ, पंचम, गांधार, कोमल, धैवत, मध्यम, कोमल, निषाद, पंचम, स्वर धैवत, ऋषभ, निषाद।

(४) मध्यम—सूक्ष्म नासिका अंतस्थान कंठ, उत्पत्ति कषयक से, स्वर कपूर जैसा, देवता महादेव, आकृति विष्णु की संतान, दीपक रागकर्षी नीला, जाति शूद्र, श्रुतु मीन, वार शुभ, छंद वृहती है। यह साधारण और तीव्र है। इसको षड्ज स्वर बनाने से सप्तक इस तरह होता है। मध्यम, मध्यम, ऋषभ, धैवत, गांधार, कोमल, निषाद, मध्यम, (षड्ज) मध्यम, मध्यम, धैवत, गांधार, निषाद, (षड्ज) बनाने से तीव्र, मध्यम, कोमल, धैवत, ऋषभ, कोमल,

सातों स्वर तर्गों उसे पूर्ण कहते हैं । इस प्रकार सात स्वरों का विचार है, अब श्रम के श्रम का विचार करते हैं ॥ १२ ॥

निषाद, गान्धार, निषाद, मध्यम, कोमल, ऋषभ, पंचम, कोमल, गान्धार, धैवत, मध्यम, निषाद है ।

(५) पंचम—यह पिक-कोयल के स्वर समान माना गया है । वर्ण ब्राह्मण, रंग रयाम, महा-देव देवता, रूप इन्द्र जैसा, स्थान कौञ्च द्वीप है । इसकी मूर्च्छना यमली, निर्मली और कोमली हैं । भरत के मत से उच्चारण पायु नाभि, हृदय, कंठ और मूर्छा नामक पांच स्थानों में जगती हैं, इससे पंचम कहते हैं, संगीत दामोदर का मत है कि इसमें प्राण, अपान, समान, उदान और ध्यान एक साथ जगते हैं इसीलिये यह पंचम कहलाता है ॥

(६) धैवत—नारद मतानुसार घोड़े की हिनहिनाहट के समान स्वर निकले, यह धैवत है । तानसेन, धैवत को मेंढक के स्वर समान कहा है । संगीत दामोदर का मत है कि जो स्वर नाभि के नीचे आकर बस्ती स्थान से फिर ऊपर दौड़ता हुआ कंठ तक पहुँचे यह धैवत है । संगीत दर्पण के मतानुसार यह ऋषिकुल में उत्पन्न, वर्ण चरित्र, पीत रंग, जन्म रवेत द्वीप में ऋषि तुंबरू, गयोरा देवता, वृंद उष्णिक् (मतान्तर से जगती) माना गया है बीमल और भवानक इस में उपयोगी कहा है । इसे पाँद्व जाति स्वर माना है । इसकी ७२० तानें हैं जिनमें प्रत्येक के ४८ भेद होने से सब ३४५६० तानें हुईं । रम्भा, रोहिणी और मधुरी श्रुतिवां हैं ॥

(७) निषाद—नारद मतानुसार यह स्वर हाथी के स्वर जैसा और उच्चारण स्थान खज्जाट है । व्याकरण के अनुसार यह दंश्य है । संगीत दर्पण के मत से इसकी उत्पत्ति अश्वर वंश में, जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्मस्थान द्वीप, ऋषि तुंबरू, देवता सूर्य, वृंद जगती । यह संकीर्ण जाति का स्वर और करुणारस के लिये विशेष उपयोगी है । इसकी तान ५०४० बार शनिवार, स्वर्ग गयोराजी के समान मना जाता है ॥ हि—स—सा पदपसिंह

अथ रागोत्पत्तिभेद-छप्पय.

भैरव हरतें भयो, मालकोश विष्णु मुख ।
ब्रह्म गात हिंडोल, और दीपक दिनमनि रुष ॥
शेषहुतें श्रीराग, मेघ गाजत अकाम हुष ।
इक इक प्रति राग, पंच रागनी प्रकट भुष ॥
सुत पंच पंच प्रति रागनी, पंच पंच पुत्रो कहे ।
विस्तार बढ्यो संबंध से, तीन लोक फैल्यो बहे ॥ १३ ॥

भैरव राग की उत्पत्ति हर से, मालकोश की विष्णु के मुख से, हिंडोल राग की ब्रह्मा के मुख से, दीपक की सूर्य के तेज से, श्री राग की उत्पत्ति शेष से और आकाश में गर्जते मेघ से मल्लार राग की उत्पत्ति है । अब एक २ राग से पांच पांच रागनियां उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार के संबन्ध से इतना विस्तार बढ़ा है कि तीनों लोक में फैल रहा है ॥ १३ ॥

बरने रूप सबीन के, तबे बहुत विस्तार ।

कहै प्रवीन षट राग के, रागनि युक्त उदार ॥ १४ ॥

जो सब राग के रूप का वर्णन करें तो ग्रन्थ का बहुत विस्तार हो जाय इसलिए रागनियों सहित छः राग का ही विस्तार कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ श्री भैरव पंच रागनी वाम भेद-चौपाई.

भैरू राग भैरवी नारी, वैराडी माधवी विचारी ।

सिंधू बंगाली सु कहावे, यहै रीत संगीत बतावे ॥ १५ ॥

भैरव राग के पांच स्त्रियां हैं, एक भैरवी, दूसरी वैराडी, तीसरी माधवी, चौथी सिंधु और पांचवी बंगाली नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा संगीत शास्त्र कहता है ॥ १५ ॥

अथ भैरवादि रागनीस्वरूप शृंगारभेद-छंद पदनील.

शंकर सो जु सरूप हिमकर माल गहे, अंबक तीन जटा मधि देवधुनी

बहे. अंबर सेत अहा भुज मुंडन माल करें, भैरव आसन सिद्ध भृगं तु चंप
जु करे. सोहत गौर स्वरूप सुपेत सु पाट लसें, श्वेत उडोलन उरोजन
कंचुकि लाल कसें. चंपक की उरमाल बजावत ताल करें, भैरवि शंकर
थान उचारत बानि हरे. कंकन कंचन पान सु कंचुकि श्वेत हिये, नाग-
नि के छावि केस सु अंग बिखेर दिये. देव प्रसन्नन गुच्छ सु रीभ घयो
श्रवने, चाहत हे प्रिय संग विरारिय सो बरने. अंजित नैन परीभृत बैन
सु हेम तना, पीत निचोल पिया मुख चुंबत है ललना. फंट भुजा धरि
रीभृत है छिन मध्य हँस, ए मधुमांधवि साम समीप सदा बिलसे. अंबर
आरुन रूप विलास त्रिशूल लिये, पूजत है शिव थान स्वरी कर कंज
किये. क्रोध भरी मनमें विरहानल अंग दहै, हेरत है पतिपथ सु सिंधवि
तास कहै, भाल दिये मृगसार बिभूत सु अंग धरें, शीश जटा शुभ मूरति
लीन त्रिशूल करें. केसर रंग उडोन सु मंदहि मंद हँसे, एह बंगालनि
बाल सदा बन कंज बसे ॥ १६ ॥

जिसका स्वरूप शंकर के समान है, जिसने चन्द्रमा को कपाल में धारण
किया हुआ है, तीन नेत्र और जटा में से गंगा बह रही है । श्वेताम्बर पहिने
हुए हैं । भुजाओं में विषधर और गले में मुंडमाला पड़ी हुई है, इस प्रकार का
भैरव राग भृगचर्म पर सिंहासन लगाए बैठा है । जो गौर वर्ण से शोभायमान,
शरीर पर श्वेत वस्त्र तथा श्वेत ओढ़नी है, स्तन पर लाल रंग की कंचुकी कसी
हुई है, चंपा के फूलों की माला गले में डाल रखी है, तथा हाथ से ताल दे रही
है, इस प्रकार भैरवी रागिनी महादेवजी के स्थान में 'हर हर' उच्चारण कर रही
है । सोने के कंकण हाथ में धारण किये हुए हैं और बैराडी श्वेत कंचुकी छाती
पर कसे हुए, नागिन की भांति छुटे हुए केशों को शरीर पर फैलाए हुए, पारिजातक
पुष्प के कर्णफूल कानों में पहिने हुए प्रियतम से मिलने की इच्छा करती है,
इस प्रकार रागिनी का वर्णन है ।

आँखों में जिसने अंजन डाल रक्खा है, कोयल के समान मधुर बाणी
बोलती है, सोना के समान काम्तिधान जिसका शरीर है, पीले वस्त्र धारण किए हुए
है, प्रियतम के मुख का चुंबन करती और गले में हाथ डाल रीझकर बांधकर हँसती

है। इस प्रकार मधु माधवी नाम की रागिनी हमेशा अपने पति के संग विलास करती है । अंग पर लाल वस्त्र पहिने हुए है, जिसका सुन्दर रूप है, हाथ में त्रिशूल है, शिबजी के मंदिर में खड़ी २ हाथ में कमलपुष्प लिए पूजा करती है, चित्त में रोष होने में विरहाग्नि में शरीर को जला रही है बारबार पति के आने की राह देखती है इस प्रकार सिंध नाम की रागिनी कहलाती है ।

ललाट पर कस्तूरी का तिलक और शरीर पर भस्म धारण कर रखी है, मस्तक पर जटा है, देखने में सुन्दर है, हाथ में त्रिशूल ले रखी है, केसरिया रंग की ओढ़नी ओढ़े हुए मन्द मन्द हंसती है, इस प्रकार की बंगाली रागिनी स्वरूप से निरंतर वनकुंज में निवास करती है ॥ १६ ॥

अथ श्री मालकोश पंच रागिनी नाम-चौपाई.

मालकोश हू की यह वाला, टोड़ी गोड़ी रूप रसाला ।

पुनि गुनकली खमायाचि नारी, कुकुम युक्त पांचों हितकारी ॥ १७ ॥

टोड़ी, गोड़ी, गुनकली, खमाची और कुकुम ये पांच रागनियां मालकोश राग की अति स्वरूपवान हितकारी स्त्रियां हैं ॥ १७ ॥

अथ मालकोशादि रागिनी स्वरूप शृंगारभेद छंद चामर.

सेत बास धारितं सुरूप श्याम रंग है, सीप सून कंठहार वार जूथ संग है। शीश चढ़ पानमें छरी सू बास धारितं, चातुरी विलास मालकोश सू बिचारितं. कंज नैन कीजितं कटाच कुंजमें खरी, सेन सारि श्याम कंछुकी सु बान माधुरी. खोरेह कपूर बीन नाद रीझही, काम रंग अंग भीन टोडि रागिनी कही. कोकिला सु बानिं वाम साम अंगियां हिबे, प्राण नाद अंब मोर श्रोत तीरपै किये. सेत बास चन्द्रिका उजास आस्य जानिये, बागमें बिराज बाल गौरिका बखानिये. बास है मलीन दीर्घ उसस डारित, छीन अंग नैन नीर अंगियां भिगारितं. वार खोलि बैठितं कदंब शीश डारिहैं, एकरोत जानिये गुनकली सू नारिहैं. नैन ऐन के समान कोकिला सु बान है, चातुरी भरी जु भेद भाषितं सु तान है सोहितं कुसुम बास हंसकी ग्रहे गती, चन्द्र आननं प्रकाश सोय है खमायाची. कंछके विलाससे उजागरंग नैनमें, तूट हार वार छूट तूतरंग नैनमें. कंछुकी देरार

खाइ बांहकी बैल छनो, एड भार अंग मोरितं कुकुम्भ रागनीं ॥ १८ ॥

अंग पर सफेद वस्त्र पहिने हुए हैं, स्वरूपवान् परन्तु शरीर का रंग काला है, गले में मोती की माला पहिने हैं और पांच स्त्रियां साथ में हैं, माथे पर मुकुट और हाथ में सुगंधित पुष्प की छड़ी है, इस प्रकार विलास-विषय में चतुर ऐसा मालकोष राग कहा गया है ।

कमल के समान नेत्रों से कटाक्ष करती हुई कुंज में खड़ी है, श्वेत साड़ी पहिने हुए और छाती में श्यामरंग की कंचुकी कसी हुई है, बाणी जिसकी अति चतुर है, और कपूर का लेप अंग पर किए हुए है । वीणा बजाकर उसके नाद से हिरणों को रिम्मा रही है, इस प्रकार प्रकट कामदेव के रंग से अंगों को भिजाने वाली टोडी नाम की रागिनी कही है । कोयल की बाणी के समान जिसका स्वर मधुर है, स्तन पर काली कंचुकी कसी हुई है, नाद नाम का वाद्य जिसके हाथ में है और आम के मौर का कर्णफूल कानों में लटकाए हुए है, श्वेत वस्त्र पहिने हुए, चन्द्रबिम्ब के समान जिसका मुख फलक रहा है, इस प्रकार बाग में रहने वाली वाद्यरूप कही जाने वाली गोड़ी नाम की रागनी का वर्णन है । जिसका पहिरावा मलीन और उसास गंभीर है, जिसका शरीर विरहार्ति से कृष हो गया है, आंख से गिरने वाले अश्रुबिन्दुओं से कंचुली भीग गई है, खुले हुए केश फैला कर बैठी है, कदंब वृक्ष की डाली जिसके ऊपर आरही है, इस प्रकार की गुन-कली नाम की रागिनी है । नेत्र जिसके मृग के समान और कोयल के स्वर समान मधुर बाणी है, चातुरी से भरपूर भेद भरे सुन्दर तान अलापती है, अंग पर कुसुंब रंग के वस्त्र शोभित हैं, हंस की गति की सी चाल और जिसके मुख की कान्ति शरदपूरणिमा के बिम्ब के समान प्रकाशमान है, इस प्रकार की खमाची रागनी है । स्वामी के साथ में भोग विलास के कारण समस्त रात्रि के जागरण का रंग जिसकी आँखों में खिल रहा है, कंठ का मुक्ताहार टूट गया है, बाल जिसके बिखर रहे हैं, बोलते हुए बाणी तुतला रही है । हाथ में पहिनी हुई चूड़ियों में चीर पड़ गई है, कंचुकी के बन्द टूट गए हैं और आलस्य से बार बार जंमाई लेते हुए अंग मरोड़ती है, इन लक्षणों वाली कुकुम्भ नाम की रागनी कही जाती है ॥ १८ ॥

अथ हिंडोर पंच रागनीनाम भेद-चौपाई.

रामकली देशाख सु वामा, ललिता अरु बिलावली नामा ।

पटमंजरी पंचमी नारी, ए हिंडोरकि आगनकारी ॥ १६ ॥

रामकली, देशाख, ललित, बिलावली और पटमंजरी ये पांच रागनियां हिंडौल राग की आज्ञाकारिणी पत्नियां हैं ॥ १६ ॥

अथ हिंडोरादि रागनी स्वरूप शृंगारभेद-चर्चरी.

सीसपै माथि मुकुट सोहित पीतबास सुहावही, अंग हेम अनंग उपमा मंद मंद सु गावही. हाटकी हिंडोलना परि नारि देत सु भोल है, अंग सिङ्गार साजित राग यह हिंडोल है. नील रंग दुकूल दीपत पीत रंग सु अंग है, एनसार सु भाल चर्चित जटित भूषण नंग है. सामको मन मोहि लीजत हाव भाव सु गायके, रागनी यह पराखि लीजे रामकलीय बनाय के. मूरती सु प्रचंड सोहत वीर रसमय बालिका, श्याम चीर सनेह पति से हार हिय मनि मालिका. आनपै पति जान न दैयत मधुर बाणी भाष है, अंग अंग अनंग प्रगटित रागनि देसाख है. गौर अंग पुहुप साजत सोर सिङ्गार है, भीन बास दमके दामनि मुख मुधाकर सार है. कंज नैनन अंजि काजर अधर बिंब बखानिये, हासयुक्त विलास हेरत ललित रागनि जानिये. आप बन संकेत राजित राह देखत मित की, आल चीर सु नील कंचुकि देह दामन कंत की. साज अंग सिंगार आभन ध्यान वह लागी रहै, मैन व्यापित अंग अकुलित विलावर तसे कहैं. फूलमाला मृगाज उरमें बिरह व्यापित अंगमें, प्रो बिजोग बिहाल सेजन रैन दिन यह रंगमें. खान पान में बसन भूषण ना सुहावे सहचरी, छीन होत छिन छिन प्रति रागनी पटमंजरी ॥ २० ॥

मस्तक पर मणिजटित मुकुट, शरीर पर पीत वस्त्र धारण किए हुए है, स्वर्ण के समान जिसका कान्तिमय शरीर है, फिर जिसे कामदेव की उपमा दी जाती है, धीरे २ गाता है, सोने के हिंडोले में बैठा है और जिसे उसकी स्त्रियां प्रेम से भुला रही हैं, अंग प्रत्यंग शृंगार से सुसज्जित हिंडौल राग है। जो श्याम रंग के वस्त्र पहिने हुए

पहिले और सुन्दर शरीर वाली, कपाल पर कस्तूरी का तिलक किए हुए, नगजडित आभूषण पहिने हुए, हाव भाव और गायन से प्रिय स्वामी के चित्त को आकर्षित करती है, इस लक्षणवाली रामकली रागिनी जानना, जिमकी आवृत्ति अति मोटी है, परन्तु शोभायमान दिखार्ई पड़ती है और फिर रसमय बालस्वरूप है, अंग पर काली साड़ी पहिने हुए, पति से अत्यन्त प्रसन्न है, गले में पुष्पहार और मणिमाला पहिने हुए है, अन्य किसी नायिका को स्वामी के पास जाने नहीं देती, माधुर्य युक्त वाणी बोलती है, प्रत्येक अंग में कामदेव प्रकट है, इस प्रकार देशाख नाम की रागिनी का लक्षण है !

गौर वर्ण जिमकी काया है, पुष्पमाला पहिने हुए और अंग पर सोलहों शृंगार सजे हुए हैं, महीन वस्त्र के अन्दर से अंग की कान्ति मानो बिजली की प्रभा चमक रही हो ऐसा प्रतीत होता है, चन्द्रमा के समान जिसका मुख अति सुन्दर शोभायमान है, अति घोर आंखों में काजल की रेखा शोभित है, जिसके होठ बिम्बा फल के समान रक्त हैं, हाम्ययुक्त विलास में देखती है, इन लक्षणों से युक्त ललित नाम की रागिनी है ।

संकेत किए हुए अपने वनस्थली में प्रियमित्र की प्रतीक्षा करती है, लाल चौर तथा श्याम रंग की कंचुकी पहिने हुए बिजली के समान चमकती हुई कान्तिवान शरीर वाली, मोलह शृंगार और बारह आभूषण धारण किए हुए अपने प्रिय पति के ध्यान में ही लगी हुई है, रतिनाथ के व्याप जाने से शरीर व्याकुल हो रहा है, इन चेष्टाओं से युक्त विलावलि नाम की रागिनी कही है ।

जिसने हृदय पर फूल की माला और कस्तूरी धारण कर रखी है, अंग में विरह व्याप रहा है, प्रियतम के वियोग से मेज में बेहाल पड़ी हुई है, रातदिन वियोग के रंग में ही व्याकुल है, वियोग दुःख में खानपान, वस्त्र, आभूषण पहिने की रुचि ही नहीं होती, क्षण २ में क्षीण होती जा रही है, इन लक्षणों वाली पटमंजरी नाम की रागिनी समझना चाहिए ॥ २० ॥

अथ दीपक पंच रागिनी नाम भेद—चौपाई.

देसी और कमोद कहावे, नट केदार दार गुन गावे ।

बहुरि कानरारूप विसाला, यहै पंच दीपक की बाला ॥ २ ॥

देशी, कामोद, नट, केदारा और कन्हड़ा ये पांच अनेक रूप वाली राग-
नियां दीपक राग की युवा स्त्रियां हैं ॥ २१ ॥

अथ दीपक रागनी स्वरूप संगारभेद—छंद हारक.

सोहत गज पीठ परन आवृत गन कामनी, आरुन तन लाल बसन माल
मुगतकी बनी. बेस सुभग केस खलित गावत शुभ वानिये, कुंजन मधि
गुंज मधुप दीपक यह जानिये. नील * बसन गौर स्रतन सोवत पति पै
खरी, आभन तन पानि अंजन चाह रमत की भरी. रूप रसिक गावन
पिक मनमोहनी, जोवन मत रीभत चित देसि कहत रागनी. कुंदन तन
सारि अरुन सेत वरन कंचुकी, कूजन पिक कुंजन मधु कुंजन बन में
भुकी. काम दहत मित चहत सोच रहत है, व्याकुल मित मुराहु
लखित कैयत सु कुमोदनी. प्रिय मनहर चित्त केसर वर अंग है, हंसग
मनभूषण तन चैल अरुन रंग है. पीठ दुरद पानि धरत जूथ सखिन के
लहें, नाटिक गति साधित नित रागनि नट सो कहे. गंग जटन कूह ल-
टन भेख सु मुनि धारितं, रूप सुभग पंकज द्रग ए उपवीत डारितं. भूति
चदित ज्ञान गदित मंत्र पढ़त सार है, कानन मधि आनन शशि सोहित
सु किदार है. श्याम वरण रिष्ट करण सेत बसन सोहतं, ईभ रदन वाम
धरन अंबरमनि पूजितं. ग्वौर मलय भालरचित माल मुमन केहरा,
आंगन मधि खरी लसित ललन हसिन कानरा ॥ २२ ॥

हाथी के पीठ पर सवार, स्त्रीवृन्द में घिरा हुआ, रक्त वर्ण व रक्त वस्त्र-
धारी, गले में मोतियों की माला धारण किए हुए, सुन्दर पोशाकयुक्त, खुले
हुए केशोंवाला, सुन्दर स्वर से इस प्रकार गाता हुआ मानो कुंजलता में भ्रमर
गुंजार कर रहे हों, यह दीपक राग की पहिचान है ।

पहिने हुए वस्त्र जिसके हरित वर्ण और शरीर गौर वर्ण है ऐसी नायिका अपने
पति के पास खड़ी है, अंग में आभूषण धारण किए हुए और हाथ में पंखा लिए
हुए रमण करने की इच्छा से भरी हुई, रूप मनोहर और कोयल के समान
मधुर स्वर से गायन करने वाली, प्रियतम के मन को मोहित करने वाली, यौवन
मदमाती, हमेशा प्रसन्नचित्त रहने वाली, देशी नाम की रागनी का स्वरूप है ।

कुंदन के समान जिसका शरीर है, लाल साड़ी और श्वेत कंचुकी पहिने हुए है, कोकिला के समान सुन्दर स्वर वाली, भ्रमर के समान वन-कुंजों में कूज (गूँज) रही है, काम की प्रेरणा से प्रियतम को चाहती हुई अत्यन्त विह्वल होकर प्रिय मित्र की प्रतीक्षा कर रही है, इस प्रकार की कुमोदिनी नाम की रागनी है ।

प्रियतम के मन को हरण करने वाली, चित्त में चतुर और केशर के समान जिसका शरीर है, हंस की गति वाली, शरीर पर आभूषण और लाल रंग के वस्त्र पहिने हुए, हाथी की पीठ पर हाथ रखे हुए, साथ में सखियों का झुंड लिए हुए तथा निरंतर नाट्यशास्त्र की साधना करती हुई नट रागनी कहलाती है ।

जटा में गंगा रखती है, केशों की बांकी लटें शरीर पर लटक रही हैं, इस प्रकार मुनि के समान वेश धारण किये हुए, सुहावने रूप वाली, कमल के समान नेत्र वाली, कमर में साँप का जनेऊ डाले हुए, शरीर पर भस्म रमाए और ज्ञान में डूबी हुई, उत्तम मंत्र का उच्चारण करती हुई, इस प्रकार वन में बैठी हुई तथा चन्द्र के समान कान्तिवाली केदार नाम की रागनी है ।

कृष्णवर्ण जिसका शरीर तथा हाथ में खड्ग है, श्वेत वस्त्र पहिने हुए, दाएं हाथ में हाथीदांत लिए हुए, अंबरमणि अर्थात् मूर्य की पूजा करती है, कपाल में मलयगिरि चन्दन लगा हुआ, गले में पुष्प और केवड़ा की माला पहिने हुए, आंगन में खड़ी हुई वह शोभायमान वाला अट्टहास हंसती है, इन लक्षणों से युक्त कान्हड़ा नाम की रागनी है ॥ २२ ॥

अथ श्रीराग पंचरागनी नामा भेद—चौपाई.

मालसरी मारू शुभ नामा, धन्यासरी वसंत सु वामा ।

आसावरी युक्त यह जानी, श्रीराग के पंच मनमानी ॥ २३ ॥

मालसरी, मारू, धनासरी, वसंत और आसावरी ये पांच रागनियां श्रीराग की प्रेयसी कियां हैं ॥ २३ ॥

(१) मोतिया या बेले का फूल—कोई कूजा सतबर्ग चमेली, कोई कदम सुरस रस-बेली, (जायसी) कूजो, मरुको, मोगरो मिलि झूमक हो- (सुर) हिं-सा-वहपसिंह

अथ श्रीरागादि पंचरागनी स्वरूप शृंगारभेद-छंद नाराच.

मनोज के समान रूप वीन लीन पान है, फटीक माल कंठ धार माधुरी सु बान है. सरोज एक पान में संगीत भेद गावहीं, विराजमान कुंज वीच श्रीयसो कहावहीं. रसाल वृच्छ छांह में रहंत बैठ बालिका. अनूप रूप पानि ले धरंत पान आलिका. अरुन बास और पीत रंग अंगिया रहें, बिछोह कंथ पै हंसत मालश्री है कहैं. विराजितं संकेत ठौर सारियं लस जरी, धरे प्रसून भूषणं अनंग रंगसे भरी. सखी लखंत रीझ रीझ चुंबन कियो चहैं, सु बास साजितं किते सु मारु रागनी कहैं. विजोग मित लीन छीन छीन अंग न्है गही, उसास लेत आप अंसुआन की धुनी बही. विराज बोरश्री तरें बिलास आस की भरी, न कोऊ एक आपही उदान में घनासरी. मधूप गुंज आसपास साम अंग सोहितं, मयूर पिच्छ अंब मोर पानि मित मोहितं. बिलास हाव भाव के हुलास चित चाहनी, सु पेत बास काशमीर खोर सो बसंतनी. विराज बांग वृच्छ छांह सामही सदीर हैं, लपेट अंग नागनी सुपेत रंग हैं. प्रसून हार धारितं पटार भालमें भरी, सुरंज कंज आसपास रागनी आसावरी ॥ २४ ॥

कामदेव के समान अति सुन्दर रूप वाला, हाथ में वीणा लिए हुए, कंठ में स्फटिक मणि की माला पहिने, अत्यन्त मधुर वाणी से युक्त, एक हाथ में कमल फूल लिए संगीतभेद से गायन करता हुआ, कुंज में विराजमान श्री-राग कहा गया है ।

जो बाला रसाल आम्रवृक्ष के नीचे बैठी हुई है, अनुपम रूप वाली, अपनी प्रिय सखी के हाथ पर हाथ रख रक्खा है, शरीर पर लाल रंग का वस्त्र और पीले रंग की कंचुकी पहिने हुए है, पति का वियोग होते हुए भी हास्य करती है, इसे मालसरी नाम की रागनी कहते हैं ।

जो संकेतस्थल पर बैठी हुई है, जरी की साड़ी अति शोभायमान हो रही है, फूलों के अलं-कार पहिने हुए, काम रंग में डूबी हुई जैसी सखी को देखती है और चुंबन की इच्छा रखती है, अंग पर अनेक सुन्दर वस्त्र सजे हुए हैं, उसे मारु रागनी कहते हैं ।

प्रिय मित्र के वियोग से जो अति क्षीण हो गई है और उससे ले रही है, आँखों से आँसुओं की धारा ऐसी चल रही है मानो मेघधारा हो, मोलसिरी के वृत्त के नीचे विलास रमण की आशा से भरी हुई विराजमान है और ऐसे बरीचे में, जहाँ कोई नहीं है, अकेली बैठी है, यह धनाश्री रागनी है ।

जिसके आस पास भ्रमर गुंजार रहे हैं, इसी प्रकार जिसका श्याम रंग अति शोभायमान है, मोरपंख और आम के मोर हाथ में रखे हैं, मित्र को मोहित कर मन को आकर्षित करने वाली और अंग में केशर का लेप किए हुए बसंत रागनी है ।

बाग में शीतल वृत्त की छाया के नीचे विराजमान है, शरीर का वर्ण श्याम है, शरीर के चारों ओर नागिन लपेट रखी है, गले में फूलहार धारण किए हुए हैं, कपाल में मलयागिरि चंदन लगा रक्खा है, जिसके आसपास कुंज का सौरभ बिखर रहा है, ऐसी आसावरी रागनी है ॥ २४ ॥

अथ मेघ राग पंचरागनी नाम-चौपाई.

टंक मलार गुज्जरी नारी, पुनि भूपालो अति हितकारी ।

देसकार जुत पंच गनाई, मेघ रागहु के मन भाई ॥ २५ ॥

टंक, मलार, गुजरी, भूपाली और देशकार ये पांच दिनकारिणी राग-नियां मेघ राग की मनोहारिणी स्त्रियां हैं ॥ २५ ॥

अथ मेघाद्य रागनी स्वरूपशृंगार भेद-छंद मनहंस.

धरि छत्र राजत वीरमंडल साजहीं, वपु पीत श्याम मुखारविंद विरा-
जहीं. शिर चूडपानि कपान खोलत ही रहैं, महावीर बाहु बलिष्ट मेघ
तासे कहैं. बिछुरंत प्रीतम अंग बिलखी बाल है, रचि पोष सेज उसास
लेत बिसाल है. अन्य बाल देखत नीठ बोल लहंत हैं, नव रंग धरित दुक्क-
ल टंक कहंत हैं. अंग नैन कोकिल बन गौर सु रंग हैं, भरि नैन बिलखित
बाल बिछुरत संग हैं. तन छीन बास मलीन बीन सु धार हैं, निज
मितकी करमाल सोय मलार है. दस दोय आभन अंग सोर सिंगार है,
तनु कंचुकी छवि पीत आरुन सारहें. पर सेज बिलखित वाम छीन कटी

खरी, कर ताल गान रसाल बाल सु गूजरी. सेत बास सेत सिंगार
आनन चंद है, तनु गौर माधवि खोर उर आनंद है. निज भित कारख
पानि प्रोपन मालि है, निरखंत राह सुनाह यह भूपालि है. तन हेमरंग
रसाल मोतिन हार है, मुख चंदकी अनुहार चित्त सिंगार है. किय खोर
चंदन भाल मंद सु हासनि, यह देसकार कहंत कंत बिलासनि ॥ २६ ॥

जिसके माथे पर छत्र लगा है, शूरवीरों के मंडल में बैठा हुआ शोभाय-
मान है, जिसका शरीर पीत वर्ण और मुखारविन्द श्यामरंग है, माथे पर मुकट
और हाथ में नंगी तलवार है, महा शूरवीर तथा जिसके हाथ महाबलिष्ठ हैं,
उसे मेघ राग कहते हैं ।

प्रियतम के वियोग से दुःखित चित्त हो खेद करती हुई सुन्दर मेज सजा
उमके ऊपर उसासे भरती है, दूमरी सखियों को देखकर उन्हें अपने पास बुला
लेती है, शरीर पर नवरंगी तरह २ के वस्त्र पहिने हुए है, उसे टंक नाम की
रागनी कहते हैं ।

जिसकी मृगिणी के समान आंखें, कोयल के समान कंठस्वर और गौर
वर्ण शरीर है, आंखें आंमू से भरी हुई और बिछुड़े हुए पति के लिए खिन्न-
मस्तक है, शरीर दुर्बल, मैला वस्त्र और हाथ में वीणा धारण किए हुए है,
अपने पति के नाम की माला का जाप करती हुई मलार नाम की रागनी है ।

जिसके शरीर पर बारह आभूषण और सोलह शृंगार सजे हुए हैं, पीत
वर्ण की कंचुकी और लाल साड़ी पहिने हुए, पतली कमरवाली वह बाला
वियोग दुःख से दुःखित पलंग पर से एकदम खड़ी हो हाथ की ताल दे रसिक
गायन गाती है, ऐसी गुर्जरी नाम की रागनी है ।

सफेद वस्त्र और श्वेत मोतियों के आभूषण जिसने धारण किये हुए
हैं, चन्द्रमा के समान जिसका सुन्दर मुख है । गोरे शरीर पर मधु माधवी का
लेप कर मन में आनन्दित रहती है, अपने मित्र के लिए हाथ में जिसने फूल-
माला ले रखी है, ऐसी वह बाला अपने मित्र की बाट देख रही है, ऐसे
लक्षणवाली भूपाली रागनी है ।

सुन्दर और सुवर्णमय शरीर है, कंठ में मोतियों का हार पड़ा हुआ है, ऐसे आभूषण पहिने हुए जिससे चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रही है, कपाल पर चंदन लगा रक्खा है, मंद मंद हंसती हुई देशकार नाम की पातिविलास से प्रसन्नता उत्पन्न करती है ॥ २६ ॥

दोहा—तीस रागनी राग षट्, गावत गुनी बनाय ।

तब दस दोष बचावहीं, सो अब कहें सुनाय ॥ २७ ॥

इस प्रकार गुणिजन जब तीस रागनी व छः राग बनाकर गाते हैं तो उसे जिन दश दोषों से बचाते हैं उन्हें सुनाकर कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ दश दोषाभिधान—छप्पय.

प्रथम काकस्वर कहत, तालहीनहु सुरभंगह.

भू मुख ग्रीव डुलंत, और पुनि डोलत अंमह,

स्वरभेद न जानंत, और स्वर ग्रहत कपालहि.

समय बिना संगीत, राग उपजें न रसालहि,

दश दोष राग संगीत मत, गावत मुनी बचावहीं,

श्रोता प्रवीण तब सुख लहें, मंगन मौज स्र पावहीं ॥२८॥

पहिला—काकस्वर अर्थात् कव्वे के समान आवाज करना, दूसरा—तालहीन अर्थात् बेताल गाना, तीसरा—स्वरभंग जिसमें स्वर टूटता हो, चौथा—भौहें तानना,

(१) गोविन्द, गीताभाई ने छः राग और प्रत्येक की पांच २ रागनियें कही हैं, जो नारद, भरत, हनुमत आदि के मतानुसार हैं । सोमेरवर और ब्रह्म मतानुसार आज कल प्रचलित छः राग और प्रत्येक की छः २ रागनियें इस प्रकार हैं ।

श्रीराग की छियें—मालात्री, त्रिवेणी, गोरी, केदारी, मधुमाधवी और पाहाड़ी ।

वसंत राग की छियें—देवी, देवगौरी, वैराठी, टोडिका, जलित, हिंदोल ।

पञ्च राग की छियें—विभास, मृपाली, कर्णाटकी, पटहंसिका, मालवी, पटमंजरी ।

भैरव राग की छियें—भैरवी, बंगाली, सेन्धवी, रामकली, गुजरी, गुणकरी ।

मेघ राग की छियें—महारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गांधारी, हुशंगी ।

नट नारायण की छियें—कामोदी, कल्याणी, जामोरी, नाटिका, सारंगी, हम्मीरी, इस प्रकार छः राग और कुत्तीस रागनियें मानी हैं । हिं—स-पहपसिंह ।

पांचवां—मुख हिलाना, छठा—गरदन हिलाना, सातवां—दूसरे किसी अंग को हिलाना, आठवां—स्वर का भेद जानना, नववां—कपाली स्वर देना, दशवां—समय बिना गाना, इस प्रकार संगीत शास्त्र के जानने वाले गुणवान इन दश दोषों को बचाकर जो गाते हैं तो हे कलाप्रवीण ! गाने वाले और सुनने वाले दोनों ही सुखी होते हैं ॥ २८ ॥

अथ संगीत शास्त्रे कालानुमान भेद—छंद पद्धती.

सुचि अग्र कमलदल बेध काल, वरनंत ताय छिन बुधि विसाल.
वसु छिन मिलंत इक लव वदंत, लव अष्ट एक काष्टा कहंत.
काष्टा सु अष्ट एकहि निमेष, आठहु निमेष इक कला लेख.
द्वै कला एक त्रुटी बखानि, द्वै त्रुटिक एक अनु तास जानि.
अनु द्वै मिलंत द्रुत एक होय, जुग द्रुत जुरंत लघु कहत सोय.
लघु द्वै मिलंत गुरु कहें तास, त्रै लघु पुलीत कीन्हें प्रकाश.
लघु चत्र चत्रमुख कहत ताय, संगीत काल बरणे बनाय ॥ २९ ॥

सुई की नोक से कमल-दल के छेदने में जितना समय लगता है उसे विशाल बुद्धि वाले क्षण कहते हैं, ऐसे आठ क्षण मिलने से जो समय बनता है उसे लव कहते हैं, ऐसे आठ लव को एक काष्टा कहते हैं, ऐसे आठ काष्टा का एक निमेष होता है और आठ निमेष का एक कला, दो कला की एक भूटी और दो भूटी का एक अणु होता है । दो अणु के मिलने से द्रुत बनता है, दो द्रुत का एक लघु कहते हैं । दो लघु मिलने से गुरु कहलाता है और तीन लघु मिलने से प्लुत कहा जाता है तथा इकट्ठे चार लघु के मिलने से चतुर्मुखी कहा जाता है । इस प्रकार संगीत के काल का वर्णन किया गया है ॥ २९ ॥

अथ अनुभेदोत्पत्ति स्वामी कथन—छंद सिंह.

अनु उद्भव मारुत चंद्रपती, द्रुत भो जल शंकर की जुरती.
द्रुपही जु विराम बही सु गती, प्रगटे धन मारुत कंद जती.
लघु पावक ते भये देवि कला, लघु त्राम जलभि सु जीवबला.

गुरु अंबर है पति शेष तिन्हें, प्लुत भोम हरी हर ब्रह्म गिने.
मुख चत्र विधी भये स्वामिविधी, यह भेद उचारतहै प्रसिधी ॥ ३० ॥

अणु की उत्पत्ति पवन से है और उसका स्वामी चंद्रमा है, जल से द्रुत की उत्पत्ति हुई है और उसका स्वामी शंकर है, द्रुत विराम की उत्पत्ति वर्षा-ऋतु के पवन से है और उसका देवता कार्तिकेय है, अग्नि से लघु की उत्पत्ति और उसका देवता देवी है, पाणी से लघु विराम की उत्पत्ति और उसका स्वामी अग्नि है, गुरु की उत्पत्ति आकाश से और उसका स्वामी शेष है, पृथ्वी से प्लुत की उत्पत्ति और हरीहर तथा ब्रह्माण ये तीन इस के देवता हैं, ब्रह्म से चतुर्मुख की उत्पत्ति हुई और उसका स्वामी भी ब्रह्मा ही है, इस प्रकार से इन भेदों का विचार किया गया है ॥ ३० ॥

दोहा—छिन सु आदि त्रुटि अंतलों, या मधि सुच्छम रूप ।

ताके उचरन होत नहिं, बातें रहे विलूप ॥ ३१ ॥

क्षण से प्रारंभ करके त्रुटि अंततक मूर्ध्मरूप रहता है उसका उच्चारण नहीं हो सकता इसलिये वह गुप्त रहता है ॥ ३१ ॥

अनू आदि दे रूप जो, ताका होत उचार ।

उनकी संज्ञा को कहैं, जंतु शब्द विस्तार ॥ ३२ ॥

अणु आदि जितने रूप हैं उनकी संज्ञा समझने के लिये जिन जंतुओं के उच्चारण के समान वे हैं वह अब कहे जाते हैं ॥ ३२ ॥

अथ जंतु शब्द संज्ञा भेद-छप्पय.

अनु तीतर उचार, चटक द्रुत बानी जानो.
द्रुत विराम बक शब्द, चक्रवाकह लघु ठानो.
लघु विराम पिक बोल, गुरु बायस बानी रुख.
कुक्कुट प्लुत कहंत, वचन केकी चत्रहमुख.
यह विधि उचार बरने सकल, तिहि मिल ताल कहे गुनी.
अनेक भेद तालन भयो, सो प्रवीन ग्रंथन सुनी.

तीतर के समान अणु का उच्चारण है, द्रुत का उच्चारण चटक के समान समझना, बगुला के समान द्रुत विराम का उच्चारण है, चकवा के समान लघु का उच्चारण है और लघु विराम का उच्चारण कोयल के समान मधुर है, इसी प्रकार गुरु की वाणी काग के समान छटा वाली है, कुकट के समान प्लुत का उच्चारण कहा गया है और मोर की बोली के समान चतुर्मुख की वाणी है, इस प्रकार सब के उच्चारण बतलाये गये हैं, इन्हीं उच्चारणों के मिलने से गुणि-जनों की परिभाषा में ताल कहे जाते हैं जिनके अनेक भेद होते हैं और जिन्हें कलाप्रवीण तुमने संगीत विद्या के ग्रंथों में सुना होगा ॥ ३३ ॥

* दोहा—अनु आदिक उच्चार गति, आवृत ताल अनंत ।

सोर मुख्य संगीत में, तिहि अभिधान कहंत ॥ ३४ ॥

अणु आदि के उच्चारण गति की आवृत्ति से अनेक ताल बनते हैं, परन्तु संगीत शास्त्र में मुख्य १६ ताल कहे गये हैं ॥ ३४ ॥

अथ ताल कालाभिधान—छप्पय.

एकताल लघुशेष, जेतलइह त्योंरा कहि,

सुर साम अरु जंप, प्रीतमठ जयमंगल बहि.

ब्रह्म लच्छमि भेद, कनकमेरु मिश्रहवृत,

कुंभ सु रायभयंक, और पताल कुंडलन.

* नोट—संगीत के ग्रंथों में ताल दो तरह के माने हैं—मार्ग और देशी, भरतमुनी के मत से मार्ग ६० हैं—चंचलपुट, चातपुट, षट्पितापुत्रक, उद्घट्टक, सन्निपात, कंकण, कोकिलास्त्र, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचिप्रिया, पावतीलोचन, राजचूडामणि, जयश्री, वादवाकुल, कंदर्प, नलकूवर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपृति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजजलील, चर्चरी, कुहक, विजयानन्द, वीरविक्रम, टैंगिक, रंगामरण, श्रीकीर्ति, वनमाली, चतुर्मुख, सिंहनन्दन, नंदिस, चन्द्रविंश, द्वितीयक, जयमंगल, गंधर्व, मकरंद, त्रिभंगी, रतिताल, वसंत, जगन्मय, गारुडी, कविशेखर, घोष, हवल्लभ, भैरव, गतप्रयागत, मल्लताली, भैरवमस्तक, सरस्वतीकंठाभरण, क्रीडा, निःसारु, मुक्तावली, रंगराज, भरतानन्द, आदितालक, संपर्केष्टक। इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाये हैं। इन तालों के नामों में भिन्न ग्रंथों की विभिन्नता देखी जाती है। इन नामों में से आज कल थोड़े नाम प्रचलित हैं।

हिं—(पहपसिंह)

यह सोर ताल आदिक कहे, गान नाद नाटिक सु गत ।

विश्राम तास चत्र काल कहि, समहि विषम आगत अतीत ॥ ३५ ॥

एकताल, लघुशेष, जेतलज्ञ, त्योरां, सुर, साम, मंष, प्रितमठ, जयमंगल, ब्रह्म, लक्ष्मी, कनकमेरु, मिश्रवृत्त, कुंभ, रायभयंक और पाताल कुंडल, यह १६ ताल मुख्य कहे गये हैं, गाने में और नाटक की गति में विश्राम के लिये सम, विषम, आगम और अतीत ये चार कालक्रम हैं ॥ ३५ ॥

दोहा—यह गायन संगीत गति, सुच्छम कही सुनाय ।

तिहि प्रवीन सनमान किय, भूषण बसन बनाय ॥ ३६ ॥

गायनकार कोकिला और चातुकि नाम की नायिकाओं ने संगीत शास्त्र की गति को इस प्रकार संक्षेप से कह सुनाया जिससे कलाप्रवीण अति प्रसन्न हुई और उनका वस्त्र आभूषण से सत्कार किया ॥ ३६ ॥

गाथा—गायन कलाप्रवीणं, चरचा राग रागनी भेदं ।

ताल काल अनुमानं, सत्र प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३७ ॥

कलाप्रवीण के पास की हुई राग रागिनियों के भेद की चर्चा ताल तथा काल और उनके अनुमान सम्बन्धी वर्णन की यह प्रवीणसागर की सत्रहवीं लहर पूरी हुई ॥ ३७ ॥



लहर १८ मी

अथ कलाप्रवीण गायनचर्चा प्रसंग-दोहा.

एक समय एकांत प्रति, बैठी कलाप्रवीण ।

चित्त चढ़ी सागर छबी, कीन्हें कवित नवीन ॥ १ ॥

एक समय एकांत स्थान में कलाप्रवीण बैठी हुई थी उस समय राजकुमार रससागर की छवि चित्त में समाए हुए होने से उसने इस प्रकार नवीन कवित्त की रचना की ॥ १ ॥

अथ अलंकार जातिस्वभाव प्रवीनोक्त कवित्त यथा ।

कटि फेंट छोरन में, अकुटी मरोरन में, सीसपेंच तोरन में, अति उरझायके; मंद मंद हांसन में, बरुनी बिलासन में, आनन उजासन में, चकाचौंध छायके; मोती मणि मालन में, सोसनी दुसालन में, चिकुटी के तालन में, चेटक लगायके; प्रेम बान देगयो, न जानिये किते गयो, सुपंथी मन लेगयो, झरोखे द्रग लायके ॥ २ ॥

कमर में लपटे हुए सुन्दर कमरबन्द के छोर में, अकुटी के टेढ़ेपन में और सिरपेच के चमचमाते हुए तोरण में, अत्यन्त फंसाकर, स्मित हास्य में, पलकों के विलास में और मुख के प्रकाश में चकाचौंध करके, मोती और मणियों की माला में, सोसनी रंग के दुशाला में और चुटकी के तालों में झुरकी डाल कर प्रेमबाण मार गया । मैं जानती नहीं कि वह कहाँ गया, परन्तु वह पथिक झरोखा में नजर फेंककर मेरा मन चुरा लेगया ॥ २ ॥

अलंकार उपमा कवित्त.

सुगंध समीर जैसे, हंस बार झीर जैसे, भू जल मिहीर जैसे, मयूरी चढ़ायके; पारद कुमारि जैसे, हरी स्वांत धार जैसे, अंग्र एनसार जैसे, धूम उरझायके; उक्ती एकदंत जैसे, शुद्ध बोध संत जैसे, मित बात मित जैसे, सैनन जनायके; प्रेम बान देगयो, न जानिये किते गयो, सुपंथी मन लेगयो, झरोखे द्रग लायके ॥ ३ ॥

सुगंध को जिस प्रकार पवन, पानी मिले हुए दूध में से दूध को जैसे हंस, पृथ्वी के ऊपर के जल को जैसे सूर्य की किरणें *, पारद को जिस प्रकार कुमारी, स्वांति-बूंद को जैसे पपीहा, अम्बर के धूँझ को जैसे कस्तूरी, महाकवि व्यास की वाणी को जैसे गणपति, आत्मज्ञान के उपदेश को जिस प्रकार संतजन और मित्र की बात को जिस प्रकार मित्र इशारे से ही ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार प्रेमबाण मारकर जाने वाले को मैं नहीं जानती कि वह कहाँ गया, परन्तु वह चितचोर पथिक झरोखा में नजर डाल मेरा मन हर लेगया ॥ ३ ॥

अलंकार उपमा कवित्त.

अह खगगाज जैसे, चिरियां सु बाज जैसे, केसरी सु गाज जैसे, प्राण निकासायके; जलचर भवाह जैसे, मीन मीनहाह जैसे, कीर पंखग्राह जैसे, फंद उरभायके; भागीरथ गंग जैसे, घंटिक कुरंग जैसे, कुहिया कुलंग जैसे, भूतल भ्रमायके; प्रेम बान देगयो, न जानिये किते गयो, सुपंथी मन लेगयो, झरोखे द्रग लायके ॥ ४ ॥

सांप को जैसे गरुड़, पक्षी को जैसे बाज, सिंह के प्राण को जैसे मेघ की गर्जना, जलचरों को जैसे मगरमच्छ, मछली को जैसे मछुवाहा और सुवे को जैसे व्याध फंदे में फंसाता है । गंगा को जैसे भागीरथ, हिरण को जैसे बंरिणा बजाने वाला शिकारी और कुलंग को कुहिया जिस प्रकार पृथ्वी पर फिरा करके पकड़ लेता है उसी प्रकार वह प्रेमबाण मारकर जाता रहा, परन्तु मैं नहीं जानती कि मेरे हृदय में धंसा हुआ वह चतुर पथिक कहाँ गया, झरोखे में दृष्टि डालकर वह मेरा मन हर लेगया ॥ ४ ॥

दोहा—प्रेम बीज परवीन उर, ठंप्पित तृपा सु धूर ।

जोवन घन बरसत फुहीं, उदय कवित अंकूर ॥ ५ ॥

* यहां पर गुजराती टीकाकार ने 'पृथ्वी ऊपरना पाणी ने जेम कुंवारी खी' अर्थ किया है, परन्तु 'मिहिर' शब्द का अर्थ कुमारी खी नहीं हो सकता । ज्ञात होता है कि 'पारद कुमारी' जैसे, पद को मिला दिया और मानो टीकाकार की समझ में या छापे की भूल से ऐसा हुआ है । शुद्ध अर्थ यही प्रवीण होता है । (पदपसिंह)

पहिले कुमार रससागर की छवि को झरोखे में से देखने से कलाप्रवीण के हृदय में जो प्रेमरूपी बीज पड़ा था वह लज्जारूपी धूल से ढक गया था, परन्तु अब युवावस्थारूपी वर्षा आने से उस बीज में से उपरोक्त तीन कवित्त रूपी अंकुर निकल आये ॥ ५ ॥

छिन बिसरत उर चढ़त छिन, वह रससागर ध्यान ।

एक समय आमंत्रि अलि, कीन्हों कुमरि दिवान ॥ ६ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण क्षण में रससागर का ध्यान भूल जाती है और दूसरे क्षण में फिर वही चिंतन करने लगती है । इस अवस्था में उसने अपनी महोलियों को आमंत्रित कर एक दिन मभा की ॥ ६ ॥

अथ कलाप्रवीण कुमारिका मंडलवर्णन—छंद पद्वरी.

दिस दिस दरीच सतखन दिवाल, शारद उमंड मनु मेघ माल ।
चांदनी चौक रचि चित्रकार, श्रीखंड साख खोलित दुहार ॥
प्रति द्वार द्वार दरियच उसीर, पट भीन मीन माधवी नीर ।
सुखरा सु खंभ सोभा लसंत, कंचन लिखाव कंगुरन कंत ॥
आंगन अनूप छवि फटिक बंध, मारुत सु मंद शीतल सुगंध ।
जरकस दिवालगीरी भुंकंत, कुंदन सु पाट आसन उनंत ॥
विध विध विचित्र गेलम विछाय, उत बालजूथ बैठे सो आय ।
सिंहासन सु कुमरी प्रवीण, सहचरी गिरद सामान लीन ॥
कर काशमीर कुमकुम गुलाब, अरगजा अत्र भृगसार डाव ।
किहि कर कपूर चंदन बिजून, मालती कुंद चंपक प्रसून ॥
फलजाय जायपत्री सुजान, त्रिकुटी लवंग पुंगी सु पान ।
मणिजटित शीश परबीन छत्र, जग पासवान ठाढ़ी सु तत्र ॥
कर चमर लीन सहिविध सजान, बोलंत आस आशिषा वान ।
सब राय कुमरि वय कुल समान, शुभ रूप बास भूषण विधान ॥
केसर कसब कौसेय चेल, सित असित नील जरकसित बेल ।
भूषण सु नीक मानिक वरित्र, पीरोज मर्क पाने बिचित्र ॥

किं दीपदान हिलवी हजार, प्रति द्वार द्वार किंगुर किनार ।
 राजंत राजमंडल कुमार, उपमा सुरी सु सुर पति आगार ॥
 चंचला कुंड मंडलीय चंद, चांदनी चक्र मोहनीय फंद ।
 ललना विचित्र आभा लसंत, कैलास कुंज फूलित वसंत ॥
 गायका उभै साधंत गान, नायका नाटकी भेद आन ॥ ७ ॥

दिशा दिशा में द्वार और सैकड़ों खंड वाले महल की दीवारें ऐसी दीखती हैं मानो शरद ऋतु के श्वेत मेघ की घटा चढ़ी हों, चौक में अनेक प्रकार के चित्रवाली चांदनी बिछी है, मलयागिरि चंदन के किवाड़ों वाले द्वार खुले हुए हैं और हर एक द्वार पर शीतल तथा सुगंधमय खस की टट्टियां लगी हुई हैं जिनके ऊपर मधु माधवी के सुगंधित जल से भीगे हुए वारीक वस्त्र उनपर पड़े हुए हैं, बीच में सुंदर नक्सीदार खंभा विद्यमान है जिसके बारीक कंगूरे सुवर्ण के समान दिखाई पड़ते हैं, स्फटिक जड़े हुए आंगन की शोभा अनुपम दिखाई पड़ती है, वहां शीतल मंद सुगंधमय स्वच्छ पवन के झकोरे आते हैं, चमचमाती हुई सुनहरी और रूपहरी दीवारगीरें झलझला रही हैं, चौक में सोने की चौकी तथा ऊंचा सिंहासन बिछा हुआ है, विविध चित्रों से चित्रित गलीचा बिछा हुआ है, जिसपर बालाओं का यूथ और सिंहासन पर कुमारी कलाप्रवीण विराजमान हुईं । सहचरियां भांति भांति की सामग्रियां लेकर कलाप्रवीण को चारों तरफ से घेर कर खड़ी होगईं, किसी के हाथ में केशर है, किसी के चंदन, किसी के गुलाबजल से भरी हुई गुलाबदानी है, किसी ने इतर, अरगजा और कस्तूरी ले रखी है तो कोई कर्पूर आदि के पात्र और पंखा लिये हुए है, कइयों के हाथों में मालतीकुंद और चंपक के फूल हैं तो कितनों के हाथ में जायफल, जावित्री, इलायची, लौंग, सुपारी और पान का डिब्बा शोभायमान है । राजकुमारी कलाप्रवीण के मस्तक पर मणिजडित छत्र सुशोभित है, दो दासियां हाथ में चमर ले राजकुमारी को पवन झुला रही हैं तथा खमा खम्म (चमा चमा) का उच्चारण करती हैं । वहां एकत्रित हुई सब राजकुमारियों की अवस्था समान है तथा शोभायमान सुंदर वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं जिसमें उन कमलांगियों के शरीर अधिक दिव्यमान हो रहे हैं । केसरी, कुसुंबी, श्वेत रेशमी, काला, नीला, जरीके बेल बूटों वाले वस्त्र

तथा अमूल्य मणि माणिक और फिरोजी रंग के मर्कत और पान से जड़े हुए अनेक प्रकार के आभूषण पहिने हुए हैं। सहस्रों प्रकाशमय हांडी और गिलास के झूमके द्वार द्वार पर तथा कंगूरों के किनारे पर चमचमा रहे हैं उस समय कुमारी का मंडल ऐसा शोभायमान है मानो इंद्र के भुवन में देवांगणायें बैठी हों, अथवा चपला (बिजली) का तेजोमंडल अथवा चन्द्रमंडल शोभायमान है। प्रकाशमय चौक में बैठा हुआ वह मंडल मानो जगत् में मोह उत्पन्न करने का जाल फैलाया हो इस प्रकार उन ललनाओं की कांति विचित्र तरह से सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों बसंत ऋतु में कैलाश पर्वत पर वाटिका खिल रही हो जहां कोकिला और चातुकि दोनों गायिकायें नायिका तथा नाटक के भेदों से युक्त गायन कर रही हैं ॥ ७ ॥

छप्पय-राजसुता आवर्त, कला परवीन विराजे ।

नृत्य भेद नाटकी, बीन मृदंग सु बाजे ॥

छये रंग रति पुंज, मधुप गुंजत सुवास बस ।

हिलख कुभ भरि पात्र, सबें अचवत आसव रस ॥

हुल्लास कला परवीन हुआ, नेह नवल हिय लायहित ।

गायन बुलाय लीन्हें निकट, शिष्य भेद भंषे कवित ॥ ८ ॥

इस प्रकार राजकुमारियों से घिरी हुई कलाप्रवीण विराजमान है और नाटक की शैली अनुसार नृत्य हो रहा है, बीणा और मृदंग सुंदर स्वर से बज रहे हैं जिससे वहां रस रंग छलक रहा है सुगंधमय पदार्थों के सुवास से भ्रमर गुंजार रहे हैं ऐसे अति आनंदजनक समय में सब राजकुमारियां कांच के पात्रों में से ले लेकर मधुरस पान करती हैं उस समय राजकुमार रससागर के प्रति नवल स्नेह को चित्त में ले अत्यंत उमंग के साथ कलाप्रवीण ने उन गायन करने वाली कोकिला और चातुकि दोनों नायिकाओं को प्यार से अपने पास बुला गुरु शिष्य की भांति अपने रचे हुए तीनों कवित्त सुनाये ॥ ८ ॥

चौपाई-कलाप्रवीण कवित्त सिखाये, गायन राग रूप गृह गाये ।

फेर प्रवीणकला यह झुझी, गायन प्रश्न बोली यह झुझी ॥

किते महोर मृदंग सु बज्जे, जापरि नृत्य नाटिक सज्जे ।

जो नायका नृत्य गति लावे, कौन भेद अभिधान कहावे ॥ ९ ॥

कलाप्रवीण ने जो कवित्त सिखाया उन्हें नायिकाओं ने राग के रूप में गा सुनाया, फिर कलाप्रवीण ने गायिकाओं को बुलाकर यह प्रश्न पूछा कि मृदंग कितने प्रकार से बजता है कि जिसपर नाटककार नृत्य करते हैं और नायिकायें जो नृत्य की गति ले आती हैं उनके भेद और नाम क्या हैं ॥ ९ ॥

अथ गायनोक्त मृदंग मोहोरा भेद-दोहा.

गज संयम हनुमंत अरु, चत्र मलार जुत जान ।

आठ द्वादश आठ २ उकति, बाजत महोर भिधान ॥ १० ॥

गज, संयम, हनुमंत और चत्रमलार ये चार भेद हैं, आठ गज के, बारह संयम के, आठ हनुमंत के और आठ चत्रमलार के महोर से मृदंग बजता है ॥ १० ॥

अथ नृत्य भेदाभिधान-छप्पय.

आद्यक्षग कवाट, गतागत भेद सु जाने ।

सर्वतोमुख जमक, और अमृत गति आने ॥

सिंहावलोकन पर्न, भेद नव समह दून भनि ।

तान मान द्वै भेद, खंड नव भेद और गनि ॥

गति भेदयुक्त चत्रदश भये, नाटिकलावत नृत्य हैं ।

परवीन भेद औरें पृथक्, तुम जानत कहा हम कहैं ॥ ११ ॥

आद्यक्षरा, कवाट, गतागत, सर्वतोमुख, यमक, अमृतगति, सिंहावलोकन, पर्न, नवसह, दून, तान, मान, खंडनव और गतिभेद ये चौदह भेद हैं जिसके अनुसार नाटककार नृत्य करते हैं। हे कलाप्रवीण ! और भी पृथक् २ इनके भेद हैं जिन्हें आप जानती हैं इस वास्ते क्या कहैं ॥ ११ ॥

दोहा-बूभे कलाप्रवीणजू, कहे सु गायन लच्छ ।

नाटिकशाला नृत्य महि, किये भेद परतच्छ ॥ १२ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण ने जो २ पूछा उन नायिकाओं ने सब भेद बतलाये और नाटकशाला में नृत्य करके प्रत्यक्ष भी बतला दिया ॥ १२ ॥

वह समयो बीतो सुभग, नाटक करत बिहान ।

उठि कुमारि निज गृह गई, दिये रीझवत दान ॥ १३ ॥

इस प्रकार से नाटक के राग रंग में वह समय बीता और राजकुमारी प्रसन्नता के अनुसार उन्हें पारितोषिक दे अपने महल को गई ॥ १३ ॥

गायन कलाप्रवीणजू, इहि विधि करत हुलास ।

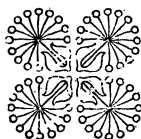
हय फंदन भूषण बकासि, बिदा कीय षटमास ॥ १४ ॥

कोकिला और चातकी नायिकायें और राजकुमारी कलाप्रवीण इस प्रकार आनन्द विलास करती हुई प्रतिदिन नृत्य और संगीत के भेद की चर्चा में छः मास बिता दिये, फिर राजकुमारी ने नायिकाओं को छोड़ा, रथ और अनेक अलंकार पारितोषिक में देकर बिदा किया ॥ १४ ॥

गाहा-मंडलि कलाप्रवीणे, नाटिक भेद मुरज गति मोहोरं ।

अष्टादश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १५ ॥

कलाप्रवीण की मंडली का वर्णन, नाटक के भेद और मृदंग के मोहरा की चर्चा वाली प्रवीणसागर की यह अठारहवीं लहर पूरी हुई ॥ १५ ॥



लहर १६ वीं ।

अथ गायन नेहनगर आगमन प्रसंगो यथा-दोहा.

कलाप्रवीण इनाम दिष, गायन विद्या कीन ।

सोय चली सोराठ धर, नेहनग्र पथ लीन ॥ १ ॥

कोकिला और चातकी नायिकाओं ने कलाप्रवीण से इनाम व विदाई प्राप्त कर सोराठ देश की भूमि की ओर नेहनगर का मार्ग लिया ॥ १ ॥

छप्पय-चलत दोस दस बीस, नेहनग्र पुर पुगिय ।

अटा सोघ एकंत, ठोर तिहि अवमोचन किय ॥

नाम धाम निरधार, कारबारी सु कहायो ।

खान पान सामान, राजद्वारहुं से आयो ॥

प्रविसंत राज संध्या समय, गान करत संगीत गत ।

रीफे सु राग चंद्रकला, गायन कीन विलंब तित ॥ २ ॥

दस बीस दिन चलकर नेहनगर आ पहुंची और वहां एकांत अटारी ढूँढकर उतारा (डेर) किया । अपना नाम धाम वगैरह का समाचार राज्य कारबारी (मु-साहिब) के पास लिख भेजा और राज्य से उनके लिए खानपान आदि का सामान आया, खानपान से निहत होकर संध्या समय राजद्वार में जाकर अंतःपुर में संगीत शास्त्र के अनुसार गाना किया जिससे महाराणी चन्द्रकला उनके ऊपर अति प्रसन्न हुई और उन्हें वहां रहने की आज्ञा दी ॥ २ ॥

दोहा-राजवधू रीफे सकल, गायन गान सु तान ।

चंद्रकला सु सराह किय, सुनी सु सागर कान ॥ ३ ॥

नायिकाओं के गाने से राजवधू केवल प्रसन्न ही नहीं हुई प्रत्युत चन्द्रकला ने उनकी तारीफ रससागर से की ॥ ३ ॥

छप्पय-अतु बसंत मधु मास, चंद्र पूरन परकाशीत ।

सौध भोमि तीसरी, कीन चांदनी बिछावत ॥

रससागर शशिकला, सकल आभूषण साजे ।

कादंबरी अचवंत, बड़े उच्छाह विराजे ॥

दस बीस पासवान सुपृथक, नजर बेग ठाढ़ी रही ।

महाराज चित गायन चढ़ी, उन प्रति पठवन की कही ॥ ४ ॥

वसंत ऋतु चैत्र मास की शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा का पूर्ण प्रकाश हो रहा है, उस समय महल के तीसरे मंजिल पर बिछे हुए गलीचे पर सफेद चांदनी फैली हुई है उस पर कुमार रससागर और चन्द्रकला सर्व अलंकार धारण किए हुए मद्यपान करते हुए अति उत्साहसे वहां विराज रहे हैं और दस बीस दासियां थोड़ी दूरी पर खड़ी हैं, उस समय महाराज ने नायिकाओं की याद आते ही उन्हें बुलाने का हुक्म दिया ॥ ४ ॥

दोहा—लहि आयस चेरी चली, आई गायन थान ।

कहि कोकिला चातुकी, ईश बुलावन वान ॥ ५ ॥

आज्ञा लेकर दासी चली और नायिकाओं के उतारे (डेरे) पर आकर कोकिला और चातुकी को महाराज के बुलाने का समाचार कहा ॥ ५ ॥

हुकुम पाय गायन उभै, चली सु चेरी संग ।

उनकी उभै सु किंकरी, लीन्हें बीन मृदंग ॥ ६ ॥

राजहुक्म सुनते ही दोनों गणिकाएं दासी के साथ चल पड़ीं । उनके साथ उनकी किंकरियों ने भी बीणा और मृदंग लेकर प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

छंद पद्धती.

गायका आई महाराज धाम, तीसरी भूमि लीन्हीं सलाम ।

बैठी सु राज सासना लीन, सुर तार कोन मृदंग बीन ॥

संगीत रीत समये प्रमाण, रागनी राग गाये सुतान ।

महाराज कीन आयसा राग, बोलो वसंत जंगल बिहाग ॥

कानरा शुद्ध गाओ सु फेर, कहि पासवान गायका ढेर ।

वह घरी एह समयो व्रतंत, तरु तरु भये स्र थिर जीव जंत ॥

आयो सु चंद आधे अकास, चांदनी जोति चहुंदिश प्रकाश ।
 दूसरे प्रहर धरियार बग्य, तीसरे जाम पहिहात जग्य ॥
 निसिचर परंद साधन्त सोर, बिधु बिब हेर उलटे चकोर ।
 मधु घुराफि कंजकुमुदनि विकास, शीतल समीर मिलयत सुवास ॥
 नभ सौध सटा उज्ज्वल लखंत, घनसार सघन मानहु व्रषंत ।
 श्रीखंड किशौ पै दाधि फुंहार, कैलास अंग गंगा सु धार ॥
 महाराज मुदित मद मद्यपान, समयो पिछान गायन सयान ।
 वाजित चढ़ाय नृप कारि सलाम, सात में सुरह तीसरे ग्राम ॥
 आलाप बीन मरदंग गाज, अच्छर उचार सुरपति समाज ।
 आयस प्रमाण रागनी गाय, महाराज कुमार लीन्हें रिहाय ॥ ७ ॥

इस प्रकार वे दोनों वारांगनाएं महाराज के महल में आकर तीसरे मंजिल पर, जहां महाराज भी विराजमान थे, पहुंचीं और मुजरा करके महाराज की आज्ञा पाकर बैठीं । मृदंग और मारंगी पर खर मिलाकर संगीत के नियमानुसार समय के अनुसार टप्पा सहित राग रागनी के गायन सुनाये । उसे सुन कर महाराज ने वसंत, जंगला और विहाग राग और फिर शुद्ध कान्हड़ा गाने की आज्ञा दासी के द्वारा दी । उस समय वृक्षों पर पक्षी स्थिर हो रहे थे, चन्द्रमा भी मध्य आकाश में स्थित था । चारों ओर चंद्रिका प्रसर रही थी । दूसरे प्रहर की घड़ियाल बजने से चौकी पहर वाले जग गए । रात्रि में फिरने वाले पशु पक्षी शोर गुल करने लग गए । चकोर पक्षी चन्द्रबिम्ब को देखकर स्नेह से उठने लगा । सूर्यप्रकाशी कमल, भंवरा सहित बन्द हो रहा है, चन्द्रप्रकाशी कमल (कमलिनी) प्रफुल्लित हो रहा है ॥ सुगंधयुक्त शीतल पवन चलने लगी । गगनचुंबी धवल राजभवन ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो मेघमंडल में मे कपूर की वर्षा हो रही हो, अथवा चन्दन का पर्वत शोभित हो किंवा क्षीर-समुद्र में से उज्ज्वल फौवारा उठ रहा हो या कैलाश पर्वत से गंगा की धारा पड़ रही हो । महाराज सय के तरंग में मग्न हो रहे हैं । उस समय नायिकाओं ने समय देखकर बाघों को मिला महाराज को अभिवादन कर सातवें

स्वर और तीसरे ग्राम में अलाप लगा गायन करने लगीं और मृदंग बजने लगा, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो देवराज इन्द्र की सभा में अप्सराओं का गाना हो रहा हो । इस प्रकार आज्ञानुसार राग रागनियां गाकर महाराज को प्रसन्न किया ॥ ७ ॥

दोहा-गायो कवित वसंत में, विष्णु पद सु विहाग ।

गायन निज वानी सू मर्हि, गायो जंगल राग ॥ ८ ॥

रागिकाओं ने वसंत राग में कवित गाकर विष्णु पद से विहाग राग को गाया फिर स्वभाषा (पंजाबी) में जंगल राग गाया ॥ ८ ॥

अथ वह गायनोक्त शब्दोदाहरणं, अलंकार समरूपक-कवित्त.

तरु नवपल्लव के, कलम कलीन कारि, लेखक अनंग गति, मधुकर साजकी।
माधवी प्रसून मोर, किंशुकन सही कीन्हीं, रजरो परागः दीन्हीं सुकन
समाज की. कोकिला सुकीर मोर. बांचत बरन भेद, मिलहु मिलहु जन,
विरही अवाजकी, चलिये प्रवीण पौन. त्रिविध बराती लायो, वाती मुनियें
जु आई, पाती रितुराज की ॥ ९ ॥

वृक्षों के नवीन पल्लवरूपी कागज पर कमल कली की कलम से कामदेव लेखक भ्रमररूपी अक्षर लिखने की सामग्री की । वह इस प्रकार कि माधवी के फूल, आम के मोर और केसू की स्याही बनाकर भंवरा रूपी अक्षर लिखा और उसके सुगंध के लिए परागरूपी रज डाली । उसे कोयल, तोता और मोर प्रकट रूप में दीर्घ स्वर से उच्चारण करते हैं, वह इस प्रकार कि वियोगी जनो ! मिलो मिलो, अर्थात् एकत्रित होओ मानो ऐसा कह रहे हैं कि हे चतुर जनो ! देखो शीतल मंद सुगंध पवन रूपी बराती वसंत ऋतु की लगनपत्रिका लेकर आए हैं, उनकी बात सुनो ॥ ९ ॥

दोहा-सुरभी चारत बन मुन्यो, नारायण मुख नाम ।

सो बसुरी से बावरो, कीन्हीं गोकुल गाम ॥ १० ॥

वन में गायें चराते हुए नारायण (कृष्ण) के मुख से जो नाम बांसुरी

में सुना उस बांसुरी से गोकुल ग्राम को बावला (दीवाना) कर दिया * ॥१०॥

अथ विहागोक्त विष्णु पद अलंकार विनोदोक्ती.

कान्हा तेरी कछुयक मुरली में कारन, वृन्दावन में मधुर बजाई शरद चंद
उजियारन । श्रवण सुनत विनता सुधि भूली, द्रग भरि आये बारन, ब्रज
सिगरोह भयो है बावरो धुनि में लगी है धारन । सागर एह सनेह भरी है
राधे राधे उचारन ॥ ११ ॥

हे कृष्ण ! तेरी मुरली में क्या कगमात है कि वृन्दावन में शरदचन्द्र के
प्रकाश में मधुर स्वर से जो मुरली बजाई तो उसके स्वर को सुनते ही ब्रज की
स्त्रियां सुध बुध भूल गई, उनकी आंखों में आंसू भर आया । सारा ब्रज दीवाना
हो गया । सबकी धारणशक्ति उस मुरली की ध्वनि में लुप्त हो गई और स्नेह-
सागर से भरकर राधा २ उच्चारण करती हैं । अथवा हे सागर ! ये स्नेह में
भरी हुई हैं और राधा २ पुकार रही हैं ॥ ११ ॥

जंगलोक्त पंजाबी ख्याल यथा.

वो मितनुं बोहोराइ अंखियां, दरमदा दारू प्याला पाया तादिन से तल-
खीयां । पल बिछुरन से कल न परत है आवन धार बरषियां, निसदिन
डोलत है जु दिवानी नेहदा जादू नखियां । सागर एह सजन विन देखें
जनम जनम की दुखिया ॥ १२ ॥

इस मित्र ने मेरी आंखों को बहका दी है, कान्तिरूपी मद का प्याला जब
से दिया तब से मेरा मन तड़पता रहता है और वियोग मुझे एक क्षण भी कल
नहीं लेने देता अर्थात् चैन नहीं पड़ता । आंखों में से अश्रुधारा आवण मास की
बर्षा की भांति आसुओं की धारा चलती रहती है । नेहरूपी जाल डालने से
अहर्निश बावली की भांति फिरती रहती है, इसलिए हे रससागर ! सजन के देखे
बिना जन्मांतर भी कल नहीं ॥ १२ ॥

* असल प्रति में 'रज मकरंद' पाठ है परन्तु मकरंद का अर्थ पुष्प का रस अथवा मधु
होता है जिसकी संगति नहीं जगती अतएव पराग पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है ।

चौधार्ह—गायन तीन भेद यह गाये, महाराज रीके मन पाये ।

कलाप्रवीण कवित जो कीन्हें, शुद्ध कानरामें वह लीन्हें ॥ १३ ॥

बारांगनाओं ने यह तीन भेद गाये जिससे महाराज मन में अति आनन्दित हुए । इसके उपरान्त कलाप्रवीण ने जो कविता बनाई थी उसे शुद्ध कान्हड़ा राग में नायिकाओं ने गाई ॥ १३ ॥

दोहा—रससागर सुनियत कवित, स्मृति भई पुरान ।

मनछापुरी गलीन मधि, बँडें भरोखा ध्यान ॥ १४ ॥

इस कवित के सुनते ही रससागर को पुरानी बात याद आगई और मंछापुरी की राजगली में देखे हुए भरोखे का ध्यान आगया ॥ १४ ॥

सागर सहचरि से कही, गायन बूझो जाय ।

यहै कवित को ग्रंथ के, किहँ वाणी कह पाय ॥ १५ ॥

महाराज रससागर ने दासी को आज्ञा दी कि जाकर गायिकाओं से पूछ कि यह कवित किस ग्रन्थ के हैं तथा उन्हें कहां से प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

छंद उधोर:

चरी चली आयस पाय, बूझी गायका प्रति जाय ।

गायन को भयो उछाह, चरचा चित बाढ़ी चाह ॥

भृत्या प्रति भंखी भास, श्रीमुख नीठ आवन आस ।

जो महाराज बूझें बात, बरनी दूर से नहिं जात ॥

सासन नीठकी हम पाय, दीजे बात भेद बताय ।

किंकरि बूझि सागर फेर, लीन्हि नीठ गायन टेर ॥

ठाढ़ी बंदि करपुट कीन, बैठन राज सासन दीन ।

श्रीमुख कही गायन प्रत्त, भंखो कौन भेद कवित ॥ १६ ॥

आज्ञा पाकर दासी ने बारांगनाओं के पास जाकर पूछा जिससे गायिकाएं अति प्रसन्न हुई और इस सम्बन्ध में चर्चा की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई । फिर पूछने आई हुई दासी से कहा कि महाराज ने जो बात पूछी है वह ऐसी नहीं है

कि दूसरे के द्वारा कही जा सके, अतएव भी महाराज की सेवा में उपास्थित होने की आज्ञा हो तो हम सब भेद बता सकती हैं । यह सुनकर दासी लौट आई और महाराज की आज्ञा प्राप्त कर उन नायिकाओं को महाराज के पास ले गई । वहां नायिकायें प्रार्थना करती हुई हाथ जोड़ कर खड़ी रह गई । महाराज ने उन नायिकाओं को बैठने की आज्ञा देकर कवित्त का भेद सुनाने के लिये आज्ञा दी ॥ १६ ॥

अथ गायनोक्त-छप्पय.

हम लहोर महि रहत, चाह चल्लिय देशाटन ।
आइ मनंछापुरी, नीतिपालह नरिंद जिन ॥
तास सुता सु किशोर, कलापरवीण नाम जिहि ।
हम अनुकंपा कीन, मास षट किय विलंब तिहि ॥
चातुरी भेद जाने सकल, रूप राशि उतही रहै ।
महाराज आपबूझै कवित, उन सिखाय उनही कहै ॥ १७ ॥

हम लाहौर में रहती हैं । मन में देशाटन की इच्छा उत्पन्न होने से मुसाफरी के लिए निकली और फिरते २ जहां पर कि राजा नीतिपाल राज्य करते हैं मंछापुर शहर में आई । उस राजा की राजकन्या किशोर अवस्था की और स्वरूपवती है । उसका नाम कला-प्रवीण है । हमपर कृपा करके हमें छः मास तक वहां रक्खा । कन्या सब चातुर्य भेद को जानती है तथा सर्व रूप का समूह उसमें समा रहा है । हे महाराज ! आप जिस कवित्त के विषय में पूछते हैं वह हमें उसने ही सिखाया और उनका ही बनाया हुआ है ॥ १७ ॥

दोहा-सागर यह बाणी सुनत, स्मृति लगी सु हेर ।

उदय प्रेम अंकुर भो, कवित्त गवाये फेर ॥ १८ ॥

रससागर के यह बात सुनते ही देखी हुई कला-प्रवीण की स्मृति उत्पन्न हो गई और उससे प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो जाने से कवित्त को फिर से गवाया ॥ १८ ॥

गाहा-नेहनग्र संपत्तो, गायन सौध सागरं चर्चा ।

ओगनीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १६ ॥

नायिकाओं का नेहनगर में आना, महाराज के मिलाप के साथ २ महल में की हुई चर्चा आदि वृत्तान्त वाली प्रवीणसागर की यह उन्नीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ १६ ॥



लहर १० वीं

अथ रससागर गायन-चर्चा प्रसंग, रससागरोक्त सोरठा.

रससागर यह बात, ब्रूत फेर असाध उर ।

जनपद पुर कुल जात, कहो प्रवीण अभिधान कहा ॥ १ ॥

रससागर ने यह बात पूछी सही, परन्तु पूर्व की स्मृति हो जाने से चित्त में स्थिरता नहीं रही इसलिये बार २ पूछने लगा कि उसका नगर कौनसा, कुल क्या, जात क्या तथा उसका दूसरा नाम क्या है ? सो बतलाओ ॥ १ ॥

अथ गायनोक्त गूढोक्ति प्रत्युत्तर * कवित्त.

द्रुग भौन बान मिल, गुन ग्राम आदि रूप, द्वीप परे दुर्जराज, भूमि अनुमान करि । राग भूत भूमि बान, बान वसुधा मिलाव, लोग भुज युग मनि, स्थानक निवास परि । द्वीप द्रुग द्वीपवति, द्वीप युग वेद रूप, परम पवित्र वंश, उदय प्रभा धरी । गिरि गंगा पंथ भूत, समय समीरबीन । तत्व ईशशीस ब्रह्म, अंक संज्ञा उचरी ॥ २ ॥

इस कवित्त का अर्थ अक्षर के वर्ग और बारहखड़ी के ऊपर एक संज्ञा के गणित की रीति से होता है जो निम्न प्रकार है:—

* यह कवित्त कितनी ही लिखित प्रतियों में पाठभेद है, वह इस प्रकार:—

कवित्त ।

द्रुग भौन बान मिल गुन ग्राम आदि रूप, द्वीप परे दुर्जराज भूमि अनुमान करि । पंक शर वेद भेद रस रस मेदनीले, सिंधु भुज वेधोमुख स्थानक निवास परि ॥ हरनेन हरिपौन जुगल विचार जानो, मुनि ज्वाल व्यास जिह वंश उदे प्रभाधरि । गिरि गंग पंथ भूत समय समीर बीन, तत्व ईशेशीश ब्रह्म अंक संग ना उचरि ॥

वर्ग संख्या.	वर्ण वर्ग
१	अ आ इ उ ऋ
२	क ख ग घ ङ
३	च छ ज झ ञ
४	ट ठ ड ढ ण
५	त थ द ध न
६	प फ ब भ म
७	य र ल व
८	श ष स ह
९	क्ष ण्

बारहखड़ी क्रम यथा

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः

इस प्रकार वर्ण के वर्ग और बारहखड़ी के ऊपर अंक संज्ञा की गणित रीति से “गूजर मनछा रवि सुजान” ये अक्षर निकलते हैं जिनका विस्तार नीचे देते हैं:—

दृग का वाचक है दो अर्थात् दूसरे वर्ग के ‘क ख ग घ ङ’ अक्षरों में से भौन अर्थात् तीसरा अक्षर ग और उसके साथ में बाण अर्थात् बारहखड़ी का पांचवां रूप ७ लगाने से ‘गु’ हुआ ।

गुण यानी तीन ये तीसरे वर्ग का च छ ज झ ञ अर्थात् तीसरे अक्षर का आदि रूप लगाने से ‘ज’ हुआ । द्वीप यानी सातवें वर्ग का ‘य र ल व’ के दूसरे अक्षर का द्विजराज अर्थात् पहिला रूप ‘र’ हुआ । इस प्रकार ‘गूजर’ इन तीन अक्षरों से जो नाम बना वह कलाप्रवीण की जन्मभूमि है, ऐसा अनुमान करना ।

राग का अर्थ है छः, सो छठे वर्ग में से ‘भूत’ अर्थात् पांचवां वर्ण का पहिला रूप ‘म’ हुआ । बाण अर्थात् पांच, सो पांचवें वर्ग ‘त थ द ध न’ में से पांचवें अक्षर ‘न’ का वसुधा अर्थात् पहिली मात्रा होने से ‘न’ हुआ । लोक यानी तीन सो तीसरे वर्ग ‘च छ ज झ ञ’ का भुज अर्थात् दूसरे अक्षर का बुगमनि यानी दूसरी मात्रा का ‘छा’ हुआ । इस प्रकार ‘मनछा’ इन तीनों अक्षरों से जो नाम बना उस नाम के नगर में निवास करती है । अर्थात् मंछा-पुर में रहती है ।

द्वीप यानी सात सो सातवें वर्ग ‘य र ल व’ में से दृग काभी दूसरा अक्षर

उस पर द्वीपवती यानी पहिली मात्रा लगने से 'र' हुआ । द्वीप यानी सातवें वर्ग के युग अर्थात् चौथा अक्षर उस पर वेद यानी चौथी मात्रा 'वि' हुआ । इस प्रकार 'रवि' इन दो अक्षरों से बने हुए शब्द के परम पवित्र वंश में उत्तम प्रभा उदय हुई है अर्थात् सूर्यवंश में जन्म लिया है ।

गिरि का अर्थ है आठ सो आठवें वर्ग के गंगा पंथ अर्थात् तीसरा अक्षर 'स' उम पर भूत यानी पांचवीं मात्रा लगने से 'सु' हुआ । समय अर्थात् तीन सो तीसरे वर्ग के समीर यानी तीसरा अक्षर उसपर दूसरी मात्रा लगने से 'जा' हुआ । तत्त्व यानी पांच सो पांचवें वर्ग के 'ईशशीस' यानी पांचवां अक्षर और उस पर ब्रह्म आदि मात्रा लगने से 'न' हुआ । इस प्रकार 'सुजान' इन तीन अक्षरों से बना हुआ शब्द उसका नाम है । अर्थात् गुजर देश के मंछापुर में रवि (सूर्य) वंश में उत्पन्न सुजानकुंवरि रहती है । इस प्रकार गूढ वाणी में देश, प्राम, वंश और नाम की सूचना की ॥ २ ॥

गूढोक्ती गायन सुनत, भये सु सिंधु सयान ।

गरव नरव तामहि उलटि, पायो गनित विधान ॥ ३ ॥

नायिकाओं की गूढ उक्तिवाली कविता सुनकर सिंधु अर्थात् सागर ने चानुर्य धारण किया अर्थात् सम्हल गया और उस कवित्त के भेद को समझने के लिये गरव और नरव इन दो शब्दों को उल्टा करके अर्थात् वरग और वरण तथा मात्रा की गिनती की रीति से गूढ उक्ति वाले कवित्त पर आशय समझ लिया ॥ ३ ॥

दोहा—सागर गायन से कही, मन तरंग भरि मैन ।

अंग अंग वर्णन करहुं, जैसो देख्यो नैन ॥ ४ ॥

पूर्वानुराग प्रगट होने से मन कामदेव के तरंग से भर गया जिससे रस-सागर ने नायिकाओं को कहा कि कलाप्रवीण के अंगोपांग के सब अवयवों का जैसा तुमने आंख से देखा हो नख शिख सहित वर्णन करो ॥ ४ ॥

गायन कवी काव्यकी, तोटक छंद बनाय ।

वर्णन कलाप्रवीण को, सागर दियो सुनाय ॥ ५ ॥

नायिकायें कवियित्री थीं अतएव तोटक छंद बना कर कलाप्रवीण के अंग प्रत्यंग का वर्णन इस प्रकार से महाराज रससागर को कह सुनाया ॥ ५ ॥

अथ गायनोक्त कलाप्रवीण प्रत्यंग वर्णन, अलंकार लुप्तोपमा छंद तोटक पुनरंभव पानिप की प्रभुता, वजरं परि मानिक की छबिता ।

पद पल्लव नीरज चंपकली, हरि केसर कुंकुमकी हृदली ॥ ६ ॥

कलाप्रवीण के पग के नख की कान्ति ऐसी है जैसे हीरा के ऊपर रक्खा हुआ माणिक सुशोभित हो और उसके पग की अंगुलियां कमल अथवा चम्पा की कली के समान हैं और उन की कान्ति केशर तथा कुंकुम की शोभा की सीमा को हर ली हो ऐसी प्रतीत होती है ॥ ६ ॥

उपमा चरनं अरनं बरनं, कमलं कि जपा तरनं करनं ।

दुति राजत ता टिग एडिन की, मनु नारिग गेंदकुजं मनि की ॥ ७ ॥

उस के पग की ललाई की उपमा कमल या जवाकुसुम अथवा उगते हुए सूर्य की किरणों से दी जासक्ती है । पांव की एडी की कान्ति ऐसी है मानो नारंगी, कदंब अथवा मंगलभावी हो ॥ ७ ॥

छवि द्वै गुलफा मति मोहि छकी, रुचि मारसु नाभि हिमं रथकी ।

रतीकी गति पिंडुरि मेंजुरुकी, भलकें मनमध्य निषंग भुकी ॥ ८ ॥

उसके दो गुलफों को देख कर बुद्धि मुग्ध छकित हो गई है, क्योंकि उनकी शोभा कामदेव के सुवर्णमय रथ के समान है उसी प्रकार कामदेव की स्त्री रति की गति की शोभा को रोकने वाली उसकी पिंडलियां कामदेव के भुके हुए भाथा के समान चमकती हैं ॥ ८ ॥

गहरी गति जानुमु ग्रंथन की, मथनी उलटी मनमध्यन की ।

जुग जानु कर करी हेम जुटी, उपमा पुनि भानुफला उलटी ॥ ९ ॥

उसके दोनों जानुओं की ग्रंथि की गंभीरता मनमथ के उल्टे हुए करणों के समान है और सोने से जड़े हुए हाथी की सूंड के समान उसकी जंघाएं उलटे कदली खंभ के समान दीखती हैं ॥ ९ ॥

बरनी न नितंब बनी बरकी, सुखमा तट रूप भरे सरकी ।

कटि लंक मनी बृगराज कस्यो, ललित नव अंकुर जानि लस्यो ॥ १० ॥

अति श्रेष्ठ नितम्ब की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता वह ऐसा है मानो पानी से भरे हुए जलाशय का किनारा हो । उसकी क्षीण कटि प्रदेश ऐसी है मानो शिकार पर सिंह की कटि हो अथवा सुन्दर नवांकुर लचक रहा हो ॥ १० ॥

नव नाभि सु नीरज कोश बनी, गति मैत्र शिकारन की गडनी ।

अहि बेल दलं छवि ऊदर की, त्रिबली रस तीन तरंगन की ॥ ११ ॥

उसकी गंभीर नाभि नव कमल के कोष के समान है और पेट की आकृति नागरबेल के पान के सदृश है और उसके ऊपर की त्रिबली (पेट पर पड़ी हुई तीन बलें) पानी की तीन लहरों की भांति है ॥ ११ ॥

हमशक्ति सिवारनसी अबली, निरखें गुन श्याम चिटी नवली ।

रस रीक भरे दुहु पाखरवा, परियान के हाटकके परवा ॥ १२ ॥

उसके पेट के ऊपर सरवाल के समान रोमावलि ऐसी प्रतीत होती है मानो काला डोरा अथवा नवीन काली कीड़ी का हार हो और रसरीक से भरपूर उस के दोनों बाजू मानो परी के सोने के पंख हों ऐसे भासते हैं ॥ १२ ॥

विशि काम बटासे उरोज वनें, तिहुं नैन निशाम सबीर तनें ।

धरि राजस श्याम सुरंग प्रभा, सतकुंभ के शृंग मधूप समा ॥ १३ ॥

उस के दोनों स्तन मानो कामदेव के खेलने के दो लट्टू बने हों अथवा तीन नेत्र वाले शंकर के निशान रूप कामदेव के तीन तथू हों । उन स्तनों पर काली विम्ब ऐसी शोभित है मानो सोना के वर्णन के शिखर पर काला अमर बैठा हो ॥ १३ ॥

कलधौत उरं कुच भीकटवा, नवरंग मनोज मही नटवा ।

भवनं सुर पास कला भुजकी, कमल नल दंड तिभिज्ज की ॥ १४ ॥

उस के स्तन के आस पास सोने के समान चमकता हुआ छाती का भाग

मानो कामदेवरूपी नट के नाचने की रंगभूमि है । उसकी भुजाओं की शोभा देवताओं के पाश के समान अथवा कमल नाल की भांति अथवा कामदेव के दंड के समान है ॥ १४ ॥

प्रगटी कर कंजनका परमं, सुवयार करं श्रुतिकेश रमं ।

सरसी अंगुरी नख बाढ़ सजे, छविरोदन मानिकखौर रजे ॥ १५ ॥

उस के कमलरूपी हाथों की हथेली की शोभा ऐसी प्रगट हुई है मानो श्रुतिकेश (विष्णु) के पवन झुलाने के लिये लक्ष्मी का पंखा हो । और अंगुलियां कामदेव के बाण के समान हैं जिन पर सजे हुए धार के समान नख शोभायमान हैं, तथा हाथ में मेंहदी लगी हुई ऐसी शोभित हो रही है मानो माणिक की शोभा की प्रेरणा करती हो ।

दूसरे पद का दूसरा अर्थ—कामदेव के बाण के समान अंगुलियों पर नख-रूपी धार सर्जी हुई है और उन नखों पर मेंहदी ऐसी शोभायमान है मानो माणिक की शोभा की प्रेरणा करती हो ॥ १५ ॥

पुनि पीठ सु रंभ शिशू पतवा, चतुराई अनंग पटी चितवा ।

तरुनी गल ग्रीव कपोतन की, गति कंबु सुराहि अनंगन की ॥ १६ ॥

उसकी पीठ तो सुन्दर नये कले के पत्ते के समान है अथवा कामदेव की चतुरता से चित्र खींचने की पाटी ऐसी हो । और नवयौवना कलाप्रवीण की गर्दन शंख के समान अथवा कामदेव की सुराही के समान है ॥ १६ ॥

चिबुकं बहि ठोडिय मेचक की, तरुराज फलं अलि सनु तकी ।

अरुनं छवि राजत हैं अधरं, शिशु पल्लव किंदुरकै सुथरं ॥ १७ ॥

उस के चिबुक के ऊपर काला तिल पके हुए आम के फल पर नाजुक भंवरे के बच्चे के समान है और लाल होठ की शोभा ऐसी दीप्यमान हो रही है जैसे वृक्षों के ऊपर नये कोमल अथवा बिम्बफल की मनोहरता हो ॥ १७ ॥

दुति हैं रसना गन दंतनमें, कुवलै दल दाढ़िम के कनमें ।

कबहों मुखमंद सु बानि कहें, रव कोकिल हीनप पाय रहें ॥ १८ ॥

चमकते हुए दानों के समुदाय में रहने वाली उसकी जीभ की कान्ति पके हुए दाढ़िम के बीज के मध्य रक्खे हुए कमल के लाल पत्र के समान हैं । कभी कभी वह धीमे वचन कहती है उस समय उस के स्वर से कोयल का स्वर भी हीन हो जाता है ॥ १८ ॥

हुलसैं कबहूँ तब मंद हसैं कुसुमावलि चंद्रकला बिकसैं ।

तबकं जुत वाम कपोल लसैं, मधुमाधवी लेन मधूप धसैं ॥ १९ ॥

कभी २ उल्लास में जब वह मुसुकान से हंसती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कुल की पंक्ति अथवा चन्द्रमा की कला प्रकाश पारही हो ऐसा दीखता है । उस के बाएं गाल पर तिल ऐसा शोभित है मानो मधु माधवी की मुगंध लेने के लिये भ्रमर बैठा हो ॥ १९ ॥

ललितं मुख नाशिक ओष लली, कहि कीरसु दीपक चंपकली ।

चख चंचलता श्रुति कौन चलैं, मृग खंज तिमी मधु कंज मलैं ॥ २० ॥

और उस बाला के मनोहर मुख पर नाक ऐसी है जैसे सुग्धा की चोंच किवां दीपक अथवा चंपकली और आंखों की चंचलता कान के काने तक चलती है सो गुण तथा आकार से मृग, खंजन, मछली, भंवरा और कमल के रूप का मर्दन करती है ॥ २० ॥

बरुनी पल भौंह विशेष बने, तरवार तरंग धनू अतने ।

अति सोहित भाल शशी त्रितियं, कुबलैं दल कातरि खंड कियं ॥ २१ ॥

उस की बरोनी, पलक और भौंह अत्यन्त शोभायमान हैं । वे अनुक्रम से खुली तलवार, जलतरंग और कामदेव के धनुष के समान हैं । तृतीया के चन्द्रमा के समान उसका ललाट ऐसा है मानो कमलपत्र का अर्द्धचन्द्राकार काट रक्खा हो ॥ २१ ॥

शशि गोतन सीप हरी भवनं, भव खंडन दाव ध्यानिभवनं ।

चिकर रनमध्य खुले चमरी, कर ग्रंथित कंबलसी कबरी ॥ २२ ॥

मोती की सीप के मान को हरण करने वाले उसके कान महारुद्र के पाश

तथा उन के ध्वनि-भवन (डमरू) के समान हैं । उसके खुले हुए केश काम-
देव के चंचर के समान तथा गुथी हुई वेणी कंबल नामक सर्प के समान है ॥ २२ ॥

परवा मनिनील विहंग पटी, फनि आल धरें मनि धार फटी ।

चिचुरं रुचि नेह भरे चलके, जमुना मरकत प्रभा मलके ॥ २३ ॥

उस के दोनों मांग की पट्टियां जो कि मरकत मणि और काली चमकती
हुई पक्षी के पंख के समान ऐसी प्रतीत होती हैं मानो सर्प फण फैला कर
मणि पर बैठा हो । इसी प्रकार उस के मनोहर केश तेल फुलेल से भरे हुए ऐसे
चमकते हैं जैसे यमुना-जल अथवा मरकत मणि की शोभा तरंगिन हो
रही हो ॥ २३ ॥

भूमकें फुंद घुघरवा सु भवे, छपदी नव गुंजत कंज छवे ।

गुन लाला प्रखन सु वैन गुही, बिच रोदसी भूमि त्रिवेनि बही ॥ २४ ॥

उसकी वेणी में गुंथे हुए घूंघरू ऐसे भूम-भूम बजते हैं मानो भंवें गुंजार
रहे हों अथवा उसके घूंघर बाल बालों में जो घूंघरू गुंथे हुए हैं वे ऐसे बजते
हैं मानो कमल के ऊपर भौंरे गुंजार रहे हों ।

रेशम के लाल डोरे और श्वेत पुष्प से उसकी वेणी गुथी हुई है सो ऐसी
प्रतीत होती है मानो पृथ्वी और आकाश के मध्य भूमि पर त्रिवेणी बह रही
हो । (यहां लाल डोरारूपी सरस्वती, श्वेत पुष्परूपी गंगा और श्याम वेश-
रूपी यमुना नदी के संयोग से त्रिवेणी की कल्पना की गई है) ॥ २४ ॥

विध रुद्र निबंध कसी कबरी, रुचि पीत चढ़े मकरी चकरी ।

शिर फूल जराव जरथो सरसों, दरबी मनि बिंब फनी दरश्यो ॥ २५ ॥

रुद्र पाश की रचना की विधि से केशों को कस कर बांधा है सो ऐसे
शोभित हैं मानो पीले चंदन के खौर पर लाल चक्र का पाश अथवा जाल बनाया
हो और माथे पर जड़ाऊ शीशफूल धारण कर रक्खा हो उस में चोटी का प्रति-
बिम्ब पड़ता है सो मानो फणधर की मणि में सर्प का प्रतिबिम्ब पड़
रहा हो ॥ २५ ॥

भति यादि सु बंदन मंग भरथो, सुरखी रवि गो तम में प्रसरथो ।

ललना अलकावलि यों लटकें, भुकि पूंछ अही शिशुवा भटके ॥२६॥

उसकी मांग में सिंदूर इस प्रकार भरा हुआ शोभित हो रहा है मानो
अंधकार में सूर्य का प्रकाश फैल रहा हो । उस सुन्दरी कलाप्रवीण की अलकें
ऐसी लटक रही हैं मानो सर्प का बच्चा भुक कर पूंछ काढ़ रहा हो ॥ २६ ॥

खुटिलांनकि राजत ओप खरो, कुसमं गुछ अंकुश काम करो ।

भलवा मलवा पलवा दलवा, दलवा अलिवा किलवा भुलवा ॥२७॥

उसके कान में खुटिला नाम का आभूषण ऐसी कान्ति दे रहा है मानो
फूल का गुच्छा अथवा कामदेव के हाथी का अंकुश हो । और कान में पहिनी
हुई लटकन हिलती है सो मानो पलक दल से मिलने आरही हो, और दलवा
जो सोने के जड़ाव का कर्णफूल कान में पहिन रक्खा है उमे कमल-दल जान
कर अलि अर्थात् भंवरा (आँखों के काले तिलरूपी भंवरा) मिलने के लिए
आये हों अर्थात् भूम रहे हों ।

चौथे पाद का दूसरा अर्थ—अलिवा—उसकी सखियों का, दलवा—समूह,
किलवा—उसकी प्रशंसा, भुलवा—उसका कुल अर्थात् भुलभुला यानी कान में
पहिनने का कर्णफूल की प्रशंसा उसकी सखियां करती हों ॥ २७ ॥

करनं ह्वरनं जरनं तरनं, तरनं तरनं अरनं करनं ।

अवनं सुमनं भुवनं सुतनं, शशि श्रृंग किये मलिका सुमनं ॥ २८ ॥

कान में सोने का तरौना पहिना है सो मानो उगाते हुए सूर्य की लाल
किरण हो ऐसा शोभित है और भुवन जो जल उसका भुवन यानी कमल
उस के समान कान में सुमन कहिए कर्णफूल पहिने हैं, सो मानो उलटा अर्द्ध-
चन्द्राकार कपालरूपी चन्द्रमा के शृंग पर दो मोगरा के फूल रक्खे हुए हों
ऐसा शोभित है ॥ २८ ॥

बँदनी नग संजुत खैच बँधो, शशि शीश नवग्रह पंत सँधो ।

जलजात लरी बिंद लाल जटे, दरी बिंदुरिकें कुज चंद चटे ॥ २९ ॥

कपाल के ऊपर रत्नजडित दामिनी खैंच कर बांध रखी है सो मानो कपालरूपी चन्द्रमा के माथे पर नवग्रह हार हां कर रह रहे हैं । साथ ही कपाल पर मोती गुथे हुए डारे से लाल मणि जडित चन्द्रमा बंधा हुआ ऐसा शोभित है मानो शररूपी सर्प संतप्त हो कपालरूपी चन्द्रमा में लाल मणिरूपी मंगल का चुम्बन करता हो ॥ २६ ॥

चरची अरचा किय केसर की, रससागर नाउ सुरंगुरू की ।

विंदवा छवि लाल जंगल बढ़ी, चुनियाँ ढिग नाल पतंग चढ़ी ॥ ३० ॥

पूजा कर के कपाल में केशर का लेपन किया हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो रस के समुद्र में बृहस्पति का वाण हो । (यह बृहस्पति का रंग केशर की भांति पीला है और रस-समुद्र का आकार कपाल का है) फिर उसके कपाल पर किए हुए लाल चंदवा और उस पर जंगली रंग की टीकी ऐसी शोभित है मानो लाल चंदला रूपी चुन्नी के पास हरा रंग का पतंगा चढ़ा हो ॥ ३० ॥

चख नागसु नाग नये बनवा, चमकीसु खद्योतनको रचवा ।

मनि नील सु नासनमें घुरवा, धुनि चाहत देखि लटै धुरवा ॥ ३१ ॥

उस की आंखों में काजल की बारीख रेखा मानो सांप का बच्चा हो और आंखों की चमचमाहट जुगनू की रचना करती है और उस के सुन्दर नाक में तिल मणिरूपी मेघ और लटरूपी घटा छाई हुई देख कर मोर वर्षा-ऋतु समझ टूँकार करना चाहते हैं ॥ ३१ ॥

मुक्ता मणि बेसर से मिलकें, भृगुसुनु शशी शशिमें भलकें ।

रद राजत रेखनकी रसमी, मनु कुंदकली जिशुपीत भ्रमी ॥ ३२ ॥

उस के नाक की नथ में मोती और मणि मिलकर ऐसी शोभा दे रहे हैं कि जैसे मुखरूपी चन्द्र में मोतीरूपी शुक तथा श्वेत मणिरूपी चन्द्र मुखरूपी चन्द्रमा में हो । उस के दोनों दांतों में जड़ी हुई सोने की कीलें ऐसी शोभित हैं मानो कुंदकली के ऊपर पीली भ्रमरी का बच्चा बैठा हो ॥ ३२ ॥

अरुनाइ अनाप तमोर असी, धुनि प्रेम हिये मुख लैर घसी ।

दुति राजत नाग दिठौन दियो, करता लवले रसराज कियो ॥ ३३ ॥

पान का बीड़ा चबाने से होठों पर रक्त रेखा ऐसी प्रतीत होती है मानो हृदय में प्रेमरूपी नदी की लहर उठ कर मुख तक उछल कर आगई हो । अर्थात् कविकुलसंप्रदाय के अनुसार प्रेम का रंग लाल है, इसलिये कल्पना है कि प्रेमरूपी नदी के जल का हिलोरा हृदय से मुख तक आगया है ऐसा प्रतीत होता है । उस के कान के पास जरा सा काजल का बिन्दु है, उस की प्रभा ऐसी शोभित है मानो जगत्कर्ता ने अपने लवमात्र अंश को लेकर रसरज यानी शृंगार-रस को बनाया हो ॥ ३३ ॥

हरवा मुकता मणिमाल हिये, अमरं धुनि धार हजार किये ।

दुलरी दुति चौकिन की दमके, चपला घन हेमगिरं चमके ॥ ३४ ॥

उस के हृदय पर मोती की माला और मणि के हार धारण हैं सो मानो गंगा नदी अनेक धाराओं से बह रही हो । इसी प्रकार दोलड़ माला की प्रभा ऐसी चमकती है मानो स्तनरूपी सोना के पर्वत पर काले कुचारूपी अनेक बिजली चमक रही हों ॥ ३४ ॥

भुजबंद दुहू सु जराव भजें, सुख आसन भैन महीप सजें ।

चिकनी गुजरी कैंगनी जु चुरी, रद कुंजर रंगभरी कैमुरी ॥ ३५ ॥

भुजाओं में बांधा हुआ जड़ाऊ भुजबंद ऐसा शोभित है मानो कामदेव रूपी राजा के बैठने के लिए सुखपाल बनाया हो । और उस के हाथ में पहिने हुए चिकनी यानी सुन्दर शोभित गुजरी, कंकण और चूड़ियां हैं जो क्रम से चूड़ियां हाथीदांत की, कंकण रंग विरंगा तथा गुजरी भांभर वाली शोभित है ॥ ३५ ॥

पहुंची मुंदरी अंगुरी परसें, दुति छत्र मनोभर की दरसें ।

मिहदी नख पानन मोह मनं, गहिरे दल पंकज बूढ गनं ॥ ३६ ॥

उस के हाथ की कलाईयों में पहुंची और उंगलियों में अक्षर खुदी हुई अंगूठियां ऐसी शोभित हैं जो कामदेव के छत्र के समान दीखती हैं । हाथों की हथेलियों और नख पर मिहदी के मान को मोह करने वाली पृथक् २ विंदियां

लगाई हुई हैं सो ऐसी प्रतीत होती हैं मानो गहरे रंग के कमल पत्र पर बौ-
मासे की बीरबहुटी * पास २ बैठी हों ॥ ३६ ॥

कटिसे रसना ख यों निकसे, बरदावन बंदन मैं बसे ।

लखि नीविन के फुंदना लटके, चकरी कर कामहुतें छटके ॥ ३७ ॥

उसकी कटि में पहिने हुए सुवर्ण मेखला से मनोहर शब्द इस प्रकार
होता है मानो कामदेव के बंदीजन बसे हुए हों । उस के घाघरे के नाड़े के
लटकन इस प्रकार लटकते हैं कि मानो कामदेव के हाथ से चकरी बाहर आती
और फिर जाती हो ॥ ३७ ॥

ख नूपुर पायल घूघरवा, वजती ध्वनि जेदरकी बिछुवा ।

मधुबाल मराल सु लालमुनी, गुन गावत कंद्रप के जु गुनी ॥ ३८ ॥

उस के पांव में पहिने हुए पायल और नूपुर तथा बिछुओं के घूघरू की
आवाज ऐसी गुंजारती है मानो बालभ्रमर का झुंड, अथवा बाल मराल यूथ लाल
मुनियां नाम के पक्षी कामदेव के गुण गायन कर रहे हों ॥ ३८ ॥

अंगुठा में अनौट रहे अटके, चरितं गुन भाखत हैं चटके ।

दुगुनी दुति जावक पाय दये, छवि कंज सुफूल जमल छये ॥ ३९ ॥

उस के पग के अंगूठे के मनोहर अणवट ऐसे आवाज करते हैं कि मानो
चकला पक्षी (चिड़ियें) रूपी बंदीजन उस के चरित्र और गुण का बखान कर रहे हों ।
उस के पांव में लगे महावर उस की कान्ति को दुगुना कर रहा है और उसकी
शोभा ऐसी है मानो लाल कमल और जसवन्त का फूल बिछाया हो ॥ ३९ ॥

गजराज मशलन को गति की, मधि लंगर चातुर की मति की ।

विविधं नवरंगन दुकूल बने, गुनसो रसना नहिं जात गिने ॥ ४० ॥

उसके चलने की छटा मस्त हाथी की भांति मन्द और हंस की गति समान
मनोहर है, उस में चतुर पुरुषों की बुद्धि को बांधने को मानो लंगर हो ऐसा भ्रम

* बीरबहुटी—इसको कहीं सावण की डोकरी कहते हैं, कहीं सावण की तीज और कहीं
हंमवधु कहते हैं । यह गहरी काल होती है इसके शरीर पर चमकदार रोंबे होते हैं (पहपासिंह)

होता है । साथ में अनेक प्रकार के नवीन २ रंग के रेशमी वस्त्र पहिने हुए हैं जिसका गुण हमारी जिह्वा से वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४० ॥

तदपी मातेके अनुसार सबे, जब आयस आपकि पाय तबे ।

प्रति अंग कहो छवि दीठ परी, किरतार प्रवीन करीसु करी ॥ ४१ ॥

फिर भी हमने अपनी बुद्धि के अनुसार उसके स्वरूप का जो हमारी दृष्टि में आया आप की आज्ञानुसार हरेक अंग का वर्णन किया है परन्तु जगत्कर्ता ने कलाप्रवीण को अकेली बनाया है अर्थात् वैसी दूसरी कोई स्त्री दुनियां में नहीं है ॥ ४१ ॥

दोहा—नखतें सिख सिखतें सु नख, आभा कही बनाय ।

तऊ प्रवीण नवीन छवि, बनी न बरनी जाय ॥ ४२ ॥

नख से शिख तक शरीर के अवयव और शिख से नख तक आभूषण की शोभा वर्णन की, फिर भी कलाप्रवीण की जो शोभा है उसका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥ ४२ ॥

अथ तदंते रससागर अभिलाष दशा—सोरठा.

सुनत श्रवण प्रति अंग, अंग अंग प्रगटे अनंग ।

भई सुमन गति भृंग, बिना बाग विकसित कुसुम ॥ ४३ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण के प्रत्येक अंग की शोभा का वर्णन सुनकर महाराज के अंग अंग में काम व्याप गया और जिस प्रकार फूल का रस पान करने के लिए भंवरा उत्सुक हो जाता है उसी प्रकार बाग के बिना ही प्रफुल्लित कलाप्रवीण-रूपी फूल के रसपान करने को सागररूपी भंवरा उत्कण्ठित हो गया ॥ ४३ ॥

उदयो प्रेम पतंग, सुखसमूह सकुचित कुमुद ।

भयो मुदित मन भृंग, विरह कुंज प्रफुलित ॥ ४४ ॥

प्रेमरूपी सूर्य का उदय हुआ जिससे सुखसमूह रूपी कुमुद (चन्द्रप्रकाशी

१- पाठ में 'कुंज' है परन्तु शुद्ध 'कंज' प्रतीत होता है कंज का अर्थ कमल है । साथ ही अंत में 'निरखि' और चाहिए, फिर पाठ ऐसा होगा 'विरह कंज प्रफुलित निरखि' इससे कविता की ।

कमलिनी) संकुचित हो गई । इसी प्रकार विरहरूपी कमल को खिला हुआ देख कर मनरूपी भंवरा हर्षित हो गया ॥ ४४ ॥

उमड़ी घटा सनेह, धीर जवासा तरु सुबधो ।

विरहा सर सु भरेह, भित सुरत छूटे पडा ॥ ४५ ॥

स्नेहरूपी मेघघटा के उमड़ने से धीरजरूपी जवासा सूख गया, विरहरूपी सरोवर भर गया और मित्र की सुरतरूपी पटा यानी फटना छूट पड़ा (आंसू बहने लगे) ॥ ४५ ॥

मग मग या गति* लीन, डग डगला लागत खरी ।

लगनी अगनि प्रवीण, जल थल प्रति जगमग रही ॥ ४६ ॥

नायिकाओं के वर्णन को सुनकर हरेक प्रकार का मान रससागर भूल गया और एक गति में लीन हो गया जिससे उसके कोने २ में विरह की आग लगने लगी, इतना ही नहीं, प्रत्युत प्रवीण की प्रीतिरूपी आग जल, थल सब ओर जगमगाने लगी ॥ ४६ ॥

अमर कोश दधि प्राण, विरह ज्वाल पावक जेरें ।

सुरति धूम अनुमान, मृगमद मिलित प्रवीण तन ॥ ४७ ॥

सागर के प्राणरूपी अमर का भंडार विरहरूपी अग्नि की ज्वाला से जलने लगा इससे उसकी स्मृतिरूपी धुंवा प्रवीण के शरीररूपी कस्तूरी की तरफ चली ॥ ४७ ॥

सवैया—अलंकार द्रष्टांत.

लोह करीच फिरे तितही, जित ब्राव चमकन की फुरता ।

अमर कोशको धूम तितैही, जितैही मृगमदकी दुरता ॥

पुंगी को नाद बजे जितही, तित पनंग आननकी सुरता ।

यों परवीण सुने प्रति अंग, अमें तित सागरकी सुरता ॥ ४८ ॥

* गति भी ठीक हो जाती है और अर्थ भी । अभी गति-भंग दोष आ रहा है ।

जिस तरफ चुम्बक हो उधर ही लोहा जाता है, जिधर गुप्त रूप से कस्तूरी हो उधर ही मुश्क अम्बर का धुवां जाता है, जहां महुवर (पुंगी) का स्वर हो वहीं नाग जाता है, इसी प्रकार कलाप्रवीण के सुने हुए अंग प्रत्यंग में रससागर की स्मृति फिरने लगी ॥ ४८ ॥

दोहा-राजकुमार रीझे सु तित, दान मान दिय ताय ।

गायन निज थानक गई, सागर प्रनय जनाय ॥ ४९ ॥

कलाप्रवीण के अंग प्रत्यंग का वर्णन सुनकर महाराज नायिकाओं पर अति प्रसन्न हुए और उन्हें वहीं पर इनाम इकराम दिया जिसे लेकर और महाराज सागर पर अति स्नेह प्रकट करती हुई वे अपने उतारे (डेरे) के स्थान पर गई ॥ ४९ ॥

गाथा-गायन राज समीपे, वर्णन किय प्रवीण प्रत्यंग ।

सागर दशा तदंते, बीस प्रवीणसागरो लहरं ॥ ५० ॥

नायिकाओं के द्वारा महाराज के पास किए हुए कलाप्रवीण के अंग प्रत्यंग का वर्णन सुनकर महाराज की अवस्था से युक्त यह प्रवीणसागर की बीसवीं लहर समाप्त हुई ॥ ५० ॥



११ वीं लहर ।

अथ रससागर मित्र-चर्चा प्रसंग-दोहा.

इन नैनन आनन बहैं, कब देखहुं किरतार ।

ऐसे रससागर निशा, बीती करत विचार ॥ १ ॥

हे सृष्टिकर्ता परमात्मा ! इन आंखों से वह सुख मैं कब देखूंगा ? ऐसा विचार करते २ रससागर की रात बीत गई ॥ १ ॥

भयो भोर मित खूं मिले, करें कुतूहल बात ।

रससागर औरें दशा, जानी काहु न जात ॥ २ ॥

सवेरा हुआ और सब मित्र-मंडल आकर मिला और विनोद करने लगा, परन्तु रससागर की और ही दशा हां गई है जिसे कोई जान नहीं सकता था ॥ २ ॥

अथ अलंकार भिन्न पदरूपकता दशा वर्णन, हिंदी सवैया (भूलना)

देहको देररा चितके तरुतमें, इश्क के देवकी जोत लागी ।

प्राणपूजा करे नैन पानी भरे, कान ध्यानी कथा आन तागी ॥

स्वास पंखा ठहो बुद्धि बिरो गहो, जीह तंत्री लहो भेद रागी ।

मित्र मंत्र भजें तंत फंदं तजें, एक प्रवीण से टेक लागी ॥ ३ ॥

देहरूपी देवालय में चित्तरूपी तरुत के ऊपर इश्करूपी देव की जोत प्रकट हुई । उस देव की प्राणरूपी पुजारी पूजा करता है, आंखरूपी पनिहारी पानी भर लाती है, कानरूपी सिद्ध अन्य कथाओं को छोड़ कर ध्यान धरे हुए हैं, श्वासरूपी पंखा चलता है, बुद्धि ने बीड़ा उठाया और जीभ-रूपी वीणा मित्र के मंत्र का जाप करती है । इस प्रकार एक प्रवीण की ही टेक लग रही है ॥ ३ ॥

दोहा-भूलि गये चित गति सुरति, भूषण बसन शरीर ।

मनमें बसी प्रवीण छवि, बड़ी बिरह की पीर ॥ ४ ॥

इससे कुमार चित्त की गति और दशा विस्मृत हो गया है । शरीर में

वस्त्र आभूषण का पहिनना भूल गया, मन में केवल एक प्रवीण की छवि बस रही है जिससे वियोग की पीड़ा बढ़ गई ॥ ४ ॥

अलंकार स्मरणानुभाव-सवैया.

गंधर्व गान प्रवीण उच्चारत, वीन प्रवीण बजावत रागी ।

भाषत भाष प्रवीण सु भेदन, मित प्रवीण सुरा मद दागी ॥

गायन बानि प्रवीण कथा सु, प्रवीण सुनी तबसे रति जागी ।

सागर चित प्रवीण चढ़े सु, प्रवीण प्रवीण वहै जक लागी ॥ ५ ॥

गन्धर्व जो गान करते हैं उस में प्रवीण का उच्चारण करते हैं । वीणा बजाने वाले प्रीति से वीणा बजाते हैं उस में भी मानो 'प्रवीण प्रवीण' ही बजाते हैं । बात करते हैं तो उसमें भी मानो प्रवीण के ही भेद के वचन बोलते हैं और मदपान करके भी मानो प्रिय मित्र प्रवीण के ही प्रेम में मत्त हो रहे हैं, इस प्रकार गाने बोलने में मस्त प्रवीण की ही कथा करते हैं । इस प्रकार सागर ने जब से कलाप्रवीण को सुना है, ऐसी प्रीति जगी है कि प्रवीण ही प्रवीण उसे सब दिखाई पड़ता है, रट लग गई है ॥ ५ ॥

चौपाई-महाराज प्रच्छन्न धुरभावें, बात भेद कहुँपै न बतावें ।

मित पाए चितकी जु उदासी, बोलन लगें कुतूहल हांसी ॥

मंद मंद प्रति उत्तर बोलें, वहाँ ध्यान महाराज न डोलें ।

आन लाहू आयस नहिं सूझे, बेमरजाद होय को बूझे ॥

यों बासर दश पंच बिहाये, मित बात बूझन अकुलाये ।

समय एह बूझन की ठानी, बोले सुहृद राज प्रतिवाणी ॥ ६ ॥

महायज रससागर मन ही मन * सुरमा रहे हैं, परन्तु किसी को भेद की बात नहीं बतलाते हैं । मित्रों ने कुमार की उदासी जान ली और उन्हें प्रसन्न करने के लिए हास्य विनोद की बात करने लगे । महाराज उन के साथ

* गुजराती टीकाकारने 'प्रच्छन्न' का अर्थ 'मनमां ने मनमां' किया है, परन्तु वह शब्द 'प्रच्छन्न' का रूप प्रतीत होता है जिस का अर्थ 'छिपा हुआ' या 'गुप्त रूप' है, यही हमने किया है ।

पहपसिह

धीरे २ उत्तर देते हैं परन्तु महाराज पहिलेसे लगे हुए ध्यान को छूटने नहीं देते जिससे किसी को उसका पता नहीं लगने पाता । और बिना मर्यादा होकर उनसे पूछ कौन सकता है ? इस प्रकार आगा पीछा कर के दस पांच दिन बीत गए और मित्र लोग पूछने को अधीर हो उठे जिससे एकान्त समय में वह बात पूछने का निश्चय कर महाराज के समीप इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

अथ मित्रोक्त-दोहा.

मित अरज महाराज किय, बाक विलोकन बान ।

महाराज मंदोल चढ़ि, कियो गमन उद्यान ॥ ७ ॥

मित्रों ने महाराज से कुछ बात अर्ज करने की प्रार्थना की । महाराज ने स्वीकार किया और पालकी पर विराज कर स्वयं बगिचे की ओर पधारे ॥ ७ ॥

अथ बागवर्णन-छप्पय.

बीतत अहर बसंत, ब्रच्छ विरुध विलंब किय ।

कोमल किसलय भुक्ति, सुमन वन वन प्रति फुल्लिय ॥

बोलत विविध बिहंग, भृंग गुंजार करत तित ।

सीत मंद मधु स्वसन, जुकति जलजंत्र उच्छरित ॥

आमंति मंत्र महाराज प्रति, एकंतिक आसन रचिय ।

पटुता उचारि बानी पृथक्, यह विनय महाराज किय ॥ ८ ॥

वसंत ऋतु के दिन बीत गए हैं, वृत्तों पर लताएं लिपट रही हैं, नये निकले हुए कोमल पत्ते झुक रहे हैं, वन वन में पुष्प खिल रहे हैं, अनेक प्रकार के पक्षी सुन्दर वाणी बोल रहे हैं, भ्रमर-गुंजार स्थान स्थान पर हो रहा है, शीतल और सुगंधमय पवन मंद गति से चल रही है, अनेक फौवारे छूट रहे हैं, ऐसे मनोरंजक स्थान पर एकान्त स्थल में बिछायत की गई और वहीं गुप्त बात पूछने की मंत्रणा की गई । महाराज रससागर वहां विराजे और फिर पृथक् २ रीति से मित्रों ने विनय की ॥ ८ ॥

दोहा—करि अभिवंदन जोरि कर, कियो छमापन क्रोध ।

सासन श्री महाराज ग्रहि, बुरी मनकी शोभ ॥ ९ ॥

मित्रों ने पहिले दोनों हाथ जोड़ कर वंदना की, और क्रोध न करने तथा क्षमा करने की याचना कर महाराज की आज्ञा लेकर मन में उत्पन्न शोधक बात पूछी ॥ ९ ॥

मित्रोक्त-दोहा.

कहा भयो कित चित गयो, किही जगत दिग रैन ।

पल पल प्रति लीनइ प्रभा, कहा नयो चित चैन ॥ १० ॥

मित्रों ने कहा महाराज ! यह क्या हुआ और चित्त कहाँ गया ? रात दिन किसकी रटन करते हैं ? पल पल आप की प्रभा मन्द होती जा रही है, आप के चित्त में यह नई बेचैनी क्या हो रही है ॥ १० ॥

नीठ नीठ बूझत कहो, गायन उक्ति उदार ।

वहै कवित वर्णन यहै, उर आशय विस्तार ॥ ११ ॥

इस प्रकार मुशकिल से पूछने पर महाराज ने धीरे २ नायिकाओं के कहे हुए कवित तथा उन के द्वारा किया हुआ नख-शिख-वर्णन और अपने मन का आशय विस्तार से कह सुनाया ॥ ११ ॥

सोरठा-देखित श्री महाराज, दुचिते बिरहानल दुखित ।

आधि मिटावन काज, यहै भित उच्चार किय ॥ १२ ॥

इस प्रकार महाराज को विरह वेदना से दुखी और बेचैन देख कर उस व्याधि को मिटाने के लिए मित्रों ने इस प्रकार निवेदन किया ॥ १२ ॥

मित्रोक्त-छप्पय.

महाराज यह बात, सत्य हमतो नहि माने ।

कुमरी वय सु किसोर, कवित कैसे करि जाने ॥

कलाधार गायका, रीझ रावरी सुपाई ।

चरचा भेद चलंत, उक्ति समये सिर लाई ॥

माने न आप अनुमान यह, पाती लिख सु पठाइये ।

परिहैं प्रतीत प्रति-उत्तरन, मन न कछु मुरझाइये ॥ १३ ॥

हे महाराज ! हमें तो यह बात सच नहीं मालूम होती है, क्योंकि कुमारी किशोर रूप की है, वह ऐसा कवित्त कैसे बना सकती है ? पर यह तो कलाविद्वान् उन नायिकाओं ने ही आप को प्रसन्न देख कर इनाम की आशा से इस बात के भेद की चर्चा चलते देख खुद बना करके यह झूठी बात कही है । यदि आप हमारी बात न मानें तो जांच के लिए एक पत्र लिख कर वहां भेजें, प्रत्युत्तर आने पर प्रतीत हो जायगा । इस समय इसके बारे में चिन्ता न करें ॥ १३ ॥

सोरठा—निज उर कर निरधार, मित उकति सागर सुनें ।

आये सु राज दुवार, सभा विसर्जन बाग किय ॥ १४ ॥

मित्रों की बात सुनकर वैसा ही करने को अपने मन में रससागर ने निश्चय किया । सभा विसर्जन कर राजभवन पधारे ॥ १४ ॥

बीतत अहर कितेक, पाती लखी प्रवीण प्रति ।

बानी अहट विवेक, छंद सु मुत्तियदाम करि ॥ १५ ॥

कितने ही दिन बीतने के बाद महाराज ने विवेकपूर्वक सुन्दर बाणी में मोतीदाम छन्द रचकर प्रवीण के प्रति भेजने को एक पत्र लिखा ॥ १५ ॥

निज सु अनुग निरखंत, भायो भारतिनंद कवि ।

विषम सु सरनि बहंत, सबै बात समरथ वह ॥ १६ ॥

इसके बाद अपने मित्रों पर नजर डालने पर पास बैठे हुए भारतीनंद कवि पर दृष्टि डाली, क्योंकि इस कठिन मार्ग पर चलने में सब प्रकार वही समर्थ है ॥ १६ ॥

अथ भारतिनंद वर्णन—छप्पय.

करता काव्य नवीन, नाद वीणादि बजावन ।

राजभेद रिक्तवत, रीत संगीत सु गावन ॥

लावन उक्ति अनेक, टेक धारित विवेक मन ।

षट भाषा षट शास्त्र, वेद परवीण पुरानन ॥

नाना प्रकार परपंच कर, वीर धीर गंभीर मति ।

साहस उदार सरसति प्रसन्न, जासु समय तैसी प्रकृति ॥ १७ ॥

नवीन काव्य की रचना करने वाला, वीणादि वाद्य का बजाने वाला, राज-

भेद से सुश्रु करने वाला, संगीत शास्त्र के अनुसार गाने वाला, युक्तिपूर्वक अनेक बातें लाने वाला, विवेकी, छः भाषा और छः शास्त्रयुक्त सब वेद तथा पुराण में प्रवीण, नाना प्रपंच का रचने वाला, वीर, धीर तथा गंभीर मति वाला, उदार और जिसके ऊपर सरस्वती प्रसन्न है साहसी तथा समयानुसार प्रवृत्ति रखने वाला ऐसा भारतीनंद है ॥ १७ ॥

तासु बुलाय इकंत, चिंत आयस उच्चारी ।

जनपद पुर नृप नाम, बात सबही विस्तारी ॥

कुमरी कलाप्रवीण, नाम कहि पत्र दियो कर ।

प्रच्छन्न पठवन भेद, और लावन प्रति-उत्तर ॥

केते उपाय पुनि पुनि पृथक, कवि मुनियत सागर कये ।

भारतीनंद मन में मुदित, प्रति पयान रहस भये ॥ १८ ॥

ऐसे भारतीनंद कवि को एकान्त में बुलाकर कुमार ने अपने मन का आशय कहा और जहां भेजना है उस देश, शहर और राजा का नाम वगैरह विस्तारपूर्वक बताया और कहा कि उस राजा की कलाप्रवीण नाम की कुमारी है उसे यह पत्र देना है । इस प्रकार समझा कर, पत्र दिया और गुप्त रीति से वहां पहुंचाने तथा उत्तर के आने का भेद और दूसरी बातें व उपाय महाराज ने बारंबार कवि भारतीनंद को समझाया, जिससे भारतीनंद मन में अति प्रसन्न हो जल्दी से चलने को तैयार हुआ ॥ १८ ॥

दोहा-करि वंदन महाराज को, पत्र लियो सिर धार ।

हय गय सिबिक सबीर सजि, तुरत होत तैयार ॥ १९ ॥

फिर कवि ने महाराज की वंदना कर, पत्र को मस्तक पर चढ़ाया और थोड़ा, हाथी, पालकी, तंबु वगैरह सामग्री से सज कर जाने को तैयार हुआ ॥ १९ ॥

गाहा-सागर प्रथम सु बिरहा, चरचा भित पत्र पठवन विधि ।

एकबीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २० ॥

पहिले रससागर की विराट् दशा, फिर मित्रों से की हुई चर्चा, फिर पत्र भेजने की हकीकत जिस में है, ऐसी इस प्रवीणसागर की इक्कीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

लहर ११ मी

अथ भारतीनंद कवि मनछापुरी पयान प्रसंगे यथा—दोह्र.

शत कुजाक अस शत उमै, इक इम सिबिक समान ।

रख हुकम कविराय किय, पुरी मनछ पयान ॥ १ ॥

सौ सिपाही, दो सौ घोड़ा, एक हाथी, एक पालकी, इतनी सामग्री साथ में देकर महाराज ने कविराज को पत्र सहित मंछापुरी जाने की आज्ञा दी । १ ॥

सोरठा—निशि हास विकास, कर्त्त बृंद कविको चलिय ।

बहै बर्त्म प्रति मास, पुगिय मनइछह पुरी ॥ २ ॥

रात दिन हास्य विनोद की बातें करते हुए कवि और उनके साथ के मनुष्य चलते २ एक मास के बाद मंछापुरी पहुंचे ॥ २ ॥

छप्पय—वन उपवन आवर्त्त, सुमर शीतल शरिता सर ।

गिरत कुंज विच दुर्ग, अटा उमड़ित तिहि ऊपर ॥

कनक कुंभ सिर केतु, भुक्ति जर जवनि भरोखन ।

द्वार द्वार दुंदुभी, मनहु गर्जित घटा सु घन ॥

द्वाराधिपाल सासन सु मग, पुरह पोर परबेस किय ।

देबस्त 'समे-दानह' उदित, एकांतिक ग्रह उचारिय ॥ ३ ॥

उस शहर के चारों तरफ फैले हुए वन और उपवन उन में नदी और तालाब सुन्दर ठंडे पानी से भरे हुए हैं । वहां वृक्षों की घटा में मनोहर किला दिखाई पड़ता है । किला के अन्दर अट्टालिकाएं सुशोभित हैं । उन अट्टारियों पर सुवर्ण-कलश शोभायमान हैं । उन कलशों पर ध्वजा फहरा रही हैं । अट्टारियों के झरोखों पर लगे हुए जरी के परदे झूल रहे हैं, हर एक मंदिर के द्वार पर नगारा बज रहा है, जो मानो बादलों में मेघमर्जना कर रहा हो । ऐसे मनोहर नगर के द्वार पर पहुंच कर द्वारपाल की अनुमति लेकर नगर में प्रवेश किया । उस समय सूर्य अस्त हो रहा था, चिराग जल गए थे । एकान्त स्थल देख कर वहां उतारा (डेरा) किया ॥ ३ ॥

दोहा—इत रहिना कहिना न कहुं, मतो दुरावन काज ।

सौदागर बाने सु कवि, लगे खरीदन बाज ॥ ४ ॥

यहां रह कर किसी को कहना नहीं, क्योंकि अपना भेद बतलाना नहीं है
ऐसा विचार कर सौदागर के बहाने कविराज घोड़ा खरीदने लगे ॥ ४ ॥

बाज विलोकत हैं सु कवि, विध विध करत विचार ।

साहित्य मत सोधत सखी, पाती पठवन धार ॥ ५ ॥

कविवर सौदागर के बहाने नगर में फिर कर घोड़े देखने शुरू किये, परन्तु मन में अनेक प्रकार के विचार करते हैं । साहित्यशास्त्र के मतानुसार नायिकाभेद के ग्रन्थों में जो चार प्रकार की सखियों और अनेक प्रकार की दूतियों का वर्णन है, ऐसी कोई सखी (दूती) मिले तो पत्र भेज सकें, ऐसा विचार कर ऐसी कोई सखी (दूती) ढूढ़ते हैं (यहां पर मूल दोहा में सखी लिखा है परन्तु 'दूती' चाहिए, क्योंकि यह कार्य दूती का है, इसी प्रकार कर्त्ता का भी यही सिद्धान्त है जो नीचे के सवैया से स्पष्ट प्रकट होता है, परन्तु मूल से 'दूती' के स्थान पर 'सखी' लिखा गया ऐसा प्रतीत होता है) * ॥ ५ ॥

सवैया—धाइ जनी अरु नाइ नटी, सु परोसनि राज प्रवेसनि हेरें ।

चूरहि हेरि सुनारि बराइनि, मालानि सिद्धपि में मन फेरें ॥

ब्रह्मसुता पटवानि चितेरनि, रामजनी सु संन्यासिनि टेरें ।

बाज के व्याज सु राजकी शासन, सोधें सखी सब काज निवेरें ॥ ६ ॥

धाव्य, दासी, नायन नटी और पड़ोसन बगौरह जो राज दरबार में जाती

* गुजराती टीकाकार की यह टिप्पणी यथार्थ नहीं है, यदि मूल पाठ में 'दूती' शब्द रख दिया जाय तो दोहा में 'यति भंग' दोष आजायगा, एक मात्रा बढ़ जायगी, जिसकी उस में खपत नहीं, अतएव 'सखी' शब्द ही ठीक प्रतीत होता है । हां नीचे के सवैया में जो अंत के चरण में 'सखी' शब्द है वहां 'दूती' होना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि 'सखी' शब्द रखने से वहां एक मात्रा की कमी हो रही है । यह ठीक है कि ग्रन्थकर्त्ता ने 'दूती' और 'सखी' दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये हैं । (टीकाकार)

आती हों ऐसी स्त्रियों को ढूँढ़ते हैं । मनिहारिन, सोनारिन, तम्बोलिन, मालिन और शिल्पिनी आदि स्त्रियों में मन फिराने को देखते हैं । तथा ब्राह्मणी, पटवा की स्त्री, चित्तारी, जनाने में गाना नाचना जानने वाली नायिकाओं और संन्यासिनी यानी आर्चा (जैनसाधु हो गई हुई स्त्री) आदि की ओर देखते हैं, इस प्रकार घोड़ा खरीदने के बहाने नगर में फिर कर महाराज की आज्ञानुसार कार्य पूरा करने के लिए सखी (दूती) की शोध करते हैं ॥ ६ ॥

छप्पय—लए बाज दस बीस, भए दस द्वादसही दीन ।

पठवन पत्र प्रवीण, मतो सोधत नित ही मन ॥

गुनगहीर कवि सूनु, उक्तिवर नाम कहाये ।

सोय शहर निरखंत, गली उनहीं चढ़ि आये ॥

बूमंत तास सु कवि सुनें, नाम धाम निरधार किय ।

परसे सु आय सिबिका सुतजि, उन आसन सनमान दिय ॥ ७ ॥

भारतीनंद कवि ने दस बीस घोड़े खरीदे जिसमें दस बारह दिन लग गए, परन्तु कोई कार्य नहीं हुआ जिससे लाचार होकर मन में हमेशा कलाप्रवीण के पास पत्र पहुंचाने की युक्ति सोचते रहते । इतने में उस नगर के गुणगंभीर नामक कवि के पुत्र उक्तिवर नामक कवि नगर में फिरने निकला । नगर की चर्चा देखते सुनते उस गली में आ पहुंचा जहां भारतीनंद कवि उतरे हुए थे । पूछ तांछ करने से उन्हें मालूम हुआ कि नेहनगर निवासी भारतीनंद कवि यहां आए और उतरे हुए हैं । तब पालकी में से उतर कर भारतीनंद कवि से मिले । भारतीनंद ने भी उनका सन्मान करके बैठाया ॥ ७ ॥

दोहा—बूमयो तितही उक्तिवर, भारतिनंद सु भेव ।

कहो सिधारत आप कित, कछु कारण कहि सेव ॥ ८ ॥

उक्तिवर कवि ने भारतीनंद कवि से पूछा कि आप किस कारण से और किस के काम कहां जा रहे हैं ? सो कहिये ॥ ८ ॥

उत्तर भारतीनंद दिय, किहि सेवन कछु काज ।

बाज खरीदन पट्टहिय, रससागर महाराज ॥ ९ ॥

भारतीनन्द ने उत्तर दिया कि कुछ कार्य्यवश यहां आया हूं और वह यह कि महाराज रससागर ने घोड़ा खरीदने को भेजा है ॥ ६ ॥

कही भारतीनन्द कवि, बाज खरीदने बान ।

बुझो तब पुनि उक्तिवर, परस्वन अश्व प्रमान ॥ १० ॥

जब भारतीनन्द कवि ने घोड़ा खरीदने की बात कही तो उक्तिवर कवि ने घोड़ा की परीक्षा का प्रमाण लक्षण सहित पूछा ॥ १० ॥

अथ उक्तिवरोक्त-छंद चंद्रायणा.

उत्तम मध्यम नीच, कनिष्ठ कहाइये; किहि जनपद उत्पन्न, शुद्ध सु बताइये । द्विज छत्री अरु वैश, शूद्र क्यों जानिये; क्यों सु भये उत्पन्न, आदि अनुमानिये । अंग रंग की खोटी, किती विधि की कहें; अमरिकान के भेद, अशुभ को अंगहें । सुभंग रंग शुभ भृंग, किते तन लेखिये; सदा व्याधि अभिधान, सु कौन परेखिये ॥ ११ ॥

उत्तम, मध्यम, नीच और कनिष्ठ किसको कहते हैं ? किस देश में पैदा हुआ घोड़ा सरस कहलाता है ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये जातियां घोड़े में कैसे जानी जाती हैं ? और वे किन २ से उत्पन्न हुए हैं यह जानने का अनुमान कहिए । शरीर के रंग को खोट कितनी है, किन अंगों में भंवरी अशुभ मानी जाती है और शरीर में कौनसा रंग और कौनसी भंवरी हो तो उसका कितना अंग उत्तम समझा जाता है, निरंतर उत्पन्न होने वाले रोग और उनकी परीक्षा की विधि भी बतलाइए ॥ ११ ॥

अथ भारतीनंदोक्त-दोहा.

शालिहोत्र ऋषिराज कृत, अश्वन भेद अपार ।

जो बृहत्त तुम उक्तिवर, कहूं संक्षेप उदार ॥ १२ ॥

तब भारतीनन्द कवि ने कहा कि शालिहोत्र नामक ऋषिराजकृत ग्रन्थ में घोड़ा की परीक्षा के अनेक भेद कहे गए हैं, परन्तु हे उक्तिवर कवि ! तुमने जो पूछा है उसे संक्षेप से मैं कहता हूं, सुनिए ॥ १२ ॥

अथ अश्व उत्तमादि चतुर जातिभेद-छप्पय.

बाज तुलान तुषार, यहै उत्तम जाने सहि ।

गोगक अरु केकान, पट्टहारी मध्यम कहि ॥

राजसलथ सामजा, उत्तरा नीच कहावे ।

सिन्धुपार सावरा, गोहोर कनिष्ठ बतावे ॥

चत्र जाति भेष द्वादश भए, अन्य जनपद मिश्रित रहें ।

काजे परेख लीजे सु हय, शालिहोत्र ऐसे कहें ॥ १३ ॥

बाज, तुलान और तुषार ये घोड़ा की तीन उत्तम जाति हैं । गोगय, केकान कान और पट्टहारी ये मध्यम कही गई हैं । राजसलथ, सामजा और उत्तरा ये तीन नीच जातियाँ हैं । सिन्धुपार, सांवरा और गोहोर ये कनिष्ठ कही गई हैं । इस तरह चार जाति के बारह भेद हुए और उनमें अन्य देश के भी मिल कर मिश्रित हो जाते हैं, इसलिए शालिहोत्र मुनि कहते हैं कि उनमें से परीक्षा करके घोड़ा खरीदना चाहिए ॥ १३ ॥

अथाश्वचतुर्वर्णोद्भव परीक्षा भेद-छप्पय.

जल उद्भव द्विज पुष्प, गंध मंगल असवारी ।

अग्नि क्षत्रि तन अगर, कलह चटियत जयकारी ॥

मरुत बैस घृत गंध, सहज गमनं सुखदाई ।

भूमि शूद्र मधु मकर, यहै आखेट उपाई ॥

मुख बोर ब्रह्म पानी पियत, खुर लगाय खत्री लहें ।

खेचंत बार वैसह अधुर, शूद्र सदा डरपत रहें ॥ १४ ॥

जल में से जिसका उद्भव है उसे ब्राह्मण जाति का घोड़ा जानना, उसके शरीर की गंध पुष्प के समान सुवासना वाली होती है और मांगलिक कान्ध्यों में सवारी के योग्य शुभ है । अग्नि से जिसकी उत्पत्ति है वह क्षत्रिय जाति का घोड़ा है, उसके शरीर से अगर की गंध आती है और वह लड़ाई में विजय देने वाला होता है । पवन से जिसकी उत्पत्ति है वह वैश्य जाति का घोड़ा है, उसके शरीर से घृत की गंध आती है, वह सहज कान्ध्यों में सवारी

के योग्य सुखदायी है । जमीन में से जिसकी उत्पत्ति वह शूद्र जाति का घोड़ा है, उसके शरीर से मगरमच्छ की वास आती है, उसकी सवारी शिकार में उत्तम फल देने वाली है ॥

(पानी पीते समय की परीक्षा) ब्राह्मण जाति का घोड़ा मुंह डुबो कर पानी पीता है, क्षत्रिय जाति का घोड़ा सुम लगा कर पानी पीता है । वैश्य जाति का घोड़ा होठ से खींच कर पानी पीता है और शूद्र जाति का घोड़ा हमेशा पानी पीते डरता रहता है ॥ १४ ॥

अथाश्वअंग खोट भेद-छंद हाकली.

करनं तीन त्रीकरन कहे, विकराली रद विषम वहे ।

जिहि दंता बढि घटि बरने, रदभंगा तिहि ह्य सु भने ॥

अहि आकार धरनि निरखे, अहि मृशल्य तुरंग परखे ।

फरके अंग सु अशुभ सदा, अधकेश इत उत दुखदा ॥

जिहि कंठ वृषसम कुमुरा, सुरगी तास सु अतिहि बुरा ।

थन सौ बाज कहत थनही, यह एकुंड वृषन इकी ॥

उरधा पुंछ उसव चमरी, यह एकादश प्रकृति बुरी ॥ १५ ॥

तीन कान वाले घोड़े को त्रिकर्ण कहते हैं । विकराल दांत वाले घोड़े को विषम कहते हैं, जिसके दांत बढ़ते घटते रहते हैं उसे रदभंग घोड़ा कहते हैं, जिसके शरीर में सर्प आकार हो उसे अहि कहते हैं, जो सामने जमीन देखता रहता है उसे मृशल्य कहते हैं, जिसका अंग हमेशा फरकता रहता है उसे अशुभ कहते हैं, घोड़ा के आगे आधा केश होवे तो वह दुःखदायक है, जिसके कंठ में बैल के समान काली कामली हो उसे सुरगी जाति का घोड़ा जानना, यह अत्यन्त खराब है । जिसके स्थन हो उसे थनही कहते हैं, एक वृषण वाले को एकांड कहते हैं । जिसकी पूंछ ऊंची रहती है, उसे चमरी कहते हैं, इस प्रकार उपरोक्त ग्यारह प्रकार की जाति वाले घोड़े बुरे जानना चाहिए ॥ १५ ॥

अथ अश्वरंग खोटी भेद-छंद रोला.

श्वेत रंग चत्र पाय, खास जमदूत सु आखे; भस्म रंग तन रसन,

सोय भस्मी सहि भाखें । एक रंग अनि रंग, बिन्दु पुष्पाक्ष कहावें; सर्व रंग मिल बिंदु, सोय मिश्रांग बतावें । असित तालु जिहि सोय, कृष्ण तालु लखि लीजे; श्वेत रंग मुख श्याम, काल मुख सोय कहीजे । और रंग दाहिनै, पाय इक सेत सु मृशल; और रंग में जंघ, शाम सो कहे अमंगल । आन रंग में लाल, टीक सो अरुनंजन कहि; आनि रंग में टीक, शाम सो कालंजन बहि । आन रंग सित टीक, सेत अंजनी सु जानो; एन टीक अनि रंग, पय अंजनी बखानो । श्वेत तिलक बिच अंत्र, तिलक तूटह वह ठाने; बायें दायें अधरंग, आनि अध अंगी माने । ओर रंग चत्र माय, सेत कंचुकी कहत तिहि; और रंग वह मगट, डोर शीशतें पुछ जिहि । अरुन रंग सित बिंदु, पुहुप कच्छी वह धारे; एक रंग आरुनी ताय; तमार सु बिचारे । आनि रंग इक सेत, अग्रनासा सो दूतहि; बाज अंगमें रंग, खोट उन ईश यहै कहि ॥ १६ ॥

जिस घोड़े का शरीर श्वेत रंग का हो और चारों पैर काले रंग के हों उसे यमदूत कहते हैं । जिसके शरीर और जीभ का रंग राख के समान हो उसे भस्मी कहते हैं, जिसका सारा शरीर एक रंग का हो और दूसरे रंग के धब्बे हों उसे पुष्पाक्ष कहते हैं, जिसके अंग पर सब रंग के मिले हुए बिंदु हों उसे मिश्रांग कहते हैं, जिसके तालू का रंग काला हो उसे कृष्णतालु कहते हैं, शरीर का रंग श्वेत और मुख काला हो ऐसे घोड़े को कालमुख कहते हैं, जिसका शरीर चाहे किसी रंग का हो और दाहने पग का रंग सफेद हो उसे मृशल कहते हैं, शरीर का रंग चाहे जैसा हो एक जंघा का ही रंग काला हो उसे अमंगल समझना, शरीर का कोई भी अन्य रंग हो, मस्तक पर लाल तिलक हो उसे अरुणांजन कहते हैं । अंग का रंग कोई भी अन्य हो और मस्तक पर काला तिलक हो उसे कालंजन कहते हैं । अंग का कोई भी दूसरा रंग हो और मस्तक पर श्वेत तिलक हो उसे श्वेतांजन समझना । शरीर का रंग और कोई भी दूसरा हो और मस्तक पर पीले मृग का रंग का टीका हो उसे पद्यांजन कहते हैं । सफेद टीका हो परन्तु बीच में अंतर हो उसे तिलकतुट कहते हैं ।

जिस्के दोनों कानू अलग २ रंग के हों उसे अर्धांगी कहते हैं । शरीर का रंग और होमे और चारों पैर सफेद हों उसे कंचुकी कहते हैं, शरीर का चाहे जैसा कोई दूसरा ही रंग हो और माथे से पूछ तक डोर हो उसे भगट कहते हैं । शरीर का रंग लाल और सफेद धब्बे हों उसे पोहपकछ कहते हैं, जिसके शरीर का रंग कोई भी दूसरा हो केवल नाक पर सफेद रंग हो उसे दूत कहते हैं । इस प्रकार घोड़े के सफेद के रंग कौहरह से शमलिहोत्र में ये उन्नीस दोष कहे गए हैं ॥ १६ ॥

अथाथ अशुभ भ्रमरिकास्थानभेद—छप्पय.

हृदय कर्ण कटि नाभि, कपोलह वाम कहीजे ।

कुच पांसु पुनि भाल, त्रिबालि नीचे लखि लीजे ॥

जंघ पुच्छ परि गुह्य, पुच्छ ठंपित गूदह गनि ।

कुकुदि पृष्ठ कुरपेर, पादु उदरंतरहि भनि ॥

कक्षांत और आधुर अग्र, बोश भ्रमर अशुभा कहें ।

अनुमान खोटि एती सु तजि, लहनहार सिंघव लहें ॥ १७ ॥

छाती में, कान में, कटि में, नाभि में, बायें कपाल में, कुच में, भाल पर, त्रिबाली के नीचे, जंघा पर, पूछ के ऊपर, गुह्य इंद्रिय पर, पूछ से ढकी हुई गुदा-इंद्रिय पर, ककदु पर, खवे पर, अगले पांव के घुटने पर, पांव में, पेट के बीच, आँख के पास और होठ के पास ये बीस स्थान भंवरी के लिए अशुभ हैं । अनुमान से इतने खोट छोड़ कर घोड़ा लेने वाले घोड़ा लेते हैं ॥ १७ ॥

अथ अशुभरंग भेद—छन्द पद्मरी.

बन पीत सेत पद नील नैन, यह चक्रवाक अस भ्रेष्ठ चैन ।

वपु जंबु रंग पद चंद्र सेत, यह मालिकाच फल सुभग देत ॥

सेतंग मध्य सब रंग चित्र, यह श्यामकर्ण सबसे पवित्र ।

अन्य रंग पाय मुख सेत होय, माखंत पंचकल्याण सोय ॥

मुख भाल पुच्छ पद हृद सुक्रंत, सित अष्ट अष्ट मंगल कहंत ।

शुभ पंच रंग एही प्रमाण, नृप आसनीक सोधे सयान ॥ १८ ॥

शरीर पीला, पांव श्वेत और आंखें नीली हों तो वह चक्रवाक घोड़ा अति श्रेष्ठ है, शरीर का रंग जामुन के समान और पैर चन्द्रमा के समान श्वेत हों तो वह मलिकान्त घोड़ा उत्तम फलदाता है । वर्ण श्वेत और दूसरे कई रंग के चिह्न हों तो वह श्यामकर्ण घोड़ा अन्यों से उत्तम कहा जाता है । शरीर का रंग और कोई भी दूसरा हो और पांव व मुख सफेद हो उसे पंच-कल्याणी कहते हैं । सुंह, कपाल, पूछ, पग और छाती ऐसे अंग सफेद हों उसे अष्टमंगल कहते हैं । ये उपरोक्त पांच प्रकार के घोड़े राजा के बैठने योग्य हैं, इन्हें विचक्षण लोग देख कर खरीदते हैं ॥ १८ ॥

अथाश्व भ्रमरीका शुभ अस्थान भेद-छप्पय.

माल शुद्ध त्रय सुभरा, सुभग शशि कला भाल महि ।

शुद्ध कंठ त्रय सुभग, कंठ इक चिंतामणि कहि ॥

कंध परत त्रय सुभग, सुभग दचह कपोल पर ।

श्रवणमूलपै सुभग, सुभग सोहत त्रिवली सर ॥

पुनि तालु सेत मध्यह सुभग, यह नव भृंग निहारिये ।

ताजि अशुभ भेद शुभ संग्रहें, बाज खरीद विचारिये ॥ १९ ॥

जिसके कपाल में तीन भंवरी हों वह उत्तम घोड़ा है, चन्द्रकला के समान उज्ज्वल तिलक के स्थान पर भंवर का चिह्न हो तो वह शुभ है, कंठ में जिसके तीन भंवरी हों तो वह उत्तम है और कंठ पर एक भंवर के चिह्न वाला घोड़ा भी श्रेष्ठ कहा जाता है, उसे चिन्तामणि कहते हैं । कान के ऊपर तीन भंवरी हों वह शुभ है, जिस घोड़ा के दाहिने जंघा पर भंवरी हो वह श्रेष्ठ कहा जाता है, इसी प्रकार कान के पास भंवरा हो तो वह भी श्रेष्ठ है ।

जिसके त्रिवली के ऊपर भंवरा हो उसे भी अच्छा समझना और सफेद तालू में पड़ा हो तो वह भी उत्तम गिना जाता है । इस प्रकार नव स्थान पर भंवरा देख कर शुभ लक्षण वाले का संग्रह करना चाहिए । इस प्रकार घोड़ा खरीदते समय इनका विचार करना चाहिए ॥ १९ ॥

दोहा—नाभि कंठ गल नासिका, पाय चत्र पर होय ।

भाल अमरिका तीन मुध, जयमंगल कहे सोय ॥ २० ॥

नाभि, कंठ, गाल, नाक और चार पग के ऊपर और कपाल पर जिसके तीन भंवरा हों ऐसे घोड़े को जयमंगल कहते हैं, वह अति ही शुद्ध समझा जाता है ॥ २० ॥

ऐसे भेद अनेक हैं, अश्व शुभाशुभ लच्छ ।

तामहि तत्व सु संग्रहे, कहि दीन्हें परतच्छ ॥ २१ ॥

इस प्रकार घोड़ों के शुभ अशुभ लक्षणों के अनेक भेद हैं उनमें से सार २ ग्रहण करके उनका वर्णन किया है ॥ २१ ॥

अथाश्व सदा व्याधी भेद—दोहा.

बोहोतर व्याधि सु बाज वपु, आनहि आन निदान ।

विक्रय लहत बिचारवो, सो द्वादश अभिधान ॥ २२ ॥

घोड़े के शरीर को बहुत सी व्याधियां होती हैं, उनके पृथक् २ कारण हैं, परन्तु घोड़ा खरीदने वालों को मुख्य बारह रोगों का विचार करके लेना चाहिए । वे इस प्रकार हैं ॥ २२ ॥

अथ द्वादश व्याध्याभिधान भेद—चौपाई.

पेट-कीट पखशूल कहाई, लोही लघू पित्त अरु बाई ।

कम खुराक सत पुरषी घासा, आंसू भरनवार चल नासा ॥

भाल शूल पुनि मुख जलधारा, व्याधि विलोकि खरीदनहारा ॥ २३ ॥

पेट में कृमि, पक्ष में शूल, मूत्र में लोहू का आना, पित्त और बादी का विचार, खुराक का कम खाना, शरीर में खुजली, खांसी, आंसू का आना, नाक से पानी जाना, कपाल में शूल और मुंह में पानी की लार टपकना, ये बारह व्याधि घोड़ा लेने वाले को पहिले देख लेना चाहिये ॥ २३ ॥

दोहा—भारतिनंद सु कवि कही, बिधी परेखन वाह ।

उर अति रीझे उक्किवर, निज मुख कीन सराह ॥ २४ ॥

भारतीनंद कवि ने घोड़ों की पहिचान की विधि का वर्णन किया, इससे कवि उक्तिवर अति प्रसन्न हुआ और स्वमुख से भारतीनंद की प्रशंसा करने लगा ॥ २४ ॥

गाहा-कवि मनंछापुरि गमनं, चरचा अरचा उभय अश्वभेद विधि ।

उभय विंश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

भारतीनंद कवि का मंछापुरी में जाना, वहां उक्तिवर कवि के साथ मिलाप और घोड़ों के लक्षण व शुभाशुभ भेद सम्बन्धी चर्चा करना यह प्रवीणसागर की बाईसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥



लहर १३ वी ।

अथ भारतीनंद उक्तिवर चर्चा प्रसंगो यथा भारतीनंदोक्त-छप्पय.

किते राज संतान, किते अन्तःपुर भाषत ।

किते द्वार देहुरी, किते अंदर पहिरायत ॥

राजसभा कब रचें, कबें परसंत विदेशी ।

कुमर पास को रहे, कौन अंतर परवेशी ॥

एते सु भेद कवि उक्तिवर, भिन्न भिन्न भंखों तुम्हें ।

परसवे नीतिपालह नृपति, है उमेद हिय में हमें ॥ १ ॥

घोड़ा की परीक्षासम्बन्धी चर्चा हो जाने पर भारतीनन्द कवि ने उक्तिवर कवि से पूछा कि आपके राजा के सन्तान (लड़के) कितने हैं, जनाने में रानियां कितनी हैं ? दरबार में द्वार व खिड़कियां कितनी हैं ? इसी प्रकार राजमहल में पहरा देने वाले सिपाही कितने हैं ? महाराज स्वयं कचहरी कब करते हैं ? बाहर के आने वाले मिलना चाहें तो कब मिलते हैं ? महाराज के कुमार के पास कौन २ रहते हैं ? अंतःपुर में जाने आने की छूट किन २ को है ? हे उक्तिवर कवि ! इतना भेद आप विस्तारपूर्वक पृथक् २ कहिये, कारण कि महाराज नीति-पाल से मिलने की मेरे हृदय में बड़ी लालसा है ॥ १ ॥

छंद पद्धती

भारतीनंद बूझी सु मोय, संछेप बात बरनों सु सोय । नृप नीतिपाल औतार इंद्र, माहेश मोज सेना समंद । नर इंद्र सोर उदवाहि नाफु, रनि पासवानि नृत्तिक अपार । नंदनी एक नृप एक नंद, दुजराज बिंब दीपति दिनंद । सुत नाम रुद्रसेनह रसाल, बर रूप कलापरवीण बाल । दरबार द्वार देहुरी सात, पंच पंच पावक रहात । परकार राज गिरदी प्रमाणा, धित सहस पंच प्रति थान यान । रवि घोस राज सदसी रचंत, वासी विदेस तिहि दिन प्रसंत । उमराओ वृंद आवे अमात, नायका नृत्य गायका गात । छवि छाहगीर नग जड़ित छत्र, चिहुं दिशा पासवान सुविचित्र । बोलंत

बिरद सु कवि सु बान । जेष्टी सुधार निज बान बान । दिन चत्र घरी
मंडल रचंत, जामनो जाम अध वीश्रजंत । देहुरी सात लंघित हुआल,
वहें कौन पुरुष अभिधान बाल । ता अंत्र फेर देहुरी तीन, पहिरात राज
किंकरी कौन । उनहिं सु शस्त्र बंधे अखंड, पहिराव पुंस मूरति प्रचंड ॥२॥

उक्तिवर कवि ने भारतीनन्द कवि से कहा, हे कविराज ! आपने जो बात मुझसे पूछी है वह संक्षेप से कहता हूं, उसे सुनो—ये नीतिपाल राजा इन्द्र के अवतार हैं, अर्थात् देवों में शंकर के समान दातार हैं, उनकी सेना समुद्र के समान अपार है । मनुष्यों में इन्द्र के समान उस राजा नीतिपाल के सोलह व्याहता रानियां हैं, इनके अतिरिक्त हजूर में रहने वाली और नृत्य करने वाली नायिकाओं का तो पारावार नहीं है । राजा के एक कुमार और कुंवरी है, वे चन्द्र सूर्य के समान कांतिकान हैं । कुमार का नाम रुद्रसेन है और राजकुमारी का नाम कलाप्रवीण है । राज दरबार में सात द्वार और सात ड्यौढ़ियां हैं और हरेक डेवड़ी पर पांचसौ सिपाहियों का पहरा है । राजमहल के चारों ओर पांच हजार योद्धा रक्षा पर नियुक्त हैं । रविवार के दिन महाराज सभा करते हैं उसी दिन विदेशियों से मुलाकात करते हैं । सभा में अनेक उमराव और प्रधान आकर बैठते हैं, वहां नायिकायें नृत्य करती हैं, गवैये गान करते हैं । महाराज के ऊपर उस समय रत्नजटित छत्र शोभा पाता है और चारों ओर हजूर लोग अदब से खड़े रहते हैं । कवि लोग छंद कवित्त में विरुदावलि बोलते हैं । छड़ीदार लोग हाथ में हीरा माणिक जड़े हुए स्वर्ण-मय छड़ी लिए अपनी २ जगह पर खड़े रहते हैं । दो पहर बाद चार घड़ी दिन रहते सभा भरती है और अर्द्धरात्रि पर विसर्जन होती है । ऐसा बलवान् नामधारी पुरुष कौन है जो राजदरबार की सात ड्यौढ़ियां पार कर सके । अर्थात् एक छोटा बालक भी अंदर नहीं जा सकता । उसके अन्दर तीन चौक हैं, जहां राजकिंकरियां पहरा देती हैं । वे सदा हथियारबन्द लैस रहती हैं । वे पुरुष की भांति पोशाक पहिनती हैं जिससे वे और भी भयंकर और बलवान् दिखाई देती हैं ॥ २ ॥

दोहा—रुद्रसेन महाराज निज, महलन करत बिहार ।

आवृत्त निज सम शत उभय, कवि उमराव कुमार ॥ ३ ॥

राजकुमार रुद्रसेन अपने पिता के उमरावों और कवियों के अपनी अवस्था वाले कुमारों से आवृत्त क्रीड़ा करते हैं ॥ ३ ॥

चौपाई—कुमरी कलाप्रवीण कहावे, राजसुता आवर्त्त रहावे ।

शील रूपकुल बेस सहेली, बाल वृथ जांबुनद बेली ॥

क्रीडत बाग एकंत अटारी, कहि हजूर एक ब्रह्मकुमारी ।

एती बात उक्तिवर भाखी, भारतिनंद भेद उर राखी ॥ ४ ॥

राजकुमारी जो कलाप्रवीण कहलाती है वह सदा राजकन्याओं से घिरी रहती है और स्वभाव, रूप, कुल और पोशाक में अपनी सहेलियों को समान रखती है और उन सखियों के मध्य में वह स्वर्णलता के समान शोभित है । वह बाग अथवा एकान्त अटारी पर क्रीड़ा करती है । उसके हजूर में एक ब्राह्मणकुमारी रहती है । इतनी बातें उक्तिवर कवि ने कही और भारतीनन्द कवि ने अपने हृदय में धारण की ॥ ४ ॥

दोहा—राजरीत अनुमान किय, पतँग न पावे पार ।

भारतिनंद अनंद भो, सुनियत ब्रह्मकुमार ॥ ५ ॥

राजरीत के ऊपर विचार करके यह मन में निश्चय किया कि राज दरबार में सूर्य की भी गति नहीं है, परन्तु यह विचार कर भारतीनन्द कवि को बड़ा आनन्द हुआ कि कलाप्रवीण की हजूर में एक ब्रह्मकुमारी भी रहती है ॥ ५ ॥

चतुरानन निहवें किये, कुसुमावलि अभिधान ।

एते में उठि उक्तिवर, आयस लई पयान ॥ ६ ॥

चतुरानन और उसकी पुत्री कुसुमावलि का नाम भारतीनन्द कवि ने मन में याद रक्खा । इतने में उक्तिवर कवि ने उठ कर जाने की आज्ञा मांगी ॥ ६ ॥

छप्पय—वही रैन वरतंत, चित्त कविराज मतो किय ।

अनुग मित्र आमात, अवहमोचन सिच्छा दिय ॥

कल्लो सिद्ध परछन, बसत तित भो हम जावन ।
 सोय जोग आयसा, होय हैगो इत आवन ॥
 इतनी उचारि आराम किय, अंत जाम निश उठि शयन ।
 निज साज मतेवत संग लिय, एकाकी कीन्हों गमन ॥ ७ ॥

रात पड़ी तब कविराज ने अपने मन में निश्चय करके अपने नौकर मित्र व प्रधानमंडल को बुला कर कहा कि ' एक महात्मा गुप्त स्थान में रहते हैं, वहां मेरा जाना होगा और वहां से वे फिर जब आज्ञा देंगे तब आना होगा । इतना कह कर आराम किया और पिछले पहर रात बाक़ी रही तब जगे और आवश्यक सामान लेकर चुप चाप निकल पड़े ॥ ७ ॥

अथ छंद मुकुदाम

उठे निश जाम रहे कविराज, लियो निज संग मतेवत साज । प्रकार सु खोलित रच्छक द्वार, गये इक कोस इकंत उजार । महा सरिता जल मंजिय अंग, रच्यो नखमीख विभूतिय रंग । त्रिपुंड्र सु केसर बंदन बिंद, दिये उर मध्य बढ्यो सु अनंद । अछादन अम्बर और कुपीन, करें माधि इंड कमंडल लीन । कस्यो काटिबंध सु मेखल धार, लई कर सिंगिय किन्नरि लार । उचारत तार सु अंचल हाथ, मनो नवसे निकसे इक नाथ । धरे अवतंसन एन अजीन, चले पुर कन्यक होष अचीन । प्रवेशन प्राप्त कियो पुर ताम, गली चतुरानन बूझिय धाम । सु पुगिय बूझत बूझत पोर, उतैं द्विजमंडल हैं चहुं ओर । दियो दुज आसन तापस बंद, उचारित जोग सु आशिष छंद । तवें चतुरानन बूझिय बात, रहो किन आप कितैं लगि जात ॥ ८ ॥

जब एक पहर रात बाक़ी रही तब कविराज उठे और अपना आवश्यक सामान लेकर द्वारचक्षों ने ज्योंही द्वार खोला, शहर बाहर निकल पड़े और शहर से बाहर एक कोश पर उजाड़ स्थान में जा कर पास बहती हुई नदी में स्नान किया, शरीर पर भस्म लगाई, मस्तक पर केशर का त्रिपुंड्र व सिंदूर की बिंदी लगाई जिससे मन में बड़ी प्रसन्नता उन्हें प्राप्त हुई । ओढ़ने के लिए पास में

एक चादर रक्खी और शरीर पर कोपीन धारण किया, हाथ में दंड व कमंडलु लिया, कमर में डाभ का कटिवन्ध पहिना, हाथ में सिंगी, सारंगी और अचला लेकर ओंकार का उच्चारण करने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो नव नार्थों में से एक नाथ ही निकल आ रहे हों। कान में कुंडल पहिन, मृगचर्म धारण कर इस प्रकार अवधूत का वेश धारण कर लिया कि कोई पहि-चान न सके और फिर जंगल में से निकल कन्या राशि जो प्रवीण है उसके शहर की ओर चले और प्रातःकाल नगर में प्रवेश किया तथा चतुरानन ब्राह्मण की गली और घर पूछने लगे। पूछते २ उसकी पोल में पहुंचे। वहां आस पास बहुतसे ब्राह्मण बैठे थे। उन सबों ने तपस्वी की वंदना की और आसन दिया। योगी महाराज ने वेदमंत्र बोल कर आशीर्वाद दिया। चतुरानन ने विनयपूर्वक पूछा कि हे महाराज ! आप कहां रहते हैं और कहां को पधार रहे हैं ? ॥ ८ ॥

अथ संन्यास्युक्त-दोहा.

रहें ब्रह्म की सृष्टि में, चहें ब्रह्म को स्थान ।

कह जाने कित जायेंगे, प्रेरनहार प्रधान ॥ ९ ॥

सिद्ध ने उत्तर दिया कि ब्रह्म की सृष्टि में रहते हैं और ब्रह्म के चरणों को चाहते हैं। कौन जाने कि कहां जावेंगे क्योंकि प्रेरणा करने वाला परमात्मा है ॥ ९ ॥

अथ चतुराननोक्त-दोहा.

आम्नाय मठ संप्रदा, पद अरु क्षेत्र प्रकाश ।

देव देवि आचार्य को, तीर्थ किते संन्यास ॥ १० ॥

चतुरानन ने संन्यासी से प्रश्न किया कि संन्यासी के आम्नाय, मठ और उनके नाम क्या हैं ? सम्प्रदाय की क्या रीति है ? तथा पद और क्षेत्र का वर्णन कीजिये। देव, देवी, आचार्य कौन हैं और तीर्थ कौन २ से हैं ? हे संन्यासी वे अनुक्रम से कहिए ॥ १० ॥

अथ संन्यास्युक्त षडविध संन्यासभेदम्—छप्पय.

पश्चिमामना प्रथम, मठह शारदा उचारें ।

कीटवार संप्रदा, तीर्थ आश्रम पद धारें ॥

क्षेत्र तास द्वारिका, ब्रह्म विष्णु आचारय ।

गोमती गंग तीरथ सु तिहि, ऐसे इष्ट उपाइये ॥

संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ ११ ॥

सिद्ध ने कहा कि पहिला पश्चिम आश्रम जिसका शारदामठ, कीटवार सम्प्रदाय और उसके शिष्य तीर्थ और आश्रम पद धारण करते हैं । उनका क्षेत्र द्वारिका और देव सिद्धेश्वर, देवी भद्रकाली है । ब्रह्मा और विष्णु आचार्य हैं, गोमती गंगा का तीर्थ है । संन्यासी ने कहा कि हे द्विजवर ! सुनो, इस प्रकार जो इष्टदेव की उपासना की जाय तो सारी सिद्धि प्राप्त हो ॥ ११ ॥

छप्पय—द्वितीय पूर्व आमना, भोग गोवर्धनमठ भनि ।

भोगवार संप्रदा, उनह पद बन अरु आरनि ॥

तिहि पुरुषोत्तम क्षेत्र, देवता जगन्नाथ तित ।

विमल शक्ति बलभद्र, पद्म आचारय भाषित ॥

तीरथ महोदधी तित महत्, ऐसे इष्ट उपाइये ।

संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ १२ ॥

दूसरा पूर्व आश्रम जिसका मठ गोवर्धन कहा जाता है, भोगवार सम्प्रदाय और इस मठ के शिष्य वन और अरण्य पद धारण करते हैं । उनका पुरुषोत्तम नाम का जगन्नाथ देव और विमल देवी है । बलभद्र और पद्म आचार्य कहे जाते हैं । वहां महोदधि का महान् तीर्थ है । संन्यासी ने कहा कि हे द्विजवर ! सुनो, इस विधि से उपासना करे तो उत्तम सिद्धि प्राप्त होवे ॥ १२ ॥

उत्तरामना त्रितीय, तास जोयसी मठह वद ।

अनंद बार संप्रदा, गिरि सागर परबत पद ॥

क्षेत्र बद्रिकाश्रमह, तहां दैवत नारायण ।

पूरण गिरि मात्रिका, मल्लिकानन्द नाथ मन ॥

तीरथ नियंत भाषंत तित, ऐसे इष्ट उपाइये ।

संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ १३ ॥

तीसरा उत्तम आश्रम जिसका जोशी मठ कहा है । आनन्दवार सम्प्रदाय और इसके शिष्य गिरिसागर और पर्वत पद धारण करते हैं । क्षेत्र बाटिकाश्रम और वहां नारायण देवता है । पूर्ण गिरिदेवी और मल्लिकानन्दनाथ आचार्य हैं और वहां नियंता तीर्थ है । संन्यासी ने कहा कि हे द्विजवर ! सुनो इस प्रकार सब विधियुक्त उपासना करे तो महा श्रेष्ठ फल प्राप्त हो ॥ १३ ॥

तुर्थ दच्छिनामना, तहां सिंगेरी मठ सुखद ।

भूरिवार संप्रदा, पुरी भारती सरसति पद ॥

शुभ रामेश्वर क्षेत्र, देव वाराह बसत जित ।

कामाक्षी मात्रिका, नाथ संगी तापस तित ॥

भद्रेति तीर्थ राजे तहां, ऐसे इष्ट उपाइये ।

संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ १४ ॥

चौथा दाक्षिण आश्रम और उसका सुखदा शृंगेरी मठ है । भूरिवार सम्प्रदाय और इसके शिष्य पुरी, भारती और सरस्वती पद धारण करते हैं । रामेश्वर का शुभ क्षेत्र है जहां बारह देवता बसते हैं । देवी कामाक्षी और शृंगीनाथ नामक तपस्वी आचार्य हैं । वहां भद्र तीर्थ है । संन्यासी कहते हैं कि हे द्विजवर ! सुनो, इस प्रकार मे जो विधि कष्ट में उपासना करते हैं वे सदा सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

पंचम उर्ध्वान्ना, तहां मठे मेरु कहावे ।

देहकाशि संप्रदा, ज्ञानपद ताप बतावे ॥

कहे क्षेत्र कैलास, तत्र देवता निरंजन ।

मायादेवी तहां, ईश्वर आचार्य इन ॥

तीरथ सु मनह सरवर तहां, ऐसे इष्ट उपाइये ।

संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ १५ ॥

पांचवां ऊर्ध्वाग्राय और उसका मेरु नामक मठ कहलाता है । देहधारी सम्प्रदाय और उस मठ के शिष्यों को 'ज्ञान' बताते हैं । कैलास नामका क्षेत्र और निरंजन देवता है । महामाया देवी और ईश्वर आचार्य है । वहां मानसरोवर नाम का तीर्थ है । संन्यासी कहते हैं कि हे द्विजवर ! सुनो, इस प्रकार जो विधि सहित इष्ट की आराधना करे तो उत्तम सिद्धि प्राप्त हो ॥ १५ ॥

षष्ठम अध आमना, परम आत्मा मठ मानो ।
पर संतोष संप्रदा, जोग एके पद जानो ॥
मनहसरोवर क्षेत्र, देव प्रमहंसा ताही ।
मनसा देवी तत्र, नाथ चेतना वहां ही ॥
त्रिकुटी कहंत तीरथ, तहां ऐसे इष्ट उपाइये ।
संन्यास कहे द्विजवर सुनो, सहि विधि सिद्धि सु पाइये ॥ १६ ॥

छठा अधः आग्राय और उसका परमात्मा नाम का मठ माना गया है । परम संतोष सम्प्रदाय का नाम और उसके शिष्य 'योग' पद को धारण करते हैं । मानसरोवर क्षेत्र और परमहंस देवता हैं । मनसा देवी और चेतनानाथ आचार्य हैं, त्रिकुटी (इडा, पिंगला, सुषुम्ना) नामक तीर्थ है, संन्यासी कहते हैं कि हे द्विजवर ! सुनो, इस तरह जो सर्व विधियुक्त इष्ट उपासना करे तो महासिद्धि प्राप्त हो ॥ १६ ॥

सोरठा-बरनी सह विस्तार, संन्यासी संन्यासविधि ।

पूजन पंच प्रकार, द्विज कीनो शुभ लच्छ लखि ॥ १७ ॥

इस तरह संन्यासी पद की सब विधि संन्यासी नामधारी संन्यासी ने विस्तारपूर्वक कही जिससे उन्हें उत्तम लक्षणयुक्त देख कर चतुरानन ने परम संतोष प्राप्त कर पांच प्रकार के उपचार से पूजन किया ॥ १७ ॥

उत्तम अशन कराय, पुनि पुंगीफल पान दिय ।

आसन दियो जमाय, द्वारांदर एकंत ग्रह ॥ १८ ॥

पीछे उत्तम अन्न से भोजन कराया और पान सुपारी आदि से मुख-
शुद्धि कराई और फिर अपने मकान में एकान्त स्थान में आसन लगवाया ॥ १८ ॥

कवि संन्यास स्वरूपं, जोगामना च त्रमुख चर्चा ।

त्रयहविंश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १९ ॥

कवि के किए हुए संन्यासी का रूप चतुरानन के साथ हुई योगाश्रम सम्ब-
न्धी चरचायुक्त यह प्रवीणसागर की तेईसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ १९ ॥



लहर १४ की

अथ कवि कुसुमावलि चर्चा प्रसंगा यथा—चौपाई.

उत आसन संन्यास जमायो, उन दिन वीत प्रात पुनि आयो ।

प्रनव पढंत गुनवती फेरे, कुसुमावलि संचर चख हेरे ॥ १ ॥

वहां संन्यासी ने एकांत में आमन लगाया, पीछे वह दिन गया और दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ उस समय संन्यासी ओंकार मंत्र पढ़ कर माला फेरने लगा, परन्तु चंचल नेत्रों से कुसुमावलि के आने की राह देखता है ॥ १ ॥

दोहा—एतेमं कुसुमावलि, आयस लई प्रवीण ।

शयंदन चढ़ि ग्रह गमन किय, संग कुजाक सु लीन ॥ २ ॥

इतने में कुसुमावली प्रवीण की आज्ञा लेकर रथ में बैठ पहेदारों के साथ घर की ओर चली ॥ २ ॥

रथ कुजाक रहे देहुरी, निज ग्रह गई कुमार ।

अशन कीन उठियत लख्यो, उन संन्यास अगार ॥ ३ ॥

रथ और सिपाही ड्योढ़ी पर रहे और कुसुमावली घर में गई । भोजन के उपरान्त उसने खाली घर में उतरे हुए संन्यासी को देखा ॥ ३ ॥

सोरठा—ब्रह्मनि जोगि निहार, पुच्छिय निज परिवार प्रति ।

उन सह कही उचार, ईश रूप संन्यास इत ॥ ४ ॥

ब्रह्मकुमारी ने योगी को घर में देख कर अपने कुटुम्ब से पूछने लगी कि यह कौन है ? तब उसे उत्तर दिया कि यहां ईश्वररूप संन्यासी पधारे हैं ॥ ४ ॥

गई सु बंदन ताय, उर विशेष आनंद भरि ।

संन्यासी मुख पाय, रूप हेर निज मन रहे ॥ ५ ॥

घर में ईश्वर जैसे संन्यासी उतरे हैं यह सुन कर मन में प्रसन्न हो संन्यासी की वन्दना करने गई, जहां संन्यासीजी कुसुमावली के रूप को देख कर अति प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥

उन पद बन्दन कीन, उन छंदन आशिष दर्ई ।

भव रिपु तापस भीन, कुसुम सु चली प्रवीण प्रति ॥ ६ ॥

ब्रह्मकुमारी कुसुमावली ने संन्यासी के पग की वन्दना की और स्वामी ने वेद मंत्र पढ़ कर आशीर्वाद दिया, परन्तु कामदेव के रससे तपस्वी भीग गया और कुसुमावली प्रवीण की ओर चली गई ॥ ६ ॥

चौपाई—इहि विधि ब्रह्मसुता नित आवे, अशन विसर्ज जोगि प्रति जावे ।

बंदन करि नृपद्वार सिधावे, तापस समय इकंत न पावे ।

बात वृत्त कौन प्रति बूझे, आप चित संन्यास असूझे ।

बासर यौ चत्र पंच विहाये, तापस एह मतो मन लाये ।

अहर ब्रह्म चरचाह उपावे, आध निशा आसन प्रति जावे ।

होत एकंत आपको जबही, किंनरि तार तार करि तबही ।

विजया मगन सप्त सुर साधे, मनहु गान गंधर्व आराधे ।

जागत लोग श्रोन सुर लग्गे, दंपति बिरह जोग मन जग्गे ।

दिन द्वै चार एह विधि कीन्हो, सुनवेहार सराहन लीन्हो ॥७॥

इस प्रकार नित्य ब्रह्म-बाला अपने घर आती और भोजन करके फिर योगी के पास जाकर प्रणाम करके राजद्वार को चली जाती । तपस्वी को एकान्त का अवसर मिलता नहीं फिर बात कैसे पूछ सकता ? इस चिन्ता से तपस्वी मन में मुर्झाने लगा । इस तरह चार पांच दिन बीतने पर तपस्वी ने मन में विचार किया कि दिन २ में ब्रह्ममंडल में बैठ कर ब्रह्मचर्चा चलावे और रात्रि में अर्द्धरात्रि के पश्चात् अपने आसन पर आकर एकान्त में अपनी सारंगी का तार चढ़ा विजय के रंग में मग्न हो सातों स्वर साधन कर गायन करने लगे सो मानो कोई गन्धर्व गायन से प्रार्थना करता हो । उसके सधुर स्वर को सुन कर आस पास के लोग जाग उठे जैसे संयोगी स्त्री पुरुष को काम और वियोगी दंपती को बिरह जाग उठता हो । इस प्रकार दो चार दिन गायन किया और सुनने वालों में वाह वाह होने लगी ॥ ७ ॥

सोरठा-बै साराहन श्रोन, परी कुमरि कुसुमावली ।

रही निशा निज भोन, शासन मगि प्रवीण प्रति ॥ ८ ॥

संन्यासी के गायन की प्रशंसा लोगों से सुन कर ब्रह्मकुमारी कुसुमावली प्रवीण की आज्ञा लेकर घर पर रह गई ॥ ८ ॥

आध निशा अनुमान, सोये सकल समीप जन ।

कुसुम संन्यासी थान, गई सु घंट कुरंग गति ॥ ९ ॥

अनुमान से आधी रात बीती और पास के सब लोग सो गए तब नित्य नियम के अनुसार संन्यासी ने गाना बजाना प्रारंभ किया । उसे सुन कर जिस प्रकार वीणा के स्वर पर हिरणी मुग्ध हो जाती है उसी प्रकार कुसुमावली संन्यासी के स्थान पर दौड़ी गई ॥ ९ ॥

लगे संन्यासी हेर, आसन आच्छादन करन ।

कही कुसुम तिहि बेर, नाद सुनन उर चाह अति ॥ १० ॥

संन्यासी कुसुमावली को अपने पास आते देख कर आसन को आच्छादन करने लगा, यानी आसन-गृह के किवाड़ बन्द करने लगा, तब कुसुमावली ने कहा, हे महाराज ! आप के गायन सुनने की मेरी अति अभिलाषा है इसी लिए मैं यहां आई हूं ॥ १० ॥

अथ संन्यास्युक्त-गाथा.

सुनहो ब्रह्मकुमारी, हम गुरु कीय आयज्ञा एही ।

नन अन्य प्रति सुनावे, आसन नित्य गाय एकाकी ॥ ११ ॥

तब संन्यासी ने कहा कि हे ब्रह्मकुमारी ! सुनो, हमारे गुरुजी ने यह आज्ञा दी है कि गायन किसी अन्य को सुनाना नहीं, अपने आसन पर बैठ कर अकेले ही गाना ॥ ११ ॥

दोहा-आडंबर संन्यास करि, फिर पछताये चित ।

मिलें न फिर पीछी फिरे, ऐसो समय एकंत ॥ १२ ॥

इस तरह से संन्यासी ने आडम्बर किया, परन्तु फिर मन में पछताने लगा

कि अगर कुसुमावली लौट गई तो फिर आवेगी नहीं और फिर एकान्त भी नहीं मिलेगा ॥ १२ ॥

बोले फिरि आओ इतने, बैठो ब्रह्मकुमार ।

तुम चाहितो हम करें, इक द्वै तान उचार ॥ १३ ॥

ऐसा विचार कर स्वामी ने फिर कहा कि हे कुसुमावली ! आओ और यहाँ बैठो, तुम्हारी इच्छा हो तो एक दो पद गाता हूँ सुनो ॥ १३ ॥

धरि एक बात बनाय के, पाइ चित परतीत ।

किनरि ग्रहि लहि समय सुर, गायो भेद संगीत ॥ १४ ॥

इस प्रकार एक घड़ी कुसुमावली के साथ बातचीत करके और उसके हृदय में विश्वास उत्पन्न कर के फिर हाथ में सारंगी ली और समय के अनुकूल संगीतशास्त्र के भेद अनुसार गाने लगे ॥ १४ ॥

अथ छंद पद्धति.

संन्यासभेद संगीत गाय, सुर सप्तभेद किनरि बनाय
समयो वृत्तन्त चित में लाय, दो चार राग रागनि उपाय
ब्रह्मनी राग उलटी अपार, पर्वनी रैन मनु पारवार
जानी सु रीझ जोगेंद्र चित्त, परबीन कीन लीन कवित्त
कानरे मध्य गाये सु भीन, परखे कुमारि परबीन कीन
संन्यास प्रत्य बूझी बनाय, एही कवित्त कौनसे पाय
संन्यास फिर भंभी सु बात, हमने बनाय वह हमें गात
ब्रह्मनी कहे क्यों कहे आप, तापसो वितथ भंभे प्रलाप
आगे कवित्त हम सुने एह, तुम कहो हमे कीने सु तेह
मुनिराज बानि बोले बहोर, तुम सुने वह होयगे और
हमने बनाय या कवित तीन, याही कवित्त या दशा दीन
ब्रचीत रहे पुनि मौन धार, ब्रह्मनी चित बाढ्यो विचार ॥ १५ ॥

संन्यासी संगीत के भेद के अनुसार गाने लगा और सप्त स्वर के भेद से सारंगी बजाने लगे । आज का समय उपयुक्त है ऐसी मन में विचार दो चार

राग रागनियां गाई जिससे कुसुमावली अति आनन्दित हुई और ऐसा मालूम होने लगा जैसे पूर्णिमा की रात में समुद्र उछल रहा हो । इस तरह कुसुमावली को प्रसन्न देख स्वामी ने कलाप्रवीण के बनाए हुए तीनों कवित्त कान्हड़ा राग में गाये । उन्हें सुनते ही कुसुमावली ने यह पहचान की कि ये कवित्त प्रवीण के बनाए हुए हैं, संन्यासी से पूछा कि ये कवित्त किसके बनाए हुए हैं ? आपको कहां से मिले ? तब संन्यासी ने कहा कि ये कवित्त हमारे बनाए हुए हैं और हमही इन्हें गाते हैं । ब्रह्मकन्या ने कहा कि आप ऐसा कैसे कहते हो ? तपस्वी होकर झूठ बोलते हो ? हमने इन्हें पहले सुना है और तुम कहते हो कि हमने बनाये हैं ? तब मुनिराज ने कहा कि तुमने जो कवित्त सुना है वे और होंगे, ये तीनों कवित्त तो हमारे ही बनाए हुए हैं । तथा इन कविताओं ने ही हमारी ऐसी दशा की है । इतना कह कर मुनिराज मौन हो गए परन्तु कुसुमावली के मन में विचार होने लगा ॥ १५ ॥

सोरठा-ब्रह्मनि मन उरभाय, पुनि बूमयो संन्यास प्रति ।

कैसे कहो सुनाय, दिशा जोग कवितन दर्ई ॥ १६ ॥

कुसुमावली मन में आकुल होकर संन्यासी से पूछने लगी कि इन कवित्तों ने आपको योगी की दशा में किस तरह किया सो छपा कर के कहिए ॥ १६ ॥

स्मित भंखयो संन्यास, कहा काम इन बात तुम ।

यहै बड़ो इतिहास, पढ़े सु जाने प्रेम विधि ॥ १७ ॥

इस पर संन्यासी ने हंस कर कहा तुम्हें इन बातों से क्या काम ? इसका बड़ा इतिहास है और जिसने प्रेम-पाठ पढ़ा है वही जान सकता है ॥ १७ ॥

भंखयो ब्रह्मकुमार, कहो प्रेम इतिहास कहा ।

कौन कवित्त विचार, मोसों मोय सुनाइये ॥ १८ ॥

तब कुसुमावली ने पूछा कि प्रेम और इतिहास क्या है ? कवित्त का क्या विचार है ? सो हे महाराज ! तुम्हें मेरी सौगंध है, मुझे सुनाइये ॥ १८ ॥

छप्पय-पूरण भई प्रतीत, जोग आनन्द मन जग्यो ।

कथा कहन अभिलाष, वचन ब्रह्मनि प्रति भग्यो ॥

खाली शब्द न जाय, जोइ मगों सो दीजे ।

प्रेम पुरातन भेद, कबहु परकास न कीजे ॥

दृढ मन उदार अति द्विजसुता, प्रति ब्रतीत बकस्यो वचन ।

चित चाह भरी बरसंत वह, बूझन लगी सु छनहु छन ॥ १६ ॥

जब पूरा विश्वास हो गया तब जोगी के मन में आनन्द हुआ । तब जोगी ने ब्रह्मकुमारी कुसुमावलि से बर मांगा कि मेरी बात खाली न जाये, मैं जो मांगू वह तुम्हें देना होगा और पुराने प्रेम का भेद किसी को कहना नहीं । दृढ़ और अति उदार ब्रह्मकुमारी कुसुमावलि ने संन्यासी की बातें स्वीकार कीं और कवि को वचन दिया और वृत्तान्त सुनने की उत्कट इच्छा से क्षण २ में योगी से पूछने लगी ॥ १६ ॥

सोरठा-ब्रती कबो बरतंत, सो सब द्विजदुहिता सुन्यो ।

आखेटक के अंत, गायन गति सागर दशा ॥ २० ॥

शिकार के अन्त में मंझापुरी में दोनों का एक नजर होना, नायिकाओं का मिलाप तथा उनके गाए हुए उन कवित्तों को सुन कर सागर की विह्वल दशा बरौरह वृत्तान्त योगी ने कहा और ब्रह्मकुमारी ने सब सुना ॥ २० ॥

यहै प्रेम इतिहास, मंत्र बीज अच्छर यहै ।

यहै भेद संन्यास, यह कवितन दीही दशा ॥ २१ ॥

सब बातें कहने के पीछे योगी ने कहा कि यही प्रेम का इतिहास है और मंत्र बीज के अच्छर भी यही हैं, संन्यास ग्रहण करने का भेद भी यही है अर्थात् इस कवित्त ने यह दशा की है ॥ २१ ॥

सधे सु पार समाध, प्रेम उभय अच्छर यहै ।

या महि सिद्धि अगाध, वेदादित बरखे सबै ॥ २२ ॥

इस प्रेम शब्द के दो अच्छरों की जो साधना करते हैं वही समाधी के पार को पाते हैं । इन दो अच्छरों में ही सर्व सिद्धि है इसको ब्रह्मादि सब ने माना है ॥ २२ ॥

बात भेद विस्तार, संन्यासी भंख्यो सबै ।

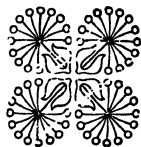
बाला ब्रह्म विचार, मौन गह्वो विस्मय सु मन ॥ २३ ॥

बात के भेद का विस्तार जो संन्यासी ने कहा उसे सुन कर कुसुमावलि विचार में पड़ गई और मौन धारण कर मन में विस्मय युक्त होने लगी ॥ २३ ॥

गाहा-कुसुमावलि संन्यासी, चरचा प्रेम भेद परकाशं ।

चत्रवीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २४ ॥

कुसुमावलि और संन्यासी के साथ प्रेम के भेद के प्रकाश की चर्चा वाली प्रवीणसागर की यह चौबीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २४ ॥



लहर २५ वीं।

अथ पुनि संन्यासी कुसुमावली चर्चा प्रसंग दोहा.

कुसुम प्रति संन्यासी कहे, कैसे कलाप्रवीण ।

जा कारण सागर हुकम, यहै दशा हम कीन ॥ १ ॥

फिर कुसुमावली से संन्यासी ने पूछा कि कलाप्रवीण कैसी है कि जिसके लिए महाराज श्री रसमागर की आज्ञा से मुझे अपनी यह स्थिति बनानी पड़ी ॥ १ ॥

अथ कुसुमोक्त-दोहा.

हास्तिनि संखिनि चित्रिनि, सृष्टासृष्टि सु कीन ।

इनही समय सरूप गुण, पद्मिनि कलाप्रवीण ॥ २ ॥

जिस समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि के अन्दर हास्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी जाति की स्त्रियां बनाई उस समय स्वरूप और गुण में एक कला-प्रवीण को ही पद्मिनी बनाई ॥ २ ॥

अथ संन्यासयुक्त-दोहा.

साहित्य के सब भेद तुम, जानत ब्रह्मकुमार ।

लच्छन नायक नायिका, या तैं कहो उदार ॥ ३ ॥

संन्यासी ने कहा कि हे ब्रह्मकुमारी ! साहित्य के सब भेद तुम जानती हो इसलिए नायक नायिका के सब लक्षण उदारतापूर्वक कहो ॥ ३ ॥

अथ कुसुमावल्युक्त चार नायक भेद यथा-दोहा.

अनुकूलह दच्छन प्रथम, शठ अरु धृष्ट विचार ॥

चारहु गुन तनकी प्रकृति, सुच्छम कहूं उदार ॥ ४ ॥

अनुकूल, दक्ष, शठ और धृष्ट ये नायक हैं जिनके गुण और प्रकृति मैं संक्षेप में कहती हूं ॥ ४ ॥

तत्र प्रथम अनुकूल भेद-छप्पय.

सदा शांत शुभ बदन, बास शुभ कच तन कोमल ।
सुच्छमांग तुच्छ भोग, हस्व कर पद रद उज्ज्वल ॥
निन्द्रा तुच्छ प्रमाद, तुच्छ आहार जघन्य जिन ।
अमल बास रुचि उकति, मंद मृदुता जुत भाषन ॥
सहजहि सुगंध संगीत रुचि, वीर धीर सु उदार मन ।
पूरण सु प्रेम एकै पतनि, अनुकूल सुच्छन सु इन ॥ ५ ॥

निरन्तर स्वभाव में शान्ति, शुभ मुख वाला, तथा शरीर सुवासयुक्त, शरीर व केश में कोमलता, स्वभाव विनम्र, थोड़े भोग वाला, मृदु हाथ पैरयुक्त, दांत रवेत, निन्द्रा अल्प, निरालसी, थोड़ा आहार करने वाला, गुह्येन्द्रिय सूक्ष्म, स्वच्छ वस्त्र में रुचि, वाणी में कोमलता व मधुरता, सेज शैथ्या में अतरादि सुगन्धित वस्तुओं तथा संगीत में प्रेम, धैर्यवान, वीर, मन में उदार और एक पतिव्रती होना ये अनुकूल नायक के लक्षण हैं ॥ ५ ॥

अथ दच्छनभेद-छप्पय.

शुभ लच्छन सु उदार, सदा शुचि चित्र आसक्त ।
शीलवान सु मुरूप, समय ज्ञाता सु काव्य कृत ॥
काम कलाप्रवीण, रीझ रीझवन विधि जाने ।
प्रीत रीत खंडे न, सार संगीत बखाने ॥
पटुता उचार समता सहज, मानिनि के नित मन हरन ।
पूरण प्रताप प्रभुदित बदन, यह दच्छनके अनुकरन ॥ ६ ॥

शुभ लक्षण, उदार मन, सदा पवित्र, चित्र पर प्रीति, शीलवान्, सुन्दर स्वरूप वाला, समय को पहिचानने वाला, उत्तम काव्य-रचयिता, कामकला में प्रवीण, रीझने रीझाने की विधि का ज्ञाता, प्रीति की रीति का खण्डन न करने वाला, संगीतशास्त्र के सार का प्रशंसक, चतुराई से बोलने वाला, स्वभाव से सब स्त्रियों में एकसा प्रेम रखने वाला और सदा कामिनी के मम का हरण करने वाला पूर्ण प्रतापवान्; हंसमुख ये दक्ष नायक के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ शठभेद-छप्पय.

मुख सु मिष्ट हृदि कपट, अडर अपराधि सदाही ।
 स्थूल भुजा उर प्रथुल, भ्रोनि बढ तन कटुराही ॥
 क्रूरमोदिर द्रग चपल, क्रूर देही लज्जा तनु ।
 लंपट काम सु केल, अतिहि आतुर कर्कट मनु ॥
 साच ही समान क्रूरहि कहें, निज स्वारथ नितही चहें ।
 अति हानि वृद्ध अनुमाननह, शठ सुजान तासे कहें ॥ ७ ॥

मुख से मीठा बोले परन्तु हृदय में कपट रखने वाला, हृदय में प्रभु का भी डर न रखता हुआ सदा अपराध करने वाला, स्थूल भुजा, विस्तृत छाती, मोटे पेट और कछुए की पीठ के समान उदर वाला, आँखें चपल, शरीर की कान्ति क्रूरतायुक्त, लज्जाहीन, कामक्रीड़ा में अति लंपट, बन्दर के समान चतुर, सच्चाई के पीछे झूठ बोले, हमेशा अपने स्वार्थ की ही इच्छा करे दूसरे की हानि लाभ की कोई कल्पना नहीं ऐसा पुरुष शठ नायक कहा जाता है ॥ ७ ॥

अथ धृष्टभेद-छप्पय.

स्थूल केश शिर बदन, फटित द्रग चल हेरन चित ।
 कंध बाहु ह्रस्व दीर्घ, श्रोन दीर्घ पद सोहित ॥
 क्रोध निद्र सालसा, कपट पीशुन अधिकारी ।
 निडर दंभि निर्लज्ज, भोग को आतुर भारी ॥
 कृतघ्नी दोष शंक न धरे, आविश्वास उर मानिये ।
 प्रीति की रीत जाने नहीं, बहुभुक् धष्ट बखानिये ॥ ८ ॥

केश, माथा और मुख स्थूल हो, आँखें फटी हुई, दृष्टि और मन चंचल, गर्दन छोटी और हाथ भी छोटे हों, कमर के नीचे का पिछला भाग (कूल्हे) स्थूल, पाँव लम्बे, क्रोध अत्यन्त, नींद विशेष, आलसी, कपटी और पिशुन, निडर, दंभिक, निर्लज्ज, भोग में अति उतावला, कृतघ्नी, बुरे कामों के करने में परमेश्वर का भी भय न रखने वाला, आविश्वासी, प्रीति की रीत को न जानने

वाला, अधिकाहारी होना ये लक्षण वाला धृष्ट नायक कहा जाता है ॥ ८ ॥

अथ चतुर्विध नायकभेद—दोहा.

पद्मिनि चित्रिनि शंखिनी, और हस्तिनी बाल ।

मुख्य भेद यह तियनके, बरनत बुद्धि विशाल ॥ ९ ॥

पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी ये स्त्रियों के चार भेद विशाल बुद्धि वाले विद्वानों ने कहा है ॥ ९ ॥

अथ पद्मिनि—छप्पय.

चंद्रानन तन कनक, नैन मृग कोमल भाषन ।

कटि केहरि गल कंबु, कंज कर पद शुक नासन ॥

रंभोरु कच उरग, अधर सुरख रद हालम ।

गति मराल कुच पीन, छीन निद्रा स्मित शुक कप ॥

सहजहि सुवास सुमती मृदुल, अति उदार पूजा सकति ।

पूरण सु प्रेम ब्रीडा सु शुचि, प्रथम एह पद्मिनि प्रकृति ॥ १० ॥

जिसका मुख चन्द्र के समान, शरीर स्वर्ण के समान, मृगी के समान चपल नेत्र, कोयल के समान सुन्दर और मधुर भाषण, सिंहनी की कटि के समान कटि, शंख के समान ग्रीवा, हाथ और पैर कमल के समान, सुवा की चोंच के समान नासिका, ऊरु कदलीस्तम्भ के समान, केम काले सर्प के समान, प्रवाल के समान रक्तवर्ण ओठ, दाढ़म के बीज के समान चमकीले दांत, हंस की सी चाल, स्तन कठोर, निन्द्रा, हंसी और आहार स्वल्प, शरीर सुगंधिवान, सद्बुद्धियुक्त व कोमल स्वभाव, अति उदार, ईश्वर विषयभक्ति, सम्पूर्ण प्रेम की जानने वाली, लज्जावती, पवित्र वह पद्मिनी स्त्री कहाती है ॥ १० ॥

अथ चित्रिनि भेद—छप्पय.

चपल दृष्टि चित्त अचल, कंजनैनी रुचि केसर ।

श्याम केश गज गमन, अंग भ्रुअभाष मयूर वर ॥

काव्य शिल्प संगीत, चित्र रीझे सु रिक्तावे ।

प्रेम नेम परबीन, चित्त चातुरी उपावे ॥

तन ह्रस्व दीर्घ प्रथुल न क्रशा, कोप तुच्छ अंबर अमल ।

तुच्छ सु प्रमाद सुकुमार शुभ, यह चित्रिनि लच्छन सकल ॥ ११ ॥

जिसकी दृष्टि चपल, चित्त दृढ़, आंखें कमल के समान और शरीर की कान्ति केसर के समान हो, केश सुन्दर और श्याम, गति हाथी के समान, भृकुटी और के समान तथा बोली मोर के समान श्रेष्ठ हो, काव्य, शिल्प, संगीत और चित्रकला में प्रीति होवे और अपनी कारीगरी से दूसरों को खुशी उत्पन्न करे, प्रेम के नियम में प्रवीण, चित्त से चातुरी प्रगट करने वाली, शरीर से न बहुत छोटी न बहुत लम्बी, न बहुत कृश न बहुत स्थूल, क्रोध थोड़ा, निर्मल वस्त्र में रूचि, प्रमाद तुच्छ और अति कोमल ये चित्रिणी स्त्री के लक्षण हैं ॥ ११ ॥

अथ शंखिनी भेद—छप्पय.

बाहु दीर्घ कृश शीश, पाय कुच दीर्घ तप्त कर ।

तन दीर्घ तनु रीम, वक्र चाले वसुधा पर ॥

स्थूल घन भ्रू अधर, ह्रस्व अंगुलि नम्रत गल ।

रति अतृप्त त्रप हीन, भुक्त बहु क्रूर प्रकृति कल ॥

गज मद सुगंध कटि मुख प्रथुल, विह्वल मदन विलास महि ।

कपटी कुशील पीसुन सदा, केश पिंग शंखिनि सु कहि ॥ १२ ॥

बाहु लम्बे, माथा छोटा, पग और स्तन लम्बे, हाथ तप्त, शरीर ऊँचा, क्रोध विशेष और धरती पर टेढ़ी चलने वाली, नाक स्थूल, भृकुटी और होठ मोटे, उंगलियाँ छोटी, गर्दन झुकी हुई, रति भांग की भूखी, लज्जा रहित, बहुत भोजन करने वाली, क्रूर प्रकृति वाली, हाथी के मद के समान शरीर का वास, कटि और मुख विशाल, विषय विलास में विह्वल, कपटी, खराब स्वभाव वाली, हमेशा चुगली करने वाली, पिंगल केश वाली, शंखिनी स्त्री कही जाती है ॥ १२ ॥

अथ हस्तिनी भेद—छप्पय.

स्थूल अंग बहु कुधा, लोम तिच्छन पिंगल चख ।

गंधक गंध कुशील, कुटिल बानी भाषत मुख ॥
 रोषवान खर रुच, काम केली अतृप्त नित ।
 बदत मृषा विन त्रपा, दुष्ट दुमनी सदा रहत ॥
 अरु चित् कुरंग कुव शिथिल अति, प्रीति रीति जाने नहीं ।
 अंकुश भ्रजाद माने न कछु, हस्तिनि हस्तिनि सम कही ॥ १३ ॥

अंग से दृष्ट पुष्ट, बहु लुधा वाली, तीक्ष्ण रोम तथा पिंगल चक्षुवाली, शरीर का गंध गंधक के समान हो, स्वभाव से फूहड़, टेढ़ी बोलने वाली, अत्यन्त क्रोधी, रूखे स्वरयुक्त, हमेशा कामवासना में अतृप्त, झूठ बोलने वाली, लज्जा रहित, दुष्टस्वभाव, पति से अन्यमनस्क रहने वाली, हरिण के समान चपल मन वाली, अति नरम, प्रीति रीति को न जानने वाली, कुल मर्यादा के अंकुश को न मानने वाली, स्त्री हस्तिनी अर्थात् हस्ती के समान कही गई है ॥ १३ ॥

दोहा-चहु विध नायक, नायका बरने भेद बनाय ।

रीभ भीज मन में रहे, संन्यासी सु सराय ॥ १४ ॥

इस प्रकार चार भेद नायक व चार नायिका के वर्णन किये जिससे मन में अति प्रसन्न हो संन्यासी कुसुमावलि की प्रशंसा करने लगा ॥ १४ ॥

अथ कुसुमावल्यायुक्त-दोहा.

जिहि एती लय प्रेम की, रससागर सु कुमार ।

सो केते जाने सकल, त्रिया भेद विस्तार ॥ १५ ॥

फिर कुसुमावलि ने संन्यासी से पूछा कि जिसे इतनी प्रेम की नेह लगी है ऐसे राजकुमार रससागर को सर्व प्रकार कितनी स्त्रियों के भेद का ज्ञान है ॥ १५ ॥

सोय कहो संक्षेप करि, नायकान के लच्छ ।

सुनत चाह हमको वही, तुम वाणी परतच्छ ॥ १६ ॥

सो संक्षेप में नायकाओं के लक्षण कहो । तुम्हारी सुन्दर वाणी से सुनने की मुझे अभिलाषा है ॥ १६ ॥

अथ सन्यासयुक्त-सोरठा.

सो कछु कही न जाय, रससागर जाने जिती ।

ब्रह्मनि कही बनाय, सब संछेप मु नायका ॥ १७ ॥

सन्यासी ने कहा कि राजकुमार रससागर जितनी नायिकाओं के भेद को जानते हैं उन सब का वर्णन नहीं हो सकता, परन्तु हे ब्रह्मकुमारी ! सब नायिकाओं का वर्णन मैं संक्षेप कर के कहता हूँ ॥ १७ ॥

नायकाभेद संख्यावर्णन क्रीडाचंद छंद यथा.

जुगती उक्ती पटं भाषमें नायका जो बरत्ती ।

कियो भेद संछेप जैसी हमें चित वृत्ती प्रकृत्ती ॥

तुम्हें जान हो मितके चितकी चातुरी ए प्रमानी ।

करी आपकी आयसाके प्रसादं विधानी जुबानी ॥ १८ ॥

युक्तिपूर्वक वचनों से, छत्रों भाषाओं में जो नायिकाएं कही गई हैं उनके कितने ही भेद मैं अपने मन की वृत्ति और स्वभाव के अनुसार संक्षेप में आपकी आज्ञानुसार जो शास्त्रोक्त रीति के अनुसार नायिका-भेद वर्णन करता हूँ उससे तुम्हें ज्ञात होगा कि मित्र रससागर के चित्त की चतुराई कितनी है ॥ १८ ॥

स्वकीया तिया आपके शामके रंग रत्ती सदाही ।

प्रकीया प्रिया प्रीत के मितसे नीत लावे मुदाही ॥

सामान्या वधू प्रेमके नेमहीनी लपट्टी कपट्टी ।

त्रयं भेद में नार उच्चार सो वेद भेदं प्रगट्टी ॥ १९ ॥

जो स्त्री अपने विवाहित पति से ही प्रसन्न रहती हुई सदा उसके ऊपर ही पूर्ण प्रेम रखती है वह स्वकीया नायिका, जो स्त्री अपने विवाहित पति के अतिरिक्त प्रेमबंध से बंधे मित्र के साथ हमेशा हर्ष प्रदर्शन करे वह परकीया नायिका, जो स्त्री प्रेम के नियम से रहित होते हुए भी अर्थ लोभवश कपट से लिपटी रहे उसे सामान्य कहते हैं, ये जो मैंने तीन भेद स्वकीयादि नायिकाओं का कहा है पुनः चार भागों में प्रकट होते हैं ॥ १९ ॥

कहो पद्मिनी पद्मभा हेमवेली नवीनं प्रवीनं ।
 यह चित्रिनी मितके चित्तकी प्रीति संगीत लीनं ॥
 वह शंखिनी भंखनी भूठ प्रेम प्रमानं न जाने ।
 अरु हस्तिनी मस्तनी गच्छधी प्रेमवती न माने ॥ २० ॥

जो स्त्री कमल की प्रभा को धारण करने वाली और सोने की नवीन बेल की कान्ति वाली तथा पूर्ण प्रवीण हो वह पद्मिनी नायिका है । जो स्त्री अपने पति के प्रेम में तथा गायन में लीन हो वह चित्रिनी नायिका है । जो भूठ बोलने वाली और प्रेम के प्रमाण को न जानने वाली हो वह शंखिनी नायिका है । जो स्त्री मदमत्त, बुद्धिरहित और प्रेम की बात न मानने वाली है वह हस्तिनी नायिका है ॥ २० ॥

अवस्था कही तीनकी तीनसौं भेद भेद उकती ।
 मुग्धा कथा काम ग्याता अग्यात सुरती नमती ॥
 मध्या कामिनी कामरू लाज दोऊ समान प्रमाने ।
 सदा प्रौढसी मीतके चित्तकी रीम खीजं पिछाने ॥ २१ ॥

पाहिले स्वकीयादि तीन नायिकायें कहीं, फिर पद्मिन्यादि चार भेद कहे, अब इनके भी अवस्था के अनुसार मुग्धादि तीन २ भेद होते हैं । अर्थात् पद्मिन्यादि चार भेद को स्वकीयादि तीन को गुणा करने से बारह भेद हुए और फिर उस बारह को मुग्धादि तीन भेद से गुणे तो $१२ \times ३ = ३६$ छत्तिस भेद हुए । फिर मुग्धा के दो भेद हैं; जो अपने अंग में प्राप्त यौवन को तथा कामक्रीडा की बात जानती है वह ज्ञात यौवना तथा जो कामक्रीडा न समझती हो, बुद्धि भी न्यून हो वे अज्ञान अज्ञात यौवना हैं । जिस स्त्री में काम और लज्जा समान हो वह मध्या नायिका और जो स्त्री अपने प्रियतम की रीम और खीम इशारा से समझ जावे और तदनुसार वर्ताव करे वह प्रौढा नायिका है ॥ २१ ॥

नवलवधू बालकी नीतही नीतघूती बढंती ॥
 नवजोबना कामिनी काम सीढी चढंती पढंती ॥

अनंगानवं बाल ख्यालं त्रसंती रसालं विशालं ॥

लजाप्रायरसी चरंती लजंती भजंती सु लालं ॥ २२ ॥

मुग्धा के चार भेद—जिस स्त्री के अंग में बालकपन मिट कर यौवन का प्रवेश हो रहा हो वह नवलवधू नायिका, जो कामक्रीड़ा को सीखती हुई कामदेव की सीढ़ी पर चढ़ने की तैयारी में हो अर्थात् कामक्रीड़ा में प्रवेश होने लगी हो उसे नवयौवना मुग्धा नायिका कहते हैं। जो स्त्री बाल्य खेल में खेलती हो, अति रसीली हो परन्तु कामक्रीड़ा से भयभीत हो उसे नवल अनंगा नायिका कहते हैं। जो स्त्री अपने पति के सुखारंभ काल में लाजित हो जाय और छटक जाने का यत्न करने लगे उसे लज्जाप्राया मुग्धा कहते हैं ॥ २२ ॥

अरूढा यहै जोवना अंग कामं विकासे प्रकासे ।

वचनाप्रगल्भा उरानो निकासे बिलासे ज्यु हासे ॥

मनोभावनी वाम कामंकला चंचलासी उजासी ।

विचित्रारती भेद रसी सुमती जुबंती प्रकाशी ॥ २३ ॥

मध्या के चार भेद—जिस स्त्री के शरीर में यौवन और काम पूर्ण रीति से विकसित हो गया हो उसे आरूढ यौवना मध्या नायिका कहते हैं, जो स्त्री अपने प्रियतम को हास्य विलास में ठपका ओलम्भा देवे वह प्रगल्भवचना मध्या नायिका है; जो स्त्री कामक्रीड़ा में विजली के समान चपल और चतुर हो वह मनोभावनी अर्थात् प्रादुर्भूत मनोभवा मध्या नायिका है और जो कामक्रीड़ा की अनेक रीति स्वबुद्धि से प्रकाश करे वह सुरति विचित्रा मध्या नायिका है ॥ २३ ॥

समस्तं रसंकोविदा मितके चित्तकी चाह पूरे ।

विचित्रा लली मोहनी को कला लालको चित्त चूरे ॥

अक्रामीत जो मितको कीर ज्यों हाथ लावे बुलावें ।

लुब्धपती लाजको श्यामसे वाम शंका न लावें ॥ २४ ॥

प्रौढ़ा के चार भेद—जो स्त्री अपने प्रियतम के चित्त की चाहना पूरी करे वह समस्त रसकोविदा प्रौढ़ा नायिका, जो स्त्री मोह उत्पन्न करने वाली अथवा मोहनी अवतार अंश रूप लुब्धसूरती से अपने पति के मन का हरण

करे वह विचित्र लली अर्थात् विचित्र विभ्रमा प्रौढा नायिका है, जो स्त्री अपने पति को मन, वचन और कर्म से सुबा जिस भांति पालक के वश में रहता है उसी प्रकार पति को वश में रखे वह आक्रामिता प्रौढा नायिका है, जो स्त्री सब की शर्म को छोड़ कर निस्संकोच भाव से अपने पति के साथ तन्मय हुई रहे वह लुब्धापति प्रौढा नायिका कही जाती है ॥ २४ ॥

किये द्वादश भेद त्रै भेदके द्वादश त्रै बखानी ।
अधीरा पती दोष से रोष से क्रूर भाखंत वानी ॥
सुधीरा त्रिया आपके श्याम से रोस बत्ती न बोले ।
समं धीरता कंतपै भेद से बात बोले न खोले ॥ २५ ॥

मुग्धा के इस प्रकार चार भेद, चार मध्या के भेद और चार प्रौढा के भेद मिलकर सब बारह भेद हुए । इन्हें स्वकीयादि तीन भेद से गुणा करने से छत्तीस भेद होते हैं । जो स्त्री अपने पति के दोष को देख कर कठोर वचन कहती है वह अधीरा नायिका; जो स्त्री अपने पति के दोष को जानते हुए भी क्रोध न करे व कठोर वचन न कहे वह धीरा नायिका; जो स्त्री अपने पति के दोष को देख कर मर्म वचन को ही प्रगट करे, खुल्लम खुल्ला न कहे, वह समधीरा नायिका है ॥ २५ ॥

चत्रं बीश अक्रूर बाला बरनी स्युग्याता कविता ।
वसू अष्ट त्रै दोय कीनी त्रयं लच्छनं संजुगता ॥
सु-आधीन ले आदि आद्य स्वयंदूतिका मानि वामा ।
अनूढा कही गर्विता भिन्न भिन्न सबै आदि नामा ॥ २६ ॥

फिर काव्य के ज्ञाता कवियों ने अन्य चौबीस प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है, वह इस प्रकार कि:- वसु ८, अष्ट=८, त्रै=३, दोय=२ और त्रयं=३ मिलकर चौबीस लक्षण सहित नायिकाएं कही गई हैं । उनका विवरण इस प्रकार है कि स्वाधीन पतिकादि आठ, स्वयं दूतिकादि मानी हुई आठ और अनूढा गर्वितादिक अलग २ नाम की सब मिला कर चौबीस कही गई हैं ॥ २६ ॥

सु आधीनपत्नीक जाके गुनसे बध्यो है ज्यु श्यामं ।
 उत्कंठिता शोचितं चित्तमें मित क्यों नाय धामं ॥
 सज्या वासिकं सज साजे बिराजे पिया पंथ हरे ।
 अभिसंधिता आदि माने न पाछे चहें प्रीय नेरे ॥ २७ ॥

जो स्त्री अपने गुणों से पति को वश में किए होवे वह स्वाधीनपत्निका,
 जो स्त्री 'अभी प्रियतम घर क्यों नहीं आए' इस प्रकार विचार करके शोक
 करती हो वह उत्कंठिता नायिका, जो स्त्री शैथ्या बिछा कर पति की प्रतीक्षा
 करती हो वह वासक शैथ्या नायिका, जो स्त्री नाराज होकर बैठे और पति आकर
 मनावे तो भी न माने, फिर पति के चले जाने पर पछतावे और इच्छा करें कि
 कोई बुला लाये वह अभिसंधिता अर्थात् कलहांतरिता नायिका है ॥ २७ ॥

खरी खंडिता प्रेम खंडे पती और संगी बिलोके ।
 वियोगी पती प्रोषिता मेन नाराच छत्तो सु भोके ॥
 विप्रं लाब्धिका एह संखेत में प्रीय नाये रिसाये ।
 अभिसारिका साजि सिंगार श्यामं सुजाये रिझाये ॥ २८ ॥

जो स्त्री अपने पति को अन्य स्त्री के पास गया देख कर प्रेम का खंडन
 करे वह खंडिता नायिका, जिस स्त्री का पति विदेश गया हो और वह वियोग
 दुःख से दुखी हो वह प्रोषितपत्निका नायिका, जो स्त्री अपने प्रेमी के संकेत
 स्थान पर न आने से क्रुद्ध होवे वह विप्रलब्धिका नायिका और जो स्त्री अनेक
 प्रकार के शृंगार से सुसंजित हो पति के पास जाकर आनन्द करे वह अभि-
 सारिका नायिका है ॥ २८ ॥

स्वयं दूतिका दूत बानी पियासे अराधे सु साधे ।
 समस्या वधू प्रीछवे औरही ठौर को दाव बांधे ॥
 दुरावे सखी लक्षिता प्रच्छन्नं मित से चित्त लावे ।
 रतीकी गती को कहूं अंगमें चैन आधे लखावे ॥ २९ ॥

* इस छन्द में स्वयं दूतिका के स्थान पर वचनविदग्धा और समस्या वधू के स्थान में
 क्रियाविदग्धा चाहिये, क्योंकि उसके नीचे लक्षिता गृह्यादि परकीया का भेद क्रम से बनाया

जो स्त्री अपने पति को (जार को) दूती की भांति वचन बोल कर अर्थात् स्वयं दूती का कार्य करके अपना काम बतावे वह स्वयं दूतिका नायिका, जो स्त्री बतावे कुछ और अन्य स्थान में जाने का दाव पेच लगावे अर्थात् किसी अन्य को मालूम न होने पावे ऐसी क्रिया समस्या से अपने प्रिय-तम को समझावे वह समस्यावधू नायिका, जो स्त्री अपनी सखी से छिपाकर मित्र से मन लगावे और उस बात को तथा कोकशास्त्र की विधि अनुसार की हुई कामक्रीडा को गुप्त रखे परन्तु सखी चिह्न से सब कुछ जान लेवे वह लक्षिता नायिका कही जाती है ॥ २६ ॥

गुपता रती गोप जाने विधाने सुमाने शयाने ।

कुलटा पटाछूट वामं सु कामं विलासं बखाने ॥

मुदित्ता सुरत्ता वृती जानिये आगमं प्री उमंगे ।

बिनासे अनूशेन संकेत आवे न पावे न रंगे ॥ ३० ॥

जो स्त्री अपने किए हुए रति को गुप्त रखने की रीत जाने उसे सयाने मनुष्य योग रतिगुप्ता नायिका कहते हैं, जो स्त्री निर्लज्जता से काम विलास का वर्णन करे वह कुलटा नायिका है, जो स्त्री अपने पति के आने की संभावना में रति की अभिलाशा से आनंदित हो वह मुदितता नायिक और जो स्त्री संकेतस्थल पर जावे और वहां प्रियतम को न पावे, अथवा संकेतस्थल का नाश देख दुखी हो वह अनुशयना नायिका कहाती है ॥ ३० ॥

अनूढा त्रिया? जाहिको व्याह कीनो न सो ही कुमारी ।

स्वथं दूतिकादी कही अष्ट नारी चित्तमें बिचारी ॥

हुआ है । साथ ही लक्ष्य भी वचनविदग्धा और क्रियाविदग्धा का है । ऐसा होते हुए भी छन्द २० वें में क्रिया चतुरा और मोहना ये दो नये नायिकाभेद दिये हैं और उनके लक्ष्य क्रिया चतुरा अर्थात् क्रिया विदग्धा और मोहनी यानी वचनविदग्धा के जैसे ही हैं । इसलिये इस में कोई भूल हुई प्रतीत होती है ।

१ ऊढा और अनूढा ये परकीया के भेद हैं परन्तु यहां ग्रन्थकार ने एक ही भेद किया है, ऐसा क्यों ? इस शंका का उत्तर यह है कि जितनी विवाहिता नायिका हैं वे सब ऊढा हैं परन्तु अनूढा यानी कुंवारी का वर्णन इन छन्दों में कहीं नहीं है इसलिये यहां पर लिया है ।

प्रियं सापराधं लखे माननी त्रै विधे मान भारे ।

लघुमान सो सामनी साम सें ख्यालही में निवारे ॥ ३१ ॥

जिस स्त्री का विवाह न हुआ हो, क्वारी हो वह अनूठा नायिका कही जाती है । इस प्रकार स्वयं दूतिका आठ, नायिकाओं का वर्णन चित्त में विचार कर कहा है । अपराध वाले पति को देख कर स्त्रियों के तीन पृथक् २ नाम कहे हैं वह इस प्रकार:—

जो स्त्री अपने पति को दूसरी स्त्री के पास देख कर मान करे, फिर अपने पति के साथ होने पर सहज में मान छोड़ दे वह लघुमानवती ॥ ३१ ॥

कही मध्यसो क्रोध छूटे पती बोध कथ्ये प्रचंडे ।

गुरुमाननी मान घटे न बोले सु बानी विखंडे ॥

चले भोर प्रानेश की नायका पर्यसता बखानी ।

लखै मित को चैन त्री और सों अन्य संभोग जानी ॥ ३२ ॥

जो स्त्री अपने पति के मुख से अन्य स्त्री की प्रशंसा सुन कर प्रचंड मान धरे, फिर पीछे पति के भली प्रकार समझने पर मान त्याग देवे वह मध्य मानवती नायिका, जो स्त्री अपने पति के शरीर में अन्य स्त्री के पास जाने के चिह्न को देख कर मान धरे और अपने पति की बड़ी नम्रतापूर्वक अनुनय विनय करने पर धीरे २ मान त्याग करे वह गुरु मानवती है । जो स्त्री अपने पति के परदेश जाने की सूचना से खेद पावे वह प्रवत्स पतिका नायिका है; जो स्त्री अपने पति में अन्य स्त्री के पास जाकर आने के चिह्न देख कर दुखी होवे वह अन्य संभोग दुःखिता नायिका है ॥ ३२ ॥

ग्रहे रूपके * गूनसे गर्वसो गर्भिता भाव तीनं ।

मतीसागरं काव्यके भावमें बाल कथ्यी प्रवीनं ॥

निजं रूपके गर्वसो रूप गर्वापती बात खंडे ।

द्विती प्रेम गर्वा पती से रती से भरी रार मंडे ॥ ३३ ॥

* असल प्रति में “मित के दोससे गर्वसों गर्भिता भावतीन” पाठ है, परन्तु वह अशुद्ध होने से ग्राह्य नहीं ।

जो स्त्री अपने रूप अथवा गुणादि से गर्वित हो वह गर्विता नायिका कही जाती है, इसके तीन भेद हैं । समुद्र की भांति बुद्धि वाले कवियों ने कविता के भाष में जो चतुर स्त्रियां कही हैं वे इस प्रकार हैं—जो स्त्री अपने रूप के गर्व से अपने पति की बात का खंडन करे वह रूपगर्विता नायिका, जो स्त्री अपने पति के प्रेम के गर्व में होकर हर किसी से कई बार प्रेम करे वह प्रेमगर्विता नायिका है ॥ ३३ ॥

त्रिती कामगर्वा सबेही गुरू लोग की लाज तज्जे ।
बिनाही समय कामसे श्यामिनी श्याम को संग भज्जे ॥
षटं चत्रते नायिका ए सबै तीन रूपं विचारे ।
त्रिया त्रैगुनी ताय विस्तरिके द्वै गुनी द्वै सुधारे ॥ ३४ ॥

जो स्त्री अपने कुटुम्ब के सब लोगों की लज्जा छोड़ समय बिना कामातुर हो पति का संग करे वह कामगर्विता नायिका है । इस प्रकार कही हुई स्वाधीन पतिका से गर्विता तक (६+४) चौबीस नायिकाओं का उत्तमादिक तीन रूप विचार में ले अर्थात् तीन गुणा करके फिर उन्हें दिव्यादिक से तीन गुणा करके क्रिया चतुरादिक से दूनी विस्तार करे फिर उसे ज्येष्ठादिक दो भेदों से द्वि-गुणा करें ॥ ३४ ॥

उत्तम अपमान जोरे तुछोरे सदाही सहज्जे ।
लघू दोषतें मध्यमा मान साधे प्रणामं विचज्जे ॥
यही अद्धमा बारही बार रुठे न छूटे कपटं ।
यहीं से जुदी तीन वामा विचारे शयाने निपटं ॥ ३५ ॥

जो स्त्री अपने पति से अपमानित होने पर भी रोष छोड़ कर हमेशा सरल चले वह उत्तमा नायिका; जो स्त्री पति के थोड़े दोष पर मान करे परन्तु फिर मान छोड़ दे वह मध्यमा नायिका; जो स्त्री पति के दोष देखकर बार २ क्रोध करे और कपट न छोड़े वह अधमा नायिका है । इन तीन नायिकाओं से अलग दूसरी तीन और नायिकाएं बिहार योग्य और कहते हैं ॥ ३५ ॥

दिवा नायिका सो पतीसें सदा रीझ रंग निभावे ।
 दिवादिव्य सो मितकी रीझसे चित लावे न लावे ॥
 अदिव्या सदा प्रेमके नेमही से ज्यु हीनी जुवत्ती ॥
 इती रीति की सागरं चिते जानी सु आनी जुकत्ती ॥ ३६ ॥

जो स्त्री पति के स्नेह को हमेशा भली प्रकार निबाहे वह दिव्या नायिका; जो स्त्री अपने पति के प्रेम में मन लगावे और न लगावे अर्थात् पति प्रेम करे तो वह भी प्रेम करे और पति प्रेम न करे तो वह भी न करे वह दिव्या-दिव्यनायिका; जो स्त्री हमेशा पति के प्रेम में नियम से लीन नहीं रहे वह अदिव्या नायिका है । इतने प्रकार से महाराज रससागर के मन में जाने हुए नायिकाओं को मैंने युक्ति में लाकर वर्णन किया है ॥ ३६ ॥

चतुर क्रिया*मर्म में सैनसे भैन चैनं जनावे ।
 द्विती नायिका मोहनी श्रवानिमें वानि भेदं बनावे ॥
 दुहू में पतीके अती वल्लभा जानिये सोइ जेष्ठा ।
 कछू न्यून है वल्लभा नायिका सो कहीजे कनिष्ठा ॥ ३७ ॥

जो स्त्री कोई क्रिया करके अथवा कर्म से या इशारा से अपने पति को प्रगट करे वह क्रियाचतुरा (क्रियाविदग्धा) नायिका है; जो स्त्री बात ही बात में अपना मतलब पति पर प्रगट करे अर्थात् अन्य के साथ बात करते २ पास खड़े हुए प्रीतम को समझादे और दूसरे को मालूम न होने दे वह मोहनी (वचनविदग्धा) नायिका; एक पति के दो स्त्रियां हों, उनमें जो विशेष प्रेम वाली हो वह ज्येष्ठा नायिका और जो उसमें कम प्रेम वाली हो वह कनिष्ठा नायिका कही जाती है ॥ ३७ ॥

* क्रियाचतुरा क्रियाविदग्धा का पर्यायवाची है इसलिये क्रियाविदग्धा समझना ।

१ मोहनी नाम की नायिका किसी रसग्रन्थ में नहीं है, परन्तु लक्ष्य जो यहां है वह वचनविदग्धा का है, अतएव वचनविदग्धा समझना । इस विषय में विशेष जानने के लिये इसी के १२ वें छन्द का नोट देखो ।

इती नायका देव बानी ब्रज भाषमें साख बोले ।
तिही को लही सारया आजही आपकी पास खोले ॥
सबै नायका साथ मीलायवे में वहे भेद जेते ।
कहुं बाहि की फेर संख्या लियो चित्तमें सर्व तेते ॥ ३८ ॥

इस प्रकार इतनी नायिकाओं की संस्कृत और ब्रजभाषा के ग्रन्थों में साक्षी मिलती है, उसका सार लेकर आज आपके समक्ष यह भेद खोला है । इन सब नायिकाओं को इकट्ठी करने से जितने भेद होते हैं उन सब की संख्या कहता हूं सो मन में समझना ॥ ३८ ॥

त्रिया त्रैगुनी चत्र भेदं करी त्रैगुनी ताय लीजे ।
किये द्वादशं भेद त्री भेदको त्रैगुने चौगुनीजे ॥
चत्रं विशके त्रैगुनी त्रैगुनी द्वै गुनी द्वै ज्यु लीनी ।
लख एक छासी सहस्रं छसैं और चौबीस कीनी ॥ ३९ ॥

(नायिकाभेद संख्या) स्वकीयादि तीन भेद, फिर उन्हें पद्मिन्यादि चार भेद से गुणे, फिर उन्हें मुग्धादि तीन भेद से गुणा करने से ३६ होते हैं । फिर नवलवधू आदिक बारह भेद में धीरादि मध्या के तीन भेद मिलाने से १५ होते हैं उन्हें स्वकीयादि तीन भेद से गुणन से ४५ होते हैं । उसे पद्मादि चार से गुणन से १८० होते हैं । इस में पूर्व कथित ३६ भेद मिलाने से २१६ होते हैं । इसे स्वाधीन पतिकादि से गर्विता तक के २४ भेद से गुणा करने से ५१८४ होंगे । इसे उत्तमादिभेद से पुनः गुणें तो ४६६५६ होते हैं । पुनः इसे क्रिया चतुरादि दो भेद करने से ९३३१२ हुए और फिर इसके व्येष्टादिक दो भेद करने से १८६६२४ एक लाख छियासी हजार छःसौ चौबीस भेद नायिकाओं के हैं ॥ ३९ ॥

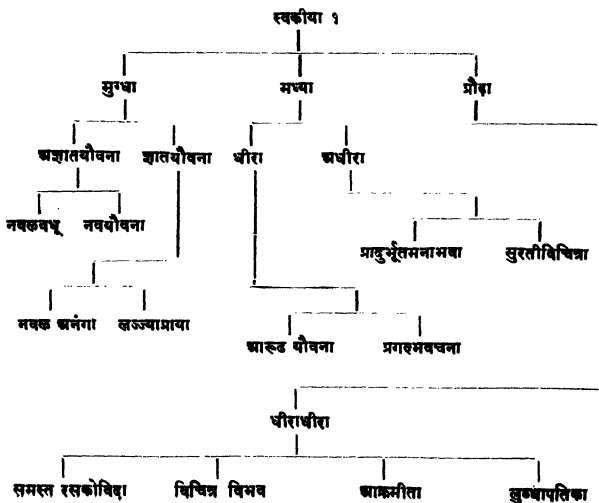
दोहा—लाख एक छासी सहस्र, छसैं और चौबीस * ।

इते भेद बनितान के, लहत हमारे ईश ॥ ४० ॥

एक लाख छियासी हजार छः सौ चौबीस भेद नायिकाओं के हमारे स्वामी
रससागर जानते हैं ॥ ४० ॥

शृंगार-शास्त्र में नायिकाओं के तीन भेद बतलाये हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा । प्रिय के अहितकारी होते हुए भी हितकारिणी हो उस स्त्री को उत्तमा, प्रिय के हित वा अहित करने पर हित वा अहित करने वाली स्त्री को मध्यमा और प्रिय के हितकारी होने पर भी अहितकारिणी हो उस स्त्री को अधमा कहते हैं । धर्मानुसार नायिकाओं के तीन भेद यह हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या, अपने ही पति में अनुराग रखने वाली स्त्री को स्वकीया, पर-पुरुष से प्रेम रखने वाली स्त्री को परकीया और धन धन के लिये प्रेम करने वाली स्त्री को सामान्या कहते हैं । स्वकीया—परकीया के समान ही सामान्या के भेद समझना, विस्तार भय से स्वकीया और परकीया के भेदों की ही तालिका दी है ।

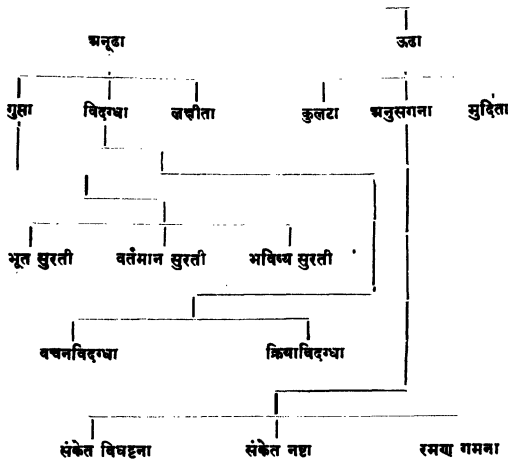
श्रीमान् महाराजा मानसिंहजी साहब की आज्ञा से
ठा० सा० पदसिंहजी संग्रहीत नायिकाभेद तालिका



कवि भाषत रीमे कुसुम, बहुर लगे बतरान ।

अचरज सी धारत उमय, इक इक सम्राप्ति सयान ॥ ४१ ॥

परकीया २



सामान्या ३

इसके भी भेद उपरोक्त नायिकाओं के समान जानना

सामुद्रिक शास्त्र में वर्षभ, मृग, शशांक आदि चार नायक और पद्मिनी, संसृजनी, चित्राङ्गी, हस्तनी आदि चार स्त्रियें नायिकायें कही हैं । शृङ्गार आदि ग्रन्थों में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर-लक्षित और धीरप्रसांत नामक नायक कहे हैं, धर्मानुसार—अनुकूल, दक्षिण, पृष्ठ और तल यह चार नायक कहे हैं ।

(पद्यपसिंह) हैं—

कवि की बातें सुन कर कुसुमावलि प्रसन्न हुई और बातें करने लगी ।
इस प्रकार दोनों की चतुरता देख कर दोनों को आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥

गाहा-कुसुमावलि संन्यास, चरचा पृथक् नायका भेद ।

पंचविंश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ४२ ॥

कुसुमावलि और संन्यासी में नायिकाभेद की चर्चासंबन्धी प्रवीणसागर
की यह पञ्चसर्वी लहर पूरी हुई ॥ ४२ ॥



लहर १६ मी

अथ संन्यासी कुसुमावली पत्रप्रकाश प्रसंग-दोहा.

एक एकहू की प्रकृति, उमै सराहन कीन ।

संन्यासी सागरपती, कर कुसुमावलि दीन ॥ १ ॥

संन्यासी और कुसुमावलि परस्पर एक दूसरे की प्रकृति की सराहना की इसके पश्चात् संन्यासी ने रससागर का पत्र कुसुमावलि के हाथ में दिया ॥ १ ॥

चौपाई—यहै बात संन्यास उचारी, पाइ हमे परतीत तुम्हारी ।

रससागर सु पत्र लिख दीनो, सोय आपके हाजर कीनो ॥

पहुंचे यह परवीणकला पै, पुनि प्रतिउत्र लिखें वह आपै ।

यहै आप प्रतिउत्तर दीजे, कहि तो वचन भूठ कहि लीजे ॥

कुसुमावली कही संन्यासी, तुमतो दई हमनको फांसी ।

राजद्वार क्यों उत्तर लीजे, वचन भूठ कैसे भंखीजे ॥

पुनि ब्रह्मनि मन निश्चय धार्यो, प्रति संन्यास उत्र उचार्यो ।

दिन दशपंच रहो इन ठाऊं, प्राण तजौ या उत्तर लाऊं ॥ २ ॥

बाद में संन्यासी ने कहा कि अब आपका मुझे विश्वास हो गया है इसलिये जो पत्र रससागर ने लिख कर मुझे दिया था वह आपको देता हूं । अब यह कागज कलाप्रवीण के पास पहुंचाओ और कलाप्रवीण से इसका उत्तर लिखा कर ले आओ, अगर नहीं तो यह कहो कि मैंने भूठा वचन दिया था । फिर कुसुमावलि संन्यासी से कहने लगी कि आपतो मुझे फांसी देते हो, क्योंकि राजद्वार से उत्तर कैसे ले आ सकती हूं ? और दिए हुए वचन को भूठा भी किस प्रकार करूं ! फिर ब्रह्मपुत्री कुसुमावलि ने मन में विचार कर संन्यासी से कहा कि आप दस पांच दिन यहां रहिए इस अवधि में या तो मैं उत्तर ले आऊंगी या शरीरांत करूंगी ॥ २ ॥

दोहा—उभ श्रोता वक्ता उभय, वाणी उभय विशेष ।

अन्यो अन्येकेक प्रति, उभय कीन आदेश ॥ ३ ॥

दोनों कहने वाले और दोनों ही सुनने वाले तथा दोनों विशुद्ध बाणी वाले एक दूसरे से पृथक् होते समय एक दूसरे को प्रणाम किया ॥ ३ ॥

उभय रूप गुन सम उभय, उभय बराबर वेश ।

अन्यो अन्येकेक प्रति, उभय कीन आदेश ॥ ४ ॥

दोनों ही रूप और गुण में समान हैं तथा वेश में भी समान हैं । दोनों ही संन्यासी और ब्रह्मसुता कुसुमावलि एक दूसरे से पृथक् होते समय एक दूसरे को प्रणाम किया ॥ ४ ॥

उभय नम्र उन्नत उभय, कुल गुरुताई भेश ।

अन्यो अन्येकेक प्रति, उभय कीन आदेश ॥ ५ ॥

दोनों ही नम्रता में, कुल में तथा गौरव में एवम् वेश में समान हैं; ऐसे संन्यासी और कुसुमावलि दोनों ने परस्पर एक दूसरे से पृथक् होते समय प्रणाम किया ॥ ५ ॥

धीर दई पाती लई, गेह करन परवेश ।

अन्यो अन्येकेक प्रति, उभय कीन आदेश ॥ ६ ॥

फिर ब्रह्म-बाला ने स्वामी को धीरज दे और पत्र लेकर घर में जाते हुए फिर एक दूसरे को परस्पर प्रणाम किया ॥ ६ ॥

सोरठा-निश अघ गई निहारि, उभ अतृप्त बात न उठे ।

निज ग्रह गई सुनारि, संन्यासी आसन शयन ॥ ७ ॥

दोनों ही बातों से अघाते नहीं और उठते भी नहीं, ऐसा करते २ आधी रात बीत गई, अन्त में कुसुमावलि उठकर घर में गई और संन्यासी अपने आसन पर शयन की ॥ ७ ॥

सब निश शोच विचार, कीनो ब्रह्म कुमारिका ।

प्रात चलत दरबार, संन्यासी बंदन कियो ॥ ८ ॥

सारी रात ब्रह्मकुमारी शोच विचार करती रही और प्रातःकाल राज दरबार में जाते समय संन्यासी की बन्दना की ॥ ८ ॥

वंदित कहो कुमारि, महाराज माया अगम ।

आशिश जोगि उचारि, कही मनंछा तुम सफल ॥ ६ ॥

स्वामी को प्रणाम करते हुए ब्रह्म-बाला ने संन्यासी से कहा कि महाराज ! आप की माया अगम्य है । इसे सुनकर योगी ने आशीष देते हुए कहा कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो ॥ ६ ॥

छन्द मुक्तदाम.

चली चढ़ि शपंदन ब्रह्मकुमार, दिनंकर उद्य गई दरबार ।
पहोंचिय जत्र कलाप्रवीण, दुहु कर खोलि सु आशिश दीन ॥
सुता नृप बंदन कीन बुलाय, निजासन ब्रह्मनि बैठित आय ।
करे नित रूपाल सुशी सु रसाल, रही ग्रह मौन वहीं दिन बाल ॥
भई निश बीत गयो है ताप, सहेलिय जठि चली ग्रह आप ।
कलाप्रवीण दुर्जा मुख देख, कछु दुचिता यह कीन परेख ॥
भरोखन आप विराजित जाय, लई तहँ विप्रनि नीठ बुलाय ।
कलाप्रवीण सु बूझिय बात, कहो किहि भेद अरुभूत जात ॥
तबैं दुज बाल सु उत्तर दीन, कछु नहिं आज सु मादक कीन ।
प्रवीण सु माजुम लीन मंगाव, लियो निज ब्रह्मनिको जु लिबाय ॥
दुजो मंगवाई सु आसव बोलि, लयो कर किंकरि कुंभ सु खोलि ।
सुता नृप पात्र दिवाए सु वंच, उमैं भई आनन मादिक रंच ॥ १० ॥

स्वामी की आज्ञा होने पर ब्रह्मकुमारी सूर्योदय होते २ रथ में बैठ राजदरबार में गई और जहां कलाप्रवीण थी वहां जाकर दोनों हाथ फैलाकर राजकुमारी को आशीष दिया, राजकुमारी ने भी वन्दन करके पास बुलाई फिर कुसुमावलि अपने आसन पर जाकर बैठी । अन्य दिन वह प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली बातें किया करती थी, परन्तु आज वह मौन रही । इस प्रकार दिन की गर्मी मिटी और रात हुई जिससे सब सहेलियों ने उठकर आज्ञा ली और अपने २ घर गई । तब कलाप्रवीण कुसुमावलि का मुख देख कर मन में सोचने लगी कि आज कुसुमावलि कुछ बेचैन मालूम होती है, ऐसा निश्चय करके

झरोखे में जा बैठी और अपने पास कुसुमावलि को बुलाकर पूछा—हे प्रिय सखी कुसुमावलि ! आज किस कारण से तू उदास है ? तब कुसुमावलि ने उत्तर दिया कि कुछ नहीं, आज मैंने कोई नशा नहीं, किया है जिससे ऐसा मालूम होता है । तब प्रवीण ने माजूम मंगाकर अपने हाथ से दिया और कुसुमावलि ने मद्य की बोतल मंगा कर दासी से खुलवा कर पांच प्याले भर कर राजकुमारी को दिये जिससे दोनों की आंखें रक्तवर्ण हो गईं और प्रसन्न हुई ॥ १० ॥

चौपाई—जाम व्यतीत जामनी होई, सहचरि आयस दई सु सोई ।

कुसुमावलि एकंत परेखें, कही प्रवीण चांदनी देखें ॥

उठि जन दोउ चांदनी आये, इक द्वै तान ब्रह्मनि गाये ।

उर हुझास हुआ अति जबही, बोली ब्रह्मकुमरि प्रति तबही ॥ ११ ॥

एक पहर रात बीती कि हजूर दासियों की छुट्टी हुई और वे सो गई । कुसुमावलि यह रास्ता ही देख रही थी कि कब एकान्त मिले । इतने में कला-प्रवीण को उसने कहा कि चलो सखी चांदनी में चलें । दोनों उठ कर चांदनी में आ बैठीं । कुसुमावलि ने एक दो गायन के ख्याल गाये जिससे कला-प्रवीण के मन में अत्यन्त हुलास हुआ । तब समयानुसार कुसुमावलि राजकुमारी से इस प्रकार बोली ॥ ११ ॥

छप्पय—एक सर्वरो सुपन, भयो सो कछो न जाई ।

बहुत बात विस्तार, हानिके मध्य हसाई ॥

यहै सुरत परवीण, बात बूझनको लग्गी ।

ब्रह्मनि मोह बढ़ाय, वचन दोऊ यह मग्गी ॥

सुनि सुवन क्रोध कीजे नहीं, अरज प्रत्युत्तर दीजिये ।

विधि विधि विवेक कहतहि बनें, सुपन सु भेद सुनीजिये ॥ १२ ॥

ब्रह्मनंदिनी कहने लगी कि हे प्राणों से प्रिय सखी कलाप्रवीण ! मुझे एक रात्रि में स्वप्न आया जो वर्णन के बाहर है । वह बात ऐसी है कि वर्णन नहीं की जा सकती । उस स्वप्न में एक दुःख की और दूसरी हंसी की बात है इस बात को सुनकर कलाप्रवीण आतुर होकर पूछने लगी, तब कुसुमावलि

स्वप्न की बात की माहिमा अपने बोलने की चतुराई से इस प्रकार प्रकट की कि कलाप्रवीण वर्णोत्तीत अधीर हो गई । तब उसने प्रवीण से वचन मांगा कि बात सुनकर क्रोध न करें और प्रार्थना सुनकर उत्तर दें तो अनेक विधि वाली बात कहते बने और आप स्वप्न के भेद को सुनें ॥ १२ ॥

दोहा—बात सुनन उर चाह बहु, वकसे वचन प्रवीण ।

कुसुमावलि प्रति नृप कुमारि, कहो कहो जक लीन ॥ १३ ॥

बात सुनने की इच्छा रखने वाली कलाप्रवीण ने कुसुमावलि के मांगने के अनुसार दोनों वचन दिये और कुसुमावलि से अब 'कहो अब कहो' की टेर लगादी ॥ १३ ॥

अथ सुपन आडंबर कुसुमावलि उक्त—छंद पद्वरी.

आयो सु सुपन निश एह आज, आखेट आये वह महाराज ।
गाजत निशान साजत गयंद, निकसे झरोख नीचे नरिंद ॥
निज कुमार एह साथी न सथ्य, चांदनी आय आकाश पथ्य ।
कौमुदी चंद पूरण प्रकाश, राजंत आप इत मुदित आस ॥
उठि आप तासु मनुहार कीन, आधे उछीर आसन सु दीन ।
बतरान लगे उभ उर हुलाम, नन पासवान हम एक पास ॥
सिंगार बास दुहु सम सरूप, भामनी काम कामनी भूष ।
जर चेल चित्र मनि मुक्त माल, राधिका कृष्ण आभा रसाल ॥
मुसकात बात तुम करत मंद, उर बड़त हमें त्यों त्यों अनंद ।
चंदन चढ़ाय सौगंध लाय, तुम पात्र दीन मैरेय ताय ॥
आपको पात्र उन दीन फेर, हैंसि अति हुलास आनन सु हेर ।
एकेक भयो उर कति सनेह, मानहु घटा अब सुधा मेह ॥
तुम भयों पात्र दूसरी बार, हैंसि कसो आप हमसे निहार ।
हां हां गुलाबदानी मँगाय, महाराज अंग छिरको जु आय ॥
तुम लगे बहुरि बतियां उमंग, हां हां सु लाजं कहि गई जंग ।
एहो सुपन कारन सु कौन, मुसकाय अहे ब्रह्मनी मौन ॥ १४ ॥

कुसुमावलि ने स्वप्न की बात कहना सुरू किया—आज रात्रि में ऐसा स्वप्न आया कि मानो शिकार में आए हुए कोई महाराजा फिर कर बाजने गाजने तथा तरह २ के शृंगार से सज्जित हाथी के ऊपर अम्बारी में बैठे हुए अपने इस झराखे के नीचे से होकर निकले। वे राजकुमार अकेले बिना किसी अपने संगी साथी के आकाशमार्ग से अपने महल में आए। उस समय चन्द्र की चांदनी परिपूर्ण प्रकाशित थी जिससे प्रसन्नवदन आप वहां बैठी थी। जब वे आये तो आपने उठकर और सत्कार के साथ अपने आधे आसन पर दहिने हाथ बैठाया। फिर दोनों मौज से बातें करने लगे। उस समय दास दासी पास नहीं थे, केवल मैं ही थी। अंग पर सजे हुए शृंगार, वस्त्र आभूषण और रूप रंग में दोनों समान ऐसे प्रतीत होते थे मानो रति व कामदेव हों, जरी के वस्त्र, भांति २ के माणि मोती की माला गले में पड़ी हैं, उस समय की शोभा देख कर मानो राधाकृष्ण की जोड़ी है ऐसा प्रतीत होता था। उस समय आप दोनों मन्द २ बातें करते तथा बीच २ में मुसकाते थे जिसे देख कर मेरे मन में बहुत २ आनन्द उत्पन्न होता था। आपने उन्हें चन्दन चर्चन किया, सुगंधित तेल फुलेल अतर लगाया, मदिरापात्र भर कर दिया, इसी प्रकार उन्होंने भी आपको मद का प्याला दिया। ऐसे करते २ परस्पर अत्यन्त स्नेह हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो मेघ की घटा में से अमृत की वर्षा हो रही हो। फिर आपने दूसरा प्याला भरा और मेरी ओर देख कर हँसते हुए कहा “कुसुमावलि ! गुलाबदानी मंगाओ कि मैं महाराज के ऊपर गुलाबजल छिड़कूँ” ऐसा कह कर तुम दोनों बड़े ही उमंग से बातें करने लगे। फिर मैंने कहा ‘हां, हां, मैं लाती हूँ’। ऐसा कहते ही आंख खुल गई, जाग उठी। तो हे कलाप्रवीण ! इस स्वप्न का कारण कौन ? इतना कह कर कुसुमावलि जरा मुसकरा कर मौन हो बैठी ॥ १४ ॥

दोहा—कहा सुपन कारण कहा, कहा उकति यह कीन ।

सुमन गुच्छ मुसकाय कछु, कुसुम सु हन्यो प्रवीण ॥ १५ ॥

यह स्वप्न क्या है ? और इसका कारण ही क्या ? यह तू क्या बात

करती है ? ऐसा कहते हुए मुस्करा कर फूल के गुच्छे से कलाप्रवीण ने कुसुमा-
वलि को मारा ॥ १५ ॥

चौपाई—कुसुम प्रवीण प्रकृति कलु जानी, बोलन लगी कुमरी प्रति वाणी ।
राजवंश वंश ब्रह्मको नहीं मारे, हम तो सुपन सत्य करिडारे ॥
द्विज दधीच मुर कारण कीनो, द्विज अगस्त कोपि दधि पीनो ।
द्विज मिलाय रुक्मिणी हरि दोई, द्विज सु दीन जानो मत कोई ॥
द्विज वश मंत्र मंत्र वश देवा, एहि विध सृष्टि करत द्विज सेवा ।
याते वचन सत्य द्विज मानो, द्विज सु देव मानव जिन जानो ॥ १६ ॥

कुसुमावलि कलाप्रवीण की प्रकृति को कुछ जान कर कहने लगी, 'राज-
वंशी तो ब्राह्मण को मारते नहीं, मैं तो ब्राह्मण हूं, और मैं चाहूं तो असत्य
स्वप्न को भी सत्य करदूं । पहिले ब्राह्मण दधीचि ऋषि ने अपने शरीर की
हड्डियां निकाल दीं और देवताओं का काम किया, अगस्त्य ऋषि दुःखित
होकर समुद्र पी लिया, ब्राह्मण ने ही श्रकृष्ण और रुक्मिणी दोनों को मिलाया
इसलिए ब्राह्मण को कभी दीन मत समझना । ब्राह्मण के वश में मंत्र और
मंत्र के वश में देवता हैं, इसीलिए सृष्टि ब्राह्मण की सेवा करती है । इस-
लिए ब्राह्मण देवता है मनुष्य नहीं ऐसा, समझना ॥ १६ ॥

गाथा—ब्रह्मानि बात प्रवीणं, सुनियत धार अंतरंग सखी ।

कारन करन प्रकाशं, बोलिय प्रति विवेकयुत वाणी ॥ १७ ॥

कलाप्रवीण कुसुमावलि की बात सुनकर और इसे अंतरंग सखी धारण कर
सत्य कारण प्रकट करने के विषय में विवेकयुक्त वाणी से कहने लगी ॥ १७ ॥

येडित भरति उसासं, बोलत मंद मंद यह बानी ।

उन उत कित इत आवहि, पावहि जिहि अट्टमहि जैसो ॥ १८ ॥

पहिले अंगड़ाई लेकर और ऊंची सांस खींचते हुए धीरे २ वचन बोली—
हे सखी ! वह राजवंशी यहां कैसे आवे और मुझे मिले । अपने जो अट्ट
में लिखा होगा सो मिलेगा ॥ १८ ॥

सोरठा-एक अंगवत नारि, संग रहत निश दिन सदा ।

आशय लई निहारि, कुसुम सु कलाप्रवीण मन ॥ १६ ॥

एकही प्रकार की भोग वाली अर्थात् स्त्री होने से और सदा पास रहने के कारण कुसुमावलि कलाप्रवीण के अंतःकरण के अभिप्राय को समझ गई ॥ १६ ॥

पुनि तब कही प्रकाश, वही आप जोरी बिहद ।

है न कछू परिहास, उन पत्रायो आप प्रति ॥ २० ॥

फिर कुसुमावलि ने खुल्लमखुल्ला कलाप्रवीण से कहा कि जिस राजवंशी के साथ मैं जोड़ी मिला रही हूं वह हंसी नहीं है, बल्कि उसने आपको पत्र भेजा है ॥ २० ॥

तुरत त्रया तजि दीन, चित प्रवीण भई चटपटी ।

‘लाव लाव’ जक लीन, कुसुम कहे पाती कहां ? ॥ २१ ॥

यह बात सुनते ही तुरंत काम छोड़ दिया और चित्त में चटपटी लगने से आतुर होकर कलाप्रवीण बोली हे कुसुमावलि ! वह पत्र कहां है ? और ‘लाव लाव’ करने लगी ॥ २१ ॥

बाती कही बनाय, आखेटक संन्यासलों ।

कुसुम प्रतीत सुपाय, पाती दई प्रवीण प्रति ॥ २२ ॥

विश्वास हो जाने पर कुसुमावलि ने रससागर के शिकार आने से प्रारंभ कर संन्यासी भेजने तक की सारी कथा विस्तारपूर्वक सुनाई और फिर कलाप्रवीण को वह पत्र दिया ॥ २२ ॥

गाहा-पाती लई प्रवीण, उर आनंद उदास उमंगिय ।

खोलित कसन सु ग्रंथी, बंद बिदार बांचने लगिय ॥ २३ ॥

पत्र लेते ही कलाप्रवीण के हृदय में उदासी और आनन्द उछल आया । फिर बैली के ऊपर बंधी हुई रेशमी डोर की गांठ खोली और सब बंध हटाकर पत्र बांचने लगी ॥ २३ ॥

अथ पत्र उदाहरण शिरनामे का-सोरठा.

अहो ! शि मित प्रवीण, वरन भेद अहि वांचिये ।

लिख्यो जु पत्र नवीन, छंद सु मुक्तियदाम करि ॥ २४ ॥

हे मित्र प्रवीण ! यह पत्र वर्णभेद को ग्रहण कर के बांचना जो मौक्तिक-
दाम छंद में लिखा है ॥ २४ ॥

अथ छंद मौक्तिकदाम.

स्वसंतिय श्री 'मनश्छित्त-थान'; वसें तहं जाननहार विधान ।
सदा उर अंतर एकहु रंग, उमे मति जाननहार अनंग ॥
त्रिहू गुण त्रीविध जाननहार, करे चत्र वेद सु भेद विचार ।
लहें रति चारिहु भेद बहीर, रती इत पंचव्रती तुक धीर ॥
पढ़े पुनि पंच कवित्त सु काव्य, सध रस मिश्रित पंच सु भाव्य ।
षटे रस शासतरं षट बानि, अलिंगन रीत षटो रितु जानि ॥
सती सुर लीन संगीतन जुक्त, सतं मत संस्कृतं सु विभक्त ।
अठो गुन सात्विक आठ प्रकार, त्रियानकि आठ दशा विस्तार ॥
नव रस थाइ कला नव लीन, नव विधि व्याकरणं ग्रह भीन ।
दशा दश हाव दशं दश थान, दशं मह पूजन काव्य प्रमान ॥
दुहू दश आभरनं अनुमान, दशं दुहू अंक जुतं अधिधान ।
विद्या दश चत्रनको रति रति, ध्रुवा दश चत्रन भेद संगीति ॥
दशं अरु पंच सु मैन निवास, कथा अनुमान समास प्रकास ।
षटं दश आनन भूषण अंग, दशं षट गान कलान अनंग ॥
अठं दश भिन्न सु बात पुरान, दशं अठ ताल विधान सु गान ।
दुहू दश एक मूर्छना गात, दशं उकती दश दोय बनात ॥
षटं दश दोय दुहानकि जात, गुनं दश दोय सु लच्छन बात ।
उभय दश द्वादश संचर एक, अठं दश द्वै गुण राग विवेक ॥
शतं दश दोय कलान सु भेद, दशं अठ आसन कोक सु वेद ।
अलंकृत आठ दशं दश नाम, बड़े अति अच्छरके विशराम ॥

गने गनती गुन छंद अपार, पढ़े नहीं पार लहे मुखचार ।
 सबै उतमा शुभसी छवि लीन, इतै गुण लायक मित प्रवीण ॥
 सदा चिरजीव रहो वह मित्र, लिख्यो रससागर ने यह पत्र ।
 सबै रसके तुम सज्जन धाम, सु बचहुं जे कमलापति नाम ॥
 इतै निज छेहसे मोद अनंत, लिखो निजके सु मया करि मित ।
 बढैं पतियां लखि प्रेम प्रकाश, घटैं उमड्यो मनु भाव उदास ॥
 विचारहु फेर इकीकति भाष, तुम्हें मुख देखन को अभिलाष ।
 घड़ी धन जो मुख देखहु आप, मिटे तनके विरहानल ताप ॥
 कवे करतार करे दिन एह, घटा वरषे चढ़ि अमृत मेह ।
 सदा मन ध्यान न चूकत सोय, जबै मिलिहो तब आनंद होय ॥
 कहा लिखिये विस्तार विशेष, इतेमहि जानहुंगे अविशेष ।
 इते फुरमान लखो फुरमास, सबै विधिहैं हमको विश्वास ॥
 मनंतर अंत्र न राखिये एह, हमें तुम चाहत दीठ सनेह ।
 न लिखिये लेखक-दोष जरूर, लखो प्रति उत्तर पत्र जरूर ॥
 एके पर आठ सु संमत लेखि, बड़े ब्रष तीनरु वंश विशेषि ।
 सितं पख और मधू शुभ मास, भयो परिपूरण चंद्रप्रकाश ॥
 गुरु ग्रह बीत गई निश आध, लिख्यो यह पत्र सु मित्र अराध ।
 नभाउन प्रेम प्रकार प्रतीत, विचारहु फेर सबैयन रीत ॥२५॥

स्वस्ति श्री अर्थात् कल्याणकारक और शोभायमान मंझापुर नामक
 धाम है जहां सर्वरीति के जानने वाले बसते हैं, उनके मन में हमेशा एकही रंग है
 यामी कामदेव का रज । सात्विक की दोनों गतियों को जानते हैं, तीन गुण
 और तीन प्रकार की वेदविधि, कर्म-उपासना और ज्ञान के जानने वाले हैं,
 चारों वेद के भेद को विचार करने वाले, बाह्यभेद को अवलोकन करने वाली
 उत्तानकादि पांच प्रकार की सुरत को समझने वाले, पांच प्रकार की कविता और
 रघुवंश आदि पांच काव्य के पढ़े हुए, रससहित विभावादि पांच भाव क
 साधने वाले, स्वाद में छः रस तथा छः शास्त्र और छः भाषा के जानने वाले,

आलिंगन करने की विधि तथा छत्रों ऋतुओं के उपचार को समझने वाले, संगीतशास्त्र की उक्ति से सातों स्वर को समझने वाले, संस्कृत की सातों विभक्तियों के ज्ञाता, आठ गण और आठों सात्विक भाव के वेत्ता, क्रिया की आठ दशा के विस्तारक, नव रस और रति हास्य आदि स्थायी भाव की कला के जानने वाले, नव विधि व्याकरण को तथा नवों ग्यों के भिन्न २ रूप के जानने वाले, अभिलाषादि वियोगिनी दश दशा, लीला विलासादि वियोग के हाव और दश दिशाओं के स्थानक को जानने वाले, दश महाविद्या के पूजन तथा दस प्रकार के काव्य प्रमाण को जानने वाले, बारह प्रकार के आभूषण के पहिने की विधि जानने वाले, बारह अंकयुक्त यानी बारह अक्षर वाली बारासड़ी के प्रमाण को जानने वाले अर्थात् लघुगुरु के नियम से शुद्ध शब्द को पहिचानने वाले, चौदह विद्या चौदह रतिक्रीडा की रीति, ध्रुपदादि संगीतशास्त्र के चौदह भेद के जानने वाले, शरीर में कामदेव के रहने, चढ़ने और उतरने के स्थान का ज्ञान रखने वाले, सब प्रकार की कथा के अनुमान व समास रीति के समझने वाले, अंग में सोलह प्रकार के सोलह शृंगार सजाने की रीति तथा गायन सम्बन्धी सोलह प्रकार की कामकला के जानने वाले, अठारह पुराण की भिन्न बाणी को तथा गायन के अठारह ताल की रीति के जानकार और गायन की इक्कीस प्रकार की मूर्छना से वाक्फि, बाईस प्रकार की उक्ति से भाषण करने वाले, दोहा के छब्बीस प्रकार के जानने वाले, बत्तीस लक्षण तथा चौबीस प्रकार के संचारी भाव से विज्ञ, रागानियों के सहित छत्तीस राग को विवेक सहित जानने वाले, बहत्तर प्रकार की कलाभेद को जानने वाले, कोकशास्त्र में वर्णित चौरासी आसन को कर सकने वाले, एकसौ आठ अलंकार को समझने वाले, अधिक और न्यून अक्षर के विश्राम को पहिचानने वाले, भेस, पर्कटी, पताका आदि अपार छन्दों की गणना करने वाले कि जिसे चार मुख वाले ब्रह्मा भी जानने में पार नहीं पाते, इस प्रकार सर्व शुभ उपमायुक्त सुन्दर छवि धारण करने वाले गुण आपके भिन्न कलाप्रवीण ! लिखने वाले रससागर का सर्व सृष्टि आधार-रूप जय मय का पति अर्थात् जय श्रीकृष्ण । यहां आप की कृपा से सर्व आनन्द है, हे मित्र ! अपने आनन्द का पत्र कृपा करके लिखना । पत्र लिखने

सें प्रेम का प्रकाश बढ़ता है, मन में उत्पन्न उदासीनता घटती है तथा पत्र से शुभ समाचार ज्ञात होते हैं। मुझे तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा है और जिस समय दर्शन करूंगा वह घड़ी मैं धन्य समझूंगा। और तभी मेरे शरीर की विरहाग्नि का ताप मिटेगा। ऐसा दिवस परमेश्वर कब लावेगा कि बादल की घटा चढ़ कर अमृत की वर्षा होगी। मेरा मन हमेशा तुम्हारा ध्यान नहीं भूलता इसलिए मिल लेंगे तभी आनन्द होगा, विस्तार से बढ़ाकर क्या लिखें। इतने से ही थोड़े लिखे में बहुत करके समझ लेना। यहां मेरे लायक कोई कार्य हो सो लिखना। हमारा तो सब तरह से तुम्हारे पर ही विश्वास है। मन में कोई अन्तर नहीं रखना। मैं तो तुम्हें स्नेह से देखना चाहता हूं। पत्र में कोई दोष हो तो मन में न लाना और पत्र का उत्तर जरूर लिखना। एक ऊपर आठ यानी अठारह, और वंश यानी राजवंश जो छत्तीस उसमें तीन मिलाने से उन्तालीस होवे अर्थात् संवत् १८३६ के चैत्र मास की शुक्लपक्ष की पूर्णमासी के दिन परिपूर्ण चन्द्रप्रकाश होने वाले गुरुवार की आधीरात बंती उस समय हे मित्र ! आपकी आराधना में यह पत्र लिखा। जिसे पढ़कर इस जुड़ी हुई प्रीति को सदा निबाहेंगे ऐसा आप पर विश्वास है और नीचे लिखे सबैया को विवरण से विचार करना ॥ २५ ॥

अथ दृष्टांतालंकार—सबैया.

रंगहि रंग रसो मिलके अति, मंजत हो चटकी नहिं छूटे ।

भेद कछू न परे परसें कर, पात प्रसूत खरे नहिं सूटे ॥

भाजन फूट गयो जु इते पर, टूक भये है तितीविधि तूटे ।

ऐसे प्रवीण बसे उर भीतर, जैसे बनाय बिलोर में बूटे ॥ २६ ॥

जिस प्रकार कांच के नाना प्रकार के रंगदार वर्तन पर काढ़े हुए चित्र का रंग सुदृढ़ रहता है, माजने से जरा भी नहीं छूटता, इसी प्रकार उसपर हाथ के स्पर्श करने से भी कुछ भेद नहीं पड़ता, उन कांच के वर्तनों पर बने हुए फूल पत्ते बूने पर छूटते या कुम्हलाते नहीं, और यदि वर्तन फूट जाय तो उन चित्रों के भी उतने टुकड़े हो जाते हैं, इसी प्रकार हे प्रवीण ! उन बिलोरी

पात्र में जैसे वे चित्र बसे होते हैं वैसे ही मेरे चित में आप बसे हैं ॥ २६ ॥

अथ अलंकार दृष्टांत.

बंध परेच जुदे पिंजरा दोउ, एककु एक घरी विसरे ना ।

ओसर ओट खुलें कवही तब, अंगहि अंग निहारत नैना ॥

आपसमें बतरान लगे तब, जानत म्हेर विरांचि को हैना ।

देखो प्रवीण विहंगम की गति, कीर कहां को कहां कि है मैना ॥ २७ ॥

अलग २ पिंजरे में दो पक्षी रहते हुए भी एक दूसरे को एक घड़ी भी भूलते नहीं और किसी समय उन्हें अवसर मिलता है तब वे परस्पर अंग २ को नेत्रों से देखते हैं और आपस में बातें करने लगते हैं । तब जानते हैं कि ब्रह्मा की भी मेहर नहीं है । इसलिए हे प्रवीण ! देखो दोनों पक्षियों की बातें कि कहां का तो मुआ और कहां की मैना है ॥ २७ ॥

अथ अलंकार दृष्टांत.

धाम अराम रबो करिके तहं, मित मिल्यो तो चलयो तजि तीरे ।

कोमल कुंजनको बसिया, रसिया हूँ उड्यो सुख छांड शरीरे ॥

बाज बहे तो ग्रहे गति बाज की, धीर बहे तो ग्रहे गति धीरे ।

कोटि उपाय करे बिछुरे नहिं, प्रेम प्रवीन सुगंध समीरे ॥ २८ ॥

सुगंध बगीचा में घर करके रहता है, परन्तु जब मित्र पवन मिले तो बगीचा को छोड़ चला जाता है । उस कोमल कुंज में रहने वाला होते हुए भी शरीर के सुख को छोड़ उड़ निकलता है और वह मित्र पवन जब बान की भांति उतावली गति से चलता है तो स्वयं भी उसकी ही भांति उतावला हो जाता है और जो पवन मंद गति से चलता है तो वह भी मंद गति धारण करता है । इन दोनों मित्रों—सुगंध और पवन—को अलग २ करने के करोड़ों यत्न करते हैं परन्तु वह पृथक् नहीं होता । हे प्रवीण ! जिस प्रकार सुगंध को पवन के साथ स्नेह है इसी प्रकार मेरा स्नेह तुम्हारे साथ है ॥ २८ ॥

अथ अलंकार दृष्टांत.

पावसमें मन मोद लिये जिमि, पान किये द्विदी मदिरा के ।
 ज्यों ज्यों घटा बरसे सरस, तन छकत छकगए ददरा के ॥
 आठहु मास निसास रहे अरु, गाजत गाज उठे बदरा के ।
 ऐसे यहां गुजरान अहो निश, देखो प्रवीण सने ददरा के ॥ २६ ॥

हाथी जिस प्रकार मदिरा के पान से मुदित होता है, मोंढक वर्षा-ऋतु में आंमं-
 त्रित होते हैं, ज्यों २ वर्षा पड़ती है त्यों २ दादुर सजविन होते जाते हैं, और जैसे
 रोग से शरीर सूखता है वैसे ही वर्षा समाप्त होने पर दादुर सूखता जाता है ।
 आठ महीना निःश्वास रहते हुए बादल की गरज के साथ ही वह भी गाज
 उठता है, इस तरह वह रातदिन बिताते हैं तो हे प्रवीण ! इन दादुरों के स्नेह
 को देखो अर्थात् मेरी भी यही दशा है ॥ २६ ॥

अथ अलंकार दृष्टांत.

भीत भयो चित बित्र लख्यो तन, निंदत नीरज नंद दगारो ।
 अंग जरे मुरझाय परे पुनि, चाहत चंच अंगारको चारो ॥
 छर प्रभा प्रगट्यौ तो कहा सब, लागत है खु हलाहल खारो ।
 देखो प्रवीण चकोर के नैनन, चंद गयो तो भयो अंधियारो ॥ ३० ॥

मन में भयभीत होकर चित्र के समान शरीर स्तब्ध हो गया है, थोड़ी देर
 में सुध आने पर कमल से जिनकी उत्पत्ति है अर्थात् नंद कहिए ब्रह्मा दगाखोर
 है इस प्रकार उसकी निन्दा करते हैं । शरीर जलता है, जलते हुए मुरझा कर
 पृथ्वी पर पड़ता है, फिर २ अंगार चोंच से उठाता है । दूसरों को प्रकाश करने
 वाला सूर्य्य उदय हुआ तो चकोर को क्या, इसे तो सब हलाहल जहर के
 समान कड़वा लगता है । इसलिए हे प्रवीण ! देखो चकोर की आंखों से चन्द्रमा
 गया कि अंधेरा हुआ । इसी तरह मेरे और तुम्हारे बीच में समझना ॥ ३० ॥

दोहा—आठ तीन पर पंच कर, तीन तीन पर दोष ।

पंच पंच कर एक सौ, निशदिन जंपत सोय ॥ ३१ ॥

आठवें वर्ग के तीसरे वर्ण की यानी 'स' की पांचवीं मात्रा करना अर्थात् 'सु', तीसरे वर्ग के तीसरे वर्ण पर दूसरी मात्रा अर्थात् 'जा', पांचवें वर्ग के पांचवें वर्ण पर पहिली मात्रा अर्थात् 'न', इस प्रकार 'सुजान, ऐसा नाम हुआ । उसे ही रात दिन जपते रहते हैं ॥ ३१ ॥

पंच सवैया द्वै दुहा, बीस छंद अनुमान ।

लिख्यो जु पत्र प्रवीण पै, सागर रसिक विधान ॥ ३२ ॥

पांच सवैया, दो दोहा और बीस छन्दयुक्त रसिक पुरुषों के नियमानुसार रसिक रससागर ने कलाप्रवीण को पत्र लिखा ॥ ३२ ॥

गाहा-कुसुम सु कला प्रवीण, चरचा प्रथम पत्र बंचन विधि ।

षष्ठविंश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३३ ॥

कुसुमावलि और कलाप्रवीण की चर्चा और प्रथम पत्र बांचने की विगत संबन्धी प्रवीणसागर ग्रन्थ की छब्बीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३३ ॥



लहर १७ वीं ।

अथ कलाप्रवीण दशा कुसुमावलि चर्चा, प्रसंग सोरठा.

सागर पत्र प्रवीन, बंचत ही बदली दशा ।

मनहुं छीन जल मीन, तिहींबेर तलफन लगी ॥ १ ॥

कुमार रससागर का पत्र पढ़ते ही कलाप्रवीण की दशा बदल गई और पानी से अलग हुई मछली की भांति तड़फने लगी ॥ १ ॥

चौपाई—खोलत वीर बांचने लग्गी, रोम रोम बिरहानल जग्गी ॥

वरन वरन सर छाती पारा, जाने प्रेम जानने हारा ॥

पहुंचे एक पंचती आरा, उमड़े नैन असाढ़ी धारा ॥

पूरण छंद बांचने लग्गे, प्राण पतंग दीप ज्यों दग्गे ॥

अथ इति पत्र बांचने पाई, एतेमें तनकी सुधि नाई ॥

कुसुमावलि पाती कर लेवे, दिय द्रढ़की हिम्मत फिर देवे ॥

मांगे फिर सचेत हूँ पाती, अति उसास भर आवे छाती ॥

इहि विधि पाती पूरण कीनी, कलाप्रवीण मूर्छना लीनी ॥

कुसुमावलि मनमें पछतानी, ऐसिहि बात हमें नहि जानी ॥

के उपचार करन मन लागी, घुहुरत गए मूर्छना भागी ॥

फिर फिर बात बूझने लागे, कुसुमावलि मते को भागे ॥ २ ॥

पत्र को खोल कर पढ़ने लगी कि रोम २ में बिरहानल प्रकट हुआ और अक्षर २ से कामवाण हृदय भेदन कर उतरने लगा । इस पीड़ा को प्रेम का जानने वाला व्यक्ति ही जान सकता है । इस प्रकार पत्र पढ़ते २ एक पंक्ति के अन्त तक पहुंचने तक तो आंखों से अश्रुओं की धारा ऐसे बह चली जैसे आषाढ़ मास में वर्षा हो रही हो । जैसे तैसे करके पूर्ण छंद को पढ़ने लगी परन्तु जिस प्रकार पतंग दीपक में भस्म होता है उस प्रकार उसके प्राण पतंग प्रेमरूपी दीपक में जलने लगे । प्रारंभ से अंततक पत्र पढ़ते २ शरीर की सुध बुध जाती रही । बेजान होगई । तब कुसुमावलि ने पत्र पीछा ले लिया और प्रवीण के मनको

टढ़ रखने के लिए फिर २ हिम्मत बंधाने लगी । ऐसा करने से जब कुमारी सचेत होती है तो श्वासोच्छ्वास से छाती भर जाती है ऐसा करते २ पूरा कापज पढ़ा कि प्रवीण को मूर्छा आगई । ऐसी स्थिति देख कर कुसुमावलि पछताने और मन में कहने लगी कि ऐसी दशा का पता होता तो पत्र को खोलती ही नहीं, ऐसा विचारते हुए उपचार करने लगी । इस प्रकार उपाय करते २ दो घड़ी बीती और मूर्छा गई तो फिर २ कर वही बात पूछने लगी और वैसे ही वैसे कुसुमावलि उस बात का खंडन करने लगी ॥ २ ॥

अथ पुनि कलाप्रवीण दशा—छन्द भुजंग.

टुटे बंधमें लोक की लाज टूटी, छुटे बारमें चितकी धीर छूटी ।
गुलाबी किये नैन नैनों में पानी, भरि आई छत्ती सु बोले न बानी ॥
दिवानी भई चांदनी बीच डोले, उदासी लई पान लावे कपोले ।
पसीना भयो रोम की रोचि जगगे, वही मितका चितमें ध्यान लगगे ॥
उसास भरे श्वान के संग ज्वाला, भई चंद्रकी चंद्रिका ज्वाल माला ।
मनो अंग दाहे परी दाह जग्गा, कटे घाव के ऊपरें लोन लगगा ॥
सखी हाथसे पत्र ले फेर बंचे, दुऊ नैन से नीरधारा न खंचे ॥ ३ ॥

कापज के ऊपर का बंध टूटा, साथ ही उसकी लोकलाज छूटी और पत्र के छोड़ने के साथ २ उसके मनका धीरज भी छूट गया । रो रो कर उसकी आंखें रक्तवर्ण सी होगई और आंखों से आंसुओं की धारा बह चली, छाती भर जाने से बोला नहीं जाता है और दिवानी की भांति चांदनी में फिरने लगी । इस प्रकार उदासी से हाथ लम्बे लटकाए विचारमग्न है, अंग २ में पसीना आरहा है, रोमांच होने से उसकी कान्ति प्रदीप्त हो रही है और मित्रका ध्यान मन में लग गया है । उसकी उसासों की उष्णता से शीतल चन्द्रमा की किरणें मानों तप्त होगई और ऐसा दाह उत्पन्न करके मोहित करने लगी जैसे घाव पर किसी ने नमक छिड़क दिया हो । इतना दुःख सहन करते हुए प्रिय सखी के हाथ से पत्र लेकर फिर बांचती है, परन्तु दोनों आंखों से चलती हुई अश्रु-धारा से पढ़ने नहीं पाती ॥ ३ ॥

दोहा-कुसुमावलि पदुताइ करि, महु समुभावत बाल ।

त्यों सु प्रेम बाढ़े बिरह, आज्य अग्नि मिलि ज्वाल ॥ ४ ॥

कुसुमावलि अनेक प्रकार चतुराई से प्रवीण को समझाती है । परन्तु उससे उसकी प्रेमाग्नि इस प्रकार धधकती है जैसे घी पड़ने से अग्नि ॥ ४ ॥

नीठ नीठ आनी शयन, उर सु द्रढ़ाई धीर ।

विंद याद नींद न लगी, जुरी प्रात बहु भीर ॥ ५ ॥

कुसुमावलि ने जैसे तैसे करके प्रवीण को शय्या पर लाकर सुलाया, परन्तु उसे प्रियतम के स्मरण से निद्रा ही नहीं आई । सबेरा हुआ तो बहुतसी सखियां इकट्ठी हो आकर मिली ॥ ५ ॥

अथ चौपाई.

दिनकर उदित सहेली आई, सोउ न कलाप्रवीण सुहाई ।

कुमरी कछु उदास लखाई, सोई चतुर सहेलिन पाई ॥

खुशी खेल विध विध के मंडे, उन उदास भावहु न छंडे ।

दिन प्रतिदिन यहतरें बिहावे, चरचा वही रैन को चलावे ॥

ब्रह्मनि वह बातको बिसारे, राजसुता छिन छिन संभारे ॥ ६ ॥

सूर्योदय होने पर सब सहेलियां आकर मिली परन्तु प्रवीण को यह अच्छा नहीं लगा । चतुर सखियों ने यह जान लिया कि राजकुमारी आज कुछ उदासीन है और इसलिए उसे प्रसन्न करने लगी । फिर भी कुमारी प्रसन्न नहीं हुई । इस प्रकार उदासी में दिन पर दिन बीतने लगा और प्रत्येक काल में वही चर्चा चलने लगी । ब्रह्मकुमारी इस बात को भुलाने का यत्न करती है, परन्तु राजकुमारी फिर २ कर वही बात याद करती है ॥ ६ ॥

छप्पय-पूरण कलाप्रवीण, प्रेम उर मग्य सु आयो ।

तर्क कीन दिन तीन, चिंतमें एह द्रढ़ायो ॥

मरना वहैत कबूल औरही से नहिं करना ।

उभया ईश अराधि, गुजर पत्रहि पर करना ॥

एतो उलंघ बात जु कहें, कुल भ्रजाद अपवाद जन ।

कौमार बिरद धारण मतो, निज निश्चय कीनो सु मन ॥ ७ ॥

कलाप्रवीण के हृदय में जब प्रेम भरपूर होगया तो तीन दिन के तर्क वितर्क के उपरान्त उसने दृढ़ निश्चय किया कि मरना स्वीकार है, परन्तु अन्य किसी पुरुष के साथ लग्न निबन्ध नहीं करना है । फिर मन में यह निश्चय किया कि श्री महादेव पार्वती की आराधना करते हुए महाराजश्री के पत्र पर ही अबलम्बन करूंगी और इससे जो लोक कुलमर्यादा के उल्लंघन करने की उलटी बात कहते हैं वह कौमार-व्रत धारण करूंगी ॥ ७ ॥

दोहा—यों धारत दिनकर अहर, भई सांभ शशि भोर ।

कुमरी नीतिपाल सु प्रति, कही अरज करजोर ॥ ८ ॥

इस प्रकार मन में विचार करते हुए आदित्यवार की संध्या हुई और दूसरे दिन चन्द्रवार होगा ऐसा महाराजजी से कुमारी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया ॥ ८ ॥

छप्पय—महाराज निज बाग, उमा महेश सुहावे ।

उन मानत के लिये, प्रातशशि दिन सु सिधावे ॥

वृद्ध बाल नर नारि, शहर सिगरोई आवे ।

खान पान सामान, सबै सरकार पठावे ॥

नृप नीतिपाल कुमरी अरज, मुनियत वह मानी सबै ।

धरि आस तास आयस दई, पुर पुकार भंखी तबै ॥ ९ ॥

हे पिताजी ! अपने बाग में उमा महेश का मंदिर है, वहां का मैंने मानना मान रक्खा है । कल प्रातःकाल चन्द्रवार (सोमवार) है, आप आज्ञा देवें तो वहां जाऊं । इतना ही नहीं बल्कि नगर के सब नर-नारी बाल वृद्ध वहां आवें और उनके खाने पीने का प्रबन्ध राज्य से किया जाय । कुमारी की यह प्रार्थना सुनकर नृपशिरोमणि राजा नीतिपाल ने यह बात स्वीकार की और उसे धैर्य दिया । उसकी आशा पूर्ण करने के लिए तदनुसार सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया ॥ ९ ॥

छप्पय-निश बीबी शशि भोर, नाद नृप द्वाह सु बजे ।

पुरजन मंडन धीरि, सबै शिष थानक सजे ॥

चक्री अरु मंदोल, सुतर गज बाज सु पैदल ।

इहि विधि बरन अठार, आय ईश्वर थानक चल ॥

सामान खान पानहि सकल, दिय अमात जन जन सुप्रति ।

उच्छव अनंत जन मन मुदित, ठौर ठौर संगीत गति ॥ १० ॥

रात बीती और सोमवार का प्रातःकाल हुआ, वहां राजद्वार में बाजे बजने लगे, पुरवासी नाना प्रकार के वस्त्राभूषण से सुसज्जित हो राजधानी के शिवमंदिर पर पहुंचने लगे। उस समय रथ, पालकी, ऊंट, हाथी, घोड़ा और पैदल सिपाही सहित महाराजा नीतिपाल और अठारह वर्ण के लोग बाग में महेश्वर के स्थान पर आए। उन सबों के खाने पीने का सामान राज्य के कर्मचारियों ने सब के पास पहुंचाया। इस प्रकार के सम्मिलित उत्सव से अत्यन्त आनन्दित होकर जहां तहां लोग गाना बजाना करने लगे ॥ १० ॥

अथ छंद भंपताल.

बागमें नीतिपाले नृपत्ती रजे, बाद बाजित्र भिन्न भिन्न बजे ।

केऊ बाजीगरं रंग बाजी नटा, नायका नृत्य साधंत केऊ पटा ॥

गायका गान साधंत केऊ कला, कुंजमें गुंज माधूप छूटे नला ।

माधुपं सोर भिगोर केऊ खगा, माननी जथ गावन्त केऊ जगा ॥

आपके आप सामान केऊ सभा, मानहो उच्छव इंद्र पाई प्रभा ।

राजपुत्री जरी नंग सिंगारियं, हेम तारी सु पाटंबरं धारियं ॥

अंग द्वाभावनी कंचन बेलियं, संग लीनी शतपंच साहेलियं ।

मंद गत्ती सबै मंगलं गावहीं, उमया ईश थानक पै आवहीं ॥ ११ ॥

बाग में महाराजा नीतिपाल विराजमान हैं, भिन्न २ प्रकार के वाद्य बज रहे हैं। कहीं २ बाजीगर खेल तमाशे कर रहे हैं, कहीं नट लोग सरकस के खेल कर रहे हैं; कहीं नायिकाएं नृत्य कर रही हैं, कहीं अखाड़ा-सिद्ध पहलवान कुश्ती लड़ रहे हैं, कहीं गवैये सप्तस्वर और ताल में गायन कर रहे हैं, कहीं भंवरे

लता-कुंज में गुंजार कर रहे हैं, पानी के नल से फौवारे छूट रहे हैं, बाग में कई स्थानों पर हंस आदि पक्षी कल्लोल करते हुए सुन्दर शब्द कर रहे हैं, कहीं मानभरी स्त्रियों का मुंड टोली बनाकर गान कर रहा है। इसी प्रकार सम-वयस्क युवक मित्रमंडली बनाकर विनोद कर रहे हैं। जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो यह उत्सव इन्द्रादि देवताओं की प्रभा है। उस समय राजकुमारी अनेक नगों से जटित स्वर्ण आभूषण धारण किए हुए और सुनहरी किनारी-युक्त पीताम्बर पहिरे हुए ऐसी शोभायुक्त है मानो स्वर्णलता है। इस प्रकार पांचसौ सहेलियों को साथ लिए हुए मंद गति से चलकर उमा महेश के मंदिर में पहुंची ॥ ११ ॥

अलंकार आरोहावरोह यथासंख्या—अथ छप्पय षटविधानी.

समर शशी सारंग, विष्णु धनवंतरि शंकर ।

तिलक रुद्र आयुद्ध, नाद बाहन ओरे सर ॥

कमल एनचख शंख, चाप तोतामुख इंदु ।

कांति सुघट अरु कुटिल, गोल उभके से अद्रु ॥

तिय पान नैन ग्रीवा गनो, अकुटी नासा भाल भनि ।

एते प्रवीन आगा लिये, बाल बाग निकसी सु बनि ॥ १२ ॥

कामदेव के बाण कमल के समान कोमल कर, चन्द्रमा के बाहन मृग के नेत्र के समान नेत्र, कृष्ण के वाद्य शंख के समान ग्रीवा, अर्जुन के आयुध गांडीव धनुष के समान अकुटी, धन्वन्तरि का बाहन शुक उसके तुंड के समान नासिका और शंकर के तिलक चन्द्रमा की कान्ति के समान कपाल। इस प्रकार छठों अंग में कान्ति धारण किए हुए बाला रूप कलाप्रवीण सुन्दर शृंगारों से सुसज्जित बाग से निकली ॥ १२ ॥

छंद मुक्तिदाम.

सदा शिव मंजन गौरि कराय, चरच्चत चंदन केसर जाय ।

चढ़ाइय पुष्प सु विल्व पत्र, गुलाल सु और अवीर विचित्र ॥

कियो तित धूप सु दीपक माल, फला रगके नैवेद्य रसाल ।
 त्रिकुट्टिय लौंग सु पुंगिय पान, धर्यो मुखवास अनेक विधान ॥
 कनकन थार कपूर सु लीन, करी उत आरति बाल प्रवीण ।
 परी भवनाथ भवानिय पाय, करी तहं स्तुति छंद बनाय ॥ १३ ॥

सदाशिव शंकर और गौरी को विधिपूर्वक स्नान कराया, केसरयुक्त चंदन का लेपन किया, फिर पुष्पमाला और वेलपत्र चढ़ाया, विचित्र रंग के अबीर व गुलाल चढ़ा, धूप की दीपमाला की । इसके उपरान्त रमाल फल और स्वादिष्ट नैवेद्य चढ़ाया, फिर इलायची, लवंग, सुपारी, पान आदि अनेक मुखवास अर्पण किया । अंत में सोने की थाली में कपूर जला कर प्रवीण ने श्री शंकर की आरती उतारी और छन्द बनाकर स्तुति करने लगी ॥ १३ ॥

छंद तोमर.

जय जय जटा मधि गंग, जय जय कवरि उत्तमंग ।
 जय जय विभूतिविलास, जय जय सुगंध प्रकाश ॥
 जय जय सो चंदा भाल, जय जय त्रिपुंड्र रसाल ।
 जय जय सु नैन ज्वलित, जय जय सु बंदन बिंद ॥
 जय जय मुंडन माल, जय जय सु मुक्त रसाल ।
 जय जय अही तन धार, जय जय प्रसुनन हार ॥
 जय जय गरल गल संध, जय जय कपोत संबंध ।
 जय जय सु नम्र शरीर, जय जय पीतांबर चीर ॥
 जय जय सु अखन भंग, जय जय सुरा मद संग ।
 जय जय वपू विकराल, जय जय सरूप विशाल ॥
 जय जय सुनंदी नाथ, जय जय मृगेंद्र सु साच ।
 जय जय सु गुनजुत दास, जय जय सुजोगिनि पास ॥
 जय जय सु संकट गंज, जय जय जनारति भंज ।
 जय जय उमा अध अंग, जय जय सदा शिव संग ॥

जय जय भवा भव भूप, जय जय सु प्रेम स्वरूप ।

इतनी सु अस्तुति कीन, बंदे चरण परवीण ॥ १४ ॥

जटा में गंगा धारण करने वाले हे सदाशिव और माथे पर केशपाल धारण करने वाली हे उमादेवी ! आपकी जय हो । विभूति लेपन करने वाले हे महादेव और सुगंध चर्चन करने वाली हे पार्वती ! आपकी जय हो । मस्तक पर चंद्रमा धारण करने वाले हे शंकर और सुन्दर त्रिपुंड्र सिंदूर लगाने वाली हे उमा ! आपकी जय हो । ज्वाला के समान लाल नेत्र करने वाले हे भोलानाथ और सिन्दूर की बिन्दी धारण करने वाली हे श्रीदेवी ! आपकी जय हो । गले में मुंडमाला धारण करने वाले हे महारुद्र भगवन् और कंठ में मोतीमाला पहनने वाली हे पार्वती ! आपकी जय हो । शरीर पर सूर्य धारण करने वाले हे शंकर और पुष्पमाल धारण करने वाली हे पार्वतीजी ! आपकी जय हो । कंठ में हलाहल विष के धारण करने वाले हे नीलकण्ठ और जिसके कंठ की उपमा कपोत से है ऐसी अथवा कपोत का दूसरा नाम सूत्रकंठ है इसलिए मंगलसूत्रकंठ में धारण करने वाली हे जगदम्बा ! आपकी जय हो । भंग पीने वाले हे अचलेश्वर और मदिरा पान करने वाली हे योगमाया ! आपकी जय हो । विकराल शरीर वाले हे विरूपाक्ष और अग्निस्वरूप वाली हे त्रिपुरेश्वरी ! आपकी जय हो । नंदी के ऊपर बैठने वाले हे नंदीनाथ और सिंह के ऊपर बैठने वाली हे बाघेश्वरी ! आपकी जय हो । भूतादि दासों को पास रखने वाले हे मृत्युञ्जय और जोगिनियों से आवृत हे गिरिजा ! आपकी जय हो । संकट काटने वाले हे दुःखहारी और शरण आए हुए का दुःख मिटाने वाली हे जगदम्बा ! आपकी जय हो । आधे अंग में उमा को धारण करने वाले हे शिवजी और आधे अंग में शिवजी को रखने वाली हे विश्वेश्वरी ! आपकी जय हो । जन्मधारी और अजन्मा के राजा हे शंकर और पूर्वा प्रेमरूप हे भवानी ! आपकी जय हो । इतनी स्तुति कर के कलाप्रवीण ने उमा महेश का पग वन्दन किया ॥ १४ ॥

गाहा—बंदे चरण प्रवीण, उमया ईश प्रति यह मंगीय ।

जलधारा जलनखिय, भंखिय बिरद कुमारिका रहन ॥ १५ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण शिव पार्वती के चरणों में शिर रक्खे हुए माता,
“मेरा कुमारव्रत कायम रहे आप इसका निर्वाह कराना” ऐसा कह कर हाथ
में लिए हुए जल को जलहरी में डाल कर कुमारव्रत लिया ॥ १५ ॥

दोहा—शिखा देत सहेलियन, बरजे रही न नार ।

सोय बात नृप ने सुनी, हुआ सु हाहाकार ॥ १६ ॥

सहेलियों ने इस व्रत के लेने के पूर्व बहुत समझाया बुझाया, परन्तु कला-
प्रवीण ने किसी की नहीं सुनी और कुमारव्रत का प्रण ले ही लिया । यह बात
महाराज नीतिपाल ने सुनी और चारों ओर हाहाकार मच गया ॥ १६ ॥

चौपाई—नृपे निकट* आमात बुलाये, कुमरी वरजन काज पठाये ।

बोले आय कुमरि प्रति वाणी, एह कहा उर अंदर ठानी ॥

कुमरी कही होय सो होई, एह बात बरजो मत कोई ।

उमया ईश एह त्रिद दीनो, शीश चढ़ाय हमें सो लीनो ॥

प्राण समान राखिहौं मेरे, उठो अमात जाओ निज डेरे ॥ १७ ॥

फिर राजा ने कारबारियों को बुला कर कुमारी के लिए हुए व्रत छोड़ने के
लिए समझाने को भेजा । वे सब कुमारी के पास आकर अति नम्रता से कहने
लगे, ‘बाई साहब ! आपने यह क्या विचार मन में लिया ?’ कुमारी ने कहा
‘जो होना था सो होगया, अब उसे छोड़ने के विषय में कोई कुछ मत कहना ।
मुझे उमा महेश ने यही व्रत दिया, वही मैंने शिरोधार्य किया, अब उसे प्राण
पण से निबाहूंगी, इसलिए हे कारबारियो ! आप लोग उठो और अपने-
देरे पर जाओ ॥ १७ ॥

दोहा—अति अमात वरजी तऊ, मानि न राजकुमारि ।

उठि अमात नृप पै गये, कही बात विस्तारि ॥ १८ ॥

कारबारियों ने इस बारे में बहुत कुछ कहा, परन्तु राजकुमारी ने एक नहीं जानी तब कारवारी लोग उठ कर राजा के पास गए और सब बातें विस्तारपूर्वक सुनाई ॥ १८ ॥

सरजी बरजी ना भिटे, कही येहि छितिपाल ।

करमरेख अतिही कठिन, सृष्टा लिरवी सु भाल ॥ १९ ॥

फिर नीतिपाल महाराज ने कहा जो बात जिस समय होने की है उसे कोई रोक नहीं सकता, ब्रह्मा ने हमारे भाग्य में अतिशय कठोर कर्मरेखा लिख रखी है कि हमें इस कुमारी का कौमारव्रत देखना होगा ॥ १९ ॥

छप्पय—नीतिपाल तिहि काल, गान नाटक बरजाये ।

कीन्हों शहर प्रवेश, दुचित सब जन सरसाये ॥

आवत भयो अनंद, इसी दरसाइ उदासी ।

वन सु चलत रघुवीर, मनहुं मन अवध सु वासी ॥

इहि रीत सदन आये सकल, गान न नाटक नाद गति ।

प्रविशत प्रवीण निज महल प्रति, उर सनेह प्रगटंत अति ॥ २० ॥

महाराज नीतिपाल ने उसी समय गायन तथा नाटक बंद कराया फिर अपने नगर में प्रवेश किया, उस समय सब समाज उदास प्रतीत हुआ । बाग में जाते समय जिस प्रकार आनन्द मिला था उसी प्रकार लौटते समय चारों ओर उदासी देखने लगी । केकई के दिए हुए वचन से श्रीरामचन्द्रजी वन को चले गए उसके बाद अयोध्यावासी अति शंकाकुल हो अयोध्या को जिस प्रकार वापस आए उसी प्रकार सब लोग गाना बजाना कुछ न करते हुए चुप-चाप अपने २ घर सब लौटे । कलाप्रवीण भी अपने महल में गई तब उसके मन में वहां अति स्नेह उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

दोहा—सही गई निज निज महल, रही कुसुम इक पास ।

गई जाम जामनि तबे, कही एह परकास ॥ २१ ॥

सहेलियां भी सब अपने २ घर गई, केवल एक कुसुमावलि पास में रही

फिर एक पहर रात जाने पर कुसुमावलि ने इस प्रकार प्रकाश में कहा ॥ २१ ॥

गाहा-कुमरी कलाप्रवीण, यह उपाय कीन कहा आपे ।

मम चित्त एह उदासी, क्यों दिन विषम बीतिहैं आगे ॥ २२ ॥

हे राजकुमारी कलाप्रवीण ! आपने यह क्या उपाय किया ? मेरा चित्त इससे अति उदास हो गया है और चिन्ता होती है कि आगे के अति विषम दिन किस प्रकार व्यतीत होंगे ॥ २२ ॥

कुसुम सु प्रत्य प्रवीण, कही अब कहा करंत हसाई ।

प्रजरण लगे पहारं, अंजुली नीर बुझहैं वन्ही ॥ २३ ॥

तब प्रवीण ने कुसुमावलि से कहा, प्रिय बहिन ! अब दिलगी क्यों करती हो, जब सारा पहाड़ जलने लगा है तो एक अंजुली पानी क्या उसे शान्त कर सका है ? ॥ २३ ॥

कुसुमसु कलाप्रवीण की, सुनी सु बात सयान ।

धीर धरन मन द्रढ करन, बदी बरद की बान ॥ २४ ॥

प्रवीण के ऐसे धीरजयुक्त वचन सुन कर कुसुमावलि धैर्य के साथ मन को दृढ़ रखने की प्रशंसा में इस प्रकार बोली ॥ २४ ॥

अथ छंद कंद.

मलो सुत्रधारा रच्यो खेल ब्रह्मंड, व्रत धार खंडा अनी सेलके दंड ।

यही रीत आपै कियो प्रेमको पान, सुनी नाहि ऐसी हमें आजलों कान ॥

बिना भोगहि जोग सिद्धी करामात, न हुई न होवे यही और से बात ।

मनछा सदा पूरिहैं आपकी ईश, यहै सत्य जानी हमें ब्रह्म आशीष ॥ २५ ॥

ईश्वररूपी सूत्रधार ने इस ब्रह्माण्ड का सरस खेल रचा है, इसमें ऐसा व्रत लेना मानो तलवार की धार पर अथवा बरछी की नोक पर चलने जैसा है । इस प्रकार आपने प्रेम का दान दिया है यह कोई छोटी सुनी हुई बात नहीं है । ऐसी दुर्घट व्रत वाली स्त्री कोई देखने में तो क्या, सुनने में भी नहीं आई

हैं और तुम तो बिना भोग भोगे ही योग सिद्ध करने चली हो । ऐसी बात न कभी हुई, न होगी, इसलिए हे बहन ! आपकी कामना परम कृपालु परमेश्वर पूरी करे, हे प्रिय प्रवीण ! यह सत्य समझना, यह मेरी ब्राह्मणी की आशाधि है ॥ २५ ॥

गाहा—कलाप्रवीण सु कुसुमे, चरचा प्रेम नेम परसंग ।

सप्तविंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २६ ॥

कलाप्रवीण और कुसुमावलि की प्रेमचर्चा और कौमारव्रत के नियम संबन्धी प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह सत्ताईसवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ २६ ॥



लहर १८ वीं

अथ कलाप्रवीण कुसुमावली पत्रोत्तर भेद प्रसंगो यथा-सोरठा.

कहो कुसुम तिहि बार, वह जोगी अबलों इतैं ।

ताको करो विचार, पत्रोत्तर पावे कहा ॥ १ ॥

फिर कुसुमावली ने उस समय कहा कि योगेश्वर अभी तक यहीं हैं, उनका भी तो कुछ विचार करो, उनके पत्र का क्या उत्तर देती हो ? ॥ १ ॥

सुनी सु ब्रह्मनि भाष, रीभे कला प्रवीणजू ।

तन गहनो पोषाक, कियो बकस कुसुमावली ॥ २ ॥

इस प्रकार कुसुमावली की वाणी सुनकर कलाप्रवीण इतनी प्रसन्न हुई कि अंग पर पहिने हुए मूल्यवान वस्त्र कुसुमावली को इनाम में देदिये ॥ २ ॥

द्वादश आभ्रन धार, नौतम कलाप्रवीणजू ।

सजे सोर सिंगार, उर सु दशा अभिसार ग्रहि ॥ ३ ॥

फिर कलाप्रवीण ने मन में अभिसारिका की दशा धारण कर नवीन उत्तम बारह प्रकार के आभूषण धारण किये और सोलहो शृंगार से सुसज्जित हुई ॥ ३ ॥

अथ द्वादशाभरण षोडश शृंगार वर्णन यथा-छंद लघु नाराच.

फुलेल अंग रंजियं, गुलाब नीर मंजियं; बनाय केश पट्टियं, सिंदूर मांग थट्टियं. ललार आड़ केसरी, गुलाल बिंदुली करी; सरोज नैन अंजनं, चढ़ाय चित्र चंदनं. समीप धूम लाहियं, सुवास ले चढ़ाहियं; हिये सु पान मेदियं, सु पाय जावकं कियं. उभे दशं सु आभ्रनं, सिंगार षोडशं तनं; समार मंग मुत्तियं, प्रमून शीश मुत्तियं. जराव बिंदुली जरी, विराजमान बेसरी; तरौन ओन झुकियं, हमेल हार चुकियं. मनी सु पोंचियं जरी, अनूप मुद्र अंगुरी; चुरी भुजान कंगनं, रसाल किंकनी धुनं. वजंत पाय जेहरं, अनीट बीछुवा सुरं; दुकूल रंग रंग के, सिंगार सार अंग के. विराजमान चुकियं, समीप आरसी लियं; निदार अंग आपसे, जरी मनोज

तापसे. लगे सु ध्यान मितसे, बिचार लाय चित्तमें; सिंगार को उत्तारियं,
पीतांबरं सु धारियं. कियो सरूप जोगनी, बिभूत अंगसे बनी; करे सु रुद्र
मालिका, लखंत नैन लालिका. लपेट बेनि शीश से, लगी समधि ईश से;
लिलार आध चंदवा, बन्यो सु लाल बिंदुवा. दुसाल लाल रंग से,
लपेट आध अंग से; सरोज आमनं किये, बिदेह साधनं लिये. बन्यो
सरूप बालिका, मनो कनक कालिका; मँगाय फेर आरसी, सरूप देखि
के हँसी ॥ ४ ॥

अंग में तेल फुलेल का मर्दन करके गुलाब जल से स्नान किया, फिर केशों
को खोलकर मांग सवारी, मिंदूर डाला। कपाल में केशर का आड़ लगाकर
गुलाल की बिन्दी लगाई, कमल सदृश आँखों में काजल डाला और सब
अंगों में चंदन का लेप किया। पास में धूप सुलगा कर अंग २ में सुवास
लिया। कोमल कर्णों में मेंहदी और पैरों में महावर लगाया। बारह प्रकार
के आभूषण पहिन कर सोलहो शृंगार से सुमज्जित हुई। मागों को मोतियों
से गुंथा, वेणी में फूल का गजरा बांधा, कपाल में जड़ाऊ बिन्दी, नाक में
वेसर, कान में सोने के जड़ाऊ कर्णफूल और गले में चौकी, हमेल और हार
पहिना। हाथ में आबदार पहुंची, दसों उंगलियों में अनुपम अंगूठियां,
कलाई में सुन्दर चूड़ियां तथा कंकण पहिन कर सुन्दर आवाज वाली कटिमे-
खला धारण की। पांव में पहिने हुए जेवर और अनवट बिछुवा की
भंभनाहट गूँज उठी। नाना प्रकार के रंग विरंगे वस्त्र पहिन अंग में सब
प्रकार के शृंगार सजाए। इसके उपरान्त नक्शीदार चौकी में बैठकर आइना
में अपना अंग देखने लगी जिससे कामज्वर से शरीर जलने लगा और ध्यान
मित्र की ओर गया। इस विचार के आते ही सजे हुए सब शृंगार को उतार
केवल एक पीतांबर शरीर पर रक्खा और शरीर में भस्म, हाथ में रुद्राक्ष की
माला धारण कर योगिनी की भांति भेष धारण कर रक्तवर्ण नेत्र किये हुए
ढगमग चलने लगी। पीछे छूटे हुए केश की वेणी को शिर पर लपेट एक
शंकर में ध्यान लगाया। उस समय ललाट में का आधा लाल चंदवा अर्द्ध-
चन्द्र के समान दीखने लगा, लाल रंग का दुसाला आधे शरीर पर लपेट

पद्मासन लगाकर विदेह साधन किया उस समय वाला रूप प्रबीण का स्वरूप ऐसा बना कि मानो स्वर्ण के समान देह वाली कालिका हो । फिर आइना मंगाकर अपना रूप देख खिलखिलाकर हंस उठी ॥ ४ ॥

गाहा-राजसुता तिहिर्वेरं, कलम धार पत्र कर लीनो ।

सागर प्रत्य सनेहं, लाखिय भेद छंद मधुभारं ॥ ५ ॥

उस समय राजकुमारी कलम लेकर पत्र हाथ में लिया और परिपूर्ण स्नेह से मधुभार छंद में महाराज रससागर को पत्र लिखने बैठी ॥ ५ ॥

दोहा-प्रनय पत्र पूरण कियो, शुभ सौगंध चढ़ाय ।

कसन बंध दीन्हों कुसुम, जरी सु थैली लाय ॥ ६ ॥

अत्यन्त प्रेम से पत्र पूरा करके उस पर उत्तम सुगंध लगाया, जरी की थैली में डालकर ऊपर रेशमी डोरी कस कुसुमावलि को दिया ॥ ६ ॥

तादिन से परवीणजू, यह ब्रद गह्वो अनूप ।

आद्य निशा सिंगार करि, तजि कत जोगनि रूप ॥ ७ ॥

उस दिन से प्रबीण ने यह व्रत लिया कि पहली रात में शृंगार करलेती फिर उसे हटाकर जोगिनी का रूप करलेती ॥ ७ ॥

छप्पय-सजत रैन सिंगार, दशा अभिसार सु लावे ।

सोय विसर्जन करत, रूप जोगनी बनावे ॥

देव सेव जप करत, आदि निश योंहि बितावहि ।

कुमरी प्रेम कवित्त, करत ब्रह्मनिहि सिखावहि ॥

विप्रनी गाय वह ग्रहि, चत्र धरि निशि ऋतु शयन ।

लौकिक काज दिनप्रति करे, निश नितप्रति उपचारइन ॥ ८ ॥

रात पड़ती और शृंगार करके अभिसार करती अर्थात् जिस प्रकार अभिसारिका नायिका प्रियतम से मिलने जाती है वह दशा ले आती, फिर शृंगार उतार कर योगिनी का वेश धारण कर देवसेवा और जप करने में लगती, इस प्रकार रात्रि का प्रथम भाग बिताती, फिर रात्रि के दूसरे भाग में कलाप्रबीण प्रेम

का कवित्त बना कर ब्रह्मकुमारी को सुनाती जिसे कुसुमावली वीणा लेकर गाती ।
फिर चार घड़ी सोती । लौकिक काम दिन में करती और रात में ऊपर लिखे
प्रकार से कार्यक्रम रखती ॥ ८ ॥

सोरठा-नितप्रति यह गुजरान, धार्यो कलाप्रवीणजू ।

प्रगटित बिंब विहान, कुसुम पत्रजुत किय बिदा ॥ ९ ॥

कलाप्रवीण ने हमेशा इस प्रकार बिताने का निश्चय किया और सूर्य उदय
होते ही कुसुमावली को पत्र देकर विदा किया ॥ ९ ॥

ब्रह्मनि गइ निज वास, अशन कीन उतहीं रहो ।

शयन समय संन्यास, पास गई प्रमुदित वदन ॥ १० ॥

फिर ब्रह्मकन्या अपने घर गई और भोजन करके विश्राम किया, सोने के
समय प्रसन्नचित्त संन्यासी के पास गई ॥ १० ॥

बूभयो सकल विवेद, संन्यासी कुसुम स्र कझो ।

तबें सराहो टेक, कुमरी कलाप्रवीण को ॥ ११ ॥

संन्यासी ने विवेकपूर्वक सब हालत पूछा और कुसुमावली ने कहा, तब
संन्यासी रूप कविराज ने प्रवीण की कुमार व्रत के प्रण की प्रशंसा की ॥ ११ ॥

निशि एकंत निहार, पत्र दियो परवीण को ।

संन्यासी शिर-धार, लीन्हों कुंवरि सलाम करि ॥ १२ ॥

रात में एकान्त देख कर कलाप्रवीण का पत्र महाराज रससागर के लिये
संन्यासी को दिया, उसे संन्यासी ने ब्रह्मकुमारी को अभिवादन कर ग्रहण किया
और माथे चढ़ाया ॥ १२ ॥

दोहा-संन्यासी रीभे सुरत, कवित्त आशिषा कीन ।

पाती नाम प्रवीण लिख, कुसुमावलि कर दीन ॥ १३ ॥

संन्यासी मन में बहुत प्रसन्न हुआ और राजकन्या को आशीष देने के
लिये एक कवित्त लिख कर ऊपर प्रवीण का नाम लिख पत्रिका कुसुमावलि के
हाथ में दिया ॥ १३ ॥

अथ अलंकार आशिषा कलाप्रवीण आशिषा—छप्पय*कमलबंध यथा.

चत्र बदन जग रचहि, रसा जबलगि अनंत गहि ।
हर उमया कध बसहि, जी जबलों सुधा श्रवहि ॥
बरन भारती करहि, पवन जब लगि गवन खदि ।
रमन रमा हरि रमहि, बीन जबलों नारद लहि ॥
नग नाक अचल नीरद छलहि, तरनि तेज जब लगि तपुहि ।
दिल्लोर गंग जल तब लगहि, चिरह जीव परवीण तुहि ॥ १४ ॥
विधि विषधर हर शशि गिरा, मरुत विष्णु मुनि बीन ।
दिव दाधि रवि चल गंग लगि, चिरह जीव परवीन ॥ १५ ॥

ब्रह्मा, शेष, महादेव, चन्द्रमा, सरम्बती, वायु, विष्णु, नारदमुनि की
वीणा, स्वर्ग, समुद्र, सूर्य और गंगाजल कायम रहे तब तक हे प्रवीण !
चिरंजीव रहो ॥ १५ ॥

संन्यासी श्रम भो सफल, कुसुम सु विद्या लीन ।

अब मोचन प्रति आदि निशि, उठि निज गमन सुकीन ॥ १६ ॥

संन्यासी का सब प्रयत्न सफल हुआ जिससे उन्होंने कुसुमावलि को विदा
किया और पहिली ही रात में आसन उठा कर अपने उतारे की ओर चल
पड़े ॥ १६ ॥

साज बदल सोये शयन, भये उठे परभात ।

नेहनग्र पीछे फिरन, आरस कही अमात ॥ १७ ॥

अपने उतारे पर जाकर वेश बदल कर शयन किया और सुबह होते ही
उठकर नेहनगर को चलने की तयारी की आज्ञा दी ॥ १७ ॥

छप्पय—साज बाज गजरात, शिबिक पैदल सब सज्जिय ।

अतिहि भयो आनंद, नाद नीसान सुबज्जिय ॥

नेहनग्र की दिशा, चिंत हरखंत गमन किय ।

बहत राग दिन किते, भये निज नग्र सु पुगिय ॥

* यह छप्पय लहर ६५ वीं में छन्द २१ वां लिखा है, वहां अर्थ देखना ।

प्रविशंत सदन निज जन मिले, बीती निशा विशेष सुख ।

उत्कंठ लगी उरमें यहै, कब लखहौं महाराज मुख ॥ १८ ॥

गाड़ी और हाथी सब तय्यार कराए, पालकी और पैदल भी तय्यार हुए । सब के मन में अति आनन्द हुआ और नकारा बजने लगा तथा नेहनगर की ओर सब चलने लगे । इस तरह चलते २ कितने दिनों के उपरान्त अपने नगर को पहंचे । घर जाकर अपने परिवार से मिले । इस प्रकार रात्रि आनन्द में बिताई, परन्तु कवि के मन में यही उत्कंठा थी कि कब महाराज के दर्शन करूं ॥ १८ ॥

गाथा—प्रेम दशा परवीणं, सागर पत्र लिखन प्रति उत्तर ।

अष्टविंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १९ ॥

प्रवीण की प्रेम-दशा और रससागर के प्रत्युत्तर लिखने का वर्णन वाली प्रवीणसागर की यह अठाईसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ १९ ॥



लहर १६ वीं ।

अथ कलाप्रवीण पत्र प्रत्युत्तर प्रसंगो यथा—दोहा.

सूर उदित सुकवि चले, गये सु राजदुवार ।

सह आवर्त्तन छुत सभा, सागर मिले कुमार ॥ १ ॥

भगवान् सूर्यनारायण के उदय होते ही कविराज राजद्वार की ओर चले और वहां पहुंच कर सभा सहित राजकुमार रससागर से मिले ॥ १ ॥

छिन छिन प्रति सुकवि वदन, हेरत हैं महाराज ।

मुदित जान उर सुख उदित, कियो विसर्ज समाज ॥ २ ॥

महाराज रससागर क्षण क्षण कविराज के मुख की ओर देखते कि जिस काम के लिये कवि गये थे वह पूरा हुआ या नहीं ? कवि का मुख प्रसन्न देख मन में सुखी हुए कि काम हो गया है, और पूरा विवरण सुनने के लिये सभा विसर्जन की ॥ २ ॥

गये अटा एकंत चढ़ि, बूझ्यो कुमार विधान ।

कही बात विस्तार कवि, पाती पठवन वान ॥ ३ ॥

सभा विसर्जन कर के राजकुमार रससागर कवि भारतीनंद को लेकर एक एकान्त अटारी पर गए वहां सब वृत्तान्त पूछा और कविने अथ से इति पर्यन्त सारा वृत्तान्त पत्र पहुंचाने का वर्णन किया ॥ ३ ॥

कलाप्रवीण सराह करि, उर अनंद अति लाय ।

सुकवि ऊठ कुंनस करी, पाती पान धराय ॥ ४ ॥

मन में अत्यन्त प्रसन्न हो कवि ने पहिले कलाप्रवीण की प्रशंसा की और फिर कुमार को अभिवादन कर कलाप्रवीण का लिखा हुआ पत्र रससागर को दिया ॥ ४ ॥

अथ कलाप्रवीण पाती उदाहरणं शिरनामे को—दोहा.

श्रीसागर महाराजजू, निधि गुन अचल नरिंद ।

पत्र उकति छुत बांचिये, मधूभार यह छंद ॥ ५ ॥

गुण के भंडार, अचल मन वाले मनुष्यों में इन्द्र के समान शोभायमान श्री रससागर महाराज ! कृपा करके इस मधुभार छंद में युक्तिपूर्वक लिखे हुए पत्र को पढ़ें ॥ ५ ॥

अथ छंद मधुभार.

स्वस्ति श्री गाऊं, नेहनग्र नाऊं; गुनके निधान, पूजहि प्रमाण. आपसे आप, दिनकर प्रताप; बंदगी बान, परमं समान. अविचलहि बांच, स-
नेह सांच; गंगा पवित्र, सब शुभ चरित्र. दीनन दयाल, बाणी रसाल;
गुन मुक्तमाल, गौ विप्रपाल. पुनके जहाज, कविकुल निवाज; ज-
सके समाज, मंत्रह सकाज. बुधिके निधान, गुरुवे गुमान; अमृत नैन,
सुख इष्ट दैन. गणपति गरुर, निज वंश नूर; मन मित्र रंज, अरि
अमर गंज. सागर गंभीर, सेना सुधीर; अतिही उदार, भूग्रहन भार.
गुरुगुण अनंत, करतार चित; त्रिय हरन धूप, मनमय सरूप. निरबल
अधार, सरनं सधार; निज देव वंद, आनंद कंद. औषधी मेह, पोषन
सनेह; चातुरह चित, बनके बसंत. सुख दैन दूर, घन ज्यों मयूर; बिन-
परां पच्छ, पंछियां वृच्छ. चकोर चंद, चातुकी वृंद; मधुकर सु वास,
मनके निवास. मन मान बार, अहि गंधसार; अंबरकनैन, मृग नाद बैन.
सनेह एक, राखंत टेक; शिव शक्ति दोय, मानंत सोय. तिहु लोक
मांहि, सबहि सराहि; चारहू वेद, जानंत भेद. पंचतत्व अंग, जानत
सरंग; षट लहन भाष, चातुर सलाष. सातहू द्वीप, इसके अधीप; अठ-
कुल उलंग, महिमा पतंग. नव रसहि सार, जानन बिचार; दश विगाह
पाल, जशके हमाल. विद्या विधान, चौदह सयान; अठ दश पुरान,
जानन प्रमान. सब कला सार, जाने बिचार; गुन सकल श्रेष्ठ, सब हरन
कष्ट. ऐसे अनंत, उपमा लहत; हिंदवान माज, श्रीमहाराज. सागर
सनेह, चिरंजीव देह; लखियत प्रवीण, अरजी सु कीन. बांचिये रस्न,
राधिका कृष्ण; रावरे नैन, अति मोद चैन. आपको पत्र, शिर कियो
छत्र; बांचो बनाय, उर लाय लाय. करि लिख्यो भेद, परसन उमेद;

देखत तरंग, उलटयो उमंग. कोट उ्यों अंग, गति भई अंग; इनहीं प्रमान, उरहमें ध्यान. चाहना चित्त, मिलबो सु मित; जिह्मान आप; गुन गाय आप. अभिलाष कान, कब सुनहु बान; भुज थों सुभाय, परसों जु पाय. दृग देख आप, व्हेंगे निपाप; रावरो रंग, रमि रह्यो अंग. हियमें हजूर, जानो जरूर; राखवीटेक, दिन दिन विशेक. तुम मया मित, धारिये चित्त; कछु अंग भेद, कीजे निशेद. फुरमास होय, फुरमाय मोय; इत सबें आप, फैलो प्रताप. हमेश पत्र, लिखिये विचित्र; संवत अठार, चालीश धार. वैशाख मास, पून्यो प्रकाश; शिर आय सोम, निष्ठ आध भोम. मदनें सराप, तकसीर माप; फिर दशा चित्त, जानों कवित्त ॥ ६ ॥

स्वस्तिश्री नेहनगर नामक नगर के निवासी, गुण के भंडार, पूजनीय अपने प्रताप से प्रख्यात अर्थान् सागररूप दिनकर (सूर्य) के समान प्रतापवान, आराधना करने के योग्य, बहुत कीर्तिमान अथवा ईश्वर के समान, अविचल बाणी वाले, सबे स्नेही, गंगा के समान पवित्र, सब उत्तम चरित्र के करने वाले, दीनों के प्रति दया करने वाले, रासिक वाणी वाले, सद्गुणरूपी मोती की माला के समान, गो ब्राह्मण प्रतिपालक, पुण्य के पोत, कवियों के कुल पर न्योछावर जाने वाले, यश के समुदायरूप विचारपूर्वक काम करने वाले, बुद्धि के भंडार, महत्ता का गुमान करने वाले, अमृत के समान शीतल आँखों वाले, इच्छित सुख देने वाले, गणपति के समान गर्विष्ट, अपने कुल के भूषण रूप, मित्रों के मन को राजी रखने वाले, युद्ध में शत्रु को शोकित करने वाले, युद्ध में धैर्य धारण करने वाले, अति उदार, पृथिवी के भार को ग्रहण करने वाले, अति गंभीर गुण वाले, प्रभु के चितवन करने वाले, स्त्रियों के ताप को दूर करने वाले, कामदेव के समान स्वरूपवान, स्त्रियों के आधार रूप, शरण में आए हुए की रक्षा करने वाले, अपने इष्टदेव की वंदना करने वाले, आनंद के मूलरूप जिस प्रकार ओषधियों का पोषण वर्षा ऋतु-करती है उस प्रकार स्नेह का पोषण करने वाले, चित्त में चतुराई से भरपूर, वन को बसन्त ऋतु अथवा मीर को मेघ जैसा सुखदायी है वैसे प्रेमी को दूर से भी सुख देने

बाले, बिना पर वाले प्राणियों के पररूप, पक्षियों को वृक्ष जैसे आश्रय दाता और चक्रेर को जैसे चन्द्रमा, परीहा को स्वातिबुंद, भंवरा को जैसे सुगंधि बैसे मेरे मन के निवासस्थान तथा मेरे मनरूपी मछली के लिए जल के समान, सर्प के लिए गंध सार समान, रक्तनयनी कोयल के लिए आम्रवृक्ष के समान, मृगी के लिए बाघ में तल्लीन करने वाली वीणा के समान, एक स्नेह के टेक को रखने वाले, शिव और शक्ति इन दोनों के मारने वाले, तीनों लोक में जिसका यश गाया जाता है ऐसे चारों वेदों के भेद को जानने वाले, पांचों तत्त्वों के रंग तथा गुण के ज्ञाता, पुरुषों में चतुर, छः भाषाओं के वेत्ता, चतुर, सातों द्वीप के मालिक, पर्वतों से ऊंची अपनी महिमा का विस्तार करने वाले, नबों रस के सार को विचारपूर्वक जानने वाले, दशों दिग्पाल आपके यश को उठाने वाले हैं अर्थात् आपका यश दशों दिशा में फैला हुआ है। चौदह विद्या के विधानों से युक्त, अठारहों पुराण के प्रमाण को जानने वाले, सब कलाओं के सार तथा विचारों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ गुणसम्पन्न, सब कष्टों को हरण करने वाले, अनंत उपमाओं से अलंकृत, हिन्दुओं के मर्यादारूप श्री महाराजाधिराज स्नेह के सागररूप महाराज रससागरजी ! आप शरीर से सर्वदा चिरजीवि रहो। नयन के उपरान्त यह अरजी कलाप्रवीण ने लिखी है सो बांचते ही पहिले श्री राधाकृष्ण बांचना। हे महाराज ! आपके नेत्र हमें अति मोद से चैन उत्पन्न करने वाले हैं। आपका जो पत्र आया उसे माथे चढ़ाकर छत्ररूप में रक्खा है और उस बनावट को बारू मन में लाकर पढ़ा है तथा उसी प्रकार पृथक् २ उत्तर लिखा है, सो कृपा करके आपके स्पर्श की उम्मेदवार इस दासी को नदियों के तरंग के समान उमंग उठी है। जिस प्रकार प्रेम के कांटे लगने से अमर की क्रीड़ागति मंद हो जाती है वैसे ही मेरे अंग की दशा है। इस हृदय में आप का ध्यान लगा हुआ है, चित्त के चाहने वाले हे मित्र ! आपसे एक मिलने की ही आशा है। हमारी जीभ तो केवल आपके गुणों के गायन का जाप जपती है, इसी प्रकार से कान यह अभिलाषा करते हैं कि आपकी कही हुई बाणी कब सुनें। दोनों हाथ भी यही आशा रखते हैं कि अपने महाराज के चरणस्पर्श करके

कब निष्पाप होवें । इसी प्रकार हे मित्र ! आपका रंग हमारे अंग में रम रहा है । हे नामवर हज़ूर ! आप मेरे हृदय में अहर्निश मौजूद रहते हैं यह निश्चय है इसलिए यह एक टेक रखना और उसे दिनों दिन बढ़ाना । हे मेरे परममित्र ! चित्त में कृपा रखना और कोई अन्तर-भेद होवे तो उसे दूर काढ़ फेंकना । मेरे योग्य जो सेवा हो सो लिखना । यहां आपका प्रताप फैला हुआ है । हमेशा कुशलपत्र लिखना । संवत् १८४०, वैशाख मास की पूर्णिमा मंगलवार की अर्द्ध रात्रि । चन्द्रमा मस्तक पर आया तब कामदेव रूपी मदिरा के मत्त में यह पत्र लिखा है इसलिए यदि कोई भूल हो तो क्षमा करना और मेरे चित्त की दशा इस कवित्त से जानना ॥ ६ ॥

अथ अलंकार कारण माला-कवित्त.

मानहूँ तेँ जोत भारी, भारी कामहूँ तेँ कारी; कारीगरहूँ तेँ न्यारी, प्यारी है चतुर नर. वेदतेँ अभेद वाणी, बानी में न आवे ध्यानी; ध्यानी से पुरानी जानी, नाहि न अमरपर. फैलरही अंग अंग, अंगहूँ न जाने रंग, रंगकी तरंग जैसे, गंग हर शीर भर. पौन पानीहूँ न पावे, सो स्वरूप गावे. गावें गुनसागर, हमेश चाह उर भर ॥ ७ ॥

सूर्य से भी जिसकी ज्योति अधिक उज्ज्वल है, कामदेव से भी अधिक काली है, और कारीगर से भी न्यारी है, तो भी चतुर पुरुषों को वह प्रेम की ज्योति प्रिय है । जिसकी वाणी भेद से भी अभेद है उसका ध्यान वाणी में नहीं आता, ध्यानी से भी पहिले का है, वह देवताओं के स्वर्ग में भी नहीं होती हुई शरीर के अंग अंग में फैल रही है और अंग उसके रंग को जानता नहीं । उस रंग की तरंगें शंकर के शिर के ऊपर से गिरती हुई गंगा से से श्रवती हैं । उसका भेद पवन अथवा पानी पा नहीं सकता और जो पाता है वह स्वरूप का गान करता रहता है, हे रससागर ! उसी प्रकार हम हृदय में अत्यन्त चाहना से निरंतर प्रेम के गुण का गान करती रहती हैं ॥ ७ ॥

अथ अलंकार असंगती-सवैया.

सागर राखरे कागद को इत, ज्यों ज्यों लगो अरहंट फरेबो ।
 त्यों त्यों हमें अखियान अहो निश, बारकी धार धरी ज्यों ढरेबो ॥
 ज्यों ज्यों प्रवाह बहे असुआन को, त्यों त्यों विरह हिय होज भरेबो ।
 ज्यों ज्यों मुरंज सनेह चढ़े मधि, त्यों त्यों जिया निबुआ उछेरबो ॥ ८ ॥

हे रससागर ! आपके पत्र को यहां मैं ज्यों २ फेरती हूं त्यों २ आंखों में से आँसुओं की धारा ऐसी चलती है जैसे घटियंत्र से पानी की अविरल धारा बहती हो । और जैसे २ आँसुओं का प्रवाह बढ़ता है वैसे २ हृदय-रूपी हौज में विरह इकट्ठा होता है, उसमें ज्यों २ स्नेह ऊपर चढ़ता है त्यों २ जीवरूपी नीबू उछलता है ॥ ८ ॥

अथ अलंकार परिकरांकुर-सवैया.

गोमन व्योमन धोम उठे धगि, रोमन रोमन से जागि जारे ।
 गात सिरात नहीं दिन राति सो, बात न जात कछू बिसतारे ॥
 भीतर चीतर भिन रह्यो सु, प्रतीतन थीत रह्यो जिय द्वारे ।
 नागरताइ कहा करिये चितकी तुम सागर जाननहारे ॥ ९ ॥

विरहाग्नि की आंच से पृथिवी और आकाश तप रहे हैं और वे सुलग कर रोम २ को जला रहे हैं । रात दिन शरीर तो ठंडा होता ही नहीं है । यह बात विस्तार से नहीं कही जाती परन्तु हृदय के अन्दर मित्र चित्रित हो रहा है जिससे जीव द्वार पर प्रीति के कारण स्थिर हो रहा है, फिर चतुराई क्या करें, हे रससागर ! आप चित्त की बात को जानने वाले हो ॥ ९ ॥

अथ अलंकार लुप्तोत्प्रेक्षा-सवैया.

सागरसिंधु सनेह को नाउ, पर्यो रस भौंकर या तहं घेरो ।
 देखत है जितही तितहो जल, झार पहार पुलीन न हेरो ॥
 काम कमान चढ़ाय इतें पर, चोट चलावत आवत नेरो ।
 ऊड़त बूढ़त बैठत बेधत, काग कुवाको भयो मन मेरो ॥ १० ॥

सागररूपी समुद्र में स्नेहरूपी नाव पड़ी है, जिस पर रसरूपी भ्रमरों ने डेरा डाल रक्खा है। जिधर देखते हैं उधर जल ही जल दिखाई पड़ता है, म्हाड़, पर्वत अथवा किनारा कुछ दिखाई नहीं देता। इधर कामदेव अपना धनुष चढ़ाकर वार करने के लिए समीप आता जा रहा है। इस प्रकार हे रससागर ! मेरा मन उस काग के समान हो रहा है जिसे उड़ने पर डूबने का और बैठने पर बिंध जाने का भय लगा हो ॥ १० ॥

अथ अलंकार समरूपक-सवैया.

सायत सोधत है मिलबो, पढबो गुन पंडित मेंन अखारें ।
घोस निशा जुज पत्र घरी, विरहान के अंक हमेश बिचारें ॥
नैनन के जलकुंभ भरें धुनि, ध्यान विधान कि टेक सुधारें ।
प्रेमको जंत्र नली सुरता मधि, सागर मित नक्षत्र निहारें ॥ ११ ॥

मिलने का समय शोध रही हूं वह गुण मनमथरूपी पंडित के अखाड़ा में सीख रही हूं जहां रात दिन जुज के पत्ते और घड़ी २ विरहानल के शोक में विचार कर रही हूं—मनन कर रही हूं; आंखरूपी पानी के घड़ा को भरती हूं फिर ध्यान के धुन में विधान के टेक को सवारती हूं और प्रेम के यंत्र में सुरत रूपी नली में से रससागर-मित्र-नक्षत्र को देखती हूं ॥ ११ ॥

दोहा—प्रेम वृच्छ पल्लव परासे, लाला विरह अपार ।

मन लूता तंता सुरति, निश दिन करत बिहार ॥ १२ ॥

प्रेमरूपी वृक्ष के पल्लव को स्पर्श कर विहरूपी अपार लाड़ का मनरूपी सुआ ध्यानरूपी तांत (डोरा) के ऊपर रातादिन विहार करता है ॥ १२ ॥

चौसर मांडि चितकी, सुरत फिगवें सार ।

पासो डारे प्रेमको, जीते जीतनहार ॥ १३ ॥

चित्तरूपी चौसरकी बाजी लगाकर उसमें ध्यानरूपी गोटे (स्थारें) फिराती हुई प्रेमरूपी पासा डालती हूं, परन्तु उसमें जीतने वाला ही जीतेगा ॥ १३ ॥

बांचत पत्र प्रवीण को, रससागर तिहि बेर ।

तन मन की जैसी दशा, बनी सु वरनों फेर ॥ १४ ॥

प्रवीण के पत्र को पढ़ते समय रससागर के तन मन की जो दशा हुई उसका फिर वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥

अथ रससागर दशा वर्णन—छंद हनुफाल.

थैली लखी जरतार, मन दड़ हुआ वहि वार. खोली सु कसने ग्रंथ, प्रगटी कला मनमंथ. सुसबोह लागी निध्र, लागो भरोखा ध्यान. करसे जुखाली वीर, मिटगई मनकी धीर. शिरनाम बांचत संग, बदल्यो बदन को रंग. ज्यों ज्यों पलेटत हांस, त्यों त्यों उलट उसास. ज्यों ज्यों बंचे तुक छंद, उर बढ़त सुख आनंद. उपमा सु बंचत भीन, मन तुच्छ जल ज्यों मीन. बंची हकीकत तार, दो नैन जलकी धार. तबकी दशा की बात, सुखसे कही नहीं जात. बाहुरेसे दरसाय, कवि रहें मन मुरझाय ॥ १५ ॥

जरी की थैली देखकर उस वार तो मन दड़ हुआ, परन्तु रेशम की गांठ खोलते ही अंग २ में कामदेव की कला प्रगट हो गई। कागज़ में लगी हुई सुगंध नाक में आते ही भरोखा का ध्यान आगया, हाथ से जब लिफाफा खोला तो मन का धीरज जाता रहा, शिरनामा पढ़ते ही बदन का रंग बदल गया। ज्यों २ पत्र पढ़ता है त्यों २ श्वास अविरुद्ध होने लगता है और ज्यों २ छंद के तुक पढ़ता है त्यों २ हृदय में सुख और आनंद की वर्षा होने लगती है। भिन्न २ सुन्दर उपमाओं को पढ़ते ही जैसे थोड़े जल में मछली तड़फती है वैसे मन तड़फने लगा। पत्र का समाचार पढ़ते २ आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उस समय महाराज की दशा का वर्णन नहीं हो सकता, महाराज उन्मत्त दीखने लगे जिसे देख कवि मन में मुर्झा गया ॥ १५ ॥

दोहा—कही सुकवि महाराज को, मुरत रखें इक ठोर।

एती मुनत सचेत है, बूझन लगे बहोर ॥ १६ ॥

फिर कवि ने रससागर से कहा, 'महाराज ! मन की गति को स्थिर करो' इतना मुनते ही सचेत होकर वृत्तान्त पूंछने लगे ॥ १६ ॥

सोरठा-ऐसे सुकवि सुनाय, रससागर बोले वचन ।

बरनो सकल बनाय, कैसे कलाप्रवीण की ॥ १७ ॥

फिर कविराज को सुनाकर रससागर महाराज ने कहा, कलाप्रवीण के सब समाचार विस्तारपूर्वक सुनाओ ॥ १७ ॥

अथ अलंकार अनन्वय-कवि उक्ति-छप्पय.

लिख्यो पत्र महाराज, सोय यहि विधि पहुंचायो ।

बांचत कलाप्रवीण, चित्तमें मतो द्रढायो ॥

जाय उमा हर थान, आप लीन्हों कुमार व्रत ।

सती संत अरु सूर, कोउ करिहेन जसी गत ॥

वयतुच्छ आप पढुता बड़ी, कह इक रसन सराहिये ।

शोधंत आन यहि सर तिया, सृष्टासृष्टि न पाइये ॥ १८ ॥

कवि ने कहा—हे महाराज ! आपने जो पत्र लिखा उसे इस प्रकार बड़े प्रपंच के साथ युक्तिपूर्वक पहुंचाया जिसे पढ़ते ही कलाप्रवीण ने दृढ़ प्रण धारण किया और फिर शिव पार्वती के स्थान पर जाकर उन्होंने कुमारव्रत लिया । सती, संत अथवा शूरवीर किसी ने भी ऐसा नहीं किया । छोटी उमर होते हुए भी ऐसी बड़ी चतुराई को एक जीभ से किस प्रकार वर्णन करें, क्योंकि मुझे तो ढूंढ़ने पर भी ऐसी दूसरी स्त्री संसार में नहीं मिल सकती ॥ १८ ॥

सोरठा-सागर सुकवि उचार, सुनी पत्र बंच्यो प्रथम ।

ऐसी आखय धार, चत्र प्रहर चरचा चली ॥ १९ ॥

इस प्रकार कवि के वचन सुनकर पहिले पत्र पढ़ा और फिर चार प्रहर तक उसी आशय की चर्चा चलती रही ॥ १९ ॥

छप्पय-रससागर तिहि समय, एह आशय उर धारी ।

कत दिन प्रति निज काज, शयन एकंत अटारी ॥

मिलेजु सिगरे मित, एह चरचा ऊपावें ।

कवित सवैया छंद, बिरहकी दशा बनावें ॥

पठवें सु पत्र परवीण प्रति, मास मास धार्यो बिरद ।

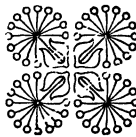
उन पत्र फेर आवे इतै, वह प्रेम दुहुहद विहद ॥ २० ॥

महाराज रससागर ने उस समय यह मन में निश्चय किया कि दिन में अपना काम करना और सोने के समय एकान्त आटारी पर सारे मित्रों को एकत्रित करके इसी सम्बन्ध की चर्चा चलावें और कवित्त सबैया तथा छन्द में बिरह की दशा का वर्णन कर उसका पत्र प्रतिमास प्रवीण को भेजने का मन्सूबा किया और सोचा कि फिर उसका उत्तर आवेगा, इस प्रकार दोनों में बेहद प्रेमवृद्धि होती रहेगी ॥ २० ॥

गाहा—पत्र सु कलाप्रवीणं, दिवे सुकवि सागर बंचत विधि * ।

उनहत्रीश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २१ ॥

प्रवीण का पत्र कवि ने दिया और सागर ने उसे पढ़ा, इस सम्बन्ध की प्रवीणसागर ग्रन्थ की उन्तीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २१ ॥



* असल प्रति में “सुकवि दहन बंचसागर विधि” पाठ है ।

लहर ३० वीं

अथ दंपति दशा वैद्यप्रसंगो यथा—दोहा.

सागर कलाप्रवीण को, लगे एक चित ध्यान,
बिरह दशा वरणात् सदा, पाती पर गुजरान ॥ १ ॥

सागर और कलाप्रवीण दोनों के चित्त में एकही ध्यान लगा हुआ है,
इसलिए सदा पत्रों में बिरह-दशा का वर्णन ही आता है ॥ १ ॥

छप्पय—ऐसे अहर कितके, बड़े चरचा बिस्तार;
कब मिलहों करतार, यहै दोऊ उर धारत,
शोच शोच महाराज, एह सुकवि प्रति बूझी,
बिना मिलन परवीण, उरद मति मोहि अरूपी,
अभिलाष लगी मनमें सु अति, मनछापुर कीजे गमन,
चितमें बिचार धार्यो मतो, कोऊ बिधि देखें बदन ॥ २ ॥

इस प्रकार कितने दिन चर्चा करते चले गए और दोनों अपने मन में यही धारणा रखते कि हैं “हे परमात्मा हम कब मिलेंगे ?” इस प्रकार दोनों मन में विचार करते २ महाराज ने कवि से कहा—‘प्रवीण से मिले बिना मेरे मन की मति सुर्मा गई है और मुझे यह अभिलाषा हो रही है कि अब मंछापुर की ओर चलें, क्योंकि मन में दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वहां जाकर किसी भी प्रकार प्रवीण के दर्शन करें ॥ २ ॥

दोहा—कही सुकवि महाराज प्रति, जो चित धारत सोय,
सातो मित सिंघाइये, औरें खबरि न होय ॥ ३ ॥

यह बात सुनकर कवि ने महाराज से कहा कि आपने जो विचार मन में दृढ़ किया है तदनुसार सातों मित्र चलें और इसकी खबर और किसी को न होने पावे ॥ ३ ॥

चौपाई—बात यह महाराज विचारी, मनछापुरी गमन की धारी ।
 निज हज़ूर किंकर फुरमावें, हमें इष्ट साधन को जावें ॥
 पीछे फिरें तहां लों कोई, है यह इत यह जाने सोई ।
 महल आवें मतो मिटायो, औरहि को सब काज बतायो ॥
 खबरदार यह कोउ न पावे, पावत इष्टसिद्धि नहि आवे ।
 बंदोबस्त ऐसी विधि कीने, सातो मित बुलाय सु लीने ॥
 संग मतेवत साज सवारी, अर्ध निशा कीनी असवारी ।
 प्रच्छन्न भेद काहु नहि चीनो, कोउ गांउं पहिचान न दीनो ॥
 बहत गहन मनछापुर आवे, आव बाग अवमोच द्रढाये ।
 किय मंजन निज बास उतारे, फिरंगपोस सातो जन धारे ॥ ४ ॥

यह बात महाराज ने विचार कर मंछापुरी जाने का निश्चय किया । फिर अपने पास रहने वाले हज़ूरियों को कहा कि हम इष्ट की उपासना के लिए जाते हैं और जब तक वापस आवें तब तक लोग यही जानें कि महाराज यहां ही हैं । महल में आना बन्द कर दिया और दूसरों को दूसरा काम बताकर कहा कि खबरदार, यह बात कोई जानने न पावे । यदि किसी को मालूम हो गया तो इष्टसिद्धि नहीं होगी । इस प्रकार जल्दी प्रबन्ध करके, सातों मित्रों को बुला लिया और आवश्यकतानुसार सब वस्तुएं लेकर आधी रात को चल पड़े । यह गुप्त भेद किसी को नहीं मालूम हो सका । ग्राम में भी किसी को पहिचान नहीं होने दिया, इस प्रकार गहन मुसाफिरी करते हुए मंछापुरी में पहुंचे और बाग में मुकाम किया । वस्त्र उतारे, स्नान किया और सातों ने फिरंगी की पोशाक धारण करली ॥ ४ ॥

दोहा—बानो धरयो तबीब को, शहर नजर में लाय,
 बनी जु छवि महाराज की, सो विष कहो बनाय ॥ ५ ॥

शहर के नजदीक आकर और विलायती पोशाक पहिन कर डाक्टर बने हुए महाराज की अंग की जो शोभा बनी उसका वर्णन विधिपूर्वक कहता हूं ॥ ५ ॥

अथ रससागर फिरंगरूप वर्णन-छंद तोटक.

महाराज तबीब प्रपंच किया, यह साज फिरंगि नमून लिया ।
 त्रिङ्गुटी शिरताज^१ जराब घरी, कुरती जरतार बनात करी ॥
 पिस्तोल घरी दोउ कमर में, नवरंग छड़ी सु लई करमें ।
 कुसुमावलि^२ राह मुकाम धर्यो, कुरसी पर आसन आप कर्यो ॥
 लखि पंथिक रूप निहार हसैं, भये प्रात सु ब्रह्मसुता निकसे ।
 चकडोर लगे उत दीठ करी, कवि देखत ही पहिचान परी ॥
 चरचान लगी रथ खैंच तहां, तुम कौन कहां लो बसंत कहां ।
 तब उत्तर एह फिरंग दिया, हमने सहलान विदेश किया ॥
 इतसे बहु दूर बिलात रहें, हमको सब लोग तबीब कहें ।
 मन बेदरकार इलाज करें, दरदी न रहे हम दीठ परें ॥
 समुझी इतने मेंहि ब्रह्मसुता, यह तो वह कारण कीन मता ।
 तुम आय भले कहि मंद हसैं, दरदी यह सदा अनेक बसैं ॥
 इतनी कहि आप ग्रहें उतरी, अघ जामि उठी दरबार फिरी ॥ ६ ॥

महाराज ने विलायती डाक्टर का प्रपंच (कपट) किया उस समय इस प्रकार फिरंगी नमूने का वेश धारण किया अर्थात् माथे पर तीन नोक की (तीन हंस वाली) जड़ाऊ टोपी पहिनी, जूर के तारों से युक्त बनात का कोट पतलून वगैरह पहिन लिया । कमर में दोनों तरफ दो पिस्तौल लगाये, नवरंग से रंगी अथवा नवरंगी छड़ी हाथ में ली मानो मित्र के लिये उस रास्ते पर मुकाम किया जहां से होकर कुसुमावलि दरबार से घर और घर से दरबार को आती जाती है । वहां महाराज खुद कुर्सी पर बैठे । उस समय उस मार्ग से जो कोई भी जाता

(१) ताज (मुकट) पुश्तंग है परन्तु ग्रंथकार ने क्लींङिग में प्रयोग दिया है और यह भूल हजारों स्थानों पर है । उनका सुधार करने से ग्रन्थ में बहुत फेर फार होगा, इसलिये जैसा है वैसे ही रहने दिया है ।

(२) कुसुमावलि राह में ग्रन्थकार ने श्लेष रक्खा है वह यह कि एक तो कुसुमावलि यानी कुलवाणी के रास्तों पर दूसरे कुसुमावलि यानी ब्रह्मकुमारी कुसुमावलि के आने जाने के रास्ते पर ।

उनके रूप को (फिरंगी वेश को) देख कर हंसता । उस समय सबेरा हुआ तब ब्रह्मसुता कुसुमावलि रथ में बैठ इधर से होकर घर जाने को निकली । उसने रथ में बैठे २ उधर नजर की तो कवि पर नजर पड़ी और तुरन्त पहचान गई कि यह वही है जिसने संन्यासी वेश में आकर पत्र दिया था । फिर रथ को रोक कर वहां जाकर उनसे पूछा कि आप कौन हो ? कहां जाओगे ? और कहां रहते हो ? तब फिरंगी बने हुए महाराज ने उत्तर दिया कि हम लोग देश देखने की इच्छा से सैर करने परदेश में निकले हैं । यहां से बहुत दूर पर विलायत देश है वहां रहते हैं और हमें लोग वैद्य (डाक्टर) कहते हैं । हम अपने मन में कोई भी इच्छा न रखते हुए रोगियों की चिकित्सा करते हैं । हमारी दृष्टि में आये हुए किसी भी रोगी का कोई रोग नहीं रहता । इतनी बातों में कुसुमावलि समझ गई कि यह तो उसी कलाप्रवीण से मिलने का विचार लिए हुए प्रवीण होते हैं । ऐसा मन में समझ कर बोली, 'आप अच्छे आए' ऐसा कह कर और मुस्करा कर बोली कि इस शहर में अनेक दर्दी रहते हैं । इतना कह कर घर गई और रथ से उतर कर कुछ इधर उधर घूम और भोजन करके फिर दर्बार की ओर चली ॥ ६ ॥

दोहा-कुसुम फिरी दरबार प्रति, आई जहां बैदान ।

फुनि उत रहि चरचा लगी, बूझ्यो एह विधान ॥ ७ ॥

कुसुमावलि घर से दरबार जाने लगी तो जहां ये डाक्टर थे वहां आकर फिर चर्चा करने लगी और इस प्रकार पूछा ॥ ७ ॥

अहो वैद्य वाणी सुनो, साध्य मिटें सब व्याधि ।

कहो सु कैसे केसमें, ऐसो होय असाध्य ॥ ८ ॥

हे वैद्यराज ! जरा बात सुनिए, जो रोग साध्य है वह तो मिट सकता है, परन्तु जो असाध्य रोग हो जिसके विषय में मैं कहना चाहती हूं वह कैसे और किस समय मिट सकता है, सो बताइए ॥ ८ ॥

कुसुमावल्युक्त दरदीचेष्टा स्मृत्यलंकार-सवैया.

ऐयत नैयत बार द्वगें अरहंट, ज्यों बोरत ढोरत गागर ।

रोषत जोषत राह दशो दिशि, देखत खेलत रावरे कागर ॥

भूरत सूरत को न विलोकत, कंपत भंप सहेलिय लागर ।

हेर निशान निदान निबेरषु, व्याधि सधैं क्यों असाधि ए सागर' ॥६॥

जिस प्रकार रूँट में बंधी हुई घटिकाएं पानी से भरतीं और खाली होती हैं उसी प्रकार आँखों से आसुओं की धारा बहती हो तथा जैसे किसी के आने की बात देखती हो, इस तरह दशों दिशाओं को देखा करती और रोया करती हो । अपना पत्र देखती और उत्तर लिखा करती हो, हमेशा सूख रही हो, अपनी सूरत न देखती हो । कांप उठती और चमकती हो, सखियों से लिपट कर कहती हो, हे सागर ! इस प्रकार के लक्षण जिस रोगी के हो उसके रोग का निदान करो कि यह रोग साध्य है या असाध्य ॥ ६ ॥

ब्रह्मनि वाणि तबीब सुनि, यह प्रति उत्तर कीन ।

पाती लिखी प्रवीण पै, साध यंत्र कहि दीन ॥ १० ॥

कुसुमावलि की बात सुनकर वैद्यराज ने उत्तर दिया कि यह साध्य यंत्र है, इसे दर्दी के हाथ में दे देना तुरन्त साध्य हो जायगा । ऐसा कह कर एक पत्र कलाप्रवीण को लिख कर दिया ॥ १० ॥

अथ वह पाती उदाहरण—दोहा.

अहो मित परवीणजू, आय विदेशी बैद ।

कवित सवैयन को लहो, भिन्न भिन्न समेद ॥ ११ ॥

हे प्रिय मित्र कलाप्रवीण ! हम विदेशी वैद्य यहां आए हुए हैं, अतः पत्र में लिखे हुए सबैया और कवित के भिन्न २ भेदों का विचार करो ॥ ११ ॥

अलंकारः संशय दृष्टांत—छप्पय.

सूर उदित तब कहा, दर्द चकवा नहिं भागे ।

दीप कियो तब कहा, नैन खद्योत न लागे ॥

चंद कौमुदी कहा, दर्श देख्यो न चकोरा ।

कमल प्रफुल्लित कहा, बास लोभित नहिं भोरा ॥

बन गाज गाज बरष्यो कहा, चाह न पूरत चात की ।

परवीण प्रेम जानंत यों, प्यास न बूझत बात की ॥ १२ ॥

(१) सागर शब्द में ग्रन्थकार ने श्लेष शब्द रक्खा है वह यह कि रससागर ।

चकवा चकवी का वियोग दुःख न मिटा तो सूर्य उगने से क्या ? जुगनू को दिखाई न पड़े तो दीपक प्रकट होने से क्या ? चकोर को दर्शन न हुए तो चन्द्र की चंद्रिका किस काम की ? सुगंधलोभी भँवरा यदि पास न आया तो कमल के फूलने से ही क्या लाभ ? चातक की प्यास न बुझी तो घोर वर्षा किस अर्थ की ? इसी प्रकार हे प्रिय मित्र कलाप्रवीण ! आप प्रेम को जानती हैं अतएव इस प्रकार से बात करने से क्या प्यास बुझती है ॥ १२ ॥

अथ अलंकार जातिस्वभाव-सवैया.

मित विचार करो चितमें यह, कैसे भयो है हमें इत ऐबो ।

एकहुं द्वेक बिना चत्र पंचमे, अंत परेगो उतै फिर जैबो ॥

जाननहार अजान भये कह, ज्यों त्यों करो इकधेर मिलैबो ।

आज त्रापा न उलंघी प्रवीण पै, पीछे दुहुन घनों पछितैबो ॥ १३ ॥

प्रिय मित्रवर ! इस बात का मन में विचार करो कि हमारा यहां आना कैसे और क्यों हुआ ? और फिर एक दो या चार पांच दिन बाद बिछोह होकर अन्त में फिर पीछे जाना होगा । आप जानकार होकर अजान क्यों हों रहे हो ? जिस तरह हो सके एक बार मिलना होवे ऐसा उपाय करो । जो आज लज्जा का उल्लंघन नहीं किया तो पीछे दोनों को बहुत पछताना पड़ेगा ॥ १३ ॥

अलंकार दीपकावृत्ति-छप्पय.

ज्वाला बुझावत जलह, जलाद जारत क्यों बूझे ।

तिमिर निवारत सूर, सूर तमक्रम कह सूझे ॥

गरल उतारत सुधा, सुधा भारत को बारे ।

तपत मिटावत चंद, चंद तप ताहि को टारे ॥

घनमाल जिषावत है जगत, कहीं जोंवें घन है विमुख ।

परवीण मित सुखदाय तुम, दुखदायक सरज्यो न सुख ॥ १४ ॥

अग्नि की ज्वाला को पानी बुझा सकता है, परन्तु जिसे शीतल जल ही उत्ताप देवे उसे कैसे बुझावें ? अंधकार को सूर्य दूर करता है परन्तु जब सूर्य ही अंधकार करे वहां ज्वाला कैसे हो ? विष का उतार अमृत है परन्तु जहां

अमृत ही मारने लगे फिर कौन जिलावे ? ताप की बढ़िग्नता को चंद्र की शतिल ज्योत्स्ना मिटाती है परन्तु जब चंद्र ही उत्तप्त करे फिर शान्ति कहां ? मेघ-मंडल इस संसार को जीवन देने वाला है, परन्तु यदि वही न वर्षे तो जीवन कौन दे ? इसलिए हे मित्र प्रवीण ! तुम सुखदायक होते हुए भी जब दुःख देने लगे तो फिर हमें यही समझना होगा कि हमारे प्रारब्ध में ही सुख नहीं लिखा है ॥ १४ ॥

अलंकार ग्रहित मुक्तदाम-सवैया.

कीजे विचार कहा मिलवे महि, कामरि भारि बने अति भीजे ।

भीज रहे एकहुं रंग, तिहि प्रति छेह कहीं पर दीजे ॥

दीजे नहीं दर्शन इति भये, तो विरही सु कहां लग जीजे ।

जीजे सोइ गिनती में नहीं दिन, मित प्रवीण मेहेर न कीजे ॥ १५ ॥

अब मिलने में क्या विचार करती हैं ? क्या जानती नहीं कि आँसुओं की पड़ती हुई धारा से ज्यों २ कामली भीजती है त्यों २ भारी होती जारही है । हमारा मन तो एक ही रंग में भीज रहा है उस पर रुकावट किसलिए ? इतना होने पर भी यानी हमारे यहां आने पर भी दर्शन नहीं देंगी तो यह वियोगी कबतक जीवेगा ? इस समय जो तुम्हें मिले बिना हम जीवित हैं सो वे दिन गिनती में गिनने के योग्य नहीं हैं, मृतक के समान हैं । हे कलाप्रवीण ! (हमारी यह दशा होते हुए भी) अभीतक क्यों नहीं दया करती हो ? ॥ १५ ॥

अलंकार दृष्टांत-छप्पय.

गंग न्हाय हर परसि, पाप न घटयो तब न घट्यो ।

गये धनंतर द्वार, रोग न मिट्यो तब न मिट्यो ॥

प्रगटे सूर प्रताप, तिमिर न गयो तब न गयो ।

ईश लिये उपदेश, ज्ञान न भयो तब न भयो ॥

शुकदेव व्यास सुनियत कथा, भ्रम न तग्यो तब ना तग्यो ।

परवीण मित आये सुपूर, दुख न भग्यो तब ना भग्यो ॥ १६ ॥

गंगा में नहाने और विश्वनाथ के दर्शन करने पर भी पाप न घटा तो

यही समझना कि पाप नहीं घटेगा, यदि धन्वन्तरि के द्वार पर जाने पर भी रोग न गया तो फिर मिटने का ही नहीं । सूर्य उदय होने पर भी अंधकार न गया तो फिर जाना ही नहीं; शंकर से उपदेश लेने पर भी ज्ञान न हुआ तो फिर होना ही नहीं; शुकदेव और व्यास जैसे मुनियों की कथा सुनकर भी भ्रम निवारण न हुआ तो फिर भ्रम नहीं मिटेगा ऐसा ही समझना चाहिये । इसी प्रकार हे मित्र प्रवीण ! तुम्हारी नगरी में आकर भी हमारा दुःख न गया तो फिर यही समझना होगा कि यह दुःख अब जाने का ही नहीं ॥ १६ ॥

अलंकार दृष्टांत-सवैया.

घातन घात भई है इते पर, घात अनंग रची क्यों निवारो ।
अंबरलों धर ज्वाला उठी जर, तापर पाय कहां निरधारो ॥
कोश पचासक पांच भये डग, पांच भये डग कोश हजारो ।
या दिन याद करो न प्रवीणजु, कौनहु पै फिरियाद पुकारो ॥१७॥

मूल तो यह बात ही घातरूप है फिर ऊपर से कामदेव ने भी घात लगाया तो फिर अब कैसे बचें ? आकाश से पृथ्वी पर्यन्त (विरह की) ज्वाला धधक रही है अब पग कहां रक्खें ! आते समय तो पचास कोस का अन्तर पांच पग जैसा मालूम हुआ परन्तु अब तो पांच पग ही हज़ारों कोस के जैसा दूर हो रहा है, इसलिए हे मित्र प्रवीण ! यदि आप इस दुर्घट दिन में भी हमें याद न करो अर्थात् हमें न मानो तो फिर किसके पास फिरियाद करने जावें ? ॥ १७ ॥

अलंकार जातिस्वभाव-सवैया.

आस्य विलोकन आश हमें विस, वास बड़ो सु निराश धरो ना ।
अमृतकी सु भरी अखियाँ उनही अखियाँ विष बुंद भरो ना ॥
प्राण समान कियो है हमें वह, बहुत दिना को सने विसरो ना ।
पौर खरें करजोर अहो निश, तासैं प्रवीण मरोर करो ना ॥१८॥

आपके दर्शन की हमें बड़ी आशा और बड़ा भरोसा है, अब निराश मत करो । अमृत भरी हुई आँखों में विष के बिन्दु मत भरो । हमने जिस स्नेह को

प्राणों के समान प्यारा करके रक्खा है, उसे अब मत भुलाओ । हम हाथ जोड़े अहर्निश खड़े हैं, इसलिए हे प्रवीण ! उसे मरोड़ो मत ॥ १८ ॥

अलंकार जातिस्वभाव-सवैया.

नैनन नीरको भरबो भरबो, अति सास उदास उसासी ।
 बात कहा उरभी सुरभे न रहे, सुरभाय विदेशके बासी ॥
 छूटहिगी न छूटेबो करो कह, कंठ परी है सनेह की फांसी ।
 मित प्रवीण भई सु भई अब, हेतहु की न जरो तुम हांसी ॥ १९ ॥

आँखों से आंसू जाने व उदासी से अति भारी उसास लेते रहने के कारण हमें यह नहीं सूझता है कि बात कहाँ उलभी है । इससे आपके दर्शनाभिलाषी दूर देश के रहने वाले विदेशी के मन सुरभा रहे हैं और स्नेहरूपी फांसी गले में पड़ी हुई है जो कभी भी छूटने की नहीं, इसलिए हे प्रवीण, जो हुई सो हुई, अब स्नेह की फजीती मत करो ॥ १९ ॥

अलंकार असंभव-सवैया.

बात बिछोइन की तुम जानत, ऐसो सवाद यहै सियरा ।
 औसर नीठ बन्यो न विसारहु, बहुत दिनाको लगो निथरा ॥
 आप बड़े न विचारत हो, मिलवे को हमें तलफें जियरा ।
 मित प्रवीण मेहेर न आवत, कैसे कठोर कियो हियरा ॥ २० ॥

वियोग दुःख की बात तुम जानती हो कि उसमें कैसा ठंडा स्वाद है, इसलिए बड़ी कठिनता से प्राप्त हुआ यह अवसर मत गंवाओ, बहुत दिनों की लगी हुई यह प्रीति है । आप बड़े हो सोचते नहीं हो, परन्तु हमारा जी तो मिलने को तड़फ रहा है फिर भी आप को दया नहीं आती है, हृदय को कैसा कर लिया है ॥ २० ॥

अलंकार दृष्टांत-सवैया.

राम गये बनवास इते पर, भाग गतीसे सती संग तागे ।
 संकट भाग भयो नल राय, इतें पर आंति दमयंति लागे ॥

पांडव भाग बेहाल किये जु, इतेपर कैयन की गति जागे ।

मित प्रवीण जु देश विदेशहुं, भाग चले हैं दुहु डग आगे ॥२१॥

एकतो रामचन्द्रजी को बनवास भोगने जाना पड़ा, उस पर हरी जाने से सीता का भी वियोग हुआ, भाग्यवश नल राजा को संकट भोगना पड़ा फिर दमयन्ती के विषय में आन्ति उत्पन्न हुई, पाण्डवों को भाग्य ने बेहाल किया ही था ऊपर से द्रौपदी के लिए कीचक के कृत्य का संकट आया, इसलिए हे मित्र प्रवीण ! चाहे देश में रहो या विदेश में, भाग्य तो दो पग आगे २ चलता है ॥ २१ ॥

अलंकार विनोक्ति-दोहा.

नीर तीर तलफत पर्यो, धीर न धरियत मीन ।

निकट तऊ पलहें विकट, परसे बिना प्रवीण ॥२२॥

जलाशय के पास ही तट पर पड़ी हुई मछली तड़फती है, धीरज नहीं होता यद्यपि पानी पास ही है, हे मित्र प्रवीण ! पानी के स्पर्श के बिना उस मछली के लिए महा विकट रूप होगया है ॥ २२ ॥

ग्रीष्म गिर लागे जरन, सरवर निकट पुलीन ।

बूझेगो कैसे बिपिन, परसे बिना प्रवीण ॥ २३ ॥

ग्रीष्मकाल के ताप से दिन में पर्वत तप्त हो जाते हैं, पास में ही पानी से भरा हुआ सरोवर है, परन्तु प्रिय प्रवीण ! पानी के स्पर्श बिना वह कैसे शान्त होवे ? ॥ २३ ॥

निकट जड़ी मुहरा धरें, काम भुजंग डस कीन,

विष व्याप्यो उत्तरत नहीं, परसे बिना प्रवीण ॥ २४ ॥

जिस कामरूपी सर्प ने डस लिया है और पास में ही विषनिवारक बूटी और जड़ी है, परन्तु मित्र प्रवीण ! स्पर्श किए बिना क्या विष उत्तर सकता है ? कदापि नहीं ॥ २४ ॥

भोजन लाये थार भर, कर पकवान नवीन ।

तऊ छुधा भाजत नहीं, परसे विना प्रवीण ॥ २५ ॥

नये २ पकवान बना कर थाली भर के महास्वादिष्ट भोजन पास में रक्खा है, परन्तु हे मित्र प्रवीण ! स्पर्श किए विना क्या भूख जा सकती है ? कदापि नहीं ॥ २५ ॥

केसर चंदन कुमकुमा, भरे कटोरे तीन ।

अंग रंग लागत नहीं, परसे विना प्रवीण ॥ २६ ॥

केसर, चंदन व कुमकुम के तीन कटोरे भरे हुए हैं, परन्तु मित्र प्रवीण ! स्पर्श किए विना वे कटोरे में रक्खे हुए रंग उड़कर अंग में लगने के नहीं ॥ २६ ॥

प्याले भर धरियत निकट, सुरा सरस अति कीन ।

तऊ केफ आवत नहीं, परसे विना प्रवीण ॥ २७ ॥

अति उत्तम बना हुआ मदिरा का प्याला पास में भरा हुआ रक्खा है, परन्तु मित्र प्रवीण ! उसे हाथ में लेकर पिये विना कुछ भी मद नहीं आसक्त ॥ २७ ॥

अमृतको भाजन निकट, भयों धर्यो नहि पीन ।

यों देखत अमर न भये, परसे विना प्रवीण ॥ २८ ॥

अमृत से भरा हुआ पात्र पास में रक्खा हुआ है और पीवे नहीं तो मित्र प्रवीण, आंख से देख २ कर अमरता नहीं आसकती ॥ २८ ॥

गंगा जमुना सरसती, लहर त्रिवेणी लीन ।

निकट गये पातक रहे, परसे विना प्रवीण ॥ २९ ॥

गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रिवेणी की धारा बह रही है, परन्तु मित्र प्रवीण, उसके प्रवाह में स्नान किए विना पातक तो वैसे के वैसे ही बने रहे, अर्थात् मिटे नहीं वे तो नहाने से ही जाते हैं ॥ २९ ॥

श्रीमंडल बीना मुरज, धरे सकल रस भीन ।

मधुरे स्वर बाजत नहीं, परसे विना प्रवीण ॥ ३० ॥

श्रीमंडल, वीणा, मुरज आदि उत्तम मनोहर वाद्य पास में रखे हुए हैं, परन्तु हे मित्र प्रवीण ! उन्हें हाथ में लेकर बजाये बिना उनसे मधुर स्वर नहीं निकल सकता ॥ ३० ॥

लोहपुंज इतकों धर्यो, इत पारसमणि दीन ।

सो कंचन कैसे बने, परसे बिना प्रवीण ॥ ३१ ॥

एक तरफ तो लोह की ढेरी रखी हुई है, और पास ही पारसमणि भी रखी हुई है, परन्तु हे मित्र प्रवीण ! लोहे का पारसमणि से स्पर्श हुए बिना सुवर्ण कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

अलंकार हंसान्योक्ति-सवैया.

मोतनकी सिकता जल शीतल, पंकज नील सिते पित आरन ।

कंचनकी तहलीर करी नवरंग जरी मनिबंध किनारन ॥

भार अठारहु भार प्रफुल्लित, बात त्रमेद भकोरत डारन ।

हंस छुधातुर आतुर डोलत, मित प्रवीण कहो किहि कारन ॥ ३२ ॥

जहां चुगने को मोती हैं, पीने को शीतल जल, नील, श्वेत, पित और रक्त अनेक प्रकार के जहां कमल हैं, सुनहरे रंग और रंग विरंगे मणियों से जिसके किनारे बंधे हुए हैं, जहां अनेक प्रकार की वनस्पति व भाङ्ग प्रफुल्लित हो रहे हैं, शीतल मन्द सुगंध त्रिविध समीर जहां चल रही है वहां जाने के लिए हे मित्र प्रवीण, हंस क्यों आतुर रहता है ? ॥ ३२ ॥

सोरठा-सरवर मान पुलीन, शीतल जल मुगता चुगन ।

कारण कहा प्रवीण, प्यास छुषा हंसा मरत ॥ ३३ ॥

फिरने को मानसरोवर का सुन्दर किनारा और पीने को शीतल जल व चुगने को मोती होते हुए भी हे प्रवीण ! हंस किस कारण से छुषा व तृषा से मरता है ? * ॥ ३३ ॥

* इस पद्य का अर्थ गुजराती टीकाकार ने अपूर्ण रखता है, वहां पद्य का पूरा अर्थ दिया गया है ।

उसे बिरह अहि शाम, रोम रोम लागी लहर ।

चरियत होय अराम, मोहरे अधर प्रवीण मुख ॥ ३४ ॥

बिरह रूपी काले नाग ने डस लिया है और रोम २ में लहर उठ रही है, परन्तु प्रियमित्र प्रवीण के अधररूपी मोहरा मुख पर रखते ही आराम हो सका है ॥ ३४ ॥

हे मन भयो बिहाल, विन मिलियत परवीणजू ।

जिय बिरहानल जाल, बूभेगी देखे बदन ॥ ३५ ॥

प्रिय मित्र प्रवीण के मिले बिना यह मन बेहाल हो रहा है, हृदय में बिरहरूपी दावानल की ज्वाला सुलग रही है जो प्रवीण के दर्शन से ही बुझ सकती है ॥ ३५ ॥

बीच दरीचन धाय, गोख भरोखन में अटा ।

बदन न देख्यो जाय, हेर हेर हारे नयन ॥ ३६ ॥

दहलीज में, गोखड़े में, जालियों में, अटारी पर सब जगह देख २ कर हमारे नेत्र हार गए, परन्तु कहीं भी आपके मुखमण्डल के दर्शन नहीं हुए ॥ ३६ ॥

गूढोक्ति—तीजो कीजे चित, रस गिनती परवीण करि ।

मिलन बिचारहु मित, दूजो है हे प्रेमको ॥ ३७ ॥

हे मित्र प्रवीण, नवरस की गिनती में जो तीसरा रस करूणा है उसे मन में धारण कर अर्थात् दया करके मिलने का विचार करो नहीं तो प्रेम की (दूसरा रस) हंसी होगी ॥ ३७ ॥

कीनी कुसुम बिदाय, एती लिख पाती दर्ई ।

सो प्रवीण प्रति जाय, मौन ग्रही मनमें मुदित ॥ ३८ ॥

इस प्रकार पत्र लिख कर और कुसुमावलि को देकर कलाप्रवीण के पास भेजा । और कुसुमावलि अति प्रसन्न हो कलाप्रवीण के पास आकर पत्र देकर चुप खड़ी होगई ॥ ३८ ॥

गाहा-सागर गमन विदेशं, वर्णन तवीव रूप बरनावं ।

पठवन पत्र प्रवीणं, तीस प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३६ ॥

सागर का विदेश जाना, फिरंगी डाक्टर का भेष धारण करना और प्रवीण के लिए पत्र लिखकर भेजने का वर्णन वाली यह प्रवीणसागर की ३० वीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३६ ॥



लहर ३१ वीं ।

अथ कलाप्रवीण कुसुमावलि चर्चा प्रसंगो यथा—दोहा.

नैन भौंह मुसकित बदन, ब्रह्मनि बैठी आय ।

बदन बधाई के लिये, अति मनमें अकुलाय ॥ १ ॥

नेत्र, अकुटि और मुख मलकाती हुई कुसुमावलि कलाप्रवीण के पास आकर जल्दी सुखदायक सन्देश सुनने के लिए मनमें अकुलाने लगी ॥ १ ॥

पर इकंत औसर नहीं, भट्ट भीर चहुं ओर ।

कुमरी चित चंचल परखि, कहा चित किहि ठोर ॥ २ ॥

एकान्त का अवसर नहीं था, चारों तरफ साधियों की भीड़ थी इसलिए राजकुमारी बोली नहीं, परन्तु कुसुमावलि का चपल मन देख कर समझ गई और पूछा कि हे कुसुमावलि, तेरा मन आज चंचल क्यों हो रहा है ? ॥ २ ॥

चौपाई—आज कहा औरसी लषावै, कछु प्रतीत जानने न पावै ।

मंद मुसकि ब्रह्मनी कहाया, एकै नजर तमासा आया ॥

कुमरी कहे कौनसा तमासा, जासे अति आवत है हांसा ।

विप्रनि कहे बिलात रहाये, सोय फिरंग शहर में आये ॥

उनकी लखी और पोसाखा, हांसी होय सुनत उन भाषा ।

एती कही और नहिं खेलें, खयाल रमूज खुसी फिर बोलें ॥

बीतत अहर निशा दरसाई, सब सहियां निज भवन सिधाई ।

कलाप्रवीण इकंत जु कीनी, ब्रह्मनि वैद्य बधाई दीनी ॥ ३ ॥

कलाप्रवीण ने कुसुमावलि से कहा कि आज का देखाव तो कोई और ही तरह का मालूम पड़ता है परन्तु उसका कारण मालूम नहीं पड़ता । उत्तर में ब्रह्मबाला हिम्मत होश से बोली कि आज एक नया तमाशा देखा है कि जिससे इतनी हंसी आरही है । प्रवीण ने पूछा कि ऐसा कौनसा तमाशा है कि जिसके देखने से इतनी हंसी आरही है ? ब्रह्मकन्या ने कहा कि

बिलायत के रहने वाले फिरंगी अपने शहर में आए हुए हैं उनकी भाषा व भेष भिन्न है, उसी का ध्यान करके हंसी आती है । गुप्त भेद उसने नहीं बताया और अत्यन्त हँसी मजाक की बातें करती रही । इस तरह दिन व्यतीत हुआ और संध्या हुई । रात पड़ते २ सब सहेलियां अपने २ घर गईं फिर एकान्त होने पर कलाप्रवीण को कुसुमावलि ने वैद्य का सन्देश सुनाया ॥ ३ ॥

दोहा—कुमरि बधाई वैद्य सुनि, हरषित चित अपार ।

करि बिनती ब्रह्मनि बहुरि, पाती दई निकार ॥ ४ ॥

राजकन्या वैद्य का सन्देश सुन कर मन में अति हर्षित हुई और ब्रह्मकन्या वैद्य का पत्र निकाल कर भेंट किया ॥ ४ ॥

और दौरे मनको भयो, पाती बंच प्रवीण ।

तन गहनो पोषाक जुत, ब्रह्मनि बकसन कीन ॥ ५ ॥

उस पत्र के पढ़ते ही प्रवीण के मन की दशा कुछ और होगई, शरीर पर के सब वस्त्र अलंकार उतार कर ब्रह्मकन्या को इनाम में दे दिये ॥ ५ ॥

निस नितवत आराध कर, चरचा लगी फिरंग ।

वहै रूप वर्णन करत, निशि बीती यहि रंग ॥ ६ ॥

फिर रात में हमेशा के अनुसार नित्य नियम, आराधन करने के बाद फिरंगी की चर्चा चली । इस प्रकार फिरंगी के रूप का वर्णन करते हुए उसी रंग में रात बीत गई ॥ ६ ॥

सोरठा—प्रगटन लगे प्रभात, लाल रेख अंबर लगी ।

शशि आभा न सुहात, छिन छिन तन दुति तारिका ॥ ७ ॥

प्रभात का उदय होने लगा; जिससे सूर्यकिरण की रक्त-रेखाएं आकाश में फैलने लगी, चन्द्रमा की शोभा फीकी पड़ने लगी और तारगण की आभा क्षण २ में क्षीण होने लगी ॥ ७ ॥

अथ प्रभात वर्णन-चौपाई.

मंद मंद आभा दरसाये, तरनि तेज तारिका घटाये ।
 वाणि वृच्छ चिरिधान उचारी, अम्बर महि उलटी उजियारी ॥
 बाग बाग प्रति वन सु विकासे, सर सर कमल पुंज परकासे ।
 चक्रवा दंपति मिन्त मिलाने, दीप मंद मंदह दरसाने ॥
 चित विछोह चकोरा दग्गे, कुंज भृग गुंजारव लग्गे ।
 निशिचर निज मन में मुरझाये, दिनचर चित अनंत सुख पाये ॥
 ठौर ठौर रवि बिंब प्रसारी, आशा दुति आरुनी निहारी ।
 चरचा चलत बखत यह आया, बाला विरह अंग प्रगटाया ॥
 मता मिन्त मिलबे का ठाना, किय प्रवीण दरदी का वाना ॥ ८ ॥

चन्द्रमा की कान्ति धीरे २ मन्द पड़ने लगी, सूर्य के तेज में तारागण भी छिपने लगे, वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी कल्लोल करने लगे, आकाश में प्रकाश फैलने लगा, बाग बगीचा, वन उपवन प्रकाशित हुए, सरोवर में कमल के समूह खिल उठे, चक्रवा चकवी अपने इष्ट सूर्य के दर्शन पर आनन्दमग्न हुए, दीपक की ज्योती मन्द हुई, चकोर पक्षी के मन में चन्द वियोग का दुःख उदय हुआ, कंज व लताओं में भ्रमर गुंजार करने लगे, निशाचर जनों के मन मुरझाने लगे, दिनचरों के मन आह्लाद व उल्लासयुक्त हुए, स्थान २ पर सूर्य-विम्ब प्रसरित हुआ जिससे दिशाएं दीप्तिमान होगईं । इस प्रकार चर्चा चलते चलते प्रभात का समय (बेला) हो आया और बाला रूप राजकुमारी के अंग में विरह उत्पन्न हुआ, प्रेमी से मिलने की भावना से रोगी का बहाना किया ॥ ८ ॥

सोरठा-मिन्त मिलन उर धार, दरदी कीन प्रवीनजू ।

कीनी कुसुम पुकार, आसपास औरे नहीं ॥ ९ ॥

मन में मित्र से मिलने का निश्चय करके कलाप्रवीण ने बीमारी का बहाना किया (शय्या पर पड़ गई), आस पास कोई नहीं है ऐसा जानने पर कुसुमावलि को पुकारा ॥ ९ ॥

अथ कलाप्रर्वाण दददशा वर्णन-छंद पद्धरी.

बेहोस होत रायां कुमार, कुसुमावलि सु कीनी पुकार । आये मिले सु जन्मान लोग, कोऊ निदान पावे न रोग । महाराज आप देखने आय, निज वैद्य मान करिके बुलाय । मिलि राजवैद्य परखे चरित्र, बाला स-रूप देखे विचित्र । नसको निहार दरदी न पाय, आपके जान औषध सवाय । ज्यों ज्यों करन्त औषध उपाय, त्यों त्यों विशेष व्याधी जनाय । हारे सु वैद्य लगी नकार, बाला करत तलफन अपार । महाराज विप्र आयज्ञा दीन, जप जाप होम आराध कीन । लहे केउ नीम दीने सुदान, भइ सांभ तोउ बोले न बान ॥ १० ॥

राजकुमारी के बेहोश होते देख कुसुमावलि ने शोर मचाया जिसे सुनकर अंतःपुर के मनुष्य दौड़ कर आए, परन्तु रोग का निदान कोई न पा सके । अन्त में महाराजा नीतिपाल अपनी कुमारी को देखने के लिए पधारे । राज-कुमारी की विकल हालत देख कर अपने वैद्यों को सम्मानपूर्वक बुलाया । राज-वैद्यगण मिलकर रोग की परीक्षा करते व ज्यों २ अवस्था देखते हैं त्यों २ प्रवीण की दशा विचित्र प्रतीत होती है । फिर नाड़ी देखी परन्तु रोग का निदान न पा सके । ज्यों २ औषधि करते हैं रोग उतना ही बढ़ता है । अन्त में वैद्य थक गए पर पार न लगा, और राजकन्या अधिकाधिक तड़फने लगी । ऐसी भयानक स्थिति देखकर महाराज ने ब्राह्मणों को जप जाप, होम आराधन करने के लिए आज्ञा दी, कितनों ने बाधा ली दान दिया परन्तु संध्या होने तक राजकन्या कुछ भी बोल न सकी ॥ १० ॥

अथ अलंकार विरोक्ति-सवैया.

है न निसान नसान में जाहर, वैद्य कहा परखे बपुरे ।

लोग अजान निदान निहारत, दान विधान विथा न हरे ॥

मंत्र न जंत्र न तंत्र न भेद, कितेई करंत कछू न टरे ।

सागर मित मिले न तबें लगि, कौनहु आय सहाय करे ॥ ११ ॥

नाड़ी में कोई प्रकट निशान विदित नहीं होता फिर बेचारे वैद्य क्या परीक्षा

करें ? अनजान लोग रोग की परीक्षा करते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि यह व्याधि ऐसी नहीं है जिसे दान पुण्य दूर कर सके । मंत्र से व यंत्र से, जंत्र से अथवा अन्य ऐसे किसी उपाय से यह रोग जानेका नहीं । जबतक सागर मित्र आकर मिले नहीं तबतक कौन आकर सहायता कर सका है ॥ ११ ॥

दोहा—सांभ भई ऐसे दरद, कोउ निदान न पाय ।

कोटिहु किये इलाज पै, समें न आन उपाय ॥ १२ ॥

इसी दुख में संध्या होगई, परन्तु रोग का निदान किसी को नहीं मिला । उपाय किया परन्तु सब व्यर्थ गये । किसी भी उपाय से रोग शान्त होता ही नहीं ॥ १२ ॥

वाणी मंद प्रवीण सो, कुसुमहि दियो मुनाय ।

लोग सबै करुणा लगे, मन महीप मुरझाय ॥ १३ ॥

सब लोग करुणामय होगए, स्वयं महाराज भी मन में मुरझाने लगे । उस समय प्रवीण ने मंद वाणी से कुसुमावलि से कहा ॥ १३ ॥

अथ विभावना अलंकार कलाप्रवीणोक्त—सवैया.

काहे को चंदन अंग लगावत, काहे को नीर गुलाब को डारो ।

काहे को फूलन हार धरावत, काहे को ले घनसार बिगारो ॥

काहे को सीत बयार बिजेनत, ए न विथा उपचार हमारो ।

जंगम जोगी जती दुज बूझहु, है कोउ भित मिलानव हारो ॥ १४ ॥

शरीर पर चन्दन लगाती और गुलाबजल क्यों छिड़कती हो ? फूलों का हार किसलिए डालती हो, उन्हें मेरे गले में डाल कर क्यों बिगाड़ती हो ? ठंडी हवा क्यों चलाती हो ? यह सब उपाय दर्द मिटाने के मिथ्या हैं । जंगम जोगी, जती, ब्राह्मण आदि से पूछो कि है कोई मित्र से मिलाने वाला ? ॥ १४ ॥

अथ विभावना अलंकार, कलाप्रवीण व्याधिदशा वर्णन—कवित्त.

लाय लाय चंदन गुलाब चरचाय आली, अंग अंग लागत अनेक भांत
लाय लाय । जाय जाय नसत निहारत निदान जान, जानहु न परे विथा

प्राण भयो जाय जाय । पाय पाय हारे पथ गुरुजन घेर घेर, पाय घरी
धीर धरे ऐसो न उपाय पाय । हाय हाय हेतुजन करत निराश भरे,
आश भरे सागर ब्रह्मनि मुख हाय हाय ॥ १५ ॥

चंदन ला लाकर महेलियां अंग पर लगाती और ऊपर छिड़कती हैं, परन्तु
अंग में उतनी ही ज्वाला और भड़कती है । रोग का मूल कारण जानने के
लिए वैद्य लोग जा जाकर नाड़ी देखते हैं, परन्तु प्राण तो जाऊं जाऊं कर रहा
है । माता पितादिक गुरुजन घेरे हुए बैठे २ हार गये परन्तु पाव घड़ी
भी धीरज धराने का उपाय नहीं मिला जिससे स्नेही जन निराश होकर “हाय,
हाय” करने लगे । इसी प्रकार आशायुक्त सागर और वियोगिनी प्रवीण भी
मुख से ‘हाय, हाय, आये आये’ करते हैं ॥ १५ ॥

दोहा—कुमरि बात सुनियत कुमुम, सहियन दर्ई सुनाय ।

हमें ब्रह्म कैसे कहें, वैद्य बिलाती आय ॥ १६ ॥

राजकुमारी की बात सुन कर कुसुमावलि ने अन्य सहेलियों को सुना कर
कहा कि हम ब्राह्मण हैं कैसे कहें ? नहीं तो यहां विलायती वैद्य
आए हुए हैं ॥ १६ ॥

सोरठा—सोई सुनी जनान, सहियन प्रति चरचा चलत ।

कहि पठयो फुरमान, वैद्य बुलावन राय प्रति ॥ १७ ॥

इस प्रकार शहर में चर्चा चलते २ अन्तःपुर में राणियों ने सुना और
उन विलायती वैद्य को बुलाने के लिए महाराज श्री के हजूर में अर्ज
कराया ॥ १७ ॥

सुनत राय सब बात, हित दुहिता आतुर हुवे ।

आयस दर्ई अमात, वैद्य बिलाती लाउ इत ॥ १८ ॥

यह सब बात सुन कर महाराजा अपनी कुँवरि की हित-चिन्ता से आतुर
हो गए और कारवारी को विलायती वैद्य बुलाने की आज्ञा दी ॥ १८ ॥

छप्पय—आयस पाय अमात, वैद्य थानक प्रति आये ।

वरणी बात जनाय, कही महाराज बुलाये ॥

तब यह कष्टो तबीब, दरद देखते मिटावें ।

पै हैं बे-मरजाद, राजद्वार में न आवें ॥

बहु दूर बिलातहू में वसैं, सहल देश निरखे सबै ।

नस बिना-व्याध जान न परे, क्यों निदान कीजे तबै ॥ १६ ॥

कारबारी लोग महाराज की आज्ञा पाकर वैद्य के उतारे (डरे) पर गए और सब बात सुनाकर कहा कि महाराज ने आपको बुलाया है । तब उन विलम्बती डाक्टरों ने कहा कि इस दर्द की क्या बिसात है, इसे तो देखते ही मिटा सकते हैं, परन्तु वहां राजद्वार में हम जा नहीं सकते पर्दा होगा । हम बड़ी दूर बिलायत में रहते हैं, केवल सैर करने के लिए निकले हैं । कामदार साहब ! नाड़ी देखे बिना रोग का क्या पता लगे और जबतक पता न लगे तो औपधि क्या करें ॥ १६ ॥

अथ छंद मौक्तिक दाम.

अमायत कीन अती मनुहार, चले उठि वैद्य सुराज दुआर ।

गये जहां राजत हैं महाराज, कियो सन्मान उचें करताज ॥

समीपसु बैठहि वैद्य अमात, तबै महाराज सु बूझिय बात ।

किती गति होत त्रिदोष विचार, इती विधि वैद्य कहो बिस्तार ॥ २० ॥

फिर कामदार ने बड़े सन्मान से अर्ज किया और वैद्यराज को लेकर राजद्वार ले चले और जहां महाराज नीतिपाल विराजमान हैं वहां लेकर गए, उन्होंने टोपी ऊंची करके महाराज को अभिवादन किया और राजा के समीप कारबारी और वैद्य जाकर बैठ गए । तब महाराज ने पूछा कहो वैद्यराज ! नव नाड़ियों का नाम क्या है ? त्रिदोष कितनी गतियों से उत्पन्न होता है, इनका विस्तार-पूर्वक वर्णन करो ॥ २० ॥

अथ नव नाडी परीक्षा. वैद्योक्त-गाहा.

सुनि छितिपाल सु बयनं, तब तबीब दीन प्रति उत्तर,
वैद्यक विधि सु अनंतं, बरनहुं भेद आप जो बुझिग्य ॥ २१ ॥

इस प्रकार महाराजश्री के प्रश्नों को सुनकर वैद्य ने अतिनम्रता से उत्तर दिया हे राजन् ! वैद्यकशास्त्र की विधि अनन्त है, परन्तु आपने जो भेद पृच्छा उसका यथाक्रम वर्णन करता हूं ॥ २१ ॥

अथ नव नाडी नाम भेद-गाहा.

स्नायू हिंसा धमनी, धारनि धरा तंतुको जानहु ।
वायुकि स्थिरा विचारहु, जीवाज्ञा सु नाडि नव एही ॥ २२ ॥

स्नायु, हिंसा, धमनी, धारिणी, धरा, तंतुकी, वायुकी, स्थिरा और जीवाज्ञा ये नव नाड़ियां हैं ॥ २२ ॥

दोहा-पाणि मूल अंगुष्ठ के, बहत त्रिधाम सु नार ।

आदि अंत पित वात है, मध्य सु कफ निरधार ॥ २३ ॥

हाथ व अंगुठा के मूल में तीन घर में नाड़ी बहती रहती है, उसमें आदि कहिए प्रथम घर में नाड़ी चलती होवे तो पित्त, अंत के घर में चलती हो तो वायु, तथा मध्य घर में चलती हो तो कफ की नाड़ी समझना ॥ २३ ॥

सोरठा-यहै त्रिदोष विधान, बहत चत्र गति भेद यह ।

इन आदान निदान, कर चिकित्स भेषज करहु ॥ २४ ॥

इस प्रकार त्रिदोष का विधान है कि तीन भेदों में नाड़ी चलती है, परन्तु जब चौथी गति के भेद से तनों घर में चलने लगे तब त्रिदोष उत्पन्न होता है । इस तरह आदान, निदान और चिकित्सा के द्वारा वैद्यक करते हैं ॥ २४ ॥

अथ नाड़ी गतिभेद-सवैया.

बायस भेक कुलंग गती पित, थानक आद उन्हें निधारे ।
भोर मराल कपोत कहे कफ, मध्य निवास बनाय विचारे ॥

नाग जलो गति होय जबै तब, मारुत भाषत अंत अगारे ।

तीतर लाव बटेर बहे गति, तीनहुं ठौर त्रिदोष निहारे ॥ २५ ॥

काग, मेंडक और कुलंग की गति से जब नाड़ी चले तो पित्त का प्रकोप समझना, उस समय नाड़ी पहिले घर में चलती है । मोर, हंस और कपोत की गति होवे तो कफ की उत्पत्ति समझें और उस समय नाड़ी मध्य के घर में चलती है । सर्प और जल की गति से नाड़ी बढ़ती होवे तो वायु की उत्पत्ति है और नाड़ी उस समय अन्त के घर में चलती है । तीतर, लवा और बटेर की गति से नाड़ी तीनों घर में दौड़ती होवे तो त्रिदोष समझना, ऐसा बड़े विद्वान् वैद्यों ने कहा है ॥ २५ ॥

दोहा—चपला पित्त सु मंद कफ, वात वक्र गति होय ।

ओर ठोर गति ओर ग्रहि, कहें त्रिदोषो सोय ॥ २६ ॥

पित्त की चपल, कफ की धीमी और वायु की टेढ़ी गति वाली नाड़ी होती है । यदि दूसरे घर में और अन्य गति से नाड़ी चले तो त्रिदोष कहलाता है ॥ २६ ॥

नाड़ी भेद तबीबले, भाषे भिन्न सु भीन ।

नीतिपाल मन है मुदित, अंदर आयस दीन ॥ २७ ॥

विना भेद लेकर फिरंगी वैद्य ने नाड़ी का भेद कहा जिसमें नीतिपाल राजा ने मन में मुदित होकर अन्तःपुर में जाने की आज्ञा प्रदान की ॥ २७ ॥

अथ छंद हनुफाल.

आमात उठि वैदान, नृप द्वार कीन पयान । देहुरी लंघित सात, पुनि किंकरी पहिरात । बैठाय वैद्य दुहार, इक गई अंदर नार । नृप नार बुझिभय जाय, इत फिरंग आयस पाय । उन कही आवे दोष, तीसरो संग न कोय । उन वैद्य भंखी जाय, जन दोउ अंदर आय । कीनो सु वैद्य पयान, सुकवी ग्रन्थो सामान । फिर लंघि देहुरि तीन, परबेस अंदर कीन । किंकरी सामी आय, ले चली सौध बुलाय ॥ २८ ॥

कारवारी और वैद्य राजा की आज्ञा होने पर वहां से उठकर राजद्वार में चलने लगे और द्वार लांघ कर वहां पहुंचे जहां स्त्रियों का पहरा था । वैद्य को वहां बाहर बैठा कर एक स्त्री अन्दर महल में गई और महाराणी से निवेदन किया कि “यहां किरंगी वैद्य आए हैं और अन्दर आने की आज्ञा चाहते हैं”, तब महाराणीजी ने कहा “दो के सिवा तीसरा कोई आने नहीं पावे”, तब वह किकरी बाहर आकर आज्ञा सुनाई, तदनुसार वैद्यराज और उनके साथ सामान लेकर भारतीनंद कवि दोनों चले । जब तीन ड्योड़ी पार करके अन्दर प्रवेश किया तब एक किकरी सामने आकर उनके साथ आगे २ महल में चली ॥ २८ ॥

गाहा-व्याधि सु कलाप्रवीणं, नाडी भेद वैद्य प्रविशन विधि ।

एकत्रिंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २९ ॥

कलाप्रवीण की व्याधि, वैद्यराज का महल में जाना आदि विधियुक्त प्रवीणसागर की इकतीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २९ ॥



लहर ३२ वीं

अथ कलाप्रवीण वैद्य चिकित्सा प्रसंगो, यथा—सोरठा.

वैद्य सु अंदर जाय, निरखत राज दुहार छवि ।

सो सुरपुर समुदाय, कैलासकि बैकुंठ विधि ॥ १ ॥

वैद्य अन्दर जाकर राजमहल की शोभा देखते ही ऐसे विस्मित हुए कि मानो यह स्वर्ग का समुदाय है या कैलास है अथवा ब्रह्मलोक है ॥ १ ॥

आय सु चेरी संग, जहां वृंद बैठे वधू ।

उत ले नाम फिरंग, कुसुम सुनाई कुमरि प्रति ॥ २ ॥

इस प्रकार महल की शोभा देखते हुए वैद्य और उसके साथी वहां पहुंचे जहां राजवधुओं का वृन्द है, तब कुसुमावलि ने राजकुमारी के पास 'फिरंगी' ऐसा शब्द कहा ॥ २ ॥

अथ छंद मनिमाल.

आये इत वैद्य अवाज कहें, बाला बिखरे तन साज चहें ।
 ब्रह्मो रूप नैन उधार लखी, नैना महि ब्रह्ममुता परखी ॥
 अंका भरि सेज विठाय दई, एते कछु साज सम्हार लई ।
 सिंगार खसे सु न सजे, बैदान समीप सु आज रजे ॥
 बैठी उत राज तरूनि सभा, देखंत तबीब कुमारि प्रभा ।
 भीने पटमें छवि कामनि की, मानो दरसे दुति दामिनि की ॥
 टूटी लर मोतिन शीश झरे, मानो पयकी घन धार धरे ।
 छूटी लट सो उर आय रही, मानो हर नागिनि चक्र लही ॥
 ज्यों ज्यों बैदी छवि भौंह चढ़ें, त्यों त्यों उपमा सु अनेक बढ़ें ।
 ऐसे सिंगरेइ सिंगार खसे, मानो ललना रति अंत लसैं ॥
 शोभा लाखिके मन शीझ रहे, देखें कर लाउ तबीब कहें ।
 दीन्हों कर वैद्य नसा परखें, टेढ़ी करि भौंह त्रिया निरखें ॥

एकै इक दीठ मिलंत जवैं, लीनो बहु सात्विक भाव तवैं ।
चंदा मुख बिब चढ़ी अरुनी, लालो गुल नैन भरी बरुनी ॥
राजी उलटी कर कंप लहैं, भूलो शुधि वैद्य विलोकि रहैं ।
ब्रह्मी कहि वैद्य सम्भारि दशा, कीजे उपचार निदान नसा ॥
वैदान इते महि जान लई, चेरे करसे निज थेलि ग्रही ।
सीसा मदका सु निकास लिया, नौरंग चुआ उन नाम किया ॥
प्याला मर एक सु आप पिया, दूजा भरि राजकुमारि दिया ।
नासा स्वर खैंचत सीवि करें, वैदा मिस वैदन चित्त हरें ॥
बीरी कहि चूरन पान दई, एते मंह बाल सम्हार लई ॥ ३ ॥

‘वैद्य आगए’ ऐसी आवाज सुनते ही कलाप्रवीण अपने शरीर के ऊपर के बिखरे हुए श्रृंगार को सुधारने की इच्छा करने लगी कि ब्रह्मकन्या उसके मुख को आंख के इशारे से समझ गई और राजकन्या को सहज अपने हाथों में लेकर उसके पीछे ऊकड़ बैठ गई और राजकुमारी को शैथ्या पर बैठा दिया । इतने में राजकुमारी ने कुछ श्रृंगार ठीक किया, सम्हाला, कुछ नहीं सम्हाला कि वैद्यराज सामने आगए । जहां राजवधुओं की मंडली बैठी है वैद्यराज वहां राजकुमारी की शोभा देख रहे हैं ।

तो बारीक वस्त्र में कामनी रूप कलाप्रवीण की छवि ऐसी शोभायमान है मानो आकाश में बिजली चमकती हो ! तथाशिर के बिखरे हुए केशों से मोती की लड़ें ऐसी फड़कती हैं मानो मेघ से दूध की धारा बह रही हो । उनमें से छुटी हुई एक लट वक्षस्थल पर आकर स्तन को वेष्टित किए ऐसी प्रतीत होती है मानो नागिन ने महादेवजी को चक्र रूप में वेष्टित किया हो । वह ज्यों २ कपाल के ऊपर की बिन्दी सहित भ्रुकुटी चढ़ाती है त्यों २ उसकी शोभा और उपमा अनेक प्रकार से बढ़ती जाती है । उसके शरीर के ऊपर के श्रृंगार अस्तव्यस्त होने से ललना रूप कलाप्रवीण ऐसी शोभायमान है मानो संभोग के अन्त की छवि हो । इस प्रकार की प्रभा देखकर जिसका मन खुशी में डूब रहा है ऐसे वैद्य ने कहा—
“हाथ लाओ नाड़ी देखें”, राजदुलारी ने तुरंत वैद्य के हाथ में अपना हाथ

दिया तब वैद्य अपने हाथ में प्रवीण का हाथ लेकर नाड़ी देखने लगे और कलाप्रवीण अकुटी की कमान कर वैद्य का मुख देखने लगी। जब दोनों की दृष्टि एक एक से मिलली तो स्त्री को सात्विक भाव हुआ वह इस प्रकार कि चन्द्र के समान श्वेत मुख, पके हुए कुन्दरू के समान सुरखाई, गुलाब के फूल के समान रक्त वर्ण और कमल के समान नेत्रों में पानी भर गया, रोम २ से रोमांच होकर कंपकंपी छूटने लगी। उधर वैद्य भी अपने शरीर की सुध बुध भूल प्रवीण के सामने स्तब्ध हो देखने लगा। यह देख कर कुसुमावलि ने कहा—“हे वैद्यराज ! दशा सम्हाल कर नाड़ी देख, मनन करके फिर उपाय कहो जिससे हमारी लाड़ली आराम होवे”। इतना सुनते ही वैद्य सावधान हो चेला के पास से दवा की थैली मांगी और उसमें से मद्य का सीसा निकाला। उसे ‘नवरंग चौवा है’ ऐसा नाम देकर उसमें से एक प्याला भर पहिले स्वयं लिया फिर दूसरा प्याला राजकुमारी को दिया। उसे राजकुमारी ने नाक बन्द करके पीलिया इस प्रकार वैद्य के मिस से प्रवीण ने वैद्य का चित्त हर लिया, फिर वैद्य ने पहिले औषध दिया उसी प्रकार ‘यह चूर्ण है’ ऐसा कह कर एक पान का बीड़ा स्वयं खाया और दूसरा प्रवीण को दिया जिसे लेकर राज लाड़ली ने असाध्य को मिटा कर साध्य हो गई ॥ ३ ॥

अथ जातिस्वभाव श्लेषालंकार तबीबोक्त-सवैया.

वैनन में सब बात जनावत, नैनन में सनिपात सो आवैं ।

सीत घरीक घरीक उठे जर, फेर धरी मुरजी तन तावैं ॥

साधन और अराधन और, “न-नारि” निहारि सबैं सुध पावैं ।

बैदनको सब भेद परिच्छ, न-आयुष बैद प्रवीण मिलवैं ॥ ४ ॥

प्रथम अर्थ—वैद्य ने कहा कि रोगी के बातचीत में तो बात (वायु का दर्द) ज्ञात होता है और उसके नेत्र को देखते हुए सन्निपात प्रतीत होता है, इसी प्रकार घड़ी में शरीर ठंडा हो जाता है और घड़ी में ताप हो जाता है, फिर घड़ी में सुर्दा हो जाता है और कष्ट होने लगता है, सो रोगी का रोग कुछ विचित्र प्रकार का है और आराधन (अनुष्ठान) भी कुछ भिन्न ही है। इसकी

नाड़ी देखने से रोग का पूरा पता नहीं चलता, अनेक वैद्यों को इस प्रकार के रोग की परीक्षा नहीं है । जिसकी आयु होवे उसे ही होशियार वैद्य मिल जावे ।

दूसरा अर्थ—कलाप्रवीण एक बात में प्रेम की बहुतसी बातें प्रकट करती है और उसके नेत्र में सनि (स्नेह) पात (पड़ा हुआ) दिखता है । घड़ी में (मित्रका मिलाप होने से) ठंडक होती है और घड़ी में (वियोग होगा इस फिकरसे) तप्त हो उठती है । इसी प्रकार घड़ी में मुर्झाती और संताप पाती है । उसे देखकर आस पास की नारियां (स्त्रियां) भिन्न २ प्रकार के साधन और आराधन करती हैं, परन्तु उसका रंग कोई भी जान नहीं सकता । वैद्यक विद्या के रूप भेद का जानने वाला यह वैद्य प्रवीण की आयु है इसलिए ही मिल गया है अथवा सब वैद्यक विद्या के जानने वाले ये वैद्य प्रवीण को आयु देने के लिए आये हैं ॥ ४ ॥

अथ हेतुप्रेक्षालंकार, कलाप्रवीण दशा—सवैया.

द्रग लोलनसे अध खोल लसैं, कर टेक कपोल दिये न दिये ।
कस कंचुक की कसकान लगी, मुखसे सिसकार किये न किये ॥
भ्रुव कोनन से फरकान लगी, मुख काहुको नाम लिये न लिये ।
भिम्भकात प्रवीण कि बात मनो कहि, बोइ करें सुनिबो करिये ॥ ५ ॥

आधे खुले हुए चपल नेत्रों से देखा करती है । जरा देर में हाथ का देका गालों पर देती है और नहीं देती है, कंचुली के कसों को खींचने लगती है और मुख से सिसकारा भरती है और नहीं भरती है । भ्रुकुटी के कोने फरकाने लगती है, मुख से किसी का नाम लेती और न लेती हुई घड़ी २ भिम्भक उठती है और रस डालकर ऐसी बातें करती है मानो वह कहती रहे और हम सुनते रहें ॥ ५ ॥

अथ प्रदीपालंकार तत्र प्रवीण नैनवर्णन—सवैया.

रूप भरी रस रंग फटाछन, नाओक कंन सरं नखियां ।
माधवि आरुनता रदकी, हृदकी मधुमत्तन की भूखियां ॥

खंजन गंजन मीन प्रभानह, रंजन कंजनकी पत्नियां ।
मित प्रवीण यहै युगकी, अखियांसे अधीक लसे अखियां ॥ ६॥

रूप, रंग तथा रस से भरी और धनुषधारी द्वारा कान तक खींच कर चलाए हुए बाण की गति के समान गति की कटाक्ष वाली, मोहर की रकता और हाथीदांत की उज्ज्वलता को फीकी डालने वाली, भ्रमर के कालेपन को मात करने वाली, खंजन पक्षी की चंचलता को मंद करने वाली, मछली की चपलता को हरण करने वाली और कमल की पंखड़ी की शोभा को बढ़ाने वाली, मृग की आँखों के समान आँखों से हे प्रिय मित्र प्रवीण ! आपकी आँखें अधिक शोभा-यमान हैं ॥ ६ ॥

अथ उत्प्रेक्षांकार प्रवीण वाणी वर्णन-सवैया.

चंचलता चख कौन चमकित, खोर झुकें बरुनी तिरछानी ।
भोर कपोल घसे उससे, रसके चमकें ससकें मुसकानी ॥
रेख रदच्छद की झलके, चलके रद रत्न रसा दरसानी ।
कोकिल की कलकी हलकी, हलकी सुनि मित प्रवीण की बानी ॥७॥

आँखों के कोनों में चपलता चमकती है और काजल की कोर से युक्त पलकें शोभित हैं, दोनों भी हैं कपाल की ओर खिंच आती हैं और मुख से चीत्कार तथा मंद हास्य अधिक रस के स्वाद को बढ़ाता है । होठ की रेखा झलकती है और दांत सहित लाल जीभ दिखाई पड़ती व चमकती है । ऐसे मनोहर मुख से निकली हुई प्रिय मित्र कलाप्रवीण की वाणी कोचल की मधुर वाणी से भी हलकी व सुमधुर मालूम होती है ॥ ७ ॥

अथ संदेह श्लेषभेद अलंकार-सवैया.

बोलत ही सरसात हितू मन, बैनमें भोर महा सुखदानी ।
जे बरणी सुरता रति की यह, ते बुतरी में परें सब जानी ॥
भेद कितेइ किते सुर बंदन, जोइ कहे यह टेक नितानी ।
तान बिहान गुमान बरीअत, वीन किभो पस्वीण की बानी ॥८॥

बोलते ही हितु जनों के मन प्रसन्न हो जाते हैं और बाखी में मोर की बाणी से भी अधिक मधुरता है । चन्द्रदेव की स्त्री रति की सुरत क्रीड़ा में जो चतुराई वर्णन की गई है वह सब प्रवीण की आंखों की पुतली में प्रतीत होती है । कितने ही भेद (मर्म) बाणी और कितने ही स्वर से उच्चारण का वर्णन करने योग्य देख कर कहते हैं कि यह सब देव की निशानी है ; इतना ही नहीं प्रत्युत तान, विधान और गुमान भरी हुई बाणी है या प्रियमित्र प्रवीण की बाणी है ।

दूसरा अर्थ—जिसमें सातों स्वर बोलते हैं और 'ही' कहते इसमें तू बड़ा है तथा बाणी वैन में मयूर पक्षी के समान सुखदायक है, और जिनसे इस स्त्री के स्वर ताल का वर्णन कर विस्तार किया है वे सब काम की पुतली रूपी बाणी में मालूम पड़ते हैं । कितने ही बजाने की रीति बौरह भेद तथा कितने ही ऊंचे नीचे स्वर करने के बंधन यानी परदा है उन्हें देख कर कहते हैं कि यह नकल हमारे तार बनाने की टेक की निशानी है । ऐसी अनेक तार के विधान बाखी गुमान से भरी हुई चतुर की बाणी है या यह बाणी है ॥ ८ ॥

सोरठा—होय सचेत कुमारि, बृभन लगी बधून प्रति ।

ओठसु आनव धार, कहीसु इतै फिरंगि को ॥ ९ ॥

फिर राजकुमारी सावधान होकर होठ दाँतों से दबाकर पास में बैठी हुई स्त्रियों से पूछने लगी कि यहाँ पर फिरंगी कौन ? ॥ ९ ॥

कीनी कुसुम उचार, कुमरी स्वमा स्वप्न सुकहि ।

लीनी भले सम्हार, आषे भई अलाव बति ॥ १० ॥

तब राजकुमारी को 'कुम्मा, लम्मा' ऐसे मानदायक शब्द उच्चारण करके कुसुमावलि ने कहा अहिचस्त्रह ! अप्र अस्त्रह्य होयई श्री, इव वैद्यराज महोदय ने भली प्रकार सम्मुख लिख और इससे अप्र अप्र स्त्राय होगई हैं । बहुत ही अच्छा हुआ ॥ १० ॥

तो कीन्हों आलाव, अप्र कौं फिरंग इव ।

दीजे इन सनमान, कहा प्रजाद सु कीजिये ॥ ११ ॥

ये फिरंगी वैद्य अपने महल में आये हैं इन्होंने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है, इनका सन्मान करो, इनके सामने मर्यादा क्या करनी ॥ ११ ॥

चौपाई.

कलाप्रवीण कुमरि सुधि लीनी, अनुग बधाइ राज प्रति दीनी ।
महाराज मन दुचिते भज्जे, देहुरि पंच सबदिय बज्जे ॥
अति आनंद शहर जन पाये, केऊ कुमरी उपायन लाये ।
हुकम राजमंत्री प्रति दीन्हों, भलो निदान फिरंगिन कीन्हों ॥
कुंडल बलय बसन ले जाओ, वैद्यन प्रति इनाम बकसाओ ।
यह अमात सुनि अंदर आये, बकसन वैद्य साज सब लाये ॥
वाणी यह प्रति वैद्य कहाई, यह इनाम महाराज पठाई ॥ १२ ॥

इस तरह राजकुमारी को जरा ठीक हुआ तो एक अनुचर महाराजा के पास खुशखबरी ले गया जिससे महाराजा के मन की चिन्ता मिटी और प्रसन्न हुए । राजद्वार पर पंच वाद्य बजने लगे, जिससे सारे शहर में आनन्द छा गया । इस खुशी में पुर जन लोग राजकुमारी के लिए अच्छी २ भेंट लेकर आने लगे । इस प्रसन्नता में महाराज ने मन्त्री को आज्ञा दी कि 'इन फिरंगी वैद्य ने बहुत अच्छा उपचार किया कि जिससे राजकुमारी को आराम हुआ, इस-लिए कुंडल कड़ा और उत्तम वस्त्र ले जाकर वैद्य को इनाम दो' । इस प्रकार राजाज्ञा पाकर कारबारी इनाम देने के लिए बहुत सी वस्तुएं लेकर अन्दर आए और अति नम्र वाणी में वैद्य से कहा कि ये वस्तुएं महाराज ने आपको पुरस्कार में दी हैं, इन्हें स्वीकार करो ॥ १२ ॥

तबीबोक्त-सोरठा.

हम इनाम नहीं लेते, कृपा-ईश काहु न कमी ।

पर उपकारन हेत, सहज देश निकसे सहल ॥ १३ ॥

तब वैद्य ने कहा कि हम इनाम नहीं लेते हैं, ईश्वर की दया से हमें किसी वस्तु की कमी नहीं है । हम तो परोपकार के लिए सहज देशाटन को निकले हैं ॥ १३ ॥

लीन्हों नहीं इनाम, बहुत विनय मंत्री करी ।

गये अमायत धाम, सासन मंग महीप की ॥ १४ ॥

इनाम लेने के लिए मंत्री ने बहुत प्रार्थना की परन्तु वैद्य ने यह भेट नहीं ली । फिर कारबारी ने आकर महाराज से सब बात वर्णन की और महाराज की आज्ञा लेकर अपने घर गए ॥ १४ ॥

बैठे उतै फिरंग, चित्त न उठिबे को चले ।

नैन निहारत अंग, उर उमंग अतिही भरे ॥ १५ ॥

भेशधारी फिरंगी बैठे हैं, वहाँ से उठने को जी नहीं चाहता । हृदय में अति उमंग से कलाप्रवीण के अंग २ को देख रहे हैं ॥ १५ ॥

कीनी कुसुमन सैन, लोक लाजहू के लिये ।

बीती जाम जु रैन, तब तबीब लीन्हों विदा ॥ १६ ॥

फिर कुसुमावली ने लोकलाज को ध्यान में रख सैन से इशारा किया और महाराज वैद्यजी वहाँ से विदा हुए ॥ १६ ॥

छप्पय—तब तबीब निज थान, आय मित्रन प्रति भंखिय ।

तुम प्रताप तारुनी, व्याधि मुश्किल असान किय ॥

नृप इनाम पट्टयो, सोय हमहू नहिं लीनों ।

सुख सुरता मन प्राण, उलट उनही को दीनों ॥

विध विध बनाय बातन करी, वह चरचा सबही निशा ।

परभात मतो करि भित मिल, अबै गमन कीजे निशा ॥ १७ ॥

वहाँ से वैद्यराज अपने सुकाम पर आकर अपने मित्रों से कहने लगे कि तुम्हारे प्रताप से नवयौवना कलाप्रवीण के कठिन रोग को मिटा कर उस पर अहसान किया है और राजा ने इनाम भेजा उसे लिया नहीं, उल्टा उनको ही सुख, शुद्धि, मन और प्राण दिया है । इस प्रकार बहुत सी बातों में ही रात बिता दी और सबेरे यह विचार किया अब अपनी ओर चलना चाहिए ॥ १७ ॥

दोहा-सुरभाये सागर सुमन, परी भनक वह कान ।

बने न फिर मिलबो अबै, धार्यो मित पयान ॥ १८ ॥

सबेरे चलना है, ऐसी भनक कानमें पड़ते ही सागर मुर्झा गया और सोचा कि मित्र ने तो अब चलने का निश्चय किया तो अब फिर मिलना नहीं होगा ॥ १८ ॥

अथ एकावन्व्य अलंकार, तत्र सागरोक्त-सवैया.

चलबो यह कान भनक परी, तबतें अंखियान भरे जलबो ।

जलबो विरहानल पावकसे, जिय नावक बान लगे सलबो ॥

सलबो हिय होत प्रवीण मिटें न, बनो नहिं फेर घरी मिलबो ।

मिलबो मिलबो मुखही ते गयो है, भयो है अबे चलबो चलबो ॥ १९ ॥

‘चलना’ ऐसी भनक कान में पड़ते ही आँखों में पानी भर आया और विरहाम्नि के ताप से शरीर जलने लगा । कलेजा में तीर लगने की भांति हूक उठने लगी । वह माल ऐसी उठी कि हे प्रिय मित्र प्रवीण ! वह अब मिटती नहीं, क्योंकि जैसे तैसे करके एक घड़ी मिलने का अवसर मिला अब मिलना तो गया, उलटा चलना २ शुरू हो गया ॥ १९ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार-छप्पय.

तबैं मित महाराज, करी कर जोर अरज यह ।

आप गये रजधान, निशा पहिचान परी नह ॥

अब रहत थिर इतैं, काहु जो जान न पावे ।

नफा न कछु इन बात, गुनगारह ठहरावे ॥

महाराज कहो इतही रहैं, यहै सु बात विचारिये ।

मिलबो बने न इहि फेर अब, नेहनग्र पथ धारिये ॥ २० ॥

सागर को उदास देख कर मित्र ने हाथ जोड़ कर धैर्य दिया ‘महाराज आप राजधानी में आए उस समय रात होने के कारण कोई पहिचान न सका, परन्तु अब यहाँ पर निश्चय रूप से रहें और किसी को अपना भेद मालूम हो गया तो लाभ तो कोई नहीं उलटे गुनहगार ठहरायें जावगें’ । फिर आप कहो

तो यहाँ ही रहें इस बात को मनन कर के देखो और अब फिर कलाप्रवीण से
मिलाप यहाँ होना नहीं, इसलिए नेहनगर का रास्ता लीजिये ॥ २० ॥

दोहा—यही बात कर प्रात उठि, कियो गमन दिस वास ।

सागर कलाप्रवीण दुहु, उरमें लइ उदास ॥ २१ ॥

इस प्रकार बातचीत कर के प्रातःकाल उठ कर चलते बने, परन्तु वियोग
के कारण कलाप्रवीण और सागर दोनों के मन में उदामी छा गई ॥ २१ ॥

अथ वह प्रात सूर्योदय वर्णन, संदेहालंकार—सवैया.

प्रात उदय प्रगटयो रवि बिंन, किधौ कैलाशपती द्रग ज्वालिहि ।

पत्र तजें विकसोहें पलास, उसास जह्वात धराधर व्यालिहि ॥

पौनसे तुंग उड्यो गिरिराज, कीधौ मुचकंद जगावत कालहि ।

रक्त भरयो सु भयौ सु लसैं जनु, जोगिनि कालि भुजामें कपालहि ॥ २२ ॥

प्रभात होते ही सूर्य की किरणें फैली तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह
सूर्यकिरणें नहीं प्रत्युत कैलाशपति शंकर के तीसरे नेत्र की ज्वालाएं हैं, या
झड़े हुए पत्तों वाले पलाश वृक्ष के केमू फूल रहे हैं या पृथिवी के धारण करने
वाले शेषनाग उसांस छाड़ रहे हैं उसकी ये लपटें हैं, या हवा के जोर के
झपाट से कोई पर्वत शिखर उड़ रहा है या राजा मुचकन्द काल को जगा रहा
है या लहू से भरा हुआ जोगिनी रूप कालका का खप्पर है ॥ २२ ॥

चौपाई.

यहि विधि उदय प्रभाकर कीनों, नेहनग्र पथ सागर लीनों ।

उत प्रवीण उनकी सुधि पाये, दोऊ मन विशेष दुख लाये ॥

जारत विरह ज्वाल तन जग्गी, ठोकर मनहु व्याल तन लग्गी ।

आगे अनंद होन मन धारी, पै मिल विरह दून बिस्तारी ॥

खानपान भूषण रुचि छंदे, मदन भेद बिस्तारन मंडे ।

उनके चित्त भेद वह जाने, विरही बिना बंदत न माने ॥ २३ ॥

इस प्रकार सूर्य का प्रकाश हुआ उस समय रससागर ने नेहनगर का मार्ग लिया । यह सूचना प्रवीण को मिली तो प्रवीण और रससागर दोनों ही अपने २ मन में बहुत दुखी हुए और जलाने वाली विरहाग्नि की ज्वाला शरीर में भड़क गई जिससे मानो सर्प के शरीर में ठोकर लग गई हो । इस तरह दोनों और दुःख हुआ । उधर प्रवीण को कुसुमावलि और सागर को इन के मित्र समझाने और दिलासा देने लगे परन्तु किसी प्रकार धीरज नहीं होता है । मन में यह था कि आनन्द होगा परन्तु मिलने में तो उलटी रोम रोम में विरह का धुन उत्पन्न हो गई जिससे खान, पान, अलंकार आदि शृंगार की रुचि छोड़ दोनों जन मदन भेद का विस्तार करने लगे । इन के चित्त की दशा बही जाने जिसे विरह का अनुभव हो और कोई क्या जाने ॥ २३ ॥

अथ तस्य दृष्टान्तानन्वयालंकार-सवैया.

पानि के जंतु कहा पहिचानत, ग्रीष्म के तपकी गरदी की ।

केसर की करिहैं कह कीमत, है न परीख जहां हरदी की ॥

कायर को न कलू परिहैं कल, सूरन को सुधि है मरदी की ।

बेदरदी न प्रवीण लहैं कछु, जानहिगो दरदी दरदी की ॥ २४ ॥

पानी में रहने वाला जंतु ग्रीष्म की तपत को क्या जाने । जिसे हलदी की भी जांच नहीं वह केशर की परीक्षा क्या करे, लड़ाई के मैदान में कायर को क्या बहादुरी का पता, इस का पता तो शूर पुरुष को ही है, इसलिए हे प्रवीण ! बेदरदी दरदी के दरद को क्या जाने । ये तो कोई दरदी ही जान सकता है ॥ २४ ॥

दोहा-समृद्धावें सागर सु प्रति, मिलिमिलि राह सु मित ।

सुख जानन दुखभो प्रगट, धीर न धरियत चित्त ॥ २५ ॥

इस प्रकार महाराज रससागर की दुखी हालत हो जाने से मित्र-गण इकट्ठे होकर बार २ समझाते हैं । परन्तु सुख जानते हुए दुःख उत्पन्न हो गया जिससे मन काबू में रहता ही नहीं है ॥ २५ ॥

बहुत राह बहुत दिन भये, लंघ बिदेश सु देश ।

जिहि विधि कीन्हों गमन त्यों, किय निज धाम प्रवेश ॥ २६ ॥

अपने नगर जाते २ रास्ते में बहुत दिन बीत गये और देश पर देश पार करके जिस प्रकार जाते समय चुपके से निकले थे, वैसे ही चुपके से अपने महल में प्रवेश किया ॥ २६ ॥

गाढ़ा-वैद्य कलापरवीणां, चरचा नेहनग्र सागर गति ।

उभय त्रिश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २७ ॥

कलापरवीण का वैद्य, उतारे पर हुई चर्चा, फिर मित्रों सहित महाराज रस-सागर का नेहनगर वापिस आने का वृत्तान्त वाली यह प्रवीणसागर ग्रन्थ की वृत्तिसर्वी लहर पूर्ण हुई ॥ २७ ॥

३३ वीं लहर ।

अथ दंपतिविरहदशावर्णन—दोहा.

इत को रससागर कुमर, उत को कलाप्रवीण ।

मिलि बिछुरत बाढ्यो सुदुख, बिरह दशा तब लीन ॥ १ ॥

यहां रससागर कुमार और उधर कलाप्रवीण दोनों को इकट्ठे हांकर अलग होने से जो वियोग दुःख हुआ इससे विरह दशा धारण की ॥ १ ॥

तत्र विप्रलंभ शृंगारभेद वर्णन—छप्पय.

बिछुरत प्रीतम उभै, होत तिहि ठौर जो रसहि ।

विप्रलंभ सिंगार, तास वरनंत सु कवि कहि ॥

भेद चत्र तिहि भिन्न, पूर्ण अनुराग कहीजे ।

करुणा मान प्रवास, यहै चारों लिख लीजे ॥

गुण भेद रूप ताके सु गहि, बडुर दश विस्तरत ।

करि भिन्न भिन्न ताकी कला, बिरह विथा वर्णन करत ॥ २ ॥

मिले हुए स्त्री पुरुष अथवा दो मित्र जो पृथक् होवें वहाँ जो रस उत्पन्न होता है उसे 'विप्रलंभ' शृंगार कह कर वर्णन किया है । इसके पृथक् २ चार भेद हैं, पहिला पूर्वानुराग, दूसरा करुणा, तीसरा मान और चौथा प्रवास विप्रलंभ । इन चारों को जानने के लिए उन के गुण भेद और रूप को लेकर दश दशा में विस्तार किया है । इसी प्रकार भिन्न २ कला से विरहदशा का वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

अथ विप्रलंभ शृंगार चतुर्भेद वर्णन—छंद पद्वरी.

देखंत प्रेम दंपतिहि सोय, बिछुरंत तदन परकास होय. बिनु लखे प्रनां
तलफे अताग, एही सु भेद पूर्वानुराग. आपको जास मिलरह्यो रंग,
जोगान जोग दुख तास अंग, लिख मित दशा शोचंत चित, ताहि सो
बिरह करुणा कहंत. मितको मित पावैं छु दोष, पावंत चित आवैंछु रोष.

कछु रार होत बिलुरे सु आन, विन मिले कष्ट वह विरह मान. परदेश
मित कीनो पयान, मिटिगई ओध पुग्गे न थान. एकके चित बाढे
उदास, तासे कहंत विरहा प्रवास. विन मिले शोच बाढंत मित, दश दशा
होत ब्रह्म सो वदंत ॥ ३ ॥

जो स्त्री पुरुष में एक दूसरे को देखने से प्रेम बढ़ा हो वह पृथक् होते ही
प्रकट होवे और प्रिया के देखने के बिना प्राण अथाह तड़पने लगे उसे पूर्वानु-
राग नाम का विप्रलंभ भेद कहते हैं । अपना प्रेम जिससे मिला होवे, उसे
अदृष्ट योग में शारीरिक कष्ट हो जावे जिससे प्रिय की दशा देख कर मन में
चिन्ता उत्पन्न होवे उसे करुणा नाम का विप्रलंभ कहते हैं । मित्र से हुए दोष
को मित्र जाने, जिससे मन में रोष उत्पन्न होकर पार्थक्य हो जावे, परन्तु एक
दूसरे से मिले बिना बहुत दुःख होवे उसे मान विप्रलंभ नाम का भेद जानना ।
मित्र परदेश गया हो और अवधि बीत जाने पर भी घर न आया हो इससे
एक दूसरे के मन में उदासी बढ़े उसे प्रवास नाम का विप्रलंभ भेद कहते हैं । मित्र
से मिले बगैर मन में खेद बढ़ता जाय और उस की जुदाई को लेकर ऐसी स्थिति
होवे उसे विरह कहते हैं ॥ ३ ॥

दोहा—विप्रलंभ सिंगार के, कहे चार परकार ।

होत दशा दश विन मिले, सो अब कहो उदार ॥ ४ ॥

इस प्रकार विप्रलंभ शृंगार के चार भेद कहे, परन्तु मिलाप के बिना जो
दस दशा उत्पन्न होती हैं उसका भेद अब कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ दश दशा नाम कथनं—गाहा.

अभिलाष सु वितायं, गुनह—कथन संमृति उद्वेगं ।

पुनि प्रलाप उन्मादं, जड़ता व्याधि मरन यह जानहु ॥ ५ ॥

अभिलाषा, चिन्ता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता,
व्याधि और मरण ये दस दशायें जानना ॥ ५ ॥

अथ विरह दश दशा भेद—छंद मौक्तिकदाम.

मिलें मन नैनन बैनन रंग, चहे मिलबो चित दंपति अंग. इकें इक बाढ़त जात सनेह, कहो अभिलाष दशा ब्रह एह. किही विष मित मिलें उत जाय, इतै मिलिहै कब मित सु आय. यहै निश दोस बिचारत चित, चिन्ता ब्रह्म चातुर तास कहंत. जहां गुन मित सु चित गनंत, अलंकृत और सरूप ब्रनंत. भयो मनमध्य शुमार विशेष, यहै विरहा गुन कथ्यन लेष. भये प्रिय याद न और सुहाय *, सबै गृहकाज दिथे विसराय. लगी मिलिये मिलिये यह वान, दशा विरहा वह संसृति जान. सबै सुखदायक जो उपचार, वहै दुख देन लगे सु अपार. लगो मन मित सु मितहि ध्यान, दशा उदवेग ब्रह्मा सु बखान. रहे मन भोर समान भ्रनंत, तनं मनसैं परताप तपंत. वही विधि बानि बदै प्रिय पच्छ, यहै परलाप दशा ब्रह लच्छ. तरक्कित ऊठ चले सु विशेष, चितै रहे चकित आनन देख. हसैं पुनि रोष करंत विवाद, यहै विरहा सु दशा उनमाद, गई सुधि सु भूलि सयान, भयो सुख दुःख सु दोय समान. लगी प्रियसे सुरता अवछेद, दशा विरहा जड़ता यह भेद. तपै तन दीरघ लेत उसास, भरे जल नैनन होय निरास. बढ़े दिनही दिनही मन आधि, दशा विरहान कहैं यह व्याधि. छलं बलके उपचार करंत, बने नहिं कथों न मिले दोउ मित. बढें परिपूरण प्रेम प्रमान, बने तब शेष दशा सु विधान ॥ ६ ॥

जो दम्पति अन्योन्य स्नेह से मन और वाणी से प्रेम में लिप्त हो गये हों वे एक दूसरे के शरीर से मिलना चाहते हों, इस प्रकार से एक दूसरे से मिलने की चाहना बढ़ती जाती हो उसे विरह की अभिलाषा दशा कहते हैं। 'किस प्रकार से मिलना होगा' इस प्रकार रात दिन मन में चिन्तन करने की दशा को चतुर जन विरह की चिन्ता नाम की दशा कहते हैं। जो चित्त में मित्र के गुण का ध्यान किया करे और उसके वस्त्रालंकार की शोभा तथा स्वरूप का वर्णन किया करे उससे जो मन को मथन करने वाली काम की उत्पत्ति होवे उसे

विरह की गुण-कथन नाम की दशा जानना ! जिस समय मित्र की याद आवे तब दूसरा कोई भी न रहे, घर का सब काम छोड़ जल्दी मिले तो ठीक ऐसी जब प्रकृति हो जाय तो उसे विरह की स्मृति-दशा जानना । जब सब प्रकार के सुखदायक उपचार दुःखदायक हो जावें और हृदय में केवल मित्र का ही ध्यान लगा रहे उसे विरह की उद्वेग नाम की दशा कही गई है । भंवरा की तरह जिस का मन भ्रमित रहे, तन और मन से पृथक् जो जीव है वह भी तप रहा हो, और अनेक प्रकार से प्रियतम के पक्ष की बाणी बोला करे, वह विरह की प्रलाप दशा का लक्षण है । शंका से उठ कर चले और मन भ्रमित रहे, सुख की ओर देखने पर हंसे और वैसे रोता रहे, विवाद करने लगे, ऐसी जो दशा है उसे विरह की उन्माद दशा जानना । प्रिय मित्र के अखंड ध्यान लगाने से सुख बुध व चतु-राई भूल जाय जिससे सुख दुःख एक सा हो जावे यानी सुख दुःख की खबर न रहे, ऐसी जो दशा है उसे विरह की जड़ता नाम की दशा कहा है । विरह से अंग तपे और लम्बी २ सांस लेवे, आँखों से आंसू की धारा चलती रहे, निराशा हो जावे, दिनों दिन मन का दुःख बढ़ता जाय, इसे विरह की व्याधि नाम की दशा कहते हैं । जब छल बल से अनेक यत्न करे परन्तु किसी भी प्रकार मित्र से मिलना न होवे तथा मन में प्रेम की पूर्ण मात्रा बढ़ जावे जिससे अनायास मरण नाम की अन्तिम दशा विरह की होती है ॥ ६ ॥

उते कुसुम परवीणं, महाराज भित्त इत चरचा ।

कीन्हीं काव्य नवीनं, जो जो दशा होय सब वरने ॥ ७ ॥

वहाँ कुसुमावलि व कलाप्रवीण और यहाँ महाराज रससागर तथा मित्रों के बीच की चर्चा में जो दशा उत्पन्न होती है उन सब को नवीन कविता कर के वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

अथ कलाप्रवीण कुसुमावल्याक्त विरह दशा वर्णनं; तत्र प्रथम

कलाप्रवीणोक्त मिलितरूपकालंकार-सवैया .

राज महा अभिलाष विराजत, चिन्त है राजकुमार विचिच्छन ।

स्मृति और उद्वेग वजीर, अभीर दुहू जड़ता गुण कथन ॥

हे हकूमी उनमाद प्रलापहि, व्याधरु शेष निआउ चुकावन ।
सागर शाह स्नेह की आयस, यातन नग्र दुहाई फिरी इन ॥ ८ ॥

अभिलाषा रूपी गद्दी पर महाराज विराजमान हैं और चिन्तारूपी महाराज-कुमार अति विचक्षण हैं, स्मृति और उद्वेग ये दो प्रधान हैं, जड़ता और गुण-कथन रूपी दो अमीर हैं, उन्माद और प्रलाप ये दो हाकिम शोभायमान हैं और व्याधि तथा मरण रूपी दो न्यायाधीश न्याय देने वाले हैं इस शरीररूपी नगरी में हे मित्र सागर ! स्नेहरूपी हाकिम की दुहाई फिर गई है ॥ ८ ॥

अथ मिलित रूपकालंकार सर्वैया.

सागर सूर प्रभा प्रगटी अरु, नेह मरीच निरंतर जागे ।
काम अनूपम ओप करे इत, आतस के चसमें चल लागे ॥
ताकि परी रूप है घट में, प्रतिबिंबित प्राण महा दुख दागे ।
काहु विचारन बूझे अबै यह, जारत जोवन को बन आगे ॥ ९ ॥

सागररूपी सूर्य की प्रभा काहिए कान्ति प्रकट हुई तथा प्रकाश पाकर हमेशा स्नेह रूपी किरणें तेज के पुंज से जागृत हुई, इसी प्रकार जिस कामदेव ने अनुपम रीति से दिया है ऐसी आंखों रूपी देवता में वे किरणें पड़ीं और उन का रुख हृदयरूपी घट में पड़ा, उस प्रातिबिम्ब के पड़ने से प्राण महादुःख से जलने लगे, उस के बुझाने का कोई उपाय नहीं सूझता, उल्टा आगे चलकर यौवन रूपी बन को आग्नि में जलाना है ॥ ९ ॥

अथ भिन्नपद श्लेषरूपकालंकार-कवित.

उर पुर पैठो जारि, ज्वलन नमाय लीजो, नैन गढ़ टेढो जल, नलन डुबोयो है ।
सुख साज राज को, बिखेरि के बिदाय दीनों; मन मजमून ग्वालीयर ले चढ़ायो है ।
प्राण तरुत बैठो आय, दुखके दिवान जुत, बिरह विकट सूबा, अमल जमायो है ।
सागर वियोगी खंड, दंडन प्रचंडरूप, मदन पठायो शाह, प्रेमदल आयो है ॥ १० ॥

विरह रूपी सूबा हृदय रूपी नगर में प्रविष्ट हुआ और उसे पीरताप रूपी

अग्नि से तपा दिया तो नेत्ररूपी बाँकेगढ़ को आंसू के प्रवाह रूपी पानी के नल से डुबा दिया है । सुखरूप सामग्री अथवा राज समाज को बिखेर कर अलग कर दिया, मन रूपी मजूमदार को ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया । इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ तब दुःख रूपी दीवान को साथ लेकर प्राण रूपी तख्त (सिंहासन) पर आन बैठा । इस प्रकार उस विरहरूपी सूबा ने अपना अमल जमा दिया है, इस प्रकार हे मित्र सागर ! वियोगी के देश को दंड देने के लिए मदनरूपी शाह ने महाविकराल प्रेमदल सेनासहित आया है ॥ १० ॥

अथ दृष्टान्तालंकार सवैया.

नैनन से जब नैन लगे तब से वह नैनन चाहत नैना ।
रैन कहूं आंसुवा बरसे दिक्, रैन बहे छिनही विसरेना ॥
मेन महा दुख में नित तावत, ज्यों ठिग मंजर पंजर मेना ।
है न कछू सुख चैन हिये वह, जाग रहे अरु सागर हैना ॥ ११ ॥

जब से आंखों से आंखें लगी हैं तब से ये आंखें इन आंखों को चाहती हैं, कई रात तो आंसुओं को रोकती हैं परन्तु कभी २ तो रोकने से रुकती ही नहीं, रात दिन रोती ही रहती हैं । एक क्षण भी ये आंखें उन आंखों को भूलती नहीं । जिस प्रकार मैना के पिंजरे के पास बिल्ली रख देने से मैना के मन को जलाती रहती है, उसी प्रकार कामदेव हमेशा मन को महा दुःख में जलाता रहता है । ऐसी दुखिया को सागर के पास शान्ति न मिली तो कहाँ मिलेगी ॥ ११ ॥

अथ यथासंख्यालंकार, कुसुमावल्युक्त-सवैया.

बाल विहान विहाल विलोकित, कंधे इलाज सखी सब दोरी ।
एक गुलाब लियो छिरकावन, चंदन की इक लाइ कटोरी ॥
फूलनहार इकै पहिरावत, एकहु “ दान समीर ” गङ्गोरी ।
सागर एक हि बेर सबै वह, फोरत डोरत तोर मरोरी ॥ १२ ॥

विरह से झिन्नभिन्न उस बाला को देख कर सब आस पास की सखियां दौड़ आईं । उन में से एक ने शीतलता के लिए गुलाब जल छिड़का, एक सखी चन्दन से भरी कटोरी ले आई, एक सुगन्धमय फूल का हार पहराने लगी, एक ने शीतल पवन करने के लिए पंखा लिया, परन्तु हे सागर ! उसने उन सब को एक ही बार फोड़, तोड़ और मरोड़ दिया ॥ १२ ॥

अथ अत्यंतातिशयोक्ति अलंकार-सवैया.

नैनन से अंसुवा उमहे सो गलीन भई वर्षा की तरंगन ।
बारहु मास रहे ऋतु ग्रीष्म, आयत सास परोसनि अगन ॥
जेहर सो रसना दोहरी भई, पल्लव की मुंदरी भइ कंगन ।
सागर छेद भये छतियां शर, तोउ भरे मन्मथ निषंगन ॥ १३ ॥

आंखों से आसुओं की धारा उमड़ चली है परन्तु उससे चोमासा की नदी रूप नहीं बनी, क्योंकि उसके गरम २ श्वास पड़ोस के आंगन तक जाते हैं और बारह मास प्रष्म ऋतु बनी रहती है । पांव में पहिनने के लंगर कटि-मेखला हो रहे हैं, अँगुलियों में पहिनने की अँगूठियां हाथ के कंकण हो रहे हैं अर्थात् वह इतनी कृश हो गई है और हे सागर ! कामदेव तो अभी भी अपनी भाथी (तरकश) में बाण भरता है, और प्रवीण की छाती में पहिले से ही छेद हो गया है ॥ १३ ॥

अथ रससागर मित्रोक्त विरहदशावर्णनं, अलंकार तद्रूपक-सवैया.

यज्ञिय कुंड रच्यो हिय में, तहं इंधन अस्थि सु आन ठहे हैं ।
बीच धरे विरहा विशवानर, नैन सवा घृत धार बहे हैं ॥
होमत है सुख की करि आहुति, धीरज श्रीफल मध्य दहे हैं ।
प्यारे प्रवीण प्रवीण पढ़ें श्रुति, नाम के मंत्र निरंत्र ग्रहे हैं ॥ १४ ॥

इस याज्ञिक ने तो अपने हृदय में यज्ञकुंड बना रक्खा है । और अपनी अस्थि-रूपी समाधी लगा रक्खी है उसे प्रज्वलित करने के लिए बीच में विरह-रूपी अग्नि रख रक्खी है । आंखें रूपी लुवा से आंसुओं की धारा रूपी घृत चल

रहा है और सुख की आहुति होम रहा है, धीरज रूपी श्रीफल उस में पूर्वाहुति के लिए अग्नि में दे रहा है । “हे प्यारी प्रवीण” इस नाम का मंत्र निरन्तर जाप जप रहा है ॥ १४ ॥

अथ असंगत्यालंकार-सवैया-

प्रेम को बीज धर्यो हिय में वह, लाज की पांसु दबाय दुराये ।
नैन घटा बरसे जबही, तबही जल के परसे दरसाये ॥
पत्र सखी प्रसरे गन भेद, किते अभिलाष प्रसून लगाये ।
चाहतचिन्त सु आवन के फल, प्यारे प्रवीण कहो कब पाये ॥ १५ ॥

हृदयरूपी खेत में प्रेम-रूपी बीज बोकर उसे लाज रूपी खाद से ढक रक्खा था । उस पर जब नेत्ररूपी मेघ की घटा बरसने लगी तब पानी के स्पर्श से वह प्रकट हो गया । उस में गुण भेद रूप कलियां और पत्ते निकल आए, उस में कितने ही अभिलाषा रूपी फूल लगे । अब तो वह चित्त केवल आने की आशारूपी फल चाहता है, सो हे प्रिय प्रवीण ! कहाँ वह कब प्राप्त होगा ? ॥ १५ ॥

अथ असंगति अलंकार-सवैया-

अंब अताग निबान भरे ब्रह्म, संमृति तत्र संवार धरें ।
व्रीड को मंच बध्यो गन के गुण, बैल विचार फिरबो करें ॥
कांति कि माल कसी बरुनी ग्रह, नैन धरी सु भरे उबरें ।
अंग उधान प्रवीण रच्यो जिय, प्रेम प्रसून लता प्रसरें ॥ १६ ॥

विरहरूपी अथाह जल से सरोवर भरा हुआ है । वहां स्मृतिरूपी घटि-यंत्र सम्हाल कर लगा हुआ है, लाजरूपी घटिकाएं गुणरूपी रज्जू से बंधी हुई हैं । विचाररूपी बैल फिरता रहता है, उस रहट में फलकों की मालाएं बंधी हुई हैं, उसमें नेत्ररूपी घटिकाएं भरती और खाली होती रहती हैं, इस प्रकार जीव ने शरीररूपी बगीचा बना रक्खा है जिस में प्रेमरूपी पुष्पलता फैल रही है ॥ १६ ॥

अथ विभावनालंकार—सवैया.

स्वेपल बीच भरेइ रहो सु परेइ रहो प्रमरे तन सारे ।
 कंठ कपोल भरेइ रहो सु भरेइ रहो नव वास भिगारे ॥
 बुंदनसे बिखरेइ रहो सु ढरेइ रहो वरुणी भग ढारे ।
 नैनन नीर खरेइ तवै जब नाम तिहारी प्रवीण उचारे ॥ १७ ॥

हे प्रवीण ! तुम हमारे (सागर के) पलकों के बीच में आंसू रूप से भरी रहती हो, सारे शरीर में फैल रही हो, नए वस्त्र में भिजा कर भरी रहती हो जलबुंद के समान (अंग के ऊपर) बिखरी रहती हो, पलकों के मार्ग से ढलती रहती हो, इसलिए हे प्रवीण ! जब तुम्हारा नाम (सागर) उच्चारण करता है तब उस की आंखों में से आंसू पड़ते हैं । यानी जिसका नाम लेकर बुलाते हैं तो वह उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार तुम्हारा नाम लेने से आंसू आते हैं, इससे स्पष्ट है कि तुम आंसू रूपी होकर आंखों में बसी हो ॥ १७ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

शोच विचार बढेइ रहे सु पढेइ रहे हैं नजूमि निदानें ।
 आनन तेज अढेइ रहे सु द्रढेइ रहे वैवस्वत जानें ॥
 प्रेम प्रतीत दढेइ रहे सु गढेइ रहे बिरहा तन प्रानें ।
 चित्त प्रवीन चढेइ रहे सु गढेइ रहे मनमथ्य निसानें ॥ १८ ॥

सोच विचार होता ही रहता है, ज्योतिषी लोग गणना करते ही रहते हैं । मुख का तेज बढ़ता ही रहता है । यमराज जीव लेने को तैयार ही रहता है । प्रेम व प्रीत बढ़ते ही रहते हैं । शरीर व प्राण में विरह भरा ही रहता है । इसी प्रकार चित्त में हमेशा प्रवीण की स्मृति रहती है और मनमथ यानी काम-देव अपना बाण चढ़ाये ही रहता है ॥ १८ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

नैनन नींद कछू करबो अरु, पावकही जरबो मनको ।
 सास उसासन को भरबो पुनि, शोच सदा करबो दिनको ॥

नैनन नीर प्रवा भरबो फिर, चाहत है मरबो तनको ।

प्यारे प्रवीन विचार करो यह, कौन खता बिरही जनको ॥ १६ ॥

आंखों में नींद का भरा रहना, मन को जलाते रहना, सदा लम्बी सांस लेते रहना, सदा चिन्ता करते रहना, आंखों से आंसू ढालते रहना, मरने की इच्छा करते रहना, ये बातें हे प्रिय प्रवीण ! बिरही की होती ही हैं, इसमें उसका क्या दोष ? ॥ १६ ॥

अथ असंगति संदेह को संकर अलंकार-सवैया.

प्रेम सुरज उठे हियमें तिनसे जु चुआन लगे बरुनी वन ।

मित्रको तंत्र कियो घटमें वह, जंत्रसे कैधो बहेहे सुराकन ॥

प्राण सनेही वही द्रुग किंकर, कैधो गुलाब लगे छिरकावन ।

कौसे भई गति सो न परे कल, प्यारे प्रवीण बिना इन आंखन ॥ २० ॥

इस हृदय में प्रेमरूपी फुवारा उछलता रहता है, उससे पलकों में से जल टपकता रहता है, अथवा हृदय में मित्ररूपी नेत्र लगा रक्खा है जिससे मदिरा के कण टपकते रहते हैं या प्राणस्नेही के ये आंखेंरूपी चाकर गुलाबजल छिड़कती रहती हैं । एक प्रिय प्रवीण के बिना इन आंखों की क्या दशा हो रही है उसका कोई पता नहीं लगता ॥ २० ॥

अथ समरूप अलंकार-सवैया.

स्वास कि डोर प्रवीण तनें अरु, आसन नेह लगावत आरे ।

चित्तकी सान फिरान लगी वह, आसिस की फिरवान उजारे ॥

काट कुटील खरेबो करे है, भरेबो करे बिरहा चिनगारे ।

वाहन प्राण वियोगिन के नित, आयुध मार खराद समारे ॥ २१ ॥

स्वास की डोरी प्रवीण ने खींची और आंसूरूपी नेत्र आरा में लगाया, जिससे चित्तरूपी सान फिरने लगी जो इश्क की तलवार को तेज करने लगी जिसमें से कुटिल काट गिरती है और बिरहरूपी चिनगारी भरती है । इस प्रकार उस वियोगी के प्राण हरण करने के लिए कामदेवरूपी सिखण्डी पर हमेशा हथियार सजाता रहता है ॥ २१ ॥

अथ रूपकालंकार-सवैया.

चौक कसीषु तनाय कसे अरु, अच्छत नैन कटाछ उड़ावे ।
 वंदन जावक बिंद करे सतकार कि फूंक से मूठ चलावे ॥
 हारकि संकरसे जु हनें हिय, पायल के दुहु ढाक बजावे ।
 भूत घस्यो बिरहा घट भीतर, भित प्रवीण मिले तो समावे ॥२२॥

पलंग पर फैलाए हुए बिछावने को कस कर बांधे और कटाक्षरूप अच्छत उछाले, सिंदूर बिन्दु का टीका करे, सिसकारा रूप फूल की मूठ मारे और हार की जंजीर से अनेक कणों को बांधे, पैरों के भ्रमभर की भांझ बजावे, इस प्रकार उपचार करने वाला प्रिय मित्र प्रवीण के समान मिले तभी बिरह रूपी भूत, जो मन में घुसा है, निकल सकता है ॥ २२ ॥

अथ समरूपकालंकार-सवैया.

मैन सुनार दुकान रच्यो तन, धीरज सास धुआं उमटे ।
 ज्यों ज्यों लगे बिरहानल ज्वाल त्यों कंचन नेह प्रभा प्रगटे ॥
 शाम तुला रति लाल धरे मधि, नैन कसी सु बड़े न घटे ।
 प्यारे प्रवीण परच्छन हार, बनावत भेद मणी सु जटे ॥ २३ ॥

कामदेवरूपी सुनार ने तनरूपी दुकान की रचना की है, जिसमें से धीरज का धूँवा स्वास के रास्ते से बाहर आता है । ज्यों २ बिरहानल की अग्नि का ताप लगता है त्यों २ स्नेहरूपी सोना की कान्ति शुद्ध दिखाई पड़ती है । दोनों स्तनरूप कांटों में रविरूप लाल चढ़ा कर देखते हैं अथवा आंखों रूपी कसौटी पर कस कर देखते हैं तो न घटता है न बढ़ता है । हे प्यारे प्रवीण ! इस प्रकार वह स्वर्णकार भेद रूप मणियों से जड़ित हार बनाता है ॥ २३ ॥

अथ मिथ्याध्यवसत्यालंकार-सवैया.

एक समय करतार करे यह, उत्तर से इक जोगिनि आवे ।
 दंड करे तृप खंडन के शिर, आय त्रियान की आन फिरावे ॥
 जाय सदा जिय चाहत है हम, पच्छम ताय पटोदे पठावे
 कंठ भुजा धरिके भरि आसव, तादिन आय प्रवीण मिलावे ॥२४॥

एक समय कर्तार ऐसा करे कि उत्तर से एक जोगनी आवे और सारे भूखण्ड के राजाओं के माथे दंड करे; फिर स्त्रियों का धाना बैठा कर स्त्रियों की ही आन फिरा देवे, तब जिसके लिए हमेशा मेरा मन इच्छा करता है, उसे ही पश्चिम ओर का पट्टा देकर भेजे, तो प्रियमित्र प्रवीण ! उसी समय आकर गले में हाथ डाल मदिरा का पात्र भर कर पान करावें ॥ २४ ॥

अथ उत्प्रेक्षांकार—सोरठा.

ज्यों ज्यों स्मृति होय, त्यों त्यों अति विरहा बढ़े ।

मानहु दीप उद्योत, पूरन नेह प्रवीण जू ॥ २५ ॥

हे प्रवीण ! अब तो ज्यों २ तुम्हारी स्मृति होती है त्यों २ विरह वेदना बहुत ही बढ़ती जाती है सो ऐसा प्रतीत होता है मानो नेत्र से परिपूर्ण दीपक का प्रकाश बढ़ रहा हो ॥ २५ ॥

अथ मित्रोक्त समरूपक अलंकार—सवैया.

ज्वाला बनी विरहा वडवानल, आंसुन लैर लगी प्रसरे ।

धीरज बेट डुवावन को, मकरध्वज मीन कलोल करे ॥

नाउ मनोरथ के न चलें मग, नेह कि भौर अरूफ परे ।

प्यारे प्रवीण बिना तन सागर, सागर की समता जु धरे ॥ २६ ॥

विरह की पीड़ा है वह वडवानल अग्नि की ज्वाला बनी है, आंसू रूपी लहरें आ आकर फैलती हैं, धीरजरूपी द्वीप को डुबाने के लिए कामदेव रूपी मगरमच्छ आनन्द कलोल करते हैं । स्नेहरूपी भँवर आजाने से मनोरथ रूपी नाव चलती नहीं है । इस प्रकार एक प्यारी प्रवीण के बिना महाराज रससागर का शरीर समुद्र की समता धारण करता है ॥ २६ ॥

अथ प्रदीपालंकार—गाहा.

रेरे भिषणा मंदो, चंदो किय वदन सरभरियं ।

एयं कला चलायं, दिन दिन कला बहियं अबला ॥ २७ ॥

अरे मन्द बुद्धि वाले कवियो ! चन्द्र को स्त्रीमुख की समता दी है यह सर्वथा

विरुद्ध है, क्योंकि चन्द्र की कला चल होने से प्रतिदिन घटती जाती है और
जीमुख की कला दिन २ बढ़ती है ॥ २७ ॥

ऐसे ही चरचा चलत, दिन बीतत दुहु ठौर ।

पत्र लिखत एकेक प्रति, बढ़यो विरह को दौर ॥ २८ ॥

इस प्रकार चर्चा में दोनों ओर के दिन बीतते हैं और एक दूसरे को इसी
प्रकार पत्र लिखने से विरह का वेग बढ़ता ही जाता है ॥ २८ ॥

गाहा—सागर कलाप्रवीणं व्यापित विरह दशावर्णन विधि ।

त्रयं त्रिंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २९ ॥

रससागर और कलाप्रवीण के विरह—दशा के प्रकार की वर्णन वाली,
प्रवीणसागर की यह तैंतीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २९ ॥



लहर ३४ वीं ।

अथ उपालंभ भेद—दोहा.

पाती प्रेम एकेक प्रति, आवत हैं इहि रीत ।

करत शोच चित में किते, वासर भये व्यतीत ॥ १ ॥

इस प्रकार निरंतर एक दूसरे के स्नेहपत्र आते जाते हैं जिसे पढ़ कर दुखी होते हैं ऐसे कितने ही दिन बीत गए ॥ १ ॥

रैन ब्योस नैनन लगे, है न कछू सुख चैन ।

मैन भरे बिछुरे डुहू, लगे उपालंभ दैन ॥ २ ॥

रात दिन आंखें लगती नहीं, किसी प्रकार आराम नहीं है, क्योंकि काम-पीड़ित दोनों जने बिछुड़े हुए हैं, इससे परमेश्वर को उपालम्भ देने लगे ॥ २ ॥

अथ तत्र प्रथम प्रवीणोक्त उपालंभ भेदकर्ता—उपालंभ.

परिसंख्यालंकार—सवैया.

देह जुदाई करी तो कहा मन, एह जुदो न कबै परिहै ।

नैनन तसबीर जो सागर है जु लखी सु नहीं टरिहै ॥

ध्यान लगो वह बानिन को सोइ, अंगके संग लगो जरिहै ।

क्योंरे गुमान करे करतार, अबे करि कोप कहा करिहै ॥ ३ ॥

शरीर से पृथक् हुए तो क्या हुआ मनतो कभी अलग हो ही नहीं सकता, इन नेत्रों से जो सागर की छवि देखी है उसे कोई हटा नहीं सकता, इस प्रकार का ध्यान जो लगा है सो अंग के साथ लगा हुआ होने से शरीर के साथ ही जलेगा, इसलिए हे करतार ! क्यों गुमान करता है ? अब तो कोप करके और क्या कर लेगा ? ॥ ३ ॥

अथ परिकरांकुरालंकार—कवित्त.

सागर अथाह सो न, चातुरहू विरथो जाय; मरें पार परथो जाय, ता-
छिनहूं मरिये । मरेहू को फेर बिना, पायहू न परथो जाय, गरे लाग गि-

रथो जाय, गिरहूते गरिये । पर विन पंछिहुते, नभहु न चढ़थो जाय,
नभन को जेचो पाय, नभहूते परिये । पति पति जापि जापि, तपि तपि
हारथो तन, करतार टार अंक, फरेहू न करिये ॥ ४ ॥

समुद्र अथाह है, चतुर पुरुष भी उसे तैर नहीं सकता, परन्तु यदि मरने
से यार मिले तो उसी क्षण मरें, मेरु पर्वत का घेरा पैर के बिना दिये नहीं
जा सकता, परन्तु यदि पड़ने से काम हो जाय तो पहाड़ पर से पड़ें, पंख बिना
पक्षी आकाश में नहीं चढ़ सकता, परन्तु यदि उसका अन्त मिले तो आकाश
से पड़े, पति पति का जाप करते २ शरीर थक गया नहीं तो करतार का लिखा
अंक मिटाकर दूसरा क्यों न करें, अथवा हे करतार ! अब तो वह भाग्य की रेख
मिटा दे और फिर कभी ऐसा आंक न करना ॥ ४ ॥

दोहा—हरता करता कहत हैं, सोउ न सोच विचार ।

नैन नीर अजहूँ न मिटें, विरही कहा बिहार ॥ ५ ॥

सब कोई ईश्वर को कर्ता हर्ता कहते हैं परन्तु यह भूल है, क्योंकि यदि
हर्ता है तो हमारे आँखों के बहते हुए आँसू का क्यों हरण नहीं कर सका और
कर्ता है तो हमारे विरह वियोग को हटाकर विहार क्यों नहीं कराता ॥ ५ ॥

अथ विशेषालंकार, इन्द्रोपालंभ—सवैया.

हे मतिमंद पुरन्दर ये अबला पर आज कहा बल बंध्यो ।

ना विरही विरही कबहू विरही जनको सुरसे उर बंध्यो ॥

नाटिग सागर मित अली तब या दिन में सुख ऐसो निबंध्यो ।

कान कमान गही इतने पर चातुक बान कमानहि संध्यो ॥ ६ ॥

हे मन्दमति इन्द्र ! एक अबला पर आज इतना बल क्यों बांधा है ? तू
विरही नहीं तुझे किसी दिन विरह की अग्नि प्रकट हुई प्रतीत नहीं होती,
क्योंकि विरही का प्राण तो इसके साथ ही बँधा है । अली प्रिये ! जबतक हमारे
पास मित्र सागर नहीं है तबतक यह दिन में आया हुआ सुख आधा ही है ।
इतने पर भी कामदेव कमान तान कर पपैया रूपी बाण उस कमान में संधाना
है ॥ ६ ॥

अथ व्याघातालंकार, चंद्रोपालंभ-सवैया.

दधि कोक * सरोजन शोक निधान, मधुकर को मुरभावत है ।
दरदी तन की मन की बतियां, सो उलूक को मित न पावत है ॥
कलु शंक बिना धर कौन धरे, हर कंकन सो शिर आवत है ।
विरही जन की विनती सुनिके, शशि को न कोउ समभावत है ॥ ७ ॥

समुद्र, चकवा और कमल का शोक रूप, अमर को मुरझाने वाले हैं, दरदी के मन की व्यथा को वह उलूक का मित्र जानता ही नहीं, बिना किसी प्रकार की शंका के शिवकंकण (भस्म) के समान (जलाने वाला होकर) साथे पर आता है । ऐसे चन्द्रमा को हमारे विरही की बात सुनकर भी कोई समझाता नहीं है ॥ ७ ॥

अथ पर्यस्तापन्हुति अलंकार-सवैया.

है न सुधा, शशि पुंज हलाहल, बूझहु चक्र पुकार करेगो ।
देखत हीं दुखदायक तूं यह, कंज सबै विधि साख भरेगो ॥
लाजत है न इते पर आवत, साज कला कहा मोहि करेगो ।
सागर मित मिलेगे तबै लग, तेरो रिपू द्रग तैं न टरेगो ॥ ८ ॥

हे चन्द्रमा ! लांग कहते हैं कि तुझ में अमृत है, परन्तु ऐसा नहीं है, तू तो हलाहल विष है, साक्षी चाहिये तो यह चकवा पुकार कर कहेगा । तेरा तो दर्शन ही दुःखदायक है, इसका साथी कमल है, यहां आते तुझे लज्जा नहीं आती ? तू अपनी कला को बढ़ाकर मेरा क्या कर लेगा ? मैं जानती हूं कि जब तक प्रिय मित्र सागर नहीं मिलते तबतक तेरा शत्रु (राह-राह-मार्ग) मेरी आंखों में से नहीं हट सकता है ॥ ८ ॥

अथ शिवाक्षेपालंकार. ब्रह्म उपालंभ-कवित.

करे है अनीत कछु, परे है न ब्रह्म कल, टरे है न चित अंत, करता को

* कोक-का अर्थ गुजराती टीकाकारने हरण किया है, परन्तु शुद्ध अर्थ चकवा है । (यजुवादक)

राज है । जोई जोई आवे मन, सोई सोई लीजे कर, कोई दिन आई संग,
दरदी आवाज है । सागर प्रवीण कोक, शोक की न जानत है कोकनद नंद
तोय, तोक की नवाज है । मान रे अजान तेरो, काल न रहेगो मान, जा-
हिर जहान, आनदान तेरो आज है ॥ ६ ॥

इतनी अनीति होती है, और हे ब्रह्मा ! तुम्हें इसकी खबर नहीं ? चित्त
में जरा भी डरता नहीं, परन्तु यह समझले कि जगत्कर्ता का राज्य है । जो र
मन में आवे सो करले, परन्तु कभी न कभी तेरे ऊपर दरदी की पुकार पड़ेगी ।
सागर और प्रवीण ऐसे जो चर्कई चकवा हैं उनके शोक की पीड़ा को तू जानता
नहीं है, इसलिए हे रक्त कमलनन्दन ब्रह्मा ! तुम्हें थोड़ा समय बखशीश है,
रे अजान ! जरा मान, कल तेरा भी मान नहीं रहेगा, इस प्रसिद्ध जगन् में
आज ही तेरी आन बान है ॥ ६ ॥

दोहा—चतुर न दीखे चतुरमुख, नहीं प्रेम पहिचान ।

सागर मित चकोर शशि, ताय न मिलवे आन ॥ १० ॥

हे चार मुख वाला ब्रह्मा ! तू न तो चतुर ही है ना ही तुम्हें प्रेम की पहिचान
है, यदि तू ऐसा नहीं मानता है तो सागररूप चन्द्र और प्रवीण रूप चकोर
को मिलाता क्यों नहीं ॥ १० ॥

पर्यस्तापन्हुति अलंकार—सवैया.

मूरति है मनकी मन में, लगनी अगनी भ्रूके तपने में ।

माल लिये मुख नाम उचारत; वासर बीतत हैं जपने में ॥

या तन को मिलवोई मिटथो अरु, बातन को मिलवो सपने में ।

ब्रह्म बढ़ो इसकी में अजान वियोग, ले माल लिख्यो अपने में ॥ ११ ॥

मूर्ति तो मन की मन में है और लगन तो शरीर से मरते हुए अग्नि के
ताप में है, हाथ में माला लेकर मुख से नाम का उच्चारण करती रहती हूं इस
तरह जाप करते ही दिन बीतता है । इस तन से मिलना तो मिट ही गया बात
का भी ठिकाना स्वप्न में ही रहा, इससे मालूम होता है कि ब्रह्मा प्रेम का बड़ा

ही अजान है, क्योंकि मन का मालिक सागर ! उसके साथ वियोग ही अपने भाग्य में लिख दिया है ॥ ११ ॥

अथ उल्लासालंकार—सवैया.

खारो कियो है पयोनिधि को पय, कारो कियो पिकसा अनुमानों ।
कंटक डार गुलाब कियो अरु, चातक बार ही मास त्रसानों ॥
पंक को अंक कियो है मयंकभे, आग कियो है चकोर को खानों ।
सागर मित सबै परखा करि, हंसपती हरवाहन जानों ॥ १२ ॥

समुद्र के जल को खारी किया, प्रिय बोलने वाली कोयल को काली की, सुगंधिमय गुलाब के फूलों को कांटों में लगाया, चातक पक्षी को बारहों महानि प्यासा रक्खा, शीतल किरणों से प्रकाश देकर सुखी करने वाले चन्द्रमा में दाग लगाया, चकोर पक्षी को आग खाने वाला बनाया, इससे हे मित्र सागर ! सब प्रकार परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि हंसपति (ब्रह्मा) शिववाहन (बैल) ही रहा ॥ १२ ॥

अथ भ्रमापन्हुति कामदेवोपालंभ—कवित्त.

घटा है न केश वज्र, छटा है न बेसर ये, कुच है न अमृत के, कुंभ धरे भर भर । नैन है न ऐन ये जु, कज्जर कलंक नाहिं, ज्योत है न तन जोत, भूषण न कर कर । भाल है न इन्दु लाल, बिंदु है न ज्वाल नैन, सुरसरीन नैन को नीर बहै भर भर । कानपै चढ़ाई आज, करिहै तिमंग लेश; नैन इंदु चंद ईश, काँपत है थर थर ॥ १३ ॥

यह मेघ की घटना नहीं है ये तो केश हैं, यह कोई वज्र की छटा नहीं, नाक की बेसर है, ये कुच हैं, अमृत भरे रक्खे हुए कुंभ नहीं हैं, ये तो आंखें हैं, मृग नहीं हैं, यह काजल की रेखा है कोई कलंक नहीं है, यह तो तन की कान्ति है कोई तेज नहीं है, ये तो आभूषण हैं किरणें नहीं हैं, यह तो कपाल है, चन्द्रमा नहीं है, यह भाल पर लाल बिन्दु है, आंखों से निकलती अग्नि-ज्वाला नहीं है, यह गंगाजी नहीं बह रही हैं, प्रत्युत आंखों से निकलते हुए आंसुओं

की धारा बह रही है; इसलिए हे मंगलेश ! किस के ऊपर आप चढ़ाई कर रहे हो ? क्योंकि आपके नेत्र से इन्द्र, चन्द्र और शंकर थर-थर कांप रहे हैं ॥ १३ ॥

सोरठा-सरपति सुरपति है न, नाहि मकरपति हीमकर ।

सरब गती सरबैन, चढ्यो कोप कर कौन पै ॥ १४ ॥

हे सरपति ! यह कोई सुरपति इन्द्र नहीं है, हे मकरपति ! यह चन्द्रमा नहीं है, हे सर्व स्थान में गति करने वाले कामदेव ! तब आप किस पर कांप करके चढ़ाई कर रहे हो ॥ १४ ॥

अथ सागरोक्त उपालंभभेदेद्रष्टांतालंकार, कर्ता उपालंभ-सवैया-

ग्रीष्म के गिरि के तरके पर, दाह लगे तन ऐसे दहेगो ।

पावस के घन के बन के सम, अंबक अंब प्रवाह बहेगो ॥

सीत हरे गति जैसी भई तुम, आपकी आप सवैहि सहेगो ।

जो विरही मन की न लहो हरि, कौन पराई पुकार कहेगो ॥ १५ ॥

ग्रीष्म ऋतु के तड़के के ताप से पहाड़ पर जिम प्रकार दाह लगती है इस प्रकार इस शरीर को जलावागे, कभी चातुरमास के वर्षा के जलप्रवाह के समान आंखों में से आंसुओं का प्रवाह बहाओगे; सती सीता के हरण से जिम प्रकार तुम्हारी गति हुई उसी प्रकार हरेक को अपने ऊपर आया हुआ संकट खुद ही सहना होता है, इसलिए हे हरि ! जो विरही की पीड़ा विरही न जाने तो फिर कौन दूसरे की पुकार सुनेगा ॥ १५ ॥

अथ स्मृतिमान अलंकार-सवैया.

कच्छ भये परवेश दधी कर, भूल गये कमला हरि लाई ।

रावन दुष्ट हरी वनिता बन, प्रेमकी पीर नवेउ न पाई ॥

विप्र के संग बहे पुर कंदन, या दिन या दिन आ दिन आई ।

प्यारे प्रवीण प्रवीण पुकारत, क्यों न सुनों अरजी यह साई ॥ १६ ॥

कछवा होकर समुद्र में प्रवेश किया और कमला को ले आए क्या उसे हे हरि ! भूल गए ? दुष्ट रावण बनवास के समय सीता को हर ले गया था

तब भी क्या प्रेम की पीड़ा को नहीं पहचाना ? ब्राह्मण के साथ रातों रात एक दम कुंदनपुर जापहुंचे थे, क्या वह दिन अब हमारे इन दिनों को देख कर, याद नहीं आता ?

हे स्वामिन् ! हम तो रात दिन 'प्रिय प्रवीण, प्रिय प्रवीण' पुकारते रहते हैं तो भी आप हमारी अरजी सुनते नहीं ॥ १६ ॥

अथ शिवाक्षेपालंकार—कवित्त.

चकोरी ज्यों हेरि हेरि, चातुकी ज्यों टेरि टेरि, जुगनू ज्यों थेरि थेरि, दरदी दहत हैं । सूर शशि सागर, समीरसे न पावे सुख, जाके शीत बीतत, सो सबही सहत है । जानी है तो बहुत है, न जाने तो प्रवीण है, उलतें को पानी सो, बरदेन बहत है । राजनीति रीति ऐसे चलेगी अनीति कैसे कोऊ करतार से पुकार न कहत है ॥ १७ ॥

चकोरी की भांति देख २ कर, चातक की भांति टेर २ कर, जुगनू की भांति घर २ कर दरदी जलते रहते हैं । मूर्य्य, चन्द्रमा, समुद्र अथवा पवन से सुख नहीं मिलता । जिस पर दुःख आ पड़ता है वे सब सहते ही हैं, परन्तु भरती वा पानी आखिर ढाल पर ही बहेगा इतना ही समझ लिया तो बहुत है, यदि न समझे तो फिर वह प्रवीण (चतुर) नहीं । ऐसी राजनीति की नीति में यह अनीति कब तक चलेगी ! कोई परमेश्वर से पुकार कर कहता भी नहीं ॥ १७ ॥

अथ शिवाक्षेपालंकार—सवैया.

मित बिना ज्युं तपै तलफै तन, धीमर जाल गहे मनु माले ।

ऐसी दशा न दया तुमको ब्रज, दीनदयाल कहावत आछे ॥

बारहि बार पुकार प्रवीण जु, बार करो न विचार हो पाछे ।

पापनि साप वियोगिन के हरि, हैगो विछोह तुम्हें अरु लाले ॥१८॥

जिस प्रकार मछली मछुवाहे के जाल में पड़ने पर जल बिना तड़फती है उसी प्रकार यह तन मित्र के वियोग में तड़फता है, ऐसी दयनीय दशा होने पर भी तुम्हें दया नहीं आती और ब्रज में दीनदयाल कहलाते हो ! हम तो बार २

‘प्रवीण’ नाम का जाप करते हैं इसलिए देर मत करिये अन्यथा पछताना पड़ेगा, वियोगी के शाप से हे हरि ! आपको लक्ष्मी का वियोग हो जायगा ॥ १८ ॥

अथ ब्रह्म उपालंभ व्याघातालंकार-सवैया.

है न हितू हितकी नहिं मानत, चित्तमें कौन निआवो धर्यो है ।
कैसे जवाब करेगो तहां, करतार के दंड कछू न डर्यो है ॥
कौन गुनो तकसीर कहा, प्रवीण दधी संग बैर कर्यो है ।
छांड मरोर अजो चतुरानन, तेरो पिता इत पाय पर्यो है ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मा ! तू हितू नहीं है, तभी तो हित की बात नहीं मानता, जाने चित्त में कौनसा नाम धारण किए हुए है ? कर्तार (परमेश्वर) के दंड से भी नहीं डरता है तो वहां क्या उत्तर देगा ? क्या अपराध है और कौनसा दोष है जो प्रवीण के साथ सागर बैर कर रक्खा है ? हे चतुरानन ! तू मरोड़ (ँठ) छोड़ दे, तेरा पिता तो यहां आकर पांव पड़ता है (ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से है और कमल की उपमा प्रवीण के पांव से है) ॥ १९ ॥

व्याघातालंकार-सवैया.

जाय मिली है सुता परवीण से, आत वहां बसि ध्यान धर्यो है ।
तातको तात रहे नित नैनन, तात के आत मिलाप कर्यो है ॥
तातके आतके भित कितें तहँ, तात रहे नित पाय गर्यो है ।
रे विधि नीच कपूत कुलच्छन ! मंदमती तिन से भगर्यो है ॥ २० ॥

हे ब्रह्मा ! तेरी पुत्री सरस्वती तो प्रवीण से मिली हुई है, तेरा भाई (कमल से उत्पन्न मोती) तो प्रवीण के कानों की बालियों में रहता है, तेरे पिता (कमल) का पिता (जल) सदा उसकी आँखों में रहता है, तेरे पिता भाई (कमल का पिता जल और जल से यानी समुद्र से चन्द्रमा की भी उत्पत्ति है) चन्द्रमा ने प्रवीण के मुखमंडल से मिलाप कर रक्खा है । तेरे पिता (कमल) के भाई (चन्द्रमा) के मित्र (तारागण) उसके पास पोड़ते हैं, तेरा पिता (कमल) सदा उसके पांव में रहता है; फिर भी हे कुलच्छन ! कपूत ! तू उसी प्रवीण से भगाड़ा करता है ॥ २० ॥

असंगत्यालंकार-सवैया.

हाजर जादू निहारत नैन या, प्रेम की स्याही परी हिय आती ।
साहं सनेह सुं तख्त सिंहासन, ढारत पंग वजीर बिछाती ॥
दौरत दोउ कुजाक दशो दिस, चोर न पाज चहुमुख घाती ।
देखत ही द्रग आय गयो सब, या कर मित प्रवीण की पाती ॥ २१ ॥

हजरतपुरी में आँखें जादू की क्रिया से भाग्य लिखने वाले चोर को देखती हैं; वहां प्रेम की स्याही हृदय में आ लगी, विना पग का (अपंग) मनरूपी वजीर वहां बिछावत कराता है तब स्नेहरूपी बादशाह सिंहासन पर आ बैठा, और संकल्प विकल्परूपी दो सिपाही चोर को पकड़ने के लिए चारों तरफ दौड़ने लगे, परन्तु चारमुख वाले घातकी ब्रह्मारूपी चोर को पकड़ नहीं पाया इतने में मित्र प्रवीण का पत्र हाथ में आया जिसे देखते ही सब दृष्टि में आगया ॥ २१ ॥

संभावनालंकार-सवैया.

पन्नाग पाओ तबै सब पौन, पुकारत ही पतियां नहिं लावे ।
वीरन बांध गड़ो धरनी, हनुमंत प्रवीण अजों न मिलावे ॥
अंत कृपान कटो विधिके कर, फेर न काहु वियोग बनावे ।
चाहे सो तू कर सागर रे, करतार जु एक दिना फुरमावे ॥ २२ ॥

हे पन्नाग (सर्प) ! पुकारते ही पत्र नहीं ले आते हैं इसलिए सब पवन को खाजाओ । हे हनुमानजी ! क्योंकि ये वीर लोग अभीतक प्रवीण से नहीं मिलाते हैं इसलिए सब वीरों को बांध कर धरती पर डालदो; हे अंतक (यम-राज) ! ब्रह्मा के हाथों को तलवार से काट दो कि फिर वह किसी के भाग्य में वियोग दुःख न लिखे । इस प्रकार सागर अपने मन में कहता है कि यदि परमेश्वर मुझे एक दिन के लिए कहदे कि तेरी जो इच्छा हो कर तो मैं सबको दंड देने में कमी न रखूँ ॥ २२ ॥

अथ कलम-उपालंभ अनुपलब्धि संकरपरिकरांकुरालंकार-सवैया.

देखनको द्रग बाउरे डोलत, प्रेम के पान भये मतवारे ।
याहि छबी सु कबी न भइ है, प्रवीण प्रवीण प्रवीण पुकारे ॥

फेर विचार कियो हियमें तब, तेरि नहीं तकसीर चितारे ।

या कलमें चलमें न रिझाय है, आद उने अरु वैर हमारे ॥ २३ ॥

प्रेमरूपी मदिरा को पान करके मतवाली हुई आँखें पागल होकर प्रवीण के चित्त को देखने को डोलती हैं और यह छवि तो पूरी बनी नहीं इसलिए बाणी से 'हे प्रवीण हे प्रवीण' पुकारती हैं; मन में फिर विचार किया तो ज्ञात हुआ कि हे चित्रकार ! इसमें तेरा दोष नहीं है, ये कलमें मुझे रिझा नहीं सकती हैं क्योंकि मेरा उनका आदि से वैर है । (कलम शब्द मुमलमानी है और मैं हिन्दू हूँ इसलिए मेल नहीं है) ॥ २३ ॥

अथ अट्टोपालंभ जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

पत्र प्रवीण की साध मरे पल, आध हिये न अराध बिसारे ।

मीन मनो जल छीन जिये उत, दीन की कौन पुकार विचारे ॥

संग सदा बसिये हंसिये मिलि, ऐसे अट्ट करै न दगारे ।

आस्य उसास भरी अखियां द्रग, फेर कहूं इक बेर निहारे ॥ २४ ॥

आँख की पलकें प्रवीण के साथ पत्रव्यवहार को साध साध कर मर गईं, परन्तु आधा पल भी हृदय में से उसकी आराधना जाती नहीं, जल से अलग मछली की जो दशा होती है उसी प्रकार हमारा जीवन है, परन्तु दीन की पुकार को कौन ध्यान दे ? कोई नहीं । दगाखोर अट्ट ऐसा करता नहीं कि सदा संग रहें और मिलकर हँस बोले, अंदर से उसास भरा निश्वास डालते हैं और आँखें जल से भरते रहते हैं और इच्छा रखते हैं कि इन नेत्रों से फिर एकबार कब मृगलोचनी को देखें ? ॥ २४ ॥

अथ संशयाक्षेपालंकार-सवैया.

अंग उमंग तरंग न भो अरु, रंग न भो परजंकन को ।

वैनन को रस रैन न भो अरु, चैन न भो कर कंकन को ॥

जावक मांगन दाग न भो ज्युं, सुहाय न भो हरि लंकन को ।

मित प्रवीण मिलाप न भो यह, बंक सबै विधि अंकन को ॥ २५ ॥

अंग में उमंग की तरंग आई नहीं, छत्र पलंग का भी रंग हुआ नहीं; रात्रि में बात चीत का आनंद मिला नहीं, उसके कोमल करके कंकण के चिह्न शरीर में पड़े नहीं, पांव में लगे महावर अथवा आंख के काजल का दाग लगा नहीं, केहरि के समान क्षीण काढे वाली प्रवीण का सौभाग्य रूप हुआ नहीं और मित्र प्रवीण से मिलाप नहीं, यह सब विधाता के उल्टी विधान का ही परिणाम है ॥ २५ ॥

अथ कर्त्ता-उपालंभ एकावलि अलंकार-सवैया.

कररे उनके गुनकी गुननी जिय, ध्यान हमेश वहे धर रे ।

धररे उन मूरति आंखनमें, अबही तो सुख बीसर रे ॥ *

सररे उन आयस राख चढ़ाय ज्यु, ऐसि करी है विशंभर रे ।

भररे अति सास उदास भयो हिय, याद प्रवीण प्रभा कर रे ॥ २६ ॥

रे जीव ! उनके गुणों की माला कर और मेरे जीर्वनडोर-रूपी प्राण का निरंतर ध्यान धर ! फिर उनकी मूर्ति को आंखों में धारण कर, अभी तो मिलाप का सुख भूलगया । परमेश्वर की आज्ञा को मस्तक पर चढ़ा कि उस विश्वम्भर ने ऐसा ही किया है । उदास मन से लम्बी २ सांस लेता लेता रट और प्रवीण की याद किया कर ॥ २६ ॥

अथ चंद्र उपालंभ गूढोक्ति श्लेष अंतर्लापिका-दोहा.

समजा हिन राकु मयनर, यह न लहत्त अजान ।

संकर शंकर अंक पर, कर मयंक कर वान ॥ २७ ॥

समझे बिना (मयन) कामदेव के (२) वेग को (राकु) रास्ता को अजान 'चन्द्र' नहीं जानता, परन्तु विद्वान् जानते हैं, जैसे कि (संकर) मिश्रित के साथ में रहे हुए (शंकर) ग्यारह अक्षरों (सो पहिले चरण में कहे हैं) में से एक ले लो और एक छोड़दो ऐसे 'सुजानकुंवर' और 'महिरामन' ऐसे ग्यारह अक्षर निकलते हैं, उन अंक कहते अक्षर पर पानी 'सुजानकुंवर'

* यहाँ छंद भंग होता है कोई शब्द छूट गया प्रतीत होता है । 'अबही तो गये सुख बीसररे' पाठ हो सक्ता है ।

और 'महिरामन' पर चन्द्रमा की किरणें बाण के समान पड़ती हैं यानी बिरही जनो को पीड़ा देती हैं ।

दूसरा अर्थ—प्रेम का (रा) रास्ता जाने बिना (कु) खराब मनुष्य अज्ञान रहता है अर्थात् नहीं जानता कि (शं) सुख (कर) करने वाले 'सुखकर' (इस विशेषण वाले मित्र) के ऊपर कर्म के आंक कुर्बान हैं, अर्थात् मित्र के लिए भाग्य में लिखे हुए दुःख भोगना स्वीकार है ॥ २७ ॥

अथ पयायोक्ति प्रथम भेद अलंकार—छप्पय.

सागर कलाप्रवीण, मित अरु कुसुमावलि पुनि ।

उपालंभ के भेद लगो, इहि विधि चरचा धुनि ॥

वह लिखि पठवत पत्र, एक एकहि प्रति आवैं ।

लग्या सु हित संधान, और कछु नाहि सुहावैं ॥

सुख साज काज भूले सकल, मित मित साधन लगे ।

ज्यों ज्यों व्यतीत होवत अहर, ज्योति प्रेम त्यों त्यों जगे ॥ २८ ॥

सागर और कलाप्रवीण, मित्र और कुसुमावलि के मध्य ईश्वरादिक को उपालंभ आदि देने का क्रम चलता रहता है, और एक दूसरे को पत्र लिख भेजते हैं इस प्रकार एक दूसरे के प्रेम का लगन लगा हुआ है, इसके अतिरिक्त और कुछ सुहाता ही नहीं । सुख के सब साज भूल गए हैं, और 'मित्र मित्र' बस यही रटन है । इस तरह जैसे २ दिन बीतते हैं त्यों २: प्रेम की ज्योति जगती है ॥ २८ ॥

गाहा—उपालंभ अनुमान, मितह चित्त उक्ति की चरचा ।

चतुरत्रिंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २९ ॥

उपालंभ देने का अनुमान और मित्र के चित्त की उक्ति की चर्चा सम्बन्धी प्रवीणसागर की यह चौतीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २९ ॥

लहर ३५ वीं

अथ शिवालय प्रसंग-दोहा.

दिनभर दिन आई दशा, तन छिनभर सुख नाहि ।

मिलन भित कैसे बने, कीजे सोय उपाहि ॥ १ ॥

सारे दिन शोचनीय दशा में निकलने लगे और शरीर में क्षणमात्र भी सुख नहीं अतएव हे मित्र ! अपना मिलना किस प्रकार होगा सो कृपा कर कहिए कि वैसा उपाय किया जाय ॥ १ ॥

सोरठा-सागर भरे सनेह, ऐसे लिखी प्रवीण प्रति ।

उन प्रति उत्तर एह, आयो सो बहनन अबे ॥ २ ॥

इस प्रकार महाराज रससागर ने भरपूर स्नेहयुक्त पत्र प्रवीण को लिखा । उसका उत्तर प्रवीण की ओर से जो आया वह अब वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

अथ प्रत्युत्तर-दोहा.

करे पुंस उपाउ को, अबला निबछा अंग ।

कहो बात पूरव कथा, कौवा कनक भुजंग ॥ ३ ॥

प्रवीण उत्तर में कहती है:-पुरुष कोई उपाय कर सकता है परन्तु स्त्री तो अबला-अंग से निर्बल है, क्या कर सकती है । फिर कौवा, धतूरा और सर्प सम्बन्धी पुरानी दंतकथा कही ।

पूर्व समय में एक विरहिणी जब पतिवियोग से दुःखित होती तो कौवा का चित्र खींचती और मन में सन्तोष करती कि यह कौवा संदेश ले आया है कि स्वामी घर आने वाले हैं; जब कोयल की कूक से उसके मन में हूक उठती तो धतूरा के फूल का चित्र बनाती कि इसे देखकर आम पर बैठी हुई कोयल नष्ट हो जायगी और मेरा दुःख दूर हो जायगा । जब विविध समीर चल कर उसे दुखी करती तो वह सांप का चित्र बनाती कि वह सांप पवन का भक्षण कर लेगा और मेरी पीड़ा का हरण हो जायगा । विचारी अबला इतना उपाय कर सकती है इससे अधिक क्या कर सकती है ? अथवा—

नव विरहिणी को कोयल आकर सताती तब वह कोयल को डराने के लिए कौवा का चित्र बनाती कि इससे डर कर कोयल भग जायगी, क्योंकि कौवा कोयल को मारता है । काम के भय से भयभीत वह कनक अर्थात् धतूरे के पुष्प का चित्र बनाती और सोचती कि इसे लेजा कर शंकर पर चढ़ाऊंगी और शंकर के भय से काम भग जायगा । पवन के भय से सर्प का चित्र काढ़ती कि यह सर्प पवन को भुल लेगा फिर पवन मुझे स्पर्श करके सता नहीं सकेगी । इत्यादि उपाय ही घर में बैठे २ स्त्रियां कर सकती हैं; परन्तु प्रियतम से मिलने का उपाय उनसे बन नहीं सकता, यह तो पुरुष ही कर सकता है ॥ ३ ॥

चौपाई.

यह जवाब को अरथ विचार्यो; मिलन भेद महाराज सुधार्यो ।
 आपहि की हृदपर इक गाऊ, नैनतरंग तासको नाऊ ॥
 तहं पहार परचंड विराजें, गहिरी नीठ सरिता धुनि गाजें ।
 सरबर सुगम बेल बन धेरे, नीतिपालहू की हृद नेरे ॥
 ये पशु पंछी वृन्द रहावें, प्रभा शिखर हर पुरकी पावें ।
 रससागर मन मतो द्रढ़ावो, फौज सिकार चढ़न फुरमावो ॥
 सहस्र विंश हय गय पैदल सजि, कियो कूच बहुविधि बाजित्र बजि ।
 मंद चलत दिन किते बिहाये, आखेटक खेलत उत आये ॥
 सर गिरि सरित सुभग दरसाये, उनही ठौर मुकाम जमाये ।
 शिल्पि सुतार उतें बुलवाये, हुकुम एह महाराज कढ़ाये ॥
 इतैं एक शिवथान बनाओ, गुप्त एक इत गुफा चलाओ ।
 निकट तहां इक बाग बनावें, उतसे गुफा इतैं चलि आवें ॥
 तापर महल बाग महि कीजै, पुनि ईनाम आपको लीजै ।
 प्रच्छन्न यह महाराजसु भाखी, कारीगर अपने मन राखी ॥
 हुकुम एक मंत्री प्रति दीनो, काम शिवालय को सुरु कीनो ॥ ४ ॥

इस उत्तर का अर्थ विचार कर यह निश्चय किया कि चाहे जिस प्रकार हो प्रवीण से मिलना है । फिर उनके राज्य की सीमा पर 'नैनतरंग' नामक गांव

था, जहां एक बड़ा विशाल पर्वत था जिसके समीप ही एक सुन्दर जल से भरी हुई गंभीर नदी कल-कल करती हुई बहती थी तथा वहां मनोहर तालाब बने हुए थे और अनेक प्रकार कि लताओं से वह वन आच्छादित था, वहां से राजा नीतिपाल की सरहद भी समीप थी, उस पहाड़ पर अनेक पशु पक्षी सुख से रहते थे, और इस प्रकार वह पर्वत हरपुर यानी कैलाश की शोभा धारण किए हुए था, महाराज रससागर वहां जाने का मन में निश्चय किया और आपने अपनी फौज को शिकार की चढ़ाई करने का हुक्म दिया ।

तब बसि हज्जार घोड़े, हाथी और पैदल लश्कर सज कर चला । उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, फिर मन्द २ गति से चलते हुए मार्ग में कई दिन बीत गये । इस प्रकार शिकार खेलते हुए वहां आपहुंचे । वहां सरोवर, नदी, पहाड़ और जंगल का दृश्य देख कर वहीं डेरा तम्बू तान मुकाम किया ।

फिर शिल्पी और सुतार बगैरह को बुला कर हुक्म दिया कि यहां एक शिवजी का मंदिर बनाओ और वहां से एक गुप्त सुरंग खोदो और उसके पास ही एक बाग लगाओ, और वह शिवमंदिर से चली हुई गुप्त सुरंग खोदो, उसके पास ही एक महल बनाओ, और वह शिवमंदिर से चली हुई गुप्त सुरंग इस बाग में ले आओ, उसके द्वार पर एक महल बनाओ जिससे कि महल से शिवमंदिर और शिवमंदिर से महल में आ, जा सकें । इस प्रकार सब काम तैयार करो और मुंहमांगा ईनाम लो । यह गुप्त बात महाराज ने कारीगरों से कही और कारीगरों ने अपने मन में ही रक्खी । फिर देख रेख के लिए एक मंत्री को हुक्म दिया कि तुम यहां रह कर काम की देख रेख रक्खो । इस प्रकार शिव-मंदिर का काम चलता हुआ ॥ ४ ॥

छप्पय—पुर उन कि परवेश, उतें महाराज विलंबिय ।

बासर किते बहंत, ईश थानक पूरन किय ॥

निकट बाग बन गिरद बीच महलात बनाई ।

ईश थानते गुफा, आनि उनमें उमड़ाई ॥

कीनी दिवाल उपवन गिरद, कोट गिरद माहेश की ।

विग्रह बुलाय सायत सु लखि, अहर किय अभिषेक की ॥५॥

फिर महाराज पास के ही नगर में प्रवेश किया और वहीं रुके । इस प्रकार कितनेक दिन बीतने पर शिवमंदिर का काम पूरा हुआ और पास ही वृक्ष बेलों के घेर से युक्त वह बाग भी तैयार होगया जिसमें एक सुन्दर महल बना और शिवालय से चली हुई गुप्त सुरंग भी उसमें ला निकाली गई । बाग के चारों ओर चारदीवारी बन गई । महादेव के मंदिर के लिए भी परकोटा बना । इस प्रकार रूप रचना पूर्ण हो जाने पर ब्राह्मणों को बुला कर उत्तम मुहूर्त में प्रतिष्ठा का अभिषेक कराया ॥ ५ ॥

अथ छंद मुक्तदाम.

बड़े मुनि पांडित वेद विचार, कियो अभिषेकहु को निरधार ।

अंते—उर आप बुलाइये तत्र, लिखे प्रति देशन देशन पत्र ॥

किते दुज तापस के छितिराज, बुलाइय शंकर थान समाज ।

वहें कवि भारतिनंद बुलाय, दई उनको यह बात सुनाय ॥

पठावन नीतहिपाल नरेश, सिधारिये आप सु गुज्जर देश ।

दई उन पात पती परबीन, लखी उपचार हमें यह कीन ॥

अंते—उर पत्र दियो सु लिखाय, मतो मिलिये इत आपहि आय ।

उभय गज संग उभय शत बाज, किये महाराज बिदा कविराज ॥६॥

वहां बड़े मुनिवर और पंडितों ने वेदादि का विचार कर अभिषेक का निश्चय किया । महाराज ने राजधानी से रनवास को बुला लिया और दशों दिशा में पत्र लिख कर कितने ही ब्राह्मणों, तपस्वियों और राजाओं को विनतीपूर्वक बुलाया । इस प्रकार शिवजी के उत्सव निमित्त उत्सव किया । भारतीनन्द कवि को बुला कर कहा कि आप राजा नीतिपाल को लेने के लिए गुर्जर देश में जाओ । ऐसा कह कर प्रवीण के नाम का लिखा हुआ पत्र कवि के हाथ में दिया जिसमें वे सब बातें लिख दीं कि मिलने के लिए यह उपाय रचा है इसलिए अवश्य आना । फिर एक पत्र अपने रनवास से महाराज नीतिपाल के रनवास को लिखा

कर दिया कि हमें आपसे मिलने की बड़ी उत्कण्ठा है इसलिए अवश्य आवें ।
इस तरह महाराज ने कविराज को दो हाथी और दोसौ घोड़ों के साथ बिदा किया ॥ ६ ॥

दोहा—भारतीनन्द सुगमन किय, आये मनछित थान ।

मिले यथा मरजादवत, नीतिपाल राजान ॥ ७ ॥

कवि भारतीनन्द इस प्रकार वहां से चल कर मंझापुरी में आए और
मर्यादापूर्वक महाराज नीतिपाल से मिले ॥ ७ ॥

छप्पय—दियो पत्र महाराज, कह्यो सागर मुखभाषित ।

करी अरज कविराज, नीतिपाल नरेश प्रति ॥

कुमर शिवालय कियो, तास अभिशेक विचारें ।

मेहर करें महाराज, आप उतको जु पधारें ॥

उनके जनान आए उतें, उन लिख पाती यह कही ।

आप जनान कीजे हुकुम, मिलवे चाहत हैं वहीं ॥ ८ ॥

रससागर का पत्र भूपाल श्री नीतिपाल की भेट किया और जबानी भी सब समाचार कहा । फिर कविराज भारतीनन्द ने वन्दनापूर्वक महाराज नीतिपाल से निवेदन किया कि महाराज रससागर ने एक शिवालय बनवाया है और उसमें शिवजी की प्रतिष्ठा का अभिषेक करने का निश्चय किया है अतएव आपकी बड़ी कृपा होगी कि आप वहां पधारें ।

वहां कुमार श्री की अन्तःपुर की राणियां भी विराजती हैं और यह पत्र लिख कर कहलवाया है कि हमें महाराज श्री की महाराणियों से मिलने की बड़ी अभिलाषा है अतएव आप रनवास को भी आज्ञा दीजिए कि तैयार हो जाव ॥ ८ ॥

दोहा—सुकवि अरज महाराज सुनि, धारथो मतो पयान ।

आमायत आयस दई, साजन लगे समान ॥ ९ ॥

कविराज की यह विनती सुन कर महाराज ने वहां जाने का निश्चय किया और कारभारी को तय्यारी की आज्ञा दी तदनुसार सब तैयारी होने लगी ॥ ९ ॥

पाती सुकवि प्रवीणकी, दई कुसुम के पान ।

समाचार इनमें सही, कही बुलावन बान ॥ १० ॥

फिर उस चतुर कवि ने कलाप्रवीण के नाम के पत्र को कुसुमवलि के हाथ में देकर कहा कि सब समाचार तो इस पत्र में लिखा हुआ है, परन्तु विशेष रीति से यह कहा है कि वहां अवश्य पधारें ॥ १० ॥

सोरठा.

सजे राज सामान, असवारी छोटी उतें ।

आयस दीन जनान, कुमरो कलाप्रवीण जुत ॥ ११ ॥

जाने के लिए महाराज ने छोटीसी सवारी की तैयारी की तथा अन्तःपुर में कलाप्रवीण सहित सब रनवास को शिव-मंदिर चलने की तैयारी की आज्ञा दी ॥ ११ ॥

उतरे मधि आराम, सायत दुज शोधी सुभग ।

चले मुकाम मुकाम, सरंजाम संख्या सु यह ॥ १२ ॥

फिर ब्राह्मणों से शुभ मुहूर्त निकलवा कर प्रस्थान किया और बगीचा में आकर मुकाम किया । वहां से सब सामान सहित आगे बर्णन किए हुए सेना के साथ मुकाम २ कूंच किया ॥ १२ ॥

अथ छंद हनुफाल.

हय दल बतीस हजार, पयदल न पावे पार । गज संग साठ पचास,
मनु घटा भादों मास । शत एक आतशि संग, सज जोध सन्नाह अंग ।
अधसांत शत निशान, महाराज सहज पयान । उमराउ आप जनान,
रथ एक शत अनुमान । सहचरी दोय हजार, पट सहस संग बजार ।
सुखपाल गुन शत लीन, नीतिपाल चल्लन कीन । करि कोस कोस मुकाम,
आय सु शंकर धाम ॥ १३ ॥

सवारी में बत्तीस हजार घुड़सवार, बेशुमार पैदल और पचास साठ हाथी हैं, उनकी चढ़ाई ऐसी दीखती है मानो सावन भादों की घटा चढ़ रही हो ।

एकसौ तेज स्वभाव वाले और अंग पर वस्त्र धारण किए हुए योद्धाओं के साथ साढ़े तीनसौ निशान वाले साथ लिए हुए महाराज सहज गमन कर रहे हैं । साथ में अमीर, उमराव और मंत्रीगण तथा उनके अन्तःपुर के सब मिला कर लगभग एकसौ रथ हैं । दो हजार दासियां, छः हजार सर सामान बेचने वाले व्यापारियों की दुकानें और तीनसौ सुखपाल, इतना साज सामान साथ ले महाराज नीतिपाल ने गमन किया । कोस २ पर मुकाम करते हुए कई दिन बाद शंकर के मंदिर पर आ पहुंचे ॥ १३ ॥

छप्पथ-रससागर सुनि खबरि, आप साहें चढ़ि आए ।

मिले उभय महाराज, अवहमोचन करवाए ॥

खान पान सामान, जनह जन प्रति पहुँचायो ।

अंते-उर मनुहार, अंते-उरसे पठवायो ॥

दश बीश नृपति ऐसे मिले, सब मनुहार सुपावहीं ।

कीन्हें मुकाम गिरदी किते, शंकर बीच सुहावहीं ॥ १४ ॥

राजा नीतिपाल के आने का समाचार सुन कर कुमार रससागर उनका मान देने के लिए आगे गए । दोनों राजा बड़े प्रेम से एक दूसरे से मिले, फिर डेरा देकर खाने पीने का सब सामान नौकरों के द्वारा भिजवाया । इसी प्रकार राजा नीतिपाल के रनिवास की मनुहार के लिए अपने जनाने से सब सामान पहुंचवाया । इस प्रकार दस बीस राजाओं ने कुमार श्री के निमंत्रण को स्वीकार कर यहां आ पहुंचे और उन सब का उचित सत्कार हुआ । आस पास इधर आए हुए राजाओं के बीच में शंकर का मंदिर अति शोभायमान हो रहा था ॥ १४ ॥

छंद पद्धरी.

दश दिशा होत है राग रंग, बाजे रबाब बीना भ्रदंग । नायका नृत्य गति ठौर ठौर, मानहु इंद्र आरंभ और । चहुं ओर व्योम छाई सु ढल्ल, मानहु विमान ध्वजकी नकल्ल । तूरी नफेरि नीशान नह, मानहु मेघमाला शब्द । घन घटा छए गज राजबृंद, बीजरी भालमें लाल

बिंद । जरकसी जेब लगगे निशान, सुरराज चाप रेखा समान । हिंसार-
बाज ठामहू ठाम, शिवधाम बीच गिरदी मुकाम ॥ १५ ॥

दशों दिशाओं में राग रंग हो रहा है । वीणा और मृदंग चारों ओर बज रहे हैं, स्थान २ पर नायिकाएं नृत्य कर रही हैं मानो इन्द्र दूसरा उत्सव कर रहा हो । इस प्रकार चारों ओर गान, तान, मनोरंजन हो रहा है ।

चारों ओर चमकती हुई ढालों से आकाश ऐसा छागया है मानो आकाश में देवताओं के विमानों की ध्वजाएं छा रही हों । तुरही, नफीरी तथा ढोलों की गड़गड़ाहट मानो मेघगर्जना हो रही है । हाथियों के समूह मानो बादलों की घटा हों ऐसे शोभित हैं, उनके मस्तक पर लगे हुए सिंदूर ऐसे चमक रहे हैं मानो बिजली चमक रही हो । दरबार में जो जरी का निशान लगा है वह मानो इन्द्र धनुष की रेखा है । स्थान २ पर घोड़े हिनहिना रहे हैं । इस तरह शिव-धाम के बीच में पड़ाव पड़ा हुआ है ॥ १५ ॥

दोहा—याही तरे मुकाम छवि, निरखत नजर जु आय ।

सो रससागर प्रति मुकवि, वरखन कियो बनाय ॥ १६ ॥

इस तरह आम पास पड़े हुए डेरों की शोभा देख कर कवि भारतीनन्द ने कविता करके महाराज रससागर को सुनाई ॥ १६ ॥

अथ छंद शंखनारी.

कहूं मल्ल खेलें, कहूं दंड पेलें, कहूं व्रत धार सद्धें, कहूं गोर बाला । रचं
इंद्रजाला, कहूं पात्र नंचे, सुमा वृत्त खंचे, कहूं नाद बज्जे । कलावंत सज्जे,
कहूं नाग हेरे, कहूं बाज फेरें, कहूं चौक बांधे । कला शस्त्र साधे, कहूं
देव सेवा, भनं वेद भेवा, कहूं राज धानं । सभा शोभमानं, कहूं बान
नंखे, कवीदेश भंखे, कहूं कीर लावें । सु सारों पठावें, कहूं दान मानं.
धरें जोग ध्यानं धुनी ताल तीरं, भई भार भीरं ॥ १७ ॥

कवि कहता है कि “कहीं मल्ल लोग कुश्ती कर रहे हैं, कहीं पहलवान लोग कसरत कर रहे हैं, कहीं डोर बांध कर नट अपनी कला दिखा रहे हैं, कहीं छोटे २ बालक ऐन्द्रजालिक खेल करके लोगों को चकित कर रहे हैं । कहीं

नायिकाएं नृत्य कर रही हैं, कहीं अनेक प्रकार का स्वर अलापा जा रहा है। कहीं अनेक बाजे बज रहे हैं। कहीं गवैये गान कर रहे हैं। कहीं हाथी को देखने के लिए मनुष्यों की टोलियां खड़ी हैं। कहीं शौकीन घोड़े फेर रहे हैं। कहीं चौक बना कर शस्त्रचतुर शस्त्रकला दिखा रहे हैं। कहीं देवपूजा हो रही है। कहीं पदक्रम से वेदपाठ हो रहा है। कहीं राजवंशी लोग सुन्दर सभा बना कर बैठे हैं। कहीं वारणों की स्पर्द्धा हो रही है। कोई ताते पड़ा रहा है। कोई मैना पढ़ाता है। कहीं दान दिया जा रहा है। कहीं योगी ध्यान लगा कर बैठे हैं। इस प्रकार तालाब के किनारे पर मनुष्यों का ठट्टा लग रहा है ॥ १७ ॥

दोहा-ठौर ठौर प्रति देखियत, इहि विधि लगो उछाह ।

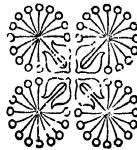
भार भीर दिश दिश भई, राह राह प्रतिराह ॥ १८ ॥

स्थान २ पर जहां देखिए वहां उपरोक्त प्रकार से उत्साह हो रहा है, चारों ओर रास्ते २ पर मनुष्यों की भारी भीड़ हो रही है ॥ १८ ॥

गाहा-सागर किय शिवधाम, नीतिपाल आवन उछाह विधि ।

पंचत्रिंश अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १९ ॥

सागर द्वारा किए शिवमंदिर की प्रतिष्ठा महाराज नीतिपाल के आगमन सम्बन्धी वर्णन वाली यह प्रवीणसागर ग्रन्थ की पैंतीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ १९ ॥



लहर ३६ वीं

अथ कवि कुसुमावलि चर्चा प्रसंग-छप्पय.

राज हुकुम कविराज, मनंछापुरी पठाये ।

जुत जनान नितिपाल, बोली शिव थानक लाये ॥

बहत राह उत रहत, कुसुम सु कबी चरचा किय ।

सागर कलाप्रवीण, चित उनकी आशय लिय ॥

निश घोस रहनहारे निकट, सोय दशा जानत सबै ।

उन बानि भेद संछेप विधि, उदाहरण बरनत अबै ॥ १ ॥

राजा ने हुक्म देकर कविराज को मंछापुरी भेजा था, वे वहां निवेदन करके नृपशिरोमणि महाराज नीतिपाल को रनिवास सहित शिवस्थान को लिवा लाए । मार्ग में आते समय तथा वहां मंछापुरी में, समय २ पर सागर तथा कलाप्रवीण के चिन्तन का अनुसरण करके कुसुमावलि व कवि के बीच में चर्चा चली, क्योंकि रात दिन पास रहने वाले ही हृदय की गति जानते हैं । इससे उन के वाणी के भेद का संछेप से उदाहरण देते हुए वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अथ तत्र कविवर्णन उक्त चरचा वर्णन—दोहा.

बार बार कहि कहि जपत, विन परवीण विहाल ।

प्रेम-जोत हियमें जगी, लगी सुरत कब काल ॥ २ ॥

बार २ यह कह कर जप करते हैं कि 'विन परवीण विहाल' और इसी प्रकार तन मन बिह्वल होकर यह स्मरण करते रहते हैं कि 'हा दैव ! हे प्रवीण !' हृदय में जो प्रेम की ज्योति जगी हुई है उससे निरन्तर एक ही ध्यान लगा रहता है ॥ २ ॥

बरन चंप चख मीन मृग, रब वीना नव बाल ।

विरहा जल बह रटत दधि, विन परवीण विहाल ॥ ३ ॥

चंपावर्णी जिसका रंग है, मछली और मृग के समान जिसकी चपल आँखें हैं, बीणा के समान जिसका स्वर है, ऐसी नव-यौवना बाला जो प्रवीण उसके विरहरूपी जल में बहते हुए और एक ही रट 'बिन परवीन विहाल' लगाते हुए उसासैं लेते रहते हैं ॥ ३ ॥

स्मृतिमान अलंकार — सवैया.

एत्र पती सविता अभिधान सु, छंद उचारनसों तुछकारें ।
देव प्रभा छिनदा न परे कल, आशुग सनु जटी उर धारें ॥
नैनन नैन मिले हैं तबी से, प्रवीण प्रवीण प्रवीण विसारें ।
नेहिके जाय भरोखनसे इतनी, लिखके अरजी कोई डारें ॥४॥

मृग के स्वामी चन्द्रमा उसके पिता समुद्र अर्थात् सागर जिसका नाम है वे छन्द के उच्चारण करने वाले अर्थात् ब्रह्मा को धिक्कारते रहते हैं । और दिन रात जरा भी कल नहीं पड़ती, हमेशा वायुपुत्र हनुमानजी और शंकर का ध्यान करते रहते हैं । वह इसलिए कि कामदेव जो पीड़ा करता है वह हृदय में शंकर को देखकर भग जाय और जिस तरह रामचन्द्रजी के वियोग दुःख का निवारण हनुमानजी ने किया उसी तरह हमारा भी वियोग दुःख मिटावें । जब से आंख से आंख मिली है तब से कभी भी प्रवीण को भूलते नहीं और कहा करते हैं कि भरोखा में बैठी हुई को कोई हमारी अरजी जाकर दे देवे कि सागर तुम्हें एक घड़ी भी नहीं भूलता है तुम्हारे बिना इतना दुखी है ॥ ४ ॥

निदर्शनालंकार—कवित्त.

मंजन करत प्रात, मांगत निरंजन पै, जंपत प्रवीणको बिलोकवो चहत हैं ।
खान पान मान सबै, पावत प्रतिष्ठा करि, गान आन बान हूंमें, गुनको गहत हैं ।
रोम रोम भोम व्योम, मैनके हुताशन है । नेहको न देह छेह देहको दहत हैं ।
नरके नरिंदहैं, समंद के समान मत, दरतें हजूरके हजूर रहे रहत हैं ॥ ५ ॥

सबेरे स्नान कर के निरंजन निराकार परमात्मा से प्रवीण के मिलने की ही याचना करते हैं, जप करते हुए भी प्रवीण के दर्शन की ही इच्छा रखते हैं, खाने और मान आदि भोग विषय में भी प्रवीण सम्बन्धी प्रतिज्ञा से ही यह कार्य करते हैं, गायन और इसी प्रकार अन्य मनोरंजन के कार्यों में भी प्रवीण के ही गुण ग्रहण करते हैं, रोम रोम में तथा पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र कामाग्नि प्रगट हो रही है, परन्तु स्नेह को न छोड़ते हुए अपने देह को ही जला रहे हैं । वे नरराज हैं और समुद्र के समान गंभीर अथवा विशाल बुद्धिमान हैं और हजूर के दर (द्वार) पर हजूरी होकर रहते हैं * ॥ ५ ॥

लाटानुप्रास स्मरणानुभाव अलंकार—दोहा.

कसक कसक लागत कठिन, मुसक मुसक मुख बात ।

रसिक रसिक कह कइ रटत, ससिक ससिक उससात ॥ ६ ॥

कसक कसक के मुख से बातें करने में अति पीड़ा पर पीड़ा होती है तो भी 'रसिक रसिक' कह कर रोते और आह भरकर उसांसें लेते हैं ॥ ६ ॥

रूपक अभेद—सवैया.

चित्त गुडी सो उडयोइ रहे, पकरें कर नैननकी बरजोरी ।

नेहके चंग सदाई बजें, सुवियोग के बात लगे भूकभोरी ॥

दूर रहे पै हजूर न आवत, कूरके काग सो जात न टोरी ।

तानतनाहि त्यों जानन पावत, प्राणको पत्र प्रवीनकी डोरी ॥ ७ ॥

नेत्ररूपी हाथ के जोर से पकड़ा हुआ मनरूपी पतंग आकाश में उड़ता ही रहता है और उसमें प्रीतिरूपी चंग निरन्तर बजता ही रहता है । उसी प्रकार उसमें वियोग रूपी हवा लगने से भूकभोर लेता रहता है, दूर रहता है

* गुजराती टीकाकारने 'दूरनों छे...नहीं' लिखा है जो ज्ञात होता है कि 'दूर' का अर्थ भूल से दूर किया है परन्तु वास्तव में 'दूर' का अर्थ द्वार होता है यही अर्थ किया है, जो संगत प्रतीत होता है ।

अर्थात् पास नहीं आता, परन्तु क्रूररूपी कौवा से तोड़ा भी नहीं जाता, प्रवीणरूपी डोरी है और सागर का प्राण पतंग तक पहुंचाने वाला। उसे स्वीचता अर्थात् सांस नहीं लेता और वह यम जान भी नहीं पाता। तात्पर्य यह कि प्राण जाता भी नहीं ॥ ७ ॥

दोहा—नागरि नागरि जपत नित, सागर सदा उदास ।

प्रेमबूंद परवीण बिन, चातक मरत पियास ॥ ८ ॥

नागरी, हे नागरी ! अर्थात् हे चतुर प्रवीण, हे प्रवीण ! इस प्रकार निरन्तर जाप करता हुआ सागर उदास रहता है। प्रवीण के प्रेम की बूंद के बिना सागररूप चातक प्यासा मरता रहता है ॥ ८ ॥

विनोक्ति अलंकार—सवैया.

सूर बिना चक बाग बिना पिक, बारि बिना इकहै भूख जैसे ।

हंस बिना सर पंख बिना पर, पत्र बिना तरु राजत तैसे ॥

मोर बिना घन मोर बिना बन, बूंद बिना तन चातक वैसे ।

प्रेम बिना मित बाम बिना पति, सागर जीवत है मृत जैसे ॥ ९ ॥

सूर्य के बिना चकवा, बाग बिना कोयल, पानी बिना मीन, सरोवर बिना हंस, पंख बिना पत्ती, पत्ते बिना वृक्ष, वर्षा बिना मोर, कमललता बिना भंवरा, स्वाति नक्षत्र की बूंद बिना पपीहा, स्नेह बिना मित्र और पति बिना स्त्री की जो दशा होती है उसी प्रकार सागर का जीवन प्रवीण बिना मरण के समान है ॥ ९ ॥

अथ कुसुमोक्त चर्चा वर्णनं, उपमेय लुप्तोपमाऽलंकार—सवैया.

प्रीय पयानकि बात सुनें, बिरहान की धूनि जगी तन में ।

लोहित लोइन धार रही, धर सोधत सास उसासन में ॥

हास बिलास तजे उनकी छिन, मित्रके मंज भजे मन में ।

सागर ध्यान धरें चुप है रहि, जोगनि ज्यों गुरु लोगन में ॥ १० ॥

प्रिय के प्रयाण की बात सुनते ही बिरहान्नि की धूनी तन में जाग उठी और

उस मिलाप दुःख से आंखों में लाली आगई है, रक्तवर्ण धाराएं आंखों में स्थिर हो रही हैं उससे सासा निस्सासा उसासा में योगिनी सप्रभूमिका को ढूँढ़ती है। आप जब से पृथक् हुए हो उसी क्षण से हास्य विलास छोड़ बैठी है तथा दिन में प्रिय मधुकर मंत्र जाप करती है। जिस प्रकार जोगिनी गुरु का ध्यान धर चुप बैठती है उसी प्रकार प्रवीण सागर का ध्यान धर कर चुप बैठी रहती है ॥ १० ॥

निदर्शन भेद दूजो अलंकार—सवैया.

सागर सागरजू रसना दुसरी, मुख मौन लही सुलही ।
कानन आन न बान सुनी वरुनी से धुनि जो बही सो बही ॥
गोन कियो तुम ता छिनसे, दिनही दिन व्याध नहीं सु नहीं ।
या कुलकान रहो न रहो परि, एकहि टेक ग्रही सु ग्रही ॥ ११ ॥

जीभ से 'सागर सागर' यही नाम बोलती है, इसके अतिरिक्त और कुछ बोलने में मौन व्रत ले रक्खा है, कान से भी दूसरी कोई वाणी सुनती नहीं, आंखों से पलकों में होकर जो आँसुओं की धारा बहती है सो बहती ही है। तुमने गमन किया उस क्षण से जो दुःख हुआ वह दिनों दिन नवीन होता जाता है और बढ़ता ही जाता है। वह छिपी वेदना से कुल की लाज रहे या न रहे परन्तु जो टेक पकड़ ली है वह तो पकड़ ही ली है ॥ ११ ॥

मालोपमालंकार—कवित्त.

प्रह्लाद नाहर ज्यों, वेद भेद पाहर ज्यों, शशि जोत साहर ज्यों, ले हेर हियें भरे । श्रीपति जुगारद ज्यों, प्रिया कूप पारद ज्यों, कलिकंठ बारद ज्यों, पलहून धीसरें । बालि सुनु शंकर ज्यों, चकोरी हिमकर ज्यों, कोकन दिनकर ज्यों, ध्यान चित्तमें धरें । अंतर भये प्रवीण, सागर निरंतर ही, दरदी धनंतर ज्यों, राह देखबो करें ॥ १२ ॥

भक्त प्रह्लाद जिस प्रकार नृसिंहवतार को, व्यास ऋषि जिस प्रकार वेदों के भेद को, समुद्र जैसे चन्द्र ज्योत्स्ना को हृदय में धारण कर आह्लादित होता है वैसे ही प्रवीण भी सागर को मन में धारण कर तरंगित होती है। जैसे

युगारद * यानी गजेन्द्र जिस प्रकार श्रीपति विष्णु को, कूप पारद जैसे कुमारी स्त्री को और पपीहा जिस प्रकार मेघ को पल भर भी नहीं भूलता, उसी प्रकार प्रवीण सागर को नहीं भूलती । कविकुल बाणासुर जैसे शंकर को, चकोर जैसे चन्द्रमा को, और चकवा जैसे सूर्य का ध्यान करता है उसी प्रकार प्रवीण सागर का ध्यान करती है । वियोग दुःख से दुःखित प्रवीण सागर का मार्ग इसी प्रकार देखती है जैसे कठिन रोगग्रस्त रोगी धन्वन्तरि वैद्य की बाट देखता है ॥ १२ ॥

दोहा—प्रेम जहर लागी लहर, कहे दशा जिय जाय ।

व्याध सधैं परवीणजू, मिले धनंतर आय ॥ १३ ॥

प्रेमरूपी विष की लहर आने से शरीर की यह दशा होगई है मानो अब जीव निकलता है तब निकलता है । इस प्रकार प्रवीण के असाध्य रोग की पड़ो तब मिटे जब सागररूपी धन्वन्तरि ही मिले तो रोग दूर हो ॥ १३ ॥

संदेह श्लेष संकर-सवैया.

लाल सु रेख गुलाल लगी है, किधों यह आतस की चिनगारी ।

बूंद बने बरुनी जलके, पिचकारी अनीक बती ब्रह्म जारी ॥

कज्जर छीट परे निकटे वह, चित्र चुवाके धुआ बिसतारी ।

सागर मित बिना परवीणके, नैनन होरी रचीक दिवारी ॥ १४ ॥

लाल रंग की जो रेखाएं हैं वे गुलाल हैं या आग की चिनगारियां भरती हैं ? आंखों में से आंमू के बून्द पलकों में आकर परते हैं, वह अग्नीदार पिचकारी है अथवा प्रगट हुई विरह की बत्ती है ? आंखों में लगा हुआ जल आसुओं के साथ बह कर चिबुक पर रेखाएं बनाता है वह काजल की रेखा है या धुवां है ? मित्र सागर के वियोग से प्रवीण की आंखों ने इस प्रकार होली रचाई है या दिवाली ? ॥ १४ ॥

* युगारद, युग रद का अपभ्रंश है जिसका अर्थ दो दांतों वाला यानी हाथी होता है, राजेन्द्र से तात्पर्य है ।

अथ दृष्टान्तऽलंकार-सवैया.

तार कड़े मुख बार बिहार, करे पर तार रहे उरझ्यो तन ।
 जंत्रहि मंत्रहि तंत्रहि जोग, फरे न टरे अटरे ज्यों उडग्नन ॥
 घोस भगेरु जगे निश चंद, विलोक नगे न गने अतु अंगन ।
 सागरसे नित लाग रह्यो सो, भयो मकरी मकरी मकरी मन ॥ १५ ॥

मकड़ी मुख से तार निकालकर उस पर बिहार करती है, परन्तु उन्हीं तारों से अपने अंग को बद्ध रखती है, फिर भी जंत्र, मंत्र और तंत्र के आधार पर नहीं होती, तारों की भांति अटल रहती है, चन्द्र की किरणें सूर्य के देखते ही अस्त हो जाती हैं, परन्तु रात में पुनः चन्द्रमा के साथ २ दिखाई पड़ती हैं, इसी प्रकार प्रवीण का मन आकाश में चन्द्रमा को देखता है, शरीर के मृत्यु को कुछ नहीं जानता । मगरी जिस तरह निरन्तर सागर के साथ लगी रहती है । अर्थात् मकड़ी, चन्द्र-किरणें और मगर के समान प्रवीण का मन हो रहा है ॥ १५ ॥

उपमालंकार-सवैया.

मन प्रवीण कुंदन महोर, प्रेम प्रकासे जोत ।
 विरह अग्नि ज्यों ज्यों तपे, त्यों त्यों किम्मत होत ॥ १६ ॥

प्रवीण का मन सोने की मुहर के समान है जिसमें से प्रेम की ज्योति का प्रकाश हुवा है, और विरहाग्नि में ज्यों २ तपता है त्यों २ उसकी कीमत बढ़ती है । अर्थात् जिस प्रकार सोने को जितना तपाओ उतना ही उसका मूल्य बढ़ता है उसी प्रकार प्रवीण भी विरहरूपी अग्नि में तप २ कर अधिक पवित्र हो रही है ॥ १६ ॥

रूपकालंकार-दोहा.

साधन सुमिरन मितको, पत्रनि जंत्र बताय ।
 जिय मनिधर बादी विरह, घट घट दियो दबाय ॥ १७ ॥

विरहरूपी सपेरा जीवरूपी सर्प को मित्र के स्मरण के साधन से और पत्ररूपी जंत्र बनाकर शरीर रूपी घट में दबा रक्खा है ॥ १७ ॥

पर्यस्ताञ्जलंकार-सवैया.

तीर हने अशरीर अहो निश, धीर सबेहि गमी गरमी ।
 नावन खावन गावन की सुधि, भूलि गई है भई भरमी ॥
 व्याध समावन कारन साधक, सिद्ध नजूम नमी नरमी ।
 सागरज्यु विन पाय उपाय, किये न चढ़ेंगे अमी उरमी ॥ १८ ॥

प्रवीण को रात दिन कामदेव तीर मारता है, उसके तदिण ताप से सब धीरज गंवा दिया है और खाने, नहाने और गाने की सुध भूलकर अमित हो रही है । ऐसी दुःखद पीड़ा मिटाने के लिए सिद्ध और ज्योतिषियों से नम्रता पूर्वक निवेदन करती है परन्तु सागर के मिले बिना कोई भी उपाय करने से अमृत की लहर हृदय में नहीं चढ़ती ॥ १८ ॥

अथ पुनि कवि उक्त चर्चा; वक्रोक्ति अलंकार-सवैया.

जाम सु वासर मासहि संवत, जात चले तो कहां लो चलेंगे ।
 आतस आग लगे चिनगे सु, बुझे न तवे जियही न चलेंगे ॥
 या असुवां बहे बोई करे सु, अबे यह वारिनिधी न छलेंगे ।
 टेरत बेरही बेर प्रवीणजु, फेर कहूं इक बेर मिलेंगे ॥ १९ ॥

कवि कहता है कि 'पहर, दिन, महीना और वर्ष चले जाते हैं' । कुसुमावलि वक्रोक्ति में कहती है, "वे कहां तक चले जायेंगे" ? तब कवि ने कहा "आग्नि की चिनगारियां लगी हैं" यह सुन कुसुमावलि बोली—"वह नहीं बुझेगा तो क्या जीव नहीं जल जायेगा ?" फिर कवि ने कहा "आंसू बह रहे हैं", फिर कुसुमावलि बोली "तो अब सागर उमड़ चलेगा ?" तब कवि ने कहा "तब तो फिर एक बार मिलेगा" ॥ १९ ॥

प्रभृतिमान अलंकार-सवैया.

बैन प्रवीण प्रवीण उचारत, नैन प्रवीण बिना न लगावे ।
 रैन प्रवीण बिना दुख बीतत, सैन प्रवीण बिना न सुहावे ॥

चाह प्रवीण दशा परसे तन, राह प्रवीण सदा दरसावे ।

रोमहि रोम प्रवीण रहे रमि, कोउ प्रवीण प्रवीण मिलावे ॥ २० ॥

जिह्वा से 'हे प्रवीण' ऐसा उच्चारण करते हैं, और आंखें भी कहीं लगती नहीं, सारी रात प्रवीण के बिना दुःख में ही बीतती हैं, प्रवीण के बिना नींद भी नहीं है । इस दशा में प्रवीण आकर शरीर स्पर्श करे यह चाहना रखते हैं, और प्रवीण की ही बात देखा करते हैं । इस प्रकार रोम २ में प्रवीण रम रही है । है कोई ऐसा चतुर जो इन्हें प्रवीण मिला दे ॥ २० ॥

सोरठा-तन दिनते तलफंत, जा दिनते बिछुहा भयो ।

याद न चूकत चिंत, रा दिनप्रति देखत रहत ॥ २१ ॥

जिस दिन से वियोग हुआ है उसी दिन से तड़फ रहे हैं, उसी प्रकार चित्त से जरा भी याद जाती नहीं, प्रतिदिन राह देखते रहते हैं ॥ २१ ॥

दृष्टांतालंकार-सवैया.

मोर कि ध्यान * लगी घनघोरसे, डोर से ध्यान लगी नटकी ।

दीपक ध्यान पतंग लगी, पनिहारिकि ध्यान लगी घटकी ॥

चंद की ध्यान चकोर लगी, चकवानकि ध्यान दिनेश टकी ।

मीन मनो जल ध्यान सु सागर, पंथ प्रवीण रहे अटकी ॥ २२ ॥

मोर का ध्यान जिस प्रकार गर्जते मेघ के साथ में, नट का ध्यान डोर के संग, पतंग का ध्यान दीपक पर, पनिहारी का ध्यान घड़ा में, चकोर का ध्यान

* ध्यान शब्द संस्कृत में अपुसंक लिंग में और भाषा में पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है, परन्तु यहां कविने स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है, सो यह दृष्टिदोष अथवा नजर की भूल समझना चाहिये ।

हमारा विचार है कि 'मोरकि' नहीं 'मोरको' होना चाहिए और जहां २ 'लगी' है वहां 'लगो' होना चाहिए । इसी प्रकार 'पनिहार' को चंद को, चकवान को, होना चाहिए तथा अंत का तुक भी "नट को, घट को, टको और अटको" कर देने से पाठ शुद्ध होता है । संभव है छापे की भूल से ऐसा हुआ हो ।

चन्द्रमा में, चम्पा का ध्यान सूर्य में और मछली का ध्यान पानी के साथ जिस प्रकार रहता है उसी प्रकार सागर का ध्यान प्रवीण में अटक रहा है ॥ २२ ॥

सोरठा-इहि विधि उभय सयान, चलत राह चरचा भई ।

सागर तिथ शिव थान, मिलबे को धारत मतो ॥ २३ ॥

इस प्रकार दोनों चतुर जनों की मार्ग में चलते २ जो चर्चा हुई उस में यह निश्चय हुआ कि शिवमंदिर में सागर तथा प्रवीण का मिलाप करावें ॥ २३ ॥

गाहा-कवि कुसुमावलि मिलन, दंपति दशा भेद चरचायं ।

षट्त्रिंशति अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २४ ॥

कवि तथा कुसुमावलि के मिलाप में जो सागर तथा प्रवीण में चर्चा चली, उस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह छत्तीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २४ ॥



३७ वीं लहर ।

अथ शिवाभिषेक प्रसंगो यथा—दोहा.

श्रावण शुक्ल चतुर्दशी, वासर सुभग निशेश ।

दिये मुहूरत महाराज द्विज, ईश करन अभिषेक ॥ १ ॥

श्रावणमास की शुक्ला चौदस सोमवार के शुभदिन ब्राह्मणों ने महाराज रससागर को शंकर प्रतिष्ठा अभिषेक करने का मुहूर्त बतलाया ॥ १ ॥

छप्पक—रससागर आयसा, वरुनि मह ब्रह्म बराये ।

वेद मंत्र जाप, होम हवनादि कराये ॥

पंचामृत शिव शक्ति, कियो षोडश विधि पूजन ।

अंग देव जुत जंत्र, हुआ अभिषेक सु पूरण ॥

वह समय थान शंकर बहे, दरसाई कैलास छवि ।

पर्वनी प्रति आये दरस, सागर जुत छितिपाल सभी ॥ २ ॥

रससागर की आज्ञा से वर्णा में ब्राह्मणों का वरण किया गया, तथा वेद-मंत्र का जप-जाप, होम-हवनादि हुए । दूध, दही, शर्करा, मधु और घी वा पंचामृत से शिवशक्ति को स्नान कराके विधियुक्त षोडशोपचारयुक्त पूजन हुआ । अंग के देवता और यंत्र का पूजन होकर उत्तम रीति से अभिषेक पूर्ण हुआ ।

उस समय शंकर के मंदिर की शोभा साक्षात् कैलास के समान प्रतीत होती थी । इस प्रकार रस पर्व के दिन प्रातःकाल ही श्रीशंकर के दर्शन के लिए महाराज रससागर, नीतिपाल वगैरह सब राजवंशी यूथ के यूथ मंदिर में आए ॥ २ ॥

सोरठा-नीतहिपाल जनान, आवन दरस शिवालये ।

सुनी सु सागर कान, उर उमड़ित उच्छाह अति ॥ ३ ॥

नीतिपाल राजा के अन्तःपुर से सब रनिवास शिवमंदिर में दर्शन के लिए आरहे हैं, यह सूचना मिलते ही कुमार के अन्तःकरण में अति उत्साह उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

उतै सु वृषति कुमार, कही कुसुम वह आज दिन ।

सजे सकल सिंगार, उर अभिलाष दशा गहें ॥ ४ ॥

वहां कुसुमावलि ने राजकन्या से कहा कि वह संकेत का दिन आज ही है । इसे सुनकर राजकन्या अति उत्कंठा से शरीर पर सोलहों शृंगार करने लगी ॥ ४ ॥

अथ कलाप्रवीण शृंगार वर्णन—छंद भंमतपाल.

कामिनी आदि सिंगार उत्तारियं, हाटकं अंग नीलांबर धारियं. चोकिं चेरियं नीर धारा धरें; नारके बारसे बुंद भारा भरें. उपमा एहि पावं-तहे भामिनी; मानहु मेघ कादंबिगी दामिनी. अंग अंगोछ विच्छायतं आहियं, चंदन चित्र सोधा तनं लाहियं. साम पाटं जरी कंचुकी सो-हितं; मानहो इश सन्नाह आरोहितं. लाल लहंगा जरतार बुडा मजें; के-सरी सार किनार सारी सजें. हेम आभूषणं अंग अंगं धरें; नील नो-लंक मानिक पना जरें. वेसरी हार माला गरे मुत्तियं; मानहो दीपमाला बनी दुत्तियं. आरसी एक बाला इतमें लिये; अंजनं रंजनं कंजनैनं दिये ॥५॥

कामिनी (प्रवीण) ने पहिले शरीर पर का सब शृंगार उतारा और सुवर्ण जैसे शरीर पर सुन्दर नीलाम्बर धारण किया । चौकी के ऊपर बैठी और दासियां स्नान के लिए उष्ण गंगोदक की धारा अंग पर डालने लगीं । उम समय नारी (प्रवीण) के छुटे हुए केशों में से पानी की धारा चलने लगी जिससे वह ऐसी उपमा पाने लगी मानो मेघ की घटा में बिजली शोभायमान हो । स्नान के उपरान्त अंगोछे से अंग पोंछ कर बिछौने पर आविराजी, चंदन और अतरादि सुगन्ध शरीर पर लगाया, काली जरीदार कंचुकी पहिनी, सो ऐसी देखने लगी मानो शंकर भगवान ने कवच धारण किया हो । जरतारों से भरा हुआ बूटेदार लाल लहंगा और केसरिया किनारीदार सारी धारण की । अंग २ में नाना प्रकार के मणि मणिकादि जड़ाव से युक्त स्वर्ण आभूषण पहिने, नाक में केसर, गले में मोतीमाला और हार पहिना सो ऐसा जगमगाने लगा मानो दीपमाला प्रगट हुई हो । फिर एक स्त्री ने आरसी लेकर स-

मने रक्खी और दूसरी ने कमलसदृश नेत्रों में मनोहारी अंजन लगाया ॥ ५ ॥

चौपाई.

आप ईश, थानक प्रति आये, वह निवान निर्जन करवाये ।
 पहिरायत चहुओर बिठारे, सुकवि राज उद्यान सिधारे ॥
 महलमध्य अवमोचन कीनों, गुफा धाम शिवपंथ सु लीनों ।
 प्रच्छन्न दोउ ईश प्रति आये, और कोउ जानन न पाये ॥
 दोउ दिगंबर भेष बनाया, वर्णन तास बनाय बताया ॥ ६ ॥

तब कुमार ने आकर सब मनुष्यों को बाहर किया और चारों ओर चौकी पहरा लगा दिया । फिर कविराज और महाराज रससागर बगीचा में गए और वहां महल के बीच में जाकर सुरंग द्वार से शिवमंदिर का मार्ग लिया अर्थात् छिपकर दोनों व्यक्ति शिवालय में गए कि किसी को खबर न होने पावे । वहां दोनों ने अपने असली वेश को बदल कर दिगम्बर योगी का वेश बनाया जिसका अब वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

दोहा—इत प्रवीण सागर उतें, भूषण जोग सिंगार ।

वर्णन करत बराबरी, सजे सो एकहि बार ॥ ७ ॥

इधर प्रवीण और उधर रससागर दोनों ने एक ही समय शृंगार और योग धारण किया, इसका वर्णन करता हूं ॥ ७ ॥

अथ छंद मौक्तिकदाम.

इतै रसभूषण साजत नार, उतै महाराज सु जोग उचार. इतै चिक्कुरान समीप सुगंध, उतै जट जूट लगावत बंध. इतै दियभाल जराउको चंद, उतै किय लाल सु बंदन बिंद. इतै गन चंदन केसर अंग, उतै भसमी सुचढ़े तिहि संग. इतै उर हार हमेल रसाल, उतै रुद्राक्ष किये उर माल. इतै भुजबंध सु पौंचिय धार, उतै कर कंकन बट्टीकेदार. इतै धुनि जेहर जेब भंनक, उतै पग लंगर लोह खनक. इतै जर अंबरका तन साज, उतै कर चर्म रहे मृगराज. इतै चकडोल प्रवीन चढंत, उतै पदमासन जोगी द्रढंत ॥ ८ ॥

यहां प्रवीण रसयुक्त बनकर आभूषण सजा रही है, उधर महाराज रस-सागर योग का उच्चारण कर रहे हैं। यहां सुगन्धित तेल फुलेल बालों में डालकर केश सम्हाले जा रहे हैं, उधर जटाजूट बंध रहा है, यहां कपाल में जड़ाऊ चन्द्रिका बांधी जा रही है, उधर लाल बिन्दी केसर की लग रही है, यहां शरीर पर चन्दन व केसर का लेप हो रहा है, वहां अंग पर भस्म का लेप हो रहा है, यहां गले में हमेल और हार पहिने जा रहे हैं, वहां रुद्राक्ष की माला धारण की जा रही है, यहां भुज में बाजू-बंध और पहुंची बांधी गई, वहां हाथ में कंकण धारण हुआ, यहां पांव में पहिने हुए मांमर और लंगर की मंकार हो रही है तो उधर पांव में लोहे के लंगर खड़कने लगे, यहां जो जरी के वस्त्र अंग पर सुशोभित हुए तो वहां काले मृग का चर्म शोभायमान हुआ, यहां जो प्रवीण रथ पर बैठी तो उधर योगीराज भी पद्मासन आरूढ़ हुए ॥ ८ ॥

दोहा—सागर भारतिनंद दुहु, सज्यो जोग सिंगार ।

बंदन करि कीनी सु शिष, अस्तुति यहै उदार ॥ ९ ॥

रससागर और कवि भारतीनंद दोनों ने योगी का रूप धारण किया और फिर उदार मनमें इस प्रकार शिवजी की स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

अथ शिवस्तुति—छंद सेनिका.

गंग बार जट्ट धार मंडियं; आध अंग संग लीन चंडियं ।
बाल चंद बिंद लाल ज्वालयं; कंगनं भुजंग मुंड मालियं ॥
शूल पान है पिनाक सज्जनं; डाक डमरू अवाज बज्जनं ।
जंग जीत नीत भंग खावनं; ख्याल प्रेत जालको खिलावनं ॥
व्याल आल खाल लीन बासनं; केहरी बिछात कीन आसनं ।
अंगको बिभूत रंग चडियं, जोग भोग ध्यान ग्रान द्रडियं ॥
देव दानव नगेश बंदनं; बंदित कलेश बृंद कंदनं ।
कामना मनीछ पूरनं करं, जै महेश जै महेश जै हरं ॥ १० ॥

हे परमात्मा ! आप कैसे हैं कि गंगा के तीररूपी आभूषण को जटा में धारण किए हैं; अर्ध अंग में महामाया उमा को ले रक्खा है; कपाल में द्वितीया का चन्द्रमा, लाल बिन्दीरूप में अग्निज्वाला धारण किए हुए हैं । हाथ में सर्परूपी कंकण, गले में मुंडमाला पहिने, हाथ में त्रिशूल और पिनाक (धनुष) लिए हैं; डफ और डमरू का शब्द होरहा है, जंगल को जाते निरन्तर नित्य भोग खाने वाले हैं, मौज में भूतप्रेतादि से खेलते हैं; हाथी के आर्द्र चर्म का वस्त्र धारण किए हैं, केसरी (सिंह) के चर्म को बिछाकर आसन कर रक्खा है; अंग पर विभूति चढ़ी हुई है और योगरूप भोग के ध्यान में प्राणों को दृढ़ किए हुए हैं; देव, दानव, पर्वत आदि सब जिमकी वन्दना करते हैं तथा वन्दना करने वाले भक्तों के अनेक दुःखों के नाश करने वाले, इच्छित फल देने वाले हं शंकर ! आपकी जय हो । हे हर ! आपकी जय हो ॥ १० ॥

सोरठा—किय बंदन कर जोर, एती शिव आराध करि ।

बानी बदी बहोर, उमया स्तुति कीनी यहै ॥ ११ ॥

इतनी शिवजी की नम्रतापूर्वक आराधना कर हाथ जोड़ के वन्दना की फिर इसी प्रकार पार्वतीजी की स्तुति की ॥ ११ ॥

अथ श्री उमास्तुति—छंद शालिनी.

अंगा संग ईश सिद्धी कहानी, ईशं शीशं गंग धारा बहानी ।

धाता ज्ञाता राजसी रूप रानी, वेदं भेदं भिन्न बानी बखानी ॥

कंजा रंजा वैष्णवी सृष्टि व्यापी, देवा सेवा दानव देव थापी ।

नीरा तीरा तीरथं रूप रत्नी, सत्ता वृत्ता चित्त वृत्ति प्रकृत्ती ॥

सूरा नूरा कुंभनी में प्रकाशी, चंदा छंदा वृच्छ बेली विकासी ।

बारा धारा मेदनी में वृषति, पारावारा नीर बीरा नवंती ॥

मेरा फेरा हेमराया भ्रजादा, ब्रह्मा क्रमा नीत रीता विवादा ।

भोमाव्योमा तेज नीरा समीरा, तत्ता सत्ता ग्यान ध्याना गहीरा ॥

तामा वामा सात्विकी राया, नीचा बीचा ऊरधा मध्य माया ।

शुन्या धुन्या धारना नाम धारा, दग्गा नग्गा इंड ब्रह्मांड पारा ॥

मंत्रा जंत्रा तंत्र विद्या विलासा, धन्या कन्या पूरनी चित्त आसा ।

प्रेमी नेमा कारनं रूप माता, जोगा भोगा बंदितं सिद्धि दाता ॥१२॥

हे महामाया ! शिव अंग में रहकर तू ईश्वरी सिद्धि वाली है; ईश जो शंकर हैं उनके मस्तक पर विराजमान हो गंगा की जल धारारूप होकर बही हो, धारारूप धारण करने वाली, ज्ञातारूप जानने वाली, राजसरूप रूपवान् महाराणी हो, वेद के भेद से भिन्न २ वाणी द्वारा वर्णन की हुई कमला रूप, रंजन रूप और वैष्णवी रूपी सारी सृष्टि में व्याप रही हो, देवों के द्वारा सेवकों तथा दानव यानी असुरों के द्वारा स्थापित जलरूप, किनारा रूप, तीर्थ रूप रति के समान सुंदरी हो, मत्ती-आवृत्तिरूप, चित्त की वृत्ति तथा प्रवृत्तिरूप महामाया रूप हो । सूर, नूर, कुंभक प्राणायाम में अथवा घट २ में प्रकाश करने वाली चन्द्ररूप, छंदरूप एवम् वृक्ष और वेलिरूप से प्रकाशित हो रही हो, जलधारा रूप पृथ्वी पर बरसने वाली हो, समुद्ररूप पानी की तरंग उठाने वाली हो, मेघरूप, फेररूप और हिमालय रूप से मर्यादा हो, ब्रह्मरूप, कर्मरूप, नीतिरूप; रीतिरूप और बादबिबाद रूप हो, पृथ्वी, आकाश, तेज, जल और वायु पांच तत्वरूप हो, तत्वरूप, शक्तिरूप, ध्यानरूप और गंभीररूप हो, तमरूप, वामा-रूप और सात्विकरूप से राजराजेश्वरी हो, ऊंच और मध्यरूप महामाया हो, तुम शून्यरूप, शब्दरूप एवम् अनेक नामरूप धारण करने वाली हो, दिशारूप, पर्वतरूप, ईडरूप, ब्रह्माण्ड के पार से पारंगत हो । मंत्र, यंत्र और तंत्ररूप विद्या तथा विलासरूप हो, द्रव्यरूप, कन्यारूप और चित्तकी आशा को पूरी करने वाली हो; प्रेम, नेम और वाणरूप माता हो, योगरूप, भोगरूप तथा वंदन से सिद्धिदात्री हो । इस प्रकार की हे जगदम्बा ! आपको बारंबार नमस्कार हो ॥१२॥

सोरठा—इहि विधि अस्तुति कीन, शिव समीप आसन किये ।

कर हर दाम सु लीन, ध्यान द्रढायो सिध उभय ॥१३॥

इस प्रकार स्तुति करके श्री शंकर के समीप सिद्धासन लगा कर रुद्राक्ष की हाथ में माला ले दोनों सिद्ध ध्यान दृढ़ किया ॥ १३ ॥

कलाप्रवीण सु संग, अन्तः उर गुज्जर नृपति ।

आतिही भरे उमंग, फंदन चढ़ि कीनो गमन ॥ १४ ॥

कलाप्रवीण को साथ लेकर गुर्जर भूपाल के अन्तःपुर वासी रानियों ने
अति उमंग के साथ रथ में बैठ शिवमंदिर को गमन किया ॥ १४ ॥

छप्पय—ईश देहरी आय, गिरद कीने पहिरायत ।

उतरे राज जनात, लगी दोहरि सु किनायत ॥

बहै देहरू सिष्ट, खबर अंदर मंगवाई ।

तबै हकीकति तहां, सिद्ध दोऊ की पाई ॥

औरन कक्षो सो उठाइये, तबै कुसुम बोली तहां ।

इत पाव घरी कीजे विलम, हभै देख आवैं वहां ॥ १५ ॥

शिवमंदिर पर आकर फिरते हुए पहरदारों को खड़ा कर दिया—और
देहरी कनात लगवा कर महाराज नीतिपाल की राणियां रथ से उतरीं । वहां
ठहर कर अन्दर से खबर मंगाई कि अन्दर कौन है, यह सूचना मिलने पर
कि अन्दर दो सिद्ध हैं, आज्ञा दी कि उन्हें बाहर किया जाय । कुसुमावलि ने
कहा कि आप लोग पावघड़ी यहीं ठहरें तो मैं अन्दर सब देख आती हूं ॥ १५ ॥

दोहा—कुसुम शिव थान प्रति, कीयो सिद्ध दीदार ।

उर धारी हांसी उकति, बोली जहँ तिहि वार ॥ १६ ॥

इस प्रकार सब को दिलासा देकर वह ब्रह्मबाला शिवमंदिर में गई और
सिद्ध को देखकर और मनमें मसखरी करने की ठान कर उनसे इस प्रकार
बोली ॥ १६ ॥

चौपाई.

कुसुम सिद्ध हर बंदन कीनों, पुनि जवाब जोगी प्रति दीनों ।

नीतिपाल अंते उर आवैं, कही जोगी इतसे उठ जावैं ॥

तुम्हें रहन हम अरज सु कीनों, काहू ओर कानहु न दीनों ।

कहो अबै क्या मतो करेंगे, आप रहत चकडोल फिरेंगे ॥

एती सुनत जोग सिद्धाई, वदन जोति बेहोश लखाई ।

सुर्त दीठ ब्रह्मनि ठहरानी, धारी कहा बंदत यह बानी ॥

मिलत दीठ बाला मुसकानी, कही जोग सिद्धि सु पिछानी ॥ १७ ॥

प्रथम तो कुसुमावलि ने शिवजी और सिद्ध को नम्रतापूर्वक प्रणाम किया फिर योगी से इस प्रकार बोली:-

‘राजा नीतिपाल के अन्तःपुर से रानियां यहां दर्शन को आई हैं’ और उनका कहना है कि योगी यहां से उठ जायें । आपको हमने निवेदन किया परन्तु आप सुनते ही नहीं, कहिए अब क्या करें ? आप यदि यहीं रहना चाहते हैं तो उन रानियों का रथ पीछे वापस जायगा । इतना सुनते ही जोगी की सिद्धाई ढीली पड़ गई और बदन की कान्ति निस्तेज होकर बेहोशी प्रकट होने लगी । इस प्रकार जोगी की अस्तव्यस्त अवस्था देख कुसुमावलि जरा ठहरी, खड़ी रही और सोचने लगी कि देखें अब ये क्या कहते हैं । विचार कर ही रही थी कि एक दूसरे की नज्म मिलते ही कुसुमावलि हँस पड़ी और मिड से कहने लगी कि देखी २ तुम्हारी सिद्धाई ॥ १७ ॥

तत्र सागरोक्त सौरठा.

कैंधों कहत बनाय, कैंधों सांची कुसुम यह ।

एतो करत उपाय, मिली न मित प्रवीणजू ॥ १८ ॥

जोगी ने कहा कि हे ब्राह्मणी ! तुम हमें बनाती हो या सच बात कहती हो ? हे शिव ! इतना करने पर भी भिय मित्र प्रवीण नहीं मिली ॥ १८ ॥

अथ अलंकार जातिस्वभाव-सवैया.

गायन की अरु नायन की नित, नैनन की वरुनी कसबे की ।

पान सुरा रुचि पानहि खान की, आनन आन बधू द्रस बेकी ॥

भूषण वास सुवास चढ़ावन, सेज विलास समय हंसबे की ।

जौलों प्रवीण बियोग तबै लागि, सोह हमें सुखसे बसबे की ॥ १९ ॥

गाने की, नहाने की, आंखें मीचकर सोने की, रुचि से मदिरा पान करने की, ताम्बुल खाने की, अन्य स्त्रियों के मुख देखने की, अंग पर वस्त्राभूषण आदि अलंकार और सुगंधादि सजने की एवम् सेज विलास समय हंसने की और सुख से बैठने की हमें उस समय तक के लिए शपथ है जब तक कि प्राणात्मा प्रवीण का बियोग है ॥ १९ ॥

अथ अलंकार जातिस्वभाव-सवैया.

परवीन से चित्त अधीन भयो यह, जाय न काहु से भेद कहे ।
 धर धीर कहांलौ शरीर रहे, अशरीर के तीर परें न सहे ॥
 नित आस उदास नयेइ नये, अरु वासर जात बहेइ बहे ।
 बतियां को विचार कहं तुमे, पतियां छतियां कर हार रहे ॥ २० ॥

यह चित्त प्रवीण के वश में हो रहा है, यह भेद किसी से कहा नहीं जाता, अब वह धीरज धारण करके शरीर कहां तक सहन करे? अशरीरी (कामदेव) के बाण पड़ते हैं जो असह्य हो रहे हैं । नित्यप्रति आशा और उदासी नई २ प्रकट होती है, तथा दिन पर दिन बतिते जाते हैं, इसलिए इस बातका विचार तुम से ही कहते हैं । मनको ही गले का हार बना कर रहते हैं ॥ २० ॥

अथ अलंकार द्रष्टांत-सवैया.

द्रैन उठावत बान लग्यो भ्रत, ध्यान धरो हनुमान जती ज्यों ।
 खँचत वासन दुष्ट दुशासन, श्रीपति साधन पंडवती ज्यों ॥
 थंभ को दंभ निहारत ही प्रह्लाद की राम रूपी सुरती ज्यों ।
 मित प्रवीण प्रवीण पुकारत, जारत जै रण छोड़ सती ज्यों ॥ २१ ॥

द्रोणाचल को उठाते समय भरत का बाण लगते ही हनुमानजी ने जिस प्रकार भगवान् का स्मरण किया । कौरवों की सभा में दुष्ट दुःशामन से चीर खींचे जाने पर पांचाली ने जिस प्रकार हरि का स्मरण किया । धधकते हुए खंभ के दंभ को देखते ही प्रह्लाद ने जिस प्रकार रामरूपी एक ध्यान से प्रभु का स्मरण किया और चिता में भस्म होते समय जिस प्रकार सती 'जय रणछोड़ जय रणछोड़' पुकारती है, उसी प्रकार हम भी "प्रवीण प्रवीण" पुकारते रहते हैं ॥ २१ ॥

दोहा-कही कुसुम तब मुह मसक, धारन राज द्रढ़ाय ।

हंसवे की भंखी हमें, अब ही हाजिर आय ॥ २२ ॥

इस प्रकार कुसुमावलि ने मुस्करा कर राजा को ढाढस दिलाती हुई बोली यह तो हंसी में कहा था, प्रवीण तो उपस्थित होती है ॥ २२ ॥

कुमरी कलाप्रवीण की, ऐसी दशा व्रतंत ।

निश दिन यह साधन लगे, मित मित अरु मित ॥ २३ ॥

महाराजा रमसागर की ही तरह कलाप्रवीण की भी स्थिति बनी हुई है, जो निशादिन मित्र के ही साधन में लगी रहती है ॥ २३ ॥

अथ कुसुमोक्त कलाप्रवीण दशा वर्णनं, अलंकार रूपकभेद—कवित्त.

मुकता प्रवालन को, माल के समान होत, चंदन चढ़ायो सो तो, बंदनमो ह्वेय जात । विरही अमुर बानी, लागत डरानी अति, बरि उठें नेक. बरी बरी कहे जात । घटा गहे रान के, निशान की आवाज सुनि, नैनन हुतासन ले, मस्कर गहे जात । सावन की जामनि में, दामनि पताखा देखि, कामनि स्वरूप कबे, कालिका को लहे जात ॥ २४ ॥

वियोग की ताप में श्वेत मोती की माला प्रवालमाला की भांति रक्तमयी हो जाती है, तथा लगाया हुआ चन्दन मिंदूर की भांति हो जाता है, मोर की बेसुरी वारुणी अति डरावनी लगती है, बार २ उठती है और रह २ कर बोलने लगती है, मेघ की गर्जना मुनकर नेत्र आग्नि के समान ज्वाला धारण कर माथा हाथ में लेता है, श्रावण मास की रात्रि में बिजली रूपी पताका देखने ही कामिनी (प्रवीण) कालिका का रूप धारण कर लेती है ॥ २४ ॥

जातीस्वभाव अलंकार—सवैया.

आन तिहारि तिहारिहि ज्यु मोहि, पानिहि पान मिलावत है ।

चुंबन और आलिंगन खंडन, आप ही के सम भावत है ॥

नाउ तिहारे सुरा भरि भाजन, पीबत और पिबावत है ।

बातकी चाह लगी तुम्हरी* वह, और न बात बतावत है ॥२५॥

* असल प्रति में "तुमको" पाठ है ।

आपकी सौगंध खाकर कहती हूँ कि जैसे तुम्हारे साथ हाथ में हाथ मिलाती है उसी प्रकार मेरे हाथ में हाथ मिलाती हैं और चुम्बन, आलिंगन, नख क्षतादि आपके ही साथ करने की इच्छा करती हैं। तुम्हारे नामकी मद्-
प्याली भर २ खुद पीती है और औरों को पिलाती हैं, तुम्हारी ही बात की चाह उसे ऐसी लगी है कि और बात करती ही नहीं ॥ २५ ॥

तत्र कवि उक्त कुसुमविरदावलि द्रष्टांतालंकार-सवैया.

सेज सुही बलि नंदकि नंदनि, वहां सपने अनिरुद्धि देखा ।
श्यामहि श्याम पुकार उठि वह, वाम बहे द्रग वारि विशेषा ॥
मंत्रिसुता सुर दानव मानव, चित्र बनाय बताय परेखा ।
पंखनि होय मिलाय प्रवीणजू, एक सराहें मखी चित्रलेखा ॥ २६ ॥

एक समय बलिनन्दन बाणासुर की पुत्री (ओम्वा) सुखशय्या-पलंग में सो रही थी, स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा और “हे स्वामी ! हे स्वामी !” पुकार करती हुई एकदम उठ बैठी । उठी ही क्या, उसकी आंखों में नवधारा बहने लगी । यह देखकर कुभांड नामक मंत्री की पुत्री, ओम्वा की सहेली, सुर, असुर और मनुष्य अर्थात् तीनों लोक सब रूपवानों के चित्र बनाकर बताया और अनिरुद्ध को ले आकर मिलाप कराया । इसी प्रकार जो तुम भी प्रियतमा प्रवीण को लाकर मिला दो तो तुम्हें चित्रलेखा मखी के समान शुभकर्ता समझें ॥ २६ ॥

दोहा—प्रेम पियाला जिन पिया, ताको शुद्ध न बुद्ध ।

बाणासुर तनया छकी, लखी छबी अनिरुद्ध ॥ २७ ॥

प्रेम का पियाला जिसने पिया हो उसे सुध बुध नहीं रहती, प्रेम में ही लीन रहती है; देखो स्वप्न में अनिरुद्ध की छवि देखकर बाणासुर की तनया बावरी होगई थी ॥ २७ ॥

अथ कुसुमावलि उक्त सोरठा.

आई हमें प्रयान, बनिहैं सो करिहैं सबै ।

आये कबी जु आन, आप न इतसे ऊठिये ॥ २८ ॥

हम चलकर यहां तक आए हैं तो जहां तक बन सकेगा करेंगे ही, पर यहां और कोई भी आवे तो आप यहां से उठना नहीं ॥ २८ ॥

ऐसो मतो सुनाय, कुसुमावलि पीछी फिरी ।

सो जनान प्रति जाय, कही वर्णन अब करहुं ॥ २९ ॥

इतना विचार करके कुसुमावलि पीछे लौटी और रानियों के पास जाकर कुछ कहा उसका वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

गाहा-दंपति जोग शृंगारं, सागर कुसुम शिवालयं प्रति ।

सप्तत्रिंशं अभिधानं, पूरण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

स्त्री और पुरुष दोनों ने जो शृंगार और जोग मजाया, सागर और कुसुमावलि के साथ शिवालय में चर्चायुक्त यह प्रवीणसागर की सैतीसवीं लहर पूरी हुई ॥ ३० ॥



लहर ३८ वीं

अथ कलाप्रवीणशिवपूजन प्रसंगो—यथा.

जाय कुसुम जनान प्रति, ऐसे कही बनाय ।

शिव समीप जोगी उभय. सो शिवरूप लखाय ॥ १ ॥

कुसुमावलि ने अन्तःपुरवासी रानियों से जाकर इस प्रकार बात बनाकर कहा कि श्री शंकर के समीप जो जोगी बैठे हैं वे दूसरे शंकर ही हैं ॥ १ ॥

वह आसन उठवे नहीं, कैसे उठो कहाय ।

वह दर्शन लायक उभे, परसन परम सदाय ॥ २ ॥

वे अपने आसन उठावेंगे नहीं और उठाने को कहें भी किस प्रकार ? वे केवल महात्मा ही नहीं हैं, प्रत्युत दर्शन करने के योग्य भी हैं एवम स्पर्श करने से सहाय सुखदाता जनाते हैं ॥ २ ॥

सुनत एह ब्रह्मनि वचन, उतरे बालावृन्द ।

किय प्रवेश हर देहरी, उर में भरे अनन्द ॥ ३ ॥

ब्रह्मबाला की इस प्रकार बात सुनकर हर्ष में राजा नीतिपाल की अन्तःपुर वासी राजवधू रथ में से उतरीं और हृदय में अति आह्लादयुक्त हो श्रीशंकर के मंदिर में प्रवेश किया ॥ ३ ॥

अथ छंद चामर.

देहरि समीप आय, बालवृन्द उतरी, जेहरि भनंक की, भनंक कान में परी। कोटरी दिवाल के, दुवार में प्रवेशितं, तीर मीन नीर, ज्यों चहंत जोगि के चितं । तारुनी समूह, मंद मंद देहरी चली, मानहो सुरी पुरी, महेश पूजने मिली । अंग नंगके शृंगार, रंग रंग सारियं, दामनी प्रकाश, दीपमालिका उजारियं । कामनी शरीर के, सुवास अंग रंजितं, बाग के प्रमत्न को, विकास छांड गुंजितं । बंक नैन राह को बिलोकवो सु अहरे, सिद्ध जोग ध्यान को द्रढाव फेर के करे । एक एकसे करन्त, हासभेद छंदियं, द्वार के

समीप आय, ईश शीश बंदियं । सिद्ध शिष्य उच्चरे, सु एक एक आधना,
पूज का सामान एक ओर साथ लावना । फूल केसरं कपूर, ब्रह्म बाल ने
लिया, आदिही प्रवीण का, प्रवेश देहरे किया ॥ ४ ॥

मंदिर के समीप आकर उन बालाओं का वृन्द रथ में से उतरा जिनके
पांव के नूपुर की मंकार शिव के समीप बैठे हुए योगिराज के कान में पड़ी ।
उनके कोठरी द्वार में प्रवेश करते ही योगिराज की आंखें उनके देखने को ऐसी
उत्सुक हुई जिस प्रकार पानी के किनारे पर पड़ी हुई मछली पानी में जाने
की इच्छा करती है यानी योगी के रूप में रससागर भक्तरूप मन प्रवीणरूप
पानी चाहने लगा । वे नवयौवना बालाएं मन्द गति से देवालय की ओर चलीं
सो मानो देवांगनाएं टांगी बनाकर महेश्वर को पूजने चली हों ऐसी शोभा-
युक्त हुई । अंग में अनेक रंग के रत्नों से जड़ित आभूषण धारण किये
हैं जिसका प्रकाश ऐसा जगमगाता है मानो बिजली हां अथवा दीपमाला
की उज्ज्वलता प्रकट हुई हो । इन कामिनियों के अंग में लगे हुए सुगन्ध
से मुग्ध होकर आस पास के बाग की लताओं और कुंजों को छोड़कर भीरे
इन पद्मिनियों के ऊपर आकर गुंजार करने लगे । यदि वे अपने नेत्रों से
मार्ग में कटाक्ष करें तो योगी का भी ध्यान छूट जाय और फिर से स्थिरता
करने की आवश्यकता हो, आपस में एक दूसरी से स्वेच्छापूर्वक हंसी दिल्लीगी
विविध प्रकार से करती हुई महेशाद्वार पर पहुंचकर शंभु को शिर नवाया ।
तब सिद्ध के शिष्य ने कहा कि अन्दर एक २ करके आइए, यदि चाहें तो
पूजा का सामान साथ लेने के लिए एक साथिन ले लेंगे । सिद्ध के इस प्रकार
वचन सुनते ही कुसुमावलि ने झटपट पुष्प, कपूर, केसर, चंदनादि तथा पूजा
का थाल लेकर सर्वप्रथम मंदिर में प्रवीण का प्रवेश कराया ॥ ४ ॥

सोरठा—अंदर कियो प्रवेश, कुसुमावलि प्रवीण दुहु ।

सिद्ध शिष्य आदेश, बाहिर बैठी बाल सब ॥ ५ ॥

कुसुमावलि और प्रवीण ने अन्दर प्रवेश किया और शेष सब स्त्रियां
सिद्ध के शिष्य के आज्ञानुसार बाहर ही रहीं ॥ ५ ॥

अंदर चरित्र यथा—गाहा.

जय जय हर उच्चारियं, तमया ईश बंदियं बाला ।

कुसुमावलि कर गहियं, सिद्ध समीप आसन उन दीया ॥ ६ ॥

“जय जय हर” इस प्रकार कलाप्रवीण ने उच्चारण कर शिव पार्वती को नमस्कार किया और कुसुमावलि ने प्रवीण का हाथ पकड़कर सिद्ध के पास आसन डालकर बैठाया ॥ ६ ॥

उर चरचा अभिलाषा, स्मित मुख फेर बंदियं सिद्धं ।

कुमरि दीठ अहरियं, हर गुरु लोग जोग त्रय रुषी ॥ ७ ॥

हृदय में जिसकी चर्चा करने की अति अभिलाषा है उससे स्मित हाम्य-युक्त मुंह फेर कर तपस्वी को प्रणाम किया, फिर राजकन्या इतना आदर करने लगी कि श्री उमापति के पवित्रता के साथ बार २ दर्शन करने तथा कुटुम्बी गुरुजन जान न सकें इसलिए उनकी दृष्टि बचाकर जीवात्मारूप जो सिद्ध उन्हें देखकर उनके साथ चर्चा करने लगी ॥ ७ ॥

तत्र सागरोक्त—सोरठा.

निरखत नार शृंगार, सिद्ध सु भंखिय शिष्य प्रति ।

वर्णन शंकर नारि, सब नखतें शिखलों कहों ॥ ८ ॥

सोलह सिंगार से सजी हुई प्रवीण को देखकर सिद्ध ने अपने शिष्य से कहा कि इस पद्मिनी के शृंगार और श्रीशंकर की अर्द्धांगिनी उमाजी के शृंगार का नखशिख वर्णन करो ॥ ८ ॥

उमया उरमहि धारि. रूप सु कलाप्रवीण को ।

शिष्य सु उकति उदार, गुरु आयस वर्णन वधो ॥ ९ ॥

तब श्री उमा को हृदय में धारण कर कलाप्रवीण के रूप का शिष्य गुरु-आज्ञानुसार वर्णन करने लगा ॥ ९ ॥

अथ वह शृंगार वर्णन—छंद इनुफाल.

पद पीठ कंजन रंग, नख जटित कुंदन नंग । पिंडुरि सु मैन निबंग, उल-

टी सु रंभा जंग । दोऊ नितंब सु पीन, तट रूप सरके कीन । त्रिवली सु-
गंग तरंग, कटि कस्यो केहरि अंग । नव नाभि नीरज धारि, राजी सु
चेंटी हारि । कुच कलश कंचन चक्क, नारिंग बिल्व पक्क । भुज कामकी
भुजदंड, कर कंज माधुर मंड । ग्रीवा सु कनक कपोत, पक अंब ठोड़ी
जोत । बिम्बी सु ओठ प्रवाल, रसना कमल दल लाल । धार्यो कला छवि
दंत, नासिका कीर चुगंत । स्रैधरन सिकता श्रोन, अलकावली अहि छोन ।
मृग मधुप मीन सु नैन, भ्रुकुटी चक्र्यो धनु मैन । छवि भाल आघक
चंद, फनि छत्र बेनि फनींद । मिर फूल बेंदी दीन, कजरान रेखा कीन ।
बेसर तरौना मोर, मुख रंग रेख तंबोर । कंगनी बलय किनार, चौकी
हमेल सु हार । रसना मजीर वजंत, जेहरी धुनि भनकंत । बिछुवा अनोट
सुधार, रुचि रीझ देखनहार । नवरंग अंग दुकूल, शृंगार माला फूल ।
मुख चन्द्रिका जवि रैन, कहि कोकिला सुर बैन । उपमा अनेक सु छीन,
रस रंग रेखा भीन । पढ़ि प्रेम रूप रमाल, जय जय सु शंकर बाल ॥१०॥

पगपृष्ठ अर्थान् तलवा का रंग कमल के सदृश लाल है, नख मानो
कुंदन जड़े हुए हैं; पग की पिंडलियां कामदेव के बाण रखने के तर्कश के समान
हैं, उलटा वेला रंभा के सदृश जंघाएं हैं, और उसके दोनों नितंब तालाब की
पाल के समान ऊंचे और दृढ़ हैं, पेट के ऊपर त्रिवली गंगा की धारा तरंग के समान
दीप्तिमान है, कसी हुई केहरि के समान तिरछी और पतली कटि है, नाभि
मानो जलकी महालता नूतन कमल के समान है । पेट के ऊपर की रांमावलि ऐसी
शोभायमान है मानो काली चींटियों का हार चल रहा हो, उनके कठिन और
सुदृढ़ स्थान ऐसी उपमा रखते हैं, जैसे कंचन कलस, नारंगी या पका बिल्व-
फल हो । कामदेव के ध्वजदंड के समान दोनों हाथ शोभित हैं । हथेलियां
खिले हुए कमल के समान दीखती हैं । उंगलियों में सुन्दर अंगूठियां पहिने
हुए हैं, सुवर्णमय कपोल के समान जिनकी गर्दन है, पके आम के समान ढोड़ी
दीप्तिमान है, बिम्बाफल अथवा प्रवाल के समान होठ, कमलदल के समान
कोमल रतनार जिह्वा है । दांतों में दाडिम बीज की कान्ति है, जिसे मानो
नाकरूपी सुवा चुग रहा हो । मोने की सीप के समान कान हैं; केश की लटाएं

लाल सर्प के समान टेढ़ी २ शोभायमान हैं, मृग के समान आंखें भ्रमर की भांति वाली व मीन के समान चंचल हैं, अकुटी की छटा तो मानो कामदेव का धनुष ही है। ललाट की छवि अर्द्ध चन्द्र की भांति शोभित है, बेणी कला मानो नाग है। माथे पर शिरकृत और कपाल में लाल बिंदी धारण की हुई है, आंखों में काजल, नाक में मोती की चमकदार वाली और कानों में अरौना और आमकी मंजरी धारण की हुई है। मुख में पानकी लाल रेखा अति सुन्दर शोभायमान है। हाथ में कंकण और चूड़ियां पहिने हैं। गले में चौकी और हुमेलहार तथा हीरा दीप्तिमान है। कटि में बन्धी हुई कटिमेखला में घुंघरू गूंजते हैं, पांव में पहिने हुए आभूषणों की भंकार हो रही है तथा उपरान्त उंगलियों में पहिने हुए बिजुआ और अनवट का भंकार हो रहा है जिसमें देखने वाले को आनन्द होता है। अंग २ में नवीन रंग के वस्त्र पहिने हैं, एवं नाना प्रकार के सुगंधयुक्त पुष्पों के हार व गजरा भृंगार रूप में धारण किए हैं। मुख की कान्ति रात्रि की चन्द्रिमा के समान शोभित है और स्वर कोकिला के समान मधुर है। इसी प्रकार अनेक उपमाओं को ग्रहण करने वाली रसना रंग की रेखाओं से भीगी हुई है। ऐसी प्रेम की विद्या जानने वाली और रसालरूप युक्त शंकर पार्वती ! आपकी जय हो ॥ १० ॥

सोरठा—कुमरि अंग कविराज, उभा उक्ति वर्णन कियो ।

सागर हरष समाज. पूजन लिया प्रवीणजू ॥ ११ ॥

इस प्रकार कुंवरि के अंग का वर्णन श्री उमाजी की उक्ति से कविराज ने किया जिसमे महाराज रससागर अति प्रसन्न हुए, फिर प्रवीण ने पूजा सामान लिया ॥ ११ ॥

अथ छंद भुजंगप्रयात.

शिव शीश पंचाम्रतं धार मंडे, उतै सिद्धमे वक्रद्रष्टी न छंदे । इतै चंदनं ईश शीशं चढ़ावै, उतै मित चितं अनंदं बढ़ावै । इतै बिल्वं पल्लवं शंभु धारे, उतै नैन की सैन नाराच डारे । इतै शंकरं धारितं फूलमाला, उतै मोहितं जोग चरित्र बाला । इतै कीन माहेश्वरं दीप धूपं, उतै हाव भावं

दिखावें सरूपं । इतै वाम कामा गुलालं अरुचा, उतै तापसं को लखावें चरुचा । इतै आरती राजकन्या उतारै, उतै नैन संन्यास अंगं निहारै । इतै दच्छना पान पूंगी धरावे, उतै मितको प्रेम पानं करावे । किये पूजनं ईश्वरं फेर बंदा, इतै मध्य बानी बदा ब्रह्म नंदा । शिवं रूप जोगेश को हार साजो, हमें सेव कीजे तहांलो विराजो । कुमारी गरे हार सिद्ध धराया, वही ब्रह्मनी अदही ब्रह्ममाया । लरामात से बत्त मत्ता बतावें, पढ़े वेदसां जानने कौन पावे । दुहुं चित्तकी जानके अभिमलाया, वह शिष्य ठाढो रहे द्वार शाखा । लगे मंदही मंद बत्ती उचारं, बड़े शोर से वेद ब्रह्मी पुकारें । लगे दोउ उच्चार पीयूष धारा, मनो प्रेम लेरं लगी पारबारा । कहा जानिये कौनसी बात भंवे, मनो अमृत की भूरी मेघ नंवे । वहै बातको भेद कोऊ न जाने, पढ़े ब्रह्मनी वेद एही प्रमाने । घरी दोयलों एह कीन्हों सयानी, इतें मांझ बोली सखी और बानी । नहां वेद के ब्रह्मनी पार तेरे, तुम्हें आउ जावें हमें ईश नेगे । वही बानी सो दंपती कान लागी, विजोगा गमी अंग में ज्वाल जागी । उमासी भरे नैन से बार झारा, दुरावें करें ब्रह्मनी धूप धारा । विछोहें विचारी दुहु प्राण तज्जें, इतैं बीच में गेव अवाज बज्जें । भवा ईश आवाज एही उच्चार, उभय चित में बात ऐसी न धारे । रितु पष्ट येही जगें सिद्ध आवें, तुम्हें कीजिये सोई जोई बतावें । एही बार आवाज काहु न पाई, वहे चारके चिन्त में धीर आई । दुहु ईश जोगीश को बंद फेरें । उठें बाल आई जहां चोक डेरें ॥ १२ ॥

एक तरफ श्री शंकर के मस्तक पर दुग्ध दधि आदि पंचामृत की धारा डालती है, दूसरी ओर निरुद्धी नजर से सिद्ध की ओर देखती है और जरा भी दृष्टि टूटने नहीं देती । यहां शिव-मस्तक पर चंदन करती है वहां मित्र के हृदय को आनन्दित करती है । इधर शिव के ऊपर बेल पत्र चढ़ानी है उधर मित्र के ऊपर कटाक्ष रूपी बाण छोड़ती है । इधर शिवजी को नाना प्रकार के पुष्पों की माला धारण कराती है, साथ ही अनि चरित्र वाली बाला रूप प्रवीण चतुर्गद से योगी को मोह उत्पन्न करती है । एक ओर श्री महाेश्वर को धूप दीप करती है दूसरी ओर योगी रूप महाराज को ताव भाव तथा स्वरूप दिखाती है

यहां अबीर गुलाल से शंकर की पूजा करती है उधर तपस्वी की चतुराई की चर्चा दिखाती है। जहां राजकन्या उमा महेश की आरती उतारती है वहां साथ ही साथ मंन्यासी के अंग का अवलोकन करती है। इधर दक्षिणा पान सुपारी रखती है उधर मित्र को भी प्रेम का पान कराती है। इस प्रकार पूजा की, फिर ईश-वन्दना किया, इतने में ब्रह्मनन्दिनी कुसुमावलि ने कहा कि इन शिव-रूप योगेश्वर को माला पहिनाओ और मैं जब तक पूजन करूं तब तक आप यहीं बिराजो। तब कुमारी ने मित्र के गले में माला पहिनाई। ब्रह्मपुत्री ने ब्रह्ममाया फैलाई अर्थात् युक्तिपूर्वक हाथ के इशारे से बात करने को कहा और स्वयं अभिवेक के लिए वेदपाठ करने लगी कि कोई उनकी बात सुन न सके। इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुष की अभिलाषा की कली देखकर जो शिष्य था उसने अपना आसन वहां से उठाकर द्वार के समीप जा खड़ा हुआ। इस तरह अवसर मिलने से वे दोनों प्रवीण और रससागर मन्द २ बातें करने लगे। कुसुमावलि ऊंचे स्वर से वेदाच्चारण करने लगी। उन दोनों के वार्तालाप में मानो अमृतसी धारा फूट पड़ी, मानो प्रेम का पागवार नहीं रहा। क्या जाने वे दोनों क्या बातें करने लगे, परन्तु ऐसा प्रतीत हुआ मानो वर्षाऋतु में अमृत झड़ी लग गई हो। इन बातों का भेद किसी को नहीं मिला अर्थात् किसी को कोई बात सुनाई नहीं पड़ी, क्योंकि ब्रह्मसुता जोर से मंत्र-पाठ कर रही थी। दो घड़ी तक चतुर सखियों ने चुप होकर सुना इतने में एक दूसरी सखी ने कहा, “हे कुसुमावलि ! ब्राह्मण के वेद का कोई पार नहीं” इसलिए अब आप बाहर आओ तो हम भी श्री शंकर के पास पूजा के लिए आवें। यह वचन जो उस दम्पति के कान में पड़े तो वियोग अग्नि की आग अंग में जल उठी जिससे दोनों ही उसास लेने लगे और आसुओं की बौद्धार का भरन भरने लगा। उसे छिपाने के लिए ब्रह्मकुमारी धूप, धारा और स्तुति के प्रपंच से देर लगाने लगी। इस समय वियोग पीड़ा वाले दोनों प्राणी प्राण छोड़ने का निश्चय करने लगे। इतने में आकाश वाणी हुई जिसमें भवानी और शंकर ने कहा कि तुम दोनों अपने चित्त में ऐसा दुःख वार्ता मत लाओ, क्योंकि छः ऋतु बीतने पर यहां एक सिद्ध आवेगा और वह जो बतावे वैसा करना। यह

गुप्त वाणी किसी और ने नहीं सुनी, परन्तु उसके प्रताप से इन चारों व्यक्तियों के हृदय में धैर्य आया । फिर दोनों व्यक्ति कुसुमावलि और कलाप्रवीण ने शंकर और सिद्ध को फिर वन्दनायुक्त नमस्कार किया और वहां से उठकर बाहर चौक में, जहां कि अन्तःपुर वाली रानियां थीं, आई ॥ १२ ॥

दोहा—एक मुहूर्त उपजती, दंपति चरचा कीन ।

कछु बरने संछेप करि, भारमि निज मुख मीन ॥१३॥

एक महर्त यानी दो घड़ी तक उस दम्पति ने हृदय में उपजे हुए आनन्द की चर्चा की, उसका वर्णन कविराज भारतीनन्द के मुख से गाए हुए वाणी में संक्षेप में करता है ॥ १३ ॥

तत्र प्रथम सागरोक्त, जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

श्रोत कछु न सुने बतियां, जब ते बतियां रस-प्रेम पिबायो ।

या रसना कछु और न जंपत, नाम प्रवीण प्रवीण पढ़ायो ॥

या मन और न चाहत है, जबते मन आपहि कैसे मिलायो ।

नैन कछु न निहारत हैं जबतें मुख चन्द्र जैसे दरसायो ॥ १४ ॥

जब से बात करके प्रेमरस पिया है तब से ये कान और कोई बात नहीं सुनते, जब से इस रसना ने 'प्रवीण प्रवीण' का पाठ पढ़ा है तब से और कोई जाप नहीं करती; जब से यह मन आप से मिला है तब से और कहीं मिलना ही नहीं चाहता है * और इन आंखों ने जब से चन्द्रमुख देखा है और कुछ देखना ही नहीं चाहती ॥ १४ ॥

दृष्टांतालंकार.

सीत हरी दिन एक निशाचर, लंक लई दिन एसेहि आयो ।

एक दिना दमयंति तजी नल, एक दिना फिरही मुख पायो ॥

* गुजराती टीकाकारने तृतीय चरण 'या मन.....मिलायो' का अर्थ गुजराती में नहीं किया है, उसे यहां पूरा कर दिया है । इतिदोष से रक्ष गया प्रतीत होता है । (हिन्दी अनुवादक)

एक दिना वन पांडव गे अरु, एक दिना छिति छत्र धरायो ।

शोच प्रवीण कछू न करो, करतार यहै विधि खेल बनायो ॥ १५ ॥

एक बार राक्षसों ने सीता-हरण किया जिससे ऐसा समय आया कि राम-चन्द्रजी ने राक्षसों का पराजय कर लंका जीती । एक दिन राजा नल ने दमयंती को त्याग दिया, फिर ऐसा दिन आया कि दोनों मिले और सुख भोग किया; इसी प्रकार पांडव एक दिन वनवासी हुए परन्तु फिर ऐसा दिन आया कि वे ही पाण्डव शत्रुओं को पराजय कर छत्रधारी हुए इसलिए हे मित्र प्रवीण ! शोक मत करो, विधना ने ऐसा ही खेल रचा है ॥ १५ ॥

विभावना अलंकार—दोहा.

मजनू चतुरानन बने, भेद लहे रस भीन ।

चतुरानन मजनू बने, घन दिन बहे प्रवीण ॥ १६ ॥

जो मजनू चतुरानन (ब्रह्मा) बने तो इसके भेदों को भली प्रकार ग्रहण करे और ब्रह्मा मजनू बने तो हे प्रवीण ! वह दिन धन्य है । मजनू एक लैली नामक स्त्री पर मुग्ध था अर्थात् सच्चा प्रेमी था और प्रेम की बात सच्चा प्रेमी ही जान सकता है ॥ १६ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

नैन उसास हियो भर आवत. वासर ऐसे किते भरिये ।

ले फिरियाद कहां फिरिये अरु, लाय लगे सो किमे लरिये ॥

जाय किधों गिरिये गिरि तुंगन, खाय किधों विषको मरिये ।

मित कछू उपचार बताइये, अंत प्रवीण कहा करिये ॥ १७ ॥

उमासों से हृदय और नेत्र भर आते हैं, ऐसे कितने दिन बितावें ? इसकी फिरियाद कहां करें ? अथवा लाय लगी है तो किससे कहें ? क्या किसी बड़े पहाड़ पर जाकर वहां से गिर पड़ें अथवा विष खाकर मरजायें ? हे मित्र प्रवीण ! कोई उपाय बताओ, आखिर को क्या करें ॥ १७ ॥

* मजनू का असली नाम केशर था, पागल की तरह रहने से इसे मजनू कहने लग गये ।

(पहपासिंह)

अथ कलाप्रवीण श्रीमुखचर्चा, द्रष्टांतालंकार-सवैया.

जैसेहि सागर डोंठ परे तुम, तैसेहि ध्यान हमेश रहों घर ।
गावत हों गुन गीत अहोनिश, आवत हैं अस्वियां हियरा भर ॥
कैसी करौं करतार की है गति, नाहिं मिले को उपाय कहुं कर ।
आपके पायन की सौं यहै विधि, गाय बंधी ज्यों कसायन के घर ॥१८॥

हे सागर ! जब से तुम दिखाई पड़े हां तब से हमेशा तुम्हारा ही ध्यान रहना है, तुम्हारा ही गुण गाती रहती हूं; जिससे हृदय और आंखें भर आती हैं । परमात्मा की गति विचित्र है कि कोई उपाय करने से भी मिलाप नहीं हो पाता, मैं आपके पांव की सौगंध ग्वाती हूं, मेरी वह दशा है मानो गाय कसाई के घर बंधी हो ॥ १८ ॥

जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

पायन बीच जंजीर जरे तब, कोउ उपाय चले न लिया की ।
बात कही न बनै सो कहुं प्रति, होस रही है हिवा में हिया की ॥
जो पल बीतत है हमको वह कैसे, कहां मुख से जो किया की ।
सागर नागर नागर हो यह, जानत हैं जगदीश जिया की ॥ १९ ॥

दोनों पावों में लोहे की जंजीर लगी हो तब खी का कोई वश नहीं चलता, यह बात किसी से कही नहीं जा सकती इससे मनकी मन में ही रहती है । इस प्रकार मुझ दुखियारी का जो पल बीतता है उसे किस प्रकार वर्णन करूं, मुख से कहा नहीं जाता । हे सागर ! आप चतुर के भी चतुर हो, परन्तु इन हृदय की बात तो ईश्वर ही जानता है ॥ १९ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

कोउ हनों करमें कर आयुध, केहरि व्याल करी मुख डारो ।
कोउ गिराओ गिरावर से कसि, बंध महा जल मध्य डुबारो ॥

कोउ धरो चिर हुंडन ऊपर, लोह को थंभ धगाय के जारो ।

सागर ना रसना से तजौ, प्रह्लाद के राम ज्यों नाम हितारो ॥ २० ॥

चाहे कोई शस्त्र हाथ में लेकर मारो, चाहे सिंह, साँप अथवा हाथी
के मुंह में डाल दो, चाहे किसी बड़े ऊंचे पहाड़ पर से पटक दो, चाहे बाँध-
कर अगाध जल में डुबादो, चाहे मिरके ऊपर कोई भी बाँध रखा दो, चाहे
लोहे के तप्त खम्भ से बांधकर जला दो, परन्तु मुख से सागर का नामोच्चारण
उसी प्रकार नहीं छोड़ सकती जिम प्रकार प्रह्लाद ने राम नाम नहीं छोड़ा ॥ २० ॥

सोरठा—चरवा यहै चलंत, बतियां फुनि औरें बनी ।

मिले मित अरु मित, चित इकंत सुख को चहै ॥ २१ ॥

इस प्रकार चर्चा चलने पर और भी कई बातों का प्रसंग चला। मित्र मे मित्र
के मिलने के कारण दोनों के चित्त में एकान्त की चाहना उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥

देवर चोक प्रवीण, राजत जहं मंडल रच्यो ।

सबहुं पूजन कीन, द्वे द्वे अंद्र प्रवेश किय ॥ २२ ॥

मंदिर के चौक में जहां मंडल बनाकर बैठे हैं वहां ब्रह्म वाला समेत प्रवीण
आई और फिर सबों ने दो २ करके श्री शंकर मंदिर में प्रवेश करके पूजन
किया ॥ २२ ॥

सवा जाम निशि जात, पूजन करि पीछे फिरे ।

उम अवमोचन आत, पावत नहि आराम छिन ॥ २३ ॥

सवा पहर रात जाते २ सब पूजन करके पीछे फिरे। वे स्त्री पुरुष दोनों
ही अपने २ उतारे पर आए परन्तु एक क्षण भी आराम नहीं पाते हैं ॥ २३ ॥

सर्बरी गई सयान, ज्वाल उभय बिरहा जरत ।

नीतिहिवाल विहान, कूच करन आयस सई ॥ २४ ॥

इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुष को विरहाग्नि की ज्वाला में रात बीत गई और सबेरा होते ही राजा नीतिपाल ने विदा की आज्ञा मांगी ॥ २४ ॥

सबै नृपति निज थान, प्रति संचर कीनो गमन ।

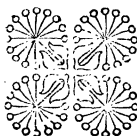
द्विज मंगन बहु दान, समर्पित सागर तहां ॥ २५ ॥

सब राजाओं ने अपने अपने स्थान को गमन किया और महाराज रससागर ने ब्राह्मणों और याचकों को नाना विधि दान दे संतुष्ट करके विदा किया ॥ २५ ॥

गाहा-सागर कलाप्रवीण, शिवथानक श्रीमुख चरचा ।

अष्टत्रिंश अभिधानं. पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २६ ॥

सागर कलाप्रवीण की शिवमंदिर में श्रीमुख से हुई चर्चायुक्त यह प्रवीणसागर ग्रन्थ की अड़तीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २६ ॥



लहर ३६ वीं

अथ दंपतिषट्शतु विरह प्रसंगो यथा—दोहा.

बीतत सब निज थान मति, भो पूरण अभिषेक ।

उसे रहे सिध ओध लग, रससागरहि नरेश ॥ १ ॥

शंकर-प्रतिष्ठा का अभिषेक पूरा होने पर सब लोग अपने २ स्थान को गए, परन्तु कुमार रससागर सिद्ध के आने की अवधि तक वहीं शिवमंदिर में ही रहे ॥ १ ॥

इत यह तलफत मित बिन, त्यों उत कलाप्रवीण ।

आवत एकहि एक प्रति, पख धर पत्र प्रवीण ॥ २ ॥

यहां जिम प्रकार प्रिय मित्र बिना महाराजा रमसागर तड़फते हैं वही गति उधर कलाप्रवीण की भी है इसलिए प्रत्येक पखवाड़े में एक २ नवीन पत्र एक दूसरे के आते हैं ॥ २ ॥

षट रितु विरह प्रवीणजू, वरनी कवित बनाय ।

सो पाती सागर बंची, उदाहरण कहें ताय ॥ ३ ॥

कलाप्रवीण ने विरह की छत्रों शतु कविता बनाकर वर्णन की और उसे पत्रद्वारा सागर के पास भेजा उसका उदाहरण कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ शब्दालंकारे पदछेकानुपास, तत्र प्रथम शरद-शतु भेद—कवित्त.
सागर सरद सर, सरिता सलील स्रवें, सुभग समीर सीत, सरस सरस
ससि । हुलसत हंसो हंस, हलके हवाई होत, होस हिय हेरे हितु, हरसि
हरसि हंसि । कमल कुमोद कुल, कलिका कलाकलीत, कंथ विन कामा
काम, करसि करसि कसि । दादुर दबकि दोर, दामिनि दुरायें दुम, दी-
रघ दिखाये दल, दरसि दरसि दिसि ॥ ४ ॥

हे रससागर ! शरद-शतु में सरोवर और नदियों में निर्मल जल के
फरने फरते हैं, मधुर और शीतल पवन की सुन्दर लहरें मन्द २ बहती हैं, एवम्

अमृत से भरी हुई शीतल किरणों से युक्त चन्द्रप्रकाश शोभायमान है, हंस और हंसनियां कलोल करती हैं और उनके कंठ से आनन्ददायक मधुर स्वर निकलते हैं, हौमले वाले हितूजन हृदय में अति हर्षित हो परस्पर एक दूसरे को देखकर हंसते हैं, कमल और कुमुदिनी की कलियाँ एक दूसरे के समीप आजुड़ गई हैं, ऐसे समय में प्रियतम के वियोग वाली कामिनिओं को रविनाथ शोषण करते हैं, दादुर (भेंडक) दबक गये हैं, बिजली छिप गई है, वृक्षों के बड़े २ पत्ते निकल आए हैं, सब दिशाएं निर्मलता से दीखने लगी हैं ॥ ४ ॥

पदछेकानुप्रास—वर्णनालंकार—कवित्तकार, हेमन्त-ऋतु भेद.

सुर स्रवे भीत, सीतकर सो सुभाव सीत, सीतल समीर सब, सरित स-
रित मित । गंगा के गहन गूढ़, गौरव गुफान गहि, गोचर गगनचरकी,
गरित गरित गति । मुरझायें मीन माधवी, न मडरायें मधु, मनोज मोद
मलित मलित मित । लेखियत ललिता, लुलोन जो लहें न लाल, लहरि
लगाय लाय, ललित ललित लति ॥ ५ ॥

हेमन्त ऋतु में मृत्यु शीतलता डालने लगता है, चन्द्र मानो स्वभाव से ही शीतल है, हवा भी शीतल आती है, सब नदियां भी शीतल श्वेत हो गई हैं, गंगा के ऊपर के जंगल की शुद्ध भूमि में और पर्वत की गुफाओं तथा पृथिवी और आकाश में फिरने वाले प्राणी शक्तिता से गति करते हैं, पानी में मछलियां मुरझाई हुई हैं, माधवी लता पर भंवग फिरता नहीं है, सुन्दर कामदेव के आनन्द से मित्र के साथ मित्र परस्पर मिलते हैं (अर्थात् दिवाली के कारण आने जाने से स्त्री पुरुष मिलते हैं) ऐसे समय में जो स्त्री पति को न पावे तो जिस प्रकार लू में लीन हुई लता होवे, वही दशा वह स्त्री अपनी मानती है । और जिस प्रकार लता को आंच की लहर लगने से मुरझा जाती है वही दशा हमारी है ॥ ५ ॥

पदछेकानुप्रास—वर्णनालंकार—कवित्त शिशिर-ऋतु भेद.

जुग जाम जामनी के, जानते वियोगी जन, जरे जोग जम्भो जमी, जल-
हि जलहि जहि । दुर्गम दिशान देख, दिन प्रतिदिन देव, दंपति दहै

है देह, दलहि दलहि दहि । अंग अंग उठे आग, अमल अनंग ऐसे,
अजहु न आये इत, अलहि अलहि अहि । चकवा न पूरे चाह, चातुकी
चकोर चुप, चंचल भयो है चित्त, चलहि चलहि चहि ॥ ६ ॥

शिशिर ऋतु की रात के हर एक पहर को वियांगी जुग के ममान जानता है । और जिस प्रकार पृथ्वी पर इकट्ठा हुआ पानी धीरे २ क्षीण हो जाता है वैसे ही वह भी क्षीण होता है । वह दिशाओं का दुर्गम अर्थात् जान सकने योग्य देवता है, दिन प्रतिदिन हिमदेव दम्पति के शरीर को जलाता है, और घृक्ष के पत्ते पत्ते को भी जलाता है । कामदेव का अमल ऐसा है कि जिम्मे प्रत्येक अंग में आग उठती है । हे मन्वी ! हमारा भांगी भंवरा अभी तक आया नहीं, चकवा की चाहना पूरी हुई नहीं अर्थात् छोटा दिन होने में जल्दी ही अस्त हो जाता है । पपीहा और चकोर चुप हो गये हैं और मेरा चित्त पति के पास जाने को चंचल हो रहा है ॥ ६ ॥

पदछेकानुप्रास वर्णनालंकार यथा, वसंत-ऋतु भेद कवित्त.

बकुल वसंत बेल, बरवा बदाम बट, बोलत बिहंग वृन्द, बगन बगन बन ।
माधवी मधुक मल्लु, मंजर महोर मंडि, मधु मकरंद मोद, मगन मगन मन ।
प्रमदा परस पानी, परश प्रकाश प्रेम, पलटें परमपंथी, पगन पगन पन ।
दंपति दिशोही दिश, डोरत न दुरें देह, दिन छिनदा न दोऊ, द्रगन द्रगन दिन ॥ ७ ॥

वसंत ऋतु में बोरसरी, वसंतिका, मरवा, बादाम और बट मोगरा आदि प्रफुल्लित हो रहे हैं और उन पर पक्षियों के वृन्द के वृन्द वाग और वनों में मधुर स्वर से बोलते हैं । माधवी लता, मल्लिका आदि वृक्षों की मंजरियों तथा आम के मोर के ऊपर भंवरा मंडरा कर गुंजार रहे हैं और इन पुष्पों के रस को पान करके हर्षित हो रहे हैं स्पर्श करने का प्रेम उमंड आने से प्रमदा (कामिन) के कर को स्पर्श करने के लिए विदेश गए हुए पथिक जन अपने देश की ओर आने को पग पर पग मार्ग काटते आ रहे हैं; दिशा २ में दम्पति

अर्थात् स्त्री पुरुष अतृप्त दौड़ते रहते हैं, और रात दिन मौन के कारण आंख मीचे निद्रा भी नहीं लेते हैं ॥ ७ ॥

पदच्छेकानुप्रास वर्णनालंकार, ग्रीष्म-ऋतु भेद-कवित्त.

वन वन विलखि, विषधर विहंग बड़, वासर विषम वाय, बगर बगर
बर । डंगर डिगंबर में, डारत डमर डार, डोलत हैं डंड वारे, डगर
डगर डर । नलिका निदाघ नीर, नलिन न बिन वन, निलय निवासी
नीठ, नगर नगर नर । समर समर सर, सायक सरामन ले, सधत सधत
साधें, सगर सगर सर ॥ ८ ॥

ग्रीष्मऋतु में दिन में ताप की विशेषता से वन में विषधर सर्प और पक्षी
विलखते हैं और दिन भी बड़ा होता है, चारों ओर विषम वायु फैलकर जोर से
बहती है; वनस्पति के मृग्य जाने से पर्वत दिगम्बर नग्न की भांति दीग्यते हैं ।
वृक्षों की शाखायें पत्तों का आडम्बर छोड़ देती हैं जिससे दंड के समान वृक्ष
राम्ने पर भयंकर रूप में हिलते हैं । ताप से जल की रेखा भी नहीं रहती
अर्थात् पानी का प्रवाह टूट जाता है । जल के न होने से कमल भी नहीं है
अर्थात् मृग्य गया है । ग्राम २ में मनुष्य घरों में घुसकर कठिनता से दिन
काटते हैं । ऐसे समय में कामदेव और सूर्य धनुषवाण लेकर युद्ध साधते २
सब ओर अचूक वाण फेंकते हैं ॥ ८ ॥

पदच्छेकानुप्रास वर्णनालंकार, वर्षा-ऋतु भेद-कवित्त.

फूलन चढ़े हैं फंद, फरकें न फूल फल, फहेलत पौन फूल, फहर फहर
फरि । गावत मयूर गण, गाढ़ी गाढ़ी गहे गति, गगन की गाज गोप, ग-
हर गहर गरि, सागर सरीत सर, सुभर सलील सब, सुरग्वी तडित
श्याम, सहर सहर सरि । थरर थरर कुंद, थलन थलीन थित, थकि थकि
पंथी पर, थहर थहर थरि ॥ ९ ॥

वर्षा के दिनों में फूल तथा फल के ऊपर जलके वे कारण जाला सी
बन जाती हैं जिससे वे फरक नहीं सकते, परन्तु फिर जब हवा चलती है तो

फल और फूल फर्र फर्र फरकते हैं । मोर के समूह गंभीरता से गायन करते हैं, और गगन में गड़गड़ाहट के साथ मेघ-गर्जना होती है । इतना ही नहीं, प्रत्युत घोर गर्जना की गड़गड़ाहट करते २ बरसने लग जाते हैं । हे रमसागर ! इससे नदी सरोवर आदि जलाशय पानी में जलमय हो जाते हैं और मुख्य तथा चमकारा करती हुई बिजली से युक्त काली घटाएं नगर २ पर फैलती जाती हैं । कुंद, कमल और कमलिनी थर २ कांपते हैं । यात्री थक २ कर वर्षा के कारण उत्तम स्थलों में स्थिर हो जाते हैं ॥ ६ ॥

सहोक्त्यलंकार, पद-ऋतु समग्र भेद-कवित्त.

शरदकी चांदनीधी, प्रगटी सुरत जोत, बोलत वचन तुत, रात एंहे हे हिमंत । शिशिर को साज सो तो, रामको भयो समाज, प्रेमको प्रकाश जैसी, फूली है प्रभा वसंत । विरह प्रलाप हिये, ग्रीष्म तपत ताप, नैनन के आँखु नोर, ब्रषा के प्रवा बहंत । पद-रितु अंग अंग, आजही बनी है मेरे, कीन रितु आवन की, सागर तुम बर्दंत ॥ १० ॥

शरद् की चांदनी के समान ध्यान-ज्योति प्रकट हुई है जिससे वचन बोलने समय तोतलापन प्रकट होता है, यह हेमन्त की गत हैं । शरीर के राम २ खड़े हो गए हैं, यह शिशिर ऋतु का चिह्न प्रकट हो रहा है । प्रेमका प्रकाश है वह मानो वसंत ऋतु की प्रभा खिली हो; हृदय में विरह का प्रलापरूप ग्रीष्म का ताप तप रहा है । नेत्रों से आँख का प्रवाह सो मानो वर्षा ऋतु का जलप्रवाह बह रहा है । हे मित्र ! इस प्रकार छत्रों ऋतुएं आज मेरे अंग में बस रही हैं, सो अब हे सागर ! आप किम ऋतु में आने का निश्चय करने हो ॥ १० ॥

सहोक्त्यलंकार-सवैया.

चंद भयो दरदी शरदें, सु हिमंत समीर सिखी सम लेखो ।

शीत शरीर सबै तन तावत, दाहत कुंज वसंत विशेषो ॥

ग्रीष्म ताप तपे विरहा पर, बुंद वृषा अखियाँ अबरेखो ।

सागर एक दिना इत आयके, नागर हिमंत किमंत देखो ॥ ११ ॥

आज शरद्-ऋतु का प्रकाशित चन्द्र विरही जनों को दुःखरूप ही हो रहा है । हेमंत की मधुर पवन की लहरें अग्निज्वाला के समान होरही हैं । शिशिर ऋतु की शीतता मानो सब शरीर को जला रही है और विशेषरूप से वसंत ऋतु में कुंजलताएं प्रफुल्लित होकर यौवन पानी हैं सो तो इस हृदयरूपी कुंज को और भी अधिक जलाती हैं । हृदय के विग्रहरूपी ताप को यह ग्रीष्म का ताप और भी बढ़ाता है, और वर्षा के बूंद तो आंग्वां की वर्षा के सामने व्यर्थ हो रहे हैं । हे चतुर मित्र सागर ! एक दिन यहां आकर हमारी हिम्मत (साहस) की कीमत को देखा ॥ ११ ॥

सहोक्त्यलंकार-सवैया.

याहि त्रषा बगमें अमुषा शशि, शारद प्रेम प्रभा भरि श्रावतु ।
सोय शिशिर अमें बरुनी मिय, हेम सु जाम रही अषिया सितु ॥
लाल वसंत प्रमून प्रफुल्लित, ग्रीष्म जो विरहा भर बाढतु ।
सागर मित पयान कियो इन, नैन में आन छही षटहू वितु ॥ १२ ॥

इन आंग्वां में जो आंसुओं की धारा बहती है वही मानो वर्षा-ऋतु है । प्रकाशित प्रेम की प्रभा जो उमड़ती है वही शरद्-ऋतु की चंद्रिका से मानो अमृत वर्षा वाली है । पलकें थरक २ कर कांपती है सो मानो शिशिर-ऋतु की सामग्री है और जो आंग्वं स्थिर होकर ठिठ जाती हैं वे हेमंत-ऋतु का प्रकट करती हैं । इन आंग्वां में जो लाली है वह मानो वसंत-ऋतु में फूले हुए पुष्प हैं । बिरहाग्नि की ज्वाला ही मानो ग्रीष्म-ऋतु है । हे जीवन-आधार सागर ! जब आप पधारे (अलग हुए) तब मे छत्रों ऋतुओं ने आकर आंग्व में निवास कर लिया है ॥ १२ ॥

यथासंख्यालंकार सागर प्रत्युत्तर भेद-सवैया.

हेम शिशिर वसंत सु ग्रीष्म, और त्रषा शरदी जु मिलायें ।
घोस नलीन त्रषा निशि तापन, बारद ज्यों घट धीर घटायें ॥
रैन समीर लता दिन दामिनि, चंद्रकला ज्यों अनंग बढ़ायें ।
मित प्रवीण प्रवीण अहो निश, जंपत हि षटहू रितु जायें ॥ १३ ॥

हेमंत शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा और शरद इन छुआँ ऋतुओं को मिलते हैं अर्थात् ऋतु के अनुक्रम में हेमंत का दिन, शिशिर का कमल, वसंत की लाज, ग्रीष्म की रात्रि, वर्षा का ताप और शरद की वर्षा घटती है इसी प्रमाण से मेरे शरीर में धैर्य घटना है और इसी प्रकार ऋतुओं के अनुक्रम से हेमंत की रात्रि, शिशिर का पवन, वसंत की लताएं, ग्रीष्म का दिन, वर्षा की बिजली और शरद का चन्द्रमा जैसे बढ़ने हैं उसी प्रकार अनंग की वृद्धि होती है। हे मित्र ! हमारे को आहर्निश “हे प्रवीण, हे प्रवीण” जपने में ही छुआँ ऋतुएं आती हैं ॥ १३ ॥

विकल्पालंकार-सवैया.

चाह प्रवीण घटी न मिटी, निकटी पल आवत राह चले की ।
फेर बने न कहुँ मिलबो तब, चात सबै यह भाग भले की ॥
आन बने तो सही है नहीं तब, होस अहो निश पान मिले की ।
ऐसे रखो तो भयोई असूकम, बार जियो वपुरो निकले की ॥ १४ ॥

मित्र प्रवीण के मिलने की चाह तो घटती नहीं और चलने की प्रतीक्षा का समय समीप आता जाता है, फिर कहीं मिलना होगा नहीं तो यह सब बान भाग्य की ही समझना चाहिए ! आना होवे तब तां ठीक ही है नहीं तो अह-निश पत्र के मिलने की ही आशा रहती है; परन्तु अब ऐसा ही होगा तो प्राण कांपता ही है, विचारे जीव को ही शरीर में से निकल जाने की देरी है ॥ १४ ॥

विशेषोक्त्यलंकार यथा-सवैया.

या पलही पलही तलफें तन, ताबिन तोबिन के रूप जैसे ।
पंथ थके सु मनोरथ के मुख, जात मनो शशि सूर उदैसे ॥
ज्वाल कराल जगी उर भीतर, कौलों निभाव बने अब ऐसे ।
नीति की रीति प्रवीण नहीं तब, बयो करिये भरिये दिन कैसे ॥ १५ ॥

पानी की मछली जिस प्रकार पानी के बाहर तड़फती है उसी प्रकार यह काया तुम्हारे बिना तड़फती है अर्थात् जिस प्रकार मछली “पानी पानी” जपती है उसी प्रकार मैं भी ‘प्रवीण प्रवीण’ जपा करता हूँ। मनोरथ के मार्ग में

फिर २ कर मन थक गया है । मुख की ज्योति इस प्रकार निस्तेज होगई है जैसे सूर्य के उदय होने से चन्द्रमा की कान्ति पाताल में चली गई हो । हृदय के भीतर महा कराल ज्वाला प्रकट होरही है फिर इस प्रकार कब तक निर्वाह हो सकता है ? हे प्रवीण ! नीति की रीति जानते नहीं फिर लाचारी है, क्या करें और किम प्रकार दिन बितावें ॥ १५ ॥

अथ गुंफालंकार-कवित्त.

जानहु की जान ताको, जानत प्रवीण नाहिं, जानिहो प्रवीण तोपे, जान-
हि गमाइये । चितकी न जानो मित, मितकी न जानो चित, चितकी जो
जानो मित, और कहा चाहिये । वेदको न लहो भेद, भेद को न लहो
वेद, वेद भेद लहो तो, अभेद है निभाहिये । देही के सनेही की, न नेही
बात जानत हो, नेही येही जानो तोपे, देहको न दाहिये ॥ १६ ॥

हे प्रवीण ! जो जानने की आवश्यकता है उसे जानते हुए भी तुम प्रवीण नहीं, परन्तु उसे जानने में ही प्रवीण हो, अर्थात् समय विचारों तो तुम्हारे ऊपर जान गवाड़ें । हे मित्र ! इस चित्तकी बात को तुम नहीं जानते एवं मित्र के चित्त को भी नहीं जानते । हे मित्र ! जो चित्त की बात जानो तो फिर और क्या चाहिए ? वेद के भेद (अर्थ) को समझते नहीं परन्तु वेद भेद दोनों ही प्राप्त करो तो अभेद होकर निभावें । हे मित्र ! जीव के स्नेही की बात को जानते नहीं, परन्तु हे स्नेही ! जो नेह की बात को जानो तो तुम्हारे ऊपर शरीर को क्यों न जलावें ॥ १६ ॥

अथ छेकोक्त्यालंकार-सवैया.

ध्यान प्रवीण प्रवीण लग्यो गुन, गान प्रवीण तजे न कबेही ।
कोउ दिना पल एक बन्यो सोउ, जान नहीं गुजरी सु जबेही ॥
होन को कौन मिटावनहार है, ऐसी लही है निसानि सबेही ।
ता दिनसे नित डोलत बाउरे, सोवे सु खोये जमार सबेही ॥ १७ ॥

ध्यान तो 'प्रवीण-प्रवीण' में ही लगा रहता है और प्रवीण के गुण गायन को कभी छोड़ता नहीं, किसी दिन कोई एक पल भी ऐसा आया और बीत गया, ऐसा ज्ञान नहीं है। होनहार को मिटाने वाला कौन है ? यही सब निशानियां प्राप्त की हैं परन्तु उस दिन से सदा पागल की भांति डोलता फिरता हूँ और 'जो सोया उसने खोया' की कहावत के अनुसार सोने में व्यर्थ समय गंवाने वाले की भांति मेरी दशा है ॥ १७ ॥

अथ द्रष्टांतलकारो यथा—सवैया.

पहिचान प्रवीण भई जबतें, तबतें चित प्रेम प्रभा छबि जागी ।

ढबती उर आस उदास चली यह, जंपत पास बसैं बड़भागी ॥

निशवासर बीतत हैं बिकटे निकटे, न प्रिया हिय है अनुरागी ।

घन गाज इते पर यातें जिया ग्रह, बाज कबूतर की गति लागी ॥१८॥

हं प्रवीण ! जिस समय से आप के साथ बातचीत हुई है उसी समय से चित्त में प्रेम के प्रभाव की छवि जागृत हुई है, तथा उर में आशा और उदासी बढ़ते रहने से निरंतर यही भावना रहती है, कि पास में रहने वाले बड़भागी हैं। हमारे तो रात दिन महाभयानक बीतते हैं, पास में प्रिया नहीं परन्तु हृदय तो बहुत ही अनुरागी बन रहा है। ऊपर भेघ गर्जता है जिससे इस जीव की दशा पकड़े हुए कबूतर की सी हो रही है ॥१८॥

अथ सुधापन्हृत्यलंकार—दोहा.

पावस वाजीगर प्रबल, डोरूँ गाज अवाज ।

बिरही मन बदलत बटा, जिय कपोत ग्रह बाज ॥१९॥

* यह अनुवाद गुजराती टीका का है, परन्तु हमारे विचार से यह अर्थ ठीक नहीं, 'ग्रहबाज कबूतर' का अर्थ 'पकड़ेला कबूतर' नहीं प्रत्युत 'गिरहबाज कबूतर' यानी गिरह लगाने वाला कबूतर' होना चाहिये। गिरहबाज कबूतर एक प्रकार का होता है जो बड़ी ऊँचाई तक गिरह लगाता चला जाता है यहां तक कि बादलों में छिप जाता है। इस अंतिम चरण का अर्थ हृष प्रकार होना चाहिये 'इस जीव की वह दशा हो रही है जो बादल गर्जना के समय गिरहबाज कबूतर की हो जाती है' अर्थात् ऊपर भयानक गर्जना हो रही है फिर भी आदत के बशीभूत वह ऊपर चला ही जाता है। (हिन्दी अनुवादक)

यह मेघ नहीं, बल्कि बलवान् बाजीगर है। और यह मेघ गर्जना की आवाज नहीं बल्कि बाजीगर का डमरू बजता है, यह बादल की घटा का रंग नहीं बदल रहा है, यह तो विरही का मन रंग बदल रहा है अर्थात् लाल से पीला और पीला से लाल रूप हो जाता है। इसी प्रकार यह कोई बाजने कबूतर को नहीं पकड़ लिया है यह तो जीव ही पकड़ा गया है ॥ १९ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

प्रेमको प्याला पियो भरके हम, या सुख जान पयों न तबै ।

कैफकी ज्वाल जगी घट भीतर, कोटि प्रकार किये न दबै ॥

जानहिं गो न अजान कहें कछु, जानत जानत हारे सबै ।

पथ्य न पावहिं जु प्रवीण तो, कौन उपाय करेंगे अबै ॥ २० ॥

हमने जिस समय प्रेम का प्याला भरकर पिया उस समय हमें इस सुख का पता नहीं लगा। परन्तु अब जब कि घट के भीतर कैफ (नशा) की ज्वाला प्रकट हुई है तो करोड़ उपाय करो दबती नहीं। अजान मनुष्य कहने से जान नहीं सकता, इसे तो जो जानने वाला है वही जान सकता है। इसलिये प्रवीण रूपी पथ्य को जो न पावें तो अब क्या उपाय करें ॥ २० ॥

अथ असंभवालंकार-कवित्त.

जियरा अजान ताको, प्रेम पहिचान परी; तादिन से भई सो तो, सबै बात सहिये। आगमन बूझ बूझ, किये है नज्म कूरे; मनकी तरंग ही सोगन मुरझाय रहिये। रैनही न नींद नैन, दिनहीं न परै चैन; अजहूं न मित मिले, कैसे कै निबाहिये। बार बार क्यों कहें, प्रवीणजू विचार देखो; कहबेकी नहीं सो तो, कौन ही पै कहिये ॥ २१ ॥

जो जीव अजान था उसे प्रेम की पहिचान हो गई, उस दिन से जो कुछ आया उस सब को सहन कर रहे हैं, भविष्य पूछ २ कर ज्योतिषियों को भी झूठा कर दिया है। अब तो मन के संकल्परूपी तरंगों में ही मुरझा रहे हैं, रात्रि में नेत्रों में नींद नहीं आती, दिन में चैन भी नहीं पड़ता। इतना होने

पर भी अभी तक मित्र मिला नहीं तो फिर किस प्रकार निर्वाह करें ? बार २ क्या कहें ? हे प्रवीण ! विचार कर देखो, जो अन्य को कहने का नहीं उसे किसे कहें ॥ २१ ॥

अथ समरूपकालंकार—दोहा.

तन बन की लकरी बन्यो । प्रेम सूत्रकी धार ।

बिरहा को आरा किये, खँचत काम सुतार ॥ २२ ॥

यह शरीर तन की लकड़ी के समान बना है, उसे प्रेमसूत्र की डोरी लगा कर बिरहरूपी धागे से रतिनाथ रूपी चतुर सुनार खींचा करता है अर्थात् चीरा करता है ॥ २२ ॥

मन पंखा सुरता लटी, कसै मित गुन तार ।

प्रेम झुलावनहार इन, बाढ़े बिरह बयार ॥ २३ ॥

मनरूपी पंखा को सुरतरूपी डंडी में मित्र के गुणरूपी तार से कस कर प्रेमरूपी झुलाने वाला ज्यों २ झुलाता है त्यों २ बिरहरूपी पवन बढ़ कर बहता है अर्थात् भोंका लेता है ॥ २३ ॥

तन चौकी मध मनमुकुर, प्रेम कलहियां दीन ।

लखि मुख आनन सो लहो, परसत दरस प्रवीण ॥ २४ ॥

तनरूपी चौखटे के बीच में मनरूपी काच पर प्रेमरूपी कलई देकर फिर हाथ में लेकर मुंह देखते हैं तो उस में प्रवीण की ही छवि दिखाई पड़ती है ॥ २४ ॥

गाहा—षट्श्रुतु वर्णन भेद, पत्र प्रवीण तामु प्रति उत्तर ।

उनचालीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

छहों श्रुतुओं के वर्णन का भेद वाला, प्रवीण का लिखा हुआ मंत्र और फिर उनका महाराजजी का दिया हुआ उत्तर जिसमें है ऐसी यह प्रवीण-सागर की उन्तालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

४० वीं लहर ।

अथ कलाप्रवीण बसंतविह्वर्णन प्रसंगो यथा—दोहा.

ऋतु बसंत वरषा बहुरिः अति विरहा दुख दाय ।

बीती दशा प्रवीण बह, सागर लिखी बनाय ॥ १ ॥

बसंत और वर्षाऋतु बहुत करके विरही जनों को अति दुःख से बीतती है, उन दो ऋतुओं में अपनी बीती हुई दशा का वर्णन बना कर प्रवीण ने महाराज की ओर पत्र द्वारा लिख कर भेजा ॥ १ ॥

अथ तत्र प्रथमकलाप्रवीण बसंतविरहवर्णन, संभावना-
लंकार—सवैया.

धार्वाहिगे मलयाचल मारुत, रावहिगे मधु कंज लटेंगे ।

छावहिगे नवपल्लव कुंजन, सावहिगे सु-सुरंज छटेंगे ॥

गावहिगे जु हिंडोर गुजीजन, भावहिगे रसरंग बटेंगे ।

लावहिगे सिगरे सुख सागर, आवहिगें तो उदास मिटेंगे ॥२॥

इम बसंत ऋतु में मलयाचल के तरफ की वायु दौड़ कर सन्-सन् करेगी, भंवरे गुंजार करेंगे, गिले हुए कमल पृथ्वी पर लोट जावेंगे, नये पत्तों से लतामंडप छा जायगी, पुष्प रसकी फुवाँ छूटेंगी, गुणी लोग हिंडोल राग गावेंगे और मनवांछित रस-रंग रचेंगे । इन सब सुख-कर वस्तुओं को लेकर प्राणात्मा रमसागर आवेंगे तभी उदासी मिटेगी ॥ २ ॥

अथ मालादीपिकालंकार—कवित्त.

बन घन छई बेल, घन तन रच्यो खेल, तन मन चहे केल, मन जन ये धरहुं । चर थिर मोद अंग, थिर तर फूल अंग, तर दर नए रंग, दर इन छे करहुं । भल मिल कोक पंत, मिल चल मंत मंत, चल दल भयो चंत, दलहुं न बीसरहुं । द्रग लग रहे आप, लग मग हरो ताप, मग सगरे प्रलाप सागर सदा हरहुं ॥ ३ ॥

बन में घनी बेलों का मंडप छा रहा है, गगन और शरीर में खेल रहा है जिससे मन रमण की इच्छा करता है, इस बात को हृदय में धरो ! स्थावर और जंगम के जीव मोद से प्रफुल्लित हैं, स्थिर वृत्तों के पुष्पों में भंवरा गुंजार करता हुआ इधर-उधर भ्रमता है, छोटे और बड़े वृत्तों में भांति २ के नवीन रंग के पत्ते खिल रहे हैं, इसलिए ऐसे महाभारत के संकट के दिन का नाश करो। चकवा का झुंड का झुंड फिरने लगा है इसी प्रकार मित्र मंडल भी मंडल बना बना कर फिरने लगा है, जिसे देख कर मन पीपल के पत्ते की भांति चंचल हो रहा है। इस बात को आप दिल से भुला मत देना, दृष्टि आप पर ही लगी हुई है अतः मार्ग पर आकर ताप दूर करो। हे सागर ! सर्व मार्ग से तमाम प्रलय सदा हरो ॥ ३ ॥

अथ दीपिकावृत्ति अलंकार, तीसरा भेद—सवैया.

कुंज लताएं प्रसून भरे पुनि, भृंग पराग भरे पंखियां में ।
कोकिल बाग सुहाग भरे अरु, फागन राग भरे सखियां में ॥
केसर कुंभ गुलाब भरे हैं, अर्बीर गुलाल भरे अखियां में ।
आस उसास उदास भरे अति, सागर बैठ रहों दुखियां में ॥ ४ ॥

कुंज की लताएं अपने पुष्पों को भरती हैं, अमर अपने पंख में पुष्पों के पराग भरते हैं, बाग में कोयल अपनी सुहावनी आवाज़ भरती है, सखियां अपनी सहेलियों में बसंत राग भरती हैं, लोग केसर तथा गुलाबजल के कुंभ भरते हैं और आंखों में अर्बीर गुलाल भरते हैं। अर्थात् परस्पर रंग गुलाल खेलते हैं जिससे आंखों में भी भर जाता है। ऐसे समय में हे सागर ! आशा और उदासी में निश्वास लेते हुए दुःख में ही बैठी रहती हूं ॥ ४ ॥

अथ स्मृति अलंकार—सवैया.

अंबन अंबन कोकिल कूजित, कीर अनारन पै अवरेखो।
हुंमन हुंमन बेलि चाढ़ि अरु, माधवि कूद मधूपन पेखो ॥
शीतल पौन सुवास मिले जितही, तित प्रेम भरे सब लेखो ।
पांथक जाय कहो इत आउरे, सागर बाग बसंतको देखो ॥ ५ ॥

आम के पेड़ों पर कोयल और अनारवृक्षों पर मुवा दीम्बते हैं, पेड़-पेड़ पर बेल चढ़ी है और माधवी कुंद के ऊपर भीरों गूजते दिव्याई पड़ते हैं, सुगंधित शीतल मंद पवन की लहरें चल रही हैं, जहां जो मिलता है वह सब प्रेम-रस से भरे हुए ही हैं ऐसा प्रतीत होता है, हे पथिक ! तुम जाकर सागर से कहो कि यहां आकर जो बसंत का बगीचा खिल रहा है उसे तो देखें ॥ ५ ॥

अथ एकावल्यलंकार—कवित्त.

उपवन अंबरमें, चंद कुंद सोहियत, कुंद अरु चंदहूं में, मयूख लता लसंत । लतामें मयूखी में, प्रकाश फूल फैल रहे, फूलमें प्रकाश में जु, पौन माधुरी प्रसंत । माधुरी पवन मध्य, सीतता मधूप सूर, मधुसूर सीतमें, मनोज विरहा धसंत । विरहा मनोज मन, तनमें बसंत नित, तन मन सागरमें, सागर बिना बसंत ॥ ६ ॥

उपवन और आकाश में चन्द्रमा तथा कुंद शोभित है, कुंद और चन्द्रमा में चन्द्र-ज्योति और लताएं दीप्तिमान हैं, लता और चन्द्रज्योति में प्रकाश तथा पुष्प प्रसरित है, पुष्प तथा प्रकाश में पवन और माधुर्य विलरित है, माधुर्य और पवन में शीतलता तथा भ्रमर गुंजार तथा शीतलता में मन्मथ और विरह प्रविष्ट हैं, वह विरह और मन्मथ सदा मन और तन में बसते हैं और मन व तन सागर में बसते हैं, यहीं सागर के बिना बसंत ऋतु है ॥ ६ ॥

अथ मालादीपिकालंकार—सवैया.

कुंज लतान प्रसून भरे हैं, प्रसून पराग भरे तन भ्रंगन ।

बागन बागन अंब-महोरित, अंबन अंबन कोकिल कुंजन ॥

धामनि धामनि कामनि कंथ, रमे कसमीर गुलाल अबीरन ।

मित बसंत हसंत सबै गहि, मौन एकन्त रहे विरही जन ॥ ७ ॥

कुंजलताओं में पचरंगी फूल भरे हुए हैं, उन फूलों के पराग को भंवरे अपने शरीर में भरते हैं, बाग-बाग में आमों की बहार है और आम-आम पर कायल टटुकारती है, धाम-धाम में कामिनियां कंथ के साथ में परस्पर काशमीरी

अबीर और गुलाल से रंग रलियां करती हैं, हे मित्र ! ऐसे बसंत ऋतु में सब लोग हंसते हैं परन्तु केवल एक विरही जन ही मौन धारण कर एकान्त में बैठे रहते हैं ॥ ७ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

मंजर कुंज सुरंज छटे मधु, कोकिल कीर रटे रसबो ।
खेल गुलाल अबीरन के घन, चंदन केसर को घसबो ॥
अंबर सेत सुवास सुरंगित, गावत गारि सुनें हसबो ।
सागर संग बहें बड़भागनि, फागन बागन में बसबो ॥ ८ ॥

कुंज की मंजरियों में से मूरज (पुष्परज) उठ कर आस पास सुवासित करता है, भंवरा, कोयल और सुआ रसीले स्वर बोल रहे हैं, लोग अबीर गुलाल युक्त और चंदन घिस कर केशर मिला एक दूसरे के अंग पर लगाने और खेलते हैं, शरीर पर श्वेत और सुवासित वस्त्र धारण कर फाग गाते और हंसी दिल्लीगी करते व हंसते हैं, ऐसे स्वेच्छाचारी फागुन माम में जो खी-सागर के साथ बाग में हो वह महान् भाग्यशालिनी है ॥ ८ ॥

अथ विरोधाभासालंकार यथा-सवैया.

बाग विहंग विलास भरे धुनि, कूजत है फिरही फिरही ।
मोद मराल सरोज मधूकर, गुंज ग्रहे सरही सरही ॥
दंपति गारि गुमान गहें मिल, गावत हैं घरही घरही ।
सागर मित बसंतहि चातुक, मौन ग्रही बरही बरही ॥ ९ ॥

बाग बगीचा के अन्दर विलास भरे हुए पक्षी चारों तरफ फिर कर मधुर ध्वनि कर रहे हैं, हर्षयुक्त हंस जिस प्रकार तालाब पर फिरता है उसी प्रकार भंवरा लता में कमल के ऊपर गुंजार करता है, स्त्री-पुरुष गुमान से गाली बोलने के लिए इकट्ठे होकर घेर २ कर गाते हैं, हे मित्र सागर ! इस वर्णन में एक चातक, मोर तथा वियोगी जन ही मौन धारण लिए रहते हैं ॥ ९ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

फूल गुनी उपवीत लता, मकरंदन चंदन से चरचाये ।

कोकिल कीर मधू शिश साधन, फूंक समीरहु की फहराये ॥

पान लिये जलपंकज में बिरही दुखदान प्रयोग पढ़ाये ।

दंपतिको अभिशेक न सागर, मित बसंत महामुनि आये ॥ १० ॥

फूलों की माला और लताओं का यज्ञोपवीत पहिने, पुष्प-रसरूपी चंदन से चर्चित, कोयल, सुआ और भंवरा रूपी शिष्यों को याचने के लिए, पवन की शिशकारी देते हुए, कमलरूपी हाथों में जल लिए हुए वियोगी जनों के लिए दुःखद प्रयोग पढ़ते-पढ़ते, दम्पति (स्त्री-पुरुष) का अभिषेक करने के लिए, हे मित्र सागर ! यह बसंत रूपी महा मुनिवर आये हुए हैं ॥ १० ॥

अथ चपलातिशयोक्त्यलंकार—सवैया.

कुंजन पात सुरंज छटे जल, फूलन भूलन मत्त मधूको ।

बागनकी परछाईं दशो दिश, रंग हराइ भयो रहे भूको ॥

सागरजू इक आवन ऊपर, कोकिल आन कियो है टहूको ।

कामनि चिंत चमंक उठी उन, एक उसास सबै बन सूको ॥ ११ ॥

कुंज के पत्तों में से सुरंग की महक तथा पानी का फुवारा छूटता है, फूल के भूमते हुए गुच्छों पर मस्त मधुकर गुंजार करते हैं, इस प्रकार बगीचा के दशों दिशा में परछाईं पड़ने से धरती का रंग हरा हुआ रहता है, हे प्रवीणसागर ! ऐसे समय में आम के ऊपर कोयल ने आकर कुहूं किया, जिसे सुनते ही एक कामिनी के मन में हूक उठी, और उस के एक ही उपाय से सारा वन सूख गया ॥ ११ ॥

अथ पर्यायोक्त्यलंकार—कवित्त.

जल जंत्र झार लागे, पात पात धार लागे, कोकिला उचार लागे, बाग विस्तारते । बेल बृंद डार लागे, कंज बेसुमार लागे, त्रिविध बयार लागे,

अमर गुंजार ते। गुनिजन लार लागे, फाग तान तार लागे, लव पिचकार लागे, अंग अंग यार ते। दंपति सिंगार लागे, प्रेम पारावार लागे, सागर सम्हार लागे, बिरही विचार ते ॥ १२ ॥

जलयंत्र अर्थात् फुवारे भरने लगे जिससे पत्ते २ से धारा पड़ने लगी, विशाल बाग के अन्दर कोयल सुन्दर स्वर से बोलने लगी, लता, गुच्छ वृक्षकी डाली डाली पर फैलने लगी, अनगिनत कमल खिलने लगे, शीतल मंद सुगंध—त्रिविध समीर चलने लगी, भंवरा गूंजने लगे, गुणी जनों का समूह गाने तथा मिलने के लिये इकट्ठा होने लगा, फाग और तान टप्पा का उच्चारण होने लगा, मित्रगण परस्पर एक दूसरे के अंग पर रंग भरी पिचकारी छोड़ने लगे, स्त्री पुरुष अंग पर शृंगार सजने लगे और अत्यन्त प्रेम होने से बिरही जन विचार के साथ सागर को सम्हारने लगे ॥ १२ ॥

अथ स्मृतिमानालंकार—सवैया.

कुंजलता परसून प्रफुल्लित, काम कमी न रखी न रखे ।
दंपति कोकिल अंग बिहंग, मही बिरहा हरषी हरषे ॥
केसर नीर अबीर गुलालहि, या आखियां बरषी बरषे ।
सागर मित बसंत दशो दिश, बोलन में परखी परखे ॥ १३ ॥

कुंजलताओं में पुष्प खिल रहे हैं ऐसे अनुपम समय में कामदेव ने भी कोई कमी नहीं रखी और रखता भी नहीं, स्त्री पुरुषों के जोड़े कोकिला और भंवरा आदि पक्षी और धरती बिरही को देख कर हर्षित हुए और अब भी हर्षित हो रहे हैं । केसर का पानी अबीर और गुलाल में ये नेत्र बरषे हैं और वर्ष रहे हैं । हे सागर मित्र ! इन दशो दिशाओं में बसंत, बसंत हो रहा है, परीक्षक तो बोलने में ही परीक्षण कर लेता है ॥ १३ ॥

अथ विरोधाभास अलंकार—सवैया.

ठौरिंह ठौर हिंडोर सधें घट, पंचमि कुंज लसंत लसंत ।
अंगन अंगन रंग रचे वन, कोकिल अंग रसंत रसंत ॥

धामनि धामनि कामनि कंथ, रमे रस खेल हसंत हसंत ।

चित्त निश्चित रहें बिरही कह, मित दिगंत बसंत बसंत ॥ १४ ॥

स्थान २ पर हिंडौल राग गाया जा रहा है, घट तथा बसंतपंचमी के लतामंडप सुन्दर दिखाई देते हैं सो दीखते हैं, आंगन २ में रंग पूरा हुआ है तथा वन में कोकिला और भंवरा रसमय बाणी का रटन करते हैं सो करही रहे हैं । धीमे धीमे में कंथ और कामिनियों रस के रमण समय खेल से हंसते हैं सो हंसही रहे हैं, ऐसे रमणीक समय में बिरही जन चित्त में निश्चित कैसे रह सकें कारण कि मित्र तो देशान्तर में जाकर बसे सो बस ही रहे हैं ॥ १४ ॥

अथ संभावना अलंकार-सवैया.

शोर बगान बगान खगान, नगान पगान पलाश खरेंगे ।

कुंज पतान छतान बितान, व्रतान प्रतान प्रसून भरेंगे ॥

मंद स्वसान निसान वहान, सु कामनि प्राण दहान करेंगे ।

चित्त चहंत महंत ग्रहंतर, मित बसंत कहां बिसरेंगे ॥ १५ ॥

बगीचे बगीचे में पक्षियों की चहचहाहट होगी, पहाड़ों की तलेटियों में पलाश वृक्षों के ऊपर से चित्त को चौंकाने वाले केशू के फूल खिरेंगे, लतामंडपों पर छाई हुई छत में खिची हुई चंदवा रूप बेलें फैल कर अपनी शाखाओं में फूल भरेंगी, निशा के समय में धीमें २ हवा चल कर स्त्रियों के प्राण दहन करने का कार्य करेगी इसलिए इस विशाल घर में मित्र की चाहना पर मन करता है, वह बसंत ऋतु में किस प्रकार भुलाया जा सकता है ॥ १५ ॥

अथ यथासंख्यालंकार-कवित्त.

अंग जोति मकरंद, मंद पौन अरविंद; कोकिला सुमन छंद, कुंदरूप छनमें । विमलाई लहर प्रमोद, बास मित अरु; चित्त पुनि नैन है, बसंत रितुपन में । पंकज मयंकमें, सुखन गजराजन में; वनमेरु बारन में, अम्ब में लतन में । लोक बाग जल सिन्धु, दंपति वियोगन में; कुसुम विदेश अंग, केत में मगन में ॥ १६ ॥

भंवरा, ज्योति, मकरन्द, मंद पवन, कमल, कोयल, पुष्प, छन्द, कुन्द, निर्मलता, लहर, प्रमोद, मित वास, चित्त, नेत्र कमल में, चन्द्रमा फूल में, हाथी में, वन में, पानी में, आम्ब में, वेलियों में, लोकिकों में, बाग में, समुद्र में, दम्पति में, वियोग में, कंथ में, अर्थात् हे कुसुमावली बसन्त के समय भंवरा कमल में, ज्योति चन्द्र में, सुगंध फूलों में, मन्दता हाथी में, पवन वन में, कमल पानी में, कोयल आमवृक्ष में, फूल लताओं में, स्वच्छन्द लोकों में, कुन्द बगीचा में, निर्मलता पानी में, लहरें समुद्र में, प्रमोद दम्पति में, मित्रवासना वियोग में, चित्त कंथ में और आंखें इस क्रम से परस्पर प्रेम बढ़जाने से पल पल उन्हीं में रहते हैं ॥ १६ ॥

दोहा—इहि विधि कलाप्रवीण की, बरनी विरह बसंत ।

कुसुम संग चरचा चली, लिखी सो सागर मित ॥ १७ ॥

इस प्रकार कुसुमावलि के साथ चर्चा में बसंत ऋतु के विरह का वर्णन किया उसे कलाप्रवीण ने रससागर के पत्र में लिख भेजा ॥ १७ ॥

गाथा—कुमरी कलाप्रवीण, वर्णन विरह बसंत रितु भेदं ।

चत्वारिंश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १८ ॥

राजकुमारी कलाप्रवीण का वर्णन ऋतु के विरह भेदयुक्त वर्णन वाली प्रवीणसागर ग्रन्थ की चालीसवीं लहर पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

४१ वीं लहर ।

अथ रससागर बसंत बिरहवर्णन प्रसंगोक्त-दोहा.

जैसी दशा प्रवीण की, तैसी सागर चित ।

चरचा मित्र पत्रह प्रिया, वरणो बिरह बसंत ॥ १ ॥

कलाप्रवीण की जो दशा हुई है वही दशा महाराज रससागर के चित्त की होने से मित्र के साथ चरचा करके बिरह का जो पत्र प्रिया प्रवीण को लिख भेजा है उसे कहते हैं ॥ १ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

थापन नैन महामुनि मन सो, मंत्र कला सितकार यदुधोरी;

बेह हकार अकार उचारत, लोम धनी फगुवा दोउ फोरी ।

नैनन नीर छटें प्रगटें उमड़ें, जु उसास समीरन दोरी;

कोरि प्रवीण वनावैं हमें हिय, होरिके आगम की भई होरी ॥२॥

रतिनाथरूपी महामुनि ने हुतात्मन की स्थापना की, उस समय सत्कार-रूपी मंत्र बोले और हाय हाय ओह ओह इस प्रकार वेदमंत्र पढ़कर शरीर पर खड़े हुए रोमांचरूपी धानी और चना फोड़ कर उनका फगुआ किया तथा नेत्रों के आंसुओं से जल छिड़कवाया, उसासरूप पवन वेग से प्रज्वालित हुआ हे प्यारी प्रवीण ! आज हमारे हृदय के मध्य होली की आग प्रगट हो रही है उसे कौन जाने ॥ २ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

केसरके फुतकार उड़ावत, कोकिल नाद सुघंट बजंती ।

वेलिके बंध जरे जकरे अरु, लंगार लोह मधूकर पंती ॥

माधवि कुंदन बंदन चित्र है, शाइ तमाल लगाप सुहंती ।

प्यारे प्रवीण अहो हमको ऋतुराज भयो रतिराज कोदंती ॥३॥

केसर का फुंवारा उड़ाता है, कोकिला का बोलरूपी घंटा बजता है, बेलि-लताओं से जकड़ा हुआ है, काले भ्रमर की पंक्तिरूपी लोहे की जंजीर लटक रही है, माधवी और कुंद रूपी सिंदूर से चित्रित, तमालरूपी स्याही शरीर से लगाकर शोभायमान हो रहा है । हे चतुर प्यारी ! हमारे लिये तो यह ऋतुराज बसंत, रतिराज (कामदेव) का मस्त हस्ती बन रहा है ॥ ३ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

जामुनि कुंद कनेर लगाइ है, केसर के चिणगार गढ़े हैं ।
माधवि के परखन सो आतस, वीर मधू अस पौन बढ़े हैं ॥
चापलतारु उशीर निबंग है, पल्लव के किरवान कढ़े हैं ।
बेधन ऐन प्रवीण वियोगि को, या ऋतुराज शिकार चढ़े हैं ॥४॥

कुंद और कनेर का जगरा लगाया है जिसमें केसर रूपी तिनके लगाये हैं, माधवी के पुष्प रूपी आतशवाजी, तथा भंवरा रूपी वीरों को लेकर वायु रूपी अरव को दौड़ाते हुए आता है, लतारूपी चाप और उशीर रूपी माथा सजा कर पल्लव रूपी खड्ग हाथ में ले रक्खा है । इस प्रकार, हे प्रियप्राण प्रवीण ! हमारे वियोगी मृग को बाँधने के लिये यह ऋतुराज बसंत शिकारी ही बन कर चढ़ाई कर रहा है ॥ ४ ॥

अथ वक्रोक्ति अलंकार-सवैया.

बाग बजे बड़ भागिनके डफ, राग हिंडोर सजें गहरे ।
कोकिल कीर अली सुर साधत, धीर समीर बहें लहरे ॥
फूलरहे बन बेल सबै फल, झूलरहे पतवा फहरे ।
मिंत प्रवीण बसंत विलोकत, क्यों बिरही न हियो हहरे ॥ ५ ॥

भाग्यशालियों के बाग बगीचों में डफ बज रहे हैं, गंभीर स्वर से हिंडौल राग गाया जाता है, कोयल, सुआ और भौरे स्वर अलाप रहे हैं, सुवासित शीतल समीर की तरंगें चल रही हैं, बन में लताएं प्रफुल्लित हो रही हैं, फल झूम रहे हैं तथा पत्ते फहरा रहे हैं । हे प्यारी प्रवीण ! ऐसे ऋतुराज बसंत को देख कर बिरही का मन क्यों न चलायमान हो जावे ॥ ५ ॥

अथ संभावना अलंकार-सवैया.

अलि गुंजन कुंजन पुंजन के हैं, प्रभंजन कंजन छे प्रसंरेंगे ।
द्रुग भंपन केसरकी पिचकारिन, दंपति गोद गुलाल भरेंगे ॥
चहुं ओर हिंडोरक ताननके जब, कानन आन भनंक परेंगे ।
अहो मित प्रवीण बसंत के वासर, धीरज चित हहा न धरेंगे ॥ ६ ॥

भवरो के वृन्द सघन कुंजों में गुंजार करेंगे, कमल को स्पर्श कर के शीतल पवन चलेगा, केसर की पिचकारियों की मार से आंखें मिचाकर दंपति के गोद गुलाल से भरे जायंगे, चारों ओर से जब हिंडोल राग की तान कानों में आकर पड़ेगी, तो हे मित्र प्रवीण ! बसंत के दिनों में चित्त निश्चितरूप से * धीरज नहीं धार सकेगा ॥ ६ ॥

अथ सुधा पण्डुति अलंकार-सवैया.

केतकि दंड सुदंड लिये कर, फूल दिनेश गुलै फरसी है ।
अब कदंबनमें उरभी यह, है न लता सफरीन फसी है ॥
मिन्त प्रवीण वियोगिन के जिय, किंशुक ऐंचन की विनसी है ।
मित बसंतके बाग नहीं यह, धीमर की मिल सैन धसी है ॥ ७ ॥

यह केतकी का दंड नहीं है यह तो हाथ में दंड लिये हुए है । यह सूरज-मुखी फूल नहीं यह तो फरसा है; आम तथा कदंब के वृक्षों में लिपटी हुई ये लताएं नहीं हैं, ये तो मछली पकड़ने का जाल है; ये केसू के फूल नहीं हैं प्रत्युत प्रवीण के वियोगी के जीवरूपी मछली को खँचने के लिए बनसी है; हे प्रिय मित्र ! यह बसंत ऋतु का बाग नहीं है बल्कि यह तो मछुआरों की सेना मिल कर आघुसी है ॥ ७ ॥

* गुजराती टीकाकारने 'हहा' का अर्थ 'हा हा' किया है जो सुसंगत नहीं प्रतीत होता, हमने इसे 'हां हां' का बिगड़ा रूप समझा है और तदनुसार 'निश्चित रूपसे' अर्थ किया है तात्पर्य यह है कि "यह निश्चित है चित्त धीरज नहीं धरेगा अधीर हो उठेगा" ।

“पहपसिंह हिन्दी टीकाकार”

अथ विभावना अलंकार-सवैया.

जा मुख बैन सबै मुख अमृत, अमृत गान हमें असि धारा ।
 किंशुक और प्रमानत माधवी, माधवी सोय चकोरको चारा ॥
 आन सुहावत शीतल मारुत, शीतल होत हेम तन आरा ।
 मोह प्रवीण भयो है बसंत, बसंत प्रवीण विना हम हारा ॥ ८ ॥

मुख में से निकली हुई गायन की वाणी सब के मुख से अमृत के समान निकलती है वह अमृतमय गायन हमारे लिए तलवार की धार के समान है; इस समय लोग किंसुक और माधवी की सराहना करते हैं परन्तु हमारे लिए तो वह दोनों ही अंगार के समान हो रहे हैं; औरों को इस समय शीतल पवन सुखकर लगता है परन्तु हमारे लिए तो शरीर को चीरने वाला आरा प्रतीत हो रहा है; हे प्रवीण ! औरों को यह बसंत का दिन मोहरूप (आह्लाद-कारक) होता है परन्तु मेरे लिए तो एक प्रवीण के विना यह भार रूप बना है ॥ ८ ॥

अथ अलंकार एकावली-कवित्त.

पुर पुर हरे बाग, बाग बाग घरी माल, माल माल जंत्र तंत्र, जंत्र सेत लहरी । वन वन भरी बेल, बेल बेल भरे फूल फूल भृंग भृंग, भृंग धुनि गहरी । गली गली छई कुंज, कुंज कुंज कुंज भौन, भौन भौन सेज सेज, सेजन सु रहरी । पंथी उत जाइये, बताइये बसंत भेद, एहो इत आइये, प्रवीणजू सेकहरी ॥ ९ ॥

नगर नगर में बाग बगीचा लहरा रहे हैं, बाग बाग में घटिका की मालाएं गुंथी हैं, वे मालायें यंत्र (घटियंत्र अर्थात् रहट) में जड़ी हुई हैं, उन यंत्रों (रहटों) से निर्मल श्वेत जल चल रहा है, हरेक वन बेलियों से भरा हुआ है, बेलि बेलि में फूल फूले हुए हैं, फूल फूल पर भंवरे हैं, जिनकी गुंजार गहरी हो रही है, गली गली में कुंज छारहे हैं, कुंज कुंज में भवन (लता रहट) बन रहे हैं, भवन भवन में शैया बिछी हैं और शैया शैया में स्त्री पुरुषों के जोड़े

क्रीड़ा करते हैं । इसलिए हे पथिक ! वहां जाओ और बसंत का भेद बता-
कर प्रवीणजी से यहां आने के लिए कहो ॥ ९ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

ये मधुरे मधुरे दिनमें, मधुरे सुर चाहत मंगल गावन ।
मोदिक माल बँधी नवपल्लव, कोकिल कोक लगेजु पढ़ावन ॥
थार बने सित पत्रनके मधि, मोतन बूंद बनाय बधावन ।
प्यारे प्रवीण चलो जु मिलो अहो, आयो बसंत बयार बुलावन ॥ १० ॥

हे मधुर * (भंवरे या रसिकजन) इन मधुर (बसंत के) दिनों में
मधुर (मिठे) स्वर से मंगल-गान गाना चाहते हैं; नवपल्लव की शुभ माला
बांधकर कोकिल और चकवा को पढ़ाने लगे हैं; श्वेत पत्तों की थाली बनाकर
उस में बूंदरूपी मोती न्यौछावर के लिए इकट्ठा कर रक्खा है; इसलिए
हे प्यारे प्रवीण ! चलो और मिलो, बसंत बयार बड़े ठाठ बाट से बुलाने
आया है ॥ १० ॥

अथ सुधापन्हुति अलंकार—सवैया.

है न गुलाल, नैनकी ज्वाल है, अंग अवीर विभूति चढ़ायें ।
केसर और गुलाब के रंग न, गंग तरंग उमंग बढ़ायें ॥
गाय धमार न बीर कुलाहल, बीन बजें डफ डौरू बजायें ।
धीरज चित प्रवीण धरो, ऋतुराजके रूप पशूपति आयें ॥ ११ ॥

यह गुलाल नहीं यह तो नेत्र की ज्वाला है, यह अवीर लगा हुआ नहीं
भस्म चढ़ाई हुई है; यह केसर या गुलाल का रंग नहीं है यह तो गंगा की
तरंगें उमंग से चढ़ रही हैं; यह कोई धमार नहीं गारहे हैं, बल्कि यह तो वीरों
का कोलाहल है, यह बीणा और डफ नहीं बज रहे हैं प्रत्युत यह तो डमरू बज

* गुजराती टीकाकारने 'हे मधुर' सम्बोधन किया है परन्तु वह असंगत और निरर्थक
प्रतीत है ।

“ हिन्दी टीकाकार ”

रहा है, इसलिए हे प्रवीण ! धीरज धरो, क्योंकि वसंत के रूप में पशुपति महादेवजी आये हैं ॥ ११ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

पल्लवके तुररा जु धरे शिर, बेलि अखारे कि डोर बधानी ।

मोर मधूकर कुंजन गुंजन, कोकिला मंत्र उचारत बानी ॥

बादो बसंत वियोगी पै डारत, मूठ गुलाल अवीर उड़ानी ।

जीवन जंत्र प्रवीणको पत्र, विलोकि बचे हम या जिय जानी ॥ १२ ॥

वृत्तों के नव पल्लवरूपी तुरी माथे पर धारण किया है, बेलरूपी अम्बाड़ा की डोरी बांध रखी है, कुंजों के अन्दर भंवरी की गुंजाररूपी मुरली बज रही है, कोयल शब्दोच्चारणरूपी यंत्र की ध्वनि करके वसंतरूपी बाजीगर विरही के ऊपर मूठ भर २ कर अवीर व गुलाल डालता है, ऐसे समय में एक प्रवीण के पत्र यंत्ररूपी जीवन-डोरी को देख कर ही यह प्राण बचे हैं ऐसा हम समझते हैं ॥ १२ ॥

अथ कैतवापन्हुति अलंकार—सवैया.

रंभन थंभनमें दपटी मिस, पत्रनके किरवान पटी है ।

जीव विजोगिन के बोहरावन, व्याज गुलाब बजी चपटी है ॥

फंदनहै वन ब्रंदन ऊपर, कैतव कुंज लता लपटी है ।

मित प्रवीण विलोकत ही हम, चित वसंत बड़ो कपटी है ॥ १३ ॥

केलों के खंभों में पत्त के मिस से छिपाई हुई यह नंगी तलवार है, वियोगी के जीव का विकल करने के लिये गुलाब की कलियों का तोड़ने के मिस से यह चपटी बजी है, वृत्तों के ऊपर कुंजलताएं लिपट रही हैं वह कपटरूपी रथ बना है, हे मित्र प्रवीण ! इस प्रकार मनन करके देखने से यह वसंत बड़ा कपटी प्रतीत होता है ॥ १३ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

रंभन मंजर पुंछ फिरावत, मुंछ उशीरणको फहरी है ।

चंदन कुंद गुलाबन आवन, सीत सुगंधन को लहरी है ॥

ताल बड़े फणिचक्र प्रवीण जु, मित विजोगन को कहरी है ।

आनन ज्वाल गुलाल उड़ावत, व्याल बसंत बड़ो जहरी है ॥ १४ ॥

केला की मंजरी रूपी पृंछ को फिरता है, उशीररूपी पृंछों को फहराता है, चंदन कुंद, गुलाब और आम इत्यादि शीतल मंगध की लहरें आती हैं, ऊंचे ताड़ के पत्ररूपी फणिचक्र धारण किया है, इस प्रकार हे मित्र प्रवीण ! वियोगियों का नाश करनेवाला सुख में से गुलाबरूपी विप ज्वाला को उड़ाता हुआ यह बसंतरूपी नाग महाविषधर दीग्वता है ॥ १४ ॥

कोकिल भृगुन पुंग सुनी मलयाचल बिल्लहु तें उठि धायो ।

पल्लवक्षी रसना फरकावत, केसरको फुतकार उड़ायो ॥

नैन गुलाब प्रसून सु खोलत, डोलन कुंजलता लपटायो ।

मित प्रवीण विजोगि विलोकत, व्याल बसंत बयारयो आयो ॥ १५ ॥

कोयल तथा भंवरा के शब्दरूपी मुरली धुनि सुनकर मलयाचल पहाड़ की कंदरा से दौड़ कर आया हुआ नवपल्लव रूपी रसना को फरकाता हुआ, केसर और चंदन की फुंवार उड़ाना हुआ, गुलाब के पुष्परूपी नेत्रों को खोलते हुए और फिरते हुए कुंज की लताओं में लिपटता हुआ यह बसंत का वायुरूपी नाग है । हे मित्र प्रवीण ! वियोगी को देखने आया है ॥ १५ ॥

चेलन चेलन केलन के डफ, बेलन सेलन से लपटाये ।

पीत रते मित फूलसु चंदन, अंग चिता मकरंद लगाये ॥

भृंग सु कोकिल शंखसि तें धुनि ले शतपत्र अलेख जगाये ।

लूटे प्रवीण विजोगिनके मठ, मित बसंत दिगंबर आये ॥ १६ ॥

वृक्ष की छाल के धारण करने वाले अनेक शिष्यों को माथ लेकर केला के डफ बजाते हुए, बेलरूपी सेली लपेटे, पीला, लाल और सफेद फूलों का चंदन और पराग रूपी चिता की भस्मी लगाए हुए, भंवर और कोयल के नाद रूपी शंखध्वनि करते हुए, हाथ में कमल पुष्परूपी खप्पर लेकर अलख जगाते हुए, हे प्रवीण ! वियोगी के मठ को लूटने के लिए यह बसंतरूपी दिगम्बर आये हैं ॥ १६ ॥

अथ रूपक संभावनाको संकर अलंकार-सवैया.

मंजरके जु धरें तुररा कलिकानके खंजरसो अलबो है ।

कोकिल कीर बजे हक वीर समीर सु तीरनको चलबो है ॥

बाजें गुलाबनकी पिस्तोल जु, पत्र पताकन को हलबो है ।

एरि बसंत दहंत कहा उर, मित प्रवीण अजौ मिलबो है ॥ १७ ॥

वृत्तों ने नवांकुर रूपी तुरी धारण कर रक्खा है, हाथ में कलियों से न सहन करने योग्य खंजर ले रक्खा है, कोयल तथा शुक के बोलरूपी रण-संग्राम में होने वाले शूरवीरों की गर्जना हो रही है, पवनरूपी वाण चल रहे हैं, गुलाब की कली का चटकना पिस्तौल की आवाज के समान हो रहा है, पत्र ध्वजा पताका की भांति हिल रहे हैं । अरे बसंत ! क्यों हृदय का दहन करता है हमें तो अभी प्रवीण से मिलना है ॥ १७ ॥

अथ समरूप अलंकार-सवैया.

प्रौढ प्रभंजन बाज चढ्यो रतिराज सु आज सिकार रमें ।

ताल सु पल्लव टीप बजावत, स्रन निशान सिरो बनमें ॥

कोकिल हाक कलोल करे, ब्रछफंद लता प्रसरी मगमें ।

कैसे प्रवीण वियोगि बचें सस, भृंग दशो दिश स्वान भमें ॥ १८ ॥

महा प्रौढ़ वायु अश्व पर सवार होकर रतिराज (कामदेव) आज शिकार में संलग्न हुए हैं जहां ताड़यंत्र रूपी बाजा बज रहा है । नभरूपी ठंडे निशान फिर रहे हैं, कोकिला रूपी आखेटी शब्दरूपी गर्जना करते हैं, चारों ओर लताओं रूपी जाल फैल गया है, दशों दिशा में भंवरा रूपी शिकारी कुत्ते भूकने लगे हैं फिर हे चतुर ! वियोगी रूपी शशा (खरगोश) किस प्रकार बचे ॥ १८ ॥

मारुत मंद गयंद तुरी बन, नाद निशान द्विरेफ धुनी ।

कोकिल कीर सु वीर कुलाहल, साध उठे चहुंओर सुनी ॥

आतससी मकरंद उड़ें नव, मंजरी स्रन षग तनी ।

बेधक आये प्रवीण वियोगिको, कामकी फौज बसंत बनी ॥ १९ ॥

मन्द वायुरूपी हाथी, वनरूपी घोड़ा, भैवरों की गुंजाररूपी नौबत, कोयल और शुक के शब्दरूपी वीरों के कोलाहल सुन कर सब ओर के जानवर अचानक चमकते हैं । पुष्प राजरूपी आतशबाजी का उड़ना, नवमंजरी रूपी शूर पुरुषों की नंगी तलवार तनी हुई है, इस प्रकार हे प्रिय प्रवीण ! वियोगी को बीधने के लिए रतिराज (कामदेव) की सेना बसंत रूप बन कर चढ़ आई है ॥ १९ ॥

अथ विरोधाभास अलंकार—सवैया.

रंग अनंग के खेल गये अरु, बेल गई तर फूल प्रकासी ।
कोकिल को कल जोर गयो अरु भौरन सोर गयो सुखरासी ॥
कुंज कोलाहल कीर गयो अरु धीर समीर गयो शुभरासी ।
येहो प्रवीण बसंत गये, हिय तें न गई मधु पूरनमासी ॥ २० ॥

तरह २ के रंग का रमण व कामक्रीड़ा का खेल गया, बेलों और वृक्षों के पुष्पों का प्रकाश गया अर्थात् वे मुरझा गये, कोयल के सुन्दर स्वर का गायन मन्द होगया, सुख का भोर रूपी भैवरों का शोर गया, कुंज में होने वाला चुवा का कोलाहल गया, सुखदायक मन्द २ लहरानी वायु भी गई, इस प्रकार हे प्रवीण ! यह बसंत ऋतु बीती परन्तु हमारे हृदय में से अबतक बसंती पूर्णमासी (होली) नहीं गई ॥ २० ॥

अथ उत्प्रेक्षा अलंकार ग्रीष्मदशा वर्णन—सवैया.

आले उशीर दरीच झरोखन, बागनमें चहुओर फुवारे ।
सेज प्रसून प्रसूनके भूखन, चेल परेच गुलाब भिगारे ॥
धीर समीर सुरंज श्रवें कन, मानो महेश जटा चल झारे ।
ऐसे निदाघके बासरमें इत, आयो प्रवीण हमें हिय प्यारे ॥ २१ ॥

सुन्दर खस की टट्टियां पानी से तर करी हुई झरोखों पर टंग रही हैं, बाग में चारों ओर फुहारे उड़ रहे हैं, फूलों की शैया, फूलों के आभूषण और सुगंधित गुलाब जल में भीगे हुए वस्त्र रक्खे हैं, मन्द २ वायु के झोकों से पानी की सुरंग में से जल-कण भर रहे हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हमेशा

की जटा में से जल की फुहारें झर रही हों, ऐसे मनोहर ग्रीष्म ऋतु के दिनों में हे हमारे प्यारे मित्र प्रवीण ! यहां आइये ॥ २१ ॥

अथ समरूपक अलंकार—कवित्त.

दिशि दिशि दाये सो विभूति लाये अंग अंग, गिरिराज आये आये
बैठे विप्र वरनी । समीध बनाये वन उपवनके मिलाये आज्यको, समाज
लूक पवन श्रवा झरनी, मारतंडकी मयूख, लागी दिव मंड ज्वाला, धूमकी
उमंड देखियत गो धूमरनी । मुनि मैत्र विरही जन चर कर होमतहै,
पावक प्रवीण जु प्रचंड कुंड धरनी ॥ २२ ॥

दिशा दिशा में प्रकट हुई दाह की विभूति अंग में लगा कर महागिरिराज
रूपी ब्राह्मण वर्ग आ आकर वरणी में बैठे हैं और वन उपवन रूपी समिधा
बना कर लू रूपी घी को पवन रूपी सुवा भर २ कर डाल रहे हैं, सूर्य की
किरण रूपी ज्वाला आकाश मंडल तक पहुंचने लगी, पृथ्वी की धुंधर रूपी यज्ञ
का धुंवा चारों ओर फैल गया है; पृथ्वीरूपी महानकुंड में प्रवीण रूपी अग्नि
का स्थापन करके उस में गिरिराज रूपी मुनि विरही रूपी चरु का होम कर
रहे हैं ॥ २२ ॥

दोहा—चरचा सागर मित किय, लिखित प्रवीण बनाय ।

सो वसंत ग्रीष्म दशा, वर्णन दियो मुनाय ॥ २३ ॥

महाराज रमसागर के भित्तों से जो चर्चा की और फिर पत्र में लिख
कर प्रवीण को भेजी वह वसंत और ग्रीष्म की दशा का वर्णन मुनाया ॥ २३ ॥

गाथा—विरह दशा वसंते, सागर विदित लिखित परवीण ।

इकतालीश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २४ ॥

वसंत की विरह दशा जो रससागर ने प्रवीण के प्रति विदित किया उसके
सम्बन्ध की यह प्रवीणसागर की इकतालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

लहर ४२ वी

अथ कलाप्रवीण वर्षा विरह वर्णन प्रसंगो यथा-सोरठा.

पावस विरह प्रवीण, बीती सो वरनों दशा ।

कुसुम सु चरचा कीन, सोय लिखी सागर प्रति ॥ १ ॥

पावस ऋतु में प्रवीण की जो विरह दशा बीती और जिसे उसने कुसुमा-
वलि से वर्णन करके फिर पत्र लिख कर सागर के पास भेजा उसका वर्णन
करते हैं ॥ १ ॥

अथ ममरूपक अलंकार-कवित्त.

बदर परेच बधे, दहरन घोर डौरू, चदर बिछाई हरी, हरताई धरकी ।
तापर रच्यो है खेल, व्याल करी कुंज बेल, बुढ़ कर श्रोन गैल, गैल बृंद
छरकी । चातुकों के काग केकी, कुलके उलूक राग, बग गीध जाग जाग,
किये पौन भरकी । बीज मुख ज्वाल साजी, चिनमें खद्योत राजी, सागर
बनाई गन, बाजी बाजीगरकी ॥ २ ॥

बादल का परदा बांधा, मंडकों का घोर शब्दरूपी डमरू बजाया, हरित
वर्ण हुई पृथ्वी पर मानों हरी चादर बिछाई और उम पर खेल रचाया सो इस
प्रकार कि बेलरूपी सर्प फैलाया, वीरबहूटी रूपी रक्त कुन्द मार्ग में छिड़का,
घातक रूपी काग बनाया, मोर के कुल के शब्द रूपी उलूक राग बनाया, बगुला
रूपी गीध बनाया तथा स्थान स्थान पर पौनरूपी भड़का किया और बिजली
रूपी मुख ज्वाला मजाकर खद्योत रूपी चिनगारी दी । इस प्रकार हे रससागर !
घन बरसात रूपी बाजीगर ने बाजीगरी कर रखी है ॥ २ ॥

अथ सुधापन्हृति अलंकार-सवैया.

मौरन सोर न मोर बजे फणि, चक्र यहै न चढ़ी सेहरें ।

है चपला न कला रसना फुत, कारण मारुतको फेहरें ॥

या चिनगे न खद्यातन के गन, बुंद न आननकी जेहरें ।

है न वृषा अहि मंडल सागर, लाये बिजोगिनि को लेहरें ॥ ३ ॥

यह मोर का शब्द नहीं, यह तो मुरली (पुंगी) की ध्वनि है; यह वर्षा का चक्र नहीं है, यह तो फणिक्र है; यह बिजली नहीं है, प्रत्युत जिह्वा लपलपाती है; यह हवा की तरंगें नहीं हैं, यह फुंकार है; यह जुगनू नहीं उड़ रहे हैं, बल्कि चिनगारियां हैं, ये मेघ के जलबूंद नहीं हैं, ये तो मुंह से निकली हुई विषविंदु हैं, यह वर्षा मंडल नहीं है, हे रमसागर ! यह तो नागों की टोली है जो विरहिणियों को लहर देने के लिये आई है ॥ ३ ॥

अथ समाधि अलंकार-सवैया.

जोर भयो घनघोर चहूँ दिश, मोर चकोर भये उन साखी ।
दहर भिल्ली डरान लगे दृति, दामिनि भार भुकोरत भांखी ॥
सीत समीर अभावत है मन, काम कठोर कमी नहीं राखी ।
सागर आग लगी इतने पर, चातुकनँ बहुरी धुनि भाखी ॥ ४ ॥

चारों ओर वर्षा के जोर होने से घनघोर अंधकार हो रहा है जिसके मोर तथा चकोर साक्षी हैं, मंडक और भिल्ली भुनकार रहे हैं, बिजली का प्रकाश रूपी उजाला भुनकारा करने लगा है, शीतल पवन के भुकोरे मन को अशान्त कर रहे हैं उस पर कठोर हृदयी रतिनाथ ने कोई कमी नहीं रक्खी है, जिससे हे रससागर ! विरहरूपी आग तो लगही रही है उस पर चानक 'पिब पिब' शब्द करके और उत्तेजित करता है ॥ ४ ॥

अथ अकावलि अलंकार-सवैया.

भारि भयो घनघोर चहूँ दिश, और घटा उमड़ी अति कारी ।
कारि निशा अंधियारि तिही माँह, दीपति दामिनि की उजियारी ॥
यारि समय सुनि मोरनकी धुनि, कंपत लंपत मान अटारी ।
टारि टरे न यहै बिधना गति, सागर पीर सनेह कि न्यारी ॥ ५ ॥

चारों ओर घोर घन छाए हुए उस पर अति काली घटा और चढ़ आई है, रात अंधेरी है ही फिर इससे और भी अंधेरा छा गया, जिस में बिजली की चमक दीप्तिमान् होती है, ऐसे समय में मोर की ध्वनि सुन कर प्राण अटारी में

लिपट कर कांपते हैं । हे रससागर ! ब्रह्मा की रेख टालने से नहीं टलती, प्रीति की पीड़ा अनोखी ही है ॥ ५ ॥

अथ चपलातिशयोक्ति-अलंकार-सवैया.

इंद्र-घटा कि छटा कि चटा, विटपी व्रतती छिति छावन की ।
पात्रुक चात्रुक भिल्लिन अल्लिन, भेकन केकिन गावन की ॥
सागर सारस कोकिल सूर, मराल शशी मुरभावन की ।
जावनकी महाराज बजी, विरहान कि नौबत आवन की ॥ ६ ॥

मेघ घटा की, बिजली छटा की, पृथ्वी पर वृक्ष और बेलों के छत-
राने की, सुआ, पपीहा, भिल्ली, भंवरा, मंडक और मोर के गाने की, समुद्र,
सारस, कोयल, सूर्य, हंस और चन्द्रमा को मुरमाने की, महाराज श्री के जाने
और विरह के आने की नौबत बजी है ॥ ६ ॥

सवैया-छावन जोग उपावन गावन, मोर जिवावन भेकन जानी ।
घोर घटा बन बेल बढ़ावन, धावन पौन चढ़ावन पानी ॥
सागर नेह नभावन पावन, श्रावण आवन की नहीं ठानी ।
तीजमें बीजहु की चमकावन, बीजमें तीज ज्युं रावरी बानी ॥ ७ ॥

योग को डिगानेवाली, गायन को उत्तेजित करनेवाली, मोर (पक्षी अर्थ में
अथवा मुझे) और मंडक को जीवनदान देनेवाली, घोर घटा और तानाबेली को
बढ़ाने वाली, पवन को दौड़ानेवाली, एवम् पानी को बढ़ाने वाली, हे रससागर !
शुद्ध स्नेह निभानेवाली प्रवीण में आई नहीं, इसी प्रकार बिजली को चमकानेवाली
(कजली) में दूज में तीज अर्थात् पंचमी यानी पंचम स्वर के समान आपकी
वाणी आई नहीं अर्थात् आपने संदेश भी नहीं भेजा ॥ ७ ॥

अथ न्यूनरूपक भेद अलंकार-सवैया.

गहिरान घटानकि डाक बजे, तडिता तरशूलनसी दरसें ।
शुक चातुक दादुर मोर सबै, गन वीर धसे धुरवा बरसे ॥

हरिमंद निकंद करे जबही, तबही सरसों जब शंकरसे ।

विरही तन ताप मिटावन कोदुख, रे धन ! क्यों न उतै बरसे ॥ ८ ॥

महा गंभीर शब्द से गड़गड़ाहट करती हुई वर्षा की घटा रूपी डाक बजती है, बिजली त्रिशूल के समान दिखाई देती है, सुआ, पपीहा, मेंढक तथा मोर आदि सब दूत और बादल रूपी शूरवीर पृथ्वी पर धावा कर रहे हैं, परन्तु हे भारी गर्जनावाले मेघ ! जब तू हरिनन्दन् जो कामदेव है उसे निकंदन यानी मूल से उखाड़ देगा तभी शंकर के समान महान् हो जावेगा । विरही जनों के शरीर की ताप और मन की पीड़ा मिटाने के लिए हे धन ! तू वहां क्यों नहीं बरसता ? ॥ ८ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—कवित्त.

धुरषा धरा धसाने, बेली बन लपटाने, सुरराज चाप ताने, बुढ दरसाई है । बादरान छान लागे, भानको छिपान लागे; दादुरा डरान लागे, केकी धुनि गाई है । चातुकी उचार बानी, घटा घोर गहरानी; धनबीज चमकानी, दंपति सुहाई है । दर्स बिन रावरे, वियोगी जन बावरे; हे एहो इत आवरे, असाढ़ ऋतु आई है ॥ ९ ॥

पानी (वर्षा) की धारा पृथ्वी पर धस आई, लताएं वृक्षों से लिपट रही हैं, इन्द्र ने अपना रंगीन धनुष चढ़ाया, इन्द्रगोप (वीरबहूटी) दीखने लगी हैं, आकाश में बादल चढ़ कर सूर्य को छिपा लिया, मेंढक की डरावनी ध्वनि होने से मोर शोर करने लगे, पपीहा सुन्दर स्वर से 'पीव पीव' करने लगे, मेघ की श्याम-गहरी घटा छाने लगी, मेघाढम्बर में से बिजली चमकने लगी, जिससे दंपति (स्त्री पुरुष) को अति सुहावना लगने लगा है, ऐसे सुहावने समय में आप के दर्शन के बिना बाबरी हो रही हूं इसलिये हे राजन् ! यहां आइये वर्षा-ऋतु आगई है ॥ ९ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

बादर है सु बनें छवि अंबर, दहर नूपुर घूघुर बाजन ।

घोर धनो सु मृदंगन की धुनि, बीज छटा सुघटानाके साधन ॥

पंत बनी बक मोतिनके गन, चातक कीर मयूर अलापन ।

पातर रूप बनाय घटा, बरषो उत जायके सागर आँगन ॥ १० ॥

बादलरूपी सुन्दर वस्त्र धारण किया, दादुर ध्वनिरूपी नूपुर बज रहे हैं, घोर बादलों की गर्जनारूपी मृदंग बज रहा है, बिजली की छटादार चमक रूपी सौंदर्य की झलक है, श्वेत बकरूपी मोतीमाला है, चातक कीर तथा मोर के शब्द रूपी मधुर गाना हो रहा है, इस प्रकार नृतिका का रूप बना कर हे बर्षा ! तेरी घटा बहां जाकर सागर के आंगन में नृत्य करो (बरसो) ॥ १० ॥

अथ द्रष्टांतालंकार-सवैया.

व्यालन ज्यों चुप ब्रह्मके रही सुनि, मोरन की जु भयानक भाषा ।

पौष्प भरो फहरी तिनसे यह, प्राण भयो है निबात पताखा ॥

घोर घटा गरजे बरषे तन, सूखगयो ज्यों जवासन शाखा ।

सावर दामिनि के दुत्तिसे, छतियान में होय गई हैं शलाखा ॥ ११ ॥

मोर की विरहोत्पादक ध्वनि सुनकर सर्प की भांति चुप हो जाती हूं, बाघ के झोंके चलते हैं उससे यह प्राण देवालय की पताका की भांति हो रहा है; काली घटाएं घोर गर्जन के साथ वर्षा करती हैं उससे यह शरीर जवांस की शाखा की भांति सूख गया है, और हे सागर ! बिजली की चमक छाती में शूल की भांति चुभती है ॥ ११ ॥

अथ हेत्वपन्हुति अलंकार-सवैया.

चपला नहिं ज्वालामुखी चमके, अरु धूम धसे धुरवा धरसे ।

बधु इंद्र अंगारान की छवि है, जुगनू चिनगारनसे सरसे ॥

इन दंपति चाहे चकोरन ज्यों, सुवियोगनि दाहृत है तरसे ।

जितही जित घोर घटा बरसे, तितही तित पावकसें दरसे ॥ १२ ॥

यह चपला बिजली नहीं बल्कि ज्वालामुखी की लपट है, और यह वर्षा के फुवारे नहीं बरन् उसी ज्वालामुखी से निकला हुआ धुवां पृथ्वी पर छा रहा है; यह बीरबहूटी नहीं है अंगारे बिखर रहे हैं, ये जुगनू नहीं चिनगारियां हैं जिन्हें चकोर

दम्पति (नर और मादा) चाहते रहते हैं ये वियोगिनी को इसी प्रकार जलाते हैं, जैसे कि वृक्षों पर मानों इन्होंने आग लगादी है * इस प्रकार जहां २ घोर घटा वर्षती है हमें तो वहां २ आग सी ही दिखाई पड़ती है ॥ १२ ॥

अथ छेकलाटानुप्रास अलंकार—कवित्त.

घाट घाट दादुरा सो, बाट बाट बोलत है; वन वन मोर सोर, घन घन विज्जरी । दिशि दिशि धुरवा सो, धसि धसि धावत है, गिरि गिरि बार धार, भरी भरी उतरी । जग जग जुगनू सो, डग डग ऊड़त है, फिन फिन फिल्ली धुनि, वन वन उच्चरी । पीय पीय हरि वाणी, जीय जीयबो निराश; सागर वियोगिनि बिलखत बिरह भरी ॥ १३ ॥

घाट २ यह दादुर चारो ओर बोलते हैं, वन वन में मोर की ध्वनि हो रही है, वर्षा की चढ़ी हुई घटा २ में बिजली चमकती है, दिशा दिशा से बादल दौड़े आ रहे हैं, पहाड़ २ पर से पानी की धारा भर रही है, जगह २ जुगनू फिलमिलाने हुए उड़ रहे हैं, वन वन में फिल्ली की फनकार हो रही है, पपीहा की 'पीव पीव' ध्वनि सुनकर जिसका जीवन निराश हो गया है ऐसी वियोगिनी हे सागर ! बिरह के दुःख से विलाप करती है ॥ १३ ॥

अथ समाधि अलंकार—सवैया.

प्रातहु ते गुरभात गयो दिन, सांभ भये घनघोर अराधी ।
दामिनि देख डरी जुगनूं जरि, सोइ गई गहि मित समाधि ॥
राउरे चाह चमक उठी पुनि, बाउरि होय विभावरी आधी ।
सागर कौन घरी सुखकी इत, चातुक ने बहुरो धुनि साधी ॥१४ ॥

प्रातःकाल से अकुला २ जैसे तैसे करके दिन बीता और सन्ध्या हुई तो वर्षा की घोर घटाएं छा गईं, उसमें चमकने वाली बिजली से डरी और

* गुजराती टीकाकार ने 'तरसैं' का अर्थ वृक्ष के समान किया है वही अर्थ ऊपर हमने किया है परन्तु हमारी दृष्टि में 'तर' को 'तर' का अपभ्रंश न मान कर 'तरसैं' रक्खा जाय तो 'तरसा कर वियोगिनी को जलाते हैं, ऐसा अर्थ होगा जो सुसंगत प्रतीत होता है ।

जुगनू से जलकर हे मित्र ! समाधि लगा सो गई । आधी रात में आप की चाह में चमक कर उठी और बावली होकर बिभोर हो गई है, परन्तु हे सागर ! उसी समय पपीहा ने 'पीव पीव' की रटन लगाई, सुख की घड़ी कौनसी कहें ? अर्थात् कोई सुख की घड़ी नहीं, दुःख पर दुःख ही आता रहता है ॥ १४ ॥

अथ खंडपलाट अलंकार—कवित्त.

भ्रमकी भिंगोर भिल्ली, तमकी सु बक पंत; चमकी खद्योत जोत, दमकी दमन घन । निपटी अंधेरी निश, भपटी समीर शीत, कपटी न आये मित, लपटी लतन वन । डहकी अनेक भेक, गहकी मयूर गन, चहकी पपीहा धुनि, बिरहकी दहन तन । सबही समान आज, भए दुख दान मेरे, कीजिये उपाय आय, सागर अटन मन ॥ १५ ॥

भींगुर की भ्रमकार होने लगी, वक्रपंक्ति तमकने लगी, अंधेरी काली घटाओं में बिजली चमकने लगी, काली अंधेरी रात फैल गई, शीतल मन्द सुगंध समीर भोंके लेने लगी, वनलताएं वृक्षों पर लपटने लगी परन्तु कपटी मित्र नहीं आए । अनेक मंडक बोलने लगे, मोरगण शोर करने लगे, पपीहा की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी, जिमसे बिरही जन के तन दहन होने लगे; ये सब साधन मेरे लिये दुःख के कारण हो रहे हैं । हे सागर ! यहां आकर शुद्ध मन से कोई उपाय करो ॥ १५ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

कुरती नवरंग बने बदरा धुज, इंद्र धनूं फहरे नभ अद्वे ।
परगाह सु गाज बजे गन केकन, चातक बांसुरि के सुर सद्वे ॥
धुरवा सु तुफंगन आग छटा धुनि, दादुर भिल्लि कबाद अरद्वे ।
बिरही जनके मनके गढ़ ऊपर, बारद गारद के ब्रज वद्वे ॥ १६ ॥

अनेक रँगों वाले बादल का कुर्ता बना कर, इन्द्र धनुषरूपी पताका आकाश में फहराते हुए, बादल की गर्जना रूप नौबत और मोर तथा पपीहा के उच्चार-रूपी बांसुरी (बिगुल) बजाते हुए, वर्षा की धारा रूपी बन्हल छूटती हैं और

दादुर तथा झिल्ली के शब्द रूपी कवायद (ड्रिल) करते हुए विरदरूपी गारद मानो विरही के मनरूपी गढ़ पर आक्रमण करने आए हैं ॥ १६ ॥

अथ लाटानुप्रासकारकदीपिकालंकार—सवैया.

झांखि झरोखन में चढ़ि चांदनि, पायँ धमंक धमंक धरे ।

बौरि भई बदरान विलोकत, मेघ झमंक झमंक झरे ॥

मोरन सोर सुने अखिया जल, बूंद ठमंक ठमंक परे ।

सागर लाग सहेलिन के गर, चंत चमंक चमंक मरे ॥ १७ ॥

धम धम करती हुई झरोखे पर चढ़ी और आकाश की ओर देखा, वहाँ बादलों को देख कर बावली हो गई । और झर २ बरसात होने से तथा मोरों के शोर सुनते ही आँखों से आँसू की बूंद झरने लगी । हे सागर ! सखी के गले से लिपट कर चमक २ उठती है ॥ १७ ॥

अथ असंगति झलंकार—सवैया.

बागन केकिन राग उचारत, लागत बान बियोगन नारी ।

घोर घटा चढ़ि आई अटा, विरहीन पटामें छटा सु कटारी ॥

पौन धसे पुरवा धुरवा धर, दादुरवा सुरवा भयकारी ।

आवनमें धन जीवनरे पति, संग सुरा मरि पविनहारी ॥ १८ ॥

बागों के अन्दर मोर जो राग का गाना करते हैं वह बियोगिनी को तीर के समान लगता है; घोर काली घटा महल के ऊपर चढ़ आई है और उन बादलों से सो बिजली चमकती है सो बियोगिनी के हृदय में कटारी के समान लगती है; पुरवाई हवा चलती है, पानी की बूंदें पृथ्वी पर पड़ती हैं तथा मँडक बोलते हैं सो महा भयंकर प्रतीत होता है; ऐसे श्रावण मास में तो उनका जीवन धन्य है जो अपने पति के संग में सुरा (शराब) प्याला भर २ कर पीने वाली हैं ॥ १८ ॥

अथ जातिस्वभाव सुपदलाट झलंकार—कवित्त.

उठी घटा कारी यारी, लागत डरारी भारी, गिरिये अटारी कै, कटारी मार मरिये ।
बदरकी गाज मोर, दहर आवाज सुनि, अंतको समाज साज,

जगही तें परिये । बात ही न कही जात, ऐसे चित्त आत नित, शंकर
निवात जाय, निज घात करिये । बेर बेर टेरत हैं, फेरहू न मिलो मित,
सागरजू याते, मन मार पीन धरिये ॥ १६ ॥

घनघोर वर्षा की श्याम घटा चढ़ी हुई अति भयावनी मालूम होती है;
यानी अटारी से गिर पड़ें या पेट में कटारी मारलें यही जी चाहता है । बादल
की गर्जन तर्जन, मोर तथा दादुर की ध्वनि सुनकर ऐसा जी चाहता है कि
किसी पर्वत से गिर कर अंत करलें । बात कही नहीं जाती, चित्त में निरंतर
यही आता है कि शंकर के मन्दिर में जाकर सिर उतार कर पूजन करें, बार २
पुकारते हैं परन्तु हे मित्र ! मिलना नहीं होता इससे चित्त में आता है कि बिष
घोल कर पी लेवें ॥ १६ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

बहरके छु फनुंस्स किये माधि, दामिनि दीपनि दीप जगाये ।
दहर घोर दशो दिश घृघुर, झिल्लिन के झनकार बजाये ॥
चातुक बीन नवीन बजें बन, मोरन जंगल के सुर लाये ।
इंद्र धनुं धनुं तीर समीरले, सागर मेघ सिकारि हैं आये ॥ २० ॥

बादलरूपी लालटेन बनाकर बिजली रूपी प्रकाश किया है, दशों दिशाओं
में दादुर की ध्वनि और झिल्ली की झनकार होने लगी और बन में चातक
रूपी बीणा बजने लगा है, मोर जंगल में सुर अलाप रहे हैं, इंद्र धनुषरूपी
धनुष और वायु रूपी बाण लेकर, हे सागर ! यह वर्षा ऋतु शिकारी बन कर
आई है ॥ २० ॥

अथ अलंकार समरूपक-सवैया.

कैला घटानके आन धरे है, छटानकि ज्वालमुखी सु जगाये ।
फुंक नरीन समीर झरी, धुरवान के धूम दशो दिश धाये ॥
इंद्र धनुष समान समारि, पतंग पतंगनके चु उड़ाये ।
कुंदन वाम वियोगनि तावत, सागर मेघ सुनार है आये ॥ २१ ॥

श्याम घटारूपी कोयला इकट्ठा कर उस में बिजली रूपी ज्वालामुखी जगाया और वायु रूपी धौंकनी से फूंक देकर चारों ओर धुंवा फैला दिया है । इन्द्र धनुषरूपी चिमटे से सम्हाल कर जुगनू रूपी चिनगारियां उड़ा रहा है, इस प्रकार हे सागर ! वियोगिनी स्त्रीरूपी कुंदन को तपाने के लिये यह मेघ सुनार रूप होकर आया है ॥ २१ ॥

अथ एकावलि अलंकार—सवैया.

परसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढ़ि बेलि चढ़ी तरसे ।
तरसे चित चातुक के हरसे, हरसे दुति दामिनि अंबरसे ॥
बरसे घनघोर घटा भरसे, भरसे धुनि बाढ़त दादुरसे ।
दरसे बिन मित बिरहा सरसे, सरसे दिन सागरजू परसे ॥ २२ ॥

पूर्व की हवा और बादल की बूंदें पृथ्वी को स्पर्श करती हैं, पृथ्वी की लताएं बढ़ कर वृक्षों पर चढ़ रही हैं, तरसते हुए चातक के चित्त हर्षित हो रहे हैं, बादल में से चमकती हुई बिजली प्रफुल्लित होती है, काली घटाएं झड़ी लगा कर बरसती हैं, दादुर की ध्वनि जलाशयों से बाहर ही है; मित्र के दर्शन बिना विरह बढ़ रहा है । जिस दिन सागर आनकर मिलेंगे वही दिन सरस अथवा उत्तम होगा ॥ २२ ॥

अथ एकावलि अलंकार—सवैया.

तनसे बिरहा न बढ़ेंगे तबै हि चढ़ेंगे जब बदरा घनसे ।
घनसे धुरवा निकलेंगे तबै अकुलेंगे नहीं जिय बुंदनसे ॥
दनसे निशसो दरसेगो तबै सरसेगो नहीं दुख दामिनसे ।
मनसे नाहि जानहुगे मितवा कह सागरजू कहिये तनसे ॥ २३ ॥

जिस समय आकाश में मेघ चढ़ेंगे उस समय शरीर में विरह नहीं बढ़ेगी ? जब आकाश में छाए हुए बादलों से जलधारा चलेगी तो बूंद देख कर जीव अकुलायेगा नहीं ? जब दिन और रात्रि समान दिखाई पड़ेंगे (अर्थात् घनघोर घटाओं से दिन भी रात्रि के समान होगा) तो बिजली का चमकना पीड़ा उत्पन्न

करनेवाला नहीं होगा ? हे मित्र सागर ! यदि मन से न समझो तो मुख से क्या कहें ? ॥ २३ ॥

अथ प्रथमभेद निदर्शनालंकार-कवित्त.

बढ़ो बन मंजरी सो नेहको बढ़ाय गई; बढ़े गई लता ऐमे विरहा बढ़े गयो ।
वारिद विदाय भये, रीतहू न छांडी हम, चातुक चतुर सो तो, बानी
भेद दे गयो। अंबक तरंग अंब, अंबकको कै गयो है, जाहिर जवासा तन,
भूरखो सो कै गयो। सागर सनेही बिन, वरषा व्यतीत भये, आयत अनील
सो, उसास को सिखा गयो ॥ २४ ॥

वन की मंजरी जैसे २ बढ़ी तैसे २ नेह को बढ़ा गई और जिस प्रकार लता बढ़ी वैसे २ विरह बढ़ गया । वर्षा ऋतु गई परन्तु हमने उस की रीति लेली है वह इस प्रकार कि चतुर चातक से तो 'पीव पीव' लिखा गया, जल-धार बंद हुई परन्तु वह आंखों को बूंद डालना सिखा गया, जवाम ने शरीर को दुखाना सिखा दिया, इस प्रकार हे सागर ! वर्षा तो गई परन्तु वायु ने स्नेही के वि-योग में उमांसें लाना सिखा दिया ॥ २४ ॥

अथ समरूपक अलंकार-गाहा.

वन घन विष बिल सहियं, नहियं सहर नवंकुरं शाखा,
दामनि पुहप प्रफुल्ले, धारा धरिय भारिय मकरंदा ॥ २५ ॥

मजल घनरूपी वन प्रफुल्लित हो गया, नवीन अंकुर वाली शाखायें झुक-गईं, विजली रूपी फूल खिल गये और वर्षा की धार रूपी पुष्प-रस भरने लगे ॥ २५ ॥

नव नीरद जल्लहियं, छहियं घटघोर मोगरव किं वीर ।
द्रष्टि दुख सहियं, कहियं पीय पीय कलिकंका ॥ २६ ॥

नव नीर देने वाले बादल उल्लसित हो गए, काली घटाएं और मोर के टकार

गूजने लगे, पपीहा 'पीव पीव' उड़ाने लगा, फिर यह इस दुःख को बिरहणी किस प्रकार सहन करे !! ॥ २६ ॥

अथ रूपकोपमालंकार—गाहा.

कच कादंबणि लसियं, नयण वरण धर घारा ।

स्वासा पवन प्रकासे, पावस होड़ बिरहणी पहियं ॥ २७ ॥

केशरूपी मेघमाला शोभित है, उनको आंखों से आंसू रूप जल-धारा जमीन पर पड़ रही है, श्वास रूपी वायुने प्रकाश पाया, इस प्रकार वर्षाऋतु और बिरहणी में होड़ लग गई है ॥ २७ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—गाहा.

घणह उमंडण समय, सौघ सरणे बिरहणी बणियं ।

यंयं तथा कण पहियं, तंतं बड़ बारुणी ज्वाला ॥ २८ ॥

मेघ चढ़ आने के समय बिरहणी महल के ऊपरी भाग पर जा खड़ी हुई और ज्यों २ पानी की बूंदें शरीर पर पड़ने लगीं त्यों २ बिरहाग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होने लगी ॥ २८ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार—दोहा.

गहरी घन गाजन पवन, दादर बादर देख ।

मोरन सोरन से हिये, विपत्ति विशेष विशेष ॥ २९ ॥

बादलों के गर्जन तर्जन, हवा के झोंके और दादुर तथा मोर के शोर से हृदय में विपत्ति बढ़ती ही जाती है ॥ २९ ॥

वरषा बिरह प्रवीनकी, वरनी सह बिस्तार ।

भट्टी संग चरचा भई, सागर लिखें उदार ॥ ३० ॥

पावस ऋतु में प्रवीण के बिरह-दशा सम्बन्धी कुसुमावलि के साथ जो चर्चा हुई और वह सब सागर को लिख कर सागर के पास भेजी उसका साबिस्तार बर्णन किया है ॥ ३० ॥

गाहा.

वरषा विरह प्रवीणं, वर्णन चित्त दशा विस्तारं ।

उभ चालिश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३१ ॥

वर्षा ऋतु में कलाप्रवीण के विरह की दशा की वर्णन वाली यह प्रवीण-
सागर ग्रन्थ की बयालीसवीं लहर समाप्त हुई ॥ ३१ ॥



तहर ४३ वीं

अथ रससागर वर्षाविरह वर्णन प्रसंगोक्त—दोहा.

पठयो कलाप्रवीण पै, सागर चरचा मित ।

वह वर्णन वरषा बिरह, बरनो सबै व्रतन्त ॥ १ ॥

पीछे कही हुई वर्षा के वर्णन वाली चर्चा रससागर ने मित्रों के साथ की और (वही चर्चा) प्रवीण को (पत्रद्वारा) लिख भेजी वह सब वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

अथ संभावना अलंकार—सवैया.

बहर घोर चढ़े दशोदिश, दहर मोर सु सोर करेंगे ।

चातुक भिल्लव के सघहेरव, पल्लव कुंज लतान भरेंगे ॥

अंबर फंद अनेक विलोकि, दिगंबर वृंद हिये हहरेंगे ।

धीर प्रवीण धरेंगे कही विध, मित वियोगी हहा न मरेंगे ॥ २ ॥

(प्रिया !!) चारों ओर से श्याम घटा चढ़ आवेंगी, दादुर और मोर शोर करेंगे, पपीहा और भींगर स्वर साधेंगे, कुंजलताएं पल्लवपूरित होंगी और आकाश हरतरह के रंग से विभूषित होगा जिसे देख कर महामुनि दिगंबर भी हृदय हार बैठेंगे फिर हे मित्र प्रवीण ! वियांगी जन कैसे धीरज धरेंगे, हाय ! वे क्यों नहीं मरेंगे ॥ २ ॥

तुंग उतुंग भये गिरिके हरि, बेलि तरंग तरुवर फूलहि ।

दहर मोरन सोर भयो सरिता, सर संवर ठंपति फूलहि ॥

घोर घटान अटान झुयो घन, साजि छटान पटा घर भूलहि ।

कैसे प्रवीण बचै बिरहीजन, अंबर देखि दिगंबर भूलहि ॥ ३ ॥

बड़े और उत्तम गिरवर केशिखर हरित वर्ण हो गए, लताएं और उन लताओं से वेष्टित वृक्ष नाना प्रकार के सुन्दर पुष्पों से सुसज्जित हो गए, दादुर और मोर शोर करने लगे, छोटे और बड़े सरोवर और सरिताएं जल से किनारों को लांघ गये, घनघोर घटाएं अटारियों पर छा गईं, बिजली से सुसज्जित मेघ-

मालाएं भूमि पर थिर रही हैं, ऐसे समय में हे मित्र प्रवीण ! अंबर को देख कर विरहीजन किम प्रकार वचे ? जिसके प्रभाव से मदान् मुनिवर दिगंबर भी भूल ग्याजाते हैं फिर हमारी क्या गिनती है ? ॥ ३ ॥

अथ प्रथम भेदनिदर्शनालंकार-कवित्त.

दुर दुर दादुरा, प्रवीणजू वसे यों कहें, वन तन डोलत कहें कछु न कीयबो । पीय पीय चातुकी सो, विपयी वदत वार्षा, धक धक जलधार, जपें प्राण जीयबो । जन जन झिल्लिगन, कहें ना प्रकाश कछु, चप चप चपला, उचारत है रीयबो, ब्रच्छ बेलि चढ़ि चढ़ि, बतावत मित राह, घोर घोर घटाके, अकार प्रेम पीयबो ॥ ४ ॥

‘दुर दुर’ बोल कर मानो दादुर यह कहते हैं कि प्रवीण दूर है, वन के वृक्ष शरीर में डोल २ कर यह बताते हैं कि शरीर में डोलने के सिवाय अन्य उपाय नहीं, ‘पिय पिय’ का शब्द कर पपीहा विप पीने को कहता है, धक धक करती हुई जलधारा कहती हैं कि धकधकाते हुए प्राणों को सन्हाल २ कर रक्खो, झींगर झनकार करने हुए यह कहता है कि हरेक को अपना भेद मत कहाँ, चप चप करती हुई चपला (बिजली) चुप रहने का आदेश करती है, लताएं वृक्ष पर चढ़ कर मित्र का मार्ग निदर्शन करती हैं, घोर घटाएं यह बताती हैं कि घटा के अनुरूप प्रेम को घोल कर पिओ ॥ ४ ॥

अथ विरोधाभास अलंकार-सवैया.

घोर घटाके पटासे छटा, मनमथ्य हृदे दमको दमकै ।

रैनहु मैन पतंगन पंगति, प्रेम चितै चमकी चमकै ॥

झिल्लव झार पहारनको झर, अंग विरहा झमकी झमकै ॥

पावस मित प्रवीण प्रभंजन, ‘पूर-बके’ अमकी अमकै ॥ ५ ॥

काली घटाओं में बिजली चमकती है इधर हृदय में मन्मथ (कामदेव) का प्रकाश होता है; रात्रि में उधर जुगनू की पंक्ति चमकी इधर प्रेम चित्त में चमकता है; उधर पहाड़ों में झिल्ली का झनकार हुआ, इधर अंग में विरह वेदना

हुई हे मित्र प्रवीण ! पावस में जहां पवन चला कि पूर्वानुराग की तरंगें
हिलोरे लेने लगी ॥ ५ ॥

अथ कैतवापन्हुति अलंकार—सवैया.

भूमहि धूम ढ्ये घन भूमत, लाय लगी चपला चहुं घातें ।
जूह पतंग चिनंग उतंगनि, ऊड़ि चले 'पुरवाइन' बातें ॥
पावस व्याज प्रवीणजु पावक, कीन्हें बिजोगिन के तन ताते ।
दाओ लगे परदाउ लगावन, आये हैं चातुक कोसी कहां तें ॥ ६ ॥

पृथ्वी पर वर्षा ऋतु की छाई हुई घटा रूपी धूँवा छा गया है, और चारों ओर
चपला रूपी आग लग गई है, आग्नियों के समूहरूपी चंचल खद्योत रूपी चिनगा-
रियां उड़ने लगी हैं, हे प्रवीण ! पावस के मिस से अग्नि वियोगी के शरीर को
तपा रहा है । अग्नि तो लग रही है, इस पर फिर और आग लगाने को बचा
के यह कोसी पत्नी न जाने कहां से आगया ॥ ६ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

डोर लला चपलाकि कला अरु, भ्रूव भला मुरचाप निहारो ।
गोल गडा घनकीजू घटा, बरुनी सु पटा जलको विसतारो ॥
सेत जगा सु बगाकी खगच्छन, तारे तगा पतगा को उजारो ।
प्यारे प्रवीण विना दुखिया, अखियानमें इंद्र कियो है अस्वारो ॥ ७ ॥

आंखों की लाल रेखा बिजली रूपी कला है, सुन्दर भ्रुकुटी रूपी इन्द्र धनुष है,
काली गोलाकार आंख का भाग काली घटा है, पलकें रूपी मेघ घटा जल वर्षाते
हैं, आंखों का श्वेत भाग बगुला के समान है, आकाशगामी आंख की चमकती पुतली
जीव का प्रकाश है, इस प्रकार प्यारी प्रवीण के विना इन दुखियारी आंखों में
पचरंगी पावस ने अखाड़ा जमा लिया है ॥ ७ ॥

अथ यथासंख्य संदेहको संकर अलंकार—कवित्त.

धुरवाके गन जोध, बादर विभूति गज, गाजन अवाज डाक, दुंदभी
समररे । दामिनी के उजाल खग, बुंद धसे गंगा बान, चातुकी मयूर सिंगि,

तुरसे कहरे । पटा जटा सिले साज, चाप बोरके पतारवा, दादुरके बाजे
भूख, अरब पखररे । वरषा के बामदेव, कामराज बाहनी है, पंथिक प्रवीण से
नवीन बात कररे ॥ ८ ॥

यह घटा है या योद्धाओं का समूह है ? यह बादलों की विभूति है या
ह्वाही है, यह गर्जना है या सम/दुन्दुभि बज रही है, यह बिजली की चमक है या
तेजस्वी खुला हुआ खड्ग है, यह कुंद धारा है या पवित्र गंगा नदी का प्रवाह
है, यह चातक व मयूर की ध्वनि है या प्रलयकारी तुरही बज रही है, यह वर्षा
की घटा है (वर्षा के समय जलधारा की एक काली रेखासी बादल से पृथ्वी
तक बन जाती है) या जटा है या सजा हुआ भाला है ? यह इन्द्र
धनुष है या चन्दन लगा हुआ है या ध्वजा फहरा रही है ? यह दादुर-ध्वनि है
या गोमुखी तुरही बज रही है या अरबी पखर है ? यह वर्षा है या महादेव
हैं या रतिराज कामदेव की सेना है ? हे पथिक ! वहां जाकर प्रवीण से यह
नवीन बात करना ॥ ८ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

घोर घटा घन बुंदनमें निश, दामिनि से दब क्यों न रयो है ।
चातुक मोर चकोरन सीरन, दादुरसे डरहू न लयो है ॥
जोत बयार लगे सु जगे तब, जानपरे जु गयो न गयो है ।
प्यारे प्रवीण निदान करो कछु, पावस प्राण पतंग भयो है ॥ ९ ॥

घोर घटा, वर्षा के बूंद, भारी निशा और फिर बिजली से क्यों नहीं दबा
हुआ है ? पपीहा, मोर, चकोर और दादुर के शोर से डरा भी नहीं है, प्रकाश
और हवा जब लगती है तब जग जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि गया
ही नहीं । हे प्यारे प्रवीण ! कुछ उपाय करो, वर्षाऋतु के कारण मेरे प्राण
पतंग बने हुए हैं ॥ ९ ॥

अथ संभावनालंकार-सवैया.

चातुक मोरन सोर श्रयो, चहुं ओरन घोर घटा गरजी ।
सीर समीर शरीर दहे, अशरीर न मानत है अरजी ॥

कैसे सहें निबहेंगे कही विध, बीज यह न रहे बरजी ।

पावस आए न आए प्रवीण, हहा करतार कहा सरजी ॥ १० ॥

चातक और मोर के बोलने का शोर सुनाई पड़ने लगा, चारों ओर घोर घटाएं गर्जने लगीं, शीतल वायु के झोंके शरीर को दाह करने लगे, परन्तु अशरीर कामदेव विनती नहीं मानता है । किम प्रकार सहन करें, कैसे निर्वाह होगा, यह विजली गरजने से भी नहीं मानती, पावस ऋतु आगई, प्रिय प्रवीण नहीं आई, हे विधाता ! आप का क्या विधान है ? ॥ १० ॥

अथ समरूपक—अलंकार—सवैया.

वक पंत फूलनके, भूषण फिलाय डारे, बंदनको भाजन सो, बूढ़न फलाद है ।
सुर चाप सोच भरी, अकुटी चढ़ाय राखी, वारद अपार धार, अंबक प्रवाव है ।
चढ़ि आई घटा श्याम, विधुर सु केश वाम, चातुकी उचार, पोज पीय
रसना कहें । पूरव प्रचंड पों, प्रथुल उसास भों, पावस प्रवीणजू
वियोगनी बना रहे ॥ ११ ॥

वक पंक्तिरूप फूलों का आभूषण चारों ओर फैला रक्खा है, वीरबहूटी और पके हुए लाल पुष्परूप सिंदूर बिखेर दिये हैं (अथवा वीरबहूटी रूपी सिंदूर लगा पत्रों में बिखेर दिया है), आकाश में फैले हुए इन्द्र धनुष रूपी विकराल अकुटी तान रक्खी है, मेघधारा रूपी अविरल आंसू बहां रही है, चढ़ आई हुई काली घटा रूपी केशों को बिखेर रक्खा है, चातक के उच्चार रूपी रसना से 'पीव पीव' स्मरण कर रही है, पूर्वी हवारूपी अंगना प्रचंड उसास भर रही है, इस प्रकार वर्षाऋतु हे प्रवीण ! तेरी भांति ही यह वियोगिनी रूप धारण किये रहती है ॥ ११ ॥

सवैया—अंबरते गिरते धरते, सरते सरिते धुरवा जल धावें ।

आंखनते तनते मनते अमुवा अरु स्वेद सनेह बढ़ावें ॥

दादुर मोरन सोरनते, धन धोरनते दरते जु बचावें ।

कंठ प्रवीण भुजा धरके भरिके, करि आसब पावस पावें ॥ १२ ॥

आकाश से, गिरि से, धरती से, सरोवर से और सरिता नदी से जल-धारा दौड़ती है, नेत्रों से, शरीर से और चित्त से क्रमशः आँसू, पसीना और स्नेह टपकते हैं। दादुर और मोर के शोर तथा बादल की घोर गर्जना से तब ही बच सकते हैं कि जब प्रिय प्रवीण गले में हाथ डाल कर, आसव भर कर इस पावस ऋतु में पिलावे ॥ १२ ॥

अथ समरूपक-अलंकार-सवैया.

अंबर बीज पितंबर सोहत, चंदन सो सुर चाप चढ़ायो ।
फाटिक माल बनी बक पंतन, बीन प्रवीण सिखीन बजायो ॥
चातुक दादुर गान उचारत, कामिके चित्त कलेश लगायो ।
छूटे घटासे पटासो जटा छबि, वारद नारदसो बनि आयो ॥ १३ ॥

बादल में बिजली रूपी पीताम्बर शोभित है, इन्द्र धनुषरूपी चंदन लगा हुआ है, बक पंक्तिरूपी स्पटिक की माला बनी है। मयूर ध्वनिरूपी बीणा बज रही है, चातक और दादुर का शब्द रूपी गान हो रहा है. जो कि कामी जनों के चित्त को विह्वल करने वाला है, बादलों की घटा से जो पटा (धारा) छूटी है वह जटा के समान है, इस प्रकार वारिद (बादल) नारद बन कर आया है ॥ १३ ॥

अथ स्मृतिमान-अलंकार-कवित्त.

भुंड आये बकवा, प्रचंड आए सुरचाप, मंड आए मधवा, उमंड आए धुरवा ।
रंग आए कुंजन, पतंग आए पात पात, शृंग आए हरिता, उमंग आए सुरवा ।
घोर आए बरदान, तोर आये चातुकी को, मोर आए दादुर, करोर आए सुरवा ।
दामिनि नवीन छबि, दिश दिश कीन आए, अजहू न आये री, प्रवीण मित पुरवा ॥ १४ ॥

बगुलों के भुंड के भुंड आगए, प्रचंड इन्द्र धनुष आगया, बादल धिर आए, उमड़ कर घटा आगई, कुंजों में रंग आगया, पते २ में पतंग आगए, पहाड़ों पर हरियाली आगई, मोरों में उमंग आगया, मरवा लता खिल उठी.

बादलों में गंभीरता आगई, पक्षियों का समूह आगया, मोर आए, दादुरों का करोड़ों स्वर आया, दामिनी से दिशा २ में नवीन छाँव आगई, परन्तु अब भी हे पूर्व जन्म की मित्र प्रवीण ! तू नहीं आई ॥ १४ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

भील धसें धुरवा धर ऊपर, नील गोरचर अंबर ।

फंद घटा घहरावत है अरु, चातुक सीत बजे सररे ॥

श्रावन मीर सिकार चढ्यो अरु, कच्छ प्रवीण रहे पररे ।

बीजके बाज उड़ावत आवत, तू न बचे जिय तीतररे ॥ १५ ॥

मेघ का प्रवाह रूप भील पृथ्वी पर दौड़ आया है जिसने पर्वत की हरि-याली रूप वस्त्र धारण कर रक्खा है, वर्षा की घोर घटा रूपी भंडा फैला दिया है, पपीहा के स्वर रूपी सीटी बजा कर शिकारियों को समझाता है, इस प्रकार इस (शिकारी) श्रावण मास ने शिकार की चढ़ाई की है. बिजली रूपी बाज उड़ाता हुआ आरहा है और प्रवीण रूपी द्वीप दूर है, बस हे जीवरूपी तीतर तू अब नहीं बच सकता । (अर्थात् यदि प्रवीण रूपी द्वीप समीप होता तो उड़ कर द्वीप में चला जाता और शिकारी वहाँ पहुँच नहीं पाता तो बच जाता) पर अब पीव भी दूर है अतः नहीं बचेगा ॥ १५ ॥

दोहा—चातुक सीत ममीर सर, श्रावन मीर सिकार ।

बीज बाज फंदा घड़ा, जिय तीतर अनुहार ॥ १६ ॥

चातक रूपी सीटी, ठंडा वायु रूपी बाण, श्रावण मास रूपी उमराव शिकार करनेवाला, घटा रूपी भंडा, बिजली रूपी बाज और जीव रूपी तीतर है ॥ १६ ॥

अथ स्मृतिमान अलंकार—कवित्त.

बारसे सुठार चहुओर भुके भार भरे, मुक्त हार जैसे, बक जित तित घेर घेर । कज्जर करनार जैसे, घटासे प्रकार सेर, नैनकी कटाच्छसी, भटकी छवि फेर फेर, काशमीर कुसुम की, आड़ जैसो इंद्र धनु, बेंदी के समान बूढ़, हाथों मन हेर हेर, बानीके समान बानी. चातुक मयूर ठानी, मितवा प्रवीण जूकी, याद आवे ठेर ठेर ॥ १७ ॥

चारों ओर वर्षा की धाराएं केश के समान फैल रही हैं, बगुला की पंक्ति मोतियों की माला के समान है, काली घटाएं काजल की कंठ के समान और उस में बिजली की चमक नैन कटाक्ष के समान है, इन्द्र धनुष की शोभा सिर पर गुंथे हुए काश्मीर पुष्पों के स्थान पर है, और वीरबहूटी विंदी के समान है जिसे देख कर मन हार जाता है । मयूर तथा चातक की ध्वनि वाणी के समान है इस प्रकार ये सब बार २ मित्र प्रवीण की याद दिलाते हैं ॥ १७ ॥

अथ समरूपक-अलंकार-सवैया.

आज घटाकी अटाके भरोखन, राजत है रतिराज सभा भर ।

पंच सदी चहुंओर बदी धुनि, चातुक मोर प्रवीण सधे सुर ॥

जेर किये वीरहीन बड़े जस. आरति बीज उतारति ऊपर ।

मोतिनकी बरषा बरषावत, पावत दान गुनीजन दहर ॥ १८ ॥

आज मेघ की घटा रूप अटारी के भरोखा में रतिराज कामदेव सभा भरा कर शोभायमान हैं, जहां चारों ओर होने वाली मेघ गर्जना रूपी पंचशब्दी वाद्य बज रहा है, हे प्रवीण ! चातक और मयूर स्वर साध रहे हैं, वीरही जनों को विजय किया है इसलिए बिजली आरती उतार रही है, वृष्टि बिंदु रूपी मोतियों की वर्षा हो रही है जहां दादुर रूपी गुणिजनों को वैसा दान मिल रहा है ॥ १८ ॥

अथ स्मृतिमान-अलंकार-सवैया.

चातुक कीरन मोर बनैबो रि, मोरन ठोरन ठोर नचैबो ।

छाई सटान पटानकि आवन, रूप घतान छटान रचैबो ॥

दहर झिल्लन के गनकी धुनि, कीजत हैं सुन प्रान तजैबो ।

आये बिना न बनेगो प्रवीणजू, पावसतें बिरहीन बचैबो ॥ १९ ॥

पपीहा और मुआ के आवाज का बनाव, स्थान २ पर मोरों का नृत्य, बादलों का घुमड़ २ कर घिरना, मेघ घटा की छबिली छटा का बनना, दादुर और झिल्ली राण की झनकार में इन सब साधनों से तो प्राण छोड़ दें ऐसा प्रतीत होता है । हे प्रवीण (प्यारी) ! पावस में वीरही को बचाने के लिए (तेरे) आए बिना कार्य नहीं बन सकेगा ॥ १९ ॥

अथ समरूपक-अलंकार-सवैया.

ददर घंट झिल्ली सुर घूघर, मोरन संकर सोर बजाये ।
 गाज धुनी बक पंतन दंतन, बंदन बीज कला लपटाये ॥
 ब्रच्छ उचारत हैं विरहीमन, बुंदनके फुतकार उड़ाये ।
 इंद्र घटा से प्रवीण यह रति, राजके छूट पटा भर आये ॥ २० ॥

दादुरकेस्वर रूपी घंटा की आवाज, झिल्ली की झनकार रूपी घूघरुकी ध्वनि, मोरों की शोर रूपी जंजीर की खनखनाहट करते हुए, मेघ गर्जनारूप ध्वनि करता हुआ, बकपंक्ति रूपी श्वेत दांतों वाला, बिजली की चमक रूपी सिंदूर रंजित मस्तक वाला, विरही के मन रूपी वृत्तों को उखाड़ता और बुंद रूपी फुंहारे उड़ाता हुआ हे प्रवीण ! यह रतिराज का मदभर हाथी छूट कर इंद्र घटा पार होकर आया है ॥ २० ॥

कवित्त.

सज्जत निरंत्र मन, तज्जत न प्रान ध्यान, गज्जत समुन तातें, लज्जतन गहरे. भरि भरि जाग जाग, विरहिन डारे मार, फर्र फर्र ताहीपै, त्रिविध बात फहरे । जानत न ब्रह्म कर्म, मर्म मर्म एते पैहि, धर्महीन आवत न मीनकेत महरे । परम प्रवीण प्रीत, आगरको चाहें नित, कागर सरूप प्रेम, सागरकी लहरे ॥ २१ ॥

मन निरंतर तुम्हारे साथ रहता है अर्थात् एकता रखता है, प्राण तुम्हारा ध्यान छोड़ता नहीं, मेघ जिस समय गर्जना करता है उस समय भी तुम्हारा ध्यान चलायमान नहीं होता । फिर भी वर्षा की झड़ी हम विरहियों को जला डालती है, उस पर शीतल मन्द सुगन्धित पवन बह २ कर और सन्ताप देता है । ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मण का कर्म और उसका मर्म तथा लज्जा को न जानने वाले धर्महीन कामदेव का दया नहीं आती । हम तो प्रीति के समुद्र परम प्रवीण (चतुर अथवा प्रवीण) को चाहते हैं जिसका प्रेम समुद्र के किनारे

के समान है जहां सागर (रससागर अथवा समुद्र) की लहरें आती हैं * ॥ २१ ॥

सवैया.

घोर घटा गहराय उठी घन, आगम बूंद छुहा छरके ।
 दामिनि जोत जगी झिलवा, उमगे मुरबा सुर दादुरके ॥
 सीत समीर चली पुरवा, धुरवा धसि आवत अंबरके ।
 पावस साज विलोक प्रवीण, विहाल है प्रान बिही नरके ॥२२॥

काली घटा आकाश में उमड़ उठी, वर्षा आने की सूचना बूंदें थिरक कर देने लगीं, बिजली चमकने लगी, झिगुर झनकारने लगे, मोर और दादुर की ध्वनि होने लगी, ठंडी २ पुरवाई के झोंके चलने लगे, बादल के समूह के समूह दौड़ने लगे, हे प्रवीण ! पावस का यह साज देख कर विरही जनों के प्राण विवृत हो उठे ॥ २२ ॥

अथ स्मृतिमान्-अलंकार-सवैया.

ज्यों ज्यों घटा चढ़ि आवत अंबर, त्यों त्यों पटामें छटा छवि छाई ।
 ज्यों ज्यों दशो दिश कोंधत दामिनि, त्यों त्यों गजे घनकी गहराई ॥
 ज्यों ज्यों यहै धुनि बारद बादर, त्यों त्यों मलार मयूरन गाई ।
 ज्यों ज्यों नवीन शिखीन सधें सुर, त्यों त्यों प्रवीण छबी चित आई ॥२३॥

ज्यों ज्यों आकाश में बादल चढ़ आते हैं त्यों त्यों उनमें बिजली की छटा छा जाती है, ज्यों ज्यों दशों दिशा में बिजली क्रोधित हो चमकती है त्यों त्यों घनघोर गर्जना होती है, ज्यों ज्यों बादलों में ध्वनि होती है त्यों त्यों मयूरगण

* हमारी सम्मति में यहां ' प्रवीण ' और ' सागर ' शब्द दोनों ही क्लिष्ट हैं और इस में वर्णन श्लेषालंकार से है । प्रवीण का अर्थ चतुर और राजकुमारी प्रवीण तथा सागर का अर्थ समुद्र और महाराज रससागर है । यह भाव गुजराती टीका में व्यक्त नहीं हुआ है, परन्तु हमने यहां स्पष्ट कर दिया है ।

मलार (राग) अलापते हैं और ज्यों ज्यों मयूर नए २ स्वर अलापते हैं त्यों त्यों प्रवीण की छवि चित्त में आती है ॥ २३ ॥

अथ छेकानुप्रास—अलंकार—कावित्त.

फरर फरर पौन, थरर थरर कुंज; घरर घरर घोर, ऋरर ऋरर बादर ।
कहक कहक केकी, लहक लहक लता; चहक चहक झिल्लि, डहक डहक
ददर । चरत करत बीज, फरत फरत कटि; सरित भरित पूर, हरित
गिर चदर । गहें गहें पान बीन, चहें चहें गान लीन, अहें अहें रे प्रवीण,
लहरी लह कदर ॥ २४ ॥

करर करर पवन चलता है, थरर थरर कुंजलताएं कंपती हैं, ऋरर २ आवाज
बादल करते हैं, जिससे मयूर केकी करते हैं और लताएं लहक रही हैं, झिल्ली चह-
कारते हैं, दादुरगण दहकारते हैं, महा प्रचंडता से बिजली चमकती है, पतं-
गिया फहर फहर बोलते हैं, नदियां जलपूरित हो कल कल आवाज कर रही हैं, पर्वत
माला हरित चादर ताने हुए हैं । ऐसे रमणीय समय में चित्त चाहता है कि हाथ
में वीणा लेकर गान करें । अहो प्रवीण ! लहरी ही इसकी कदर कर सकता है
और कौन करे ॥ २४ ॥

अथ जातिस्वभाव—अलंकार—सवैया.

आज घटा घनघोर उठी चिहुं, ओरन मोरन की धुनि बागी ।
भूपर भेक अनेक भरे ख, इंद्र धनू तडिता दुति जागी ॥
फूल सुधा मुक्ताफल धारत, द्वार बधाई बजी बड़भागी ।
बान अनंग चिंनंग हलाहल, बूंद प्रवीण बियोगनि लागी ॥ २५ ॥

आज घनघोर घटा उठी और चारों ओर मोर बोलने लगे, पृथ्वी पर
अनेक अनेक वार शब्द गूंजने लगे, इंद्र धनुष और विद्युत प्रकाश चमकने लगा,
लोग पुष्प सुधारस और मोतियों की माला धारण करने लगे, भाग्यवानों के
द्वार पर बधाई के बाजे बजने लगे, परन्तु हे प्रवीण ! बियोगी के लिये तो वह

सब साज अनंग के बाण, अग्नि की चिनगारियां अथवा हलाहल बूंद से समान
ही लगा ॥ २५ ॥

अथ समरूपक-अलंकार-सोरठा.

गरल घटा यह मेह, बूंद बान दामिनि अगन ।

शीतल सघन सनेह, बरषेगो देखे बदन ॥ २६ ॥

इस समय तो हलाहल विष रूपी घटा उमड़ती है, बिजली अग्नि से भरी
हुई और मेघ के बूंद बाण वर्षा के समान हैं । जब आप का मुखचन्द्र देखूंगा
तभी वह वर्षाऋतु शीतल, मनोहर और स्नेह से वर्षा करेगी ॥ २६ ॥

गाहा-नयणा ऋत मकरंदी, हंसा गमण गमण सर भरियं ।

आनन शशि अणुहारे, पावस गहिय सहिय किं विरही ॥२७॥

हे प्रवीण ! तेरे नेत्र की आकृति वाले कमल तेरी गति के समान गति करने
वाले हंस और तेरे मुख की आकृति वाले चन्द्र, इन तीनों का वर्षाऋतु ने
गृहीत कर लिया है फिर तुम्हारे वियोग वाला मैं इसे किस प्रकार सहन
करूं ? ॥ २७ ॥

ऐ ऐ बालं बालं, प्रतिबिंबेण बिंब अवलोकै ।

भालं प्रभा रसालं, किं काजेन बंदियं चंदा ॥ २८ ॥

हे बाल बुद्धिवाले लोगो ! चन्द्र के प्रति बिम्ब रूप इस बाला के मुख को
देखो, ऐसे रसाव प्रभायुक्त भाव को छोड़ कर चन्द्रमा को क्यों नमन करते
हो ? ॥ २८ ॥

सवैया-सागर भित्त समाज, व्रथा विरह चरचा भई ।

प्रति प्रवीण महाराज, लिखि सु भंखी मन दशा ॥ २९ ॥

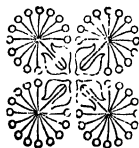
कुमार रससागर ने वर्षा की विरह वेदना से उत्पन्न हुई मन की दशा का
जो पत्र मित्रमंडली में चलाया और फिर पत्र लिख कर प्रवीण के पास भेजा,
इस विरह दशा का वर्णन किया ॥ २९ ॥

अथ गाथा.

सागर बरपा बिरहो, बरनी दशा चित्त मितह लय ।

त्रयतालीश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

महाराज रससागर ने जो वर्षा के बिरह से मन की दशा का वर्णन भित्रों से किया उसके सम्बन्ध की यह प्रवीणसागर की तैंतालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३० ॥



४४ वीं लहर ।

अथ सिद्ध-प्रसंगो-यथा-छप्पय.

इहि विधि चरचा चलत, उतें बो तो षट्हू रित ।
बढथो प्रेम विस्तार, विरह ज्वाला नित बाढ़ित ॥
अंबर भयो आवाज, वहै परतीत सुधारे ।
निकट ओध निरधार, राह जोगेश निहारें ॥
उरमें उच्छाह सागर सु अति, जानत सिद्ध सु आयंगे ।
पुरमें विशेष संशय बढे, सो मति उत्तर पायंगे ॥ १ ॥

इस प्रकार चर्चा चलते वहां छत्रों ऋतु बीत गई अर्थात् वर्ष पूरा हुआ । प्रेम का विस्तार हुआ त्यों २ विरह ज्वाला नित्य बढ़ने लगी । परन्तु जो आकाशवाणी हुई थी उस पर विश्वास धारण कर हमेशा योगेश्वर का मार्ग देखने लगे, क्योंकि समय समीप आगया । महाराज रससागर के हृदय में उत्साह था कि अब सिद्ध महाशय आवेंगे और उनसे हृदय की शंकाओं का निराकरण करूंगा ॥ १ ॥

दोहा—रससागर उर धार यह, अति बाढ़े उच्छाह ।

आवत ओध समीप ज्यों, त्यों त्यों हेरत राह ॥ २ ॥

महाराज रससागर के हृदय में इस विचार से उत्साह बढ़ने लगा और ज्यों २ योगी के आगमन की अवधि पास आने लगी त्यों २ राह देखने लगे ॥ २ ॥

ऐमे में उत्तर दिशा, ज्वालामुखी सु थान ।

तासे पर तापम रहें, प्रभानाथ अभिधान ॥ ३ ॥

तब कोई से सुना कि उत्तर दिशा में जो ज्वालामुखी का सुन्दर स्थानक है उसके उस पार प्रभानाथ नामक तपस्वी रहते हैं ॥ ३ ॥

छप्पय—तापस बहें पुरान, सबै विधि जानत साधन ।

उनहु जथा विधि कीन, अगें ज्वाला आराधन ॥

भवा प्रसन्न तब भए, दरस जोगेश्वर पाए ।

देवि पाय वरदान, पूर्ण अभिशेकि कहाये ॥

धारणा ध्यान पुनि जब धरहि, तब सरूप निरखे नयन ।

कीजत आज कोऊ समय, प्रति-उत्तर पावे वचन ॥ ४ ॥

ये तपस्वी बहुत पुराने हैं और सकल विधि विधानयुक्त साधन को जानते हैं । इन्होंने पहिले यथाक्रम ज्वालामुखी की (देवी की) उपासना की थी तब भवानी अंवा ने प्रसन्न होकर योगेश्वर को दर्शन दिया था और उनसे वरदान पाकर पूर्ण अभिषेकी कहलाये हैं । जब ये धारणानिपुण ध्यान करते हैं तब ये साक्षात् भगवती-दर्शन करते हैं किमी किमी समय अर्ज करने वाले को प्रति-उत्तर में वचन भी देते हैं ॥ ४ ॥

अथ वह सिद्ध-वर्णन-छंद शंखनारी.

प्रभा नाथ नामी, महा सिद्ध स्वामी; कछू नांहि खावे, पहाडं रहावे । चखंनींद तज्जे, भवा ईश भज्जे, त्रिकालं समृति, त्रयं पंथ गत्ती । दशं विद्य ज्ञानी, वदे सत्य वाणी, नके लच्छ छोहे, समे हेम लाहे । विनेति न रिज्जे, नके गारि खिज्जे, विनेति न लषे, समं द्रष्ट रक्खे । कहे मोह माया, दमें आप काया, भवानी अराधे, महामंत्र साधे ॥ ५ ॥

प्रभानाथ योगी महासिद्धि के स्वामी हैं । वे कुछ खाते नहीं, पहाड़ों में ही रहते हैं । आंगवों से निद्रा छोड़ खड़े ईशभजन में रहते हैं उन्हें तीनों काल का ज्ञान है । आकाश, पाताल और स्वर्ग तीनों के मार्ग में उनकी गति है । दशों विद्या के जानने वाले हैं, सदा सत्य बोलते हैं । किसी की लक्ष्मी से सरोकार नहीं रखते, सोना और लोहा को बराबर समान जानते हैं । विनती करने से प्रसन्न नहीं होते, नहीं गाली देने से नाराज होते हैं । स्त्रियों पर दृष्टि नहीं डालते, समदृष्टि रखने वाले हैं । अपने शरीर को दमन करते हैं । जिन्हें मोहमाया कुछ नहीं है । सदा भवानी की आराधना और महामंत्र की साधना में तत्पर रहते हैं ॥ ५ ॥

सोरठा—उन सिध प्रत्य आवाज, एक समय उमया कही ।

जहँ रससागर राज, उतें सु आप सिधाइए ॥ ६ ॥

इन योगेश्वर को एक समय उमाजी ने इस प्रकार कहा कि रससागर का राज जहां है आप वहां जाओ ॥ ६ ॥

कही सु पूरव बात, ईश आप आपे वचन ।

इतें सु उरबी जात, प्रेम विरह अंबर उकत ॥ ७ ॥

शक्तिरूप अम्बाजी ने पूर्व वाणी—कैलाश पर्वत पर महाशिवरात्रि के मेला समय में उत्पन्न हुई शाप आदि की समस्त वार्ता कह सुनाई । फिर इस लोक में अवतार लिया फिर परम्पर जुड़ी हुई प्रीति और विरह के कारण दोनों का शिव स्थानक से वियोग—शरीर छोड़ने का मनसूबा—आकाश वाणी आदि का वृत्तान्त स्वामी को कह सुनाया ॥ ७ ॥

उन प्रति कहो बतंत, उर अंदेश मिटाइये ।

दुहु निज घाट चहँन, वहे वरज इत आइये ॥ ८ ॥

इम प्रकार योगी को वृत्तान्त कहने के बाद ईश्वरी ने कहा कि उनके हृदय के ताप को मिटाओ, दोनों जो आत्मघात करने की इच्छा करते हैं उमे रोक कर फिर यहां आना ॥ ८ ॥

तवै कही जोगेश, आप हुकुम जावें उतै ।

उन प्रति हम उपदेश कहें सु पूरण कीजिये ॥ ९ ॥

तब योगीश्वर ने भगवती से हाथ जोड़ कर कहा कि आप की आज्ञा से मैं वहां जाता हूं परन्तु मैं उनको जो जो उपदेश करूं वह आप जगदम्बा उसे पूरा करो ॥ ९ ॥

भवा कही भव आप, टार्यो निज काहु टरे ।

यहै बतवे आप, जासैं सिधि आगे मिले ॥ १० ॥

तब भवानी ने कहा कि ईश्वर का दिया हुआ शाप किसी से टल नहीं सकता, परन्तु आप उन्हें ऐसा उपदेश देना कि जिससे उन्हें आगे सिद्धि प्राप्त हो ॥ १० ॥

दोहा—कही सिद्ध पुनि एह, करि बंदन कर जोर जुग ।

कहनहार कहि देह, आपै उहे निभाइये ॥ ११ ॥

दोनों हाथ जोड़ वन्दना करके योगी ने देवी से कहा कि हे जगदम्बा !
कहने वाला तो कह देगा परन्तु उसका निर्वाह आप करना ॥ ११ ॥

अथ तत्र सिद्धोक्त-भवानीस्तुति-सवैया.

किंदरनी दरनी अरनी चख, पै भरनी भरनी भरनी ।

गोधरनी धरनी अध ऊरध, भो बरनी बरनी बरनी ॥

खेचरनी चरनी थिरनी, थित है तरनी तरनी तरनी ।

मे हरनी हरनी जन संकट, श्री करनी करनी करनी ॥ १२ ॥

हे देवी ! तुम्हारा माहात्म्य जाने बिना अगर कोई अनजान पूछे कि किस वस्तु का दलन करने वाली आप हैं !!! तो मैं यही उत्तर देता हूँ कि तू शत्रु कानाश करने वाली है, स्वजनों की आंखों में से अमृत भरी में से नदी रूप में से तुम बहती हो । हे जगदंबा ! आप पृथ्वी को धारण करने वाली हो तथा नीचे के सात पाताल और ऊपर के भात लोकों को धारण करने वाली हो । शिव से वर्णन की गई तथा ब्रह्मचारियों द्वारा जिन्होंने स्त्रियों का त्याग कर रक्खा है यथा सौन-कादिक तथा शंकराचार्य आदि द्वारा वर्णन की गई हो । आकाश में फिरने वाली तथा अस्थिर और स्थिर प्राणियों में आप स्थितिरूप हैं । हे तरुण अवस्था वाली ! सूर्यरूप से प्रकाश करने वाली तथा नौकारूप से भवसागर से पार करने वाली हो । हे भगवती ! आप भय हरण करने वाली तथा शरण में आए हुए लोगों के संकट छुड़ाने वाली हो । आप श्री अर्थात् लक्ष्मी की प्रदाता अथवा शोभा और मोक्ष देने वाली हो ॥ १२ ॥

दोहा—यह अस्तुति तापस करी, धार्यो उतें पयान ।

एते मध्य सरूप भो, उमा सु अंतर ध्यान ॥ १३ ॥

इस प्रकार उस तपस्वी ने स्तुति करके जहां रससागर हैं वहां के लिये प्रयाण किया । इतने में देवी का स्वरूप अंतर्ध्यान हो गया ॥ १३ ॥

शिवा हुकुम सिद्धा लखो आपै पंथ आकाश ।

ईशा—लय गय अल भेय, पटरितु द्वादश मास ॥ १४ ॥

पार्वतीजी की आज्ञा से सिद्ध ने अपना आकाश का मार्ग लिया और जब सागर को आकाशवाणी होने के बारह मास और छः ऋतु बीते तब शिवालय में दाखिल हुआ ॥ १४ ॥

गाहा—अध निश वहत व्रतंत, ईश समीप सिद्ध कीय आसन ।

प्रगटत प्रभा सु कंतं, सेवा उत प्रवेश किय सागर ॥ १५ ॥

आधी रात बीतने पर सिद्ध ने महादेव के सामने आकर आसन लगाया । प्रातःकाल सूर्य की कान्ति प्रकट होते होते शिवपूजन के निमित्त कुमार रस-सागर ने शिवालय में प्रवेश किया ॥ ५ ॥

खोलित किलक कपाटं, शिव समीप सिद्ध दरसाए ।

उर पूरब अभिलाषं, करि बंदना लगे बतरावन ॥ १६ ॥

कुंजी से मंदिर का किवाड़ खोलते ही वहां शंकर के सामने बैठे हुए सिद्ध को देखा । पूर्ण हुई आकाश वाणी की बात स्मरण कर अभिलाषा से उसका वन्दन किया और फिर उम सिद्ध के साथ बात करने लगे ॥ १६ ॥

अथ वह सिद्ध स्वरूप वर्णन छंद—सारसी.

बद्धं सु जटं पीतं पटं एक लटं सुलिपं; तेजं दिनंदं शील चंदं मंदं मंदं बुद्धियं. नैनं कराला बिंदु लाला रुद्र माला लाहियं, आकाश पथं ईश तथं सिद्धनथं आहियं. एक सु पगं लोह लगं अंग नगं सोहितं बीभूत चट्टे ज्ञान गट्टे दीठ द्रष्टे जोहितं. विद्या विधानं सत्य बानं शूलपानं साहियं आकाश पथं ईशतथं सिद्धनथं आहियं. स्वाता सधंतं काल-इतं हैन अतं पतियं. मंत्र उचारं सोध सारं रूप धारं गतियं ज्वाला सु जपं तेज तपं काम कपं दाहियं, आकाश पथं ईशतथं सिद्धनथं आहियं बाला न ब्रह्मे जून सद्धे कौन लद्धे उम्भरं, आपे उपासी रिद्ध रासी संग बासी अम्भरं. शुद्धं शरीरं गंग नीरं प्रेम पीरं पाहियं, आकाश पथं ईश तथं सिद्धनथं आहियं ॥ १७ ॥

जिन्होंने मस्तक पर जटा बांध रखी है, पीला पीताम्बर धारण किए हुए हैं, माथे की एक लट खुली फरकती है, सूर्य के समान जिसका तेज है, चंद्रमा के समान शीतल स्वभाव है, धीमी वाणी बोलते हैं, नेत्र जिनके महा कराल भयंकर हैं, ललाट में सिंदूर की विन्दी लगी हुई है और गले में रुद्राक्ष माला पहिने हैं, इस प्रकार के सिद्धनाथ आकाश मार्ग में तीर्थरूपी महादेव के स्थानक में आए । जिनके एक पग में लोहे की जंजीर है, शरीर नग्न होते हुए भी अति शोभायमान है, सारे शरीर में भस्म लगी हुई है, ज्ञान में गंभीर दृढ़ दृढ़ि से देखने वाले, सर्व विधी के विधानरूप, सत्य वचन वाले, हाथ में त्रिशूल शोभित है, ऐसे सब नार्यों के नाथ सिद्धनाथजी कुंवर रससागर के तीर्थ रूप शिवमंदिर में आकाश मार्ग में आए थे ।

श्वास को रोक कर प्राणायाम करने वाले, काल का हनन करने वाले, जिसे किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं है, गुरुपरंपरा को जानने वाले, महा मंत्र के उच्चारण करने वाले, सार वस्तु के शोधन करने वाले, मानश्छिन्न गति अनुसार रूप धारण करने वाले, ज्वालामुखी का जप करने वाले, निज तेज से प्रकाशित काम के दहन करने वाले, इस प्रकार के सिद्धनाथ आकाश मार्ग में तीर्थ रूप शिवस्थानक में आए थे । ये बालक हैं या वृद्ध कुछ ज्ञान नहीं होता तो फिर इनकी उमर कौन जान सके ? अपने स्वरूप की स्वयं उपासना करने वाले, रिद्धियों के भंडार, देवताओं के साथ रहने वाले, गंगाजल के समान शुद्ध शरीर वाले, प्रेम की पीड़ा को पहिचानने वाले महाराज सिद्धनाथ आकाश मार्ग से कुमार रससागर के द्वारा स्थानिक शिवस्थान में आए हैं ॥ १७ ॥

चौपाई-सागर दरश सिद्ध का पाया, बंदन किय हुलास हिय आया ।

यह जानी अंदेश उर भगो, बैठ समीप बूझने लगो ॥

स्वामी तुम केहि ठोर रहाओ, कितलगी कौन दिशासे आओ ।

सिध हैंमि मंद बोलने लागे, हमें रहत ज्वाला से आगे ॥

पुनि कहि इच्छा आप बुलाये, और न काम ईतैं लागि आये ।

सागर तवै सत्य मन मानी, अर्चन लगे सज बहु आनी ॥

आन आन बिघ असन मँगाये, सो तो सिद्ध काहु नहिं खाये ।

किय मनुहारन पट्टन आया, आसन सिद्ध उहाँहि जमाया ॥

कुमार हमेश बंदने आवे, पुजि हमेश सिद्ध चरचावे ।

तापस बड़ो प्रताप लपावे, प्रति आशय न बूझने पावे ॥ १८ ॥

कुंवर रमसागर ने सिद्ध का दर्शन करते ही हृदय में प्रसन्न हो यांगी को नमस्कार किया और मन में सोचा कि अब मन की चिन्ता दूर हो जायगी । फिर समीप बैठ कर पूछने लगे कि हे स्वामी ! आप कहां रहते हैं ? कहां से आए और कहां तक जाना है ? तब सिद्ध मंद मंद हाम्ययुक्त धीमी वाणी से बोलने लगे कि मैं ज्वालामुखी की दूसरी ओर रहता हूं । फिर बोले कि आप की ही इच्छा यहां बुलाने की थी, मुझे और कोई कार्य नहीं यहां तक ही आया हूं । इस प्रकार सिद्ध की बातें सच्ची हैं यह जान कर कुमार भी नाना प्रकार से अर्चन करने लगे । भांति भांति के स्वादिष्ट मिष्ठान मंगाया परन्तु सिद्धने नहीं खाया । तब नगर में चलने के लिए नम्रतापूर्वक निवेदन किया यह भी सिद्धने स्वीकार नहीं किया । तब सब प्रकार का वहां प्रबन्ध कर कुमार नगर में आए और सिद्धने वहीं शिवालय में आसन जमाया । कुंवर श्री रससागर नित्य शिववन्दनार्थ वहां जाते और शिवजी की पूजा के उपरान्त सिद्ध की भी अर्चा करते । तपस्वी के महान् प्रताप के कारण महाराज अपने मनकी बातें पूछने का साहस न कर सके ॥ १८ ॥

दोहा—वह बूझन पावत नहीं, बड़ो सिद्ध परताप ।

रससागर महाराज मन, मुरझत आपहि आप ॥ १९ ॥

सिद्ध के महान् प्रताप के सम्मुख कुमार श्री रससागर अपने मन की बात पूछ नहीं सकते इसलिए मन ही मन मुरझाने लगे ॥ १९ ॥

भीर भार बासर बने, बतियां खुले न चित ।

सागर मुकयि सु सिद्ध पै, आए निशि एकंत ॥ २० ॥

दिन में मनुष्यों की भीड़ भाड़ होने के कारण मन की बात खोल नहीं

सकते थे इसलिए एक दिन सागर तथा भारतीनन्द कवि रात्रि के समय सिद्ध के पास आए ॥ २० ॥

छप्पय—सिध समीप महाराज, निशा नित बैठन आवहि ।

बूझी जाय न बात, बती आपै न कहावहि ॥

बहत घोस दश पंच, निशा पर्वनी सु आई ।

अंब अराधन काज, जोगि आसव भगवाई ॥

वह ले सु ए सागर सुकवि, उन एकंत अर्चन किये ।

कीने विसर्ज सागर कुमार, नीठ बोल तापस लिये ॥ २१ ॥

सिद्ध के पास नित्य रात्रि में महाराज जाते परन्तु बात पूछ नहीं सकते थे, और योगी भी स्वयं कहते नहीं, इस प्रकार दस पांच दिन बीत गए । एक दिन पर्व की रात्रि आई तब अंबाजी की आराधना के लिए योगी ने आसन मंगाया । उसे लेकर सागर और कवि भारतीनन्द दोनों शिवालय में गए और सिद्धने एकान्त में बैठ कर पूजन किया । उसके उपरान्त विसर्जन के लिए पूजा की समाप्ति करके तपस्वी ने सागर कुमार को अपने पास बुला लिया ॥ २१ ॥

सोरठ—जोग रीझ मन जान, मन बूझन धारथो मतों ।

उर आशय अनुमान, कछु मुसकाय कही सु सिध ॥ २२ ॥

योगी प्रसन्न हैं यह जान कर कुमार ने मन में बात पूछने का निश्चय किया तब कुमार श्री के मन का आशय हृदय में अनुमान करके स्मित हास्य से सिद्धने कहा ॥ २२ ॥

अथ सिद्धोक्त—छंद-भुजंगप्रयात.

तुमें चितमें बूझवी बात ठानी, महंमाय सिद्धो हमें सोय जानी ।

यहै जोगधारी कितो प्रेम देखें, मनंकी परत्तीत ब्रति परेखें ॥

कही कामनी से कहा प्रेम लाया, यही बातसे कौनसा सिद्धि पाया ।

अंगें बालके ख्याल लंकेश लगा, गँवाई मदं मोहसे आप जग्गा ॥

अष्टपी नारिसे प्रेम देवेश लाए, भगाकार अनेक अंगं बनाए ।

वही नेहसे ध्यान महेश छंडे, ठुहीनं वही रीत कापाल खंडे ॥

प्रिया हेत चंदा कलंको लहावे, बिनंता बधे आपदाको उपावे ।
कहे सिद्ध मिथ्या सबै धात छंडो, उमाईश को ध्यान आखंड मंडो ॥ २३ ॥

हे सागर ! तुमने जो बात पूछने की मन में इच्छा की है वह योगमाया की सिद्धि से हमें मालूम होगई है । फिर यह देखने के लिए कि सागर का इसे कितना प्रेम है और इसके मन की वृत्ति किस प्रकार की है मन में सोचा और सिद्धने कहा कि सागर ! अमुक कामिनी से अपने आहा ... क्या प्रेम लगाया है ? इस बात में किस मनुष्य को सिद्धि प्राप्त हुई है !!! देखो पूर्व में लंकेश रावण स्त्री के प्रेम में लगा सो अपनी राजधानी लंका गंवा बैठा । गौतम ऋषि की स्त्री से इन्द्र ने प्रेम किया !! जिससे उसके शरीर में अनेक भग हो गए । स्त्री ने महादेव का ध्यान छुड़ाया, इसी रति से ब्रह्मा का कपाल खंडन हुआ । स्त्री का नेह से ही चन्द्रमा कलंकी कहलाया, इस प्रकार यह स्त्रीप्रेम सर्व आपदा उत्पन्न करने वाला है इसलिए आप इन सब मिथ्या बातों को छोड़ो और एक चित्त से शिवशक्ति का अखण्ड ध्यान धरो ॥ २३ ॥

दोहा—ऐसे सिधके वचन सुनि, कुमर चित्त में लाय ।
कहा प्रसंग कीनो सु यह, मनही मन मुरझाय ॥ २४ ॥

यह सुन कर कुमार श्री मन ही मन मुरझाने लगा कि सिद्धने यह क्या प्रसंग छेड़ दिया ॥ २४ ॥

अथ गाहा.

सिद्ध सकत संवादं, शिवालये सागरं चर्चा ।
चवालीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

सिद्ध और शक्ति का संवाद तथा शिवालय में सागर के साथ ही चर्चा वाली यह प्रवीणसागर की चवालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

४५ वीं लहर ।

अथ प्रेमाधिकार निरूपण प्रसंगो यथा—सोरठा.

सागर मन मुरझंत, यहै सिद्धका वचन सुनि ।

अतिहि उदासी चित, प्रत्युत्तर लागे कहन ॥ १ ॥

सिद्ध के इस प्रकार के वचन सुनकर सागर कुमार मन में चिंतित हो अति उदासी के साथ प्रत्युत्तर में कहने लगे ॥ १ ॥

अहो सिद्ध महाराज, तुमजो कही सो हम लही;

अंबर हुवा अवाज, सो हमसे सुनिये सबै ॥ २ ॥

हे सिद्ध महाराज ! आपने जो कुछ कहा वह हमने समझ लिया परन्तु जो आकाशवाणी हुई थी वह सब आप मुझसे सुनिये ॥ २ ॥

छप्पय—हमें ईश आगार, मतो मरने को कीनो ।

तबै अट्ट अवाज, एह प्रत्युत्तर दीनो ॥

बोतत छरितु ब्रतंत, इतं सिद्धा आवेंगे ।

उत्तर उर अंदेश, आप उनसे पावेंगे ।

बरजी सु बात धारी बहें, आए आप मिली सु सब ।

कर प्रेम हनि उत्तर कह्यो, तुम हमको न जिवाय तब ॥ ३ ॥

हमने शिवमन्दिर में मरने का विचार किया तब आकाश से यह आवाज आई कि छः ऋतु बीतने पर यहां एक सिद्ध आवेंगे जिनसे तुम्हें तुम्हारे विचारों का उत्तर मिलेगा । इस बात को सुनकर हमने आत्महत्या की बात छोड़ दी और अब आप यहां आए जिससे यह बात सत्य प्रतीत होती है, परन्तु आपने प्रेम को हीन बताकर उत्तर दिया इससे तो आपने हमें जिलाया नहीं अर्थात् हमें मृत्यु के काल में पहुंचाया ऐसा हम समझते हैं ॥ ३ ॥

अति उदास सागर भये, सुनी सु तापस बात ।

मन में द्रढ़ कीन्हीं तबै, प्रानघात परभात ॥ ४ ॥

योगेश्वर की बात सुनकर कुमार अति खिन्न हुए और उसी प्रातःकाल आत्म-घात करनेका मनमें निश्चय किया ॥ ४ ॥

दोहा—यहै धार सिधसे लगे, कहन प्रेम परकार ।

प्रति उत्तर यह प्रश्नको, कहो बात विस्तार ॥ ५ ॥

ऐसा दृढ़ संकल्प करके सिद्ध से प्रेम के प्रकार का वर्णन करने को कहने लगे और कहा कि इन प्रश्नों के उत्तर के साथ सर्व बात विस्तारपूर्वक कहिए ॥ ५ ॥

छप्पय—अहो सिद्ध जोगेश, प्रेमको हीन बताए ।

प्रेम बिना तुम इष्ट, साध मिट्टी कहँ पाए ।

प्रेम बिना कहँ पढ़े, कौन बिन प्रेम पढ़ावे ।

प्रेम बिना तजि सृष्टि, कौनसा भसम चढ़ावे ॥

बिन प्रेम कौनसी वस्तु प्रिय, कौन प्राणि प्रेम न चहँ ।

माहेशरूप कीजे कृपा, यह प्रसंग हमसे कहँ ॥ ६ ॥

हे योगेश ! आपने तो प्रेम को अति हीन बताया है परन्तु प्रेम के बिना आपने किस प्रकार इष्ट साधन करके सिद्धि प्राप्त की ? प्रेम के बिना क्या पढ़े और कौन पढ़ावे ? प्रेम के बिना यह सृष्टि छोड़ कर कौन भस्म चढ़ावे ? प्रेम के बिना कौनसी वस्तु प्रिय लगे ? कौन ऐसा प्राणी है !! किसे प्रेम की इच्छा नहीं ? हे महेश्वररूप सिद्धेश्वर ! कृपा कर इन प्रश्नों का उत्तर कहिए ॥ ६ ॥

दोहा—सागर मुख ऐसी सुनत, पाइ सिद्ध परतीत ।

कहबे को मन भए मुदित, प्रेम नेम की रीत ॥ ७ ॥

महाराज सागर के मुख से बातें सुनकर सिद्ध को विश्वास हुआ जिससे प्रेम के नियम की रीति कहने के लिए मन में बहुत प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥

अथ सिद्धोक्ति—छंद महालक्ष्मी ॥

प्रेमको भेद आपै कह्यो, सो हमें चित ही में लख्यो ।

पूरबं प्रेमही की कही, सो तुम चित प्रच्छा लही ॥

पैं कही आप सोई सची, काहु प्रेम बिना ना रची ।
 ईश आगे उमासे भनी, एह सृष्टी सु ऐसे बनी ॥
 अंबजु सेवकों से कही, तातसे बात ब्रची लही ।
 सोय ब्रची उचारी गिरा, यों भयो भेद पारंपरा ॥
 सो कछु बात पावैं हमें, तास भेद सुनावैं तुम्हें ।
 सागर ईश बानी यहै, चित्तमें सत्य जानो वहै ॥ ८ ॥

सिद्ध ने कहा, हे रससागर ! आपने जो प्रेम का भेद कहा इसे हमने मन में लिया । हमने जो पहिले प्रेम की निन्दा की बात कही वह तुम्हारे चित्त की परीक्षा करने को कहा था । वरन् आप ने जो बात कही है वह सत्य है । प्रेम के बिना कोई बना ही नहीं है । इसी विषय में पहिले महादेव ने पार्वतीजी से कहा था कि यह सृष्टि इसी से बनी है अर्थात् प्रेम से ही बनी है । उस ईश्वर की प्रेम प्रभाव की वाणी को भगवती ईश्वरी ने अपने सेवकों से कही, फिर उन्होंने ब्रह्मा से कहा, ब्रह्मा से महान् ऋषि मुनियों ने प्राप्त किया और वाणी रूप में उच्चारण कर बड़े बड़े ग्रन्थ रचे । इस प्रकार परंपरा से यह भेद हुआ उस में जो कुछ थोड़ासा अवशेष मुझे मिला था उस का भेद तुम्हें सुनाता हूं । हे सागर ! यह ईश्वर की ही वाणी है इसलिए इसे चित्त में सच्ची समझो ॥ ८ ॥ *

दोहा—पूरव भेद सुनाय सिध, कहन लगे फुनि बान ।

सागर सत्य सु जानिए, यही प्रेम पहिचान ॥ ९ ॥

पहिले के भेद सुना कर फिर सिद्ध कहने लगे, हे सागर ! प्रेम की यही पहिचान है, यह सत्य समझना ॥ ९ ॥

* इस कविता का धारक श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय के निम्नस्थ श्लोकों से प्रतीत होता है:—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्, विवस्वान् मनवेप्राह मनुर्दिवा-
 कवे ब्रवीत् । एवम् परंपरा प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः० । इत्यादि

हिन्दी टीकाकार ।

अथ तत्र प्रेमभेदवर्णनमाला “दीपक अलंकार”—छंद भुजंगप्रयात.
अनंतं अभेदं अजातं अलल्लवं, न आदी न अंतं न रूपं नरल्लवं ।
तहां जोत रूपं बहे प्रेम सत्ता, प्रकृत्ती निराकार साकार मत्ता । महत्तत्त्व प्रेमं
मिले प्रकरत्ती, भई अंक हंकारकी उत्तपत्ती । रूपं हं छुरे अंसु प्रेमं प्रकाशं,
भयो आदिही तत्त्व सत्ता अकाशं । वही शून्यमें धून्यसो प्रेम सीरा, बिधं
तत्त्वरूपं कियंतं समीरा । बहे मारुतं प्रेम रत्तं बहंतं, उतंप्पत्तियं तीसरं
तेजतत्तं । प्रकाशं कियं तेज में प्रेम तप्पं, प्रगटं भये चातुरं तन्व अप्पं ।
छुरे बारके बंबसे प्रेम सप्थी, भयो तारही पंचमं तत्त्व सप्थी । मिले पंचही
तत्त्व प्रेमं प्रचंडं, कियो तार बिस्तार वैराट इंडं । अंकार उच्चारकी प्रेम रत्ती,
उपनी महा जोगमाया सकत्ती । सकत्ती भई प्रेमके रूप भिन्नं, उपाए गुनं
तीनसे देव तिन्नं । त्रयं देवमें प्रेम रूपी समानी, रमे रामजी सात्त्विकी
तामसानी, ऋहंमा मनं कारना प्रेम जग्गे, सबै सृष्टि ऊपावनें
आप लग्गे । त्रियं नाथ सो पोषना प्रेम धारे, बनावे ब्रह्मा वही
प्रत्य पारे । महारुद्र सो भवना प्रेम लावे, महा कालके रूपसे सृष्टि
स्वावे । अधं धारना प्रेम आधार धाया, परी ऊपरी चौद लोकं जमाया ।
उरुद्धं परी अंबरं प्रेम छाये, बिना थंभसे लोग प्रेमं रहाये । दिगंपालकों
थानकं प्रेम लग्गे, डिगे नांहि सो आप की छांङि जग्गे । सृजादिक सों
सिंधुको प्रेम धावे, लगे वीरपै तीर पारं न जावे । शशी सूरको पंथको
प्रेम प्यारो, स्रवे सीत तापं प्रकाशे उजारो । सुरं राजको प्रेम भूमी पर-
रुखे, जलं धारितं मेघमाला वरप्पे । परी ब्रह्मके प्रेमको वेद दृष्टे, वही
वेदके प्रेमसे विप्र पड्डे । ऋषि जोगके प्रेमसे मंत्र धावे, वही मंत्रके प्रेमसे
देव आवे । भये क्षत्रियं आपमें रार मंडे, बुलाचार के प्रेमसे देह खण्डे ।
वईशं अरू शूद्र आपाप धंधे, बुद्धा माहिया कामना प्रेम बंधे । प्रिय
त्रीयको कामके प्रेम भज्जे, त्रिया प्रीयके प्रेमसे रूप सज्जे । सुरं आसुरं
मानुषं नाग नग्गे, जह्मं किन्नरं भूत प्रेमं सु पग्गे । पशू पंछियं प्रेमको रूप जप्पे,
थिरं थावरं जंगमं प्रेम थप्पे, परी ब्रह्ममें प्रेम ही को उदोतं, यहै प्रेम सोई
परीब्रह्म जोतं । बिना प्रेम ना को परीब्रह्म पावे परीब्रह्म इच्छा बिना प्रेम

नावे । खरे प्रेमसे सिद्धि पाषान देवे, न पावे कहा मानुषं प्रेम सेवे । न माने कहे से वहै मंदमत्ती, नहीं पूरनं जासमें प्रेम रत्ती । रसं सागरंजू सुनो सिद्ध भखखे, भलो प्रेमको नेम महाराज रखखे ॥ १० ॥

अनन्त, अभेद जो उत्पन्न नहीं हुआ एवम् जो लक्ष्य में भी नहीं आता, जिसका आदि नहीं, अन्त नहीं, मध्य रूप तथा रेखा भी नहीं ऐसी ज्योतिर्मयी एक (ईश्वरी) प्रेम की सत्ता विश्व में है । उस में से निराकार और साकार भेदों से प्रवृत्त रूप माया उत्पन्न हुई । उस माया से महत्तत्त्व और उस महत्तत्त्व से प्रेम-युक्त प्रकृति के योग से तीन प्रकार के अहंकार वाली शब्द की उत्पत्ति हुई, अहंकार के शब्द में स्नेहरूपी प्रेम के बिम्बों की ज्योति तपने से शुद्ध बलसे आदिआकाशतत्त्व प्रकट हुआ । उस तत्त्वरूप शून्य में—शब्दयुक्त शील रूप प्रेम—मिलने से दूसरा वायुतत्त्व हुआ । उस समय पवन में स्पर्शयुक्त प्रेम-सत्ता के स्पन्दन मिलने से तीसरे तेजतत्त्व की उत्पत्ति हुई । उस तेजतत्त्व में प्रेम की महत्ता का प्रकाश होने से चौथा जलतत्त्व हुआ । वह रसगुणादि जलतत्त्व के साथ प्रेम बल की सत्ता मिली, उसके योग से गंधगुणात्मक पांचवां पृथ्वीतत्त्व प्रकट हुआ । इन पांचों तत्वों में प्रेम की सत्ता जुड़ने से अति प्रचण्ड वैराट् रूप इंडा का ओंकार भी विस्तार में आया । ओंकार के उच्चार में अकार, उकार और मकार इन तीन मात्राओं को लेकर उन मात्रा रूप सत्ता में से महायोगमाया—शक्ति उत्पन्न हुई ।

इस शक्ति के प्रेम के प्रभाव से भिन्न २ रूप उत्पन्न हुए, अर्थात् सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से 'विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र' उत्पन्न हुए । ये तीनों देव क्रमशः समानरूपवाली अर्थात् रजोगुणी सावित्री, सात्विकी लक्ष्मी और तामसी रुद्राणी इन नामों से रमण करने लगे । चार मुख वाले ब्रह्मा के मन में कार-णात्मक प्रेम उदय हुआ जिसने उन्होंने सब सृष्टि उत्पन्न करना शुरू किया । श्री अर्थात् लक्ष्मी उनके पति विष्णु भगवान् केवल पोषण करने वाले हैं । अर्थात् ब्रह्मा उत्पन्न करते हैं और विष्णु पालन करते हैं । महारुद्र तो एक लक्षण संसार में ही प्रेम करके महाकालरूप से सकल सृष्टि को लय करते हैं । निराधारों को आधार देने वाली प्रेम-

माया ही धारण करके रहती है और उससे ही एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार चौदह लोक बनाये हैं। ऊँचे आकाश में दूर से दूर केवल प्रेम ही छाया हुआ है। ये जो चौदह लोक बिना थंभा आदि आधार के टिके हुए हैं वह प्रेम का ही प्रभाव है। दशों दिक्पाल रूपी हस्ती प्रेम से अपने स्थान को न छोड़ते हुए टिके हुए हैं। समुद्र की मर्यादा को प्रेम ही लगा हुआ है जिससे कि वह हवा के झोंकों से लहरें उठाता हुआ भी अपने किनारे से मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। चन्द्र और सूर्य को भी पथप्रवास का प्रेम ही है जिससे कि वे शीत और ताप का स्नाव करते तथा प्रकाश देते रहते हैं। सुरराज इन्द्र पृथ्वी से प्रेम रखते हैं जिससे इस पृथ्वीपर वर्षा की धारारूप जल वरषाते हैं; परब्रह्म के प्रेम को वेद बढ़ाते हैं, वेद को विप्रगण प्रेम से पढ़ते हैं; ऋषि लोग प्रेम से ही समाधिस्थ हो मंत्र जपते हैं, और उन्हीं मंत्रों के प्रेम से देवगण दर्शन देते हैं; क्षत्रिय लोग आपस में युद्ध करते हैं तथा प्रेम से ही दुराचारी ऐसे हरएक के शरीर का खण्डन—ताडन करते हैं, वैश्य और शूद्र अपने २ व्यापार में लगे रहकर द्रव्य संचय करने के लिए प्रेम से ही भूख प्यास सहन कर व्यापार आदि करते हैं। कामी, कामके प्रेम से ही स्त्री को भजता है। इसी प्रकार स्त्री भी स्वामी के स्नेह से ही भजती है। इस प्रकार देव, दानव, मनुष्य, नाग, पर्वत यज्ञ किन्नर और भूतादि सकल प्राणी प्रेम में बंधे हुए हैं, पशु पक्षी इत्यादि प्राणी भी प्रेम के ही रूप का जाप करते हैं। स्थावर जंगम सब वस्तु प्रेम से ही स्थापित है, एवम् प्रेम की ही स्थापना करते हैं। परब्रह्म में भी प्रेम का ही प्रकाश है और यही परब्रह्म का ज्योतीस्वरूप है। बिना प्रेम कोई भी परब्रह्म को पा नहीं सकता, परब्रह्म की इच्छा बिना प्रेम भी नहीं होता। सच्चे प्रेम से विश्वास होने पर पत्थर के देव भी सिद्धिदाता बनते हैं। फिर प्रेम की आराधना करने से मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ? अर्थात् सब कुछ पा सकता है। जिनमें एक रत्तीमात्र भी प्रेम नहीं ऐसे मतिमन्द मनुष्य कहने से भी (प्रेम का प्रभाव) नहीं मानते।

इस प्रकार भाषण कर महात्मा ने रससागर से कहा, महाराज ! आप अति उत्तम प्रेम का नियम रखते हो ॥ १० ॥

सोरठा-यहै प्रेम परकार, महापुरुष वर्णन कियो ।

उरमें हरष अपार, सागर सोय सराहियत ॥ ११ ॥

इस प्रेम के प्रकार का वर्णन महापुरुष ने किया । जिससे सागर कुमार अति आनन्दित हुए और उनकी सराहना करने लगे ॥ ११ ॥

अथ तत्र सागरोक्त प्रश्न-दोहा.

कह्यो प्रेम परिब्रज्यवत, सब घट रहे समान ।

एक एक जाने जुगति, क्यों सब समुभक्त नाय ॥ १२ ॥

प्रेम परब्रह्म की भांति सबके घट २ में समा रहा है, हे सिद्ध ! आपने जो ऐसा कहा है वह सत्य है, परन्तु प्रेम की युक्ति को तो कोई २ ही जानता है सब लोग कुछ भी नहीं समझते ॥ १२ ॥

अथ सिद्धोक्त प्रत्युत्तर । द्रष्टांताऽलंकार-छप्पय.

कला अगन सब काठ, काठ परसे नहिं जारे ।

पावक पथर बीच, पथर पकरे नहिं बारे ॥

बसे काचमें बन्हि, काच करमें पकरिजे ।

मथन लोह भारंत, छर प्रतिबिंबित छिजे ॥

अनुमान एह घट घट बसे, प्रेम प्रभा परिब्रज्यवत ।

सिद्धा बर्दंत सागर सुनो, जथा जोग जागे जगत ॥ १३ ॥

आग का अंश सब लकड़ी में सदा रहता है परन्तु लकड़ियों के संयोग से जलाता नहीं, पथर के बीच अग्नि है परन्तु पथर के स्पर्श से जलाता नहीं, इसी प्रकार काच में अग्नि है परन्तु काच को हाथ में लेने पर भी हाथ नहीं जलता, बल्कि काठ को रगड़ने से, पथर को लोहे से मारने से, काच पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से अग्नि एक दम प्रकट हो जाती है, इसी अनुमान से परब्रह्म की भांति प्रेम की प्रभा घट २ में वास कर रही है । सिद्ध कहते हैं हे सागर ! सुनो जगत् में जहां योग्यतानुसार युक्ति है वहां प्रेम जागता है ॥ १३ ॥

अथ पुनि सागरोक्त प्रश्न-दोहा.

जथा जोग दो चार जन, भयो प्रेम विस्तार ।

न्यूनाधिक क्यों रहत हैं, कहो सिद्ध निरधार ॥ १४ ॥

कुमार से पूँछा, हे सिद्ध ! योग्यतानुसार दो चार जनों में प्रेम का प्रकाश होता है, परन्तु फिर उनमें कमीबेशी क्यों रहती है ? इसका निर्णय कहिए ॥ १४ ॥

अथ सिद्धप्रत्युत्तर दृष्टांताऽलंकार-छप्पय.

नीकपना मनि नील, मुक्त मानिक विद्रुम मनि ।

पोखराज लसनीक, फाटिक गोबिंद विदुर्जनि ॥

परे सबै इक ठौर, काहु पंथीने पाए ।

वह किम्मति के लिये, हाट जौहरी के आए ॥

सब मध्य तेज घट प्रेमवत, जौहरी करि पारिख लहै ।

सिद्धा बंदंत सागर सुनो, न्यूनाधिक इहि विधि रहै ॥ १५ ॥

हीरा, पन्ना, नीलम, मोती, माणिक, विद्रुम-प्रवाल, पुखराज, लहसुनियां, स्फटिक, गोमेद, वैदूर्य, ये सब एक स्थान पर पड़े हुए किसी राहगीर के हाथ लगे । उनकी कीमत के लिये वह यात्री किसी जौहरी की दूकान पर गया । उन सब के मध्य भिन्न भिन्न तेज प्रकाश के अनुसार जौहरी भिन्न भिन्न मोल करता है । सिद्ध कहते हैं, हे सागर सुनो, इसी प्रकार प्रेम की मात्रा भी मात्रा में प्रभा की भांति न्यूनाधिक होती है ॥ १५ ॥

अथ पुनि सागरोक्त प्रश्नभेद-दोहा.

कह्यो जेहरि बत प्रेमको, किंमति जैसी जोत

किधौ बढ चतुराईसे, किधौ आप उद्योत ॥ १६ ॥

जवाहरात की तरह प्रेम की भी ज्योति के अनुसार मूल्य कहा, परन्तु वह चतुराई से बढ़ता भी है अथवा अपने आप उदय पाता है ? ॥ १६ ॥

अथ सिद्धोक्तप्रत्युत्तर । दृष्टांतालंकार-छप्पय.

नट नाटिक अरु भगल, शस्त्र अस्त्रनको साधन ।
पशु पक्षी बस करन, और अनेक अराधन ॥
पटहु शास्त्र पट वानि, और इतिहास वेद विधि ।
विद्या कला विधान सबै, अभ्यास होत सिधि ॥
परि प्रेम बढ़ायो न बढ़त, आपहि आप सु विस्तरत ।
सिद्धा बंदत सागर सुनो, ज्यों कर्ता सृष्टी करत ॥ १७ ॥

नट, नाटकादि खेल, इन्द्रजाल, शस्त्र और मन्त्रों से चलने वाले आयुधों का साधन, पशु पक्षी इत्यादि पशुओं के बश करने के उपाय इमी प्रकार कितने ही अन्य आराधन, छः शास्त्र, छः भाषा, इतिहास और वेद की विधि, विद्या-कला के सब विधान पढ़ने से व अभ्यास करने से सिद्ध होते हैं परन्तु प्रेम बढ़ाने से नहीं बढ़ता, यह तो अपने आप विस्तार पाता है । सिद्ध कहता है कि हे रससागर ! सुनो जिस प्रकार जगत्कर्ता से सृष्टि उत्पन्न होती है इसी प्रकार इसे भी समझना ॥ १७ ॥

अथ पुनि सागरोक्त प्रश्न-दोहा

कर्ता इच्छावत कबो, प्रेमसो स्वयं प्रकाश ।
यह उरमें अंदेस है, साधन सबै निरास ॥ १८ ॥

सागर कहता है कि हे सिद्ध ! कर्ता इच्छा वाला कहा, और प्रेम को स्वयं प्रकाश कहा सो मेरे मन में यह शंका होती है कि मेरे सब साधन व्यर्थ हैं ! ॥ १८ ॥

अथ सिद्धोक्त प्रत्युत्तर । दृष्टांतालंकार-छप्पय.

प्रेमसो स्वयं प्रकाश, आप उद्योतसु बाढ़त ।
प्रेमहि के परताप, सबै साधन चित चाढ़त ॥
इष्ट न विस्मृति होय, और उरमें नहि चाहे ।
कानन पर्यो चिनेग, आपसे ज्यों बन दाहे ॥

करता इष्ट सिद्धी मिलत, पै साधन न बिसारिये ।

सिद्धा बरदंत सागर सुनो, प्रेम नेम यह धारिये ॥ १६ ॥

प्रेम तो स्वयं प्रकाश है, वह अपने उदय से बढ़ता है, उसी प्रेम के प्रताप से सब साधन हृदय में स्फुर आते हैं, जिससे अपने इष्ट को भूले नहीं और दूसरे को मन में स्थान न देवे । जिस प्रकार वन में पड़ी हुई चिनगारी अपने आप वृद्धि पाती और वन का दाह करती है इसी प्रकार प्रेम भी अपने आप वृद्धि पाकर प्रकाशित होता है । जिस प्रकार कर्तारूप इष्ट सिद्ध प्राप्त होता है परन्तु साधन को भूलता नहीं, इसी प्रकार हे सागर ! इस प्रेम के नियम को धार रखना चाहिये ॥ १६ ॥

अथ सागरोक्त प्रश्न-दोहा.

तन, मन, प्राणसु प्रेम चत्र, इक इक बिना न होय ।

सबही सत्ता ब्रह्म है, कहो विशेष तुम सोय ॥ २० ॥

तन, मन, प्राण और प्रेम ये सब बरोबर कहे जाते हैं परन्तु यह दूसरे के बिना नहीं होते, ये सब सत्ता ब्रह्म की है तो इन में से जो सब से अधिक प्रतीत हो उसे हे महाराज ! कहो ॥ २० ॥

अथ सिद्धोक्त प्रत्युत्तर । दृष्टांतालंकार-छप्पय.

तन मन प्राण सु प्रेम, बराबर सबै कहावै ।

इक इक बिना न होय, यहै सिंगरो जुग पावे ॥

ज्यों भाजन अरु नेह, वती अरु मिलवे पावक ।

चारहुं के संयोग भयो, अभिधान स्र दीपक ॥

जड़ताइ भाव वह तीनमें, चेतन बन्धि बखानिये ॥

सिद्धा बरदंत सागर सुनो, प्रेम सोय पहिचानिये ॥ २१ ॥

तन, मन, प्राण और प्रेम ये सब बराबर कहे जाते हैं, परन्तु एक दूसरे के बिना नहीं होते इस प्रकार सब जगत् जानता है, जिस प्रकार पात्र

तेल, बत्ती और अग्नि इन चारों के इकट्ठा का नाम दीपक है, परन्तु पात्र तेल और बत्ती इन में जड़ता है और चैतन्यता केवल अग्नि में है । सिद्ध कहता है हे सागर ! सुनो प्रेम उसे ही समझना ॥ २१ ॥

अथ सागरोक्त प्रश्न-दोहा.

अलौकिक लौकिक यह, प्रेम कहावे दोय ।

शुद्धाशुद्ध सिंगरे कहे, भिन्नभाव क्यों होय ॥ २२ ॥

सिद्ध के प्रति सागर पूछते हैं कि हे महाराज ! अलौकिक और लौकिक ये प्रेम के दो भेद कहे जाते हैं, इसी प्रकार लोग उसे शुद्ध और अशुद्ध भी कहते हैं, सो इसका भेद क्या है ? ॥ २२ ॥

अथ सिद्धोक्त प्रत्युत्तर-छप्पय.

अलौकिक लौकिक, प्रेमहू के दोऊ छन्दा ।

शुद्ध अशुद्धा कहे, सोऊ जानो मतिमंदा ॥

ज्यों पट पूरन अंबु, कौन खाली जगो तित ।

सकल सृष्टि परिनाम, ब्रह्म सत्ता यों व्यापित ॥

जिहि ठौर प्रेम थरचर लगे, तहां ब्रह्म ठहराइये ।

सिद्धा वदंत सागर सुनो, सब सिद्धि तहँ पाइये ॥ २३ ॥

अलौकिक और लौकिक ये प्रेम के दो स्वभाव हैं, इन्हें जो शुद्ध और अशुद्ध कहते हैं उन्हें मन्दमति वाला समझो । जिस प्रकार जल से भरे हुए घड़ा में खाली जगह नहीं है उसी तरह सारी सृष्टि में परिपूर्ण ब्रह्म की सत्ता व्याप्त है । जहां स्थावर और जंगम में प्रेम लगे वहां ब्रह्म ठहराना, सिद्ध कहता है, हे रससागर ! सुनो उसी जगह सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो सकती है ॥ २३ ॥

दोहा-सागर बूझे सिध कहे, प्रश्न उत्तर परकास ।

ज्यों ज्यों चरचा चलत है, त्यों त्यों प्रेम बिकास ॥ २४ ॥

सागर पूंछते हैं और सिद्ध कहते हैं, इस प्रकार प्रश्न उत्तर करते ज्यों ज्यों चर्चा चलती है त्यों त्यों प्रेम प्रकाश बढ़ता जाता है ॥ २४ ॥

गाहा-सागर सिद्धसु चरचा, प्रेम प्रज्ञान प्रश्न प्रति-उत्तरं ।

पंचचालीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

सागर और सिद्ध की चर्चा में प्रेम का प्रमाण आदि प्रश्न और उनके उत्तर वाली प्रवीणसागर की यह पैंतालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ५ ॥



४६ वीं लहर

अथ पुनि रससागर सिद्धचरचा प्रसंग । सागरोक्त-सोरठा

तुम्हें प्रश्न जोगेश, हम बूझे सो सो कहे ।

आप करो उपदेश, प्रेम महीमा को कथन ॥ १ ॥

हे योगेश्वर ! मैंने जो २ प्रश्न किया आपने उन का यथायोग्य उत्तर दिया,
अब प्रेम की महिमा कथन कर आप उपदेश करो ॥ १ ॥

अथ सिद्धोक्त प्रत्युत्तर-दोहा

दधि मट्ठा नवनीत घृत, पयसे उत्पन्न होत ।

परंपरा सागर यहै, सबै प्रेम उद्योत ॥ २ ॥

दही, छाछ, माखन और घी ये सब वस्तुएं दूध में से पैदा होती हैं, हे
सागर ! परंपरा यही है कि इसी प्रकार सब प्रेम से ही उदय पाते हैं ॥ २ ॥

पय दधि माखन तक्र ज्यों, सत श्वेत रंग सब मांहि ।

त्यों पुरान भुति शास्त्र मधि, प्रेम ब्रह्म दरसांहि ॥ ३ ॥

दूध, दही, माखन और छाछ इन सब में श्वेत रंग रहता है, इसी प्रकार
पुराण, वेद और शास्त्रों में भी प्रेमरूपी परब्रह्म दिखाई पड़ता है ॥ ३ ॥

सागर सागर प्रेमको, सुरत नाव अनुहार ।

तरे सु डूबे हैं खरे, परेसु उतरे पार ॥ ४ ॥

हे सागर ! प्रेम का समुद्र है, जिसमें सुरत रूपी नाव है, उसमें जो
तिरते हैं अर्थात् पूरे निमग्न नहीं हुए वे डूब गए और जो उसमें डूबे हैं अर्थात्
पूरे निमग्न हो गए हैं वे मानो तिर गए। अर्थात् जो उसमें निमग्न नहीं हुए थे!!
प्रेम का रसास्वादन नहीं कर पाए, व्यर्थ ही रहे, परन्तु जो उसमें निमग्न हो
रसास्वादन करने से अपने उद्देश को पूरा कर सके वे तर गये ॥ ४ ॥

तोल बधे दोउ पथरके, ताकी खबर न पाय ।

आदि अंत को खोल दे, तो उन भेद लिखाय ॥ ५ ॥

जो दो पत्थरों के तौल से बंधे हैं उन दोनों की खबर नहीं हो सकती,
आदि और अन्त का हटा दें तो तुरंत उनका भेद दिखाई पड़े + ॥ ५ ॥

अथ संभावना अलंकार-सवैया.

अंधन उज्जल अंगन भंगन, अमृत मारन बारन आगे ।
सुखन दुखन धीर अधीरन, मृत्युन जीवन निंद न जागे ॥
शुद्ध बिषुद्धन अद्धन ऊरध, प्रच्छ मतच्छ अतागन तागे ।
सागर प्रेम प्रतीत परे उन, या बिरती सुरती जिन लागे ॥ ६ ॥

जिसके लिए न अंधेरा है न उजाला, अंश खंडित या अखंडित भी नहीं,
न अमृत है न विष है, न जल है न अग्नि, न सुख है न दुख, न धीर है न
अधीर, न मृत्यु है न जीवन, न निंद है न जागरण, न सुध है न बेसुध, न
ऊंचा है न नीचा, न प्रत्यक्ष है न परोक्ष, न गहिरी है न उलथा, संक्षेप यह
कि कोई भी द्वन्द नहीं, हे सागर ! जिनकी वृत्ति ऐसी हो गई है उन्हें ही प्रेम
की प्रतीति होती है ॥ ६ ॥

+ गुजराती टीकाकारने इस का कोई आशय स्पष्ट नहीं किया है, हमारी सम्मति में इस
का आशय यह है कि जिस प्रकार दो वस्तुएं अलग २ पत्थर से तोली जावें और उन पत्थरों
का कोई सम्बन्ध आपस में न हो तो तोली जाने वाली वस्तु का भी कोई पता नहीं लग
सकता, दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, दोनों अपने २ में पूर्ण हैं । एक दूसरे से कोई
मतलब नहीं । 'पथर' शब्द में से आदि का 'प' और अन्त का 'र' अक्षर अर्थात् 'पर'
निकाल देवें अर्थात् 'परायापन' छूट 'अपनापन' जहां आजाय तो फिर एक दूसरे के मर्म को
समझने लग जायें । जहां तक परायापन है, वहां तक प्रेम का प्रयोजन ही नहीं, जब यह
निकल जाय 'दो कालिब एक जान' हो गये तभी प्रेमी प्रेम विह्वल हो सकता है ।

किसी टीकाकारने 'पथर पथर' में से आदि अंत के 'प' और 'र' निकाल कर 'थर पथ'
(स्थिर पथ) की क्लिष्ट कल्पना की है परन्तु हमारी सम्मति में इतना स्पष्ट होते हुए ऐसे
क्लिष्ट कल्पना की आवश्यकता नहीं है ।

“ हिन्दी टीकाकार ”

अथ चित्रालंकार-सवैया.

जीवकी जात समाधिकी शोधन, बातको बास सुवास की छाया ।
 धूमको धाम सुधाम की धारन, धारन की कह कारन माया ॥
 पानी को रंग पियूष को पावस, शून्यकी धुन्य कहा सुर गाया ।
 पाये वह बड़भांगि प्रवीनजु, प्रेमको रूप प्रकाशको काया ॥ ७ ॥

जीव की जाति, समाधि का शोधन, वायु का निवासस्थान, सुगंधि की छाया, धूम का धाम (गृह), धाम का धारण, धारण का कारण और माया क्या है पानी का रंग, अमृत की वर्षा, शून्य की ध्वनि, गायन का स्वर, प्रकाश की काया (शरीर) और प्रेम का रूप, हे प्रवीण ! कोई बड़भागी ही पा सकता है, अर्थात् इनका जानना बड़ा ही कठिन है ॥ ७ ॥

अथ चित्रालंकार-सवैया.

सोध समाध लगी सु लगी रहे, गैवकी अंग प्रकाश उजारी ।
 आस विलास उदास अहो निश, नीकी बुरी की कहे तो कहारी ॥
 आवकी आप सबै समुझें, सिंगरे जगकी गतिसे गति न्यारी ।
 सागर प्रेम वदेहि के पंथकी, रम्मत है न करामति भारी ॥ ८ ॥

सोध की समाधि लगी है सो लगी ही रहती है, शरीर में गुह्य प्रकाश प्रकट हो रहा है, हमेशा रात दिन विलास क्रीड़ा की आशा में उदासीन रहता है ! सहोदर या परकोई नेक या बद बात कहे तो उम और से बेखबर रहे अथवा उस ओर लक्ष्य न दे, इस सृष्टि की गति से जिसकी गति निराली है, हे सागर ! ऐसी सुलक्षण से युक्त प्रेमी विदेही के पंथ के पंथी हैं, यह एक भारी करामात है ॥ ८ ॥

अथ जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

कंचन लोह एकै करि जानत, अमृत भेर एकै करि पावें ।
 कीरति गारि एकै अनुमानत, ऊंचहि नीच एकै दरसावें ॥

रंकसु राव एके कहि बोलत, एक सरूप अहर्निश ध्यावैं ।

सागर प्रेम अखंड प्रकाशित, सो जन जीवन मुक्त कहावैं ॥ ६ ॥

सोना व लोहा को एक समान समझता है, अमृत व विष को एकसा गिनता है, कीर्ति व अपकीर्ति को एक जानता है, ऊंच व नीच में कोई भेद नहीं जानता, राव व रंक उसे एक समान है, रात्रि दिवस एक ही स्वरूप का ध्यान करता है, हे सागर ! जिसमें ऐमा अखंड प्रेम प्रकाशमान है, वह मज्जन जवनमुक्त कहाता है ॥ ६ ॥

अथ अधिकरूपक अलंकार—सवैया.

पेड़ लगो कोउ डारनमें, कोउ पातनमें भटक्यो फिर्यो ।

मंजरमें उरभाय रह्यो कोउ, फूल कली रस रीझ भय्यो ॥

माधुरता कहूं काहु कटू फल, जोइ मिल्यो सोइ सीस धर्यो ।

सागरजूसु प्रवीण कोउ चढ़ि, प्रेम तरु न कबी उतर्यो ॥ १० ॥

कोई वृक्ष में लगा है तो कोई डालियों में, और कोई पत्तों में ही भटका फिरता है कोई मंजरी में उलझ रहा है, कोई फूल व कोई कली के रस पर रीझ रहा है, किसी को माधुर्य मिला तो किसी को कटुता, जिसे जो मिला उमने उसे ही शिरोधार्य किया । इस प्रकार हे सागर ! कोई चतुर पुरुष प्रेम के वृक्ष पर चढ़ कर पीछे उतरा नहीं ॥ १० ॥

सवैया—इंद्र अनंत कहागति मारुत, को ग्रह को जमराज कहा जम ।

अस्त उदे शशि सर नहीं कल, वेद वदंत इकीय कहा ब्रम ॥

पावक नीरद नीर कहा, समया जुत ईश सधंत कहा दम ।

प्रेमको नग्र निहारत सागर, कौन गली किरतार नहीं गम ॥ ११ ॥

इन्द्र, शेष या पवन की क्या गति है ? ग्रह, यमराज या यम क्या हैं ?

(१) लक्षण—विषयभेदताद्रूप्य रंजनं विषयस्ययत् । रूपकं तन्निधा धिक्च ॥

कुवलयानंदः पृ० १५

भावार्थ—विषयभेद से विषय के वर्णन करने में अधिकता दिखाने को अधिक रूपक कहते हैं

“ हिन्दी टीकाकार ”

उदय और अस्त होने वाले सूर्य व चन्द्रमा को चैन नहीं है, वेद जिसे एक ईश्वर प्रतिपादित कहता है अथवा ब्रह्म है वह क्या है ? अग्नि, बादल और पानी क्या हैं ? उमा सहित महेश जिसकी साधना करते हैं वह क्या है ? हे सागर ! प्रेमनगर को देखने में किसी भी गली में कर्तार का गम नहीं है । फिर इन उपरोक्त का क्या ठिकाना है ॥ ११ ॥

अथ अधिकरूपक अलंकार—सवैया.

मोद महीप अखंड सभा, अगनी सुख होम अखंड ब्रह्म सम ।
साधनसा सुरता कि बजार, विचार वनंज लगे रहें उद्यम ॥
नौबत नाद सदा गति आयत, शील सधें कुटवाल कलाक्रम ।
प्रेमको नग्न निहारत सागर, कौन गली करतार नहिं गम ॥ १२ ॥

मोदरूपी महीपति, उमकी अखंड सभा रूपी अग्नि, सुखरूपी होम, अखंड विहरूपी ब्राह्मण, साधनरूपी साहूकार, सुरतारूपी बजार में विचाररूपी व्यापार लगा रहता है, आती जाती श्वास की गति में अनाहत शब्द रूपी नौबत बजती रहती है, शीलतारूपी कोतवाल कलाक्रम को साधता है । हे सागर ! इस प्रेमनगर को विचारपूर्वक देखने में किसी भी गली में करतार का गम नहीं ॥ १२ ॥

सवैया.

आंसुनको उमढेवो कहाँसे, कहाँ चिनगे द्रगमें दग्गावे ।
आंचक अंग चमक कहाँसे, कहाँ रस रंग रुमंच चढ़ावे ॥
अंक ह्कार यकार कहाँ है, उसास को धाम कहाँ कहाँधावे ।
प्रेम हुलास उदास तफावत, सागर नागर होय सो पावे ॥ १३ ॥

आंसुवों का उमड़ आना कहाँ से है, नेत्रों में चिनगारियाँ क्यों निकलती हैं ? अचानक अंग में चमक क्यों और रस रंग से रोमांच क्यों होता है ! ह्कार और यकार के संगम से 'हाय हाय' क्यों है, और दीर्घ श्वासोच्छ्वास कहाँ २ दौड़ती ? हे सागर ! प्रेम में आकर मग्न होने से उत्पन्न होने वाली उदासी की तफावत जो महाचतुर हो वही पा सकता है ॥ १३ ॥

सवैया—भेद कुरान पुरान न भाषित, वेद किताबें वदंत वृथा ।

प्राँठ लहे सुग्रेह मनके मन, मूढ़ अरुभक्त गूढ़ गथा ॥

जाननहार प्रमान न जानत, जानत जाय व्यतीत जथा ।

मंत्र न जंत्र न तंत्र न मंडित, सागर प्रेमको न्यारी कथा ॥ १४ ॥

पुराण और कुरान जिसका भेद नहीं कह सके, वेद और अन्य पुस्तकें कहती हैं परन्तु वृथा है; बड़े २ मुनिवर और यांगी जन जिसका यश गाते हैं परन्तु मन के मन में ही रखते हैं, मूढ़ मनुष्य उसकी गूढ़ गाथा समझ न सकने के कारण उलझे रहते हैं, जो जानने वाले हैं वे प्रमाण नहीं जानते, केवल वे ही जानते हैं !! जिन पर प्रीति होवे । हे मागर ! उसका मंत्र, यंत्र तथा जंत्र मंडन नहीं कर सकते !! प्रेम कथा ही न्यारी है ॥ १४ ॥

अथ अधिकरूपक अलंकार—कवित्त.

गुन हूको नीर सो तो भर्यो चहुं तिरनमें, धीरज गहोर मध्य ध्यानकी उछाह बार । संकल्प विकल्पके उठत तरंग जहां, मन अभिमानि के डूबे है गिरि अपार ॥ मकर मकरध्वज सुरत जिहाज रोके, बाडवा बिरह भेद चिंता आमरी विचार । सुर नर नाग जहां तरि तरि हारे मुनि प्रेम पारा बार हूको किनहुं न पाया पार ॥ १५ ॥

गुणरूपी जल तो चारों किनारों में भरा हुआ है, उसमें धीरजरूपी गह्वर है, ध्यानरूपी पानी की उछाल है, संकल्प विकल्प रूपी तरंगें उठती हैं, जिसमें अभिमानियों के मन रूपी अनेकों गिरिवर डूबे हुए हैं, जहां रतिराज रूपी मगरमच्छ सुरतरूपी जहाज को रोकते हैं, जिसमें बिरह भेद रूपी बड़बानल प्रज्वलित रहता है, चिंतारूपी भंवर जिसमें फिरती रहती है, जिसमें देवता-मनुष्य-नाग और मुनिवर तिर २ कर हार गये, ऐसे प्रेमरूपी समुद्र का कोई पार नहीं पाया !! १५ ॥

अथ समरूपक अलंकार—सवैया.

तोयद वाहको तंत्र किये, सुरतान कि डोर ग्रहे करमें कल ।

मक्र बचें बिरहानल के मुख, सोधत जध्य तबेहि सबै जल ॥

शंख समान तर्जें सगरो जुग, पावत हैं तब लावत हैं पल ।

प्रेमके सागर मध्य धसे वह, मित सरूप लहें मुक्ताफल ॥ १६ ॥

तोयद मेघः उसका जो वाहक वायु है उसे रोकने का तंत्र बनाकर सुरता रूपी डोरी को युक्ति से हाथ में लेवे, विरहाग्निरूपी मगरमच्छ के मुख से ध्व कर जल में शोधन करता जावे, शंख की भांति सकल सृष्टि को छोड़कर योग्य फल प्राप्त हो तब प्राप्त करे। हे सागर ! इस प्रकार जो जन प्रेमसागर में धसे तब मित्र रूपी मुक्ता फल प्राप्त करे ॥ १६ ॥

अथ अन्योन्यालंकार-सवैया.

रैनमें जोत उदोतहु में तम, ज्वालमें सीत तुहीन में तापन ।

ऐ मुख अमृत देव तरु विप, कंचन लोहसु लोह में कुंदन ॥

हंसमें काग कुहामें मरालसु, नीकमें ऊपल पत्थरमें मनि ।

देवमें दानव आसुरमें सुर, सागर प्रेम लहत लहे इन ॥ १७ ॥

रात्रि में प्रकाश, प्रकाश में अंधकार, ज्वाला में शीत, बर्फ में उष्णता, नाग के मुख में अमृत, कल्पवृक्ष में विप, स्वर्ण में लोह, लोह में कंचन, हंस में काग, काग में हंस, मणियों में पत्थर, पाषाण में मणि, देव में दानव और दानव में देव । हे सागर ! प्रेम का पाने वाला इन्हें पा सकता है ॥ १७ ॥

अथ विभावनालंकार-सवैया.

मूल बिना फल फूल भुके वन, वृच्छ बिना छिति छाह लषावत ।

पंख बिना उड़ जात जनावर, पाँउ बिना पशु पंथहि धावत ॥

* किसी २ पुस्तक में 'तो पद चाट को' पाठ है । तब इस का अर्थ इस प्रकार होगा । उस मित्र के चरण की चाह का तंत्र बनावे सुरतारूपी डोरी को युक्ति के साथ हाथ में ले.....इत्यादि । हमे यह पाठ सुसंगत प्रतीत होता है ।

(१) लक्षण-अन्योन्यनाम, यत्रस्यादुपकारकः परस्परं ॥ ६८ ॥ कुबलयानंदः

भावार्थ-जिस वर्णन में परस्पर का उपकार वर्णित हो; यह अन्योन्यालंकार है ।

(२) लक्षण-विभावनाविनापि स्यात् कारणं कार्यजन्मचेत् ॥ ७७ ॥ कुव०

भावार्थ-कारण के बिना ही कार्य की बातें करना. ऐसे वर्णन को विभावनालंकार कहते हैं ।

टूटगये गुन तीर न चूकत, नीर बिना दधि नाउ चलावत ।
तार बिना करबीन बजावत, सागरप्रमी सबै विधि पावत ॥ १८ ॥

वन में बिना जड़ के फल फूल छा जाते हैं, बिना वृक्ष ही पृथ्वी पर छाया हो जाती है, बिना पंख के पक्षी उड़ते हैं, बिना पांव के पशु दौड़ते हैं, गुण (ढोरी) टूट गया है परन्तु तीर का निशाना अचूक होता है, बिना जल के समुद्र में नाव चलती है, बिना तार ही बीणा बजाता है, हे सागर ! प्रेमी सब विधियों का प्राप्त करता है ॥ १८ ॥

अथ विशेषालंकार—सवैया.

सूर शशीन मरीचि प्रकाशत, आठहु जाम रहे उजियारो ।
जोग न भोग अलोक कला, सुख शोक नहीं तिहुं लोकसे न्यारो ॥
वेद पुरान प्रमान न बंधित, जानहिगो कोउ जाननहारो ।
सागर अंबर है न धरा पर, प्रेमहुं को अधबीच अखारो ॥ १९ ॥

जहां सूर्य व चन्द्रमा की किरणें प्रकाशित नहीं हैं परन्तु आठो पहर उजाला रहता है, जहां योग अथवा भोग नहीं है परन्तु अलौकिक कला है, जहां सुख और शोक नहीं, जो तीनों लोकों से न्यारा है, जिसके प्रमाण को वेद तथा पुराण भी नहीं मर्यादित करते, उमे जानने वाला जो कोई होगा वही जानेगा । हे सागर ! इस प्रकार प्रेम का अम्बाड़ा न पृथ्वी पर है ! न आकाश में ! प्रत्युत अधबीच में है ॥ १९ ॥

दोहा—शूर शशी न समीर गति, अध धर उरध न धार ।
वेद पुरान न जानिहै, प्रेमी तहां बिहार ॥ २० ॥

(१) भेदवैशिष्ट्ययोः स्फूर्ता, बुन्मिलितविशेषकौ० ॥ १४८ ॥ कुवलयानंद,

भावार्थ—जिस वर्णन में भेदों की विशिष्टता बतलाने से वर्णित वस्तु स्पष्ट की जाती है यह विशेषालंकार है ।

जहां सूर्य चन्द्रमा और पवन की भी गति नहीं, पृथ्वी के नीचे है अथवा ऊंचे है यह भी निर्धारित नहीं किया जा सकता, वेद और पुराण का भी जिसको पता नहीं ऐसी जगह प्रेमी जन विहार करते हैं ॥ २० ॥

प्रेमहु को मद जिन पिया, ताहुको यह भेख ।

अकर करे नाहीं न डरे, परे कूप द्रग देख ॥ २१ ॥

जिसने प्रेम का मद पिया है, उमका यह वेश है कि वह न करने को करता है डरता नहीं है और आंख से देख कर भी कूप पड़ता है ॥ २१ ॥

अथ विभावनाको द्वितीय भेद-सवैया.

प्रेमहु को मद पान कियो वह, जो करवेकि नहीं सो करेगो ।

शोच विचार कियेकि कहा, जरवे मरवेसे कछु न डरेगो ॥

चातुर है गति बाउरेकी गहि, दीपक लै कर कूप परेगो ।

तेज सबै सटके घटके वह, सागरजू भटक्योई फिरेगो ॥ २२ ॥

जिसने प्रेम का मद पान किया है, वह जो नहीं करने का है वह करेगा, सोच विचार का तो काम ही क्या !! जलने मरने से भी नहीं डरेगा. चतुर होता हुआ भी पागल की भांति रहेगा, हाथ में दीपक लेकर कूप में पड़ेगा; शरीर के सारे तेज क्षीण हो जायेंगे और वह भटकता फिरेगा ॥ २२ ॥

अथ समरूपक अलंकार-दोहा.

प्रेमी मन केसर कुसुम, सुरत नीरको संग ।

ज्यों ज्यों अवटे विरह अग्निनि, त्यों त्यों निकसे रंग ॥ २३ ॥

प्रेमी जन का मन केसर और कुसुम्बा के समान है जो सुरतरूपी निर्मल जल से मिलकर ज्यों २ विरह रूपी अग्नि में औटाया जाता है त्यों २ उसमें से अच्छा रंग निकलता है ॥ २३ ॥

नेहनगर के द्वारसे, स्रद्धा विरह बजार ।

पार परे सो जायेंगे, साँई के दरबार ॥ २४ ॥

नेहनगर के द्वार मे सीधा जो विरह का बाजार है उसके द्वार जो जावेंगे
वे ही स्वामी (परमात्मा) के धाम को प्राप्त करेंगे ? ॥ २४ ॥

आसिक नट साधन सती, मुरा सहेवो सेल ।

आरापरी की बात नहीं, खराखरी को खेल ॥ २५ ॥

आसिक होना (आसक्ति), नट विद्या, मंत्र साधना, पातिव्रत और शूर-
वीरों के भाला की चोट, इनका सहन करना महज नहीं. प्रत्युत खराखरी
का (कठिन) काम है ॥ २५ ॥

मन प्रेमी कुंदन महोर, सुरत प्रकास जोत ।

विरह अनल ज्यों ज्यों तपे, त्यों त्यों कीमति होत ॥ २६ ॥

प्रेमी का मन रूपी स्वर्ण मुहर है, उसमें सुरत रूपी कान्ति प्रकाशित होती
है; यह ज्यों ज्यों विरह रूपी आग्नि में तपता है त्यों त्यों इसकी कीमत बढ़ती
जाती है ॥ २६ ॥

जैसे निर्मल होत हैं, कनक अनल के संग ।

तैसे प्रेमी विरह बल, चढ़े सुरतको रंग ॥ २७ ॥

आग्नि के संग से जिस तरह सुवर्ण निर्मल हो जाता है उसी प्रकार विरह
के बल से प्रेमी जन को सुरत का रंग चढ़ता है ॥ २७ ॥

और रंग उतरैं सबै, ज्यों दिन बीतत जाय ।

विरह प्रेम बूटा रचे, दिन दिन बढ़त सवाय ॥ २८ ॥

ज्यों २ एक के बाद एक दिवस समाप्त होते जाते हैं त्यों २ और सब रंग
तो उतरते जाते हैं परन्तु विरह से रचाया हुआ प्रेम के बूटे का रंग तो दिन २
सवाया बढ़ता ही जाता है ॥ २८ ॥

सोरठा — दूध एकही होत, जैसे सुरभि बरन बहु ।

प्रेम जोत उद्योत, तैसे सबहि शास्त्र महि ॥ २६ ॥

शरीर भिन्न भिन्न रंग का होते हुए भी गऊ का दूध एक केवल श्वेत वर्ण का ही होता है इसी प्रकार प्रेम ज्योति का प्रकाश सब शास्त्रों में एक ही कहा है ॥ २६ ॥

बरन बरन बहु रंग, सुरभी शास्त्र पुरान महि ।

सबै एकही अंग, प्रेम सु पय पलटे नहीं ॥ ३० ॥

नाना वर्ण वाली अनेक रंगी गौओं का शास्त्र तथा पुगणों में वर्णन है परन्तु उन सब का एक अंग जो प्रेम रूपी दूध है सो पलटता नहीं ॥ ३० ॥

प्रेम पथरी माहि, चित चकमक चेतन भुड़े ।

विरह अनल दरसाय, शील शीषता मुख लगे ॥ ३१ ॥

प्रेम रूपी पथरी पर चित रूपी चकमक ठोकने से विरह रूपी अग्नि दिग्बाई पड़ती है तथा उसके मुख पर शील और शोषणता लगता है ॥ ३१ ॥

कवित्त

प्रेमही में परतीत, रस रीत प्रेमही में, प्रेमहीमें राजनीत, हार जीत जंग है ।

प्रेमही में हाव भाव, सहित समूह प्रेम, प्रेमही में राग रंग, उमंग अनंग है ॥

प्रेमही में ध्याता ध्येय, ग्याता ग्येय प्रेमही में, प्रेमहीमें जोग भोग, पंचभूत

अंग है । प्रेमका प्रकाश सोतो, करताकी करामात, जहां देखो तहां एक ।

प्रेमको प्रसंग है ॥ ३२ ॥

एक प्रेम में ही प्रतीत है, प्रेम ही में रस रंग है, प्रेम में ही राजनीति है, इसी में ही युद्ध और हारजीत है । हाव भाव आदि सब समूह प्रेम में ही है, प्रेम में ही राग रंग, उमंगोत्साह और कामक्रीड़ा है, प्रेम में ही ध्याता (ध्यान करने वाला) ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय), जाना (जानने वाला) और राय (जानने योग्य पदार्थ) है; प्रेम में ही जोग भोग और पंचभूतों का अंग

है । प्रेम का जो प्रकाश है वही कर्ता (विधाता) की करामात है और संसार में जहां देखो वहां प्रेम का ही प्रसंग है ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

(गीति)

प्रेम उपल ईश्वर करे, ईश्वर उपल समान ।

कोऊ प्रेम प्रतीत बिन, लहे न पद निरवान ॥ ३३ ॥

प्रेम ही पत्थर को ईश्वर और ईश्वर को पत्थर समान करता है, प्रेम की प्रतीति बिना कोई निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥

॥ दोहा ॥

(गीति)

निर्गुनं निराकारं, निरामयं व्यापकं नित्यम् ।

निष्प्रपञ्चं शाश्वतं तं, नमस्ते कारणं प्रेमम् ॥ ३४ ॥

निर्गुण, निराकार, व्यापिरहित, नित्य (कभी नाश न होने वाला) प्रपञ्च रहित अविनाशी ब्रह्म को नमस्कार है, वह भी प्रेम के ही कारण है ॥ ३४ ॥

॥ दोहा ॥

(गीति)

सागर सिद्धप्रसंगं, पृथक् भेद प्रेम वरनावं ।

षट्चालिस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३५ ॥

सागर और सिद्ध के प्रसंग में पृथक् भेदों से प्रेम के वर्णन वाली यह प्रवीणसागर की छियालीसवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३५ ॥

४७ वीं लहर

रमसागरसिद्धचरचाप्रसंगः रससागरोक्त प्रश्न—दोहा.

स्वाभाविक भाविक यह, प्रेम भेद परमान;

बढ़ि घटि पावत हैं किधो, दोऊ सिद्धि समान ॥ १ ॥

सागर ने कहा कि स्वाभाविक प्रेम और भाविक प्रेम ऐसे प्रेम के दो भेद कहे हैं, सो ये दोनों प्रेम एक समान सिद्धि प्राप्त करते हैं या कभी न्यून-धिक ? ॥ १ ॥

सिद्धोक्त प्रत्युत्तर—छप्पय.

स्वाभाविक साधंत, चित्तका मरम न पावे ।

मिले न सहसा मित, अंत सिद्धी नहि जावे ॥

जो सधंत भावीक, सोय जाने सिगरी विध ।

एह भेदके लिये, तुरत पावत वही सिध ॥

परि कष्टभाव जामे अधिक, सो विशेष अनुमानिये ।

सिद्धा वदंत सागर सुनो, यह व्रतंत उर आनिये ॥ २ ॥

स्वाभाविक प्रेम साधने से चित्त के मर्म को नहीं पाता, और एक दम मित्र की प्राप्ति भी नहीं होती, तथा अंत में सिद्धि भी नहीं मिलती !! इसलिये जो भाविक प्रेम की याचना करे वही सफल विधि जानता है । इस भेद को लेकर वह शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है और जिसमें अधिक परिकष्ट भाव है !! उसे ही विशेष समझना । सिद्ध कहता है, हे सागर ! सुनो इस कथित वृत्तान्त को हृदय में धारण करो ॥ २ ॥

सागरोक्त प्रश्न—दोहा.

किते प्राणि यह मृष्टिमें, स्वाभाविक साधंत ।

कौन प्रेम भावी कहे, कहो सिद्ध बरतंत ॥ ३ ॥

इस सारी मृष्टि में ऐसे कितने प्राणी हैं कि जो स्वाभाविक प्रेम की साधना

करते हैं और कितने भाविक प्रेम की साधना करते हैं ? हे स्वामिन् ! इसका वर्णन करो. ॥ ३ ॥

मिद्धोक्त प्रच्युत्तर-स्वाभाविकप्रेमवर्णन-छंद नाराच.

प्रकार प्रेम सागरं नरिंद जानहो तुम्हें, प्रसंगके प्रमाणकी विधात उक्त की हमें.
अनूप रूप प्रेमके सुभावके अलंकृतं, मुजंतु रीत धारिये चरीत आपके चितं.
कुरंग रंग गानसों विधान एक आरधी, परीन कांन तांन चूक पार-
वान पारधी. वषा न आस आठ मास, हैं निमाव दादुरा; जियंत मित रीभ
भीज गाज वाज वादुरा. मंतंत अंग वीभ्रमें नमून चित लायके, धरंत खंत
वारिनी परंत गाड जायके. ग्रहंत कुंभ शुंभ होय कीश मूठ ना खुले,
सहंत मुंड दंड मार द्वार द्वार पै दुले. निरंतरं धरंत टेक गोह खोंचको गहे,
परंत तूटि तूटि पै निशंक छूटि नारहे. अवान गाजसों मयूर पूर प्रेमसों भरे,
संताप सीत तापमें अलापहु न ऊचरे. चहंत स्वात चातुकी सु और वारि
ना पिये, गहे विकास प्यास है उदास नामको लिये. गये वसंत कोकिला
कलाप्रकाश हीन है, सुनं मोर और के रहंत बैठ दीन है. मरीचि बीचि
नैनयों चकोर लगन चंदसे, प्रकाश है अमंद मंद जानहीं दिनंद से. कपोतको
उडायके कपोतनी करे धरे, निहार नार मारको अघेत आभसों गिरे. अली
हुलास प्रेमके विकास कंजमें वसे, कबूल प्रान जान पै न पंखरी वहै डसे,
खद्योत जोत दीपकी प्रकाश होतही परे, सुरंग रंग रीभि एक रंग अंगमे
जरे। विशेष प्रेम माधुरी सु माधुरी न छूटिहै; तनं तनंत नां तजंत मध्यलंक
तूटिहै. पनंग पुंग नाद भेद खेद छांडिके दह्यो; बिसार बास एक आम पास
गारुडी रह्यो। बहोर यों बिचारिये फर्नाद प्रेम हे मनी; बिहार दूर दूरपै
जरूर एह जीविनी। चकीश ये व्रतंत प्रेम नेम लूब्ध चंदनं; तजंत खान
पानपै भजंत हैं निशं दिनं। जुराफ जुगल डोर बीछु रंतफेर नां जुरे; करे
निहारवो सुप्रीत रीतसे दुहू मरे। मयंक अंक सिप्र व्रत, चित्तजानको
बनें, करें प्रतच्छ दौर मच्छ तुच्छ देहकों गनें, मरंत मीन दीन हैं जबै
अलीन तीरमें, अनेकजत्नहूं किये धरें न धीर छीरसे, प्रसिद्ध प्रेम पानके

चलंत नीर के चरं, भजंत तूलके डरं चहंत मीनहा गरं । कुरंगसारके सनेह देह अमरं दमे, नमें न और ठौर जाय शीश मितके जमें । रखंत नेम हारने सु प्रेम काठसे रजे, घरीक ताय पायसे तजें तो प्रानको तजें । सनेह वीर्य शंकरं महाप्रचंड मंडही, परंत दीठ पीठत्री, चले निवास छंडही । चर्मक संग लोह मोद है प्रमान त्रै पुरं, न चेत आप चेत है उडे तजंत अंतरं । कपूर दूर तिक्रसे जरूर ठौर ना रहें, सरात प्रीत मंत्र युक्त प्रेम धर्म पार है । सनेह छीर नीरको कियो समान आपके, बनं गुनं स्रग्ध कष्ट जाय आप तापके । मराल मान तालको रसाल पाल लीनता, कदाच वीछु-रंत तो मरंत होय छीनता । प्रसून वास पोतसे जरूर प्रेम जानिये, चलंत बात संग ये अनंत उकि मानिये । कुमोद मोह आग्रही जिये न मूल भा शशी, प्रतीत एक प्रेमकी खुलै निशंक है निशी । दिनंदसों सनेह एक भांतिसे नलीन है । उदै अकेक मोदसे, बिना उदै मलीन है । निहारिये नवीन रीति प्रीति छीपकी यहै । समंद नीर तीर आय स्वांति बुंदको ग्रहें । गुलीक युक्त जानिये छु रक्त मांद बानसे, विकंत ओर ठौर पै मिलंत आत ध्यानसे । अलोक प्रीति कोक यहहि भांतिसे निभाउरे । करंत केलिद्योसवे निशा परंत बाउरे, अजाउ आद सागरं सनेह एक सोंम से, रिहीर जोति धीर चांद, नो मुलेर ध्योमसे । मखिन मोह बौतसे मिलाय कुंद कुंदसे, परंत ना मरंत तो फरंत मोद मंदसे । अनेक टेक इष्टकी विशेष कष्ट यों सहे, विधान प्रेम नेमके प्रमान भुद्धि के कहे ॥ ४ ॥

नरों में इन्द्र के समान हे सागर ! प्रेम का प्रकार तो तुम जानते हो, परन्तु इस प्रसंग में प्रेम के प्रमाण की रीति कहता हूं । प्रेम का रूप उपमा में आने योग्य नहीं !! फिर भी स्वाभाविक प्रेम की शोभिता, सारासार तथा जीव जंतु की रीति धारण करके उस में चरित्र उदाहरण रूप में कहता हूं जिसे आप मन में समझ लेना । हिरण का गायनकेसाथ प्रेम है, इसलिए गायन के विधान की आराधना शिकारी जन करते हैं और गायन के प्रेम में जब हिरण सुनने

के लिये आता है तब पारधी बाण मार कर घायल कर देता है तो भी वन में पड़ी हुई जान के सुनने की चाट उससे नहीं छूटती । आठ महीना तक वर्षा की आशा में मेंडक प्राण रहित होकर पृथ्वी में निर्भयरूप होकर मिल जाते हैं, परन्तु बादल की गर्जना की आवाज के साथ ही अपने मित्र के प्रेम से रीझ कर उनका पुनर्जीवन हो जाता है । हथिनी के अंग का नमूना देख कर उसे सच्चा हाथी समझ बनावटी हाथी के प्रेम में जाकर गङ्गे में पड़ता है परन्तु हथिनी के ऊपर का प्रेम नहीं छोड़ता । घड़ा में हाथ डाल कर चने से मुट्ठी भर कर बन्दर उसे छोड़ता नहीं और मदारी द्वारा पकड़ा जाकर सिर पर लकड़ी की चाटों सहता द्वार २ मदारी के साथ डोलता फिरता है । गाह जिस वस्तु को पकड़ लेती है फिर खींचने पर टूट भले ही जाय परन्तु छोड़ती नहीं । मोर बादल की गर्जना के साथ ऐसा मुग्ध है कि गर्मी अथवा शीत ऋतु में कभी भी अलाप न करके केवल वर्षाऋतु में ही मधुर स्वर से टेक भरता है । स्वांति वृन्द का चाहने वाला पपीहा उसी आशा पर प्यास सहते हुए भी अन्न जल ग्रहण नहीं करता, किन्तु नाम की रटन लगाये रहता है । वर्षा ऋतु बीतते ही कोयल कला तथा प्रकाशहीन हो जाती है और पक्षियों का शोर सुनते हुए उसकी भी स्वयं दीन होकर निस्तव्य बैठ रहता है । चकोर की चन्द्रमा के प्रति ऐसी लगन है कि अपने नेत्रों को चन्द्रकिरणों के ही समक्ष रखता है, उज्ज्वल प्रकाश करने वाली सूर्य को भी मंद समझ कर स्वयं मंद हो जाता है अर्थात् उसकी ओर देखता भी नहीं है । कपोतनी को हाथ में लेकर कपोत को उड़ा देते हैं और कपोत आकाश में जाकर भी कपोतनी को नीचे बन्धन में देख उसकी सहायता के लिये पुनः नीचे आजाता है । भ्रमर प्रेम के उल्लास में ही खिले हुए कमल में जा बसता है, फिर कमल के बन्द हो जाने पर प्राण गवांना स्वीकार करता है परन्तु उन कमल की कोमल पंखड़ियों को काटता नहीं । पतंग दीपक के प्रकाश को देखते ही उसमें कूद पड़ते हैं और वे दीवाके सुन्दर रंग में रीझ कर एक रंग होने के लिये अपना अंग भस्म कर देते हैं । माधुरी यानी भ्रमरी का माधुरी (मिठास) पर अत्यन्त प्रेम होता है, वह मिठास के गोल पर इस प्रकार चिपक जाती है कि छुड़ाने के लिये खींचें तो टूट जाय पर

छोड़ती नहीं, सर्प वीन की आवाज पर ऐसा मुग्ध है कि अपना स्वच्छन्द रहन सहन भूल कर रूप के वश में रहता है। फिर नाग का अपने माणि पर भी ऐसा प्रेम है कि माणि को बाहर रख चारा के लिये इधर उधर फिरता है, परन्तु माणि को अपना जीवन रूप समझ अपना ध्यान उस पर ही रखता है। चक्रीश (बड़े सर्प) का यह वृत्तान्त है कि खान पान सब छोड़ कर रात दिन प्रेम के नियमानुसार चन्दन में लुब्ध होकर उमी का सेवन करता है। उसके विषय में ऐसी दन्तकथा है कि सर्प की आयु एक हजार वर्ष की है, जिस में पांचसौ वर्ष पूरा होने के बाद उसके पंख निकल आते हैं और फिर वह उड़ कर मलयागिरि पर्वत पर जाकर चंदन वृक्ष में लिपट कर शेष !! समय व्यतीत करता है। जुराफ पक्षी के नर मादा के जोड़ी के अंग में रहने वाले ग्रन्थी की डोर टूट कर अलग होने के उपरान्त फिर नहीं जुड़ता, जिससे वे एक दूसरे को देखा करते हैं और प्रीति की रीति से दोनों मरते हैं परन्तु पृथक् नहीं रहते। चन्द्रमा के ऊपर एक शृंगीजात के मच्छ के मन की प्रवृत्ति न जाने कैसी बनी हुई है कि जब उसे कृत्रिम चन्द्रचिह्न दिखावे तो वह उसे मचमुच चन्द्र समझता हुआ दौड़ आता है और अपने शरीर को वह तुच्छ समझता है, इसलिये मारे जाने का भी भय नहीं रखता। मछली का पानी के प्रति प्रेम है इसलिये जल के किनारे से जब अलग होवे तो दीन होकर मर जाती है परन्तु अनेक यत्न करने पर भी दूध में रहने पर भी धीरज नहीं धरती। प्रसिद्ध है कि खाने के प्रेम में जलचर प्राणी जब बाहर निकलते हैं और सूखे हुए पत्तों में भी डर कर भागते हैं परन्तु मछली भागने वाले कांटे में ग्लाघ पदार्थ लगा कर पानी में डालते हैं और मछली उसके खाने के प्रेम में आकर ग्वालेती है और कांटा गले में फंस जाता है। कस्तूरी के स्नेह में अमर अपने शरीर को दमन करता है और आन्यत्र कहीं भी न जमता हुआ अपने मित्र के ऊपर ही जाकर जमता है। हारिल पक्षी नियमपूर्वक लकड़ी के साथ प्रेम रखता है और क्षण भर भी लकड़ी को अपने पाम में अलग नहीं करता, यदि अलग हो जाय तो वहीं प्राण त्याग कर देता है। शंकर के वीर्यरूप पारा का स्त्री के साथ प्रेम है इसलिये उसे देखते ही निवास छोड़ प्रचंड शब्द करके उमंग से स्त्री के पीछे दौड़ता

हुआ आता है। चुंबक का लोहा के साथ प्रेम है, यह बात लोकप्रसिद्ध है !! कि दोनों को थोड़े अंतर में रखें तो दोनों अचेत न होते हुए भी चैतन्य होकर समय पर मिल जाते हैं और अन्तर नहीं रहने देते। कपूर काली मिर्च से अलग कहीं नहीं रहता, और प्रीति रूप मंत्र का बखान कर धर्मयुक्त प्रेम पालता है इसलिये कालीमिर्च या लौंग रूपी मित्र के साथ ही रहता है नहीं तो उड़ जाता है। पानी दूध के साथ जैसा प्रेम करता है वैसा ही दूध पानी के साथ, इसलिये अपने मित्र पानी को जलते देख स्वयं उछल कर आग में जा पड़ता है। हम का मानमरोवर की रमालयुक्त पाल से प्रेम है, जो कभी उसे अलग होना पड़ता है तो वह क्षीण होकर मृत्यु प्राप्त करता है। फूल की सुगंध का पवन के साथ प्रेम है जिससे वह अपना स्थान छोड़ कर अपने मित्र वायु के साथ चल निकलता है। यह काम की उक्ति है इसे सच समझना। कुमुदनी ने हर्ष से यह टेक पकड़ रखी है कि जब तक चन्द्रमा की आभा न देखे खिले ही नहीं, देखो यह प्रेम की रीति है कि रात पड़े, तब वह निःशंक हो प्रफुल्लित होती है और दिन में मुरझा जाती है। नलिनी को सूर्य के साथ ऐसा ही प्रेम है कि सूर्य के उगते ही हर्ष में खिल जाती है और जब सूर्य नहीं निकलता तो मुरझा जाती है। मीप की रीति को देखिये कि समुद्र में रहते हुए भी समुद्र के किनारे आकर स्वांति बूंद की राह देखती है। इसी प्रकार नर मादा योनी की यह प्रक्रिया है कि वह मादा (वान) पर के साथ आसक्त है, अन्य स्थान पर बिक जाने पर भी परस्पर के ध्यान होने से फिर आ मिलते हैं। चकवा चकवी अपने मित्र सूर्य के साथ अलौकिक प्रेम रखते हैं कि दिन में छोड़ जाते हैं, परन्तु सूर्य अस्त होते ही दीवाने बन जाते हैं। इसी प्रकार मर्यादापूर्वक अनादि काल में समुद्र का चन्द्रमा के साथ प्रेम है इसलिये सूर्य के प्रकाश में तो यह स्थिर रहता है परन्तु चांदनी में अपनी लहरों को आकाश में उछालता है। मधुमाली को मधु के साथ प्रेम है इसलिये वे फूल २ से मधु लेकर एकत्रित करती हैं और वह मधु बिखर जाने पर जान देती अथवा खेद से हीन होकर फिरती हैं। हे सागर ! इस प्रकार अनेक प्राणी अपने इष्ट मित्र के प्रेम के नियम के प्रकार व प्रभाव सहित मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा है ॥४॥

दोहा—एते आदि अनेकहैं, थर चर प्रेम प्रसंग,
स्वाभाविक तासे कहैं, मिलियत भित उमंग ॥ ५ ॥

ऐसे ये और अन्य अनेक स्थावर जंगम प्राणी प्रेम के प्रसंग बाले हैं ।
जो उमंग से मित्र मित्र से मिलते हैं उसे स्वाभाविक प्रेम करते हैं ॥ ५ ॥

सोरठा—सो भावीक कहाय, बरनें सो सागर सुनो,
उपजत आपहि आप, कुल भ्रजाद जाको नहीं ॥ ६ ॥

हे सागर ! अब जिसे भाविक प्रेम कहते हैं उमका वर्णन करता हूं से
सुनो । जो अपने आप उत्पन्न होता है और जिस में कुल मर्यादा नहीं होती ॥ ६ ॥

छप्पथ—संत प्रेम परि ब्रह्म, ताप सीतहुं तन तावे,
स्वामि धर्मके मूर, प्रेम परि अंग कटावे.
सती श्यामके प्रेम, अंग अगनी में जारे,
यहै रीतिसे प्रीति, सोय भावीक विचारे.
साधन विशेष सो सो सरे, चित अनुमान दृढ़ाइये,
सिद्धा बरदंत सागर सुनो, प्रेम नेम यों पाइये ॥ ७ ॥

साधु पुरुष परब्रह्म के प्रेम में शीत, गरमी और ताप में अपने तन को तपाते हैं,
शूरवीर पुरुष स्वामी सेवक धर्म के लिए प्रेम के ऊपर अपने शरीर को चढ़ाता
है, सती स्त्री अपने स्वामी के प्रेम में अपने शरीर को अग्निचिता में स्वामी के
शब्द के साथ भस्म करती है, इस प्रकार जहां प्रीति हो वहीं भाविक प्रेम है ।
विशेष २ साधनों द्वारा वह भाविक प्रेम पूर्ण होता है जो अनुमान में चित्त में
दृढ़ होता है । अर्थात् मिद्ध होता है । हे सागर ! सुनो इस प्रकार बरतने से प्रेम
का नियम प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

सागरोक्त प्रश्न—दोहा.

निराकार साकार यह, दोऊ प्रेम अनूप ।
यहै सिद्ध समता मिले, कीधों भिन्न सरूप ॥ ८ ॥

कुमार पूंछते हैं कि निराकार और साकार ऐसे दो प्रकार के अनुपम प्रेम कहे हैं परन्तु हे योगीश्वर ये दोनों समानरूप से मिलते हैं या दोनों के भिन्न २ स्वरूप हैं ? ॥ ८ ॥

सिद्धोक्त प्रत्युत्तर—छप्पय.

निराकार आराध, वेद वाणी निरधारे ।
मिले सिद्ध परब्रह्म, दीप ज्वाला वत डारे ॥
सधे रूप साकार, ब्रह्म सोई ठहरावे ।
वहै प्रेम परमान, सिद्ध इच्छावत पावे ॥
विस्तार बढ़ो यह नातको, अब तुमको न बतायेंगे ।
सिद्धा बरदंत सागर सुनो, कहेंगे जब फिर आयेंगे ॥ ९ ॥

निराकार प्रेम की आराधना को वेदवाणी निश्चय करती है । इसलिये इसकी उपासना में मिद्धि वर्णन केवल परब्रह्म की प्राप्ति होती है, प्रत्युत दीपक व ज्वाला के समान एकरूपता हो जाती है । जो साकार रूप की साधना करते हैं वे पाषाण आदि मूर्तियों में ब्रह्म को मान कर पूजते हैं वे भी प्रेम के प्रमाण से इच्छानुसार सिद्धि को प्राप्त करते हैं । इस प्रेममहिमा का बड़ा विस्तार है उसे अभी तुम्हें नहीं बतलाता, परन्तु मिद्ध कहते हैं कि हे सागर ! सुनो जब मैं लौट कर आऊंगा तब सब बतलाऊंगा ॥ ९ ॥

सोरठा—सागर सिद्ध सु बानि, सुनत चित संशय मिटें ।

बूझ्यो यहै विधान, नभ अवाज उत्तर कहा ॥ १० ॥

इस प्रकार सिद्ध की बात सुनकर सागर के मन का संशय मिट गया और फिर पूछा कि हे स्वाभिन् ! जो पहिले आकाशवाणी हुई थी उस का क्या उत्तर है ॥ १० ॥

सिद्धोक्त प्रत्युत्तर—सोरठा.

उच्छव शिवचार, अही सिद्ध पूरव कथा ॥

नाम धाम निर्धार, सागर कलाप्रवीण को ॥ ११ ॥

तब सिद्ध ने कैलाश पर होने वाले शिवरात्रि के उत्सव की बात कह कर सागर और कलाप्रवीण के नाम धाम निश्चय समेत पूर्व जन्म की सब कथा कह सुनाई ॥ ११ ॥

सिद्धोक्त-छंद मनमोदक.

कियो आपने एह उपाय, बुलाये प्रवीणकला आय । उमै ही मिले ईश आगार, चले मूरतं एक उच्चार । विछोहान बानी बदी बाल, बड़ी दंप-तीको ब्रहा ज्वाला । तुमे दोउ धारी तजें पान, उमा याद लायें हरबान । उमै भिद्धिदाई कृपा कीन, अवाजं प्रति उत्तरं दीन । हमको तिहीं उत्तरं काज, उमाजू पठाये महाराज । कही जो मंगे दुहू आप, भिटैगो नहीं ईशको आप । दुखं पाउगे और औतार, यहै चितमें राखिये धार । हमें जो बतावें उपदेश, सधो चंडिका त्योंहि मादेश, वहाँसे अगे पाओगे सिद्धि, दिनांही प्रेमको वृद्धि ॥ १२ ॥

हे सागर ! तुमने वहाँ शंकर की स्थापना की, वास्तुरूपी उपाय किया, कला-प्रवीण को बुलाया जिससे वह पापी, दोनों जन शिवमंदिर में मिले और एक मुहूर्त-दो घड़ी परस्पर प्रेम से वार्तालाप किया, परन्तु जब एक बाला ने बियोग होने की बाणी कही, उसे सुनकर दोनों में विरहाग्नि की ज्वाला प्रज्वलित हो गई । अन्त में दोनों ने प्राण विसर्जन करने का निश्चय किया, उस समय जोगमाया श्री उमाजी श्रीशंकरजी का स्मरण करके और भिद्धदात्री उमाजी तुम दोनों पर कृपा कर के आकाश-बाणी से उत्तर दिया और हमें भी उसी उत्तर के लिए ही हे महाराज ! आप के पास भेजा और कहा है कि यदि तुम दोनों मर जाओ तो भी ईश का शाप नहीं भिटैगा उल्टे दूसरे जन्म में दुःख पाओगे । यह बात मन में धारण कर रखना । अब मैं जो उपदेश बतलाता हूँ उसके अनुसार श्री चंडिका और महेश्वर की साधना करो जिससे सिद्धि प्राप्त होगी और दिनों-दिन तुम्हारे प्रेम की वृद्धि होगी ॥ १२ ॥

सोरठा-सिद्धा दई सुनाय, प्रति सागर पूरब कथा,

संशय सकल मिटाय, दंपति बरजी घात निज ॥ १३ ॥

सिद्धने रससागर को पूर्वजन्म की कथा सुनादी तथा मन के सकल संशय मिटा दिये, जिससे जो उन दोनों स्त्री पुरुषों ने आत्मघात करने का निश्चय किया था वह बंद हुआ ॥ १३ ॥

सागरोक्त-सोरठा.

कहो शाप माहेश, प्रान घात बरजी तुमे,
कहो सिद्ध उपदेश, सोय मिटे प्रेम न घटे ॥ १४ ॥

हे सिद्ध महाराज ! आप ने ईश्वर का शाप बताया, तथा प्राणघात करने से रोक दिया, अब कृपा कर उपदेश दो जिससे कि शाप मिटे और प्रेम न घटने पावे ॥ १४ ॥

सिद्धोक्त उपदेश भेद-छप्पय.

तुम प्रवीण प्रति अंग, रूप चंडीको ध्याओ ।
सागरकी स्थापिता, नाम सागरा धराओ ॥
सागर तुम प्रति अंग, रूप ईश्वर वह धारे ।
सो प्रवीण स्थापीत, प्रवीणेश्वर उच्चारें ॥
बहुरूप ध्यान धरि प्रेमसे, स्वप्नेश्वरी सुध्याओगे ।
तंत्रादि मंत्र यंत्रह क्रिया, स्वप्न सिद्धिसे पाओगे ॥ १५ ॥

सिद्ध ने कहा कि तुम प्रवीण के अंग को उद्देश कर चंडी के स्वरूप का ध्यान धरो और सागर द्वारा स्थापित होने से देवी का नाम “सागरा” रखो । हे सागर ! तुम्हारे प्रति अंग को उद्देश कर वह बालारूप प्रवीण ईश्वर का ध्यान करे । और इसी प्रकार प्रवीण के द्वारा स्थापित होने से ‘प्रवीणेश्वर’ नाम का जाप करे और उस रूप का हृद् प्रेम से ध्यान धर ‘स्वप्नेश्वरी’ का ध्यान धरोगे तो तन्त्रादि के अनुक्रम से मंत्र व तंत्र क्रिया करने से स्वप्नसिद्धि पाओगे ॥ १५ ॥

सागरोक्त-छप्पय.

स्वप्नेश्वरी विधान को, कौन अपिराज करवें ।
कौन छंद उच्चार, कौन देवता बतावें ॥

कौन सिद्धिदातार, कहा नीयोग सु कीजे ।
 कौन न्यास प्रति अंग, ध्यान कैसो सु धरीजे ॥
 कहा मंत्र बीज अच्छार कहा, भिन्न भिन्न निज उचरे ।
 उपदेश आप कीजे कृपा, सो अराध हम अदरे ॥ १६ ॥

सागर ने पूछा, हे सिद्ध ! इस चंडी स्वप्नेश्वरी के विधान का कौन ऋषि-
 राज कहाते हैं ? इस का छन्द कौनसा है, देवता कौन बताया है ? इस को
 सिद्धि देनेवाला कौन है ? इसका विनियोग कैसे करें ? उसका अंगन्यास कौनसा
 है, किसका ध्यान करें ? मंत्र कौनसा ? बीज अच्छर कौनसा है ? यह सब भिन्न २
 कह कर सुनाइए । आप कृपा कर इसका उपदेश करें जिससे कि हम उसकी
 आराधना करें ॥ १६ ॥

सिद्ध प्रत्युत्तर-(दोहा)

स्वप्नेश्वरी विधानको, कहाँ जथा विधि ज्ञान ।
 सूक्ष्म साधन है यहै, तुरत सिद्धको दान ॥ १७ ॥

सिद्धने प्रत्युत्तर में कहा, हे सागर ! इस स्वप्नेश्वरी देवी के विधान को मैं
 तुम्हें अपनी यथाबुद्धि प्रमाण विधियुक्त कहता हूँ सो सुनो, यह साधन अत्यन्त
 सूक्ष्म है परन्तु सद्यःसिद्धि देनेवाला है ॥ १७ ॥

सिद्धोक्त स्वप्नेश्वरी विधान-(छंद पद्धती)

अस्य श्री स्वप्नेश्वरी मंत्र, ऋषिराज पिप्पलादं सु तंत्र, वृहती सु नाम
 छंदं उचार, स्वप्नेश्वरी सु देवता धार । स्वप्नेश धारना देन सिद्ध, एतादि
 बानि विनियोग मध्य, ऋष्यादि मंत्र न्यासान् ठान, एही सरूप लाओ
 सु ध्यान । धारना एक ध्यान द्रढाव, आदीक इष्ट मिश्रिता भाव, आसनं
 कंज हाट कं पाट, सेतंग बास रूपं विराट । जोती सु चंद मोती गिंगार,
 माधुरी बान पानं सु चार, शुभ्रं सरोज दोऊ सु पान, एकै अभै एकं
 ब्रदान । वामा सु वाम भागें लसंत, दच्छा सु स्वप्न ईश्वरा कंत, मोहेश
 ज्ञान मुद्रा प्रकाश, सामान रूप सिंगार बास । रुद्राक्ष दाम पानमें लेह,

फीजें सुमंत्र उच्चर एह । प्रनवं बीज कंजा बंदंत, जोदंत स्वप्न ईश्वरी ,
अंत, कारजं में बंद फेर कीन, ता अंत बन्दि जाया सु दीन । एही सु
मंत्रमात्रिका थप्य, कीजे अयूत रेनादि जप्य, जो जो चहंत कामना
चित्त, सो मास प्रत्य सिद्धी मिलंत । धारंत और सिद्धी जु आस, पापंत
फेर दूसरे मास, कीजिये दंपति ए सधंन, होयगी जोगमाया प्रसन्न ॥१८॥

इस स्वप्नेश्वरी माता के मंत्र का तंत्रशास्त्रमें पिपलाद नाम के ऋषिराज
कहे गए हैं । बृहती नाम के छन्द का उच्चार होता है । देवता स्वप्नेश्वरी देवी
ही हैं । हे “स्वप्नेश्वरी ! धारण सिद्धि की देनेवाली ! मेरी मनोकामना पूर्ण करो”
आदि बोल कर ऐसे विनियोग से संकल्प करना, फिर उसमें ऋष्यादि मंत्र और
अंगुष्ठादि न्यास करके इसी स्वरूप का ध्यान करना । एकचित्त होकर ध्यान दृढ़
कर इष्टदेव के साथ मिश्रित भाव करना अर्थात् “देवों भूत्वा देवं यजेत्, स्वर्णेजडित
सिंहासन पर पद्मासन करके विराजमान है, शरीर विषे शुभ्र वस्त्र धारण किए
हुये हैं, अत्यन्त सुरम्य रूप है, शरीर की कान्ति जिसकी शरद पूनो के चन्द्रमा
के समान उज्ज्वल है, हरेक अंग २ में मुक्ताफल के अलंकार धारण किए हुए हैं,
माधुर्ययुक्त सुन्दर वाणी है, चार हाथ हैं । जिनके दो हाथों में उत्तम और
श्वेत रंग के कमल हैं, शेष दो हाथों में से एक में अभय और एक में वरद
ऐसी मुद्राएं धारण किए हैं । स्वयं वाम भाग में विराजमान हैं और दाहिने
भाग में देवी स्वप्नेश्वरी के स्वाामी महादेव ज्ञानमुद्रा से प्रकाशित हैं । वे दोनों
उमा महेश शृंगार और वस्त्र से एक समान हैं; इस प्रकार ध्यान करके हाथ में
रुद्राक्ष की माला लेकर इस मंत्र का उच्चारण करना । प्रथम प्रणव अर्थात् ‘ॐ’-
कार लेना फिर ‘कंजा’ कहना, फिर ‘स्वप्नेश्वरी’ जोड़ना फिर ‘कार्य मेवद’
मिलाना फिर अग्नि की स्त्री ‘स्वाहा’ अर्थात् ‘ॐ’ श्री स्वप्नेश्वरी कार्य मेवद
स्वाहा । बड़े मात्रिका आदि की स्थापना करके अगली रात्रि में दस हजार
मंत्र का जाप करना । इस विधि से जप करने वाला उपासक जो कामना मन में
धारे वह एक मास में सिद्धि होवे । फिर यदि सिद्धि की चाहना करे तो दूसरे
महीने में सिद्धि प्राप्त करे । इसलिये तुम दोनों स्त्री पुरुष इस साधना का
आराधन करो तो योगमाया प्रसन्न होवें ॥ १८ ॥

दोहा—यथारीत साधन कहाँ, स्वप्नेश्वरी महेश ।

सिद्ध दिये सागर लिये, एह मंत्र उपदेश ॥ १६ ॥

देवी स्वप्नेश्वरी और महेश्वर का यथारीति साधन बतलाया, फिर इसी मंत्र का उपदेश सिद्धने किया और सागर ने ग्रहण किया ॥ १६ ॥

पुनि सिद्धोक्त प्रच्युत्तर—चौपाई.

सागरसे जु कहन सिध लागे, यह उपदेश सिद्ध है आगे । आये यहै साधना कीजे, कलाप्रवीण पत्र लिखदीजे । वहै इष्ट साधना बनावे, सोऊ सिद्धि आपवत पावै । सागर कही सिद्ध प्रति बानी, हमें फेर मिलावे की ठानी । कहो दोउ किहि रीत मिलेंगे, बिरह ज्वाल दिन किते जलेंगे । यहै बात सुनि सिद्ध सु बोले, सबै भेद तुमसे हम खोले । यह उपाय तुमने जु बनाया, दरस मित दो बेरहि पाया । अब उपाय उनसे जु चलेंगे, आप जाय उहि ठौर मिलेंगे ॥ २० ॥

सागर से सिद्ध कहने लगा कि यह उपदेश भविष्य में तुम्हारे लिये बड़ा सिद्धदाता होगा इसलिए आप इसकी साधना करो । और कलाप्रवीण को भी पत्र द्वारा सविस्तार लिख भेजो कि वह भी इष्ट साधन करे जिसके योग से आप के साथ ही सिद्धि प्राप्त करे । सागर ने कहा कि हे योगीराज ! आप ने फिर से मिलने को कहा है इसलिए कृपा कर मिलने का उपाय बताओ और इस प्रकार बिरह-ज्वाला के कितने दिन बीतेंगे यह भी कहा । यह बात सुनकर सिद्ध ने कहा कि वह सब भेद तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ । प्रथम किये हुए उपाय से दो बार मित्र-दर्शन हुआ है अब यह उपाय चलेगा और आप जाकर वहाँ मिलोगे ॥ २० ॥

दोहा—आपैं उन उपाय परि, जाय मिलोगे मित ।

बातियां बनिहे जो रचहुं, कुछ चतुराई चित ॥ २१ ॥

इस (कलाप्रवीण) के आदर किए हुये उपाय से तुम जाकर वहाँ मित्र (प्रवीण) से मिलोगे परन्तु जो चित्त में कुछ चतुराई करोगे तो बात-चीत करने का अवसर बनेगा ॥ २१ ॥

दोहा—दरसोगे पूरन दशा, पुनि सागर परबीन ।

बतियां बने कि नाबने, ज्यों जल भाखत मीन ॥ २२ ॥

फिर सागर और प्रवीण दोनों जन विरह पीड़ा दशा से भरपूर होंगे ।
उस समय बातचीत करने का अवसर मिले या न मिले परन्तु जिस प्रकार पानी
के बाहर मीन तड़पता है वैसे तड़फोगे ॥ २२ ॥

सोरठा—पै एते पर आप, साधन करिहो दोउ जन ।

ताहि सिद्धि परताप, सुपन मिलोगे मास प्रति ॥ २३ ॥

परन्तु इतने पर आप दोनों जन साधन करोगे तो सिद्ध के प्रताप से प्रति-
मास स्वप्न में परस्पर अवश्य मिलोगे ॥ २३ ॥

सोरठा—दोऊ सम्रति सोय, जो सुपने चरचा चले ।

उर अभिलाष सु होय, इति विधि पूरन उभय जन ॥ २४ ॥

स्वप्न में जो चर्चा चलेगी उसकी दोनों का स्मृति रहेगी और जो मन की
अभिलाषा होगी वह भी स्वप्न द्वारा पूरी होगी ॥ २४ ॥

यातें यहै व्रतंत, उन प्रति लिख पठवो सबै ।

धरें धीर वह चिंत, हमको बिदा सु दीजिये ॥ २५ ॥

इसलिए यह सब वृत्तान्त पत्र में लिख कर प्रवीण के पास भेजो कि
अपने मन में धीरज धरे । और हे सागर ! अब हमें बिदा दो ॥ २५ ॥

तब सागर तिहि बेर, अरज कीन सिधसे यहै ।

पुनि कस मिलिहो फेर, कहा जोग निश्चय सु करि ॥ २६ ॥

तब सागर ने उसी समय सिद्ध से निवेदन किया कि हे योगेश्वर ! आप
फिर कब मिलोगे यह निश्चय रूप से कहो ॥ २६ ॥

दोहा—सिद्ध कहैं मिलिहै सही, कह तहकोक करंत ।

फल पके तरुसे तबै, आपहि आप गिरंत ॥ २७ ॥

सिद्ध ने कहा हे सागर ! कोई उपाय करके मैं फिर मिलूंगा यह निश्चय

जानो, क्योंकि जब वृक्ष पर फल पक जाता है तब स्वयं ही मड़ पड़ता है ॥ २७ ॥

॥ दोहा ॥

एतो चरचा चलतही, सागर सहर सिधाय ।

प्रभानाथ निज पथ भये, यह उपदेश बताय ॥ २८ ॥

इतनी बात करके आज्ञा लेकर सागर नगर में गया और यह उपदेश देकर सिद्धेश्वर प्रभानाथ ने अपना मार्ग लिया ॥ २८ ॥

॥ सोरठा ॥

सागर भये प्रभात, सब विधि लिखी प्रवीण प्रति ।

रहे तहां वह रात, पुनि गृह आये कूंच करि ॥ २९ ॥

सवेरा हुआ और सागर ने सब विधि लिख कर प्रवीण के पास भेजी और वह रात्रि वहां बिता कर दूसरे दिन कूंच कर अपने घर आए ॥ २९ ॥

॥ गाथा ॥

सागतु सिद्ध संवादं, स्वप्नेश्वरी विधान उपदेशं ।

सतालीस अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

सागर और सिद्ध के संवाद के प्रसंग में स्वप्नेश्वरी विधान के उपदेश की यह प्रवीणसागर की सैंतालीसवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ ३० ॥

४८ वीं लहर ।

रससागरकलाप्रवीण विरहपत्रप्रसंगः !—सोरठा.

सागर सिध उपदेश, पठयो पत्र प्रवीण प्रति ।

साधन शक्ति महेश, करन लगे दंपति प्रनय ॥ १ ॥

सागर ने सिद्ध के उपदेश को विधिपूर्वक लिख कर हमारी कलाप्रवीण के पास भेज दिया ! ! जिससे दोनों स्त्री पुरुष अत्यन्त प्रीति के साथ शिव-शक्ति की आराधना करने लगे ॥ १ ॥

पाती विरह वनाय, उभय लिखत एकेक प्रति ।

उर आयम दरसाय, सो वर्णन कीजे सबै ॥ २ ॥

विरह के पत्र लिख कर दोनों उस में अपने २ अभिप्राय एक दूसरे को बतलाने लगे, उसका सब वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

कलाप्रवीणविरहपातीवर्णनं विभावनालंकार द्वितीय भेद—सवैया.

जादिनही से कटाच्छ मिलि दुहु, तादिनभे बरनी हम भादू ।

चित्त भयो है समीर के पत्र ज्यों, अंग चढ्यो है खराद खरादू ॥

आप इलाज करो न करो तउ, कौन पै जाय बद्द फरियादू ।

सागर भित्त बुरो जिन मानिये, जानत हो अखियान में जादू ॥३॥

जिस दिन से आंखों की कटाक्ष मिली है उसी दिन से हमारी पलकोंमें भादव मास बस गया है । और चित्त वायु के झोंके से कंपित पत्र की भांति हो रहा है, शरीर खराद पर चढ़े हुए लकड़ी की भांति घूमता हुआ और प्रतिदिन क्षीण हो रहा है; आप इलाज करने वाले होकर भी दवा न करो तो किससे फरियाद करें । हे मित्र सागर ! मन में बुरा मत मानना, मैं तो यह समझती हूं कि तुम्हारी आंखों में जादू है ॥ ३ ॥

(१) लक्षण पृष्ठ ५१९ में देखो ।

समरूपक अलंकार-सवैया.

वीर चढ़े चढ़ूं ओर उडगन, कोक द्विरेफन के बिखरे सुख ।
खैंच नराच मरीच चलावत, खंडित पंकज के ब्रज के मुख ॥
काम हरोल चले हैं निशान सु, बाग बिजोगिन को दुखरे दुख ।
सागरजु महाराच बिना यह, आज कहा द्विजराज कियो रुख ॥४॥

जुगनूरूपी शूरवीर चारों ओर से चढ़ आए हैं जिससे चकवा चकवी और भँवरों के मुख बिखर गए हैं । किरणरूपी बाण खींच कर चला रहे हैं जिससे कमल समुदाय के मुख को खंडित कर दिया है । रामदेवरूपी निशान (ध्वजा) लेकर आगे चले हैं जिससे वियोगिनी वेंरी को दुःख ही दुःख हो रहा है, इस प्रकार महाराज सागर के बिना आज यह द्विजराज (चन्द्रदेव) ने कैसा रुख धारण किया है * ॥ ४ ॥

विभावनालंकारः द्वितीय भेदः-सवैया.

तादिन से विसरे न हमें फिर, जा दिन से तुम चिंत चढ़े हो ।
मूरति मित बिलोक कही, हियमें कलमीं चितराम कढ़े हो ॥
नीर भरे से झुरे से रहे द्रग, मौन करेसे जिया में गढ़े हो ।
सागर एह सुनो अरजी तुम, मोहनी मंत्र कहां ते पढ़े हो ॥ ५ ॥

जिस दिन से तुम चिंत में चढ़े हो उस दिन से भूले नहीं, हे मित्र ! आप की मूर्ति हृदय में ऐसी बस गई है जैसे चितनारी कलम में चित्र खिंच गया हो, आंखों में पानी भरा रहने से आप आंखों में ही बसे हो, और मौन रहने से हृदय में धस गये हो । हे सागर ! मेरी यह विनय सुनो, तुमने मोहनी मंत्र कहां से सीखा है ॥ ५ ॥

(१) पृ० ५१३ में देखें । रूपक का ही यह एक भेद है ।

* गुजराती टीकाकार ने पद्य में (रुख) पाठ करके उसे (रोष) का अपभ्रंश माना है और यही अर्थ किया है । परन्तु पद्य से और ऊपर के चरणों को देखते हुए हमारा विचार है कि वह (रुख) शब्द है जिसका अर्थ ढंग है । (२) पृष्ठ ५१६ में देखो.

एकावलि अलंकार-सवैया.

मेरे लगी रसना जक सागर, चातुक ज्यों घन बुंदन टेरे ।
टेरे निसा मनु कोक इकै इक, माधुरताइ मधू गति हेरे ॥
हेरे चकोर शशी ज्यों द्रों मग, भित अहो मिलिहो कब फेरे ।
फेरे अनंगन चक्र चढयो मन, धीरज प्राण धरे कहँ मेरे ॥ ६ ॥

हे प्राणजीवन सागर ! जैसे चातक पक्षी घनबूंद को पुकारता है !! वैसे ही मेरी जिह्वा को तुम्हारी रट लगी हुई है । जैसे रात्रि में चकवा चकवी एक दूसरे को पुकारते हैं !! वैसे मैं पुकारती हूँ, जैसे भंवरा माधुर्य को हेरता है !! वैसे मैं हेरती हूँ । चकोर जिस प्रकार चन्द्रमा को देखता है !! उसी प्रकार ये आँखें आप को देखती रहती हैं । हे मित्र ! अब फिर कब मिलोगे ? कामदेव के चक्र पर मेरा चित्त चढ़ा हुआ फिरता है !! फिर मेरे प्राण किस प्रकार धीरज धरे !! ॥ ६ ॥

न्यूनरूपकालंकार-सवैया.

सागर सिंधु भयोंइ रहे वह, मंद्र नगेंद्र ठईहें रही ।
दानव देव सनेह त्रपा अहि, नेत उसासन ऐंच ग्रही ॥
जीवन जंतु असे सिंगरे सुख, रैन दिना भकभोरत ही ।
तेरहु भित मिलेंगे कबै, अजहुं तो हलाहल एक भही ॥७॥

हे मित्र सागर ! हृदयरूपी सिंधु भरा है उस में वियोग रूपी मन्दराचल पर्वतराज आकर स्थिर हुआ है, और स्नेह तथा बाज्ररूपी देव-दानव उसास रूपी वासुकी नाग का फंदा डाल कर खींच रहे हैं जिससे जीवन रूपी सब जंतु संतप्त हैं, सुख रूपी पानी को रात दिन मन्थन करने से तेरह रत्न तो न जाने कब मिलेंगे पर हमें हलाहल विष तो मिल ही गया है । (पुराणों में कथ ! है

(१) गृहीतमुक्तरित्यार्थ श्रेणिरैकावलिमता । कु० भावार्थ-इसमें उत्तरोत्तर वाक्यों के पूर्व पूर्व वाक्य विशेषण है, यह एकावली कहाता है

(२) पृष्ठ ५१३ रूपक का एक भेद

कि प्राचीन काल में देव व असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया था जिस में से १४ रत्न निकले थे उन में एक विष भी था) ॥ ७ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

है हिय पंजर बीच परेसो, कोउ प्रकार न पावत उड्डन ।
धीरज तंदुलको चुगयो अरु, अंग बने नवरंग दिनों दिन ॥
श्रोतनको जल पीवो करें वह, कीवो कलोल ममारिके पंखन ।
सागर ज्यों ज्यों चढ़े चित ध्यानसु, त्यों २ फिरवो करें शुक यामन ॥ ८ ॥

हृदयरूपी पिंजरा के बीच में रहता है । किसी प्रकार भी उड़ने नहीं पाता, धीरज रूपी चावल चुगता है, जिससे दिन प्रतिदिन नया नया रंगवाला बनता है, शोणित (रुधिर) रूपी पानी पीता रहता है, तथा संकल्प रूपी पंख फैला कर कलोल करता रहता है, हे सागर ! ज्यों २ चित्त में ध्यान चढ़ता है त्यों २ यह मन रूपी सुगा फिरता रहता है ॥ ८ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

रसमागर सागर रूप भरे, द्रग नावहि खेवट चाह हकारी ।
छदमी मधि रावरे नैन मिले सु, मिलावत फंद कटाच्छ की डारी ॥
हलकें भट प्रेम परे उनमें, छलके कल आय समीप किनारी ।
रक्तके पताके चढ़ाय दिये, आखियानमें आन फिरिहैं तिहारी ॥ ९ ॥

समुद्र रूपी रससागर रससे खिचो खिच भरा हुआ है, उस में इच्छा रूपी नाविक ने नेत्ररूपी नौका का चलाना प्रारम्भ किया । वहां मध्य में आकर आप के नेत्ररूपी धूर्त समुद्र के डाकू मिले । उन्होंने ने मिलते ही कटाक्ष रूपी फंद फेंका, फिर प्रेमरूपी योद्धा परास्त होकर उस में आकूदा, उससे छलांक मार कर पानी के समीप आ पहुंचा और इन नेत्रों की रक्तता की पताका चढ़ाई और इन नेत्रों में अब केवल आप की ही आन फिर रही है ॥ ९ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

सौरभताऽ प्रभंजनसे मधु, कंजन जैसे लगे पखियां ।
ताल मराल चकोर ज्यों चंद , अनंद ज्यों इंद्र घटा शिखियां ॥
धारन बातज गान उचार, बिहार ज्यों वारिनसें भ्रखियां ।
भानन की दृति कोक ज्यों सागर, यों लगे आननसे अंखियां ॥ १० ॥

सौरभयुक्त वायु जैसे सुहावनी लगती है, परिमल और पंखुड़ियों से युक्त कमल जैसे अच्छा लगता है, राजहंस को जैसे मानसरोवर प्रिय है, चन्द्रमा की ओर जैसे चकोर पक्षी की दृष्टि लगी रहती है, वर्षा के काले बादलों को देख कर मोर जैसे आनन्द में नाच उठते हैं, वाद्ययंत्र के मधुर स्वर हरिण के चित्त को जैसे आकर्षित कर लेते हैं, जलमें जैसे मछलियों को आनन्द प्राप्त होता है, सूर्य की कान्ति की ओर जैसे चकवा निहारा करता है, ठीक ! ! उसी प्रकार-हे प्राणाधार सागर ! आप के मुख की ओर ये नेत्र लगे हुए हैं ॥ १० ॥

समस्तलाटानुप्रासालंकार-सवैया.

बै द्रग मेरे मु चेरे बने रहे, तेरे ही पंथके हेरे करे नित ।
घेरे रहे बिरहानल के गन, भेरे रहे अलुंवान घरी प्रत ॥
रेरे सनेही जरेरे खरे दुख, प्रेम छरे उभरेरे भरे रत ।
नेरे बसो न घनेरे भये दिन, येरे करेरे भये हो कहाचित ॥ ११ ॥

मेरे दोनों नेत्र आज्ञाकारी अनुचर की भांति तुम्हारे पथ की ओर अविरल निहारा करते हैं, वियोग रूपी अग्नि के समूह से ये घिरे हुए हैं. तथा क्षण प्रतिक्षण उन में से आँसुओं के कण निकल-निकल कर गिर रहे हैं । हे स्नेही ! ये सबी वेदना से प्रज्वलित हैं तथा इन में प्रेम की लहरें निरन्तर उमड़ र कर रहजाती हैं । बहुत दिवस व्यतीत हो गये, किन्तु फिर भी आप समीप

(१) वेद्विषयप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृति । कु० सावार्थे-जहां उपमान और उपमेय वाक्यों के मध्य २-धर्म बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से कहते हैं वह द्रष्टांतालंकार है ।

में आकर नहीं बसते, अरे हे मित्र ! आप हृदय के इतने कठोर क्यों हो गये हो ॥ ११ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

सास उसास डगे मगरी कसि, तंतसु नाभि परानस डोरे ।
मित जरी पखरी गुनकी चित, की चहरी सुफिरो चहुँओरे ॥
द्वैदगरी सफरीसे फिर रसना, फरकी श्रुति आंकन जोरे ।
सागर सापनधी सुरता जुनि, नैन धरो प्रति देत टकोरे ॥ १२ ॥

तंत्र द्वारा नाभि से जकड़ी हुई प्राणरूपी डोरी को लेकर और उसमें उत्पन्न हुआ दाग अपान वायु में से प्रकट हुआ, स्वांसो-च्छ्वास के मार्ग से निकलता है उसी प्रकार मित्र के गुणों से जकड़ी हुई पखड़ियाँ-युक्त चित्तरूपी चकरी चारों ओर फिरने लगी है । उसके लिये दोनों आंखें मछलियों की भांति फिरती रहती हैं, जीभ फरक कर कानों को जाँड़ रही है इस प्रकार हे जीवन के आधार सागर ! सर्पणी सी सुरता नेत्ररूपी घड़ी में प्रति दिन कान लगाये हुए टंकारा किया करती है ॥ १२ ॥

भाविकालंकार—कवित्त.

चाह भरे चेरे आवें, मलै मेरे मेरे करि, डेरे नेर के दिन बधाइके प-
ठाओगे । केसर गुलाब बीर, गंधसार घनसार, बारुनी अगर मेरे,
भाजन भराओगे । गावन बजावनके, भूषन सुवासनके, रीझन रिझावनके,
साज बनवाओगे । मद मतवारे मग, हेर हेर हार द्रग, सागर दुलारे प्रान,
प्यारे कब आओगे ॥ १३ ॥

मेरे प्रसाद पर आप के अनुचर आकर कहेंगे कि वे अब समीप ही आ पहुँचे हैं इस प्रकार की सूचना कब भेजोगे ? केसर, गुलाब-जल, मलियागिरि चंदन, कपूर तथा मधुर द्राक्षारस (अंगूर की मदिरा) के प्याले मेरे महलों में

(१) भाविक भूतभावार्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम्० । कु० भावार्थ—जहाँ आगे होनेवाला अगर होगया वृत्तांत वर्तमान स्थिति में बन रहा है ऐसा बतलाने को "भाविक" कहते हैं ।

कब भरवाओगे ? गाने बजाने के यंत्र, बहुमूल्य वस्त्र, भूषण तथा अन्य अनेक प्रकार की हर्षोत्पादक वस्तुओं का प्रबन्ध कब करोगे ? हे मद से मस्त मातंग ! आप की प्रतीक्षा करते-करते अब तो मेरे नेत्र थक चुके हैं । हे सागर दुलारे ! हे प्राणवल्लभ ! आप कब आओगे ॥ १३ ॥

परिसंख्यालंकार—सवैया.

आनन ना दरस्यो तो कहां है, निरंतर संचत देखत नैना ।
बाहिर जो परसो न कबी तो, छबी उर भीतर मित रहैना ॥
आमिलिहो न मिलो तो भले, रसना तब नाम लभ्यो बिसरे ना ।
सागर ज्यु समझो न इते पर, तो बहुरो तुमसे कह केना ॥१४॥

आप के मुख चन्द्र का दर्शन नहीं किया तो क्या हुआ ? किन्तु निरन्तर ये नेत्र आप के पथ की ओर निहारा करते हैं । स्पर्श-सुख का आनन्द यद्यपि नहीं उठाया किन्तु अपने प्रेमी की विमल मूर्ति अन्तस्थल के मध्य में चिरकाल के लिये स्थापित करली है । आकर मिलो या न मिलो इससे कोई अभिप्राय नहीं किन्तु मेरी जिह्वा पर तो निरन्तर केवल आप के ही नाम की रट है सो मुलाये मे भी नहीं भूलती । हे चतुरशिरोमणि सागर ! इतने से ही समझलो तो ठीक है अन्यथा इससे अधिक क्या कहा जाय ? ॥ १४ ॥

जातिस्वभावालंकार—सवैया.

जाम घरी पल घाम नहीं सुख, दाम लहे तुम नाम लिये ।
बेदरदी करि खेद हने सर, भेद कलेवर छेद किये ॥
सागर प्रीति की रीति तजो तब, मित कहो केहि रीत जिये ।
धार किये इत छार हिये, कह हार हिये पर आ रहिये ॥ १५ ॥

एक पहर, घड़ी तथा पल भर के लिये भी महलों में सुख नहीं मिलता

(१) परिसंख्याननिषिद्धैकमेकस्मिन् वस्तुयंत्रणम्० ॥ भावार्थ—एक का निषेध और दूसरे का नियमन “परिसंख्या” है ।

इसलिये हाथ में माला लेकर केवल आपके नाम का जप करती हूँ, पाषाण-हृदय कामदेव—जिसे किसी की पीड़ा का अणुमात्र भी अनुभव नहीं होता—अपने तीक्ष्ण काम—बाणों से मेरे शरीर को क्षत-विक्षत कर रहा है। हे सागर ! यदि प्रीति की रीति छोड़ते हो तो बतलाओ कि हम किस प्रकार जीवित रहें ? इस बात को हृदय में विचार कर मेरे हृदय पर मुक्ताहार की भांति निवास करो ॥ १५ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

आगे मुहब्बत की हमसे तुम, पीछे निगाह करो न दगा दे ।
कैसे करार रहे दिल भीतर, दारु किया न जहेर पिवा दे ॥
जान से जान रहेगी तभी जब, भेजदुगे फुरमान लिखादे ।
आइ नशा उतरेगी नहीं अबै, सागर प्रेम सरावसे ज्यादा ॥ १६ ॥

पहले तो आप ने हम से प्रीति जोड़ी और फिर दगा दिया, क्योंकि उसके बाद मुझ पर नजर नहीं की। आप के इस वक्रदृष्टि कर लेने से इस हृदय को कैसे सान्त्वना प्राप्त हो सकती है अंगूरी मद्य के स्थान में विष पीने को न दो आप के ये प्रेम-पत्र तक मिलते रहेंगे तब तक इस शरीर रूपी कारा-गार में यह प्राण रूमी बन्दी कैद है, हे प्यारे सागर ! इस प्रेमरूपी मदिरा का नशा शीघ्र उतरने वाला नहीं है ॥ १६ ॥

काव्यलिंग अलंकार—सवैया.

गोमन वामन धोम उठे धग, रोमन रोमनसे जग जारे ।
गात सिरात नहीं दिन रात सु, बात न जात कछु विस्तारे ॥
भीतर चीतर मित रह्यो सो, प्रतीत न थीत रहे जिय घारे ।
नागरताइ कहा करिये, चितकी तुम सागर जाननहारे ॥ १७ ॥

(१) उपमान वस्तुओं का दृढेदृढ स्वभाव का वर्णन “जातिस्वभाव” है ।

(२) समर्थनीयस्वार्थस्य काव्यलिंगं समर्थनं०—प्रतिपादित अर्थ में संशयनिवृत्त्यर्थ जिस वाक्य में सहेतुक विशेषण रखने पड़ते हैं वह “काव्यलिंग” है ।

नीचे पृथ्वी और ऊपर आकाश में अग्नि प्रज्वलित हो उठी है । यह रोम-रोम को जला रही है । रात्रि अथवा दिवस किसी भी समय में यह शरीर शीतल नहीं रहता है । इस अनहद पीड़ा का किसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता, किन्तु हृदय में मित्र की मूर्ति चिरकाल के लिये अंकित हो चुकी है केवल एकमात्र इसी सहारे से जीवित हूं, हे सागर ! तुम से क्या छिपाया जाय !! क्योंकि तुम हृदय की प्रत्येक बात जानते हो ॥ १७ ॥

पुनः—सवैया.

नैन भरे जल मैं भरे उर, रैन दिना सुख चैन नहीं तन ।
आश्रय विलोकन के बिसबासनि, दीरघ सासहि लेत छिना छिन ॥
मंस दसो शशि अंश रखो रत, हंस बसे सो सनेहकि साधन ।
जाय कहो पत लाय लगी, तुम आयसको तो बचे विरहीजन ॥ १८ ॥

आंखों से आंसुओं की विरल जलधारा बह रही है, हृदय में कामदेव ने अपना आसन जमा लिया है जिससे किसी भी समय इस शरीर को चैन नहीं पड़ता । ये प्राण केवल आप के मुख के दर्शनों से टिके हुए हैं । शरीर के ऊपर का मांस तो चन्द्रमा के प्रकाश में जल चुका है और रक्त केवल नाम-मात्र को (बचा) रह गया है । बाकी यह जीवरूपी हंस प्रेम की साधना के कारण ही ठहरा हुआ है, कोई जाकर सागर को सूचित करो कि यहां आग लग चुकी है जो तुम आसको तो यह विरहीजन बच सकता है ॥ १८ ॥

अपन्हव—अलंकार—सवैया.

बाज को राज बिराजे बजीर, कुहानकि आन फिरी है धरामें ।
न्यायकरा सकरा जगरा दो जुरा लगरा है अमीर सरामें ॥
बैरी कुही कुटवाल बने अरु, बास जुमंचि कुजाक गिरामें ।
सागर मित यह सिंगरे मिल, सारसि मारि धरी पिंजरामें ॥ १९ ॥

(१) शुद्धापन्दुतिरन्यस्यारोपाधौ धर्मेनिन्दवः (कु०) जहां सभी बातें छिपाकर उस पर अन्य वस्तुओं का आरोपित करना हो वह शुद्ध अपन्हति अलंकार कहाता है ।

बाजपक्षी का शासन स्थापित हो चुका है । पृथ्वी पर काकरूपी बजीर की दुहाई फिर चुकी है । सकरा और जगरा यह दोनों न्यायाधीश हैं । जुरा तथा लगरा यह दोनों पक्षी राजसभा के प्रमुख सदस्य हैं । बैरी और कुही यह दोनों कोतवाल हैं और बासा तथा तुरमंचीपक्षी यह सेवा विभाग में नियुक्त हैं । हे मित्र सागर ! इन सब ने मिलकर इस मारसी को पींजरे में कैद कर रक्खा है ॥ १६ ॥

समरूपक अलंकार—दोहा.

उर अनार चरखी सुचित, फूलभरी से नैन ।

गल हलकी आतस समर, खुरत हवाई सैन ॥ २० ॥

उररूपी अनार, मनरूपी चरखी, आंखरूपी फूलभड़ी, कंठरूपी जामगरी, कामरूपी आग्न और सुरतरूपी सैन (इशारा रूपी) हवा चल रही है ॥ २० ॥

उत्प्रेक्षांलंकार—दोहा.

निश दिन द्रग बरसत रहे, सरसत रहे सनेह ।

तन परसत तरसत रहे, मानहु चातुक मेह ॥ २१ ॥

रात दिन ये नेत्र वर्षाश्रुतु के मेघों की भांति बरसते रहते हैं और उसी प्रकार यह स्नेह भी बढ़ता जाता है ? चातुक पक्षी जिस प्रकार वर्षा की प्रतीक्षा करता रहता है उसी प्रकार यह मन आपके शरीर स्पर्श के सुख की उत्कण्ठा से सदैव आकुल—व्याकुल बना रहता है ॥ २१ ॥

विनोक्ति—अलंकार—दोहा.

केमर जावक मलय धन, मंजन मिटे ज्युं नाग ।

मिलन बिना नाहिन मिटे, मिल बिछरनको दाग ॥ २२ ॥

(१) पृ० ५१३ में । (२) पृ० ५६१ में ।

(३) विनोक्ति—विनोक्ति—प्रस्तुत हीनमुच्यते (कु०) भाव—किंचित् वस्तु के अभाव से प्रस्तुत वर्णनहीन या कुछ बन जाय, उसको “विनोक्ति” कहा है ।

केसर, लाक्षारस मलियागिरि चन्दन तथा कपूर आदि वस्तुओं से निर्मित मंजन दांतों को शीघ्र मोती के समान उज्ज्वल बना सकता और मंजन का दाग शीघ्र मिट जाता है किन्तु एक बार प्रेमयुक्त मिलने के बाद जो वियोग का दाग पड़ जाता है वह प्रियतम से मिले बिना नहीं मिट सकता ॥ २२ ॥

दोहा—समर पारधी भमर सर, विरह झपट किय बाज ।

सागर नागर हो निपट, याको करहु इलाज ॥ २३ ॥

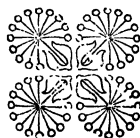
रतिराज अर्थात् कामदेवरूपी शिकारी बाणों को चला रहा है । विरहरूपी बाज झपटा मार रहा है । हे सागर ! आप तो चतुर शिरोमणी हो !!! कृपा करके इस असाध्य रोग का कोई निदान बतलाइये ॥ २३ ॥

गीति छन्द.

गाहा—विरहा पत्र प्रवीनं, लिखि पठइत सागरं प्रत्ते ।

अडतालिश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २४ ॥

इस प्रकार प्रवीण ने विरह रस में ओत-प्रोत पत्र लिखकर सागर के पास भेजा । उस सम्बन्धी प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह अडतालीसवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ २४ ॥



४६ वीं लहर ।

रससागरविरहदशापत्रभेदः—सोरठा.

सागर पत्र अपार, इहि विधि लिखित प्रवीणके ।

बांचत विरहा झार, बड़ी दशा बरनों वहै ॥ १ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण के लिखे अपनेको पत्र पढ़ने से सागर कुमार की विरह ज्वाला प्रज्वलित हो उठी !! उस दशा का सब वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

सागर उक्ति बनाय, लिखे पत्र परवीण प्रति ।

भेद भिन्न करि ताय, कछु बरनों संछेप से ॥ २ ॥

अब सागर ने जो पत्र प्रवीण के पास भेजे उन में से मुख्य २ पत्रों का संक्षेप से वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

सागरविरहदशापत्र—विभावनालंकार—सोरठा.

ताकी दारू कौन, दारू से दूनो दरद ।

हे अब कैसी होन, पाय न भित प्रवीण ज्यु ॥ ३ ॥

उस रोग की क्या ओषधि हो सकती है !! जो उपचार करने में और भी अधिक बढ़ जाता हो ? मित्र प्रवीण तो आये ही नहीं, अब इस हृदय की क्या अवस्था होगी ? ॥ ३ ॥

विभावना—अलंकार—सोरठा.

मन नावकको तीर, चलयो सु पीछो ना फिर ।

बेधनहार शरीर, कहोसु बेध्यो कौन विधि ॥ ४ ॥

मनरूपी नावक का तीर एक बार छूटने के बाद वापिस नहीं लौटता ।

हे शरीर के बेधने वाले ! तुमने इसको किस युक्ति से बेधा ? यह तो बतलाओ !! ॥ ४ ॥

मालादीपकालंकार—सवैया.

बातको दीप दियाको पतंग, पतंगको तेज कहाँलो रहेहे ।
ग्रीवको फंद जु कुंदको फंदन, फंदको मोति कहाँलो जगहे ॥
पातको बुंदन बुंद प्रसून प्रसून, में बास कहाँ लागि रहे ।
साधन गुंज प्रवीण तजे तब, प्रान कपूर जैसे उड़ि जैहे ॥ ५ ॥

हवा से दीपक, दीपक से पतंग पतंग से तेज कहाँ तक ठहर सकता है । गले की माला, चमेली का हार और हार का मोती कहाँ तक चमकता रह सकता है, इसी तरह पत्ते पर बूंद, फूल पर बूंद और फूल में बास कहाँ तक रह सकती है । हे प्रिये प्रवीण ! इसी प्रकार साधनों की माला छोड़ देने से मेरे प्राण भी शरीर से कपूर की भांति उड़ जायेंगे ॥ ५ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

कंचन जी हिय भाजनमें तिन, मँकन नेह सुहाग मिलाये ।
कवैला किये सुख काम हुताशन, दीरघ सास धमा प्रजराधे ॥
केते अलीक दगे मलयारस, नैननके मगसै प्रगलाये ।
मित प्रवीण कहो किहि कारन, एह सुनारकला कित पाये ॥ ६ ॥

हृदयरूपी पात्र में कंचनरूपी प्राण तथा स्नेहरूपी सुहागे के कण मिलाकर सुख और कामरूपी अग्नि के कोयले बनाकर दीर्घ स्वांसरूपी धमनी से सुलगाये और नेत्रों के मार्ग से उमका मैल जला कर निकाल दिया । हे मित्र प्रवीण ! तुमने यह सुनार की कला किस प्रकार और कहाँ से प्राप्त की है ॥ ६ ॥

(१) दीपकैकावली योगान्माकदीपकमिष्यते । (कु०) दीपकों की माला के समान सापेक्ष शब्दों की माला को “मालादीपक” कहते हैं ।

(२) पृ० ५१३ में देखें ।

भाविकालंकार-सवैया.

ओधको अंत बनेगो कबे कब, घोस गिनंत गिनंत रहेंगे ।
 कोमिल से सुर साधकबे इत, बापस आय बनाई दहेंगे ॥
 आनंद के उमड़ेंगे कब धन, अमृत के नदनीर बहेंगे ।
 मित प्रीण चहंत यहै कब, चितकि बात इकंत कहेंगे ॥ ७ ॥

इस अवाधिका अन्त कब होगा और कब तक ये प्रतीक्षा के दिन गिनता रहूंगा ? कौआ कब यहां आकर कोयल के से मधुर स्वर में बघाई की सूचना देगा ? आनन्द के बादल कब उमड़ कर आयेंगे ? अमृत की नदियों का पानी कब छलकता हुआ बहेगा ? हे मित्र प्रवीण ! अब तो केवल यही एक-मात्र आकांक्षा है कि कब एकान्त में बैठकर प्रियतम से अपने हृदय की व्यथा व्यक्त करूंगा ? ॥ ७ ॥

भाविकालंकार-कवित्त.

एइ नैन चाहत हैं, आपके बिलोकबे को, कीजिये विचार कोउ, बिप्र बिप्र
 पाइह । वीतत करेरे पल, छिनहुँ न परे कल, रबो फैल ब्रह्म बन,
 निकट रहाइये ॥ एकही सनेह बीच, जे कही अनेक भांत, टेकही विशेक
 धार, मन मूरझाइये । यादकी तरंग सो तो, आइ जिय संग जैह, एरे ये
 प्रवीन फेर, एक बेर आइये ॥ ८ ॥

ये नेत्र आपके दर्शनों के लिये आतुर हैं, इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचिये कि जिससे जल्दी-जल्दी दर्शन प्राप्त हो सकें । एक-एक पल बड़ी कठिनता से व्यतीत हो रहा है और क्षण भर के लिये भी चैन नहीं पड़ता. बिरह ने पूर्ण रूप से अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है और हृदय में इच्छा होती है !! कि वन में एकाकी जाकर रहें । मानस-तट से टकराने वाली स्मृति की ये लोल, मदमाती लहरें तो इस जीवन के साथ ही विनष्ट होंगी; इसलिये हे प्यारे प्रवीण ! कृपा करके एक बार तो फिर आइये ॥ ८ ॥

अधिक रूपकालंकार-सवैया.

मन मध्य हकीम मिल्यो हमको, उन ओपधि सोधि मनोरथ पीसी ।
 सुख धीरज काठ समीप धरे, अति दीरघ सास समीर सुखीसी ॥
 बिरहा अगनी उमटे न फटे, छातियां सुभई यह आतस सीसी ।
 रस नैनके जंत्र भर्योई करे, तऊ सार प्रवीण सनेह भरीसी ॥ ६ ॥

हमें कामदेव वैद्य मिला, उसने मनोरथरूपी ओपधि शुद्ध करके पीसी और
 सुख तथा धैर्यरूपी लकड़ियां पास रखीं और दीर्घ स्वांसरूपी वायु से फूँकी,
 जिससे विरह की अग्नि भभक उठी, उससे छातियां फटी नहीं किन्तु आतशी
 शीशे की भांति हो गई । नेत्ररूपी यंत्र से रस भरा ही करता है, फिर भी वह
 शीशी स्नेहरूपी तत्व से भरी ही रहती है ॥ ६ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

औगुनबैत हमें हियरा अति, हो गुणवंत तुमैं सु सुधारो ।
 जो पतियां बतियां में कऊ दिन, चुँक परीतो सबै इ बिसारो ॥
 भीरसे धीर मिटीहै शरीरकि, जो तकसीर भई सु निवारो ।
 सिंधु शिखी शिव भौर निभावत, भित प्रवीन मया न उतारो ॥ १० ॥

मेरा हृदय तो अवगुणों से भरा हुआ है !! किन्तु आप तो गुणों के महा
 सागर हो इसलिये अवगुणों से भरे हुए मेरे इस हृदय को सुधारो । यदि वार्तालाप
 अथवा पत्रों में कभी किसी प्रकार की भूल हो गई हो तो उन सभी भूलों को क्षमा
 करके बिसार दो । विपत्ति से शरीर का सारा धैर्य तो जाता रहा है !! इसलिये मुझ
 से किसी प्रकार का अपगन्ध हो गया हो तो उसका निवारण कर दो । जैसे समुद्र
 बड़बानल अग्नि को, और महादेवजी हलाहल त्रिष को निभाते हैं ! ! ठीक ! !
 उसी प्रकार तुम मुझे निभाओ और हे मित्र प्रवीण ! यह क्षमा उसी प्रकार बनी
 रहने दो ॥ १० ॥

दोहा-बडवा सागर गरल शिव, जो अतिही दुख देता ।

बड़े न संग लियो तजे, तो उन छांडे हेत ॥ ११ ॥

बड़वानल अग्नि समुद्र का और हलाहल विष शिवजी को अत्यन्त कष्ट देते हैं किन्तु फिर भी वे उनको नहीं छोड़ते । महापुरुषों का यह सर्वदा से नियम है कि वे अपने संगियों को कभी नहीं तजने !!! ठीक ! उसी प्रकार आप भी मुझे न छोड़िये ॥ ११ ॥

उल्लेखालंकार प्रथम भेद-कवित्त.

पल पुट फेर फेर, तिरिछे सु हेर हेर, बरुनी बिखेर टेर, तलफे तदि-
नके । मिल लाल शाम सेत, आन आन प्रभा देत, पाये गत प्रेतस्वेत,
कदन मदनके ॥ भरि भरि आये वारि, ढरि ढरि वारि धार, करि करि चाह
नित, शोनित रदनके । बैद बोल ल्याओ आओ, दरद मिटाओ दाओ,
आओरे प्रवीन नैन, बाओरे बदनके ॥ १२ ॥

मेरे नेत्र ऊपर की पलकों को बार २ फिरा कर बांकी तथा टेढ़ी दृष्टि से देखकर अपनी बरूनियों (भौहों) को बिखेर कर, उस दिन के लिये तड़फ रहे हैं । उन में लाल काला तथा श्वेत रंग मिल कर एक विचित्र प्रकार की आभा प्रदान करते हैं । इन नेत्रों में हमेशा अभ्रुकण भरे रहते हैं तथा यह जल-धारा तुलक २ कर गिरती रहती है । आप की चाहना करके बार २ गोने से शरीर का सारा रक्त पानी बन गया है ! इसलिये हे प्रवीण ! तुम जब आओ तो अपने साथ एक दत्त वैद्य अवश्य बुलाकर लाना । वह इस शरीर में उत्थित विरहरूपी अग्नि के दर्द को विनष्ट करदेगा । हे प्रवीण ! आओ ! क्योंकि तुम्हारे मुख के दर्शनों के लिये ये नेत्र अतिशय आकुल-व्याकुल हो गये हैं ॥ १२ ॥

(१) बहुभिबहुल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते । एक ही उद्देश का बहुत प्रकारों से अनेक शब्दों से उल्लेख करना यह “उल्लेखालंकार” कहाता है ।

लोकोक्ति अलंकार-सवैया.

आज हुलों तो बड़ो अभिलाष हो, ज्योंलो प्रवाह बध्नों पतियाको ।
जो न मिलो तो प्रवीन संदेशन, कौन निआइ निआओ कहां को ॥
कौनपै जाय कहें मुनिहें कोउ, आप भयो करतार जो बांको ।
आयु प्रमाणसे जीजतहै अब, कीजत है गुजरान दिनाको ॥ १३ ॥

जब तक आपके प्रेम पत्र आते रहें !! तब तक तो हृदय में उमंग तथा उत्साह रहा । हे मित्र प्रवीण ! यदि आकर नहीं मिल सको तो क्या अपना संदेश भी नहीं भेज सकते ? यह कैसा न्यायाधीश है !! और किस प्रकार उसका न्याय है ? जब विधाता ही प्रतिकूल हो गया तो किसके पास जाकर अपनी कष्ट-गाथा कहें ?? और फिर मुनेगा भी कौन ? अब तो केवल इस आयुरूपी रस्सी के प्रमाण से ही जी रहा हूं और अपने इन दिनों को व्यतीत करता हूं ॥ १३ ॥

विभावना अलंकार-सवैया.

प्यारे प्रवीन तिहारी प्रभा शुभ, प्राण के संग बसी हिय माँई ।
याद लगी घनसारकि आतस, नीर समीर तुम्हे न बुझाई ॥
बेद न भेद प्रकार कितेइ सु, जानत है जिनहू गति पाई ।
वासर क्यों भरिये करिये कह, हेतकी होत अबै तो हसाई ॥ १४ ॥

हे प्यारे प्रवीण ! तुम्हारे शरीर की दिव्य छवि मेरे इन प्राणों के साथ हृदय में पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी है । स्मृतिरूपी कपूर की आग भभक उठी है वह जल तथा पवन द्वारा शान्त नहीं हो सकती । यह तुम्हें भली-भांति विदित है । इन विपत्ति के दिनों को किस प्रकार व्यतीत करूं यह समझ में नहीं आता । हे मित्र प्रवीण ! अब बहुत हो चुका ! इन बातों से प्रेम की हंसी होती है ॥ १४ ॥

(१) लोकप्रवादःपुनरुक्तिलोकोक्तिरिति कथ्यते । (कु०) भाव-लोककथनानुसार परिस्थिति बतलाने को 'लोकोक्ति' कहते हैं ।

(२) पृ० ५१६ में देखें ।

दोहा-नैन नीर सासा पदन, विविध होत विस्तार ।

उर अंतर उमड़ी रहे, यादि अगन घनसार ॥ १५ ॥

नेत्रों से अविरल अभ्रधारा तथा जल्दी २ शोकोच्छ्वासरूपी पवन के निकलने पर भी यह स्मृतिरूपी अग्नि शान्त नहीं होती । वह तो उत्तरोत्तर और भी प्रचंड वेग से प्रज्वलित होती जा रही है ॥ १५ ॥

असंभयाऽलंकार-सवैया.

जैसेइ चित्त प्रवीन बसे तुम, ऐसेइ नैनन बीच बसोगे ।

ज्यों पतियान बनाप पठावत, यों बतियान बनाय हसोगे ॥

जैसे एकंत उदास अराधत, तैसे एकंतहि अंत लसोगे ।

ता दिनको धनरे धनरे तुम, जा दिन आय प्रिया परसोगे ॥ १६ ॥

हे प्रवीण ! जिस प्रकार तुम हृदय में वास करती हो उसी प्रकार क्या कभी इन नेत्रों में आकर के रहोगी ? जिस प्रकार तुम पत्र लिखकर भेजती हो, उसी प्रकार क्या कभी निकट आकर अपने मधुर भाषण द्वारा मेरे हृदय को गद् गद् करोगी ? जिस प्रकार मैं एकान्त में बैठ कर तुम्हारी आराधना करता हूँ, उसी प्रकार क्या तुम कभी एकान्त में मेरे पास बैठकर शोभित होओगी । हे प्रिये ! जब तुम मेरे समीप आकर अपने स्पर्श-सुख का आनन्द प्रदान करोगी तब मैं धन्य-धन्य हो जाऊँगा ॥ १६ ॥

विकल्पालंकार-सवैया.

मेर नहीं त्यों कुमेर करो नहीं, ऐसे प्रकार कहावे अनोखे ।

एकहि बेर दिशा इनकी फिर, रीझ नहीं तो निहारिये रोषे ॥

(१) असंभवोपेक्षितेष्वपेक्षितसंभाव्यत्ववर्णनम् । (कु०) भाव-जहां असंभव अर्थ निश्चयि में असंभवित जैसा वर्णन हो उसको “ असंभवालंकार ” कहते हैं ।

(२) विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पालंकृतिर्मया । (कु०) भाव-तुल्य बल के विरोध में विकल्प बतलाने को ‘ विकल्पालंकार ’ कहते हैं ।

पाति नहीं तब पत्र हलाहल, क्यों पठयो न कहो केहि दोषे ।

नैनन पूरी रहेंगे प्रवीण ज्युं, धूर परोगि कपूर के धोखे ॥ १७ ॥

कृपादृष्टि न करने का क्या कारण है !! और तुम्हारी ऐसी विविध धारणा किसलिये बन गई है ? केवल एक बार इस ओर प्रेम की दृष्टि से नहीं देख सकते !! तो रोषयुक्त दृष्टि से तो निहारो । पत्र नहीं भेजते तो खैर, किन्तु हलाहल विष का पात्र भी किसलिये नहीं भेजते, ऐसा हमारा क्या दोष है !! बतलाओ ? हे प्रवीण ! यदि इन नेत्रों में कपूर के स्थान पर आप के चरणों की धूल पड़ जायेगी तो मैं उसे निकालूँगा नहीं ॥ १७ ॥

मिश्रितलाटानुप्रास अलंकार—कवित्त.

बासर निवासहू को, बासन सुहात वास, बास ते उदास होत, जैसे सास तजनी । होत न सहाय कोउ, भेद न कहाये कहूँ, हाय हाय कहत, बिहाय जाय रजनी । भुज भरी जब लोन, भजोगे भुजंग बेनी, तबलो भजंगी नहिं, भुजहु ते भजनी । आसकी जो आशकी सो, कीजे न निराश कबै, आसकी प्रवीण हो तो, इतनी समजनी ॥ १८ ॥

दिन में घर के भीतर रहने को जी नहीं चाहता, सुन्दर तथा सुवासित वस्त्रों से भी, स्वांस (प्राण) रहित मानवदेह के समान शोकाकुल रहता है, कोई भी सहायक नहीं है और इसका कुछ भी भेद नहीं लगता । “हाय, हाय” करते सारी रात्रि व्यतीत हो जाती है इसलिये हे भुजंगबेणी ! जब तक भुजा पकड़ कर नहीं उठाओगी !! तब तक हाथों की माला नहीं छूटेगी, प्रेमी ने जो आशा की है उसे कभी निराश नहीं करना चाहिये इसलिये हे प्रवीण ! यदि तुम सहृदय प्रेमी हो तो इस बात को समझ लेना ॥ १८ ॥

सवैया.

मित कहूँ करतार निबज है, आसक को इक सैर करेंगे ।

नेहके हाट बजारकी बाटमें, लाज-कपाट उघारि धरेंगे ॥

नैननके सोहोदा करिके उत, रीझ मिलाय भंडारे भरेंगे ।
एहो प्रवीण वियोग बिदा करि, होस हबेलिन में बिहरेंगे ॥ १६ ॥

हे मित्र ! जब कभी भी हम पर जगदाधार परमेश्वर की कृपा होगी तब मैं प्रेमियों का एक सुन्दर नगर बसाऊँगा । उस नगर के सुन्दर हाटों (बाजारों) में स्नेह की दूकानें स्थापित करूँगा । जिनके लज्जारूपी द्वार सर्वदा खुले रहेंगे । वहां अहर्निश नेत्रों द्वारा स्नेह का आदान-प्रदान होगा, हे मित्र प्रवीण ! फिर वियोग को बिदा करके इच्छारूपी हवेली में बिहार करेंगे ॥ १६ ॥

समरूपक अलंकार—दोहा.

उर निवान सुमती सलिल, सुरत माल गुनग्राह ।
चढ़त जात कागद घरी, बढ़त प्रेम परवाह ॥ २० ॥

उर याने हृदयरूपी नवान, सुमतिरूपी पानी, सुरतरूपी माल तथा गुणरूपी डोरियों से बंधे हुए पत्ररूपी तानने के नाड़े (घरियां) जैसे २ चढ़ते जाते हैं वैसे २ आपस के समागम से प्रेम का प्रसाद भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है ॥ २० ॥

यमक अलंकार—दोहा.

सुरत सुरत जागी रहत, लागी रहत मनेह ।
विरह ज्वाल लागी रहत, दागो रहत सुदेह ॥ २१ ॥

मेरे नेत्र तुम्हारे मुख की ओर सस्नेह लगे रहते हैं, विरह ज्वाला भी जागृत रहती है तथा शरीर भी जलता ही रहता है ॥ २१ ॥

सोरठा.

इहि विधि लिखे अनेक, पत्रसु एकहि एक प्रति ।
बानी विरह विवेक, सागर कला प्रवीण ज्युं ॥ २२ ॥

इस प्रकार सागर तथा कलाप्रवीण ने एक दूसरे के पास विरहसंबंधी ज्ञान से ओत-प्रोत अनेक पत्र भेजे ॥ २२ ॥

प्रेमभेद दुहु पाय, मनके मनही में मगन ।

लागी सुरत सदाय, छिन दंपति बिसरे नहीं ॥ २३ ॥

प्रेम के भेद से पूर्णतया परिचित होने के कारण, वे दोनों मन-ही-मन, अत्यन्त आह्लादित रहते हैं और प्रतिपल एक दूसरे के सम्बन्ध में सोचते रहने के कारण क्षणभर के लिये भी एक दूसरे को नहीं भूलते ॥ २३ ॥

दंपति जंपत एह, कब किरता मिलवो करे ।

लागी सुरत सनेह, ब्रह्म दिन प्रति दूनो बड़े ॥ २४ ॥

वे दंपति—स्त्री पुरुष सदा यही जपा करते हैं कि हे जगदाधार परमेश्वर! तु हमारा कब मिलाप करायेगा । स्मृतिरूपी स्नेह (तेल तथा प्रेम दोनों अर्थ) के लगते रहने के कारण विरहरूपी अग्नि दिन प्रतिदिन प्रचण्ड वेग में बढ़ती जाती है ॥ २४ ॥

गाहा.

सागर प्रत्य प्रवीनं, पठवन पत्र विरह बिस्तारं ।

उनपंचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

रससागर के वियोग रस में ओतप्रोत यह विस्तृत पत्र कलाप्रवीण के पास भिजवाया । उस सम्बन्धी प्रवीणसागर महाग्रन्थ की उंचासवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥



५० वीं लहर

कलाप्रवीणकुसुमावली विरहचर्चा
सोरठा.

कुसुम प्रवीण एकंत, विरह-दशा चरचा चली ।

वरने वहै व्रतंत, भेदसु भिन्नहि भिन्न करि ॥ १ ॥

कुसुमावली तथा कलाप्रवीण का एकान्त में विरहसम्बन्धी जो वार्तालाप हुआ, उसका भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

उर अंतरकी बात, कहे बिना कांउ न लहे ।

काहू कही न जात, सो वरनों संछेप करि ॥ २ ॥

हृदय की चिर निगूढ़तम व्यथा को व्यक्त किये बिना कोई नहीं जान सकता तथा प्रत्येक से वह कही भी नहीं जा सकती !! इसलिये संक्षेप में ही उस का वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

जीसु न लीनो इश पद, देह न दीनों छेह ।

मैं नहिं पायो मैंन रस, कुटिल करम गति एह ॥ ३ ॥

न तो इस जीव ने परम पद प्राप्ति के लिये ईश्वर आराधना में अपने शरीर को ही सुखाया !! और न कामदेव के रस को ही चखा !! अर्थात् दंपति के आमोद प्रमोद के सुख को भी नहीं भोगा !! यह सब भाग्य की कुटिल गति है ॥ ३ ॥

रूपक अलंकार-दोहा.

चंदन वन तन मितको, प्रेमल प्रेम प्रकाश ।

मन पन्नग लपट्यो रहे, एहि आस विश्वास ॥ ४ ॥

प्रेमी का शरीर चन्दनरूपी वन है और उस में प्रेम प्रकाशरूपी सुवास महकती है, मनरूपी पन्नग-सर्प परिमल तथा सौरभ से वशीभूत होकर उस में लिपटा रहता है ॥ ४ ॥

सवैया.

प्रेमको मंत्र प्रवेश कियो यह, सिद्ध मनोज दर्ई गुरुदिच्छा ।
धूनि सदा ब्रह्मकी तपको अरु, मांगवि मित सनेह कि भिच्छा ॥
सागर ध्यान हिये धरबो कछु, और न राखत हैं हम इच्छा ।
बावरि एरि कहा बरजे अब, ओनन लागहिगी तुव सिच्छा ॥ ५ ॥

प्रेममंत्र का प्रवेश कराके मनोज-रतिराज रूपी योगी ने गुरुदीक्षा दी है !! जिससे सदा विग्रह की धूनी तापने !! मित्रके स्नेह-प्रेम रूपी भिक्षा मांगने !! और हृदय में एक सागर के ध्यान धरने के अतिरिक्त !! और कोई इच्छा नहीं रखती । इसलिए हे बावरी समी ! अब क्यों बरजती है ?? अब तेरी शिक्षा मेरे कानों नहीं लगेगी ॥ ५ ॥

एकावली अलंकार-सवैया (पूर्ण)

वनमें रितुराज प्रभा विकसी, विकसी रतिराज प्रभा तनमें ।
तनमें विग्रह प्रगटी दरसे, दरसे रस आवलि आंखनमें ॥
खनमें मन मित विना तरसे, तरसे सुख बास आवासनमें ।
सनमें सखि सागर मित मिलेके, मिलो वनवर्तनि वै वनमें ॥ ६ ॥

वन में ऋतुराज वसन्त की प्रभा-छटा विकसित हुई और शरीर में रति-राज-कामदेव की प्रभा प्रफुल्लित हुई । तन में वियोग की आभा प्रकट दीखती है और आंखों में रस की आवलि-पंक्ति प्रकट है अर्थात् आंखों से अखंड अश्रु-धारा प्रवाहित है । क्षण २ में प्रेमी के बिना चित्त विकल होता है तथा गृह में सुखपूर्वक निवास के लिए तरसता है । * हे सखि ! समीप में सागर मित्र

* गुजराती टीकाकार ने 'तरसे सुखबास आवासन में' का अर्थ 'अवास पटले घरमां रहतां अयभीत-त्रास पाये छे' किया है, परन्तु हमें यह अर्थ संगत नहीं प्रतीत होता, अतएव उपरोक्त अर्थ किया है अर्थात् 'आवास (गृह) में सुखवास (सुखपूर्वक निवास) को तरसे (जी तरसता है) ।

मिले नहीं तो बनवासिनी होकर वन में मिलूंगी ॥ ६ ॥

समस्त छेकानुप्रास अलंकार—सवैया. (मात्राभिन्न)

नींद मटी ! विरहानकटी ! सुहृटीरत सुर्त जटी सुरटी ।

आग दटी ! उपती उर तोय नटी न अनन चटी भपटी ॥

ओध घटी ! छतिया न फटी, जनु अंतर प्रेम पटी लपटी ।

ए चितकी न मटी न छटी, प्रिय सागर ! पै निपटी कपटी ॥ ७ ॥

निद्रा जाती रही परन्तु विरह—पीड़ा नहीं गई, रति समय बीत गया परन्तु प्रेमी का ध्यान मेरे जीव के साथ जुड़ गया; हृदय में अग्नि की ज्वाला भभके उठी और आंखों से अविरल जलधारा छाती पर पड़ती है परन्तु उसका नाश नहीं होता, उल्टा रति पति की चुटकी जल्दी से करने लगी । अबधि कम हो गई परन्तु छाती नहीं फटी, मानो हृदय के ऊपर प्रेम की पट्टी लपेट दी हो । इस प्रकार इस चित्त की गति न मिटी, नहीं छुटी, परन्तु हे प्रिये ! सागर अति कपटी है !!! ॥ ७ ॥

उत्प्रेक्षा अलंकार—सोरठा.

भई पत्र पहिचान, मन चाहत मिलन न बने ।

मनो एह अनुमान, वासुदेवकी शंखधुनि ॥ ८ ॥

पत्र द्वारा पहिचान हुई, मन चाहता है परन्तु मिलना नहीं होता, ऐसा अनुमान है—कि वासुदेव व शंखध्वनि की अवस्था हो रही है । अर्थात् शंखध्वनि जहां होनी है वहां वासुदेव के दर्शन की इच्छा से जाते हैं, परन्तु दर्शन नहीं होता, (अर्थार्थ में) अर्थात् वासुदेव नामक ब्राह्मण ढपोरशंख से एक मांगता है और वह दो देने को कहता है परन्तु देता कुछ नहीं । (प्रसिद्ध ढपोरशंख की कहानी जो हितोपदेश में है उस ओर इशारा है) ॥ ८ ॥

दोहा.

निगम कहत है नेह, लोकालोक विलोकियत ।

अगम अलख गति एह, निकट रहे मिलवो नहीं ॥ ९ ॥

निगम—वेद कहता है कि प्रेम की इतनी महत्ता है यथा-इस सृष्टि के अन्दर तथा बाहर की वस्तुओं को यह प्रेम देख सकता है !! (प्रेम परमात्मरूप है) !! परन्तु परमात्मा की गति अगम्य तथा अलक्ष्य है इसलिए वह सर्वव्यापक होते हुए भी सहज प्राप्य नहीं, यही अवस्था हमारी है तुम गुप्त रीति से हमारे हृदय में प्रेम के रूप में हो परन्तु प्रत्यक्ष आकर मिलते नहीं ॥ ९ ॥

गहरी घन गाजत पवन, दादुर बादर देख ।

मोरन सोरन से हिये, विपति विशेष विशेष ॥ १० ॥

घनघोर मेघ की गर्जना, पवन के झोंके, दादुर की ध्वनि तथा बादलों को देख कर और मोर के मोरों में हृदय में अधिकाधिक आपत्ति बढ़ती जाती है ॥ १० ॥

फूलन खलन से भये, वाग भयानक भेख ।

गावन नावन से हिये, विपति विशेष विशेष ॥ ११ ॥

भावार्थ—फूल मूल जैसे लगने हैं, वाग भयकारक लगता है, संगीत और सुगन्ध युक्त स्नान से तो अधिकाधिक विपत्ति बढ़ती है ॥ ११ ॥

सरसे लगे संगीत सुर, रहे नैन उनमेख ।

सागर विना सु बीन सुनि, विपति विशेष विशेष ॥ १२ ॥

संगीत के स्वर बाण के समान हैं, आंखें स्थिर हो रही हैं, पलक नहीं मारती हैं, सागर के विना मधुर बीणा की ध्वनि ! हृदय में अधिक वेदना उत्पन्न करने का कारण बनती है ॥ १२ ॥

मनमें सागर भित ज्युं, रोपी विरहा रेख ।

अटकते त्यों खटके हिये, विपति विशेष विशेष ॥ १३ ॥

मित्र सागर ने मन में जो विरह रूपी जल डाल रक्खा है वह ज्यों ज्यों अटकता है त्यों त्यों हृदय में हूक उठती है और अधिकाधिक कलक उठती है ॥ १३ ॥

बात आत फहरात पट, निपट गात न लुआत ।

मनहु ज्वाल विरहा जरत, डरत न छिन ठहरात ॥ १४ ॥

पवन के वेग मे धारण किया हुआ वस्त्र हिलता है और शरीर पर टिकता नहीं सो यह मानो—विरहाग्नि की ज्वाला मे जलने के डर मे क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता, चपल गति मे हिलता रहता है ॥१४॥

कुसुमोक्त समरूपक अलंकार—कवित्त

भाल चंद ओहे चाप, मीन नैन नासा मनि, वसत भुजंग सोतो, अलक पेचानी है । कज्जर हलाहल, सुधासी हांसी सोहियत, मोती रद रदच्छद, विटुमसो जानी है । ग्रीवा शंख डीठ मद, गतिं गज कंज पान, औरही प्रवीन तेरो, रूप रंग पानी है । शुभगुन लैर लागी, जागी रहे शशि निम, आलीरी जुवानी तेरी, दधिसी दिवानी है ॥ १५ ॥

कुसुमावलि कहती है कि हे प्रवीण ! तेरी जवानी समुद्र की भांति दीवानी है, क्योंकि समुद्र में जो वस्तुएं दीखती हैं, वे सब तेरे अन्दर विद्यमान हैं । समुद्र के अन्दर जिस प्रकार चन्द्रमा है, उसी प्रकार चन्द्र विम्बित तेरा भाल है । समुन्द्र में जैसे सारंग धनुष है, वैसी ही भृकुटी की बांकी छटा है । समुद्र में मत्स्य है, वैसे ही तेरे चपल नेत्र हैं । समुद्र में काँस्तुभमणि है, उसी प्रकार आभायुक्त शोभित नाक है । समुद्र में भुजंग है, वैसी ही तेरी बेणी है । समुद्र में असित हलाहल है, तो तेरी आंखों में उस के समान काजल है । समुद्र में अमृत है, वैसे ही तेरी हंसी सुशोभित है । समुद्र में मोती है, उसी प्रकार तेरे चन्द्रविम्ब समान मुख में दंतावलि है । समुद्र में प्रवाल है, तो तेरे रक्तहोठ प्रवाल के समान हैं । समुद्र में शंख है, उसी प्रकार तेरी ग्रीवा है । समुद्र में मद है, उसी के समान तेरी कटाक्षयुक्त दृष्टि है । समुद्र में ऐरावत (हाथी) है, वैसे ही तेरी गजगामिनी अर्थात् हाथी के समान तेरी गति है । समुद्र में कमल है, वैसे ही सुकोमल और सुकुमार तेरे हाथ हैं । समुद्र में पानी है, वैसे ही तेरे अन्दर रूप रंग है । समुद्र में जैसे लहरें उठती हैं, वैसे ही तेरे अन्दर सदगुणरूपी तरंगें शोभित हैं । चन्द्रमा को देख कर समुद्र रात में जागृत होता है, वैसे ही तू भी रात्रि में जागृत रहती है । इस प्रकार अथ से इति पर्यन्त तेरे में समुद्र के सारे गुण दीखते हैं, इसलिए हे सखि ! तेरी जवानी समुद्र की भांति दीवानी है ॥ १५ ॥

उत्प्रेक्षालंकार-सवैया.

मद दुरद चढ़यो ढिग चंचल, ता अस मोद निसान बजाया ।
 प्रेम पयदल पूर पखे जब, पंच विषय उमराव कहाया ॥
 जानत आन बखत्त समानहि, चित्त गुरान तखत्त सु पाया ।
 ताहि फिरी है दुहाइ चहुं दिश, वाकि कटाच्छ हमाउ कि छाया ॥१६॥

हे प्रवीण ! तुम्हारी कोमल चपलतारूपी हाथी पर यह नाम का थोड़ा चढ़ा है, उसने आनन्दरूपी घोड़ा पर जब निशान बजाया और उमड़ती हुई प्रेमरूपी पैदल सेना चली, जब (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) पांचों विषय उसकी सेना के उमराव कहलाये और वे सब प्रकार समय को जान और वर्त कर वह गुमानरूपी सर्दार चित्तरूपी तख्त को पाया और चारों ओर उसकी दुहाई फिर गई । उसकी कटाक्ष हुंमायू पत्नी की छाया के समान है !!! अर्थात् जिस प्रकार हुंमायू पत्नी की छाया पड़ने से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है !! उसी प्रकार तुम्हारे चित्त में जो प्रेम का मद चढ़ा है उसकी कटाक्षरूपी नजरसे तुम भी अपने मनोरथ को सिद्ध कर सकोगी ॥ १६ ॥

अन्योक्ति अलंकार-सवैया.

औसर नाहीं मिले परवीण तबै लागि चाह भरी सु भरी ।
 जानि नहीं बरखी सु तबै अब, स्वांत घटा बिखरी सु खरी ॥
 वारहु मास पुकार करे वह, चातक चूक परी सु परी ।
 वारहि बार विचार करे कर, तार विचार करी सु करी ॥१७॥

हे वर्षा के बूंद का प्यासा प्रवीणरूपी चातक ! जब तक मेघ को वर्षने का समय नहीं मिले !! तब तक चित्त में जो चाह भरी है सो भरी ही रहेगी । स्वाति नक्षत्र में मेघ की घोर घटाएं जब बरसी थीं तो उस समय ध्यान नहीं

(१) संभावनास्यादुत्प्रेक्षावस्तुहेतुफलात्मना । (कु०) भावार्थ—जहां अवस्तु को वस्तुत्व, अहेतु को हेतुत्व और अफलको फल समझना यह उत्प्रेक्षा है ।

दिया और अब तो स्वाति की घटाएं बिखर गई हैं सो बिखर ही गई हैं. इस-
लिए अब बारह मास तू पुकार करता ही रह, परन्तु हे पपीहा ! प्रथम तो
मुझ से जो भूल हुई उसका वार वार क्या विचार करता है ! अब तो जो करतारने
किया सो किया । अर्थात् हे प्रवीण ! जिम समय सागर के साथ मिलाप हुआ
था उस समय भली प्रकार समझी नहीं !! अब क्या पुकार करती है ? ॥ १७ ॥

दृष्टांतालंकार—सवैया.

बात विचार सबे हरिहै न रहे, छूपि ताये कहा परि है चक ।

प्रेम प्रकाश विकास भयो मनु, होज्यु उजास फनूसको दीपक ॥

गैरव पासत घासत भूपन. डेरन होय रह्यो सब हाटक ।

चित्त प्रवीण तबी करबी कह, एकहि टेक ग्रहो उर आसक ॥ १८ ॥

कलाप्रवीण से कुसुमावलि कहती है कि तुम्हारे प्रेम की बात को पूर्ण-
तया विचार करती हूं तो ज्ञान होता है कि अब वह गुप्त नहीं रह सकती !! फिर
उम पर परदा डालने से क्या लाभ ? तुम्हारे प्रेम के प्रकाश का विकास इम
प्रकार हो गया है जैसे लालटेन के अन्दर रक्खा हुआ दीपक, अर्थात् लालटेन
में लगे हुए काच के परदे के भीतर से दीपक का प्रकाश प्रकाशित होता है उसी
प्रकार तुम्हारे प्रेम का प्रकाश बाहर हो रहा है । गेरू लगाने से मोने के आभू-
षण की कान्ति छिपती नहीं और भी अधिक दीप्तिमान हो जाती हैं । इस लिये
हे प्रवीण ! चिन्ता क्यों करती हो ? अब तो हृदय में एक प्रेमी की सी टेक धारण
कर रखो ॥ १८ ॥

सोरठा—इहि विध कलाप्रवीण, कुसुमावलि चरचा चली ।

सागर मित सु कीन, वह वर्णन कीजत अबे ॥ १९ ॥

इस प्रकार कलाप्रवीण और कुसुमावलि में जो चर्चा चली और सागर ने
मित्रों से जो चर्चा की उसका वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—कुंडळिया तोटक.

निश दिन जिय जंपत रहे, मित मित अरु मित ।

हमको एती बहुत है, चाह न चूकत चित ॥

चित चाह न चूकत यागति है, हमको इतनीसु भई अति है ।

नित मित ही मिन्त पुकार करे, निश घांस प्रवीण नहीं विसरे ॥ २० ॥

रात दिन यह जीव “मित्र मित्र और मित्र” जपना रहना है । हमें तो इतना ही बहुत है कि चित्त में चाह नहीं जाती । यही हमारी गति है, और हमारे लिए इतना ही बहुत है कि नित्य मित्र ही मित्र पुकारते रहें, रात दिन प्रवीण का न भूलें ॥ २० ॥

एकावलि अलंकार—सवैया.

केहेरे दिन बीतहिगे स्र कहांलो, कहांलो वियोग बिथा गेहेरे ।

गेहेरे परवीण सबे सुधले, तबसे हम याद सबी लेहेरे ॥

लेहेरे हमसी उनको कि नहीं, बिरहानल दहे हमसे देहेरे ।

देहेरे उनके करकी पतियां, बतियां उन आननकी केहेरे ॥ २१ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार अति विकट दिवस कब तक बीतेंगे ? और वियोग दुःख कब तक सहना पड़ेगा ? महाविचक्षण और अति चातुर्ययुक्त प्रवीण ने सब सुध बुध हर ली है जिमसे हमने उस मूर्ति को ध्यान में धारण कर रक्खा है । हमारी भांति प्रेम की तरंग उम में भी हैं कि नहीं ? यदि हैं तो जिस प्रकार बिरहानल मुझे जलानी है वैसे ही उसे भी सताती है कि नहीं ? अरे ! उस के हाथ का लिखा हुआ पत्र और उसके मुख से निकली हुई बातें ही मुझे दुःख दे रही हैं ॥ २१ ॥

एकावली अलंकार—सवैया.

रहिये सब सोधि हियो कि हिये, कहिवेकी नहीं सो कहा कहिये ।
 कहिये कह कानि भई है वियोग, कि भागके भोग सबे सहिये ॥
 सहिये शिर नीकि बुरी सबही ज्युं, प्रवीण के पान कहूँ पहिये ।
 पहिये नहि प्रेम भरी पनियां, छतियां धरि धीर कहा रहिये ॥ २२ ॥

हृदय की बात हृदय से ही बूढ़ कर रह जावें, क्योंकि जो बात कहने की नहीं हैं उसे कैसे कहें ? इस वियोग की कहानी को कहाँ कहें ? जो भोग है ! विधाताने निश्चित कर दिया है ! उसे सहें । प्रिय प्रवीण के हाथों से जो कुछ भी भली बुरी मिर आ पड़े !! उसे सहन करें, परन्तु उसके हाथों की प्रेम भरी पत्रिका न मिले तो हृदय में किस प्रकार धैर्य धारण करें ॥ २२ ॥

स्मृतिमान—अलंकार—कवित्त.

इंद्रको अराधिये तो, आसन गजेन्द्र तहां, चन्द्रको अराधे ताँहि वास है
 कुरंगको । गनपत ध्यान धरे, भाल ही में आध चंद, शंकर के ध्यानही में,
 भूपन भुजंगको । रामको उपामिये तो, पानमें सरासन है; कालिकाको
 सिंह संग, सारदा बिहंगको । शक्र—शशि—हेरंबेश, हर—राम—हरा बानी,
 सबही सधे जो वास, व्है प्रवीण संगको ॥ २३ ॥

यदि इन्द्र का आराधन करें !! तो वहां गजेन्द्र का आसन है, यदि चन्द्र को आराधें !! तो वहां मूरा का बाल है, यदि गणपति का ध्यान धरें !! तो उनके कपाल में अर्द्धचन्द्र का वाम है, जो शंकर की आराधना करें !! तो वहां सर्प का भूषण है, राम की आराधना करें !! तो उन के कर में धनुष है, देवी कालिका की आराधना करें !! तो उनके साथ में सिंह है, जो भगवती सरस्वती का स्मरण करें तो !! उन के पास हंस है, परन्तु यदि प्रवीण के साथ निवास होवे तो !! इन्द्र, चन्द्र हेरंब, शिवजी, रामचन्द्र, कालिका और वाणी की स्वामिनी सरस्वती ये

(१) स्यात्स्मृतिभ्रांतिसंदेहैस्तदलंकारकृतियम्० (कु०) भावार्थ—जहां स्मरण, आंति और संदेह यह तीन बातें दीख पवें वह “स्मृतिमान” अलंकार है ।

सब साध्य हो जायँ, अर्थात् ये सब एक प्रवीण के अंग में उपस्थित है ॥ २३ ॥

रूपकालंकार-सवैया.

आय अनंग चढ्यो इंद्र जीत सो, शूरसमीर रथी रन जूटी ।
बान प्रसून ब्रषा भर लाइसु, केति अनीक कलेवर फूटी ॥
लच्छन ही मुरभाय रहे अरु, राम अराम वरूथिनि लूटी ।
मित कोउ हनुमंत ज्यों लाउरें, पाय प्रवीण सजीवन बूटी ॥ २४ ॥

आज इन्द्रजीत के समान अनंग—कामदेव ने चढ़ाई की है, उसके साथ में समीर रूपी शूरवीर महारथी रण में जुटे हुए हैं, उम रतिराज ने पुष्प के बाणों की वर्षा झड़ी लाकर कितने ही फौज के कलेवर फोड़ दिए, जिसे देख कर यह हृदयरूपी लक्ष्मण मूर्च्छित होकर मृतप्राण पड़ा है तथा मेरे विश्राम रूपी रामसेना को लूट लिया है । कोई हनुमान के समान मित्र मिले तो जाकर प्रवीणरूपी सजीवन बूटी लाकर देवे । अर्थात् मिलावे तभी आराम हो सके ॥ २४ ॥

संदेहालंकार-सवैया.

प्रेम सराबके पान तजे कि भजे, विरहानल के उठि थाने ।
कीधों गुमान भरे गुनके उन, आसकके चल पंथ अघाने ॥
कीधों भये निरदे मितवा जितवा, बहरावे दिवानहिं जाने ।
पंथिक बात बताय कहो यह, क्यों न प्रवीण लिखे परवाने ॥ २५ ॥

क्या प्रवीण ने प्रेम का प्याला पीना छोड़ दिया था ! कि उसमें विरहानल की लपट उठ कर बुझ गई ? या वह गुण के गर्व में गर्वित हो गई ? या प्रेम-पंथ में चल कर तृप्त हो गई ? अर्थात् घबरा कर थक गई ? या वह निर्दयी हो गई ? या मुझे दीवाना जान कर बहलाती है ? हे पंथिक ! बात बना कर कहो कि वह प्रवीण पत्रिका क्यों नहीं लिखती ? ॥ २५ ॥

पुनः सबैया.

या मितवा मितवा हम टेरत, हेरत रातन तेज तवाने ।
 पीर सबै मनकी मन बूझत, रूझत ना उर बीच घवाने ॥
 चित्तको भेद कहूं नहिं खोलत, डोलत है दिन रैन दिवाने ।
 पंथिक बात बनाय कहो अहो, क्यों न प्रवीण लिखे परवाने ॥२६॥

हम तो ' हे मित्र, हे मित्र ' पुकारते रहते हैं और उस के मार्ग को देखते रहते हैं, इस शरीर का तेज जाता रहा है । हमारे मन का दुःख हमारा मन ही जानता है, हृदय के बीच तो विरहरूपी घाव लगी है वह बुझती नहीं । इस चित्त के भेद का कहीं खोलते नहीं और रात दिन दिवाने की भांति भटकते रहते हैं । हे पंथिक ! बात बनाकर कहो कि प्रवीण पत्रिका क्यों नहीं लिखती ? ॥ २६ ॥

सोरठा-परे प्राण बेहाल, बिछुरे मित प्रवीण ज्यू ।
 विरहानलकी ज्वाल, जरवे से मरबो भलो ॥ २७ ॥

मित्र प्रवीण के वियोग से प्राण बेहाल हो रहे हैं । इस विरहानल की ज्वाला में जलते रहने की अपेक्षा !! मरना अच्छा है ॥ २७ ॥

उन मुखकी अनुहार, देखे बिन नैना दुखी ।
 निश दिन शोच विचार, करबे से मरबो भलो ॥ २८ ॥

उनके मुख की छवि देखे बिना आंखें दुखी हैं । रात दिन शोक-संतप्त रहने से !! तो मरना अच्छा है ॥ २८ ॥

उन मुख देखन आस, प्यास अजों बुझी नहीं ।
 पल पल प्रान उसास, भरबे से मरबो भलो ॥ २९ ॥

उसके मुख के देखने की आशा की प्यास अभी बुझी नहीं । पल पल में उच्छ्वास भरने में तो !! मरना अच्छा है ॥ २९ ॥

परै न विरहा पार, मिले न भित प्रवीण जूँ ।
नैननमे जलधार, भरवे से मरबो भलो ॥ ३० ॥

विरह का पारावार नहीं, प्रिय मित्र प्रवीण का मिलना होता नहीं, आंखों से हर समय जलधार डालने से तो !! मरना अच्छा है ॥ ३० ॥

कछु न मुहावे मोय, भावे सो पावे नहीं ।
प्राण दिवाने होय, फिरवे से मरबो भलो ॥ ३१ ॥

मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता, जो जी चाहता है वह मिलता नहीं । प्राण दिवाने हो रहे हैं, ऐसे फिरने से तो !! मरना अच्छा है ॥ ३१ ॥

कहियो प्रेम प्रकाश, पंथी जाय प्रवीण से ।
यह मुख चंदा आश, नैन चकोरा हैं रहे ॥ ३२ ॥

हे प्रवासी ! इस प्रेम के प्रकाश को प्रवीण से जाकर कहना कि आप के मुखचन्द्र की आशा में ये नैन चकोर हो रहे हैं ॥ ३२ ॥

दोहा—मन कप द्रग ज्वाला सुलग, बुभयो प्रपा गुल देह ।
पद ककरी त्वर लोह करि, भगे तो जगे सनेह ॥ ३३ ॥

मनरूपी सूत्र की रस्मी प्रिय मित्र की आंखों की ज्वाला से सुलग उठी । वह लज्जारूपी नली के अन्दर सुलग रही है, अब कुल की बड़प्पनरूपी चकमक की कंकरी उतावल रूपी लोह में लगे तो स्नेह प्रकट हो । अर्थात् स्त्री पुरुष की एक दूसरे से प्रारंभ में जब नजर मिलती है तो रसन्न स्त्री पुरुष के हृदय में प्रेम की ज्योति जागती है, परन्तु अपने कुल की मर्यादा से बोल नहीं सकती । उसी मर्यादा रूपी चकमक की कंकरी से त्वरा के साथ टकरा दें तो स्नेहरूपी अग्नि प्रकट होता है ॥ ३३ ॥

सबैया—करियो करजोर के बीनति ज्यू, जिनसे मिलबो निशवासर को ।
इतनी कह चूक परी हमसे, नहि आवत आगन या डर को ॥

पलकें पल कान मिली जबसे, तबसे न बिसारी को कागर को ।
यह मित प्रवीण से काहिनो इतो, नित खोजबो प्रेमके सागर को ॥ ३४ ॥

हम रात दिन जिसमे मिलने की चाहना करते हैं उनसे हाथ जोड़ बिनती करना कि हमारी इतनी क्या भूल हुई कि आप हमारे आंगन में भी नहीं आते । इतना क्या डर है ? जब से आंख से आंख मिली तब से पत्र लिखना तो भुला ही दिया । प्रिय मित्र प्रवीण से इतना और कहना कि प्रेम के सागर को सदा खोजा करना ॥ ३४ ॥

सोरठा-पाई नहीं ज्यु पाति, बाती विरहा की भुरी ।
लोग कानिको लाति, जाती घटी घरी धरो ॥ ३५ ॥

पत्रिका तो आई नहीं और वियोग की बात अति बुरी है । लोकलाज की बात दिनों दिन घटती जाती है ॥ ३५ ॥

इहि विधि विरह सनेह, बढ़त जात चरचा चले ।
उरमहि साधन एह, सागर लिख्यो प्रवीण ज्यु ॥ ३६ ॥

इस प्रकार प्रीतिसम्बन्धी चर्चा चलने से विरह और स्नेह बढ़ता ही जाता है । इसी साधन को चित्त में दृढ़ करने के लिए महाराज रमसागर ने प्रवीण को पत्र लिखा ॥ ३६ ॥

कुसुमसु कलाप्रवीण, सागर मित विरह चरचा विधि ।
पंचाशत अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३७ ॥

कलाप्रवीण ने कुसुमावलि से और सागर ने मित्रों से जो विरह की चर्चा चलाई, उस वर्णन की इस प्रवीणसागर की पचासवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

५१ वीं लहर

कलाप्रवीणकुसुमसंवादे विरहांतरनायकभेद-दोहा.

ज्यों ज्यों नित चरचा चलत, त्यों त्यों प्रेम बढ़ाय ।

प्रेम बढ़त पाती लिखत, प्रति-उत्तर सुख पाय ॥ १ ॥

ज्यों २ निरन्तर चर्चा चलती है त्यों २ प्रेम बढ़ता ही जाता है और ज्यों २ प्रेम बढ़ता है त्यों २ एक दूसरे को पत्र लिखते हैं तथा लिखे हुए पत्र को और आए हुए पत्र को पढ़ कर आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

विरह बढ़े पुनि कुसुम प्रति, देत प्रवीण सुनाय ।

विरहांतर विधिनायका, सुच्छम भेद बनाय ॥ २ ॥

विरह पढ़ने से कलाप्रवीण कुसुमावली को विरह-दशा के अन्दर नायिका-भेद की रीति सुनाती है ॥ २ ॥

स्वाधीनपातिकभेद-दृष्टांतालंकार-सवैया.

बादिके नाग सिकारी के बाज ज्यों, प्यारिके पाननमें विहरे हैं ।

सिद्ध सुवा ज्यों पढ़ें ज्यों पढ़ावत, चंद्रमुखी मुख फंद परे हैं ॥

और कहा उपमा कहिये अध, आयससे इक पाय खरे हैं ।

पाय हमें अबकी पतियां महि, सागर काहु अधीन करे हैं ॥ ३ ॥

संपरे के हाथ में जिस प्रकार नाग खेलता है और शिकारी के हाथ पर जिस तरह बाज रमता है, उसी प्रकार प्यारी के हाथ में रह कर सागर विहार करता है । सिद्ध का सुवा जिस प्रकार सिद्ध जो पढ़ावे वही पढ़ता है उसी प्रकार सागर भी चन्द्रमुखी के बाणी के फंद में पड़ा है !! अर्थात् जैसा वह कहती है वैसा ही करता है । और क्या उपमा कहें !! यदि वह आधा कहे तो एक पग से खड़ा रहे । हमें तो इस पत्र से यह प्रतीत होता है कि, किसी ने सागर को बश में कर रक्खा है ॥ ३ ॥

अभिसंधिता भेद संदेहालंकार-सवैया.

वीन नवीन प्रदंग बजे तित, मित समाजहु में सुख पाये ।
कीधों करी बिजया बिसरी हम, आसव कीधों असाध पिवाये ॥
कीधों मिली कोउ मोहनी कामिनि, अंक लता गलता उरभाये ।
कौन बिचार करेबो अबै अहो, सागर मित अजों नहिं आये ॥ ४ ॥

हे प्रिय सखी ! जहां नवीन स्वर वाले वीणा और मृदंग आदि वाद्य बजते हैं ! ऐसी मित्रमंडली में रम गए हैं ! अथवा बिजया पान कर लिया है ! जिससे भूल गए हैं. अथवा असाध्य आसव (न उतरने वाली नशा की शराब) पी ली है ! अथवा कोई मनमोहनी कामिनी मिल गई है ? जिसके आलिंगन में लता की भांति लिपट गये हैं । अब क्या बिचार करें ? अहो ! अभी तक मित्र सागर नहीं आए ॥ ४ ॥

कुसुमोक्तमुदिताभेद उत्प्रेक्षालंकार-सवैया.

चंचलता चपलासि भई गति, रंग भयो मनु केसर रूली ।
आनन ओष अनोष चढ़ी मनु, पूरन चंद करे कह तूली ॥
रोमहि रोम प्रभा प्रगटी अति, मोद भयो मनु मानहु दूली ।
अंग न मावत है अंगियां अब, सागर कागर नागर फूली ॥ ५ ॥

कुसुमावलि स्वतः कहती है कि अहो ! उम शरीर की चपलता तो बिजली की गति की भांति हो रही है, शरीर का रंग केसर अथवा कुंकुम के समान हो रहा है और इस के मनोहर मुख पर ऐसी कान्ति आ रही है कि पूर्ण चन्द्र

(१) गुजराती टीकाकार यहां “ उत्कांठिता ” का लक्षण समजते हैं जब स्वयं ग्रन्थकार अभिसंधिता (कलहांतरिता) होना जाहिर करते हैं व इसकी भाषा और भावको सन्देह से अलंकृत करते हैं ।

सूच्य दृष्टि से बिचारा जाय तो “ अभिसंधिता की ” भाषा, स्मृति-आंति और सन्देह वाली होती है ! उत्कांठिता की नहीं ।

भी उमकी बराबरी नहीं कर सकता, रोम रोम से ऐसी आभा निकल रही है मानो दुलहिन को प्रसन्नता का रोमांच हो रहा हो । सागर के पत्र से नागरी प्रवीण ऐसी उमंग में भूल गई है कि उसका अंग, वस्त्रमें नहीं समाता है ॥ ५ ॥

विदग्धाभेद, लुप्तोपमालंकार—सवैया.

बालसे केफ पुरी कहि बोलत, प्रौढसे जंत्र कहे दरदी को ।
इष्ट दुहाई कहे तरुनी प्रति, उत्तर देत सबै सबही को ॥
हार समारि लगावत है हिय, नैनन धार समारत टीको ।
पन्नगकी फनिकी मनि ज्यों करि, राखत सागर कागर नीको ॥ ६ ॥

सागर का पत्र हाथ में लेकर छोटी कन्याओं को कहती हैं कि यह 'केफ' है' तथा बड़ी स्त्रियों को 'डर मिटाने का यंत्र' बता कर समझाती हैं । समान वयस्क स्त्रियों से कहती हैं कि इस में 'इष्ट दुहाई' है इसलिए दिग्गती नहीं है और प्रत्येक को ठगाई का उत्तर देती है । इतना ही नहीं, हृदय पर बिखरे हुए हार को ठीक करने के बहाने हृदय से लगाती हैं, मस्तक पर जड़ाऊ चंद्र ठीक करने के बहाने नेत्रों पर रखती हैं और मणिधर सर्प की मणि की भांति सागर के पत्र को बड़ी मावधानी से सन्हाल कर रखती हैं ॥ ६ ॥

वासकसज्याभेद, जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

पोप बिछाय बिछायत चांदनि, सेज बनाय तनाय कसे हैं ।
दीपक द्वारहि द्वार धरे पुनि, वारहि वार सिंगार ठसे हैं ॥
आसव पास सुवास सुवासित, चंदन कासमिहीर घसे हैं ।
पानन आनि समारि धरे द्रग, सागर आननके तरसे हैं ॥ ७ ॥

चांदनी के अन्दर बिछायत कर उसके ऊपर फूल के बिछावन वाले सेज (पलंग) की तनी कमती है, द्वार २ पर दीपक धर कर वार २ शृंगार सजती है,

(१) वर्णोपमानधर्माणा मुपमावाचकस्यच० कुव०—जहां उपमान कालोप हो यह लुप्तोपमा कहाता है । सागर पत्र की बात छूपाने के लिये और बातों होती है ।

तथा समीप में सुन्दर बास से सुवासित मदिरा की शीशियां, चन्दन और केसर विसती हैं। मुखवास के निमित्त नागरवेलि के पान लाकर सजाकर धरती है, परन्तु नेत्र तो सागर के मुखदर्शन को ही तरसते हैं ॥ ७ ॥

प्रवीणोक्तकल्पित अनुशयना भेद, असंभवालंकार-सवैया.

साज सहेट कियो जु उपवन, आये तहां गुरु लोग कहां ते ।
एक दिना हम आये कितो करि, आप न आय सके हरमां ते ॥
एबो बने न अबै तो कहूं अब, लोगन घेर रहे चिहुधा ते ।
सागर अब हमें उलटे अब, तो मिलबोइ रह्यो पतियां ते ॥ ८ ॥

प्रवीण कहती है कि उपवन में निश्चित स्थान पर आने को मैं तैयार हुई इतने में न जाने कहां से आप्रजन आया । एक दिन तो किसी तरह जैसे तैमे करके हम वहां आए तो आप वहां महल से आ नहीं सके, फिर अब तो कभी आना धनता ही नहीं, क्योंकि चारों तरफ से लोग घेरे हुए हैं । हे सागर ! यह तो हमारे कर्म का अंक ही उल्टा पड़ा है, अब तो केवल पत्र से ही मिलना होगा ॥ ८ ॥

कल्पित अभिसारिकाभेद, लाटानुप्रास अलंकार-सवैया.

नवसात किये नवसात लिये, नवसात पिये नवसात पिवाई ।
नवसात रची नवसात बिधे, नवसात मगे प्रति सागर आई ॥
नवसात कला नवसातन की, नवसातन में अंचला मुख छाई ।
नवसात रह्यो नवसातन में, नवसात लुटी नवसात बताई ॥ ९ ॥

(कुसुमोक्त शिवपूजन व्याज यथा) हम सवैया में प्रवीण श्रीशंकर की पूजा करने के बहाने मागर को मिलने जाती हैं ऐसी कल्पना है । कुसुमावलि कहती है कि प्रवीण ! नवसात—सोलह शृंगार अंग पर धारण कर मोलह प्रियजन साथियों को माथ लिया, सुरापान किया और प्रिय जनों को कराया । सोलह संस्कार युक्त षोडशोपचार से उमा महेश का पूजन किया । सारे मार्ग

अर्थात् ग्विड़की के रास्ते से होकर सागर की ओर चली उस समय सोलहों के मध्य सोलहों कला सहित पोडशी वाला अंचल का अन्तर्पट अर्थात् घूँघट रख कर चलती है । आम पास लोगों का मोर हो रहा है उसमे मोलह अर्थात् अलग होकर सोलहों माथियां उस मे अलग गई ॥ ९ ॥

दूसरा अर्थ—कलाप्रवीण ने मोलह शृंगार किया और मोलह माथियों को साथ लिया फिर उसने मुरा अर्थात् मदिरा पान किया और माथियों को भी पिलाया, बाद में मोलहों माथियों को मोलह पृथक् २ प्रकार के पोशाक पहिनाये । सागर के शरीर की मोलह कला माथियों के बीच में रही, मुख पर अंचल डाल देखती है जिससे वहां सोर सराबा हो रहा है इसलिए सागर को हाव भाव बता कर मोलह रास्ते में सोलहों माथियां चल पड़ीं ॥ ९ ॥

प्रवीणोक्खंडिताभेद, जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

जाहिको जावक भाल लग्यो अरु, जा मदकी द्रग आरुनता ।
जा कग कंकन रेख भई भुज, जा गज ओठ अरेखनता ॥
जा तन सोंघ सुवास मिल्यो पुनि, जा हरवा उर गाडनता ।
जा पद जेरर श्रोन सुने तुम, सागर ज्युं धन ता वोननता ॥ १० ॥

(इस छन्द में मानो सागर किसी नारिका का प्यार कर रहा हो और प्रवीण उपालम्भ दे रही हो यह भाव है) जिम के पग में लगाए हुए महावर का लाल रंग तुम्हारे कपाल में लगा हुआ है, जिम के मद की लीला तुम्हारे नेत्रों में चढ़ गई है, जिस के हाथ के कंकण की रेखा तुम्हारे भुजदंड पर पड़ रही है, जिसके आंखों में लगे हुए काजल की श्याम रेखा तुम्हारे होठों पर दीख रही है, जिसके शरीर पर लगे हुए सुगंधित उबटन, चोबा चंदन अर्ग-जादि का सुवास तुम्हारे शरीर में फैल रही है तथा जिस के गले के हीर कटार के चिह्न आलिंगन करने से तुम्हारे वक्षस्थल पर पड़ रहे हैं और जिस के पग के आभूषणों की भंकार तुम्हारे कानों में पड़ी है हे रससागर ! वह स्त्री धन्य है ॥ १० ॥

प्रवत्सपतिकाभेद, दृष्टांतविरोधाभास संकर अलंकार-सवैया.

हींते भई सु नई हिलकी तुम, गौनेकी बात सुनी तबही ते ।
रीते कछू न सकी रहिबो कहे, भीत भई असुवा न भरी ते ॥
बीते घरीसो महा विकटी मन, न्यारो भयो सुखसाज सबी ते ।
जीते वेहाल भई सफरी थल, सागर से कहिवे अरजी ते ॥ ११ ॥

तुम्हारे जान की बात सुनी तभी से मेरे हृदय में नवीन हूक उत्पन्न हो गई है उसे किसी प्रकार कह नहीं सकती और आंखों से अविरल आश्रुधारा पड़ने से भयभीत बन गई हूं, एक २ घड़ी बड़ी कठिनता से बीतती है, सुख के सब साज से पृथक् हो रही हूं । जिस प्रकार जल में रहने वाली मछली स्थल पर पड़ कर तड़फती है वही अवस्था मेरी हो रही है । हे मन्वी ! यह विनती कोई सागर से जाकर कहो ॥ ११ ॥

प्रोषितपतिकाभेद, दृष्टांत एकावलि अलंकार-सवैया.

चारनको ज्युं उखारत भारन, तारन क्यों अटके वहवाग्न ।
बारनके ज्युं प्रवाह बहे नद, सो क्युं बंधे सिकतान की पारन ॥
पारन शृंग गिरीन समीरमुं, क्यों रुकिहे मकरोनाकि जारन ।
जारन काम सबै जग सागर, क्यों सु समय सियरे उपचारन ॥ १२ ॥

चारा के लिए जो वृत्तों को उखाड़ डाले ऐसा मदान्मत्त हाथी एक तागा से क्यों रुके ? जो पानी नदी के दुकूल में उछाल मारता हुआ जा रहा हो वह बालू की बंधसे कैसे रुक सकता है ? बड़े २ पहाड़ों की चोटियों को हिला देने वाला वायुवेग मकड़ी के जालमें कैसे रोका जा सकता है ? इसी प्रकार हे रससागर ! सारे विश्व को प्रलय कर देने वाला कामदेव, शीतोपचार से कैसे शमन हो सकता है ॥ १२ ॥

दोहा—बिना नियम संछेप करि, कही नायिका रीत ।

चित्त मित बाढ़त बिरह, नित नित नई सु प्रीत ॥ १३ ॥

इस प्रकार विना क्रम के संचेप में नायिकाओं की रीति का वर्णन किया और मित्र के वियोग को लेकर चित्त में ज्यों २ विरह बढ़ता है त्यों २ नित्य नवीन प्रेम जमता जाता है ॥ १३ ॥

सोरठा—कुसुमावलि प्रतिभीत, चरचा कलाप्रवीण किय ।

रससागर वह रीत, कीन मित प्रति सो कहै ॥ १४ ॥

कुसुमावलि के साथ प्रिय मन्त्री कलाप्रवीण ने चर्चा की, उसी प्रकार रससागर ने अपने मित्रों के साथ चर्चा की, उसे अब कहते हैं ॥ १४ ॥

**कलाप्रवीणवर्णन—रससागर मितचर्चाप्रसंग—पदच्छेकानुप्रास
प्रतिपालंकार—सवैया.**

कसमीरहि कीरहि हीर जंबीर, ववीरन रंग बढ़ावहिगे ।

दग लालहि काल मराल प्रवाल सु, व्याल कहा गतिलावहिगे ।

अरविंदहि चंद मृगेंद्र कुमूदहि, कुंद कहा छवि पावहिगे ॥

मीन हरीन करीन कहा सो, प्रवीण जबै दरसावहिगे ॥ १५ ॥

प्रवीण का वर्णन करने हुए मित्र के प्रति कहते हैं कि हे प्रिय वीर ! अपने सौन्दर्य की सुबधा (परमशोभा) रखने वाले जगन में किनने ही हैं परन्तु वे क्या प्रवीण के सामने शोभा पा सकते हैं ? अर्थात् केसर, शुक, हीरा, निम्बू, नारंगी और श्वेत क्या अपना रंग प्रवीण से अधिक विचार सकते हैं । इसी प्रकार कोयल, काग, हंस, प्रवाल और सर्प क्या प्रवीण के गुण की बराबरी कर सकते हैं ? कमल, चन्द्र, मिह, कुमुदिनी तथा कुन्द क्या प्रवीण के सम्मुख शोभा पा सकते हैं ? जब प्रवीण दिखेगी तो हिरण, मछली और हाथी ये किस हिमाब में रहेंगे ॥ १५ ॥

अथ संदेहालंकार—सवैया.

माधवि के ज्युं प्रखन परे रस, भृंग समारत हैं पखियां ।

कीधों त्रिबेनि तरंगनमें कर, अंजुलि मेन लई भखियां ॥

खेलत कंजमें खंज प्रवीण ज्युं, पाटकि प्राप्त दुहू नखियां ।

कौन घरी इन आंखिन ते ज्यु, निहारहु नेहभरी आंखियां ॥ १६ ॥

माधवी के पुष्परस में पड़ कर भीगे हुए पंख को भ्रमर संवार रहा है, अथवा त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती) के तरंग में कामदेव अपनी अंगुली में मल्ललियां ले रक्खी हैं, या कमल में खंजन पक्षी खेल रहे हैं, या प्रवीण चौंसर की बाजी डाल रही है ? अहो ! किम घड़ी इन नेत्रों से इन नेहभरी आंखों को निहारूंगा ॥ १६ ॥

अथ प्रतिपालंकार-कवित्त.

अंक न कलंक जाके, राह की न शंक कलु, जामे वसुधाकी सोध, सुधा भगियतु है । एनते सरस नैन, पच्छहु घटे न जोति, सोइ छवि दिन रैन, दूनी धरियतु है । चकवा सु भोर और, कंजको न भयकारी, बिरही विलोके से, वियोग हरीयतु है । आनन प्रवीण आगे, मान न रहेगो शशि, क्योंरे दुखदान ते, गुमान करियतु है ॥ १७ ॥

(इस छंद में मुख का वर्णन है) जिस में कलंक वा छिद्र नहीं, राहु की शंका नहीं, जिस में मारी पृथ्वी का अमृत घोल कर भर रक्खा है, मृग की आंखों से भी मरस नेत्र हैं, जिस के प्रकाश की ज्योति किमी भी पक्ष में घटती नहीं, प्रत्युत उल्टी रात दिन अधिक आभा धारण करती है, चकवा, भ्रमर और कमल को दुःखदायी नहीं है, जिसके देखने से बिरही जनों की वियोग पीड़ा निवृत्त होती है, ऐसे प्रवीण के मुख के सामने हं चन्द्र ! तेरा मान नहीं रहेगा, हे दुःखदायी ! तू क्यों व्यर्थ गुमान करता है ? ॥ १७ ॥

अथ समरूपक अलंकार — कवित्त.

गज गति चढ्यो है सु, पढ्यो वीर बानविद्या, दुंदुभी अवाज नाद, नूपुर के गाजको । औइनको चाप करी, नयन कटाछ सर, अलक पलीता नेह,

(उपमान को उपमेय की कल्पना हो वह “प्रतीप” कहाता है ।

आतस समाज को । शीशफूल छत्र शिर, बेसरको इतमाम, केसरकी आड़
किर, बान शिरताज को । लाजगढ़ तोरवे को, मोरेब को मान मद, कामनी
सरूप आयो, सेन रतिराज को ॥ १८ ॥

रतिराज कामदेव प्रवीण की गतिरूप हाथी पर सवार हैं, और उस वीर
सुभट ने प्रवीण की वागी रूपी बाणविद्या भीखी है, नूपुर नादरूपी दुंदुभि
की ध्वनि हो रही है, भृकुटीरूपी धनुष पर नयन कटाक्षरूपी बाण चढ़ा रक्खा
है, केसरूपी पसीना में तेलरूपी अग्नि लगा रक्खा है, शिर फूलरूपी छत्र
मस्तक पर शोभित है, नाक केसररूपी चमर हिल रहा है, केसर की आड़रूपी
मुकुट धारण कर रक्खा है । इस प्रकार कामदेव ने कामिनी के रूप में लज्जा-
रूपी किला का तोड़ने तथा मान मद भंजन करने के लिए, मेला सहित चढ़ाई
की है ॥ १८ ॥

अथ छेकानुपास स्मरनालंकार—कवित्त.

नैनन तरंग तोय, तरंगमे रंग धरे, अंगन सुरंग रंग, और छबि कां धरे ।
कज्जर कटाछनते, सजर भये हे द्रग, नजर विकल चहे, फजर न होहरे ॥
नवल अनंगा रति, रंगा कब संग होय, प्रच्छन प्रकट आये, बाल बोलवो परे ।
ताछिन निहार बार, बार धीर धारधार, बंदीजन बीछुवा, बिरद बोलवो करे ॥ १९ ॥

पानी की लहरों के समान उसकी आंखों की तरंगें ! रंग धारण करती हैं,
उस के शरीर का रंग ! अनेक रंग की कान्ति धारण करता है, काजल और
कटाक्ष से भरी हुई उसकी आंखें ! विकल बिभोर सवेरा नहीं होने देना चाहतीं !!!
इस प्रकार की नवल अनंगा, रतिरंग अर्थात् क्रीड़ा विहार के रंग में भीजी हुई
का संग कब होगा ? गुप्त अथवा प्रकट रूप में आकर बातचीत करे, उस समय
बार २ देख कर और धीरज धार कर, बिछुवा रूपी बंदीजन, बिरुदावलि बोलते
रहेंगे ॥ १९ ॥

(१) गर्भित जैसे कोई और अर्थ में लोग कहावत हो वह “छेक” कहाता है ।

(२) “नैनन तरंगन तरंगनसी रंगनकी” पुरानी प्रति में ऐसा भी पाठ है ।

अथ समरूपक अलंकार-कवित्त.

सितकार जासु अल, कावालि निशान छुटे, बेसर वीर ह इत, माम डोलबो करें । अंबक सुभट नाग, सेल तन साज लिये, कुंभी कुच-आंगी अंबि, यारी भोलबो करे । मनिनके भूषन सो, चमक है शस्त्रनकी, सूत नीबी सामज जंजीर रोलबो करें । रतिरंग चढ़े है, तिमंगलेश महाराज, बंदी जन, बिछुवा बिरद बोलबो करें ॥ २० ॥

अब सागर रति विहार रूप में रति पति के चढ़ाई का ध्यान करता है, वह इस प्रकार विहार में नायिका के मुख में चीत्काररूपी जामूम बोलते हैं, माथे के छुटे हुए केम रूपी निशान पहरा रहे हैं, नाक की बेसर का मोती रूपी चंवर डोलता है, नेत्ररूपी महारथी आतिथ्यारे नेत्रों में पड़े हुए काजल रूपी माला शरीर पर सजा रक्खा है, सघन स्नन रूपी हाथी पर कंचुली रूपी भूल पड़ी हुई है, नानाविधि मणियों से जटित आभूषण रूपी शस्त्रों की छटा चमकती है, कमरवन्द रूपी हाथी पर लंगर लुढ़क रहा है, रतिराज रूपी तिमंगलेश रतिरंग में चढ़े हैं, वहां बिछुवा रूपी बंदीजन बिरदावलि बोल रहे हैं ॥ २० ॥

अथ लुप्तोपमालंकार-कवित्त.

जावक, ज्यासूत, जपा, किंशुक, कनेर, कंज कंदुक बिबूरनको अरुन चरनमें । मधुप्री, मजीठ, मेंदी, किर्मज, कुसुंभ कंकू, संग्रफ सुरोचनकी सुरखी चरनमें । मानिक, मंजीरी मूंगे, कीरचंच, कलहंस, अरुनी अनार इंद्र, बधू अधरन में । याहि ते प्रवीण ज्यु नवीन नैन डोरे लाल, लाल लाल सेत श्याम, त्रिविध बरनमें ॥ २१ ॥

महावर, मंगलतारा, जपाकुसुम, केसू, कनेर, कमल, कंदुक और बिबूरन की लाली उसके पांव में है; लाल मुख वाला भंवरा, मजीठ, मेहंदी, हिरमिज, कुसुंभा, कंकू, शिगरफ और गोरोचन की लाली उसके हाथों में है; माणिक, मंजरी, नवपल्लव, प्रवाल, शुकतुंड (वीर चोंच), कलहंस, दाडिम (अनार) और वीरबहूटी की ललाई उसके अधरों में है; इसलिए प्रवीण के

नेत्र का डोरा नवीन प्रकार का लाल है, और उस में रक्त, श्वेत और श्याम ऐसे तीन प्रकार के रंग हैं ॥ २१ ॥

अथ उल्लेखालंकार-सवैया.

पाँइन मध्य महावर भो अंगु, री बिछुवा मुरवा भयो नूपुर ।
किंकनि भो कटिमें पहुँची कर, कान तरङ्गन हार उरु पर ॥
नासन बेसर कज्जर भो चख, केसरी आड़ लिलार हु भूपर ।
मांग प्रवीण भयो मन बंदन, मंड अखंड रह्यो तन ऊपर ॥ २२ ॥

सागर कहते हैं कि मेरा मन प्रवीण के पग में महावर रूप हो गया, अंग-लियों में बिछुवा रूप, पाँव में नूपुर रूप हो रहा है । कटि में भेखला रूप, कान में तरौना रूप, हृदय पर तार रूप हो रहा है, नाक में बेसर रूप और आँखों में काजल रूप हो रहा है; ललाट और भू पर कमर का तिलक रूप हो रहा है; प्रवीण की मांग में विहर रूप हो रहा है और उसके सारे शरीर पर आभूषण रूप हो रहा है ॥ २२ ॥

अथ समरूपक अलंकार-सवैया.

आन बधू मुखचंद उडगन, छांह पर छवि हीन लसेंगे ।
संकट जंबुक त्रास उलूक रवी दुरी, जन चित दरिन धसेंगे ॥
पंख समारहिगे भ्रुकुटी मधु, कोक हिये द्रग शोक नसेंगे ।
कंज हियो बिकसेगो तबैहि, जबैहि प्रवीण रवी दरसेंगे ॥ २३ ॥

जब प्रवीण रूपी सूर्य का दर्शन होगा तो अन्य स्त्रियों के मुखरूपी चन्द्र तथा तारामण्डलहीन छवि हो जायेंगे । संकट रूपी शृगाल और त्रास रूपी उलूक दुर्जनों के चित्तरूपी गुफा में जा छिपेंगे । भ्रुकुटी रूपी भंवरे पंख सम्हालेंगे, नेत्ररूपी चकवा के दुःख नष्ट हो जायेंगे और हृदयरूपी कमल तभी खिल उठेगा ॥ २३ ॥

(१) एक ही बात को बहु प्रकार से कहना 'उल्लेख' कहा जाता है ।

॥ दोहा ॥

इहि विधि चरचा चलत है, विरहा उभे बढंत ।

निशदिन चिंत चहंत है, मित मित प्रति मित ॥ २४ ॥

इस प्रकार से दोनों में और विरह व्यथा बढ़ने से चर्चा चलती है और रात दिन चित्त में परस्पर मित्र मित्र और मित्र की चाहना करते हैं ॥ २४ ॥

॥ गाथा ॥

बिनता भेद प्रवीण, सागर किय प्रवीण वर्णन विधि ।

एकावन अभिधानं पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २५ ॥

प्रवीण का कहा हुआ पति का भेद तथा सागर द्वारा कही हुई प्रवीण के वर्णन वाली यह प्रवीणसागर की इक्यावनवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

५२ वीं लहर ।

अथ श्री द्वारिकानाथप्रयानप्रसंगो यथा—सोरठा.

चरचा बिरह चलंत, ऐसे दिन बीतत उभे ।

दंपति चिंत चहुंत, कब मिलबो करता करे ॥ १ ॥

इस प्रकार बिरह की चर्चा चलते हुए दोनों के दिन बीतते हैं और दोनों की पुरुष मन में यह कामना करते हैं कि विधना अब कब मिलना होगा ॥ १ ॥

मनकी दशा प्रमान, प्रति इक्के पाती लिखत ।

धरे अहोनिश ध्यान, कब मिलबो करता करे ॥ २ ॥

प्रत्येक अपने अपने मन की दशा के अनुसार एक दूसरे को पत्र लिखते हैं, तथा यह रात दिन चिन्तन करते रहते हैं कि भगवान कब मिलाप करावेगा ॥ २ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—छप्पय.

ऐसे अहर कितेक, बहत मनमें मुरझाने ।

उभै बिरह बाढंत, मिलन को मन अकुलाने ॥

तबही कलाप्रवीण, एह उरसे उपाय किय ।

मिलन धार उत मित, नेम द्वारामतिको लिय ॥

उन बात भाखि आमात प्रति, महाराज सासन मगिय ।

उन बाकसिद्ध सिद्ध वचन, परिपूरन होवन लगिय ॥ ३ ॥

इस प्रकार कितने ही दिन बीतने से मन मुरझा गए और दोनों की बिरह-वेदना बढ़ने से मन मिलने को अकुलाने लगे । तब कलाप्रवीण ने अपने मन में यह उपाय सोचा कि मित्र से मिलने के लिये द्वारावती जाने का निश्चय किया । यह बात मंत्री को कह कर महाराजा की आज्ञा मांगी “जिससे पूर्व सागर से जो सिद्ध ने वचन कहा था वह पूर्ण होने पाया” ॥ ३ ॥

सोरठा—कीनी अरज अमात, कुमरि उक्त छितिपाल प्रति ।

महाराज सुनि बात, यह प्रति-उत्तर दीन तब ॥ ४ ॥

राजकुमारी के कथनानुसार अमात्य ने महाराज नीतिपाल की सेवा में निवेदन किया और यह वृत्त सुनकर महाराज ने यह उत्तर दिया ॥ ४ ॥

कुमरी वरजो जाय, क्यों विदेश कीजे गमन ।

देव-दरस इत आय, सो घट घट व्यापी सदा ॥ ५ ॥

नृपेन्द्र श्री नीतिपाल ने अमात्य से कहा कि तुम जाकर राजकुमारी को मना करो और कहो कि परदेशगमन क्यों करती हो ? देव तो यहीं दर्शन देने हैं, अर्थात् वे सदा घट घट में व्याप रहे हैं ॥ ५ ॥

चौपाई—नृप अयसा अमायत मग्गे, कलाप्रवीण बर्जने लग्गे ।

कुमरी तब अमात प्रति बोले, अब चित बात आपसे खोले ॥

जब कुमारिका व्रत हम लीनो, द्वारामती नेम तब कीनो ।

द्वारकेश सपने अब आये, विस्मृत बाद याद वह लाये ॥

श्रीमुख कही जो न उत आवे, तो कुमारिव्रत सिद्धि न पावे ।

मो अमात सुनि नृपपै आये, सुपनभेद कहि के समुझाये ॥

नृपने सत्य बात तब चीनी, कुमरि गमनकी आपस दीनी ।

दुजन बुझी शुभ मुहूरत लीनो, निज अग्राम अवमोचन कीनो ॥ ६ ॥

इस प्रकार राजकुमारी ने अमात्य द्वारा नृपेन्द्र श्री की आज्ञा मांगी और महाराज कलाप्रवीण को वरजने लगे, तब राजकुमारी मंत्री से बोली कि मैं अब अपने मन की बात आपको स्पष्ट रीति से कहती हूँ !! कि जब मैंने कुमारी का व्रत लिया उन्ही समय द्वारावती जाने का भी प्रण किया था, परन्तु अब तक वहां न जाने के कारण द्वारवंशजी ने स्वप्न में आकर विस्मृत हुई बात को याद दिलाई है और श्रीमुख से कहा है कि यदि तू यहां (द्वारका) नहीं आवेगी तो तेरे कुमारी व्रत की सिद्धि नहीं होगी । यह सुनकर मंत्री, महाराज के पास गये और स्वप्न की सारी बातें राजा को कह कर समझाया, राजा ने

इस बात को सच मानकर राजकुमारी को द्वारका जाने की अनुमति दी ।
फिर ज्योतिषी ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे पूछ कर शुभ मुहूर्त में अपने नगर
के बाहर वाले बाग में प्रस्थान कराया ॥ ६ ॥

दोहा—मुहूरत लखि निज बाग प्रति, उतरे कलाप्रवीन ।

नीतिपाल पंथ कुमारि के, यह जावदा कीन ॥ ७ ॥

शुभ मुहूर्त देख कर तदनुसार कलाप्रवीण अपने बाग में जा उतरी और
महाराज नीतिपाल ने राजकुमारी के साथ जाने के लिये इस प्रकार
प्रबन्ध किया ॥ ७ ॥

अथ छंद निशानी.

कुमारी की तेनातमें, दीवान कराया, पैदल पंचहजार का, हुक्म कुरमाया ।
सात बड़े सिरदार से, परियान कहाया, मिलेपोस दो सहस्र सो, रथसंग चढ़ाया ॥
ब्रह्ममुहूरत सुद्ध करि, प्रस्थान ठहराया, वृद्ध जनाना राजसे, रथसाथ चलाका ।
ओही दिन बागातमें, मुकाम द्रढाया, कलाप्रवीण अनंत उर, आनंद बढ़ाया ॥ ८ ॥

राजकुमारी के साथ एक दीवान नियत किया, फिर पांच हजार पैदल साथ
जाने का हुक्म दिया, सात बड़े २ सर्दारों को भी साथ जाने को कहलाया, दो हजार
भाला वाले घुड़सवार तथा एकसौ रथ को कुमारी की सवारी के साथ किया,
तब ब्राह्मणों द्वारा निश्चित किया, शुभमुहूर्त में प्रस्थान करने का निश्चय किया,
और अपने अन्तःपुर वाली वृद्ध रानियों को कुमारी के रथ के साथ भेजा, इस
प्रकार राजकुमारी के साथ के मनुष्यों सहित बाग में मुकाम किया, जिससे
कुमारी के हृदय में अतिशय आनन्द बढ़ा ॥ ८ ॥

सोरठा—कीन विलंब कुमार, प्रति उदान दश पंच दिन ।

आए लोग अपार, अंते उर उमराव जूत ॥ ९ ॥

उस बाग में राजकुमारी ने दस पांच दिन मुकाम रक्खा !! जिससे अन्तःपुर
वाली रानियां और उमरावसमेत अनेक लोग वहां आए ॥ ९ ॥

मुन्यो सु तीरथ नाव, करत गवन परवीण ज्युं ।

गाँउ गाँउ प्रति गाँउ, आये उतै अनेक जन ॥ १० ॥

यह सुन कर कि राजकुमारी कलाप्रवीण तीरथ करने द्वारामती जाती है,
ऐसा सुनकर गांव गांव से अनेक लोगों का जमाव वहां हुआ ॥ १० ॥

क्षप्य-उहि मुकामसे पत्र, कलाप्रवीण एक किय ।

दिय हलकारन हाथ, नंदभारती नाम लिय ॥

दीजे पाती ताथ, यही रसना सु कहावे ।

हमें कामरू गमन, मयो उत आप सिधावे ॥

तामहिं सुबीर सागर पति, सब प्रकार तामहि लिखित ।

ओरे विचार उनमुन लहे, अंत सोरठा निज भखित ॥ ११ ॥

इस मुकाम से कलाप्रवीण ने एक पत्र लिख कर तैयार किया ! और उसे
भारतीनन्द कवि का नाम लेकर हलकारा के हाथ में दिया और रमना से कहा
कि यह पत्र कविराज को देना और उनसे कहना कि हम कामरू पीठ की ओर
जा रहे हैं आप भी वहां पधारना । भारतीनन्द के पत्र में सागर को पत्र
लिखा जिस में सर्व प्रकार से विधान करके लिखा । अन्य विचारों में तो मौन
भी रक्खा, परन्तु एक सोरठा अपना बनाया हुआ उस में लिख दिया ॥ ११ ॥

अथ वह-सोरठा.

देवो पाती मित, जेवो उत केवो इतो ।

सेवो सुख दुख चित, ऐवो बिसरवो नहीं ॥ १२ ॥

वहां जाकर मित्र के हाथ में यह पत्र देना और इतना कहना कि जो जो
सुख दुःख आन पड़े !! उसे चित्त में सहन करना !! परन्तु अवश्यमेव आना,
भूलना नहीं ॥ १२ ॥

पाती पथिक देह, नेहनगर कीनो बिदा ।

निज मन बड़ित सनेह, भित मिलन आगम उमगि ॥ १३ ॥

पत्र हलकारा को देकर “नेहनगर” की तरफ बिदा किया जिससे हृदय में स्नेह बढ़ा और मित्र के मिलने की उमंग उठी ॥ १३ ॥

छप्पय—कुमरी कलाप्रवीण, साथ अनेक संग लिय ।

सहज गमन उत्साह, मंद मंदही गमन किय ॥

वहे पत्र हलकार, नेहनगरहि पहुंचाया ।

बंचत सुकवि सुभेद, चित आनंद बढ़ाया ॥

उन प्रति इनाम आपहि बकसि, प्रातः सागर पत्र लिय ।

उत्साह भरे महाराज प्रति, राजद्वार प्रवेश किय ॥ १४ ॥

राजकुमारी कलाप्रवीण अपने साथ अनेक मनुष्यों को लेकर सहज उत्साह के साथ धीरे २ गमन किया । दूसरी ओर प्रवीण का दिया हुआ पत्र लेकर हलकारा नेहनगर जाकर कवि के पास पहुंचाया । उस पत्र का भेद पढ़ते ही कविराज के चित्त में अति आनन्द हुआ जिससे बधाई रूप में पत्र ले आने वाले हलकारे को स्वयं इनाम देकर बिदा किया । फिर प्रातःकाल ही सागर के लिये धारा हुआ पत्र लेकर पूर्ण उत्साह के साथ कविराज महाराज (सागर) के पास जाने के लिए राजद्वार में प्रवेश किया ॥ १४ ॥

दोहा—सागर पै सुकवी गये, आशिष कीन उचार ।

सनमुख बैठे मुदित मन, मुसकत बारहि बार ॥ १५ ॥

कविराज इस प्रकार सागर के पास जाकर आशीष उच्चारण कर हर्षित बदन से सागर महाराज के सम्मुख बैठे और बार २ मुसकाने लगे ॥ १५ ॥

अथ छंद मुहदाम.

निहारत भेद वह जो नरिंद, बिचारसु बूझिया तासु कविंद । कवी प्रति उत्तर भंखित बैन, निशा महि आज कियो हम सैन । लिख्यो सुपने महि अंब सरूप, उहें इक भंखिय गाह अनूप । हमें वह गाहसु मातु शिखाय कहीसु सुनावहु सागर जाय । तऊ पर एक बचन सुपाउं, तबै वह गाहन भेद सुनाउं । बड़ी वह बूझन सागर चाह, तबै बकसो बर सो कविराह ॥ १६ ॥

असंभता का भेद देख कर नरेन्द्रशिरोमणि रससागर ने कविकुल-इन्द्र भारतीनन्द से पूछा कि इसका कारण क्या है ? फिर भारतीनन्द कविवर ने उत्तर में कहा कि आज रात में मैंने सोने के बाद स्वप्न में अंबिका अम्बाजी का दर्शन किया और उन्होंने एक अनुपम गाथा सुनाई । यह कथा माताजी ने सुनके सुनाकर कहा कि यह कथा जाकर रससागर को सुनाना । यदि आप एक वचन दो तो मैं यह कथा आप को सुनाऊँ । इतना सुनते ही कुमार रससागर उस कथा को सुनने को उत्सुक हो गये और कविराज को वचन दिया ॥ १६ ॥

सोरठा—सुकवि पाय वरदान, कहन लगे सागर सु प्रति ।

आपहि उक्ति वान, वह गाहनको भेद लिय ॥ १७ ॥

इस प्रकार वरदान पाकर कवि श्री रससागर से कहने लगे तथा आप की ही वाणी में उस कथा का भेद कह सुनाया ॥ १७ ॥

अथ भारतीनन्दोक्त वृह-गाथा.

जिहि घट प्रेम प्रकाशं, आशं पूरंत ईश्वरं तासं ।

दीपमालिका दिवसे, जे जावंत कामरूप पीठे ॥ १८ ॥

कवि ने कहा कि जिस के घट में प्रेम का प्रकाश है वह यदि दिवाली पर कामरूपीठ जायगा तो उसकी सब आशा पूर्ण होगी ॥ १८ ॥

अथ सागरोक्त प्रत्युत्तर—गाथा.

तुम आराध अदरियं, करियं ध्यान खंडितं सेवा ।

मन इच्छा नह लहियं, कहियं अंब पंथ प्रतिकूलं ॥ १९ ॥

उत्तर में सागर ने कहा कि तुमने आराधन का आदर किया था परन्तु ध्यान और सेवा खण्डित रूप में की इसलिये मनोकामना पूरी नहीं हुई और अम्बाजी ने प्रतिकूल फल दिया ॥ १९ ॥

दोहा—करी अरज करजोर कवि, यह सत धारो चित ।

हमही से सुपने शिवा, कमी न झूठ कहंत ॥ २० ॥

तब कविने हाथ जोड़ कर विनती की कि इस अवसर को चित्त में मिथ्या न मानिए, सत्य ही मानिए क्योंकि हमें स्वप्न में शिवजी ने जो कहा है वह मिथ्या नहीं हो सकता ॥ २० ॥

अथ छंद पढ़ी.

एतो उचार कवि पत्र दीन, महाराज भये मन मोद भीन ।
खोलंत वीर बंच्यो बनाय, कीनो पयान परवीण पाय ॥
बोले सुवानि पुनि सुकवि प्रत्य, सुपने शिवाज्यु मंखी सुसत्य ।
प्रेमसु प्रकाश मन भो आनंद, एकंत कीन चरचा कविंद ॥
सातहू मित उत मिले आष, सागर सु भेद दीन्हों सुनाय ।
मनमें द्रढाये जातरह जान, वत प्रथम कीन तजवीज थान ॥ २१ ॥

इतना कह कर कविने रससागर को प्रवीण का पत्र दिया जिससे महाराज हर्ष से मग्न हो गए । लिफाफा खोलकर पत्र को पढ़ा तो ह्वात हुआ कि प्रवीण ने प्रणाम किया है । फिर कवि से नम्र वाणी में बोले कि स्वप्न में जो शक्ति ने कहा सो सत्य है । प्रेम के प्रकाश से मन में अति आनन्द हुआ इसलिए कवि से एकान्त में चर्चा करने लगे । यहां मातों मित्र आकर मिले और सागर ने सब भेद कह सुनाया । फिर यात्रा में जाने का मन में दृढ़ निश्चय कर के पहिले राज्य का प्रबन्ध किया ॥ २१ ॥

सोरठा-बरज बड़ो इतमाम, मित न मिलिहै वह लिये ।

निश अध तजि निज धाम, सात मित पथ सर भये ॥ २२ ॥

सवारी का बड़ा डोला छोड़ दिया !! क्योंकि ऐसा करने से मित्र मिलेगा नहीं !!
फिर आधी रात को अपनी राजधानी छोड़ !! कोई जान न सके इस प्रकार सातों मित्रों ने रास्ता लिया ॥ २२ ॥

छप्पथ-रससागर क्रिय गमन, रहत प्रञ्जुन निजके पुर ।

निज जनपद सु उलंघ, अतिहि आनंद बढ़त उर ॥

और नृपति इक शहर, नीठ उपवन मन माया ।

लगी सांझ दरसान, उतै अवमोच द्रढ़ाया ॥

कीजत अखेट लागे करन, मिल मनुहार सु पावही ।

घनघोर घटा अंबर चढ़ी, दामनि दुति दरसावही ॥ २३ ॥

रससागर ने यह प्रसिद्ध करके कि महाराज किसी कार्यवश अपने नगर में गुप्त रूप से रहते हैं, कोई ढूँढे नहीं !!! फिर आप गुप्त प्रकार से निकल पड़े । अपना राज्य पार करके अत्यन्त प्रसन्न हुए । इस प्रकार चलते २ दूसरे राजा के राज्य के एक ग्राम के समीप के बाग में पहुँचे, संध्या भी होने लगी थी अतएव यहीं मुकाम किया । शिकार करके एक दूसरे से मनुहार करने लगे !! इतने में आकाश में घनघोर घटा चढ़ आई और बिजली चमचमाने लगी ॥ २३ ॥

दोहा—एते में नृप नगर छत, विधकर जूथ बुलाया ।

आय निहारन बाग निज, सागर परसे आय ॥ २४ ॥

इतने में उस नगर के राजा का पुत्र कुमारश्री मिपाहियों का जत्था साथ लेकर अपना बाग देखने आया और वहाँ आकर सागर से मिला ॥ २४ ॥

किय पंथिक मनुहार अति, अमल सुरा अचवाय ।

तित ब्रूकत वह नृप कुमार, को निज थान कहाय ॥ २५ ॥

उसने उन प्रवासियों को अफीम, सुरा आदि पिलाकर खूब मनुहार की और पूछने लगा कि आपके स्थानक का नाम क्या है सो कहो ॥ २५ ॥

अथ सागरोक्त—सोरठा.

हमें निकट नहीं वास, इतसे बहु अंतर रहे ।

द्वारामतिकी आस, दीपोत्सव दरसन चहे ॥ २६ ॥

सागर ने उत्तर में कहा कि हमारा रहना यहाँ पास नहीं है, हम यहाँ से बहुत दूर रहते हैं । दीपोत्सव के दर्शन की इच्छा से द्वारामती जाने की आशा रखते हैं ॥ २६ ॥

अथ वह कुंवरोक्त-छंद महालक्ष्मी.

परीकर नैन में आने, बड़े जन वाही ने जाने, कहा उन सुमट हैं केते,
इन्हों ने कहा हम एते । प्रत्युत्तर एह जब पाये, कुमार अदभूत उर लाये,
वहै विधि पंथि यों जानी, परस्पर भंखित बानी । गथा नृपछलु निज
जगो, विचारन पंथि मन लगो, यहै सामान से जावे, त्रिलोकनहार भरमावे
सबै मिलि एह ठहराया, महेश्वर साधिये माया, निशामहि स्वप्न उबारे,
सबै वह भेख को धारे ॥ २७ ॥

राजकुमार ने द्वारामती जानेवालों को देखकर, उन्हें बड़ा आदमी समझा,
और पूछा कि तुम्हारे साथ कितने योद्धा हैं ? यात्रावासियों ने कहा, कि हम
दोनों हैं, इस प्रकार उत्तर मिला, तो कुमार को आश्चर्य मालूम हुआ । इस
प्रकार मुसाफिर जानकर उनसे समाचार आदि पूछने के उपरान्त वह अपनी
राजधानी में गया । फिर वे प्रवासी सोचने लगे, कि यदि हम इस प्रकार सामान
के साथ चलेंगे तो देखने वालों को भ्रम होगा, इसलिये सातों मित्रों ने सलाह
करके निश्चय किया, कि महेश्वर और योगमाया का ध्यान करें, फिर रात्रि
में स्वप्न में जैसा आदेश होगा, तदनुसार अपना वेश धारण करेंगे ॥ २७ ॥

दोहा-एति कहि सागर सुहे, सुपनेश्वरी उपाय ।

नैन जुरत आये नजर, माहेश्वर महमाय ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय कर चित्रेश्वरी की उपासना करके, सागर ने गमन किया ।
नेत्र बन्द करते ही महेश्वर और उमाजी ने दर्शन दिया ॥ २८ ॥

भूतनाथ अभिधान शिव, निश सुपने निरखंत ।

जैसी विधि आये नजर, बर्णन तास करंत ॥ २९ ॥

रात्रि में स्वप्न में श्री भूतनाथ नामक शिवजी का दर्शन हुआ । जिस
रूप में दर्शन हुआ उसका अब वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

अथ शिववर्णन, छेकानुगास अलंकार-छप्पय.

माल शशी शिर माल, खाल मुंडाल सु अंबर ।

ज्वाल नैन विकराल, व्याल रस काल कंठधर ॥

ख्याल वीर बैताल, जाल प्रेताल खिलावे ।

बाल भवा गंग लाल, काल मृगछाल बिछावे ॥

पशुपाल पाल निजजन निकर, हाल हाल विजया मगन ।

बिन काल काल सब जमकरन, जय जय शिवशंकर सगन ॥३०॥

जिसके कपाल के मध्य चन्द्रमा है, गले में मुंडमाला है, हाथी के चर्म का वस्त्र शोभित है, तीमरे नेत्र से ज्वाला निकल रही है, हृदय के ऊपर उरमाल की भांति महा विकराल सर्प लिपट रहे हैं । भयंकर हल्लाहल विष कंठ में है । वीर, बैताल तथा प्रेत पिशाच के मुंड को खिला रहे हैं, बालारूप भवानी और गंगा को लाड़ करने वाले, मृगछाला बिछाने वाले, पशुओं के पालक, अपने भक्तों की रक्षा करने वाले, बार २ विजया के नशा में मग्न रहने वाले, कालरहित और सकल संसार के पापरूप अर्थात् संहार करने वाले हे शिव ! हे शंकर ! तुम्हारा गणों सहित सदा जय हो ॥ ३० ॥

सवैया-सागर ईश अनूप, ध्यान नजर आया सुपन ।

करि बंधन उन रूप, बुद्धिभय मन संशय सकल ॥ ३१ ॥

इस प्रकार स्वप्न में सागर को अनुपम ऐसे ईश्वर, ध्यान में दृष्टिगोचर हुए । उस स्वरूप का बार २ वन्दना कर अपने मन की सारी शंकाएं राजकुमार ने पूछ ली ॥ ३१ ॥

अथ तत्र शिवोक्त प्रत्युत्तर-दोहा.

प्रात प्रथम पाओ दरस, धरो रूप तुम सोय ।

जुदे चलो संघन मिलो, दरस सिद्ध उत होय ॥ ३२ ॥

शिवजी ने उत्तर में कहा कि—प्रातःकाल में प्रथम जिस रूप का दर्शन पाओ ! उसी रूप को धारण करना ! और साथ न चलकर पृथक् चलना !! तो दर्शन की सिद्धि होगी ॥ ३२ ॥

सुनि उत्तर सागर जगे, कही मित प्रति बात ।

ईश उक्त चित धारि सत, कियो कूच परभात ॥ ३३ ॥

ऐसा शिवजी का उत्तर मिलते ही—सागर जाग उठे !! और यह सब वार्ता अपने मित्रों को कह सुनाई । शिवजी की इस बात को सत्य निश्चय कर सातों मित्र प्रातःकाल में चल पड़े ॥ ३३ ॥

अथ छंद—चंपकराला.

सागर कीनो कूच चले हैं, बाग तजे गोस्वामि मिले हैं । फंदन आसन कीन्हों आपै, किंकर घेरे आवत तापै । ईश उचारी सो सत चीन्हो, बाज तजी जा बंदन कीनो । ताही कही घना तुम कीजे, मंत्रोपदेश मोहि सु दीजे । दीन दयाकारी गोस्वामं, मंत्रोपदेश कीनो तामं ॥ ३४ ॥

सागर ने कूच किया तो उसे बाग छोड़ते ही गुसाईंजी महाराज मिले । वह अपने रथ में विराजे हुए थे और उस रथको किंकर और सेवक जन घेरे हुए चल रहे थे । उन्हें देखते ही ईश्वर उच्चार्य हुआ वचन सत्य मान घोड़े पर से नीचे उतरे और सन्मुख जाकर वन्दना करके कहा कि हे प्रभो ! आप दया करके मुझे मंत्रोपदेश कीजिये । इस प्रकार विनम्र वचन सुनकर दीनदयालु गोस्वामीजी ने उसी समय सागर को मंत्रोपदेश किया ॥ ३४ ॥

अथ तस्यमंत्रोद्धार—दोहा.

तार इंदिराबीज पुनि, कृष्ण अंक शर केर ।

बिंदु शकार मकार बिब, दियो मंत्र तिहि बेर ॥ ३५ ॥

मूल तार अर्थात् “ॐकार” फिर इंदिरा बीज “बी” और उसके बाद “कृष्णः” ये अक्षर तथा फिर शर अक्षर लिया, उसके पश्चात् बिन्दुसाहित

‘सु’कार और दो ‘म’कार इस प्रकार उस समय मंत्र दिया । अर्थात्
 “ॐ श्रीकृष्णः शरणं मम” ॥ ३५ ॥

अथ छंद सरस्वती.

सागर ज्युं तितसे चलिंयं, भित मिले परिहास कियं । आपन रूप गुसाईं
 धरो, क्यों इन रूप धरे बिचरो । सागर भित कहीं तब ही, मो परतीत
 शिवोक्ति सही । याहि हमे निज रूप धरे, पै तुम शिष्य मलीन करे । पाव-
 ङिगे मन-इच्छा हमें, पै नहीं सिद्ध मिलंत तुमे । एह उचारत हास कथं, क-
 न्यक कानन लीन पथं । सांभ भई इक सहेर लखे, दूर अराम मुकाम
 रखे ॥ ३६ ॥

यह उपदेश ग्रहण करके वहां से चले और फिर सातों मित्र मिलकर
 नाना विधि हास्य विनोदयुक्त ठट्ठा मसकरी करते हुए मित्रों ने सागर से कहा
 कि अब तुम गोस्वामीजी का वेश धारण करो, ऐसा वेश क्यों रखते हो ?
 सब सागर ने मित्रों से कहा की मुझे शिवजी की उक्ति पर विश्वास है और मैं
 गोस्वामीजी का वेश धारण करता हूं परन्तु तुम शिष्यलोग मलिन करदो ऐसे
 हो । हमें तो मन-इच्छित फल मिलेगा परन्तु तुम्हें सिद्धि नहीं मिलेगी ।
 इस प्रकार हास्य विनोद करते हुए पास के वन का रास्ता लिया । चलते २
 संध्या हुई तो एक शहर नजर आया ! वहां गये, और एक बगीचा दिखाई
 पड़ा !! जहाँ कि मुकाम किया ॥ ३६ ॥

सोरठा.

अरु मुकाम इहि थान, दूजो दिन सागर रहे ।

गोस्वामी सामान, वृष फंदन आदिक लहे ॥ ३७ ॥

वहां मुकाम रख कर दूसरे दिन भी सागर वहीं रहा, और गोस्वामीजी ने
 बैल रथ आदि सामान देख कर वहां से छरीदा ॥ ३७ ॥

किय ब्रजराज सुनाम, सागर गोस्वामी बने ।

औरे जन इतधाम, सेवकको दीनो सबे ॥ ३८ ॥

अपना नाम वृजराज रखकर सागर गोस्वामी बना और दूसरे सब लोगों को सेवक का ठाठ बाट दिया ॥ ३८ ॥

मंदहि मंद पयान, संघागम पहुँचे सु तित ।

निरखी नरोहर यान, अवमोचन उपवन रचिय ॥ ३९ ॥

धीरे २ चलते हुए संघ आने के अवसर तक वहां जा पहुँचे और नरहरि का स्थान द्वारामती देखकर एक बाग में मुकाम किया ॥ ३९ ॥

गाहा—कलाप्रवीण पयानं, सागर मित द्वारिका संचर ।

द्विपंचाश अभिधानं, पूर्य प्रवीणसागरो लहरं ॥ ४० ॥

संघ के साथ कलाप्रवीण का द्वारिका को प्रयाण और अपने मित्रों सहित (गोस्वामी महाराज बनकर) सागर का उसी ओर जाना इत्यादि वृत्तान्त वाली यह प्रवीणसागर की बावनवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४० ॥

५३ वीं लहर ।

अथ द्वारामतीप्रवेशप्रसंग यथा-दोहा.

सागर बाग विलंब किय, निज जन रच्यो समाज ।

काहु पंथिक मुख सुन्यो, आवन संघ अवाज ॥ १ ॥

सागर ने बाग में विलम्ब किया और अपने मनुष्यों की सभा भरार्ह, वहाँ किसी पंथिक के मुख से सुना कि संघ आ रहा है ॥ १ ॥

आय विष्णुजन शहरसे, बंदनको ब्रजराज ।

मंजिय तन साजन लगे, भूषण बसन समाज ॥ २ ॥

नगर में से भाविक वैष्णव जन धृजराजजी महाराज के दर्शन को आने लगे और महाराज भी स्नान आदि करके वस्त्राभूषण से सुसज्जित होने लगे ॥ २ ॥

अथ गोस्वामीश्रृंगारवर्णन-छंद चंद्रिका.

श्रीमहाराज कुमार गुसांई बने, और भये परगाह सबै अपने । मंजन कै सु पितारि पहर लिये, केसर चंदनकी चरचा सु किये । भालहुमें अगसाराकि रेख करी, कंठहुमें तुलसीमयि माल धरी । छाप कुसुंब सुनेरि धरे भगियां, नीलहि तार किनार शिरे पगियां । सोसनि पाट चिकन भर पटके, दोउ बघे कटिसें छहरे लटके । लंगर हाटकके दुहु पाय लगे, कंचनकी मुदरी मघ नंग जगे । नौग्रह पौंचिन संग कनक करे, दोउ भुजा भुजबंध जराव जरे । मोतिनकी उर माल प्रवाल बनी, चोकि लगी लटकत सु लालमनी । कुंडलमें मुक्ताफल कान लसे, नीकनको शिरपेच सु पाग कसे । हाथ रंग्यो कसमीर अंगोछ धरे, सेवक मित सरूप समीप खरे । राजत है ब्रज-राज उखीर गदी, बंदन कीजत विष्णुजनं सु बदी, आवत है इत संघसु भीर भरे, पट्टनम महाराज प्रवेश करे ॥ ३ ॥

श्री महाराजकुमार रससागर गुसाईजी बने !! और अन्य साथी लोग पास रहने वाले बने । स्नान कर कमल से शरीर पोंछ, पीताम्बर पहिना तथा केसर-युक्त चंदन का अर्चन किया, कपाल में कस्तूरी का ऊर्ध्व पुंड्र तिलक किया, कंठ में तुलसी की माला पहिनी, कुसुंब रंग के छाप का सुनहरा जामा धारण किया, नीले रंग की सुनहरी तार की किनारीदार एक पगड़ी माथे पर धारण की, आस-मानी रंग का मनोहर बेल बूटा वाला दुपट्टा कमर में बांधा, जिस के दोनों सिरे लटकते हुए सुशोभित थे । उंगलियों में पहिने हुए और सोने की अंगूठियों में जड़े हुए नग चमकते थे । नवग्रहों के नगों के जड़ावयुक्त और पहुंची समेत सोने के कड़े हाथ में पहिने, दोनों भुजाओं में जड़ाऊ बाजूबन्द बांधे, गले में मोती और प्रवाल की माला डाली, जिस में लालमाणि और चौकियां लटकती थीं । कान में पहिने हुए कुंडलमें मोती झलकते हैं, हीरा रत्नजटित सिरपेच पगड़ी में छटादार रीति से टेढ़ा बांध रक्खा है; हाथ में केशरिया कमल हैं । सेवक बने हुए मित्रगण महाराजश्री के पास खड़े रहे और महाराज ब्रजरज गादी तकिया पर विराजमान हुए । प्रेमी वैष्णव जन 'जय जय' बोल कर बन्दन करने लगे । पीछे यहां भीड़ करने वाला भारी संघ आ रहा है ऐसा सुना तब महाराज मदनशहर में प्रवेश किया ॥ ३ ॥

सोरठा-रथ अरूढ महाराज, लगे गान विष्णौ करन ।

सेवक चढ़े सु बाज, बाग निकसि पट्टन चलिय ॥ ४ ॥

महाराज रथ में विराजे और वैष्णव जन कीर्तन करने लगे और सेवक जन घोड़ों पर सवार हुए । इस प्रकार ठाठ बाट के साथ महाराज ब्रजरजजी बाग में से निकल कर नगर को चले ॥ ४ ॥

पुरह गिरद चहु पास, यह रीत आये नजर ।

बन घन बाग विकास, सर सरिता दुज देव सिध ॥ ५ ॥

नगर के चारों ओर इस प्रकार दिखाई पड़ा कि वृक्षों से भरा सघन बन,

खिले हुए बगीचे, पानी से भरपूर सरोवर और गंभीर सरिताएं, ब्राह्मण, देव और सिद्धों की टोलियां दिखाई पड़ीं ॥ ५ ॥

छप्पय.

बाट बाट प्रति बाग, बाग बागन खग कूजित ।

घाट घाट सुरथान, थान थानक दुज पूजित ॥

ताल ताल प्रति कंज, कंज कंजन मधु बुद्धे ।

ठौर ठौर मुनि वृन्द, वृंद वृंदन तप सद्धे ॥

जित तित चरित्र श्रीपति कथा, सषन चित्त सतकी व्रति ।

सुख लोग जोग मुनि आश्रमन, धन्य धाम द्वारामती ॥ ६ ॥

रास्ते में बाग बगीचा खिल रहे हैं, बाग-बाग में सुन्दर पक्षी बोल रहे हैं, घाट-घाट पर देवस्थान बने हैं, और देवालय-देवालय में ब्राह्मण लोग विधि-वत् पूजन कर रहे हैं, तालाब-तालाब में कमल खिल रहे हैं, कमल-कमल पर मधुकर गुंजार रहे हैं, जगह जगह पर मुनियों की टोली और हरेक टोली में जप का साधन हो रहा है। जहां तहां श्रीपति चरित्र की कथा हो रही है जिस में सब लोगों की चित्तवृत्तियां सत्य की ओर लगी हैं। इस प्रकार सुखी लोग हैं। योग के साधक महान् ऋषि मुनियों के जहां आश्रम हैं। ऐसे पराक्रमवाली द्वारामती के धाम को धन्य है ॥ ६ ॥

दोहा.

एहि तरे तजबीज लखि, शहर प्रवेशन कीय ।

उन अवमोचनकी अटा, तित अवमोचन लीय ॥ ७ ॥

इस तहर की तजबीज देख कर नगर में प्रवेश किया और महाराज के ठहरे के लिए जो नियत स्थान था वहां जाकर उतारा लिया ॥ ७ ॥

संघ आय संध्या समय, उप उतरे निधिबार ।

सोचत कलाप्रवीण चित, सागर सुरति सम्हार ॥ ८ ॥

उसके बाद संध्या समय यात्री संच आया और वे लोग वारिनिधि (समुद्र) के तट पर उतरे परन्तु सागर की छवि याद कर कलाप्रवीण चित्र में सौच किया करती है ॥ ८ ॥

अथ छंद लक्ष्मीधर.

खान पानं किये, सैन कीनी निशा, मित यादं भई, या प्रवीणं दशा ।
चित बाढ़ी ब्रहा, मितं मितं भजे, बोल ब्रह्मी लई, आप तल्पं तजे ॥
ओहि उच्चारसे दोऊ, लागे वहां, पत्रि भेजी, महाराज नाये इहां । बाम बातें
भई, काम ज्वाला लगी, सैनके ध्यानमें, रैन सारी जगी ॥ व्युढ स्वासा
भरे, नैन बारी वहे, चित धीरं तजी, मित आये चहे । प्रात नीठं भयो
एह चरचा चली, मंजवे के लिये, आय हेतू मिली ॥ ९ ॥

भांजनादि से निवृत्त होकर शयन किया, परन्तु मित्र का स्मरण हो आने से प्रवीण की यह दशा हुई ! कि अन्तर में विरह बढ़ी !! जिससे मित्र २ की रट लग गई । ब्राह्मणी कुसुमावलि का बुला लिया, पलंग छोड़ दिया, और दोनों परस्पर मित्र के सम्बन्ध में बात करने लगीं, पत्र तो भेज दिया था परन्तु अभी तक महाराज यहां आये नहीं, यह बड़ी ही उल्टी बात हुई, क्योंकि मिलने की इच्छा से मेरे मन में काम की ज्वाला उत्पन्न हो गई है । सारी रात मित्र के ध्यान में ही जागती रही । उच्छ्वाम लेनी रही, नेत्रों से जलधारा बहने लगी, मित्र आगमन की प्रतीक्षा में चित से धैर्य जाता रहा । इस प्रकार चर्चा करते करते सबेरा हो गया, स्नान करने के लिए शुभेच्छुक सखियां आकर उपस्थित हुई ॥ ९ ॥

दोहा—प्रात प्रभा दरसाइ दुति, मित प्रवीण चित चाब ।

एते में मंजन लिये, मिली अली सब आय ॥ १० ॥

प्रातःकाल की प्रभा प्रकट हुई !! प्रकाश हुआ ! दूसरी ओर चित में प्रवीण मित्र को ही चाहती है ! इवने में नहाने के लिए सब सखियां आकर मिलीं ॥ १० ॥

अथ प्रभातवर्णन, जातिस्वभाव अलंकार-कवित्त.

सुरत संजोगी जागे, जोगी जोग ध्यान लागे, निशिचर जोर भागे,
अंग पागे बागमें । चीरिपान सोर प्रहो, चक्रवा आनंद भयो, चकोरा
उदास लक्षो, चुप रहे जागमें । शंख आदि नाद धुनि, विप्र वेद पदे
धुनि, गावत संगीत गुनि, रामकली रागमें । विरह वियोग लीन, दरदी
अधीन दीन, चाहत प्रवीणकला, सागर समागमें ॥ ११ ॥

स्नेही संयोगी जन जागे, योगीजन योग साधन में लगे, रात्रि में फिरने
वाले जन्तुओं का जोर चला गया, भ्रमर बाग में रस के बस हुए, पक्षी
बोलने लगे, चक्रवा चकवी को आनन्द हुआ, चकोर पक्षी उदास होकर अपने
स्थान में छुप गया, शंख आदि वाद्य की ध्वनि होने लगी, ब्राह्मण और मुनि-
जन वेदपाठ करने लगे, गुणीजन रामकली राग में (संगीत के भेदयुक्त) गायन
करने लगे ! ऐसे समय में विरह के कारण पीड़ा में तल्लीन हुई ! हुई दुःखियारी
बिचारी ! कलाप्रवीण, सागर के मिलाप की इच्छा करने लगी ॥ ११ ॥

दोहा—छिन छिन चित भिता चढ़े, धरत प्रवीण न धीर ।

लोग लाजसे मिल अली, मंजन चली सु तीर ॥ १२ ॥

क्षण क्षण हृदय में मित्र की याद रूपी कसक होने से प्रवीण धीरज नहीं
धार सकी परन्तु लोक लाज के कारण मलियों के साथ मिलकर स्नान करने
गोमती किनारे चली ॥ १२ ॥

छप्पय—दोहरि लगी किनात, भट्ट मिलि मंजन आई ।

तीरथ तीर सु जाय, गिरद पहेरात कराई ॥

विधिवत बाला मंज, यथा विधिदान दिये तित ।

वपुसुं तजे अथ वृंद, याद सागर न तजे चित ॥

कुमरी विशेष बादी विरह, मित वियोग जागी दहन ।

बाले सु नीठ कुसुमावली, तास प्रत्य लागी कहन ॥ १३ ॥

दोहरी कनात लगा कर और दासियों से घिरी हुई स्नान करने गई । वहां
जाकर तीर्थ के किनारे भी चारों ओर पहेरेदार बैठा दिया !! फिर बालयौवना

प्रवीण ने विधिवत् स्नान किया, दान दिया शरीर से पाप का समुदाय छोड़ दिया, परन्तु सागर का स्मरण चित्त नहीं छोड़ता । कुमारी की विरहवेदना अत्यन्त बढ़ गई ! जिससे मित्र की वियोगरूपी अग्नि जलने लगी ! तब कुसुमावलि को बुलाकर इस प्रकार कहने लगी ॥ १३ ॥

कलाप्रवीणोक्त—गाहा.

मन कृत अति उत्साहं, नित बिहरंत गोमती तीरं ।

अचरिज सिंधु अपुब्बं, किं विरहेन पच्छतिय लहरं ॥ १४ ॥

प्रवीण कहती है कि मन में अति उत्साह उत्पन्न करने वाली गोमती नदी नित्य क्रीड़ा करती है, परन्तु यह समुद्र, किसके विरह में अपनी लहरें पछाड़ता है ? यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ तत्र कुसुमोक्त प्रत्युत्तर—गाहा.

तीर तरुणि समूहं, मंजिय कोउ विरहणी मज्जे ।

सागर विरहा लहियं, उण दुःखेण पच्छतिय अंगं ॥ १५ ॥

कुसुमावलि उत्तर में कहती है कि उम के बीच अनेक स्त्रियां स्नान करती हैं, उम समुद्र में कोई विरहिणी स्त्री भी स्नान कर गई होगी !! जिससे उस वियोगिनी स्त्री का विरह समुद्र ने धारण कर लिया होगा ?? और उमी दुःख से सागर अपने अंग को पछाड़ता है ॥ १५ ॥

सोरठा—एते मध्य विशेष, भई याद परवीण को ।

वासी मित विदेश, अजहु न आये कह भयो ॥ १६ ॥

इतने में प्रवीण को अतिशय याद आ गई !! जिससे निःसास लेकर कहने लगी !! अहो विदेशी मित्र ! अभी भी नहीं आए, क्या हुआ ? ॥ १६ ॥

अथ गाहा.

सायंकाल समीहे, अरुणाकांत नैन उल्लसिं ।

शङ्क परखुवण शंका, गहियं सिप्र माणसी मौखं ॥ १७ ॥

इतना कहते २ संभ्याकाल के आकाश के समान लाली उसकी आंखों में आगई और बोलने के शब्दों में शंका उत्पन्न हो !! इस प्रकार बोलते २ आंखों खींचने लगी, फिर दूसरे ही क्षण यह सोचा किसी का और इस प्रकार बोलने से कोई जान जायगा, अतएव शीघ्र मौन धारण कर लिया ॥ १७ ॥

सोरठा—उर महि बड़ित उसास, लाल नेन ज्वाला बिरह ।

निरखति ब्रह्मानि तास, गोपन दशा उपाय किय ॥ १८ ॥

हृदय में उच्छ्वास बढ़ गया, नेत्र लाल होगए, बिरह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी यह दशा देख ब्रह्मकुमारी (कुसुमावलि) इस दशा को छिपाने का यत्न करने लगी ॥ १८ ॥

गाहा—कुसुम तत्र उच्चरियं, कुमरि दशा गोपनं कज्जे ।

मंजहि संगम तीरं, तिहि पूरत सागरं इच्छा ॥ १९ ॥

राजकुमारी की यह दशा छिपाने के निमित्त, कुसुमावलि उभी समय बोल उठी कि—इस संगम के तीरपर स्नान करने वाले की इच्छा मागर पूर्ण करता है ॥ १९ ॥

अथ छंद उपजाति.

ब्रह्मी गही बांह कलाप्रवीणं, सिंधू समीपे रति घात लीनं । नीरं प्रवेशं प्रथमं कराया, नैनं परिहास रसं छटाया, कीन्हों यहै धीर चितं दृढ़ावे, बाला विशेषं ब्रह्मे दहावे । केती ब्रह्मी बात कही तहांही, शिच्छा लगे श्रोन कछुहि नांही, । मंखी प्रवीणं तब एह वाणी, एती दशा होत हमे अजानी, होवे अजानी सु कहा छिपावे, आपे छिपेगी वह मित आवे ॥ २० ॥

प्रीति की घात में तल्लीन हुई कलाप्रवीण का हाथ पकड़ कर—कुसुमावलि समुद्र के समीप लेगई । वहां पहिले उसने उसे पानी में प्रवेश कराया, फिर परिहास से उस के नेत्रों पर पानी छिड़का । ऐसा कह कलाप्रवीण के चित्त में कुसुमावलि धैर्य धराती है, परन्तु वह बाला बिरहवेदना से और भी विकल

होती है । ब्रह्मकन्या ने कला की बातें वहां कहीं, परन्तु उसकी शिक्षा प्रवीण के कान पर नहीं लगी; प्रवीण तब इस प्रकार बोली—कि मेरी यह स्थिति होगी, इससे मैं अजान थी; अजान से जो होजाय उसे क्या दबाना !! यह तो जब मित्र आवेगा तो आप ही दब जायगी ॥ २० ॥

कलाप्रवीणोक्त-छप्पय.

वही याद आवंत, बान लावन्त समर मन ।
बिरह-ज्वाला जागंत, अंग दागंत छिना छिन ॥
उर उसास बाढंत, रोम चाढंत घरी प्रत ।
बदन रंग बदलंत, बात विचलंत उचरत ॥
तन चैन हैन जान्यो न मैं, नैन नीर धारा भरे ।
विन मित चित तलफन लगी, कहो धीर कैसे धरे ॥ २१ ॥

प्रवीण कहती है कि, जब मित्र याद आता है तब मन में कामदेव बाण मारता है और विरहाग्नि की ज्वाला भड़क उठती है ! और क्षण क्षण में शरीर को दग्ध करने लगती है, हृदय में उमासँ बढ़ती हैं !! घड़ी २ में रोमांच होता है, जरा २ में शरीर का रंग बदल जाता है और बोलते २ बात भूल जाती है, तन को चैन नहीं पड़ता, सुध आते ही वह उठती है, अरे रे ! मैं ऐसा नहीं जानती थी । इस प्रकार आहें भर के आंखों से बराबर जलधारा छल-छल भरती है तथा 'मित्र मित्र' कह कर उसके वियोग में सूखने लगती है । फिर कहो धीरज कैसे आवे ? ॥ २१ ॥

दोहा—मंजत यह चरचा चली, धारे बसन अभीन ।

सिंधु तीर शुभ थान लाखि, कीन्ह समाज प्रवीण ॥ २२ ॥

नहाते २ इस प्रकार चर्चा चली, फिर पानी से बाहर आकर शरीर पर कोरा बस्त्र धारण किया, उपरान्त सिन्धु के तीर सुहावना देखकर प्रवीण ने वहां सभा की ॥ २२ ॥

पहेरायत गिरदी पृथक्, नजर बेग बैठाह ।

समुद्र लैर सब अलि लखे, वह प्रवीण मित राह ॥ २३ ॥

पहरे वालों को पृथक् पृथक् दृष्टि से दूर बैठा कर, सब मखियां समुन्द्र की लहर आनन्द से देखती हैं। परन्तु प्रवीण तो अपने मित्र की राह ही देखती है ॥ २३ ॥

छप्पय-रससागर निज थान, दशा उनही गति आनी ।

चरचा चलत प्रवीण, निशा तलफतहि विहानी ॥

वही चाह उर धार, प्रात फंदन आरोहित ।

तीरथ तीर सुजाय, आप मंजन कीनो तित ॥

एकंत ठौर निरखत उतै, कर बिछात बैठे तहां ।

चित ध्यान धरत परवीण को, बेग नजर बनिता जहां ॥ २४ ॥

रससागर भी अपने पड़ाव में प्रवीण की ही भांति रहा । प्रवीण की ही चर्चा चला कर, रात तो तड़फने में ही बिताई तथा प्रवीण के मिलने की इच्छा रख ! प्रातःकाल रथ में बैठ ! तीर्थ के किनारे जाकर ! स्नान किया, वहां एकान्त स्थल देख—जहां स्त्रियों की टोली बैठी थी—उस तरफ बिछायात करा, प्रवीण का ध्यान धर कर बैठा ॥ २४ ॥

सोरठा-वर्णन तहां बनाय, कियो सु तीरथ तीरको ।

दीनो सुकवि सुनाय, गोस्वामी ब्रजराज प्रति ॥ २५ ॥

उस शुभ और पापयुक्त तीर्थ के किनारा का वर्णन कवि भारतीनन्द ने मधुर कविता में बना कर गोस्वामी ब्रजराजजी को सुनाया ॥ २५ ॥

अथ वह वर्णन उदाहरण—छंद सेनिका.

प्रात भानको प्रताप फुटियं, संगमं समुद्र लैर जुटियं ।

गोमती कलूष वृंद गंजितं, ठोर ठोर मानुषं सु मंजितं ॥

तीर तीर देहरे सु मंदिरं, भिन्न भिन्न रूप देव अंदरं ।
 देव सेव भेष ब्रह्म अहरे, वेद भेद आन आन उचरे ॥
 तापसं सु साधितं उपासनं, एक एकको अनेक आसनं ।
 शंख झल्लरी सु घंट बजियं, कामनी सिंगार साज सजियं ॥
 थान थान ध्यान आन नमियं, आप आपके उछाह रंमियं ।
 आसनं कियो बिछान नखिवयं, एह रीत ब्रजराज लखिवयं ॥ २६ ॥

प्रातःकालीन सूर्य का प्रकाश प्रकट हुआ, संगम के स्थान पर समुद्र की लहरें जुड़ने लगीं, पापों के समूह को नाश करने वाली गोमती नदी में स्थान २ पर मनुष्यों का समुदाय स्नान कर रहा है, देवमंदिर शोभायमान हैं, जिनमें भिन्न २ आकृति की देवमूर्तियां विद्यमान हैं । ब्राह्मणवर्ग भावनायुक्त शास्त्र-भेदानुसार देवार्चन करते हैं और पदक्रम के भेद से वेदपाठ करते हैं । तपस्वी लोग उपासना के साधन में हैं, हरक योगशास्त्र में कथित अनेक आसनों में से प्रथक् २ कर रहे हैं । शंख, घड़ियाल और घंटा बज रहे हैं । स्त्रियां भांति २ के शृंगार से सुमज्जित होकर-स्थान स्थान पर ध्यान देकर-ईश्वर को नमन करती हैं, और अपने २ उत्साह के अनुसार रमण करती हैं । इस प्रकार की शोभा देख गोस्वामी ब्रजराजजी ने गलीचा बिछवाया और आसन लगाया ॥ २६ ॥

सोरठा-उत महाराज लखात, कुसुम दृष्टि कीनी तहां ।

जाने वही न जात, पै कहि कलाप्रवीण प्रति ॥ २७ ॥

जहां ब्रजराजजी महाराज बैठे थे, उस ओर कुसुमावलि ने दृष्टि की । वह पहचान तो न सकी परन्तु कलाप्रवीण से इस प्रकार बोली ॥ २७ ॥

दूरध्या मंगवाय, निहचे ठौर निहारिये ।

आप कबै इत आय, देखहुगे सागर दशा ॥ २८ ॥

हे प्रिय सखी ! दूरबीन मंगाकर अपना निश्चय करने के लिये उस तरफ देख !!! क्योंकि अब फिर कब सागर की दशा देखेंगे ?? ॥ २८ ॥

सुनियत नृपति कुमारि, जो सहचरी सनमुख खरी ।

तासे कही उचारि, दूरबीन इत लाइये ॥ २६ ॥

ब्रह्मबाला (कुसुमावली) की इस प्रकाः उक्ति सुन कर, सन्मुख खड़ी दासी से, दुरबीन लाने को राजकुमारी ने कहा ॥ २६ ॥

किंकिरि हुकुम प्रभान दूरबीन लै उत गई ।

प्रथम कुसुम लै पान, लखि समुंद सागर लखत ॥ ३० ॥

आज्ञानुसार किंकरी दुरबीन लेकर वहां गई, फिर पहिले कुसुमावलि ने हाथ में दुरबीन ले समुद्र को देखा और सागर को देखने लगी ॥ ३० ॥

अथ छंद हाकली.

दुज नंदा दाधि लहर लखे, पुनि स्रोता पुलिनं निरखे । ब्रजराजं निज धरम द्रढे, चित देखे वह चाह चढ़े । तित ब्रह्मी दृग मुरत परे, पुनि बेही तहकीक करे । कछु पहिचान भई न भई, परबीणं दुरबीन लई । तब ब्रह्मी यह वानि कही, सरिता तीर फिरंग वही । जिहि कीनो सु निदान तुमें, वह है धारत यह उरमें । निज बोही दिशको लखिये, हम कीनी परिखा प्रखिये ॥ ३१ ॥

ब्रह्मकन्या ने पहिले समुद्र की लहरों को देखा, फिर गोमती नदी के किनारे को देखा । वहां पर गोस्वामी ब्रजराज धर्मोपदेश कर रहे हैं ऐसा देखा । उस तरफ दृष्टि पड़ते ही कुसुमावलि को स्मरण होआया और निश्चय करने लगी । कुछ पहिचान हुई न हुई कि प्रवीण ने दुरबीन ले ली । तब ब्रह्म-कुमारी ने कहा कि नदी के किनारे वही फिरंगी बंध है, जिसने पहिले कुमारी की दवा की थी । मेरी तो यही धारणा है, आप भी उधर देखिए । मैंने परीक्षा करली है, आप भी जांच कीजिए ॥ ३१ ॥

अथ तत्र कलाप्रवीणोक्त-गाहा.

मम चिते नह सत्यं, इह समये आगमं मिता ।

दावानल प्रज्वलितं, क्यों अवसरे मेह उल्लाहियं ॥ ३२ ॥

प्रवीण ने कहा, मुझे यह सत्य नहीं प्रतीत होता कि ऐसे समय में मित्र का आगमन हो गया होगा, क्योंकि दावानल सुलग रही हो उस अवसर पर वर्षा कहां ?? ॥ ३२ ॥

अथ कुसुमोक्त-छंद आभीर.

बानी कुसुम कहंत, तुमहि सत्य उचरंत । ऐसा समय व्रतंत, मिलहि न चाहत मित । पै देखहुं दुरबीन, कहा सागर छवि कीन । एती सुनत कुमारी, लखन लगी निधिवारि । निरखत सागर नीर, सुरत सरितके तीर । वहे भेख बदलंत, दुरन भासत चित । छिन छिन देखत सोय, पै पहिचान न होय । ब्रह्मनि नजर पुनि दीन, तबहि सत्य उन कीन । कुसुम प्रवीण सुनाय, सहचरि उभय पठाय । खबर मंगावे सोय, कौन पुलिन पर होय । कुमरि सु आयस दीन, किंकरि गमनहि कीन । आइ गुसाइन पास, तब कहि कबी प्रकाश । निरखो न्यारी होय, कह कारन तुम सोय । मंत्र जपत महाराज, निकट न जाने काज । कितें रहो कित जात, कौन तुमे कहो बात । कित लग काम ज्यु आय, दीजे हमहि सुनाय ॥ ३३ ॥

कुसुमावलि ने कहा, तुम सत्य कहती हो, समय तो ऐसा ही है—कि चाहा हुआ प्रेमी नहीं मिलता, परन्तु दुरबीन लेकर देखो तो सही, सागर ने वैसी छवि बनाई है ! इतना सुन कर कुमारी वारिनिधि-समुद्र देखने लगी । देखती तो समुद्र है परन्तु दृष्टि सरिता के तीर पर ही लगी है । बहुत दूर होने से यह निश्चय नहीं हुआ कि सागर ने ही वेश बदल रक्खा है । फिर कुसुमावलि ने दुरबीन ली और निश्चय किया तथा प्रवीण से कहा कि दासी को भेज कर खबर मंगाओ कि किनारे पर कौन है ? यह सुन कर राजकुमारी ने पास की दासियों को वहां जाने को कहा । तब तुरन्त दो दासियां गुसाईजी के पास गईं । तब कवि ने प्रकट में कहा कि दूर से ही देखो और तुम्हारा जो काम हो

(१) यहाँ 'सागर' शब्द दोनों अर्थों में १-समुद्र, २-महाराज रत्नसागर में प्रयुक्त हुआ है ।

मुझ से कहो, महाराज मंत्र जाप करते हैं अतएव समीप न जाओ । किस के पास से आई हो और कैसे आई हो यह सब मुझे कह सुनाओ ॥ ३३ ॥

तत्र किंकरी प्रत्युत्तर—सोरठा.

हम मंछापुर थान, किंकरी कलाप्रवीण की ।

महाराज पहिचान, उन आयस आई इतै ॥ ३४ ॥

तब दासियों ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि मंछापुरी हमारा रहने का स्थान है, वहां की राजकुमारी कलाप्रवीण की हम दासी हैं और महाराज को जानने के लिए हम उनकी आज्ञा से आई हैं ॥ ३४ ॥

कौन थान कहँ जात, कहा नाम इत काम कह ।

एती कहो ज्यु बात, कछु न काज पीछी फिरे ॥ ३५ ॥

महाराज का स्थान कहां है ? कहां जाते हैं ? तथा उनका नाम क्या है ? यहां किस कार्य्य से आए हैं ? इतनी बात बताइए ? हमें और कोई काम नहीं है, हम पीछे जावेंगी ॥ ३५ ॥

भारतीनंदोक्त प्रत्युत्तर—छप्पय.

सकल सृष्टि परसिद्ध, धाम ब्रजकुंज रहावे ।

गोस्वामी पद विरद, नाम ब्रजराज कहावे ।

दीपमालके समय, इते महाराज पधारे ।

सधत मंत्र गायत्री, तीर तीरथ सु निहारे ॥

पाखंड मत्त खंडन प्रथी, दुरित ब्रंद जन छय करन ।

महाराज महत महिमा कथन, कृष्ण राधिकाले चरन ॥ ३६ ॥

भारतीनन्द ने उत्तर में कहा, सारे संसार में प्रसिद्ध ब्रजकुंज धाम में महाराज रहते हैं, आप का गोस्वामी पद तथा विरद है और इनका नाम ब्रजराजजी है । दीपोत्सव के कारण महाराज यहां पधारे हैं । आप गायत्री का जाप करते

और तीर्थ का किनारा अवलोकन करते हैं । पृथ्वी पर फैले हुए पाखंड का खंडन करने में समर्थ और लोगों के पाप-समुदाय का नाश करने वाले, ऐसे महो-महिमायुक्त श्री राधाकृष्ण के चरणारविन्द का महाराज कथन करते हैं ॥ ३६ ॥

अथ—छंद—मोहनी.

सहचरि पीछी फिरी सो उत्तर पाय, भारतिनंद कविदहि लीन बुलाय । तुम्हें कलाप्रवीणहि नीठ रहंत, दुजनंद कुसुमावलि ताहि लहंत । उन कहेवी तुम जोय दई उपदेश, सोय मिले संन्यासहि कही अदेश । सुनत सहचरी फिरिय कुंवरी प्रति जाय, गोस्वामीकी कथा सु दई सुनाय । यह सुनियत सब बात कुंवरी मुरझंत, तेते महि किंकरी कुसुम कहंत । तुमहि दीन उपदेशहि जोगिसु आय, उन निज मुख आशिषा ज्यु दीन्ह सुनाय । उरमें भये ज्यु मुदित सुनत यह फेर, इक इक प्रति परिहाम लगी तिहि बेर ३७ ॥

ऐसा उत्तर पाकर दासियां पीछे लौटीं, तो भारतीनंद कविने उन्हें अपने पास बुला लिया, और कहा कि तुम जब कलाप्रवीण के पास रहती हो! तो वहां एक ब्राह्मणकन्या कुसुमावलि है उसे जानती होगी—उससे कहना कि !! तुम्हें जिसने उपदेश दिया था वह संन्यासी मिला था !! और उसने तुम्हें आदेश कहा है। कवि ने ये बातें सुन कर दासियां लौटीं और कुमारी के पास जाकर सब बातें सुना दी । यह सब बातें सुनकर, कुमारी मुर्झाने लगी, इतने में दासियों ने कुसुमावलि से कहा कि तुम्हें जिसने उपदेश दिया था वह योगी यहां आया हुआ है !! उसने अपने मुख से तुम्हें आशिष दिया है । इतना सुनते ही कलाप्रवीण तथा कुसुमावलि दोनों ही प्रसन्न होने लगीं और खुशी से एक दूसरी की हँसी-ठठ्ठा करने लगी ॥ ३७ ॥

अथ—गाहा.

दिनकर प्रेम प्रकाशं, भई सुरभोग सागरं लहरं ।

किंचित कृत परिहासं. निज थानक उहियं नारी ॥ ३८ ॥

प्रेमरूपी सूर्य का प्रकाश हुआ और समुद्र की लहरें अमृत के समान हो गईं । कुछ हँसी दिल्ली, हास-परिहाम के बाद अपने स्थान जाने के लिए प्रवीण उठी ॥ ३८ ॥

दोहा-कलाप्रवीण सबीर प्रति, पुग्गिय सुख मुमकंत ।
गोस्वामी थानक गये, चाहत मिलवो चंत ॥ ३९ ॥

फिर प्रसन्नमुख ऐसी कलाप्रवीण, अपने डेरे पर गई और गोस्वामी भी अपने डेरे पर गए, परन्तु परस्पर के चित्त में तो मिलने की आगतुरता ही रही ॥ ३९ ॥

मंजन कलाप्रवीण, तीरथ तीरे परंन पहिचानं ।
त्रिपंचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ४० ॥

कलाप्रवीण का स्नान करना, तीर्थ के किनारे महाराज की पहिचान होना, ऐसी इस कथा वाली, प्रवीण सागर की त्रेपनवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४० ॥



५४ वीं लहर ।

कलाप्रवीणरससागरप्रतिमनुहारपत्रप्रसंगः—दोहा.

निज थानक ब्रजराज जू, नित बचंत इतिहास ।

मन में बड़ी प्रवीण के, आस्य विलोकन आस ॥ १ ॥

अपने स्थान पर ब्रजराजजी महाराज हमेशा इतिहास बांचते हैं परन्तु मन में प्रवीण के मिलने की (याने मुख देखने की) आशा लगी रही है ॥ १ ॥

देव-दरम सब संघ किय, संजुत कलाप्रवीण ।

सो सागर अबमोच सुनि. उर उदास अति लीन ॥ २ ॥

कलाप्रवीण के साथ के संघ वाले सब लोगों ने देव दर्शन किया । पर इन में से कला प्रवीण का समाचार अपने स्थान पर होने का सागर ने सुना, तब मन में बहुत उदास हुआ ॥ २ ॥

छप्पय—दूजे दिन महाराज, कथा मंदिर महि ठानी ।

फिर आवेंगे दरस, एह मन में अनुमानी ॥

उत प्रवीण वह चहत, अदब गुर लोग रहावें ।

उमें अति अभिलाष, फेर आवन नहिं पावें ।

सुरभाय चित कीनो मतो, कुसुम प्रत्य ऐसैं कही ।

मनुहारपत्र पहुँचो नहीं, आय बुलाये हैं वहीं ॥ ३ ॥

दूसरे दिन यह विचार किया कि पुनः मंदिर में दर्शन को आवेंगी, इस हेतु से महाराज ने मंदिर में कथा करना निश्चित किया । प्रवीण भी मिलने की इच्छा रखती थी, परन्तु गुरु जनों की मर्यादा के कारण रुक जाती थी चित्त में तो मिलने की बड़ी अभिलाषा रखती थी परन्तु फिर जाने नहीं पाती थी, जिससे चित्त में दुखी हुई, और फिर सोच कर कुसुमावलि से बोली कि हे कुसुमावलि ! तू तो अपने बुलाए हुए यहां आये है. परन्तु अपनी ओर से तो मनुहार का पत्र भी नहीं गया ॥ ३ ॥

सोरठा-पाती लिखि प्रवीण, मित सागर मनुहारकी ।

कुसुमावलि कर दीन, कहि प्रच्छन्न पहुँचाउ उत ॥ ४ ॥

इतना कह कर तुरन्त प्रवीण ने मित्र रससागर के लिए "मनुहार का पत्र" लिखा और कुसुमावलि के हाथ में देकर कहा कि इसे गुप्त रीति से वहाँ पहुँचाओ ॥ ४ ॥

छंद-माणवकाकीड.

पत्र प्रवीण सु किये, ब्रह्मसुता पान दिये । मित प्रती जाय दहे, एह पुनी वानि कहे । विप्रसुता उठी तबे, वानि सुनाई उयु सबे । आप इतें आय बसे, एक समे देष प्रसे । ऊदभवं ब्रह्म हमें, देव नितं जाय नमे । आप मंगायो सुरथं, लीन कुजाकं सु सथं । गोजुपुरे गोन किये, सिंधु मिले चाह हिये । देव प्रती थान गई, छाँड रथं गोने लई ॥ ५ ॥

प्रवीण ने पत्र तैयार कर कुसुमावलि के हाथ में दिया और कहा कि यह पत्र मित्र के हाथ में जाकर देना । आज्ञा सुन कर, तुरन्त ब्रह्मसुता कुसुमावलि उठी, और सबों से कहा कि आप लोगों ने इतने दूर से आकर एक बार ही देव-दर्शन किया परन्तु हम तो ब्राह्मण हैं इसलिए हमें तो नित्य जाकर देव-नमन करना चाहिये । इतना कह कर अपना रथ मंगवाया, साथ में रक्षक लिया, आप के द्वार से बाहर हो खली ! तथा मन में सागर से मिलने की इच्छा कर देवालय की ओर जाकर रथ से उतर, पैदल चलने लगी ॥ ५ ॥

सोरठा-देवालय प्रति जाय, अंदर कुसुम प्रवेश किय ।

सागर दरस सु पाय, चित में अति हरखित भई ॥ ६ ॥

मंदिर में जाकर, अन्दर के भाग में कुसुमावलि ने प्रवेश किया । वहाँ सागर का मनोहर दर्शन प्राप्त कर, हृदय में अति आनन्दित हुई ॥ ६ ॥

श्रीपति बंदन कीन, पुनि गोस्वामी प्रति गई ।

पाती पान प्रवीण, बीरि व्याज आगे घरी ॥ ७ ॥

श्रीपति की वन्दना करके फिर गोस्वामी के पास गई और वहाँ प्रवीण के हाथ का पत्र (पान) बीड़ा के बहाने से महाराज के सामने रखवा ॥ ७ ॥

चौपाई—तब महाराज कहन तिहि लगगे, तुम को रहत कौनसी जगगे ।
उन कहि हमही विप्र कहावें, मनछापूरी सु मध्य रहावें ॥
कलाप्रवीण संग इत आई, बड़े भाग दरशन निज पाई ।
मंद मंद दोऊ मुसकाये, महाराज इतिहास चलाये ॥
पूरण एह प्रसंग ज्यु कीनो, प्रच्छन पत्र बीरि सैं लीनो ॥ ८ ॥

तब महाराज पूछने लगें, तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो ? कुसुमावलि ने उत्तर दिया कि—मैं ब्राह्मण हूँ !! और “मंछापूरी” रहती हूँ । राजकुमारी कलाप्रवीण के साथ यहाँ आई हूँ !! । हमारे धन्य भाग्य हैं—कि आप का दर्शन हुआ । दोनों मंद-मंद मुसकाने लगें, फिर महाराज ने कथा प्रारंभ की और वह प्रसंग पूरा करके, पान के बीड़े में से छिपा हुआ पत्र लिया ॥ ८ ॥

सोरठा—वह पाती कर धार, बांचन लगे ब्रजराज जू ।

उर आसय मनुहार, लखियत कलाप्रवीण जू ॥ ९ ॥

पत्र हाथ में लेकर ब्रजराजजी बांचने लगे । उस में कलाप्रवीण ने मनुहार के रूप में इस प्रकार लिखा था ॥ ९ ॥

अथ वहपाती किंचित्—उदाहरण—दोहा.

सुरत सुरत लागी रहत, पागी रहत सनेह ।

विरह ज्वाल जागी रहत, दागी रहत सुदेह ॥ १० ॥

तुम्हारी दृष्टि में हमारी दृष्टि लगी रहती है !!! और स्नेह से भरपूर लगी हुई है !!! । विरह की ज्वाला लग रही है !!! जिसमें देह जलती रहती है ॥ १० ॥

यथासंख्यालंकार—सवैया.

नैनन नीर सने ब्रह्म संकट, साधन ओध उदास उसासी ।

धीरजता जू प्रभा सुख सेज, विचच्छनता अरुप्रज्जन हासी ॥

(१) यथासंख्यवर्णनविधौ वस्तुअनुक्रमसंगः का० प्र० ११६ ।

गान विधान क्रिया मद्यपान, ब्रषा घन चंदन चंद प्रकाशी ।

सागर मित बड़े हैं घटे हैं, भए न सुहावत प्रान बिनासी ॥ १६ ॥

हैं मित्र सागर ! तुम्हारे वियोग में मेरेमें आठ वस्तुएं बढ़ती हैं और आठ ही घटी हुई हैं चार तो मरण तुल्य भयकारी हो रही हैं !!! जिसे जरा भी चैन नहीं !! वे, ये, हैं-नेत्र का नीर, स्नेह, विरह, संकट, साधन, अवध, उदासी और उदास, ये आठ वस्तुएं बढ़ी हैं । धैर्य, प्रभा-कान्ति, शय्याकासुख, विचक्षणता, मुसकान, गायन का विधान, क्रियाशीलता और मद्यपान, जैसी आठ वस्तुएं घट रही हैं । वर्षा, कपूर, चन्दन और चन्द्रप्रकाश ये चार वस्तुएं तो प्राणनाशक हो रही हैं !! इससे मुझे चैन नहीं पड़ता है ॥ ११ ॥

लोकोक्ति-अलंकार-सवैया.

याद छबी न कबी विसरे अरु, जो करनार करी सु सहेहे ।

भागमें या गति जो लों लखी है, तबै लागि अंग अनंग दहेहे ॥

प्रान पयान कियो नित चाहत, आस्य विलोकन आस रहेहे ।

बीतत सो न लखी बनिहै, कहो ? सागर मित मिलंत कहहे ॥ १२ ॥

आप की छवि की स्मृति कभी भी भूलती नहीं हूं और कर्तार ने जो कुछ सुख या दुःख दिया है, उसे भोग रही हूं । जहां तक हमारे भाग्य में यह गति लिखी है !! वहां तक अनंग कामदेव, अंग को जलावेगा । प्राण तो निरन्तर चले जाने को उत्सुक हैं !! परन्तु आप के दर्शन की इच्छा से रुक रहे हैं । जो जो दुःख बीत रहा है, सो लिखजाने योग्य नहीं है । हे मित्रसागर ! कहो ? कब मिलोगे ?? ॥ १२ ॥

दोहा-नैना चाहत निरखबो, श्रवन सु चाहत बात ।

कर चाहत पद परसबो, यह विधि निशादिन जात ॥ १३ ॥

ये आंखें देखना चाहती हैं, कान बातें सुनना चाहते हैं, हाथ चाहते हैं-स्पर्श करना, इस प्रकार दिन रात बीत रहे हैं ॥ १३ ॥

पाती लिखित प्रवीण बचि, मानी सब मनुहार ।

कहिपत नाम सिलोकको, आपे लिखी उदार ॥ १४ ॥

प्रवीण के लिखे हुए पत्र को पढ़ कर और सब मनुहार स्वीकार करके, श्लोक लिखने का पत्र निकाला और उदारतापूर्वक पत्र लिखा ॥ १४ ॥

छप्पय—आप प्रसादी बसन, पत्र छहरे सु कीनो ।

कुसुम बिदा जब कीन, तबे उनकों वह दीनो ॥

बंदन किय ब्रजराज, बाल अवमोचन आई ।

प्रच्छन्न भेद प्रवीण, पान पाती बकसाई ॥

ब्रजराज रूप वर्णन कियो, जब इकंत चरचा जगी ।

अभिलाष चित आनंद भरि, बाला उन बंचन लगी ॥ १५ ॥

अपने प्रसादी के दुपट्टा के कोने में वह पत्र बांध दिया, और जब कुसुमावलि को जाने की आज्ञा दी तो, उस पत्र सहित दुपट्टा कुसुमावलि के हाथ में दे दिया । कुसुमावलि ने ब्रजराजजी महाराज को प्रणाम कर अपने मुकाम पर आई । वह गुप्त भेद वाला पत्र, गुप्त रूप से प्रवीण के हाथ में दिया । एकान्त में जब चर्चा चली, तो कुसुमावलि ने ब्रजराजजी के रूप का वर्णन किया ! जिसे सुन कर अभिलाषा तथा आनन्द में मग्न होकर बालारूप प्रवीण वह पत्र बांधने लगी ॥ १५ ॥

सोरठा—बांच्यो सह बिसतार, पाती भेद प्रवीण ज्यु ।

उनको कछु उदार, कहु प्रकार संक्षेप करि ॥ १६ ॥

प्रवीण ने पत्रिका विस्तार रूप में पढ़ी, वह उदाहरण रूप में उस का कुछ भाग संक्षेप में कहते हैं ॥ १६ ॥

वह पाती भेद, समरूपक अलंकार—सवैया.

टंक कुठार मलेच्छ करे विधि, सोधत मूल सबै मुख छीने ।

अंकाकि धातु ढराय तहीं धरि, प्राव विचार चुनाय गचीने ॥

राततें रात भये लों करे यह, राततें रात प्रभा पुनि कीने ।

पल्लव चाह बड़े प्रति वासर, प्रेम प्रयाग प्रवीन नवीने ॥ १७ ॥

लोग में देवकथा इस प्रकार चलती है कि-हिन्दू देवालयों का नाश करने वाला अलाउद्दीन ने जब सुना कि एलाहाबाद में अक्षय वट में वह शक्ति है कि कोई उस का नाश नहीं कर सकता । वह म्लेच्छ वहां गया और उस वटवृक्ष का जड़ मूल से काट खोदा और ऊपर से गला हुआ शीसा ढलका दिया, फिर उसके ऊपर संगीन पत्थर का चबूतरा बनवा दिया, परन्तु दूसरे दिन सबेरा होते ही वह वटवृक्ष जितना पाहिले था उतना ही बड़ा हो गया । फिर दिन में उसने उसी प्रकार कटवा दिया और रात में फिर वटवृक्ष निकल कर सबेरे वैसा ही हो गया । इस प्रकार कितने ही दिन चलता रहा, परन्तु वटवृक्ष का नाश नहीं हुआ । यही उदाहरण यहां सागर देते हैं कि हे प्रवीण ! मेरे स्नेहरूपी वटवृक्ष का ब्रह्मारूपी म्लेच्छ कुहाड़ा से काट कर उसकी सुखरूपी जड़ों को ढूँढ कर काटता है, ऊपर से कर्मरेख रूपी गाला हुआ शीशा ढालता है, विचार-रूपी चूना और पत्थर का चबूतरा बनाता है । इस प्रकार प्रभात से मायंकाल तक करता है, और फिर संध्या से सबेरे तक !!! तो भी फिर वह वट-वृक्ष अपनी पूर्व अवस्था में प्रकट हो आता है । हमेशा चाहना रूपी पल्लव बढ़ती रहती हैं । इस प्रकार का यह प्रेमरूपीप्रयागवट, हे प्रवीण ! सदा नवीन ही रहता है ॥ १७ ॥

एकावलि अलंकार-सवैया.

पतियां न विधान किते पठऊं, पथ वान उयों प्रान बढे रतियां ।

रतियां दिन ध्यान भरे रहिये, सहिये विधि अंकनकी गतियां ॥

गतियां वह जान हिगो न हहा, जिनके नहि छेद भये छतियां ।

छतियां कि सबे भतियां तुम जानत, कैसे प्रवीण लिखों पतियां ॥ १८ ॥

किस २ प्रकार का पत्र लिख कर भेजूं ! पार्थ के बाण के समान !!! (अर्थात् एक बाण छोड़े और मार्ग में अनेक हो जावें) प्राण में रात बढ़ती उगती है अथवा प्राण (श्वासोच्छ्वास) और रात्रि तुम्हारे वियोग से बढ़ते जाते हैं ।

रात दिन तुम्हारी रटन लगाए रहते हैं । जिनके छाती में छेद (स्नेह की हूक) नहीं, वह इस गति को क्या जाने । परन्तु तुम मेरे हृदय की सब बातें जानती हो, इसलिए हे प्रवीण ! पत्रमें कैसे लिखें ? ॥ १८ ॥

छेकानुमास अलंकार—कवित्त.

जबतें मिल्यो है मन, तबतें निवास बन, सबतें उदास मुर, भायि रही मति-यां । थर्क थर्क अंग रोम, भर्क भर्क ज्वाला जगे, सर्क सर्क प्रान होत, धर्क धर्क छतियां । पीरको निदान काहू, आनपै न कछो जात, रह्यो है ज्यु प्रान कलम, रोसनाई पतियां । कहो होहो चितकी, प्रवीन ज्यु कहोगे कब, अहो होहो मितरे, एकंत बैठि वतियां ॥ १९ ॥

जबसे मन मिला है तबसे रहने का घर बन के समान वीरान हो रहा है, सब से उदासीनता हो गई है और बुद्धि मुरझा गई है । शरीर में रोमांच होता है, विरह की ज्वाला भकभक जलती रहती है, प्राण सर्क २ पकाए रहते हैं, छाती धड़कती रहती है, दुःख का निदान किसी से कहा नहीं जाता, प्राण हमेशा कलम स्याही और पत्रिका में वसा रहता है । हे प्रवीण ! कहो, अब एकान्त में बैठ कर मन की बात कब कहोगी ? ॥ १९ ॥

स्वभावोक्ति अलंकार—सवैया.

आजहु लों बहरावत हो कहा, आगेकी याद करो सिगरी ।
चातुर हो सु विचार धरो तुम, औसर आवहिगो न फिरी ॥
केबनहार पुकार कहे अब, बीतत सोय घरी गुजरी ।
मित प्रवीण कहो किहि कारण, प्रेमकी बात विसार धरी ॥ २० ॥

आज तक कैसे भरमाती हो ? पहिलेकी सब बातें तो याद करो ! तुम चातुर हो तो सोचो तो सही !! यह अवसर फिर नहीं आने का ! कहने वाले पुकार

(१) द्वैकि अधिक वर्णानि की, आवृत्ति जहां लखाय । सो छेकानुमासकवी० काव्य प्रभाकर पृ० ४७४

(२) स्वभावोक्ति तहँ जानिये, जहँ सुभाव कही जाय० । का० प्र० पृ० २६४

पुकार कहते हैं कि जो घड़ी गई सो गई । हे मित्र प्रवीण ! कहो, किस कारण मे प्रेम की बात भूल कर रख दिया है ? ॥ २० ॥

शिक्षाक्षेप अलंकार—सवैया.

तापर या उपचार कियो तुम, आवनकी पठई ज्यु लिखावे ।
आये न आये रहे अजहु लागि, नेह कहो किहि भांति निभावे ॥
गोख भरोखन टेरत हेरत, आनन बानि कहूँ नहि पावे ।
अमृत बीच जहेर करो कह, मित प्रवीन मेहेर न आवे ॥ २१ ॥

तुमने यहां आने के विषय में जो पत्र लिख भेजा, उस पर हमने यह उपाय किया, परन्तु अब तक आना न आना एकसा रहा, तो बताओ किस प्रकार स्नेह का निर्वाह करें ? गोखड़े और भरोखे में बैठ कर पुकारते और देखा करते हैं परन्तु तुम्हारे मुख की बाणी कहीं मिलती नहीं । अमृत में विष क्यों करती हो ? हे मित्र प्रवीण ! तुम्हें दया नहीं आती ? ॥ २१ ॥

अनन्वयालंकार—सवैया.

अंतर बृक्ष विवेक रहे चित, टेक अरूभ रहे अपनी में ।
साधनमें भरपूर रहे चक, चूर रहे मनकी मगनी में ॥
प्रेमप्रभा विसतार रहे निर, धर रहे श्रुति शून्य धुनी में ।
शोधत और मिल्यो न हमें कोउ, मित प्रवीन प्रवीन दुनी में ॥ २२ ॥

अन्तर में विवेकयुक्त समझते रहते हैं, मन में अपनी टेक में फंसे रहते हैं, भरपूर साधन में संलग्न हैं, अपने मन में आनन्द में मग्न रहते हैं, प्रेम की प्रभा विस्तारित करते रहते हैं, शून्य (आकाश) की ध्वनि में कान लगाए रहते हैं, इस प्रकार सदा शोधते हैं परन्तु प्रवीण के समान चतुर हमें संसार में कोई नहीं मिला ॥ २२ ॥

दृष्टांतालंकार—दोहा.

लिखबेमें जानी परत, प्रेम पुरानी बात ।

ऐसेमें जल कमल गति, अवधि बढ़ी कह जात ॥ २३ ॥

लिखने में तो तुम्हारे प्रेम की बात पुरानी प्रतीत होती है, परन्तु ऐसा होते हुए भी मिलने की अवधि जल के कमल की भांति कैसे बढ़ती जाती है? अर्थात् ज्यों २ जल बढ़ता है त्यों २ उस में कमल भी बढ़ता जाता है, इसी प्रकार मिलने की अवधि बढ़ती जाती है ॥ २३ ॥

विनोक्ति—अलंकार—दोहा.

चातुक तलफत बूंद बिन, जल बिन तलफे मीन ।

चकित चकोरा चंद बिन, यों बिन दरस प्रवीण ॥ २४ ॥

चातक वर्षा के बूंद के बिना, मछली पानी के बिना और चकोर चन्द्रमा के बिना जैमे तड़फता है वैमे ही प्रवीण के दर्शन बिना भरा मन तड़फता है ॥ २४ ॥

ज्यों ज्यों अति बीतत विपनि, त्यों त्यों दहियत देह ।

चहियत कब मुख देखहुं, नैनन भरे सनेह ॥ २५ ॥

ज्यों २ आपत्ति * बढ़ती जाती है त्यों २ शरीर जलता है और चाहना यह होता है कि स्नेह भरे तुम्हारे मुख का दर्शन कब करें !!! ॥ २५ ॥

सोरठा—बात विचारहु चिंत, प्रेमपंथ लाओ सुरत ।

बोत भई अब मित, मन ज्यों तन मिलवन नहीं ॥ २६ ॥

हे मित्र ! मन में बात का विचार करो !! और प्रेम के मार्ग में मन को

* हमारे खयाल में यहां ' विपत्ति ' के स्थान पर ' अवधि ' होना चाहिये जिससे यह अर्थ होगा कि ' ज्यों २ अवधि बीतती है त्यों २ शरीर जलता है ' । ग० ज० शास्त्री

लगाओ !! अब तो यह बोत हुई है कि—सन के समान तन का मिलना नहीं होता ॥ २६ ॥

सुरत माल गुन ग्राह, उरनिवान सुमती सलिल ।

बढ़त प्रेम परवाह, चढ़त जात कागद घरी ॥ २७ ॥

सुरतरूपी घाटीयंत्रकी माला में बंधी हुई पत्रिका रूपी घटिका ज्यों २ चढ़ती जाती है त्यों २ हृदयरूपी कूप में से सुमति रूपी पानी का प्रेमरूपी प्रवाह बढ़ता है ॥ २७ ॥

सागर पत्र प्रवीण, बांचत भये सु वाउरे ।

दशा (सुवन) सलेल विन मीन, कब मिलवन करता करे ॥ २८ ॥

सागर का इस प्रकार का पत्र पढ़ती पढ़ती प्रवीण, बावरी हो उठी और जल से बाहर मीन की दशा जैसी होती है वैसी उस की हो गई और कहने लगी हे करतार ! कब मिलना होगा ?? ॥ २८ ॥

उर उसास बढ़ि आय, छिन छिन जल दरसित द्रगन ।

धीरज कुसुम द्रढाय, बतियां को लगवत बहुर ॥ २९ ॥

हृदय में उसास बढ़ गया, आंखों में लण २ में आंसू दीखने लगे । कुसुमावलि ने धैर्य धराया और फिर बातों में लगाने लगी ॥ २९ ॥

गाहा—पठवन पत्र प्रवीण, सागर कुसुम संग प्रति उत्तर ।

चहुंपचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

प्रवीण का पत्र कुसुमावलि द्वारा भेजा जाना तथा सागर की ओर का उत्तर संबन्धी प्रवीणसागर की यह चौपनवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३० ॥

५५ वीं लहर

अथ देवालयकलाप्रवीणरससागरमिलनप्रसंगो यथा-सोरठा.

इहि विधि दुहु तलफंत, बढत विरह दूनी दशा ।

उच्छव अहर व्रतंत, मिलबो द्रढ मंदिर सु किय ॥ १ ॥

इस प्रकार दोनों वियोगी तड़फते रहे तथा विरह की दशा दूनी बढ़ गई ।
उत्सव का दिन बीता और मंदिर में मिलने का दृढ़ निश्चय किया ॥ १ ॥

छप्पय-यहै चित्त धारंत, घोस आगम सु विहाये ।

जन जन मन हरखंत, दीप-उत्सव दिन आये ॥

घाट घाट प्रति प्रात, लोग गुरुजन दुज जज्जे ।

दर भल्लर अरु घंट, नाद नौबति के बज्जे ॥

उत्साह चाह अभिलाखियन, चढत घोस त्यों त्यों चढ़े ।

सागर सु ओर परवान उर, उप परसन आशा द्रढ ॥ २ ॥

इस प्रकार चित्त में मिलने का धारण किया और उत्सव का पूर्ण दिन बीता,
दिवाली का दिन आया । दिवाली का दिन आने में हरके के मन में प्रसन्नता
हुई । घाट २ पर प्रातःकाल में लांग, ब्राह्मणों और गुरु जनों की पूजा करने
लगे । शंख, घड़ियाल, घंटा और नगारे बजने लगे । ज्यों २ दिन चढ़ने लगा
त्यों २ अभिलाषी जनों के मन में उत्साह और चाहना बढ़ने लगी । सागर
और प्रवीण के मन में भी परस्पर मिलने की आशा दृढ़ होने लगी ॥ २ ॥

सोरठा-निज निज सजत निवास, पुरजन मन आनंद अति ।

होत कुलाहल हास, दिनमनि नय संध्या दिसत ॥ ३ ॥

नगरनिवासी लोग मन में अति आनन्दित होकर अपने २ निवासस्थान सजाने
लगे । सूर्य को अस्त होते देख लोगों में कोलाहल और उल्लास होने
लगा ॥ ३ ॥

अथ—सहोक्ति—अलंकार—छंद पद्वरी.

ज्यों ज्यों दुरंत दिनकर प्रताप, त्यों त्यों घटंत विरहा प्रलाप । ज्यों ज्यों सुरंग अंबर प्रकाश, त्यों त्यों शरीर शोभा बिकाश । ज्यों ज्यों बिकाश बन बेलि बाग, त्यों त्यों उजास प्रेमानुराग । ज्यों ज्यों सरोज कुमलात जात, त्यों त्यों वियोग मनसैं बिलात । ज्यों ज्यों लगंत चिरियां उचार, त्यों त्यों सजंत कुमरी सिंगार । ज्यों ज्यों वजंत शंखान राव, त्यों त्यों सधंत रस हावभाव । ज्यों ज्यों भनंक भल्लरिय होत, त्यों त्यों चढंत तन रूप जोत । ज्यों ज्यों प्रकाश तारिका कीन, त्यों त्यों अनंग रस रंग भीन । ज्यों ज्यों चिराक जगमे उजास, त्यों त्यों समीप धारंत आस ॥ ४ ॥

ज्यों २ सूर्य का तेज कम होता त्यों २ विरह का प्रलाप घटने लगा । ज्यों २ आकाश में सुंदर रंग की आभा होने लगी, त्यों २ शरीर की शोभा विकसित होने लगी । ज्यों २ बाग बगीचों में वेल्लताएं विकसित होने लगीं, त्यों त्यों प्रेमानुराग की प्रभा पूर्ण होने लगी । ज्यों २ कमल कुम्हलाने लगे त्यों २ वियोग भी मन में मुर्झाने लगा । ज्यों २ चिड़ियां चहचहाने लगीं, त्यों २ राजकुमारी शृंगार सजने लगी । ज्यों २ शंख का नाद होने लगा, त्यों २ इससे हाव भाव होने लगा । ज्यों २ झालर की झनकार होती त्यों २ शरीर में रूप की ज्योति विकसित होती । ज्यों २ तारिकाएं प्रकाशित होने लगीं त्यों २ स्त्री पुरुष रतिराज के रमरंग से सराबोर होकर लथपथ होने लगे और ज्यों २ दीपक में प्रकाश होने लगा, त्यों २ मित्र के समीप जाने की आशा दृढ़वती होने लगी ॥ ४ ॥

दोहा—सांभ भई श्रीपति सदन, दीपमाल जगि जोत ।

भीर भार दरसन भई, कोलाहल जन होत ॥ ५ ॥

संध्या हुई और श्री लक्ष्मीनाथ के मंदिर में दीपमाला की ज्योति जगी । दर्शन के लिए आने वाले लोगों की भारी भीड़ हुई और कोलाहल होने लगा ॥ ५ ॥

कछुक भीर दरशी सु कम, आय तहां ब्रजराज ।

सोर बरज कीनो तहां, नाटिक गान समाज ॥ ६ ॥

कुछ भीड़ कम हुई दिखाई पड़ी, तब वहां महाराज ब्रजराज पधारे । हल्ला गुल्ला बन्द कराया और नाटक—कथा—गायन आदि का धूमधाम प्रारंभ हुआ ॥ ६ ॥

श्रीपति के प्रविशत सदन, अस्तुति करी बनाय ।

दश अवतार चरित्र शुभ, छंद त्रिभंगी लाय ॥ ७ ॥

श्री लक्ष्मीपति के मंदिर में बैठते समय महाराज ने दश अवतारों का शुभ चरित्र त्रिभंगी छंद में रचवा कर स्तुति की ॥ ७ ॥

अथ—रससागरोक्त श्रीपतिस्तुति—छंद त्रिभंगी.

मीनाकृति धारा, शोधिय बारा, शंख प्रकारा, रिपु मारा । बेधा किय सारा, खेद अपारा, लच्छ निहारा, श्रुति बारा । इच्छा निज चिंतं, कोला कुंतं, अंबु अनंतं, शोधंतं । दानवपति हंतं, जुद्ध जियंतं, धर धारंतं, निज दंतं । कोरंभ कहाया, आसुर माया, देव बुलाया, सब आया । सिंधू मथवाया, श्रम्म कराया, रतन उपाया, बंटाया । सिंहा तनु धारं, थंभा फारं, कश्यपु मारं, नखरारं । प्रल्हाद उगारं, मुक्ति दतारं, जय मुनि सारं, उच्चारं । राजा बलि जगं, धारिय तगं, भुवपति अगं, भुव मगं । किय रूप अथगं, ब्रह्मंड लगं, त्रिभुवन पगं, त्रय डगं । रूप मुनि सद्धं, फरसा युद्धं, शस्त्रा बद्धं, किय युद्धं । मंडल महि मद्धं, चात्रि-विरुद्धं, वसुधा लद्धं, दुज दद्धं । राघो कुल भानं, नीति द्रढानं, सीत हरानं, धर वानं । सागर हतमानं, कपि रिच्छानं, रावन थानं, उथिया-नं । जासों उजयासं, प्रेम प्रकाशं, विविध विलासं, ब्रज बासं । कंसादिक नाशं, पंडव दासं, विषय निकासं, द्रढ तासं । बुद्धा व्रतमानं, धृत निज ध्यानं, गैब गिनानं, उदयानं । सेवा चरचानं, अस्तुति बानं, सुनत न कानं, अशुभानं । निकलंक चरित्तं, श्रुति समरित्तं, मुनिगन गित्तं, भाषित्तं । अदली कृत नित्तं, दमन दइत्तं, निज जग हित्तं, राखित्तं । सृष्टि

महि सखखं, अगम अलखखं, प्रकृति पुरुखखं, श्रवं मखखं । पंखा नन प-
खखं, दलियत दखखं, निगम निरखखं, परतखखं । सुंदर वर शामं, गरुडा-
गामं, कौस्तुभ दामं, अभिरामं । श्री मन विश्रामं, धुनि रस धामं, क्रत
मम कामं, शिर नामं ॥ ८ ॥

मछली की आकृति में मत्स्य अवतार धारण कर, जल शोधन करके, शंखासुर नामक शत्रु को मारा। अपार खेद में पड़े हुए ब्रह्मा की महायत्ना के लिए अथाह समुद्र में जाकर—लक्षण देखकर, वेदों को निकाला, अपनी इच्छा से वाराह अवतार धर कर, अगाध समुद्र के अथाह जल का शोधन कर, दानवपति हिरणाक्ष को मारा और युद्ध में विजयी होकर अपने दाढ़ों पर पृथ्वी को धारण किया। कूर्म अवतार धारण कर मायावी असुर और देवों को बुलाया, जब सब आगए तो उन से सिन्धु का मंथन कराया और उसमें से निकले हुए चौदह रत्नों को पांटा। नरसिंह अवतार में खंभ फाड़ कर निकले और नख से हिरण्य-कश्यप को मार कर ब्रह्माद की रक्षा की जिससे सब ऋषि मुनियों ने मुक्तिदातार प्रभु का जयजयकार किया। बलि राजा के यज्ञ में वामन रूप धारण कर गए और उस राजा से साढ़े तीन पग पृथ्वी दान में मांगी। जब वह देने लगा तो अति अद्भुत विराट् रूप धारण कर सारे ब्रह्माण्ड में व्याप गए और तीन पग में तीनों भुवन ले लिये। मुनि का रूप धर (परशुगम अवतार धारण कर) परमा का शस्त्र लेकर सहस्रार्जुन से युद्ध किया और क्षत्रियों के विरोधी होकर ममस्त भूमि क्षत्रियों से छीन कर ब्राह्मणों को दान दे दिया। उसके बाद राजा रघु के कुल में रामावतार धारण कर नीति को दृढ़ किया। सीता का हरण हुआ उस समय धनुष बाण धारण कर प्रथम सागर का मान भंग किया और फिर रीछ व वानरों की सेना लेकर रावण की पुरी (लंका) का विध्वंस किया। कृष्ण अवतार धारण कर प्रेम का प्रकाश रखने वाले व्रजवासियों के साथ नाना विधि क्रीड़ा व विलास किया। केशी आदि पापियों का नाश और अपने भक्त पांडवों की विषयवासना निकाल कर राज्यगद्दी पर उन्हें दृढ़ किये। फिर महाव्रती बुद्ध अवतार लेकर अपने ध्यान में मग्न होकर ज्ञान प्रकाश किया और सेवा, अर्चा-

स्तुति व अशुभ वाणी कान से नहीं सुनते थे । अब होने वाला अवतार कल्कि है !! जिसके चरित्र को हमेशा ऋषि मुनि स्मरण करते हैं !! मुनिजन उनके गुणानुवाद गान करते हैं कि वह सभी नीति का निर्देश करेंगे । इस प्रकार अगम्य और अलख सृष्टि के सखारूप जो अवतार धारण करते हैं वह निर्गुण रूप है । प्रकृति पुरुष रूप, सकल यज्ञ रूप, बिना पक्ष के पक्ष रूप, दुःख के नाशकर्ता, वेद जिन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं ऐसे सुन्दर भेष, घनश्याम, गरुडामाम, सुन्दर कौस्तुभमणि की आभा को धारण करने वाले, श्री (लक्ष्मी) के मन के विश्राम, रस की नदी के धाम रूप, मन की इच्छा को पूरा करने वाले, हे द्वारिकाधीश ! मैं मस्तक झुका कर आप की वन्दना करता हूँ ॥ ८ ॥

सोरठा-पूजन किय गोस्वाम, हरिबंदित अस्तुति करी ।

द्वार निकट उन धाम, आसन किय ब्रजराज जू ॥ ९ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके गोस्वामी ने पूजन किया । हाथ जोड़ हरि की वन्दना की और प्रीतिपूर्वक स्तुति की फिर देवालय के द्वार के समीप आसन लगा कर ब्रजराज श्री महाराज विराजमान हुए ॥ ९ ॥

नट नाटिक सु समग्र, दीपमाल दिश दिश जगी ।

आपहि हे सिध नग्र, उपमा कह ताकी कहे ॥ १० ॥

नट नाटक आदि अनेक मनोरंजन के खेल होने लगे और चारों ओर दीपमाला हुई जिसकी तेजस्वी कान्ति जगमगाने लगी । इस प्रकार जो द्वारा-मती, सिद्ध का नगर है उसकी उपमा क्या कहें ?? ॥ १० ॥

वही बखत परवीण, आवन दरससु अहरिय ।

सासन मंत्रिय लीन, सजन लगे सिंगार तन ॥ ११ ॥

इस समय दर्शन को आने के लिए प्रवीण, अपनी मंत्रिणी को लेकर शरीर पर शृंगार धारण करने लगी ॥ ११ ॥

कलाप्रवीणसिगारवर्धन-छंद भुजंगप्रयात.

किये मंजन नारि सिंगार सज्जे, सुरी आसुरी रूप आलोकि लज्जे । ल-
हैमा लसे सोसनी तार गची, कसे अंगिया नील सुन्नेरी भची । कसुंकी
भरे तारिका चंद्रसारी, भरे छेहरे तार सारं किनारी । नखंते शिखा हेम
सिंगार ब्रन्ने, जरे मानिकं मोतियं हीर पन्ने । लगे बीछुबा जेव मंजीर बज्जे,
धुनी किंकनी घुघरु घोर गज्जे । उरं बीच उत्साह आनंद बज्जे, चली देवके
देहरे चाकि चट्ठे । सहेली सबै आपके संग लीने, किये जावदा साथ पेवान
कीने । महाराजके धान समीप आये, इते चेरियां जाय आगे सुनाये ।
अवाजं यह ब्रह्मचारं सुनावे, जनाना इते बंदनं काज आवे, सबे लौंगसें
ब्रह्मचारी उचारे, करो चोक खाली जनाना पधारे । लगे चोपदारं सबे लोग
कट्ठे, गुसाईं विराजे ब्रह्मचारी ठट्ठे ॥ १२ ॥

प्रथम स्नान करके प्रवीण अपने शरीर को सजाने लगी । उस समय उसका
रूप देख कर सुर और असुरों की स्त्रियां लजित होने लगीं । आसमानी रंग का
सुनहरे तारों का लहंगा, सुन्दर सुनहरे तारों से भरी हुई सुनहरी रंग की
कंचुली कस कर पहिन ली । कसुंबल रंग की सितारों से जड़ी हुई चन्द्रकला
धारण की, जिसके सिरे और किनारे चमचमाते सोने के तारों से भरे हुए थे ।
इस प्रकार नख से शिखा पर्यन्त सोने के आभूषणों से सुसजित हुई, जिन में
माणिक, मोती, हीरा आदि जड़े हुए हैं । पग में पहिने हुए नाजुक बिछुवों में
घुंघरू बजते हैं । कटि मेखला की घुंघरू रमकम २ करती ऐसी हृदय में उत्साह
का आनन्द बढ़ता है । इस प्रकार वह नवयौवना बालारूप प्रवीण, रथ पर
बैठ दर्शन के लिए देवमंदिर को चली । जिस के साथ की सहेलियां बड़े क्रम
के साथ चलने लगीं । जब मंदिर के समीप आईं तो सहेलियों ने मंदिर में
आगे जाकर ब्रह्मचारीजी को सूचना दी, कि यहां राजा के अन्तःपुर वाली
रनिवास की रानियें दर्शनार्थ आती हैं । यह सुन कर ब्रह्मचारी ने सब लोगों से चौक
खाली करने को आज्ञा दी और कहा कि पर्दानशीन स्त्रियें आती हैं । चोबदार भी
सब लोगों को बाहर करने लगा, परन्तु गोस्वामीजी महाराज वहां बिराजे रहे और
ब्रह्मचारी भी खड़े रहे अर्थात् बाहर नहीं गए ॥ १२ ॥

दोहा—ब्रह्मचारि बोले बहुरि, निर्जन किय हरि खान ।

किंकरि जाय बुलाइये, आवे अबै जनान ॥ १३ ॥

तब ब्रह्मचारी ने कहा कि अब हरिमंदिर मनुष्यों से रिक्त (खाली) हो गया है, तो हे दासियो ! अब रनवास को दर्शनार्थ बुलाओ ॥ १३ ॥

छप्पय—ब्रह्मचारि सुनि बानि, सहचरी कुमरि सुनाई ।

चली उतरि चकडोल, गिरत जवनिका तनाई ॥

वनिता मिलेसु ब्रंद, करत परिहास इके इक ।

सजित सकल सिंगार, नेन सायक रतिनायक ॥

कुल रूप भेख संमान सह, द्वार चौक मिल नेहरे ।

गुरुजन जनान भंखी तितें, बहुरि निहारो देहरे ॥ १४ ॥

ब्रह्मचारी की यह वाणी सुन कर सहचरियों ने राजकुमारी को जाकर कह सुनाया ॥ तब प्रवीण रथ से उतरकर, चल ने लगी । चारों ओर कनात तन गयी । वनिताओं का वृन्द टोली बन २ कर आपस में हंसी—मसखरी करने लगी । ये सब सुन्दर शृंगार से सुसज्जित हैं और इन के नेत्र कामदेव के तीक्ष्ण शर के समान चपल हैं, कुल, रूप तथा वेशभूषा में वे सब समान हैं, इन सब साखियों के साथ में प्रवीण, चौक के द्वार के पास खड़ी हुई, तब वृद्ध जनों ने कहा कि एक बार फिर देखलो कोई अन्दर तो नहीं है ॥ १४ ॥

अथ—छंद—इन्द्रवज्रा.

बानी सुनी ब्रह्मसुता उचारे, ठाढे रहो जाय हमें निहारे ।

बाला सबै ताम विलंब कीनी, ब्रह्मीनसे जाय बिदाय दीनी ॥

कीन्हों प्रवेशं कुसुमं सु डेरे, देवं दुहारं ब्रजराज हेरे ।

अंद्रं ब्रह्मचारि निजं सु ठक्रे, ब्रह्मी मतो कीन उने सु कहे ॥

भंखी उभे मध्य इकं रहिये, देवालये ताम जनान आवे ।

बानी तबै ब्रह्मचरं सुनाई, ऐसे इमान इत क्यों सु आई ॥

श्रीनाथ के नीठ हमें रहावे, गोस्वामी आपै उन विर्द कावे ।
तासे कहो एक बहिर जाओ, जावे कितैं आप न आओ आओ ॥
गोस्वामिसे ब्रह्मनि सेन कीनी, आपै न जावे सु ब्रजेश चीनी ।
पीछी फिरी बाल जनान आई, ऐसी कथा बृद्ध जनी सुनाई ॥ १५ ॥

इतना सुनकर ब्रह्मसुता कुसुमावलि बोली कि तुम सब यहां ठहरो, मैं अन्दर जाकर देख आती हूं । सब स्त्रियां वहां ठहर गईं और ब्रह्मकन्या को अन्दर जाने की आज्ञा दी । कुसुमावलि जब सुन्दर द्वार में गई तो द्वार के समीप ब्रजराजजी महाराज पर दृष्टि पड़ी और अन्दर अकेले ब्रह्मचारी को खड़ा देखा । कुसुमावलि ने सोचा कि ब्रह्मचारी को यहां से निकालना चाहिए । ऐसा सोच कर बोली कि आप दोनों में से एक व्यक्ति रहो तो देवालय में जावें । ब्रह्मचारी ने कहा कि ऐसा है तो यहां तक कैसे आई ? हम तो श्रीपति द्वारकाधीशजी के समीप रहने वाले हैं, और ये जो स्वामीजी हैं सो महाप्रभु के बिरद कहाते हैं । और तुम कहती हो कि एक जन बाहर चले जाओ । तुम्हें आना हो तो आवां !! चाहे न आओ, हम कहां जावें ? फिर कुसुमावलि ने गोस्वामीजी को इशारा किया कि चाहे जो होवे परन्तु आप यहां से न जावें । ब्रजेशजी महाराज इशारे को समझ गए । फिर कुसुमावलि वहां से लौट कर सब समाचार बृद्ध रानियों को सुनाने लगी ॥ १५ ॥

सोरठा—गोस्वामी ब्रजराज, एक ब्रह्मचारी उते ।

श्रीपति विरद समाज, वह समीप नित मति रहे ॥ १६ ॥

उसने कहा कि वहां गोस्वामी ब्रजराजजी और ब्रह्मचारी हैं, जिसमें महाराज तो श्री लक्ष्मीपति के बिरद हैं और ब्रह्मचारीजी हमेशा महाप्रभु के पास ही रहते हैं ॥ १६ ॥

दरशन लायक दाय, बंदि विष्णु उन बंदिये ।

चलहु आशु अब होय, प्रविशत पूरव अघ कटे ॥ १७ ॥

दोनों ही दर्शनीय हैं अतएव विष्णु की वन्दना करने के बाद इनकी वन्दना करिये। बलिये अब जल्दी कीजिए, क्योंकि उस मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व जन्म के पापों का नाश होता है ॥ १७ ॥

अथ—उत्प्रेक्षालंकार—गाहा.

उर हुल्लास उल्लहियं, चहियं देव चित मित प्रती ।

बहु दिन हंस बिछोहे, मानहु गमण मानसर तीरे ॥ १८ ॥

जिस मित्र की मन में इच्छा है, वह देव के समीप विराजमान है, ऐसा सोच कर हृदय में उल्लास हो आया, मानो बहुत दिनों से बिछुड़ा हुआ हंस मानसरोवर के तीर पर जाता हो ॥ १८ ॥

अथ—लुप्तोपमालंकार—छंद प्रमानिका.

सखी समूह मल्लियं, मगल गति चल्लियं । खनक राव नेहरी, भनक जेष जेहरी । ठमक बीछुवान की, धमक घुघरान की । बजे अनेक गत्तियं, मनो संगीत नृत्तियं । इकेक पान ग्राहियं, चलंत चोक आहियं । उजास अंग कामनी, प्रकाश कोटि दामनी । मुखारविंद मुदितं, अनेक चंद उदितं । भुजा सु अंक मेलियं, लसंत हेम बेलियं । जराव नंग मुत्तियं, भ्रगार दीप दुत्तियं । विचित्र बास भुल्लियं, बसंत बाग फुल्लियं । सुवास डोर फुट्टियं, मधूप वृंद जुट्टियं । मधूर बान साजितं, परिभृतं सु लाजितं । कतं सुहास छंदियं, दुहार केश बंदियं ॥ १९ ॥

सखियों का समूह मिल कर, हंस की गति से चलने लगा, जिससे नूपुरकी ध्वनि होने लगी, चमकते हुए लंगर भ्रमकने लगे, बिछुवा की छमछमाहट और घुंघुरू की ध्वनि इस प्रकार होने लगी !! मानो संगीतयुक्त नृत्य हो रहा हो । इस प्रकार एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल छमक २ चलती हुई चौक में आई । उन कामनियों में इतना तेज है मानो कोटि विद्युत् का प्रकाश हो रहा हो । हंसते समय उन के मुख की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो अनेक चन्द्रमा एक साथ उदय हो आए हों । बाहू को अंक में लेकर झुकती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो

स्निग्ध-बेलि लचकती हो । हीरा के जड़े हुए नग और मोतियों की जगमगाहट ऐसी प्रतीति होती है मानो दीपशिखा टिमटिमाती हो । अनेक प्रकार की रंग बिरंगी साड़ियां पहिने हुई ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वसंत ऋतु का बाग खिल रहा हो । उन के शरीर से निकलने वाले सुगंध से भँवरवृन्द गुंजार करते हैं । उन का भाषण (अवाज) ऐसी मधुर है कि उनके सामने कोयल भी लाजित होती है । इस प्रकार तथा अनेक रंग रेलियां करती हुई उन सबों ने आकर श्री द्वारकेश का वन्दन किया ॥ १९ ॥

सोरठा-श्रीपति बंदन सज्ज, गइ समीप गोस्वामि के ।

किय अस्तुति महाराज, कुँवरी कलाप्रवीण जू ॥ २० ॥

लक्ष्मीपति को नमन करने के लिए सज कर गोस्वामी के समीप जाकर राजकुमारी कलाप्रवीण ने श्री महाप्रभु की इस प्रकार स्तुति की ॥ २० ॥

गाहा-कल्मष दहन समूहं, पादाब्ज श्रीकृतं सेवं ।

सुर बंदितं सुरेशं, कृत कामाना पूरनं इच्छा ॥ २१ ॥

आप के समूह को काटने वाले, श्री लक्ष्मी द्वारा सेवित जिसके कमल-रूपी चरण हैं, जिन की वन्दन देवगण सदा करते हैं, मन की इच्छा पूर्ण करने वाले देव ! आप की वन्दना करती हूँ ॥ २१ ॥

एते कुसुम कहाई, बाला इतस्वामिगो बंदहु ।

श्री महाराज समीपे, यह महाराज विरद ब्रजराजं ॥ २२ ॥

इतने में कुसुमावलि ने कहा हे बाला ! यहां विराजमान गोस्वामीजी को नमस्कार करो, क्योंकि श्रीपति के समीप बैठे हुए श्री ब्रजराजी महाराज भी श्री द्वारकाधीशजी की विरद धारण करते हैं ॥ २२ ॥

उत्प्रेक्षांकार-गाहा.

कौमल नमित शरीरं, पुनि ब्रजराज बंदितं बाला ।

मानहु भूपट मरुते, भुक्तियं भूमि कुंदन बेली ॥ २३ ॥

तब अपने कोमल शरीर को मुका कर बाह्या प्रवीण ने फिर कर महाराज का बंदन किया, उस समय ऐसी शोभा प्रतीत हुई मानो वायु के वेग से सुवर्ण की बेलि झुक रही हो ॥ २३ ॥

अब छंद तोटक.

नमि नेमहि नारि गुसांइ लखे, ब्रजराज सुराज बधू निरखे । गुरु लोग-
नको मन शोच लहे, रस रीक दूहुजन भीज रहे । मरजाद लिये मुखना
उचरे, मन नैन दुहुन के बात करे । महाराज समीप सबे दरसे, इत दंपति
नैन दुहु तरसे । कुसुमावलि भेद विचार कहै, हरि पूजनको उपचार लहे ।
कुंवरी अब मंदिर पाँव धरो, महपूजन श्री महाराज करो ॥ २४ ॥

नियमपूर्वक मुका कर कलाप्रवीण गोस्वामीजी को देखने लगी, इसी प्रकार ब्रजराजजी भी राजबधुओं को देखने लगे । मन में बड़े लोगों का लिहाज भी रखते । इस प्रकार रस रीत में दोनों ही सराबोर हो गए परन्तु मर्यादा बरा मुख से कोई भी बोल नहीं सकते । मन और नैन, (दोनों के) बात करने लगे । महाराज के पास आकर सब स्त्रियों ने दर्शन किया, परन्तु दो स्त्री पुरुषों के नेत्र दर्शनों से अवाते नहीं हैं । कुसुमावलि यह भेद समझ गई और विचार कर हरिपूजन का सामान ले कर कुमारी से बोली कि हे प्रवीण ! अब देवमंदिर में पधार कर श्री हरि महाराज का पूजन करो ॥ २४ ॥

सोरठा—सुनियत ब्रह्मनि बान, कुमरी चित चंचल भई ।

धरियत मितसु ध्यान, शोक हरख दुहु सम भये ॥ २५ ॥

ब्रह्मबाला की इस प्रकार बात सुन राजकुमारी मन में अधीर हो गई और मित्र का ध्यान धरने लगी, जिससे उस के हृदय में दुर्षे व शोक दोनों का ही सफल भाव से विचार हो गया ॥ २५ ॥

गाहा—दीपोत्सव देकालं, दरशन देवदंपति द्रग जूरने ।

पंचपञ्चास अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहर ॥ २६ ॥

दीपोत्सव के दिवस—देवालय में देवदर्शन—के समस्त दंपति के नेत्र मिलन वाला यह प्रवीणसागर ग्रन्थ की पंचपनवीं लहर सम्पूर्ण हुई है ॥ २६ ॥

५६ वीं लहर ।

देवालये कलाप्रवीणरससागर-चरचा भेद प्रसंगो यथा-दोहा.

है उदास ठाढ़ी भई, कुंवरीसु आयस पाय ।

बुधि विचार ब्रजराज किय, सिद्ध वचन चित लाय ॥ १ ॥

पूजा करने की आह्वा पाकर कलाप्रवीण उदास हो खड़ी होगई और पूर्व कहे हुए सिद्ध के वचन को ध्यान में लाकर गोस्वामी श्री ब्रजराजजी की बुद्धि से विचार करने लगी ॥ १ ॥

॥ छप्पय ॥

कियो सोच ब्रजराज, महा पूजन को जावे ।

तबतो सब फिरि जाय, समय एकंत न पावे ॥

अगम पंथ अहरे, जास कारन इत आये ।

तासे भई न बात कहा, तीरथ फल पाये ॥

मन शोध शोध कीनो मतो, महापूजन कीजे मने ।

चतुराई ज्ञान चरचा चले, तो घरीक बतियां बने ॥ २ ॥

ब्रजराज महाराज सोचने लगे कि महापूजा करके तो ये सब चले जावेंगे, एकान्त का अवसर ही नहीं मिलेगा, और फिर अगम पंथ का आदर कर जिस-लिए यहां तक आए !! मन की वह बात न हुई !! तो तीर्थ का फल क्या हुआ ?? ऐसा विचार कर यह निश्चय किया कि महापूजन को रोक कर कोई ज्ञान-चरचा चलावें तो दो घड़ी बात करने का अवसर मिले ॥ २ ॥

सोरठा-यह विचार चित लाय, बोले तब ब्रजराज जू ।

कैसे करिहो जाय, महपूजन महाराज को ॥ ३ ॥

ऐसा चित में विचार कर ब्रजराजजी ने कहा कि तुम अन्दर जाकर श्रीहरि का महापूजेन किस प्रकार करोगी ? ॥ ३ ॥

छप्पय-क्यों मह पूजन करो, भेद हमको सु बताओ ।

कौन वेदके मंत्र, कहा उपचार चढ़ाओ ॥

कोन सप्रती पढो, ध्यान केसो उर धारो ।

क्यों शरीर शुध करो, कहा अस्तुती उचारो ।

पूरब सिंगार क्यों उत्तरे, क्यों नवीन फिर लाइये ।

एते विधान जानंत जो, तो हरि निकट सिधाइये ॥ ४ ॥

महापूजन किस प्रकार करोगे सो भेद मुझे बताओ । कौनसा वेदमंत्र बोल कर कौनसा उपचार चढ़ाओगे ? किस स्मृति को याद करोगे ? और क्या ध्यान हृदय में धरोगे ? शरीर को किम प्रकार शुद्ध करोगे और स्तुति किस प्रकार करोगे ? पूर्व शृंगार किस प्रकार उतरेगा ? और नवीन शृंगार किस प्रकार चढ़ाओगे ? हे स्त्री जनो ! इतना विधान जानते हो तो सुखपूर्वक श्रीहरि के पास पधारो ॥ ४ ॥

सोरठा-एतो सुनत उचार, कुसुम कही ब्रजराज प्रति ।

पूजन चहत कुमार, आप बताओ त्यों करें ॥ ५ ॥

इतना सुन कर कुसुमावलि ब्रजराजजी से कहने लगी कि राजकुमारी पूजा करना चाहती है, आप बताओ उस प्रकार करें ॥ ५ ॥

आपै कहे अनेक, भेद कहा विनता लहे ।

सेवा सकल विवेक, महाराज कहो त्यों करें ॥ ६ ॥

आप ने तो अनेक भेद बतलाया, परन्तु स्त्रियां उन बातों को क्या जानें ? आप सेवा करने का जो विधान बतलाओ वैसा करें ॥ ६ ॥

सुनियत ब्रह्मनि बानि, एह ब्रजराज कही तित ।

जो चहंत तुम किया, बाल बैठो सबही इत ॥

करन सेव अधिकार, हमें संछेप सुनावे ।

सब शरीर शुध होय, बहुरि पूजनको जावे ॥

एती उचार सब तिय सुनत, उप ब्रजराज समाज किय ।

महाराज भये मनमें मुदित, पूजनको अधिकार लिय ॥ ७ ॥

ब्रह्मकुमारी की नम्र वाणी सुन महाराज ब्रजराज पूजा की सब विधि कहने लगे कि जो तुम सब क्रियायुक्त हरि की अर्चना करना चाहती हो तो सब बालाओ यहां बैठो तो हम संक्षेप में सेवा करने का अधिकार सुनावें कि जिससे शरीर शुद्ध होय और फिर पूजा करते जावो । गोस्वामी महाराज के इस प्रकार आस्तिक वचन सुन कर महाराज के पास सब स्त्रियां बैठ गईं !! जिससे महाराज प्रसन्न हो पूजा का अधिकार कहने लगे ॥ ७ ॥

अथ—ब्रजराजोक्त—पूजाधिकार—छंद सारसी.

जो राज मंडे, नीति खंडे, लाय दंडे दीनसे, जो ग्रंथ रचे, मत्त कच्चे, जाय जच्चे हीनसे । जो आप भ्रमं, छांड कंमं, ओर भ्रमं धावतं, त्रैलोक देवा, तास सेवा, ना करे अंगीकृतं । जो धाम तज्जे, ध्यान सज्जे, दीठ भज्जे भामसे, टीका समारे, छाप धारे, दाम प्यारे रामसे । जो घोस जोगं, सिद्ध लोगं, रेन भोगं साजितं, त्रैलोक देवा, तास सेवा, ना करे अंगीकृतं । माया न रखखे, सर्व भरखे, ना परखखे ब्रह्मको, देहं मलीनं, आर छीनं, देख कीनं भ्रमको । भाषंत वेदं, मंत्र भेदं, पै निखेदं हे व्रत्तं, त्रैलोक देवा, तास सेवा, ना करे अंगीकृतं । जो बास धग्गे, ताज लग्गे, लोग ठग्गे आससे, जो ब्रह्मचारी, दंडधारी कोधकारी हामसे । जो आप मत्तं, सत्य धत्तं, ना बदत्तं संग्रतं, त्रैलोक देवा, तास सेवा, ना करे अंगीकृतं । जो जंत्र थप्पे, मंत्र जप्पे, तेज तप्पे तंतरं, जो जात्र जावे, भिन्न भावे, चित्त लावे अंतरं । ऐसी अनेकं, लाय टेकं, प्रेम एकं ना थितं, त्रैलोक देवा, तास सेवा, ना करे अंगीकृतं ॥ ८ ॥

जो राजा सिंहासनारूढ़ हो कर राजनीति के विरुद्ध कार्य्य करे !! और अकारण गरीबों को दंड दे !! जो ग्रन्थकर्त्ता कच्ची बुद्धि से काव्य रचना करे !! जो ब्राह्मण अपने ब्राह्मण धर्म को छोड़ अमित होकर दूसरे धर्मों की ओर दौड़े !!

तीन लोक के स्वामी इस की सेवा स्वीकार नहीं करते । जो साधु घर संसार छोड़ कर ध्यान में आरुढ़ होते हुए भी स्त्रियों को देख कर उन पर दृष्टि दौड़ावें !! सुधार कर टीप टाप से तिलक करे !! हाथ और छाती पर छाप धारण करे !! परन्तु राम नाम से दाम की कामना करता रहे !! जो योगी दिन में योग साधन कर लोक में सिद्धि दिखावे परन्तु रात्रि में नाना प्रकार के भोग में रत रहे !! त्रैलोक्य देव उसकी सेवा अङ्गीकार नहीं करते । जो त्यागी माया तो नहीं रखता—सब कुछ खाता पीता हुआ ब्रह्म को नहीं पहचाने—मलिन रहे—अमिताहारी हो और धर्म का ढोंग करे तथा जो ब्राह्मण मंत्रपाठ करे, मंत्र का भेद भी जाने परन्तु टेढ़ी चाल वाला हो तो उसकी आराधना तीनों लोक के स्वामी स्वीकार नहीं करते । जो तपस्वी वस्त्र जला कर खाकी के समान दिखावा रखता हुआ भी आशा में लोगों को ठगे, जो संन्यासी दंड तो धारण करे परन्तु होवे महाक्रोधी और हंसी करावे, जो आचार्य अपने मन की सत्यता में स्मृतियों का प्रमाण देवे परन्तु तदनुसार आचरण न करे उस की सेवा प्रभु त्रिलोकीनाथ कभी स्वीकार नहीं करते । जो उपासना करने वाला मंत्र की स्थापना कर मंत्रजाप करे तेजस्वी दिखाई पड़ता हुआ भी तंत्र विद्या अर्थात् चोरी करे, जो मनुष्य यात्रा में जावे परन्तु मन में मित्र भाव रख भेद रखे, ऐसे अनेक टके करे परन्तु उस का प्रेम एक स्थान पर स्थिर न होवे तो उसकी सेवा त्रिभुवनपति स्वीकार नहीं करते ॥ ८ ॥

॥ सोरठा ॥

ऐसे मत सु अनेक, करि खंडन वर्णन किगो ।

प्रेम द्रढाये एक, बाल सुनायो ब्रजपती ॥ ९ ॥

इस प्रकार अनेक मतों का खण्डन करके एक केवल प्रेम को दृढ़ करने का उपदेश श्री ब्रजराजजी महाराजने सब स्त्रियों को सुनाया ॥ ९ ॥

अथ—छंद—संजुक्ता.

ब्रजराज फेर कहंत है, तुम देव सेव चाहंत है । परिहीन क्रीय सु ध्याइये,

मन-इच्छा सिद्धि न पाइये। तब फेर ब्रह्मनि यों कही, उपदेश आप करे वही। महाराज एह कृपा करे, तिहि रीत पूजन अदरे। गुरु लोग ब्रह्मनि भाखियं, सब सत्य एह सु आखियं। ऊपदेश स्वामि सु दीजिये, उन रीत पूजन कीजिये ॥ १० ॥

ब्रजराजजी फिर कहने लगे कि तुम सब देवसेवा की इच्छा करती हो परन्तु हीनक्रिया से ध्यान कगेगी तो मनोकामना पूरी नहीं हो सकेगी। तब कुसुमावलि ने फिर कहा कि हे महाराज ! आप कृपा करके उपदेश करो उसी प्रकार हम लोग पूजन करें। कुसुमावलि की बात सुन कर सब वृद्ध और बालाओं ने भी कहा कि ठीक है, हे महाराज ! आप जिस प्रकार उपदेश करो हम सब उसी प्रकार श्रीहरि की सेवा करेंगी ॥ १० ॥

दोहा—पुनि ब्रह्मनि लागी कहन, गुरुजन बूझ व्रतंत ।

हे महाराज मया करो, सबही एह चाहंत ॥ ११ ॥

वृद्ध जनों से पूछ कर कुसुमावलि कहने लगी कि हे महाराज ! आप उपदेश कीजिये ऐसी सब मण्डली की इच्छा है ॥ ११ ॥

छंद कंद

महाराजसे ब्रह्मने फेरि भाखंत, अभिलाष बाला सबै एह राखंत। क्रिया को बतावे महाराज उयुं भेव, करे राजकुमारि वाही तरे सेव। गुमाई हंसी मंद वाणी उचारंत, महा सिद्धदाई हमें मंत्र जानंत। वही मंत्रको प्रेम प्रकाशितं नाम, सधे मंत्र तो कामना पूरितं साम। जिही मंत्रसे राधिका श्री हरी संग, जिही मंत्र गौरी हरं धारितं गंग। जिही मंत्रसे पाये अनेक उद्धार, वही मंत्र कैसे सिखावे हमें नार। महीमा सुनी मंत्रको बाल भाखंत, महाराज एतो कहा अंत्र राखंत। ब्रजराज बोले लियो जो तुमें वाद, सिखावे रहे गी निशानी लिये याद। बतावे वही मंत्र तो एकही कान। सुने नाहि जो दूसरी साधना बान। परेखी ब्रह्मी मेर माराजकी दीठ, कुमारी करं साय लीनी तबै नीठ। सबै आन बाला सु बैठी तबै दूर, महाराजसे राज-कन्या सु हजूर। लगे प्रेम प्रकाशके मंत्र उच्चार, न जाने सबै भेद बैठी

वहे नार । वही प्रेमकी उपमा क्यों कही जात, उभे ओहि जाने कि जाने हरी बात ॥ १२ ॥

महाराज से फिर कुसुमावलि ने कहा कि हे महाराज ! ये सब स्त्रियां यह अभिलाषा रखती हैं कि महाराज जो विधि श्रीहरिपूजन की बतावें उसी रीति से राजकुमारी पूजन करे । तब महाराज हंसते हुए मंद वाणी में बोले कि हम सिद्धदायक मंत्र जानते हैं और उस मंत्र का नाम प्रेमप्रकाश है । जो इस मंत्र की एक चित्त से साधना करे तो उस की सब मनोकामना श्रीहरि पूरी करें । जिस मंत्र की उपासना से श्री राधा ने श्रीकृष्ण को प्राप्त किया । उसी मंत्र के प्रताप से शिवजीने अर्धरात्रि में पार्वती को तथा जटा में गंगा को रक्खा और जिस मंत्र के प्रताप से अनेकों व्यक्तियों ने मुक्ति प्राप्त की है, उसी महामंत्र को तुम स्त्रियों को किस प्रकार सिखावें ?

इस प्रकार मंत्र का पराक्रम सुन कर उन बालाओं ने कहा कि महाराज ! इतना बड़ा अन्तर क्यों रखते हो ? तब ब्रजराजजी ने कहा कि हे राजकुमारी ! तुम इतनी नम्रता और उत्सुकता दिखाती हो तो मैं तुम्हें वह मंत्र सिखाता हूँ, क्योंकि उससे तुम्हें हमारी याद रहेगी । परन्तु यह मंत्र एक ही कान में अर्थात् एक ही को बता सकते हैं, और इस साधन की वाणी और कोई सुन नहीं सकता । महाराज की इस कृपापूर्ण वाणी को सुन कर ब्रह्मकन्या राजकुमारी को हाथ पकड़ कर महाराज के पास ले गई और अन्य सब स्त्रियां दूर जाकर बैठ गई । महाराज के समीप केवल राजकन्या रही । तब दोनों प्रेमप्रकाश मंत्र का उच्चारण करने लगे । दूर बैठी हुई स्त्रियों को इस भेद का पता नहीं लगा । इस प्रेम की उपमा किस प्रकार कही जाय ! इस बात को तो ये दोनों प्रवीण व सागर जानते हैं या परमात्मा को पता ॥ १२ ॥

अथ गूढोक्ति अलंकार-गाथा.

बहुविध प्रेम प्रकाशं, दंपति मंत्र साधना मश्नते ।

किंचित् कृत मुख हासं, भुव भेदान ब्रह्मनी लहियं ॥ १३ ॥

इस प्रकार के दोनों स्त्री पुरुष मंत्र साधना करने लगे !! जिससे प्रेम उमड़ पड़ा । किंचित् मुख हास्य तथा भ्रुकुटी विलास से कुसुमावलि वह भेद समझ गई (यह बात गूढ़ भाषा से अलंकृत होने से शास्त्र में कहते हैं कि—‘गूढोक्ति मिस और के, करै औरसों बात०’ का० प्र० पृ० २६७) ॥ १३ ॥

मोद वृषा भर मंडे, प्रेम प्रवाह पूर नद बहियं ।

अमृत दधि उल्लहियं, दंपति करत श्री मुखंचर्चा ॥ १४ ॥

जब इस तरह दम्पति श्रीमुख से चर्चा करने लगे तो आनन्द की झड़ी लग गई, प्रेम के प्रवाह से भरपूर नदियां बहने लगीं और अमृत का समुद्र उमड़ आया ॥ १४ ॥

दोहा-दुहु श्रीमुख चरचा भई, न सुने कोन लहंत ।

सो बर्नन आशय लिये, करि संछेप कहंत ॥ १५ ॥

सागर और प्रवीण ने जो श्रीमुख से चर्चा की उसे बिना सुने कौन जान सकता है ? उसका आशय लेकर कुछ संक्षेप में वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

रूपकालंकार-सोरठा.

सूरज किरण सनेह, मन प्रवीण चसमो मंडथो ।

डगे न सलगे देह, लगे जगे विरहा अगन ॥ १६ ॥

सागर ने कहा कि हे प्रवीण ! स्नेहरूपी सूर्य के किरणों के साथ मनरूपी चश्मा (आतशी कांच, जिस पर सूर्य की किरण पड़ने से नीचे रक्खी हुई रुई जल जाती है) का संयोग होने से विरहरूपी अग्नि जल उठी जिससे शरीर जलता है परन्तु एक पग भी पीछे नहीं हटता ॥ १६ ॥

ऐतिहासिक-सवैया.

आगे मिलि पतियां बतियां पुनि, नैन बिलोकन चाह चुरानी ।

प्रेम पतंग प्रभा प्रगटी यह, लाजकि बाज दबे न दुरानी ॥

या गति होय नहीं इनही जुग, बुझिये वेद कितेव कुरानी ।

मित प्रवीण तवै अनुमानिये, आय मिली पहिचान पुरानी ॥ १७ ॥

पहिले पत्र से और फिर बातों से मिलाप हुआ, आंख से निरखने की चाहना चित्त में छिप रही । प्रेमरूपी सूर्य की प्रभा प्रकट हुई है जो इस लज्जावती टोकरी से ढकी नहीं जा सकती वेद या पुरान की किताबों में देखें तो यह ज्ञान होता है कि इस युग में ऐसी गति किसी की नहीं होती, इसलिए हे प्रिय मित्र प्रवीण ! अब यही अनुमान होता है कि कोई पुरानी पहिचान आकर मिली है (यह पुरानी पहिचान की अलंकृत भाषा से शास्त्रकार कहते हैं कि --- “प्रेतिह्यद्वा प्राचीन जो कोउ चलिआई कहानी०”) ॥ १७ ॥

विधि अलंकार-सवैया.

पत्रमें चित्र लिखे चतुराईसे, चितकी सोहे कियै अबरोखिये ।

पूरन प्रेम किधों बहरावत, पेच बनाय पटंतर पेखिये ॥

कैतव सांच दुधं जल हंस उषों, प्यारे प्रवीण सनेह परोखिये ।

अमृत वैसे किधों विषको विष, बेनि भुजंग गरे धरि देखिये ॥ १८ ॥

सागर कहता है कि मैंने पत्र में चतुराई से प्रीति का कवित्त रूप चित्र लिखा था अब तुम्हें सौगन देकर कहता हूं तुम मेरे चित की वृत्ति देखलो कि इस में पूर्ण प्रेम है या मैंने भ्रमाया था ? किसी भी प्रकार पेच से पटंतर करके देखलो । जिस प्रकार हंस दूध और पानी को अलग २ कर देता है उसी प्रकार हे प्रवीण ! मेरे प्रेम की परीक्षा करलो । तुम अपने केश रूपी सर्प को मेरे गले में डाल कर देखो कि अमृत होता है या विष का विष ही रहता है । अर्थात् कटु वचन कह कर परीक्षा कर देखो कि उससे कड़वास होती है या मिठास । यह विधि की भाषा से अलंकृत होने से कहा जाता है कि—(१) विधिकहिषतु हैं सिद्ध जब, अर्थ साधिये फेर० का० पृ० ६०० ॥ १८ ॥

संभावनालंकार-सवैया.

कौन दिना करेगो कोउ पंथिक, मितके आवन मंगलकी ।

देखहुँ कौन दिना अखियां फिर, प्रेमके भार भुके पलकी ॥

कौन दिना मुसकायनकी, बतियां रद रेख लखो भलकी ।
एहो प्रवीण बजेगी कही दिन, काननमें धुनि पायलकी ॥ १९ ॥

वह कौनसा दिन होगा ? जब कि कोई पांथिक आकर मित्र के आगमन का सुसमाचार सुनावेगा । किस दिन प्रेम से झपी हुई पलकों से युक्त आंखों से ये आंखें देखने को मिलेंगी ?? किस दिन मुसकान युक्त बातें सुनते हुए दंतपंक्ति की मनोहर झलक देखने को मिलेगी ? और हे प्रवीण ! वह दिन कब होगा जब कि कानों में पायल की सुमधुर ध्वनि पड़ेगी ? ॥ १९ ॥

एकावलि अलंकार-सवैया.

रखबी इक याद इती अरजी तुम, जानत हो विरहा सखबी ।
सख बीत गयो तो भयो है कहा, शिर लाय रखेगे हमें दखबी ॥
दख बीसरह न कवेहि हमें, तिहि कारन फेर पती लखबी ।
लखबी न बने पतियां ज्यु किही विध, भित प्रवीन मया रखबी ॥ २० ॥

हे प्रवीण ! विरहरूपी अग्नि की शिखा को तुम खूब जानती हो इसलिये हमारी इतनी बिनती ध्यान में रखना, सुख बीत गया तो उससे क्या हुआ ? हम तो दुःख की लौ को माथे चढ़ा रखेंगे । यह दुःख हमें किसी दिन भी नहीं भूलेगा इसलिये बार २ पत्र लिखते रहना । यदि किसी प्रकार पत्र लिखना न होसके तो हे मित्र प्रवीण ! प्रेम तो अवश्य रखना ही ॥ २० ॥

दोहा-रखबी अरजी याद यह, लखबी पाती भित ।

जो लखबी न बने कहु, मेर न टारहु चित ॥ २१ ॥

इतना यह निवेदन हे मित्र ! याद रखना कि पत्र अवश्य लिखना, यदि पत्र लिखना किसी कारणवश न हो सके तो मन में तो अवश्य स्थान दिये रहना ॥ २१ ॥

जातिस्वभाव अलंकार-सवैया.

भागमें आग लगी है तिही दिन, नैनन नीर चढ्यो मगरी ।
ता दिनसे इन नैननसे सब, शून्य निहारतो नगरी ॥

कोटि कला करिये मरिये जरि, बात कहा सुधरे बगरी ।

सागर भित कहा कहिये तुम, जानत हो चितकी सगरी ॥ २२ ॥

प्रवीण कहती है कि जिस दिन से भाग्य में आग लगी है उसी दिन से नेत्रों के मार्ग से पानी चढ़ आया है और उसी दिन से यह सारा नगर इन नेत्रों से शून्य अर्थात् उजाड़ दीखता है । करोड़ों उपाय करें या चाहें जब मरें परन्तु बिगड़ी हुई बात कहां बनती (सुधरती) है । हे मित्र सागर ! क्या कहें, तुम चित्त की सारी बातें जानते ही हो ॥ २२ ॥

द्रष्टांशालंकार—सवैया.

सूर उदय तो कहा है चकोर को, चंद प्रकाश कहा चकवा को ।

फूले वसंत तो चातुक को कह, बारकि धार कहा भमरा को ॥

सिंधु भयों तो पतंगन को कह, दीपक जोत कहा है भूखा को ।

सागर योंहि जरे सिंगरे सुख, चाहत रावरि प्रेम प्रभाको ॥ २३ ॥

सूर्य के उदय होने से चकोर को क्या ? चन्द्रमा के प्रकाश से चकवा को क्या ? वसंत प्रफुल्लित होने से चातुक को क्या ? वर्षा की धारा से भमरा को क्या ? समुद्र भरा है तो पतंग को क्या ? दीपक की ज्योति प्रकट हुई तो मछली को क्या ? हे सागर ! इसी प्रकार हमारे लिये सब सुख जावें !!! हमें तो केवल आपके प्रेम की प्रभा चाहिये ॥ २३ ॥

अथ एकावलि—अलंकार—सवैया.

पियरे परि जात हे गात सबे, उभभी नित आवत है हियरे ।

हियरे भरि सास निसास भई, तलफे थलकी सफरी जियरे ॥

जियरे धरि धीर कहा रहिये, अशरीर सु तीर हने तियरे ।

तियरे असुवान भरी उलहे फिर, कौन घरी मिलिहो पियरे ॥ २४ ॥

तुम्हारे वियोग के कारण हमारा सारा गात पीला पड़ गया है और हृदय में निरंतर उभकन (धड़कन) रहती है । लम्बी सांस (उसास) से सीना भर जाता है और स्थल में पड़ी मछली की भांति जी तड़फता है । जी में कैसे धीर धारण करते रहें !! क्योंकि शरीर रहित रतिनाथ हम स्त्रियों पर तीर मारता है !! जिससे आंसुओं की झड़ी उसासी पड़ती है, हे प्यारे ! फिर किस घड़ी मिलोगे ? ॥ २४ ॥

विरोधाभास—आक्षेपालंकार—सवैया.

सेबो महा दुख सागर ज्युं उत, शून्य अटा अटवी सु बसेबो ।
केबो कहा तुम जानत हो निस, वासर अंग अनंग सुकेबो ॥
रेबो सदा धरि ध्यान हिये, अखियां असु—आन उसास भरेबो ।
खेबो नहीं बिन कंत विरी अहो, अंत वनेगो हलाहल खेबो ॥ २५ ॥

हे सागर ! महान् पीड़ा सहन करती हैं तथा उजाड़ जंगल की भांति की अटारी में रहती हैं । क्या कहें, तुम जानते ही हो कि रात दिन अनंगदेव की पीड़ा शरीर को सुखा रही है । हृदय में आपका ध्यान, आंखों में आंसू और उसास धारण कर सदा रहती हैं । अब स्वामी के बिना पान का बीड़ा नहीं खाऊंगी, अब तो अन्त में हलाहल विष खाना पड़ेगा ॥ २५ ॥

दोहा—नैना चाह लगी सु नित, उर परसनकी आस ।

मित भले आये इतें, यह छिन मिटी उदास ॥ २६ ॥

हे मित्र ! आंखों में दर्शन की और हृदय में स्पर्श की आशा लग रही है, अच्छा हुआ !! आप यहां आए !! इससे थोड़ी उदासी तो मिटी ॥ २६ ॥

अथ मिश्रित पद—लौटानुप्रास—अलंकार—कवित्त.

करि करि कोउ आस, धरि करि सो न पास । भरि भरि आंसु सास, है उदास रोयगो । उर बढ़ी आवे मेन, पलहू न परे चेन । नेनही न नींद, सुख सेनही न सोयगो । धारि धारि बट ध्यान, घट घटजात जोति । रट रट भित चित, सदा पंथ जोयगो । विविध बिचार ताको, सागर न पावे पार, जाहिको प्रकाश प्रेम, ताहि ऐसो होयगो ॥ २७ ॥

कोई मित्र मित्र को मिलने की आशा करे परन्तु वह पास नहीं है ऐसा धारण करके आंसू और स्वाम भर भर कर उदास होकर रोवेगा, तो हृदय में वाय चढ़ आवेगा जिससे एक पल भी चेन नहीं मिलेगा, नेत्रों में नींद नहीं आवेगी, सुखशय्या में सुख की नींद नहीं लेगा, मन में उनके शरीर का ध्यान धर धर कर उसके तन की कान्ति घटती जावेगी और चित्त में मित्र के नाम की रट लगा कर सदा प्रवासी मित्र के आने की राह देखेगा । हे सागर ! उसके विविध विचारों का कोई पार नहीं पा सकता !! जिस को प्रेम का प्रकाश होगा उसे ही ऐसा होगा (१) शब्द अर्थ एकै रहै, तात्पर्य में भेद । सो लौटानुप्रास है० । का० प्र० पृ० ४७८ ॥ २७ ॥

गूढोक्ति—अलंकार—दोहा.

हिय भूषन हियतें रहे, शिर भूषन सु निहारि ।
कटि भूषन कैसे कहों, बारहि बार पुकारि ॥ २८ ॥

शिरभूषण (मांग अर्थात् मार्ग) को देख २ कर हियभूषण यानी हार रहे अर्थात् मार्ग देखते २ हार गए । कटिभूषण—रसना (कटि मेखला का दूसरा नाम है) से किस प्रकार बार २ पुकार कर कहें (२) गूढोक्ति मिस और के, कौरे और सों बात० । का० प्र० पृ० ६८७ ॥ २८ ॥

दोहा—सागर और प्रवीण ज्युं, श्रीमुख चरचा कीन ।

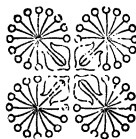
सोय बात संच्छेप किय, उन मन दशा सु लीन ॥ २९ ॥

सागर और प्रवीण ने जो भी मुख से चर्चा की उसे मन की दशा से कल्पना कर संक्षेप में कहा ॥ २९ ॥

गाथा—दीपोत्सव उत्साहं, देवालय दंपती चरचा ।

षटपंचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

दीपोत्सव के दिन देवालय में जो स्त्री पुरुष ने चर्चा की उसके सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह छप्पनवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३० ॥



५७ वीं लहर

मंत्रोपदेशश्रीपतिपूजनभेदस्य च, प्रसंगो यथा-सोरठा.

प्रेम प्रवीण प्रकार, सीखत बेर भई सु कह ।

सुनत तियन उच्चार, कुसुमावलि कुमरी कह ॥ १ ॥

कलाप्रवीण को प्रेमप्रकार सीखने में देर क्यों हो रही है, ऐसी चर्चा अन्य स्त्रियों से सुनकर कुसुमावलि ने राजकुमारी से कहा ॥ १ ॥

छंद मुक्तादाम.

कहे कुसुमावलि राजकुमार, लगे इतनी कह सीखत वार । दियो प्रति-उत्र कलापरवीन, यहै सब अच्छर मिश्रित भीन । ग्रहो महाराज सबे श्रुति सोध, सुने वह जानहिगो यह बोध । कहे उर नाहि रहे यह बान, लिखे इत लाउ सु कल्लमदान । सुने कुसुमावलि एह उचार, लियो कर पत्र सु कल्लम धार । उठे उत जाय समीप सु कीन, लही कलमं कर प्रेम प्रवीन । लिखे महाराज बदे मनुहार, करी तसवीर वही अनुसार । लहे महाराज तबैकर पत्र, कहे यह शुद्ध लिखे हम अत्र । शिखा नख लोंत्रिय हेर अनूप, कियो चितरामन बालसरूप । इके इक देखत ले कर भाउ, बने तहकीक उमेहि लखाउ । दुहुजन रीभत आप सयान, वधू इक और कही तब बान । उठो महपूजन होत अवार, इतै महि नैन दुहुजल धार । भई तनकी गतिन कहि जात, दुहु मनके मनमें मुरभत । ब्रहा तन चिह्न छुपा वन काज, उठी कहि मेर रखे महाराज । कहे महाराज बिलोकित बंक, लिखे विधिना उलटे दुहु अंक ॥ २ ॥

कुसुमावलि राजकुमारी से कहने लगी कि हे प्रिय सखी ! मंत्र सीखने में इतनी देरी लग रही है ? तब कलाप्रवीण ने उत्तर दिया कि इस मंत्र के सब अच्छर एक २ से निमित्त जुड़े हुए और अलग २ हैं !! उन्हें महाराज ने सब मुनियों से शोधन कर के संग्रह कर रक्खा है, इसलिये जो प्राणी सुनेगा

वही इसका बोध कर सकेगा । उनका जो अटपटी बाणी में उपदेश है वह मेरे हृदय में रहने नहीं पाता अर्थात् याद नहीं रहते, इसलिये कलमदान और कागज ले आओ, उन्हें लिख लेंगे । इतना सुन कर कुसुमावलि हाथ में कागज व कलमदान लेकर उस के (प्रवीण के) पास गई और वहां रख दिया । कलाप्रवीण अत्यन्त प्रेम से अपने कोमल हाथ में कलम लेकर प्रथम गोस्वामी की वन्दना कर नम्रता से लिखने लगी । महाराज की आज्ञानुसार लिखा और उन का चित्र पत्र में बना दिया । फिर पत्र को महाराज ने हाथ में लिया और कहा कि मैं इसे शुद्ध करता हूं । इतना कह कर नख से शिखपर्यन्त बाला का अवलोकन कर प्रवीण का चित्र उस पर बना दिया । फिर एक दूसरे के हाथ से पत्र लेकर परस्पर एक दूसरे के भाव को देखने लगे । दोनों के बनाए हुए चित्र ठीक २ बने थे !! जिससे दोनों ही चतुर जन अति प्रसन्न हुए । तब एक राज-बधू बोल उठी कि अब उठो, महापूजन में देगी हो रही है । इस प्रकार वियोग-सूचक वाणी सुनते ही दोनों स्त्री पुरुष के नेत्रों से जलधार बह चली तथा शरीर की ऐसी विह्वल गति हो गई कि बर्णन नहीं हो सकता । दोनों ही मन के मन मुरझाने लगे । परन्तु अति कठिनता से शरीर में व्यापे हुए विरह चिह्न को छिपाने के लिए प्रवीण एक दम उठ कर कहने लगी कि हे कृपासिन्धु ! कृपा रखना । तब तिरछी दृष्टि से देखते हुए महाराज बोले कि विधाता ने दोनों अक्षर उलटे लिखे हैं !! अथवा हमने जो लिखा है वह भी दोनों अंक वैसे उलटे न हो जायें ॥ २ ॥

गाथा— श्री महाराज समीपे, किय प्रवीन मंद्र परवेशं ।

विय सहियं दिय पिष्टं, विरहा कीन गोपनं वाला ॥ ३ ॥

श्री महाराज के पास से उठ कर प्रवीण ने मन्दिर में प्रवेश किया और विरह को छिपाने के लिए अन्य सस्त्रियों की ओर पीठ की ॥ ३ ॥

कुसुमावलि उपहारं, सहि लहि गइ देव समीपं ।

जगिय विरहा ज्वालं, लगिय नाथ पूज परवीनं ॥ ४ ॥

कुसुमावलि भी अपने हाथ में सुवर्ण थाल में नाना प्रकार के पूजन के सामान लेकर देव के समीप गई । विरहज्वाल से पूरित बालारूप प्रवीण द्वारिकानाथ का पूजन करने लगी । ४ ॥

अथ कलाप्रवीण श्रीपतिपूजनभेद, छंद हनुफाल.

महाराज पूज लगंत, ब्रजराज संग मगंत । जमुना जलं शिर धार, वह मित मगे नार । श्रियनाथ धारित वास, रससागरं धरि आस । श्रीखंड केसर साज, मिलवो मगे महाराज । सिंगार भूषण लाप, वह प्रीय देखन चाय । सौंधों लगावत गात, मंगे सुने उन बात । पुनि अग्र धारत धूप, मागंत मित सरूप । ब्रंदा कुसुम धरि माल, वह ईठ मगे बाल । पुनि आरती उतरंत, उनकी छवि सुमरंत । श्री श्याम बंदन कीन, मंग्यो यही परवीन । महाराज दीजे एह, उन हम अखंडित नेह ॥ ५ ॥

द्वारिकानाथजी का पूजन करते ही ब्रजराजजी का संग मांगने लगी । द्वारापति के मस्तक पर यमुना का निर्मल जल चढ़ाते हुए भी वह उन्हीं मित्र को मांगती है । लक्ष्मीपति को उत्तम वस्त्र पहिनाते हुए भी रमसागर की आशा करती है, महाप्रभु को चन्दन तथा केसर अर्चते हुए भी मन में महाराज से मिलने की इच्छा रखती है, श्री हरि को शृंगार और अलंकार प्रीतिपूर्वक धारण कराते समय भी अपने प्रिय पति को देखने की इच्छा रखती है । विष्णु भगवान के शरीर पर चोवा अर्गजा आदि सुगंधित द्रव्य लगाते हुए भी उनकी बातें सुनने की मांग रखती है, समीप में अगरबत्ती का धूप जलाते समय भी मित्र का स्वरूप मांगती है, वैकुण्ठपति के मस्तक पर तुलसीदल तथा कंठ में पुष्पहार पहिनाते हुए भी वह बाला अपने प्रिय मित्र को मांगती है । आरती उतारते समय छविका स्मरण करती है और अन्त में लक्ष्मी सहित श्रीपति की गद्गदहृदय से वन्दना करते हुए प्रवीण ने कहा कि हे महाराज ! हमें यह बर दीजिए कि हमारा प्रेम अखंडित रहे ॥ ५ ॥

सोरठा—पूजन कियो प्रवीन, करि बंदन अस्तुति करी ।

एह उराहन दीन, महाराज सन्मुख खरी ॥ ६ ॥

पूजन करके प्रवीण ने श्री द्वारकेशजी को नमस्कार तथा स्तुति की और श्री लक्ष्मीनारायणजी के सम्मुख खड़ी होकर इस प्रकार उपासम्भ दिया ॥ ६ ॥

ऐतीहासिक स्तुतिभेद—दोहा.

गज गनिका अहल्या गिरध, चंद्रहास ध्रुव बार ।

पंडुत्रिया प्रह्लाद ज्यों, सुनिये परम पुकार ॥ ७ ॥

हाथी, गणिका, अहल्या, जटायु, गीध, चन्द्रहास, राजपुत्र ध्रुव, पांडव-पत्नी द्रौपदी और प्रह्लाद की पुकार की भांति हे प्रभु ! हमारी पुकार भी सुनो (१) एतिहास पाचीन जो, कोऊ चली आई कहानी० । का० प्र० पृ० ६०६ ॥ ७ ॥

उराहनो ऐतिहासिक—सवैया.

आगे भयो चंद्रहास महीपति, क्यों विषकी विषया वह पायो ।

क्षीर सरोवरमें गजराज अरी, हकरी हरि धाय बचायो ॥

आसुर एक हि राम उचारत, राम विचार विमान चढ़ायो ।

सागर मित बिजोग हमें यह, क्यों न बकार सकार बनायो ! ॥ ८ ॥

हे महाराज ! पूर्व काल में चन्द्रहास नाम राजा हुआ, उसने विष के स्थान पर 'विषया' नाम की कन्या किस प्रकार प्राप्त की ? हे हरि ! आप ने दौड़ कर सरोवर में गजराज और उस के शत्रुओं को मार कर उसे कैसे बचाया ? एक असुर राक्षस मरते समय राम, नाम का उच्चारण किया उसे आप ने रामरूप समझ कर विमान में कैसे चढ़ाया ? तो हे नाथ ! सागर और इस बियोगिन के 'ब'कार को 'स'कार अर्थात् 'बियोग' का 'संयोग' क्यों नहीं करते ? ॥ ८ ॥

मीन दुहीनकि बेर भये तुम, कोल धरा किय आसुर वीरुध ।

दाय धरं द्विजकों प्रह्लादन, जच्छ भये हिरण्याख्य कियो जुध ॥

राम कपी जन सीत विभीषन, देवन कच्छ दुजेश भये शुध ।

पांडव गोपुरु रुक्माणि कृष्णाहि, बेर हमारि भयेहो कहा बुध ॥ ९ ॥

ब्रह्मा के दुःख के समय तुम मछली रूप हुए और पृथिवी के लिये बराह रूप धर के हिरण्याक्ष के साथ विरोध किया तथा ब्राह्मणों की भलाई के लिये परशुराम बने और फिर भक्त प्रह्लाद के लिये नृसिंहरूप होकर हिरण्याक्ष के साथ युद्ध किया, वानर, सीता और विभीषण के लिये राम रूप हुए तथा देवताओं के लिये कछुवे का रूप धर के समुद्र-मन्थन किया और उस में से चन्द्रादिक चौदह रत्न प्राप्त किये, पाण्डवों, गोप और रुक्मिणी के लिये कृष्ण रूप हुए तो हे जगन्नाथ ! महाराज अब हमारे विषय में क्यों मौन धारण कर रक्खा है ॥ ९ ॥

सोरठा—यहै उराहन दीन, श्रीपति प्रति सन्मुख खरे ।

बंदित फिरी प्रवीण, प्रनति कीन ब्रजराज ज्युं ॥ १० ॥

इस प्रकार सामने खड़े रह कर और लक्ष्मीपति को ऐसा उपालंभ देकर बन्दन करके प्रवीण पीछे फिरी और पीछे फिरते ही ब्रजराजजी महाराज को प्रणाम किया ॥ १० ॥

छंद निशिपालिका.

बार निकसीय प्रवीण हरि द्वारते, राजब्रज बंद नय प्रेम भरिके चितें ।
आप मुख उच्चरिय मंत्र तुमने दयो, तास परभाव मन काज सबही भयों ।
आप दिन काहु अनुकंप उर धारिये, धाम हम आवनहुं चित सु विचारिये ।
एह अरजी हमहु नाथ सुनि लीजिये, काहु दिन खामखहु आय दरसीजिये ।
प्रेम कर पत्र महाराज लिखवे सदा, बंचतहु चित हम होय नितही मुदा ।
जात अबमोच यह मंग उन आयसा, बाल पलटी तबहि दोय बदली दशा ।
जुथ विनता निजहि आय अबमोचनं, थान निज राजब्रज आय कत शोचनं ।
दोउ विरहा बढहि नैन भरि नी रहे, व्यूढ भरि स्वाप्त मन धारत न धीर हे ।
नैन तजि निंद निश दोउ तलफे गने, फेर मिलिहै कबहुं सो समय क्यों बनै ।
चित उनकी सु गति ओहि मनमें लहै जाहि नहि वीति बहन लहतै कहै ।
बीछुरत भित जुगही लखिवाउरे, स्रोत जन संगमित शोक बन पाउरे ॥ ११ ॥

हरि के द्वार से प्रवीण बाहर निकल कर नम्रतापूर्वक प्रेम से भरे चित्त से ब्रजराज को वन्दन किया, उस के पीछे अपने मुख से कहने लगी कि हे महाराज ! तुमने मन्त्र का उपदेश किया जिसके प्रभाव से मेरे मन के कार्य सिद्ध हुए, परन्तु आप मन में दया लाकर हमारी राजधानी में पधारने की कृपा करना, इतनी मेरी विनय स्वीकार करके मुझे ही दर्शन देना । और हे महाराज ! आप अपने कोमल करों से प्रेम रूपी पत्र सदा लिखते रहना कि जिसके पढ़ते ही मेरे मन में निरन्तर हर्ष उत्पन्न होता रहे, अब तो हम अपने उतारे पर जाते हैं, ऐसी महाराज से आज्ञा मांग कर प्रवीण चल पड़ी कि जिससे विरही जन की दशा बदल गई और स्त्रियों के समुदाय में मिलके जिम प्रकार कलाप्रवीण आई उसी प्रकार ब्रजराज महाराज भी अपने निवासस्थान पर जाकर शोक करने लगे और इन दोनों के मन में विरह का वेग बढ़ जाने से आँखों में अश्रुधारा बहने लगी । और ऐसे व्याकुल हो गये कि धैर्य जाता रहा, अब कब मिलना होगा ? ? ऐसा समय कब आवेगा ?? ऐसा विचार करने लगे !! ऐसे शोकसन्तप्त हालमें गोमती के किनारे पर बहुतसे मनुष्य इकट्ठे हाँ रहे हैं ॥ ११ ॥

दोहा—दिन दश पांच रहे बहुरि, आप आपके थान ।

दंपति मिलन न फिर भयो, चरचा चली पयान ॥ १२ ॥

पीछे द्वारामती में दश—पांच दिन और रहना हुआ परन्तु दोनों का मिलना नहीं हुआ और वहाँ से निज निज स्थानों को गमन करने की तैयारी की ॥ १२ ॥

छंद समानिका.

गोनकी उपाहितं, शोच दंपती चितं । कौनपै कहे वहे, आपही सबे सहे ।
मित्र चित्र जो करे, आप पानिम धरे । प्रेम फेर ह्वे नयो, कूच संघको भयो ।
बिछुरंत बालिका, त्रेह बाढ़ि ज्वालिका । स्वामिगो वही दशा, अंमुवां
बड़े स्वसा । दोउ तल्फना करी, सो सही हरी करी । सागरं समान हो,
तीरथं दुजंद हो । बाज बाहनं किये, आप गोपथं लिये । गोन की दिनं
दिनं, अंतरं दुहु जनं । आप नग्र पुगियं, भीतरं प्रवेशियं ॥ १३ ॥

गमन की तैयारी होने से दोनों के चित्त में चिन्ता उत्पन्न होने लगी !! पर कौन किससे कहे, सब दुःख सहते हुए, मित्रों के जो चित्र एक दूसरे के पास हैं—वे अपने २ हाथ में ही लिये हुए हैं !! इतने में चलने की तैयारी हुई और प्रवीण के हृदय में विरह वेदना बढ़ने लगी और उधर गोस्वामीजी की भी यही दशा हुई !! नेत्रों में आंसू और छाती में श्वास उत्पन्न हो गया और दोनों कहने लगे कि हे हार ! तूने जो किया ठीक किया परन्तु हे परमात्मा ! तुम समुद्र जैसे गंभीर हो ऐसा कह अपने २ नगर की तरफ प्रस्थान किया, दिन प्रतिदिन चलने से दोनों में बहुत अन्तर पड़ गया और अपने २ नगर में प्रवेश किया ॥१३॥

छप्पय.

सागर कलाप्रवीण, दोउ निज पट्टन पुगिय ।
गुप्त प्रकट कर भेद, निशा दिन पोर प्रवेशिय ॥
व्याधि मिटन उत्साह, उते तीरथ उत्सव जन ।
सविता उभय नरेश, मोद प्रगटिन लोगन मन ॥
दंपति सु चित विरहा दुखित, कश अति भये शरीर तब ।
छिन छिन सु याद इक इक करत, धरत नहीं मन धीर कब ॥१४॥

सागर और कलाप्रवीण अपने नगर में पहुँचे, वहाँ सागर चुपचाप रात्रि में और कलाप्रवीण दिन में अपने महलों में प्रवेश किया, कुंवर रससागर की चिन्ता में मग्न प्रवीण भी मच्छापुरी में यात्रा करके लौटी है कि जिसमे नगर में उत्सव मनाये जा रहे हैं परन्तु रससागर और प्रवीण का शरीर दुर्बल होगये हैं और क्षण २ एक दूसरे का स्मरण करते हैं ॥ १४ ॥

दोहा—इक इक मन शोचत रहत, नित नित विरह बढत ।

दुजि प्रवीण सागर सु मित, चर्चित प्रति एकंत ॥ १५ ॥

एक २ के मन में चिन्ता व्याप रही है और दोनों में नया नया विरह बढ़ रहा है कि जिसे कुसुमावलि प्रवीण और सागर की बातें एकान्त में हो रही है ॥ १५ ॥

अन्योक्ती आपै दशा, बरनी श्रीमुख दोय ।

पुनि पठई निज मित प्रति, कहूँ उदार अब सोय ॥ १६ ॥

सागर और प्रवीण ने अपने मुख से जो वर्णन किया और पत्नी आदि की उपमा में जो दर्शाया !! तथा एक दूसरे के प्रति जो पत्र लिखे !! उसे कहता हूँ ॥ १६ ॥

तत्र कलाप्रवीण अन्योक्ति भेद, कोकिला अन्योक्ति अलंकार-सवैया.

केते कहे पकरो पकरो इन, अंजन यातें घनो उतरेगो ।

केते कहे इनके द्रग छेदहु, भंजत गुंजको पुंज भरेगो ॥

चातक कीर मयूर मरालन, सागर तेसे कहा गुजरेगो ।

कुरकट और उलूक को राज है, कोनपैं जाय पुकार करेगो ॥ १७ ॥

कोयल को देख कर कितने ही कहते हैं कि इसे पकड़ो पकड़ो !! क्योंकि इससे अंजन निकलेगा, कितने कहते हैं कि इसकी आंखों को छेदो !! क्योंकि आंखों के छेदने से गुंजरूपी पुंज भरेगा, जहां चातुक, सुवा, मोर और हंस नहीं हैं उस जगह हे सागर ! क्या है ?? अर्थात् जहां कुनों और उल्लुओं का राज्य है इससे कोयल किसके पास जाकर फरियाद करे !!! अर्थात् मेरे आस पास सब विरुद्ध बस रहे हैं !! न मालूम मुझे क्या २ भोगना पड़ेगा यह नहीं कहा जा सकता ॥ १७ ॥

कीर अन्योक्ति—सवैया.

कीर समीरकि लेर लगी सो, करीरके कंटकमें अटकानो ।

पंख समार निवारत डार, उडथो न बने अतिही अकुलानो ॥

नारिंग-बिंब-अनार मिले कहां, यों कहिकें मनमें मुरझानो ।

उंच उसास लिये अस्वियां भरि, सागर यातें भलो जिय जानो ॥ १८ ॥

सुषा को पवन की लहर लगने से करीर के कटि में अटक गया, वहां से वह निकलने के लिये नाना प्रकार का प्रयत्न करता है, परन्तु उससे उड़ा नहीं जाता ! इससे बहुत व्याकुल हो रहा है, वहां नारंगी, अनार, कहां से मिलें !! इससे

अति ही व्याकुल होकर आंखों में पानी भर लाया, हे सागर ! इससे तो मरना ही अच्छा है ॥ १८ ॥

पतंग अन्योक्ति—कवित्त.

तो पदको दीपदान, नेहकी अखंड वृत्ति । पूरन प्रकाश ज्वाल, दीपक बर्यो रहे । पौंचत न पास नेक, आसहु न छोरी जाय । विविध बिलासहुको ध्यानही धर्यो रहे । चाहतै अंग प्रति—अंगमें मिलायो रंग । बने हे न संग यातें, निकट फिर्यो रहे । जानहुको जान ताको, जानत न सागर ज्यू । प्राण हे पतंग सोतो, जीवत जयों रहे ॥ १९ ॥

तुम्हारे पैर रूपी दीवे में स्नेह रूपी तेल से अखंड बत्ती रूपी प्रकाश प्रज्वलित हो रहा है, मेरा जीव रूपी पतंग उसके पास पहुंच नहीं सकता परन्तु मन अनेक प्रकार की बिलास रतिक्रीड़ा का ध्यान धरता ही रहता है, उसी प्रकार तुम्हारे रंग में मेरे रंग को मिलाने की इच्छा सदैव बनी ही रहती है, हे सागर ! मेरे जीव की दशा का आप नहीं जानते ॥ १९ ॥

अथ सागरोक्त हंस अन्योक्ति—सवैया.

पंक जहां मनि मोतिनके, तिनकी गति सो तितही गहेबी ।
भालमें छिल्लर ताल प्रवीण, तबें गुजरान तसी लहेबी ॥
मोनहि मोन मराल रहो, कगसे बगसे न कछु कहेबी ।
मान सरोवरसे बिल्लुरे, कीरतार करेसो सबे सहेबी ॥ २० ॥

हंसी की उपमा देकर प्रवीण से कहता है कि हे प्रवीण रूपी हंसी ! जहां मणि और मोतियों का कीचड़ है ऐसे मानसरोवर हो तो वहां की रीत रक्खें परन्तु जब कपाल में (भाग्यमें) छीझरा अर्थात् अच्छे पानी वाले तालाब में रहना लिखा हो तो वहां उसी रीति से निर्वाह करना चाहिये । अब तो मौन धर के हंसी के समान ही रहो और किसी से (काग और बगलों जैसे लोगों को) कोई बात कहनी नहीं, जब मानसरोवर से अलग पड़े हैं तो जैसी परमेश्वर करेगा उस सब को धीरे-धीरे सहन करेंगे ॥ २० ॥

अथ नट अन्योक्ति-सवैया.

डोर प्रवीन चढ्यो नटवा उन, घातकि बात निघात करी ।

बंश गयो पैं कुलांट बनी न त, बे न बढों न बढों उचरी ॥

देखनहार पुकार कहे अहो, खेलनहार धरी गुजरी ।

फेर सबे विधि साध रहो अब, तो यह बाजि संकेल धरी ॥ २१ ॥

इस प्रकार नटनी की शक्ति में प्रवीण से कहने लगे कि हे प्रवीण ! नट डोर पर चढ़ कर, अपने जीवन की बाजी लगा कर, कला की और बांस पर चढ़ गया परन्तु कुलांच खाने में सफल नहीं हुवा तो नीचे खड़े खिलाड़ी नहीं नहीं- ऐसी वाणी कहने लगे और कहा कि तुम्हारी चतुराई को मैं पसन्द नहीं करता, पर देखने वाले कहने लगे कि खेलने वाले को तो मौत की घड़ी गुजरी वह बाजी तो अलग की, वरन् आगे के साधन में तत्पर रहो कारण कि नटनी के समान मेरे इस शरीर रूपी बांस तक आप आये पर मुझे स्पर्श नहीं कर सके इस से आमक रूपी खिलाड़ी ऐसा कहेंगे कि खेल करने वाले ठीक नहीं हैं परन्तु एक दृष्टि से देखने वाले तो यही कहेंगे कि मौत की घरी गुजरी है इस-लिये फिर मिलाप हो ऐसा उपाय करना चाहिये ॥ २१ ॥

अमर अन्योक्ति-कवित्त.

प्रगट्यो बसंत तब, मोहोरे अनंत वन, लावत न कहुं तन, मन छटक्यो रहे । तरन तरन पोप, अरुन अरुन रंग, बरन बरन बास, चित्त चटक्यो रहे । जल जलजात ही को, छांडीहु न जात नेक, पल पल पातनपैं, सीस पटक्यो रहे । कुंज कुंज पुंज पुंज, गुंज गुंज आवत हे, फुलत न कंज याते भौर भटक्यो रहे ॥ २२ ॥

अब अमर की अन्योक्ति में कहते हैं कि हे चतुर अमर ! जब बसन्त ऋतु खिलेगी और भांति भांति के वन फूलेंगे तो उन के साथ मन नहीं लगेगा, झाड़ झाड़ में लाल और भांति भांति के रंग विरंगे फूलों की सुगन्ध से मन छटपटाता ही रहेगा जैसे अमर कमल की सुगन्धी को नहीं त्यागता और उसी

में मस्त रहता है परन्तु जब पानी सूख जाता है और कमल मुरझा जाता है तो अमर भी व्याकुल हुवा फिरता रहता है अर्थात् जब मेरा और आप का मिलाप होता है तब तो आप स्पर्श करते नहीं और लोकलाज रूपी कमल में बन्द रहते हो अब तो वह समय गया परन्तु आप का मनरूपी अमरा मेरी तरफ से उदासीन ही है ॥ २२ ॥

दोहा— दंपतिभेद अन्योक्ती, इहि विधि कहे बनाय ।

वह जाने उनकी दशा, अविदित कही न जाय ॥ २३ ॥

इस प्रकार दम्पति भेद अर्थात् स्त्री पुरुष की अन्योक्ति के भेद बना के कहे परन्तु उनकी दशा तो वैसी की वैसी रही, क्योंकि अजानी दशा कही जाय वैसी नहीं है ॥ २३ ॥

॥ अथ गाहा ॥

द्वारामति ग्रह गमनं, दंपति उत भेद अन्योक्ती ।

सप्तपंचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २४ ॥

द्वारिका की यात्रा करके अपने अपने देश को प्रस्थान किया और दूसरे पक्षियों वगैरह की अन्योक्ति के भेद सम्बन्धी प्रवीणसागर की यह सत्तावनवीं लहर समाप्त हुई ॥ २४ ॥

५८ वीं लहर

अथ दंपति विरहादशात्मनशिचा-भेद प्रसंग-सोरठा.

दोउन को दिन रेन, सुख न चेन दुख मै न बढ़ ।

निज मन सिच्छा देन, लगे सु बरनि बताइयत ॥ १ ॥

दोनों को ही रात दिन दुःख और काम बढ़ने के कारण सुख चैन नहीं मिलता इसलिए अपने अपने मन को शिचा दे रहे हैं उसका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

तत्र कलाप्रवीण मनशिचाभेद-दोहा.

लाज सराहत हे सबे, एकहि बार निबार ।

सोनेको परिहरि रच्यो, सोने को उर हार ॥ २ ॥

हे मन ! लाज की सब ही सराहना करते हैं, परन्तु उसे एक बार छोड़ दे, वह इस प्रकार कि जैसे सोना को तज कर अर्थात् तोड़ कर हार बनाया जाता है । तात्पर्य यह कि सोना के समान कीमती लाज है इसलिए उसे तज कर पानी तोड़ कर मित्र के मिलाप रूपी हार बनाना चाहिए ॥ २ ॥

आय सके तो आय ले, आसक के मैदान ।

धूप प्यास सहिबो विषम, मिलि है मित निदान ॥ ३ ॥

हे मन ! यदि मुझ से आया जाय तो प्रणय के मैदान में आजा, परन्तु वहा ताप और तृषा के सहन का विषम कार्य है, अन्त में प्रणयी अवश्य मिलेगा ॥ ३ ॥

ऐतिहासिक-सवैया.

मालति हीर हूँसेन सु सोइ, सुजान शिरीन सभा जो बनाई ।

हाजर है गुंरोजि जहां हि, जहां पदमावति की कविताई ॥

नृत्य संगीत करे नवनंदिनि, कुंदलकाम मृदंग बजाई ।
सागर मित मिलेंगे तहां चल, रे चित लेलि जहां पतसाई ॥ ४ ॥

पूर्व काल की प्रणयी स्त्रियों की स्मृति कर के कलाप्रवीण अपने मन से कहती है कि हे मन ! उन प्रेमियों की सभा में तू चल ! अर्थात् उन्होंने जिस प्रकार किया तू भी वैसा ही कर ! जिससे मित्र सागर तुम्हें वहां मिलेंगे । मालती, हीर, हुसेन (सुजान) और समजदार ऐसी शीरीन ने जहां सभा बनाई है, जहां रंगरेज भी हाजिर हैं, और जहां पद्मावती की कविता विद्यमान है, जहां नवनंदिनी नृत्य करती हैं, कामकुंदला मृदंग बजाती है और जहां लेली की याद आती है, हे मन ! तू वहां चल । वहाँ तुम्हें मित्र सागर मिलेंगे । तात्पर्य यह है कि—मधुमालती की तथा हीर और सोना की जो वार्ता है, हुसेन का किस्सा, सुजान और घनानंद की कहानी ब्रजभाषा में है, शीरीन और फरहाद की तथा रंगरेज की कहानी है, पद्मावती और पुष्पसेन की बाणी चतुराई के साथ कविता में शामिल की है, नवनंदिनी की वार्ता संस्कृत में है, कामकुंदला और माधवा नवल की भी कहानी शामिल भट ने लिखी है, लेली और मजनू का किस्सा फारसी में है यह सब आशुक माशुकों के लिये बाचनीय है ॥ ४ ॥

जातिस्वभावभिश्चितलाटानुप्रास अलंकार—कवित्त

जीयबो कछून अब, हिय बो विचार चढ़े । जीयबो भलो न विष, पीयबो सहल है । सहेनो सबेहि दुख, कहेनो न काहू ही सें । बहेनो म्रजाद हि से, रहनो सुफलहै । करिये न सोच कछु, डरिये न लोग हीते । धरिये सु प्रीत रीत, मरिये सुपल है । पार न परेगो प्राण, एह देह डार देरे । ऐमे चित्त धार तब, सागर ज्यू मल है ॥ ५ ॥

अब कुछ करना नहीं है, क्योंकि हृदय में बहुत विचार आते हैं, जाना अच्छा नहीं है, विषपान करना मरल है । सब आपदाओं का सहन करते हुए किसी से कुछ कहना नहीं और बड़े लोगों की मर्यादा पूर्वक चलते रहना बड़ा उत्तम फल कहा गया है । कुछ सावे न करें और लोगों से डरें भी नहीं,

मात्र एक प्रीति की रीति धारण कर मरजाना ही उत्तम है । प्राण पार नहीं पड़ेंगे, इसलिए देह को डाल दे, हे मन ! जब ऐसी धारणा करेगा तभी मित्र सागर मिलेंगे ॥ ५ ॥

मिश्रितलाटानुप्रास जातिस्वभाव अलंकार—कवित्त.

जाहिको निरंतर तूं, धरी धरी ध्यान रहे, ताहिसे दिगंतरसे, अंतर निपटरे । जरी जरी ज्वाल मेन, भरी भरी आवे नेन, फरी फरी एते पर, सागरज्यू रटरे । पल पल तल्फ तल्फ, मिल मिल चहे हंस, मिलबो न बने पंथ, चलबो विकटरे । रतियां भरीहे जोति, छतियां उसास संग् फटी फटी जात नहि, फिट हो निफटरे ॥ ६ ॥

हे मन ! तू जिसका निरंतर ध्यान धरता रहता है !!! उससे दिशाओं के इतना अन्तर तेरा है, जैसे—कामदेव की ज्वाला में जल-बल कर आंखें आंसुवों से भर आती हैं, इतने पर भी फिर फिर सागर की रटन और पल पल में तड़फ तड़फ कर जीव सागर से मिलना चाहता है ! परन्तु चलते नहीं बनता !! मार्ग बड़ा कठिन है । प्रीति कान्ति से भरपूर है ! उसी प्रकार छाती श्वासों श्वास से भरपूर है और फटी जाती है !! परन्तु ऐसी निफट है कि फटती नहीं ॥ ६ ॥

मिश्रित—लाटानुप्रास—लोकोक्ति—अलंकार—सवैया.

भित विलोकन को तरसो, बरसो असुवान भरी सु भरी ।
सागर ज्यु बिलुरे तबसे, अखियां ब्रह्म ज्वाल भरी सु भरी ॥
एरे भुको उभको बरुनी, करनी महि चूक परी सु परी ॥
क्यों बरषो—मुरझो ऊरझो अब, जो किरतार करी सु करी ॥ ७ ॥

हे आंखें ! तुम मित्र के दर्शन को तरसती रहो और आसुओं से भर भर कर बरसती रहो । जब से सागर मित्र से बियोग हुआ ! तब से विरह की ज्वाला लगी हुई है । हे पलकों ! तुम नीची ऊंची होती रहों !! परन्तु करनी में चूक जो हो गई सो तो हो गई । अब क्यों बरसती हो ? क्यों मुरझाती हो, और उलझती हो ? अब तो जो विधाता ने किया सो किया ॥ ७ ॥

दोहा—जिय तूं अब कैसे जिये, हिय तूं दरकत नाहि ।

वे अब इत आवत नहीं, तें उत गयो न जाहि ॥ ८ ॥

हे जीव ! तू अब कैसे जीता है ? हृदय ! तू अब फट क्यों नहीं जाता ?
क्योंकि वे मित्र तो अब इधर आते नहीं और मुझ से उधर जाया नहीं
जाता ॥ ८ ॥

द्रष्टांतालंकार—दोहा.

सदा सु मनमें राखिये, मित मिलन को ध्यान ।

पय घृत शुचि जल मंत्र सुग, मरुत गंध अनुमान ॥ ९ ॥

हे हृदय ! जिस प्रकार दूध में घृत, जल में पवित्रता, मंत्र में दैवत और
वायु में गंध रहते हैं इसी प्रकार तू सदा मित्र के मिलने का ध्यान रख ॥ ९ ॥

गूढोक्ति अलंकार—दोहा.

बोलत होय न बाउरो, चलविचल न व्हे चित ।

जो चाहत अबही जियो, बस बरुनायुध मित ॥ १० ॥

हे मन ! बोलते २ बाउरा न बन, और हे चित ! चलविचल मत हो ।
जो तू अब भी जीना चाहता है तो मित्र के (वरुण का आयुध=पास के) पास
जा कर रह ॥ १० ॥

अथ सागरमनशिखा भेद, समरूपक अलंकार—दोहा.

नेन नीर बिरहा बटन, उर तर पथ्थर पीन ।

मन मेंदी अवटे बिना, परस न पाय प्रवीन ॥ ११ ॥

हृदयरूपी कठिन पत्थर पर मन रूपी मेंहदी को बिरह रूपी कसोटी मे
नेत्रों के आंसु रूपी जल डाल कर खूब पीसे बिना प्रवीण का स्पर्श नहीं पा
सकता ॥ ११ ॥

अथ विनोक्ति अलंकार—दोहा.

चित्त भित्त जोही बसे, तजो न ताको संग ।

देखो गुन बिन धनुष गति, उलट बिकट सम अंग ॥ १२ ॥

हे चित्त ! हृदय में जो मित्र बसता है उसे तू छोड़ !! मनरूपी धनुष की गति को देख !! कि गुन (रस्सी जो धनुष में बंधी रहती है) के बिना धनुष की गति बेढंगी हो जाती है अर्थात् उस में मुकाम नहीं रहता और बेकाम हो जाता है ॥ १२ ॥

अथ एकावलि अलंकार—सवैया.

कररे उनके गुनकी गुननी, शुभ ध्यान हमेश हिये धररे ।

धररे इन मूरति आखनमें, अबही सु गयो सुख वीसररे ॥

सररे उन आयस राखि चढ़ा ये ज्यू, ऐसी करिहे विशंभररे ।

ररे अति सास उदास भये, जिय याद प्रवीन प्रभा कररे ॥ १३ ॥

हे जीव ! मित्र के गुणों की माला हाथ में ले, हृदय में निरंतर उन्हीं का शुभ ध्यान धर । नेत्रों में भी उन्हीं की मूर्ति धार । सुख तो भूल ही गया है, जो परमेश्वर ने किया है उसी आज्ञा को माथे चढ़ाए रख और अति उदास भर भर कर उदास हो रहा है तो हे जीव ! प्रवीण की कान्ति का स्मरण कर ॥ १३ ॥

अथ समरूपकालंकार—सवैया.

कानन डाक सुनी चरचा, तबते उर आई इमान की धीर ।

दैवत भित्त प्रवीण निहारत, चाहको चित्त चढ्यो रहे बीर ॥

पूजनहार मनोज महंत, सनेहको नेत बध्यो सर तीर ।

प्राण गयो बिरहा गिररे, पररे कररे चकचूक शरीर ॥ १४ ॥

जह से कानों ने चर्चा सुनी ! तब से हृदय में इमान रूपी धैर्य आया ! दैवत रूपी प्रवीण को देखा ! तब से चाहना रूपी वीर चित्त में चढ़ाही रहता है । मनोज

रतिराज रूपी महंत पुजारी है इसने स्नेहरूपी डोरा मस्तक के चारों ओर बांध दिया है, अब हे जीवनप्राण ! विरहरूपी पर्वत पर चढ़ कर नीचे पड़जा !! और शरीर को चकनाचूर करदे ॥ १४ ॥

ऐतिहासिक-कवित्त.

बहेरामसे वजीर, बकसी फरास जैसे, फूल फरमानी, घन आनंद कुजाई की । पुनासे प्रचंड मीर, रांभनसे वीर जहां, आलमके हाथ दीनी, कलम लिखाई की । अनहद नाद बाजे, साजे रस रीत सबे, बाहनी बि-राजे शीश, बिगर सिपाई की । अभिलाषवंत तहां, पायेगो प्रवीन मित, चल चल चित जिहां, मजनु दुहाई की ॥ १५ ॥

बहरामशाह जैसा जहां वजीर हैं, फरास जैसा बरूशी है, फूल जैसा जहां हुक्म देने वाला है, घनानन्द जैसा जमादार है, पूना जैसे जहां महान् अभीर हैं रांभा जैसे जहां शूरवीर पुरुष हैं, जहां अनहद बाजा का नाद होता रहता है, और जहां सब रस रति के साज हैं, जहां बिना सिर के सिपाहियों की सेना है तथा जहां मजनु को दुहाई फिरती है, हे अभिलाषी मन ! वहां चल तब भित्र प्रवीण को पावेगा, अर्थात् उपरोक्त प्रेमियों की भाँति तू भी कर ॥ १५ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

नेहके चोक कियो नृत चाहे, तो लाज परेच परे धररे ।
मागनको अभिलास मठा रस, दोहानि देखि कहा डररे ॥
आगेहि पाछे जबै मरबो तब, मूह मलीन कहा कररे ।
प्यारे प्रवीण के प्रेमकि जोतमें, प्राण पतंग जेसे पररे ॥ १६ ॥

स्नेहरूपी चौक में नृत्य करने की तेरी चाहना हो तो लाजरूपी परदा को दूर फेंकदे, यदि मठा (छाछ) नांगने की अभिलाषा है तो फिर दोहन देख कर क्यों डरता है ! आगे पीछे जब मरना ही है तब, मुख क्यों मलीन करता है ? हे मन ! प्रिय प्रवीण के प्रेम की ज्योति में पतंग की भाँति पड़जा ॥ १६ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

कह सोवतमें दिन खोवत हे, हितकी नित जो चित चाह तबे ।
 रुख छोरत नाहि बली भुककी, सुख मानतसो दुखदाई सबे ॥
 फररे कहा कुक फंदनमें, कररे उपचार कछूक अवे ।
 परवीन मिलेंगे अखंड प्रभा जक, लागहिगी तुंहि तूंहि जबै ॥ १७ ॥

हे मन ! यदि तू निरंतर अपने हित की बात चाहता है तो सोने में क्यों व्यर्थ समय खोता है ? ' कागा आकर सगुन देये ' इस इच्छा को तू छोड़ता नहीं, इस में सुख मानता है, परन्तु यह दुःखदायी है तू क्यों भूठों के फंदे में फिरता है, अब कुछ उपाय तो कर । प्रवीण तब मिलेगी जब तेरे हृदय में 'तूही तूही' की अखंड प्रभा चल पड़ेगी ॥ १७ ॥

यमकानुप्रास—दोहा.

परम न पावे धरम तजि, चरम न रहे निहार ।
 भरम न भटके शरम भजि, कर मन करम विचार ॥ १८ ॥

धर्म छोड़ने से परमपद नहीं मिलता !! इसलिए हे मन ! शरीर के सुन्दर चर्म को देख कर मत रह । इस भ्रम में मत भटक । शरम रख कर कर्म (कर्तव्य) का विचार कर । अर्थात् हे मन ! मित्र का ध्यान करने का जो तेरा धर्म है उसे छोड़ने से तू मित्र को नहीं पा सकता । तू अपने शरीर के चर्म को क्या देखता है, अपने शरीर की चिन्ता मत कर । शरम में मत रह !! अपने कर्तव्य कर्म का विचार कर "यमक शब्द को पुनि श्रवण, अर्थ जुदो हो जाय"० यह यमक का लक्षण है ॥ १८ ॥

दोहा—प्रिया पीय विरहा प्रकृति, मन सिच्छा किय एह ।

समरन प्रति लागत सुरत, दिन दिन बढ़त सनेह ॥ १९ ॥

प्रिया और प्रीय, (प्रवीण और रससागर) दोनों ही विरह की अवस्था में अपने अपने मन को शिखा देते हैं परन्तु स्मरण के प्रति स्थिति जाने से उन्हींका दिन दिन स्नेह बढ़ता ही जाता है ॥ १९ ॥

उत्प्रेक्षालंकार—सोरठा.

लागी सुरत सनेह, मानहु ज्यों दुरबीन द्रग ।

दरसत निकट न देह, दूर बसत मिता लखे ॥ २० ॥

उन दोनों की स्मृति, स्नेह में लगी होने से मानो ! आंखों में दुरबीन लगा हुआ हो, जिससे अपने पास का शरीर नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु दूरस्थ मित्र दिखाई पड़ता ॥ अर्थात् एक दूसरे को अपने अपने शरीर का भान नहीं रहता मित्र के ध्यान में ही मग्न रहते हैं ॥ २० ॥

दूरबीन दृष्टांतालंकार—सवैया.

या तो दुहून जराउ ले आतस, या तो गड़ो गहि गाढ़ जमी से ।

या तो इनो उर बीचहि तोमर, या तो कटो सिर खेंच असीमें ॥

आवत कोउ न दीठ इतें उत, भित विदेश बसे वह दीसे ।

प्रेमहुके चसमें अटके यह, नेन सु ता दुरबीन नरीसे ॥ २१ ॥

चाहे तो हम दोनों को आग में जला दो, अथवा जमीन में खड़ा खोद कर गाड़ दो ! या हृदय के बीच में भाला घुसेड़ दो ! अथवा तलवार से मस्तक बतार दो, परन्तु मित्र परदेश है, हमें यही दिखाई देता है, यहां का कुछ नहीं दीखता । ये आंखें भी प्रेम के चश्मे वाली दुरबीन की नली में फंस रही हैं सो छूट नहीं सकती ॥ २१ ॥

अथ—अतिशयोक्ति—अलंकार—कावित्त.

पुंडरिक झुथ पंथ, पलके अहार दे दे, प्रेतहु ते खेतको, उलंघ आगे जावेगा ।
पावकके प्रबल, पहार पार परबो हे, प्यास लिये पीवनको, बिख ना बतावेगा ।
शीशहू को फुंदा लहे, दरबीकी दोर गहे, सार धार सीढ़ी पै, निशंक होय धावेगा ।
सुरत दिवानखाने, राजत सनेह साह, पावेगा प्रवीण मन, या मग जो आवेगा ॥ २२ ॥

हे मन ! प्रवीण से मिलने जाने का मार्ग बहुत दुर्घट है । उस मार्ग में

बाघों का समूह है ! जो तेरे शरीर के ऊपर का मांस का आहार करने वाले हैं । उस के आगे प्रेतों का क्षेत्र अर्थात् श्मशान है । उस से आगे चलने पर अग्नि का पहाड़ है जिसे पार करना होगा । वहां प्यास लगने पर पानी के बदले बिष देने वाला भी कोई नहीं । वहां तो अपने शीशरूपी कुंदा हाथ में लेकर और काला सर्प रूपी डोर पकड़ कर निष्ठा रूपी सीढ़ी पर शान्त चित्त दौड़ेगा ! तो फिर सुरतारूपी दीवानखाना में जहां स्नेहरूपी शाह विराजमान है उस मार्ग पर तू आवेगा और तब मित्र प्रवीण को पावेगा । (रूपक अतिशयोक्ति वह जहां केवल उपमा०) यह अतिशक्ति का कथन है ॥ २२ ॥

अमृतोपमालंकार—कवित्त.

बार मास अंबरमें, बरखा बनाय रही, कुंज कुंज पुंजनमें, रतुराज रास किय ।
बातज, पतंग, भ्रंग, चातुक, चकोर मोर, हारन, जराफा, कोक, सारस
निवास किय । छर शशि बिना जोत, बिना वारके फुहारे, फल फूल भूल
रहे । अधवा अकास किय । पौनकी गति न जहां, वक्रता रती न चले, सा-
गर प्रवीण पाओ, एवे बाग आसकिय ॥ २३ ॥

जहां बारहो महीना आकाश में किंवा वस्त्र में वर्षा बनी रहती है, और कुंजों में वसंत ऋतु अथवा गली २ में रतिराज (कामदेव) रमता है, जहां मृग, पतंग, भ्रमर, चातक, चकोर, मोर, हारिल, जुराफ, चकवा और सारस अपने २ रुचिकर स्थान में पर रहे हैं, जहां बिना चन्द्रमा के ही उजाला रहता है, जल बिना ही फौवारे छूटते हैं, आकाश के मध्य में ही फूल फूले हुए हैं, जहां पवन की गति नहीं है और जहां जरा भी कुटिलता चलती नहीं, है !! तो हे मन ! तू ऐसे प्रेम के बाग में जाकर प्रवीण को प्राप्त कर । (इस अलंकार में प्रवीण के शरीर को आकाश का बाग की कल्पना दिह है) ॥ २३ ॥

दोहा—दंपति मन सिच्छा कही, सुरत प्रेम अनुमान ।

प्रेमपंथकी विषमता, उपमा प्रेन उदान ॥ ॥ २४ ॥

इस प्रकार प्रेम के मार्ग की कठिनाता तथा प्रेम के बाग की उपमा के साथ २

साथ लगी हुई लगन और प्रेम के अनुमान से स्त्री पुरुष अपने अपने मन को समझाते हैं ॥ २४ ॥

मन सु पवनकी लहर है, क्योंकर पकरे ताय ।

जहां जाने की सुरत तहां, जाय जाय पुनि जाय ॥ २५ ॥

मन की गति पवन की लहर के समान है, वह क्योंकर पकड़ा जावे ? जहां जाने की स्मृति हुई वहां वह जाता है और अवश्य जाता है ॥ २५ ॥

मन पत्थर हरिहर करे, मन सु ब्रह्मको अंग ।

मन विजयी तिहु लोक को, चलत प्रेमके संग ॥ २६ ॥

मन ही पत्थर को विष्णु अथवा महादेव बनाता है, क्योंकि वह मन ब्रह्म का ही अंग है । वह मन तीनों लोक को विजय करने वाला है, परन्तु वह स्वयं प्रेम के साथ साथ चलता है ॥ २६ ॥

गाहा-दंपति निज मन-सिच्छा, सुरता प्रेम पंथ उपवन विधी ।

अठपचाश अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २७ ॥

सागर और प्रवीण ने अपने अपने मन को शिक्षा दी तथा प्रेम के पन्थ और बाग का वर्णन किया, इस सम्बन्ध वाली प्रवीणसागर की अष्टावनवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ २७ ॥

५६ वीं लहर ।

अथ दंपतिपत्रभेदसमस्या प्रसंगो यथा—सोरठा.

विरहा नित संतात, मनही मन जानंत दुहू ।

कछु संछेप सु बात, लहत मित कुसुमावली ॥ १ ॥

नित्य की विरह वेदना को दोनों मन ही मन में जानते हैं । कुछ निक्षेप में सागर के मित्र तथा कुसुमावलि जानते हैं ॥ १ ॥

बहु दिन भये बहोर, दोऊ जन बिछुवा बने ।

प्राण रहत तिहि ठोर, मास मास पाती मिले ॥ २ ॥

दोनों के बिछोह को बहुत दिन हो गए । एक दूसरे को प्रतिमास पत्र मिलते हैं इससे प्राण हर रहे हैं ॥ २ ॥

पाती भेद प्रकार, करि केते आगे कहे ।

बिछुरे भई अबार, कहत बहुरि सुनिये कथा ॥ ३ ॥

पत्र का भेद और प्रकार पहिले कई दफा कह चुके हैं, परन्तु अब बिछोह हो कर बहुत समय हो गया है इसलिए फिर उम कथा को कहते हैं, सो सुनो ॥ ३ ॥

तत्र प्रथम कलाप्रवीण पत्रभेद—सोरठा.

कर कंपन द्रग नीर, प्रथुल स्वाव ज्वाला जगे ।

चहले परे सु चीर, कहु कागद केसे लिखें ॥ ४ ॥

प्रवीण कहती है कि हाथ काँपता है, नेत्रों से नीर भरता है, लम्बी २ सासों से हृदय में ज्वाला भभकती है, आंखों के आँसुओं का दाग चीर पर पड़ता है, कहो ! पत्र कैसे लिखें ? ॥ ४ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—सवैया.

अंगहि अंग सबै थरके धर, के कलमे कर कैसे रखे ।

चीरपरे चहले सिंगरे जल-धार धरे वरषे सु चखे ॥

दीर्घ सास उठे इतने पर, मानहु ज्वाल झुजंग नखे ।
नागर ताड़ कहा करिये, कहो सागर कागर क्यों सु लखे ॥ ५ ॥

मेरा सब अंग कांपता है, फिर हाथ में कलम किस प्रकार पकड़ें ? सारे चीर में आंखों के काजल के धब्बे पड़ रहे हैं, आंखों से आंसुओं की जल-धारा पृथ्वी पर पड़ती है । इतने पर भी मुख से दीर्घश्वासोच्छ्वास मानो भर्यकर विषधर की फुंकार निकलती है, हे सागर ! उसे क्या करें ? कहो पत्र किस प्रकार लिखें ? ॥ ५ ॥

संदेहालंकार-सवैया.

काल करोड़को राजतहै रद, सरज वाहन शृंगनकी शख ।
मीन ब्रही जनकी वनसी किधों, कामधजा अकार कियो लख ॥
कारतनो अभिजाष किधों, किरवान विदारनको सगरे सख ।
सागर दूजहु को दुजराज किधों, यह नाहरको निकस्यो नख ॥

द्वितीय के चन्द्रमा को देख कर प्रवीण कहती है कि यह तो कालरूपी बराह का दांत है, अथवा उदयाचल पर्वत के शिखर की अणी है, अथवा विरही जनरूपी मछली को फँसाने की कंटिया है या कामदेव की ध्वजा है कि ओकर बिलरा हुआ है या अभिलाषाओं को काटने वाली कांतर है, अथवा सब सुखों को विदारण करने वाली कृपाण है ? हे सागर ! यह द्वितीय का चन्द्रमा है अथवा बाध का नख है ? ॥ ६ ॥

जातिस्वभाव अलंकार कुसुमोक्त-सवैया.

एक समय सगरी सखियां मिल, नीठ सुवाइ विचार विचारत ।
सागर मित मिले सुपने महीं, पान खवाइ गरे भुज डारत ॥
बात कछु कहिबे को भई तब, नाहिं लखे अखियांन उधारत ।
सोवतसे उठ रोवत जोवत, पोसपलंगपै पान पछारत ॥ ७ ॥

“कुसुमावलि कहती है कि एक समय सब सखियों ने मिलकर जैसे तैसे

कर" के प्रवीण को सुनाया कि वह विचारों में विचरण करने लगी । इतने में निद्रा आई और स्वप्न में सागर मित्र मिल गए । उस समय मानो पान खिलाकर गले में हाथ डालते हुए कुछ बात कहने को हुई और आंख खुल गई, सागर को नहीं देखा, तो सोने से उठ कर रोने और देखने लगी और पलंगफोस पर हाथ पछाड़ने लगी ॥ ७ ॥

प्रवीणोक्त दृष्टांतलंकार.

दोहा-ऐरे तेरे चरनको, लग्यो रहत है ध्यान ।

शशि चकोर जैसे सदा, पार्ती पर गुजरान ॥ ८ ॥

प्रवीण कहती है कि हे सागर ! आप के चरणों का ही एक ध्यान लगा रहता है । जिस प्रकार चकोर पक्षी का आधार चन्द्रमा है, उसी प्रकार मेरा आधार आप की पत्रिका है ॥ ८ ॥

अथ स्मृतिमान अलंकार-सवैया.

जा दिनतें मन दोउ मिले अरु, जा दिन रूप लख्यो चित चोरे ।

जा दिन नैनन सैन मिले हितु, जा दिन नैनन नैन सु जोरे ॥

जा दिन जादुनसी बतिथां सुनि, होय गयो रे बिछोह बहोरे ।

ता दिनतें लखि सागर संचर, आंगन कागनसे कर जोरे ॥ ९ ॥

हे सागर ! जिस दिन से दोनों मन मिले हैं, जिस दिन से चित्त को चुराने वाला रूप देखा है, हे हितैषी ! जिस दिन से नैनों का इशारा मिला और आंख से आंख जिस दिन से मिली है, जिस दिन से जादू भरी तुम्हारी बातें सुनी और फिर वियोग हो गया है, उस दिन से तुम्हारी बाट देखती और आंगन में आए हुए काग को हाथ जोड़ती हूं कि तुम्हारे आने की शुभ सूचना दे ॥ ९ ॥

अथ सागरपत्र रूपकालंकार-सोरठा.

प्रेम फिरावन हार, मन बीना गुन आंचरे ।

त्योँ त्योँ बिरहा तार, पल पल चढ़े प्रवीण जु ॥ १० ॥

सागर कहते हैं कि हे प्रवीण ! मनरूपी वीणा पर तुम्हारे प्रेमरूपी खूँटी को प्रेम रूपी फिराने वाला ज्यों २ फिराता है त्यों २ विरहरूपी तार चलता है ॥ १० ॥

मन कुरंग अनुहार, फिर फिर आवत है उतै ।

सूको सब संसार, नीलो नेह प्रवीण जु ॥ ११ ॥

हे प्रवीण ! मेरे मनरूपी कुरंग में मृग फिर २ कर वहां तुम्हारे पास आता है क्योंकि वह इस सब संसार से उदासीन होकर तुम्हारे ही चित्त में बस रहा है ॥ ११ ॥

अथ वर्णविश्लेष-गूढोक्ति-अलंकार-सवैया.

ध्वांत बिना अति कुंभकुं संकट, धीरज कैसे शिखंडिज कीजे ।

जा दिन छंद समीर सुने निज, ता दिन से शुभ जोतिष छीजे ॥

एहो प्रवीण मयूर पुकारत, हेमगिरी धरि आरसी दीजे ।

सोगन घरन भोम न चूकत, मंगनको उतही सुघ लीजे ॥ १२ ॥

हे प्रवीण ! तुम्हारे संग बिना शरीर को अतिसंकट है, जीव को धैर्य कैसे हो ? जिस दिन से कानों ने तुम्हारी बातें सुनी उस दिन से शुभ समय खोया जा रहा है । मैं विरही पुकार करता हूं इसलिए दया करके आबो और दर्शन दो । मेरी रक्त वर्ण आंखें तुम्हारे मार्ग को भूलती नहीं इसलिए किसी दिन आकर सुघलो । इस में शब्दार्थ इस प्रकार है:—

ध्वांत=तम (तुम), कुंभ=घट या शरीर, शिखंडिज=वृहस्पति या जीव, छंद=भुक्ति या कान, समीर=वायु या वात, जोतिष=काल=समय, मयूर=वर्हि (विरही), हेमगिरि=मेरु (मेहर दया), आरसी=दर्पण (दर्शन), सोगन=शपथ (रास्ता), सुर=सूर्य (मित्र), भोम=लोहितांग (रक्त वर्ण वाले नेत्र), मंगन=दीन (दिन) ॥ १२ ॥

एकावली-प्रलंकार-सवैया.

परसे बिनही छिनही छिनही, मनमें दुख होत बड़े गरसे ।
 गरसे वह जानत जाय परे, सु जरैं बिरहा-नलकी भरसे ॥
 भरसे निजही तन छीवत है, जिय जीवत देखनकी हरसे ।
 हरसे यह मांगत बानि सदाहि, प्रवीण के पायन से परसे ॥ १३ ॥

हे प्रवीण ! तुम्हारे स्पर्श के बिना क्षण २ में मन में पर्वत के समान महान दुःख होता है, और ऐसा मन में आता है कि पर्वत पर से जाकर गिर पड़े !! क्योंकि बिरह की ज्वाला से जल रहा हूं। शरीर बराबर छीजता जाता है परन्तु जीव देखने की इच्छा से जी रहा है और हर-शंकर से सदा यह बेर मांगता है कि प्रवीण का पादस्पर्श प्राप्त हो ॥ १३ ॥

संभावनालंकार-सवैया.

पत्र हमें पठयो तुमको वह, दोस दसो दस द्वैमें दहेगो ।
 ताको विचार करो विसतार ज्यु, पानिको पानि कहां लों रहेगो ॥
 मासहु जो न मिल्यो प्रति-उत्तर, हंस बयार के संग बहेगो ।
 सास उसास लगे पलही पल, कौन प्रवीण प्रवीण कहेगो ॥ १४ ॥

हे मित्र ! हमने तुम्हें पत्र भेजा है जो दस बारह दिन में पहुंचेगा। उसका विस्तार से विचार करना। अंजली का पानी कब तक रह सकेगा ? यदि एक मास में उत्तर न मिला तो यह जीव हवा के साथ बह जायगा और फिर श्वासोच्छ्वास के साथ पल पल में 'प्रवीण प्रवीण' कौन कहेगा ? ॥ १४ ॥

स्मरनालंकार-सवैया.

वाहि उछीर वही गति बैठबो, वाहि सुरा गति वाहि पिवावे ।
 वा मुसकान वहै सिसकी अरु, वाहि तरे अरजीसे रिभावे ॥
 प्रच्छन्न भेद सुने बतियान के, यों परतच्छ बनाय सुनावे ।
 है न हितू जग मध्य प्रवीण ज्यु, रैन भई सोई नैन दिखावे ॥ १५ ॥

सागर कहता है कि हे प्रिय प्रवीण ! स्वप्न में जो जो देखा है वही तकिया, उसी प्रकार बैठना, वही मदिरा और उसी प्रकार पिलाना, वही सुसकान, वही सिसकी और उसी प्रकार मित्रत से रिझाना, उसी प्रकार गुप्त बातों का सुनना, इन बातों को जो कि रात में (स्वप्न में) हुई हैं उन्हें प्रत्यक्ष कर के आंखों से दिखाने वाला कोई हितु संसार में नहीं है ॥ १५ ॥

दोहा—पाती छाती लाय नित, दंपति जपत सयान ।

जानत सागर प्राण सम, उन प्रवीण वह प्राण ॥ १६ ॥

वे दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे के पत्र को छाती से लगाते और एक दूसरे का स्मरण करते हैं । सागर प्रवीण को और प्रवीण सागर को प्राणों के समान प्रिय समझते हैं ॥ १६ ॥

पाती महि लखियत उभय, भेद समस्या लाय ।

दरशत दुन महि निज दशा, सो कुछ कहों सुनाय ॥ १७ ॥

वे दोनों पत्र में समस्या भेद लाकर लिखते हैं और उस में अपनी र दशा दिखाते हैं । उस का कुछ वर्णन यहां करते हैं ॥ १७ ॥

तत्र—कलाप्रवीणोक्त—समस्या—सोरठा.

सोधहु सागर मित, बावन अच्छर भेद यह ।

प्रेम सु काहि कहंत, बरन जात अभिधान कह ॥ १८ ॥

प्रवीण कहती है कि हे सागर मित्र ! इन बावन अक्षरों का भेद ढूंढो और उस में प्रेम किसे कहते हैं ? उस का वर्ण, जाति और अभिधान क्या है ? ॥ १८ ॥

कवित्त.

लेकर तराजू गुन, अच्छर प्रमान करो, ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेद, व्यंजन विचारिये । ओम नमो एक बिंश, कादि पंचतीश अंक, छप्यनको बार भेद, पंगति बिठारिये । कौन तामें ब्राह्मण है, छत्री वैश्य शूद्र कौन, कीजिये

निवेरो, रंग, रूपहि निहारिये । सबमें बसंत एक, एकमें अनेक रूप, अहो
मित सागरज्यु, प्रेम नेम पारिये ॥ १६ ॥

हे सागर ! हाथ में तराजू लेकर अक्षर की गिनती करो और उन का
प्रमाण अर्थात् तौल करो । उसमें ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत व्यंजन के भेद विचारो ।
ॐ नमः आदि इक्कीस और के से चो पर्यन्त पैंतीस मिलकर छप्पन अक्षर
हुए । उस में व्यंजन अक्षर योग व्यवहार में बारह भेद बाराखड़ी में होते हैं ।
इन्हें अलग २ पंक्ति में रख कर देखो उनमें ब्राह्मण कौन और क्षत्रिय, वैश्य
तथा शुद्र कौन हैं ? उन का रंग रूप देख कर निश्चय करो । आप देखेंगे कि
उन सब में एक ही व्याप रहा है, एक में ही अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं ।
ऐसा एक आध अक्षर ॐ का है । इसी प्रकार सचराचर में प्रेम फँक रहा है
और उसी का विविध प्रकार का रूप रंग दिखाई पड़ता है । उसी के नियम का
पालन करो अर्थात् प्रेमरूप ईश्वर सर्वत्र व्यापक है इसलिए जहां प्रेम लगे
वहां ईश्वर है ऐसा समझना । इस छंद में गिनाए हुए अक्षर इस प्रकार हैं:—
ॐ नमः सिद्धं “ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ अं अः ”
यह २१ अक्षर हुए. “क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न,
प फ ब भ म, य र ल व, श ष स, ह ळ णः ” इस प्रकार ३५ अक्षर व्यंजन
हुए ॥ १६ ॥

कवित्त.

कीजिये विचार भारी, मोटे अरु छोटे कौन, कौन उर कंठ, तालु रसना
दसन है । नासिका सुमार केते, मस्तक उचार ओठ, भीषम जुगल बानी,
निगम वचन है । अर्धमात्र, अ, उ, म्, मिल एक भयो सबै, अदि उनके
उचार तार, जोगिया जपन है । शोधो शास्त्र वेद मत, बोध को उतनिहूँको,
सागरज्यु प्रेम यामें, कीधौं रूप अन्य है ॥ २० ॥

भारी विचार कीजिए कि इन में मोटा-गुरु और छोटा-लघु कौन है, इन में
उरस्थानी, कंठस्थानी, तालुस्थानी, जिह्वा मूलस्थानी, दंतस्थानी और नासिका-

स्थानी की क्या गिनती है । मूर्धा से तथा होठ से कितनों का उच्चारण होता है और उन में घोषाक्षर तथा अघोषाक्षर वेदवचन प्रमाणानुसार कौन हैं ? उन सब में आदि मात्रा वाला 'म'कार और उस के साथ अ उ मिलकर ॐ अक्षर बना !! जिसके उच्चारण का तार जोगीजन के जाप का महामंत्र है । इस विषय में शास्त्रों तथा त्रिकांड (ज्ञान, कर्म, उपासना) वेदों के उपदेश को ढूंढो । हे सागर ! इन सब में एक प्रेम का ही रूप है अथवा बाद में फिर कुछ और है ? इस छन्द में कहे हुए अक्षरों का स्थान य र ल व ह, ज ण न ङ म उरस्थानी, (२) अ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग कंठस्थानी, (३) इ चवर्ग य श तालुस्थानी, (४) ऋ टवर्ग र ष मूर्धास्थानी, (५) लृ तवर्ग ल और स दंतस्थानी, (६) उ, पवर्ग और उपध्मानीय ओष्ठस्थानी, (७) व्य म ङ ण न म नासिकास्थानी, (८) अर्द्ध विसर्ग जिह्वामूलस्थानी हैं । प्रत्येक वर्ग का पहिला और दूसरा अक्षर और श ष स यह अघोषाक्षर तथा अर्धस्वरसहित शेष सब घोषाक्षर हैं ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

घोष रेफ व्यंजन अधर, कंठ तालु सुर जान ।

नासा बिन उच्चार यह, कहा प्रेम पहिचान ॥ २१ ॥

घोष, रेफ और व्यंजन के होठ, कंठ, तालु, उर तथा नासिका आदि स्थान हैं, उसके बिना जिसका उच्चारण होता है उसे पहिचानना ही प्रेम की पहिचान कहा है, अर्थात् आद्याक्षर ॐ का पहिचानना ॥ २१ ॥

चित्रालंकार-कवित्त.

सबालच्छ भारत है, कंध बारा भागवत, रामायण सप्त कांड, ऋषिने बखानी है । बावन उपनिषद, श्रुति समृती विचार, गीताको अरथ कियो, सबही प्रमानी है । दर्श षटकेउ मुनि, निज निज लगे बोध, जुदे जुदे भेद कर, उने उर आनी है । सागरज्यु प्रेमसिंधु, लहर मिलंत मुक्ति, साय भेद पावत क्यों, आवत न बानी है ॥ २२ ॥

महाभारत में सषा लक्ष श्लोक हैं, श्रीमद्भागवत बारह स्कन्धों में पूर्ण हुआ है, रामायण सात काण्डों में ऋषि ने वर्णन किया है । बावन उपनिषद्, श्रुति और स्मृतियों का मनन कर उन सब का सार लेकर गीता का निर्माण किया जो सब को प्रमाणरूप में मान्य है । उस गीता से छः दर्शन वाले मुनि अपने २ मन का बोध करने लगे और पृथक् पृथक् भेद करके अन्तर कर दिया है । हे सागर ! प्रेम समुद्र की लहर से जो मुक्ति मिलती है !! उसे ऊपर कहे हुए भेद वाला ही प्राप्त करता है ? या कि उन की वाणी में यह बात ही क्या आती ? उत्तर—प्रेम की लहर तो अनुभवी ही प्राप्त करता है, वाणी कथन करने वाला नहीं पाता ॥ २२ ॥

अथ अतिशयोक्ति विभावनालंकार—सवैया.

बहरहे न लवे कहुं दहर, अदर मोरन के दरसी ।
घोर घटा नहिं सोर भयो, चपला चिहु ओरन गो परसी ॥
धूर धसे मधवा न लसे, धनु सर कला सरसे सरसी ।
गिरिराजके तुंगन नीर बहो, सु न जानत कौन घटा बरसी ॥ २३ ॥

आकाश में बादल चढ़े नहीं, न कहीं दादुर ध्वनि है परन्तु अंदर मोर की ध्वनि सुनाई पड़ती है, काली घटा चढ़ी नहीं परन्तु घोर गर्जना हो रही है, चपला (विजली) चमक रही है, मेघ तो चढ़े नहीं परन्तु वर्षा की धारा चल रही है, इन्द्र धनुष की आभा बढ़ती जाती है, गिरिराज की चोटी से नीर भर रहा है, न जाने कौनसा बादल बरस गया है ? इस का मतलब यह है—कि मोर की भौंति मैं पुकार रही हूं, विजली की भौंति मेरी चंचल दृष्टि दशो दिशाओं में फिर रही है, वर्षा की धारा की भौंति मेरे आंसुओं से बूँद जा रहे हैं, मेरी थूकुटी इन्द्र-धनुष के समान चढ़ रही है, और मेरे स्तन रूपी पर्वत शिखर से आंसु रूपी जलधारा बह रही है ॥ २३ ॥

(१) इस में कार्यों के बिना कार्य बतलाया गया है इससे विभावना अलंकार कहा जाता है वरन् वादर—दादुर आदि रूपक द्वारा वर्णन में अतिशयोक्ति होने से अतिशयोक्ति विभावना नाम रक्खा है ।

सोरठा—यहै समस्या आन, पाती लिखी प्रवीण ज्यु ।

सागर अतिहि सयान, बांचत ही बूझी सबे ॥ २४ ॥

इस प्रकार समस्यायुक्त पत्रिका प्रवीण ने लिखी और रससागर (क्योंकि अति चतुर है) पढ़ते ही सब समझ गया ॥ २४ ॥

पुनः सागरोक्त समस्याभेद—सोरठा.

भेद समस्या लाय, सागर लिखे प्रवीण प्रति ।

सो अब कहत बनाय, जानहि जाननहार जन ॥ २५ ॥

समस्या भेद से रससागर ने प्रवीण को जो पत्र लिखा, उसे अब कहते हैं, जिसे जानने वाले जान लेंगे ॥ २५ ॥

सवैया—मांग बजार किधों चढ़िके, यह केश मयूर ठग्यो हे ठगारो ।

हार हिंडोर किधों तपिके, कुचकी रुच मांग लई निरधारो ॥

बेसर खेली किधों नटवा, दग कज्जर रीझ लई सु निहारो ।

एहो प्रवीण परेख कहो यह, ऐसे भयो मुकता अधिकारो ॥ २६ ॥

मांगरूपी बाजार में जाकर बेसरूपी ठगारों ने ठग लिया है ! ! या हार-रूपी हिंडोला के डोर पर उल्टे सिर लटकते हुए तपस्या करके स्तन पर रहने का वर मांग लिया है ! ! अथवा नाक की बाली में नट की भोंति नृत्य करके आंखों के काजल की रीझ लेलिया है ! ! हे प्रवीण ! आओ और परीक्षा करके कहो कि ! ! जिस पर इस प्रकार अधिकार है—मोती कैसा है ? अर्थात् मेरा मन मोती के समान तुम्हारे साथ मिलकर रहता है ॥ २६ ॥

चित्रालंकार—सवैया.

एक नवीन समीर चलयो, तिनसे जलधार घटा वरसे ।

वे जलधार परी तिनसे, इक पावक ज्वाल घनी दरसे ॥

पावक ज्वाल भई तिनसे, इक बेल हरीहि हरी सरसे ।

कौनहि बेल भई है कहाँ, केहि ठोर “प्रवीण रहे परसे” ॥ २७ ॥

एक नवीन प्रकार की हवा चली, जिससे घटा में से जलधारा बरसने लगी । वह जलधारा पड़ी !! उससे अग्नि की एक प्रचण्ड ज्वाला प्रकट हुई । उस प्रचण्ड ज्वाला से एक हरी वेलि प्रकट हुई । हे प्रवीण ! वह कौनसी वेलि है ?? कहां हुई ? और कहां स्पर्श किया ? तात्पर्य यह कि प्रणयरूपी वायु चली, उससे नेत्रों से आंसु रूपी वर्षा हुई, और विरह रूपी ज्वाला भड़क उठी उससे प्रेमरूपी वेलि प्रकट हुई । वह मेरे हृदय से उत्पन्न होकर तुम्हारे ऊपर लिपट रही है । यह सारा छन्द प्रश्नरूप है और उत्तर भी इसी में से निकलता है 'प्रवीण रहे परसे' यानी प्रवीण को लिपटा रही हैं । (इसलिए चित्रालंकार में बात हुई—लक्षण—चित्रवर्ण विन्यास है पदमादिक आकार०) ॥ २७ ॥

पुनः चित्रालंकार—सवैया.

घट राखत पानी ढरे, रहे सु एक रती न ।

घट फूटे पानी रहे, कारण कौन प्रवीण ॥ २८ ॥

घड़ा रखने से पानी ढुल जाता है और एक रती भी उस में नहीं रहता, परन्तु घड़ा फूटने से पानी रहता है । हे प्रवीण ! इस का कारण क्या ? इस प्रश्न का उत्तर भी इसी में है कि घट याने शरीर रखने से पानी-टेक जानी रहती है और प्रीति भी नहीं रहती परन्तु यदि घट-देह फूटे यानी नष्ट होवे तो भी टेक रहे, इस कारण को कौन चतुर नहीं जानता ? अर्थात् सब जानते हैं ॥ २८ ॥

बाजीगर बाजी बिहद, खेलत करत कमीन ।

देखनहारे उठ चले, कारण कौन प्रवीण ॥ २९ ॥

एक बाजीगर बेहद खेल बना कर करता है, उस में कोई कमी नहीं है परन्तु देखने वाले उठ कर चल दिए, हे प्रवीण ! उस का कारण क्या ? उत्तर इसी में—ईश्वररूपी बाजीगर ने सृष्टिरूपी बेहद रचना कर खेल रचा, जिस में कोई भी कमी नहीं, परन्तु देखने वाली हमारी आंखें उसे देखना नहीं चाहती । उस का कारण जानने में कौन प्रवीण नहीं है ? अर्थात् सब हैं ॥ २९ ॥

बांस कटे बंधे बरत, अंबर हे न जमीन ।

नटवा चढ़ि उतरत नहीं, कारण कौन प्रवीण ॥ ३० ॥

डोर से बंधा हुआ बांस कट गया, वह न आकाश में है !! न पृथ्वी पर, परन्तु उस पर चढ़ा हुआ नट उतरता नहीं है । हे प्रवीण ! इस का कारण क्या है ? उत्तर—मेरी वृत्तिरूपी डोर से बन्धा हुआ आशा रूपी बांस फट गया !! परन्तु उस पर चढ़ा हुआ हमारा मन रूपी नट उतरता नहीं । कारण जानने में कौन प्रवीण नहीं ? ॥ ३० ॥

हंस मांसाको चुगे, सूखे सरवर मीन ।

जल वरषे अगनी भरे, कारण कौन प्रवीण ॥ ३१ ॥

एक हंस मांस खाता है और सूखे हुए तालाब में मछली रहती है, वर्षा होती है और आग जलती है, हे प्रवीण ! इस का कारण क्या ? उत्तर—हंस (जीव) मेरे शरीर का मांस खाता है, मेरे आंखों में पानी सूख गया है परन्तु डोढे रूपी मछली उस में रहती है । नेत्रों में से आंसुओं की वर्षा होती है और विरह ज्वालरूपी अग्नि प्रज्वलित है, उसका कारण जानने को कौन प्रवीण नहीं ॥ ३१ ॥

अथ अनन्वयालंकार—सोरठा.

इहि विधि भेद अनेक, दुहु लखंत जानंत दुहु ।

बानी विविध विवेक, उनही के उनही बने ॥ ३२ ॥

इस प्रकार अनेक समस्या भेद से दोनों लिखते और दोनों ही समझते । वाणी के विविध भाँति के विवेक उन से ही और उनको ही बन सकता है ॥ ३२ ॥

आवत पत्र अपार, सबे भेद कहत न बने ।

शंका ग्रंथ विस्तार, बढ़न लिये संक्षेप किय ॥ ३३ ॥

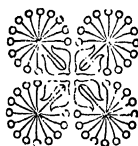
अपार पत्र आते हैं, सब का भेद कहा नहीं जा सकता । ग्रन्थ-विस्तार के भय से संक्षेप से ही कहा है ॥ ३३ ॥

अथ गाथा.

दंपति पत्रसु भेदं, करि संक्षेप समस्या भंखिय ।

उनषष्ठि अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३४ ॥

स्त्री पुरुष के पत्र के भेद की समस्याओं का संक्षेप से वर्णन वाली प्रवीण-सागर की यह उनसठवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥



६० वीं लहर ।

अथ श्री दंपति प्रेमदृढावपत्रभेदप्रसंगो—यथा सोरठा.

दंपति विरह बढंत, पत्र लिखिय पूरन दशा ।

प्रेम द्रढावन चंत, उर आशय अनुमान किय ॥ १ ॥

वह दंपती विरह बढने से परस्पर प्रेम को दृढ़ करने के हेतु हृदय के आशय के अनुसार पूर्ण दशा का पत्र एक दूसरे को भेजते हैं ॥ १ ॥

तत्र कलाप्रवीणोक्त प्रेमद्रढावनभेद, द्रष्टांतालंकार—दोहा.

दीपक जोत उद्योत लखि, प्रेम न कीनो भंग ।

देखो अंग पतंगको, रह्यो रंग मिल रंग ॥ २ ॥

दीप की ज्योति का उदय देख कर जिसने प्रेम भंग नहीं किया और दीपक के रंग के साथ रंग मिला दिया ऐसे पतंग की जाति को देखो ॥ २ ॥

अथ रूपकालंकार—दोहा.

सागर सागर प्रेमको, सुरत लहर चढि चाहि ।

लाज ज्वाल हटकत अटक, यों निशबासर जाहि ॥ ३ ॥

हे सागर! प्रेम के समुद्र में सुखरूपी लहर के ऊपर मेरी चाहना चढ़ी हुई है, लज्जारूपी ज्वारभाटा से टक्करें खाती है, इस प्रकार दिन रात बीतते हैं ॥ ३ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

बारही मास उदास रहे सु, विलास न चाहत नीर तटे ।

सिंधु भरे सरिता सर कूप सु, चंचहु वारि कबू न चटे ॥

स्वांतहु को विश्वास गहे, निसवासर ही पिय पीय रटे ।

सागर प्रेमहुकी परखा, बरषा बरषे तिरषा न मिटे ॥ ४ ॥

बारह महीना चातक पक्षी उदास ही रहता है परन्तु नदी, तालाब अथवा

अन्य जलाशय के तीर जाकर क्रीड़ा नहीं करता । समुद्र, नदी, तालाब और
 कुवां भरे हों तो भी उन के जल में चोंच भी कभी नहीं लगाता ! केवल स्थानि-
 बृंद का विश्वास रख कर रात दिन "पिब पिब" रटता रहता है । हे सागर !
 प्रेम की परीक्षा देखी वर्षा होती है, परन्तु वह तृपित ही रहता है ॥ ४ ॥

अनन्वयालंकार-सवैया.

आसत नासत हु नहिं पावत, पीर फकीर कितेब कुरानी ।
 साधक सिद्ध सब मिलि शोधत, बोधत वेद पुरानहि बानी ॥
 मंत्रक जंत्रक तंत्रक भेद, निरंत्रक काहु नहीं पहिचानी ।
 ब्रह्म बिधा करतार किरामत, सागर जानन-हारन जानी ॥ ५ ॥

हे प्रियतम ! वियोग दुःख की कहानी ऐसी है कि उसे आस्तिक, नास्तिक,
 पीर, फकीर, किस्तानी तथा कुरानी कोई भी जान नहीं सकते । इतना ही नहीं,
 साधक और सिद्ध सब मिलकर सोधते हैं, वेद और पुराण की बाणी का जो
 ज्ञान देते हैं ऐसे मंत्र जंत्र और तंत्र का भेद निरंतर करते हैं परन्तु उनमें किसी
 को कुछ पता नहीं चलता । यह तो विधान की करामत है !! जानने वाले ही
 जान सकते हैं !! ॥ ५ ॥

रूपकालंकार-सवैया.

प्राण समाधि लई करता, सुरतानल नाभि सरोज बढ़ायो ।
 ब्रह्म भयो उत्पन्न सनेह, बहे विरहा जलमें मुरझायो ॥
 शोधत बाहिरको निकस्यो, परि पार न काहु विचारसे पायो ।
 ध्यान धर्यो बहुर्यो उनको, सिंगरे महि सागर रूप जनायो ॥ ६ ॥

हे प्रिय सागर ! मेरे प्राणरूपी करतार ने समाधि ली और मेरे नाभि में
 से सुरतरूपी कमलदंड निकला, जिस में से स्नेहरूपी ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । वह
 विरह रूपी पानी में मुरझा गया । फिर शोधते २ बाहर निकला परन्तु किसी
 विचार से पार नहीं पाया । तब उसने ध्यान किया तो सर्वत्र सागर का ही रूप

प्रतीत होने लगा । अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मा को सर्वत्र जल ही जल दिखाई पड़ा उसी प्रकार मेरे स्नेह में सर्वत्र तुम्हारा ही रूप दृष्टिगोचर हुआ ॥ ६ ॥

पंथिक सागर एक चल्थो, रिनु ग्रीष्मकी कछु राह न जानी ।
कच्छ करीर किते गिर लेवत, देह दिनेश मरीच तचानी ॥
पावकसी ज्युं बयार इते पर, केति व्यथा कि भई है कहानी ।
डोर नहीं ज्यु नहीं अवरोहनि, प्यास लगा अरु कूपमें पानी ॥ ७ ॥

हे सागर ! एक पथिक चला, ग्रीष्म की ऋतु थी, मार्ग का पता नहीं । कच्छ और करील वन और कई पर्वत पार किये । उस का शरीर सूर्य की किरणों से झुलस गया । इतने पर भी अग्नि के समान उष्ण वायु की कितनी ही कहानी बीती । कूआं मिला, उस में पानी भी था, प्यास जोर की थी परन्तु न तो पास में डोर है नाही कुए में उतरने को सीढ़ियां हैं । अर्थात् मेरा अभिलाष रूपी पथिक तुम्हारे मिलापरूपी वाणी को चाहता है परन्तु उसके लिए साधन नहीं है ॥ ७ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

जाय समीर मिल्यो है समीरसे, तेज सु तेजहुमें मिल हूको ।
अंबुमें अंबु अकाश अकाशमें, भाग पर्योइ रखो भुव भूको ॥
चहु छांड चले मग आपके, काहु न संग लियो है जिऊको ।
सागर एह दशा अनुमानहु, प्रेम सही इक प्रान लोहुको ॥ ८ ॥

हे सागर ! मेरे शरीर में से वायु जाकर वायु में, तेज तेज में, जल जल में, आकाश आकाश में मिल गया, भूमि का भाग भूमि पर ही पड़ा रह गया है, इस प्रकार पांचों तत्व पांचों महाभूत तत्वों में जा मिले हैं, परन्तु किसी ने जीव का साथ नहीं दिया । हे सागर ! मेरी ऐसी स्थिति का अनुमान करो कि मेरे अन्तर में प्राण हैं जब तक एक संगी प्रेम ही है ॥ ८ ॥

अथ द्रष्टांतालंकार-सवैया.

बेधनको न विचारत है अरु, वीनको नाद सुनो मृग मोहे ।
 पंकज बंध सहे मधूकर, चातुक स्वांत बिना तरस्यो है ॥
 बंद बिना ज्यु चकोर जुगे शिखि, दीपक देखि पतंग ज्यों है ।
 प्राण गुमावनकी न परे कल, सागर प्रेमको नेम असो है ॥ ६ ॥

हे सागर ! प्रेम का नियम ऐसा है कि मृग फंस जाने का विचार न करता हुआ वीणा के नाद पर मुग्ध हो जाता है, भ्रमर कमल का बंधन स्वीकार करता है, चातक पक्षी बारह मास स्वांति के बूंद के लिए तरसता रहता है और चन्द्रप्रकाश के बिना चकोर पक्षी अंगार का भक्षण करता है तथा दीपशिखा पर पतंग जल कर भस्म होता है । इस में कोई बात नहीं, यह तो प्रेम की महिमा है कि प्राण गमाने की खबर ही नहीं रहती ॥ ६ ॥

सवैया.

विप्र जो वेद पढ़े तो कहा, जब जानि परी नहिं वेदकि बानी ।
 गानक गाव कियो तो कहा, उन राग कलासुर तान न आनी ॥
 जोगि विभूति चढ़ाई कहा, जब जोग कला न हिये अनुमानी ।
 सागर प्रीति करी तो कहा, जबलों जिय प्रीत की रीत न जानी ॥ १० ॥

जिस ब्राह्मण ने वेद पढ़ा परन्तु उसकी वाणी समझने में समर्थ नहीं तो फिर क्या पढ़ा ? गवैया राग गावे परन्तु यदि उस में स्वर ताल न ला सका तो फिर गाना किस काम का ? योगी यदि योगकला कर अन्तर अनुभव नहीं किया तो फिर शरीर में भस्म रमाने से क्या ? इसी प्रकार हे सागर ! जब तक प्रीति की रीति को नहीं समझा तब तक प्रीति करने से क्या लाभ ? १० ॥

उपमालंकार-कवित्त.

प्राण पशु=पतित्की, जटासे मन मेर गीर, सकुच सुरंग साखी, फोर तोर फहरे । बिरहा मिहीर तेज, तपत तुहीन जिय, प्रगल प्रवाह प्रेम, पूर लगी

लहरे । मकर मनोज भेद, करत कलोल मोद, अभिलाष रंग रंग, कंज पुंज ठहरे । सागर समीप स्रोत, होयके हजार धार, गंगके तरंग ज्यों, उमंग मिली गहरे ॥ ११ ॥

हे प्रियतम ! मेरी प्रेमरूपी गंगा, प्राण रूपी पशुपति—शंकर की जटा से मन रूपी मेरू पर्वत पर से लाज रूपी सुरंग तथा तरुवरों की शाखाओं को तोड़ कर विहरूपी सूर्य के ताप से तप कर जीव रूपी बरफ को पिघलाती हुई प्रेम प्रवाह पूर्ण धारा से बह निकली । उस में मनोज (मकरध्वज) रूपी मगर-मच्छ कलोल करते हैं और अभिलाषा रूपी रंग २ के कमल उस में स्थिर हैं । हमारी सुरतरूपी हजारों धारा होकर गंगा की तरंगों के समान बड़ी उमंग के साथ तुम में (सागर में) मिलती हैं ॥ ११ ॥

रूपकालंकार—दोहा.

खेल सेलके बांस पर, बरत धार तरवार ।

मन नटवा सांची सुरत, चढ़े तो उतरे पार ॥ १२ ॥

व्रतरूपी तलवार की धार बांध कर भाला रूपी बांस पर सच्ची सुरत के साथ मन रूपी नट चढ़े तो पार उतरे ॥ १२ ॥

अथ रससागरोक्तप्रेमद्रढाव भेद, विरोधाभास अलंकार—दोहा.

प्रेम कुंड पावक भयों, मनो सु यह अनुमान ।

पर पर कल्लो प्रवीण ज्यु, पर पर समझ्यो प्रान ॥ १३ ॥

रससागर कहते हैं कि प्रेम को अग्नि के अंगार से भरा हुआ कुंड समझो, जिस से चतुर लोग कहते हैं परे रहो परन्तु प्राण तो यह समझता है कि “पड़ो पड़ो” अर्थात् इस में कूदो ॥ १३ ॥

जातिस्वभाव अलंकार—दोहा.

बेदरदी जरदी* समर, ताकों लगे न तीर ।

दरदी घट पट है नहीं, कैसे बचे शरीर ॥ १४ ॥

* गुजराती टीकाकार ने ‘जरदी’ शब्द का अर्थ ‘बखतर’ रक्ला है परन्तु यह भूल है ‘जगर’ अथवा ‘जागर’ होवे तो ‘बखतर’ होवे । वरन यहां जरदी का अर्थ पीलापन करना उचित है ।

जो प्रेम की पीड़ा से पीड़ित नहीं उन के शरीर पर तो अजानपन का बखतर लगा हुआ है अतएव उनके शरीर पर काम बाण नहीं लगता, परन्तु जो प्रेमी हैं उन के शरीर पर तो रक्षा करने वाला पट नहीं है फिर उन का शरीर कैसे बचे ? ॥ १४ ॥

अथ शिवाक्षेप अलंकार—सवैया.

तुंहिय तुंहि जपे रितु सीतमें, तुंहिन तुंगन तुंहि गलेगा ।
तापनमें करि तापन तापनि, आपन या पनधारि जलेगा ॥
पावस एकहि पावस है, परवीण धुनी रससे न डुलेगा ।
प्रेमको थान निदान मिले तब, जोजन को इहि राह चलेगा ॥ १५ ॥

जो शीत ऋतु में 'तूही तूही' का जप करेगा और हिमालय के तुंगों पर जा गलेगा, गर्मी की ऋतु में चारों ओर ताप (धूनी) लगा कर तपता हुआ स्थिर रूप से शरीर को तपावेगा और पावस ऋतु में एक पग से स्थिर हो एकाकी नदी के तीर से विचलित नहीं होगा तब अन्त में वह मनुष्य जो इस मार्ग पर चलेगा वह प्रेम का स्थान पा सकता है ॥ १५ ॥

दोहा.

सीत धाम जलमें सदा, तपे जपे मुख नाम ।
चले ज्यु याही रीतसे, मिले प्रेमको धाम ॥ १६ ॥

सर्दी, गर्मी तथा वर्षा में तप करता हुआ मुख से नामोच्चारण करे । जो इस रीत से चलेगा उसे ही प्रेम का धाम प्राप्त हो सकता है ॥ १६ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

दीपसे प्रेम पतंगनको अरु, पंकज अंगनको मुख पूरत ।
चंदसे प्रेम चकोरनको घन, घोरनमे नित मोरनको रत ॥
चातुक प्रेमहि बुंदनसे जल, जात को प्रेम हे सूरकि सूरत ।
जानत हैं इहि रीत सदा हम, प्रेमको रूप प्रवीनकी (भूरत) सूरत ॥ १७ ॥

जिस प्रकार दीपक से पतंग का प्रेम है, कमल भंवरा को सुखी करता है, चन्द्रमार्ग से चक्रो का प्रेम लगा है, मेघ की घोर गर्जना से मोर का प्रेम लगा हुआ है, स्वोतिबूंद से चातक का प्रेम है और कमल का प्रेम सूर्य के साथ जुड़ा हुआ है, उसी प्रकार हम सदा प्रवीण के रूप को प्रेम की मूर्ति समझते हैं ॥ १७ ॥

(पंजाबी भाषामें) समरूपकालंकार—सवैया.

शोच पहाण संकोचदे आरण, मोहदी सीह दा दाहको नेडा ।
दीददि प्यास सहंदे बहंदे, दुखाणदि खोह पयाणनि तेडा ॥
मितदा ध्यान विहंगदि भंखण, भोला भुटा वीरहाणदा बेडा ।
लाजदि गंग आतंकदे खांडणु, प्रेमदा पंथ केदारदा पेडा ॥ १८ ॥

चिंतारूपी पत्थर, संकोचरूपी अरण्य, मोहरूपी सिंह, प्रेमरूपी दावानल का जलना, दर्शनरूपी प्यास के साथ चलना, दुःख रूपी खोट और चलने का मार्ग टेढ़ा मेढ़ा, मित्र का ध्यान रूपी पक्षियों का बोलना, विरह रूपी मछुआ का भोला लटक रहा है, लज्जारूपी गंगा पार उतरना, और भय का खंडन अर्थात् निर्भय रहना, इतनी पीड़ा भी केदारनाथ के मार्ग के समान प्रेम के मार्ग में है । अर्थात् श्री बदरी केदार के समान प्रेम का मार्ग अति विकट है ॥ १८ ॥

सहोक्ति अलंकार—सवैया.

जल धारके संग कला चपला, अरु नीरके संग कुमोद नरी ।
अहि भच्छन संग हलाहलको बल, प्रेमल पोन लगो बिहरी ॥
बिसतार हुताशन संग धुंवां, यह रीत प्रवीण बनाय धरी ।
विरहा दुख दान सनेहके संग, बड़े मनु बामनकी लकरी ॥ १९ ॥

मेघ की धारा के साथ २ विजली जैसे बढ़ती है, जल के बढ़ने के साथ २ कमल ताल जैसे बढ़ती है, सर्प के भक्षण के साथ २ उस का विष जैसे बढ़ता है, पवन की गति के साथ २ जिस प्रकार परिमल सुगंध विस्तार पाता है । हुतासन जो अग्नि है उसकी वृद्धि के साथ धूम जैसे वृद्धि को प्राप्त होता है,

उसी प्रकार हे प्रवीण ! स्नेह के साथ २ दुःखदायी विरह भी वामन भगवान की लकड़ी की भांति बढ़ता जाता है ॥ १९ ॥

द्रष्टांतालंकार—कवित्त.

वेध्यों जो शरीर तीर, पल्लु न धरे धीर, सुध तमासगीर, उष्ण हे के सीरा है । गिरिके अताग पानी, तरीके तिसानी बाट, गई है न जानी बिन, चले ऐसी ईराहे । जो न नैन देखी है सो, लेखी है सबै समान, पत्थरके पुंजमें, परेखी है न हीरा है । तन मन नैन जोड़, बीतत है पावे सोड़, पाय न प्रवीण प्रेमी, बिना कोउ पीराहै ॥ २० ॥

जिस का अंग बाण से बिंधा हुआ है वह पल भर भी धैर्य नहीं धर सकता । तमाशा देखने वालों को क्या पता की उस तीर की धार उष्ण है कि शीतल ? जिस भूमि में चल कर गए नहीं वहां का पता नहीं लग सकता कि वहां पर्वत है कि अथाह पानी है या झाड़ू है या प्यास से मारने वाला रेगिस्तान है । जो नजर से देख नहीं सकता वह सब को समान देखेगा, परन्तु पत्थर के पुंज में पड़े हुए हीरे को वह परख नहीं सकता, इसी प्रकार प्रेम की पीड़ा जिस पर बीती होवे वही जान सकता है, प्रेमी के बिना और कोई नहीं जान सकता ॥ २० ॥

अथ अनन्वयालंकार—कवित्त.

चातुकीको बुझो बुंद, पाये बिना कहां होत, कड़ा होत मीन बुझो, बिछुर जो मीरा है । बुझिये चकोरको जो, चंद बिना उदय कहां, बुझिये मधुप कड़ा, होत कंज बीरा है । हारनको बुझिये जो, काठ छांडिये तो कड़ा, बुझिये पतंग कड़ा, दीपकमें सीरा है । जाय बीती सोय जाने, प्रेम ना पिछाने और, हीराकी सलाख ज्यों, प्रवीण एक हीरा है ॥ २१ ॥

पपीहा से पूछो कि स्वातिबुंद के मिले बिना क्या होता है ? मछली से पूछो कि पानी से अलग होने पर क्या होता है ? चन्द्रमा के उदय हुए बिना

क्या होता है यह चकोर से पूंछो, कलम में बिंध जाने से क्या होता है यह
अमर से पूंछो, हारिल पत्ती से पूंछ देखो कि लकड़ी के छोड़ देने से क्या
होता है और दीपक में ऐसी कौनसी शीतलता है यह पतंग से पूछिए ।
हे प्रवीण ! हीरा की परीक्षा करने की कसौटी हीरा की ही बनी होती है इसी
प्रकार जिस पर बीती हो वही जाने, प्रेम की पीड़ा और कोई नहीं
जान सकता ॥ २१ ॥

अथ स्मृतिमान अन्योक्ति अलंकार—कवित्त.

आगे हे चकर, पाछे मकर, निकर लागे । दोउ ओर ग्रावनके, अगहन,
गर हे । खुटे खानपान, डुटे नांगर निशान डोर । एते पैं स्वसानहु की, उलटी
अखर है । मालुम भयो है अंध, रोधकी न शोध कहुं । फूट गयो नावसो,
कहांलों दधि तर हे । कीजिये उपाय आय, लीजिये प्रवीण सुधि, हाय हाय
जायके, पुकार कोउ करहे ॥ २२ ॥

आगे चक्र (भंवर) है और पीछे मगरमच्छ का समूह है, बाकी के
दोनों ओर पत्थर के दुर्गम पर्वत हैं, नागर और निशान की डोर टूट गई है,
इस पर फिर पवन की गति उलटी है, अंधकार मालूम होता है, किनारे का
कहीं पाता नहीं, ऐसे समय में नाव फूट गई हैं । अब कहां तक समुद्र तिरा
जायगा ? इसलिये हे प्रवीण ! आकर कोई उपाय करो और हमारी सुध ले ।
अरे हाय हाय ! कोई जाकर यह पुकार प्रवीण के पास करो ॥ २२ ॥

रूपकालंकार—दोहा.

बन विचार मन मानसर, भयों प्रेम बहु बार ।

सुख मुगता हंसा बिरह, निशदिन चुगत किनार ॥ २३ ॥

विचाररूपी बन में मनरूपी मानसरोवर है जिसमें प्रेमरूपी अमोल पानी
भरा हुआ है और उसके किनारे बिरहरूपी हंस रात दिन सुखरूपी मोती
चुग रहा है ॥ २३ ॥

सोरठा—मन पाटी गुन मेख, प्रेम कड़ी उतरे चढ़े ।

सिधगज विरह विशेष, घट गोरखधंधा * भयो ॥ २४ ॥

मनरूपी लोहे की पट्टी है जिसमें गुणरूपी मेखें लगी हुई हैं, और उसमें प्रेमरूपी कड़ी उतरती चढ़ती है और विरह विशेष रूप से सिद्धराज है, इस प्रकार मेरी काया गोरखधंधा बन रही ॥ २४ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

वेधक एक प्रवीण चलो, उनही मनमें उपचार कर्यो ।

गानके रंग कुरंग चढ़े जहां, नेहको दीप जगाय धर्यो ॥

एनको सुभतहे न कछू, कर पारधि ले सर पार कर्यो ।

बीनको नाद सुनेगो कहां ! इतनी कहिके मुरझाय पर्यो ॥ २५ ॥

हे प्रवीण ! एक पारधी चला और उसने मन में उपाय सोचा कि जहां गान के तान में मग्न हुआ था वहां एक तेल का दीपक जलाकर रख दिया उसे देख कर लिखा तो कुछ दिखाई नहीं पड़ा वह चकाचौंध होगया और पारधी ने तानकर तीर का निशाना मार दिया और वह लिखा यह कहकर कि “अरे ! अब बीणा की सुर कहां सुनूंगा” मूर्छित होगया । तात्पर्य यह कि मेरा चित्तरूपी मृग तुम्हारे मन मोहनी वाणीरूपी नाद के वशीभूत होगया, तुमने वहां नेहरूपी दीपक जलाकर सुग्ध कर दिया और फिर कटाक्ष-रूपी तीर से वेध लिया । अब आप की मधुर वाणी कब सुनूंगा यह कहकर मैं मूर्छित हो गई हूं ॥ २५ ॥

* कई जोगी लोग लोहे का गोरखबंडा रखते हैं, जिसमें लोहे की सीधी पट्टी होती है जिसमें पचीस एक कड़ियां होती हैं । उसमें गुथा हुआ एक गज होता है जिसे सिद्धगज कहते हैं । उन कड़ियों का चलाना आता होवे तो वह गज छूटता है । उसी की इस में उपमा दी है ।

सोरठा—इहि विधि प्रेम द्रढाय, पाती लिखि एकेक प्रति ।

त्यो त्यों विरह बढ़ाय, ज्यों ज्यों बंचत भेद वह ॥ २६ ॥

इस प्रकार एक दूसरे का प्रेम को दृढ़ कर पत्र लिखा और ज्यों २ उन पत्रों का भेद पढ़ते हैं त्यों २ विरह कथा बढ़ती है ॥ २६ ॥

गाहा—दंपति प्रेम विधानं, प्रति एकेकं पठावनं पत्रं ।

षष्ठिअंक अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २७ ॥

दोनों स्त्री पुरुषों ने एक दूसरे को प्रेम का पत्र लिखा, इस सम्बन्ध वाली प्रवीणसागर की साठवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ २७ ॥



६१ वीं लहर

अथ दंपति श्रीमुखोक्त बहिर्लोपिका, अंतर्लोपिका भेद प्रसंगो यथा—दोहा.

प्रेम विरह चित चातुरी, दंपति भये विकाश ।

श्रीमुख उक्ती मित लिखित, सो अब कहें प्रकाश ॥ १ ॥

उस दम्पति के चित्त में प्रेम, विरह और चातुर्य का उदय हुआ और उन्हें उन्होंने अपने सुन्दर वाणी में प्रकाशित करके जो लिख भेजा उसका अब प्रकाशरूप में वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

सहोक्ति अलंकार—छप्पय.

ज्यों बिछुरन दिन बढ़त, बढ़त विरहानलको बल ।

बढ़त प्रेम परवाह, बढ़त स्मर त्यों मन निर्मल ॥

बढ़त चाह मित मिलन, बढ़त चितमें चतुराई ।

बढ़त साध सोधना, बढ़त युक्ति उर आई ॥

दंपति बढंत ऐसी दशा, सागर कलाप्रवीण जिय ।

लापिका बहिर अन्तर सु तव, श्रीमुख चित्र सुकाव्य किय ॥ २ ॥

ज्यों २ वियोग का दिन बढ़ता जाता है त्यों २ विरह-अग्नि का जोर अधिक बढ़ता जाता है और ज्यों २ प्रेम का प्रवाह बढ़ता जाता है त्यों २ उनके निर्मल मन में कामदेव बढ़ता जाता है, ज्यों २ मित्र से मिलने की वासना बढ़ती है त्यों २ चित्त में चतुराई बढ़ती जाती है और ज्यों २ मिलने के साधन की खोज बढ़ती है त्यों २ हृदय में इस प्रकार की युक्तियां बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार सागर और प्रवीण की विरह-दशा जब बढ़ती गई तब अन्तर्लोपिका, बहिर्लोपिका तथा चित्रकाव्य की ओर मुख किए ॥ २ ॥

अथ कलाप्रवीण श्रीमुखोक्तवर्णनभेद * बहिर्लोपिका—सवैया.

पचहु अछर सागर हो, (महिरावन) गिनती करि भेद सबै गाहिये ।

हु दुसरे अरु अन्त करी यह (दुहिन) जो कहिबी सो उन्हें कहिये ॥

(१) बाहर से उत्तर कहे, बहिर्लोपिका सोय ॥ (२) उत्तर आवे अंत में प्रश्न तहाँ ही होय। सोई अंतर्लोपिका, हेतु बंद मधि जोय ॥ काव्यप्रभा० ॥ ग० ज० शास्त्री हिं० टीकाकार।

ने अरु अन्त अखंड लगे मग, (नैन) अंत दुहूके दुहू मिलिये ।
आदिके अंत ले मांगत हैं हम, (मले) द्वेबिन द्रकि दुहाइ किये (राम) ॥३॥

हे सागर ! तुम्हारे नाम के पांच अक्षर 'महिरामन' हैं उन अक्षरों के ऊपर से गिनती करके, मैं जो भेद कहती हूं उसे ग्रहण करो 'हु' और तुम्हारे नाम के दूसरे और अंतिम अक्षर को लेकर जो बनता है उस से जो कुछ कहना है कहो, अर्थात् 'दुहिन'—ब्रह्मा ने अपने माग्य में ही ऐसा फूटा अंक अंकित कर दिया है उसे ही उपात्मभ देवें । मैंने और तुम्हारे नाम का अंतिम अक्षर 'न' अर्थात् हमारे 'नैन' की अखंड ज्योति एक टक तुम्हारे रास्ते में लगी हुई है । तुम्हारे नाम के अन्त के दो अक्षर अर्थात् 'मन' अपने दोनों का एकत्र मिलाइए । फिर तुम्हारे नाम के प्रथम अक्षर के साथ 'ले' जोड़िए जो 'मले' बनता है अर्थात् मिलने की हमें चाहना है नाम के आदि के दो अक्षरों के बिना, दो अक्षरों 'राम' की दुहाई देती हूं । (इस छन्द में बाहर से 'महिरामन' लेना पड़ा इसलिए बहिरांपिका है) ॥ ३ ॥

अथ आद्यक्षरो अन्तर्लापिका—दोहा.

(स) र बेधते हे चतुर बिन, (म) ध्य त्रतीय बिन आय ।

(र) ज मुख मांगन दुतिय बिन, (न) कट आदि बिन चाय ॥४॥

हे प्राणात्मा सागर ! इस दोहा के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर 'समरन' आप की रखती हूं अर्थात् आप के नाम की रटन करती हूं । पीछे चतुर्थ अक्षर के बिना 'समर' (कामदेव) मन में मूर्तिमान होकर भेदता है; दूसरे अक्षर 'म' रहित अर्थात् 'शरण' के बिना मुख में रज खाने की आकांक्षा करती हूं और प्रथम अक्षर 'स' रहित 'मरण' की अत्यन्त चाहना है ॥ ४ ॥

पुनः—दोहा.

हनत बिजोगी अंत बिन, त्रतिय बिनामैं आय ।

द्वितिय बिना मांगत तुम्हें, प्रथम बिना लागि पाय ॥ ५ ॥

हे सागर ! समरन' का जो अन्त अक्षर न (समर) वियोगी जन का
 तृतीय अक्षर 'र' विना रहित (समन—शमन) करता है अर्थात् मारता है
 इसलिए उस के द्वितीय अक्षर 'म' के विना जो बनता है वह यानी 'सरन'
 मांगती हूं जिसके विना प्रथम अक्षर 'स' रहित (मरन) पांव पड़ कर
 मांगती हूं ॥ ५ ॥

अथ बहिलापिका प्रश्नोत्तर भेद—छप्पय.

पाओ बेना कर नांहि, उदर गुरु नांहि लुधातुर ।
 रसनावती सुने न, श्रवण दो तास नयन सुर ॥
 नाथ बाघ आकार, नाइ कर नीच मिलावे ।
 वेधासुत कुन वक्र, रसिक अति भूप रिभावे ॥
 ले हार कार भूषण करहि, सभा मध्य को ऊचरे ।
 खटतीस हातहै नारि नर, अरथ एह सागर करे ॥ ६ ॥

कौन विना हाथ पांव का है ? 'अरुण' ! बड़ा पेट होते हुए भी कौन भूखा
 नहीं है ? 'पुष्कर' (आकाश) । कौन ऐसी है जिसके जीभ है परन्तु सुनती
 नहीं 'नेपुर', वह कौन है जिसकी आंखें श्रवण का काम देती हैं ? 'दरवी'—सर्प ।
 वह कौन है जिसका स्वामी सिरोंवार हुए थे ? रमा (लक्ष्मी) । वह कौन है जो
 अपने हाथों (किरणों) को मुका करके नीच से भी मिलाता है ? सविता—सूर्य ।
 ब्रह्मा के पुत्र (नारद) की मुखाकृति किसकी हुई ? कीश (वानर) ।
 अपनी रसिक बाणी से राजाओं को रिभाता है ? चारण—भाट । कौन सर्प
 भूषण धारण करता है ? हर—महादेव । सभा में कौन उच्चारण करता ?
 तर्कवादी । वह कौन है जो स्त्री व पुरुष मिलकर छत्तीस होते हैं ? राग रागि ।
 हे सागर ! इस का अर्थ करो ।

इस छन्द के अन्दर ग्यारह प्रश्न हैं इन के हजारों के आद्य अक्षर
 मिलाने से 'अपुने दरस की चाहतरा' काव्य बनता है । अर्थात् मुझे 'प के
 दर्श की चाह लगी हुई है । छन्द के प्रथम अक्षर लेने से 'पारनाले लेख' बनता
 है, अर्थात् लिखने में पार नहीं आता ॥ ६ ॥

अथ वर्गवर्णोपरि बहिरांपिका अंकभेद-छप्पय.

	वर्ग.	वर्ण.	स्वर.
अष्ट चत्र अरु एक,	८	४	१=ह
षष्ठ अरु पंच एक कहि;	६	५	१=म
पंच एक अरु एक,	५	१	१=तु
षट पंचह एकह बहि.	६	५	१=म
उभय एक अरु पंच,	२	१	५=कु
एक एकह एकह पुनि;	१	१	१=अ
पंच एक अरु तीन,	५	१	३=ति
तीन एकही युगल सुनि.	३	१	२=चा
पुनि अष्ट चत्र अरु एक गनि,	८	४	१=ह
पंच एक एकहु गहे;	५	१	१=त
अष्ट चत्र सप्त अंकह पराखि,	८	४	७=है
यों प्रवीण सागर कहे ॥ ७ ॥ “हम तुमको अति चाहत है”			

आठवें वर्ग के चौथे वर्ण का पहिला स्वर ‘ह’, छठे वर्ग के पांचवें वर्ण में ‘ता’ अक्षर ‘म’, पांचवें वर्ग के प्रथम वर्ण का एक ‘तु’, छठे वर्ग के पंचम वर्ग का अक्षर ‘म’, द्वितीय वर्ग के प्रथम अक्षर का पांचवां ‘कु’, प्रथम वर्ग का प्रथम वर्ण का प्रथम ‘अ’, पांचवें वर्ग के प्रथम अक्षर का तीसरा ‘ति’ तीसरे वर्ग के प्रथम वर्ण का द्वितीय ‘चा’ फिर आठवें वर्ग के चौथे वर्ण का प्रथम ‘ह’, पांचवें वर्ग के प्रथम वर्ण का प्रथम ‘त’ और आठवें वर्ग के चतुर्थ वर्ण का सातवां ‘है’ मिलाकर (हम तुम को अति चाहत हैं) जो बनता है वह सागर को प्रवीण कहती है ॥ ७ ॥

११: अंकभेद बहिरांपिका-सबैया.

	वर्ग.	वर्ण.	स्वर.
एकहि एककुं सा मिलायके,	१	१	७=ए
दोयकुं एकहि एक दीजे,	२	१	१=क

षष्ठ अरु इक पंच करो पुनि,	६	१	५=पु
सात दुहू अरु एक गनीजे,	७	२	१=र
छे परतात दुहू धरिके फिर,	६	३	२=बा
आठ तिहू इकही गनि लीजे,	८	३	१=स
अंक के सागर भेद लहो यह,			
जो गिनती में कबो सोइ कीजे ॥ ८ ॥ “एक पुरवास”			

प्रथम वर्ग के प्रथम वर्ण में सातवां स्वर ‘ए’, दूसरे वर्ग के प्रथम वर्ण का प्रथम स्वर ‘क’, छठे वर्ग के प्रथम वर्ण का पंचम स्वर ‘पु’, सातवें वर्ग के दूसरे वर्ण का प्रथम स्वर ‘र’, छठे वर्ग के तीसरे वर्ण का दूसरा स्वर ‘बा’ और आठवें वर्ग के तीसरे वर्ण का प्रथम स्वर ‘स’ । हे सागर ! इस अंक के भेद से जो बनता है वही करिए । अर्थात् ‘एक पुरवास’ एक नगर में निवास करिए ॥ ८ ॥

अथ उलटभेद अंतर्लापिका-कवित्त.

सप्त सुरमें निखादु, नव ग्रह बीत शनि । सप्त तुंग कैलास, समरही दुखदरे ।
अष्टगिर मेरु साठ, आठमें गया बिजोग । उनहिको अंग अंग अतिहि
दरदरे । द्वादश कलामें रवि, विद्याहु न जान पगी । अष्टदश बन यामें, नीच
सो बिहदरे । नवकुल नाग काली, सागर न जात लंघी, षट श्रुतु चाह नैन
उलटी शरदरे ॥ ६ ॥

सात स्वर में से ‘निखाद’ का उल्टा ‘दुग्वाति’ अर्थात् दुःख होता है । नवग्रह में से ‘शनि’ का उल्टा ‘निश’ यानी राति दुखदायी होती है । सात पर्वतों में ‘कैलास’ उल्टा ‘सलाके’ से कामदेव मेरी छाती बींधे डालता है । अष्ट कुल पर्वतों में ‘मेरु’ का उल्टा ‘हमे’ और अड़सठ तीर्थों में ‘गया’ का उल्टा ‘याग’ यानी अंग २ में वियोग की आग रम रही है और दुग्घी करती है । द्वादश कलावाले ‘रवी’ का उल्टा ‘वीर’ अर्थात् तुम्हारी वीरविद्या मुझ से जानी नहीं गई । अष्टादश में ‘नीच’ का उल्टा ‘वनी’ सो अरेरे बेहद बनी ! नव कुल नाग में ‘काली’ जिस का उल्टा ‘लीक’ यानी मर्यादा का हे सागर ! उल्लं-

घन नहीं होता । जहाँ ऋतुओं में 'शरद' का उल्टा 'दरश' की चाहर लगी रहती है ॥ ६ ॥

पुनः उलटभेद, अंतर्लापिका-दोहा

सरत उलट जागी हमें, तन उलटे दुखदान ।

मीतु उलट नां मिल रहा, गल उलटे अभिधान ॥ १० ॥

हे सागर ! तुम्हें हेम भरी दृष्टि से देखने की-दर्शन की हमें हमेशा तृषा लगी रहती है, इसलिए तुम पास मिल कर क्यों नहीं रहते । (सरत, नन, मीतु और गत चारों शब्दों का उल्टा तरस, नन, मीतु और पग से शब्द बनते हैं) ॥ १० ॥

अथ अंतर्लापिका प्रश्नोत्तर भेद-कवित्त.

सुरपति बहान को ? कहा अधिपति नाम ? कहा मैत्र आयुध हे ? कौन मरु नाहि मल ? बेनिता सिंगार कहा ? कहा काये बर्नत है ? काल प्रतिबिम्ब कहा ? कहा दोउ सार चल ? कहा विधिसुता नाम ? करत कहा कृपान ? दानसों बढ़ावे कहा ? गंधर्व उचोर कल ? कंठ नाम ? जय नाम ? कहा देव दानवको ? कौन काज सार्यों हरी ! गजराज सरजल ? ॥ ११ ॥

सुरपति इन्द्र का बाहन कौन ? (ऐरावत हाथी), अधिपति का नाम क्या है ? (राज=राजा) कामदेव का शस्त्र क्या है ? (शर=बाण), किस में मल नहीं है ? (जल=पानी), स्त्री का शृंगार क्या है ? (लज=लज्जा), कवि किस का वर्णन करते हैं ? (रस), काल का प्रतिबिम्ब क्या है ? (जरा=बुढ़ापा), दो साथ चलने वाले को क्या कहते हैं ? (जग=जुग) विधिसुता का नाम क्या है ? (गरा=गिरा=परस्वती), कृपा से क्या करते हैं ? (सज=तैय्यारी), दान से क्या बढ़ता है ? (जस=यश), गंधर्व क्या कला उच्चारते हैं ? (राग), कंठ का नाम क्या है ? (गल=गला), जय का नाम क्या है ? (जज=यज=यज्ञ), देव दानव के मध्य क्या है ? (जर=विवाद=लड़ाई), हरिने कौनसा कार्य किया ? (गजराज सरजल पानी से गजराज को डूबते

बचाया) । इस पद्य के अंतिम पद 'गजराज सरजल' में अंतिम प्रश्न का उत्तर है, तथा सारे प्रश्नों का भी उत्तर है । वह इस प्रकार कि गज, राज, सर, जल, फिर उल्टा लीजिए जज, रस, जरा, जग, फिर पहिला वा तीसरा, गरा, पांचवां व सातवां 'सज' फिर इनका उल्टा 'जस, राग' फिर पहिला अंतिम 'गल' और दूसरा व सातवां 'जज' फिर चौथा व छठा 'जर' । इस प्रकार सब का उत्तर इस अंतिम चरण में मिलता है । तात्पर्य यह कि जिस प्रकार * गज-राज का रक्षण हरि ने दौड़ कर किया हे सागर ! अपनी भी रक्षा करेंगे, धैर्य रखो ॥ ११ ॥

अथ सागरोक्त आद्यक्षरी अंतर्लीपिका भेद-दोहा.

(सु) वत सेज मन सिज सरन, (जा) गति आगति आग ।

(न) त जगे मुचकंद गति, (आ) दि लई जिय लाग ॥ १२ ॥

सागर कहता है कि शय्या पर सोते हुए मनसिज-कामदेव के बाण लगते हैं और जागते हुए शरीर में आग लगती है । हमेशा राजा मुचकंद की भाँति अब भी मैं सोता हूँ । इन के आदि अक्षर को लेने से जो बनता है (सुजान आ) करी लग रही है, अर्थात् हमेशा इच्छा रहती है कि हे सुजान ! आओ ॥ १२ ॥

अथ आद्याक्षरी अंतर्लीपिका भेद-सवैया.

(छ) (लि) से जान तजे सब भूषन, फूलन हार बिखेर दहे ।

(जा) (र) तहू न उचारतहै, उर धार कछूसु कहा करेहे ॥

(न) (ब) हि केसर कुसर कुंकुम चंदन, बास सुबास न जात सहे ।

(के) (न) रसे यह कैसे तजे नहिं, प्राण प्रवीण गहे सु गहे ॥ १३ ॥

* ग्राह ने हाथी को पकड़ कर पानी में डुबा कर मारना चाहता था, तब भगवान ने दौड़ कर उसे बचाया व ग्राह को मारा । उस प्रसंग का यहां उल्लेख है, इस वर्णन को 'गजेन्द्र मोष' कहते हैं ।

सागर कहते हैं कि, मैंने सारे आभूषणों को सूली की भँति छोड़ दिया है, फूलों के हार को बिलेर दिया है । कामदेव भस्म किए डालता है परन्तु कुछ बोलता नहीं, कौन जाने कि उस के हृदय में अभी और क्या करना है ? केसर, कुंकुम और चन्दन की इच्छा नहीं !!! इसी प्रकार उत्तम वस्त्र और सुवास सहन नहीं होता है । हे प्रवीण ! इतने पर भी यह मेरे प्राण निकलते नहीं, कैसे धारण किए हूँ ? उत्तर “सुजान केलि रचन” तात्पर्य यह कि सुजान के साथ नाना प्रकार के केलि (फिडा) करने की आकांक्षा में प्राण रुके हुए हैं । (यह उत्तर छन्द के प्रथम २ अक्षर और फिर दूसरे २ अक्षरों के लेने से बनता है) ॥ १३ ॥

पुनः आद्यक्षर अंतर्लापिका-दोहा.

(सु , मन विकास वसंतके (जा) त बेल विस्तार ।

(न) ज हांसी मनु करत है, (०) नलख बाह पसार ॥ १४ ॥

वसन्त ऋतु के फूलों की बहार खिल रही है, जातकी बेल विस्तार पाई हुई है, वन की ओर देखो, मागो लम्बी भुजाएं पसार कर कवि हमारी हंसी कर रहे हैं । इस दोहा में प्रत्येक चरण के आद्यक्षर लेने से ‘सुजानबा’ बनता है * ॥ १४ ॥

पुनः अंतर्लापिका भेद-दोहा.

प्रथम (सु) पारी (जा) यफल, पीछे पा (न) बदा (म) ।

मध्य इ (ला) ची जा (य) त्री, ले ले टेरत नाम ॥ १५ ॥

सुपारी और जायफल के प्रथम अक्षर, पान और बदाम के अन्त के तथा इलायची व जायत्री (जाबित्री) के मध्य अक्षरों के लेने से जो बनता है उस

* कहीं पर अन्तिम चरण का पाठ ‘बाह पसार पसार’ है उस अवस्था में प्रत्येक चरण का आद्यक्षर लेने से ‘सुजानबा’ बनेगा । यही संगत भी प्रतीत होता है । अभी इस पाठ में तीन ही चरण में आद्यक्षर लिए गए हैं और इस में छन्दोभंग दोष भी है ।

की रट लगा रहा हूं। तात्पर्य 'सुजान मलाय' = सुजान 'मिलाओ' जपता रहता हूं ॥ १५ ॥

अथ अंतर्लापिका प्रश्नोत्तर भेद—दोहा.

संन्यासी सोधत कहा, को प्रकाश छिति कीन ।

नारद भारति वाद्य कह, परखे वह परवीन ॥ १६ ॥

संन्यासी क्या ढूंढते हैं ? = र (परब्रह्म), पृथ्वी पर प्रकाश कौन करता है ? = रवि, नारद और सरस्वती का वाद्य क्या है ? = वीन (वीणा), इन्हें जाने ऐसा चतुर कौन = परवीन (प्रवीण), इस छन्द में अंतिम चरण में उत्तर और प्रश्न दोनों ही हैं और प्रथम के दो चरणों के उत्तर के प्रथम अक्षर और तीसरे चरण का उत्तर मिलाने से भी यही बनता है। 'परवीन' शब्द पर श्लेष भी है। दोनों अर्थों (प्रवीण = चतुर और प्रवीण = प्रवीणकुमारी) में प्रयुक्त हुआ है ॥ १६ ॥

अथ आद्यचरी अंतर्लापिका ईश्वरस्तुति—सवैया.

(मे) र करो वह आदिहु अच्छर (हे) म गिरब्वर आदि मिले तुक ।

(रु) द्र कहे पुनि जोई भयो सब, (वा) रन लायक औ कछु बायक ॥

(नी) रज नंदन याहिको भेद सु, (रा) तपती जरबो उर धारक ।

(स्वी) र सरोवर बीच प्रवीण, लि (ये) पति लायक हो सुखदायक ॥ १७ ॥

सागर कहते हैं कि जो ईश्वर सृष्टि का आदि और अभिनाशी है अथवा वह मूल अक्षर ओंकार रूप है, और जो पहिली तुक में इन्हें मेरु पर्वत के शिखर पर मिला था, वह ईश्वर हमारे पर मेहर करे। रुद्र ने जो २ कहा था वह सब हुआ। कारन इन के वाक्य ऐसे थे कि विलंब होने योग्य नहीं थे। अब तो नीरज भेदन (नीरज कमल उससे उत्पन्न ब्रह्मा) के लिखे हुए विधान अनुसार रात्रिपति = चन्द्रमा हृदय में जलन उत्पन्न करते हैं। क्षीरसरोवर में जिस प्रकार गजराज ने स्वामी बनाया वही लायक तथा सुखदायक आप हमारे स्वामी हो (इस छन्द के चौथे चरण में रससागर ने प्रवीण का नाम कह कर गुप्त रूप

से प्रत्येक चरण के प्रथम और तेरहवें अक्षर के लेने से जो बनता है (मेहर-
बानी रखिये=कृपा रखिए) की कामना की है ॥ १७ ॥

अंतर्लापिका भेद कवित्त-यथा.

(क) नकके आदि मध्य, कं (च) नकी नीकी छबी, उरग घिसात पात, नांहे
तिक मातहे । कं (द्र) पके मध्य पुनि, अंतहि अनं (ग) लाखि, ललकत जात
जल, जात मिल जातहे । (सु) डाल प्रथम अरु, द्वितीय द्वि (र) द सुनि, सेवत
अरन्य पिक, सीसुन चाहतहे । (स्त) रुनीके अग्र अरु, पाछेही लल (न)
पेखि, सागर जु नागर सो, प्रभाहु न पातहे ॥ १८ ॥

‘कनक’ का आदि और ‘कंचन’ का मध्य (कच) अर्थात् प्रवीण के बायों
की सुन्दर शोभा देख कर सर्प पृथ्वी पर लोटते (घिसड़ाते हैं) तो भी तिलमात्र
सादृश्य नहीं पाते । ‘कंदर्प’ का मध्य और ‘अनंग’ का अन्त (द्रग) नेत्रों की
शोभा देख कर जलजात=कमल ललक कर बिला जाते हैं । सुडाल का प्रथम
और द्विरद का द्वितीय (सुर=स्वर) सुन कर पपीहा बन में चले गए, अपने
बच्चेों तक को नहीं सेवन करते हैं । स्तरुनी के आदि और ललन के अन्त
(स्तन) को देख कर सागर कहता है, इतनी शोभा है कि नारंगी भी उस की
समता नहीं पाती ॥ १८ ॥

अभिधानभेद अंतर्लापिका दोहा-यथा.

सं म जाँ हि नै रा कुँ म येँ न रँ, यह न लहत अ जान ।

संकरं शंकरं अंकपरै, करँ मयंकै करबान ॥ १९ ॥

(इस दोहा का अर्थ ३४ वीं लहर के २७ वें छन्द में लिखा है वहां देखें पृ०
३८६) इस के पहिले चरण के अक्षरों में से एक छोड़ कर एक २ लेते जावें तो
‘सुजान कुंवर’ और फिर दुबारा दूसरे अक्षर से प्रारंभ करके एक २ छोड़ते हुए
एक २ लेवें तो ‘महिरामन’ ये ग्यारह अक्षर के दो नाम निकलते हैं ॥ १९ ॥

अथ रागोपरि अंतर्लापिका भेद-सवैया.

एक करो (सु) घराइ पं (जा) ब दो, तीजो कल्या (ण) को चित धरेरे ।
 (सा) रंग आदि बिहा (ग) कि अंत ले, भे (र) व मध्य बिहाल परेरे ॥
 ना (इ) को ओर म (ला) रहि गू (ज) रि, ता बिचले हितु हँसो करेरे ।
 जाय प्रवीन भरोखनमें इत, नी कोउ गानकला उचरेरे ॥ २० ॥

सागर कहते हैं कि कोई इतनी सुघराई करो कि सुघराई (राग) का आदि 'सु' पंजाब (राग) का मध्य 'जा' तथा कल्याण का अन्त 'न' (सुजान) को चित्त में लेकर 'सारंग' का आदि 'सा' और 'विहाग' का अन्त 'ग' तथा 'भैरव' का मध्य 'र' (सागर) बेहाल पड़ा हुआ है इसलिए 'नाइकी', 'मलार' और 'गुजरी' (इन तीन रागों) का मध्य (इलाज) जो हितैषी हाँवे वह करे, ऐसा जाकर प्रवीण के भरोखा में गानकला का उच्चारण करे। भावार्थ यह है कि सागर कहता है कि कोई ऐसी चतुराई करो कि प्रवीण के भरोखा में जाकर गानकला-युक्त यह उच्चारण करो कि सुजान को हृदय धर कर सागर बेहाल पड़ा हुआ है, कोई इलाज करो ॥ २० ॥

अथ चतुराचरे दोहा भेद, अंतर्लापिका शिवस्तुति-कवित्त.

बाद्य व-(जे) नये न-(ए), अंग दी-(ए) भूति व-(ने) ।
 कुंज व-(से) बीच व-(न), संग ल-(से) भूत प्रे-(त) ॥
 झुंड दा-(म) सेत छ-(वी), देह द-(मि) दान द-(हे) ।
 भाल बि-(धू) दाह मे-(न), जंग जी-(त) तोन ने-(त) ॥
 पालप (सु) पान चा-(प), दीन बि-(प्र) ही निवा-(जु) ।
 रुढस (वा) रीझ वा-(र), छत्र छ-(बी) गंग दे-(त) ॥
 ग्यान रा-(स) सिंधु द-(आ), शूल पा-(न) नंदि ध्व-(जा) ।
 जोग थ-(पें) प्रीत री-(त), पंक कं-(पें) नाम ले-(त) ॥ २१ ॥

जिस के पास नए २ बाद्य बजते हैं, शरीर पर बिभूषि लगा कर जो भूषणधन बेन हुए हैं, इन के मध्य कुंजलता मंडप में बैठे हुए हैं, जिस के साथ में भूष

प्रेतादि शोभित हैं, जिन के गले में मुंडमाला शोभायमान है, जिसके शरीर की कान्ति श्वेत है, जो देह को दमन वर दान देते हैं, कपाल में चन्द्रमा काळा कामद्वे को भस्म करने वाले, जगतात्रिजयी, तीन नेत्र वाले पशुपालक, जिन्हों के हाथ में धनुष्य है दीनों की दरिद्रता निवारण करने वाले, शव जिन का वाहन है ऐसी चंडिका को रिझानेवाले, जिस के मस्तक में गंगाजी का छत्र शोभायमान है, रगन राशि, दयासिन्धु, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, ध्वजा में नंदी का चिह्न धारण करने वाले, योग के स्थापक, प्रीति की रीति को दृढ़ करने वाले तथा जिसका नाम लेते ही पाप धर २ कौपता है, ऐसे श्री महाकृद् शिवजी का स्मरण करता हूं । (इस छन्द के प्रत्येक चरण का चौथा २ अक्षर लेने से जो दोहा बनता है वह निम्न प्रकार है) ॥ २१ ॥

वह कवितांतर्गत-दोहा.

जैसे मधु सुवासणें, एक बीन पर आत ।

ऐसे मित प्रवीणपें, नेत हेत जुत जात ॥ २२ ॥

सागर कहता है कि जिस प्रकार भंवरा सुगंध पर और मृग वीणा के नाद पर मुग्ध हो रस लेने आता है, इसी प्रकार मित्र प्रवीण के ऊपर मेरी आँखें स्नेहसहित मोहित हो जाती हैं ॥ २२ ॥

अथ वर्णभेद, बहिलापिका-सवैया.

बसुधा र (घु) चोर न (का) रसु नाम, उन्हें नहिं यादि धरी विसरेरे ।
उशना (ध्व) ज अछर आदि बिना, (श) शि आदिके संजुत चाह भरेरे ॥
तिनसे भव भा (ज) न नां पठयो, रि (पु) नीरज धीरज कैसे धरेरे ।
प्रवीणके जाय भरोखनमें, इतनी कोउ मित पुकार करेरे ॥ २३ ॥

बसुधा=महि, रघुवीर=राम और नकार=न (महिरामन) जो सागर है वह कहता है कि उसे (प्रवीण को) याद नहीं है, बड़ी में भूल भी जाती होगी ?? परन्तु मुझे तो उशना=शुक, इस की ध्वजा में 'दादर' है, उस के प्रथम अक्षर

बिना (दर) और 'शशि' का प्रथम अक्षर 'श' (दरश) की अर्थात् प्रवीण के दर्शन की चाहना भरपूर है । इस पर भी 'भव' = रांकर, इनका भाजन = भोजनपात्र (पत्र) अर्थात् पत्रिका नहीं है फिर नीरज = (कमल), इसका रिपु (शत्रु) = हंस (जीव) किस प्रकार धीरज धरे ! इसलिए कोई मित्र प्रवीण के झरोखा में जाकर इतनी पुकार करे । अर्थात् प्रवीण के पत्र बिना सागर का जीव अधीर हो रहा है ॥ २३ ॥

अथ वर्णभेदोभिधान बहिलापिका—सवैया.

आदिके आदि 'अ'कार न सूक्त, (असु) अंतके अंत गिलाय 'त'ही, (नत)
अंतके आदि 'द'कार वृथा सब, (दन) आदिके अंत 'ध'कार नहीं, (सुध)
मध्य मकार हमें भुगसे तुम, (जार) अंपके आदि 'ब'कार दही । (विन)
तीन प्रवीणके अच्छरहे, (सुजान) उनको गिनती मनमें ज्यु गही ॥ २४ ॥

प्रवीण के नाम में 'सुजान' तीन अक्षर हैं, उसमें पहिला अक्षर 'सु' के आगे 'अ' रखिये तो 'आसु' यानी आंसू होता है वह हमारी आंख से सूखता ही नहीं । अन्त के अक्षर 'न' उस के पीछे 'त' रखिए तो 'नत' अर्थात् नित्य होता है, और अन्तिम अक्षर 'न' के पूर्व 'द' रखिए तो 'दन' यानी दिन अर्थात् सदा दिन वृथा जाता है । आदि अक्षर 'सु' के आगे 'ध' रखिए यानी सुध नहीं । मध्य अक्षर 'ज' के पीछे 'म' रखिये तो 'जाम' = प्रहर और अन्त के अक्षर 'न' के पूर्व 'वि' रखिये तो 'विन' = बिना अर्थात् तुम्हारे बिना एक प्रहर भी युग के समान लगता है । इस प्रकार प्रवीण के नाम में तीन अक्षर हैं, इन की गिनती हमने मन में ग्रहण कर रक्खी है ।

सागर कहते हैं कि हे प्रवीण ! हमारे आंसु कभी सूखते नहीं, और सर्व दिवस व्यर्थ जाते हैं उन की सुध भी नहीं रहती । तुम्हारे बिना एक प्रहर भी हमें युग के समान बीतता है । प्रवीण के नाम में जो तीन अक्षर हैं उन की गिनती हमने मन में ग्रहण कर रक्खी है ॥ २४ ॥

अथ अंतर्बहिर्लापिका दोहांतर्गत-कवित्त.

प्रश्न.

उत्तर.

जोगी की	सु	रत कहां ?	नारायण में
तुंगन	जा	सु हनन ?	आखंडल=इन्द्र
चंचल'	न	मोद कोन ?	केकी=मोर
तरर	तु	कहा होत ?	फल=फल
प्रस्वत	म	यंक कहां ?	रम=रामृत
विप्रसू	क	हा पढ़ेत ?	वेद=वेद
नद वै	हं	जात कहां ?	दधि में=पसुद्र में
हेदधि	म	हींसु वोत ?	लेहर=लहर
तोमर	स	रम कौन ?	कीराध्वज=अर्जुन
अदिन	ए	हरे कहां ?	जेहर=विप
नगन	क	हा सुवास ?	मलय=चन्द्रमा
लगेस	वे	कहा जात ?	तहन=नेत्र
हे अधु	र	प्रभा कैसी ?	नलिनी=मलयाचर
विकसे	आ	राम कब ?	रतुराज में=वसन्त
चातुकी	इ	छत कहाँ ?	धाराधर=वर्षा
रहे सो	ये	कौन गोत ?	रजतगिरि=विन्ध्याचल

इस कवित्त में सोलह प्रश्न हैं और सोलह ही उत्तर हैं उनके आश्रय लेने से जो दोहा बनता है, वह आगे देते हैं। इसी प्रकार चौथा अक्षर प्रत्येक चरण का लेने से 'सुजान तुम कहूं मम एक बेर आइए' बनता है। प्रश्नों का अर्थ इस प्रकार है ॥ २५ ॥

जोगी की सुरत कहां ? नारायण में, पर्वतों की तुंग किससे हराई गई ? इन्द्र से, बिजली की चमक से आनन्दी कौन ? केकी, ऋतु आने पर वृक्ष में क्या होता है ? फल, चन्द्र से क्या लबता है ? रम, ब्राह्मण क्या पढ़ते हैं ? वेद, नदी

बह कर कहां जाती है ? दधि में यानी समुद्र में, समुद्र में क्या होती है ?
 लहर=तरंग, बाण फेंकने में कौन अगुआ ? कीशध्वज=अर्जुन, सर्प मुक्त पर
 क्या करता है ? जहर=विष, पर्वतों में किसकी सुवाप ? मलय चंदन की, सर्वस्थान
 पर किस की ज्योति जागती है ? नयन की, अधर की प्रभा कैसी है ? नलिनी
 की सी, बाग कब खिलते हैं ? रतुराज में, चातुकी क्या चाहती है ? धारा-
 धर=वर्षा को, कौन सा पर्वत सोरहा है ? रजतगिरि=विन्ध्याचल ॥ २६ ॥

पुनः वह कवितांतर्गत वाक्यार्थ-दोहा.

॥ सुजान तुम
 कहूँ मस एक
 बेर आइये ॥

जो	तू	चं	त	प्र	बी	न	हे	०
तो	अ	न	ल	हे	वि	चा	र	०
ना	आ	के	फ	र	बे	द	ले	०
की	जे	म	न	न	र	धा	र	२७

हे प्रवीण ! जो तू चित्त में चतुर होवे तो इस कविता का विचार कर, नहीं तो
 फिर से आकर इस बेर देवी के विषय में मन में कुछ निश्चय करो । इसलिए
 'सुजान तुम कहूँ मस एक बेर आइए' हे सुजान ! तुम किसी बहाने एक बार
 आओ ॥ २७ ॥

त्रिपादे चतुर्थ पाद गुप्त-दोहा.

(ब) (र) (न) च (प) चख मीन मृग, (र) व (बी) ना (न) बवाल ।
 (बि) र (हा) ज (ल) वह रटत दधि, बन परबीन बिहाल ॥ २८ ॥

सागर कहता है कि जिसके अंग का वर्ण चम्पा पुष्प के समान है, आंखें
 मञ्जरी व मृग की भांति हैं, और जिसका स्वर वीणा की भांति मधुर है,
 ऐसी नवीन बाला के विरह से आंसू बहा कर दधि-सागर रटता है (बन
 परलीन बिहाल) यह चौथा चरण पूर्व के तीन चरणों में से निकलता
 है ॥ २८ ॥

दोहा—इहि विधि अंतर्लापिका, बहिर्लापिका कीन ।

दंपति चित्रसु काव्य पुनि, सागर करहि प्रवीन ॥ २९ ॥

इस प्रकार अन्तर्लापिका तथा बहिर्लापिका कविता करने के उपरान्त दम्पति प्रवीण और सागर ने चित्रकाव्य दिया, जिसे अब कहेंगे ॥ २९ ॥

गाथा—अंतर्लापिक उक्ती, बहुरि बहिर्लापिका भेदं ।

एकषष्टि अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

इस प्रकार अन्तर्लापिका उक्ति और बहिर्लापिका भेद सम्बन्धी प्रवीण-सागर की यह इकसठवीं लहर समाप्त हुई ॥ ३० ॥

६१ वीं लहर

अथ कलाप्रवीणोक्त गोमूत्रिकादिचित्र भेद-दोहा.

सागर कला प्रवीणको, जग्यो सु प्रेम पवित्र ।

मित्र मित्र जंपत जुगल, बरनत चित्र विचित्र ॥ १ ॥

सागर और कलाप्रवीण का पवित्र प्रेम जागृत हुआ जिससे वे दोनों ही “हे मित्र, हे मित्र” ऐसा जाप करते हैं और नाना प्रकार के चित्र में अपने प्रेम का वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

द्विपदी गोमूत्रिका-सोरठा.

जुक्ति रीत रस रास, मंत्र वेद माने सहे ।

उक्ति प्रीत बस जास, चित्र भेद जाने वहे ॥ २ ॥

रस के समूह की युक्ति की रीति और उनके गुप्त विचारणीय विद्या को जो सत्य माने, जिसकी उक्ति प्रेम के सम होवे वही इस चित्रभेद को जान सकता है ।

यह सोरठा (१) सीधी पंक्तियों में पढ़ा जासक्ता है, (२) फिर गोमूत्रिका (बैल मूत्र करते समय चलते हुए जो टेढ़ी लकीर बनती है) रूप में पढ़ा जाता है, फिर तीसरा अश्वगति बंध (शतरंज में जो घोड़े की चाल होती अर्थात् ढाई घर चलता है) में पढ़ा जा सकता है । चौथा प्रकार त्रिपदीभेद है जिसमें मध्य की पंक्ति के अक्षर दोनों पंक्तियों के साथ लेकर पढ़ने से सोरठा बनता है, फिर पांचवां कपाटबंध में है । पांचों के चित्र नीचे लिखे अनुसार हैं ॥ २ ॥

चित्र नंबर १.

जु क्ति री त र स रा स, मं त्र वे द मा ने स हे,

× × × × × × × × × × × × × × × ×

उ क्ति प्री त ब स जा स, चि त्र भे द जा ने व हे ।

अथ गोमूत्रिका दूसरा भेद-चित्र नंबर २.

जु	री	र	रा	मं	वे	मा	स
कि	त	स,	स	त्र	द	ने	हे
उ	प्री	ब	जा	चि	भे	ज	व

अथ अक्षगति-चित्र नंबर ३.

जु १	कि १८	री ३	त २०	र ५	स २२	रा ७	स २४
मं ६	अ २६	बे ११	द २८	मा १३	ने ३०	स १५	हे ३२
ड १७	वित २	प्री १६	त ४	ब २१	स ६	जा २३	स ८
चि २५	अ १०	भे २७	द १२	जा २६	ने १४	व ३१	हे १६

अथ त्रिपदी भेद-चित्र नंबर ४.

जु	री	र	रा	मं	बे	मा	स
कि	त	स	स,	अ	द	ने	हे,
ड	प्री	ब	जा	चि	भे	जा	व

अथ कपाटबंध, सोरठा-चित्र नंबर ५.

जु	कि	कि	ड
री	त	त	प्री
र	स	स	ब
रा	स	स	जा
मं	अ	अ	चि
बे	द	द	भे
मा	ने	ने	जा
स	हे,	हे.	व

अथ त्रिपादे चतुःपाद मध्य तुक गतागतभेद-दोहा. चित्र नंबर ६.

॥ विधु चकोर मधु मन मधू ॥

त	मी	ब	स	हु	न	त	ची	त
---	----	---	---	----	---	---	----	---

अबे विरह दुख देत अति, तची तनहू सब भीत ॥ ३ ॥

प्रवीण कहती है कि चकोर का चन्द्रमा से और भ्रमर का रस से प्रेम है वैसा ही मेरा मन तुम्हारे आधीन है। हे मित्र ! अब विरह अति दुःख देता है और सारा शरीर तपायमान कर दिया है। (दोहे में चमत्कार यह है कि दूसरे चरण को उल्टा पढ़ने से चौथा चरण बन जाता है) ॥ ३ ॥

अथ पर्वत बंधभेद, चरनगुप्त-सवैया.

मैंन दही हिय केकिनकी धुनि, बहर बीज छटा घनमें ।

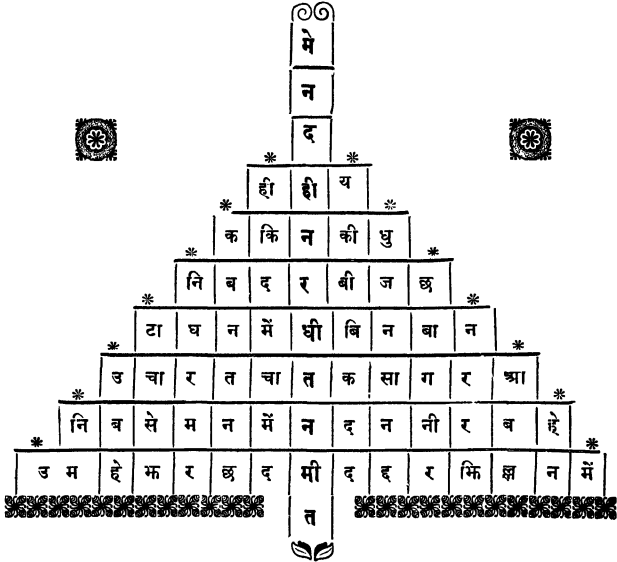
धी बिन बान उचारत चातक, सागर आनि बसे मनमें ॥

नहन नीर बहे उमड़े भर, छहमि दहर भिन्नमें ।

मैंन दही न रधी तन मित, तमी नत धीर नहीं दनमें ॥ ४ ॥

प्रवीण कहती है कि—वर्षाऋतु को देखकर मोर की टेर और बादलों में बिजली की चमक तथा उनकी निराली छटा देखकर हृदय कामदेव की ज्वाला से जल उठा। चातक बिना बुद्धि के अज्ञान रूप में 'पी कहां पी कहां' पुकारता है परन्तु उससे हे सागर ! तुम्हारी याद मेरे हृदय में जागृत हो उठती है। नदियों में तथा झरनों में पानी उमड़कर बह चला है और छद्मवेशी कामदेव दादुर और फिरकियों के रूप में पुकारता है। हे मित्र ! कामदेव ने दहन कर दिया है, शरीर में ऋद्धि (देवत) नहीं रहा और न रात में चैन है ! नाहीं दिन में !! ॥ ४ ॥

अथ पर्वतबंधभेद-चरनगुप्त-सवैया चित्र नंबर ७.



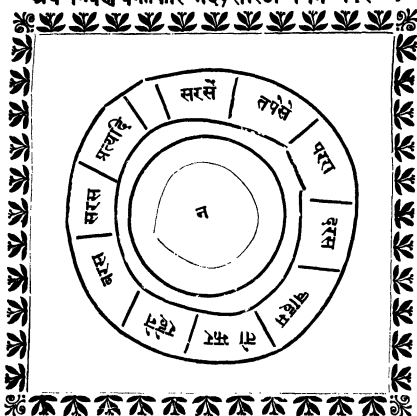
अथ त्रिवर्णचक्रकार चित्रभेद-दोहा.

सरसैं नतपैं सेन, परसन दरसन चाह मन ।

तो भरन रहे नैन, बरसन सरसन प्रत्य दिन ॥ ५ ॥

हे सागर ! शय्या तो सदा बाण की भाँति लगती है और मन में दर्श तथा स्पर्श को जी चाहता है । नेत्रों से अभ्रजल वर्षा की भाँति नित्य भरता रहता है ॥ ५ ॥

अथ त्रिवर्णचक्राकार भेद, सोरठा-चित्र नंबर ८.



अथ आरोहावरोह चक्राकृति गति चित्र शिवविष्णु स्मरण-सोरठा*

मसान बने बास, रे भसमन तन अति रची ।

मुदा अहिन गुन दास, तिलक धूम सिर सुरसरी ॥ ६ ॥

श्मशान और बन में जिसका वास है, शरीर पर जिसने भस्म लगा रक्खा है अथवा 'नतन' जो कामदेव है उसे जिसने अति भस्म कर दिया है, सर्पों को जिसने रस्सी की भाँति बनाकर दास कर रक्खा है, जिसके निपट के स्थान पर अग्निरूप तृतीय नेत्र है तथा जिसके मस्तक पर गंगा विराजमान है, ऐसे शंकर का ध्यान करते हैं ।

इसी सोरठे को उल्टा पढ़ने से दोहे के आकार में भगवान् कृष्ण की स्तुति वर्णन हो जाती है, वह आगे देते हैं ॥ ६ ॥

अवरोहे-दोहा.

री सरसुरसी मधु कलति, सदा नगुन हिअ दाष्ट ।

चौर तिय नतन मस भरे, स वाँ हे न बन साम ॥ ७ ॥

रति विवास में श्रीकृष्ण भगवान् आदर्श होगये हैं, ऐसे रास के समय गोपियों की टोली पृथक् होकर बूँद रही थी तब एक सहेली बोली, 'री' अर्थात्

* यह सोरठा लहर १ कन्द १० में आ चुका है, चित्रकाव्य के लिये फिर उपस्थित किया है । (ग० ज० शास्त्री)

हे सखी ! सुरसी=गंगा के समान पवित्र और पुष्प रस धारण करने वाली निर्मल माला जिसके वक्षःस्थल पर रहती है और जो सदा नतन कामदेव की भाँति स्त्रियों में भरपूर रहते हैं ऐसे श्रीकृष्ण वन में कहां नहीं हैं । तात्पर्य यह कि जिस प्रकार गोपियों को श्रीकृष्ण का वियोग पड़ा था उसी प्रकार हमारे तुम्हारे वियोग हो रहा है ॥ ७ ॥

आरोहावरोह चक्राकृतिगति, चित्र नंबर ६.



अथ कपाटबंध-सवैया.

ध्यान धरे चित नेन भरे जल, नाग* रही गुन पाग रही ।
बान करे नित मेन फरे दल, दाग रही विन काग रही ॥
भान जरे गत रैन परे कल, तदाग रही दिन आग रही ।
कान हरे हितसे न टरे पंल, सागरही धुनि लाग रही ॥ ८ ॥

हे सागर ! मेरा मन सदा तुम्हारा ही ध्यान रखता है और शोक के वशा आँखों से आंसू भरता रहता है । हे चतुर ! नाग जो काजल अर्थात् आंसू के साथ जो काजल निकलता है उसके और तुम्हारे गुण में भीग

* 'नाग रही' को गुजराती टीकाकार ने 'हे नागर' अथवा नाग=काजल अर्थ किया है, हमारे विचार से 'नागर ही' अर्थात् 'नागर-चतुर के ही' अर्थ ठीक होगा । तब इस प्रकार होगा 'नागर ही के गुण में पाग-भीग रही हूँ' । नागर को सम्बोधन करने में 'ही' रूप बनाना पड़ता है जो समुचित नहीं है । (हि० टीकाकार)

रही हूं। कामदेव सदा हाथ में बाण लिये हुए चारों ओर फिरा करता है तथा तुम्हारे स्नेह भरे कागद-पत्र के बिना मैं अन्दर ही अन्दर जल रही हूं। सूर्य की गति से तप रही हूं। अरे ! उससे कल नहीं पड़ती जिससे यह मेरा जीव विकल हो रहा है। किसी प्रकार दिन गुजारी तो भी बिरह की आग तो बढ़ती ही जाती है। सागर की ध्वनि इस प्रकार की लगती है कि मेरे मन की वृत्ति हरे लेती है और एक पल भी मुझ से नहीं हटती (यह सबैया अश्वगति, गोमूत्रिका और त्रिपदि में भी लिखा जा सकता है) ॥ ८ ॥

अथ कपाटबंध सबैया-चित्र नंबर १०.

ध्या	न	बा	भा	न	का
ध	रे	क	ज	रे	ह
चि	त	नि	ग	त	हि
ने	न	मे	रे	न	खें
ऊ	रे	फ	प	रे	ट
ज	ल	द	क	ल	प
ना	ग	दा	ता	ग	सा
र	ही	र	र	ही	र
गु	न	वि	दि	न	धु
पा	ग	का	आ	ग	ला
र	ही	र	र	ही	र

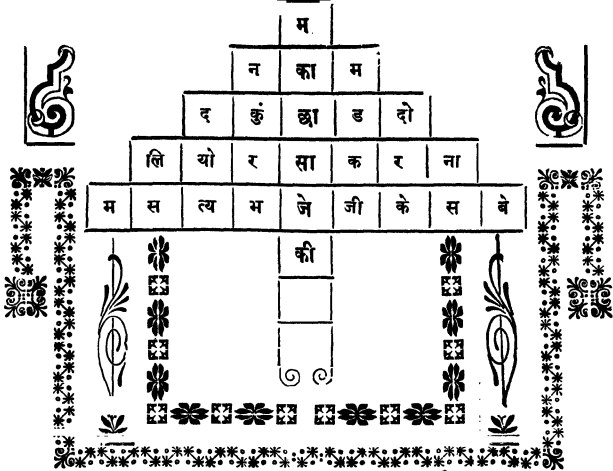
अथ शिखरबंध चित्र आत्मसिच्छा-दोहा.

मनका मदकुं छांड दो, लियो रसाकर नाम ।

सत्य भजे जीके सबे, कीजे साक्षा काम ॥ ९ ॥

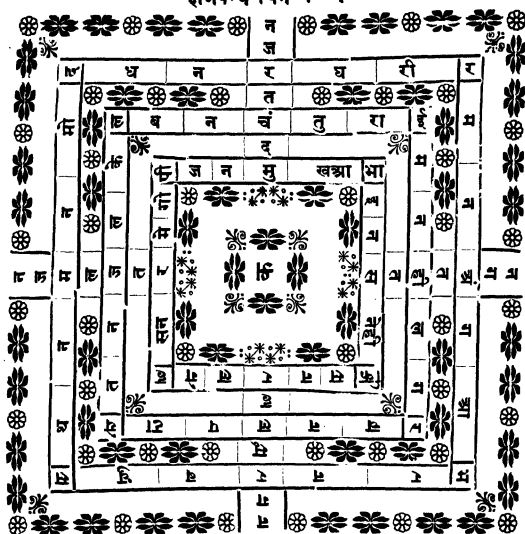
प्रवीण कहती है कि हे जीव ! तू मन के मद=अहंकार को छोड़ दे और रसाकर यानी कृष्ण किंवा रससागर का नाम ले जिसके सत्यता से भजन करने से सब अर्थ ठीक होजाते हैं ॥ ९ ॥

शित्तरबन्ध चित्र नंबर ११



अथ होजबंधचित्रभेद, श्रीकृष्ण जलकेलिषर्णन-कवित्त
 नज मन मोद धन, नजर धरी रमन, नग अंग आभरन, नगर बधू सथन ।
 मल जल केल बन, रत चतुराई मन, अतही लगे रचन, रसु लपटायै तन ॥
 जत रमे गोपीजन, चंद मुख आभा इन, हित सनेही किसन, लहर लगे हसन ।
 करत जल मजन, कमुद चंत रजन, कसत हित अंगन, करहल सुरगन ॥१०॥
 प्रवीण अपनी पीड़ा को टालने के निमित्त श्री यशोदानन्दन कृष्ण भगवान्
 की जलक्रीड़ा रूप लीला का स्मरण करती है । वह कृष्ण भगवान् कैसे हैं !!
 कि जिनके मन में मोद अर्थात् आनन्द है, और दृष्टि धारण कर रमण करते
 हैं, नाना प्रकार के हीरा, मोती, माणक आदि रत्नों से जड़ित आभूषण जिनके
 अंग पर सुशोभित हैं और नगर-बधुओं से मिलकर (वन) जल में जब
 क्रीड़ा करते हैं, तथा चतुराई युक्त रंगीले मन से अनेक रचना रचते हैं ।
 रस से ओतप्रोत शरीरयुक्त गोपिकाएं जहां रमण करती हैं, उनके मुख की
 कान्ति चन्द्रमा के समान है, वे स्नेही कृष्ण के साथ जल की तरंगों में हंसने तथा
 नहाने लगीं । उनके मुख कुमुदनी के चित्त को रेचन करने वाले हैं और वे एक
 दूसरे के साथ लिपट रही हैं, यह देख कर देवतागण झोलाहल करते हैं ॥ १० ॥

होजबन्ध चित्र नं० १२



दाहा-ऐमें कृष्ण कृपानिधी, कृत गोपीजन हीत ।

मेर करी मोकुं अबै, मिलाउ सागर मीत ॥ ११ ॥

इस प्रकार कृपा के सागर ! गोपीजनों के हित करनेवाले—इं श्रीकृष्ण भगवान् !
कृपा करके अब मुझे मेरे मित्र सागर से मिलाइए ॥ ११ ॥

॥ अथ सर्वतो भेद गतिभेद चित्र यथा अनुष्टुप् वृत्त ॥

माधू मीत तमी धूमा, धूम नौत तनौ मधू ।

मीनौ प्रसेसे प्रनौमी, ततः सेत तसे ततः ॥ १२ ॥

हे माधव मित्र (तमी) अज्ञानियों के धूमरूप, अज्ञानियों की दृष्टि जिसे देखने को खुलती नहीं, ऐसा नवीन बादलों के समान जिनका शरीर है और जो माधुर्य वाला है और जो मच्छ आदि रूप में उत्पन्न हुआ, उसे नमस्कार करता हूं । उस ईश्वर से उज्ज्वलता अर्थात् प्रेम का प्रकाश उत्पन्न हुआ और उस प्रकाश से वैसी ही सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥

सर्वतो भद्रगतिभेद चित्र नंबर १३

मा	धू	मी	त	त	मी	धू	मा
धू	म	नौ	त	त	नौ	म	धू
मी	नौ	प्र	से	से	प्र	नौ	मी
त	तः	से	त	त	से	त	तः

पुनः पदानुपाद सर्वतोभद्र गतागत चित्र नंबर १४

मा	धू	मी	त
धू	म	नौ	त
मी	नौ	प्र	से
त	त	से	त

॥ अथ गतागत ॥ स्वस्तिक गति चित्र यथा सर्वैया ॥

मेरन प्रागट गोम घटास, सटा घमगोटग प्राण रमे । में भट्ट लागु
सु तीय महीस, सही मय तीसु गुलाट भमे । मेन कमं भल्ल मोय
मलीस, सली मय मोल भूमकनमें । मे दह ब्रेह प्रवीण सदा स, सदा
सन बीप्रह ब्रेह दमे ॥ १३ ॥

कुसुमावली परिस्थिति का वयान लिखती है कि हे रससागर ! आकाश
में मेरुपर्वत और उसके साथ घनिष्ठ संबंध रखनेवाले घन (मेघ) प्रत्यक्ष न
होने पर अथवा मेरु जैसे बाह्य दुःख और उसके साथ घनिष्ठ संबंध रखने
वाले बाह्य कारण प्रत्यक्ष न देखने पर भी—मानो ! जैसे मेघों के समूह में बिजली
चमकती हो वैसे प्रवीण के प्राण चमकते हैं ! व्याकुल होते हैं !! आप रसके
राजा है !! आपकी यह रसरानी है !! मैं उसकी सखी हूं !! मेरी सखी
(रसरानी) विरह से दुखी है, चक्कर खारही है, भ्रमित जैसी बनी है, विरह
ज्वाला भभक रही है, निवारण मैं कैसे करूं ?? मैं तो उस के नूपुरमंकारवत्
आधीन हूं, प्रतिपल समझाती हूं तो भी उसके आंतर के मेद-मांस-मज्जा आदि जल
रहे हैं, यह बात मैं ब्रह्मकुमारी जैसी सखी पास होनेसे सब सच जानती हूं ॥ १३ ॥

[illegible]

अथ प्रवीणोक्त स्वस्तिकाकृति शिवस्तुति चित्रभेद यथा—कवित
मदनहा हासहरा, राजराज जयं अजा, जातुधान नमे प्रेत,
तप साजी जीव जाय। महामुन नमे जाहि, हित कामु मुदा दान, नव
दामु मुंड धार, रत रीक्षा भार लाय। महामंत्र त्रसे सबी, विषपानानाद-
विदा, दास प्रेहं हंसव्रत, तम दाही हीय ध्याय। मंड व्याल लसे भूत,
तनार्जुन नग्नदसा, साथ गंग गजांबर, रहो हियां आपु आय ॥ १४ ॥

प्रवीण शिवजी की स्तुति करती है कि—हे कामदेव को भस्म करने वाले ! हास्य
रस वाले ! राजों के राजा और माया के जीतने वाले ! जिन्हें राक्षस और
प्रेत आकर नमते हैं, जिनकी रुचि तपसाधन में है, जिनको महा मुनिवर
आकर प्रणाम करते हैं, भक्तों के हितकामना का प्रसन्नतापूर्वक जो दान
करने वाले हैं, अर्थात् मनोकामना पूर्ण करते हैं, जो मुंडमाल कंठ में धारण
करते हैं तथा जो सदा प्रसन्न रहने वाले हैं और जिनके तीसरे नेत्र में
ज्वाला है, जिनके महामंत्र से सब भयभीत होते हैं, जिन्होंने द्वाहाहल विष का
पान किया है, जो नाद विद्या के जानने वाले हैं तथा भक्तों के प्रिय हैं,
परमहंस व्रत के धारण करने वाले तथा अज्ञान के नाश करनेवाले हैं, ऐसे
शंकर का मैं हृदय के अन्दर ध्यान करती हूँ। जिसके अंग में सर्प तथा
विभूति का आभूषण है और शरीर गौर वर्ण है, तथा नग्न दशा में हैं,
श्री गंगाजी जिनके जटा में विराजमान है, हाथी का गीला चर्म जिसने ओढ़
रक्खा है, ऐसे हे शिवजी ! आप स्वयं आकर मेरे हृदय में
निवास करो ॥ १४ ॥

तन्मध्यगत—दोहा.

महाराज जानंत जिय, मनही मन मुरझाय ।

मंत्र बिना दाहंत हिय, मिलत न सागर आय ॥ १५ ॥

हे प्रभो ! आप मेरे मन की सब बातें जानते हो कि मैं मन ही मन
मुरझा रही हूँ, मेरा हृदय बिना मित्र जल रहा है !! तो भी मित्र सागर
आकर मिलता नहीं ॥ १५ ॥

A circular diagram of the Sanskrit alphabet (Varnamala) is centered on the page. The diagram consists of concentric circles. The outermost ring contains the 44 letters of the Sanskrit alphabet, arranged in a specific order: अ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, औ, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, ण, र, त्रि, श्चि, न, कुं. The inner rings contain the same letters in different arrangements, likely representing different phonetic or historical forms. The diagram is surrounded by a decorative border featuring repeating floral and geometric patterns. The entire page is framed by a wide, ornate border at the top and bottom, and a similar border on the left and right sides.

द्वयषष्ठी अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १७ ॥

गोमूत्रिकादि चित्रभेद वाली, उत्तम चित्रकाव्य रचना कलाप्रवीण ने किया
 उस सम्बन्ध की इस प्रवीणासागर ग्रन्थ की बासठवीं लहर संपूर्ण हुई ॥ १७ ॥

इती श्री प्रवीणसागरग्रंथे कलाप्रवीणोक्तगोमूत्रिकादिचित्रकवित्तवर्णनो
नाम द्विषष्ठितमो लहरं ॥ ६२ ॥

६३ वीं लहर

अथ रससागरोक्तगोमूत्रिकादि चित्रभेद-दोहा.

चित्र लिखित परवीणके, गोमूत्रिकादि रीत ।

वांचत रससागर-रिक्ते, किथे सुचित्र कवीत ॥ १ ॥

प्रवीण के लिखे हुए गोमूत्रिकादि चित्रभेदयुक्त छंद पढ़ कर सागर प्रसन्न हुए और उन्होंने भी चित्रभेद वाली कविता रचकर प्रवीण के पास भेजी ॥ १ ॥

अथ गोमूत्रिकाबंधभेद, रामस्मरण-सवैया.

यहे कुल भान हरी सुलभान, दहे दुलभान प्रभा नभ भान ।

सहे अलभान करी बलभान, रहे नलभान सभा शुभ भान ॥

ब्रहे शलभान अरी जलभान, चहे चलभान अभान भभान ।

कहे जलभान परी तलभान, पहे थलभान लभा अभ भान ॥ २ ॥

रससागर श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करता है । वह रामचन्द्रजी भी कैसे हैं कि सूर्यवंशी हैं और वे हरि जो दुर्लभ वस्तु हैं उसे भी सुलभ कर देते हैं । जिनकी कान्ति आकाश को मृजन (साफ) करने योग्य है, उस प्रभु का दर्शन अलभ्य है, गजेन्द्र के बल्लभ हैं, नल राजा के नगर में भी थे, और सभा के सूर्य रूप हैं, विरहरूपी पतिंगा और शत्रुरूपी जल के लिये सूर्यरूप हैं अर्थात् जैसे पतिंगा सूर्य के प्रताप से छिप जाता है, वैसे ही विरही जनों का विरह उनके प्रताप से छिप जाता है, तथा जैसे सूर्य जल को शोष लेता है वैसे ही श्रीरामजी शत्रु को शोषण करने वाले हैं । विरही जन—जिनके शरीर का भान जाता रहा है ऐसे विदेही जिन्हें चाहते हैं, आभान यानी ज्ञानरूपी नक्षत्र को ढांक देने

वाले सूर्यरूप हैं, ऐसे जिन्हें प्राप्त होगए हैं, वे कहते हैं कि—वह ईश्वर प्रीति से मिलते हैं और ज्ञान के स्थान में प्राप्त होते हैं, ऐसे विदाकाररूपी ईश्वर का मान-ज्ञान हमें मिला । (यह सबैया गोमूत्रिका, अश्वगति, त्रिपादी, कपाटबन्ध तथा षोडश दल कमलबन्ध में भी पढ़ा जाता है) ॥ २ ॥

दूजो भेद गोमूत्रिकाबन्ध, सबैया-चित्र नंबर १६.

प	हे	कु	भा	द	उ	भा	द	उ	भा	प	न	भा	न
ल	न	र	ल	न	हे	न	ल	न	भा	न	भा	न	न

स	हे	अ	भा	क	व	भा	र	न	न	ल	व	भा	म	न
ल	न	री	ल	न	हे	ल	न	ल	न	भा	म	न	न	न

व	श	भा	अ	ज	भा	व	व	भा	अ	न	भा	न
हे	ल	न	री	ल	न	हे	ल	न	भा	म	न	न

क	ल	भा	प	त	भा	प	थ	भा	ल	अ	भा	न
हे	ल	न	री	ल	न	हे	ल	न	भा	म	न	न

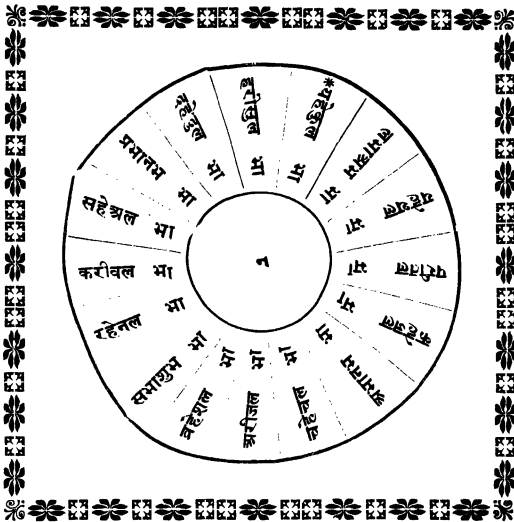
अथ अश्वगति भेद, सर्वैया-चित्र नंबर २०.

य	हे	कु	ल	भा	न	ह	री	सु	ल	भा	न	द	हे	डु	ल	भा	न	प्र	भा	न	म	भा	न
स	हे	अ	ल	भा	न	क	री	व	ल	भा	न	र	हे	न	ल	भा	न	स	भा	शु	म	भा	न
व	हे	श	ल	भा	न	अ	री	ज	ल	भा	न	व	हे	ल	ल	भा	न	अ	भा	न	म	भा	न
क	हे	ज	ल	भा	न	प	री	त	ल	भा	न	प	हे	थ	ल	भा	न	ल	भा	न	म	भा	न

अथ त्रिपदी भेद, सर्वैया-चित्र नंबर २१. (यह सर्वैया कणाटबंधमें भी लिखा जाता है)

य	कु	भा	ह	सु	भा	द	डु	भा	प्र	न	भा	स	अ	भा	क	व	भा	र	न	भा	स	शु	भा
हे	ल	न	री	ल	न	हे	ल	न	भा	भ	न	हे	ल	न	री	ल	न	हे	ल	न	भा	म	न
व	श	भा	अ	ज	भा	व	व	भा	अ	न	भा	क	ज	भा	प	त	भा	प	थ	भा	ल	अ	भा

शोडशदलकमलबंधयुक्त, कवित्त-चित्र नंबर २२.



॥ दोहा ॥

चिदाकाश सम रामसो, उर धरी अरजी आप ।
परम प्रेमी परबीन को, मोकूँ कराउ मिलाप ॥ ३ ॥

ऐसे चिदाकाश के समान हे रामचन्द्रजी ! आप प्रार्थना हृदय में धारण
करो और परमप्रेमी प्रवीण का मुझसे मिलाप कराओ ॥ ३ ॥

॥ छप्पय ॥

ऊंची अटा की छटा, घटा घन जैसी घटित है ।
मानिक बनी अमोल, जवाहिर जहां जटित है ॥

बैठे सज्जन सात, कहे सागर सुबिचारी ।

विषधर सम यह विरह, कोन इन कृत दूत दुखहारी ॥

तब कहे मित्र काली दमन, सो धरहु अब ध्यान में ।

तिन ध्यान धर्यो सागर तबै, भइ दढ़ वृत्ति भगवान में ॥ ४ ॥

जहां पर ऊंची अटारी की छटा—शोभा घन के समान हो रही है । जहां माणिक, मोती आदि अनमोल रत्न जड़े हुए हैं । वहां सात मित्रों के साथ सागर बैठा हुआ विचार कर बोला कि—महा-विषधर के समान विरह दुःख है उसे कौन दूर करे ? तब मित्रों ने कहा कि काली नाग के दमन करने वाले भगवान् कृष्ण का ध्यान करो, तब सागर ने उस स्वरूप का ध्यान किया तब उसके मन की वृत्ति भगवान् में दढ़ हुई ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

दिश दिश के आकाश में, पुनि नग उपरि अनूप ।

जित देखत तित कालि सिर, देखे कृष्णस्वरूप ॥ ५ ॥

अब प्रत्येक दिशा में, आकाश के भाग में तथा पर्वत, पानी, वृक्ष और घरों के ऊपर भी अनुपम कृष्णभगवान् का रूप काली नाग के मस्तक पर विराजमान ऐसा जिधर तिधर दिखाई पड़ा ॥ ५ ॥

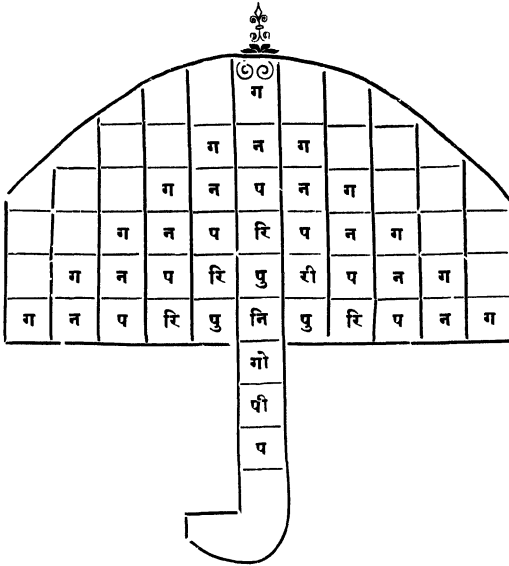
छत्रिप्रबन्ध चतुर्थ पद सर्वतोभद्र दोहा ।

गगन गगन पनग गन परि, पनग गनप रिपु रीप ।

नग गन परि पुनि पुरि पनग, गन परि पुनि गोपीप ॥ ६ ॥

आकाश आकाश में, सर्प के समुदाय पर, सर्प समुदाय के पति जो शेषनाग, उसके शत्रु हिरण्याक्ष जो शेषनाग के सिर पर से पृथ्वी ले जाता था, उसके शत्रु विष्णु दिखाई पड़े । नग अर्थात् पर्वत, वृक्ष और घरों के समुदाय के ऊपर भी गोपीपति दिखाई पड़े ॥ ६ ॥

छत्रीप्रबन्धयुक्त-चित्र नंबर २३.



॥ कवित्त नागपासबंध ॥ सागरोक्त कृष्ण-उपालंभ

काली नागके नथन, बारन धन मथन । सुघर वधू सथन, रस रीतके कथन ॥
 गर राजके धरन, साम बन नय तन । बंसुरी रुतही बन, थर चर रीझवन ॥
 प्रनय पथर मन, रटन श्रिवा करन । नटवर बरानन वसुधा गहीद सुन ॥
 चक्रीके सयन मन, कौस्तुभदाम सुमन । मनसा सब पूरन, प्रवीन क्यौं मिलाउन ॥७॥

काली नाग को नाथनेवाले, वारिधि-समुद्र को मथन करनेवाले, सुघड़ स्त्रियों

के साथ रस रीति के कथन करनेवाले, गिरिराज जो गोवर्द्धन पर्वत है उसे धारण करनेवाले, श्यामवर्ण और नवीन शरीर वाले तथा वंशी और वन पर प्रीति रखनेवाले, स्थावर व जंगम को रिझानेवाले, प्रेम के विषय में पत्थर की भांति मन वाले, लक्ष्मी का स्मरण करनेवाले तथा मुख के भ्रेष्ठ दाँतों पर पृथ्वी को धारण करनेवाले, शेष नाग पर शयन करनेवाले तथा मन में कौस्तुभ मनी और वनमाला धारण करनेवाले और सबकी इच्छा की पूर्ति करनेवाले हे नटवर ! श्रीकृष्ण ! मुझे कलाप्रवाण से क्यों न मिलावें ? ॥ ७ ॥

नागपासबन्ध



दाहा-कृष्ण कह दुहु वषे में, हावांह विरह विनाश ।

सिद्ध कथित त्यों करहि तब, पावहि पद कैलास ॥ ८ ॥

तब कृष्ण ने कहा कि अब दो वर्ष में तुम्हारे विरह का नाश होगा परन्तु जब तुम मित्र के बताये हुए के अनुसार करोगे तब कैलाशधाम पावोगे ॥ ८ ॥

जुगल दोहांतर्गत चरनगुप्त जालीप्रबंध ।

पंथी जाय कहां सु निज, नहीं मिलन विन चैन ।

भरे उमासा द्रग भरे, बीतत दिन दुख देन ॥ ९ ॥

हे पथिक ! प्रवीण से जाकर कहो कि—तुम्हें मिले बिना सागर को चैन नहीं पड़ता, भारी उसासे भरता है, आंखों से आंसू भरता है तथा दिन दुःख-दायी रूप में बीतते हैं ॥ ९ ॥

घरी घरी तलफे जिया, मानहुं विन जल मीन ।

प्रभा कबै निरखे प्रनय, पंकज नयन प्रवीण ॥ १० ॥

जल बिना मछली की भांति जी घड़ी २ तड़फता है और यही चाहता है कि प्रवीण के प्रभायुक्त कमलरूपी नयन कब देखें ॥ १० ॥

जुगल दोहांतर्गत चरनगुप्त जालीप्रबंध भेद-चित्र नंबर २५.

१	पं	थी	जा	य	क	हो	सु	नि	ज	३
२	न	हीं	मि	ल	न	बि	न	बे	न	
३	भ	रे	उ	सा	सा	द्र	ग	भ	रे	
४	बी	त	त	दि	न	हु	ख	रे	न	५
५	घ	री	घ	री	त	ल	फे	जि	या	
६	मा	न	हु	बि	न	ज	ल	मी	न	
७	प्र	भा	क	बे	न	ख	प्र	न	य	८

अष्टकोण वर्तुलाकारप्रबंधयुक्त आरोग्यावरोह-कवित्त ।

नवनवि प्रत रसु, दामनि दुती दरसु ।

धुरवा धरा परसु, इच्छा ही दहत छन ॥

नछतह दही छाई, दादुर धुनी बड़ाइ ।

घटा घोर चढ़ी आइ, नरहे सहे न मन ॥

नमनहे सहे रन, ग्रहे रव फिल्लि गन ।

चातुकी करे भ्रमन, मेन रिपू रेनी दन ॥

नद नीरे पूर नमे, मरुत बघूरनमें ।

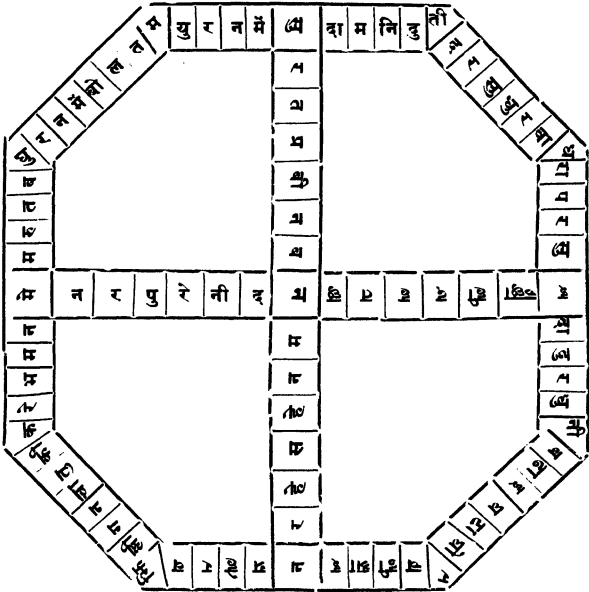
बोलत मयूरन में, सुरत प्रवीण बन ॥ ११ ॥

सागर कहता है कि वर्षाऋतु होने से गगन नूतन रस (जल) से भरपूर है, जिसमें बिजली की प्रभा चमकती रहती है, और आकाश में छाए हुए मेघ घन की धारा पृथ्वी तक छाई हुई है, जो मेरी आशाओं को क्षण में दहन करती है । नक्षत्रों को छा लिया है, दादुर ध्वनि गूंज रही है, श्याम मेघघटा उमड़ रही है जिसे मेरा चित्त सहन नहीं कर सकता—अर्थात् अधीर हो रहा है । वर्षा की धाराएं मुझी हुई हैं और फिल्लि के रव को धारण किए हुए हैं, चातुकी भ्रमण कर रही है, इसी प्रकार कामदेवरूपी शत्रु भी रात दिन भ्रम रहा है, नदियां पानी से छलकती तथा छलांग मारती कलकल करती हुई बह रही हैं, पवन चक्र खारहा है और मोर शोर कर रहा है, ऐसे समय में मेरी दृष्टि तो एक प्रवीण में ही लग रही है ॥ ११ ॥

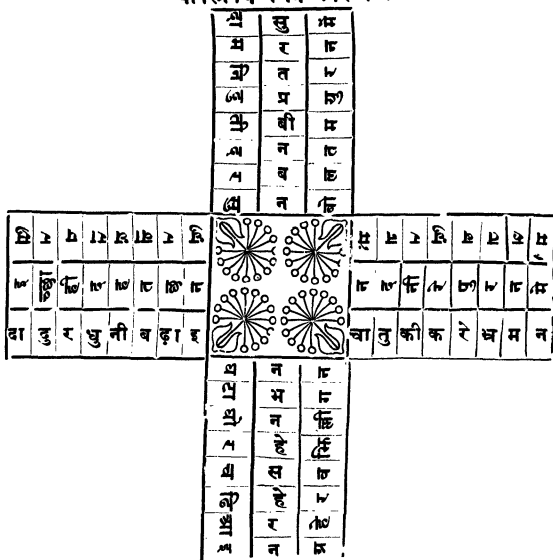
अष्टकोण वर्तुलाकार प्रबन्ध.

आरोहावरोह

चित्र नंबर २६.



चौपरप्रबंध-चित्र नंबर २७.



चौकीप्रबंध भेद, सवैया.

रे जन वीसरहो हमकों तुम, प्रेम भरे हितुके समरे ।

रे मस केउ मिलो न तवै लगि, दाउ विजोग दहे तनरे ॥

रे नत हे ज्यु तिहारोइ साधन, नैन हरे सुरबीर परे ।

रे परबीन हमें तुम चाहत, तो पठवो सुसबी नजरे ॥ १२ ॥

सागर कहते हैं कि हे प्रवीण ! तुम प्रेम के और हमारे सर्वहित से भरी हुई हो, इसलिये तुम हमसे विसर नहीं सकती । अरे ! किसी बहाने जब तक मिलोगी नहीं !! तब तक वियोगाग्नि मेरे शरीर को तपाती रहेगी । अरे ! नित्य तुम्हारा ही साधन है और शूरवीर की भांति नेत्र तुम्हारी ही ओर दौड़ते हैं । हे प्रवीण ! हम तुम्हें चाहते हैं इसलिये तुम अपनी सब छवि मेरे सामने भेजो ॥ १२ ॥

चौकीप्रबन्ध-चित्र नंबर २८.

क	स	र	हो	ह	म	को	तु	म	प्रे	म	भ	रे	हि	तु	के
ख															ख
ग															घ
ङ															च
च															छ
ज															झ
झ															ट
झ															ड
ट															ढ
ड															ण
ण															त
त															थ
थ															द
द															ध
ध															न
न															प
प															फ
फ															ब
ब															भ
भ															म
म															य
य															र
र															ल
ल															व
व															श
श	र	सु	रे	ह	न	ने	न	ध	सा	इ	रो	हा	ति	ज्यु	हे

चतुर्पादगर्भातर्गत अन्त्यतुक गुप्तांतर्लापिका सीढीबंध

भेद, कवित्त.

एइ नैन चाहतहै, तेरेही बिलोकबे को, नेरे एक आय कैसे,
 क्षिप्र क्षिप्र पाइये न । बीतत करेरे पल, छिनहू न परे कल, रही
 फेल ब्रह्मा, यातें निकट रहाइये न । एकही सनेह बीच, जे कही
 अनेक टेक, ताइ दहनो बिसेक, निज मन चाहिये न । आदकी तरंग
 सो तो, आइ जिय संग जैहे, एरे ये प्रवीन, फेर एक दिन आइये न ॥१३॥

हे प्रवीण ! ये मेरी आंखें एक तुम्हारे ही अंगों को देखना चाहती हैं इसलिए जल्द २ नजदीक क्यों नहीं आती ? हमें क्षण २ कठिन बीतता है, और एक पल भी कल नहीं पड़ता, सारे शरीर में विरह व्याप रहा है, इसलिए पास आकर क्यों नहीं रहती ? हमारे एक स्नेह के मध्य में जो अनेक टेक धारण हैं ! उन्हें विशेष रूप से जलाना तो तुम्हें नहीं चाहिये । जो प्रेम की तरंग प्रारंभ में उठी है वह तो जीवन के साथ जायगी, इसलिये, हे प्रवीण ! फिर एक दिन क्यों नहीं आती ? (इसमें के अंतिम चरन के सोलह अक्षर “ एरे ए प्रवीण फेर एक दिन आइए न ” सीढ़ी रूप से पढ़ने में निकलते हैं) ॥ १३ ॥

अथ सीढीबंध-चित्र नंबर २६.

ए	इनेन	चाह	तहे
ते	रे	इबिलो	कबेकों
नेरे	ए	कआ	यकेसें
क्षिप्रक्षि	प्र		पाइयेन
बी	तत	करेरे	पल
छि	न	हु न प	रे कल
रही	फे	ल	ब्रहा याते
निकट	र		हाइयेन
ए	कही	सनेह	बीच
जे	क	ही अने	क टेक
ताइ	द	ह	नोबिसेक
निज म	न		चाइयेन
आ	दकी	तरंग	सोतो
आ	इ	जियसं	ग जैहे
एरे	ये	प्र	बीन फेर
एकद	न		आइयेन

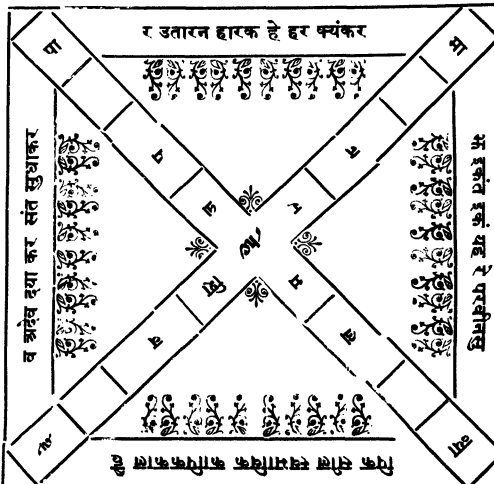
चौकीप्रबंध-सवैया.

हे जप पार उतारन हारक, हे हर क्यं कर मान रहे ।
हे रनमांभ इकंत इकं यह, रे परवीन सु व्याल महे ॥
हे मल व्यापिक शील स्वभाविक, कापिक काल हूदे बसिडे ।

हे शिव देव अदेव दया कर, संत सुधाकर पाप जहे ॥ १४ ॥

सागर शिवजी का स्मरण करते हुए कहते हैं कि जिसका जप भयंकर दुःखों से पार उतारने वाला है और जिसके दास नित्य सम्मान पाते रहते हैं, ऐसे भोलाशंकर बन में एकान्त और अकेले रहते हैं, इसी प्रकार हे प्रवीण ! उनके जलहरी के समीप बड़े २ फणधर रहते हैं । वे माया से मिल कर सर्वत्र व्यापक हैं, शीलस्वभाव वाले काल को काटने वाले, संतों के लिये अमृत की खानि और पाप को हनन करने वाले हैं, इसलिये उनका ध्यान धरो ॥ १४ ॥

चौकीप्रबन्ध-चित्र नंबर ३०.



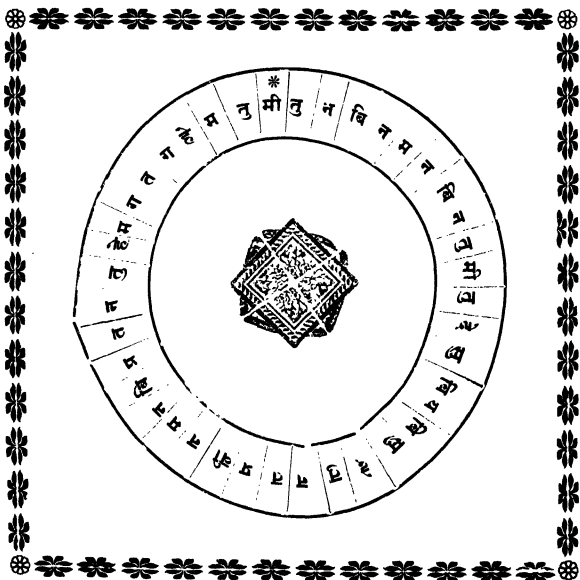
आरोहावरोह एक कवितार्थ-दोहा.

मीतु न बिन मन बिन तुमी, तुदे सु बिय बिसु देतु ।
नत प्रवीण मन विप्रतन, तुहे मगत मम हेतु ॥ १५ ॥
उलट भेद-सोरठा.

तुहेम गत गम हेतु, नत प्रवीण मन विप्र तन ।
तुदेसु बिय बिसु देतु, मीतु न बिन मन बिन तुमी ॥ १६ ॥

हे नवीन मित्र ! तुम्हारे बिना मेरा मन बियोगी है, इस पर तुम पेट में और विष डालती हो । हे प्रवीण ! वह मन सदा विप्र सुत की भांति, हे हितैषी ! तुम्हारा आगमन (भिक्षा) मांगता है । १५-१६ ॥

आरोहावरोह उलट भेद-चित्र नं० ३१.



अथ कपाटबंध-दोहा.

बान ठान बेधे हिये, पांचो बन परबीन ।

ध्यान आन सोधे जिये, राचो मन जर मीन ॥ १७ ॥

मागर कहता है कि प्रवीण के बिना कामदेव ने पांचों बाण से हृदय बीध डाला, परन्तु प्रवीण का ध्यान धर कर तलाश किया तो जिस प्रकार मछली पानी से रीक जाती है, उसी प्रकार मेरा मन प्रवीण में रीक गया । (यह दोहा गोमूत्रिका, अश्वगति और त्रिपदी में लिखा जा सकता है) ॥ १७ ॥

अथ कपाटबंध—चित्र नंबर ३२.

बा	न		न	ध्या
ठा	न		न	आ
बे	धे		धे	सो
हि	ये		ये	जि
पाँ	चो		चो	रा
ब	न		न	म
प	र		र	ज
बी	न		न	मी

नागपाश प्रबंध—हरिगीत छंद.

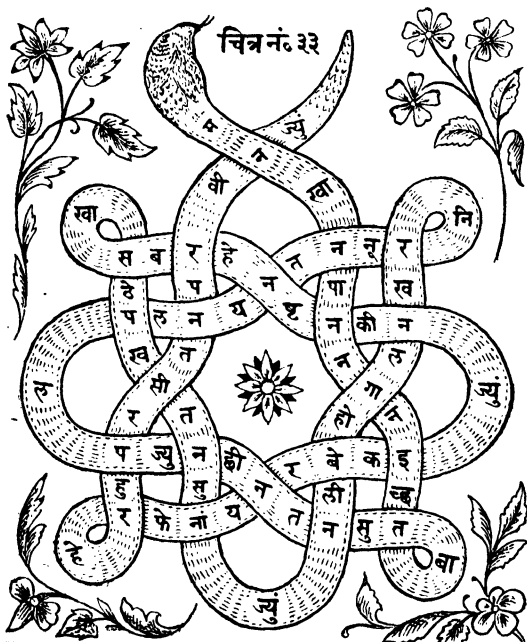
मन खान पान न गान इच्छत, बात सुनत न छीन ज्युं ।

पल पल नयन तन नूर निरखन, लगा होवे लीन ज्युं ॥

ना सुनत सीख पढ़े सखा सब, रहे नष्ट न कीन ज्युं ।

इक बेर नयना फेर हेरहु, परासि तन परबीन ज्युं ॥ १८ ॥

सागर कहता है कि हे प्रवीण ! मेरा मन खान-पान अथवा गान की इच्छा नहीं करता । ज्ञानमात्र भी किसी की बात नहीं सुनता । ऐसा चाहता है कि मेरे नेत्र प्रतिक्षण तुम्हारे शरीर की कान्ति निरखने में लीन रहें । मेरे अनेक मित्र शिक्षा देते हैं परन्तु मेरा मन किसी की भी नहीं सुनता । वे शिक्षाएं मानों कहीं ही नहीं गईं, इस प्रकार व्यर्थ हो जाती हैं इसलिये हे प्रवीण ! एक बार मेरे शरीर का स्पर्श कर मेरी ओर दृष्टिपात करो ॥ १८ ॥



गोमूत्रिकादि युक्ति, रससागर रचि प्रवीणा पे भेजी ।
 त्रयषष्टी अभिधानं, पूर्ण प्रवीणासागरो रुहरं ॥१८॥

गोमूत्रिकादि चित्रभेद की युक्ति रचकर रससागर ने प्रवीणा को भेजी, उस सम्बन्ध की तिरसठवीं रुहर सम्पूर्णा हुई ॥१८॥



॥ लहर ६४वीं प्रारंभ ॥

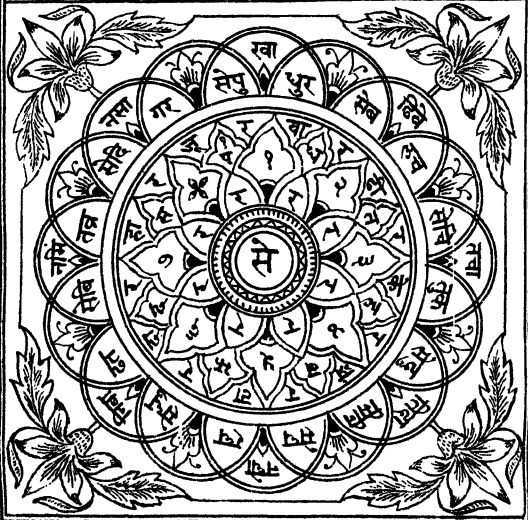
॥ प्रवीणोक्त कमलादिक विविध चित्रभेदवर्णनं ॥

दोहा- कमलादिक आकारमें, कबिता करी प्रबीन ॥
सो अब बर्नन करत हैं, प्रेम सुधा रस भीन ॥१॥

॥ कर्निकाद्यमध्यांत कमल प्रबंध भेद ॥ सवैया ॥

परसे पुरवा धुरवा धरसे; धरसे बढिबेल चढी तरसे ॥
तरसे चित चानुक के हरसे; हरसे दुति दामिनि अंबरसे ॥
बरसे पनपोर पटा भरसे; भरसे धुनि बाढत दादरसे ॥
दरसे विनमित ब्रह्म सरसे; सरसे दिन सागर जूपरसे ॥ २ ॥

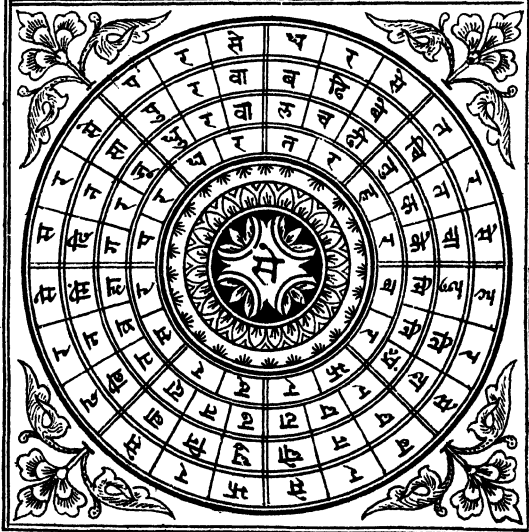
चित्र नम्बर ३४



॥ पंच चक्र प्रबंध-वह सवैया ॥

परसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढिबेल चढ़ी तरसे ॥
 तरसे चित चातुक के हरसे, हरसे दुति दामिनि प्रंबरसे ॥
 बरसे घनघोर घटा भरसे, भरसे धुनि बाढत दादरसे ॥
 दरसे बिन मित ब्रह्म सरसे, सरसे दिन सागर जूपरसे ॥२॥

चित्र नम्बर ३५



॥ नालिकेरी प्रबंध ॥ वह सवैया ॥

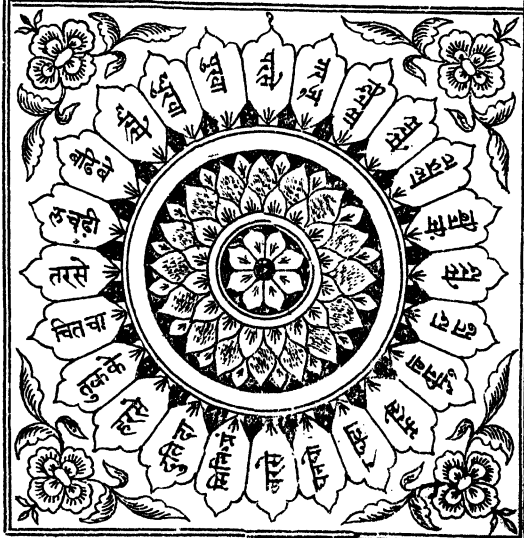
फरसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढि बेह चढी तरसे ॥
 तरसे चित चालुक के हरसे, हरसे दुति दामिनि प्रवरसे ॥
 वरसे पनबोर पटा भरसे, भरसे धुनि बाढत दादरसे ॥
 दरसे बिन मित ब्रहा सरसे, सरसे दिनसागर जूपरसे ॥२॥



॥ रथचक्र प्रबंध ॥ वह सर्वैया ॥

परसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढिबेल चढी तरसे ॥
 तरसे चित चातुक केहरसे, हरसे दुति दामिनिअंवरसे ॥
 बरसे घनपोर घटा भरसे, भरसे धुनिबाढत दादरसे ॥
 दरसे बिन मित ब्रहा सरसे, सरसे दिनसागर जूपरसे ॥२॥

चित्र नम्बर ३७

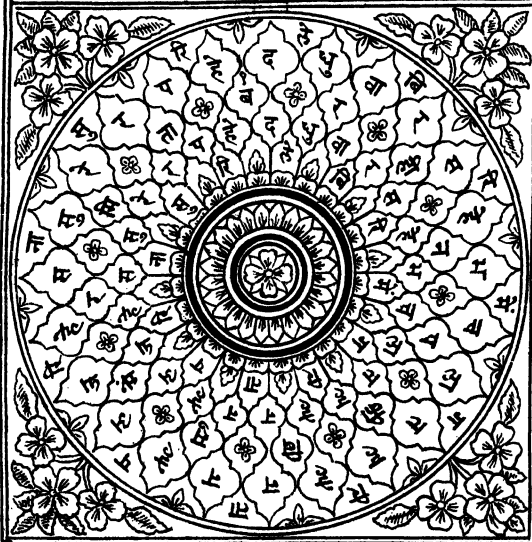


॥ कमल प्रबंध चित्रभेद यथा ॥

सवैया

बदले बदले धुरवा धुरवा, बिरही बिरही सरिहे सरिहे ॥
 नभमें नभमें चपला चपला, गतकी गतकी हरिहे हरिहे ॥
 बिनता बिनता नसुहे नसुहे, परमें परमें जरिहे जरिहे ॥
 रसना रसना सुमिरे सुमिरे, सुरता सुरता परिहे परिहे ॥ ३॥

चित्र नम्बर ३८



॥ चतुर्गुच्छ प्रबंध ॥ सवैया ॥

बदले बदले धुरवा धुरवा, बिरही बिरही सरिहे सरिहे ॥
 नभमें नभमें चपला चपला, गतकी गतकी हरिहे हरिहे ॥
 बिनता बिनता नसुहे नसुहे, परुमें परुमें जरिहे जरिहे ॥
 रसना रसना सुमिरे सुमिरे, सुरता सुरता परिहे परिहे ॥३॥

चित्र नम्बर ३८



॥ अष्टदल कमल प्रबंध ॥ सवैया ॥

बदले बदले धुरवा धुरवा, बिरही बिरही सरिहे सरिहैं ॥
 नभमें नभमें चपला चपला, गतकी गतकी हरिहे हरिहे ॥
 बिनता बिनता नसुहे नसुहे, पलमें पलमें जरिहे जरिहे ॥
 रसना रसना सुमिरे सुमिरे, सुरता सुरता परिहे परिहे ॥ ३ ॥

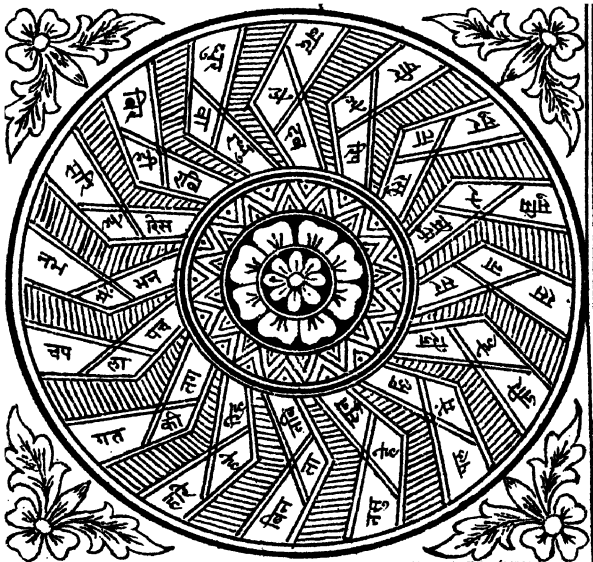
चित्र नम्बर ४०



॥ लहरी प्रबंध ॥ सवैया ॥

बदले बदले धुरवा धुरवा, बिरही बिरही सरिहे सरिहे ॥
 नभमें नभमें चपला चपला, गतकी गतकी हरिहे हरिहे ॥
 बिनता बिनता नसुहे नसुहे, पलमें पलमें जरिहे जरिहे ॥
 रसना रसना सुमिरै सुमिरै, सुरता सुरता परिहे परिहे ॥ ३ ॥

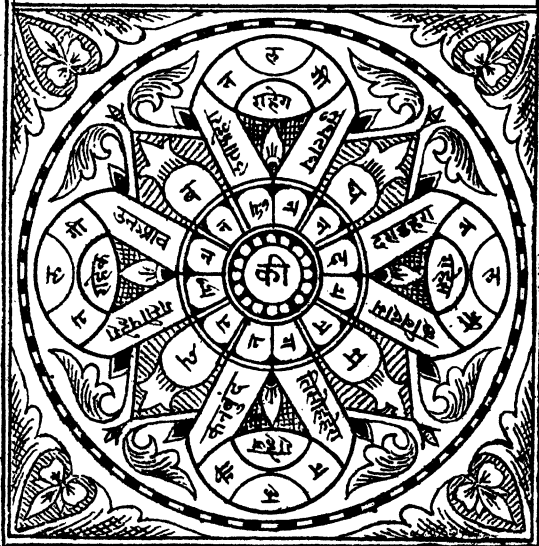
चित्र नम्बर ४९



॥ केसरध मध्यांतर्गत चतुर्दल कर्णिका
कमलप्रबंध ॥ कुसुमोक्त ॥ सवैया ॥

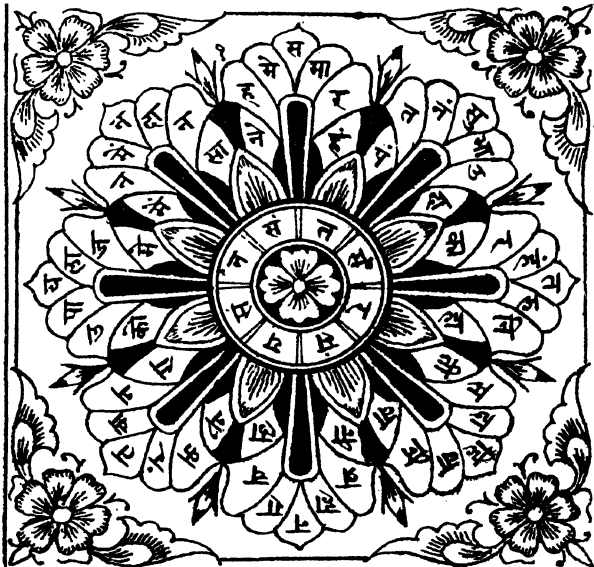
बनकी जुलता फहेरानलगी, गहेरानलगी सुषटायनकी ॥
पनकी ददरा डहेरानलगी, सहेरान लगी छबिदामनकी ॥
मनकी गतिसो हहेरान लगी, जहेरान लगी कनबुंदनकी ॥
दनकी जुगसी पहेरान लगी, कहेरानलगी उनग्राबनकी ॥४॥

चित्र नंबर ४२



॥ अष्टदल पुष्पबंधभेद ॥ प्रवीणोक्त ॥ सवैया ॥
 सनेह हमेंस समारं रहंत, तपंत तनंसु सुभाउ उदासं
 संकार रहंत तरुनि निहार, रतीस सदा हि हिवानि निवासं ॥
 संनीब्र ब्रह्मन नराच चलाय, यनेक करंत तवान नरासं ॥
 संकोउ उपाय यलज जमेन, नमें ननमें न नदान नसासं ॥ ५ ॥

चित्र नम्बर ४३



प्रवीणासागर

लहर ६४

॥ सुमन प्रबंध ॥ सर्वैया ॥ प्रवीणोक्त ॥

लवे ददरान, गले डगरान, घटा गहेरान, सखी सिखरान ॥
 लवे बदरान, कले बगरान, पटा घहेरान, सखी बिखरान ॥
 भवे प्रदरान, चले जगरान, छटा फहेरान, सखी लिखरान ॥
 प्रवे नदरान, मले सगरान, चटा बहेरान, सखी वैखरान ॥ ६

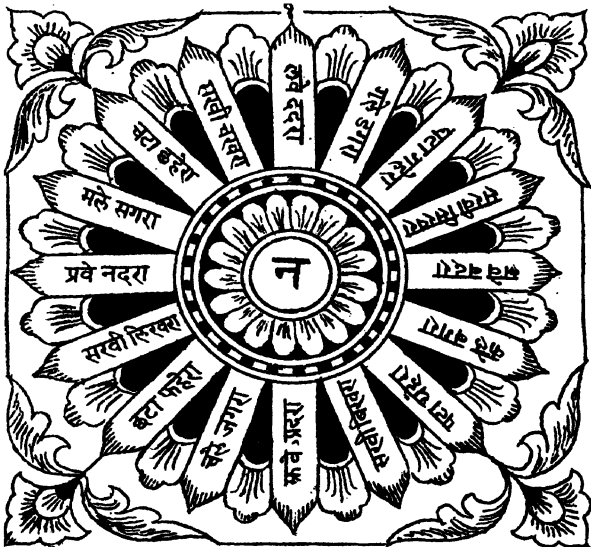
चित्र नम्बर ४४



॥ कुसुम प्रबंध ॥ वही सवैया ॥

लवे ददरान, गले डगरान, घटा गहेरान, सखी सिखरान ॥
 सवे बदरान, कले बगरान, पटा थहेरान, सखी बिखरान ॥
 भवे प्रदरान, चले जगरान, बटा फहेरान, सखी लिखरान ॥
 प्रवे नदरान, मले सगरान, चटा बहेरान, सखी चखरान ॥ ६ ॥

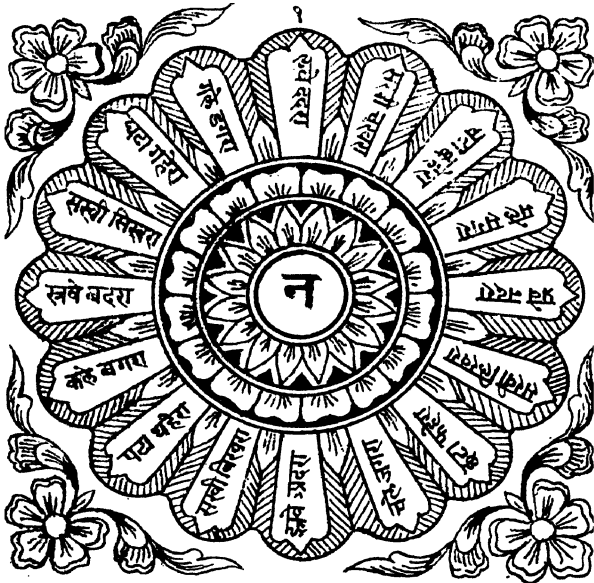
चित्र नम्बर ४५



॥ रथचक्र प्रबन्ध ॥ वह सर्वैया ॥

रुवे ददरान, गले डगरान, घटा गहेरान, सखी सिखरान ॥
 सखे बदरान, कले बगरान, पटा थहेरान, सखी बिखरान ॥
 झवे अदरान, चले जगरान, छटा फहेरान, सखी लिखरान ॥
 प्रवे नदरान, मले सगरान, चटा कहेरान, सखी चखरान ॥ ६ ॥

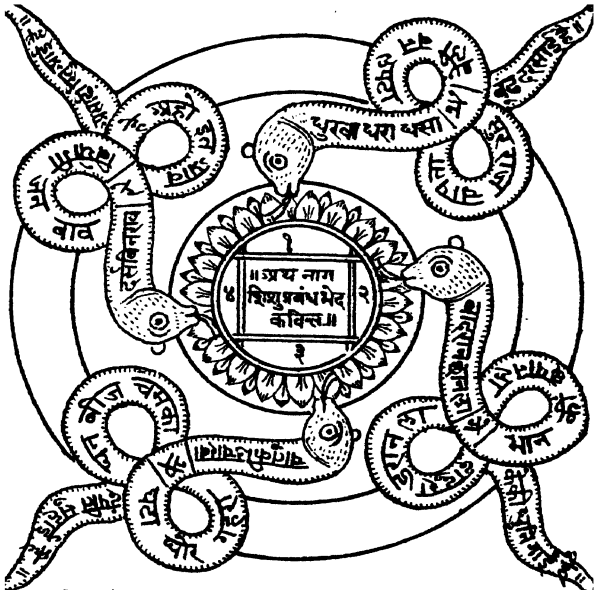
चित्र नम्बर ४६



॥ नागशिशु प्रबंध भेद ॥ कवित्त ॥

थुरवा थरा थसाने, बेकीबन रुपटाने, सुरराज चापताने, बूढ
 दरसाई है ॥ बादरान बानलागे, भानकों ब्रपानलागे, दादुरा
 डरान लागे, केकीधुनिगाई है ॥ चातुकी उचारबानी, पटाघोर
 गहरानी, चनबीज चमकानी, दंपति सुहाई है ॥ दर्सेबिनरावरे,
 बियोगी जनबावरे, हे प्रहो इत आवरे, असादी रितु प्राई है ॥७॥

चित्र नम्बर ४७



॥ नवफणा नाग प्रबंध ॥ कवि तन्मध्ये ॥ सोरठा ॥
 दामनी दिसा नवान, तरुलता रुपदान, नर्झर लगे बहान, हरता भये गिमान ॥
 सेहरे लगी ब्रखान, मोदमन दादशन, सोम द्वाये भासमान, नभसूरवापतान ॥
 नतहमो बखेर, सत पपीहे दाहेन, भनगहेरी गति गजत उमंडीही आन ॥
 नयन ब्रखत बारके की खग्रहि सुधुन, बगनसे तलखिए सबसो सेन दान ॥ ८ ॥

॥ तनमध्ये मध्य पंक्ति उदरांतर्गत ॥ सोरठा ॥
 नतदाहन मोसेन, सोरबदे सरा सरवी ॥ तरुपतपी सेहेन, दागहेवन, नभपुनसु
 गही ॥ ९ ॥ चित्र नम्बर ४८

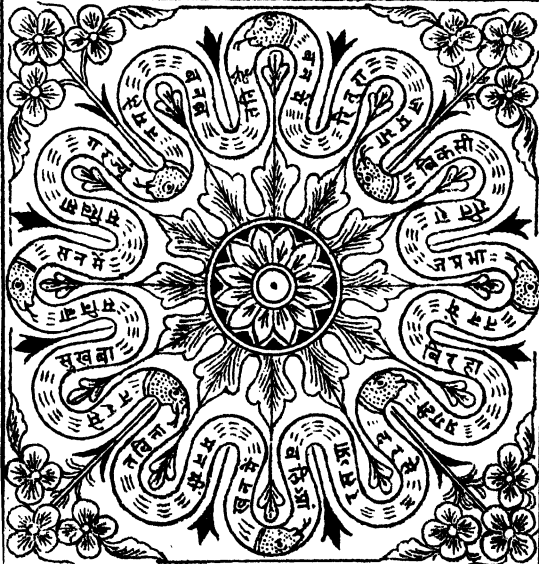


॥ अष्ट नागशिशु प्रबन्धभेद ॥ सबैया ॥

॥ बसंत बिरह वर्नन ॥

बनमें रितुराज प्रभा बिकसी, बिकसी रतिराज प्रभा तनमें ॥
तनमें बिरहा प्रगटी दरसे, दरसे रस प्रावलि प्राखनमें ॥
खनमें मन मीत बिना तरसे, तरसे सुख बास निवासनमें ॥
सनमें सखि सागर ज्युं नमरे, नमरे बन ब्रतनि व्है बनमें ॥१०॥

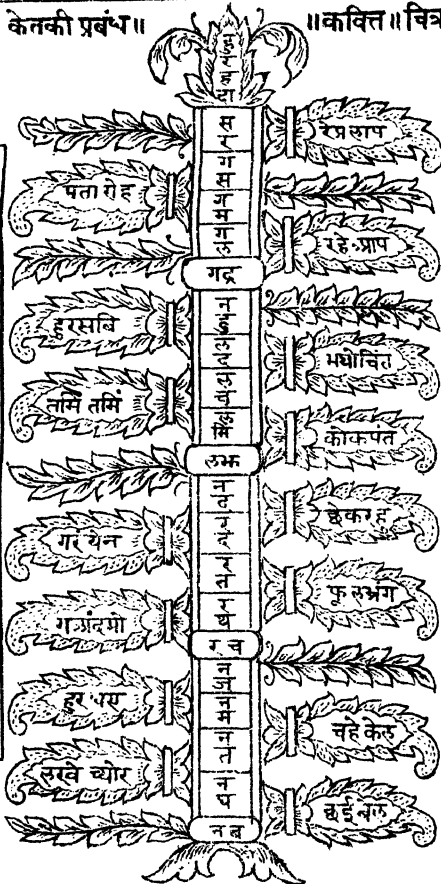
चित्र नम्बर ४६



॥ केतकी प्रबंध ॥

॥ कवित्त ॥ चित्र नं० ५०

भरु मिरु कोक पंत, मिरु चरु मितं मितं, चरु दस भयो चित्त, दलुन बिसरु ॥
 द्रगलुन रहे आप, रुग मग हरो ताप, मग सगरे प्रसाप, सागर सदा हरु ॥ ११ ॥



वतपान बंद बरु, वन नन रचो रोख, तन मन चहे केरु, मग जनम थरु ॥
 नर थर मोद प्रता, थर तर फूल भंगा, तर दार नये रग, दरद नबे करु ॥

॥ चतुः त्रिशूल प्रबंध, भवानी स्तुति ॥

॥ संवैया ॥

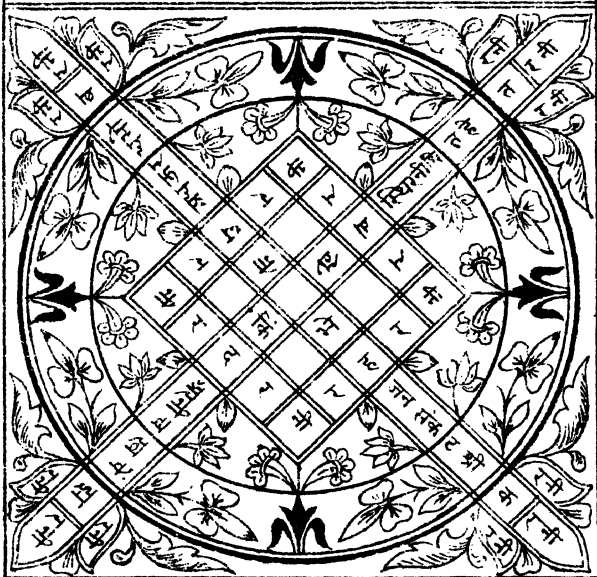
किंदरनी दरनी अरनी चख, पै झरनी झरनी अरनी ॥

गोधरनी धरनी अथऊरथ, भोबरनी बरनी बरनी ॥

खेचरनी चरनी स्थिरनी धित, हेतरनी तरनी तरनी ॥

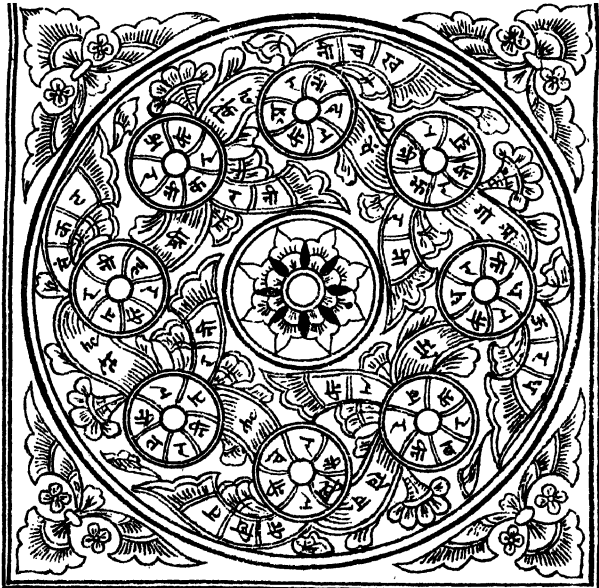
भे हरनी हरनी जनसंकट, श्री करनी करनी करनी ॥१२॥

चित्र नम्बर ५१



॥ श्री ग्रहलता बंधभेद ॥
॥ तत्र सिद्धोक्त भवानी स्तुतिः ॥
॥ सवैया ।

किंदरनी दरनी अरनी चख, पेंझरनी झरनी झरनी ॥
गोधरनी धरनी अधऊरप, भो बरनी बरनी बरनी ॥
खेचरनी चरनी स्थिरनी यित, हेतरनी तरनी तरनी ॥
भे हरनी हरनी नर संकट, श्री करनी करनी करनी ॥१२॥
चित्र नम्बर ५२



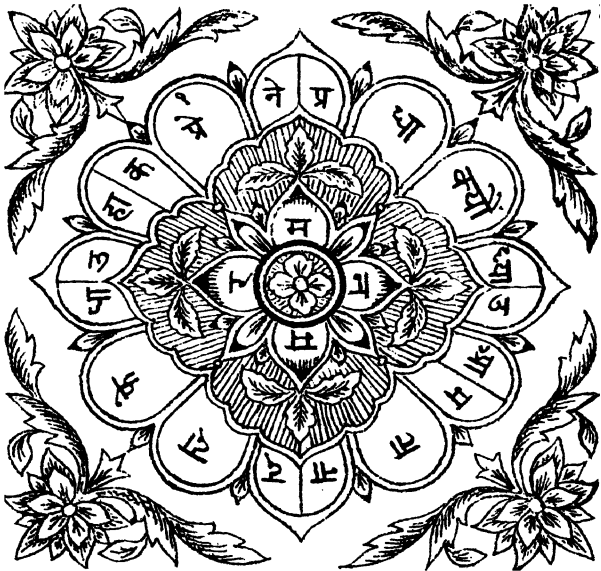
॥ चतुर्वर्ण चक्र प्रबंध ॥

॥ सौरठा ॥

प्रेम नेम प्रम धाम, क्यौंन ध्यान उन आन मन ॥

ताम नाम दम दाम, फेर धार उर हार कर ॥१३॥

चित्र नम्बर ५३



॥ प्रवीणोक्तमुकुटबंधचित्र ॥

॥ दोहा ॥

नरन शरन हारन धरन, सागर सनममें लाय ॥

सारंग धरहस मनही माहि, में तो लागूं पाय ॥ १४ ॥

अर्थ - पुरुषों को आश्रय देने वाले, हर धारण करने वाले, सागर स्वामी को मिलाइये तो हे सांग पाणि (विष्णु) मैं प्रसन्नता से आप को प्रणाम करती हूं ॥ १४ ॥

चित्रनम्बर ५४



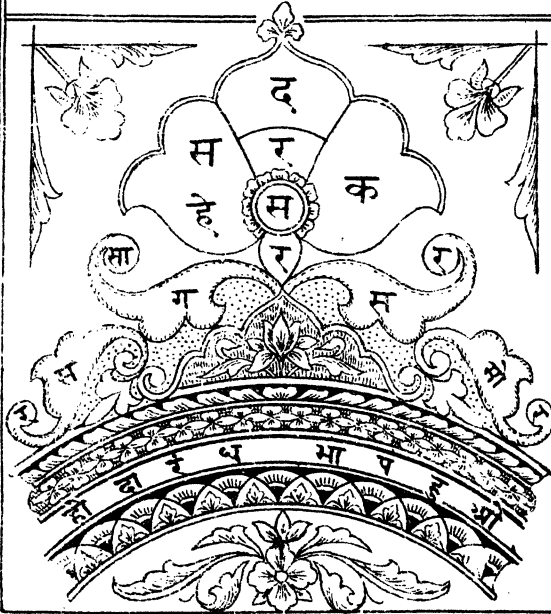
॥ मुकुट प्रबंध ॥

॥ दोहा ॥

दरस सरस हेरस करस, रस सागर सर मोर ॥

रहो सदा सारंग धर, भास परहु मो प्रोर ॥ १५ ॥

चित्र न० ५५



चित्र नम्बर ५६



प्रवीणसागर

लहर ६४

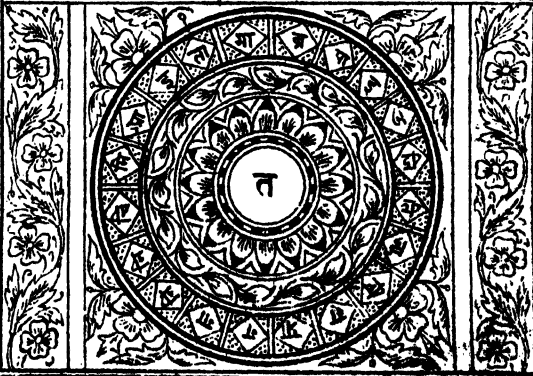
॥ चौकी प्रबंध भेदगति चित्र ॥ सौरठा ॥ चित्र नं. ५७

तात भात ब्रत पात, इत उत जित तित जात चित ॥
 एत प्रात गत गात, नित नित चित मित आत हुत ॥ ५६ ॥



यह सौरठा गोपुत्रिका, अक्षरगति तथा
 कपाट बंध में भी लिखा जाता है ॥

पुनः चक्राकृति भेद प्रबंध चित्र ॥ सौरठा ॥ चित्र नं. ५८



प्रवीरासागर

रुहर ६४

॥ प्रवीरोक्त स्वङ्गबंध सवैया (विष्णू उपाख्य भेद) ॥

चित्र नं० ५६

सवैया - कीजे विचार हरी हियमें, हम सीस हनोतरवारि न बाकी ॥
 कीतर भातु बनाई विरुध्यनि, ग्रानिति यागहनां सुधिवाकी ॥



कीन बनार सकार हुते, कीन कज जकार सुनेन श्रवाकी ॥
 कीद विलोकि करी तनमे तकि, देत सुखं हमकि गति बाकी ॥ १७ ॥

॥ प्रवीणोक्त गजबंधचित्र, कवित्त ॥

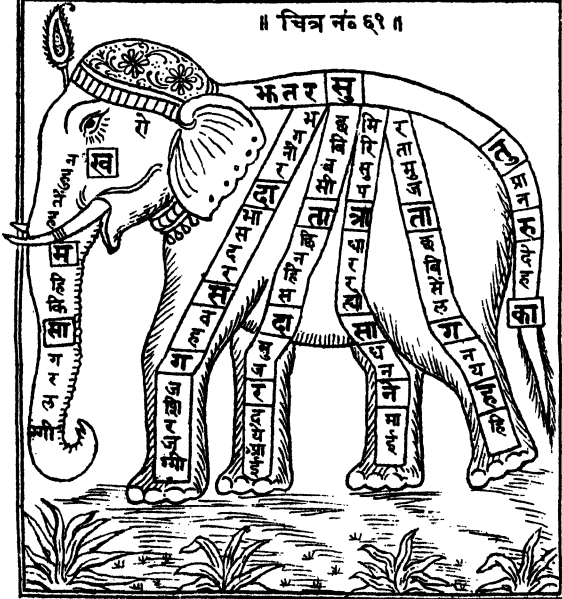
सुभग महर्षि गच्छी, महीमे वरीष्ट भाय, सुगंध नवर साज, दैतके प्रच्छे
 रहे। सुशील सरवगन, आठयाम गेहजेते, सुखदधावकरम्य, या अनेक
 जेरहे। सुमनमें नाही सबे, नेक भाय वपु मोर, सुखके संपादनेको, शुभ
 आशये रहे। सुमन शयामें संग, सागर सनेही बैठ, अंक भरी अगे कब,
 आय हेते हे रहे ॥ १८ ॥ चित्र नम्बर ६०



॥ हस्ती प्रबंध ॥ छप्पय ॥

सुरत भरोखन हुतें, हमहि कि सागर लगी ॥
 सुभग नीरदा भास, दरस वह गज शिरजगी ॥
 सु कवि बसीता दिनहि, सदा मुज रदये आई ॥
 सु मिरि सुपना धार, रत्यो साधन नेमाई ॥
 सुरता मुज ता कविसें लगन, यह हितु प्रान रु देहका ॥
 सुख दाता आता तुम सदा, सागरु सागर नेहका ॥ १६ ॥

॥ चित्र नं० ६१ ॥



॥ आद्यंत मुख सर्प प्रबंधं गतागते हरिहर स्तुति ॥ द्विसर्वैया ॥

चित्र नम्बर ६२

॥ आद्यंत मुख सर्प प्रबंधं गतागते हरिहर स्तुति ॥ सर्वैया ॥ रे मन तुहरी बासु कइकर, सोनभजोपदकि
करता ॥ रे मत्त नेह तजो जगत्ताक, तारहि ताहि रटे सुरता ॥ रे मंगहि न देव तच वारहि, आपत श्याम
संभे वरता ॥ रे मद जो भजुवावसि दास, सदाहित शंकर समे हरता ॥ २० ॥



॥ यह उरुट भेद सर्वैया ॥ शिवस्तुति ॥

तार हूये सक संतहिदास, सदा शिव वाजु भजो दुमरे ॥ तार बंधे समप्रया तप जाहिर, वांचत बेदनहि
मरे ॥ तार सुटेहि तारिता, करता गज जोत हने तमरे ॥ तारक किंदप जेभन सोख बइक मुवाहि हनुमरे ॥ २१ ॥

॥ श्री कटारबंध भेद ॥ वर्षाविरह वर्णन
॥ कवित्त ॥ चित्र नं० ६३

कवित्त - इंद्र महागज आज, चंदे उर को पधार, यनयोर बिबवाजी, चातुकी सु चोपदार ॥
लेनी को घटागज, बोले मोर बंदीजन, खर चोपे ककीर, धनू धनू वारवार ॥



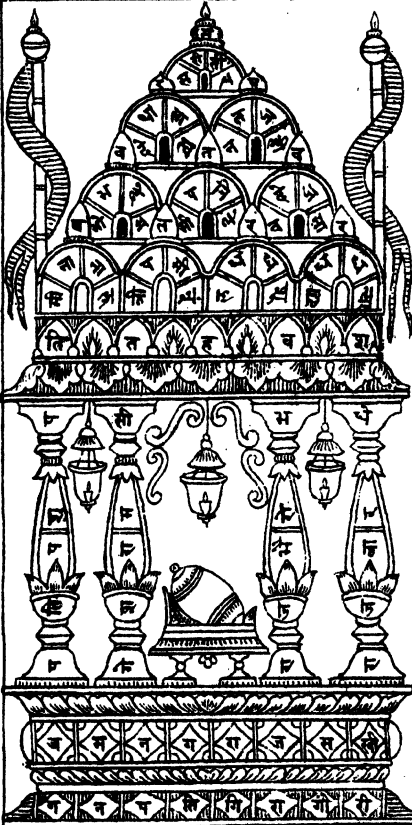
नभमें नक्षत्र नुत, चंद्र चंद्रिका निवार, रविकी प्रभाविदार, कीनो प्रतिप्रथकार ॥
नक्षत्र जीत सबी, रही यानो बोजफकी, बिही बिदारेंको करमें रियो कटार ॥ २२ ॥

प्रवीणासागर

रुहर ६४

॥ देवारुय बंध ॥ कवित्तडंडिक बन्नोसो ॥ वि. नं. ६४

॥ कवित्त ॥ गनपति गिरागौरी, जमनगणज सराही, गजपति पशुपति, पनगेश सम सीत ॥
एजराज भैरव, रिषीराज नारयण, तिसीनाथ तरुनाथ, तन्नी फल हनुमीत ॥

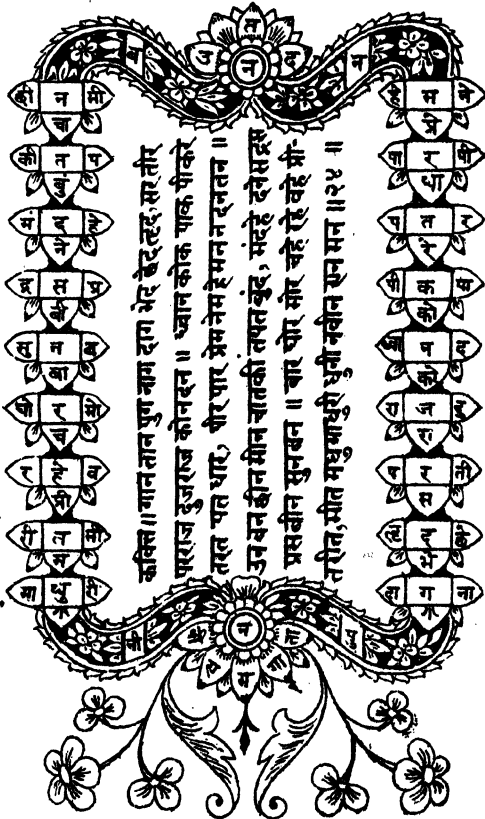


हरपार वशुधर, विद्याधर सन्याधर, यशोधर तमदेव, तमीपत रहे नित्य ॥
रवदेव रसानंद, वंदेधर तत्वसार, तनतप वही जप, रसरीत परतीत ॥ २३ ॥

प्रवीणसागर

लहर ६४

॥ हार प्रबंध ॥ कवित्त ॥ चित्रनम्बर ६५ ॥



प्रवीणासागर

लहर ६४

— दोहा —

मैन बान हनरेन दिन, भान बीन तन लीन ॥

चेन हिन उन तेन मन, क्यौन भान उन लीन ॥ २५ ॥



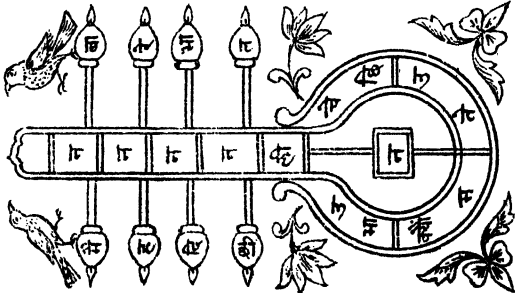
॥ प्रवीणोक्त - ताउस बीन बंध ॥ चित्र नम्बर ६६



॥ प्रवीणोक्त वीणाबंध ॥ चित्र नम्बर ६७



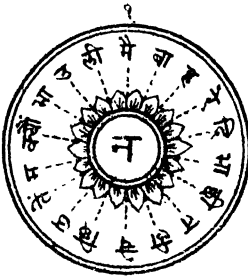
॥ प्रवीणोक्त सितारबंध ॥ चित्र नम्बर ६८



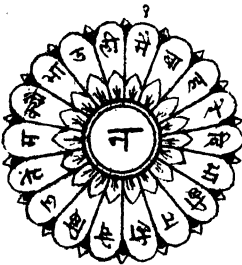
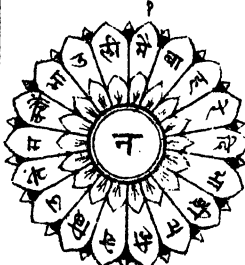
॥ प्रवीणोक्त दोहा ॥

मैन बान हनरेन दिन, भान हीन तन हीन ;
चेन हिन उन तैन मन, कयौन भान उन हीन ॥

॥ प्रवीणोक्त दर्पराबंध चित्र नं. ६८



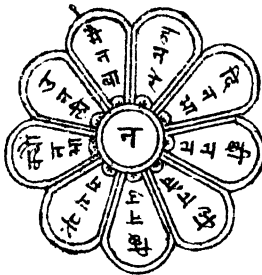
॥ प्रवीणोक्त चक्रबंध चित्र नं. ७०

॥ प्रवीणोक्त प्रष्टादश कमलबंध
चित्र नम्बर ७१॥ द्वितीय प्रष्टादश कमलबंध
चित्र नम्बर ७२

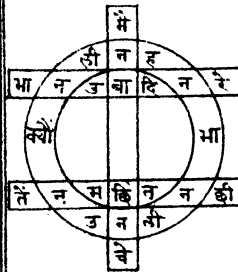
॥ प्रवीणोक्त दोहा ॥

मैन बन हन रेन दिन, भान हीन तन लीन ॥
चेन हिन उन तेन मन, क्यौन भान उन लीन ॥

॥ नवदलकमलबन्ध चित्र नम्बर ७३ ॥



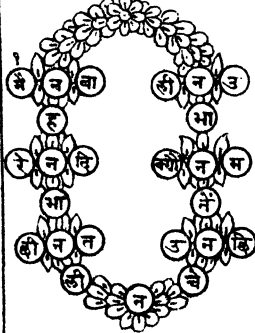
॥ हलकी प्रंडीबन्ध चित्र नम्बर ७४ ॥



॥ मुष्टिकाबन्ध चित्र नम्बर ७५ ॥

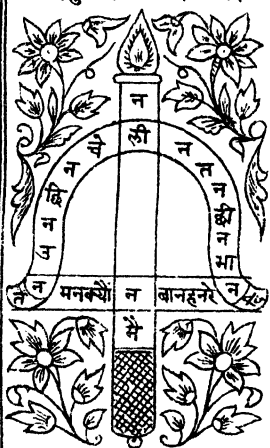


॥ हारबन्ध चित्र नम्बर ७६ ॥



मैन बानहन रेनदिन, भान हीन तन लीन ॥
चेन छिन उन तेन मन, कथौन भान उन लीन ॥

॥ अनुष्यबन्ध. चित्र नम्बर ७८

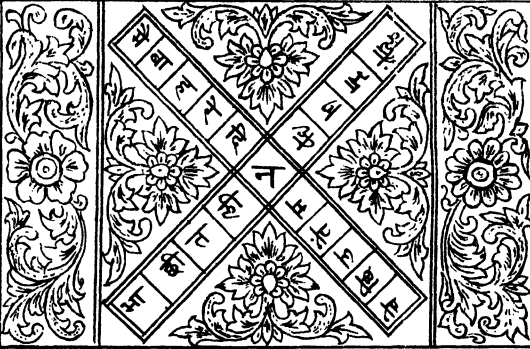


प्रवीणासागर

रुहर ६४

प्रवीणोक्तदोहा

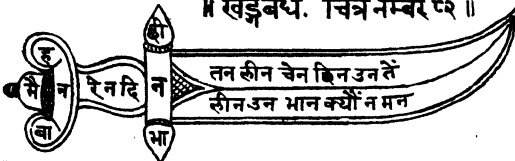
मैन बान हनरेन दिन, भान हीन तन हीन ।
 चेन छिन उनतेंन मन, क्यौन भानउन हीन ॥
 ॥ चौकीबंध, चित्र नम्बर ८० ॥



द्वितीय चामर बंध ॥ चित्र नम्बर ८१ ॥



॥ खड्गबंध. चित्र नम्बर ८२ ॥



प्रवीणासागर

उहर ६४

॥ प्रवीणोक्तदोहा ॥

मैं न जान हनरेन दिन, भान हीन तनलीन
 चेन छिन उन तेन मन, कौन भान उन हीन ॥

॥ शिपदीबन्ध-चित्रनं० ८३ ॥

मैं	बा	ह	रे	दि	भा	ही	त	ली
न	न	न	न	न	न	न	न	न
चे	हि	उ	ते	म	क्यों	भा	उ	ली

॥ कपाटबन्ध चित्रनं० ८४ ॥

मैं	न							न	चे
बा	न							न	हि
ह	न							न	उ
रे	न							न	ते
दि	न							न	म
भा	न							न	क्यों
ही	न							न	भा
त	न							न	उ
ली	न							न	ली

गा हा

विन्न कवित कसमादिक, सागर प्रति रचि प्रवीन मे भेजे।
 बहु बहिःप्रभिक्षानं, पूर्ण प्रवीन सागरो उहरं ॥ २६ ॥

६४ वीं लहर के पद्यों का अर्थ.

दोहा.

प्रवीण ने जो कमलादिक चित्रभेदरूप प्रेम-अमृत से भरी हुई कविता की अब उसका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

कर्णिकाद्यमध्यान्त कमलप्रबन्ध सवैया.

चतुर्मास में पुरवाई हवा के चलने से बादल मंडराने लगे और लताएं पृथ्वी से बढ़कर वृक्षों पर चढ़ गईं, वृक्षों पर से चातक का चित्त हर्षित हुआ तथा बादलों में से बिजली प्रफुल्लित हो चमकने लगी। घनघोर घटा झड़ी लगाकर बरसने लगी, और उस झड़ी में दादुर की ध्वनि गूंजने लगी। मित्र के दर्शन के बिना विरहान्नि प्रज्वलित होने लगी और दिनों दिन मागर की ओर प्रेम बढ़ने लगा ॥ २ ॥

नोट:— यह सवैया कर्णिकाद्यमध्यान्त कमलप्रबन्ध, पंचचक्र प्रबन्ध, नालि-केरि प्रबन्ध और रथचक्र प्रबन्ध चित्रों में लिखा गया है।

कमलप्रबन्ध चित्र सवैया.

बादल बदल कर (धुरवा) उड़ती हुई धूल के समान (धुरवा) धारारूप में हो गए, जिससे (विरही) वियोगियों को (विरही) मोर (सरि हे सर) बाण के समान लगने लगे। आकाश में चगल गति से (चपला) बिजली चमकती है और (हरि) दादुर वृन्द (हरि) यमराज के समान लगते हैं। (विनता) बिना 'पति' के उन (विनतान) स्त्रियों को (सुहे) लाल रंग (नसुहे) अच्छा नहीं लगता और पल २ में उन्हें जलाता है। (रसना) जीभ में (रस ना) रस नहीं रहा अर्थात् जिह्वा सूख गई है, और (सुमिरे) अच्छे मिलन का (सुमिरे) स्मरण करती है, और तुम्हारी (सुरता) छवि में

(सुरता) स्मृति पड़ी सो पड़ी ही है अर्थात् अन्य किसी वस्तु में मन नहीं लगता ।

इस पद्य का निम्नप्रकार भी कोई २ अर्थ करते हैं:—

चतुर्मास में बादलों पर बादल चढ़ने लगे और उनमें से पानी की धाराएं धूमने लगीं जिससे मोर ध्वनि करने लगे जो विरही जनों को तीक्ष्ण तीर की भांति लगने लगे । आकाश में चारों ओर अतिचपल चपला चकमने लगी, उसकी गति-गति में हराबन ही हराबन है । वह वियोगी स्त्रियों को अच्छा नहीं लगता, और पल २ में जलाता रहता है । जिह्वा उसकी रट लगाती ही रहती है और सुरत लगी ही रहती है ॥ ३ ॥

नोट:—यह सवैयाछन्द—कमलप्रबन्ध, चतुर्गुच्छ प्रबन्ध, अष्टदल कमल-प्रबन्ध, लहरी प्रबन्ध और वर्तुलाकार प्रबन्ध के चित्रों में लिखा गया है ।

केसराद्यमध्यान्तर्गतचतुर्दलकर्णिका कमलप्रबन्ध सवैया.

बन की लताएं फहराने लगी और घन की घटा घहराने लगी । वर्षा के कारण बरसाती भेंढक बोलने लगे और बिजली की छटा चमकने लगी । इसी प्रकार प्रवीण के मन की गति अस्थिर और चपल हो उठी तथा जल के बूंद विष के समान लगने लगे । दिन के प्रहर युग के समान लगने लगे और उनकी गति की प्रतीक्षा में प्रवीण कराहने लगी, उसके हृदय में कमक उठने लगी ॥ ४ ॥

अष्टदल पुष्पबन्ध सवैया.

हमेशा स्नेह संभाल कर रहती हूं और शरीर तपता है जिससे स्वभाव उदाम रहता है । संयोग में रहनेवाली नवयौवना स्त्रियों को देखकर कामदेव हमेशा हृदय में निवासकर धीरे २ विरहरूपी बाण चलाकर केवल निराश करता है । इसका किसी उपाय से इलाज नहीं होता, भुलाने से भूलता भी नहीं । उसका निदान (रोग का मूलकारण) भी नहीं ज्ञात होता । वह कामदेव साहस करके मारता भी नहीं । अर्थात् यदि मूलकारण का पता लगे तो उपाय होवे और जो साहस करके मार दे तो पीड़ा का भोगना मिटे ॥ ५ ॥

सुमन प्रबन्ध सवैया.

वर्षाऋतु आने से दादुर बोलने लगे, मार्ग बह चले, अर्थात् मार्ग में पानी बहने लगा । जिस प्रकार वर्षा की घोर घटा घहराने लगी, वैसे ही पर्वतों के तुंग पर मोर टंकारने लगे । बादलों में से जलस्राव होने लगा, बन में वकगण बोलने लगे । वर्षा की पट बिखर रही है और हे सखी ! आर्द्रा नक्षत्र की झड़ी लग रही है । पर्वतों पर से पानी चारों ओर बह चला है । हे प्रिये ! इस प्रकार जंगल २ में उसकी कान्ति थिरक रही है, नदिशां बहकर सागर में मिल रही हैं । हे बहिन ! कहीं चट्टान चमकती हैं तो कहीं कीचड़ भी हो रहा है ॥ ६ ॥

नोटः— यह सवैया सुमनप्रबन्ध, कुसुमप्रबन्ध, और रथचक्र प्रबन्ध में लिखा गया है और गोमूत्रिका, अश्वगति, त्रिपदी तथा कपाटबन्ध में भी लिखा जाता है ।

नागशिशु प्रबन्ध कवित्त.

इसका अर्थ लहर ४२ वीं के छन्द ६ में देखें ॥ ७ ॥

नवफणनाग प्रबन्ध कवित्त.

प्रवीण कहती है कि—दिशाओं में बिजली नृत्य कर रही है, वृत्तों पर लताएं लिपट रही हैं, भरने चलने लगे हैं, पर्वतों पर हरियाली छा गई है, जल की धारा बरसने लगी है, दादुरवृन्द आनन्दित हो रहे हैं, प्रकाशमान चन्द्रमा छिप गया है, आकाश में इन्द्र-धनुष तन रहा है । ऐसे समय में मेरे स्वामी नहीं हैं, अतएव पपीहा सचमुच मुझे जलाता है । आकाश में गंभीरगति से बादल चढ़ते और गर्जना करते हैं, मेरे नैनों से जलधारा चलती है, मोर ने ध्वनि प्रारंभ कर दी है, श्वेत बकपंक्ति दीखने लगी है, ये सब साधन मेरा शोषण करते हैं ॥ ८ ॥

तन्मध्ये मध्यपंक्ति उदरान्तर्गत सोरठा.

नित्य मुझे जलाने के लिए यह (शिखि) मोर शोर करता है । तप्त हुई

शय्या को सहन करने की शक्ति मुझ में नहीं है। वन में पक्षियों की तथा आकाश में मेघ की गर्जना हो रही है, जो मुझे जला रहा है ॥ ९ ॥

अष्टनागशिशु प्रबन्ध सवैया.

इस सवैया का अर्थ ५० वीं लहर के ६ ठे छन्द के नीचे आ गया है, परन्तु चतुर्थ चरण का अर्थ निम्न प्रकार होगा:—

हे सखी ! सागर भी समीप में नहीं मिलते हैं । नहीं मिले तो अब बन-वासिनी हो जाऊंगी ॥ १० ॥

केतकी प्रबन्ध कवित्त.

इस कवित्त का अर्थ ४० वीं लहर के तीसरे छन्द के नीचे आ गया है वहां देखें ॥ ११ ॥

चतुःत्रिशूल प्रबन्ध सवैया.

इस सवैया का अर्थ लहर ४४ वीं में १२ वें छन्द के नीचे आ गया है, वहां देखें । उसमें यहां प्रवीण भवानी की स्तुति करती है ॥ १२ ॥

नोट:— यह सवैया—चतुःत्रिशूल और प्रहलता बन्ध में लिखा गया है ।

चतुर्थर्षचक्र प्रबन्ध सोरठा.

प्रवीण अपने जीव को कहती है कि हे जीव ! जो प्रेम के नेम का परम-धाम है अर्थात् प्रेम के सारे नियमों का पालक है ऐसे रससागर अथवा ईश्वर का ध्यान तू मन में क्यों नहीं करता ? उन्हीं का नाम श्वासोच्छ्वासरूपी माला फेरते हुए जप और छाती का हार करके रख ॥ १३ ॥

मुकुट बन्ध दोहा.

हे सारंगधर (विष्णु भगवान्) ! मैं आप के चरणों में प्रसन्नता पूर्वक

नमन करके प्रार्थना करती हूं कि पुरुषों को आश्रय देनेवाले और हारों को धारण करने वाले स्वामी सागर से मिलाइए ॥ १४ ॥

मुकुटप्रबन्ध दोहा.

हे सारंगधर, हे भगवान् ! इस सागर के मस्तक पर सदा अखंड मुकुट रहे ! वह मुकुट इस प्रकार का हो कि उसका दिखाव अमृत के कलश के समान हो और उसका भास (प्रकाश) मेरी ओर पड़नेवाला हो ॥ १५ ॥

नराकार धनुष प्रबन्ध सोरठा.

प्रवीण कहती है कि हे कुसुमावलि ! मेरे माता पिता को मेरे व्रत अर्थात् अवस्था का पता लग गया है और मेरा चित्त इधर उधर जहां तहां भटकता है । रात दिन मेरा शरीर जलता है और नित्यप्रति यहां मेरे चित्त में चित्र का ध्यान आता रहता है ॥ १६ ॥

नोट:—यह सोरठा नराकार धनुषप्रबन्ध, चौकीबन्ध तथा चक्राकृति बन्ध में भी चित्रित हुआ है ।

खड्गबन्ध चित्र सवैया.

हे हरि ! मन में विचार करो कि विरह पीड़ा कितनी असह्य होती है !! इसलिये मेरा मिर उनकी (सागर की) तरवार से काट दो जिससे कि यह दुःसह दुःख मिट जावे । रामावतार में आपको भी सीतावियोग का दुःख हुआ था, जब कि वानरों और रीछों की सेना बनाकर सीता को पीछे ले आना पड़ा था । क्या इसे आप याद नहीं करते ? संयोगी को वियोगी करते हो और किसी की कुछ सुनते नहीं ? आपने जब ग्राह ने गज को पकड़ा था ! तो उसकी टेर सुनकर दौड़कर उसका उद्धार किया और सुख दिया, उसी प्रकार अब मुझे विरहरूपी ग्राह ने पकड़ रक्खा है सो आप आकर मुझे बचाओ और गज की भांति सुखी करो ॥ १७ ॥

गजबन्ध कवित्त.

पृथ्वी में श्रेष्ठ सुशोभित मनोहर और पके महल, नवीन सुगंधित साज तथा सुन्दर बैठकें, घर में आठों पहर जितने अच्छे स्वभाववाले गनुष्यों का समूह और सुखदायक और चित्त को हरण करनेवाली अनेक वस्तुओं का जो समूह है, वह सब मेरे मन में अथवा शरीर में जरा भी नहीं सुहाता । सुख प्राप्त करने के लिए मन में आशा लग रही है कि मेरे साथ कब रममागर मित्र आकर फूलों की सेज पर बैठकर गले में हाथ डाल प्रेम के साथ मेरी ओर देखेंगे !! ॥ १८ ॥

हस्तीप्रबन्ध छप्पय.

हे सागर ! मेरी सुरत भगोखा में से तुम्हारी तरफ लगी और सरम वर-सात की सी कान्ति की भांति का दिखावा हाथी के मस्तक पर जगी वह तुम्हारी छवि उसी समय मे हमेशा मेरे हृदय में आकर बस गई है । उस का मरण तथा आप के पत्र का आधार यही साधन निवाह रही हूं । उस छवि के साथ मेरी सुरत लगे, यही मेरे प्राण तथा शरीर का हेतु है । हे स्नेह के सागर ! तुम्हीं मेरे सुख के दाता तथा हमेशा रक्षा करने वाले हो ॥ १९ ॥

आद्यंतमुखसर्पप्रबंध सवैया.

प्रवीण कहती है कि हे मन ! कैवल्य के पास में रहने वाले जो हरि हैं उन के चरणों का भजन, दास मन में क्यों नहीं करता ? जगत् के तारनेवाले प्रभु के प्रति स्नेह मत छोड़ । योगी जन ध्यान लगा कर ओंकार रूप में उन्हीं की रट लगाते हैं । वे योगीजन निष्काम भाव से पंच गति में शरीर को तपाते हुए कृष्ण जाप जपते और व्रत पालन करते हैं । अरे अहंकार ! यदि तू उस प्रभु का दास भाव रख कर भजन करे तो वे हरि समय-समय पर हित करने वाले तथा शंकानिवारण करने वाले हैं ॥ २० ॥

उलटभेद सवैया.

हे जीव ! जो सदाशिव हमेशा ओंकार रूप है और संतजन जिस के दास हैं, उस शिवजी का श्वास-श्वास के साथ भजन कर । जिस प्रकार तार बंधा हो अर्थात् सूत्रात्मा रूप से जिन का शान्त पता प्रकट है, परन्तु वेद पढ़ने से उन का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, उस के विषय में रत योगी जन, ओंकार रूप से उसे पुकारते हैं और त्याग अर्थात् संन्यास के प्रकाश से वे योगीजन अज्ञान का नाश करते हैं । (इसलिए हे जीव !) कंदर्प यानी कामदेव के ताड़न करने वाले शिवजी का भजन कर और उन्हें नमस्कार कर ॥ २१ ॥

कटारबन्ध कवित्त.

आज इन्द्र महाराज मन में कोप करके चढ़े हैं । उन की सेवा में मेघ की गर्जना रूपी नगारे बज रहे हैं, पपीहा रूपी चोपदार बोल रहे हैं, बादल की घटा रूपी हाथी उस में शोभित हैं, मोररूपी वन्दीजन उम में बोल रहे हैं और दादुर तथा सुवा रूपी योद्धा ललकार कर रहे हैं, जल-बूंद रूपी शस्त्रों की धारा शोभायमान है । नक्षत्र युक्त चन्द्रमा का तथा उसकी चन्द्रिका का निवारण कर तथा सूर्य की प्रभा का विदारण कर पृथ्वी पर सर्व नरों को जीत कर अतिशय अन्धकार कर दिया है । उस में बिजली का चमकना ऐसा प्रतीत होता है मानो बिरही जन हाथ में कटार लिए हों ॥ २२ ॥

देवालयबन्ध कवित्त.

हे सखी ! गणपति, सरस्वती, पार्वती, यम, हिमालय, गजपति (इन्द्र), पशुपति, शेषनाग, राम सीता, कुबेर, भैरव, भव, राजऋषि, वरुण, तिमिनाथ (निमि=मच्छ, नाथ=पति अर्थात् गंगा) तरुनाथ, नेत्रीपति हनुमान, बलदेवजी वसुधर-विद्याधर-सेनाधर (कार्तिकस्वामी) भवस्तंभ, तमदेव, तमीपति (चन्द्र) सूर्यादिक चाहे जिस देव को नमन कर उन के ही तत्व का सार धारण कर हमेशा रटा करती हूं, शरीर का तप करके उनका ही जप करती हूं । वही रस रीति की प्रतीति है, अर्थात् प्रीति के बिना इतना कष्ट कौन सहें ॥ २३ ॥

हारप्रबन्ध कवित्त.

प्रवीण कहती है कि—गान तान सुपारी आदि मुखवास तथा काजल आदिक शृंगार मुझे दाह करते हैं तथा हृदय को भेदन करने वाले हैं । तालाब के किनारे बैठे हुए पक्षिराज हंस का शब्द तथा वृक्षों में रहने वाले चक्रवा-चकवी और कोयल के शब्द मेरे कानों को पीड़ा देते हैं । उम से पार पाने का साधन प्रेम का नेम तथा दिवस में उस मित्र का मनन है । जिस प्रकार जलके संकोच में मछली क्षीण होती है, स्वाति बूंद के बिना पपीहा जैसे वृषित व्याकुल होता है, तथा सूर्य के दर्शन बिना कमलिनी जिस प्रकार संकुचित रहती है, वही मेरी दशा है । देखिए, वर्षा की गर्जना की ही चाह मोर को है, भ्रमर का पुष्प मधु से सम्बन्ध है, हिरण का मन वीणा की ध्वनि के साथ बंधा है । हे मित्र ! प्रीति की रीति ही यही है अर्थात् मेरा मन भी तुम्हारे साथ बंधा हुआ है ॥ २४ ॥

ताऊसवीनबन्ध दोहा.

कलाप्रवीण कुसुमावलि से कहती है कि—मुझे कामदेव ने रात दिन बाण मार मार कर मेरे शरीर की सब आन (कान्ति) को हर लिया है । मेरे मन में उन के बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता । इतने पर भी उन्होंने (सागर ने) हमारी खबर क्यों कर नहीं ली ? ॥ २५ ॥

नोटः—यह दोहा ताऊसवीनबन्ध, बीणाबन्ध, सितारबन्ध, दर्पणबन्ध, चक्रबन्ध, अष्टादश कमलबन्ध, द्वितीय अष्टादश कमलबन्ध, नवदलकमलबन्ध, हल्की अंडीबन्ध, मुष्टिकाबन्ध, हारबन्ध, मालाबन्ध, धनुषबन्ध, चामर-बन्ध, चौकीबन्ध, द्वितीय चामरबन्ध और खड्गबन्ध, त्रिपदीबन्ध और कपाटबन्ध जैसे चित्रों में लिखा गया है ।

गाहा.

कमलादिक चित्रों से युक्त कविताएं रच कर प्रवीण ने सागर के प्रति भेजीं, जिनसे युक्त प्रवीणसागर की यह ६४ वीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २६ ॥

सागरोक्त कमलादिक चित्रभेद वर्णन ॥ दोहा ॥

कमलादिक प्रवीण कृत; बांचे सागर चित्र ॥

पुनिबह प्रापबनायके; पठये कवित पवित्र ॥ १ ॥

शोडशदल कमल प्रबंध; हरिहर स्तुति ॥ कवित ॥

श्रियाके रमनहार, भवा अरथांगधार; रसआदिके उदार, रसशांत रससार ॥

नामअपके प्रजार, लेत दाम कष्टार; दाहे दनु देव बार, रिपुमन से संपार ॥ २ ॥

॥ तदंतरगत सौरदा ॥

श्रिया भवा रस रास, श्याम सेत सोहे बिपु ॥

बिया दिवा जस दास, नाम लेत दाहे रिपु ॥ ३ ॥

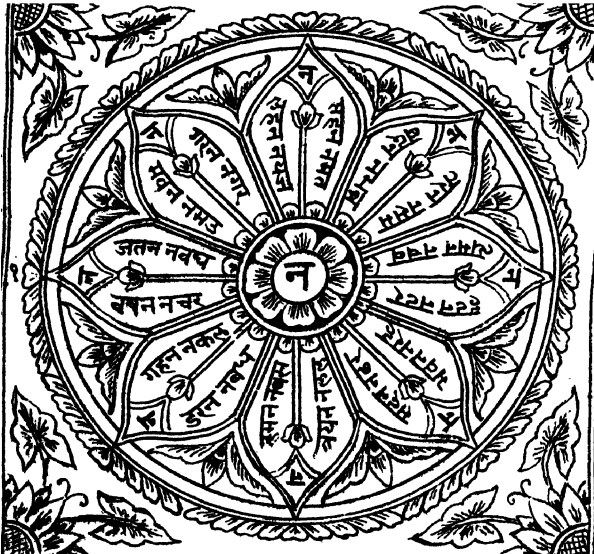
चित्र नम्बर ८५ ॥



॥ प्रष्टदल कमल प्रबंध एकस्वर ॥
ईश्वर स्वरूपवर्णन ॥ कवित्त ॥

नखतन नवधन नवधन नचरन, नगहन नकलन नडरन नबधन ॥
नसमन नबसन नत्रयन नरुन, नसदन नडरन नभवन नरहन ॥
नहटन नटरन नत्यमन नचवन, नतरन नसमन नबदन नभन्नन ॥
नसहन नमतन नरुहन नयजन, नगरन नगरन नभवन नमडन ॥ ४ ॥

चित्र नम्बर ८६

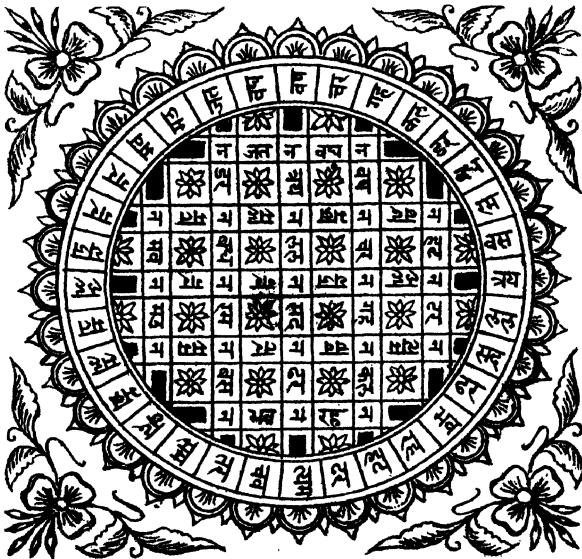


॥ वर्तुलाकार द्वादश खंड स्वस्तिक प्रबंध ॥

॥ वहकवित्त ॥

नजतन नवयन नवषन नचरन, नगहन नकरन नडरन नबधन ॥
 नरमन नबसन नत्रयन नरुहन, नसदन नडरन नमवन नरहन ॥
 नहटन नटरन नत्यमन नचवन, नतरन नसमन नबदन नभन्नन ॥
 नसहन नमतन नरुहन नयजन, नगरन नगरन नमवन नमउन ॥४॥

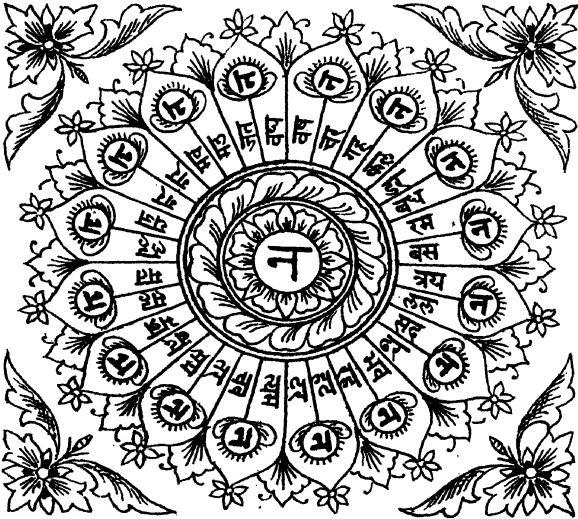
॥ चित्र नम्बर ८७ ॥



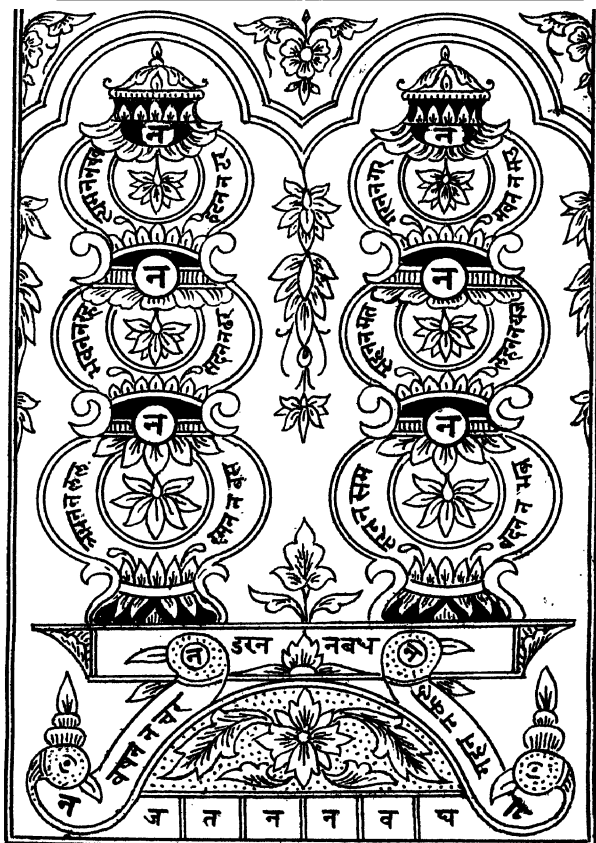
॥ शोडशदल कमलप्रबंध ॥ वह कवित ॥

नजतन नवष्यन नवषन नचरन, नगहन नकरुन नडरन नबधन ।
 नरमन नबसन नत्रयन नरुलन, नसदन नदरन नभवन नरहन ॥
 नहटन नटरन नत्यमन नचवन, नतरन नसमन नबदन नभन्नन ॥
 नसहन नमतन नरुहन नयजन, नगरन नगरन नमवन नमउन ॥५॥

चित्र नम्बर ८८



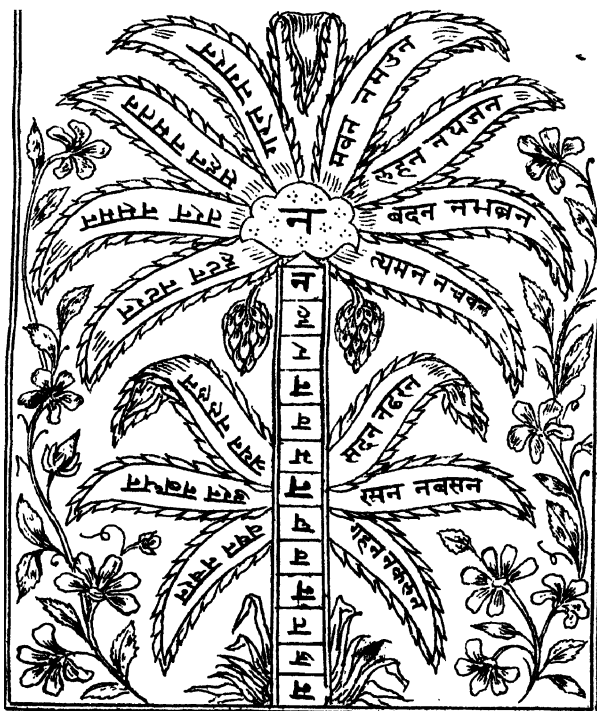
॥ जलागार प्रबंध, वह कवित ॥ चित्र नं० ८६ ॥



॥ वृक्षा प्रबंध भेद ॥ कवित्त ॥

नजतन नबषन नबषन नचरन, नगहन नक्कहन नडरन नबषन
नरुमन नबसन नत्रयन नरुहन, नसदन नडरन नभवन नरुहन ॥
नहूटन नटरन नत्यमन नचवन, नतरन नसमन नबदन नभजन ॥
नसहन नमतन नरुहन नयजन, नगरन नगरन नभवन नमडन ॥

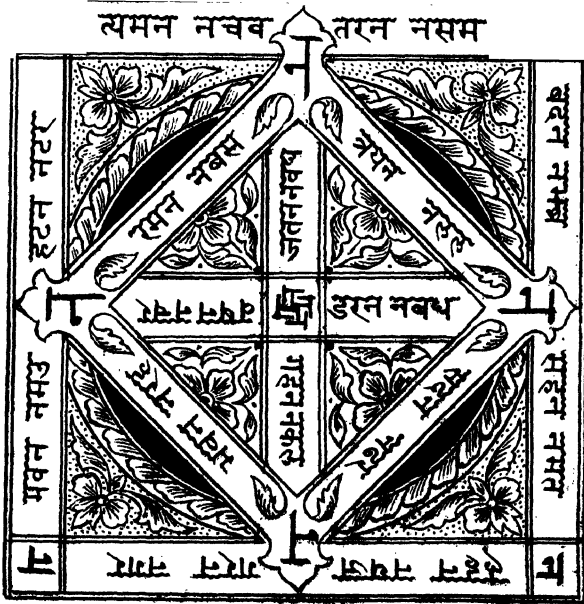
चित्र नम्बर ६०



॥ चौकी प्रबंध ॥ वह कवित ॥

नज्जतन नवषन नवषन नचरन, नगहन नकरुन नडरन नवधन ॥
 नरसन नबसन नत्रयन नरुन, नसदन नडरन नभवन नरहन ॥
 नहटन नटरन नत्यमन नचवन, नतरन नसमन नवदन नभन्नन ॥
 नसहन नमतन नरुहन नयजन, नगरन नगरन नमवन नमउन ॥४॥

चित्र नम्बर ६९



॥ सर्वतोभद्र प्रबन्ध, विष्णु स्तुतिः ॥ सर्वैया ॥

बारन ग्रायक, कट्टन श्रीपत, बेदन वारक, बंसहि ग्राहन ॥

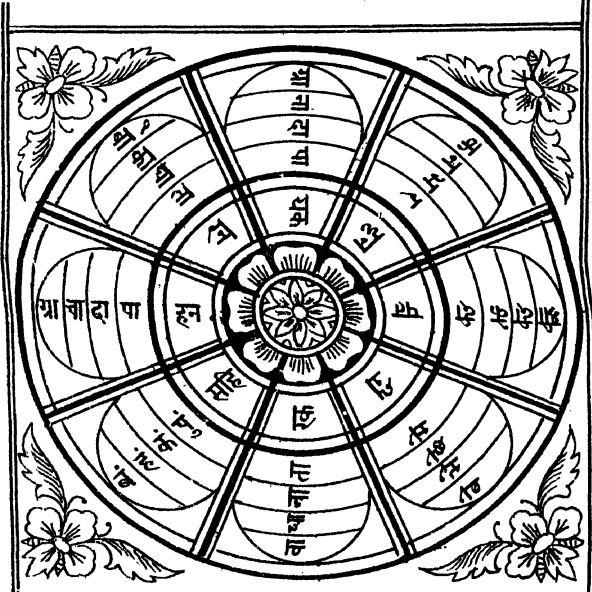
कारन नायक, नट्टन दीपत, भेदन धारक, हंसहि चाहन ॥

धारन दायक, भट्टन केपत, द्वेदन नारक, कंसहि दाहन ॥

तारन पायक, रट्टन दीपत, मेदन तारक, पुंसहि पाहन ॥

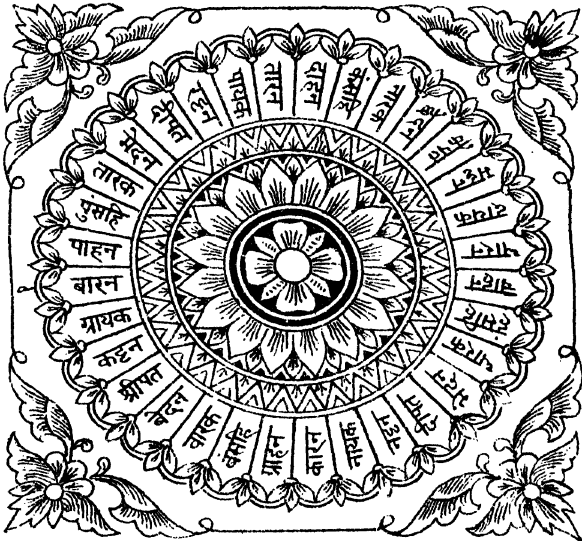
चित्र नम्बर ६२

॥ ५ ॥



॥ चक्राकृतिवर्तुलाकार बंधचित्र ॥ सर्वतोभद्र
सवैया ॥

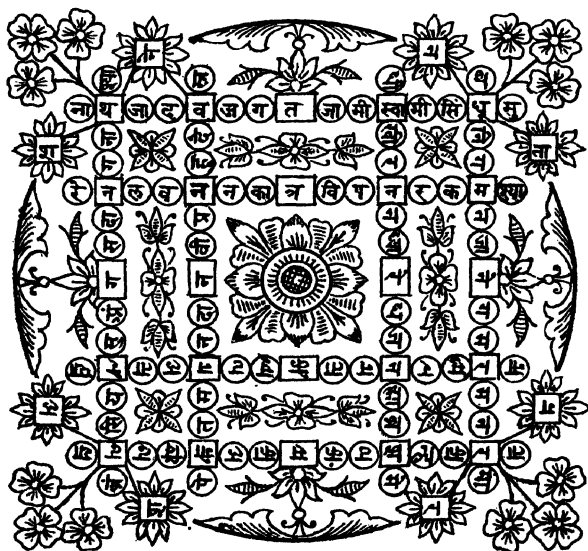
बारन ग्रायक कट्टन श्रीपत, बेदन वारक बंसहि ग्राहन ॥
कारन नायक नट्टन दीपत, भेदन धारक हंसहि चाहन ॥
धारन दायक भट्टन केपत, छेदन नारक कंसहि दाहन ॥
तारन पायक रट्टन दीपत, मेदन तारक पुंसहि पाहन ॥ ५ ॥
चित्र नम्बर ६३



॥ चौकी प्रबंध भेद चित्र ॥ कवित्त ॥

नवरु नरेशनाथ, जादव जगत जामी, स्वामी सिंधुसुता श्याम,
 करन पवित्रकान ॥ नरखी स्वाधीन बधू, निगम न जाने गम, रम-
 न रमा रमेश, ब्रह्मा न जपरे ध्यान ॥ नरसुर नागतार, कान्हशठ
 कंसकारु, गोविंद दयारु प्यारे, तारु नट चूके तान ॥ नमतगो-
 पेशब्रंद, सियरेसु अंगसदा, नगनाथ श्याने स्वव, देहुन प्रवीन
 दान ॥ ६ ॥

चित्र नम्बर ८४

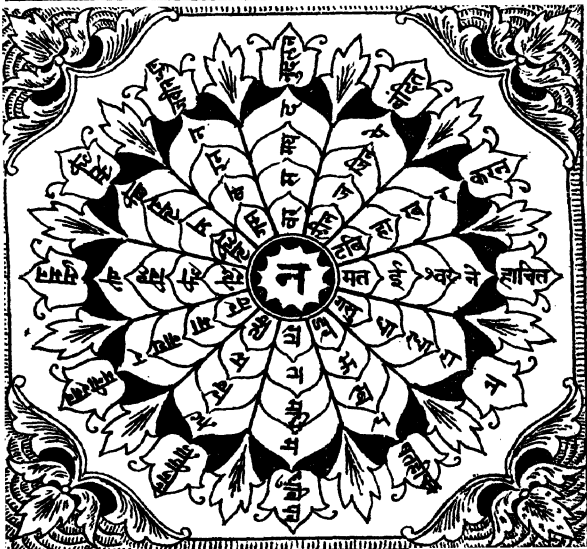


॥ कमलाकार पुष्पांतरे चक्राकृति भेद ॥ छपय ॥

नवरसमय दनुदरुन, नलीनज जिनपे बंदित ॥ नटविहार बरकरन,
नमत ईश्वर नेहाचित ॥ नगसुधार धारन, नडर भरबरषतही धन ॥
नरतत मधिगु बिपन, नकट सबरहे गोपीजन ॥ नव रमानाद्य
रमनी रमन, नरदेही निहचै सुमन ॥ नत्यही प्रत्य नबीसरही,
नगम बरन नजबीन धुन ॥ ७ ॥

॥ छपयांतर्गत चक्राकृति भेद ॥ सोरठा ॥

नसदन जपेनहार, नई नेन धार नभर ॥
नतमन सहे नमार, नही चेन मन्वीन बन ॥ ८ ॥ चि. ६५



॥मनिमाल चोसर प्रबंध॥ शक्तिबर्नन ॥ कवित्त ॥

नत तुंहि हिमा धारि, लायो तुमहि से चित ।

तरुनि हो प्रान रहो, मेरे नत तुम ध्यान ॥

नवहित शंकर हो, करहो सदा रमन ।

हरहिय प्रापे रागु, ग्रहन प्रनंत ग्यान ॥

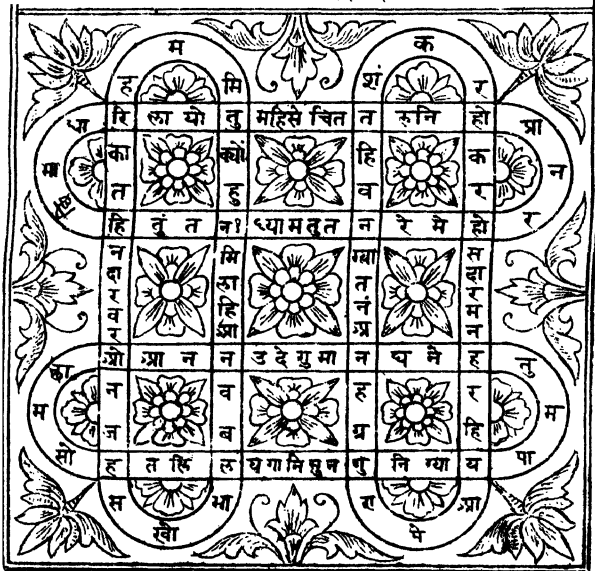
नपनेह तुम पाध, ग्यानि गुन मुनि गाय ।

रलित ह सोम द्वाप्रो, आनन उदे गुमान ॥

नवबल भारखो सह, जन प्रोर बरदान ।

हितकारि हम भिनु, क्यों हुन मिला हिप्रान ॥८॥

॥ चित्र नम्बर ८६ ॥



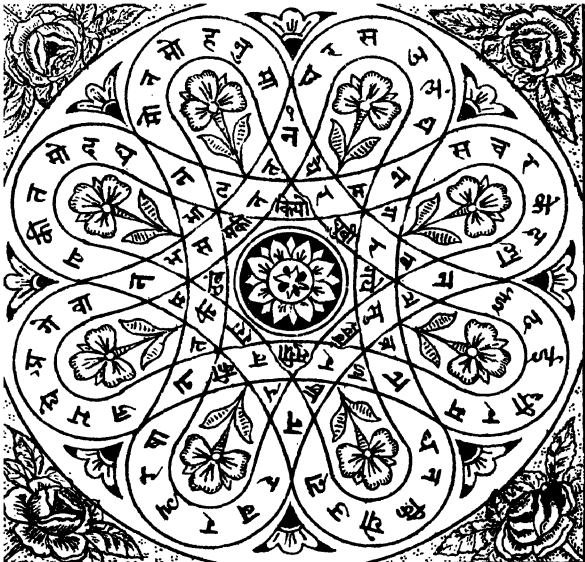
प्रवारासागर

रुहर ६५

॥ प्रष्टदरु उद्धीर प्रबंध चित्रभेद ॥ कवित्त ॥
॥ हनुमानस्तुतिः ॥

नये रघुबीर बन, नईदई धीर मन, नडर सुग्रीवकीन, नजभये
अग्रेवान ॥ नभसम कीनतन, नचरस उरुंषन, नगरगये सुन्नन, नथन
कियो उदान ॥ नखर रानीमन, नवकीत मोदधान, नटन कियो समन
नसचरके दहान ॥ नतसुख बरषान, नखर हरषान, नतनीठ बंसभा
न, नमो नमो हनुमान ॥ १० ॥

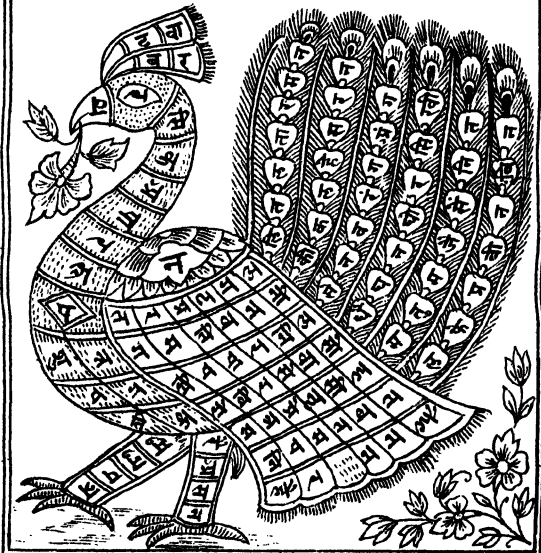
चित्र नम्बर ६७



॥ मयूरप्रबंध ॥ मयूर प्रतिउक्ति ॥ कवित् ॥

खरटवारवर, रसिक प्रपाररूप, पशुपतिसुनुपत्र, पन्नग करै
प्रसन ॥ पतग सिरोमनिहै, परमपवित्रपर, पनप्रतिपार प्रेम, नट-
वरसे नृतन ॥ नगननिवासी बन, नरुनीरुसोहतहै, ललित रुता
रमन, नीकी करुहे सरन ॥ रुसे नवरंग-ग्रंग, सोधै चनपोरसिखी,
हम तुम जैसें नित, तरुफे प्रवीन बिन ॥ ११ ॥

चित्र नम्बर ८८॥



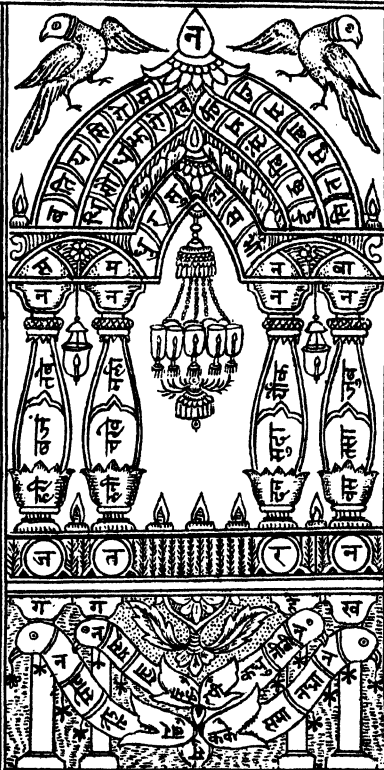
प्रवीणसागर

लहर ६५

॥गोरख प्रबन्धभेदचित्र॥ स्मृतिमानप्रहंकार॥

॥ कवित्त ॥ चित्र नम्बर ८६ ॥

॥कवित् ॥ सुबल जैसो तन, सुक के समान धान, सुकुमारता प्रसून, सुरपीक धुनी बीन ॥
नगनग है नखन, गजगत हे रखन, जहरी बजंत बेच, तरुनी चखे नलीन ॥

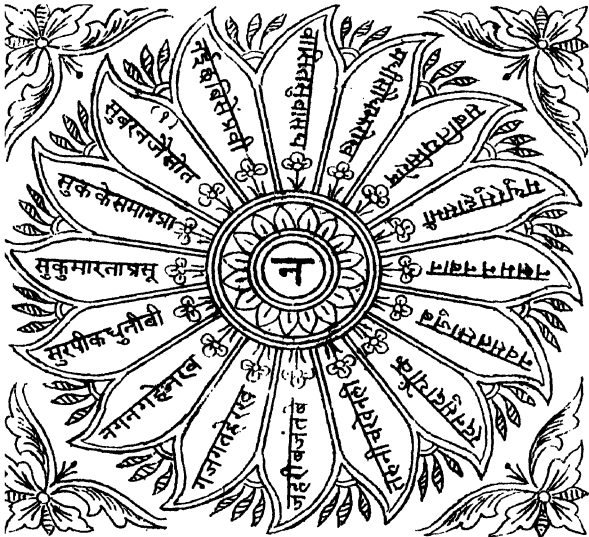


रहन् सुदार्यो कन, नवसत सज्जुबन, नस मन नबानन, मधुरसुहास भीन ॥
सबनियसिरोमन; मधीसौध भरोखन, वासित सुवासचन, नई कनिसे प्रवीन ॥१३॥

षोडशदल कमल प्रबंध ॥ वह कवित्त ॥

सुबरन जैसी तन, सुकके समान भ्रान, सुकुमारता प्रसून,
सुरपीक धुनी बीन ॥ नगन गहे नखन, गजगत हे रखन,
जहरी बजंत बेन, तरुनी चरवे नरीन ॥ रदन सुदार्यो कन,
नबसत साजुबन, नसमन नबानन, मधुर सुहास भीन ॥
सबतिय सिरोमन मन्धी सौध भरोरवन, वासित सुबासधन,
नई द्वबिसें प्रवीन ॥ १२ ॥

चित्र नम्बर १००



पुष्पवृक्षग्रहलताबन्धभेदचित्र ॥ सागरोक्तवसंतउपारंभ ॥
 ॥ कवित्त ॥ चित्र नम्बर १०१

कवित्त:- मदन तवारे तन, मधुमोदकारी तुम, मदन सरवारे नित, रुतातरु तुम भाम ॥
 मरुत संचारी ध्यान, पारीमग प्रेम नेम, मगन मुवासबर, रस सिंधुरग स्याम ॥



मधुर उवागजन, करहूतपत हम, मत नहि भजु आप, कंजबधुहरं हाम ॥
 मधुप मलीन मन, लहर लगावे भ्रम, मिलन विन प्रबीन, जुगवद जात जाम ॥ १३ ॥

प्रवीणसागर

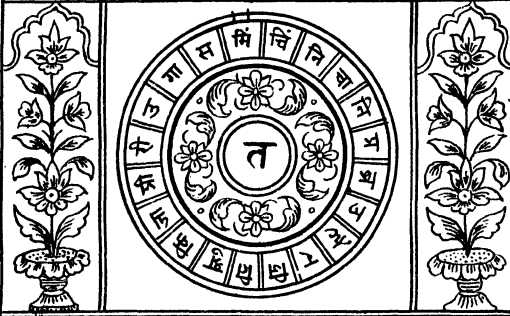
रुहर ६५

॥ चक्राकारचित्रसोरठा ॥

मितं चितं नितं चात, नितप्रतं ब्रतं उत हेत रत ॥

जितं तितं श्रुतं कितं जात, प्रीतरितं उतं गातं सत ॥ १४ ॥

चित्र नं० १०२

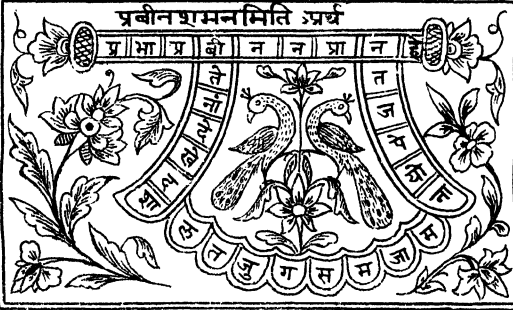


॥ पंखाबन्द दीहा ॥ सागरोक्त ॥

प्रभा प्रवीनन प्रानहे, नितजपयो नाम ॥

बीतनां देखे दशा, शारत जुगसम जाम ॥ १५ ॥

चित्र नं० १०३

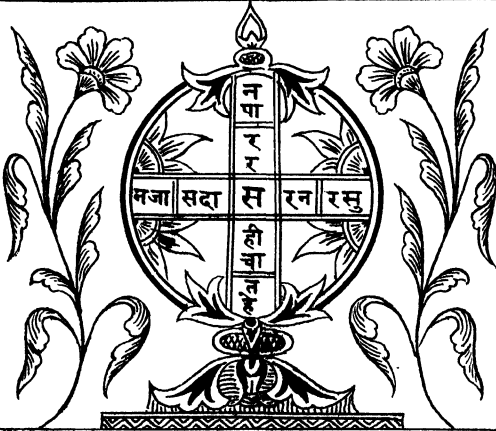


॥ अमृत कलश प्रबंध ॥

पूर्वार्ध उत्तरार्ध गुप्त ॥ दोहा ॥

न पार रसही चात हे, सुर नर सदा सजान ॥
सर रसदा चाही नरस, जानत हे रसुपान ॥ १६ ॥

चित्र नं० १०४



॥ सागरोक्त अश्वबंध चित्र ॥ इष्य ॥

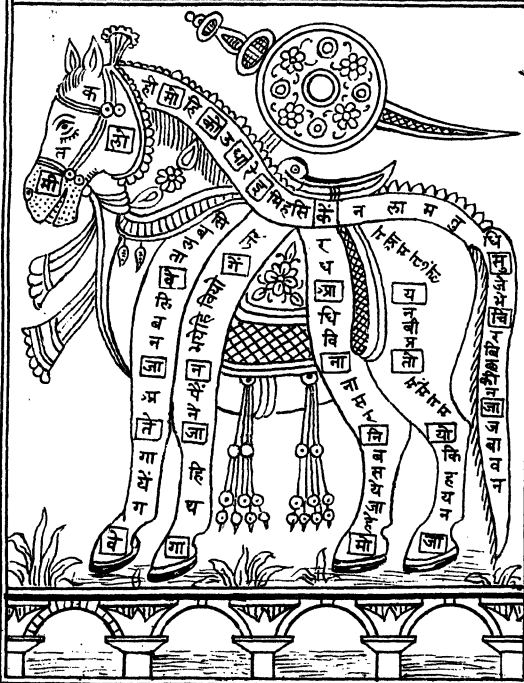
मीत होक ही मोहि, कौउ धारे इमिहसिकें,
बेगयें गाते अज्ञान, बलि वेताल बसिकें ॥
गायहि जाने पै न, भयेहि वियोगें जरकें,
मोहि जाये सब निरस, नाना विधि आभरकें ॥
जान यह कियो मनमें मतो, प्रवीन यहां तुम आनकें,
नवबाज जानकी इबिरि, भेजे सुधि तुम लानकें ॥ १७ ॥

॥ तदंतरगतदोहा ॥

मीलो मोकों धाईकें, वेगें-आय सुजान ॥

नातो चिते जानियो, जावेगा मोजान ॥ १८ ॥

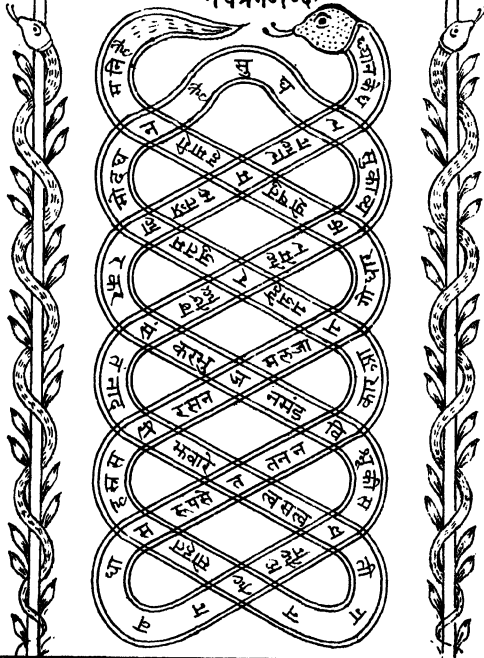
॥ चित्र नम्बर १०५ ॥



नागपाशबंध॥ शेषनारायण प्रति उपालंभ भेद ॥ ॥ कवित्त ॥

ध्यानके धरनहार, मरुत प्रहार कर, संकर भुजनमंड, विश्रुकी सयनहै ॥
लहे नवधा सरूप, सेततन नविकार, आनन जहेर जुत, महामोद धनहै ॥
सुघर सुकाव्यकर, मेहेर हृदे बसत, नादरी भवारे तत्व, सत्व यती गनहै ॥
सोहत सहस्रसरी, रसनज मलजान, गोधारक शेष तुम, हमारी नमनिहै ॥ १६ ॥

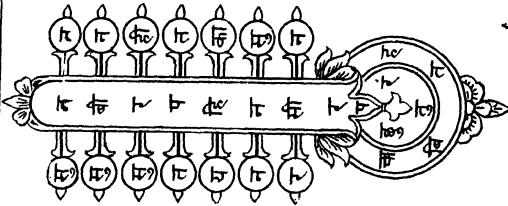
(चित्रनं० १०६)



॥ वीणा प्रबंध ॥ दोहा ॥

सुनत सुबीन सुरही तपत, यहि कानन सुरसीन ॥
रहत बिचार परंतु छुप, परसी नहि परबीन ॥ २० ॥

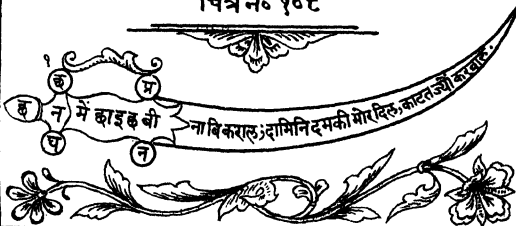
॥ चित्र नम्बर १०७ ॥



॥ खडग प्रबंध, दोहा ॥

छन छन घनमें छाड़ हबी, प्रबीन बिना बिकराल ॥
दामिनि दमकी मोर दिल, काटत ज्यों करवाल ॥ २१ ॥

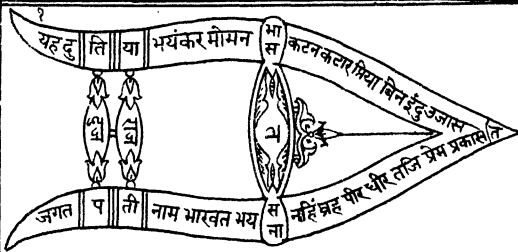
चित्र नं० १०८



॥ कटारप्रबंध ॥ गेला कंद ॥

यह दुतिया दुजराज, भयंकर मोमन भासत,
जगत पती जदुराज, नाम भारवत भय नासत,
नासत नहिं ब्रह्म पीर, धीर तजि प्रेम प्रकासत,
भासत कटन कटार, प्रिया बिन इंदु उजासत ॥२२॥

चित्र नम्बर १०६



॥ अश्व प्रबंध ॥ कृष्ण ॥

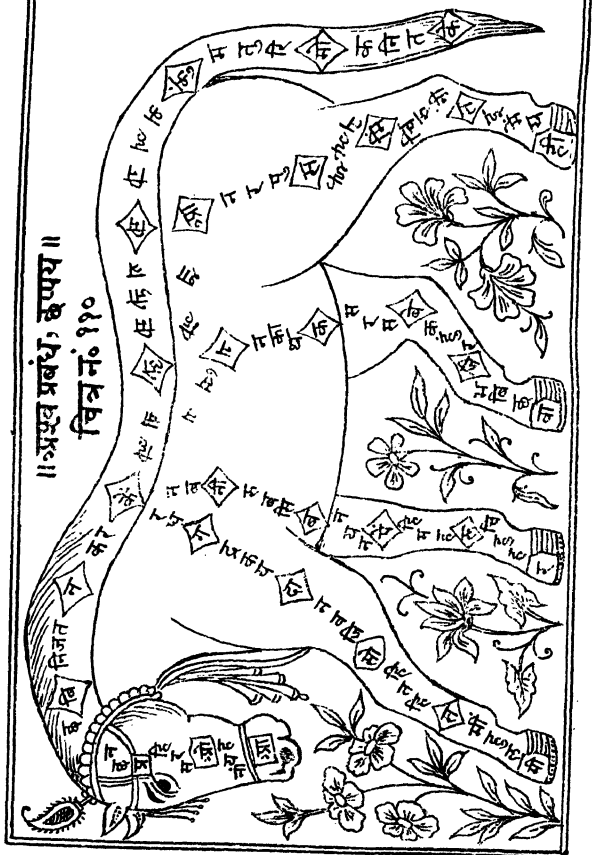
आना यह ओसर हि, प्रह्वन ह्वि निज तन करके ॥
मिलहु मीत हित हिसो, जिवन दायक द्रग धरके ॥
रहहु चिरु हम हिपे, नयन बसि बरुनी बनके ॥
वाह्वि भजि रहु कबे, सरस कथ कानन सुनके ॥
हियमें इतनी रुचि मीतहे, ईस पुरन आशाहिके ॥
केतनिक मोरि तुमकुं कहनि, मित्र जो मिलो चाहिके ॥ २३ ॥

॥ तदंतर्गत सोरठा ॥

आओ प्रवीन मीत, सोदागर रुपें बनी ॥
वाजी बैकन हीत, मिस आके मोकुं मिलो ॥२४॥

॥ प्रपुल प्रबंध, कृष्णय ॥

चित्र नं० ११०



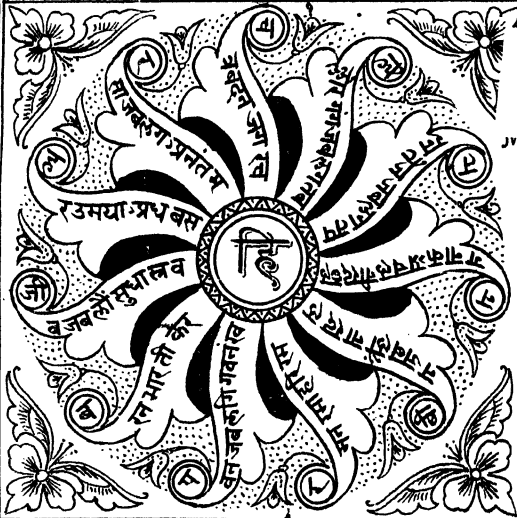
प्रवीणासागर

रुहर ६५

॥ प्रतिपद प्राचक्षरी अंततुक गुप्त, कमलप्रबंध ॥ छप्पय ॥

चित्र बदन जग रचहि, रसा जबलग अनंत गहि । हर उमया प्रथ
 बसहि, जीव जल्लौ सुधा स्रवहि ॥ बरन भारती करहि, पवन जब
 रुगि गवन रचहि । रमन रमा हरि रमहि, बीन जबलौ नारद रुहि ॥
 नग नाक अचल नीरद हलुहि, तरन तेज जबलग तपहि ।
 हिल्लोर गंग जबलग तबहि, चरह जीव परबीन तुहि ॥ २६ ॥

चित्र नम्बर ११२



॥ गाहा ॥ कमलादिक सागरकृत, चित्रकवित शुभ प्रवीनपे पठये ॥

पंच षष्ठि अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरे रुहर ॥ २७ ॥

६५ वीं लहर के पद्यों का अर्थ ।

दोहा.

प्रवीण के द्वारा रचित कमलादिक चित्रकाव्य सागर ने पढ़ा और फिर स्वयं पवित्र कविता बनाकर प्रवीण के पास भेजी ॥ १ ॥

पोडशदल-कमलप्रबंध-कवित्त.

सागर, हरिहर का स्मरण करता है । हरि लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाले हैं, और हर (महादेव) पार्वती को आर्द्रांग में धारण करनेवाले हैं । हरि आदिरस (शृंगार) के उदार भोक्ता हैं, और शंकर शान्तरस के राशिरूप में मग्न हैं । श्यामरूप विष्णु समुद्र के मथन करनेवाले हैं और श्वेतरूप शिव प्रेमादिक से खेल करनेवाले हैं । हरि के मस्तक पर सुन्दर मुकुट है, और शिवजी के मस्तक पर जटा-जूट का भार है । हरि (कृष्ण भगवान्) ब्रज गोपियों को प्रेम से तारने वाले हैं और भगवान् शंकर विभूति धारण किए हुए देवों के बन्दन योग्य हैं । हरि, यश के आगार हैं और शंकर दामों को सुख देनेवाले हैं । हरि का नाम पापों का नाश करने वाला है और शिव-नाम का जाप कष्टों को हटाने वाला है । हरि (भगवान् विष्णु) देवताओं का पक्ष लेकर दैत्यों का हनन करनेवाले हैं और भगवान् शंकर कामदेव को हनन करनेवाले हैं ॥ २ ॥

तदन्तर्गत सौरठा.

हरि और हर ये दोनों लक्ष्मीजी और पार्वतीजी को रम (प्रेम) के समुदाय हैं । एक का श्याम और दूसरे का शुभ्र शरीर शोभित है । एक की गोपिकाएं और दूसरे के देवगण दास हैं । इन दोनों का नाम-स्मरण हमारे विरहरूपी शत्रु का नाश करेगा ॥ ३ ॥

नोट:—यह सौरठा गोमूत्रिका, अश्वगतिबन्ध, त्रिपदी तथा कपाटबन्ध में भी लिखा जा सकता है । (शोधक-वर्धक—ग० ज० शास्त्री)

अष्टदल-कमलप्रबंध-कवित्त.

सागर अपने आपको कहता है कि जगत्कर्ता का अपना शरीर नवीन वर्षा की भांति है, जिसमें द्वेष भाव नहीं है, वह अचल है, ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है, अथवा उसके हाथ नहीं है, उसे प्रभुता से कोई प्राप्त कर सके ऐसा नहीं है। उसे किसी का डर नहीं है। कोई बन्धन नहीं है और सब पुरुषों के मन में आसके ऐसा नहीं है-अर्थात् भक्तों के ही मन में आते हैं, उसको जन्म, जरा और मृत्यु अथवा बाल, यौवन और वृद्धावस्था नहीं है। वह किसी का लाल (पुत्र) नहीं और वह कहीं एक स्थान पर घर करके नहीं रहता अर्थात् एकदेशी नहीं है। वह स्वयं न ह्रता है ! न चलता है ! परन्तु नित्य प्राणियों के मन को नचाता है। वह तरलरूप नहीं तथा पुष्परूप भी नहीं, कथन में आने योग्य नहीं (अनिर्वचनीय है), चिदाकाश रूप है। उसे सुख दुःख आदि सहन नहीं करना पड़ता, उसे कोई मतभेद नहीं। वह किसी के पाम से कुछ लेना नहीं चाहता अर्थात् पूर्णकाम है। उसका कोई गुरु नहीं, वह वाणी के वर्णन में नहीं आ सकता और सदा नमस्कार के योग्य है, इसलिए हे जीव ! तू उसे नमस्कार कर ॥ ४ ॥

नोट:—यह कवित्त अष्टदलकमलप्रबन्ध, वर्तुलाकारद्वादशाखंडस्वस्तिक प्रबन्ध पौण्डशदलकमलप्रबन्ध, जलागारप्रबन्ध, वृक्षप्रबन्ध तथा चौकीप्रबन्ध में लिखा गया है। (ग० ज० शास्त्री)

सर्वतोभद्रप्रबंध-सवैया.

सागर कहता है कि हे लक्ष्मीपाति ! गजेन्द्र को ग्रहण करनेवाले, भूट को काटने वाले, वेदनाओं के विनाशक, बांसुरी के धारण करने वाले, सर्व कारणों के अप्रसर, नटों में दीप्तिमान् अर्थात् नट नागर, सर्व भेद के धारण करनेवाले, परमहंसों के चाहनेवाले, धीरज देनेवाले, सुभटों के स्वामी, नरक के दुःख छेदन करनेवाले, कंस के मारने वाले, सेवक को तारने वाले, जिसका भजन दीप्तिमान् है ऐसे, तथा पृथ्वी को तारने वाले, पुरुषों और पत्थरों को भी तारनेवाले विष्णु भगवान् ! आपका मैं स्मरण करता हूं ॥ ५ ॥

नोट:—यह सवैया सर्वतोभद्रप्रबन्ध और चक्राकृतिवर्तुलाकारप्रबन्ध में लिखा गया है। (ग० ज० शास्त्री)

चौकीप्रबंध-कवित्त.

सागर कहता है कि आप नवीन राजाधिराज अर्थात् द्वारिका में नवीन राज्य स्थापन करनेवाले, यादव जगन् में रहनेवाले, सिन्धुसुता लक्ष्मी के स्वामी ऐसे हे कृष्ण भगवान् ! आपके चरित्र का श्रवण कानों को पवित्र करने वाला है । जिसके पास स्वाधीन-पतिका रूप (नायिका) रुक्मिणी देखी जाती है, तथा जिसकी गति का पार वेद नहीं पा सकता, ऐसे लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाले लक्ष्मीपति ! ब्रह्मा आपका ध्यान करते रहते हैं । मनुष्य, देव और नाग को तारने वाले, शठ कंस के कालरूप कृष्ण, गोविन्द, दयानु प्यारे ! गान में ताल न चूकने वाले, गोपश्रेष्ठ, नन्द सुनन्दादिक वृन्द के पूज्य, निरंतर शतिल अंग वाले हे गोवर्द्धननाथ ! आप सब बातों में चतुर हो, फिर भी मुझे प्रवीण का दान क्यों नहीं देते ? ॥ ६ ॥

कमलाकार-पुष्पांतरे-चक्राकृति-छप्पय.

सागर कहता है कि हे मन ! शृंगार आदिक नवरस से युक्त, दैत्य के दमन करनेवाले, कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जिसकी वन्दना करते हैं, नरों में विहार करनेवाले जिमको शंकर भगवान् चित्त में स्नेह धारण कर नमन करते हैं, जिमने विपुल वर्षा के समय गोवर्द्धन पर्वत धारण कर वर्षा की धारा से निर्भय रहकर मधुवन में नृत्य किया, और सब गोपीजन जिसके पास रहे, ऐसे लक्ष्मी-नाथ स्त्रियों के साथ रमण करनेवाले नर देहरूप भगवान् कृष्ण को तु कभी भूल मत । उस प्रभु ने अपने वेणु की ध्वनि में वेदगान किया है ॥ ७ ॥

छप्पयान्तर्गत-चक्राकृति-सोरठा.

रात-दिन प्रतीक्षा करते हुए नाम जपते हैं, नेत्रों से जलधारा चलती रहती है । मन नित्य काम की पीड़ा सहन नहीं कर सकता । प्रवीण के बिना चैन नहीं पड़ता ॥ ८ ॥

मणिमाल-चौसरप्रबंध-कवित्त.

सागर कहता है कि हे देवि ! तुम नित्य क्षमा धारण करने वाली हो, मैंने तुमसे

चित्त जोड़ा है। तुम सदा तरुणी हो, मेरे प्राणों में तुम्हारा नित्य ध्यान रहे। तुम शंकर के नवीन स्नेह से युक्त हो और सदा उनके साथ रमण करती हो, तुम अपने हृदय में शिवजी के प्रति स्नेह रखती हो और अनन्त ज्ञान ग्रहण करती हो। तुमने स्नेह का निधान (भंडार) प्राप्त किया है और ज्ञानी मुनिजन तुम्हारा गुण गान करते हैं। तुम्हारे सुन्दर चन्द्रमुख ने चन्द्रोदय के अभिमान को ढांक दिया है। निर्भय जनों को निश्चित वरदान देती हो, इतना दांते हुए हमारे हितकारी मित्र (प्रवीण) से क्यों मिलती नहीं ? ॥ ९ ॥

अष्टदल-उल्लारप्रबंध—कवित्त.

सागर कहता है कि हे हनुमानजी ! तुमने नवीन रघुनाथजी को नवीन वन में नवीन धैर्य प्रदान किया, सुग्रीव को निर्भय किया और आप आगे होकर आकाश की भांति अपना शरीर धरके समुद्र पार किया और स्वर्णपुरी लंका में जाकर रावण के वाग का विनाश किया और महाराज राम की महाराणी सीता के मन में नवीन आनन्द की वर्षा की। नट की भांति उस लंका में रमण करके राज्ञसों को भस्म किया। नित्य सुख देकर महाराज रामचन्द्र को हर्षित करनेवाले, सूर्यवंशी के समीप रहनेवाले हे हनुमानजी ! मैं आपको बार २ नमन करता हूँ ॥ १० ॥

मयूरप्रबंध—कवित्त.

सागर एक मोर को देखकर कहता है कि हे सुन्दर स्वर के उच्चारण करने वाले ! तुम्हारा रूप अपार है, तुम शंकर के पुत्र कार्तिकस्वामी के वाहन हो, सर्प के भक्षण करनेवाले हो, पक्षियों में शिरोमणि हो, तुम परम पवित्र (वर्षा) के ऊपर प्रेम की प्रतिज्ञा पालन करते हो, नटवर की भांति नाचते हो, पर्वतों और वनों में रहते हो, तुम्हारा गला नील रंग से शोभित है, सुन्दर लताओं में रमण करते हो, तुम्हारे मस्तक पर सुन्दर कलंगी है, तुम्हारा अंग नव-रंग से युक्त शोभित है। तुम जिस प्रकार वर्षा की गर्जना को दूँढते हो उसी प्रकार हम भी तुम्हारी ही भांति प्रवीण के बिना नित्य तड़फते हैं ॥ ११ ॥

गोख-प्रबंध-कवित्त.

सागर, जब प्रवीण भरोखे में दिखाई पड़ी थी उस समय का उसका स्मरण करता है, वह इस प्रकार है कि !! जिसका शरीर खरों के समान है, शुकुतुंड की भांति नासिका है, पुष्प की भांति कोमलता, कोयल तथा वीणा की ध्वनि के समान स्वर, पर्वत में उत्पन्न हीरे की भांति नख की कान्ति, गजगामिनी, तथा जिसके भ्रांभन वीणा की ध्वनि करते हैं, नेत्र, कमल के समान हैं, दंतपंक्ति दाडिम की भांति, सोलह शृंगार से युक्त है, मुख पर नाक की काली मणि है, मधुर हास्य से युक्त सर्व स्त्रियों में शिरोमणि है । हवेली के भरोखे में कपूर की सुगंध लगाकर नवीन शोभा में युक्त प्रवीण विराजमान है । आहा... ॥ १२ ॥

नोटः—यह कवित्त गोखप्रबंध तथा षोडशदलकमलप्रबन्ध में लिखा गया है ।

(ग० ज० शास्त्री)

पुष्पवृक्षगृहलताबंध-कवित्त.

कामदेव का अंग में डाले हुए हे वसंत ! तुम हर्ष देनेवाले हो और कामदेव के मित्र हो तथा वृक्ष और लताएं तुम्हारे घर हैं । वायु के साथ फिर कर और प्रेमपंथ के नियम का ध्यान धर कर सुन्दर सुगंध मार्ग में फैलाते हो । तुम रस के समुद्र हो, श्याम रंग, कोयल के रूप में मधुर उच्चारण करके हमें तपाने वाले हो, यदि तुम ऐसा न करो तो मैं आपको भक्त नहीं बल्कि सुघर मानूंगा । तुम कमलवन्धु चन्द्रमा के भ्रम को हरण करनेवाले हो, जिस पर लोभित होकर मलिन भ्रमर गुंजार करते हैं । ऐसे में प्रवीण में मिलेबिना जो एक प्रहर जाता है वह मुझे युग के समान बीतता है ॥ १३ ॥

चक्राकारचित्र-सोरठा.

चित्त हमेशा भिन्न का चाहता है ! और इस कारण चित्त की सुरत निरंतर वहीं लगी रहती है । हे कान ! तू इधर उधर क्यों जाता है ? सब शरीर की वृत्ति वहीं रहे, वही प्रीति की सबी रीति कही जाती है ॥ १४ ॥

नोटः—यह सोरठा धनुषबन्ध, नराकार, चक्रबन्ध, कपाटबन्ध, गोमूत्रिका, अश्वगति और त्रिपदी में भी लिखा जा सकता है । (ग० ज० शास्त्री)

पंखाबद्ध-दोहा.

कलाप्रवीण की शोभा, शोभा नहीं परन्तु मेरा प्राण है, इस प्रकार हमेशा नाम जपता है । कलाप्रवीण के न देखने से उसकी (सागर की) दशा ऐसी बीतती है कि एक प्रहर युग के समान जाता है ॥ १५ ॥

अमृतकलशश्रवन्ध-दोहा.

सागर कहता है कि हँ सुजान ! अज्ञात ऐमे देव व मनुष्य तो अमृत रस चाहते हैं, परन्तु सर्वोपरि रस की देनेवाली स्त्री को चाहने वाले तो अमृतै-रस को नीरस मानते हैं ॥ १६ ॥

अश्वबन्ध-छापय.

हे मित्र ! कितने ही लोग मन में हंसते हुए ऐसा समझते हैं कि—सागर के शरीर में कोई पिशाच बैठ गया है ! जिससे यह बेभान हो गया है, परन्तु यह कोई नहीं जानता कि—वियोग से यह दशा हुई है । पृथ्वी पर के सब पदार्थ मेरे लिए नीरस हो गये हैं । हे प्रवीण ! तुम्हें यहां ले आने के विचार से यह नवीन घोड़े का वाहनरूपी चित्र बनाकर स्मृति दिलाने को भेज रहा हूँ । तुम घोड़े पर बैठ कर एक दम यहां आओ ॥ १७ ॥

तदन्तर्गत-दोहा.

हे प्रवीण ! जल्दी दौड़कर मुझमें आ मिलो, नहीं तो समझ लेना कि मेरे प्राण चले जावेंगे ॥ १८ ॥

नागपाशबन्ध-कवित्त.

ध्यान धरने वाले, वायु का आहार करनेवाले, शिवजी के हाथ के भूषण, विष्णु की शय्या, नवधाभक्ति के उपासक, श्वेत शरीर वाले, विकाररहित, विष-युक्त मुग्ध वाले, अत्यानन्द के समूह, सुघड़ काव्य करनेवाले, मन में दया वाले, ध्यान धरने वालों पर रीझने वाले, सात्विक-विश्राम के समूहरूप, अथवा योगी

जन जिसे सात्त्विक तत्व वाला गिनते हैं ऐसे, सहस्र मस्तक वाले तथा प्रत्येक में द्विजिह्वा रखनेवाले, और पृथ्वी को धारण करनेवाले हे शेष नारायण ! आपने हमारी विनय नहीं सुनी ॥ १६ ॥

वीणाप्रबन्ध-दोहा.

सुन्दर वीणा के स्वर सुनकर मेरे कान तृप्त होते हैं, पर वे स्वर सरस नहीं लगते !! विचार यही रहता है कि अरे रेरे ! प्रवीण का स्पर्श नहीं हुआ ॥ २० ॥

खड्गप्रबन्ध-दोहा.

क्षण २ में बिजली की कान्ति वर्षाश्रुतु में फैल रही है, वह प्रवीण के बिना मुझे भयंकर प्रतीत होती है । वह चमक कर मेरे हृदय पर तलवार जैसा घाव करती है ॥ २१ ॥

कटारप्रबन्ध-रोला.

यह द्वितीया का चन्द्रमा मेरे मन को भयंकर भासता है । जगत् के पति उडुराज, जिनका नाम लेने से भय का नाश हो जाता है, मेरे विरह की पीड़ा नहीं नसाते हैं । धैर्य छूटने से प्रेम का प्रकाश होता है, यह जो चन्द्रमा प्रकाश करता है, वह तो मेरे मन को छेदन करनेवाला प्रतीत होता है ॥ २२ ॥

अश्वप्रबन्ध-छप्पय.

हे प्रवीण ! तुम अपने शरीर की छवि को गुप्त करके अर्थात् वेश बदल कर इस अवसर पर यहां आओ, और हे मित्र ! जीवन देनेवाली दृष्टि धारण कर प्रेम से आकर मिलो । मेरे नेत्रों के समीप पलक बनकर चिरकाल तक रहो । तुम्हारी रसभरी बातें कानों से कब सुनूंगा, तुम्हारी छवि कब देखूंगा ? हे मित्र ! मेरे हृदय में इतनी ही रुचि है, परन्तु इस आशा का पूर्ण करनेवाला ईश्वर है । आप प्रेमपूर्वक मिलो तो कितनी ही बातें तुम से कहने की हैं ॥ २३ ॥

तदन्तर्गत-सोरठा.

हे प्रवीण मित्र ! सौदागरूप में तुम आओ और घोड़ा बेचने के मिस से आकर मिलो ॥ २४ ॥

पताकाबन्ध-कवित्त.

सागर कहता है कि प्रवीण कैसी है कि मानो कामदेव की दूसरी रति है । ऐसी सुजान स्त्री बनी है कि इस नरलोक में किसी स्त्री की छवि वैसी नहीं है । देव की दुनियां में अर्थात् स्वर्गलोक में अनेक देवियां दिखाई पड़ती हैं परन्तु उनकी छवि प्रवीण की लेशमात्र शोभा नहीं ले सकती । जैसे शंकर के मस्तक पर गंगा शोभित है, और सेना के मस्तक पर ध्वजा शोभा पानी है उसी प्रकार सर्व रानियों के ऊपर उसका तेज जाना जाता है । उसकी बाग़ी सर्वोपरि शोभित है और वह प्रेम के रंग में रंगी हुई है अथवा प्रेमी में रम-वश है, ऐसी प्रवीण की बाग़ी कब प्राप्त होगी ॥ २५ ॥

अंततुकगुप्त-कमलप्रबन्ध-छप्पय.

इस कमलप्रबन्ध छप्पय में सागर ने प्रवीण का आशीर्वाचन लिख कर भेजे, इस पद्य का अर्थ अट्टाईसवीं लहर में छन्द संग्रह १४ में देखिए ॥ २६ ॥

गाथा

कमलप्रबन्ध आदिक सारी चित्र-कविता रचकर सागर ने प्रवीण के पास भेजी, इस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की पैसठवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २७ ॥

भा० का० ग० ज० शास्त्री



६६ वीं लहर

दंपति-उक्त श्लेषभेद-दोहा.

दंपति प्रेम विशेष बढ़ि, सागर कलाप्रवीन ।

श्लेष भेद विस्तार करि, कीनी काव्य नवीन ॥ १ ॥

सागर और कलाप्रवीण दोनों दम्पति में परस्पर विशेष प्रेम बढ़ने में दोनों ने अनेकार्थयुक्त श्लेष-काव्य की रचना की, उसका अब वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

कलाप्रवीणोक्त अभिन्नपद श्लेषालंकार-सवैया.

मेदनि तीरनसे अवगाहत, मक्कनिकेत जुहुं हेत रता ।

आयत व्यूढ तरंग सदागति, नेति निरङ्गुर नंगरता ॥

मोद बढ़ावत है मन साधन, होत नहीं छिनही थरता ।

आन जुरी सु परी न जुदी फिर, सागर सागरमें सरता ॥ २ ॥

प्रवीण कहती है कि—पृथ्वी के किनारों से बहती हुई सरिता समुद्र में प्रवेश करती है और मक्कनिकेतन अर्थात् मगरमच्छ के रहने के स्थानरूप समुद्र के साथ प्रेमपूर्वक आसक्त होती है । निरंतर गतिवाली बड़े तरंगों के साथ आती है और उस की गति कभी न रुकने वाली अपार है । वह नदी साधु जन के मन को आनन्द देने वाली और क्षण भर भी स्थिर न रहने वाली है । हे सागर ! वह इस प्रकार जाकर सागर में जा मिलती है और फिर कभी पृथक् नहीं हो सकती ।

द्वितीय अर्थ—प्रवीण कहती है कि—हे सागर ! मेरा ध्यान मक्कनिकेतन अर्थात् सागर जिस का नाम है उस में लगा है । मेरा भेद अर्थात् मांस शरीररूपी पिंड में से निकल कर तीर की ओर प्रवेश करता है और तुम्हारे प्रेम से आसक्त होता है । सदागति अर्थात् त्रिविध पवन के विस्तार वाली लहरें आती हैं, जिससे मेरी आंखों से भरना बहता है, उस की गति अविरल है । सिद्ध के बताए हुए साधन को करती हूं उससे आनन्द होता है, परन्तु मन में क्षणमात्र भी

स्थिरता नहीं होती । हे सागर ! मेरा ध्यान जो तुम से जुड़ गया है वह कभी प्रथक् नहीं हो सकता ॥ २ ॥

नोटः—यह अभिन्न-पद श्लेषालंकार है, क्योंकि इसके पद तथा अक्षरों को बिना तोड़े-मोड़े दो अर्थ निकलते हैं । इसमें प्रथम अर्थ समुद्र और नदी-परक तथा दूसरा प्रवीण और सागर-परक है । इसी प्रकार आगे भी जानें ।

(ग० ज० शास्त्री)

अभिन्नपद-श्लेषालंकार—सवैया.

चातुक दहर मोर सखीनहु, कोकहि हंसनकों उरभावन ।
धीर समीर हरे गिर भंगर, कुंज लता सु कुमोद बढ़ावन ॥
ताल सरीत लहेर लगावत, खैंच धनंष छटा चमकावन ।
सागर ज्युं बहरे सिंगरे सुख, आज घटा नवरंगहि आवन (आवन) ॥२॥

प्रवीण कहती है कि—पपीहा, दादुर और मोर शोर करके चकवा-चकवी तथा हंस को उलभाते हैं । धीमी गति से पवन चलता है, पर्वत तथा वन हरित-वर्ण हो रहे हैं और कुंज की लताओं तथा कुमोदिनी को हर्षित करते हैं । तालाबों तथा नदियों में लहरें उठती हैं, आकाश में इन्द्र-धनुष खिंच कर बिजली चमकाता है । हे सागर ! यह सब सुख देनेवाले नये रंग के आवण की घटा चढ़ आई है ।

द्वितीय अर्थ—ये मेरी सखियां पपीहा और दादुर की भांति शोर करती हैं, और मेरे हंस अर्थात् जीव को कोकशास्त्र की कला सुभाती हैं । पवन, पर्वत और वन मेरे धीरज को हर लेते हैं । कुंज की लताएं मुझे कुमोद अर्थात् कुस्तिन-गोद (क्लेश) को बढ़ाती हैं । गाने के ताल सर्प की लहर के समान लगते हैं और यह खिंचा हुआ इन्द्र-धनुष तथा बिजली मुझे चमकाते हैं । हे सागर ! यह नवीन रंग की घटा वर्षने लगी है अर्थात् आँसुओं की वर्षा हो रही है, उसके साथ ही मेरे सारे सुख बह गये हैं ॥ ३ ॥

अभिन्नपद श्लेष—ऋषित्त.

जागत पतंग जोत, सरस सुठार छुटे, चंदन न सोहियत, घननके

आडंबर । अंबर न ठोर ठोर, कज्जरन छये रंग, दीश दीश देखियत, अंब-
कन लागी भर । वषु लाय हरी प्रभा, सोधत सयाने पंथ, चातुक रते ज्यु
सुर, मोर गाये गीरपर । मारुत अकाल किया, बादत न सामे मैन, वीरही
न हंस देखो, सागर भरेहे सर ॥ ४ ॥

प्रवीण कहती है कि-चौमामा आने से जुगुनू की ज्योति जग रही है,
पानी की धारा छूट रही है । बादलों के आडम्बर से चन्द्र की ज्योति शोभित नहीं
है । आकाश में स्थान २ पर काजल का रंग छाया हुआ है और जिधर देखें
उधर ही जलधारायें भरती दीखती हैं । पृथ्वी हरे रंग की कान्ति धारण किए हुये है,
जिससे चतुर लोगों को भी मार्ग ढूँढना पड़ता है । चातक ने रट लगा रखी
है और पर्वतों पर मोर का शोर है । पवन इस समय मैनाक पर्वत की ओर—
अर्थात् दक्षिण समुद्र में जिधर मैनाक पर्वत छिपा है उधर—जाकर ईशान की
ही ओर चलता है । हे सागर ! तालाब भरा हुआ है, परन्तु वियोगी हंस नहीं
दीखता अर्थात् मानमरोवर की ओर चला गया है ।

द्वितीय अर्थ—सूर्य का प्रकाश उदित हुआ है सो मानो मेरे माथे पर
मदमस्त हाथी छुटा है । चन्दन और कपूर का लेप मुझे सोहता नहीं । मेरे वस्त्रों
में जगह २ आंख के काजल का रंग लग रहा है । इधर उधर देखती हूँ तो
आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी रहती है । मेरे शरीर की कान्ति हरताल की
भांति पीली पड़ गई है । मेरे आस-पास के सुहृद्-जन मुझे सुख पहुंचाने का
मार्ग ढूँढते हैं । पपीहा जिस प्रकार 'पीव पीव' रटता है वैसे ही मैं भी 'पीव
पीव' की रट लगाती हूँ, मेरी बाणी मंद हो जाती है । त्रिविध पवन मुझे
अनमना कर देती है, और रात्रि में काम बढ़ता है । हे सागर ! तुम आकर
देखो !! यह मेरा जीव विरह के बाणों से बिंधा हुआ है ॥ ४ ॥

पुनः अभिन्नपद श्लेषभेद—सवैया.

शोधत बोध सरूप अहो निश, वेदन भेद विंतीथ विनाशन ।

नीत अनीत बिचारत धारत, शासन संकट शिष्ट प्रकाशन ॥

ब्रह्म विवेक सबे बिस्तारत, साज विकास अनेक उपासन ।

सागर ज्युं मन ब्रह्म भयो रहे, रावरे पाय सरोज निवासन ॥ ५ ॥

प्रवीण कहती है कि—महायोगेश्वर ज्ञान से रात-दिन आत्मस्वरूप का चिंतन करते हैं और वे अतिथिगण अनशन करके वेद के भेद की खोज करते हैं । क्या वस्तु नित्य है, क्या अनित्य है, इसका विचार और निर्धारण करते हैं और महात्माओं ने जो आज्ञा प्रकाशित की है उसका पालन कष्ट उठाकर करते हैं । ओंकार आदि अक्षरों का विवेक से विस्तार करते हैं, तथा अनेक प्रकार से उपासना का प्रकाश करते हैं । हे सागर ! उनका मन ब्रह्म के रूप में विलीन हो कर प्रभु के चरण-कमल में निवास करता है ।

द्वितीय अर्थ—प्रवीण कहती है कि—मेरी वेदना का भेद जो अनियमित है उसको नाश करने के लिये मेरा मन सिद्ध के उपदेश की भांति तुम्हारे स्वरूप का रात-दिन शोध करता है । क्या करना उचित और क्या करना अनुचित है ? इसका विचार और निर्धारण करता है । आप्तजन जो आज्ञा देते हैं उससे मन को संकट होता है । तुम्हारे शरीर की कान्ति का विस्तृत विवेचन करता है और सिद्ध की बताई हुई उपासना की अनेक सामग्री रखता है । इस प्रकार हे सागर ! मेरा मन तुम्हारे चरणकमल में ब्रह्मा-रूप होकर निवास करना चाहता है अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मा कमल में निवास करते हैं उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे चरणकमल में रहना चाहता है ॥ ५ ॥

सप्तार्थ श्लेषभेद-कवित्त.

सकल भरेहे रस, पूरन सदाहि रहे, जुतही तरंगन स,मीप शब्द गहरे ।
अगन डुबावन हे, पावन प्रसिद्ध जग, मनही मिलावन भ्र,जादहीपै ठहरे ।
प्रथुल प्रमान कोउ, पारहु न पावतहे, रमनीय रूप जाको, हेर हीय हहरे ।
सुरराज-सभा शंभु, सरसति श्रीपती हे, सागर सधन किधौ, सिंधु-
हुकी लहरे ॥ ६ ॥

इस कवित्त के इन्द्रसभा, शंभू, सरस्वती, विष्णु, रससागर, वर्षा तथा समुद्र-तटपरक सात अर्थ हैं, जो कि क्रमशः निम्न प्रकार हैं—ग० ज० शास्त्री.

१—इन्द्र की सभा के विषय में—प्रवीण कहती है कि-इन्द्र की सभा में सारे बलवान सभासद सदा अमृत से पूर्ण रहते हैं और उनके समीप जल-तरंग वाद्य का गंभीर शब्द होता रहता है । यह सभा दुर्गुण को नष्ट करनेवाली और जगन् को पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध है । इसके सभासद परस्पर गन मिलाकर मर्यादा में रहते हैं । उस सभा का परिमाण बहुत है, उसका कोई पार नहीं पा सकता । वहां सुन्दर अप्सराएं हैं, जो ऐसी हैं कि जिन्हें देखकर हृदय हर्षित हो जाता है ।

२—शंकर के विषय में—शंकर सर्वस्थान में परिपूर्ण हैं अर्थात् सर्वत्र व्यापक हैं । निरंतर रस यानी आनन्द से परिपूर्ण हैं । उनके समीप गंभीर शब्द सहित गंगा रहती है । वे शिवजी अपने तीसरे नेत्र में अग्नि को छिपा कर रखते हैं । वे संसार को पवित्र करनेवाले प्रसिद्ध हैं । उनके प्रति मन को लगाने वाले सेवक-जन मर्यादा से रहते हैं । उनका मान महान् है, उनकी गति का पार कोई नहीं पाता । उनके साथ रमण करनेवाली पार्वती हैं, जिन्हें देखकर हृदय हर्षित हो जाता है ।

३—सरस्वती के विषय में—सरस्वती सब रस अर्थात् माधुर्य से भरी हुई है और उससे मदा परिपूर्ण रहती है । तरंग अर्थात् मन के तर्कसहित जिनके समीप गंभीर शब्द है । अवगुण को नष्ट करनेवाली और सब जगन् को प्रसिद्ध रूप से प्राप्त होनेवाली है (वाणी सबको प्राप्त है), परन्तु उनमें मन लगानेवाले कवियों को व्याकरण तथा पिंगल की मर्यादा पर आश्रित रहना होता है । उन सरस्वती का परिमाण बहुत बड़ा है अर्थात् शब्द-सागर अथवा शब्द-ब्रह्म अपार है, उनका पार कोई नहीं पा सकता । उन सरस्वती का रूप अति सुन्दर है जिसे देखकर हृदय हर्षित हो जाता है ।

४—विष्णु के विषय में—विष्णु में शृंगारादिक नवों रस भरे हुये हैं, वे उनसे सदा परिपूर्ण हैं अर्थात् पूर्णकाम कहे जाते हैं । उनके समीप में हितकारी (कल्याणकारी) रंजन करनेवाले गंभीर शब्द हैं । उन्होंने अग अर्थात् पर्वत को ढूबने नहीं दिया अर्थात् पर्वत को निराकार से न बांधा । उनका पग संसार में प्रसिद्ध है—अर्थात् अपने पग से तीनों लोकों को नाप लिया और वे मुनियों के सम्मुख

मर्यादा तथा नम्रता से खड़े रहते हैं। उनका परिमाण महान् है अर्थात् वे विराटरूप हैं, उनका कोई पार नहीं पा सकता। उनका रूप सर्वत्र रमण करनेवाला तथा नियमित है। उन्हें देखकर हृदय गद्गद हो जाता है, ऐसे वे लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् हैं।

५—रससागर के विषय में—प्रवीण कहती है कि-रससागर चौंसठ कला सहित हैं, रस-प्रीति से भरे हुये हैं, नेहनगर नामक पुर में सदा रहते हैं, उनके समीप तरंग अर्थात् कविता के तर्कसहित गंभीर शब्दों का उच्चारण होता है। वे अवगुण के ढकने वाले—अर्थात् मेरे अवगुणों को न देखने वाले हैं। उनकी पदवी जगत्प्रसिद्ध है। वे स्नेही के साथ मन मिलाने वाले तथा मर्यादा में रहने वाले हैं। उनकी पृथ्वी का परिमाण बहुत है और उसका कोई पार नहीं पा सकता—अर्थात् उनका राज-विस्तार बहुत बड़ा है। उनका रूप बहुत ही सुन्दर है, जिसे देखकर हृदय हर्षित होता है।

६—वर्षा के विषय में—वर्षाऋतु में सर्वत्र पानी भरा हुआ है उससे वह निरंतर पूर्ण है। वह जल के तरंगों से युक्त है जिनसे गंभीर शब्द होता है। वह अग्नि को डुबाने वाली अर्थात् शान्त करनेवाली है। वह जगत् में पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध है अथवा जगत् जिसे प्रसिद्ध रूप से मानता है। वह मन-इच्छित वस्तुएं देनेवाली है और मर्यादा से आकाश में स्थिर रहने वाली है। उसका परिमाण बहुत है कि कोई उसका पार नहीं पा सकता। उसका रूप बहुत सुन्दर है जिसे देखकर हृदय हर्षित होता है।

७—समुद्रलहर के विषय में—समुद्र की लहरों में जल भरा हुआ है जिससे वह हमेशा परिपूर्ण रहता है। वह तरंगिणी अर्थात् नदियों के सहित रहता है जिनसे हमेशा गंभीर शब्द होता रहता है। पर्वत को डुबाने वाला और जगत्प्रसिद्ध है। वह कौस्तुभमणि आदि रत्नों का देनेवाला, सदा अपनी मर्यादा में रहने वाला तथा महान् विस्तार वाला है कि जिसका पागवार नहीं। उसका रूप सुन्दर है जिसे देखकर हृदय गद्गद हो जाता है।

इस प्रकार इस कविता में, जिसका वर्णन किया गया, वह इन्द्र की सभा है,

शंकर है, सरस्वती है, लक्ष्मीपति है, रससागर है, वर्षा है या वह समुद्र की लहर है ? ॥ ६ ॥

द्वि-अर्थ रससागरोक्त श्लेषभेद—सवैया.

राजत है सब भूषण संजुत, भाल शशी गउरी छवि पावे ।

किन्नरी बरुनी सुप्रभा, अरु जच्छनि लच्छ गुनी बनि आवे ॥

प्रेमलता तरुनी रसरंजित, गुंजित अंग विलोकत भावे ।

नीको सबे कइलास कहें, हमें सु विलास प्रवीन सुहावे ॥ ७ ॥

सागर कहता है कि—जिस कैलाश में सर्व आभूषण सहित कपाल में चन्द्र को धारण करनेवाले शंकर विराजते हैं, पार्वतीजी से जो कैलाश शोभा पाता है, और जहां किन्नरों की स्त्रियां, वरुण की स्त्री, सुप्रभा नाम की कुवेर की स्त्री तथा दूसरी यक्षों की स्त्रियां लाखों गुणवाली बनकर आती हैं, जिस कैलाश में प्रेम उत्पन्न करनेवाली तरुणलताएं सुगन्धित रस से परिपूर्ण हैं, जिसके आस पास भँवरे गुंजते हैं, ऐसे कैलाश को सब अच्छा कहते हैं, परन्तु हमें तो प्रवीण ही अच्छी प्रतीत होती है ।

द्वितीय अर्थ—जो प्रवीण सब आभूषण सहित शोभा पाती है, जिसके कपाल में चन्द्रकला नामक भूषण है अर्थात् जिसका भाल (मस्तक) ही चन्द्रमा की भांति है और जो गौर-वर्ण तथा शोभायुक्त है । जिसकी प्रभा—कांति किन्नरी तथा वरुण की स्त्री से भी श्रेष्ठ है और यक्ष महिलाओं से जिसकी लाख गुनी शोभा अधिक है । जो प्रेम की लता के समान और प्रेम-रस में रंगी हुई है । जिसके आस पास भँवरे गुंजार करते हैं तथा जिसे देखते ही मन थकित हो जाता है, ऐसी वह प्रवीण है । सब लोग कैलाश को अच्छा कहते हैं, परन्तु मुझे तो प्रवीण का विलास ही अच्छा लगता है ॥ ७ ॥

श्लेषभेद अलंकार—कविच.

सुवरन देह छबी, ठोर ठोर पै जराव, मोहन अशेष कांति, केसव

रचत है । सबही समीप जन, रहत सदाही रीमे, नयन विकास श्री, कमोद मोद रत है । चरचा विचित्र चत्र, मुखसे लगी रहत, धरत अखंड ध्यान, आनंद अनन्त है । सब जग जैसे, बड़कुंठकुं सराहत है, हम त्यों हमेश, बड़कुंठको चाहत है ॥ ८ ॥

सागर कहता है कि—वैकुण्ठधाम ऐसा है कि जहां स्वर्ण अथवा सुवर्ण शोभा देता है, जगह २ जवाहिर का जड़ाव है और जहां केशव अर्थान् विष्णु भगवान् मुग्ध कर देने वाली अपार कांति की रचना करते हैं और सब जन निरंतर उनके समीप रीमे हुये रहते हैं । जहां लक्ष्मी अपनी विकसित दृष्टि में उदामीनों को भी आनन्द देती है । ब्रह्मा के चारों मुख से जहां विचित्र चर्चा चलती रहती है । जहां शेषनाग ध्यान धरते रहते हैं और आनन्द पाते हैं । ऐसे वैकुण्ठ की सब सराहना करते हैं, परन्तु मैं तो हमेशा उम कंठ को (प्रवीण की वाणी को) चाहता हूं ।

द्वितीय अर्थ—जिस प्रवीण के शरीर की छवि स्वर्ण के समान है, जिसके शरीर पर जड़ाऊ आभूषण स्थान २ पर हैं, जो अपने केशों की कांति को मोहित करनेवाली बनाती है, जिसके पास रहने वाली सब सखियां सदा रीमी हुई रहती हैं, जिसके नेत्र के खिलने की शोभा से कुमोदिनी को भी आनन्द मिलता है, जिस चतुर स्त्री के मुख से विचित्र प्रकार की चर्चा चलती रहती है, उसका मैं अखंड ध्यान धरता हूं । उससे मुझे अपार आनन्द मिलता है । सब लोग तो वैकुण्ठ की चाहना करते हैं, परन्तु मुझे तो प्रवीण की कंठध्वनि की अभिलाषा है ॥ ८ ॥

त्रयार्थ श्लेषभेद—रुचित.

प्रबल प्रकाश आस, पूरन उदासी हरे, लोचन लगाये से, अमीर होत दीन ज्युं । तोलहु न कियो जाय, अतिहि अमोल यह, अरथ उपावन, अनेक भेद भीन ज्युं । दूषन रहित सब, भूषन सजात गात, छाजत समीप सब, सुभ छवि लीन ज्युं । अमल अशेष रेख, रूपकीसो राजत है, ससारदाकी कला कीधौं, पारम प्रवीन ज्युं ॥ ९ ॥

१—सरस्वती-कलापक्ष में—सागर कहता है कि—सरस्वती की कला कैसी है कि जिसका अति प्रबल प्रकाश है, उदासीनता का निवारण कर आशा पूर्ण करने वाली है, दृष्टि डालनेमात्र से निर्धन धनवान हो जाता है, वह ऐसी अमूल्य है कि उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती है, अनेक भेद से पृथक् २ अर्थ उत्पन्न करने वाली है, दोषरहित है। सब अलंकारों से उसका शरीर सुसज्जित है। जिसके पास वह होवे वह सब प्रकार से शोभायमान होता है, वह निर्मल तथा अशेष रूप रेखा रखती है। हे चतुर ! वह पारसमणि है, शारदा की कला है।

२—पारसमणि पक्ष में—वह पारसमणि कैसी है कि जिसका प्रबल प्रकाश है, उदासी को दूर कर आशा पूर्ण करने वाली है, जिसके स्पर्श से लोहरूपी निर्धन सुवर्ण रूप धनाढ्य हो जाता है। वह ऐसी अमूल्यवान है कि उसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। वह अनेक भेद से अनेक भांति के विविध द्रव्य उत्पन्न करती है। उसके मिलाप से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर की सब भूख शान्त हो जाती है। जिसके पास वह होवे वह ऐसा सुशोभित होता है कि मानो सब शोभा उसके ही पास है। मल-रहित अशेष सौंदर्ययुक्त यह शारदा की कला है या चतुरमणि शोभायमान है।

३—प्रवीण पक्ष में—सागर कहता है कि—प्रवीण किस प्रकार की है कि जिसके मुख की कान्ति अति प्रखर है, पूर्ण अर्थात् वृत्ताकार है, उदासी को दूर करने वाली है, उसके साथ दृष्टि मिलाने से अभिन्न—मेरा जैसा वियोगी दीन अर्थात् गरीब बन जाता है। वह अमूल्य है, उसकी तुलना किसी के साथ नहीं हो सकती। अनेक प्रकार के विविध अर्थों को उत्पन्न करती है, दूषण रहित है, तथा उसका सारा शरीर अलंकारों से युक्त है। जिस प्रकार वह सुशोभित है उसी प्रकार साथ की सखियां भी सुशोभित हैं। वह निर्मल तथा अशेष सौंदर्य से युक्त है। इस प्रकार की वह शारदा की कला है कि पारसमणि है अथवा कलाप्रवीण है ? ॥ ६ ॥

पंचार्थ श्लेष—कवित्त.

अगम अपार पंथ, निगम न पावत है, सोधत सरूप मंत्र, मुनि ध्यान धरि धरि । तपनीय तेज छवि, बिपन विराजत है, सरता मिलाप होत अंबकन भरि भरि । गुनी गीत गावत है, अच्छर अनेक भेद, सरन सुभाव-देखियत, हंस थरि थरि । समर प्रहारकारी, शाम तन सोहत है, प्रान चढ्यो प्रेम, के प्रवीण—हेमगिरि परि परि ॥ १० ॥

शंकर के पक्ष में—सागर कहता है कि—शंकर कैसे हैं कि जिनका मार्ग अगम्य है, वेद भी जिसका पार नहीं पा सकते हैं ! जिनके स्वरूप का महान् ऋषि मुनि मंत्र जाप कर ध्यान धर कर शोधन करते हैं, जिनकी कान्ति तपस्वी के समान तेजपूर्ण है, और बन में विराजते हैं, जिनके मस्तक पर स्वर्ण से महीन जलकण भर २ कर नदियों में पवित्र गंगाजी का मिलाप होता है, जिनके गुणानुवाद मुक्तपुरुष अपार भेद से गान करते हैं, जो भक्त जनों पर कृपा-दृष्टि रखने वाले, परमहंस वृत्ति रखने वाले हैं, इस प्रकार के शंकर कामदेव के भक्त करनेवाले हैं ।

श्रीकृष्ण के पक्ष में—सागर कहता है—कि श्रीकृष्ण कैसे हैं कि जिनका स्वरूप अगम्य है, वह दर्शनादि धर्मग्रन्थों को जिनका गम्य नहीं है, ऋषि मुनि मंत्र आराधन से ध्यान धर २ कर जिसके स्वरूप का शोधन करते हैं, जिसकी प्रभुता को उसी तप से प्राप्त कर सकते हैं, वृन्दावन में विराजते हैं और सुरता अर्थात् भली प्रकार तल्लीन हुई गोपिकाओं के नेत्रों से आंसू भरा २ कर फिर मिले (रासलीला के समय गोपिकाओं को खूब रुला कर फिर भगवान् कृष्ण उनसे मिले) अच्छर अर्थात् अनेक स्वर व्यञ्जनों के भेद से गुणीजन जिसका गान करते हैं, शरणागत गोपिकाओं की प्रीति उनके आत्मा को स्थिर रूप से देखती है तथा लड़ाई में प्रहार करनेवाले श्याम-शरीर वाले श्रीकृष्ण शोभायमान हैं ।

प्राण के ऊपर चढ़े हुए प्रेम के पक्ष में—सागर कहते हैं कि प्रेम का पंथ

अगम्य है, उसे पामर जन नहीं पा सकते । प्रेमी मनुष्य उसके स्वरूप का अन्तर में ध्यान धर २ कर गुह्य मंत्र से शोध करते हैं, उस प्रेम की छवि, उसके प्रभा का तेज जीव को तपाने वाला है, उससे शरीर शोभित नहीं होता प्रत्युत उससे तप कर कृश हो जाता है, नेत्रों से आंमू भर २ कर सुरता-रूपी मनोवृत्ति के साथ संगम कर लेते हैं । अक्षरों के अनेक भेदों से मित्रगुण-कीर्तन करते हैं । उस प्रेम का भाव शर-बाण के कमान तीव्र देखकर हंस-जीव थर २ कांपता है । इस प्रकार प्राण के ऊपर चढ़ा हुआ प्रेम है ।

प्रवीण के पक्ष में—सागर कहता है कि उसके (प्रवीण के) मिलने का मार्ग जाना नहीं जा सकता अतः अगम्य है । उस मार्ग को प्रेमविहीन जन नहीं पा सकते । अपने हृदय में उस मित्र का ध्यान धर २ कर उसके स्वरूप का शोध करते हैं । उसका वपु अर्थान् अंग कान्ति का प्रकाश स्वर्ण के समान है । मेरे नेत्रों से आंसू निकल २ कर मेरे सुरता-ध्यान के साथ उसका विलाप करते हैं । निष्कपट होकर और वपु के हृदय से अनेक प्रकार की युक्तियों से उसके गुणानुवाद का गान करते हैं । उस प्रवीण के चलने की उत्तम छटा को हम चकिन हो ठहर २ कर देखते हैं, ऐसी प्रवीण है ।

मेरु पर्वत के पक्ष में—सागर कहता है कि मेरु पर्वत कैसा है कि उस पर चढ़ने का मार्ग अगम्य है, अति विस्तार वाला है, उसे अजान लोग पा नहीं सकते, जिस पर योगी जन तप करते हुए वेद के गुह्य मंत्रों का जाप कर अपने स्वरूप का शोधन करते हैं । यह मेरु पर्वत सुवर्ण का है और उसकी छवि महान् तेजपूर्ण है, जिसके ऊपर अनेक वन तथा उपवन हैं । उस पर से पानी की अनेक छोटी २ धाराएं भर २ कर नदी रूप में बहती हैं । वहां शंकर के गण और अप्सराएं नाना प्रकार के गीत गाती हैं । उस पर्वत के रहनेवाले स्थिर होकर सूर्य की गति देखते हैं । ऐसा वह शंकर है, भीकृष्ण है या प्रेम है या कलाप्रवीण है अथवा मेरु की तुंग है ? ॥ १० ॥

श्लेषालंकार—दोहा.

समज सर—हिया जब दियो, अंतरको पट खोल ।

अहो प्रवीण तब तोल कर, कह सीसन को मोल ॥ ११ ॥

गंधी के पक्ष में—सागर कहता है कि हे चतुर गंधी ! तू समझ कि जब तूने इत्र की शीशी का ढाट खोल दिया तो अब तू उसको तौल कर कि पूरी शीशी का मूल्य क्या होता है ?

प्रवीण के पक्ष में—सागर कहता है कि हे मित्र प्रवीण ! जब तुमने हृदय के भीतर प्रेम-वाण मार कर अन्तर-पट उघाड़ दिया है तो अब तोल-करो कि मित्र के मिलने रूपी शीशी का मूल्य किस हिमाब से है ? ॥ ११ ॥

सोरठा—ऐसे भेद अनंत, श्लेष उकति दंपति कहे ।

पूरन प्रेम बढंत, भई सु दशा अब बरनिये ॥ १२ ॥

इस प्रकार के श्लेष वाणीयुक्त दम्पति ने कहा जिसमें प्रेम बढ़कर जो दशा हुई उसका अब वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥

सागर घोस कितेक, बिछुवा भये बिरहा बड़े ।

लाय एक उर टेक, प्रेम ज्ञान पहिचान किय ॥ १३ ॥

सागर को कितने ही दिनों का वियोग होने से विरह बढ़ गया जिससे हृदय में एक टेक धारण कर प्रेम-ज्ञान का पहिचान किया ॥ १३ ॥

अथ सागर पूर्ण प्रेमदशा वर्णन—छंद मुक्तदाम.

भयो परिपूरन प्रेम प्रकाश, लयो उर अंतर भाव उदास । जग्यो मन मध्य अखंडित बोध, लग्यो परिव्रज कला मन सोध । सबे जगकी यितको अनुमान, प्रमानत ज्यों प्रतिबिंब बिधान । नहीं थिर जान लियो परिनाम, चहे मन सोध अखंडित धाम । कहे यह प्रानहुसे उपदेश, करे दुख द्वन्द कहा परवेश । दिनां भर काटत आयुष काल, न कूटत काहे महातम

जाल । रखो बहुकाल रम्यो रजधान, अबे कर हीमतका अवसान । तजो सच मोह भूषा मद तोर, महा सुखको मिलिहै तब ठौर । किते दिनलों वह बात विचार, कियो मन मध्य मतो निरधार ॥ १४ ॥

प्रेम का पूर्ण प्रकाश हुआ जिससे हृदय में उदासीनता का भाव उत्पन्न हुआ और मन परब्रह्म की कला शोधने लगा तथा मन में अखण्डित ज्ञान उत्पन्न हुआ । सब जगत् की स्थिति का अनुमान करके उसे प्रतिबिम्ब की भांति मिथ्या प्रतीत होने लगा । परिणाम में यह जगत् तथा इसके अन्दर की सर्व वस्तुएं स्थिर नहीं हैं ऐसा जान लिया । फिर मन में अखण्डित धाम जानने की इच्छा उत्पन्न हुई और अपने आपको उपदेश में कहने लगा । अरे ओ प्राण ! तू किसलिए सुख दुःख के द्वन्द्व में प्रवेश करता है ? काल अहर्निश आयु को काट रहा है, तू इस महातम (अज्ञान) के जाल से छूटता नहीं ? बहुत समय रहा और राजधानी में सुशी से विहार किया, अब साहस करने का वह अंतिम समय है । अब मन में हिम्मत धर तथा मोह, माया तथा मद सबको छोड़ दे तभी तुझे महा सुख का स्थान मिलेगा । इस प्रकार कितने ही दिन तक यह बात विचार कर सागर अपने मन में संसार के त्याग का निश्चय किया ॥ १४ ॥

सोरठा-तज्यो चहे सुख साज, सागर मन सोधत रहे ।

बूझे प्रति महाराज, मित परखित बदलित दशा ॥ १५ ॥

सुख के सामान अब छोड़ देने की इच्छा से सागर अपने मन का शोधन करता रहता है । इतने में बदली हुई अवस्था देखकर मित्रगण महाराज से पूछने लगे ॥ १५ ॥

ऐसी कबै न होय, कौन दशा लीनी तुमें ।

आप बतावे सोय, महाराज कीजे कृपा ॥ १६ ॥

हे महाराज ! कृपा कर बताइये कि ऐसी कौन सी दशा आपने ले ली है ? ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ ॥ १६ ॥

चौपाई—महाराज प्रेम मन जगगे, बानी बदन भित्त प्रति लगगे । गोप कौन निज दशा कहावे, अहो भित्त ऐसो चित्त आवे । निज प्रतिष्ठ शिव-स्थानक जैहे, परसत परम उदास भिटैहे । बहु दिन भये दरश नहिं पाया, यह तुम भाव उदास लखाया । सबहि कला महाराज सिधावे, हुकम वेग बाहनी कहावे । सागर तब आज्ञा धर आवी । आयस धर प्रतना प्रति भाखी । महाराज आखेटक धारी, कियो हुकुम छोटी असवारी ॥ १७ ॥

मित्रों की इस प्रकार की बात सुनकर महाराज के मन में प्रेम उत्पन्न हुआ और मित्रों से कहने लगे । किन्तु फिर भी अपनी बदली हुई दशा को गुप्त रखकर कहने लगे कि हे मित्रवरो ! मेरे मन में ऐसा आता है कि अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित किये हुये शिवमन्दिर में चलें, कदाचिन् भी महेश्वर के स्पर्श से यह उदासी भिटे । बहुत दिनों से दर्शन नहीं किया, कहीं इसी से तो यह उदासी नहीं उत्पन्न हुई हो ? तब सब मित्रों ने कहा कि महाराज ! यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो भले ही शिव-स्थानक चलिये और सेना को शीघ्र सज्जित होने का आदेश दीजिये । मित्रों से यह बात सुनकर महाराज ने तुरन्त आज्ञाधर (चोबदार) को आज्ञा दी कि आखेट को जाना है इसलिए छोटी सवारी चढ़ने की आज्ञा सुनाओ ॥ १७ ॥

दोहा—आयस धर आखिय चमूं, सामनवत महाराज ।

पय सबीर फंदन सिविक, लगे बाज गज साज ॥ १८ ॥

महाराज की आज्ञानुसार आज्ञाधर (चोबदार) ने सब सेना को कहा, तदनुसार पयादे, डेरा, तंबू, रथ, पालकी, घोड़ा और हाथी इत्यादि सजने लगे ॥ १८ ॥

छुपय—आखेटक महाराज, चमू चढुन फुरमाये ।

आयस मनि उमराओ, राजद्वारहि चढ़ि आये ॥

रससागर गज चढ़िय, सबे जन सलाम निज लिय ।

बजि निशान गुनि बिरद, पढ़त पुर बाहिर निकसिय ॥

केते अमात उमराओ सुत, हय गय फंदन पय चलिय ।

सामान संग आखेट सह, पशु पक्षी बेधक सु लिय ॥ १६ ॥

महाराज ने आखेट जाने के लिए सेना को आज्ञा दी है, ऐसा सुनकर उमराव लोग राज-द्वार पर आये, तब रससागर ने हाथी पर मवार होकर सब लोगों का अभिवादन लिया । नकारों की गड़गड़ाहट और बंदी-जनों की पुकार के साथ महाराज नगर से बाहर निकले । अनेक कारभारी और अमीर उमरावों के पुत्रों सहित घोड़ा, हाथी, रथ और पैदल चलने लगे । साथ में शिकारी पशु, पक्षी तथा पारधी भी लिये गये ॥ १६ ॥

दोहा—सागर जुत सामान यह, निकसे नगर बहीर ।

जोजन चलि निज निज मिसल, किय सबीर सर तीर ॥ २० ॥

इतने सामान के साथ महाराज रससागर सेना सहित नगर से बाहर निकले और एक योजन चल कर अपनी २ सुविधा अनुसार तालाब के किनारे डेरा तम्बू डालकर सबने मुकाम किया ॥ २० ॥

छंद कुरंग.

आपके सामान उमरावके कुमार, सो सबेय साथ लीन सागरं सिकार । ताल तीरसें सबीर प्रात कूच कीन, नैनरंग मेनदाह थान पंथ लीन । पांचसें सिलेत हे ढलेत सो पचास, साधितं सिकारको उचार आसपास । रैनमें अरण्य में करंत है मुकाम, होत है अनेक राग रंग धूमधाम । सेन पंच सातही सहस्र है समग्र, नैनरंग नीठ लेत पीठ नेहनग्र । घोस द्वादशं दशं सपंत ईस थान, बाहिरं मुकाम आप ऊतरे उदान ॥ २१ ॥

शिकार में साथ आये हुये अपने सम-वयस्क जो अमीर उमरावों के कुमारों को साथ लेकर प्रातःकाल ही तालाब के किनारे के तम्बू डेरों में से सब निकले और नैनतरंग ग्राम की ओर शङ्कर के स्थानक का रास्ता लिया । सेना में पांच सौ भाला वाले और सौ पचास ढाल वाले थे, वे आस पास वन में शिकार

करने लगे । जहां रात पड़ जाती वहीं जंगल में ही डेरा डालते । उस समय नाना प्रकार का राग रंग और धूमधाम होता । कुल पांच सात हजार जो सेना थी वह सब नैनतरंग के समीप आने लगी और नेहनगर को पीछे छोड़ने लगी । इस प्रकार गान तान और आमोद प्रमोद के साथ शिवमन्दिर को पहुंच गये, फिर वहां कौनसा मुकाम करा वे महाराज बगीचे में जा उतरे ॥ २१ ॥

सोरठा-उपवन गिरद मुकाम, हय गय पय प्रतना परिय ।

सागर कृत शिव धाम, ईश बंदि अवमोचकिय ॥ २२ ॥

बगीचा से दूर चारों ओर घोड़ा, हाथी, पैदल आदि सेना ने मुकाम किया, फिर महाराज सागर ने भी अपने बताये हुये धाम में जा ईश्वरबंदन कर उतारा किया ॥ २२ ॥

गाहा-श्लेषालंकृत भेद, सागर शिवह थान आवन विधि ।

षट्षष्ठी अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २३ ॥

श्लेषालंकार भेद और सागर के शिव-स्थानक आने की विधान वाली प्रवीणसागर की यह छानसठवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

इति श्री प्रवीणसागरग्रंथे श्लेषभेद सागर शिवथानपयानो

नाम षट्षष्ठितमो लहरं ॥ ६६ ॥

६७ वीं लहर

रससागरमितचरचाप्रमंगो यथा-दोहा.

बाग महल महाराज जुं, राजत रैन समाज ।

राग रंग खूबी खुशी, होत सबै सुख साज ॥ १ ॥

रात्रि में महाराज ने बाग के महल में विश्राम किया और वहां राग रंग, मौज बहार होता रहा ॥ १ ॥

निशि बीती बीत्यो अहर, दूजी निश दरसात ।

सोधी इकंत सात मित, करन लगे निज बात ॥ २ ॥

एक रात और दिन बीत गया । दूसरी रात्रि में एकान्त देखकर सातों मित्र अपनी बात करने लगे ॥ २ ॥

चौपाई-चरचा मित चलत निज बानी, गानकला गावत गुन ज्ञानी ।
एते मध्य मेघ चढ़ि आयो, गहरे घोष गगन गरजायो । दामनि दमकि
बुंद भर मंडिय, गिरवर शिखर नहर भर छंडिय । दादुर मोर सोर उच्चा-
रिय, जामनि बहत जाम जुग कारिय । सुरापान पीवन सब लागे, महाराज
प्रेम मन जागे । मित प्रकाश करन मन ठानी, बोलन लगे प्रानप्रति बानी ॥ ३ ॥

अपनी २ प्रकृति के अनुसार सातों मित्रों में चर्चा चलने लगी और गायन-कला-प्रवीण जन गान करने लगे । इतने में मेघ चढ़ आये और घन-घोर गर्जना से आकाश गूंजने लगा, बिजली चमकने लगी और पानी की बूँदें भरने लगीं । पहाड़ों की चोटियों से भरने, भरने लगे और चारों ओर दादुर तथा मोर शोर करने लगे । आधी रात बीतने पर सब मित्र सुरापान करने लगे । तब महाराज के मन में प्रेम का उदय हुआ और अपने मित्रों पर मनोभाव प्रकट करने का निश्चय कर अपने आप को इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥

सागरोक्त मनद्रढाव अन्योक्ति अलंकार-सवैया.

मानि नहीं बरजी सु तबे, यह लच्छ सबै अब जान परेगो ।
 एकहि टेक गही सु गही, अबके ज्यु रही तो अचूक गिरेगो ॥
 भैरव ध्यान विधान यहै, दोउ ओर सियार दरार करेगो ।
 अग्र चढ्यो सब नग निहारत, क्यों बदनाम भयो उतरेगो ॥ ४ ॥

भैरव के जप के लिये शिखर के ऊपर चढ़े हुये किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके कोई कहता है कि—जब मना किया तब तो माने नहीं, परन्तु अब विचार करने पर सब मालूम हो जावेगा । खैर, एक टेक जो धर ली है उसे धरे रहो, यदि भूल गये तो अचूक (निश्चय रूप से) गिरोगे । भैरव के ध्यान का विधान यही है कि दोनों ओर सियार (शृगाल) द्वार करेंगे जब ऊपर चढ़े, सारे नगर का देखा, अब नीचे उतर कर क्यों बदनामी लैतै हो । अर्थात् सागर अपने मन को समझाता है कि संसार त्याग करने रूपी भैरव-जप के लिए तैयार हो गये यह बात लोकप्रसिद्ध हो गई, अब पीछे कैसे लौट सकते हो ॥ ४ ॥

अनुमानालंकार-सवैया.

बेधकसे निरदे हिरदे, कह फेर समारत नां सर दे ।
 आजहुतें अनुमानत है, उन प्याला पिया सो हमें भर दे ॥
 प्रेमके सिंधु बुड़ावे प्रवीण, छुड़ावे कहा करमें कर दे ।
 खेलको जात अबको समो, अजहु कह मित रमो पर दे ? ॥ ५ ॥

सागर प्रवीण का स्मरण करके कहता है कि—निर्दय-हृदय वाला व्याध भी क्या बाण मारकर फिर सम्हाल नहीं करता अर्थात् करता है ! परन्तु तुमने (प्रवीण ने) आज तक मेरी सम्हाल नहीं की । तुमने जो प्याला पिया है वही मुझे भी भरदो अर्थात् तुम्हारे जो विचार हों वह मुझे सूचित कर दो । हे प्रवीण ! इस प्रेम-समुद्र में मुझे डुबाओगे या हाथ में हाथ देकर तिराओगे ?

यह समय तो खेल में जाता है । फिर भी अब तक पहरों में क्यों रहती हो ? ॥ ५ ॥

दोहा—मोर सोर घनघोर सुनि, दहर झिल्लि भिंगोर ।

मित सुनाय चितकी उकति, बोलन लगे बहोर ॥ ६ ॥

मोर का शोर, मेघ की गर्जना, दादुर की ध्वनि और झिल्ली की मंकार सुनकर महाराज रमसागर अपने चित्त की उक्ति मित्रों को सुनाने के लिए फिर बोलने लगे ॥ ६ ॥

चढ़ि आई कागि घटा, घोर मोर सुर कीन ।

चहु दिश बोले चातुकी, चाहत चित प्रवीण ॥ ७ ॥

सागर कहता है कि इस समय वर्षा की काली घटाएं घिर आई हैं । मारों ने भयंकर शोर कर रक्खा है और चारों ओर चातुकी बोलने लगी है जिससे मेरा चित्त प्रवीण की ओर लग रहा है ॥ ७ ॥

यथासंख्या तथा विकल्पालंकार—सवैया.

नीरज धीरज तुं धररे, इत आवरे कोक पयान करेंगे ।

चातुक मोर चकोर सबै मिलि, जाय मुरारिके पायँ परेंगे ।

प्यारे प्रवीण दिनेश घटा, शशि रीझहि तो द्रग तें न टरेंगे ॥

अंक इते पर जो उलटे तो, सबे मिलि एकहि बेर मरेंगे ॥ ८ ॥

सागर कहते हैं कि हे पानी में बसने वाले सूर्य्य वियोगी कमल ! तू धैर्य्य धर, हे चकवा ! तू यहां आ, साथ ही चलेंगे, वर्षा का वियोगी पपीहा तथा मोर और चन्द्र वियोगी चकोर, आओ सब मिलकर भगवान विष्णु का पैर पकड़ें, वे प्रसन्न होंगे तो मेरी दृष्टि से प्यारी प्रवीण, कमल तथा चक्रवाक की दृष्टि से सूर्य्य, पपीहा तथा मोर की दृष्टि से घन घटा और चकोर की दृष्टि से चन्द्रमा विलग न होंगे । इतने पर भी यदि भाग्य उलटा हुआ तो आपन सब एक साथ ही मरेंगे ॥ ८ ॥

सोरठा-मन सिच्छा महाराज, कही सुनाई मित प्रति ।

मतो प्रकाशन काज, प्रगट प्रेम पूरन दशा ॥ ९ ॥

प्रेम की पूर्ण दशा प्रकट करने के हेतु महाराज ने अपने मन को दी हुई शिक्षा को मित्रों के प्रति कह कर सुनाया ॥ ९ ॥

सुनी मित यह बान, कहन लगे महाराज प्रति ।

आज दरासियत आन, दशा न निज जानी परे ॥ १० ॥

मित्रों ने यह सुनकर महाराज से कहा कि आज आपकी दशा अलग ही दीखती है जो समझ में नहीं आती है ॥ १० ॥

दोहा-पुनि बूझत महाराज प्रति, मीत उभे कर जोर ।

सागर चित चाहत तुम्हें, कहो कहंत निहोर ॥ ११ ॥

फिर मित्र दोनों हाथ जोड़ कर महाराज से पूछने लगे कि महाराज ! आपके चित्त में जो कहने की इच्छा हो उसे हम प्रेमपूर्वक पूछते हैं, कह सुनाइये ॥ ११ ॥

छंद दोषक.

बूझत फेरहि मित निहोरे, सागर चाहि जवनिह छोरे । आप बहोरि कहअ सु लगगे, प्रेम प्रकाश हमें उर जगगे । अंतर मितहु से कह रक्खे, एह उरं धरक यह भक्खे । राजहि साज चहे हम तज्जे, को तुम सोउ मतो न बरज्जे । जो ब्रजनो तुम चित धरेंगे, माननहार मने न मरेंगे । मित लही बरजीहु न माने, और सयान चले मृत ठाने । क्यों बरजे मरनों न उपावे, हीमत श्री महाराज द्रढावे । सातहु संग चले यह ठानी, सागर प्रत्य बदे पुनि बानी ॥ १२ ॥

जब बार २ मित्रों ने पूछना शुरू किया तब सागर ने मन में सोचा कि अब परदा खोल दें और फिर मित्रों से कहने लगा कि मेरे मन में प्रेम का उदय

फिर हो गया है । तुम जैसे सुझ मित्रों से क्या छिपावें ऐसा हृदय में समझ कर मैं कहता हूं कि अब मेरी इच्छा राजपाट छोड़ने की है । आप कोई मुझे मना मत करना, क्योंकि यदि आप लोगों ने रोका तो भी मैं मानने का नहीं, प्रत्युत मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा । जब मित्रों को यह ज्ञात हुआ तो सोचा कि अब यह मानने के नहीं, जब मृत्यु तक को उद्यत हो गए तो फिर हमारी बुद्धिमानी क्या चलेगी ? अब क्या करना चाहिये कि जिससे महाराज को दुःख न हो । अन्त में यह निश्चय किया कि अब इन्हें दिलासा देना चाहिये कि हम सभी साथ चलेंगे । ऐसा सोचकर महाराज सागर से कहने लगे ॥ १२ ॥

छप्पय—भली कही महाराज, आप एही बिध ठाने ।

ये प्रेम उपदेश, मूक जन कैसे जाने ॥

सकल प्रषा संसार, तृषा मृगजलको धावे ।

ठोर ठोर भटकंत, कहूं विश्राम न पावे ॥

सागर संन्यस लीजे दशा, हमें संग शिष धारिये ।

परब्रह्म बोध सोधन प्रकृति, प्रेम नेम प्रति पारिये ॥ १३ ॥

हे महाराज ! आपने अच्छा कहा है, ऐसा ही कीजिए । इस प्रेम के उपदेश को मूर्खजन क्या जानें कि यह सब संसार मिथ्या है । लोग मृग-तृष्णा के पीछे भटकते फिरते हैं और कहीं भी विश्राम नहीं मिलता । हे सागर ! आप संन्यास लीजिए और हमें शिष्य बनाइये और परब्रह्म के ज्ञान के शोधन की प्रकृतिनीय बनकर प्रेम नियम का प्रतिपालन कीजिये ॥ १३ ॥

सोरठा—सागर कही सु तास, शिष्य भयो चाहत तुमे ।

जो जिहि प्रेम प्रकाश, लखो सु कहो सुनाय हमे ॥ १४ ॥

तब सागर ने उनसे कहा कि तुम लोग शिष्य होना चाहते हो तो जिस ने प्रेम का प्रकाश किया हो वह मुझे सुनाकर कहो ॥ १४ ॥

सदा सु सागर पास, रहत प्रेम जाने प्रकृति ।

आप उकति बर आस, जन जन प्रति गाहा कहे ॥ १५ ॥

वे लोग क्योंकि सदा सागर के पास रहनेवाले थे इसलिये उन्हें प्रेम की प्रकृति का ज्ञान था और इसलिये अपनी सुन्दर गति से हरएक ने अपनी २ कथा सुनाई ॥ १५ ॥

मित्रोक्त प्रेमस्वरूपवर्णन, समरूपक अलंकार—गाथा.

तन ओषधी समीहं, मन अभिलाष अंकुरित शाखा ।

सुख फल फूल भुक्ते, स्रवित सुधा प्रेम शशि धारा ॥ १६ ॥

शरीररूपी एक वृक्ष है तथा मन और अभिलाषा रूपी अंकुर और शाखाएं हैं । उनमें सुखरूपी फूल फूल रहे हैं उस पर प्रेमरूपी चन्द्रमा अमृत की धारा उड़ेलता है ॥ १६ ॥

समरूपक अलंकार—गाथा.

सुख दुःख स्मृति समूह, प्राणाशिष्ट क्लिष्ट परिणामी ।

उर विकल्प अनंतं, ज्वालावत प्रज्वलित प्रेमं ॥ १७ ॥

सुख दुःख और स्मृति के समूह में प्राण अशेष रूप से परिणामी बना रहता है । हृदय में अनन्त विकल्प उठते रहते हैं जिनमें अग्नि की ज्वाला के समान प्रेम प्रज्वलित होता है ॥ १७ ॥

उद्भिज्जह उत्पण्णे, जर सेदाण इंड चत्र खाणं ।

प्राणा चख आकारं, तद सर्वेण तारिका प्रेमं ॥ १८ ॥

उद्भिज (पृथ्वी से वनस्पति के समान उत्पन्न होने वाले), जरायुज (गर्भ की किल्ली के द्वारा उत्पन्न होने वाले) स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले) और अंडज (अंडे से उत्पन्न होने वाले) ये चार प्रकार के प्राणी हैं, उनके प्राणरूपी चक्षु हैं तथा प्रेमरूपी मव की तारिका है ॥ १८ ॥

जंजं गमण करंतं, नौका वा विमान आरोहे ।

तंत ऊरध अद्धे, वत नभ भूमि प्रेम परब्रह्मं ॥ १९ ॥

विमान में अथवा नौका में गमन करनेवाले ज्यों २ गमन करता है त्यों-
त्यों आकाश और भूमि ऊंचे नीचे दीखते हैं इसी प्रकार प्रेम के ऊपर चढ़ने
वाले को प्रेमरूपी परब्रह्म सर्वत्र दिखाई पड़ता है ॥ १९ ॥

पुनः अन्योक्ति दृष्टांतालंकार-गाथा.

थर चर अध ऊरद्धे, दिस विदिसेण अंतरं मध्यं ।

वरणावरण प्रसंगे, उँकारं अंकवत प्रेमं ॥ २० ॥

स्थावर जंगम, नीचे ऊंचे, दिशा विदिशा, अन्तर और मध्य में स्वर
तथा व्यञ्जन अक्षरों के प्रसंग में जिस प्रकार एक ओँकार के अंक का
ही प्रसार है उसी प्रकार समस्त प्राणी पदार्थों में एक प्रेम का ही प्रसार
है ॥ २० ॥

अन्योक्ति दृष्टांतालंकार-गाथा.

भरुखण त्रमण विषयणं, निद्रा यस्य प्राणि चत्र एही ।

तस्यात्मेण प्रवर्त्ते, वत चैतन्य प्रेम परिब्रह्मं ॥ २१ ॥

आहार, भय, मैथुन और निद्रा इन चार विषयों वाले प्राणी जिस प्रकार
आत्मा के चैतन्य से प्रवृत्त होते हैं उसी प्रकार सारा जगत् प्रेमरूपी परब्रह्म
के चैतन्य से चल रहा है ॥ २१ ॥

सोरठा-सागर कह्यो सु मित, जो जिहि जानत प्रेम विधि ।

आपैं कह्यो वृत्तंत, सोय सत्य धारो सकल ॥ २२ ॥

सागर ने मित्रों से कहा कि मित्रो ! आपने जो प्रेम की विधि, जैसा २
आप जानते हैं, कही, उसे मैं सत्य मानता हूँ ॥ २२ ॥

अथ सागरोक्त समरूपक अलंकार-गाथा.

निराकार निर्लेपं, जस्य स्तुति उचारितं वेदं ।

जोत प्रकाश जपंतं, सत्ता प्रेम भासितं ब्रह्मं ॥ २३ ॥

जो निराकार और निर्लेप है और जिसकी स्तुति वेद करते हैं, जो अपनी सत्तामात्र से प्रकाशित है, वह प्रेम रूप परब्रह्म ही है ॥ २३ ॥

अथ छंदप्रिया.

एक एकं कही, चित्त वृत्ती लही, प्रेम पाये द्रदे, जोति दूनी चढ़े ।
मध्य रेनी गली, एह चरचा चली, जोग ठानी सची, राज सज्या रची ।
रैन सारी गही, आध जामं रही, साज साजे गुनी, धार भैरों धुनी । नाद लागे
श्रुतं, सागरं जाग्रतं, मोद लावे हिया, नित्य कीनी क्रिया । आप बैठे जहां
मित आये तहां ॥ २४ ॥

इस प्रकार प्रत्येक ने एक २ कथा कही जिससे उसके चित्त की वृत्ति प्रकट हुई और दृढ़ प्रेम का प्राप्त किया और ज्योति-तेज द्विगुण हो गया । आधी रात तक यह चर्चा चलती रही और अन्त में योग संन्यास लेने का निश्चय कर राजशय्या करके शयन किया । आनन्दपूर्वक रात व्यतीत की । जब दो घड़ी रात रही तो गुणी जनों ने गायन का साज करके भैरव राग गाना प्रारंभ किया जिसके नाद से महाराज रससागर जागृत हुये और हृदय में आनन्दित हो नित्यकर्म में प्रवृत्त हुये । इसके उपरान्त जहां बैठे थे, वहीं फिर सब मित्र आकर मिले ॥ २४ ॥

सोरठा—चार घरी रही रैन, सागर नित कीनी क्रिया ।

आय इते महि सेन, प्रेमप्रभा प्रगटित सकल ॥ २५ ॥

पिछली चार घड़ी रात्रि शेष रहते महाराज रससागर नित्य के कर्मकाण्ड में लगे और इसी बीच जिनके हृदय में प्रेम की प्रभा उत्पन्न हुई थी सब आने लगे ॥ २५ ॥

छंद भूपताल.

सागरं अंग आभूषनं साजियं, भान कोटी कला कंदूपं लाजियं ।
आपही आसनं हेम चौकी रजे, मितकी आवली आवरत्तं सजे । आवरत्तं

निजं पानिहीमें लिये, देखितं हे प्रतीबिम्ब नेनां दिये । अंगको रूप सो अद्भूतं लसे, मितको चितितं मंदमंदं हसे । प्रान रूपं यहै राखबो धारितं, सागर यह सिच्छा सु उच्चारितं ॥ २६ ॥

रससागर ने अपने शरीर पर आभूषण धारण किये, जिससे करोड़ों कला वाले सूर्य तथा कामदेव लज्जित होने लगे । अपने आप कंचन के जड़ाव वाली चौकी पर आसन लगाकर विराजमान हुये और मित्रगण चारों ओर आ बैठे । अपने हाथ में आईना लेकर प्रतिविम्ब देखने को उस पर दृष्टि लगाई, और उसमें अपना विचित्र रूप देख कुछ चिन्तित हुए, जिसे देखकर मित्रगण मन्द २ हंमने लगे । सागर यह सोच कर कि मन ऐसा ही रूप रखना चाहता है, अपने मन को समझाने लगे ॥ २६ ॥

सागरोक्त मनसिच्छा । अनुमानालंकार-सवैया.

कागर नाव चलयो सु गल्यो, अब सागर क्यों तरिहे कर जोरा । होनि सु होय न होनि न होयगि, क्योंरे तपे तलफे मन मोरा । आयो अगे अध कीन अराधन, पायो सबे करनी फल तोरा । मित प्रवीण अजों न मिले तब, भाग में आग विभूतिको गोरा ॥ २७ ॥

कागज की नाव चलाई तो वहां ही गल गई, अब हाथों के जोर से समुद्र क्योंकर तिरा जाय ? जो बनता है वह बनेगा !! और जो नहीं बनता है वह नहीं बनेगा !! इसलिये अरे मेरे मन ! तू क्यों तड़पता है ?? पूर्व जन्म में अर्ध आराधन करके आया सो उसका फल यह प्राप्त किया कि अभी तक प्रिय मित्र प्रवीण को न प्राप्त कर सका । अब भाग्य में अग्निताप और विभूति का लेप ही करना रहा ना ?? ॥ २७ ॥

दोहा-सागर मन सिच्छा दई, डिगत कियो थिर जूप ।

उनपे अंबारत करन, धार्यो जोग सरूप ॥ २८ ॥

इस प्रकार सागर ने अपने हिलते हुये मन को शिखा देकर उसे यज्ञ-स्तम्भ की भांति स्थिर किया !! फिर इस पर योगस्वरूप इमारत बनाने का निश्चय किया ॥ २८ ॥

गाहा-सागर उकति सु मित्ता, प्रच्छा प्रेमरूप मन द्रढावन !

सप्तषष्टि अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २६ ॥

मित्रों को, प्रेम का रूप पूछते हुये सागर ने अपनी उक्ति से प्रेम का तत्व दृढ़ रखने की मन को शिक्षा देनेवाली यह प्रवीणसागर की सड़सठवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २६ ॥



६८ वीं लहर

रससागर का योगीस्वरूपधारणप्रसंग-सोरठा.

सागर मन सु द्रढाय, षट संगे चले भये ।

चले सु मित बुलाय, भुज अकेक अवतंम धरि ॥ १ ॥

इस प्रकार सागर ने मन को दृढ़ किया, छत्रों भित्र शिष्य बने । फिर मित्रों के सहित हाथ में एक २ (अवतंम) पुष्पगुच्छ लेकर चल पड़े ॥ १ ॥

छेकानुप्रासालंकार-सोरठा.

मनमहि मोद प्रकाश, आस्य हास दरसित तनक ।

आवत ईश निवास, पास रास वैरागि है ॥ २ ॥

मन में आनन्द का बोध छलक रहा है !! और मुख पर किंचित मुसकराहट दिखाई पड़ती है !! इस प्रकार मित्र-मण्डल विरागी होकर शिवमन्दिर के पास आया ॥ २ ॥

छंद मुक्तदाम.

गये रससागर थानक ईश, अभूषण ब्रह्म किये बकसीस । तजे जर कंबर अंबर साज, दिगंबर भेष लियो महाराज । सुवासन रंजित है जिहि संग, विभूतिय धार लई तिहि अंग । नव ग्रह पाग ज्यु पेच लसंत, वहे जट जूट मुबंध कसंत । हरं हर उच्चरितं मुख बान, धरे महमाय महेश्वर ध्यान । करे वह रूप तहां षट मित, भवा भव अस्तुति आप बंदंत ॥ ३ ॥

रससागर ने ईश स्थानक के पास जाकर अंग पर पहिने हुए सब आभूषण उतार ब्राह्मणों को प्रदान किये । जरी के शाल दुशाले तथा अन्य सब शृंगार त्याग करके महाराज ने दिगंबर जैसा वेप धारण किया । जिस शरीर पर सुवासित तेल फुलेल इत्रादि लगते थे !! उसपर विभूति धारण की, और जिस मस्तक पर नवग्रहों के नवरत्नों से जटित मिरपेच शोभा पाता था !! उस पर जटाजूट कसकर बांधा, और मुंह से 'हर हर' उच्चारण कर महेश्वर तथा महामाया का ध्यान किया । फिर छत्रों मित्रों ने भी वही रूप धारण किया । फिर महाराज सागरजी, शिव तथा शक्ति की स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

दोहा—सागर भेष मुनेश धरि, गिरजा हरपद बंद ।

दश सरूप माया दरसि, किये स्तवन रचि छंद ॥ ४ ॥

सागर मुनीश्वर का वेश धारण कर, उमा तथा शिवजी के पग की बंदना कर, दश रूप जो महा माया के कहे हैं उन दश महाविद्या की भुजंग छन्द में निम्नप्रकार से स्तुति करने लगे:—॥ ४ ॥

रससागरोक्तदशमहाविद्या का ध्यान और शिवस्तुति ।

जातिस्वभाव अलंकार—छंद भुजंग.

महा कालिका मालिका मुंड धारा, शबं श्रोन शीशं करं मुक्त बारा । परं निर्भयं ग्राहिनी नग्ग खग्गा, उवलंती चितामें शवारूढ नग्गा । महा-काल बिप्रीत रत्ती रमस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ भवा नील आभा

जटा जूट तारा, करत्री कपालं असी कंज धारा । डढा क्रूर बाधंवरं जोग
 तप्पे, तनं आभ्रनं दंतकी दाम जप्पे । हरं मोहितं सोहितं कंज मस्ते, नमस्ते
 नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ महाविद्यया राजितं रक्त बिंबा, सधे जोग जोती
 अलौकीक अंबा । त्रिनैनं सरोजं करं नील सज्जे, कुचं गौर मुखं कला-
 चंद्र लज्जे । महारुद्रचित्तं कटाक्षं अमस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥
 श्रियं शोभमानं प्रभातं प्रकासा, शशी भाल त्रीनेत्र आरून बासा । धनू
 वान पाशं ध्रुवी पानि लीने, सबै अंग सोहत संगार कीने । शिवं शंकरं
 वाम भागं सु वस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ शुद्धनेश्वरी चंद्ररूपा
 रसाला, धरे कुंडलं हेम मुक्ती सु माला । वधे वार जूरा सु सिंगार लज्जे,
 कटी किंकरी जेहरी पाष वज्जे । रमं रंजितं नैन शंभू समस्ते, नमस्ते नमस्ते
 नमस्ते नमस्ते ॥ वगल्ला कनकासनं हेम अंगा, किरीटं शशी अंबरं पीत रंगा ।
 कुलीशं गदा पास जीहा धरंती, गरे चंपकं जूहिक्की बैजयंती । महादेव संग
 उछंगा बिलस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ छिनंमस्तिका हस्तिका
 रक्तपत्रा, धरं शीश शीशं बित्तं छाथ छत्रा । करे श्रोणितं पान छूटे सु वारा,
 दगे डाकिनी शाकिनी संग धारा । शिवं संगियं रंगियं मोद मस्ते, नमस्ते
 नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ महमाय धूमावती धूम देहा, कराला कला चंचला
 ज्वाला मेहा । भयंकार दड्डा जयंकार प्रेता, उरं पीन छीनं कटी दीन हेता ।
 भवा भीम जोगा न भोगा त्रपस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ मतंगी
 घनं डंबरं अंग दीठं, रक्तं धरे अंबरं रत्न पीठं । सुरं दानवं मानवं कंज
 यत्ता, करं कुंभपत्रं सुरापान मत्ता । महेशं पिबावंत आपं पिबस्ते,
 नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ बराही रुची राजितं बीज बाला, सकत्ती
 गदा अंकुशं नेत्र ज्वाला । सरोजं लिये पानमें रंग रत्तं, जपत्तं जयं शत्रवं
 हीन कत्तं । जटा धारियं डारियं ग्रीव हस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥
 जयो योगिनी भोगिनी जासु संगे, जयो जोगियं भोगियं जासु रंगे । जयो
 दंपती जोग हासं विलासं, जयो कारना रूप प्रेमं प्रकाशं । रखे लाज माराज
 जोगं सधस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५ ॥

महाकालिका, गले में मुंडमाला धारण की हुई, कानों में शव (मृतक शरीर) लटकाए हुये, तुरंत के कटे हुये मस्तक हाथ में लिये हुये, मस्तक पर के केश छुटे हुये, परम निर्भय, तथा नग्न खड्ग हाथ में धारण किये हुये, जलती हुई चिता में शव के ऊपर नग्नरूप विराजमान, महाकाल के साथ विपरीत रति से रमण करनेवाली हे कालिका ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

भवानीरूप काली कान्तिवाली, मस्तक पर जटाजूट धारण करनेवाली, करतनी, कपाल, तलवार और कमल हाथ में धारण करनेवाली, भयङ्कर स्कंध और ढाढ़ वाली, बाधंवर पर विराज कर योग और तप करनेवाली, कुंडल, कटि मेखला आदि आभूषणों से युक्त, सुन्दर शरीर वाली, दांतों की माला से जप करनेवाली, महादेव को मोह उत्पन्न करानेवाली, कमल पर शोभायमान हे देवी तारा ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

महाविद्या तथा रक्त वर्ण के अधरों से युक्त, योग साधने वाली, अलौकिक तेज और ज्योति को धारण करनेवाली अम्बा, तीन नेत्र वाली, नील कमल हाथ में लिये हुये, जिसके कठिन कुच, मनोहर केश और गौरवर्ण वाले मुख की प्रभा के समस्त चन्द्रकला भी लाजित होती हैं, और जो अपने नेत्रों के कटाक्ष से महारुद्र को भी भ्रमित कर देती हैं ऐसी हे महादेवी ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है ॥

प्रभात के सूर्य के प्रकाश समान शोभित, कपाल में चन्द्रमा धारण करनेवाली, तीन नेत्र और रक्त वस्त्र वाली, धनुष, बाण, फरस और अंकुश ऐसे चार आयुध हाथ में लिये हुए, सारे शरीर में सुन्दर शृंगार किये हुये, शिव-शंकर के वाम अंग में विराजमान हे श्री विद्या ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

चन्द्रमा के समान रूप रङ्ग वाली, रस रंग से रसीली, कान में कुंडल, कंठ में सुवर्णहार और मोती माला पहिने हुए, मस्तक पर बालों का जूड़ा सजाये हुए, कमर में कटिमेखला की घूंघरूं तथा पाँवों में जिसके भांफर बज रहा है, नेत्रों के रस से जिसने शंभू जैसे योगी को समस्त रीति से रंजन कर रक्खा है, ऐसी हे भुवनेश्वरी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

जिसका लघु आसन है, स्वर्ण के समान अंग वाली, मुकुट में जिसके चन्द्रमा है, शरीर पर पीतवस्त्र पहिने है, वज्र, गदा, पाश और शत्रु की जिह्वा हाथ में लिये हुए, गले में चम्पा और जुही की पग तक लटकती हुई माला पहिने हुए, महादेव की गोद में विराज बिलास करनेवाली, हे देवी वगलामुखी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

जिसने रुधिरपात्र तथा अपना कटा हुआ मस्तक हाथ में ले रख्या है, ऊपर बड़े छत्र की छाया धारण कर रखी है, बिखरे हुए केशों से युक्त, शिर में से भरते हुये रुधिर की पान करनेवाली, डाकिनी, शाकिनी को साथ में रखने वाली, शिव के मर्माप रहकर आनन्द के रंग में मत्त रहने वाली हे छिन्नमस्तका देवी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

धूप के समान देह वाली, कराल पेट में जिसके सूर्य है उसकी कला को धारण करनेवाली, चंचल जिमके अंग में से ज्वाला की मानो वर्षा हो रही है, मलिन वस्त्र युक्त, अति प्रचंड, भयको उद्वेजित करनेवाली, भयावनी दाढ़ों से युक्त, जिसकी प्रेतादि जय बोलते हैं, कठिन स्तन तथा क्षीण कटि युक्त, दीनों पर दया करनेवाली भीमा भवानी, महादेव के साथ योग करने वाली, भोग में तृप्त न होने वाली हे धूमावती ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

मातंगी, मेघ के आडम्बर के समान काले अंग वाली, रक्त वस्त्र धारण किये हुए, रत्नजटित चौकी पर विराजित, कमल पर दोनों पग रखे हुए, देव, दैत्य, दानव, मनुष्य, ऐसे सबको वरदान देनेवाली, एक हाथ में मदिरा का कुंभ और दूसरे में पीने का पात्र लेकर महादेव को पान कराके स्वयं पान कर मस्त हुई, बीणा बजाने वाली हे मातंगी देवी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

बाराही—चन्द्रमा की छवि में शोभित, बीजरूपिणी, बालारूप, आंगों में से अग्नि की ज्वाला डालने वाली, हाथ में शक्ति, गदा, अंकुश तथा रक्त कमल लिये हुए, पान के रंग में रक्त, जप करनेवाले की जय करानेवाली, शत्रुनाशिनी, शिवजी के गले में हाथ डाल कर विराजी हुई हे बाराही देवी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥

जय जय बोलने वाली जोगिनी व भोगिनी जिसके संग में हैं, इसी प्रकार जय बोलने वाले योगी तथा भोगी जिसके संग में रंगे हुए हैं, प्रकृति तथा पुरुष दम्पति के जुड़े हुए होने से योग और हास्य विलास करके जय पाने वाले, कारणरूप प्रेम के प्रकाश करनेवाले, शक्ति के साथ रहने वाले हे शंकर ! तुम्हें बारंबार नमस्कार करके मैं योग में प्रवृत्त होता हूँ । महाराज ! कृपा करके मेरी लाज रखना ॥ ५ ॥

सोरठा—उमया ईश उचार, अस्तुति पुनि बंदन सु किय ।

मन महि बोध विचार, कहन लगे सागर कुमार ॥ ६ ॥

इस प्रकार उमा तथा शङ्कर की स्तुति करके उनका वन्दन किया और कुमार रससागर अपने मन को बोध कराने लगे ॥ ६ ॥

जमकालंकार—सोरठा.

जर जर जात जहान, फर फर झूठे जगत महि ।

धर धर रे हिय ध्यान, कर कर याद प्रवीन को ॥ ७ ॥

इस मिथ्या दुनियां में जीव बारंबार फिर २ कर जाता है, इसलिए हे मन ! प्रवीण का ध्यान धर कर उसका स्मरण कर ॥ ७ ॥

छप्पय—जोगि रूप महाराज, सहर प्रतना सब पाये ।

गुरुजन मनमहि धारि, आय सागर बरजाये ॥

कहे तास प्रति उत्र, इष्ट साधन हम लीने ।

करहु किया इक वर्ष, बहुरि यह रूप सु छीने ॥

माने न कछो बरजत बहुरि, मन उदास सब लोग लिय ।

महाराज महत आमात प्रति, दरकवाह आयस सु दिय ॥ ८ ॥

महाराज ने योगी का वेश ले लिया, इसकी सूचना नेनतरंग शहर में तथा सब सैन्यदल में हो गई, तब बड़े २ सेठ साहूकार, अमीर उमराव शिव स्थानक पर आये और राजकुमार से प्रार्थना करने लगे । राजकुमार ने उन्हें उत्तर दिया

कि मैंने इष्ट साधन के लिये यह वेष लिया है !!! जो एक वर्ष में पूरा हो जायगा और तब यह वेष छोड़ दूंगा । सब लोगों ने अनेक प्रकार से समझाया परन्तु राजकुमार ने नहीं माना !! इससे सब उदास हुए, और महाराज को समाचार देने के लिये सांडिनी सवार को आज्ञा दी ॥ ८ ॥

छंद मृगेंद्र.

कमाल चलाय, सु सागर पाय, भई जब रेन, कहे मित बेन । गई ग्रह बात, इतें नृप आत, सबे जन आय, लगे बरजाय । दशा हम कीप, लगी संग जीय, सु खंडित बात, तजी नहि जात । लगेहि विवाद, सु नाहिं सवाद, सु कारन एह, नहीं थिर देह । यह हम जान, तजों शिव थान, कहे तब भीत, निशा ज्यु भीत । चमू मग होय, निवारहु सोय, पती लिख लीन, पुजारिय दीन । लीखी हम राह, न सोधहु काह, कदा उत आउ, हमे न जिवाउ । सबे जन सोय, चले मग होय, जपे हरबान, कियो सु पयान ॥ ९ ॥

सांडिनी सवार भेजा गया है यह सूचना सागर को मिली । रात पड़ने पर सागर ने मित्रों से कहा कि यह खबर घर पहुंची कि महाराज यहां आवेंगे । मिर्क महाराज ही यहां नहीं आवेंगे, वरन् सब कुटुम्बी जन यहां आकर मना करने लगेंगे । परन्तु मैंने जो यह वेष लिया है वह जीव के संग लगा है !! इसलिये उनके कहने पर भी छोड़ा नहीं जायगा, और विवाद होगा जिससे कोई लाभ नहीं । यह मिट्टी और मांस से बना हुआ शरीर स्थिर नहीं, ऐसा समझ कर मैं इस शिवमन्दिर को छोड़ देना चाहता हूं । तब मित्रगण कहने लगे कि रात बीतने पर चतुरंगिनी सेना दूंदने को निकलेगी इसका कोई उपाय कीजिये । तब राजकुमार ने एक पत्रिका लिखकर पुजारी को दी । उसमें लिखा कि 'हमारा मार्ग कोई दूंदना मत, यदि कोई उधर आवेगा तो हमें जीता नहीं पावेगा' । यह व्यवस्था करके वे सब मित्र रास्ते से लग गये । चलते २ 'हर हर' का जाप करते हुए प्रयाण किया ॥ ९ ॥

सोरठा-दरसित देव बिहान, जन जन प्रति पाई खबर ।

सागर कीन पयान, चमू चढ़न चंचल भई ॥ १० ॥

प्रभात होते ही सूर्य का दर्शन हुआ !!! यह सूचना फैल गई कि राज-कुमार कहीं चले गये !! उनके शोध के लिये तुरन्त सेना चंचल हो उठी ॥ १० ॥

पाती लेहि पुजार, तेतेमहि आये तिहां ।

बृद्धो अंत विचार, गुरुजन सब बरजी चढ़न ॥ ११ ॥

इतने में पत्रिका लेकर पुजारी वहां आया, (पत्र पढ़कर) उसमें सागर का अंतिम विचार जान लिया और वृद्धजनों ने सेना को रोक दिया ॥ ११ ॥

कोलाहल सब कीन, नेहनगर (कन्यक) सेना फिरे ।

जोगी अरन पथ लीन, हर हर कर कीनो गमन ॥ १२ ॥

तब सब लोग कोलाहल करने लगे, और सेना नेहनगर की ओर पीछे फिरी । और उधर योगियों ने 'हर हर' करते हुए आरण्य मार्ग की ओर प्रयाण किया ॥ १२ ॥

दोहा-प्रभा प्रभाकर भई प्रगट, बन बन लवत बिहंग ।

कवि भीतसु प्रति सुकनको, पूछन लगे प्रसंग ॥ १३ ॥

सूर्य का प्रकाश प्रकट हुआ, और वनों में पक्षीगण बोलने लगे, तब सुकवि भारतीनन्द अपने मित्र रमसागर से शकुन-सम्बन्धी भेद पूछने लगा ॥ १३ ॥

छप्पय-सुनि सागर वह वचन, भेद निज उकति सु धार्यो ।

सुकन भेद यह सुनो, भित हम सोधि निहार्यो ॥

करनहार किरतार, सुकवि बल बुधि विस्तारत ।

इष्टदेव परसन, सोय सब सत करि डारत ॥

गुरुप्रेम इष्ट हम सत्य है, तो कबहु न बानि फिरिहि ।

शुभ अशुभ भेद हमसें सुनो, सुकन प्रेम रस अनुसरहि ॥ १४ ॥

यह सुनकर रससागर अपनी बुद्धि से वह भेद कहने लगे । मित्रों से बोले कि—हमारे निकाले हुए शकुन-भेद सुनो । कर्ता-हर्ता तो परमेश्वर है परन्तु सुकविगण अपने बुद्धि-बल से उसका विस्तार करते हैं, और जिन पर इष्ट देव प्रसन्न हैं, वे सब सच करके बताते हैं । हमारे भी प्रेमरूपी गुरु और इष्ट देव सत्य हैं तो कभी भी हमारी बाणी पीछे फिरने वाली नहीं है । इसलिये तुम शकुन के शुभ और अशुभ सब भेद हमसे सुनो । यह शकुन भी प्रेमरस का अनुसरण करनेवाला है ॥ १४ ॥

रससागरोक्त नवीनशुकनभेद—छप्पय.

सुकन भेद बहु बिद्ध, वेद तिहि कहत प्रसिद्धि ।

जल थर खेचर जीव, प्रगट ईश्वर सब मध्यहि ॥

ताबानी बुधवंत, श्रवन सुनि चित्त सु धारहि ।

मत मतंत बहु भंत, कृपा गुरु अर्थ विचारहि ॥

जग आदि अंत इहि विधि सकल, ग्यानी बुध बल फल लहत ।

शुभ अशुभ कर्म सब प्रानिके, सुगन व्याज किरता कहत ॥ १५ ॥

शकुन के भेद विविध प्रकार के हैं । जिन्हें वेद प्रसिद्ध रूप में कहते हैं । जल, स्थल तथा आकाश में विचरण करनेवाले सब जीवों में ईश्वर स्थित है । उनकी बाणी सुनकर बुद्धिमान लोग चित्त में विचार करते हैं । उसमें बहुत प्रकार के मत मतान्तर हैं, परन्तु गुरु कृपा से उसका अर्थ विचार लेते हैं । इस सारे संसार में आदि से अन्त तक ऐसा ही चला आता है । इसलिये कितने ही ज्ञानी लोग बुद्धि के बल से उसका फल प्राप्त कर लेते हैं । और प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार शकुन के मिससे करतार प्रभु कह देता है ॥ १५ ॥

छप्पय-पंच तत्वमय पिंड, सोय ब्रह्मांड प्रसिद्धि ।

छिति नभ सिखि जल अनिल, रूप रस प्रसरव गंधहि ॥

निराकार हे शब्द, अवर आकार सु धारिय ।

सबको कारन शब्द, शब्द माया विस्तारिय ॥

सो शब्द विविध है जगतमें, जिहि सु भेद बिरला लहे ।

सुन शब्द ग्यान अनुमान सबद, सो प्रवीण सागर कहे ॥ १६ ॥

यह पिंड पंच-तत्व-मय है तथा ब्रह्माण्ड भी पंच तत्व से बना हुआ है, यह बात सकल लोक में प्रसिद्ध है । तत्वरूप में पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि तथा उनके गुण के रूप में-रूप, रस, स्पर्श, शब्द और गन्ध सब में प्रसारित हैं । इनमें शब्द निराकार है । इसके अतिरिक्त अन्य तत्वों को आकार वाला समझो । उन सबका कारण, शब्द है । माया का भी शब्द ने ही विस्तार किया है । वह शब्द संसार में भिन्न २ प्रकार का है, जिसका भेद कोई बिरला ही पा सकता है । इसलिए जो शब्द के ज्ञान का अनुमान को जानता है, वही चतुरजन कहा जाता है ॥ १६ ॥

शब्द-ब्रह्मनिरूपन—श्लोक.

रसनायां तु यामीना, वृत्तमानेन ग्रंथिता ।

यया प्रकाशिताः शब्दाः, शारदायै नमोस्तु ते ॥ १७ ॥

जो जिह्वा में वास करती है, जो छन्द के वृत्त के माप से गुंथी हुई है, और जिसने शब्दों का प्रकाश किया है, ऐसी हे शारदा देवी ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १७ ॥

प्राणो यस्य प्राण स्याद्वर्णा यस्य च विग्रहः ।

व्यापितः सर्वभूतेषु, शब्दब्रह्म नमोस्तु ते ॥ १८ ॥

ओंकार जिसका प्राण है, अक्षर जिसका शरीर है, और जो सब भूत प्राणियों में व्यापक है, ऐसे हे शब्दरूपी ब्रह्म ! आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥

प्रणवो विस्तरः प्रायो, द्विपंचाशत्समाह्वयः ।

द्वादशास्तस्य चोच्चारः, ह्रस्वदीर्घस्वरान्विताः ॥ १६ ॥

एक प्रणव ही विस्तार पाकर बावन अक्षरों में विस्तृत हो गया है, और उसमें ह्रस्व दीर्घ आदि भेद से उसके बारह प्रकार के उच्चारण हो गये हैं ॥ १६ ॥

सा वर्णमात्रिका यत्र, भिन्ना भिन्ना च योजिता ।

यद्रूपं तत्र व्याप्नोति, तेनेदं व्यापितं जगत् ॥ २० ॥

वही वर्णमात्रिका भिन्न २ प्रकार से युक्त होकर उसी रूप में मिलकर वही तद् रूप बन जाती है, उसी से यह साग जगत् व्याप्त है ॥ २० ॥

दोहा-शुकन विचार अनेक है, मत मतके अनुसार ।

प्रथम सु जोतिष से कहत, ग्रहबल लगन निहार ॥ २१ ॥

भिन्न २ मत (कल्पनाओं) के अनुसार शकुनों के विचार भी अनेक हैं, उसमें सब से पहिले ग्रहबल और लगन देखकर ज्योतिष के अनुसार शकुन कहते हैं ॥ २१ ॥

और स्वरोदयके शुकन, पामा रमल प्रमान ।

केई अंकसु जंत्रके, के पशुखग सुनि बान ॥ २२ ॥

इसके आंतरांग, काइ स्वरादय के अनुसार शकुन कहत हैं, तां कांइ रमल फंक कर शकुन बताते हैं, अथवा कांई मंत्रों के अंक में, और कितने तां पशु पक्षियों की बोली सुनकर शकुन बताते हैं ॥ २२ ॥

ऐसे विविध प्रकार है, शुकन ग्रंथ मत लीन ।

श्रेष्ठ नेष्ट फल जो कहे, सो ईश्वर आधीन ॥ २३ ॥

इस प्रकार पृथक् २ शकुन भेद हैं, इसलिए शकुनसम्बन्धी ग्रन्थों का मत लेकर अच्छा और बुरा फल कहते हैं । तथापि वैसे सब फल एक ईश्वराधीन ही है ॥ २३ ॥

नवीन शुक्लमेद-कवित्त.

कोउ नर प्रच्छक सो, पूछे प्रश्न कारजको, ताके मुख बानीके, बरन गनि लीजिये । चैत्रादिक मास जोउ, द्वितीयासे तिथि सोउ, छूरजसे वार ताके, अंक एक कीजिये । प्रच्छकको नाम तासैं, मिलाये प्रवीण अंक, सबही की एक करी, दुगन थपीजिये । ताको रस भाग अंक, दीजिये बढे-ज्युं रस, नौ रसमें जोइ रस, आवे सो गहीजिये ॥ २४ ॥

कोई प्रश्न पूछने वाला पुरुष आकर आपने कार्यमन्बन्धी प्रश्न पूछे, तो उसके मुख से निकले हुए वाक्य के अक्षरों को गिन लो, फिर चैत्र मास से उस मास तक के अंक और द्वितीया से उस दिन की तिथि तक के अंक, तथा रविवार से उस दिन तक के अंक उसमें मिलादो । प्रश्न करनेवाले के नाम के अक्षरों को भी जोड़ो, चतुर पुरुष उन सब अंकों का एकत्र कर उसमें नव का भाग दे । जो शेष रहे उसे नव रसों में से जो जिस रस की गणनानुसार रहे उसे ग्रहण करना ॥ २४ ॥

नवरस नाम-चौपाई.

प्रथम सिंगार हासपरस दूजे, करुना तृतीय रुद्र चातुर्जे ।
पंचम वीर भयानक षष्ठे, सप्तम विभच्छ अष्टत अष्ट ॥
नवमें शांत महा सुखदाता, ए नवरस जगमहिं विख्याता ।
हास्य सिंगार जु वीर वखानो, अद्भुत शांत पंच शुभ जानो ॥
रुद्र भयानक विभच्छ करुना, अशुभ चार इहि पंडित वरना ।
जो रस तेहि स्वामि गुन धारो, एते पर बहु बुधि विस्तारो ॥
बाइन बसन रूप रंग एही, रसके स्वामी के गुन जेहि ।
सब विचार मनमें फल गहिये, प्रच्छक नरको उत्तर कहिये ॥ २५ ॥

नव रस के नाम—प्रथम शृंगार रस, दूसरा हास्य रस, तीसरा करुण रस, चौथा रुद्र, पांचवां वीर, छठा भयानक, सातवां विभत्स, आठवां अद्भुत,

नववां (महा सुखकारी) शान्त रस । यह नवों रस जगत् में विख्यात हैं । इनमें हास्य, शृंगार, वीर, अद्भुत, और शान्त ये पांच उत्तम फल देनेवाले हैं, और इनके अतिरिक्त वीर, भयानक, रौद्र और करुण ये चार रस पंडितों ने अशुभ कहे हैं । फिर जो रस हो उसके स्वामी का गुण धारण कर उस पर से बुद्धि अनुसार पूरा विचार हो सकता है । फिर रस के स्वामी के वाहन, वस्त्र, रूप, रंग और गुण इन सब का विचार करके अपने मन में उसका फल समझ लेना और फिर प्रश्नकर्ता को उत्तर देना ॥ २५ ॥

सोरठा.

आपे शुकन उपाय, बिन बूझे देखन चहै ।

अन्य प्रति अंक कराय, इन गनती तापर करहु ॥ २६ ॥

स्वयं शकुन करके बिना पूछे जो फल जानने के इच्छुक हों तो वे किसी अन्य के साथ इच्छानुसार अंक बोलवाकर उस पर से प्रथम बताये हुए विधि से गिनती कर लें ॥ २६ ॥

एक द्योस प्रति एक, बूझत सो बानी मिलहि ।

प्रच्छक उक्ति अनेक, बूझहि पे पुनि ना बदहु ॥ २७ ॥

एक दिन एक ही प्रश्न पूछें तो वह बात मिलती है, परन्तु यदि पूछने वाला एक से अधिक बार पूछे तो फिर उसे बताना ही नहीं चाहिये ॥ २७ ॥

दोहा.

सागर शुकन नवीन किय, दीनो मित सुनाय ।

मन द्रढ करि सोधहु शब्द, बानी ब्रथा न जाय ॥ २८ ॥

इस प्रकार सागर ने नवीन शकुन देखने की रीति मित्रों को कह सुनाई । और कहा कि यदि मन दृढ़ कर के शब्द का शोधन करोगे तो वाणी मिथ्या नहीं हो सकती ॥ २८ ॥

सुनत मित सब सत्य किय, उरमें भरे उछाह ।

बोध शांतरस सोध बढ़, बिपन गवन किय राह ॥ २६ ॥

सब मित्रों ने कहा 'ठीक है', और हृदय में उत्साह भर कर उस बोध के अनुसार शकुन विचार किया तो शान्त रस प्राप्त हुआ । फिर जंगल के मार्ग से गमन किया ॥ २६ ॥

गाथा.

सागर जोग सरूपं, अस्तुति इष्ट अरु शुकनं नौतम विधि ।

अष्टषष्टि अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ३० ॥

महाराज सागर द्वारा योगीरूप से दम महाविद्या की स्तुति और नवीन शकुन के वर्णन-सम्बन्धी प्रवीण सागर की यह अड़मठवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३० ॥



६६ वीं लहर

योगीप्रयानक्रियाप्रसंग-दोहा.

जोगी यह साधत किया, कीन गमन कांतार ।

पुर तजि उर अभिलाष प्रिय, निरजन चलत निहार ॥ १ ॥

हृदय में प्रिय से मिलने की अभिलाषा से यह क्रिया साधते हुए उस योगी ने शहर छोड़ कर वन में गमन किया, और निर्जन वीरान मार्ग को देखते हुवे चलने लगे ॥ १ ॥

छंद दुमिलिया.

उठि प्रात सु मंजिय, दुरित गंजिय, भूति सु रंजिय, ग्यान गढ़े ।
 बघ चंमर डारिय, आसन वारिय, नासु निहारिय, ध्यान द्रष्टे ॥ मरुतागति
 रोधिय, पूरन बोधिय, शंकर शोधिय, वृत्ति जमे । जटधार सु जोगिय, पूरव
 भोगिय, प्रेम प्रयोगिय, देह दमे ॥ इक पोर सु तप्पिय, जंत्र सु थप्पिय,
 मंत्रहि जप्पिय, तंत्र जथा । जुग जाम सु वित्तहि, सेव उथितहि, तत्र कथि-
 त्तहि, प्रेम कथा ॥ सहजावत भाखिय, इच्छम अखिय, नेह नरखिय,
 प्रेम क्रमे । जटधार सु जोगिय, पूरव भोगिय, प्रेम प्रयोगिय, देह दमे ॥
 उबटावट सद्विय, त्यागत रद्विय, शील सु बुद्विय, चित्त सजे । थरठोर
 भयंकर, घाट गिरब्वर, भंगर अंबर, सोय रजे ॥ वनराय सु मुक्किय, पंख
 प्रलंबिय, रिच्छपुगं सिय, तत्र रमे । जटधार सु जोगिय, पूरव भोगिय, प्रेम
 प्रयोगिय, देह दमे ॥ जहां भूत पिशाचनि, डाकनि शाकनि, प्रेत पुरातनि,
 ज्वाल धखे । सिगरे बह साधत, ईश अराधत, मोदसु बाढ़त, खेल लखे ॥
 अगमागम कीनह, एक महीनह, बाग प्रवीनह, में बिलमे । जटधार सु
 जोगिय, पूरव भोगिय, प्रेम प्रयोगिय, देह दमे ॥ २ ॥

प्रातःकाल उठ कर स्नान करके. पाप समुदाय का विदारण करते, फिर अंग में विभूति लगा कर, ज्ञान में तल्लीन होजाते । वाघम्बर बिछा कर आसन लगाके,

एक-दृष्टि से नासिका के अग्र भाग पर ध्यान लगा चित्त-वृत्ति को एकाम्र करते। प्राण-वायु की गति को रोककर, पूर्ण बुद्धिमत्ता से शंकर-स्वरूप को शोध उस में वृत्तियों को एकत्रित करते। इस प्रकार जटाधारी, परन्तु पूर्व के भोगी, प्रेम के प्रयोग वाले योगी, देह का दमन करने लगे ॥

एक पहर तक तप करने के बाद, त्रिधियुक्त यंत्र की स्थापना करके, मंत्र का जाप करते। इस प्रकार दो प्रहर व्यतीत होने पर, सेवा से निवृत्त हो, प्रेम-कथा का गान करते। सहज में (ईश्वर कृपा से) प्राप्त होजानेवाली वस्तु का प्रेम से भोजन करते। बाहर के माफिक पदार्थों को नेत्र से भी देखने की अभिलाषा ही नहीं करते, केवल प्रेम का क्रम करके वर्तते, ऐसे जटाधारी, पूर्व के भोगी, प्रेम के प्रयोग वाले योगी, देह का दमन करने लगे ॥

रास्ते चलते भी साधन करते। सब ऋद्धियों (द्रव्यों) का त्याग कर दिया, शील और उत्तम बुद्धि का चित्त में धारण किया। भयानक स्थानों में निवास करते। पर्वतों की घाटी, वन उपवन व झाड़ी तथा ऊंचे गिरिशृंग, उन्हें अच्छे लगते। उन वन और उपवनों में नाना प्रकार की बेल-लताएं छोटे मोटे वृक्ष, फल फूल कर भुक रहे हैं, और प्रबल पक्षी, रीछ, मृग और शृगाल मग्न होकर मौज करते हैं। इस प्रकार जटाधारी, पूर्व के भोगी, प्रेम के प्रयोग वाले योगी, देह का दमन करने लगे ॥

जिस जगह भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि बसते हैं, पुरातन प्रेतों की चिताओं की ज्वालाएं धधक रही हैं, वहां सब योगी साधन करते तथा ईश्वर की आराधना करते, और प्रसन्नता-पूर्वक आकर उनके रमण को देखते। इस प्रकार अग्रम्य मार्ग से गमन करके, एक मास में प्रवीण के वाग में आकर पहुंचे। इस प्रकार जटाधारी, पूर्व के भोगी, प्रेम के प्रयोग वाले योगी, देह का दमन करने लगे ॥ २ ॥

सोरठा-इहि विधि गमनसु कीन, जोगी निज साधत किया।

बलिभित वाग प्रवीन, एक मास अटवी सप्त ॥ ३ ॥

इस प्रकार अपनी किया करते हुए इन योगीजनों ने एक मास चलने के उपरान्त प्रवीण के बाग में पहुंच कर सुकाम किया ॥ ३ ॥

किय मनछा विश्राम, नयन लाय मनछापुरी ।

सुधि आवत सुर धाम, धाम धाम केतू कलस ॥ ४ ॥

मनछापुरी को दृष्टि में लाकर वहां रहने की इच्छा की । उस नगर के प्रत्येक घर पर के ध्वजा तथा चमकते हुए कलश को देखकर देवधाम भी फीका हो रहा था ॥ ४ ॥

मित्र प्रजा पुर देश, विनता सुत आमात भ्रत ।

नितहि पाल नरेश, सोहे संपति सप्त जुत ॥ ५ ॥

मित्र, पुर की प्रजा, देश, बनिता, सुत, वजीर और भृत्य इन सात प्रकार की सम्पत्तियों सहित राजा नीतिपाल वहां शोभित हैं ॥ ५ ॥

कलाप्रवीनदशावर्धन, जातिस्वभाव अलंकार-छप्पय.

कुमरी कलाप्रवीण, छिनहु मन तन न परे सुख ।

बिरह विकल दिन रेन, जपे सागर सागर मुख ॥

पुर निज बाग पुरान, फूल फल मालिनि लावे ।

निज न सुहावत सोय, सखी जनसे बकसावे ॥

दरसाइ सांभ चुनवे सुमन, मालिनि चलि उपवन गही ।

संन्यास सप्त आसन रचित, बीच कुंज दरसे बही ॥ ६ ॥

कुमारी कलाप्रवीण को एक क्षण भी मन में चैन नहीं पड़ा । वियोग की विकलता से अहर्निश 'हे सागर, हे सागर' का जप मुख से करती रहती है । नगर के समीप एक उसका बाग है, जिसमें मे हमेशा मालिन नाना प्रकार के पुष्पहार तथा गजरा और भांति २ के मधुर फल ले आती, परन्तु उसे अच्छा नहीं लगता । वह उन्हें अपने प्रियजनों, सखी-सहेलियों को दे देती । आज भी हमेशा के अनुसार संन्यास-समय फूल चुनने के लिये

मालिन उस बाग में गई, और उसने देखा कि कुंज के मध्य सात योगी आसन लगाये बैठे हैं ॥ ६ ॥

दोहा.

मालिनी संन्यासी दरसि, परसी आय सु पाय ।

सुभग रूप शिशुता सु बय, लखि अद्भुत सु लाय ॥ ७ ॥

मालिन ने संन्यासियों का देखकर उनके चरणों का स्पर्श किया, परन्तु उनके सुन्दर रूप तथा बाल्यावस्था को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गई ॥ ७ ॥

चौपाई.

मालिनि जोगि बूझने लग्गे, तुम ले सुमन जाहु किहि जग्गे ।

मालाकार कही तव नारी, कलाप्रवीण कीन फुलवारी ॥

ले फल फूल उहां नित जावे, अंदरकी देहरी रहावे ।

दुज दुहिता कुसुमावलि जोहि, रहे प्रवीण पास नित सोही ॥

समय पिछान देहुरी आवे, सोय हजूर सुमन पहुंचावे ।

पहुंच बात जोगि जिय चीनो, निज निज महि विवाद यह लीनो ॥

एक कहे वह हमें पिछाने, बड़े लोग इक कहे कह जाने ।

मुनि विवाद मालनी कहाई, आपे दरस वहे कह पाई ॥

जोगि कहे द्वारिका सिधाये, संगमघाट दरस उन पाये ।

और कही इन संग कहाओ, ब्रह्मनि तुम आशिषा सुनाओ ॥

कहिहो ? हां, मालनी कहीजे, उन प्रति हमें आशिषा दीजे ।

द्वारामतिकी देहु निशानी, उनकों तबहि परेगी जानी ॥

मालनि कहे काल फिर आवें, तब तहकीक खबर सब लावें ।

चुनि फल फूल बाज महि लीने, सहर प्रवेश मालनी कीने ॥ ८ ॥

मालिन जब उनके समीप गई तो योगियों ने पूछा कि, तुम फूल लेकर कहाँ जाओगी ? तब मालिन ने कहा कि, यह फुलवारी राजकुमारी प्रवीण ने लगवाई

है, इसलिए यहां से फल-फूल लेकर मैं सदा उस राजकुमारी के पास जाती हूं। जब राजमहल के अन्दर की ड्योढी पर जाकर पहुंचती हूं, तब राजकुमारी के पास सदा रहने वाली द्विज-दुहिता कुसुमावलि समय जानकर वहां आती है, और मेरे पास से पुष्प लेकर कुमारीजी की सेवा में पहुंचा देती हैं। मालिन की यह बात सुनकर योगी लोगों ने अपने २ मन में विचार कर आपस में चर्चा चलाई। एक ने कहा कि मुझे वह पहचानती है, दूसरे ने कहा कि बड़े लोगों की क्या पहचान ! योगियों की यह चर्चा सुनकर मालिन बोली कि, आपने उन्हें कहां देखा ? तब एक योगी ने उत्तर दिया कि हम द्वारिका गये थे, तो वहां संगमघाट पर उन्हें देखा था। बीच में ही एक योगी ने कहा कि, ऐसा है तो इस मालिन के द्वारा उस ब्रह्मकुमारी को अपना आशीर्वाद कहलाओ। तब योगी ने मालिन से पूछा कि, क्या तुम कुसुमावलि से हमारा आशीर्वाद कहोगी ? मालिन ने उत्तर में 'हां' कहा। तब योगी ने कहा कि, ब्रह्मपुत्री को हमारा आशीर्वाद कहना और द्वारामती की निशानी बतलाना कि जिससे तुरन्त उसे ध्यान हो जायगा। तब मालिन ने कहा कि, कल मैं फिर आऊंगी, तब सब समाचार ले आऊंगी। ऐसा कह कर फल-फूल चुनकर मालिन ने शहर में प्रस्थान किया ॥ ८ ॥

दोहा.

मालिनि सहर प्रवेश किय, लिये सुमन फल बाज ।

यूथ लंघि पहिराय तन, गई देहुरी राज ॥ ९ ॥

फल-फूल लेकर मालिन ने नगर में प्रवेश किया, और पहरेदारों को पार कर राजद्वार में गई ॥ ९ ॥

छंद निशिपालिका.

मालनिहि राज नवमी सपत देहरी, बानि सुनि तास गई अंद्र इक चेहरी ।
भाषतहि नीठ परवीण कुसुमावलि, बात सुनि ब्रह्म उठि पुष्प लहने चली ।
आइ निज देहुरिहि मालनिहि देखही, बाज वह फूल निज हस्त अपने लहि ।

बाग प्रतिपाल बिनता तबहु ये कही, आज निज बाग अवधूत अय सातही ।
आशिषहि आप उनमध्य इकही कही, बारिनिधियें मिलित याद तुम यां दही ।
फेर संनियास चरचा सु भखही सबै, चित कुसुमावलि हि चटसु सुलगी तबै ।
कौन उन जानियत जोगि उत हे घने, फेर यह केत अनुहार दिखते बने ।
काल प्रति सांभ हम बागमहि आयँगे, बाद संनियास दरशंत सु मिटायँगे ।
यों कहि मालनिहि थान बिदया करी, फूल लहि आप दरबार अंदरं फरी ॥ १० ॥

जब मालिन राजमहल की नवबीं ड्योढी पर पहुंची, तो उसकी आवाज सुन एक दामी अन्दर गई, और कलाप्रवीण तथा कुसुमावलि के पास जाकर खबर दी । यह सुनकर कुसुमावलि उठी, और पुष्प लेने चली । फिर उसने ड्योढी पर आकर मालिन के पास से फल और फूलों से भरी हुई छबड़ी अपने हाथ में ली । तब बागवान की स्त्री मालिन ने इस प्रकार कहा कि—आज अपने बाग में सात अवधूत आये हुए हैं, और उनमें से एक ने आपको आशीर्वाद कहा है । निशानी में उसने आप से द्वारिकापुरी में समुद्र के किनारे मिलन होने की बात कही है । इस प्रकार अवधूतों की सब चर्चा उसने कही । तब कुसुमावलि के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई । परन्तु फिर उसने सोचा !! कौन जाने !! ऐसे तो बहुतेरे योगी हैं ?? । फिर उसने कहा कि सामने देखने से पता लगे, इसलिए कल संध्या-समय बाग में आऊंगी, तब संन्यासियों को देखकर निश्चय करूंगी । ऐसा कह कर मालिन को विदा किया, और फूल लेकर स्वयं दरबार में अन्दर चली गई ॥ १० ॥

सोरठा—कुसुम कुसुम ले पान, कलाप्रवीण हजूर किय ।

बदी न मालनि बान, मनही मन सोधत मतो ॥ ११ ॥

कुसुमावलि ने हाथ में कुसुम (पुष्प) लेकर कलाप्रवीण की सेवा में उपस्थित किये, परन्तु मालिन की कही हुई बात को प्रकट नहीं किया, स्वयं अपने मन में ही विचारती रही ॥ ११ ॥

शर्वरि बहत व्रतंत, मालिनि गई सु बाग महि ।

चरचा जोग चलंत, कही कुसुम उक्ती तहां ॥ १२ ॥

रात बीतने पर, दूसरे दिन प्रातःकाल में मालिन फिर बाग में गई, और योगियों से चर्चा चलने पर कुसुमावलि की बात उन्हें कह सुनाई ॥ १२ ॥

द्रढ मन कियो संन्यास, वह दिन बाग बिलंब किय ।

कुसुम विलोकन आस, दिनकर नय दूनी बढ़त ॥ १३ ॥

योगियों ने उस दिन बाग में और विलम्ब तक मन की दृढ़ता का अभ्यास किया । परन्तु ज्यों २ सूर्य छिपने लगा, त्यों २ कुसुमावलि के देखने की अभिलाषा उनके हृदय में तीव्र होती गई ॥ १३ ॥

छप्पय—दिनकर नय दरसंत, कुसुम परवीण अरज किय ।

विनय कीन्ह बहु बार, लखन उपवन सासन लिय ॥

कही चलत मुसकाय, बाग जोगी कोउ आये ।

उन मेरी करि याद, आशिषा वचन पठाये ॥

पहिचान परे उनकी सु उत, एक पंथ दुहु काज हे ।

फिर द्वार आय फंदन चढ़ी, उभय सजे जिहि बाज हे ॥ १४ ॥

सूर्य को छिपते देखकर कुसुमावलि ने प्रवीण से निवेदन किया । तथा बहुवार नम्रतापूर्वक विनय करके उपवन देखने की अनुमति प्राप्त की, और चलते-चलते मुसकराते हुए कहा कि—बाग में कोई योगी आए हुए हैं, उन्होंने मुझे याद करके आशीर्वाद कहला भेजा है । इसलिये वहां जाने से उनकी पहिचान भी होगी, इस तरह 'एक पंथ दो काज' है । फिर द्वार पर आकर, सजे हुए दो घोड़ों से जुते हुए रथ पर सवार हुई ॥ १४ ॥

दोहा—बाज जोरि चक्री सु चढ़ि, लिय कुजाक निज संग ।

कुसुम सु पुगिय कुसुमवन, परसत धरनि पतंग ॥ १५ ॥

घोड़ों से जुते हुए रथ पर आरुढ़ होकर और साथ में अंग-रक्तक लेकर—
कुसुमावलि, सूर्य के अस्त न होते होते कुसुम-वन (फूलों के बाग) में
पहुंची ॥ १५ ॥

चौपाई.

बाग दुहार कुजाक बैठाई, आप कुसुम उपवन प्रति आई ।
दरश पाय जोगेश्वर चीने, आय नीठ अभिबंदन कीने ॥
ब्रह्मनि म्रदु मुसकाय कहायो, बहुरि कहा परपंच बनायो ।
जोगी कही प्रपंच न कीनो, अब के सत्य जोग हम लीनो ॥
मुनियत कुसुम नैन भरि आये, बहुरि बानि बोलीहु न जाये ।
जोगि ब्रह्मनी धीर द्रढ़ाई, नीठ नीठ चरचा सु चलाई ॥
दुज दुहिता बतियन पुनि लग्गी, कलाप्रवीण खबर उन मग्गी ।
ब्रह्मनि आप बतावे सोई, कलाप्रवीण गुजर क्यों होई ॥ १६ ॥

बगीचे के द्वार पर रखवालों को बैठा कर, कुसुमावलि बाग के अन्दर गई,
और योगियों के दर्शन कर उसने उन्हें पहिचाना । फिर समीप जाकर उन्हें नमस्कार
किया, और वह ब्रह्म-कुमारी मृदु हास्य से बोली कि, यह प्रपंच क्यों ? तब
योगियों ने उत्तर दिया कि, यह प्रपंच नहीं है, हमने अब सचमुच योग ले लिया
है । यह सुनते ही कुसुमावलि की आंखों में पानी भर आया, और फिर उससे
बोला नहीं गया, तथा उसका कंठ गदगद् होगया । तब योगियों ने ब्रह्मकन्या को
धीरज देकर जैसे तैसे करके उससे चर्चा चलाई, तब वह ब्रह्म-कुमारी बात करने
लगी । तब उन्होंने उससे कलाप्रवीण के समाचार मांगे और कहा हे ब्रह्मसुता !
हमें बताओ कि कलाप्रवीण की गुजर किस प्रकार होती है ?? ॥ १६ ॥

दोहा—संन्यासी मुख बानि सुनि, कुसुम सु कही उचार ।

आठ जाम अठ अठ घरी, यो परवीण गुजार ॥ १७ ॥

संन्यासी के मुख से यह बात सुनकर कुसुमावलि ने कहा कि—कला प्रवीण
के आठों पहर और आठों घड़ी इस प्रकार चीतते हैं:—॥ १७ ॥

कुसुमावलि उक्ति, कलाप्रवीणदशावर्णन—छंद तोटक.

अध जाम निशा उठ मंज तनं, इक आसनसे द्रढ लाय मनं । प्रतिमा
उमया शिवको ज्यु थपे, अरचा चरचा कर मंत्र जपे । इकजाम सु सागर ध्यान
धरे, गुजरान युंही परवीण करे ॥ उथपे अरचा चरचा सु चले, इतने महि
ब्रंद सखी सु मिले । बतियां सब बोलत इच्छ जथा, वह प्रेम उचारत गूढ
गथा । इक जाम सु गोप उसास भरे, गुजरान युंही परवीण करे ॥ असनं
विविधं विध होत तबे, मन इच्छ अरोगत ओर सबै । इतने महि याद लगे
मनमें, उठ बैठत दूर जमे न जमें । मिस नीद सुबे इक जाम जरे, गुजरान युंही
परवीण करे ॥ पुनि बैठत सोच करे चितमें, सहियां फिर आय जुरे तितमै ।
विविधं विनता जन खेल लगे, उनकी सुरता सु लगी न डगे । इक जाम
लगे न घरी बिसरे, गुजरान युंही परवीण करे ॥ उत आप समान सबे
अबला, तहां गायन साधत गान कला । सब रीकत गान संगीत लखे,
उनकों बिरहा सु कमी न रखे । इक बीतत जाम बड़े कहरे, गुजरान युंही
परवीण करे ॥ तितही फिर भोजन आवत हे, अन्य खावत आप न पावत हे ।
विनता अपने ग्रह जाय रहे, उतमें उठ आप इकंत ग्रहे । समरंत सु मित
पहेर परे, गुजरान युंही परवीण करे ॥ उर मानसि मित समीप भजे, अभि-
सार दशा ग्रहि अंग सजे । चितरान लिखंत अनंग बड़े, लहि जोगिनि
रूप विभूति चढ़े । सुपनेश्वरि जाम जप उचरे, गुजरान युंही परवीण करे ॥
बिरहा रस रीत कवीत कहे, हम गावत तान सु बीन गहे । चरचा निज
मित करे मुखसे, अमुआन भरी उलटे चखसे । मुरझायत सोय पहेर गरे,
गुजरान युंही परवीण करे ॥ अठपोर सु प्रेम प्रसंग सधे, दिनहु दिन व्याध
असाध बधे । छिनही छिन देह दशा पलटे, बिरहा सु बड़े तन जोत घटे ।
कुसुमं सु कहे हम देख जरे, गुजरान युंही परवीण करे ॥ १८ ॥

पिछली आधी रात जब बाकी रहती है, तब से ही उठकर स्नान करके एक
आसन लगा मन को दृढ़ करती है । शिव-पार्वती की प्रतिमा स्थापन कर, नाना प्रकार
गंधादि से पूजा अर्चा करती और मंत्र जाप करती है । फिर एक प्रहर तक रससागर

का ध्यान करती है, इस प्रकार कलाप्रवीण कालक्षेप करती है ॥ फिर पूजा का उद्यापन करके चर्चा चलाती है, इतने में सखीवृन्द आकर मिलती हैं और अपनी इच्छानुसार बात चलाती हैं । परन्तु प्रवीण तो प्रेम की गूढ़ बातें ही बोलती है, तथा एक पहर तक गुप्त रीति से उसमें लेती है । इस तरह कला-प्रवीण गुजर करती है ॥ वहां तरह २ के भोजन तैयार होते हैं, जिन्हें अन्य लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार खाते हैं, परन्तु जीमते २ प्रवीण के मन में उसके जीवन-स्वरूप रससागर का जब ध्यान आ जाता है तो कुछ खाया कुछ नहीं, उठकर दूर चली जाती है, और निद्रा का बहाना करके सो जाती है, और एक पहर तक पड़ी २ मित्र के वियोग की आहें भरती रहती है । इस तरह हमेशा प्रवीण गुजरान करती है ॥ फिर बैठी होकर चित्त में विचार करती है, तब तक सहेलियां आ जाती हैं, और वे सब सुन्दरियां नानाप्रकार के आमोद-विनोद करती हैं, परन्तु कलाप्रवीण का ध्यान तो मित्र में लगा हुआ रहता है, और जरा भी नहीं डिगता । एक पहर तक इस तरह मित्र के ध्यान में संलग्न रहती है । उस ध्यान को एक क्षण भी नहीं भूलती । इस प्रकार प्रवीण निरंतर गुजरान करती है ॥ उसकी सम-वयस्क सखियां संगीत-विधि के अनुसार गायन करती हैं । उन कोमलांगी और मधुरकंठ वाली बालाओं के गायन को सुनकर सभी प्रसन्न और मुग्ध हो जाते हैं, परन्तु प्रवीण को यह विरह कोई कभी नहीं रखता, अर्थात् वह तो विरह में जलती ही रहती है । इस तरह एक पहर भारी संकट से बिताती है । इस तरह प्रवीण नित्य गुजारा करती है ॥ इतने में फिर भोजन आजाता है, और सब लोग जीमते हैं, परन्तु वह नहीं जीमती । उसके बाद सब सखियां अपने २ घर जाती हैं, और प्रवीण वहां से उठकर एकान्त में एक पहर मित्र का ध्यान करती है । इस तरह प्रवीण सदा गुजर करती है ॥ हृदय में सदा मित्र से समागम का ध्यान रखती है । अभिसारिका नायिका की दशा लेकर अंग में शृंगार करती है, और मित्र की छवि दीखते ही अनंग बहुत बीधता है । फिर जोगिनी का वेश लेकर शरीर पर भस्म लगाती है, और एक पहर तक स्वप्रेम्वरी देवी का जप करती है । इस प्रकार प्रवीण गुजरान करती है ॥ फिर विरह, रस की रीति के कवित्त कहती है, और मैं वीणा लेकर उन्हें

तान में गाती हूं, तब प्रियतम की वियोगिनी प्रवीण निज मुख से मित्रकी चर्चा करती है। उस समय उसके नेत्रों में से श्रावण भादों की झड़ी की भांति आंसुओं की झड़ी उलट पड़ती है, जिसकी पीड़ा में विकल हो एक पहर तक मूर्च्छित हो पड़ी रहती है। इस प्रकार प्रवीण अपना गुजरान करती है ॥ आठों पहर प्रेम का प्रसंग साधन करती है। दिनोंदिन असाध्य दुःख बढ़ रहा है, क्षण २ में उसके शरीर की स्थिति बदलती है। विरह बढ़ता है, शरीर का तेज घटता जाता है। कुसुमावलि कहती है कि, उसे देखकर मैं जलती रहती हूं। इस प्रकार प्रवीण गुजरान करती है ॥ १८ ॥

दोहा—कलाप्रवीनं दशा कही, कुसुमावली बनाय ।

यह गुजर उनको सदा, जपत भित दिन जाय ॥ १९ ॥

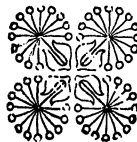
कुसुमावलि ने इस प्रकार बनाकर कलाप्रवीण की दशा बतलाई, और विशेषरूप से कहा कि इस प्रकार उसका सदा गुजरान है कि, मित्र के नाम का जप करते हुए दिन बीतते हैं ॥ १९ ॥

. गाहा.

योगि गमन उद्यानं, ब्रह्मनि उक्ति प्रवीन गुजर विधि ।

नवषष्ठी अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ २० ॥

योगियों का बाग में गमन, तथा कुसुमावलि द्वारा प्रवीण के गुजरान की विधि के वर्णन संबंधी यह प्रवीणसागर की उनहत्तरवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २० ॥



७० वीं लहर

बागवर्षान-रससागर-कलाप्रवीणप्रसंग-दोहा.

कहत तबे कुसुमावली, आय भले संन्यास ।

उर महि उन अनुराग भरि, कीजहु बाग निवास ॥ १ ॥

तब कुसुमावलि कहने लगी कि, हे संन्यासी ! आप भले आए । प्रवीण के हृदय में प्रसन्नता देते हुए आप इस बाग में निवास करो ॥ १ ॥

कुसुमावलि उक्त शिवाक्षेप-अलंकार-कवित्त.

कुंद जपा केसरहे, भिल्लि दादुरा उचारे, खेलत मराल रंभा, पीपर सुहावने । कुसुम अनेक नाग, बेल चंपा नारंगन, अंब बिंबहे अनार, कोकिल लवे घने । कीर अलि उच्छव, अंगूर पुंग लोंग एला, खंज कंज मधुक, मयूर सारसा गने । कीश ईश बंदिये, उयु नंदिये मरालनाथ, उन अभिलाष आप, बागमें रहे बने ॥ २ ॥

फिर कुसुमावलि कहने लगी कि, इस बाग में कुंद, जपा और केसरहैं, भींगुर और दादुर बोलने रहते हैं । हंस इधर उधर खेलते हैं, केले और पीपल के सुहावने वृक्ष हैं । अनेक प्रकार के पुष्प, नागरबेल, चंपा, नारंगी, आम, बिम्बाफल और अनार हैं । अनेक कोयल बोलती रहती हैं, कीर और भ्रमर आनन्द उत्सव मनाते हैं । अंगूर, पुंगीफल (सुपारी), लोंग, इलायची आदि के झाड़ हैं, खंजन पत्ती, कमल, मधुकर, मोर और अनेक सारस भी हैं । इसलिए वानरों के ईश श्रीरामचन्द्रजी को वन्दन तथा मरालनाथ ब्रह्मा की निंदा करते हुए आप बाग में रहोगे तो प्रवीण की अभिलाषा पूर्ण होगी ॥ २ ॥

पूखोंपमालंकार-सवैया.

कोकिल रंभन थंभन कूजित, अंब कदंब गुलाबहि फूले ।

छूटत हे जलजंघ चहु दिश, ताल तमाल लता तर भूले ।

केसर मालति कुंद जुही पर, डोले मधूकर भूलेइ भूले ।

या छवि बाग प्रवीण बसो इत, ❀ चित्त रहे हम खुलेइ-खुले ॥ ३ ॥

केलों के खम्भों पर कोकिला कूक करती रहती है । आम, कदंब और गुलाब फूले हुए हैं । चारों ओर फौवारे छूट रहे हैं । ताड़, तमाल और वृक्षों पर लताएं भूल रही हैं । केसर, मालती, कुंद और जुही पर भंवरे मंडला रहे हैं । इस प्रकार के छविवाले इस प्रवीण के बाग में आप रहो तो हमारा मन प्रसन्न होवे । इसलिये हे योगीजन ! आप सदा यहीं रहो ॥ ३ ॥

सोरठा-बाग सु वर्नन कीन, बसवेकी ब्रह्मनि कही ।

तब प्रति-उत्तर दीन, सागर श्रीमुख कुसुमसैं ॥ ४ ॥

बाग का वर्णन करके वहां रहने के लिये ब्रह्मकन्या ने संन्यासी से कहा । तब सागर श्रीमुख से कुसुमावलि को उत्तर देने लगे ॥ ४ ॥

सागरोक्त स्मरणालंकार-सवैया.

बिंब अनार दराख मिलावत, कीरहि टेरत क्यों न चरे ।

नारिंग ताल जंझीरन के फल, पंकज पत्र लपेट करे ।

फूले प्रधन गुलाबन लाल, हजारिकि ले पखरी बिखरे ।

बासर बाग बितावत यों, हम प्यारि प्रवीण कि चाह भरे ॥ ५ ॥

सागर ने कहा कि—बिम्ब, अनार और द्राक्ष प्राप्त करते हैं, परन्तु खाते नहीं और सुवा को बुलाते रहते हैं । नारंगी, ताड़ फल, तथा निम्बू लेकर कमल के पत्ते में लपेटते रहते हैं । फूले हुए फूल, गुलाब और लाल रंग का हजार लेकर उनकी पंखड़ियां बिखेरते हैं । इस प्रकार प्यारी प्रवीण की चाह में भरे हुए हम, इस बाग में समय बिताते हैं ॥ ५ ॥

यमकोत्प्रेक्षालंकार-सोरठा.

यह हे बाग अलोक, अवलोकत शिवलोक मुख ।

बिन परबीन सशोक, मनहु कोक दिनमनि बिहिन ॥ ६ ॥

नोट—“जोग सदा कहलासहि तुले” ऐसा भी पाठान्तर है—ग० ज० शास्त्री.

यह बाग अलौकिक है, इसे देखकर शिव लोक का आनन्द आता है ।
परन्तु एक प्रवीण के बिना हमें यह शोकरूप हो रहा है, मानो सूर्य के बिना
चकवा ॥ ६ ॥

छेकोक्ति-अलंकार-सोरठा.

सबे कहत सन्यास, गहन रहन नांहीन निकट ।

प्राण प्रेम बस पास, कहा अंग अंतर भयो ? ॥ ७ ॥

सब लोग कहते हैं कि, संन्यासी को गुफा में रहना चाहिये, बस्ती के
प्रदेश में नहीं रहना चाहिये । परन्तु यह प्राण तो प्रेम के बश होकर प्रवीण के
पास निवास करता है, फिर क्या करें ? अरे ! शरीर में यह अन्तर क्यों
हुआ ? ॥ ७ ॥

छप्पय-एती कहि सन्यास, एक पाती लिख लीनी ।

पठवन कलाप्रवीण, करे कुसुमावलि दीनी ॥

इन प्रति उत्र लिखाय, काल उपवन फिर आओ ।

उत्तर आनन उक्ति, आप उनके सब लाओ ॥

धारबी धीर उनके सु मन, याद अंतर भव कीजिये ।

उन प्रति अरजी कीजे इती, हम बिदाय स्र दीजिये ॥ ८ ॥

इतना कह कर संन्यासी ने एक पत्रिका लिखी, और उसे कलाप्रवीण को
देने के लिये कुसुमावलि के हाथ में दे दिया । और कहा कि इसका उत्तर लिखाकर
कल फिर इसी बाग में आना, और जो कुछ वह जबानी कहे उसे भी भली
प्रकार ले आना । उसके कोमल मन में धैर्य दिलाना, और कहना कि हृदय में
उमा-महेश का स्मरण करे । और फिर निवेदन करना कि हमें विदा करे ॥ ८ ॥

दोहा-प्रेम उसासा उर भरे, नेन नीर भर आय ।

रससागर पाती दर्ई, ब्रह्मानि भेद सुनाय ॥ ९ ॥

इतने में सागर के हृदय में प्रेम का प्रवाह उमड़ आया, और नेत्रों में पानी भर गया । इस प्रकार विह्वल-वदन से कुसुमावलि को भेद समझाकर कलाप्रवीण की पत्रिका उसे दी ॥ ९ ॥

वह पाती उदाहरण—छंद भुजंगी.

परब्वीन प्रेमं कला आप जानो, उरं बीच काहू उदासी न आनो ।
तुमें जादिनां सें वही व्रत लीया, दिनां वाहीसें जोग आराध कीया ॥
हमें आजमें साधना कां बनावे, वही बातका आप धोखा न लावे ।
लिखा भाग में सो न कोऊ उथपे, अगे पंडवं राम आरण्य तपे ॥ ~
बसे चित दूरंतरे सो न जानो, शशी सूर कूमोद कंज प्रमानो ।
जहां जायके जोग धूनी तपेगे, तहां आपके नाम दामं जपेगे ॥
सधंते वही साधना आप लावे, हमें आप आराधसें सिद्धि पावे ।
वही चितमें ईश उच्चार धारे, हमें सोंह जो आप ऊनी विचारे ॥
सुपने मिलेंगे प्रती माम दोऊ, सुरत्ता लगाओ सु आधार सोऊ ।
मिलेंगे नहीं ए अँदेसा न रखे, इतें आँयगे प्रत्य एके बरखे ॥
हमें जोग साधे महा सिद्धि लीजे, धरे धारनाकों बिदागीरि दीजे ।
भरे नीर नेनां भरी आइ छत्ती, दई सागरे ब्रह्मनी पान पत्ती ॥ १० ॥

उस पत्र में लिखा था कि—हे प्रवीण ! आप प्रेम की कला को जानती हो, हृदय में कभी भी उदासी का भाव मत ले आना । तुमने जिस दिन से कुमारिका-व्रत लिया और योग-साधन में लगी, उसी प्रकार से हम भी साधना करेंगे । इसलिये कोई शङ्का मत करना । जो भाग्य में लिखा है, उसे कोई मिथ्या नहीं कर सकता । प्राचीन काल में पांडव और राम ने भी वनवास करके तप साधन किया था । जो चित में है, वह कभी दूर नहीं होता, चन्द्र तथा सूर्य से कुमोदिनी तथा कमल दूर नहीं हैं । जहां जाकर जोग धुनी तपेंगे, वहां आपके नाम की माला जपेंगे । आप जो साधन साधती हैं, उसकी सिद्धि अवश्य पायेंगी । इसी तरह हम भी अपनी आराधना से सिद्धि पावेंगे । हमने ईश्वर

का नाम लेकर यही चित में धार रक्खा है । इसलिये तुम मन में कोई खेद मत ले आना । और जो तुम ले आओ तो तुम्हें हमारी सौगंध है । हम दोनों प्रतिमास स्वप्न में मिलेंगे । उसी का ध्यान लगाकर रहेंगे, यही बड़ा आधार है । यह अन्देशा मन में मत रखना कि, मिलना नहीं होगा, क्योंकि एक वर्ष बाद हम यहां फिर आवेंगे । हमने योग-साधन से महासिद्धि प्राप्त करने की धारणा कर रक्खी है, इसलिये अब बिदा दो । इतना लिखते २ छाती भर गई और आंखों से पानी आने लगा । फिर सागर ने वह पत्रिका कुसुमावलि को दी ॥ १० ॥

सोरठा-कुसुम सु पाती दीन, प्रेम भरे पीछी लही ।

काव्य नवीन सु कीन, तामु अंत पुनि लिखत हे ॥ ११ ॥

कुसुमावलि को पत्रिका दे तो दी, परन्तु हृदय में प्रेम भर आने से उसे वापस ले लिया । और नवीन काव्य बनाकर फिर पत्र के अन्त में लिखा:—॥ ११ ॥

समरूपक-अलंकार-सोरठा.

जोगी काम कराल, तन तीरथमें मन मदी ।

प्रेम पाहुरी ज्वाल, ब्रह्म धूनी दूनी जगे ॥ १२ ॥

कामरूपी महाविकराल योगी तनरूपी तीर्थ की मनरूपी मदी में रहता है, वहां प्रेमरूपी बावरी में विहररूपी धूनी दूने वेग से सुलगाता है ॥ १२ ॥

समरूपक-अलंकार-सवैया.

नाभिके कुंड अहोनिश मंजत, लुटत घाट त्रिकाल ठहो ।

आवलि संचरसैं चढ़िकें, उत चोकि बधंवर ध्यान ग्रहो ।

भूलत हार हिंडोरनसैं, कुचके गिरि आसन बार रहो ।

कानन भित प्रवीण तुमें तन, या मनमें मुनि भेख लहो ॥ १३ ॥

मेरा चित्त भस्मचर्चित-योगीरूप बनकर तुम्हारे नाभिकुंड में अहर्निश स्नान करता है, और उसके तीर पर अर्थात् त्रिवली में ठहर कर त्रिकाल लोडतों

रहता है । वहां से ऊपर चढ़कर छाती पर रखे हुए बाघंबर पर पद्मासन लगाकर ध्यान करता है । कंठ के द्वाररूपी हिंडोला में बैठकर भूलता रहता है । स्तनरूपी पर्वत पर आसन लगाकर रहता है । इस प्रकार हे मित्र प्रवीण ! तुम्हारे तनरूपी वन में वास करने के लिये मेरा यह मन, मुनि का वेश लिये हुये है ॥ १३ ॥

द्रष्टांतालंकार-सोरठा.

मित मिलनको अंग, सहज सुभागहि पाइये ।

रहत एक यों रंग, पय घत दधि नवनित मठा ॥ १४ ॥

मित्र के अंग से अंग मिलाने का सुअवसर तो मौभाग्य से ही मिलता है । परन्तु जिम प्रकार दूध, दही, घी, मक्खन और छाछ एक ही रंग में रहते हैं, इसी प्रकार प्रेम का रंग दोनों में एक रंग ही रहता है ॥ १४ ॥

रूपकालंकार-सोरठा.

प्रेम परोहे तार, मन मोती गुन ग्रंथ करि ।

हुओ मित उर हार, सो निशदिन लटकत रहे ॥ १५ ॥

प्रेमरूपी धागे में पिरोया हुआ मनरूपी मोती गुणरूपी गांठ से युक्त होकर मित्र के हृदय पर हाररूप निरंतर लटकता रहता है ॥ १५ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

प्रेमसें दारा भयो दरवेशहि, पैक सिकंदर प्रेम लपट्टा ।

प्रेमसें फूल फकीर भये, पुनि प्रेमसें साह पने परिहट्टा ।

किंकर प्रेम भयो गजनविय, प्रेम चिते बहराम उलट्टा ।

प्रेम प्रवीण नवीन कला, यह प्रेम करी मजनू शिरजट्टा ॥ १६ ॥

प्रेम से दाराशाह दरवेश (फकीर) हुआ, और शाह सिकन्दर चाकर के प्रेम में आबद्ध हुआ था । प्रेम से ही फूल फकीर हुआ, और प्रेम से ही पन्नाशाह

बादशाही से दूर हो गया । शाह गजनवी ने किंकर से प्रेम जोड़ा, (और एक शाहजादी नौशाबा के साथ ही दोस्ती की थी) इसी प्रकार बहरामशाह के मन में भी प्रेम उलट पड़ा था । हे प्रवीण ! प्रेम की कला नवीन ही है । क्योंकि मजनू ने भी प्रेम से ही सिर पर जटा बढ़ाई थी ॥ १६ ॥

दोहा-दारा ओर सिकंदरहि, फूल पना महमद ।

बहरामरु मजनू कियो, प्रेम सु हद बेहद ॥ १७ ॥

इस प्रकार—दारा, सिकन्दर, फूल, पना, मुहम्मद, बहराम और मजनू ने बेहद प्रेम किया था ॥ १७ ॥

दृष्टांतालंकार—छप्पय.

प्रेमसु हद बेहद, किया लेलां अरु बानां ।

सुचिह प्रेम सरसाय, सोय परिहृष्टनि जानां ॥

भोरी जोरी प्रीत, मीत सावेनां बहरां ।

जुगल रीतकी नीत, चित्त पाई गुलजहरां ॥

यह देह नेह एमे सुने, छेह भये जुग जाय छन ।

परबीन दीन सब प्रेम वस, महत पुरुष उदार मन ॥ १८ ॥

लैला और बाना ने बेहद प्रेम किया था, और रंगरेजिन ने भी पवित्र प्रेम का मर्म जाना था । भोली सावेनां और बहराम ने मित्र के साथ प्रीत की थी । इन दोनों की प्रीति की रीति को गुलजहरां ने पाया था । इस शरीर से ऐसे २ प्रेम की कहानी सुनी है कि जिसमें वियोग का एक क्षण, युग के समान बताया गया । हे प्रवीण ! उदारमनवाले महापुरुष भी प्रेम के वश होकर दीन हो जाते हैं ॥ १८ ॥

सवैया—आपहिके अभिधानके अंगसु, सात गुने करि दोय समें ।

बीस गुने करि चत्रदशं हर, शेष रहे सो ग्रहे मनमें ।

नोगुन नेक विचार उने, परबीन कियो परमान हमें ।

जेते भयेहे तिते जुगलों, अहो मित रहो चिरजीव तुमें ॥ १९ ॥

अपने नाम के अक्षरों अर्थात् 'प्रवीण' इन तीन अक्षरों को सात से गुणा करके उसमें दो मिलाओ । फिर उसे बीस गुणा करो, और तब उसमें चौदह का भाग दो । { [(३ × ७ + २) × २०] ÷ १४ } ऐसा करने से जो शेष रहे, उसे मन में रखो । अर्थात् बारह तुम्हें मन के मन में रखने हैं । फिर उसे नव-गुणा करो । और उससे जो होवे, हे मित्र प्रवीण ! उतने (अर्थात् १०८) युग तुम चिरंजीवि रहो ॥ १६ ॥

सोरठा.

जिनहूँको अभिधान, तिन अच्छर गिनती करो ।

निकसत एह निदान, आयुष जुग सत अष्ट की ॥ २० ॥ ~

चाहे जिसके नाम के अक्षर लेकर, ऊपर की रीति से गिनती करो, तो अन्त में यही निकलेगा कि, उसकी आयु १०८ युग की होवे ॥ २० ॥

फिर पाति लिख एह, भई प्रेम पूरन दशा ।

ब्रह्मनि पानि सु देह, कीन बिदा परबीन प्रति ॥ २१ ॥

फिर से इस प्रकार पत्र में लिखते २ प्रेम से पूर्ण दशा होगई । तब वह पत्र ब्रह्मसुता कुसुमावलि के हाथ में देकर उसे प्रवीण के पास बिदा किया ॥ २१ ॥

छंद धारा.

सागरं पती सु दीन, ब्रह्मनी सु पान लीन । लेत सास नेन नीर, चित्तकी छुटी सु भीर । फेर जोगि शीश नाय, मालनी मिली बुलाय । फंदनं चटी सु आन, कीन पट्टनं पयान । आप ह्वै गई उदास, आइ हे प्रबीन पास । देखितं दशा कुमार, ब्रूभतं सु बार बार । बाल ब्रंद भीर जान, ब्रह्मनी बदे न वान । सो लही कलाप्रबीन, बालिका बिदाय दीन । रेनकी इकंत धार, ब्रूभने लगी विचार । आप आपही बिलाय, ब्रह्मनी बदी न जाय । अमुवा भरे उसास, पत्रिका दर्ई निकास ॥ २२ ॥

सागर ने जो पत्रिका दी उसे ब्राह्मणी ने हाथ में ले लिया। परन्तु उसे लेते ही हृदय में श्वास और नेत्रों में नीर भरने लगा, और मन का धीरज छूटने लगा। तब फिर कर योगी को सिर झुका, मालिन को बुलाकर साथ लिया और रथ में सवार होकर नगर की ओर गमन किया। चित्त उदाम हो रहा था और मुख मुर्झाया हुआ था, ऐसी वह प्रवीण के पास आई। तब ब्रह्मकन्या की स्थिति देखकर राजकुमारी बार २ पूछने लगी, परन्तु बालाओं की भीड़ देखकर कुसुमावलि ने कुछ नहीं कहा। इस भेद को समझकर कलाप्रवीण ने सब सखियों को विदा किया, और रात में एकान्त देख उससे पूछने लगी। वे दोनों अपने २ मन में विलखने लगीं, परन्तु कुसुमावलि से बोला नहीं जाता। अन्त में उसने उससे लेकर और आंखों में आंम भरकर पत्रिका राजकुमारी के हाथ में दी ॥ २२ ॥

सोरठा.

पापी कुसुम सु दीन, बोली जात न बात कछु ।

बंचे बिना प्रवीन, उर उदास आई अगम ॥ २३ ॥

इस प्रकार कुसुमावलि ने प्रवीण को पत्रिका दी, परन्तु दोनों में से किसी एक में भी बोला नहीं जाता। प्रिय सखी की यह स्थिति देख, पत्रिका पढ़ने के पूर्व ही हृदय उदासी में उमड़ चला ॥ २३ ॥

छंद मुक्तदाम.

लई पतियां कर बंचत नार, इतेमहि नेन भई जलधार । गरो भरि आयगयो तिहि काल, नही कछु बोलनकी मुध बाल । भरे दुख गूढ सु प्रौढ उसाम, जरे उन ज्वाल सु भोम अकास । अटा अनुमानत हे सु उजार, तपे तलफे तन बारहि बार । गई जुग ग्रंथ जुगफन छूटि, किधों लकरी गई हारन तूटि । लई गति सोय समे परवीन, किधों बिछुरे सु महाजल मीन । लगे घन घोर चहू दिश गाज, किधों अकुलाय उठे प्रगराज । खमां कहि ब्रह्मनि धारति धीर, इते महि होत असाध शरीर । भई मुध मूरत एक बइंत, तब कुसुमावलि एह कहंत । कहा मुरभाय रहो निज चित, सुनो

उनके सु कहे वरतंत । कितो समुभावत ब्रह्मकुमार, लगाइ सु नीठहि नीठ
उचार ॥ २४ ॥

इस प्रकार धड़कते हुए हृदय से वह पत्र हाथ में लेकर पढ़ने लगी, तो उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली । गला भर गया, और राज-बाला को कुछ बोलने का ज्ञान न रहा । बेहोश हो गई और आन्तरिक पीड़ा से उससे भरने लगी । उसकी विरह ज्वाला से धरती व आकाश जलने लगे । राजमहल और उसकी नवरंगी अटारी उजाड़ भासने लगी । बार २ तन तपने लगा और तड़फन होने लगी । मानो जुराफ पक्षी का जोड़ा बिछुड़ गया, अथवा हारिल पक्षी के पग की लकड़ी छूट गई, अथवा महा जल में से मछली बाहर आन पड़ी हो, अथवा आकाश में मेघ की घोर गर्जना से मृगराज सिर धुनने लगा हो । यह दशा देखकर कुसुमावलि 'क्षमा क्षमा' कहकर धीरज देने लगी । इतने में उसका शरीर बेगान होकर मूर्छित हो गया । यह दशा दो घड़ी रही, फिर उसे सुध आई । तब कुसुमावलि कोमल और मृदु वाणी से कहने लगी । हे प्रिय सखी ! तू मन ही मन क्यों मुरझा रही है ? मैं जो जोगी का वृत्तान्त कहती हूं, उसे सुन । इस प्रकार विविध रीति से प्रवीण को समझा कर कुसुमावलि ने धैर्य बंधाया ॥ २४ ॥

दोहा—नीठ नीठ चरचा चली, धीर द्रढ़ाई चंत ।

कुसुम कहि सन्यास बिध, आदि अंत परजंत ॥ २५ ॥

इस प्रकार कठिनता से प्रवीण के चित्त में धीरज बंधाकर, कुसुमावलि ने योगी का आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २५ ॥

आध निशा अनुमान भो, नित उत समो निहारि ।

जोगिनि रूप प्रबीन लिय, बीन सु ब्रह्मकुमारि ॥ २६ ॥

फिर अनुमान से आधी रात बीतने पर नित्य की भांति प्रवीण ने जोगिनी का रूप लिया, और कुसुमावलि ने हाथ में वीणा ली ॥ २६ ॥

सोरठा—पूजन कीन प्रकार, छिन छिन तलफत मित विन ।

पावक बिरह अपार, रोम रोम लागी रमन ॥ २७ ॥

विधियुक्त पूजन का आरम्भ किया, परन्तु मित्र के विना प्रत्येक क्षण तड़फती रही, और रोम २ में विरहाग्नि भड़कती रही ॥ २७ ॥

समरूपक अलंकार—सोरठा.

सुरत व्रत्त वृत्ति धार, मन मित प्रत करियत गमन ।

न बढौ शब्द उचार, वंश कुलट विधना वदत ॥ २८ ॥

सुरतरूपी नट की डोर पर एकचित्त से वृत्ति को टटकर मन मित्र के प्रति ले जाने लगा, तथा प्रेमरूपी बांस पर गुलांटों खानें लगा । तथापि विधि 'अभी ठीक नहीं हुआ, अभी ठीक नहीं हुआ' ही कहता रहा ॥ २८ ॥

गाथा—कुसुम जोगि पाहिचानं, पाती प्रति प्रवीन वंचन विधि ।

सप्ततीय अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥ २९ ॥

कुसुमावलि और योगी का मिलन, योगीरूप सागर का पत्र भेजना और प्रवीण का उसे पढ़ना आदि वर्णन वाली यह प्रवीणसागर की सत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २९ ॥



७१ वीं लहर

जोगेश्वरचरचा और फेरीगमनप्रसंग—दोहा.

बाग बसत सन्यास वह, लगे सु निज वतरान ।

जाय न जच्चे ओर पुर, जगे अलख इहि थान ॥ १ ॥

उस बाग में निवास कर रहते हुए संन्यासी अपने २ मन में कहने लगे कि, किसी दूसरे नगर में जाकर नहीं मांगेंगे, अपितु यहीं अलख जगावेंगे ॥ १ ॥

छंद तिलक.

यह जोग वहे, निज बात कहे । नहि ओर रचें, नन आन जचें ।
जहि प्रेम हिया, निज जोग लिया । तिहि प्रत्ति मगे, अलखं ज्यु जगे ।
सब सत्य कहा, उठ पंथ लखा । किय मोद उरं, परबेस पुरं । निश आध
वही, मुख बान लही । गलि आन फिरे, सु उचार करे ॥ २ ॥

फिर वह योगी-रससागर अपनी बात कहते हैं कि, किमी दूसरी जगह जाकर नहीं फिरेंगे, और दूसरे से मांगेंगे भी नहीं । हृदय में जिसके प्रेम का धारण कर यह वेप लिया है, उसी से जाकर मांगेंगे और अलख जगावेंगे । इस पर सब मित्रों ने कहा, 'ठीक' है, और उठकर रास्ता लिया । मन में उल्लास लेकर सब ने नगर में प्रवेश किया । आधी रात बीती तब मुंह से बोलने लगे, और गली २ में अलख का उच्चारण करते हुए फिरने लगे ॥ २ ॥

दोहा—पुर पंथन परबेस किय, प्रेम बिबस सन्यास ।

गहरी धुनि भंखित सबद, मित बिलोकन आस ॥ ३ ॥

प्रेम के आधीन हुए हुए वे योगी उस नगर के गली कूचों में प्रविष्ट हुए, और मित्र के दर्शन की अभिलाषा से गहरी ध्वनि से शब्द की ढेर लगाने लगे ॥ ३ ॥

वह शब्दोदाहरण, गूढोक्ति-असंगति-संकर अलंकार-छंद चिंतामनि.

जगी हे जोग की धूनी, बरषत बुंदसें दूनी । विना लकरे सुनां बूभे,
नयनसें जोत नां छूभे । निकटसें ताप नां लागे, सन्यासी दूरसे दागे ।
पियाला प्रेमका पीया, उनोने मायना लीया ॥ सरोवर अंतरिछ नीरा, चले
चहु ओर जल सीरा । बसत हे तीरपर हंसा, न लोह हाड़ अरु मंसा ।
भरे परिपूर बिन मेहा, तहांहे जोगिको नेहा । पियाला प्रेमका पीया, उनोने
मायना लीया ॥ गिरब्वर श्रृंग नबरंगी, शिखर शिर कंजमें भ्रंगी । न
पोचे पाव परवारा, अपंगीका सु अरुखारा । बिना सिर बासके भोगी,
लगेहे साधना जोगी । पियाला प्रेमका पीया, उनोने मायना लीया ॥
मुचीका सेलकी अग्रा, चहु दिश चार हे नग्रा । उनो मध देवका डेरा, त्रिवेनी
तासके फेरा । करे तन खंड सो जावे, सुरत जोगी तहां लावे । पियाला
प्रेमका पीया, उनोने मायना लीया ॥ महल अजगेबकी माया, भरोखा
व्योमसें लाया । न पडुचे चंद अरु सूर, उनोसें सहस गुन नूरा । मनी
मानक जहँ थापे, तहां सन्यास तन तापे । पिलाया प्रेमका पीया, उनोने
मायना लीया ॥ जमीमें बीज लगवाया, बिरख ब्रह्मंडमें छाया । परंदा
पांख बिन आये, मधू बिसराम ठहराये । वही फल फूलकी आशा,
कियाहे जोगिने बासा । पियाला प्रेमका पीया, उनोने मायना लीया ॥
हलाहल सिंधुके पारा, अगिनका द्वीपहे सारा । ब्रखा खग धारसें पातें,
कटे उसराहकों जातें । मुनी तहां डार भ्रगछाला, जपे निज नेनकी माला ।
पियाला प्रेमका पीया, उनोने मायना लीया ॥ ४ ॥

योगी विषय में—योगी की धूनी जलती है, जो वर्षा की बूंदों से दूनी
प्रकट होती है । उस धूनी में न लकड़ी है और नहीं अग्नि । आंखों से उसकी
ज्योति भी दिखाई नहीं पड़ती, पाम में ताप भी नहीं लगता, परन्तु मंन्यासी दूर
से ही उस धूनी से जलता है । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो वही इसके
गूढ़ मर्म को समझता है । अर्थात् चिदानन्दरूपी धूनी निरंतर जागती है,
और उसी से वृष्टि होती है । उसमें लकड़ी डाले बिना भी वह बुझती नहीं,

और चर्म-चक्षु से वह दिखाई नहीं पड़ती। वह सर्वव्यापी होते हुए भी उससे ताप नहीं लगता, परन्तु उसके साधन करनेवाले संन्यासी उसके वियोग में जलते रहते हैं ॥

प्रवीण विषय में— सागर कहता है कि—प्रवीणरूपी योगी की धूनी बिरह से जलती रहती है। उसमें आंमू के बूंदरूपी वर्षा के होने से वह दूनी सुलगती है। इस अन्तर में सुलगती हुई बिरह की धूनी में लकड़ी आदि न डालने पर भी वह बुझती नहीं। उसकी ज्वाला आंखों से नहीं दीखती, और उसके पास रहते हुए उसका ताप भी नहीं लगता। परन्तु उसके वियोग में यह संन्यासी झुलसता रहता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को समझ सकता है ॥

योगी विषय में—अन्तरिक्ष में एक पानी से भरा हुआ सरोवर है। जिसमें से चारों ओर जलधारा चलती हैं। उसके तीर पर हंस रहता है, जिसके शरीर में रक्त, मांस वा अस्थि नहीं हैं। वर्षा के बिना भी वह सरोवर भरपूर रहता है, वहां योगी का स्नेह है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को समझ सकता है। अर्थात् जिस जल से यह जगत् उत्पन्न हुआ है, वह पूर्णसरोवररूप ब्रह्म आकाश में व्याप्त है। जिसमें चारों ओर पानी (चैतन्यता) की लहरें चलती हैं, और उसके समीप हंस (आत्मा) निवास करता है, जिसके शरीर में रक्त, मांस, अस्थि आदि कुछ नहीं हैं। वर्षा के बिना (बिना किसी प्रकार की मूर्ति के) वह ब्रह्म-सरोवर पूर्ण रहता है। योगी लोगों का प्रेम उसमें लगा रहता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को समझ सकता है।

प्रवीण विषय में—प्रवीण का चक्षुरूपी सरोवर अन्तरिक्ष में जल से पूर्ण है। जिसमें से अश्रुविन्दुरूपी जलधारा चारों ओर चलती रहती हैं। उसके समीप हंस (प्राण) रहते हैं, जिनके शरीर में रक्त, मांस, अस्थि कुछ नहीं हैं। वह सरोवर वर्षा के बिना ही जल से भरपूर रहता है। उसी में योगी

का मन लगा हुआ है । जिसने प्रेम का प्याला का पिया हो, वही इस मर्म को समझ सकता है ॥

योगी विषय में—नूतन रंग विरंगा पर्वत का शिखर है, उस शिखर के शृंग पर अमर निवास करता है । वहां पगवाला मनुष्य अथवा पंखवाला पक्षी नहीं जा सकता । ऐसे विकट स्थान पर पंगु (लंगड़े) का अखाड़ा है, जो कि मस्तक के बिना होते हुए भी कमल-परिमल का भोगी है । योगी की साधना वहां लगी है । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका आशय जान सकता है । अर्थात् इस स्थूलशरीररूपी गिरिगज के तुंगरूप ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर सहस्रदल कमल है, जिसमें आत्मारूपी अमर रहता है । वहां पग से चलने वाला अथवा पंख से उड़ने वाला प्राणी नहीं जा सकता है, परन्तु विदेही जीव उसका परिमल (वासना) लेने को उत्सुक रहते हैं । योगी उसकी साधना करते हैं । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका आशय जानता है ॥

प्रवीण विषय में—प्रवीण के स्तररूपी पर्वत के नूतन रंग वाले कठिन कुच के शिखर पर कुच-शिखारूपी काला भौंगा निवास करता है । वहां पग अथवा पंख से गति वाला प्राणी नहीं पहुंच सकता । परन्तु यह मेरा अपंग मन सदा वहीं रहता है । मैं मस्तक-विहीन (मत्त हुआ हुआ) उसके परिमल का उत्सुक बना हूं, तथा योग-साधना में लगा हुआ हूं । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका आशय जान सकता है ॥

योगी विषय में—सुई की नोक पर चारों ओर चार नगर बसे हुए हैं, जिसके मध्य में देवालय है । उसके चारों ओर गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीन नदियां बहती हैं । जो अपने स्थूल शरीर का नाश कर दे, वही वहां जा सकता है । तपस्वी जन वहां ध्यान लगाते हैं । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका मर्म जान सकता है । अर्थात् सुई की नोक से भी अतिसूक्ष्म चिद्ब्रह्म है, और उसमें चारों ओर चार प्रकार की सृष्टि, अंडज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज बसी हुई है, जिसके मध्य में ब्रह्म व्यापक हो

रहा है। उसके चारों ओर जीव, ब्रह्म और मायारूपी त्रिवेणी घिरे हुए है। वहां स्थूल शरीर से कोई नहीं पहुंच सकता। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को जान सकता है ॥

प्रवीण विषय में—सुई ने भी पतली प्रवीण है। उस पर मेरे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूपी चार नगर बसे हुए हैं। बीच में प्रेमरूपी देवालय है। उसकी आंखों की श्वेततारूपी गंगा, रक्तवर्णरूपी सरस्वती और श्यामतारूपी यमुना चारों ओर बह रही हैं। जो अपनी देह का सर्वनाश कर दे वही वहां तक जा सकता है। यह योगी वहां ध्यान लगाता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को जान सकता है ॥

योगी विषय में—एक विलक्षण महल की माया है, जिसके भरोखे आकाश से बातें करते हैं। जहां न चन्द्र पहुंच सकता है, न सूर्य !!, उसका प्रकाश इनसे सहस्रगुणा अधिक है। जहां पर अनेक मणि-माणिक्य लगे हुए हैं। योगीजन वहां रहकर शरीर का दमन करते हुए तप करते हैं। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका गर्भ समझ सकता है। अर्थात् यह शरीररूपी महल है, जिसकी माया अगम्य है। दश द्वाररूपी भगवत् गगन-मंडल में लग रहे हैं। उस ब्रह्म-रंध्र में सूर्य-चन्द्र का प्रकाश नहीं पहुंच सकता, क्योंकि वहां इनसे भी बढ़कर प्रकाश है। उनमें (ब्रह्मरन्ध्र में) महान् तेज वाले जीव-ईश्वररूपी रत्न जड़े हुए हैं। उस ब्रह्मरन्ध्र में मन की स्थिरता करके संन्यासी अपने मन को स्थिर करके शरीर का दमन करते हुए तप करते हैं। जो प्रेम का प्याला पीवे, वही इसके मर्म को जाने।

प्रवीण विषय में—प्रवीण के महल की रचना विचित्र है, जिसके भरोखों की प्रभा आकाश में पड़ती है। वहां सूर्य व चन्द्रमा की पहुंच नहीं, क्योंकि इन से विशेष प्रकाशयुक्त प्रवीण के नेत्ररूपी मणि-माणिक्य वहां स्थिर हैं। ऐसे दिव्य स्थल में यह संन्यासी अपने मन को स्थिर करके शरीर का दमन करते हुए तप करता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका आशय जान सकता है ॥

योगी विषय में—पृथ्वी में बीज बोया, उसमें से निकला हुआ भाड़ सारे विश्व में फैल गया। वहां बिना पंख के भंवरे ने आकर विभाम किया। उस वृक्ष के फल-फूल के लालच में, यह योगी वहां मुकाम जमाये हुए है। जिसने प्रेम का प्याला पिया है, वह इस रहस्य को समझेगा। तात्पर्य यह है कि मायारूपी भूमि में चैतन्यरूपी बीज बोया, जिसमें से निकल कर विराटरूपी वृक्ष सारे विश्व में फैल गया। वहां परमज्योतिरूपी बिना पंख का भंवरा निवास करता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया है, वही इस मर्म को समझता है ॥

प्रवीण विषय में—प्रवीण के हृदयरूपी पृथ्वी में प्रेमरूपी बीज बोया, जिससे निकला हुआ वृक्ष सारे शरीररूपी ब्रह्माण्ड में फैल गया है। वहां मेरा मनरूपी बिना पंख का भौरा जाकर निवास करता है, और उस वृक्ष के फल-फूल की आशा से यह योगी वहां निवास करता है। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को जाने ॥

योगी विषय में—विष के समुद्र के उस पार अग्नि का एक द्वीप है। वहां तलवार की धार जैसी मृगछाला बिछाकर अपने नेत्रों की माला जपते हैं। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, उसने इसका अर्थ समझ लिया है। अर्थात् संसाररूपी विषमय सागर को पार करने पर, संसार के नाना प्रकार के सुख छोड़ने का परित्यागरूपी द्वीप आता है, जहां अनेक प्रकार के संकटोंरूपी तलवार की धार जैसे पत्तोंवाला वृक्ष है। जो उसका छेदन कर सके! वही मोक्षमार्ग का अधिकारी बने। उस मार्ग में मृगचर्म बिछाकर मुनिजन अपनी अन्तर्दृष्टिरूपी माला जपते हैं। जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इस मर्म को समझ सकता है ॥

प्रवीण विषय में—लोगों की अमर्यादरूपी विष-समुद्र को पार करें, तो वहां गुरु-वृद्धजनों के क्रोधरूपी अग्नि का द्वीप आता है। उसके उपरान्त तलवार की तीक्ष्ण धार के समान नानाप्रकार की अडचनरूपी अनेक पत्तों से युक्त वृक्ष आता है। इस बिडम्बना को दूर कर तो मित्र से मिलने के

मार्ग पर जा सके । वहां मैं मुनीश मृगचर्म बिछाकर अपने नेत्ररूपी माला को जपता हूं, यानी एक टक तुम्हारा ध्यान करता हूं । जिसने प्रेम का प्याला पिया हो, वही इसका मर्म जान सकता है ॥ ४ ॥

सोरठा.

इहि विधि शब्द उचार, करत आय जोगी तहां ।

जहां प्रवीन अटार, भुक्ति भरोखा प्रति गली ॥ ५ ॥

इस प्रकार टेर लगाते २ वे योगीजन उम गली में जा पहुंचे, कि जिसमें कलाप्रवीण के महल की बारी और खिड़कियां निकली हुई थीं ॥ ५ ॥

गाहा.

स्वामी सबद उचारं, कलाप्रवीन कान सुर पहियं ।

बिरहा लहर उमहियं, लहियं तन विदेइ गति बाला ॥ ६ ॥

उन संन्यासियों की टेर का शब्द कलाप्रवीण के कानों में पड़ा, जिससे एक दम बिरह की लहर उठ पड़ी, और वह कोमलांगी तुरन्त ही बेभान हो गई ॥ ६ ॥

तबहि कुसुम उच्चरियं, हांहां मनमें द्रढाव अब रखवे ।

आय समय मनुहारं, वह सन्यासं करीहु सनमानं ॥ ७ ॥

तब ही कुसुमावलि बोल उठी कि 'हां' अब तो मन में दृढ़ता रखो, यह तो मनुहार का समय आया है । संन्यासी का सन्मान करो ॥ ७ ॥

मित भेख सन्यासं, आय प्रथम अलखख इत जग्गे ।

कछु मनुहार उपायें, आशाभर निराश जनि जाये ॥ ८ ॥

तुम्हारे हृदय के हाररूपी मित्र ने संन्यासीरूप वेश लेकर, तथा प्रथम यहां ही आकर अलख जगाया है, इसलिये कुछ मनुहार करना चाहिये । वे आशा भरे आये हैं, निराश नहीं जाने देना चाहिये ॥ ८ ॥

सोरठा.

कुमरि धीर मनु धार, करन लिये मनुहारके ।

कुसुम कही तिहि बार, इत इनकों ठहराइये ॥ ६ ॥

राजकुमारी ने धैर्य धारण कर, मित्र के सम्मान के लिये उन्हें वहां रोकने का आदेश, कुसुमावलि को दिया ॥ ६ ॥

चौपाई.

कहि प्रवीन भ्रांखी उठ जाओ तर भरोख सन्यास बुलाओ ।

तो मनुहार कछू पडुचावे, प्रथम शब्द खाली जनि जावे ॥

सुनियत कुसुम भरोखन आई, करि पुकार पहिरात सुनाई ।

कहो निकट सन्यासी आवे, भिच्छा कुमरि ताहि बकसावे ॥

सुनत एह पहरात कहाये, अहा नीठ सन्यास ज्यु आये ।

उलटित प्रेम मोद मन बाढे, जोगि भरोख जाय तर ठाढे ॥ १० ॥

प्रवीण ने कहा कि—तुम जाओ और संन्यासी को खिड़की के नीचे बुलाओ, जिससे कि हम उनके आदर स्कारार्थ कुछ दे सकें । उनका प्रथम शब्द खाली नहीं जाने देना चाहिये । राजकन्या की यह बात सुनकर, कुसुमावलि खिड़की में आई, और पहरदार सिपाही से बोली कि—सन्यासी-महात्मा को कहो, कि वे महल के पास आवें, ताकि राजकुमारी उन्हें भिक्षा दे सकें । यह सुनकर पहरदार ने संन्यासी से कहा, जिससे कि वे राजमहल के पास आ गये । उनके हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा तथा आनन्द हिलोरे लेने लगा । इस प्रकार रस-रंजित संन्यासीगण खिड़की के नीचे खड़े हो गये ॥ १० ॥

दोहा.

जोगि द्रढाय भरोखतर, कुसुम सु कही प्रवीन ।

बाज उठी बाला सु तित, अति अभिलाष सु लीन ॥ ११ ॥

योगी को खिड़की के नीचे खड़ा रखकर कुसुमावलि ने प्रवीण से कहा,

और प्रवीण तुरन्त बाज की भांति वेग से झपटकर अपने प्रिय के दर्शन की अभिलाषा में मग्न हो गई ॥ ११ ॥

छंद नाराच.

प्रवीण देव सेवको समान लीन हाथसैं, भरोख आय भंखियं लगी अराध नाथसैं।
गुलाब नीर चंदनं चुआ गुलाल अत्तरं, अबीर फूल केसरं भरोखसैं लगी
भरं। करंत सेव सिद्धकी परे कुमारीका चहे, महेश बानि याद लाय ब्रह्मनी
करं ग्रहे। गई सु ध्यान चूकिकें उसाम बालिका भरे, भरंत नेन नीर सो
सन्यास अंगपें परे। सबे सु सीत स्याव मध्य एक धार तप्पियं, परेख
कीन प्रेम लीन जोगि तार जप्पियं ॥ १२ ॥

प्रवीण ने देवपूजा का सामान हाथ में लिया, और खिड़की (गोखड़ा) में आकर देखते हुए नाथ की प्रार्थना करने लगी। गुलाब जल, चन्दन, चोवा, गुलाल, अत्तर, अबीर, फूल और केसर की भरोखे से झड़ी लग गई। इस प्रकार सिद्ध की सेवा करते २ कुमारी स्वयं भी कूदने का मन में विचार करने लगी। इतने में शंकर की कही हुई बात याद करके ब्रह्मकन्या ने उसका हाथ पकड़ा, जिससे कि कुमारी ने पड़ने का ध्यान छोड़ दिया, और उसासैं लेने लगी। नेत्रों से आंसुओं की धारा चल पड़ी, और वह धारा सन्यासी के ऊपर आकर पड़ने लगी। इस समय तक गुलाब-जल आदि की शीतल धारा पड़ रही थी, इसमें यह गर्म धारा पड़ी, जिससे जोगी का ज्ञान हो गया, और उन्होंने ओंकार का आदेश किया ॥ १२ ॥

प्रथमभेद-विषमालंकार-सागरोक्त-गाहा.

शीतल सुखद सुवासा, अमृत धार मेघ भर मंडिय।

इहि नयरे अचरिज्जं, तद अंतरेण तपीत विषधारा ॥ १३ ॥

सागर ने कहा कि—इस नगर में एक नया आश्चर्य यह है कि, जब शीतल-सुखकर और सुवासित अमृत की धारा की मेघ ने झड़ी लगाई, तो उसी बीच में तप्त विषधारा भी पड़ने लगी ॥ १३ ॥

छंद मल्लिका.

जोगि गाहनी बंदंत, गौनकी चहंत चंत ।
 भेद सो प्रवीन पाय, ठोरसैं उठो न जाय ॥
 ब्रह्मनी भरी सयान, संकसैं तजे न पान ।
 आयेहे भरे ज्यु आस, जाय क्यों वहे निरास ॥
 एह धारितं सु बाल, कंठकी गुलीक माल ।
 प्यालिका जरव एक, छेहरे अंगोछ टेक ॥
 नीक बिंदवा प्रवीन, जोग नीठ डार दीन ।
 तापसं हुलास लाय, जायके लये उठाय ॥
 कीन गोन बाल बंद, लीन फेर बानि छंद ॥ १४ ॥

फिर वह योगी गाथा बोलते हुए जाने की इच्छा करने लगा, जिसे प्रवीण ने जान लिया, परन्तु उसे वहां से उठकर जाने का साहस नहीं होता था । चतुर ब्रह्मकन्या ने प्रवीण का हाथ नहीं छोड़ा, क्योंकि उसे आशंका बनी रही कि कहीं वह कूद न पड़े । तब प्रवीण ने सोचा कि जो आशा से भरे हुए आये हों, उन्हें निराश कैसे करें ? अतः प्रवीण ने अपने गले की मोती-माला, एक जड़ाऊ प्याली और हीरक-जड़ित बिन्दी, अंगोछे में बांधकर योगी के पास डाल दीं । इससे अन्योक्ति में यह प्रकट किया कि, तुम मेरे गले के हार हो ! जीवन के पात्र हो ! और मेरे भाग्योदय के दिनमणि हो ! तब उन योगीजन ने प्रसन्न होकर पास जाकर अंगोछा उठा लिया, और उस बाला को अभिनंदन करते हुए चलने लगे, तथा मुंह से फिर छंदयुक्त वाणी बोलने लगे ॥ १४ ॥

सोरठा.

गोन सन्यासी कीन, सहर गली उचरित सबद ।
 बिकल भये परवीन, धीर द्रढावत ब्रह्मनी ॥ १५ ॥

नगर की गलियों में शब्द बोलते हुए संन्यासियों ने गमन किया, जिसकी

वेदना से प्रवीण विकल हो गई, और कुसुमावलि उसे धीरज दिलाने लगी ॥ १५ ॥

छंद मृक्तदाम.

चले कर जोगिय बानि उचार, कलापरबीन बढी ब्रह्म भार ।
भयो दुहु पूरन प्रेम प्रकास, उभे उर छंडत दीह उभास ॥
अस्र द्रग दोय न सूकत धार, विलोकत संचर बारहि बार ।
अगे पग जोग सु नीठ धरंत, इते महि बाल बिहाल परंत ॥
गली वह जोग उलंघित जाहि, इतेमहि राजमुता सुधि नाहि ।
धरे कुसुमावलि धीर प्रवीन, शबद उचार सन्यासिय लीन ॥ १६ ॥

योगी लोग वहां से 'अलख' की ध्वनि बोलते हुए चलते बने । इसे देखकर कलाप्रवीण के अन्दर वियोग की ज्वाला भड़क उठी । युगल जोड़ी में प्रेम का पूर्ण प्रकाश हुआ, और दोनों ही दीर्घ-श्वास छोड़ने लगे । दोनों के नेत्रों से आंसुओं की धारा न्यूनी नहीं । इस प्रकार दुःखित कलाप्रवीण मुद्रा से बार २ योगी का मार्ग देखती हैं । प्रेमानुरागी संन्यासी भी बड़ी कठि-नता से आगे पैर धरते रहे । इतने में वालारूप कलाप्रवीण विकलता से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी । योगी लोग उस गली का पार कर गए, परन्तु राज-कन्या को इस की कोई खबर नहीं रही । ऐसे समय में ब्रह्मवाला कुसुमावलि प्रवीण का धीरज देने लगी, और संन्यासियों ने इस प्रकार से निम्न शब्दों का उच्चारण किया:— ॥ १६ ॥

वह-शब्द-उदाहरन-छंद.

रूपकातिशयोक्ति-अलंकार.

कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥
अजब गैबि इक मेहेल बन्याहे, सब दुनियासँ न्यारा ।
चंद सूर की किरन न पहुँचें, अखंड जोत उजियारा ॥
कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥

बिना मूलका बाग बन्याहे, चहुं दिश लगे फुवारे ।
 बिना पांखके भवरा बेठा, मगन प्रेम मतवारे ॥
 कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥
 अधर सरोवर अमृत भरिया, बापर बेठे हंसा ।
 मृगताफलकों चुग चुग खावे, वाकों लोहू न मंसा ॥
 कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥
 बाननवाला बान चलावे, अधर निशान उडावे ।
 पाडे सो तो जुग जुग जीवे, चूके सो मर जावे ॥
 कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥
 बिना वादरे मेह मंडाना, धरती परे न पानी ।
 जाननहारे भेद बिचारे, एह प्रबीन निशानी ॥
 कोई अजब तमासा देखा, जहाँ रूप रंगकी रेखा ॥ १७ ॥

ब्रह्माण्ड विषय में—मैंने एक अजब तमाशा देखा कि जहां रूप रंग की रेखा रंजित है, वहां एक अद्भुत महल बना है, जो मारी दुनियां से निराला ही है । वहां चन्द्र-सूर्य की किरणें नहीं पहुंच सकतीं, परन्तु वह स्थान अखण्ड ज्योति से प्रकाशित है । मैंने अजीब तमाशा देखा ... । तात्पर्य यह है कि रूप रंग की रेखारूप पंच-भूतान्मक माया है । उस माया में कोई विलक्षण तमाशारूप माया से भिन्न प्रकार का एक चिद्ब्रह्मरूपी महल बना है, जहां चन्द्र-सूर्य की किरणें पहुंच नहीं सकती, और अखण्ड ज्योति का वहां प्रकाश है । मैंने अजीब तमाशा देखा ... ॥

प्रवीण विषय में—मैंने अजब तरह का खेल देखा । जहां रूप और रंग की राशि प्रवीण शोभित है, वहां ऐसा आश्चर्यजनक महल बना हुआ है कि वह सारे संसार से भिन्न प्रकार का है । वहां सूर्य-चन्द्र की किरणें भी नहीं पहुंच सकतीं, फिर अन्य की तो बात ही क्या ? और वहां प्रवीण के मुख की ज्योति का अखंड उजाला है । मैंने अजीब तमाशा देखा ... ॥

ब्रह्माण्ड विषय में—विना मूल का एक बाग बना है। उसके चारों ओर फव्वारे लगे हुए हैं। वहां विना पंख का भौंरा प्रेम-मग्न होकर मत्त बैठा है। मैंने अजीब तमाशा देखा...। तात्पर्य यह है कि—यह सृष्टिरूप विचित्र बाग है, जिसके मूल का पता नहीं कि कहां से और क्योंकर उत्पन्न हुआ ? उस जगत्-रूपी बाग के चारों ओर पंचविषयात्मक जलयंत्री लग रही हैं, जहां पंख से रहित जीवात्मारूपी भंवरा प्रेम में मत्त होकर निवाम करता है। मैंने यह अजीब तमाशा देखा... ॥

प्रवीण विषय में—प्रवीण के शरीररूपी विना मूल की एक बाटिका है, जिसमें चारों ओर उसके आंखों से अश्रुधाग का फव्वारा छूटता रहता है, और उस बाग में मेरा मनरूपी विना पंख का भंवरा प्रेम-रम में मत्त होकर निवाम करता है। मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥

ब्रह्माण्ड विषय में—अन्तरिक्ष में एक अमृत का सरोवर भरा हुआ है, जिसके ऊपर हंस बैठा हुआ है। उसके शरीर में न रक्त है ! न मांस ! परन्तु मोती चुनकर खाता है। मैंने अजीब तमाशा देखा...। अर्थात् चैतन्यरूपी अमृत का सरोवर अन्तरिक्ष में भरा हुआ है। जीवरूपी हंस वहां रहता है। जिसका शरीर, विना रक्त-मांस का है, और वह मुक्तिरूपी मोती चुगता रहता है। मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥

प्रवीण विषय में—प्रवीण के होठरूपी अमृत का सरोवर भरा हुआ है। उसके ऊपर मेरा जीव लगा हुआ है। उसके वेसर (नाक में पहिनने) के मोतियों को बीन २ कर अपनी श्रुति में उतार रहा है। उस जीव में न लोहू ! न मांस ! मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥

गुरु-बोध विषय में—बाणवाला बाण चलाता है, और वह अन्तरिक्ष में निशाना लगाता है। जिस पर निशाना लग जाता है !! वह युग २ जीता है, और जो चूक जाता है वह मर जाता है। मैंने अजीब तमाशा देखा...। तात्पर्य यह है कि उपदेश-गुरुरूपी बाणवाला अपने उपदेशरूपी बाण चलाता है।

और भ्रमित मन वाले सेवकरूपी निशाने को इस संसार से तार देता है । जिस पर वह उपदेश लग जाता है वह तर जाता है, अमर हो जाता है । परन्तु जिस पर वह नहीं लगता, वह बार २ जन्म-मरण के चक्र में भ्रमता रहता है । मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥

प्रवीण विषय में—तीक्ष्ण नजररूपी बाणवाली, प्रवीणरूपी शरधर, कटाक्ष रूपी बाण चलाता है, और वह निराधार अन्तरिक्षव्यापी मित्र के मन पर निशाना लगाता है । जिस पर उस पद्मिनी का निशाना लग जाता है, अर्थात् दृष्टि से दृष्टि मिल जाती है वह कृतकृत्य (अमर) हो जाता है । जिस पर नहीं लगता वह वियोगीजन का मन मृत-तुल्य हो जाता है । मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥

ब्रह्म विषय में—बादल के बिना झिलझिल झिलझिल वर्षा होती है, परन्तु उसके जलकण पृथ्वी पर नहीं पड़ते । जो ज्ञानी पुरुष हो वही इसका मर्म जाने, यही चतुरता का चिह्न है । मैंने अजब तमाशा देखा... । अर्थात् चैतन्य-रूपी जलीबिन्दु की वर्षा होती है, परन्तु वह किस बादल से होती है, वह अगम्य है । इम कोई अनुभवी पुरुष ही जाने, यही ज्ञान की निशानी है । मैंने अजब तमाशा देखा... ॥

प्रवीण विषय में—बिना बादल चढ़े ही प्रवीण के नेत्रों से अश्रुबिन्दु-रूपी वर्षा होती है । वह जल-बिन्दु पृथ्वी पर नहीं पड़ते, प्रत्युत शरीर पर धारण किये हुए वस्त्रों में ही रह जाते हैं । जो इसका जानने वाला हो, वह इसका मर्म विचारे । प्रवीण के पहिचानने की यही निशानी है । मैंने अजीब तमाशा देखा... ॥ १७ ॥

छप्पय.

यह सन्यास उचार, करत आसन प्रति आये ।

प्रेम जोत प्रगटंत, नेन जुरने नहि पाये ॥

कुसुम कलापरवीन, सेज बेहोस सुवाई ।
 मानहु बिनु जल मीन, रेन तलफंत बिहाई ॥
 निशचर निवार दिनचर सु धुन, पशु पंछी लागे चरन ।
 भाषंत बिरद ब्रह्मानि कुमरि, क्रिया लगाई नित करन ॥ १८ ॥

इस प्रकार टेरते २ वे योगी वापस अपने आसन की तरफ आये, परन्तु प्रेम की ज्योति प्रकट होने के कारण रात में आंख नहीं लगी । कुसुमावलि ने भी मूर्छित प्रवीण को शय्या पर सुलाया । उसकी अवस्था यह हो रही थी कि, मानो पानी से मछली को अलग कर दिया गया हो । इस प्रकार तड़फते २ सारी रात बिताई । निशचर प्राणियों का निवारण हुआ, और दिनचर प्राणी, पशु-पक्षिगण बोलते हुए विचरण करने लगे । तब कुसुमावलि ने राजकुमारी को विरुदावलि कह कर नित्यकर्म में लगाया ॥ १८ ॥

दोहा.

कुमरि नित कीनी क्रिया, सेव विसर्जन कीन ।
 प्रतिउत्तर पाती लिखन, कुसुम सु कही प्रवीन ॥ १९ ॥

कलाप्रवीण ने नित्यकर्म से निवृत्त होकर पूजन का विसर्जन किया, और कुसुमावलि को प्रत्युत्तर पत्र लिखने का आदेश किया ॥ १९ ॥

सोरठा.

प्रेम बढहि परवीन, उर उसास निर भर नयन ।
 कलम पत्र कर लीन, लागे प्रतिउत्तर लिखन ॥ २० ॥

प्रवीण में प्रेम का उद्रेक हुआ, जिससे उसमें आने लगी और आंखों से आंसू भरने लगे । फिर बलपूर्वक साहस करके कलम तथा कागज ले प्रत्युत्तर लिखने लगी ॥ २० ॥

कलाप्रवीनोक्त-पत्र-प्रत्युत्तर छंद.

भुजंग प्रयात.

रससागरं ए दशा आप लीनी, हमें होत नांही कछू प्रेम हीनी ।
 रच्योहे विधाता इते एह फंदा, परे लोहके पिंजरेमें परंदा ॥
 भये अंतरं आप नेनां न फूटे, परे प्रान बेहाल पापी न छूटे ।
 जथा जोग काहु समे ओर धारे, वही बातकी आप सोहे उचारे ॥
 चहे चित आपें इतेही रहावे, गुरुताइ भासे सु कैसें कहावे ।
 कहे अंतरं क्यों रसना न कटे, बताओ कहे सोइ प्रेमं न घटे ॥
 इतेमें चहो जो विदागीर दीजे, विचारी कहो उत्तरं सोय कीजे ।
 न माने अबे बात आपें वरज्जी, हमें दीनकी याद रखखो अरज्जी ॥
 महाराजहो प्रेमकी मेघ माला, हमें तो भरे तुच्छही तुच्छ ताला ।
 घटंते जल ओसरं मेघ चूके, तबे तो इकं तालमें ताल गूके ॥
 तजे नीर तीरं सुके जाय हंसा, जिया जानिये आप एही प्रशंसा ।
 उसासा भरे भाषितं मेरे रखखे, दई ब्रह्मनी पानि पाती सुलखखे ॥२१॥

हे रससागरजी ! आपने यह दशा ली है, परन्तु हमारे प्रेम में कोई न्यूनता नहीं । क्या करें ! विधाता ने ही यह फन्दा रच रक्खा है कि, लोहे के पिंजरे में पक्षी को डाल दिया है । आप से अलग हो जाने पर भी मेरी यह आंखें फूटी क्यों नहीं ? यह पापी प्राण अचेत हो पड़ा है, छूटता क्यों नहीं ? अच्छा, समय आवेगा तब जो कुछ करना होगा, किया जायगा । इस विषय में मैं आप से सौगंध खाकर कहती हूं कि, मन में तो मैं यह चाहती हूं कि आप यहीं रहो, परन्तु ऐसा कहने से गुरुत्व दिखाई पड़ता है, इसलिए ऐसा कैसे कहूं ? और दूर जाने को कहूं तो यह कहते मेरी जीभ क्यों न कट जाय ? आप ही मार्ग बताइये कि जिससे प्रेम घटे नहीं । आप मुझसे विदा चाहते हो, सो आप ही बताओ कैसा उत्तर मैं दूं ? मेरे वरजने से आप मानोगे नहीं, परन्तु मेरी इतनी विनती याद रखना कि, महाराज ! आप तो प्रेम की मेघमाला हो, और मैं एक तुच्छ से तुच्छ भरा हुआ तालाब, जो कि वर्षा न होने पर सूख

जायगा, और फिर जलवाला पक्षी हंस (जीव) उड़ जायगा । इतना लिख-
कर उससे भरते हुए वह पत्र कुसुमावलि के हाथ में दिया, और कहलवाया कि
हे दया-सिन्धु ! कृपा-दृष्टि रखना ॥ २१ ॥

दोहा.

पाति ब्रह्मनि पानि दिय, बहुरथो लई प्रवीन ।

चित दशावत मित प्रति, लखी उद्यु काव्य नवीन ॥ २२ ॥

पत्रिका कुसुमावलि के हाथ में देकर फिर वापिस ले ली, और उसमें अपने
मन की दशा के अनुसार नूतन कविता लिखी ॥ २२ ॥

कलाप्रवीनोक्त-पत्रभेद-अन्योक्ति-आक्षेपालंकार.

सवैया.

प्रेमहुको रसकूप भर्यो इक, केउ दिनां हम सागर पायो ।

ताअन सिक्क बनाय तहां नित, नीरके तीरन पुंज जमायो ।

सायत शोधत चूक परी चित, शुद्ध मुहूरत सोय बिहायो ।

कंचनकी पल सो गुजरी, अब तो पल लोहकथीरको आयो ॥ २३ ॥

हे सागर ! किसी दिन मुझे प्रेम से भरा हुआ रसकूप मिला । वहां नित्य तांबे
का सिक्का बनाकर पानी के किनारे पेंड लगाया, परन्तु उत्तम समय पूछने में भूल
हो गई, और वह शुभ मूर्त चूक गया । सोना होने का जो मूर्त था वह तो
बीत गया, और अब लोह और कथीर का समय आ गया ॥ २३ ॥

समरूपक-अलंकार-सवैया.

आसन बार रहे इकही टक, आचमनं अनुराग भरे ।

आयत सास गंहे सुर शोधन, अंजुलि नेत्र नियोग करे ।

सोधतहे गुन न्यास सबे तन, सागर ध्यान हमेश धरे ।

प्राणभयो मुनिराज इही गति, सिद्ध भिलाप सदा समरे ॥ २४ ॥

मेरा आत्मा तो मुनि बना हुआ है । आसन लगाकर एक टक से देख रहा है । अनुराग का आचमन करता है, और आने वाले श्राम से स्वर का शोधन करता है । नेत्ररूपी अंजली से विनियोग करता है । अपने गुणों का शोधन कर सर्व शरीर में न्यास करता है, और हमेशा सागर का ध्यान करता है । इस गति से मेरा प्राण मुनीश बनकर आप सिद्ध के मिलाप का सदा स्मरण करता है ॥ २४ ॥

समरूपक अलंकार-कवित्त.

अंसुवाके नीरहु ते, मंजत शरीर नित्य; विरहकी धुनी उर, तापबो बीसेख ले । नेनके कटोरे, करी मांगत दरशभिच्छा, दरदकी सेली कंठ, बिच अवरेखले । खान पान गान तान, सिगरे तजेहे सुख, प्रान जान होयगो, निदान आ परेखले । सागरसें कहो जाय, एक दिनां इते आय, प्रेमकी फकीरीकी, तमासगिरी देखले ॥ २५ ॥

मैं सदा आसू के जल से शरीर धोती हूँ । विरहरूपी धूनी हृदय में तप रही है, उसी से विशेषरूप से ताप लेती हूँ । नयनरूपी कटोरा लेकर दर्शनरूपी भिक्षा मांगती हूँ । विरह की पीड़ारूपी सेली, गले में पहिन रक्खी है, उसे देखिए । खान, पान, गीत-रागादि सब सुख छोड़ रक्खे हैं । अब केवल प्राण जाने को हैं, जिसे आप आकर परीक्षा कर लो । कोई सागर से जाकर कहो कि, वे एक दिन यहां आकर, प्रेम की फकीरी का तमाशा देख लेंगे ॥ २५ ॥

संदेहालंकार-सवैया.

डोलबो बावरो व्हेंके भलो के, भलोहे बिभूतनको धरबो ।
ईशको शीश अरोप भलो के, भलो भूप भेरबको भरबो ।
काशिमैं जाइ कटथो सो भलो के, भलोहे हिमाचलमें गरबो ।
सागर मित भलो सु बताइये, ज्योंहि कहो त्योंहिमें करबो ॥ २६ ॥

हे सागर ! पागल बनकर फिरना अच्छा है, या विभूत लगाना ? ईश्वर

के ऊपर शीश चढ़ाकर पूजा करना अच्छा है या भैरव का जप करना ? काशी में जाकर चक्र से सिर कटाना अच्छा है, या हिमालय में जाकर बर्फ में गलना अच्छा ? हे मित्र सागर ! जो अच्छा हो बताओ, और जो आप कहोगे वही मैं करूंगी ॥ २६ ॥

एकावलि अलंकार-सवैया.

केवो कहा तुम जानतहो, निस बासर सागर राह चितेबो ।

तेबो महा विरहानलमें, सु समे ज्युं तुमें बनिहे फिर एबो ।

एबो बने न तुमें तो हमे, दीन क्यों गुजरे यह आयस देबो । ~

देबो पती उनके करमें, करमें गति टेहिय तो फिर केबो ॥ २७ ॥

हे सागरजी ! बार २ क्या कहूं ? तुम सब जानते हो । रात-दिन मैं तुम्हारी ही राह देखती हूं । जब तक तुम्हारा फिर यहां आना होगा, तब तक महा विरहानल में मुझे तपना होगा । परन्तु यदि तुम्हारा आना इधर न हुआ, तो फिर दिन क्योंकर बितावें, यह आप आज्ञा दीजिये । हे प्रिय भखी कुसुमावलि ! यह पत्र उनके हाथ में देना । फिर भी यदि कर्म की गति ही टेढ़ी हुई, तो फिर अपना क्या वश ? ॥ २७ ॥

सोरठा.

लिखकें ब्रह्म कुमारि, पाती दीन प्रवीन ज्युं ।

आशिष वचन उचारि, कुसुम गवन उपवन क्रियो ॥ २८ ॥

इतना लिखकर प्रवीण ने वह पत्र कुसुमावलि को दिया, और कुसुमावलि उसे आशीर्वाद देकर बाग की ओर चली ॥ २८ ॥

सोई बंदि सन्यास, बिबस प्रेम बोल न सके ।

अतिही भरी उसास, प्रतिउत्तर पाती धरी ॥ २९ ॥

कुसुमावलि ने वहां पहुंच कर योगी को वन्दन किया, परन्तु प्रेमातिरेक

के कारण वह बोल न सकी । और अत्यन्त उसासों के साथ वह पत्रिका सामने रख दी ॥ २९ ॥

तापस लही उठाय, पाती भरी सु प्रेम रस ।

बांची भेद बनाय, शिर चढाय उर लाय उन ॥ ३० ॥

योगी ने उस प्रेमरस से भरे हुए पत्र को उठा लिया, और उसे माथे चढ़ा और छाती से लगाकर फिर उसमें वर्णित भेद को बनाकर पढ़ा ॥ ३० ॥

गाहा.

दंपति पत्र विधानं, अलख जगान जोगि पुरगमनं ।

ईकोत्तर अभिधानं, पूर्ण प्रविणसागरो लहरं ॥ ३१ ॥

स्त्री-पुरुष ने एक दूसरे को पत्र लिखा, उसकी रीति, तथा योगी अलख जगाने को शहर में गया, उस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह इकहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ ३१ ॥



७२ वीं लहर

पुनि पाती-प्रत्युत्तर, संन्यास-अरन्य-गमन प्रसंग—

रूपकालंकार-दोहा.

सागर सागर शशि पती, लखत लहर चढ़ि चाह ।

मन तरंग लग तट त्रपा, उछुरत हटक अथाह ॥ १ ॥

पत्ररूपी चन्द्रमा को देखकर सागररूपी समुद्र में चाहनारूपी लहर चढ़ आई, और मन-तरंग लजारूपी किनारे से टकरा कर अथाह उछलते हुए पीछे हटने लगा ॥ १ ॥

पुनः रूपकालंकार-दोहा.

पत्र कूप हेरत उठयो, पारद प्रेम फुहार ।

हय तन हटक्यो ले गयो, मनहु कुमारी नार ॥ २ ॥

पारो धातु है और वह एक खनिज पदार्थ है। परन्तु उसके विषय में ऐसी दंत कथा है कि एक बार शिवजी का वीर्य स्खलित हुआ और वह पारारूप हो कूप में जा पड़ा। उसे निकालने के लिए उस समय ऐसा किया जाता है कि उम और एक कुमारिका को घोड़े पर बैठाकर निकालते हैं। तब पारा कूप में से उछलता है और कुमारिका घोड़ा फेर कर आ जाती है, तथा पारा बाहर पड़ जाता है। उसी किम्बदन्ती के आधार पर कवि कहता है कि—पत्रिकारूपी कुमारी को देखते ही प्रेमरूपी पारद हृदयरूपी कूप में से उछला, परन्तु सागर का शरीररूपी घोड़ा मानो कुमारी के रूप में अलग हो गया ॥ २ ॥

सोरठा—तापस अति सोचंत, पुनि प्रतिउत्तर जो लिख्यो ।

उनकी गति एकंत, लहे उभे बंचन लिखन ॥ ३ ॥

उस तपस्वी ने अत्यन्त गंभीर होकर जो प्रति-उत्तर लिखा, उसकी गुह्य गति का भावार्थ एकान्त में पढ़ने वाला तथा लिखने वाला ये दो ही जान सकते हैं ॥ ३ ॥

श्रीमुख काव्य सु कीन, बहुरथो भेद लिखे सु बह ।

धीरज धरन प्रवीन, कुसुमावलि दीनी सु कर ॥ ४ ॥

श्रीमुख से अनेक भेदों से युक्त कविता बनाकर प्रवीण को धीरज देने के लिए कुसुमावलि के हाथों में दी ॥ ४ ॥

वह पाती उदाहरन भेद, स्मरनालंकार—सवैया.

आज प्रवीन मिले सुपने महि, भूषन बास जराव जरी धर ।

आसन एक लिये अति आदर, केसर चंदनकी चरचा कर ।

पानन वीरि बनाय खवावत, भाजन पान लियो मदिरा भर ।

सेज विनोदकि बात उचारत, या दुखियां अखियां गइ उघर ॥ ५ ॥

उसमें लिखा कि आज प्रवीण मुझे स्वप्न में आकर मिली । उस समय उसने अत्यन्त उत्तम रत्नजटित वस्त्रालंकार धारण किया हुआ था । उसने मुझे आदरपूर्वक आसन पर बैठाया, और केसर तथा चंदन से मेरी पूजा अर्चा की । पान का धीड़ा बनाकर दिया । फिर मधु-पात्र भरकर मुझे पिलाने के लिए हाथ में लिया, और सेज-विलास की बात करने लगी । इतने में दुखियारी आंख खुल गई ॥ ५ ॥

समरूपकालंकार—सवैया.

आसन साधि रखो इक धारन, बारिके भार बरुनि नमी हे ।

धूनि अखंड जगे बिरहा, सुरताके भुलांसैं देह दमी हे ।

खेंचत सास बिसाम बडो उन, एक निरंतर टेक जमी हे ।

एह प्रमान प्रवीन निहारत, जोगहु तैं क्यों बिजोग कमी हे ? ॥ ६ ॥

योगी की भांति एक धारणा से आसन लगाकर रहता हूं । मेरी पलकें जल के भार से झुक गई हुई हैं । शरीर में बिरह रूपी अग्नि की अखंड धूनी जलती रहती है । सुरतारूपी भूला में लटकाकर शरीर को दमन करता रहता हूं । लम्बी गति से श्वासोच्छ्वास लेता हूं । सदा एक ध्यान रहता है । हे प्रवीण !

मैं इस प्रकार तुम्हें ध्यान में देखता हूँ । क्या यह वियोगी की क्रिया योगी से कुछ कम है ? ॥ ६ ॥

यमकालंकार—दोहा.

घटन प्राण लागे सु घट, लटे न हर हर बार ।

जो चाहत संकट कटे, रटे हरा हर नार ॥ ७ ॥

घटरूपी शरीर से प्राण घटने लगे हैं, परन्तु हर ! हर !! वे प्राण बाहर निकलते नहीं । जो संकट काटने की इच्छा है, तो हरा (पार्वतीजी) का नाम रटन करे ॥ ७ ॥

रूपकालंकार—दोहा.

ताला में ताला लग्या, कारीगर बिध कीन ।

चित कीली संचा सबद, खोलनहार प्रवीन ॥ ८ ॥

ब्रह्मारूपी कारीगर ने ताला (भाग्य) में ही ताला लगा दिया है । परन्तु हे प्रवीण ! तुम्हारे मनरूपी कुंजी से ब्रह्मा के लगाए हुए शब्दरूपी यंत्र-ताला खोलने वाली तुम ही हो ॥ ८ ॥

सोरठा—उर टारन अंदेश, प्रति प्रवीन पाती लिखी ।

सुताब्रह्म संदेश, सागर कबो कवित्त करि ॥ ९ ॥

मन का अन्देशा हटाने के लिये प्रवीण के प्रति पत्रिका लिखी । उसके बाद सागर ने एक कवित्त बनाकर कुसुमावलि के साथ सन्देशा कहलाया ॥ ९ ॥

प्रतीपालंकार—कवित्त.

हरहे बसे त्यों जच्छ, किंनर चले तो कहा, भई जातरूप, मन इनके सरसरे । वडकुंठनाथ पुर, कंचन रचित कहा, संतनके चित नीत, चाहत दरसरे । मनिबंध मानसर, सुर बिहरे तो कहा, तोय तोयनिधिके, न बूझत तरसरे । चंदन चढाय जाय, बंदन हमारे करि, पंथिक प्रवीन पेर, क़ारीसे परसरे ॥ १० ॥

कैलास में शंकर निवास करते हैं, यक्ष और किन्नर फिरते हैं, वह सारा सोने का बना हुआ है, और उनको मन भावता है, तो क्या हुआ ? वैकुण्ठनाथ ने वैकुण्ठपुरी सोने की बना रखी है, संत जनों का चित्त उसके दर्शन के लिए उत्सुक रहता है, तो भी उससे क्या ? मानसरोवर मणियों से बंधा हुआ है, और देवता लोग वहां विहार करते हैं, उससे भी क्या ? समुद्र में खूब पानी भरा हुआ है, परन्तु उससे किसी की प्यास नहीं बुझती, तो वह किस काम का ? हे पथिक ! कोई उपाय करो । प्रवीण के पास जाकर उसको चन्दन से चर्चित करके मेरी प्रार्थना के साथ उसे स्पर्श करो ॥ १० ॥

सोरठा.

पाती दई सु पान, सागर कुसुम प्रवीनकी ।

धार्यो पंथ पयान, पुर ब्रह्मनि तापस गहन ॥ ११ ॥

प्रवीण को देने का पत्र सागर ने कुसुमावलि के हाथ में दिया, जिसे लेकर उसने नगर की ओर, और तपस्वीजनों ने गहन बन की ओर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

उरमें उभे उदास, कहे तापस लाव न कछू ।

बीतत हयन निवास, फेर करेंगे आई इत ॥ १२ ॥

फिर योगी ने कुसुमावलि को चलते समय कहा कि, तुम दोनों अपने मन में उदासी मत लाना । हम एक वर्ष के व्यतीत होते ही फिर यहां आकर निवास करेंगे ॥ १२ ॥

अमृतधुनि यमक—छंद मुक्तदाम.

चले उठि जोगिय हाथ झटक, पुरातनको सुख साज पटक्क । खरें बिछुरे बिरहा सु खटक्क, चढ़ी मनु प्रेम सुरंग चटक्क । भरभर कंठ उसास भरंत, धरद्वर प्रान बेहोस धरंत । फरफर नग्न बहे नरखंत, खरखर बुंद चखें बरखंत । तरत्तर टेकतहे निज अंग, थरथर मानहु भंग भुजंग ।

भरझर स्वेदमनो गज मद्, हरंहर भंखत मंत्र शब्द । यही बिधि तापस
ब्रच्छ चलंत, तिहि गति ब्रह्मि पुरी प्रबिसंत ॥ १३ ॥

हाथ भटक कर योगी उठ चले, और जां उनके पास सुख की वस्तुएं थीं
उन्हें फेंक दिया । अब वस्तुतः वियोग हुआ, और मन में विरह खटकने लगा,
वह मानो प्रेम का खरा रंग चढ़ गया । कंठ भर २ कर उमासें लेते हैं, घड़ी २
में मूच्छा आती है, फिर २ कर नगर की ओर देखते हैं, और आंखों से भर २
आंसू चलते हैं । भाड़ २ पर शरीर टेकते हैं, और शरीर सर्प की भांति थर २
कांपता है । शरीर से ऐसे पसीना भरता है, जैसे मदभर हाथी के मस्तक से मद
भर रहा हो । मुंह से 'हर हर' बोलते हैं । इस प्रकार तपस्वी जङ्गल में चले,
और इसी प्रकार कुसुमावलि नगर में गई ॥ १३ ॥

सोरठा—दुजि प्रवेश पुर कीन, पहुंची कलाप्रवीनपें ।

तापस पाती दीन, मोन लीन मुख दुख भरे ॥ १४ ॥

ब्रह्मकन्या नगर में प्रवेश कर कलाप्रवीण के पास पहुंची, और तपस्वी
का दिया हुआ पत्र उसे देकर मौन और दुःखित हो गई ॥ १४ ॥

कुमरी सही समाज, व्याज सैन दीनी बिदा ।

पाती सागरराज, गइ इकंत बंचन लगी ॥ १५ ॥

कुमारी ने शयन करने का बहाना करके सबको बिदा किया, और एकान्त में
जाकर मित्र सागरराज का पत्र पढ़ने लगी ॥ १५ ॥

बंचत जोगि बिदाय, पाय लाय लागी प्रबल ।

वनी न बरनी जाय, हाय हाय मुख बानि हुइ ॥ १६ ॥

पढ़ते २ यह जानकर कि योगी बिदा हो गये, मन में अति दुःखित
हुई, जिसका वर्णन नहीं हो सकता । और एक दम 'हाय ! हाय !' मुख से
निकल पड़ा ॥ १६ ॥

संबंधातिशयोक्ति अलंकार—छंद मल्लिका.

बंचितं पती प्रवीन, प्रान अंबु छीन मीन । जात सो पलं सु जान,
आजही प्रले प्रमान । मानहु सहस्र सूर, भूमिपें भयो सु नूर । लंघितं
प्रजाद आप, बाडवा बढे प्रताप । शेषने भयौ उसास, कच्छहु कियो
निकास । कोलको भग्यो सु दंत, दंतिही डिगे डिंगत । धातुके धसे सु श्रंग,
ज्वालनेन जीत जंग । शेषसैं सबे ब्रह्मंड, भंग भो बिराट अंड । सो दशा
प्रवीन पाय, धीर ब्रह्मनी धराय ॥ १७ ॥

उस पत्र के पढ़ते ही प्रवीण के प्राण ऐसे तड़फने लगे, जैसे बिना पानी के मछली । और जो पल बीतता, वह मानो आज ही प्रलय करने वाला है । अथवा सहस्र सूर्य का ताप पृथ्वी पर तप उठा हो । अथवा समुद्र ने मर्यादा छोड़ दी हो । या बड़वाग्नि का ताप बढ़ गया हो । अथवा शेषनाग ने उसास भरा हो । अथवा जिस कच्छप के सहारे पृथ्वी है, उसे हटा दिया हो । या बाराह के जिन दांतों पर पृथ्वी है, वह टूट गये हों । अथवा दिग्पाल जो दिशाओं में रहते हुए पृथ्वी को दबाये हुए हैं, वे हट गये हों । अथवा धातुओं का पर्वत जो मेरु है, वह गिर पड़ा हो । अथवा भगवान् रुद्र का प्रलयकारी तृतीय नेत्र खुल गया हो । अथवा शेष सहित सर्व ब्रह्माण्ड जो अण्डाकार है, उसका विराट अंग भंग हो गया हो । प्रवीण की ऐसी दशा पाकर कुसुमावलि उसे घेर्य देने लगी ॥ १७ ॥

सोरठा—खान पान रुचि छंडि, बाला लही बिदेह गति ।

असुआं नेन उमंडि, बढत स्वास बग्नि बिरह ॥ १८ ॥

खान-पान की रुचि छोड़कर राजवाला ने विरह की दशा लेली । आंखों में आंमूं उमंड आये, तथा श्वास और विरह वेदना बढ़ने लगी ॥ १८ ॥

जो तन तापस ताप, सो सत गुन परवीन मन ।

उरभूत आपहि आप, पल पल प्रान प्रयान रुच ॥ १९ ॥

तपस्वी के मन में जितना ताप हुआ, उससे सौगुना ताप प्रवीण के मन में हुआ । मन के मन में वह मुरझाई रही, और पल २ में प्राण जाने की इच्छा करती ॥ १९ ॥

एक वरष अनुमान, आवन ओधि सु विप्र बदि ।

ओध आस उर आन, नीठ नीठ वपु वास किय ॥ २० ॥

तब ब्रह्मकन्या कुसुमावलि ने उससे एक वर्ष में पीछे आने की अवधि की बात कही । उस अवधि की आशा हृदय में रखकर जैसे तैसे प्राणों को दृढ़ किया ॥ २० ॥

दोहा-पल पल कला प्रवीनपें, ब्रह्मनि धीर धराय ।

उन मुख आवन ओधि बदि, नीठसु प्रान द्रढाय ॥ २१ ॥

कुसुमावलि ने कलाप्रवीण को पल २ में धीरज दिलाकर, और तपस्वी द्वारा कही आने की अवधि की बात कहकर, कठिनता से कलाप्रवीण के प्राणों को रोका ॥ २१ ॥

खान पान सुख सेज तजि, सौध सु कलाप्रवीन ।

उत्तर आसा आस सिध, यतीव्रतम तब लीन ॥ २२ ॥

कलाप्रवीण खाने-पीने का सुख तथा शय्या का सुख तजकर महल में रहती । इसी प्रकार यतिरूप योगी ने सिद्ध से मिलने की आशा में उत्तर दिशा का मार्ग लिया ॥ २२ ॥

चौपाई.

इहि विधि जोगि बिपन पथ लीने, बसन बद्रिकाश्रम चित कीने ।
चाह सिद्ध परसन सु उलट्टे, मंद मंद संचर गिर कट्टे ॥
सातहु भित सांत रस भीने, सातहु पच्छ पंथ जब कीने ।
नीठ बद्रिकाश्रम तब आये, दरस बद्रिकेदारहु पाये ॥
आसन उतें अनेक मुनीशा, ठोर ठोर उपगंग गिरीशा ।
साधक सिद्ध जोगकम साधे, आप इष्ट परिब्रह्म अराधे ॥

नित फल फूल भुक्ति बनराया, षट् रित् उत रितुराज लखाया ।
 गिरिवर श्रंग भरन जल धारा, बरषा उतें मास मनु बारा ॥
 तापस तित प्रताप विस्तारे, बैरभाव पशु पंखि बिसारे ।
 केहरि बास करत करि छाया, करी कलभ केहरि धत माया ॥
 कला कलापि धरित नृत मंडे, सनमुख अहि आवत बिल छंडे ।
 चटकहि बाल बाज प्रतिपारे, बायस करत उलूक बिहारे ॥
 बक भ्रूष करत समीप बिहारा, दाहत बन न बन्धि विस्तारा ।
 सारिता सर सरोज सुभ नीरा, सुरभि सीत गति मंद समीरा ॥
 गिरि गिरि बन बन बन प्रति बेली, नीड नीड खग करत सु केली ।
 शाख शाख हींचित अगशाखा, परि परि रटत पंखि पशु भाषा ॥
 सुमन सरोज रंग प्रति रंगा, ग्रहि मन मोद गुंजरत भ्रंगा ।
 सागर लखत मोद मन लाये, आश्रम हेर चिताश्रम पाये ॥ २३ ॥

इस प्रकार योगीजन ने वन का मार्ग लिया, और बद्रिकाश्रम में जाकर रहने का मन में संकल्प किया । सिद्ध से मिलने की आशा में धीरे २ पर्वतीय मार्ग काटने लगे । मातों मित्र शान्त रम में मग्न थे । सात पखवाड़ा चलने के उपरान्त बद्रिकाश्रम के समीप आये, और बद्रिकेदारेश्वर के दर्शन प्राप्त हुए । वहां अनेक मुनीश्वरों के आसन लगे थे । जगह २ पर गङ्गाजी के तट पर पर्वत हैं, जहां साधक और सिद्धजन योग की क्रिया करते, और परब्रह्म इष्ट का आराधन करते । उस वन में वृक्षों पर मदा फल-फूल लगे रहते । छत्रों ऋतुओं में वहां बसंत ही दीखता । बड़े २ पर्वतों के शिखर पर से झरनों का जल कल २ करता हुआ भरता रहता, जो मानों बारह मास वर्षा ऋतु का दृश्य दिखाता रहता था । वहां तपस्वियों का प्रताप फैला हुआ था, जिसके कारण पशु-पक्षी परस्पर बैर भाव भूले हुए थे, हाथी की छाया में सिंह निवास करता, और केमरी के साथ हाथी का बच्चा मिलकर खेलता । मोर कला के साथ नृत्य करता, जिसे देखने को बिल छोड़ भयरहित सर्प सामने आता । चिड़िया के बच्चे को बाज पालता, तथा कौवा और उल्लूक साथ विहार करते । बगुला और

मछली साथ २ खेलते । वहां अग्नि का विस्तार होते हुए भी अग्नि वन को जलाता नहीं थी । नदी, तालाब, कमल और जल सब सुन्दर थे । शीतल मंद सुगन्धित समीर चलता रहता था । प्रत्येक पर्वत पर वन थे, और वन में लताएं लटक रही थी । ऐसे रमणीय स्थान पर पक्षीगण अपने २ घोंसलों में क्रीड़ा कर रहे थे । डाली २ पर बन्दर चढ़ रहे थे, और पत्ते २ पर नानाप्रकार के पक्षी अपनी २ बोली बोल रहे थे । वहां रंग बिरंगे पुष्प और कमल खिल रहे थे, जिनके सुवास से भ्रमरावलि मत्त हो गुंजार करती थी । इस प्रकार के उस वन को देखकर सागर मन में अति आनन्दित हुआ, और बद्रिकाश्रम को अवलोकन कर उसका चित्त शांत हुआ ॥ २३ ॥

दोहा.

सुरतानन्द पहाड़ तहां, अंब व्रच्छ उन श्रंग ।

कुसुमाकर बिकसित बिपिन, निकट गहर गति गंग ॥ २४ ॥

वहां सुरतानन्द नाम का एक पर्वत है, जिसके शिखर पर आम के वृक्ष शोभित हैं । उस पर्वत पर बसन्त ऋतु खिल रही थी, और उसके पास ही गम्भीर गति वाली गङ्गा बहती है ॥ २४ ॥

तिहां पंच दिन रहन किय, अविलोकत एकंत ।

इष्ट मंत्र साधन लगे, सप्तासन किय मित ॥ २५ ॥

ऐसा एकान्त स्थान देखकर, तथा वहां पांच दिन रहने का निश्चय करके, सातों मित्र आसन लगाकर इष्ट के मंत्र का साधन करने लगे ॥ २५ ॥

सोरठा-मंजन कीजत गंग, करि ईडन प्रति भव भवा ।

सुरतानन्द सु श्रंग, प्रेम मंत्र सप्तहु सधे ॥ २६ ॥

वे सातों मित्र गङ्गा में स्नान करके शिव-पार्वती की स्तुति करने लगे, तथा सुरतानन्द पर्वत के शिखर पर प्रेम-मंत्र की साधना करने लगे ॥ २६ ॥

पूर्वायस अनुमान, प्रभानाथ परसन चहे ।

सिद्ध सबे विधि जान, गिरि आश्रम तजि गमन किष ॥ २७ ॥

सिद्ध ने पहले कहा था, अतः तदनुसार वे लोग प्रभानाथनामक सिद्ध के दर्शन की अभिलाषा करने लगे । सिद्ध भी सब प्रकार से जानने वाला था, इसलिये उसने भी अपने ज्वालामुखी पर्वत के ऊपर के आश्रम को त्याग कर सुरतानन्द पर्वत की ओर गमन किया ॥ २७ ॥

पांच घोस बिलमंत, प्रभानाथ आये तहां ।

तापस लिखत महंत, बंदि चरन अरचे विविध ॥ २८ ॥

तपस्वी लोग पांच दिन वहां रहे, इतने में प्रभानाथ वहां आ पहुंचे । उस महान् पुरुष को देखकर इन लोगों ने इनके चरण स्पर्श कर अनेक प्रकार से पूजन अर्चन किया ॥ २८ ॥

गाहा-बिछुरन दशा प्रवीनं, सागर सिद्ध मिलन बद्रिकाश्रम ।

द्वीसित्तर आभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥ २९ ॥

अलग होने से प्रवीण की जो दशा हुई, तथा सागर का बद्रिकाश्रम में सिद्ध से मिलाप, इनका वर्णन करनेवाली प्रवीणसागर की यह बहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ २९ ॥



७३ वीं लहर

श्री कलाप्रवीनविरहदशावर्णन-दोहा.

सागर सिद्ध मिलापकी, उते रखी सब बात ।

कथा कलापरवीनकी, कहूं कछुक अवदात ॥ १ ॥ *

कवि कहता है कि—बद्रिकाश्रम में रससागर और प्रभानाथ सिद्ध के मिलाप की वार्ता वहीं छोड़ते हैं, और कलाप्रवीण की पवित्र कथा का कुछ वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

सागरके बिछुरे बिपुल, बाढयो विरह प्रबान ।

यातें अति आक्रंद करि, रोवत रातो दिन ॥ २ ॥

सागर की जुदाइ से प्रवीण को अति विरह व्यथा बढ़ी, जिससे अति दुःखित होकर वह रात-दिन रोने लगी ॥ २ ॥

अति उदास उरमें बनी, छिन छिन छीजत काय ।

आह भरत उचरत अधिक, हाय हायरे हाय ॥ ३ ॥

हृदय में अति उदास होकर, क्षण २ में शरीर से क्षीण होने लगी । और उसासे भरती और बार २ 'हाय हाय' का उच्चारण करने लगी ॥ ३ ॥

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

कलाप्रवीन दशा वर्णन दोहा.

कथा जोगिकी उत रही, अब कहूं प्रविन वृत्तंत ।

बिछुरनतें विरहा बढ्यो, बारबार बिलपंत ॥

कवि कहता है कि—योगी की कथा वहीं रही, अब प्रवीण का वृत्तान्त कहता हूं । उसे वियोग होने के कारण विरह-व्यथा बढ़ी, और वह बार २ बिलाप करने लगी ॥

कुसुम प्रती कुंवरी कहे, उरमें अति अकुलाय ।

सुख दायक सागर बिना, मोय लगे दुखदाय ॥ ४ ॥

मन में अति अकुला कर कलाप्रवीण कुसुमावलि से कहती है कि, हे बहिन ! एक रससागर के बिना सब सुखकर वस्तुएं मुझे दुःखदायक प्रतीत होती हैं ॥ ४ ॥

कुसुम-प्रति कलाप्रवीणोक्त, व्याघातालंकार—कवित्त.

शूल समफूल, सेज चिता के समान आलि, क्वाथसें कीलाल अरु, औषधसें अन हे । अनलसें अंग राग, भूषन भूजंग जैसें, बीरी वच्छ नाग जैसी, लागत मो मनहे । भार्वासीसें भौन अरु, पौन लगे पावकसें, ज्वालासें जोन्ह अरु, कामभो कदन हे । ऐसेही अनेक विधि, सागर सनेही बिन, सुखद दुखदहे, तपात मेरे तन हे ॥ ५ ॥

कुसुमावलि से कलाप्रवीण कहती है कि, हे सखी ! फूल मुझे शूल (कांटे) के समान, तथा शय्या चिता के समान, पानी काढ़े के समान, और अन्न औषधि के समान लगता है । शरीर पर अंगराग अग्नि के समान दाहक, आभूषण सर्प के समान, तथा पान का बीड़ा वच्छनाग विष के समान लगते हैं । यह राजमहल कैदखाना के समान भयंकर लगता है । शीतल पवन दाह उत्पन्न करनेवाला हो रहा है । चन्द्रमा की शीतल चन्द्रिका भी भयंकर दाह उत्पन्न करती है, और कामदेव नाशकारी दीखता है । इसी प्रकार अन्य भी अनेक सुख-दायक वस्तुएं परमस्नेही सागर के बिना अति दुःखदायी होकर मेरे शरीर को जलाती हैं ॥ ५ ॥

पुनः व्याघातालंकार—सवैया.

व्याधसें वेधत चातक चित्तही, गारिसें गीत लगे बिकरारे ।

व्यालसें माल लगे बिकरालहि, कालसें काम व्यथा बिसतारे ।

नीकी सुवास कुवास लगे पुनि, पावकसें अति पौन प्रजारे ।

योहि अनेक भये उलटे बिन, सागर चित्त दुने दुखदारे ॥ ६ ॥

फिर कुसुमावलि से प्रवीण कहती है कि, हे सखी ! पपीहा 'पीव पीव' बोलकर व्याध की भांति मेरे मन को बाँधता है । और कोई गीत गाता है, तो मुझे वे गाली के समान विकराल दिखाई देते हैं । माला मुझे सर्प के समान विकराल प्रतीत होती है, और कामदेव काल के समान पीड़ा देता है । सुन्दर सुगंध मुझे दुर्गन्ध प्रतीत होती है, और पवन अग्नि के समान बहुत जलाने वाला हो रहा है । इस प्रकार अनेक सुखदायक वस्तुएं, एक सागर के बिना उलटी दुःख-दायक होकर मेरे मन में दूना दुःख उत्पन्न करनेवाली हो रही हैं ॥ ६ ॥

दोहा—बालम गये विदेशमें, छोड़के हम संग ।

ताते बेधत बानतें, अतनु हमारे अंग ॥ ७ ॥

मेरा साथ छोड़कर मेरे प्रियतम परदेश में चले गये हैं, इससे मुझे अकेली जानकर कामदेव मेरे शरीर को बाण से बाँध रहा है ॥ ७ ॥

अपन्हुति अलंकार—कवित्त.

शक्र को न चाप यह, कामकी कबान राजे, दामिनी दमक नाहि, शेल चमकायेहे । चातकके शब्द नाहि, शब्द शूरवीरनके, बारिके न बुंद यह, बान बरसायेहे । गर्जना न गाज यह, बाजत नगारे बर, जूगनूकी ज्योति नाहि, जामगी जलायेहे । पावस न पेख आलि, सागर सिधाय यातें, मैन मोहि मारिबैंको, सैन सज आयेहे ॥ ८ ॥

पावस ऋतु में सागर के विरह में प्रलाप-दशा उत्पन्न होने से प्रवीण कुसुमावलि से कहती है कि, आकाश में यह इन्द्र-धनुष नहीं है, प्रत्युत कामदेव का धनुष है । यह बिजली की चमक नहीं, गालों की चमचमाहट है । यह पपीहा पक्षी की बोली नहीं, शूर-वीर सैनिकों का कोलाहल है । यह वर्षा की बूँदें नहीं, बाणों की वर्षा हो रही है । यह भेष की गर्जना नहीं, फौज के नगारे बज रहे हैं । यह जुगनू की चमक नहीं, बन्दूकों की चिनगारियाँ हैं । हे सखी ! देख तो सही, यह पावस ऋतु नहीं है, प्रत्युत मेरे प्रियतम सागर परदेश गये हैं, यह जानकर मुझे मारने के लिये कामदेव ने सैन्य सजाकर चढ़ाई की है ॥ ८ ॥

संदेहालंकार-कवित्त.

उठत उसास सास, अतिमेरे अंगहिमें, छोजीकें शरीर सबे, पाये कृशताईकों । शिथिल भे गात अरु, बात न कहात कछु, चित्त न सूहात चारु, साज सुखदाइकों । मन मुरझात महा, पांसूरी पिरात पुनि, आज ज्यों समय नेरे, जीवकी जुदाइकों । तातें हम जाने बिन, सागर मो मारिबेकों, आगम भो अंत किधों, बिरह बलाइकों ॥ ६ ॥

मेरे अंग में अतिशय आसोच्छ्वास उठते हैं । शरीर शिथिल होता जा रहा है । मुख से कुछ कहा नहीं जाता । सुन्दर और मनोहर वस्तुएं अच्छी नहीं लगती । मन गिरता जाता है, और पसलियों में दर्द होता है । ऐसा लगता है कि मेरे जीव की जुदाई का समय समीप आ रहा है !! इससे मुझे प्रतीत होता है कि, सागर के यहां न होने के कारण मुझे मारने के लिये या तो काल का आगमन हो रहा है, या विरहरूपी बिलाव आ रहा है ? ॥ ६ ॥

शिञ्जालेप-अलंकार-कवित्त.

तजि देश बेरा भये, सागरसो योगी याकों, एतो उपदेश कहि, आव आलि कानमें । आपहो अजान योग, साजके मिलाइबमें, कहो कहां जाओगेरी, दुंदन जहानमें । योगीकों अहरनिशी, वपुमें विलेपनकों, पाइये परमवर, बिभूती बिहानमें । यातें हम जरि तन, भभूति बनावों भूरि, लेपनकों सोई रहो, मेरेइ मशानमें ॥ १० ॥

देश और वेष छोड़कर सागर योगी हो गए, इसलिये हे सखी ! इतना संदेश उन्हें कान में कह आओ कि, तुम योग विद्या की सामग्री प्राप्त करने में अनजान हो !! दुनियां में कहां गोते लगाते फिरोगे ? योगी को हमेशा शरीर में लगाने के लिये पवित्र विभूति चाहिये, इसलिये मैं अपने शरीर को जलाकर पुष्कल भस्म तैयार कर देती हूं । आप उसे लेपन करने के लिये मेरे ही रमशान में रहो ॥ १० ॥

आक्षेपालंकार-कवित्त.

ताजि राज काज बनि, योगी अवधूत महा, सागर सिधाय ताकों,
कोउ समजावोरी । योगीके अनेक साज, पायगे ये कासैं आज, तातैं हम
शोनितमें, भगुवे बनावोरी । बारकी बनाई शेली, कुचके बिभूति गोली,
कर्परके खप्परले, हाथमें धरावोरी । खैची हम खाल वाकी, मंजु मृगशाला
रची, औरै अंग जारि तनु, भसम लगावोरी ॥ ११ ॥

राज-काज छोड़ महाअवधूत योगी बनकर सागर चले गए हैं । उन्हें
जाकर कोई समझाओ कि, योगी की अनेक सामग्री आज आप कहां पावेंगे ?
इसलिये मेरे रक्त का काषाय बनाओ । मेरे बालों की शेली बनाओ । स्तन
को भस्म का गोला बनाओ और मेरे कपाल का खप्पर बनाकर हाथ में धारण
करो । तथा मेरे शरीर की खाल उतार कर सुन्दर मृग चर्म बनाओ, और शेष
रहे शरीर की भस्म बना के शरीर पर धारण करो !!! ॥ ११ ॥

कलाप्रवीनोक्त-आक्षेपालंकार-सवैया.

भस्म लगाइ बनाइ जटा, छवि सागर लीनिहे शंभु प्रभाकी ।
जोगि बनी करि मोकुं बिजोगिनि, भोगिनि भैरहि भोग बिनाकी ।
शंभु चिताकि बिभूति धरे, इतनी कमि काहिकुं राखि कहाकी ।
एरि सखी उन टेरि कहे, धरि जाय बिभूति सु मेरि चिताकी ॥ १२ ॥

कुसुमावलि से प्रवीण कहती है कि, सागर ने शरीर में भस्म लगाकर और
मस्तक पर जटा बनाकर महादेव की कान्ति प्राप्त की है । स्वयं योगी बनकर
मुझे वियोगिनी बनाया है, जिससे कि भोगिनी होते हुए भी मैं भोगविहीन
हो रही हूं । शंकर तो चिता की बिभूति लगाते हैं, उनसे कहो कि, तुमने इतनी
कमी क्यों रखी है ? हे सखी ! उनसे पुकार कर कहो कि, वे मेरी चिता की
बिभूति अपने अंग पर लगावें !!! ॥ १२ ॥

शिक्षाक्षेप-अलंकार-कवित्त.

जोगी भये सागर, संजोगीको भ्रिगार तजी, कमंडलु कर धरी, मुद्रा

धरी कानमें । होइकें उदास, बनवास करनेकी आस, जातहे सो बरजेसैं, क्यों रहे संस्थानमें । जोगी तो निदान, समसानमें सदाइ बसे, जानत न सागर क्युं, इतनी जहानमें । तजी यह प्रौढ पूर, काहिकों सो जात दूर, कहो ज्युं रहे हजूर, मेरेइ मसानमें ॥ १३ ॥

सागर, संयोगी का माज छोड़कर योगी होगये । हाथ में कमण्डलु और कान में मुद्रा धारण कर लिया । उदास होकर बनवास करने की इच्छा से जा रहे हैं, भला वे अब मना करने से संस्थान में क्यों रहने लगे ? परन्तु न जानें क्यों सागर दुनियां में इतना भी नहीं जानते कि, योगी तो सदा श्मशान में ही रहते हैं !! इस बड़े नगर को छोड़कर फिर क्यों दूर जा रहे हैं ? उनसे कहो कि मेरे ही श्मशान में पास ही रहें ॥ १३ ॥

सहोक्ति-अलंकार-सवैया.

सागर भित पुकार सुनो, अबमें पुनि आपकि संगहि आऊं ।
जो तुम अंग भभूत लगाई तो, मैं पुनि अंग भभूत लगाऊं ।
जो तुम भीखको भोजन पाइ हो, मैं पुनि भीखको भोजन पाऊं ।
जो तुम नाथ अलेक जगाइ हो, मैं तुम साथ अलेक जगाऊं ॥ १४ ॥

हे सागर मित्र ! मेरी पुकार सुनो । अब मैं भी तुम्हारे साथ ही आती हूं । जो तुम शरीर में विभूति लगाओगे, तो मैं भी विभूति लगाऊंगी । जो तुम भिक्षा मांग कर भोजन करोगे तो, मैं भी भिक्षा ही ग्रहण करूंगी । और जो तुम अलख जगाओगे, तो मैं भी तुम्हारे साथ ही अलख जगाऊंगी ॥ १४ ॥

विधिप्रार्थना-कवित्त.

अहो बहुमुख मुकुं, कायकुं तें दियो दुःख, कृपा करी कहो कहा, करी तेरी चोरी में । मेरो पति धरे भेख, एसो क्योंहि लिख्यो लेख, देख मेरी देह दशा, सुख की बिछोरिमें । अब अनुकंपा ल्याइ, होवहु सहाइ आई, बडी वस्तु चाहुं नही, चाहुं वस्तु थोरिमें । जुग कर जोरी जोरी, कहुंमें निहोरी तोसें, भभूतकि गोरी वैं के, रहुं वाकी भोरीमें ॥ १५ ॥

अरे ब्रह्मा ! तुमने मुझे क्यों दुख दिया ? कृपा कर बतलाए कि मैंने तुम्हारी क्या चोरी की ? ऐसा लेख क्यों लिखा कि, मेरा पति भेख धारण करे ? सुख के बिछोड़ में मेरी जो तन की दशा हुई है उसे आकर देख, और दया करके अब तो सहायता कर । मैं कोई बड़ी वस्तु नहीं चाहती हूँ, मैं तो मामूली सी वस्तु चाहती हूँ । दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूँ कि, तू इतना कर कि, मैं विभूति की गोली होकर उनकी (सागर की) झोली में रहूँ ॥ १५ ॥

उपमालंकार—कवित्त.

सागर सन्यासी होई, बनके निवासी भये, तातें चहुपासी अब, देखुं दुख राशीमें । भयेहे उदासी काया, माया तें निरासी दील, होउ बनवासी किधों, करुं वास कासीमें । प्रेमकुं प्रकाशी अष्ट, जोगकुं अभ्यासी मागु, हीयमें हुलासी, अविनाशीकुं उपासीमें । संजोगि श्रीया सी, शैलजा सी शिवकी जटासी, भानुकी प्रभा सी, होउं सागरकी दासीमें ॥ १६ ॥

सागर सन्यासी होकर बन के निवासी हांगये, इसमे मुझे चागें ओर दुख का पहाड़ दीखता है । मेरा मन उदासीन, और शरीर तथा माया से निराश हो रहा है, और ऐसा विचार होता है कि बन में जाकर वास करूँ !! या काशी में निवास करूँ । वहां प्रेम का प्रकाश करके अष्टांग-योग का अभ्यास करते हुए परमेश्वर की उपासना करूँ, और हृदय में उल्लासित होकर यह याचना करूँ कि, मैं लक्ष्मी, पार्वती, शिव की जटा, और सूर्य की कान्ति की भांति पति के संयोग-वाली सागर की दासी हाऊं ॥ १६ ॥

स्मरनालंकार—कवित्त.

गेबी जोगी आयो, भेख अजब बनायो, उने गूढ शब्द गाथो, आइ अलेक जगायोरी । शब्द सो सुनायो, मेरो मन मुरझायो, तब ताहि कुं बोलायो, हर्म्य तरे ठहरायोरी । भिच्छा जब पायो, तब चंचल चलायो, पाउं सत्वर सिधायो, फेर द्रष्टि न देखायोरी । चेटक लगायो, मेरा चित्त कुं अमायो, फेर कहां सो जुपायो, क्युंही अजहु न आयोरी ॥ १७ ॥

अरी ! वह अजब गैबी योगी (सागर) आया, उसका वेष अजब था । उसने गूढ़ शब्द का गान करके यहां आ अलख जगाया । उसशब्द को सुनकर मेरा मन मुर्झा गया । उसे बुलाकर हवेली के नीचे खड़ा रक्खा, और भिक्षा पाते ही वह चपल गति से चला गया, और फिर दिखाई नहीं पड़ा । मुझे चेटक लगाया, और मेरे मन को भ्रमित कर दिया । फिर वह कहाँ चला गया ? जो अब तक भी नहीं आया ? ॥ १७ ॥

सोरठा.

सागर पथ चित चाहि, जब प्रवीन चकपें चली ।

तब कुसुमावलि ताहि, कहन लगी जुगती करी ॥ १८ ॥

जब सागर का रास्ता देखने के लिए मन में उत्सुक हो प्रवीण चक की ओर चली, तब कुसुमावलि युक्तिपूर्वक कहने लगी ॥ १८ ॥

शिखाक्षेप-अलंकार-कवित्त.

सुनहु सुजान चक, समीप न जैहु कवे, द्युतिमान देह तेरो, चकमें देखायगो । माशुक तिहारो मुख, आशक निहारे कोउ, बाधरो बनीके ठोर, ठोर बिललायगो । तिच्छन कटाछ तेरे, बानके समान तातें, छतियामें छेल कोउ, छिनमे छेदायगो । सातकुं सन्यासी बन-बासी तेरे आस्य किये, ओरहु उदासी न्है, सन्तासी होइ जायगो ॥ १९ ॥

हे सुजान ! संभल, तू चक के पास कभी मत जा, क्योंकि तेरा कान्तिमान शरीर चक में से बाहर दिखाई पड़ेगा । हे प्रिये ! तेरा मुख यदि कोई प्रेमी देख लेगा तो, पागल बन जायगा, और इधर उधर विलाप करता फिरेगा । तेरे कटाक्ष-बाण ऐसे तीक्ष्ण हैं कि कोई भी छैल पुरुष उससे क्षणमात्र में छाती में बिंध जायगा । तेरे मुख के कारण सात व्यक्ति तो संन्यासी होकर बनमें निवास कर रहे हैं, और भी उदासीन होकर संन्यासी हो जायेंगे ॥ १९ ॥

दोहा—सब नर सन्यासी बनी, जो बसही बन जाय ।

सब शामा यह शहरकी, तोसे बैर बढ़ाय ॥ २० ॥

इस प्रकार जो सारे पुरुष संन्यासी होकर बन में चले जायेंगे, तो इस नगर की अनेक स्त्रियां तेरे साथ शत्रुता करने लगेंगी ॥ २० ॥

कवित्त.

देखी तेरो रूप, मान रतिको न रह्यो रंच, तातें रतिपति, तेरा तनकुं तवाओ री । पंकजकी प्रभा, छीन लीनी तेरे पाव पामी, पंकज तनूज तातें, बैरकुं बढ़ायो री । मृगके नयन की नीकाई, तेरे नेन आई, तातें शशि तोकुं, दुःख दायक देखायो री । शरीरमें सागर, संताननकी शोभा लीनी, तातें तोसे तेरो सेन, सागर रीसायो री ॥ २१ ॥

तेरे रूप को देखकर रति का रंचक भी मान नहीं रहा, इसीलिये रतिपति कामदेव तेरे शरीर को तपा रहा है । तेरे पावों ने कमल की प्रभा छीन ली है, इसीलिये पंकज-तनय ब्रह्मा ने तुझसे शत्रुता कर रखी है । तेरी आंखों में मृग के नयन की सुन्दरता आ गई है, इसीलिये मृगपति चन्द्रमा तुझे दुःखदायी हो रहा है । तूने अपने शरीर में सागर के संतान (चन्द्र, हाथी, सारंग, धनुष, मोती, प्रवाल आदि) की शोभा ले ली है, इसलिये हे सखी ! तेरा प्रेमी सागर तुझ से नाराज है ॥ २१ ॥

दोहा—यों बहुत संग विरोध करि, तुं पाई संताप ।

प्रिय प्रवीण यह महलमें, गुप्त रहो अब आप ॥ २२ ॥

इसप्रकार तूने बहुतों से विरोध किया, और अब दुःख पा रही है । इसलिये हे प्रिय प्रवीण ! अब महल में ही गुप्त रूप से रह ॥ २२ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

मैं लपटाई नहीं तनु प्रीतम, ज्यों लपटे बनमें तरु बेली ।
ज्यों रति काम रचे रति रंगहि, ज्यों पति संग न मैं रचि केली ।

कंठ कभी न लगी पतिके पुनि, ज्यों लगी कंठ सुभागिनि शेली ।
सागर छोड़ गये हम ज्यों, दमयंति तजी नलराय अकेली ॥ २३ ॥ *

जिसप्रकार वन में लताएं वृक्ष के साथ लिपटी रहती हैं, उस प्रकार मैं अपने प्रियतम के साथ लिपटी नहीं । मैंने अपने पति के साथ उस प्रकार काम क्रीड़ा भी नहीं की, जिस प्रकार रति और कामदेव क्रीड़ा करते हैं । जिस प्रकार भाग्यशालिनी सेली उनके कंठ से लगी है, उस प्रकार मैं कभी प्रियतम के गले से न लगी । सागर मुझे इस प्रकार छोड़कर चले गये, जिस प्रकार नल दमयन्ती को अकेली छोड़कर चल दिया था ॥ २३ ॥

सवैया—अंक भरी लपटाइ कदानिशि, प्रीतम संग करी नहि केली ।
त्यों कर कंठ धरी भरि आसव, जाम न स्यामकों पाय सहेली ।
आसन एकहि बैठ बिनांतर, खुशि बनी दिल खोलि नखेली ।
आखर ये अफसोस रहे हम, सागर छोड़ गये रि अकेली ॥ २४ ॥

प्रियतम के साथ कभी रात्रि में अंक भर लिपट कर केलि नहीं की ।

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

मैं पिउ कंठ कभू उरभी नहि, ज्यों उरभे तरुपें वनबेली ।
बांह धरी गर नाहहि के कबु, खूब खुशी भइ कें नहि खेली ।
सागर कंठ लगी गई सेलि, रही अब मैं इत ठोर अकेली ।
मैं निरभागिनि भूतल में, सद्भागिनि भै उन कंठ की सेली ॥

जिस प्रकार वृक्ष पर वनबेलि लिपटती है, उस प्रकार मैं अपने पति के गले में कभी लिपटी भी नहीं । और न स्वामी के गले में हाथ डालकर कभी खूब खुशी के साथ खेली ही । सागर के गले से तो सेली (काले डोरे की कंठी) लग गई है, और मैं यहां अकेली रह गई हूं । इस पृथ्वी पर मैं तो बड़ी ही अभागिनी रही, और उनके कंठ की सेली ही भाग्यशालिनी निकली ॥

इसीप्रकार हे सखी ! कभी गले में हाथ डालकर मद का प्याला भी नहीं पिलाया । एक आसन पर बिना अन्तर के बैठकर दिल खोलकर कभी खेली भी नहीं । आखिर यह अफसोस ही रहा कि, सागर मुझे अकेली छोड़कर चले गेय ॥ २४ ॥

सहोक्ति-अलंकार—सवैया.

सागर क्यों तुम छोरि चले हम, आवन आपकि साथ चहाउं ।
जो तुम योगी बनो धरि छार तो, मैं बनि योगिनी राख लगाउं ।
जो भगुवे तुम वस्त्र धरो तब, मैं भगुवे सब बास बनाउं ।
जो तुम जाइ अलेक जगावतो, मैं तुम साथ अलेक जगाउं ॥ २५ ॥

हे सागर ! तुम मुझे अकेली छोड़कर कैसे चले गये ? मैं तो आपके साथ आना चाहती हूँ । जो तुम योगी बनकर विभूति लगाओगे, तो मैं भी योगिनी बनकर राख लगाऊँगी । जो तुम भगवा वस्त्र धारण करोगे, तो मैं भी सब वस्त्र भगवा ही बनाऊँगी । और जो तुम जाकर अलख जगाओ, तो मैं भी तुम्हारे साथ अलख जगाऊँगी ॥ २५ ॥

वृत्त्यानुप्रास-अलंकार—कवित्त.

सागर क्यों छोरी हम, नवल किशोरी चले, कैसेही कटारी काल,
भर्त्ता विन भोरी मैं । जुग कर जोरी कहूँ, नेहते निहोरी सुनी, बालम
बिछोरी कैसे, सहूँ गात गोरी मैं । आयुषकी डोरी नाहिं, टूटतहे तोरी तातें,
निकट रहोरी कहूँ, आज लाज छोरी मैं । एती अर्ज मोरी नाहि, मनमां
धरोरी तब, भभूतकी गोरी कर, लहो साथ भोरी मैं ॥ २६ ॥

हे सागर ! तुम मुझ नववयस्किशोरी को क्यों छोड़ चले गये ? भर्ता के बिना मैं किसप्रकार समय बिताऊँ ? मैं दोनों हाथ जोड़कर कहती हूँ, मेरी विनती प्रेमपूर्वक सुनो । मैं गोरे वदनवाली बालम का वियोग किस प्रकार सहन करूँ ? आयु की डोर तोड़ने से भी नहीं टूटती है, इसलिये लाज छोड़कर मैं कहती हूँ

कि, पास में रहो । मेरी इतनी बिनती यदि नहीं सुनते हो, तो विभूति की गोली बनाकर मुझे भोली में रक्खो ॥ २६ ॥

एकाबलि-अलंकार-सवैया.

एक कला हम लागत है छन, सो छन नाडिकाँसे बढि पाउं ।
नाडिकाँसो बनि है दिनरातहि, सो दिन रातको पक्ष कहाउं ।
पक्ष लगे पुनि मास समानहि, मास महाइक वर्ष बहाउं ।
यो अधिकातहि काल महानित, क्यों बिन सागर मोहि बिताउं ॥ २७ ॥

मुझे एक कला क्षण के समान, और क्षण घटिका के समान बढ़ा लगता है । घड़ी तो दिन-रात के समान, और दिन-रात पक्ष के समान लगता है । पक्ष मास के समान, और मास वर्ष के समान महान् प्रतीत होता है । इस प्रकार काल मेरे लिये बढ़ता ही जाता है । हे ईश्वर ! उम्मे सागर के बिना किस प्रकार बिताऊं ? ॥ २७ ॥

दोहा-योंहि उदास निराश रहे, कही कुसुम के कान ।

बिन सागर कैसें रहे, आलि हमारे प्रान ॥ २८ ॥ *

इस प्रकार उदास और निराश होकर कुसुमाबलि के कान में कलाप्रवीण ने कहा कि, हे सखी ! सागर के बिना मेरे प्राण कैसे रहेंगे ? अर्थात् नहीं रहेंगे ॥ २८ ॥

* पाठ-भेद इस प्रकार भी है:—

दोहा.

होत निराश उदास है, कुसुम सुदई सुनाय ।

बिन सागर कैसें जियों, अब निशिदिन क्यों जाय ॥

इस प्रकार प्रवीण निराश होकर उदास हो गई । और कुसुमाबलि को सुनाकर कहने लगी कि, सागर के बिना अब किस प्रकार जीऊँ ? अब मेरे रात दिन किस तरह कटें ? ॥

कवित्त.

कैसें धरों धीर, काम करतहै पीर, ताकी कौन सुने कासों कहूं,
को करे सहायरे । आवे नहि कंत अब, कहावे न कछु कब, यातें अंत आन
कौन, अंतक मिलायरे । अबतो असार भये, सारइ सबहि मोकों, भागभो
अभाग यातें, लागे तन लायरे । घरना सुहावे भले, भोजन न भावे मुझे,
मौत क्यों न आवे, कहावे हाय हायरे ॥ २६ ॥ *

मैं किस प्रकार धीरज धरूं ? कामदेव अति पीड़ा देता है, इसे कौन सुने,
किससे कहूं, और कौन सहायक है ? मेरे स्वामी सागर अब आते नहीं, और न
कुछ कहलाते हैं, इसलिये कौन अब यमराज से मुझे मिलावेगा ? (अर्थात् कोई
मृत्यु ला दे तो अच्छा है, जिससे विरह पीड़ा का अन्त हो) । अब तो मुझे
सभी मारवाली वस्तुएं भी असार हो गई हैं । सौभाग्य दुर्भाग्य हो रहा है.

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कवित्त.

कैसें धरों धीर, असरीर कदो कैसे रहे, कोन सुने कासों कहूं, कोकरे
सहायरे । आवे नाहि कंत अब, कछु नां कहावे कब, यातें अंत मोकुं कौन,
अंतक मिलायरे । अबतो असार भये, सारहु विचार मेरे, भाग भो अभाग
यातें, लागे तन लायरे । घर नां सुहावे बन, फिरनां सुहावे नाहि, मरनां
सुहावे सो, कहावे हाय हायरे ॥

मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूं ? कामदेव किस प्रकार पीड़ा देता है ?
मेरी पीड़ा को कौन सुने, किससे कहूं ? और कौन सहायता करे ? मेरे स्वामी
नहीं आते हैं, कुछ कहलाते भी नहीं हैं । इसलिए मुझे मृत्यु के साथ अंत
में कौन मिलायेगा ? अब तो मेरे जो अच्छे विचार थे वे भी बुरे हो गये, भाग्य
था वह भी दुर्भाग्य हो गया । इससे मेरे शरीर में अग्नि प्रदीप्त होती है । मुझे
घर अच्छा नहीं लगता, बाग में फिरना भाता नहीं । मौत प्यारी लगती है,
जो मुझसे 'हाय हाय' कहलाती है ॥

इससे शरीर में अग्नि का ताप लगता है । घर मुझे अच्छा नहीं लगता, भोजन भाता नहीं । मौत क्यों नहीं आती ? जो 'हाय, हाय' कराती रहती है ॥ २६ ॥

भुजंगी छंद.

सखी सागरं मोहि छोडी सिधाये, अबे तो यहां फेर आये न आये ।
 ग्रही बांह मेरी न साथें लियेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 दिनांही दिनां व्याधि अंगे बढ़ेंगे, अरे कौन बेही व्यथाकों कढ़ेंगे ।
 कहो कौन ऊपाय पीछे फिरेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 बिना नाथ कैसें करी अन्न भावे, गये जानपें जान पापी न जावे ।
 बिना कंत क्यों काल मोही बितेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 दुखं दे सुखं सर्व मेरेहि लूटे, छुटे स्नेहना देहतें प्रान छूटे ।
 पुकारों पती पें सुने ना अबेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 प्रलै ज्यों भयो आज त्यों घोस भेरे, नही जानिये आषगो कष्ट नेरे ।
 जरी देह न होत क्यों राख ठेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 मही सर्वमें एक जें जीव भूरी, जुदाई भई येहितें आज भूरी ।
 कहो कौन आधारतें जी रहेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 लिख्यो भाग्यमें सो अबे कौन टारे, भये अंकके बंकतें कंत न्यारे ।
 अबे चित्त मो धीर कैसें धरेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 अरेरे गयं सागरं छेह त्यागी, इत क्यों रही पापनी में अभागी ।
 किये याहिनें सो करे नांही बैरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 धरी कूपमें कोउ ले डोरि काटे, किधों वारधीमें जइ नाव फाटे ।
 भई आज ऐसी दशाही हमेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 अरे मानवी देह देकें विधाता, करी क्यों विछोहं दिलेभो दुखाता ।
 उरं योहिथी तो जनु क्यों दिपेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
 चले सागरं पेखि ना प्रान छूटे, अरे अंगसैं दील क्यों तू न तूटे ।
 अबे जीवकें जग्तमें क्यां करेरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥

किही जन्मके पाप पैदा भयेरी, यही जन्ममें आई पीड़ा करेरी ।
अरे मेदनी मोहिको मार्ग देरी, गति कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ ३० ॥*

हे सखी ! मुझे छोड़कर सागर चले गये और फिर नहीं आये तो आये ही नहीं । मेरा हाथ पकड़ा, परन्तु साथ नहीं लिया । अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी है !! दिनों-दिन शरीर में व्याधी बढ़ेगी, अरे ! अब इस पीड़ा को कौन

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

छंद भुजंगप्रयात.

सखी सागरं जात नां हाथ ग्राहे, अबे तो यह फेर आहे न आहे ।
अबे बिईकी आगि अंगे लगेरी, गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ दिनांही
दिनां व्याधि वैसें बढ़ेंगे, अरे कोन याकी व्यथाकों कढेंगे । यही बन्हिसें
प्रान कैसें बचेरी, गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ बिना नाथ कैसें करी अन्न
भावे, गये जान पैं जान पापी न जावे । जरी नां भई देहकी खाख ढेरी,
गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ दुखं देगये ले-गये सूख लूटे, छुटे स्नेह
नां देहते प्रान छूटे । पुकारुं पती पैं सुने नां अबेरी, गती कर्मकी हायरे हाय
मेरी ॥ प्रले ज्यों भयो आज त्यों घोस मेरे, यह कष्ट यों नां दिलं जान
नेरे । बिना सागरं चित्त चिंता करेरी, गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥
मही सर्वमें एक जो जीव भूरी, उहीसें भई छूटनेकी जरूरी । जियेको अबे
कोन आधार हेरी, गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ लिखयो भाग्य में सो
अबें कोन टारे, गये अंकके बंकते मित न्यारे । हृदेमें अबे धीर कैसें धरेरी,
गती कर्मकी हायरे हाय मेरी ॥ अरेरे गये सागरं स्नेह त्यागी, इते क्यों
रही पापनी में अभागी, किही जन्मके पाप पाये उदे री, गती कर्मकी हायरे
हाय मेरी ॥

हे सखी ! सागर मेरा हाथ पकड़ कर ले नहीं जाते, और अब वे फिरके
आवें या न आवें ? बिरह की आग मेरे शरीर में लगी है । अरे हाय ! हाय !!
मेरे कर्म की गति !

मिटायेंगा ? वे (सागर) किस उपाय से पीछे लौटेंगे ? अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म-गति कैसी खराब है !! पति के बिना अन्न किसप्रकार भावे ? पति-रूपी प्राण गया, परन्तु यह पापी जीव नहीं जाता है । स्वामी के बिना मेरा समय कैसे बीतेगा ! अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! मेरा

अब दिन प्रतिदिन इसी तरह व्याधि बढ़ती जायगी । अब उस पीड़ा को कौन मिटावेगा ? उस अग्नि से मेरे प्राण कैसे बचेंगे ? अरे हाय ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

स्वामी के बिना अन्न किस प्रकार भावे ? पतिरूपी प्राण गया, परन्तु यह पापी जीव नहीं जाता, और यह शरीर भी जलकर राख की ढेरी नहीं हुआ । अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

मुझे दुःख दे गया, और मेरा सुख लूट ले गया । मेरा स्नेह और उसी प्रकार प्राण भी लूटते नहीं ! स्वामी २ पुकारती हूं, परन्तु वे अब सुनते नहीं । अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

मेरा आज का दिन ऐसा हो रहा है जैसे कि प्रलय हुआ हो । इतना दुःख आवेगा, यह मुझे ज्ञात नहीं था । अब सागर के बिना मेरा मन चिन्ता करता है । अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

सारी पृथ्वी में मेरी जो एक जीवन-सूरी थी, उससे भी वियोग हो गया । अब जीने का आधार क्या है ? अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

जो भाग्य में लिखा हो, उसे कौन टाल सकता है ? भाग्य के उल्टे अंक होने से ही मेरे स्वामी मुझ से अलग हुए । अब हृदय में कैसे धीरज धरें ? अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति !

अरे रे ! स्नेह छोड़कर सागर चले गये, परन्तु मैं पापिनी अभागिनी यहां कैसे रही ? मेरे कब के पापफल उदय हुए ? अरे हाय रे ! हाय !! मेरे कर्म की गति ।।

सुख लूट कर मुझे दुःख दे गये । मेरा स्नेह छूटता नहीं और शरीर से प्राण भी नहीं जाता । मैं 'स्वामी स्वामी' कह कर पति को पुकारती हूँ, परन्तु वे सुनते ही नहीं । अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! मेरा आज का दिन प्रलय के समान हो रहा है । मुझे यह ज्ञात न था कि इतना दुःख आवेगा ! अरे, यह शरीर जलकर राख की ढेरी क्यों नहीं बन जाता ? अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! सारी पृथ्वी में मेरी जो एक जीवन-मूर्ति थी, उससे आज मेरी जुदाई हो गई है । अब कहो ! किस आधार से जीव रहे ? अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! जो भाग्य में लिखा है, उसे अब कौन टाल सकता है ? भाग्य के टेढ़े अंक के कारण ही पति-विछोह हुआ है । अब चित्त में किस प्रकार धीरज धरें । अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! अरे ! सागर स्नेह छोड़कर चले गये, और मैं पापिनी अभागिनी यहां कैसे रह गई ? उन्होंने (सागर ने) जैसा किया है, वैसा तो शत्रु भी नहीं करे । अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! जैसे कूप में उतारकर कोई ऊपर से डोर काट दे । अथवा समुद्र में जाकर नाव फट जाय, ऐसी दशा आज मेरी हो गई है । अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! अरे ! विधाता मनुष्य देह देकर क्यों विछोह कराके दिल में दुःख दे रहा है ? यदि ऐसा ही तेरे मन में था तो, हे विधाता ! जन्म ही क्यों दिया ? अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! सागर को जाते देखकर मेरे प्राण क्यों नहीं छूटे ? अरे पत्थर के समान दिल ! तू क्यों नहीं टूट गया ? अब जगन् में जीकर क्या करूंगी ? अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है !! कई जन्म के पाप प्रकट होकर इसी जन्म में सब पीड़ा दे रहे हैं । हे पृथ्वी ? तू मुझे मार्ग दे कि मैं तुझ में समा जाऊं ! अरे हाय ! हाय !! मेरी कर्म की गति कैसी खराब है ॥ ३० ॥

दोहा.

सागर सन्यासी बनी, विचरे विपुल विदेश ।

फिर पीछे भेजे नहीं, सुख दायक संदेश ॥ ३१ ॥

सागर संन्यासी होकर बहुत से देशों में गये, परन्तु अपना सुखदायक सन्देश पीछे नहीं भेजा ॥ ३१ ॥

सोरठा.

क्यों जाये दिन रात, पल परवसें दीर्घ लगे ।

कृशक काय सरसात, सागरके कागर बिना ॥ ३२ ॥

दिन रात किस प्रकार बीतें । क्योंकि एक २ पल तो पक्ष के समान लगता है । सागर के पत्र के बिना मेरी कृशकाय में पीड़ा बढ़ती जाती है ॥ ३२ ॥

सोरठा.

क्यों दिन करों व्यतीत, कहाँ सखी कित जाउ अब ।

चिन्ता बाढी चीत, सागरके कागर बिना ॥ ३३ ॥

हे सखी ! मैं किसप्रकार दिन व्यतीत करूँ, और अब कहाँ जाऊँ ? सागर के पत्र बिना मेरे मन में चिन्ता बढ़ रही है ॥ ३३ ॥

सागरके संदेश, आइ क्यों अब कौन इत ।

चैन परे नहि लेश, सागरके कागर बिना ॥ ३४ ॥

अब कौन यहां आकर सागर के सन्देश कहे ? सागर के पत्र बिना तनिक भी चैन नहीं पड़ता है ॥ ३४ ॥

कौन अबे इत आय, ताको संदेसो कहे ।

जियसें रह्यो न जाय, सागरके कागर बिना ॥ ३५ ॥

अब कौन यहां आकर उसका (सागर का) सन्देश कहेगा ? सागर के पत्र बिना अब मेरे जीव से रहा नहीं जाता ॥ ३५ ॥

खान पान अरु गान, मन मेरे रुचे नही ।

तलफत तनुमें प्रान, सागरके कागर बिना ॥ ३६ ॥ ❀

खाना पीना और गाना अब मेरे मन को रुचता नहीं । सागर के पत्र बिना शरीर में प्राण तड़पते हैं ॥ ३६ ॥

छीजे सबे शरीर, बड़ी बिरहकी आगि तें ।

क्यों धरियें अब धीर, सागरके कागर बिना ॥ ३७ ॥

बिरह की बड़ी हुई अग्नि से सब शरीर छीज रहा है । अब सागर के पत्र बिना कैसे धीरज आवे ? ॥ ३७ ॥

दुख दरियाव अपार, तट ताको देखुं नहीं ।

ओर नहीं आधार, सागरके कागर बिना ॥ ३८ ॥

दुःखरूपी अपार समुद्र है, जिसका किनारा दिखाई नहीं पड़ता । अब सागर के पत्र बिना और कोई आधार नहीं है ॥ ३८ ॥

धरिये किहि बिध धीर, पीर समे क्यों पिंडकी ।

नयने बरषे नीर, सागरके कागर बिना ॥ ३९ ॥

शरीर में पीड़ा के समय किस प्रकार धीरज धरें । सागर के पत्र बिना आंखों से आंसू जाते हैं ॥ ३९ ॥

पाती ड्युं प्रति मास, आती सब आती नहीं ।

उरमें भई उदास, सागरके कागर बिना ॥ ४० ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है: —

सौरठा.

खान पान सुख आन, गान तान रस नां रुचे ।

पल पल तलफे प्रान, सागरके कागर बिना ॥

खाना, पीना, गाना, राग, रंग आदि सुख के साधन अच्छे नहीं लगते । सागर के कागज (पत्र) बिना पल २ में मेरे प्राण तड़कते हैं ॥

जो प्रतिमास पत्रिका आती थी, वह अब आती नहीं । सागर के पत्र बिना हृदय में उदासी हो रही है ॥ ४० ॥

प्रेम प्रतीती होय, पत्र विलोकी मित्रको ।

क्यों अब करिये सोय, सागरके कागर बिना ॥ ४१ ॥

मित्र के पत्र को देख कर उसके प्रेम की प्रतीति होती है । सो अब सागर के पत्र बिना वह कैसे की जावे ॥ ४१ ॥

दर्शन सम साक्षात्, पाती पेखी होय सुख ।

अब तो सुख नहीं आत, सागरके कागर बिना ॥ ४२ ॥

मित्र के पत्र को देख कर साक्षात् दर्शन के समान सुख होता है । परन्तु अब वह सुख सागर के पत्र बिना नहीं आता है ॥ ४२ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

ज्यों मधुलेह चहे सरसीरुह, ज्यों मन छम चहे धनकौरी ।

ज्यों शशि चाह चकोर करे पुनि, ज्यों भुखवान चहे अनकौरी ।

ज्यों वपु व्याधित बैद चहे पुनि, ज्यों शिखि चाहतहे धनकौरी ।

त्यों हम सागरके सखि कागर, चाहत चित्त विलोकनकौरी ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार भंवरा कमल को चाहता है, जैसे सूम (कंजूस) मनुष्य धन को चाहता है, जैसे चकोर चन्द्रमा को चाहता है, जैसे भूखा अन्न को चाहता है, जैसे व्याधियुक्त शरीर वैद्य को चाहता है, तथा जैसे मोर मेघ को चाहता है, उसी प्रकार हे सखी ! मेरा चित्त सागर के पत्र को देखने को चाहता है ॥ ४३ ॥

सवैया.

सागरके बिलूरे वपुकों दुःख, राशिन आइ धिरे चहुँ पासी ।

मारत मैं छिनोछिन साधिकें, गर्व धरी हम गातमें गांसी ।

नीद न नेन परे नहि चैनहि, और बडे उरमेंहि उदासी ।

याहितें आज हौं चितमें सखि, प्रान तजूं धरिकें गल फांसी ॥ ४४ ॥

सागर के विछोह होने से दुःख की राशि ने आकर चारों ओर शरीर को घेर लिया है । कामदेव गर्वयुक्त हो क्षण में ताक २ कर मेरे शरीर में बाण मारता है । इधर आँखों में निद्रा बिल्कुल आती नहीं, और चैन पड़ता नहीं, मन में उदासी छाई रहती है । इसलिये हे सखी ! आज मन में चाहती हूँ कि, गले में फांसी डालकर प्राण छोड़ दूँ ॥ ४४ ॥

साधुको बेश धरी वपुमें सखि, सागर दूँडन होहि प्रवासी ।

गोकुल गंग गया फिरकें मिल, साथ रहूं बनिके उन दासी ।

दुँडत देश विदेश विशालहि, जो न मिले मुझ हीय हुलासी ।

तो तत्कालहि प्रान तजूं हम, काय करांत धरा जहि काशी ॥ ४५ ॥

हे सखी ! शरीर में साधू का वेष धारण कर सागर को दूँडने के लिये प्रवास करूँ, और गोकुल, गङ्गा, गया आदि में फिरकर उनसे मिलूँ, और मैं दासी बनकर साथ में रहूँ । यदि विशाल देश-विदेश में दूँडने पर भी मेरे हृदय को सुख देनेवाले न मिले, तो तत्काल ही काशी में जाकर 'काशी करवट' लेकर प्राण छोड़ दूँ ॥ ४५ ॥

स्मरनालंकार-सवैया.

ओपत आघहि चंदसे भालरू, नैन नलीन समान सुहावे ।

मंद इसी मुख बात करे बह, मिष्ट मधुहितें स्वाद बढावे ।

छाति विशाल बडे कर कोमल, सिंधुरसें चलि चित्त चुरावे ।

सागरसो फिर आइ मिले कब, बाँह धरी गल पास बिठावे ॥ ४६ ॥

जिनका कपाल अर्ध चन्द्र के समान शोभित है, कमल के समान जिनके नेत्र हैं, जिनकी मंदसुसकानयुक्त बातों में मधु से भी अधिक मिठास है, जिनका वक्षस्थल विशाल, और बाहु लम्बी तथा कोमल हैं, और जो मत्त

हाथी के समान चलकर चित्त को चुरा लेने वाले हैं, ऐसे सागर महाराज आकर कब मिलेंगे ? और गले में बाहें डालकर कब पास बिठावेंगे ? ॥ ४६ ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया

ज्यों बिन पात न पेड सुहातरू, ज्यों बिन कंज तडाग न राजे ।

ज्यों बिन मान मराल न भातरू, ज्यों बिन बाज नबीक बिराजे ।

ज्यों बिन नीर नदी नहि सोहत, ज्यों बिन रातहि भेश न आजे ।

त्यों बिन सागर आज अली हम, कोमल काय कमल न राजे ॥ ४७ ॥

जिसप्रकार बिना पत्ते का वृक्ष नहीं सुहाता, और जैसे कमल के बिना तालाब अच्छा नहीं लगता, मराल (हंस) के बिना जैसे मानसरोवर शोभा नहीं पाता, और पंख के बिना पक्षी अच्छा नहीं लगता, बिना पानी के जैसे नदी की शोभा नहीं, और जैसे चन्द्रमा के बिना रात फीकी रहती है, उसी प्रकार हे सखी ! आज मैं कोमल शरीरवाली भी सागर के बिना उजाड़ हो रही हूँ ॥ ४७ ॥

द्रष्टांतालंकार—कवित्त.

कूप बिन कच्छ जैसें, बारि बिन मच्छ जैसें, गाय बिन वच्छ जैसें, विलखे स्तवनहै । लोभि जिमि धन बिन, भूखे जिमि अन्न बिन, चातक ज्यों घन बिन, विलपे बदनहै । कामिनी ज्यों कंत बिन, कोकिला बसंत बिन, साधुजन संत बिन, मुरजात मनहै । घोस बिन कोक जैसें, काय कलपंत महा, तैसें तलफंत मेरे, सागर बिन तनहै ॥ ४८ ॥

कूआं के बिना जैसे कड़वा, पानी के बिना जैसे मछली, तथा गाय के बिना जैसे बड़ड़ा बिलखते हैं, जैसे लोभी धन के बिना, भूखा अन्न के बिना और चातक घन (बादल) के बिना विलाप करते हैं, कामिनी जैसे कन्त के बिना, कोकिला जैसे बसन्त के बिना, तथा साधुजन जैसे सन्त के बिना मन में मुरझाते हैं, चकवा जैसे दिन के बिना महादुःखी रहता है, वैसे ही सागर के बिना मेरा शरीर तड़फता है ॥ ४८ ॥

विषादालंकार—सवैया.

आय संदेश न सागरके अब, काम इतो अलि मोकरियो ।
जो हम प्रान गयें पिछें कागर, आयतों मो मुखपें धरियो ।
जानत आदि इतो दुखतो जब, डौंडि बजावत में फिरियो ।
कोउ न काहुसैं प्रीति करो कभी, होय तो नाहि जुदे परियो ॥ ४६ ॥

हे सखी ! सागर का सन्देश अभी नहीं आया । तुम इतना तो करना कि जो मेरे प्राण निकलने के बाद पत्र आये, तो उसे मेरे मुख पर रख देना । मैं यदि पहिले से जानती कि प्रेम करने में इतना दुःख होता है, तो मैं डौंडी पीटती हुई फिरती कि कोई कभी किसी से प्रीत न करना, और यदि होजाय तो फिर अलग मत होना ॥ ४६ ॥

मिथ्याध्यवसिति—अलंकार—सवैया.

रनमें लरनो गिरितें गिरनो, असिधारपें शैल सदा करनो ।
नभमें फिरनो अनलें जरनो, पुनि पाय पलंग शिरें धरनो ।
दाधिकों तिरनो विषतें मरनो, पुनि काय करौत धरी मरनो ।
सहलो सब यें पर एक बुरो, पतिसैं इक छान जुदो परनो ॥ ५० ॥

लड़ाई में लड़ना, पर्वत पर से गिरना, तलवार की धार पर चलना, आकाश में फिरना, अग्नि में जलना, सर्प को शरीर पर धरना, समुद्र का तैरना, विष खाकर मरना, और शरीर को आरे से कटाकर मरना, यह सब सहज है, परन्तु पति से एक क्षण भी अलग होना महाभयङ्कर दुःख है ॥ ५० ॥

दोहा.

सागर सागर यों कही, करि फिर फिर पोकार ।
प्रवीन तन धीरज तजी, बिलपत वारंवार ॥ ५१ ॥

फिर प्रवीण 'हे सागर ! हे सागर !' ऐसा कहकर, और फिर २ पुकार कर अपने शरीर से धीरज छोड़ बिलाप करने लगी ॥ ५१ ॥

दोहा.

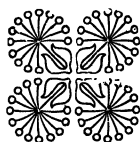
ऐसें अति कल्पांत करि, बिसुर बिसुर बिलापंत ।
सागर बिन सुकुमारिका, उरमें चाहत अंत ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अतिशय कल्पांत करके आहें भर २ कर बिलाप करती हुई,
सुकुमारि कुमारिका सागर के बिना अपना अन्त चाहने लगी ॥ ५२ ॥

गाहा.

सागर मित्र विछोहं, किय बिलाप प्रवीन दुखदायं ।
त्रय सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिन सागरो लहरं ॥ ५३ ॥ *

रससागर-मित्र के वियोग से कलाप्रवीण ने दुःखदायक बिलाप किया, उस
सम्बन्ध के वर्णन वाली प्रवीणसागर की तिहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ ५३ ॥



* पाठान्तर इस प्रकार है:—

गाहा.

किये प्रवीन बिलापं, बिछुरन तें सागरो मित्रं ।
त्रय सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥

सागर मित्र के वियोग से प्रवीण ने बिलाप किया, उस सम्बन्ध की प्रवीण-
सागर की यह तिहत्तरवीं लहर पूरी हुई ॥

७४ वीं लहर

प्रवीणप्रति कुसुमावलिशिचाकथन प्रसंग-दोहा.

पेखि प्रलाप प्रवीणको, अति उरमें अकुलाय ।

कुसुमावलि कहने लगी, शिचा सुभग तहांय ॥ १ ॥*

कलाप्रवीण का प्रलाप देखकर, कुसुमावलि मन में अकुलाकर, उसे उत्तम शिचा सुनाने लगी ॥ १ ॥

सोरठा-जानी जूठ प्रपंच, सुख दुख सहिये सर्वदा ।

रुदन किये सैं रंच, दया न आवे दैवकुं ॥ २ ॥

इस संसार को भूठा समझ कर हमेशा सुख दुःख सहन करना चाहिये, क्योंकि रुदन करने से देव को तनिक भी दया नहीं आती है ॥ २ ॥

फेर कुसुम कहि बानि, प्रेम परिच्छन प्रबिनको ।

भूषा लियो दुख मानि, कहा दुःख तब देहमें ॥ ३ ॥

फिर कुसुमावलि ने प्रवीण के प्रेम की परीक्षा करने के हेतु से यह कहा कि, तू मिथ्या दुःख मान रही है, नहीं तो तेरे शरीर में क्या दुःख है ? ॥ ३ ॥

कुसुमोक्त शिचाकथन-छंद भुजंगी.

सुनो आज आली कछू बात मेरी, दशा देहकी क्यों भइ योंहि तेरी ।

भले भाग्यतैं तूं भई भूप बेटी, करे सेव केती रही पास चेटी ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा.

प्रवीण बहुत प्रलाप किय, कष्ट पुकारि पुकारि ।

कहन लगी कुसुमावली, तब शिच्छा सु बिचारि ॥

प्रवीण ने कष्ट को पुकार २ कर बहुत प्रलाप किया । तब कुसुमावलि भली प्रकार विचार कर शिचारूप में कहने लगी ॥

लही आरसी एक आगें अडीहै, इकं डारती चौर सामे खडीहै ।
 लही बाहु बेना इकं पौन डारे, क्षमाही क्षमा एक आगें उचारे ॥
 मले भावते भोजनं पान निचे, पिता मात चाहे धरी प्रेम चित्ते ।
 नये नीत नीके मिले मिष्ट मेवा, सदा चारु सोहावन साथ रेवा ॥
 अभीराम आराम आराम काजें, बड़े बाहनं बैठनेकों बिराजें ।
 अलंकार अच्छाद इच्छानुसारें, तनू धारिवेकों हहे पास भारें ॥
 कमी नाहि को बातकी आज तेरे, सबे संपत्ति यों रही तोहि नेरे ।
 नहीं पीर तो पिंड मांही दिखावे, तथापी दुखी देहमें क्यों रहावे ॥ ४ ॥

कुसुमावलि फिर कहने लगी कि, हं सखी ! आज कुछ मेरी बात सुनां ।
 तुम्हारे शरीर की यह क्या हालत हुई ? बड़े भाग्य से तू बड़े राजा की
 राजकुमारी हुई है, तेरे पास कितनी ही दासियां तेरी सेवा के लिए रहती हैं ।
 एक दासी आइना लेकर सामने है, तो दूसरी सामने खड़ी होकर चंवर डुलाती
 है । एक हाथ में पंखा लेकर हवा करती है, तो दूसरी आगे 'खमा खमा' पुकारती
 है । अच्छा सुरुचिकर भोजन नित्य जीमने को मिलता है, माता और पिता सब
 चित्त में प्रेम करते हैं । नित्य नये २ सुन्दर मिष्ट मेवा मिलते हैं, हमेशा सुन्दर और
 सुहावना साथ रहता है । सुन्दर फुलवाड़ी आराम के लिए हैं, और सवारी के
 लिये सुन्दर २ बाहन हैं । शरीर पर धारण करने के लिये सुन्दर और इच्छानुकूल
 आभूषण हैं । आज तुम्हें किसी बात की भी कमी नहीं है । सभी सम्पत्ति तेरे
 समीप है । कोई पीड़ा भी शरीर में नहीं दिखाई पड़ती, फिर भी तू दुःखी
 क्यों रहती है ? ॥ ४ ॥

दोहा.

दुखियारी बनि देहमें, व्याकुल रहे पुनि आज ।

रोवत रातो दिवस हो, कहो सखी किन काज ॥ ५ ॥

शरीर से दुःखी होकर, और आज व्याकुल होकर रात-दिन तू रोती है ।
 सो हे सखी ! किस लिए ? मुझे बता ! ॥ ५ ॥

पादाकुलक छंद. ❀

क्यों कलपांत करे दिन रेना ? क्यों भारत अँसुवां निज नेनां ? क्यों नहीं खावत पीवत पानी ? क्यों उचरत मुख आरत बानी ? क्यों दिन रात न छिन पल आधा ? क्यों बिन काज बढ़ावत बाधा ? क्यों दुबरात दिनो-दिन अंगे ? क्यों नहीं बात करत हम संगे ? क्यों मुरझाई रहे मन मांही ? क्यों उर आष उठे अकुलाही ? क्यों आनन अति भरत उसासा ? क्यों बैठी ताजि विविध विलासा ? क्यों उरमें अति बनी उदासी ? क्यों नहि सेज चहे मुख राशी ? क्यों सखि चेरि समीप न हेरे ? क्यों दुख आइ परे तुम नेरे ? जो दुख देह विरह को मानें ! तो हम सत्य कभी नहि जाने ! मन कल्पित वह कष्ट कहावे, सत्य न सज्जन ताहि गिनावे । जो मनकों रतिसैं समुझावे, तो वह दूर देह तें जावे । ऐसैं दुख दुनियामें जेते, मिथ्या मनमें मानो ते ते ॥ ६ ॥

रात-दिन क्यों कलपांत करती है ? तेरी आंखों में से आंसू क्यों भरते रहते हैं ? तू खाती क्यों नहीं ? और पानी क्यों नहीं पीती ? तथा मुंह से दुःखित बाणी क्यों बोलती है ? एक क्षण क्या आधा पल भी निद्रा नहीं लेती, बिना कारण क्यों दुःखित होती है ? प्रतिदिन शरीर से दुर्बल क्यों होती जाती है ? मेरे साथ बात क्यों नहीं करती, और मन में मुर्झाई क्यों रहती है ? हृदय में अकुला अकुलाकर क्यों उठती है ? क्यों मुख से अतिशय उसामें भरती है ? और क्यों विविध भोगविलास छोड़ बैठी है ? क्यों बहुत उदास हो रही है ? मुख के समूह रूपी शैय्या को क्यों नहीं चाहती ? हे सखी ! दासियों के सम्मुख देखती क्यों नहीं ? इतना बड़ा कौनसा दुःख तेरे ऊपर आ पड़ा है ? यदि

❀ पादाकुलक छन्द चरनाकुल छन्द का पर्याय है, इसलिये इसे चरनाकुल छन्द समझना । और चरनाकुल, चौपाई, जेकरी और अलख ये चारों एक ही छन्द हैं । इनमें थोड़ासा फेरफार है । इन सग्यों को अनेक लोग चौपाई छन्द ही कहते हैं ॥

तू विरह के दुःख से दुःखी है, तो मैं इसे दुःख नहीं मानती, क्योंकि यह तो मन की कल्पना का दुःख है। उसे विचारवान् सत्य नहीं मानते। यदि मन को बुद्धिपूर्वक समझाये, तो वह दुःख दूर हो जाता है। दुनियां में ऐसे जितने दुःख हैं, उन्हें सबको झूठा समझना चाहिये ॥ ६ ॥

दोहा—सुख दुःख झूठे जगतमें, आत जात अधिकाहि ।

तामें तनक न मानिये, शोक हर्ष मनमाहि ॥ ७ ॥

सुख और दुःख दुनियां में झूठे हैं, क्योंकि वे आगमापायी हैं, इसलिए इनसे मन में हर्ष या शोक नहीं मानना चाहिये ॥ ७ ॥

दुख के भेदकथन—दोहा.

दुनियामें दरसातहैं, तनमनके दुख दोय ।

वाही करनी कहतहों, सुनो चित्त दे सोय ॥ ८ ॥

दुनियां में शरीर के और मन के दो प्रकार के दुःख दिखाई पड़ते हैं। इनका वर्णन करती हूं, चित्त देकर सुनो ॥ ८ ॥

द्वैदुखलक्षण—दोहा.

कष्ट होत जे कायमें, विबुध वदतसो व्याधि ।

मन भ्रमसैं दुख दिलधरे, उचरत याकों आधि ॥ ९ ॥

जो शरीर में कष्ट होता है, उसे बुद्धिमान् जन व्याधि कहते हैं। और जो मन में भ्रम से दुःख होता है, उसे आधि कहते हैं ॥ ९ ॥

तनदुखव्याधिचर्चन—तोटक छंद.

गलगंड अखंड भये जिनकों, दुख दारुन देह रहे तिनकों । जिनके तनमें अति ताप चढे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ क्षय रोग बने वपुमें जिनकों, तनुता तनु आइ रहे तिनकों । जिनके तनुमें अति शोथ चढे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ अतिसार अपार भये जिनकों, अति आभिल अंग

रहे तिनकों । जिनके मुखमें नहि जाय पटे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ जिनके पदही पिलपाव भये, तिनके तनमें अति कष्ट ठये । जिनके तनुमें वन व्यापि कहे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ दुरनामक देह भये जिनकों, कहियें नहि कष्ट कमी तिनकों । जिनकों धरि धूपन देह द्रढे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ जिनके तन तोमरसेहि हने, तिनकों दुख देहमें होत घने । जिनकों विशफोट वपु उमढे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ जिनकों बिछि डंक करे जबही, तिनकों दुख देह बहे तबही । जिनके तनकों गजखाल मढे, तिनके वपुमें बड व्याधि बढे ॥ इन आधिक कष्ट कहाय घने, तिनमेंस लखाय न तोहितने ॥ तदपी तुम क्यों दुख देह धरे, लखिके बह्लही मन मांहि जरे ॥ १० ॥

जिसके गले में कंठमाल रोग हो, उसके शरीर में दारुण दुःख होता है । जिसके शरीर में ताप-ज्वर चढ़ता हो, उसके देह में दुःखदायी पीड़ा होती है । जिसके शरीर में क्षय-रोग ने प्रवेश किया हो, उसके शरीर में कृशता रहती है । जिसके शरीर में शोथ-सूजन हो, उसे बहुत व्याधि होती है । जिसे अतिसार रोग हो रहा हो, उसके शरीर में भयानक पीड़ा होती है । जिसके मुख से बोला नहीं जाता, उसके शरीर में भी बहुतसी व्याधियां हो जाती हैं । जिसके पांव में पीलपांव (पैर मोटा होजाने का) रोग हो, उसके शरीर में बड़ी व्याधि हो जाती है । जिसके शरीर में हर्ष रोग हो रहा हो, उसकी पीड़ा भी कम नहीं जानना । जिसे प्रातः खड़ा होकर देह को तपाना पड़ता है, उसके शरीर में भी बड़ी व्याधि है । जिसके शरीर में कुल्हाड़ामारा रोग हो, उसके शरीर में बड़ी पीड़ा होती है । जिसके शरीर में बिस्फोट निकला हो, उसे भी बड़ी पीड़ा होती है । जिसे बिच्छू डंक मारदे, तो उस समय उसे भी बड़ी पीड़ा होती है । जिसके शरीर में गजकर्ण या दाद हो रही हो, उसे भी बड़ी पीड़ा होती है । इनके अतिरिक्त और भी कई कष्ट कहे गए हैं, परन्तु तेरे शरीर में इनमें से कोई भी रोग प्रतीत नहीं होता, फिर भी तू क्यों दुःखी हो रही है ? इसे देखकर मेरा मन विचलता है ॥ १० ॥

दोहा.

जाने जियमें शोचिकें, व्याधी वपु तो नांहि ।

सुषा भये मनतें महा, आधी अति उरमांहि ॥ ११ ॥

मैंने मन में सोचकर देखा है कि, तेरे शरीर में व्याधि नहीं है । प्रत्युत तेरे मन के कारण हृदय में मिथ्या आधि उत्पन्न हो गई है ॥ ११ ॥

वाञ्छित वस्तुहि मिलनकों, करे कल्पना कोय ।

जो न मिले तब दुख धरे, मिथ्या मनमें सोय ॥ १२ ॥

किसी चाही हुई वस्तु के मिलने की कल्पना कोई करले और वह न मिले, तो मन में मिथ्या दुःख होता है ॥ १२ ॥

मिथ्या दुख मन मानिकें, पाय पीर जन जेह ।

बा वरनो कछु कहतहों, सुनो चित्त दे येह ॥ १३ ॥

मन में मिथ्या दुःख को मान कर जो मनुष्य दुःख पाते हैं, उसका वर्णन करती हूँ । चित्त लगाकर सुनो ॥ १३ ॥

मनदुखआधिबर्नन—तोटक छंद.

मन कोउ चहे धन धान्य अती, वह पाय नही जब एक रती । तब आप उदास बनी तनमें, दुख दारुन पामतहें मनमें ॥ पुनि कोउ चहे नृप राजनकों, पुनि कोउ चहे शुभ भाजनकों । पुनि कोउ विभूषन वस्त्र चहै, जब नांहि मिले तब कष्ट लहै ॥ पुनि कोउ चहै तिय सुंदरकों, पुनि कोउ चहै मनि मंदिरकों । पुनि कोउ सुता सुत चित्त चहै, जब नांहि मिले तब कष्ट लहै ॥ पुनि कोउ चहै हय हाथिनकों, पुनि कोउ चहै निज साथिनकों । पुनि कोउ सदा तिय संग चहै, जब नांहि मिले तब कष्ट लहै ॥ पुनि कोउ चहै नृत गीतनकों, पुनि कोउ चहै जग जीतनकों । पुनि कोउ सदा सनमान चहै, जब नांहि मिले तब कष्ट लहै ॥ इन आदि अनेकहि कष्ट जिते, मन कल्पित कूर कहाय तिते । उनपें रति कोउ धरावत है, दुख दारुन सो

दिल पावतहै ॥ इन काज कहीं कछु तेरे लिए, शिख मान सखी तुम मेरि
हिये । मनतेंहि मृषा किमि दुःख करी, सुख मांहि रहे नित धीर धरी ॥ १४ ॥

कोई २ मन में खूब धन-धान्य चाहता है, परन्तु जब पावे एक रत्ती भी नहीं, तो वह उदास होकर मन में दारुण दुःख प्राप्त करता है । फिर कोई राज्य का अधिकारी होना चाहता है, तो कोई अच्छे २ बर्तन चाहता है, और कोई अच्छे २ वस्त्र और आभूषण चाहता है, परन्तु जब वह नहीं मिलता है, तो दुःखी होता है । कोई सुन्दर स्त्री चाहता है, तो कोई जड़ाऊ महल चाहता है, और कोई बेटा-बेटी चाहता है, परन्तु जब नहीं मिलते हैं तब दुःखी होता है । कोई हाथी तथा घोड़ा चाहता है, तो कोई अपना साथी चाहता है, और कोई सदा रमणी का साथ चाहता है, परन्तु जब मिलता नहीं, तो दुःखी होता है । फिर कोई नृत्य व गान चाहता है, तो कोई संसार-विजयी होना चाहता है, कोई सदा सम्मान चाहता है, परन्तु जब नहीं मिलता है, तब दुःखी होता है । ये और ऐसे ही अन्य जितने कष्ट हैं, वे सब मन के कल्पना किये हुए और खोटे कहे जाते हैं । जो इनपर चित्त लगाता है, वह महान् कष्ट पाता है । इसलिये हे सखी ! तेरे लिये कुछ कहती हूं, तू मेरी शिक्षा हृदय में मान । धीरज धारण कर, सुखी रह । मन में व्यर्थ क्यों दुःखी होती है ? ॥ १४ ॥

द्रष्टांतालंकार—दोहा.

धीर धरो मनमें सदा, सहन करो सब गात ।

सुख दुःख आवत जात है, ज्यों आवत दिन रात ॥ १५ ॥

मन में सदा धीरज धरो, और सब कुछ शरीर पर सहन करो । सुख दुःख तो मनुष्य-जीवन में इसीप्रकार आते जाते हैं, जैसे रात और दिन ॥ १५ ॥

दोहा—ज्यों राखें रघुनाथजी, त्यों रहियें दिन रात ।

दुःख आवे जब देह तब, सहियें सबही गात ॥ १६ ॥

श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार रक्खें, उसी प्रकार रात-दिन रहिये । जब शरीर पर दुःख आवे, तो सारे शरीर पर सहन करे ॥ १६ ॥

पादाकुलक-छंद.

को दिन पायस पूरन पायें, को दिन कायें तृप्ति रहायें । को दिन अनजल त दुख सहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन दान दीनकों दीजें, को दिन भिक्षा मांगी जीजें । को दिन शोक हर्षमें बहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन पैसा पूरन पायें, को दिन गांठिके गर्थ गुमायें । को दिन कर्ज करी धन लहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन वाहन स्पंदन छाजे, को दिन शिविका चारु बिराजे । को दिन पंथे प्यादा जहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन कोमल सेज सुहावे, को दिन भूमि शयारि रहावे । को दिन नेक न निद्रा लहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन स्यामा संगे रहियें, को दिन विरहें बपुकों दहियें । को दिन मिलने चित्त उमहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन मान महीपति देवे, को दिन लूटी सो गृह लेवे । को दिन तौ न उदासी लहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन काय अनामय राजे, को दिन आमय युक्त बिराजे । को दिन वाके क्लेश न कहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें । को दिन व्याहं बढे उमंगा, को दिन दुखमें डूबत अंगा । जोइ बने सो चित्तमें सहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ को दिन सेवक राखियें घरमें, को दिन रहियें अपने परमें । को दिन आप उदासि न लहियें, जो विध राम रखे त्यों रहियें ॥ १७ ॥

कभी खूब दूध-पाक खा रहे हैं, तो कभी प्यासे ही रह रहे हैं । और कभी अन्न जल दोनों ही बिना कष्ट उठा रहे हैं, जिस प्रकार भगवान् रक्खें वैसे ही रहे । कभी खूब दीनों को दान दे रहे हैं, तो कभी खुद भिक्षा मांगकर जीवन-निर्वाह कर रहे हैं, कभी हर्ष और शोक में डूब रहे हैं, जैसे भगवान् रक्खें वैसे ही रहे । कभी खूब धन प्राप्त करें, कभी गांठ का भी गवादे, कभी कर्ज लेकर धन प्राप्त करें, भगवान् जैसे रक्खें वैसे ही रहिए । कभी सवारी में सुन्दर रथ है, तो किसी

दिन मनोहर पालकी है, और फिर किसी दिन पैदल ही चलना पड़ता है, जिस तरह भगवान् रक्खें वैसे ही रहिये । किसी दिन कोमल शय्या है, तो किसी दिन भूमि पर ही लेट लगा रहे हैं । किसी दिन नेक भी निद्रा नहीं आ रही है, भगवान् जैसे रक्खें वैसे ही रहिये । कभी नवयौवना स्त्री के साथ हैं, तो कभी विरह में शरीर तप रहा है, और फिर किसी दिन पीछे मिलने की उमंगें हो रही हैं । भगवान् जिस प्रकार रक्खें उसी प्रकार रहिये । किसी दिन राजा मे प्रतिष्ठा मिल रही है, तो कभी राजा घर लूट रहा है, तो भी उदासी नहीं लानी चाहिये । जिस प्रकार प्रभु रक्खें, उसी प्रकार रहना चाहिये । कभी शरीर निरोगी शोभित है, तो कभी रोग-ग्रस्त हो रहा है । फिर भी वह क्लेश कभी किसी को कहना नहीं चाहिये । रामजी जिस तरह रक्खें, वैसे ही रहना चाहिये । किसी दिन विवाह की उमंग हो रही है, तो कभी दुःख में देह डूब जाता है । इसलिए जो कुछ हो, उसे मन में सहन करिये, और प्रभु जिस प्रकार रक्खें उसी प्रकार रहिये । किसी दिन अपने घर में अन्य को नौकर रखते हैं, तो कभी किसी ओर के यहां खुद को नौकरी करनी पड़ती है । कभी भी मन में उदास नहीं होना चाहिये । प्रभु जिस प्रकार रक्खें, उसी प्रकार रहना चाहिये ॥ १७ ॥

छंद भुजंगप्रयात.

कबू गेह वासी कबू वन वासी, कबू पूर्ण आशी कबू वही निराशी ।
सबे कर्मके जोगसैं सो सहेनां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू
मिट पाई कबू शुष्क खाई, कबू द्रव्य पाई कबू सो गुमाई । दिले हर्ष औ
शोक काहु न लेनां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू पाव प्यादे
चली पंथ जानां, कबू वाहनं सु विमानं समानां । कबू दान देनां कबू दान
लेनां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू श्रेष्ठ भूपाल सन्मान देवे, कबू
कोपिकें सो गृह लूटि लेवे । तऊ चित्तमें राखिये द्रव्य चेनां, रखे
ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू वही संजोगि कबू वही धियोगी, कबू वही
निरोगी कबू होइ रोगी । मुखे बोलिये नां बनी भीरु बेनां, रखे ज्यों प्रभु
त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू व्याह उच्छाहको धोस आवे, कबू शोक सिंधु

विधाता बनावे । नही रोयकें डारिये नीर नेनां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू आप राजा बनी राज क्रीजे, कबू नीच की नौकरी चाहि लीजे । भली बूरिहे यों कछू नां कहेनां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ कबू हस्तिनि पुष्पकी माल डारे, कबू शस्त्रमें आइ शत्रु प्रहारे । धरी धीर धीराइ धोखा रखे नां, रखे ज्यों प्रभु त्यों खुशीमें रहेनां ॥ १८ ॥

कहा है कि, कभी घर में रह रहे हैं, तो कभी बन में रहना पड़ रहा है, कभी आशा पूरी हो रही है, तो कभी निराश हो रहे हैं, यह सब कर्म के योग से है, सो सहन करना चाहिये, और परमेश्वर जैसे रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी भिष्टान्न खा रहे हैं, तो कभी रूखा सूखा खाकर रह रहे हैं । कभी द्रव्य मिल रहा है, तो कभी उसे खो बैठें हैं । इसमें हर्ष या शोक न करके प्रभु जिस प्रकार रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी पैदल मफर करना पड़ता है, तो कभी विमान जैसे वाहन पर चल रहे हैं । कभी दान दे रहे हैं, तो कभी लेना पड़ता है । जैसे प्रभु रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी महाराजा से सन्मान प्राप्त हो रहा है, तो कभी वही कुपित होकर सब छीन लेता है । तो भी चित्त में प्रसन्न रहना चाहिये, और प्रभु जैसे रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी योगी हो रहे हैं, तो कभी वियोग की पीड़ा भोग रहे हैं । कभी निरोग और स्वस्थ हैं, तो कभी रोगी बन रहे हैं । परन्तु कभी मुख से भययुक्त बात न बोलनी चाहिये । प्रभु जैसे रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी व्याह उत्सव के दिन आते हैं, तो कभी विधाता शोक-समुद्र में ला पटकता है । रोकर आंखों से पानी न डालते हुए, प्रभु जिस प्रकार रक्खें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी खुद राजा होकर राज कर रहे हैं, तो कभी नीच की ही नौकरी चाह से लेनी पड़ती है । इससे किसी को भला या बुरा नहीं कहना चाहिये । प्रभु जैसे रखें उसी में खुश रहना चाहिये ॥

कभी हस्तिनी रमणी गले में पुष्पमाला डाल रही हैं, तो कभी शत्रु शस्त्र लेकर प्रहार कर रहा है । तो भी धीर व्यक्ति धैर्य धारण करके मन में धोखा नहीं रखता, प्रभु जिस प्रकार रखें उसी में खुश रहना चाहिये ॥ १८ ॥

दोहा—ऐसे करि उपदेश अति, उत्सुक वे उर आज ।

कुसुमावलि कहने लगी, प्रेम परिक्षा काज ॥ १९ ॥

इसप्रकार बहुत कुछ उपदेश करके, और हृदय में आज आतुर होकर, कलाप्रवीन से प्रेम-परीक्षार्थ कुसुमावलि कहने लगी ॥ १९ ॥

सागरके सुख क्षणिकहे, सुपनावत सोभाय ।

ताते भज भगवानकों, साथे रहे सदाय ॥ २० ॥

सागर का सुख क्षणिक है, और स्वप्न के समान है । इसलिये भगवान् का भजन कर, जो हमेशा साथ रहते हैं ॥ २० ॥

द्रष्टांतालंकार—सवैया.

ज्यों किसिकों निशि स्वप्न भयो अति, संपत्ति पाइ भयो बड़भागी ।

भौर भये उठि जोवत त्यों नहिं, काहु लखे निज पास अभागी ।

त्यों क्षण भंगुर देह धरी अब, रोवत सागर छोहमें पागी ।

पै चिर कालहिंके सुख दायक, ब्रह्महिमें न बने अनुरागी ॥ २१ ॥

जैसे किसी को रात में स्वप्न हो, और उसमें उसे बड़ी भारी सम्पत्ति मिल जावे, और वह बड़ा भाग्यशाली हो जावे, परन्तु सबेरा होने पर देखता है कि, कुछ भी पास नहीं और ज्यों का त्यों अभागा ही है । इसी प्रकार क्षण-भंगुर देह धारण कर सागर के प्रेम में लीन होकर रोती हो, परन्तु चिरकाल तक सुख देनेवाले

ब्रह्म में अनुराग नहीं करती !! सागर का प्रेम अभागे के स्वप्न के तुल्य है,
और ईश्वर-प्रेम जागृत अवस्था के समान स्थिर है ॥ २१ ॥

दोहा—असत अनित जग जालमें, मनमें पाई मोह ।
रोषत रातो दिवस क्यों, सागरपे धरि छोह ॥ २२ ॥

असत्य और नाशवान जगत् के जाल में मन को मोहित कर सागर के
प्रेम में रात-दिन क्यों रोती हो ? ॥ २२ ॥

कवित्त.

भूटे मात तात अरु, भगिनी जमात पुनि, भूटे बाल वामा अरु, नेह
नरनारीके । भूटे दास दासी अरु, हियके हुलासी मित्त, भूटे सुखराशी
बास, उज्ज्वल अटारीके । भूटे धनमाल अरु, बशन विशाल पुनि, भूटे गज-
राजबाज, सुभगही स्वारी के । ऐसे जग झूटे मोह, पाइके प्रवीन कैसें,
ब्रह्मकों न भजे तुम, सत्य चित्त धारीके ॥ २३ ॥

माता-पिता, बहिन और दामाद ये सब मिथ्या हैं, बालक और स्त्री तथा
नर-नारी का प्रेम सब मिथ्या हैं । दास, दासी और हृदय को उल्लसित करनेवाले
मित्र, तथा सुख का समूह और उज्ज्वल महल का निवास भी मिथ्या—नाशवान
है । धन-दौलत, बड़े २ वस्त्र सब मिथ्या हैं । सवारी के सुन्दर विशाल गजराज
तथा घोड़े भी सब मिथ्या हैं । हे प्रवीण ! ऐसे मिथ्या-जगत् के मोह में
कैसे पड़ी हो ? प्रभु में मन लगाकर सत्य जो ब्रह्म परमेश्वर है, उसे क्यों नहीं
भजती हो ? ॥ २३ ॥

भूटे राज काज अरु, सुखके समाज पुनि, भूटे छत्र चामररु, आसन
अंबारीके । भूटे कामदार जुके, आले अधिकार पुनि, भूटे सेनापति आदि
हुकम हजारीके । भूटे पतिहार अरु, कंचन आगार पुनि, भूटे परिवार अरु,
हेत हितकारीके । ऐसे जग झूटे मोह, पाइके प्रवीन कैसें, ब्रह्मकों न भजे
तुम, सत्य चित्त धारीके ॥ २४ ॥

राजकार्य और सुख के समूह सब मिथ्या हैं । छत्र चंवर तथा अंबारी की बैठक भी मिथ्या—नाशवान् हैं । कामदार के ऊंचे अधिकार भी मिथ्या हैं, तथा सेनापति आदिक और हजारी (हजार मनुष्यों पर हुक्मत करने-वाले) के हुक्म भी मिथ्या हैं । द्वारपाल तथा स्वर्णमय महल भी मिथ्या हैं । इसीप्रकार परिवार और हित करनेवाले के हितचिन्तन सब मिथ्या—अनित्य हैं । हे प्रवीण ! ऐसे मिथ्या-जगत् के मोह में कैसे पड़ी हो ? तुम मन लगाकर सत्य-ब्रह्म का भजन क्यों नहीं करती हो ? ॥ २४ ॥

भूटे मनि माला अरु, दुगने दुशाला पुनि, भूटे वृद्ध बाला वय, देखो देहधारीके । भूटेही रसन चहें, अशनके स्वाद पुनि, भूटेही वसैन वपु, कशब किनारीके । भूटेही अनंग रंग, को उमंग अहर्निशि, भूटेही शयन सुख, सेज सुकुमारीके । ऐसैं जग झूटे मोह, पाइकैं प्रवीन कैसैं, ब्रह्मकों न भजे तुम, सत्य चित्त धारीके ॥ २५ ॥

मणियों की माला और दोहरे-दुशाले ये सब मिथ्या हैं । तथा देहधारियों की वृद्ध अथवा बाल अवस्था ये सब भी मिथ्या—अनित्य—हैं । रसना जिस भोजन के स्वाद को चाहती है, वह भी मिथ्या—अनित्य—है । तथा मनोहर किनारी के वस्त्रों से शरीर को सुसज्जित करना भी मिथ्या—अनित्य—है । रात-दिन कामक्रीड़ा में मग्न रहना, तथा कोमल-शय्या पर शयन का सुख लेना भी भूटा है । हे प्रवीण ! ऐसे भूटे मिथ्या जगत् के मोह में क्यों पड़ी है ? मन लगाकर सत्य ब्रह्म का भजन क्यों नहीं करती ? ॥ २५ ॥

झूटे खान पान अरु, मान अपमान पुनि, झूटे गान तान अरु, नाच नृत्पकारीके । झूटे अलंकार अरु, बागकी बहार पुनि, झूटे दिलदार अरु, प्रेम प्रिय प्यारीके । झूटे धन माल अरु, मंदिर विशाल पुनि, झूटे सुख पाल आदि, यान अधिकारीके । ऐसैं जग झूटे मोह, पाइकैं प्रवीन कैसैं, ब्रह्मकों न भजे तुम, सत्य चित्त धारीके ॥ २६ ॥

खान-पान और मान-अपमान सब मिथ्या हैं । तथा राग-रंग और नर्तकी

के नृत्य भी मिथ्या हैं । अनेक आभूषण, एवं बाग का बिहार भी मिथ्या हैं । ऐसे ही प्रेमी और प्रेमिकाओं के प्रेम भी मिथ्या हैं । धन, माल, विशाल मन्दिर, अधिकारियों के सुखवास आदि, तथा यान-सवारियां सब मिथ्या हैं । इसलिये हे प्रवीण ! ऐसे मिथ्या-जगत् के मोह में क्यों पड़ी हो ? मत्स्य ब्रह्म को मन लगाकर क्यों नहीं भजती ? ॥ २६ ॥

दोहा—क्षणिक छोड़के काज क्यों, उरमें बनी उदास ।

रोवत रातो दिवस हो, परी प्रेमके पाश ॥ २७ ॥

क्षणिक प्रेम के कारण हृदय में क्यों उदास हो रही हो ? और प्रेम के बन्धन में पड़कर रात-दिन क्यों रोती हो ? ॥ २७ ॥

सागरके सुख क्षणिकहै, सुपनासे दरसाय ।

चिदानन्दके सुख सदा, साथें रहत सदाय ॥ २८ ॥

स्वप्न की भांति सागर का सुख क्षणिक है । और सच्चिदानन्द प्रभु का सुख नित्य, सदा साथ रहनेवाला और एक रस है ॥ २८ ॥

यातें उरमें भाव धरि, भजो ब्रह्म मन मांहि ।

जिने भजे भगवानकों, सो सुख पाय सदाहि ॥ २९ ॥

इसलिए हृदय में भाव धारण कर मन में ब्रह्म का भजन करो । जिमने भगवान् का भजन किया, उसने सदा सुख पाया है ॥ २९ ॥

चरनाहुल छंद.

जो भगवान् भजे ध्रुव राया, तो मन वांछित सो फल पाया । जो भगवान् भजे गजराये, तो ततकालहि धाइ छुटाये ॥ जो व्रजवासि भजे भुज चारी, तो रखवारि करी गिरिधारी । जो भगवान् भजे प्रह्लादा, तो तिनके सब टारे विशादा ॥ जो अजमेलने नाम उचारा, तो तिनकों तत काल उद्गारा । जो सुमरे चित्तमेंहि सुदामा, तो तिहि पाय सदा सुख

धामा ॥ जो हरि ध्यान सु पांडव धारे, तो ग्रह लाखनि तेंहि उबारे । जो सुमेरु हित बाल बिलारी, तो इन आगितें की रखवारी ॥ जो सुमेरु चित पांडव नारी, तो इनको दिय चीर अपारी । जो खग ध्यान धरी उत्कंठा, तो उन अंड रखे गज घंटा ॥ जो हरिचंद्र भजे भगवाना, तो तिन सत्य रखे मन माना । जो भगवान भजे गनिकाये, तो अघ त्यागि परमपद पाये ॥ यों भगवान भजे जन जेही, कष्ट तजी सुख पाये वेही । यानें भज भगवान पियारी, तो दुख दूर करे गिरिधारी ॥ ३० ॥

ध्रुव ने भगवान का भजन किया, तो मनोवांछित फल प्राप्त किया । ऐसे ही गज ने भगवान का स्मरण किया, तो उसे भगवान ने दौड़कर जाकर छुड़ाया । ब्रजवासियों ने चतुर्भुज भगवान को भजा, तो उन्होंने पर्वत उठाकर उनकी रक्षा की । प्रह्लाद ने भगवान का भजन किया, तो उसके सब दुःख भगवान ने काट दिये । अजामिल ने उनका नाम लिया, तो उन्हीं क्षण उसका उद्धार किया । सुदामा ने मन में ही स्मरण किया, तो उसका मदा के लिए दारिद्र्य दूर हो गया । पांडवों ने भगवान का स्मरण किया, तो भगवान ने लाक्षा-गृह में से उनकी रक्षा की । बिल्ली के बच्चों ने हृदय में भगवान का स्मरण किया, तो उनकी रक्षा भगवान ने आग में भी की । पांडव-पत्नी द्रौपदी ने स्मरण किया, तो भगवान ने उसके चौर में अपार वृद्धि कर दी । पक्षी ने उत्कंठा से भगवान की याद की, तो भगवान ने हाथी का घंटा डालकर उसके ढक्कन में अंडों को बचाया । हरिश्चन्द्र ने भगवान का भजन किया, तो भगवान ने उसके मनोवांछित मृत्यु की रक्षा की । गणिका ने भगवान का स्मरण किया, तो उसके सारे पाप दूर हो गये, और उसे परमपद मिला । इस प्रकार जिनने भगवान का भजन किया, उसके ही सब दुःख दूर हुए, और सुख प्राप्त हुआ । इसलिये हे प्यारी ! भगवान का भजन कर, तो वे गिरिधारी तेरे सब दुःख दूर कर देंगे ॥ ३० ॥

सोरठा.

दुनियामें दुख दोइ, तन दुख अरु निर्द्रव्य दुख ।

ज्ञानी गिनत न कोइ, मन कल्पित दुख ओर सब ॥ ३१ ॥

दुनिया में दो दुःख हैं, एक तो शरीर का दुःख (व्याधि), और दूसरा द्रव्य-हीनता का दुःख । और भी सब प्रकार के दुःख मनकल्पित हैं, उन्हें ज्ञानी जन नहीं मानते हैं ॥ ३१ ॥

तजि वैभव ठहराय, जंगलमें जन जोगि भई ।

पुनि वह जाचन जाय, अन्न फलादिक द्रव्यकुं ॥ ३२ ॥

कोई व्यक्ति वैभव छोड़कर साधु हो जाय और जङ्गल में रहने लगे, परन्तु उसे भी अन्न फलादि के लिए याचना करने जाना ही होता है ॥ ३२ ॥

रोग रहित तन होय, अन्नादिक अनुकूल पुनी ।

कष्ट ताहि नहि कोय, समजहु या संसारमें ॥ ३३ ॥

शरीर रोगरहित हो और अन्न आदि की अनुकूलता हो, तो फिर समझो इस संसार में उसे कोई कष्ट नहीं है ॥ ३३ ॥

सत्य-दुःखों का लक्षण—दोहा.

जो व्याधी वपुमें बढे, बिसरत नहीं बिसार ।

ज्यों बीछू काटे करे, ज्ञानि पुनि सितकार ॥ ३४ ॥

जो शरीर में व्याधि हो जाय, तो वह भूलाने से भी नहीं भूलती । जैसे बिच्छू के काटने पर ज्ञानी भी मीनकार करता ही है ॥ ३४ ॥

तोटक छंद.

धन धान्य बहु घरमाहि धरे, बहु किंकर किंकरताइ करे । सुखपाल अरु हय हाथि सजे, बड भूपति आइ समीप भजे ॥ तन व्याधि विशेष बढे जबही, सुख साज कहा सुखके तबही । जल कंठहुसैं जब नां उतरे, तब क्या सुख सो सुखसाज करे ॥ तदपी हिय हिंमत जाहि जगे, इनकुं दुख सो कछु अल्प लगे । अब द्रव्यके दुःखकि बात कहूं, चतुरा सुन तोकुं सुनाइ चहुं ॥ जन जाइ चढ्यो इक जंगलमें, जल नांहि मिल्यो इनही

थलमें । तन होइ तृषातुर प्राण तजे, कहूँ सुख सो किहि रीत सजे ॥ यह रीत कहूँ फिर ओर सुनो, जन निर्धनकुं दुख होत दुनो । जन खोजत उद्यम जो न मिले, दुख पावत सोइ अत्यंत दिले ॥ तन होय गरिष्ट बलिष्ट अती, तउ कष्ट कटे नहि कर्म गती । मति मंत अत्यंत हुवे नरही, कहूँ ज्ञान विचार कहा करही ॥ अस आपत काल परे जबही, इनकुं कछु खजत नां तबही । जिनकुं नहि बीती सु हास्य करे, अपने मनमें अभिमान धरे ॥ तब ही पुनि हिंमत होय हिये, कछु कष्ट निवारन होत किये । दुखमें दिल धीरजता धरिये, उर धारि उपाय सु आदरिये ॥ ३५ ॥

धर में धन-धान्य खूब भरा हो ! अनेक नौकर-चाकर सेवा के लिए हों ! सुखपाल और घोड़ा हाथी सजे हुए हों ! और बड़े २ राजा पास आकर सेवा करते हों ! परन्तु यदि शरीर में व्याधि बढ़ जाय, तो सारे सुख के साज क्या सुख दे सकते हैं ? जब कंठ से जल भी न उतरे, तब उन सुख के साधनों से क्या सुख हो ? तो भी जिसके दिल में साहस है, उसे वह दुःख कम हो जाता है । अब द्रव्य के दुःख की बात कहती हूं । हे सुजान ! वह तुझे सुनाना चाहती हूं । एक आदमी जङ्गल में जा पहुंचा, वहां उसे पानी अप्राप्य था । तृषाकुल होकर प्राण जाने की अवस्था हो गई, तो कहो अब वह किम प्रकार सुख पावे ? इसी तरह दूसरी बात भी कहती हूं कि, निर्धन को दूना दुःख होता है । हूँदने पर भी रोजगार न मिले, तो मनुष्य अत्यन्त दुःखी होता है । शरीर खूब हृष्ट-पुष्ट हो, तो भी कर्म की ऐसी गति होने से वह दुःख टल नहीं सकता । मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानवान् व बुद्धिमान हो, तो भी वह ज्ञान से क्या विचार करे ? जब ऐसा आपत्तिकाल पड़ जाय, तब उसे कुछ नहीं सूझता । जिसके ऊपर बीती नहीं, वह हंसी करता है, और अपने मन में अभिमान करता है । तो भी यदि हृदय में हिंमत्त हो, तो कुछ दुःख निवारण हो जाता है । इसलिये दुःख के समय मन में धीरज धरना चाहिये, और किसी उपाय को सोचना चाहिये ॥ ३५ ॥

मनकल्पित-दुःख, चर्नाकुल छंद.

कोउ चहे धन धान्य निधाने, जो न मिले तो महा दुख माने । कोउ दुखी दंपति बिछुरेसैं, कोउ दुखी बिन संतति एसैं ॥ कोउ दुखिया पाई अपमाना, कोउ दुखी तृष्णातुर जाना । कोउ दुखी पर वैभव पेखी, उनसैं न्यूनपनो निज लेखी ॥ स्वजन मरनसैं कोउ दुखियारा, कोउ दुखी मिलि दुष्टहि दारा । कोउ दुखी शिर बैरि विशेषा, कोउ दुखी शिर कुपित नरेशा ॥ कोउ दुखी दुख आपन शंका, बिनदुख दुखी गिनि ग्रह बंका । मनकल्पित अस दुःख अनेका, व्यर्थ दुखी जिन नाहि विवेका ॥ गंभीरताइ धरे जन ज्ञानी, कल्पितदुख न लहे दुख मानी । तन आरोग्य रु उद्यम पावे, तो दुख थल तजि दूरहि जावे ॥ जब आपत आवत शिर भारी, मुझ चलत तब समय बिचारी । नृप हरिचंद्र विशम गति जानी, तजि मद भयों श्वपच घर पानी ॥ ३६ ॥

कितने ही लांग धन-धान्य के भण्डार की इच्छा करते हैं, और न मिले तो बड़े दुःखी होते हैं । कितने ही पति-पत्नी के वियोग से दुःखी होते हैं, इसी प्रकार कोई सन्तान न होने से दुःखी होते हैं । कोई अपमान हो जाने से दुःखी होते हैं, तो कोई अति-वृष्णा के कारण दुःखी होते हैं । कोई दूसरे के वैभव को अपने से अधिक देखकर दुःखी होते हैं, तो कोई स्वजन की मृत्यु से दुःखी हैं, और कोई दुष्ट पत्नी के मिलने से दुःखी हैं । किसी का शत्रु प्रबल है, वह उससे दुःखी है, तो कोई राजा के नाराज हो जाने से दुःखी है, और कोई दुःख के आने की आशंका से दुःखी है । कोई बिना दुःख के ही मह खोटे होने की शङ्का से दुःखी है । इस प्रकार मनकल्पित अनेक दुःख हैं, इनमे वे दुःखी होते हैं, जिनमें विवेक नहीं होता । ज्ञानी लोग तो गंभीरता रखते हैं, और कल्पित दुःखों से दुःखी नहीं हुआ करते । शरीर निरोग हो, और अच्छा उद्यम मिल जावे, तो वह दुःख की जगह को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं । विचारशील व्यक्ति के शिर पर आपत्ति आ जाय, तो वह समय की गति को देखकर चलता है । राजा हरिश्चन्द्र ने विषम गति जानकर, अभिमान छोड़कर चांडाल के यहाँ पानी भरा ॥ ३६ ॥

छंद भुजंगी.

भली राजकन्या तुंही भाग्यवत्ती, पिता जाहि को हे बडो छत्रपत्ती । कछू बातकी यौं कमी नांहि तेरे, बहू दास दासी रहे नित्य नेरे ॥ मिले मिष्ट खेच्छा समं खानपानं, यहै बाहनं सो विमानं समानं । धरे अंग आभूषनं जैसि इच्छा, हुकूमं करे सो फिरे नांहि पीछा ॥ सबे स्वर्गके तुल्य हे सुख तेरा, सुषा दुःख मानी लियो एहि बेरा । दुखी देखिले लोगंह दूनियामें, भरी पेट सो अन्न क्योहू न पामें ॥ दुखी देखहू देह हे गोगि जाको, कहूं सत्य तो देखिकें दुःख ताको । तिहारे लिये में रहीहुं कुमारी, तथापि कहूं कष्ट नांही पुकारी ॥ तुंही कष्ट पोकारही नित्य तेरो, नहीं जानतीहे कछू कष्ट मेरो । जबे ओरको दुःख देखे निहाली, तबे बीसरे आपको दुःख आली ॥ ३७ ॥

हे राजकन्या ! तू बड़ी भाग्यवाली है कि जिसका पिता छत्रपति है । किसी बात की तेरे यहां कमी नहीं है । अनेक दास व दासियां तेरे पास रहती हैं । स्वादु और मन-इच्छित खाने को मिलता है । विमान के समान उत्तम वाहन हैं । जैसी इच्छा हो वैसे आभूषण शरीर पर धारण करने को हैं । जो हुकूम करती हो, वह टलता नहीं । सब स्वर्ग के समान तेरे सुख के माधन हैं । तुने व्यर्थ दुःख मान लिया है । देव, दुनियां में अनेक दुःखी लोग हैं, जिन्हें कभी भर-पेट अन्न नहीं मिलता । फिर वे दुःखी हैं, जिनके शरीर में रोग है, उनका दुःख देख !!! । मैं उनका दुःख देखकर तुम्हें सत्य कहनी हूं । मैं तेरे लिये कुमारी रही हूं, तथापि मैं अपना कष्ट कभी पुकार कर नहीं कहती । तू नित्य अपने कष्ट की पुकार करती है, परन्तु मुझे भी कोई कष्ट है या नहीं, यह तू नहीं जानती । जब कोई दूसरे का दुःख देखे, तो हे सखी ! अपना दुःख भूल जाता है ॥ ३७ ॥

दोहा.

दमयंती सीता सती, द्रौपदि मै दुख पात्र ।

तिनके दुखको तोल कर, तब दुखहे कुनमात्र ॥ ३८ ॥

दमयन्ती, सती सीता, और द्रौपदी दुःख की पात्र हुई हैं । उनके दुःख का अनुमान कर, तो तेरा दुःख किम हिमाव में है ! ॥ ३८ ॥

सुनी दुखी जनकी कथा, आप विपत्ति बिसारि ।

दुखके घास गुजारिये, धीरज उरमें धारि ॥ ३९ ॥

दुःखी जनों की कथा सुनकर, और अपने दुःख को भुलाकर, मन में धीरज के साथ दुःख के दिन बिताने चाहियें ॥ ३९ ॥

सुख पीछे दुख आतहे, दुख पीछे सुख आत ।

आवत जावत अनुक्रमे, ज्यों जगमें दिन रात ॥ ४० ॥

सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आते हैं । दुनियां में रात-दिन के समान क्रम से दुःख, सुख का आना जाना है ॥ ४० ॥

सुखके दिन बहि जातहे, दुखके दिन बाहिजात ।

गये दिवस सो स्वप्नगत, भासतहे इहि भात ॥ ४१ ॥

सुख के दिन भी बीत जाते हैं, और दुःख के दिन भी बीतते ही हैं । और जो दिन बीत गया, वह स्वप्न की भांति प्रतीत होता है ॥ ४१ ॥

बयगत वर्ष विचारिये, बीतत लगी न बार ।

बीतहि ऐसे शेष वय, नहि तनको निरधार ॥ ४२ ॥

आयु के बीते हुए वर्षों का विचार करें, तो ज्ञात होता है कि समय जाते देर नहीं लगती । इसी प्रकार आयु का शेष समय भी बीत जायगा । शरीर का कोई भरोसा नहीं ॥ ४२ ॥

सुखमें न धरो हर्षा अति, दुखमें नहि दिलगीर ।

सुख दुख सबही जूठहे, ज्यों मृगजलको नीर ॥ ४३ ॥

सुख में अति हर्षित तथा दुःख में हताश नहीं होना चाहिये, क्योंकि मृग-नृणा के जल के समान सुख दुःख सब मिथ्या हैं ॥ ४३ ॥

जिनकी आयुष जगतमें, अब्द सहस्रहि एक ।

ऐसे जन पुनि मरगये, बीते वर्ष अनेक ॥ ४४ ॥

संसार में जिनकी आयु एक हजार वर्ष की थी, वे भी अनेक वर्ष हुए मर गये ॥ ४४ ॥

कलमें आयुष अल्पहे, बीतत लगत न बार ।

इतनेमें सुख दुख हुको, हर्ष शोक क्या धार ॥ ४५ ॥

कलियुग में आयु ही थोड़ी है, जिसके जाते देर नहीं लगती । फिर इम् थोड़े समय में सुख-दुःख के लिए हर्ष-शोक क्यों करना ? ॥ ४५ ॥

आगें कविजन कहि गये, सब जनकुं सुखदाय ।

धैर्य धरन मन द्रढ करन, सो अब दैहुं सुनाय ॥ ४६ ॥

पूर्व कवियों ने सब मनुष्यों को सुखदायक धीरज धारने का, तथा मन को दृढ़ करने का जो वर्णन किया है, उसे मैं अब तुम्हें सुनाती हूँ ॥ ४६ ॥

सब अपने प्रारब्ध सम, सुख दुःख लेत सदाय ।

कोउ प्रकारे कोउको, सुख दुख लियो न जाय ॥ ४७ ॥

सब अपने २ प्रारब्ध के अनुसार सदा सुख-दुःख प्राप्त करते हैं । किसी प्रकार भी किसी अन्य का सुख या दुःख अन्य नहीं ले सकता ॥ ४७ ॥

मात तात अरु मित्रजन, करिहे कहा सहाय ।

दुख सुख दैवाधीनहे, सो अब कहुं बताय ॥ ४८ ॥

मा-बाप तथा स्नेही जन क्या सहायता कर सकते हैं ? दुःख-सुख दैवाधीन हैं । वह मैं अब बतलाती हूँ ॥ ४८ ॥

समुद्रको दृष्टांत, विभावनालंकार-सवैया.

पुत्रि दिनी परमेसरकुं, अमरेसरकुं इभ उत्तम दीनो ।

उत्तम अथ दिनंकरकुं अरु, शंकरकुं शशि अर्पन कीनो ।

देव सुधा रु सुरा लिय दानव, मानव भोक्तिक आदिक लीनो ।

दैव रुटे न सहाय दिसे, रुषिराय जवे रतनागर पीनो ॥ ४६ ॥

समुद्र ने विष्णु भगवान् को अपनी कन्या दी, इन्द्र को उत्तम हाथी ऐशवत दिया, सूर्य को उत्तम घोड़ा, तथा शंकर को चन्द्रमा प्रदान किया । अन्य देवताओं को अमृत, दैत्यों को मदिरा, तथा अन्य लोगों को मोती-प्रबाल आदि दिया, परन्तु जब समुद्र पर दैव कुपित हुआ, और अगस्त ने कोप करके उसे पिया, तो कोई भी उसे सहायता करने नहीं आया ॥ ४६ ॥

विषमालंकार—कवित्त.

[एक दरिद्री और राजाका दृष्टांत]

दुखी देखी दरिद्रीहुं, लक्ष द्रव्यही को हार, दीनो भूपे सोनो सर्प, भालिका हरीगई । फेर लक्ष द्रव्यहुकी, मुद्रिका समर्पी सो तो, सलील पीवतभांही, सरितामें सरीगई । फेर बोल द्रव्य दान, दीनो सो तो रजनीमें, तस्करकी मंडली जो, आयकें तस्कर गई । सुनहु प्रवीन दैव, रुठित सो दरिद्रीहुं, देशपति तुटे ही नां, दरिद्रकी घरी गई ॥ ५० ॥

एक दरिद्री को दुखी देखकर एक राजा ने लाख रुपये का हार दिया, जिसे चील उठा ले गई । फिर एक लाख की अंगूठी उसे दी, जो नदी में पानी पीते समय अंगुली में से निकल गई । फिर राजा ने उसे बहुत सा धन (द्रव्य) दान में दिया, जिसे रात में चोर आकर चुरा ले गए । कुसुमावलि कहती है कि—हे प्रवीण सुनो ! उम दरिद्री पर दैव कुपित था और राजा प्रसन्न भी हुआ था, परन्तु (दैव की अकृपा से) उमकी दारिद्र्य की घड़ी न टाली गई ॥ ५० ॥

प्रहर्षनालंकार—कवित्त.

चाहिकें मरन चित्त, दरिद्रीं तरुपें चढथ्यो, दृष्टि धरी नीडमें बां, हार सो देखायो हे । लेकें नीचे आइ दोनु, पेसेकी ले मच्छी खाइ, ताके पेटहुसैं पुनि, मुद्रिका सो पायो हे । पुनि वह तस्करहुं, भूपतिको त्रास लग्यो, मालिक

के मंदिर में, द्रव्य डारी आयो हे । सुनहु प्रवीन दैव, जुठयो तब दरीद्री सो, दरीद्री मिटीके द्रव्य, वानही कहायो हे ॥ ५१ ॥

फिर वह दरीद्री मरने की इच्छा से वृक्ष पर चढ़ा, वहां जो चलि के नीड की ओर नजर गई. तो वह द्वार दिखाई पड़ा, उसे लेकर नीचे आया, और खाने के लिए दो पैसे की मछली ली, तो उसके पेट में से अंगूठी मिल गई । इसी प्रकार चार भी राजा से भयभीत हो वह मारा धन भी उसके घर में रख गए । हे प्रवीण ! सुन । जब दैव अनुकूल हुआ, तो दरिद्रता भिट गई. और वही धनवान कहाने लगा ॥ ५१ ॥

दोहा—जबलों विपरित दैव हे, तबलों धीरज धार ।

वैहे दैव सुलट तचे, पैहो सुखहि अपार ॥ ५२ ॥

इसलिए जब तक दैव विपरीत है, तब तक धीरज धरो । जब दैव अनुकूल होगा, तो तुम्हें अपार सुख मिलेगा ॥ ५२ ॥

मनको दुख मनमें रखो, न करो बदन विलाप ।

दुर्जन हरखे देखिके, स्वजन धरे संताप ॥ ५३ ॥

मन का दुःख मन में ही रखो, सुख से विलाप मत करो । क्योंकि ऐसा देखकर दुर्जन तो प्रसन्न होते हैं, और स्वजन दुःखी होते हैं ॥ ५३ ॥

तज सागरके स्मरणकुं, तज सागरको नाम ।

अब शंकरको स्मरण कर, पावे सुखको धाम ॥ ५४ ॥

सागर का स्मरण और सागर का नाम छोड़ दे, और अब शंकर का स्मरण कर, तो सुख का धाम प्राप्त होगा ॥ ५४ ॥

व्याजनिंदा-अलंकार—सवैया.

स्नेह धरे नहि श्री हरिमें, पुनि स्नेह नहीं शुलपाननमें ।

सूरजदेवहुमें नहि स्नेह, नहीं पुनि गौरी गजाननमें ।

सागर सागर नाम रटे, हरि नाम न आवत आननमें ।

मानव देह दियो तुजकुं, यह चूक परी चतुराननमें ॥ ५५ ॥

तू विष्णु भगवान् में स्नेह नहीं करती, शङ्कर में भी स्नेह नहीं करती । सूर्य भगवान् में तेरा प्रेम नहीं, और न श्रीपार्वतीजी तथा गणेशजी में ही तेरा स्नेह है । केवल 'सागर, सागर' नाम रटती है, और हरि का नाम तेरे मुंह से निकलता ही नहीं । तुझे मनुष्य का शरीर देने में ब्रह्मा ने ही भूल की है ॥ ५५ ॥

संदेहालंकार—दोहा.

नाम न हरि हरको रटे, नाम न अंबा लीन ।

अने तेरी होयगी, चिता कि भस्म प्रवीन ॥ ५६ ॥

हे प्रवीण ! तू हरि (विष्णु) अथवा हर (महादेव) का नाम लेती नहीं, और न अंबा का ही नाम लेती है । अन्त में तेरी चिता होकर भस्म हो जायगी ॥ ५६ ॥

उपमेयोपमालंकार—दोहा.

स्नेही बहु संसारमें, पॅ न करत कौ युंही ।

तोसे तो सागर दिसे, सागर जैसी तुंहि ॥ ५७ ॥

संसार में अनेक स्नेही हैं, परन्तु ऐसा कोई नहीं करता । तेरे जैसा तो सागर और सागर जैसी तू ही दिवाई देती है ॥ ५७ ॥

यों शिखा कुसुमें कही, प्रविन सुनी द्रग मुंद ।

अंतरमें कछु नां ठरी, भइ तयेकी बुंद ॥ ५८ ॥

इस प्रकार कुसुमावलि ने शिखा दी, जिसे प्रवीण ने 'आंख मीचकर सुना । परन्तु उसके मन में टिका कुछ नहीं, जलते तवे पर बूंद की सी अवस्था हुई ॥ ५८ ॥

गाथा.

कहि कुसुमें शुभ शिखा, सुख दुख सहि तन धीर धारन यथा ।

चतुर्सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिन सागरो लहरं ॥ ५६ ॥ ❀

सुख और दुःख को शरीर में सहन करके यथाविधि धैर्य धारण करने की विधि कुसुमावलि ने कही । उस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह चौदत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ ५६ ॥



❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

गाथा.

कुसुम सखी यौं शिखा, धैर्य धरावन प्रवीनकुं दीनी ।

चहु सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥

प्रवीण को धीरज देने के लिए उसकी सखी कुसुमावलि ने इसप्रकार शिखा दी । उस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह ७४ वीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥

(१० ज० शास्त्री.)

७५ वीं लहर

प्रवीण को प्रिय-प्रवासकृत-चिन्ता इसमें कुसुमकृत-परिहास प्रसंग

प्रवीनोक्त—दोहा.

सागर सुमरन तजनको, तैं कीनो उपदेश ।

सो मेरे मनमें सखी, रुचत नहीं लवलेख ॥ १ ॥

प्रवीण कहती हैं कि, हे सखी ! तूने सागर का स्मरण करना छाड़ने का उपदेश किया है, सो मेरे मन में जरा भी नहीं रुचता ॥ १ ॥

तप्त तैल सम मुज रुदा, तब बानी जल सीत ।

मिलत दोइ ज्वाला लगी, भैहूं में भयभीत ॥ २ ॥

मेरा हृदय तप्त-तेल के समान हो रहा है, और तेरा कथन शीतल-जल के समान है । दोनों के मिलते ही ज्वाला भड़क उठी, जिससे मैं भयभीत हो रही हूं ॥ २ ॥

सवैया.

जाय कहो चित चाहि चकोरिकुं, काहिकुं चंदपें चित्त लगावे ।

ओर कहो सब कंजनकों, तमगंजन वीन क्युंही कुमलावे ।

नीरजकुं तुंहि धीरज देहु, वयुं नीर बिना नहिं धीर धरावे ।

देहु सिखामन सो सबकुं, सखि तेरी सिखामन मोकुं न भावे ॥ ३ ॥

तू मन में चाहना करके जाकर चकोरी से कह कि, तू चन्द्रमा में क्यों चित्त लगाती है ? सब कमलों को कह कि, सूर्य के बिना वे क्यों मुरझा जाते हैं ? तथा मछलियों को जाकर धीरज दे कि, वे पानी के अभाव में क्यों अधीर होती हैं ? हे सखी ! इन सबों को शिक्षा दे, तेरी शिक्षा मुझे नहीं भाती है ॥ ३ ॥

दोहा.

जो चाहे सुख करन तो, कर सागरकी गाथ ।

कहां गये क्या करन गये, यहै कोनको साथ ॥ ४ ॥

जो तू मुझे सुख देना चाहती है, तो सागर की बात कर, कि वे कहां गए,
क्या करने गये और उनके साथ कौन है ? ॥ ४ ॥

कुसुमोक्त-कवित्त.

उत्तर दिशामें चले, जात अवलोके हम, संन्यासी स्वरूप सातों, सज्जन
को साथे । जानती हों अनुमान, जैसे हिमाचल चली, साधन करही बैठी,
जहां बट्टीनाथे । एक अब्दहूकी औधी, दीनी इत आवनकी, आवन न
आवन, सो तो हरिके हाथे । सुनहु मुआन मोकुं, सागरकी गाथ बुझी, तातें
में सुनाई, तोकुं सागरकी गाथे ॥ ५ ॥

कुसुमावलि कहने लगी कि, मैंने उन्हें उत्तर दिशा में जाते हुए देखा, और
संन्यासी के वेष में वे सातों मित्र साथ थे । मैं अनुमान करती हूं कि, चलकर
हिमालय में जावेंगे, और जहां बट्टीनाथ हैं वहां बैठकर साधना करेंगे । यहां
पीछे लौटने की एक वर्ष की अवधि दी है, परन्तु आवेंगे या नहीं आवेंगे,
वह तो ईश्वर जाने । हे सुजान ! सुन । तूने मुझसे सागर की बात पूछी, इस-
लिए मैंने तुझसे सागर की बात सुनाई ॥ ५ ॥

प्रवीनोक्त विषमालंकार-कवित्त.

राजके कुमार सुकुमार काया सागरकी, क्यों उने अरन्य विचरन गति
आदरी । पांडु प्यादे पांडुमें उपान बिन प्रौढ पंथ, चले हय हाथी सुखपा-
लकुं अनादरी । बाटहे बिकट गिरि घाटके संघट घने, हे प्रदेश दूर इत
कहांहे हिमादरी । सागरके सिर सूरतापमें करन छाया, क्यों बिधिनामोकुं
न बनाइ वहां बादरी ॥ ६ ॥

प्रवीण कहने लगी कि, सागर राजकुमार हैं और कोमल शरीर वाले हैं, उन्होंने बन में जाने का कैसे निश्चय किया ? बिना उपानह (जूते) के और पैदल इतने लम्बे रास्ते पर हाथी, घोड़ा, सुखपाल आदि का अनादर कर चल पड़े। वह रास्ता विकट है, पर्वतों की घाटियों का समूह है, और वह प्रदेश यहां से अति दूर है, कहां हिमालय हैं ? ब्रह्मा ने मुझे सागर के मस्तक पर, सूर्य के ताप में छाया करने को बाढ़नी क्यों नहीं बनाया ? ॥ ६ ॥

रत्नावलि-अलंकार-कवित्त.

नहीं अथ 'अश्विनी' आ, 'रोहनी' हु नदी संग, 'भृगुशिर' फटे ऐसे, तापमें क्युं चलीहे। वरषामें 'आरद्रा', वसुधामें क्यों बिचरही, नहीं 'पुनर्वसु' 'हस्त', मिष्टान्न क्यों मलीहे। 'ज्येष्ठा' जामिनी कनिष्ठ, दोस सीत समयमें, 'मूल' कंद प्राशन, करीकें कैसें पलीहे। 'पूरवा' रु 'उत्तरा', आशा न अनुमानी परे, 'श्रवन' मुन्यो न पंथ, सागर क्यों कलीहे ॥ ७ ॥

माथ में न घोड़ा है न घोड़ी, नाहीं गाड़ी है। और धूप भी ऐसी है कि जो हिरन के सिर को फटाने वाली है, ऐसे ताप में वे किस प्रकार चलेंगे ? चौमासा में गीली भूमि में कैसे चलेंगे ? हाथ में दाम भी नहीं हैं, मीठा र खाद्य कैसे मिलेगा ? शीत-काल में रात बड़ी और दिन छोटा होता है, उममें कन्दमूल खाकर कैसे गुजारा करेंगे ? पूर्व दिशा है या उत्तर दिशा, इसका अनुमान कर नहीं सकते, कानों से सुना भी नहीं है, ऐसे मार्ग पर सागर किस प्रकार चलेंगे ? ॥ ७ ॥

कवित्त.

औगुनी गनी अशेष, छांडी मोकुं वारेबेश, प्रिय मेरो परदेश, गयोरे रिसाईकें। दे गयो बिजोग दुःख, ले गयो सबही सुख, वे गयो अबही सुख, देखुं कहां जाईकें। धरुंगी में कैसें धीर, करुंगी कहा उपाय, मरुंगी में खामुखां, बिषम बिष खाईकें। धाओरे सहाय मेरी, जाओरे सुजान कोउ, ल्याओरे सो सागरकुं, मोहीपें मनाईकें ॥ ८ ॥

मुझे अनेक अवगुणों वाली जानकर, वाली अवस्था में छोड़कर, मेरे प्रियतम क्रुद्ध हो परदेश चले गये । वे मुझे वियोग-दुःख दे गये, और मेरा सारा सुख ले गये । वे चले गये, अब कहां जाकर उनका मुख देखूं । मैं कैसे धीर धरूंगी, क्या उपाय करूंगी ? अब मैं महाविष खाकर व्यर्थ में ही मरूंगी । अरे ! कोई मेरी सहायता करो । कोई चतुर मनुष्य जाओ, और महाराज सागर को मनाकर मेरे पास ले आओ ॥ ८ ॥

असंगति-अलंकार-कवित्त.

जोगी नहीं जोगीरूपे, आयो कोउ जादुगर, कछु जादु करी गयो, मोकुं इत आइकें । भीख मांगनेकुं आयो, भभूत लगाइ पुनि, भूति डारी गयो मेरा, मनकुं भ्रमाइकें । कहा जानुं कहा कियो, वित्त मेरो चोर लियो, सुद्धि हरी गयो गूढ, शब्द मुख गाइकें । अबधूत बनी आयो, अलक जगावनेकुं, अलक जगातें गयो, अनंग जगाइकें ॥ ९ ॥

वह योगी नहीं था, योगी के रूप में कोई जादूगर था, जो आकर मेरे पर जादू कर गया । वह विभूति लगाकर भीख मांगने आया, परन्तु भभूत डालकर मेरे मन को भ्रमा गया । न जाने उसने क्या किया, मेरा मन चुरा ले गया, और मुख से गूढ शब्द गाकर मेरी सुध-बुध हर ले गया । अबधूत बनकर अलख जगाने को आया, परन्तु अलख जगाते २ कामदेव को जगा गया ॥ ९ ॥

संदेहालंकार-सवैया.

सागर राजकुमार यहै किधुं, हे ज्युं फिरंगि कहो सखि मोही ।
सिद्ध यहै किधुं हे ज्युं गुसांइ, किधों अबधूत सु जोगिहे ओही ।
ज्यों नटवा बहु बेश बनावत, जानत कोन जथारथ सोही ।
पंच सरूप लखे हम सागर, या महिं सत्य स्वरूपहि कोही ॥ १० ॥

हे सखी ! मुझे बता कि, यह सागर राजकुमार है ? कि फिरंगी है ? कोई सिद्ध है ? कि गुसांइ है ? या अबधूत योगी है ? जिस तरह नट अनेक वेष बनाता है

और यथार्थ में उसे कोई जानता नहीं, उसी तरह मैंने उसे पांच वेष में देखा है, इसमें उसका असली स्वरूप क्या है ? ॥ १० ॥

कुसुमावलि-उक्त परिहास, दोहा.

राजकुमार फिरंगि सिध, गुसाईं अरु सन्यासि ।

द्रौपदि ज्यो किय पंच पति, तउ तुंहि रही उदासि ॥ ११ ॥

तब कुसुमावलि ने हंसी में कहा कि, एक राजकुमार, दूसरा फिरंगी, तीसरा सिद्ध, चौथा गोसाईं और पांचवा संन्यासी, इस प्रकार द्रौपदी के समान पांच पति करके भी नू उदास रही ॥ ११ ॥

जाघृत पुनि यह सुपन सम, हे सिगरो संसार ।

सदा सुपनमें मिलत पति, तिन संतोषहि धार ॥ १२ ॥

हे प्रवीण ! यह सारा संसार जाग्रत अवस्था में भी स्वप्नवत् है । और हमेशा तुम्हें स्वप्न में तो तेरा पति मिलता ही है, इसलिये सन्तोष रख ॥ १२ ॥

प्रवीणोक्त दृष्टांतालंकार-दोहा.

दहत देह अरु दील मुज, तेरे होवत हास ।

होवत हांसी काग मन, दादुर देह बिनास ॥ १३ ॥

प्रवीण ने कहा कि, मेरा शरीर व मन तो जलता है, और तुम्हें हँसी आती है ! जैसे “भेंडक की तो जान जाय और कौवे को हँसी आवे” ॥ १३ ॥

प्रवीण-कुसुमोक्त वक्रोक्ति-अलंकार-कवित्त.

सुन सखी अब मोकुं, सागर मिलिहे कहां ? जाहु स्तंभतीर्थ ढिग, सागर गंभीरहे । कहां होहि मित्र ? अब, हे सो मेघराशिहुमें, कहां भोगी भ्रंग मेरो ? जहां कंज नीरहे । अहो सखी कब एहि, होयगी अवधपुरी ? होनेक कहाहे ? सदा, सरजुके तीरहे । बियोगतें मेरे तन, बढ्यो अति परिताप, तो प्रवीण रहो जहां, शीतल समीरहे ॥ १४ ॥

प्रवीण कहती है कि, हे सखी ! अब मुझे सागर कहां मिलेंगे ? कुसुमावलि वक्रोक्ति में कहती है कि, खंभात की खाड़ी के पास जा, वहां गहरा सागर है । फिर प्रवीण पूछती है कि, मित्र कहां है ? कुसुमावलि बोली कि, इस समय मित्र (सूर्य) मेष राशि में है । तब प्रवीण ने पूछा कि, मेरा भोगी भंवरा कहां है ? कुसुमावलि बोली कि, जहां पानी में कमल है, वहां वह है । प्रवीण ने फिर पूछा कि, अरी सखी ! यह अवधपुरी कब होगी ? कुसुमावलि ने उत्तर दिया कि, अयोध्या हमेशा सरयू नदी के किनारे है । प्रवीण ने कहा कि, वियोग के कारण मेरे शरीर में अतिताप बढ़ रहा है, तब कुसुमावलि ने उत्तर दिया कि, हे प्रवीण ! जहां ठंडा पवन है, वहां जाकर रह ॥ १४ ॥

प्रवीनोक्त-सवैया.

राज तजी सुख साज तजी, गज बाज तजी गति पाउंसें कीनी ।
मात रु तात तजी कुल जात, श्रिपात भये तजि भ्रात भगीनी ।
देह रु गेहसें नेह तजीके, विदेह दशा दिलमें धरि दीनी ।
मेरे लिये सुख सागरकुं तजि, सागर सद्य विदागिरि लीनी ॥ १५ ॥

प्रवीण कहने लगी, सागर ने राज छोड़ा, सुख के सामान छोड़े, हाथी, घोड़ा छोड़ा, और पैदल चले । माता-पिता, कुल और जाति छोड़ी, भाई, बहिन छोड़ श्रीपात हुए । शरीर और घर से स्नेह छोड़ मन में विदेही की दशा धारण की । मेरे लिए सुख के समुद्र को छोड़कर सागर ने तुरन्त विदागिरी लेली ॥ १५ ॥

छप्पय.

इह औसर इक बिप्र, टहल भाखत यह पुरमें ।
पढि जाने इक श्लोक, ओर बिद्या नहि उरमें ॥
प्रवीन मंदिर पास, आयकें श्लोक उचारा ।
कुसुम कहे सखि सुनहु, एहि हित चाहत तुमारा ॥
तोकुं यह आशिष देतहे, सुनि सुजान सखिकुं कहे ।
यह श्लोक पढतहे चंडिको, क्या आशिष मोकुं येहे ॥ १६ ॥

इसी समय उस नगर में एक ब्राह्मण फेरी लगा रहा था ! वह एक ही श्लोक बोलना जानता था, और कुछ पढ़ा लिखा न था । प्रवीण के मन्दिर के पास आकर उसने यही श्लोक उच्चारण किया । कुसुमावलि ने कहा हे सखी ! सुनो, यह तुम्हारा हित चाहता है, और तुम्हें आशीर्वाद दे रहा है । यह सुनकर प्रवीण ने कहा कि, यह तो चंडी-पाठ का श्लोक बोलता है, इसमें मुझे क्या आशीर्वाद देता है ? ॥ १६ ॥

दोहा—कुसुम तवे यह श्लोककुं, लिख्यो सु जुक्ती आन ।

तिनमें दोहा देखिकें, मुमुदित भई मुजान ॥ १७ ॥

तब कुसुमावलि ने युक्तिपूर्वक उस श्लोक को लिखा । उसमें दोहा देखकर प्रवीण आनन्दित हुई ॥ १७ ॥

ब्राह्मण-पठित दोहागर्भ वह श्लोक, वसंततिलका वृत्त.

शकादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये ।

तस्मिन्दुरात्मनि मुरारिवले च देव्या ।

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा ।

वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १८ ॥

जिस समय देवी ने महा बलवान् दुष्ट महिषासुर तथा उसकी सेना को मारा, तब सुन्दर शरीर वाले इन्द्रादि देवों का समुदाय, विनय सहित नतमस्तक हो, प्रफुल्लित होकर देवी को स्तुति करने लगा ॥ १८ ॥

कुसुम—लिखित वह श्लोक, अंतर्लापिका भेद.

श	का यः	द सु...	तां	व्या	खु	को	इ	मः	चा	रु	दे	हा:
						र	णा	ल	पु	र्ष	प्र	गिः वा
						ग...	रां	नि	ह	ते	वी	यें..
						सा	ध	रो	शि	म्र	न	
						तु...	पु	खुः	प्र	ण...	ति	
						दे	च	ले	ब	रि	रा	
						नि	त्त	रा	दु	न्	स्मि	त...

वह श्लोकांतर्गत—दोहा.

शक्रादय मुर मुरगणा, दे प्रवीन तिण रात ।

निदे तु सागरको मलनि, तेसि प्रबन सुहात ॥ १६ ॥

इन्द्रादिक देव तथा उनके गण, हे प्रवीण ! तुझे वह रात्रि प्रदान करें कि जिस प्रकार निद्रा में सागर का मिलाप होता है, वैसे ही उत्तम बनकर वह रात्रि शोभे ! अर्थात् जाग्रत में भी उसी मिलाप से वह रात्रि शोभित हो ॥ १६ ॥

नोट—ऊपर के चित्र में से अन्त के तीन अक्षर बाएं ओर के नीचे के कोने से और दाएं ओर के ऊपर तथा नीचे के कोने से एक २ पढ़ने से यह दोहा बनता है ॥

दोहांतर्गत श्लोक सो, सुनत तृप्त भय कान ।

कर्नाभूषन लक्षको, द्विजकुं दियो मुजान ॥ २० ॥

ऊपर का दोहा जिस श्लोक में से निकला, उसे सुनकर प्रवीण के कान वृप्त हुए । और उसने अपने कान का एक लाख रुपये का कर्णफूल ब्राह्मण को प्रदान किया ॥ २० ॥

कुसुमावलि परिहास करि, ओर प्रसंग चलाइ ।

दुख बिसरावत प्रबिनको, प्रबिन बिसारत नांइ ॥ २१ ॥

इस तरह कुसुमावलि हंसी करके व बीच में और प्रसंग चलाकर प्रवीण का दुःख भुलाने का यत्न करती है, परन्तु प्रवीण भूलती नहीं ॥ २१ ॥

कुसुमोक्त सारालंकार-कवित्त.

बड़े बड़े लोगनके, बड़े बड़े हे आवास, तातें बडो तेरो सौध, सबहीके सीरहे । सुनहु प्रवीन तातें, बडोहे शहर यह, तातें बडो देश यह, तोयधीके

तीरहे । ताहितें भरतखंड, तातें बडो जंबुद्वीप, तातें बडो निधि जामें, अनहद नीरहे । अरुपारतें अत्यंत, बडोहे आकाश पुनि, तातें पुनि तेरो मन, बडोइ गंभीरहे ॥ २२ ॥

कुसुमावलि कहती है कि, बड़े २ लोगों के बड़े २ घर होते हैं, पर तेरी हवेली उनसे भी बड़ी है । हे प्रवीण ! सुन, इस हवेली से यह नगर बड़ा है, और इससे यह समुद्र के तीर गुजरात प्रदेश बड़ा है । इससे बड़ा भरतखण्ड देश, और इससे भी बड़ा जम्बु द्वीप, और इससे भी बड़ा समुद्र है, जिसमें अपार जल भरा हुआ है । समुद्र से भी महान् आकाश है, परन्तु तेरा मन उससे भी महान् और गम्भीर है ॥ २२ ॥

अधिकालंकार—कवित्त.

चौद विद्या चौसठ कला, औ चतुराइ सब, काव्यकी कलाके भेद, जीतने कहातहे । नवसैं नवानुं नदी, सातोंही समुद्रहुको, सो तो ज्ञान तेरे मन, मुठीमें ज्यों आतहे । सातहु पाताल लोक, सातहु उरध लोक, ताको सब ज्ञान तेरे, मनमें समातहे । ऐसे बडे मनमें न, मात छिलकाइ जात, केसी बडी एसी ब्रह्म, बेदना अचातहे ॥ २३ ॥

उस तेरे मन में चौदह विद्या, चौसठ कला, सारी चतुराई, और काव्य की कला के जितने भेद हैं वे, तथा नवसौ निन्यानवें नदियां, और सातों समुद्र का ज्ञान इस प्रकार भरा है, जिस प्रकार कोई वस्तु मुठी में हो । सातों पाताल तथा सातों ऊपर के लोक, इन सब का ज्ञान तेरे मन में है । वह विरह-वेदना कितनी बड़ी है, जो इतने बड़े तेरे मन में भी समाती नहीं, और बाहर छलकती है !!! ॥ २३ ॥

अल्पालंकार—दोहा.

तीनहु बर्ने बिजोगके, लिखे बिधाता जेह ।

वह पुनि वहन न करिसके, कैसि तनक तब देह ॥ २४ ॥

विधाता ने जो 'वियोग' के तीन अक्षर लिखे हैं, उन्हें भी जो सहन नहीं कर सकता, ऐसा कैसा तेरा कोमल शरीर है ? ॥ २४ ॥

निरुक्ति-अलंकार-दोहा.

प्रभुताईकुं परहरी, तैं भूताई लीन ।

धाताने तेरो धर्यो, सत्यहि नाम प्रवीन ॥ २५ ॥

तूने प्रभुताई को छोड़कर भुताई ले रखी है, इसीलिये विधाता ने तेरा नाम 'प्र बीन' अर्थात् "विना 'प्र' का" रखवा, सो ठीक ही है ॥ २५ ॥

बिधि-अलंकार-दोहा.

सुजान तोकुं सब कहे, मात तात अरु आन ।

संकटमें धीरज धरे, तव तुव नाम सुजान ॥ २६ ॥

तुम्हें माता-पिता तथा दूसरे सब सुजान कहते हैं, परन्तु यदि तू संकट में धीरज धरे, तो ही सचमुच तेरा सुजान नाम सार्थक है !! ॥ २६ ॥

विरहांतरे प्रवीनकुसुमावलिचर्चाप्रसंगकथन, तत्र प्रवीनोक्त-दोहा.

भजन करन भगवानके, कहत कुसुम तुम आय ।

पर प्यारे सागर बिना, अवर न मोहि सुहाय ॥ २७ ॥

हे कुसुमावलि ! तू आकर मुझे भगवान का भजन करने को कहती है, परन्तु एक सागर के बिना मुझे तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥ २७ ॥

दोहा-सो शिक्षा तिन दीजिये, जाके मनमें भाय ।

यातें उलटा कीजिये, तो तेहि नांहि सुहाय ॥ २८ ॥

इसलिए शिक्षा उसे देनी चाहिये, जिसके मन में वह अच्छी लगे । यदि इससे उलटा करे तो वह उसे नहीं रुचती ॥ २८ ॥

दृष्टांतालंकार-कवित्त.

जैसे आम अंगुर के, स्वादके चखैयाताकों, निंबकी निंबोरी कैसे,

मनहीमें भावे है । जैसे दाधि दूधहीके, पानके करैयाताकों, क्वाथ के किलाल कैसे, आनंद उपावेहै । जैसे अन्न अमृतसें, अहोनिशि पायताकों, तक्र तीन दिन जुकी, मनमें क्यों भावेहै । तैसें हम सागरके, चाहक सदाय ताकों, ब्रह्मके भजन कैसे, चित्तमें सुहावेहै ॥ २६ ॥

जैसे आम तथा अंगूर का जो चखनेवाला है, उसे नीम की निबौली कैसे अच्छी लगे ? जैसे दूध और दही के पान करनेवाले को क्वाथ का पानी कैसे आनन्द देनेवाला होवे ? जैसे सदा अमृत के समान भोजन करने वाले को तीन दिन का बासी तक्र क्योंकर रुचे ? उसी प्रकार सदा सागर की चाहना वाली मुक्तको ब्रह्म का भजन क्योंकर रुचिकर हो सकता है ? ॥ २६ ॥

दोहा—सागर बिन छिन एकसो, कोटि कल्पसम जाय ।

सुख दायक सब संपत्ती, बनी बहुरि दुखदाय ॥ ३० ॥

सागर के बिना एक क्षण भी कोटिकल्प के समान बीतता है, इसी प्रकार सुख देने वाली सब सामग्री उलटे दुःखदायक हो रही है ॥ ३० ॥

यातें अधरातें अली, सागर शोधन काज ।

मैं चाहत हूं चालबो, तजी तातको राज ॥ ३१ ॥

इसलिये हे सखी ! सागर के शोध करने के निमित्त पिता का राज छोड़कर आज अर्द्धरात्रि में चलना चाहती हूं ॥ ३१ ॥

कुसुमावलि सुनि कानमें, उरमें बनी उदास ।

कुंवरीकों कहने लगी, शिचा सुभग प्रकाश ॥ ३२ ॥

यह बात कानों से सुनकर कुसुमावलि मन में उदास हुई, और प्रकट में कुमारी को उत्तम शिचा कहने लगी ॥ ३२ ॥

कलाप्रवीन प्रति कुसुमोक्तशिचाकथन—तोटक छंद.

सुनियें शिख आज अली हमरी, तुमतो नर नाहनकी कुंवरी । सब

जानतहो नृप रीतनकों, तदपी कहुमें तुम हीतनकों ॥ उठि आघ निशे तुम जाव जबे, यह प्रात भयें जन जानें सबे । उरमें तब लोक बिचार करें, किहि कारन बाल निशां निकरें ॥ जिनके मनमें जिहि बात ठसे, तिनके मुख तेंहि लथा निकसैं । जन कोउ कहे कुलटा कुंवरी, किहि संग गई निशिमें निकरी ॥ पुनि कोउ कहे कुलकानि तजी, बनि गर्भवती तब वेहि जजी । पुनि कोउ कहे लखि रूपवती, हरि चौर गये करिकें युक्ती ॥ पुनि कोउ कहे मदपान करी, बनि बाहरि मंदिरतें निकरी । पुनि कोउ कहे न शयानि सखी, बद-फैलहितें बरजी न रखी ॥ यह गीत अनेकहि बात करें, वह मात पिता तुम जान परें । मनमें तब क्यों वह धीर धरें, अन पान बिना मुरझाइ मरें ॥ अरु अंक लगे कुलमें तबही, यहि टारें ठरे वहतो कबही । इन बातन कोहि बिचार करो, फिर योग्य लगे वह काज करो ॥ ३३ ॥

हे सखी ! मेरी शिक्षा सुनो । तुम राजकुमारी हो, और सब राज-काज की रीति जानती हो, फिर भी तुम्हारी भलाई के लिए कहती हूं । आधी रात को उठकर तुम जब जाओगी, और सबेरे सब लोग जान पावेंगे, तो लोग हृदय में सोचेंगे कि, कुमारी क्यों रात में निकल पड़ी ? जिनके मन में जैसा आवेगा, वैसे ही उनके मुंह से निकलेगा । कोई कहेगा कि राजकुमारी कुलटा है, और रात में किसी के साथ निकल गई । फिर कोई कहेगा कि उसने कुलमर्यादा छोड़ दी, और गर्भवती हो गई, इसलिए भाग गई । कोई कहेगा उसे रूपवती देखकर कोई चोर युक्ति से उसे चुरा ले गया है । कोई कहेगा कि मदिरा पीकर पागल हो राजमन्दिर से निकल गई । कोई कहेगा कि उसके पास चतुर सखी नहीं थी, जो उसे कुमार्ग से रोकती । इस प्रकार लोग अनेक प्रकार की बातें करेंगे, और तुम्हारे माता-पिता के कानों तक में बात पहुंचेगी, तो वे कैसे धीरज धरेंगे ? अन्न-जल के बिना वे सूखकर प्राण त्याग करेंगे । कुल में वह कलंक लगेगा, जो कभी टालने से भी नहीं टलेगा । इन बातों को सोच लो, और फिर जो योग्य प्रतीत हो वह करो ॥ ३३ ॥

कलाप्रवीनोक्त-दोहा.

योग्यायोग्य विचारको, नहीं प्रेममें काज ।

जऊं सागरकी साथके, तजा देहका आज ॥ ३४ ॥

प्रवीण ने कहा कि, प्रेम के कार्य में योग्य-अयोग्य का विचार नहीं होता, इसलिए या तो सागर के साथ जाऊं, या आज प्राण-त्याग करूं ? ॥ ३४ ॥

कुसुमोक्त-पादाकुल छंद.

सागर संग चलन तुम धारो, वह पहिले मनमांदि विचारो । लाभ न लेश विदेश बक्ष्यामें, दुखदारुन हैं दरवेश दशामें ॥ सोरन सेज न भूमि शयारी, चालनकों नित राह करारी । सांभ सुबो भिख मांगन जाना, जोइ मिले सो शीतल खाना ॥ बस्त्राभूषण तनुतें त्यागी, राख लगाना बनि बैरागी । मंजुल मंदिर बास तजीकें, बसना बन व्रण गेह सजीकें ॥ कष्ट कालके कोटि कहीजें, ताप तोय अरु सीत सहीजें । साज नहींको सेवन चेरा, काम करनकों आवत नेरा ॥ विधन बाल परदेशें पावें, तातें तिय पति संग न जावें । जो सति सीय गई पति संगे, तो वह कष्ट पाइ बहु अंगे ॥ जो नल संग गई नलनारी, तो दुख दारुन पाइ अपारी । तातें सुनियें शिख हम नीकी, लाज न लेश रहे कुलहीकी ॥ आफत आई रहे अति अंगे, कूर कलंक चढे तमअंगे । यातें शिख तुम मान हमारी, संग चलनकी तजो कुमारी ॥ ३५ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि बहिन ! तू सागर के साथ जाने का निश्चय करती है, तो पहिले मन में सोच ले कि, विदेश रहने में लाभ किंचित नहीं, उल्टा दरवेशी की दशा में दारुण दुःख हैं । वहां सोने को सेज नहीं, भूमि पर लेट लगाना होता है, और चलने को नित्य कठोर मार्ग हैं । रोज प्रातः-सायं भिक्षा मांगने जाना, और जो कुछ मिले वही बामी-कुमी खाना होता है । बस्त्राभूषण शरीर से अलग कर और राख लगाकर बैरागी होना पड़ेगा । सुंदर मंदिर का निवास छोड़ कर वन के घास की ओपड़ी में रहना होगा ।

काल के जो करोड़ों कष्ट हैं गर्मी, वर्षा, सर्दी आदि, उनको सहन करना पड़ेगा । कोई सेवक टहल करनेवाला नहीं होगा, जो काम करने पाम आवे । स्त्रियों को परदेश में अनेक विघ्न होते हैं, इसलिए स्त्री पति के साथ परदेश नहीं जाती हैं । सती सीता पति के साथ गई, तो उसे अनेक कष्ट उठाने पड़े । नल के साथ उसकी स्त्री दमयन्ती गई, उसे भी अपार दुख उठाना पड़ा । इसलिए मेरी सुन्दर शिक्षा सुनो । यदि तू गई, तो कुल की लाज निशेष हो जायगी, मुझे अनेक शारीरिक कष्ट होंगे । शिर पर महान कलंक लगेगा, इसलिए मेरी शिक्षा मानकर हे राजकुमारी ! साथ चलने की बात छोड़ दो ॥ ३५ ॥

कलाप्रवीनोक्त-सवैया.

औरनकों अलि शीख शिखावहि, मोहि नहीं शिख लागत नीकी ।
बात बनावतहो बहु भांतिहि, पै हमकों सब लागत फीकी ।
काटि करो कुलकानिको चूरन, लाज धरो बिचमें वनहीकी ।
लागनदे पुनि लंछनको पर, गच्छन दे अब पाम पतीकी ॥ ३६ ॥

प्रवीण कहती है कि, हे सखी ! यह शिक्षा औरों को दो, मुझे यह शिक्षा अच्छी नहीं लगती । तू अनेक प्रकार की बातें बनाती है, परन्तु मुझे सब फीकी मालूम होती है । कुल-मर्यादा का काट कर चूर २ करदो, और लाज को आग में डालदो । लांछन भी लगाने दे, परन्तु मुझे अब पति के पाम जाने दे ॥ ३६ ॥

कुसुमोक्त संदेहालंकार-सवैया.

आज कहा मदपान किये किधों, कैफहिकी गुटिका कछु खाई ।
मंजुल माभूम खाय खरें किधों, बाद बदी बिजिया बहु पाई ।
बाहरिसी मुख बैन कहे पुनि, है न सुधी चितमें सुख दाई ।
दीठ लगी किहि डाकिनिकी किधों, भूत लगी तनुमें भरमाई ॥ ३७ ॥

कुसुमावलि कहने लगी कि, क्या आज तूने शराब पी ली है ? या कैफ की गोली खाई है ? या बढिया माजूम खालिया है ? अथवा किसी के साथ चढ़ा-

बढ़ी करके भंग खूब पीगई है, तभी बावरी के समान मुंह से बातें निकालती है, और चित्त में सुत्र देने वाली सुध नहीं है । प्रतीत होता है, या तो तुम्हें किसी डांकिन की नजर लगी है, या शरीर में किमी भूत ने लगकर तुम्हें भरमा दिया है ॥ ३७ ॥

कलाप्रवीनोक्त-सवैया.

भूत लगो न बनी नहि बावरि, दीठ न डाकिनिकी हम लागी ।
भंग पिये न किये मदपान, कैफहिमें न कभी अनुरागी ।
सागर छोड़ गये बनमें हम, देहनिमें दुगनो दुख दागी ।
वा विरहें बनि व्याकुल तो हिय, आज अली हम बावरि लागी ॥ ३८ ॥

प्रवीण ने कहा कि, न मुझे भूत लगा है, न मैं बावरी हुई हूं, न मुझ डांकिनी की नजर लगी है, न मैंने भंग पी है, नाही मदिरा पान किया है, न कैफ में मुझे कभी अनुराग रहा है । सागर ने छोड़ कर बन का रास्ता लिया, उसी के विरह-दुःख से दुखी हुई हूं । और हे सखी ! उसी से मैं आज पागल हो रही हूं ॥ ३८ ॥

कुसुमोक्त-सवैया.

सागर मे तुम छोड़ि सखा इन, कष्ट महा मन मोहि सतावे ।
पै पग बाहिर क्यों कटिये तुम, भूप बड़ेनकि बेटी कव्हावे ।
जो दुख आयपरें शिरपें वह, धीर धरी सहियें सब भावे ।
नाँतर निंदक लोग सबै जग, चौगुनो चाहि चबाव चलावे ॥ ३९ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, हे प्रवीण ! सागर तुम्हें छोड़ गए, इस से मेरे मन को भी महान् दुःख है । परन्तु तुम बड़े राजा की बेटी हो, महल से बाहर पांव कैसे निकालोगी ? जो दुःख सिर पर आन पड़े, उसे धीरज के साथ सहन करना ही चाहिये, नहीं तो निंदक लोग सारी दुनिया में चाह कर चौगुना करके निंदा फैलाते हैं ॥ ३९ ॥

कलाप्रवीनोक्त-सवैया.

चाहि चबाव चबाईनके गन, चौंगुनो चारि दिशोंमें चलावे ।
 के कुलकानि डुबावनकों हम, कौटिक फूर कलंक लगावे ।
 के बदमासि बदी बदबाई, हमारि भले बदनाम बनावे ।
 पैं प्रिय सागर संग चले बिन, मोमन बाज न आज रहावे ॥ ४० ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, निंदा करनेवाले लोगों का समुदाय भले ही चौंगुनी निंदा चारों दिशा में फैलावे, चाहे हमारी कुल-मर्यादा को डुबाने के लिए करोड़ों भूटे कलंक लगावें, अथवा बुरे लोग हमारी अपकीर्ति करके भलेही मुझे बदनाम करें, परन्तु प्यारे सागर के साथ चले बिना मेरा मनरूपी घोड़ा आज नहीं रुक सकता ॥ ४० ॥

कुसुमोक्त-सवैया.

क्या कुलमें तुम जन्म धरे पुनि, क्या नृपकी तुम बेटी कहावे ।
 क्या बकवाद करे बानि बावरि, ज्यों सनिपातमें बान बढ़ावे ।
 क्या रजपूत कि रीत लसैं पुनि, क्या तुम्हरी कुलकानि बतावे ।
 सोइ बिचार करी उर अंतर, पीछें करो मनमें जिहि भावे ॥ ४१ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, तुमने किस कुल में जन्म लिया है ? और किस राजा की तुम बेटी हो ? पागल बनकर क्या बकवास करती हैं, जैसे सन्निपात में कोई बकवास करता है । राजपूत की क्या रीति-रिवाज होती है ? और तुम्हारे कुल की मर्यादा क्या है ? इसका अपने हृदय में विचार करो, और फिर जो तुम्हारे जी में आवे, सो करो ॥ ४१ ॥

कलाप्रवीनोक्त-सवैया.

बात बिचार करों मनमें तब, रोकन चाहतहै कुलकानी ।
 आगिल आई अड़े अटकावन, लाज ललाम बनी ठकुरानी ।
 और उरे ससृभावत हो तुम, आज अली कहि शीख शायानी ।
 पै मन मोहिन मानतहै अब, बीस विशा जाइ काय बिकानी ॥ ४२ ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, जत्र मन में विचार करती हूं, तो कुल-मर्यादा रोकना चाहती है। मनोदर-लज्जा पटराणी बनकर आगे आकर रोकने को खड़ी हो जाती है। और हे सखी ! तुम भी अच्छी शिक्षा देकर मुझे समझाती हो, परन्तु फिर भी मेरा मन मानता नहीं। इससे मैं सगम्यती हूं कि, मेरी काया बीसों-बिम्बा पर की हो गई है—सागर की हो गई है ॥ ४२ ॥

कुसुमोक्त-सवैया.

को कुलवानैकों गेह बुलाईकें, दान दिये नहिंतो पितु मातें ।
 त्यों मुखसँ कभि कोई दिना कठि, कोउसँ बैन दिये नहि बातें ।
 तोभि तुम्हे मन मानत हो अब, काय बिकाइ कहो किन धातें ।
 शोचत हो कछु चित्तनमें किधों, बोलत मस्त बनी मदिरातें ॥ ४३ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, किसी कुलवान को घर पर बुलाकर तेरे माता-पिता ने तेरा दान किया नहीं, नाही कभी किसी दिन किसी से बात करते हुए वचन दिया, तो भी तू मन में यह मानती है कि, तेरी काया पर की हो गई, यह किस प्रकार से ? कुछ मन में सोचती भी है ? या मदिरा से मत्त होकर बोलती है !!! ॥ ४३ ॥

कलाप्रवीणोक्त-सवैया.

मस्त नहीं मदिराँते बनी पर, व्याकुल हो रहि हों विरहातें ।
 शोचत हों निज चित्तनमें पर, भूल गई सब भान हियातें ।
 ज्यों लागि ना प्रिय सागरको जहि, भेंडु सखी करि कोलहि गातें ।
 तौ लागि ना तन ताप हटे पुनि, चित्त न चैन रहे भलि भातें ॥ ४४ ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, मैं मदिरा से मत्त नहीं, बल्कि विरह से व्याकुल हो रही हूं। अपने चित्त में सब सोचती हूं, परन्तु हृदय में से सब ज्ञान जाता रहा। हे सखी ! जब तक प्रिय सागर के शरीर की आलिंगनपूर्वक भेंट न करूं, तब तक न तो शरीर का ताप हटेगा, नाही चित्त में भलीप्रकार चैन होगा !! ॥ ४४ ॥

कुसुमोक्त-सवैया.

शोचि सबै उर जान लिये सखि, बोलत बाल प्रलापमें बानी ।
तोमि तहां कछु चारु सिखामन, देन लगी करुना उर आनी ।
क्या बनि बोलत तौलतना तुम, वंश बड़ेनकि रीत पुरानी ।
बेरीहि बेर सिखावत हों पर, सीखत क्यों नहिं सीख शयानी ॥ ४४ ॥

कुसुमावलि ने मन में विचार कर सब बात जान ली, कि प्रवीण यह जो कुछ कहती है, वह विरह के प्रलाप की दशा में बोल रही है । तो भी उस समय मन में दयार्द्र हो, कुछ सुन्दर शिक्षा देने लगी, कि क्या बढ़कर बोलती है ? बड़े वंश की पुरानी रीत को विचारती नहीं ? मैं बार २ तुम्हें सिखाती हूँ, परन्तु हे चतुर सखी ! तू सीखती क्यों नहीं ? ॥ ४५ ॥

कलाप्रवीणोक्त-सवैया.

औरनकों जहि सीख सिखावहि, मोहिकों ना तुम सीख सिखावो ।
बात बनाई बहु विधिसें पुनि, आज अली हमनां भरमावो ।
काटि करो कुलकानिको चूरन, वामिल वंशको बारि लहावो ।
शोच विचार तजी मनतें अब, सागर संगहि मोहि चलावो ॥ ४६ ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, हे कुसुमावलि ! जा, तू औरों को शिक्षा दे, मुझे तू मत सिखा । बहुत प्रकार बातें बनाकर हे सखी ! तू आज मुझे मत भरमावे । कुल-मर्यादा को काट कर चूर २ करदे, और उच्च-वंश को पानी में बहा दे । अब सोच-विचार को मन से छोड़कर, मुझे सागर के साथ चला ॥ ४६ ॥

कुसुमोक्त-सवैया.

बाहरि न्हे बकवाद करे पुनि, मानत क्यों नहि सीख शयानी ।
तो हितकी हम बात कहें वह, सोचिकें चित्त धरो महरानी ।
तोहि बड़ी कुलहै जगमें इन, कीरन चारों दिसैं छहरानी ।
वाहिकों आज तजी पलमें अब, क्यों बिनकाज फिरावत पानी ॥ ४७ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, हे सखी ! बावरी होकर बकवाद करती है, शिश्ना क्यों नहीं मानती ? मैं तेरी भलाई की बात कहती हूं। हे महारानी ! सोचा और चित्त में धरो। तेरा कुल संसार में बड़ा है, जिसकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैली हुई है। उमे आज छोड़कर बिना कारण क्यों पल में सब पर पानी फेरती है ? ॥ ४७ ॥

कलाप्रवीनोक्त—सवैया.

कंतकि ओर विचार करों तब, चालन संग उमंग धरोंरी ।
लाजकि ओरे लखूं जबही तब, लोहकें लंगर पाय जरोंरी ।
ज्यों दुहु नार धनी मुरभे मन, त्यों मनमहि मैं भाव भरोंरी ।
कौनहिकों करूं त्याग अली अरु, कौनहिपें चित्त चाह धरोंरी ॥ ४८ ॥

प्रवीण ने कहा कि, जब पति की ओर विचार करती हूं, तो हृदय में चलने की उमंग होती है। और जब लाज की ओर देखती हूं, तो पांव में लोहे की जंजीर पड़ जाती है। जिम प्रकार दो पत्नी वाला पुरुष मन में मुरझाता है, वही मेरे मन के भाव हो रहे हैं। मैं किस का त्याग करूं, और किस पर चित्त लगाऊं ? ॥ ४८ ॥

कुसुमोक्त—सवैया.

सागर संग न ब्याह भये तुम, त्यों लागि ना तिन कंत कहावो ।
ब्याह बिना उर मानत हो पति, सो व्यभिचारकों दोष धरावो ।
वेहि विचार करी मनमें अब, चालनकी सब बात डुवावो ।
वंश परंपरकी कुलकानिकों, राखनकों घर मांहि रहावो ॥ ४९ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, सागर के साथ तेरा ब्याह नहीं हुआ, इसलिए उन्हें कंत नहीं कहना चाहिये। बिना ब्याह के उन्हें पति मानती है, तो व्यभिचार का दोष लगता है। यह विचार मन में करके चलने की सब बात छोड़ दो, और वंश-परम्परा की कुल-मर्यादा को रखने के लिए घर में ही रहो ॥ ४९ ॥

प्रवीनोक्त-कवित्त.

वेदमें बढत व्याह, आठहि प्रकार जूके, उनमेंसें करे कोउ, जाकों
जेसा भावेहै । चाहिंकों विबुध जन, विधियुक्त मानी मन, विमल विशद
वह, गिरातें गिनावेहै । चाहिंमेंसें उर हमें, ग्रहनं गांधर्व करि, आयुसमें
किये सोय, आनंद उपावेहै । ताहिंकों विचार विन, वदिकें वदन कैसें, दोष
व्यभिचार जूको, वपुमें धरावेहै ॥ ५० ॥

प्रवीण ने कहा कि, वेद में आठ प्रकार के व्याह कहे गये हैं, उनमें से
जिसकी जो इच्छा हो करे । बुद्धिमान जन उसे ही विधियुक्त मानते हैं. और
उसे पवित्र और शुद्ध कहते हैं । उनमें से ही हमने गन्धर्व-विवाह ग्रहण कर
परस्पर स्वीकार किया है, जो हमें आनन्द-दायक है । इसका विचार किये
विना हे सखी ! मुख से बोलकर शरीर में व्यभिचार का दोष कैसे बताती
है ? ॥ ५० ॥

कुसुमोक्त-दोहा.

अष्ट भेद उपयामके, को विध कैसें होहि ।

नाम सहित बरनन करी, वही सुनावो मोहि ॥ ५१ ॥

कुसुमावलि ने पूछा कि, विवाह के आठ भेद कौन से और कैसे हैं ? नाम
सहित उनका वर्णन कर मुझे सुनाओ ॥ ५१ ॥

कलाप्रवीनोक्त-दोहा.

मनु कृत मानव धर्ममें, कहे अष्ट उपयाम ।

उनके अब बरनन करों, सुनों सोइ अभिराम ॥ ५२ ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, मनु भगवान्-कृत मानव-धर्मशास्त्र में आठ प्रकार
के विवाह कहे हैं, उनको अब वर्णन करती हूं । प्रीति के साथ चित्त लगाकर
सुनो ॥ ५२ ॥

अष्ट विवाहभेदकथन-चोपाई छंद.

शीलवान विद्वान विलोकी, पास बुलाई प्रीते । चारु करी सनमान
बनाको, चाह धरी अति चित्ते ॥ बस्त्राभूषन वेष्टित कन्या, दिये दानमें ताकों ।
ब्राह्म व्याह विधियुक्त बखानी, बदत विबुधजन बाकों ॥ उत्तम याजक यज्ञ
मध्य लाखि, चाह धरी चित्तमांही । सहूजन देखत चोंप करीकें, प्रीते पास
बुलाही ॥ बस्त्राभूषन वेष्टित कन्या, दिये दानमें ताकों । दैव व्याह विधियुक्त
बखानी, बदत विबुधजन बाकों ॥ यथायोग्य उपयोग करनकों, इक दो
वृष अरु गाई । बना पास ते लेइ बालको, देत दान उमहाई ॥ ऐसे अति
अभिराग करतको, मोद धरी मनमांही । बदत विबुधजन बाको बरनी,
आर्ष व्याह चित चाहि ॥ विचरो द्वै वरकन्या वपुतें, निज निज धर्म प्रमाने ।
जैसैं उचरी अरची द्वयकों, देतहि दान शयाने ॥ यातें उभय उमंगी अति-
शय, मुदुनिज मनमें ठाने । परिणय प्राजापत्य पढीकें, बाकों विश्व बखाने ॥
कन्याके पितृमातहिकों कछु, देकें दाम दुलारा । व्याह बनावतहै वरकन्या,
मानी मोद अपारा ॥ याकों उचरत आखर उद्वाह, चाही सर्व संसारा । या
जुग मांही उनके अधिके, प्रीते भये पसारा ॥ आपुसमें उत्साह धरीके, का-
मातुर बनि काया । मोर धरीके मिलन मोदतें, वर कन्या मन माया ॥ बाकों
गुनि गांधर्व गिनतहै, झोनीपें सुखदाया । सोई सखी हम चाह धरीके, वि-
धिसैं व्याह बनाया ॥ मात तात अरु भ्राता भगिनी, गौंती जेह गिनावे ।
वेध भेध अरु छेदी बाकों, कन्याकों हरि लावे ॥ रोत पुकारत तोभी तापर,
दया न दिलाहि धरावे । वरजोरी सैं व्याह बनावत, राक्षस सोई कहावे ॥
निद्रावश बनि बाला कोऊ, पौढी पोखि पलंगे । के उनमत्त अति मदिराते,
आप बनीके अंगे ॥ भूमि पड़ी बिन भान लखीके, छरत करकों संगे । बाकों
अलि पैशाच पढीकें, अधम गिनत अंतरंगे ॥ ऐसैं बरनी व्याह अनूपम, अष्ट

भांतिके जेही । कहे मनूने धर्मशास्त्रमें, कथे तोहिंसें वेही ॥ जैसा जाके दिलमें भावें, वैसा कृताजन कोई । वामें दोष न रंच कहावे, शास्त्र बदत है सोई ॥ ५३ ॥

किसी शीलवान् विद्वान् को देखकर प्रेम-पूर्वक पास बुला, भलीप्रकार सम्मान के साथ वस्त्राभूषण-वेष्टित कन्या का उसे दान में देना, विबुध जनों द्वारा 'ब्राह्म' विवाह कहा गया है । उत्तम यज्ञ-कर्त्ता को यज्ञ में देखकर, चित्त में प्रसन्न हो, सब लोगों के सन्मुख प्रेमपूर्वक पास बुला कर, वस्त्राभूषण-वेष्टित कन्या को दान में देना, बुद्धिमानों द्वारा 'दैव' विवाह कहा गया है । यथाश्रेय्य उपयोग करने के लिए एक-दो बैल और गाय वर से लेकर कन्या-दान करे । इस प्रकार से प्रसन्न होकर कोई मनोहर विवाह करे उसे विद्वान् पुरुष प्रसन्न हो 'आर्य' विवाह कहते हैं । पहिले वर पसन्द करके पीछे कन्या दान देते समय 'तुम दोनों वर-कन्या मन, वाणी और कर्म से धर्मपूर्वक वर्ताव करो' इस प्रकार कन्या के माता-पिता बोलकर दोनों की पूजा कर जां चतुर-जन कन्या-दान करते हैं, और इससे दोनों उमंगित हो प्रसन्न होते हैं, उसे 'प्राजापत्य' विवाह कह कर जगत् बखान करता है । कन्या के मां-बाप को वर कुछ द्रव्य देकर, परन्तु दोनों अति हर्ष से वर-कन्या जां विवाह करते हैं, उसे सब संसार चाह कर 'आसुर' विवाह कहता है । जिसका इस कलियुग में अति प्रेम से प्रसार है । परस्पर उत्साह-युक्त हो शरीर से कामातुर होकर जो वर-कन्या एक दूसरे को पसन्द कर हर्ष से मिलते हैं, उसे गुणवान् पुरुष पृथ्वी पर सुखदायक 'गांधर्व' विवाह कहते हैं । और हे सखी ! वही विवाह हमने चाहना से विधि-पूर्वक किया है । कन्या के माता, पिता, भाई, बहिन, सगे सम्बन्धी को मार काट कर कन्या को हरण कर लावे । कन्या रोती-पुकारती, विलाप करती हो, तो भी दया न आवे । बलात्कार उसके साथ विवाह करे, उसे 'राक्षस' विवाह कहते हैं । निद्रा के वशीभूत अर्थात् शय्या पर सोती हुई हो, अथवा मदिरा आदि मादक द्रव्य-सेवन से बेभान होकर पड़ी हुई हो, ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करे, उसे 'पैशाच' विवाह कहते

हैं, और इसे मनु में अधर्म कहा गया है। इस तरह आठ प्रकार के विवाहों का मनोहर वर्णन जो मनु भगवान् ने मानव धर्म-शास्त्र में कहा है, उसे मैंने तुम्हें सुनाया। इसमें से जिसे जो अच्छा लगे, उसे वह करे। इसमें कोई भी दोष नहीं, ऐसा धर्मशास्त्र ने कहा है ॥ ५३ ॥

गाथा.

कुसुमसु कलाप्रवीने, किये चर्चा चलनरू व्याहविधानं ।

पंच सप्तति अभिधानं, पूर्णं प्रविणसागरो लहरं ॥ ५४ ॥

कुसुमावलि के प्रति कलाप्रवीण ने सागर के साथ चलने की चर्चा की, और आठ प्रकार के विवाहों के लक्षण कहे। इस सम्बन्ध की प्रवीणसागर की यह पचहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ ५४ ॥



७६ वीं लहर

प्रेम-प्रशंसा-प्रसंग-वर्णन, प्रवीण-प्रति कुमुमोक्त-दोहा.

व्याह बखानी अष्ट विधि, पढ प्रबिन तुम आज ।

किंतु नहीं कलिकालमें, आवत येही काज ॥ १ ॥

हे प्रवीण ! तुमने आज जो आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है, वे इस कलियुग में काम में नहीं आते ॥ १ ॥

कुंडलिया छंद.

ताकों तौभी मानियें, मानसीक वर व्याह ।

कायिक बने न कोउ दिन, उरमें धरि उत्साह ।

उरमें धरि उत्साह, कमि नहि काय मिलेंह ।

यातें यह उपयाम, उपजे दोग दिलेंह ।

हियमें हक विचार, काय मिले क्यों बाकों ।

मानसीक वर व्याह, मानियें तौभी ताकों ॥ २ ॥

यदि तेरा कहना मान भी लिया जाय, तो भी इसे श्रेष्ठ एवं मानसिक व्याह कह सकते हैं । परन्तु हृदय में उत्साह लेकर कभी शारीरिक सम्पर्क हुआ नहीं, इसलिये जब उत्साहयुक्त हृदय से कायिक सम्पर्क नहीं हुआ, तो यह विवाह दोनों हृदयों की उपज ही तो है । हृदय में जरा उचित अधिकारपूर्वक विचार करो कि, इसे यदि श्रेष्ठ मानसिक व्याह मान भी लें, तो भी इससे कायिक मेल कैसे होवे ? अर्थात् नहीं हो सकता ॥ २ ॥

दोहा—तातें तजिकें चालबो, शंकर चित्तमें चाहि ।

बरस बिताबो बाल अब, धीर धरी मनमांहि ॥ ३ ॥

इसलिये हे देवि ! चलना छोड़कर हृदय में शंकर का ध्यान धरो, और धैर्य धारण कर वर्ष की अवधि बिताओ ॥ ३ ॥

कलाप्रवीणोक्त-दोहा.

सागर बिन छिन एकही, क्यों करि धारों धीर ।

दारुन दुख दिलमें बढे, सो किमि सहे शरीर ॥ ४ ॥

प्रवीण ने कहा कि, सागर के बिना एक क्षण भी धीरज कैसे धरूं ?
हृदय में दारुण दुःख बढ़ रहा है, उसे शरीर कैसे सहन करे ? ॥ ४ ॥

विरहव्यथा वर्णन, वृत्त्यानुप्रासालंकार-कवित्त.

भोजन न भावे आलि, नीर न सुहावे पुनि, नींद नहीं आवे दिन, रात
क्यों बितावोंरी । तापसें तपावे मैं, वानसें बिधावे पुनि, हाय उपजावे
सोई, क्यों करि सहावोंरी । मन मुरझावे दृग, नीरकों झरावें पुनि, प्रलाप
बढावे सोई, कौनसें कहावोंरी । धीरज नसावे अरु, शरीर सुखावे ऐसी,
विरह व्यथाकों कहो, क्यों करि निभावोंरी ॥ ५ ॥

हे सखी ! न तो भोजन अच्छा लगता है, न पानी सुहाता है । दिन में
नींद नहीं आती, फिर रात तो बिताऊं ही किस प्रकार ? मैं (कामदेव) ताप से
संतप्त करता है, और फिर बाणों से बीधता है, तथा मुख से 'हाय, हाय' ऐसा
शब्द उत्पन्न कराता है, उसे कैसे सहन करूं ? मन मुरझाता है, आंखों से
आंसू गिरवाता है, प्रलाप कराता है, उसे किसे कहूं ? धीरज जाता रहता
है, शरीर सूख जाता है । ऐसे विरह की पीड़ा को कैसे सहन करते हुए निर्वाह
करूं ? ॥ ५ ॥

कुसुमोक्त-दोहा.

विरह व्यथा वपुमें धरी, कष्ट सहत क्यों अंग ।

जो चाहो सुख साजतो, तजो औरको संग ॥ ६ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, विरह की पीड़ा शरीर में धारण करके क्यों कष्ट
उठाती है ! यदि तू सुख चाहती है, तो और का संग छोड़ दे ॥ ६ ॥

प्रेम करी पर सों किते, दुःख पाये बहु देह ।

वा बरनी कछु कहत हों, सुनो चित्त दे येह ॥ ७ ॥

कितनों ही ने दूसरों से प्रेम करके शरीर में बहुत दुःख उठाया है ।
उसका कुछ वर्णन करती हूं, ध्यान से सुनो ॥ ७ ॥

पादाकुलक छंद.

पर आसंग करे कदि कोऊ, सतत सुख नहि पावत सोऊ । पीड़ाकारी
परकी प्रीती, यह आलसमें ऐसी रीती ॥ प्रानी पास परे जन जेही, दुख दारु-
न पाये सब वेही । याते हम शिज्ञा मनमानी, दिलतें वाकों तजो शयानी ॥
जो मृग प्रेम रागपर लाये, तौ तनु व्याधके पास हनाये । जो अलि प्रेम
कमलपर धोर, तौ मुरझाई प्रान निकारे ॥ जो दीपकपर प्रेम पतंगा, तौ
मृत्युपात जारी निज अंगा । जो गज करिनीपर ललचाये, तो तिन तनुमें
तुर्त बंधाये ॥ जो पविहा रति घनपर लावे, तौ प्यासा अठमास रहावे । जो
शशिपर धरि चाह चकोरा, तौ तलफत हय देखे भोरा ॥ जो मुरलीपर मोह
भुजंगा, तौ ग्राहत इन गारुडि अंगा । जो चक्रवा चित चाह संजोगा,
तौ निशीमें दुख होत वियोगा ॥ ऐसे परि कित प्रेमकें पाशा, दुख पावे दिल
होत निराशा । प्रेम पीरेकें पाश प्रमानो, होत दुखी जिहि बांहि फमानो ॥
यां जानी मनमें मति राशी, आलमतें उर बनी उदासी । त्यागी जगकों
होइ सँन्यासी, चाहत चित्त सदा अविनाशी ॥ तो तनमें नहि रोग लखावे,
तोभी कष्ट किते उपजावे । तातें तिनकों तजो शयानी, दुखदायक बड
प्रेम प्रमानी ॥ ८ ॥

जो कोई दूसरे में आसक्ति करता है, वह सदा सुख नहीं पाता । दूसरे की
प्रीति दुःखदायी होती है, ऐसा इस संसार का नियम है । जो प्राणी इस पाश में
पड़े, उन सबने दारुण दुःख उठाया । इसलिये हे चतुर सखी ! मेरी शिज्ञा मानकर
दिल से उन्हें हटादो । देखो, मृग राग पर बशीभूत होता है, और व्याध के बाण का
शिकार होजाता है, भंवरा कमल पर प्रेम करके कमल के मुरझाने पर प्राण तजता

है, पतंगा दीपक पर प्रेम करके अपना शरीर जलाना है, हाथी हथिनी पर आसक्त होकर ही अपने को बंधन में फंसाता है, पपीहा भेष पर आसक्त होने में आठ महीने प्यासा मरता है, चकोर चन्द्रमा के चाह में रातभर तड़फता ही रहता है, मुरली की ध्वनि पर सुग्ध होकर भुजंग अपने अंग को गारुडी के वशीभूत करता है, चक्रवाक संयोग की चाहना में रात्रि का वियोग प्राप्त कर दुःखी ही रहता है । इस प्रकार दूसरे के प्रेम-पाश में निराश हो दुःख ही पाते हैं । प्रेम की पीड़ा को बन्धन ही समझो । जो इस में फंसा वह दुःखी हुआ । बुद्धिमान् लोग इसे समझ कर संसार से उदासीन हो जाते हैं, और संसार त्यागकर संन्यासी हो जाते हैं, सदा अविनाशी परमात्मा की भक्ति में लग जाते हैं । तेरे शरीर में कोई रोग नहीं दिखाई पड़ता, तो भी तुम्हें कितना कष्ट हो रहा है ? इसलिये हे चतुर सम्वी ! प्रेम को बहुत ही दुःखदायक समझ कर इसे छोड़ो ॥ ८ ॥

कलाप्रवीणोक्त—दोहा।

प्रेम नेम जाने बिना, क्यों निंदत इन आप ।

जानत जाननहार सब, प्रेम प्रौढ परताप ॥ ९ ॥

कलाप्रवीण ने कहा कि, आप प्रेम के नियम को जाने बिना क्यों इसकी निंदा करती हैं ? प्रेम के प्रौढ़ प्रताप को जानने वाले ही जानते हैं ॥ ९ ॥

प्रेम परम सुख दायहै, प्रेमहि तें सब होय ।

नर नारी पशु पक्षिमें, प्रेम बिना नहिं कोय ॥ १० ॥

प्रेम परम सुखदायी है, प्रेम ही से सब कुछ होता है । नर-नारी, पशु-पक्षी में प्रेम के बिना कोई नहीं है ! ॥ १० ॥

प्रेम रहै सब प्राणिमें, जामें जेतो ठौर ।

पै न पिछाने बाहिकों, प्रेम अंश विन और ॥ ११ ॥

सब प्राणियों में जिसमें जितना पात्रत्व है, उतना प्रेम रहता है । परन्तु प्रेम के अंश से रहित उसे दूसरा पहिचान नहीं सकता ॥ ११ ॥

भुंजल महिमा प्रेमको, और न जाने कोय ।

जानत है जगमें सदा, प्रेम अंश जे होय ॥ १२ ॥

प्रेम की महिमा बड़ी मनोहर है, इसे दुनिया में वही जान सकता है जिसमें प्रेम का अंश है, और कोई नहीं जान सकता ॥ १२ ॥

भुंजल महिमा प्रेमकी, वदत वेदमें जेहि ।

सोइ सार कछु कहतहों, सुनो चित्त दे येहि ॥ १३ ॥

प्रेम की मनोहर महिमा जो वेद में कहीं गई है, उसका सार कुछ कहती हूं, उसे चित्त देकर सुनो ॥ १३ ॥

प्रेममहिमाकथन—भुजंगी छंद.

सखी सर्वतें स्नेहकी बान न्यारी, कथेसैं कथी जाय ना है अपारी । लखे कोउ ज्ञाता हृदयमें विचारी, नहीं और जाने सबे देह धारी ॥ प्रसूकी कहा पीरकों बांझ जाने, कहा स्वाद चीनी गधाही पिछाने । कहा ग्रीष्मके ताप कों मीन माने, कहा सूरके तेजकों धूक जाने ॥ कहा कातरं जानिहै युद्ध रीती, कहा दुष्ट जाने दिलें नेक नीती । कहा लासिका रीत जाने सतीकी । कहा शंठ जाने कलाही रतीकी ॥ कहा कूपमेका बडा सिंधु माने, कहा च्वेड जंतू सुधा स्वाद जाने । लगे घावसो घावकी पीर जाने, कहा कायरं कार्य मांही पिछाने ॥ सिता स्वादको मूक ज्यों चीतजाने, तथापी नही जाय बक्रं बखाने । हिये प्रेमकी रीत त्यों प्रेमि जाने, कहा और जाने वहीतें अजाने ॥ चढे चैलपें ज्यों कुसुंभी सुरंगा, नहीं जात धोये कभी नीर गंगा । लसे प्रेमिके अंगमें प्रेम तैसैं, कदापी नहीं न्यून सो होय कैसैं ॥ रखे नीर ग्राही घड़ा पक्व जैसे, ग्रहे नाहि कच्चा कभी नीर तैसे । सहै सोमके पान जे शुद्ध विप्रा, करे और तौ होय उच्छार विप्रा ॥ सहै सिंहनी दूधका बाल वाके, धरे धातुमें तो बहे पार ताके । सहै चित्तमें प्रेम त्यों होय पूरा, ग्रही ना सके अंग जेही अधूरा ॥ भये पूर्णही पिंडमें प्रेम जाके, नहीं और सहात है चित्त ताके । मधू दाख दारौ सुधा स्वाद नीके, लगे प्रेमके पासही

सोइ फीके ॥ नही पंडितो प्रेमको रूप पावे, सिखाये नही चित्तमें सोइ आवे ।
मिले शोधतें शास्त्रमें प्रेम नाहीं, रहे प्रेमअंशी तनूमें सदाही ॥ जबे पिंडमें प्रेम
प्रौढा प्रकाशे, तबै लोककी लाज औ नेम नाशे । महा मोदही प्रेमको प्रेमि
जाने, करे कोउ निंदा बहीते अजाने ॥ १४ ॥

हे सखी ! प्रेम की बात सबसे न्यायी है । यह कहने से कही नहीं जा
सकती, अपार है । कोई जानने वाला ही हृदय में विचार कर देख सकता है,
याकी और देहधारी जन नहीं जान सकते । बांफ खी प्रसव की पीर को क्या जाने ?
गधा चीनी के स्वाद को क्या जाने ? मछली को ग्रीष्म के ताप का क्या पता ?
उल्लूक (जो आंधकार में ही पड़ा रहता है) सूर्य के तेज को क्या जाने ?
कायर पुरुष युद्ध की रीति को क्या जाने ? दुष्ट पुरुष को नेकनीयती का क्या
पता ? व्यभिचारिणी को सती की रीति का क्या गुमान ? नपुंसक पुरुष रतिकला
को क्या जाने ? कूप का मेंडक समुद्र का क्या अनुभव कर सकता है ? विष
का कीड़ा अमृत का स्वाद क्या जाने ? जिसके घाव लगे, वही घाव की पीर
जान सकता है, कायर को उमका क्या पता लगे ? मिश्री के स्वाद को जिस
प्रकार गंगा मन में जानता है, परन्तु मुंह से कह नहीं सकता, इसी प्रकार
प्रेमी प्रेम की रीति को हृदय में जानता है, अनजान उसे क्या जान सकता है ?
जिस प्रकार कुसुम्बा रंग चढ़े हुए वस्त्र को चाहे कितना ही गंगा के ही जल में
क्यों न धोला, पर फिर भी रंग नहीं छूटता, उसी प्रकार प्रेमी पर से प्रेम का रंग
किसी प्रकार भी न्यून नहीं होता । पक्के घड़े में ही पानी ठहर सकता है, कच्चे
घड़े में पानी नहीं रक्खा जा सकता । मोमपान को शुद्ध विप्र ही सहन कर
सकता है, अन्य कोई पान करे तो उसी समय बमन हो जाय । सिंहनी
के दूध को उसका बच्चा ही पी सकता है, यदि किसी अन्य धातु-पात्र में
रक्खें तो फोड़ निकलता है । इसी प्रकार प्रेम को वही धारण कर सकता है,
जो पूरा हो, जो अधूरा हो, वह उसे ग्रहण नहीं कर सकता । जिसके पिंड
में प्रेम भरपूर हो रहा हो, उसे और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती । मधु,
दाख तथा अन्य अमृत तुल्य सुस्वादु पदार्थ प्रेम के सामने फीके लगते हैं ।

प्रेम के रूप को पंडित नहीं जान सकता । वह सिखाने में नहीं सिखाया जा सकता । शास्त्रों में ढूंढने से भी वह नहीं मिल सकता । जिसके शरीर में प्रेम का अंश है, वही पा सकता है । जब हृदय में प्रेम का प्रौढ़ प्रकाश होता है, तब लोक-लाज और नियम का वहां नाश हो जाता है । प्रेम के महा आनन्द को प्रेमी ही जान सकता है, इसीलिये जो अनजान हैं, वे उसकी निंदा करते हैं ॥ १४ ॥

दोहा—प्रेम पुनीत पारस मनि, चाहत हे सब कोप ।

पावत पूरव पून्यते, प्रेम अंश जे होय ॥ १५ ॥

पवित्र-प्रेमरूपी पारसमणि की सब ही चाहना करते हैं, परन्तु जिसमें प्रेम का अंश हो, वही पूर्व पुण्य वाले उसे प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥

पुहमी पर प्रेमी प्रगट, अब लों भये अनेक ।

वामेंसे बरनी विमल, आज कहीं कछु एक ॥ १६ ॥

अब तक पृथ्वी पर अनेक प्रेमी प्रकट हुए हैं, उनमें में कुछ एक का विमल वर्णन मैं आज करती हूं ॥ १६ ॥

प्रेमीनामकथन (भाविक प्रेम वर्णन)—पादाकुलक छंद.

आदि अनेक भये अनुरागी, सिद्ध समाज महापुनि त्यागी । कष्ट सही तप आदिक कायें, प्रेम धरी प्रभुके पद धायें ॥ प्रेमी महा प्रह्लाद कहाये, पूरन प्रेम प्रभूपर लाये । कष्ट किते निज तनुमें पाये, तौभि तजे नहिं हरि मन भाये ॥ प्रेम प्रकाश भयो ध्रुव अंगा, त्यागि सबे ग्रह मातरु संग । जाई बने तप किये अभंगा, तौ मन भाय मिले हरि चंगा ॥ प्रेम पुनीत धरी व्रज बाला, त्यागि तनू गुरु लाज विशाला । आनंद आप धरी अति अंगे, जायके रास रमे हरि संगे ॥ उषा रति अनिरुद्धपै लाइ, यत्न करी निज पास बुलाइ । मंजुल मोद धरी मनमाये, वाके संगहि व्याह बनाये ॥ शकुंतलापे छोह धरीकें, दिलाहि दुष्यंते लियो हरीकें । मोह धरी मन मालविकापे, अभिमित्र भो आतुर अपे ॥ उरवशी अवलोकी कायें, प्रेम पुरुषा मनमें लायें । वत्सराज बड प्रेमी कहाये, वासवदत्तापे रति लाये ॥ १७ ॥

पूर्वकाल में सिद्ध-समाज में बड़े २ मुनि और त्यागी, अनेक अनुरागी हो गये हैं, जिन्होंने शरीर से तप आदिक अनेक कष्ट उठाये, परन्तु प्रेम के साथ प्रभु का स्मरण किया । प्रह्लाद महाप्रेमी कहे गये हैं, पूरण भक्त ने प्रभु पर प्रेम किया और अनेक कष्ट उठाये, परन्तु तो भी प्रभु-भक्ति को नहीं छोड़ा । ध्रुव के हृदय में प्रेम का प्रकाश हुआ, उसने घर, माता-पिता, संगी सब छोड़ वन में जाकर तप किया, तो भगवान् को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ । व्रज-बालाओं ने पुनीत प्रेम धारण किया, गुरुजनों की महान् लोक-लज्जा छोड़ दी, और अति आनन्द में विभोर हो भगवान् के साथ रास-क्रीड़ा की । उषा ने अनिरुद्ध पर प्रेम किया, और यन्न करके उमे अपने पास बुलाया । मन में अति प्रसन्नता धारण कर उसके साथ व्याह किया । शकुंतला ने प्रेम के वशीभूत हो दुष्यन्तराज को वरण किया । मालविका ने मन में मोहित हो अभिमित्र को अपनी ओर आकर्षित किया । उर्वशी को देखकर राजा पुरुरवा उस पर मोहित हुआ । इसी प्रकार राजा वत्सराज वासवदत्ता पर प्रेम में मुग्ध हुए ॥ १७ ॥

दोहा—ऐसे अति गिरवानपे, प्रेमी प्रतन कहाय ।

आधुनिक अब कहत हों, प्राकृतमें जिहि गाय ॥ १८ ॥

इस प्रकार संस्कृत के ग्रन्थों में अनेक पुरातन प्रेमियों की कथाये हैं, अब मैं आधुनिक प्रेमियों की कथा जो प्राकृत ग्रन्थों में वर्णित हैं, कहती हूँ ॥ १८ ॥

पादाकुलक-छंद.

मोह मधूपर मालति लाई, प्रेम प्रकाश कियो सुखदाई । रांझा हीर दिगमें जानो, प्रगटे पूरन प्रेम प्रमानो ॥ रंगेरजिनी राग धरीके, आलमको मन लियो हरीके । काम कंदला माधव माई, प्रेम परम निज उरमें लाई ॥ छेल बटाउ मोहिना रानी, प्रीति परस्पर वाने ठानी । म्होज दीन महताब क-हीजे, प्रेम परम वो अंग लहीजे ॥ पुष्पसेनपे प्रेम सर्जीके, पद्मावती कुलकानि तजीके । गुप्त व्याह गांधर्व बनाई, मोद महा मनहीमें पाई ॥ मोह

मारुपें ढोला लाया, चढी ऊंट मिलनेकों धाया । अमर नागरपिं रति लाई,
चंपा चित रहे हरषाई ॥ छेल भरा रहिकों चित चाई, मोह मोमनां वापर
लाई । सदेवन्त शुभ राय कहाये, छोह सावलींगापर लाये ॥ लेलीपें रति म-
जनू लाई, रहे सदा निज मन हरषाई । प्रेम यूसफपर लाई जुलेखां,
जैमें अचल नमे कभि देखा ॥ छोह शिरिन फरहाद धरावे, सो सब
जगमें छोह सुहावे । ताजलमूल्क महामन माये, गुलबंकावलपें रति
लाये ॥ १६ ॥

मालती ने माधव के ऊपर मुग्ध होकर सुखदायक प्रेम का प्रकाश किया,
हीरा और रांभा के हृदय में पूर्ण प्रेम प्रकट हुआ, जिसे सब कोई जानते हैं ।
रंगरेजिन ने प्रेम करके आलम कविवर का मन हर लिया, कामकंदला नायिका ने
अपने मन में माधवानल पर अखंड प्रेम लगाया, तथा छैल बटाऊ और मोहिना
राणी जो जगत् में प्रख्यात हैं, उन्होंने परस्पर प्रीति की । म्होजदीन और
महताब जो प्रख्यात हैं, उन्होंने एक दूसरे पर परम प्रेम किया । पुष्पसेन पर
प्रेम करके पद्मावती रानी ने अपने कुल की लाज व मर्यादा त्याग कर उनके साथ
माता पिता से छिपकर गान्धर्व विवाह करके प्रसन्नता प्राप्त की । मारु के ऊपर मुग्ध
होकर ढोला ऊंट पर चढ़ मिलने को दौड़ा आया । अमर नागरानी पर प्रेम
लगाकर चम्पा मन में प्रसन्न हुआ । छैल भरा को चित में चाहकर मोमना रानी
उस पर मुग्ध हुई । सदेवन्त जो चतुर राजा कहा गया है, वह सावलींगा नामक
वणिक पुत्रीपर मुग्ध हुआ, लेली पर प्रेम करके मजनू हृदय में सदा प्रसन्न रहा,
इसी प्रकार यूसुफ पर जुलेखां ने ऐसा अचल प्रेम किया जैसा मैंने कभी देखा
नहीं । शिरी के साथ फरहाद ने प्रेम किया जो सब जग में शोभित है, और
ऐसे ही ताजल मुल्क ने गुलबंकावलि पर प्रेम किया ॥ १६ ॥

दोहा.

प्रथम प्रेम भाविक कहे, मतिसे मानव देह ।

चारु स्वाभाविक अब कहो, पशु पक्षीमें जेह ॥ २० ॥

इस प्रकार मैंने अपनी बुद्धि से मनुष्य शरीर के भाविक प्रेम का वर्णन किया। पशु-पक्षियों में जो सुन्दर और स्वाभाविक प्रेम है, अब मैं उसका वर्णन करती हूँ ॥ २० ॥

स्वभाविक-प्रेमवर्णन, तोटक-छंद.

पशुपंखि सबे पुनि प्रेम धरे, मन भाय मिले प्रकाश करे । मृग राग धरे
अति रागनपें, गज छोह करे करिनीतनपें ॥ मुरवा मन मोद धरे घनपें,
अनुराग धरे अलि कंजनपें । चित चातुक स्वातिकें बूंद चहे, पुनि हारिल
काठपें प्रेम गहे ॥ शशिपें अति छोह चकोर धरे, रति लाइ पतंग प्रदीप
जरे । जिय जेरिपें चाह जुराफ सजे, बिछुरे बपुनैं तव प्रांन तजे ॥ चक्रवा
रविपें अति राग धरे, नहि देखि निशामें पुकार करे । पिक प्रेम धरे रितु-
राजनपें, अहि बास चहे तरु चंदनपें ॥ शितिपक्ष सदा सरमान चहे, मनि-
मांहि मरोह भुजंग गहे । रति स्वातिकें बूंदपें छीप लहे, तव ऊपर आइके
आप गहे ॥ जलपें भ्रख प्यार पुनीत धरे, बिछुरे बपु तौ मुरझाइ मरे । मधुपें
मधुमाक्षिको मोह धरे, हरि कोउ लिये तव खेद करे ॥ मन मेंडक मोह
धरी घनमें, अति आप उमंगि उठे तनमें । मलिनी शिशुपें अति छोह धरे,
तनुस्वाय तले नहि त्याग करे ॥ मुरलीपर मोह भुजंग धरे, सुनि नाद श्रवे
पुनि केद परे । द्रदपा नहि खेद हियामें धरे, अनुरागिके लच्छन येहि
खरे ॥ २१ ॥

पशु-पक्षी सभी प्रेम धारण करते हैं, और जब उनका मन मिलता है तब
उसका प्रकाश करते हैं । मृग रागनी पर अति अनुराग करता है, हाथी हथिनी पर
सुगंध है, मोर का मन बादल पर आसक्त है, और भ्रमर कमल पर अनुरक्त है ।
चातक-चित्त स्वाति बूंद पर अनुराग करता है, हारिल पक्षी काठ में प्रेम रखता है ।
चकोर चन्द्रमा में अति प्रेम करता है, और पतंगा दीपक के प्रेम में जलता है ।
जुराफ की जोड़ी का ऐसा प्रेम है कि एक का वियोग होते ही दूसरा प्राण त्याग देता
है । चक्रवाक का मूर्ख पर प्रेम अटूट है, रात में उसे न देखकर चिल्लाया करता है ।
पिक का प्रेम बसंत ऋतु पर है । सर्प चन्दन वृक्ष पर लिपटा रहना चाहता है ।

हंस सदा मान-सरोवर चाहता है सर्प सदा मणि पर आसक्त रहता है । स्वाति बृन्द पर सीप की सदा रति रहती है, जो कि ऊपर आकर उसे ग्रहण करती है । पानी के साथ मछली का पवित्र प्रेम है, जिससे वियोग होते ही वह मुरझा कर मर जाती है । मधुमक्षिका का स्नेह मधु पर इतना है कि यदि कोई उसे (मधु का) ले लेता है, तो वह अति खिन्न होती है । दादुर का मन मेघ में ऐसा लगता है कि उसे देखकर प्रफुल्लित हो उठता है । बिच्छू का अपने बच्चों पर कैसा प्यार है कि वह उन्हें खा डालता है, परन्तु उनका त्याग नहीं करता । मुरलीपर भुजंग (सर्प) का कैसा प्रेम है कि वह उस पर सुगंध होकर बंधन में फंसता है, परन्तु फिर भी हृदय में दुःखी नहीं होता । अनुराग के ये ही सबे लक्षण हैं ॥ २१ ॥

दोहा—चारु स्वभाविक प्रेममें, जड चैतन द्वै भेद ।

चैतन कहि अब कहतहों, जड प्रेमी विन खेद ॥ २२ ॥

स्वाभाविक, सुन्दर प्रेम में जो जड़ और चेतन दो भेद हैं, उसमें से चैतन्य का वर्णन किया, अब जड़ के प्रेम का वर्णन करती हूं ॥ २२ ॥

जडप्रेमी, तोटक—छंद.

जडमें पुनि प्रेम प्रभाय रहे, मनभाय मिले तब मोद लहे । गिथ चुंबक लोह मरोह धरे, दुर देखत दौरिकें भेटि परें ॥ पवमानमें प्रेम सुगंध गही, इन साथ सबे दिशि जात बही । सविता पर छोह सरोज धरे, लखि नीर प्रफुल्लित होय खरे ॥ शशिपें रति सागर धारतहै, लखि कौमुदि नीर उछा-रतहै । प्रमदा पर पागद प्रेम लसे, इन पेखत पोछैं उमंडि धसे ॥ घनसार मरीचपैं मोह धरी, निशि द्योस रखे निज साथि करी । पुनि कोउ दिना नहि पास लखे, उडि जाय तबे विन देखैं सरे ॥ भृगजापर अम्बर आश धरे, धुमरास लुके पर जाइ ठरे । शशिकों कुइ चाहत छोह धरी, लखि जोन्ह विरुशत पुष्प खरी ॥ पय पानिपें पूरन प्रेम रखे, दहतैं दवमें इनकों जुलखे । उफनाइ तबे तन आगि धरे, निज मित्रकी आगिल आप जरे ॥

शुकता नरमादि कहावतहै, यह आपसमें रति लावत है । अलगा इनकों काभि कोउ करें, पलमें मिल जाय सुदोष खरें ॥ ध्रुव मच्छहि यंत्र रहे घरमें, अनुराग रखे यह उत्तरमें । मनमानि दर्शे उलहाय लखे, तदपी दिशि उत्तर आस्य रखे ॥ शशिपें शशिकांत मरोह धरे, पित्रले लखि कीरन आप खुरे । पुनि त्यों सुरकांतहि सूर्य चहे, लखि कीरनकों निज अंग दहे ॥ हमि सूर्य-मुखी सुर चाहतहै, नित सूरजपें मुख राखतहै । शिखिपें रति मोरशिला सुलहे, प्रतिबिंब शिखी इक आप गहे ॥ २३ ॥

जड़ में भी प्रेम का प्रभाव रहता है, जब उनका मन मिलता है तो प्रमत्तता होती है । देखो लोह और चुंबक में परस्पर प्रेम है, जिससे एक दूसरे को देखते ही दौड़ कर मिलते हैं । गंध का पवन के साथ प्रेम है, जो उसके साथ दिशा विदिशा में चलती है । सूर्य पर कमल का प्रेम है, जो उसे देखते ही खिल जाता है । चन्द्रमा पर समुद्र का प्रेम है जो चंद्रिका को देखते ही पानी उछालने लगता है । प्रमदा (युवा स्त्री) पर पारद का प्रेम है, जिसे देखते ही उसकी ओर दौड़ता है । कपूर की काली मिर्च पर आसक्ति है, जो उसे सदा अपने साथ रखता है, यदि कभी उसका साथ न हो तो उड़ जाता है । कस्तूरी पर अम्बर का प्रेम है, जो उसका धूवां कस्तूरी के पास जा ठहरता है । चन्द्रमा पर कमलिनी का प्रेम है, जो उसका प्रकाश (चंद्रिका को) देखकर प्रफुल्लित होती है । दूध पानी पर पूर्ण प्रेम रखता है, जो इसे (जल को) अग्नि पर जलते देखे तो उफन कर खुद आग में कूदता है और मित्र के पहिले खुद जलता है । मोती में नर मादी कहाते हैं, जो आपस में अति प्रेम करते हैं, यदि कभी कोई इन्हें अलग २ करदे तो क्षणभर में ये पुनः दोनों मिल जाते हैं । ध्रुवयंत्र जो घर में रहता है उसका अनुराग उत्तर दिशा में होता है, उसकी सुई को चाहे जिस दिशा में किराड्ये पर वह उत्तर को ही रहेगी । चन्द्रमा पर चन्द्रकान्त मणि का प्रेम है, जो उसकी किरणों को देखते ही पिघलने लगती है । इसी प्रकार सूर्यकान्तमणि सूर्य को चाहती है और उसकी किरणों को पाते ही जलने लगती है । ऐसे ही सूर्यमुखी भी सूर्य को चाहता है, जो हमेशा

सूर्य की ही ओर मुख रखता है । मोरशिला की आसक्ति मोर पर है जो केवल उसी का प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है, अन्य किसी का नहीं ॥ २३ ॥

दोहा—प्रेम धरत पुनि पेड कित, तरुनीके तनुमांय ।

दोहद वाकों कहतहैं, सो तुम देइ सुनाय ॥ २४ ॥

कितने ही वृक्ष भी तरुणी के शरीर में प्रेम रखते हैं, उन्हें दोहद कहते हैं, वह मैं तुम्हें सुनाती हूँ ॥ २४ ॥

दोहदवृक्षवर्नन, तोटक—छंद.

तियपें कितने तरु प्रेम गहे, उनकों पुनि दोहद सर्व कहे । यह आज अली तुम पास कहों, सुनि सोय सबे मनमांहि गहो ॥ परसे तिय जाय प्रियंगु तनैं, तब होय प्रफुल्लित सोय घने । पुनि बालमुखी जब शोक करें, तब मौल सरी विकसात खरें ॥ प्रमदा पदघात अशोक लहे, तब होय प्रफुल्लित तुर्त बहे । तिलकं परतीय लखे जबही, तत्काल विकाश बने तबही ॥ तिय कोल अरू बक कोहि करे, तब होय प्रफुल्लित होय खरें । सुनि नर्म वचो तियके तनमें, प्रफुल्लित मँदार बने छनमें ॥ पटु कोमल हास लखी तियके, विलसे बहु चंपक फुल्लियकें । तरुनी मुख स्वाससैं अंब फले, विकसैं सुनि गीत नमेरु भले ॥ पुनि नाच लखे तियके जबही, प्रफुल्लित कनैर बने तबही । इभि पेड प्रियापर प्रेम गहे, तब क्यों हम मानव नांहि लहे ॥ २५ ॥

कितने ही वृक्ष स्त्री पर प्रेम करते हैं, उन्हें सब दोहद कहते हैं । हे सखी, वह मैं आज तुमसे कहती हूँ, उसे सुनकर मन में विचारो । जब प्रियंगु किसी नवयौवना के शरीर का स्पर्श करता है तो वह बहुत प्रफुल्लित होता है । जब कोई बाला मौलश्री पर कुल्ला करती है तो वह खूब खिलता है । अशोक वृक्ष प्रमदा के पादाघात से तुरन्त अति प्रफुल्लित होता है । जब तिलक वृक्ष किसी सुन्दरी को देखता है तो तत्काल विकास को प्राप्त होता है । जब कोई स्त्री वकुल वृक्ष का आलिंगन करती है तो वह खरोखर प्रफुल्लित होता है । प्रमदा के मधुर भाषण को सुनकर मंदार वृक्ष क्षण-भरमें प्रफुल्लित हो जाता है । नव-

यौवना के कोमल हास्य को देखकर चंपक बहुतही प्रफुल्लित होता है। तरुणी के मुख-रवास से आम फलता है, तथा गीत सुनकर नभेरु विकसित होता है। इसी प्रकार जब कनेर बालाओं के नृत्य को देखता है तो बहुतही प्रफुल्लित होता है। जब वृत्त इस प्रकार स्त्रियों पर प्रेम करते हैं तो फिर हम मनुष्य प्रेम से कैसे अलग रह सकते हैं ? ॥ २५ ॥

दोहा—ऐसें जड चैतन सभे, प्रेम रखे मनमांय ।

तो हम पुनीत प्रेमिजन, क्यों न रखे निज काय ॥ २६ ॥

इस प्रकार जड़ और चेतन जब सभी प्रेम रखते हैं, तो फिर हम पवित्र प्रेमी जन अपने शरीर में प्रेम क्यों न रखें ? ॥ २६ ॥

प्रेम प्रगट व्यापे सकल, प्रेम बिना नहि कोय ।

प्रेम धरी निज पिंडमें, चाहतहो तुम मोय ॥ २७ ॥

प्रेम प्रगट होकर सब में व्याप्त हो रहा है, प्रेम के बिना कोई नहीं है। तू भी अपने शरीर में प्रेमही धारण कर मुझे चाहती है ॥ २७ ॥

गाथा—पुनीत प्रेम प्रशंसा, कुसुमावलि प्रति कलाप्रवीण कही ।

षट सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रचिनसागरो लहरं ॥ २८ ॥

कुसुमावलि के प्रति कलाप्रवीण ने पवित्र प्रेम का वर्णन किया, इस सम्बन्ध की प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह छिहत्तरवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ २८ ॥



७७ वीं लहर

दैवप्रतिकूलतैं प्रवीनयोगिनीस्वरूपधारन प्रसंग, कुसुमप्रति प्रवीनोक्त—दोहा.

जिहि जन जनमें जगतमें, सो दंपति रहि संग ।

विलसत रातो दिवसहे, उमंग धरी निज अंग ॥ १ ॥

जो मनुष्य संसार में उत्पन्न हुए हैं, वे दम्पति के साथ रहकर रात-दिन विलास करते हैं और प्रफुल्लित रहते हैं ॥ १ ॥

दोहा.

यह अवलोकि अंगमें, बहु विधि होत विचार ।

विषम विरह वपुमें सदा, क्यों दीने करतार ॥ २ ॥

यह देखकर मेरे मन में अनेक प्रकार से विचार होता है कि, विधाता ने मेरे शरीर में विरह व्यथा क्यों दी ? ॥ २ ॥

कहा कर्मके पापतैं, आधि सहत हम आप ।

सो मिटाव सखि वेगतैं, जटिल जपाइ जाप ॥ ३ ॥

किस कर्म के पाप से मैं यह आधि (मानसिक-कष्ट) भोग रही हूँ ? इसे हे सखी ! जटाधारी भगवान् शङ्कर के जाप से किसी प्रकार दूर कर ॥ ३ ॥

प्रवीन-प्रति कुसुमोक्त—दोहा.

जाप जपेसैं ना मिटे, होनहार सो होय ।

धैर्य धरी निज अंगमें, सहन करो सखि सोय ॥ ४ ॥

कुसुमावलि ने कहा कि, हे सखी ! जो होनहार होती है वह होकर ही रहती है, जाप से भिड़ नहीं सकती । इसलिये धैर्य धारण कर उसे सहन करो, और कोई उपाय नहीं ॥ ४ ॥

दोहा-दैव जबै प्रतिकूल हो, त्यों लों कछु नहि होहि ।

अनुकूल हे येष्ट तब, वलित होगे तोहि ॥ ५ ॥

जब तक दैव प्रतिकूल है तब तक कुछ नहीं हो सकता, जब दैव अनुकूल होगा तब तेरे मन की इच्छा पूरी होगी ॥ ५ ॥

यातें अनुकूल दैवके, समय सु राह निहार ।

भजन करो भगवानके, धीरज दिलमें धार ॥ ६ ॥

इसलिये दैव की अनुकूलता की, भगवान का भजन करते हुए और हृदय में धीरज धारण कर, प्रतीक्षा करो ॥ ६ ॥

पेखी प्रतिकूल दैवकों, कामिओं करत सहाय ।

तौभी सुख पावे नहीं, सो अब देहु बताय ॥ ७ ॥

दैव को प्रतिकूल देखते हुए यदि कोई महायता करता है, तो भी उससे दुखिया को सुख नहीं मिलता, उसे अब बताती हूं ॥ ७ ॥

एकराजा और दीनका द्रष्टांत-विषमालंकार-तोटक-छंद.

लखि दीन दया धरि भूप हिये, धन लाखनके शुभ हार दिये । वह व्याल अमें हरि चीन्ह गये, दुगने दुखिये तब दीन भये ॥ परि बात यह नृप कान जवे, करुना कर पास बुलाइ तवे । दुख टारनकों धरि हर्ष हिये, मुदरी मह मौलनकी जुदिये ॥ यह फाटिन बस्त्रपें बांधि तहां, उतरे अपगा ग्रह आन जहां । निगली बिचमें वह मीन गए, तिगुने दुखिये तब दीन भये ॥ नृपकों यह बातकि जान परी, उनकों तब पास बुलाय फिरी । पुनि कंचन इंट अनूप दिये, वह चुल्लि समीप डुराय लिये ॥ लखि सोय पडोमिन चोर गइ, पुनि दीन दशा आलि ऐसि भइ । इन रीति तुटे नृप साक्ष करे, पर दैव रुटे नहि काज सरे ॥ ८ ॥

किसी निर्धन को देखकर एक राजा ने हृदय में दयाद्रोह हो लाखों के मूल्य

का एक हार दिया । उसे सांप समझकर चील उठा ले गई, जिससे उस निर्धन को और भी दुगुना दुःख प्राप्त हुआ । परन्तु वह बात जब राजा ने सुनी तो करुणा करके उसे बुलाया और उसका दुःख मिटाने के लिए प्रसन्न होकर अपनी बहुमूल्य अंगूठी उसे दी । उसे उसने अपने फटे वस्त्रों में बांध लिया, और लौटते हुए नदी पार करने लगा तो अंगूठी पानी में गिर पड़ी, और उसे मछली निगल गई । अब वह निर्धन तिगुना दुःखी हुआ । जब राजा को यह बात मालूम हुई तो उसे उसने फिर अपने पास बुलाया और सोने की अनुपम ईंटें उसे दीं, उन्हें उसने अपने घर पर चूल्हे के पास छिपा दिया । उन्हें उसके पड़ोसी ने चुरा लिया, और उसकी फिर वही दीन दशा हो गई । इस प्रकार उसकी राजा ने सहायता की, परन्तु दैव के रूठे रहने से कुछ भी न हो सका ॥ ८ ॥

दोहा.

अनुकूल वहे देव तब, साक्ष बिना सुख पाय ।

गत वस्तु वेगें मिले, होय सब मन भाय ॥ ६ ॥

जब देव अनुकूल होता है, तो बिना सहायता के भी सुख मिलता है ।
खोई हुई वस्तु मिल जाती है और सब मन चाहा होता है ॥ ६ ॥

दीनका द्रष्टांत, प्रहर्षनालंकार—तोटक-छंद.

जब देव दया करि तुष्ट भये, तब दीन उरें यह तर्क भये । यह आंगन दीरघ द्रुम खड़े, इनमें अति ईधन भात बड़े ॥ वह बेचनतैं कछु दाम मिले, यह बात विचारिके आप दिले । छिदि ग्राहि चढे तरुणें जबही, स्वर्ग नी-डमें हार लखे तबही ॥ लहि हार हियामंहि हर्ष धरी, दुमतें द्रुत सोय अथो उतरी । अति भक्षनकों धरि भाव हिये, दमरी दशकी पुनि मीन लिये ॥ वह चारत पाय महा मुंदरी, दियथी नृपने जिहि दान करी । तब दंपति बैठि विचार करे, पुनि आपुसमें मन हर्ष घरे ॥ यह पेखि पडोसिन भीति गही, हम चोरि किये वह जान लही । इमि मानि उरे कर ईट लिये, जहि दीनके

हाथमें सोप दिये ॥ यह रीत मिले धन माल सबे, जब तुष्ट भये वपु दैव
तबे । वह बात विचारि सखी मनमें, शुभ दिष्टकी राह लखो तनमें ॥ १० ॥

पूर्वकथित निर्धन के ही जब दैव अनुकूल हुआ, तो उसके मन में यह विचार आया कि, आंगन में जो वृक्ष है उसमें बहुतसा सूखा भाग है, उसे काट कर बेचने से कुछ दाम मिलेंगे । ऐसा सोच कर वह वृक्ष पर चढ़ा, वहाँ पत्ती के घोंसले में हार दिखाई पड़ा । उसे लेकर मन में अति प्रसन्न हुआ, और वृक्ष पर से उतर कर प्रसन्नतापूर्वक दस दमड़ी की मछली खाने के लिए माल ली । उसे चौरा तो उसके पेट में वह बहुमूल्य मुन्दरी जिसे कि राजा ने उसे दिखा था मिल गई । तब स्त्री पुरुष बैठकर विचारने लगे और मन में बहुत प्रसुद्धि हुए । यह देखकर पड़ोसिन को डर उत्पन्न हुआ कि, मैंने जो सोने की ईंटें चुराई हैं वह भेद इन्हें मालूम हो गया है, ऐसा विचार कर वे ईंटें हाथ में लेजाकर उसे सौंप दीं । इस प्रकार सब गया हुआ धन-माल उसे प्राप्त हो गया और वे बहुत प्रसन्न हुए । हे सखी ! इसे मन में विचार कर शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करो ॥ १० ॥

दोहा.

दैव अनुकूल बिन कदी, चाही चित्ते संग ।

जो जावेगी साथतो, पीडा पैहो अंग ॥ ११ ॥

अगर दैव की अनुकूलता के बिना मन में सागर के संग की इच्छा करके जाओगी, तो शरीर से अनेक कष्ट पाओगी ॥ ११ ॥

द्रष्टांतालंकार-सवैया.

दैव प्रतीकूलमें सति सीतहि, आप गई बन राम सँगाते ।

वा दुख दारुन देह सहे पुनि, रावन लेइ गयो रचि घाते ।

त्यां दमयंति गइ पति साथसों, त्यागि अमे नलने मध राते ।

यों अनुकूलहि दैव बिना तुम, जावनि तो दुख पावनि गाते ॥ १२ ॥

दैव के प्रतिकूल समय में सती सीता अपने पति भगवान् श्री रामचन्द्र के साथ गई, वहां उसे अनेक कष्ट उठाने पड़े, और रावण द्वारा चुराई गई। इसी प्रकार दमयंती अपने पति नल के साथ गई, जिसे राजा नल ने किसी भ्रान्तिवश मार्ग में ही त्याग दिया। हम तरह यदि तुम भी दैव के अनुकूल हुए बिना जाओगी तो शरीर से अनेक कष्ट उठाओगी ॥ १२ ॥

दोहा—मात पिता परिवार पुनि, स्वामी सुहृद सोय ।

दैव रुठे तब देहमें, काम न आवे कोय ॥ १३ ॥

दैव के रुठने पर माता, पिता, परिवार, स्वामी और मित्र कोई काम नहीं आते ॥ १३ ॥

समुद्र का द्रष्टांत—कवित्त.

सुधातेँ सुरोंको अरु, रमातेँ रमेश जूकों, वेदडतेँ वासवको, आनंद उपायेहे । चंद्रतेँ श्रीकंठ अरु, महीकों मर्यादाहितेँ, उदरेँ मैनाक आदि, नगकों निभायेहे । इरातेँ असुर अरु, वाजीतेँ विभाकरकों, मुक्तासेँ मानव-को, मुदित बनायेहे । ऐसे अपधिकों पान, कुंभजने किये तब, रुठे लखि दैव कोउ, कुमकेँ न आयेहे ॥ १४ ॥

समुद्र ने अमृत से देवताओं को, लक्ष्मी से विष्णु भगवान् को, ऐरावत हाथी से इन्द्र को प्रसन्न किया था। चन्द्रमा से शंकर भगवान् को, मर्यादा से पृथ्वी को, तथा मैनाक आदि पर्वतों को अपने उदर में रखकर सन्तुष्ट किया। मदिरा से दैत्यों को, उच्चैःश्रवा घोड़ा से सूर्य को, तथा मोतियों से मनुष्यों को प्रसन्न किया था, परन्तु जब दैव रुठा और अगस्त्य ऋषि ने उसका पान किया तो कोई भी सहायता न कर सका ॥ १४ ॥

दोहा.

यह मुनकेँ सुकुमारिका, उरमें बनी उदास ।

सोचीकेँ छिन येकही, बोली बोल प्रकाश ॥ १५ ॥

यह सुनकर सुकुमारी प्रवीण हृदय में उदास हुई, और क्षणभर सोचकर प्रकाशमें बोली ॥ १५ ॥

कुसुम-प्रति प्रवीनोक्त, चरनाकुल-छंद.

दैव प्रतिकूल भये हमारे, यह वचन सखि सत्य तिहारे । जो प्रतिकूल न होय हमारे, तो भगुवे क्यों सागर धारे ॥ जबतें रति सागरतें ठानी, तबतें ईरषा इननैं आनी । कोउ दिना कमि होय सुखेसा, तो डारे विव विव न विशेषा ॥ तौभी तोष धरी हम अंगे, काल गुमावत पत्र प्रसंगे । सो चित्तमें नहि दैव सुहाये, सागरको संन्यासि बनाये ॥ यातें उर संतोष न धारे, पुनि परसों परदेश निकारे । वाते वह उरमें हम ठाई, दैव प्रतिकूलहै दुख-दाई ॥ १६ ॥

हे सखी ! यह तुम्हारी बात सत्य है कि, दैव हमारे प्रतिकूल है । यदि दैव प्रतिकूल न होता, तो महाराज सागर भगवे वख्न क्यों धारण करते ? जब से मैंने सागरके साथ प्रेम किया है, तभी से दैव ने मेरे साथ ईर्षा कर रखी है । यदि किसी दिन किसी प्रकार मिलाप होता है, तो उस में अनेक विघ्न डालता है । तो भी मैं सन्तोष रखकर पत्र के प्रसंग से समय बिता रही हूं । वह भी दैव न देख सका, और सागर को संन्यासी बना दिया । इतने पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ, और परमों उन्हें परदेश निकाल दिया । इसलिए मुझे हृदय में निश्चय होता है कि, अभी दैव प्रतिकूल और दुखदायी है ॥ १६ ॥

दोहा-दैव प्रतिकूल देखकें, सागर भो संन्यासि ।

मैं मंदिर में मोदतें, क्यों चाहों सुखराशि ॥ १७ ॥

दैव को प्रतिकूल देखकर सागर संन्यासी होगए, तो मैं अब राजमंदिर में रहकर कैसे सुख की इच्छा रखूं ? ॥ १७ ॥

कवित्त.

तजि राज काज पुनि, महाराज मेरे लिये, सागर संन्यासी बनी, भस्म अंग धारीके । करमें कमंडलु ले, भगवे बनाई भेष, विचरे विदेश आस्य,

आलोक उचारीके । तैसैं ताजि लाज आज, योगिनी बनिके अंग, विभूति लगाउं चारु, चैलको उतारीके । छितिपैं शयन करूं, रटोंगी रैन दिन, सागर सुमंत्र महा, प्रेमखों पसारीके ॥ १८ ॥

मेरे लिए महाराज सागर राजकार्य छोड़कर संन्यासी बने, और अंग पर भस्म धार, हाथ में कमंडलु ले, भगवे वस्त्र धारण कर, अलख जगाते हुए विदेश में भ्रमण को निकल पड़े । उसी प्रकार आज मैं भी लज्जा को छोड़कर योगिनी बन के सुन्दर वस्त्रों को उतार कर अंग पर विभूति लगाऊंगी, पृथ्वी पर शयन करूंगी, और रात-दिन प्रेम का प्रसार कर सागररूपी महामंत्र का जाप करूंगी ॥ १८ ॥

दोहा—यों कहि कलाप्रवीननैं, पागी लेकें पानि ।

करी प्रतिज्ञा प्रेमसैं, बोली सुखतैं बानि ॥ १९ ॥ *

ऐसा कहकर कलाप्रवीण हाथ में जल ले प्रतिज्ञापूर्वक इस प्रकार बोली ॥ १९ ॥

कलाप्रवीन प्रतिज्ञा बर्नेन, लाटानुप्रासालंकार—कवित्त.

आंख न अंजाऊं अरु, चीर न सजाऊं पुनि, रागमें लुभाऊं नहि, दिलें दोषकों गिनी । सौधा न लगाऊं अरु, तांबुल न चाहुं पुनि, बार न बनाऊं कभि, चित्तें सापसों गिनी । बाद्य न बजाऊं अरु, लीला न रचाऊं

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

दोहा.

कर अंजुलि जलकी भरी, नियम लियो तिहि ठाम ।

यह तनसैं संसार सुख, हे सब मोहि हराम ॥

हाथ की अंजुली जल से भरकर वहाँ पर यह व्रत लिया कि—इस शरीर से अब संसार का सुख मेरे लिये हराम है ॥

कामि, भोजन न पाऊं अति, भावें बनि भोगिनी । मेरे लिये आज अलि, छो-
डी सब राजनकों, योगी भये सागरतों, मैं बनूंगी योगिनी ॥ २० ॥

हे बहिन ! आज से मैं न तो आंख में अंजन लगाऊंगी, न वस्त्रों से शरीर को सजाऊंगी, और मन में बुरा समझते हुए राग-रंग में भी न लगूंगी । सुगंधित पदार्थ शरीर पर नहीं लगाऊंगी, पान नहीं खाऊंगी, और चित्त में आप के समान समझते हुए बालों को भी नहीं बनाऊंगी । कोई बाघ नहीं बजाऊंगी, और न कोई लीला ही कराऊंगी, तथा भोगिनी के भाव में वशीभूत होकर अति भोजन भी नहीं करूंगी । हे सखी ! जब सागर ने मेरे लिए सब राज्य छोड़ा और योगी बने, तो मैं भी योगिनी बनूंगी ॥ २० ॥

दोहा-प्रेम धरीकें पिंडमें, और न लाऊं काम ।

या तनमें संसार सुख, सो सब मोहि हराम ॥ २१ ॥

प्रेम धारण कर शरीर में दूसरा कोई काम नहीं लाऊंगी । इस शरीर में जो संसार सुख कहलाता है वह सब मेरे लिए हराम है ॥ २१ ॥

यह तन तजिकें और तन, में पाऊं जिहि ठाम ।

शंकर चाही दीजियो, सोइ सागर स्वाम ॥ २२ ॥ ❀

यह शरीर छोड़ कर कहीं अन्यत्र दूसरा शरीर पाऊं, तो हे शंकर भगवान् ! मुझे चाहकर वही सागर स्वामी देना ॥ २२ ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

यह तन तजिकें ओर तन, फिर पाऊं जिहि ओर ।

सागर स्वामी होहु मुज, यह इच्छु नहिं ओर ॥

यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर जहां कहीं भी पाऊं, वहां सागर मेरे पति हों, बस यही मेरी इच्छा है और कुछ नहीं ॥

दोहा—ऐसे पक्ष प्रवीणने, लीने जब निज तक्ष ।

बानि जाई तब व्योममें, छोड़ सती तुम धन्य ॥ २३ ॥ *

जब इसप्रकार की प्रतिष्ठा कलाप्रवीण ने अपने शरीर के प्रति की, तो आकाशवाणी हुई कि “हे सती ! तेरे प्रेम को धन्य है” ॥ २३ ॥

दोहा—यह लाखि अंग उदास बनि, नीर नेनमें लाय ।

वरजत बहु कुसुमावली, बहु विधि वात बनाय ॥ २४ ॥ †

यह देख कुसुमावलि के नेत्रों में जल आ गया, और वह बहुत उदास हुई, तथा अनेक प्रकार से बातें बनाकर समझाने लगी ॥ २४ ॥

प्रवीणप्रति कुसुमोक्त—पादाकुल-छंद.

क्यों साहस तुम चित्तमें ठाने, बोलत बोल विचार न आने । योगिनी में क्या लाभ पिछाने, पूर्व दशमें दुख क्या जाने ॥ यातें कहूं सुन बात विचारी, जातें है तुम लाभ अपारी । मैं तुम माता पास जाऊं, मर्म खोलके बात जनाऊं ॥ युक्ति अनेक करी इन आगें, चाह धरी समझाऊं रागें । दुहिता दिल तुम रतिमें रंगे, जान लिये हम कोउ प्रसंगे ॥ छोड़ धरे यह सागर

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

गूढ़ बानि आकाश भै, प्रविन लियो जब नेम ।

धन्यहि धन्य प्रवीण सति, पतिपर तेरो प्रेम ॥

जब प्रवीण ने यह व्रत लिया, तो आकाश वाणी हुई कि “हे प्रवीण ! पति पर तेरा ऐसा प्रेम है, इसलिए तुझे धन्य है” ॥

† पाठान्तर इस प्रकार है:—

कुसुमावलि वरजे बहु, नहि मानति इन बात ।

तब सखिसो दिलगीर भै, नेनन नीर बहजात ॥

कुसुमावलि ने बहुत मना किया, परन्तु उसकी बात नहीं मानी । तब वह सखी बहुत दिलगीर हुई और आंखों से आंमू डालने लगी ॥

अंगे, ब्याह करी जो इनके संगे । तो तनमें सुख कुंवरी पावे, दारुन दुख
दिलतोंहि नसावे ॥ योग तजी पुनि भोगिनी वदे, त्याग वृत्तिके करन
यैहे । सो सुनि हर्ष धरी तुम माता, जाइ बतावैगी युग ताता ॥ बाँके उरमें
जो यह ऐहे, तो तुम पूरन सुखको पैहे । प्रेम धरी तुम तातहि अंगे, ब्याह
करें सागर संगे ॥ २५ ॥ *

कुसुमावलि ने प्रवीण से कहा कि, तुम इतना साहस चित्त में क्यों करती हो,
और बिना विचारे क्यों बात करती हो ? योगिनी होने में तुमने क्या लाभ सोचा
है ? पूर्व दशा में (राजकुमारी की दशा में) दुःख क्या जाना ? इसलिये
विचार कर बात कहती हूँ, सुनो, जिससे तुम्हें बहुत लाभ होगा । मैं तुम्हारी
माता के पास जाती हूँ, और सब भेद की बात खोलकर उन्हें बताती हूँ ।

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

चरनाकुल-छंद.

कुसुमावलि मनमें गभराई, बोलि बचन निज शीश नमाई । मत कर
प्रबिन मती शिशुतासी, होवाहि तव पितु मातु उदासी ॥ सत्य उपाय कहूं
में तातें, होवाहि तव इच्छित फल ज्यातें । तव माता प्रति मर्महि खोलूं,
बचन युक्ति बहु करिकें बोलूं ॥ कहूं प्रबिनकी है अति चाह, सागरके संग
करहु विवाह । तातें इनको दुख टरि जैहे, ओर परम आनंदहि पैहे ॥ यह
दुखको कारनहे एही, जोग तजी भोगिनी पद लेही । तव पितुकुं कइही तव
माता, त्यों करही सुनिकें तव ताता ॥ प्रबिन कहे सुन सखी सयानी, ज्ञानत
ही क्यों भई अजानी । रंगरावसों सगपन कीनो, बचन तेहि मुज तातें
दीनो ॥ सो तजि दुसरेसैं परनावे, नहि हम कुलकी रीत कहावे । यह विचार
में मनमें कीनो, तातें कुमारिकाव्रत लीनो ॥ पुनि शिव शापकि ज्ञानति
तुंही, यह भव विजांगि रहनां थुंही । कोन बात मिथ्या यह करही, तव
उपायसैं कहा सुधरही ॥

कुसुमावलि मन में घबड़ा गई और शिर झुका कर बोली, हे प्रवीण ! यह
बालपन की बात मत कर, इससे तेरे माता-पिता उदास होंगे । इसलिये मैं

उनके सामने अनेक युक्तियों के साथ प्रेमपूर्वक समझाऊंगी कि, “आपकी कन्या के चित्त में प्रेम समा गया है, जिसे मैं किसी प्रकार जान गई हूँ। वह सागर के प्रति प्रेम करती है, अतः उनके साथ उसका विवाह करदो, तो राजकुमारी को सुख मिलेगा और उसके मन का महान् कष्ट दूर होगा। वह योग छोड़कर भोगिनी बन जायगी, उसकी त्यागवृत्ति का कारण यही है।” इसे सुनकर तुम्हारी माता प्रसन्न होकर तुम्हारे पिता से जाकर कहेंगी। उनके मन में भी यह बात जम जावेगी, तो तुम्हें पूर्ण सुख मिलेगा। तुम्हारे पिताजी प्रेम में आकर सागर के साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे ॥ २५ ॥

कुसुमप्रति प्रवीनोक्त पादाकुलक-छंद.

सो सुनि बाल वदी मुख बानी, जानतहो तुम बात पुरानी। तदपी क्यों बनि काय अजानी, बोलत मुख तें ऐसी बानी ॥ मो मगनी रंगरावसे कीनी, वागदानमें हमकों दीनी। या उलटाई औरकों देवे, नाक कटा ज्यों गुडकों लेवे ॥ यह नही हम कुलकी रीती, राय बनीकें खेवे नीती। या उरमें हम

सच्चा उपाय तुझसे कहती हूँ, जिससे तुम्हें मनोवांछित फल मिल जायगा। तेरी माता के पास जाकर मैं यह बात युक्तिपूर्वक प्रकट कर दूँ। कहूँ कि, “प्रवीण की बड़ी इच्छा है कि सागर के साथ उसका विवाह हो, इससे उसका दुख दूर होगा और वह परम सुखी होगी, इस दुख का यही कारण है। ऐसा करने से वह योग छोड़ कर भोगिनी बन जायगी”। तब तेरी माता तेरे पिता को यह बात कहेंगी, और तेरे पिता तदनुसार करेंगे। प्रवीण ने कहा, हे सयानी सखी! सुन, तू जानते हुई अनजान कैसे हो रही है? रंगराव के साथ मेरी सगाई हो चुकी है, मेरे पिता ने उन्हें वागदान दे दिया है। अब उसे छोड़ कर दूसरे को विवाहें, ऐसी हमारे कुल की रीति नहीं है। मैंने यही विचार कर कुमारिका-व्रत लिया था। फिर शिवजी के शाप की बात भी तू जानती है, कि ‘इस शरीर में ऐसे वियोगिनी ही रहना है’ उस बात को कौन सिध्दा कर सकता है? और तेरे उपाय से क्या सुधर सकता है? ॥

बात बिचारी, लीने आगें वृत्त कुमारी ॥ शाप शंभुका पुनि मन लाये, वियो-
ग वषु यह जन्म बनाये । यह बिचार करी अंतरंगे, योगिनी आज बनी हम
अंगे ॥ वामें व्यर्थ कहा तुम करिहों, बिधि अंकुषें क्यों लीक धरिहों । यह
बिचार उर अंतर आनी, और बातकों तजो शयानी ॥ २६ ॥

यह सुनकर कलाप्रवीण ने कहा कि, तुम पुरानी बात जानती हो, फिर
भी अनजानसी बनकर ऐसी बात करती हो ? मेरी मंगनी रंगराव के साथ हो
चुकी है, और वाग्दान भी हो चुका है । अब इसे उलटकर और को यदि देवेंगे,
तो पिताजी की नाककटाई होगी । हमारे कुल की यह रीति नहीं है कि,
राजा होकर नीति का त्याग करे । मैंने यही बात हृदय में सोचकर कुमारिका का
व्रत लिया, और शङ्कर के शाप का अन्दर ही स्मरण करके, कि यह जन्म
वियोगयुक्त शरीर का होगा, मैंने योगिनी का रूप लिया है । तुम इसे कैसे
व्यर्थ कर सकती हो ? विधाता के अंक पर तुम लीक कैसे फेर सकती हो ?
हे चतुर सखी ! इस बात का हृदय में सोचकर अन्य उपायों को अब
छोड़ दो ॥ २६ ॥

प्रवीण का योगिनी रूप धारण प्रसंग—दोहा.

कहे प्रवीण कुसुम सुनो, अब तजि लज्जा लोग ।

सुज लिय निधि जोगी भये, मैं पुनि धरिहुं जोग ॥ २७ ॥

प्रवीण ने कहा कि, हे कुसुमावलि ! सुनो, मेरे लिये मेरे पति योगी हो गये,
तो अब लोक-लाज को छोड़कर मैं भी योगिनी बनूंगी ॥ २७ ॥

कवित्त.

तजों दृग अंजनकुं, भ्रगमद मंजनकुं, रंजन शयन सो तो, तजों साप
सो गिनी । दर्पन न देखुं दील, दर्प न धरी हुं कछु, तर्पन न करुं तन, भइ
स्वाद भोगिनी । जानिकें अंगार सम, तजी हुं सिंगार सब, जल फलाहार
करुं, रहुं जैसे रोगिनी । मेरे लिये तजी राज, साज सुखसागरकुं, जोगी भये
सागर तो, मैं भइहुं जोगिनी ॥ २८ ॥

आँखों में अंजन लगाना, कस्तूरीभिषित जल से स्नान करना, तथा मनोहारी शय्या पर शयन करना ये सब शाप समझते हुए छोड़ दूंगी। दर्पण नहीं देखूंगी, मन में कोई गर्व न करूंगी, तथा स्वाद की भोगिनी बनकर शरीर की वृत्ति न करूंगी। सब प्रकार के शृंगार अंगार समझते हुए छोड़ दूंगी। और रोगिनी की भांति जल तथा फलाहार करके रहूंगी। मेरे लिये महाराज रससागर राज का सारा-सुख भोग छोड़कर योगो हो गये, तो लो मैं भी योगिनी हो गई हूँ ॥ २८ ॥

दोहा-यों कहि कलाप्रवीनही, तजी सर्व शृंगार।

आपें बन गई योगिनी, धरी अंगमें छार ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर कलाप्रवीण, सब शृंगार छोड़कर और अंग में राख लगा योगिनी बन गई ॥ २९ ॥

श्रग्विणी-छंद.

अंग तें सर्व शृंगार दूर किये, केसपासं जटाजूट बांधी लिये। धोइ काश्मीरकुं भस्म अंगे धरी, श्वेत वस्त्रं धर्यो ओर दूर करी ॥ धातुको रम्य पल्यंक उठाइकें, छोनि बैठी मृगंछार बीछाइकें। दर्पनादीक सो दूर डारी दिये, जोगिनी रूप वैराग्य पाई लिये ॥ ३० ॥

शरीर से सब शृंगार दूर कर दिया, और मिर के बालों को जटा-जूट रूप में बांध लिया। शरीर से केसर को धोकर भस्म को लगाया, अन्य वस्त्रों को हटा कर श्वेत वस्त्र परिधान किया। धातु का सुन्दर पलंग उठवा दिया और पृथ्वी पर मृगचर्म बिछाकर बैठ गई। दर्पण आदि को दूर कर दिया, और वैराग्य प्राप्त कर योगिनी का रूप ले लिया ॥ ३० ॥

कवित्त.

हार हीयतें उतारी, बेसरीकुं पीसी डारी, किंकनी निकारी डारी, जेसी कारी नागिनी। जेहरी जहर धारी, कंकनादिकुं धिक्कारी, भारी मोलबारी

भयं, कारी मुद्रिका गिनी । तरोनाकुं तोरी डारी, दामनी विदारी डारी, मारी
इनपे उचारी, अरे तुं अभागिनी । सारी अंगियां उतारी, श्वेत सारी अंगधारी,
बनिता प्रवीण सो, बनी रही बिरागिनी ॥ ३१ ॥

गले में से हार उतार दिया, नाक-बेसर को पीस डाला, तथा कटि-मेखला
को काली नागिन के समान निकाल फेंका । पांच के लंगर को विप की भांति
समझा, कंकण आदि को धिक्कार बताया, तथा बहुमूल्य मुद्रिका को भयङ्कर
समझने लगी । कर्णफूल को तोड़ दिया, दामिनी को बिखेर दिया, और 'अरे
अभागिनी' कहकर उसे दुर्वाक्य कहा । साड़ी और अंगिया उतार कर सफेद धोती
पहिन ली । इस प्रकार प्रवीण स्त्री ऐसी वैरागिन बन गई ॥ ३१ ॥

हरिगीत-छंद.

संपुट करी कर मुंष्टि करि, टीकौ करन संज्ञा करी । संकल्प संज्ञा
खुंझि मुष्टि, बताइ निजकर गर्ल धरी । द्रगमर्दनी संज्ञा करी, निज भार्लपर
धरि अंगुरी । यह अष्ट संज्ञा कर बतावत, इक सबैया उचारी ॥ ३२ ॥

फिर प्रवीण ने (१) दोनों हाथ जोड़, (२) हाथ की मूंठी बांधी,
(३) अंगूठे से टीका करने का इशारा किया, (४) अंजली से संकल्प
करने का संकेत किया, (५) मूंठी खोलकर बताया, (६) अपना हाथ अपने
गले पर रखवा, (७) आंखों को मसलने का इशारा किया और फिर (८)
अपने कपाल पर अंगुली लगाई, इस प्रकार आठ भांति से इंगित करके बतलाते
हुए एक सबैया का उच्चारण किया ॥ ३२ ॥

विवृतोक्ति-अलंकार-सवैया.

युं करिकें कहुं तोकुं सखी, सब युं करिकें रखनी यह बाता ।
युं करिकें कबु सागरकुं, पुनि युं करि मोकुं नदे पितु माता ।
युं करही तुंही बात कबु, तब युं करि मोकुं हने मुज आता ।
युं करिकें रहनां अबता सखि, युं इनमें लिख लेख बिधाता ॥ ३३ ॥

हे सखी ! ऐसा करके (हाथ जोड़कर) तुझे कहती हूँ कि इस प्रकार (मुट्ठी बन्द करके) इस बात को रखना । ऐसा करके (टीका करके) कभी सागर को और फिर ऐसा करके (संकल्प करके) मेरे माता-पिता नहीं देंगे अर्थात् कन्या दानरूप में नहीं देंगे । जो तू कभी ऐसी बात (खुली) करेगी, तो मेरा भाई मुझे ऐसा करके (गला काटकर) मार डालेगा, इसलिए अब तो ऐसा (आंखें बन्द) करके रहना, विधाता ने हमारे (भाग्य) में ऐसा ही लेख लिखा है ॥ ३३ ॥

सोरठा.

चरचा योंहि चलात, सखियन आवन समय भय ।

आये सखियन व्रात, देखि दशा सब दुखित भै ॥ ३४ ॥

इस प्रकार की चर्चा चल ही रही थी कि सखियों के शाने का समय हो गया, और सखियों का झुण्ड आ गया । वे सब प्रवीण की यह दशा देखकर दुखी हुई ॥ ३४ ॥

कोउ शिखामन देत, देवत कोउ उराहनो ॥

प्रवीन मन नहि लेत, देत न उत्तर काहुको ॥ ३५ ॥

उनमें से कोई उसे शिक्षा देने लगी, तो कोई उपालम्भ देने लगी, परन्तु प्रवीण न किसी की बात को मन में लाती, और नाहीं किसी को उत्तर देती ॥ ३५ ॥

गूर्जरी सखीउक्त—कवित्त.

कहे गूजराती तारी, पीडा तो कळाती नथी, मनमां मुंझाती डीले, दूबळी देखाती छे । न्हाती नथी खाती नथी, गीत मुखे गाती नथी, बोलती लजाती बाधा, जेवी तुं जणाती छे । राती राण जेवी हती, दीसे छे सुकाती जाती, आंखो राती राती तरी, छाती तानी ताती छे । प्रवीण पंकाती तुंतो, गुणीमां गणाती पण, भाते एवी भाती जाणे, आंतिमां भमातीछे ॥ ३६ ॥

एक गुजराती सखी कहने लगी कि, तेरी पीड़ा तो दिखाई नहीं पड़ती, परन्तु तू मन में उदाम और शरीर से दुर्बल होती जाती है । न नहाती है, न खाती है, न मुख से गीत गानी है, और बोलते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो तुझे लज्जा लगती है । कुन्दन के समान तेरा रक्तवर्ण था, परन्तु अब तू सूखती जाती है, आँखें तेरी लाल-लाल हो रही हैं, और तेरी छाती भी गर्म हो रही है । हे प्रवीण ! तू तो गुणियों की पंक्ति में गिनी जाती थी, परन्तु अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि तू भ्रम में पड़ गई है !!! ॥ ३६ ॥

कच्छी सखीउक्त—कवित्त.

सभर करने सुण, गाल भली भेण मुंजी, मन म मुभाय मुंजो, चोण नांय खिलजो । दुःख तोजो दिमी जीव, जेडलेंजो दुःख दीसे, मुलाजो मकर धर्ध, चइविज धिलजो । खेंण पीण मिडे छडे, रात दीं रूएँती विठी, नतो तीं जणाय मत, लजा तोजे मिलजो । चेंत आडी अवरी, पुछोंस भूएके कोठाय, वर्तग थीधी हूएत, खणां पंखो फूलजो ॥ ३७ ॥

फिर कच्छी सखी कहने लगी कि, हे मेरी बहिन ! धीरज धरकर मेरी बात सुन, और तू मन में उदाम मत हो, मेरा कहना हंसी का नहीं है । तेरा यह दुःख देखकर भागिनी-भाव से जीव दुखी होता है, इसलिये तू शरम मत कर, अपने दिल की बात कहदे । तू खान-पान सब छोड़ रात-दिन क्यों रोया करती है ? यह तेरा ढोंग है, ऐसा भी कारण प्रतीत नहीं होता । कहे तो बूआ को आडी टेडी बात पूछें । कहीं तुझे गर्मी लगती होवे तो हवा करने को फूल का पंखा उठा लेवें ॥ ३७ ॥

महाराष्ट्री सखीउक्त—कवित्त.

प्रवीणे मीं तुमॅ तोंड, पाहुन सांगती आतां, कोठें गेली फार बरी, कांती तुम्ही कायाची । चांगली मुलीला आतां, काय असा रोग भाला, आहे गति ही विचित्र, ईश्वराची मायाची । येउनद्या वैद्याला व, पाहुनद्या नाडी तुम्ही, तो तुला देइल फार, बरी गोळी खायाची । त्या पासून

तूभा रोग, जाउन होइल सुख, सांगीतली तुला गोष्ठ, ही भी बरी
न्यायाची ॥ ३८ ॥

फिर महाराष्ट्री सखी कहने लगी कि, हे प्रवीण ! मैं तेरा मुंह देखकर अब
कहती हूँ कि तेरे शरीर की वह अति उत्तम कान्ति कहां गई ? अच्छी लड़की
को अब क्या ऐसा रोग हुआ ? ईश्वरीय माया की विचित्र गति है। बैश
को आने दे, और तेरी नाड़ी देखने दे, वह तुझे बड़ी अच्छी गोली खाने
को देंगे। उसमें तेरा रोग दूर होकर सुख होगा। यह न्याय की बात मैंने
तुझे कही है ॥ ३८ ॥

मरुदेशी सखीउक्त—कवित्त.

मांको थें केणो न माने, थांको हियो थरु वे नां, बोल जको कांइ थांने,
हुवो एडो दुखडो। हाथां जोडी कांछां थांने, कांइ थें चिंता करांछां, जको
माडु जेडो आज, वे नां थारो मुखडो। प्रवीण रायांगी बेटी, मनि करो एडी
वातां, इशो किये थांने अठे, उपजे न मुखडो। मोकळो वे धन थारे, लोवडी
लाखांरी थारी, सोना जीशो चंगो थारो, बडो वे भरुखडो ॥ ३९ ॥

फिर मारवाड़ी सखी कहने लगी कि, तू मेरी बात मानती नहीं और तेरा
मन स्थिर नहीं। तू बता कि तुझे इतना बड़ा दुःख कौनसा है ? मैं तुझे हाथ
जोड़कर कहती हूँ कि तू क्या चिन्ता करती है ? आज मनुष्य के समान तेरा
मुख नहीं रहा ! हे प्रवीण राजकुमारी ! तू ऐसी बात न कर, ऐसा करने
से यहां तुझे सुख नहीं मिलेगा। तेरे पास पुष्कल धन है, लाख रुपये की
साड़ी तेरे पहिनने को है, और स्वर्ण के समान सुन्दर तेरी बड़ी अटारी
है ॥ ३९ ॥

माथुरी सखीउक्त रत्नावलि-अलंकार—कवित्त.

जाहिको या जगतमें, जाहीरहे “जयपुर”, भाग्यको “उदयपुर”, भलो
जाको आजहे। जाहिकी सेनामें शस्त्र, धारी जन “जोधपुर”, भंडार “भरतपुर”,
सूरको समाजहे। जाकी खग “धारापुरी”, “उजयिनी” ओपतीहे,

“लखनूर” पूर डरे, शत्रुको समाजहे । “आ गरे” की सों हे, कहा काहे तुं
बे “दीली”, रखे ऐसो तेरो पिता, नीतिपाल महाराजहे ॥ ४० ॥

फिर ब्रजवासिन मखी कहती है कि, इस जगन् में जिसका यश पूर्ण है, जिसके भाग्य का उदय आज पूर्णरूप से है, जिसकी सेना में शस्त्र धरने वाले पूरे योद्धा हैं, जिसके भण्डार का शूरवीर लोग भरते रहते हैं, जिसकी तलवार की धार पूरी जीत करने वाली शोभित है, जिसके पूर्ण तेज को देखकर शत्रुगण डरते रहते हैं, ऐसे तेरे पिता महाराज नीतिपाल हैं । तुझे मेरे गले की सौगन्ध है, बता तू क्यों बेदिल रहती है ! ॥ ४० ॥

नोटः—इम कविता में जयपुर, उदयपुर, जांधपुर, भरतपुर आदि नव शहरों के नाम निकलने हैं, इमलिये रत्नावलि अलंकार है । (ग० ज० शास्त्री)

यावनी (उर्दू) सखीउक्त—कवित्त.

नूरे आफताब नूरे, महाताब चेरा तेरा, शीतारासी चश्म बुल, बुलसी
जुबानहे । हुआ तेरा जीगर, दरदमें गिरफतार, सबब सुनाओ रास्त, जानु
मेरी जानहे । खार्विदे खलक रखे, तेसैं रहो खुशहाल, जीसकी ओलाद
जान, मंद वे जिहानहे । फनांकर फिर, जिकर क्या प्रवीण भेण, खलकमें
वावा तेरा, खुद खानदानहे ॥ ४१ ॥

फिर मुसलमान मखी कहने लगी कि, हे प्रवीण ! सूर्य और चन्द्र के प्रकाश समान तेरा मुख है, तारों के समान आँखें, बुलबुल के समान वाणी है, परन्तु तेरा मन दर्द से बेचैन हो रहा है । हे प्राण प्रिय ! इसका सबब क्या है ? सो बताओ, ताकि मैं जानूं । यह जितना सारा जीव-जगन् है उस सबका स्वामी परमेश्वर है । वह जिस प्रकार रक्खे उसीमें प्रसन्न रहना चाहिए । हे बाहिन प्रवीण ! तेरा पिता उच्चवंश का है, अतएव विन्ता को दूर कर ॥ ४१ ॥

गिर्वाणा सख्युक्त—कवित्त.

वचनं वदामि ते हिताय, त्वत्सुखाय चाहं, भूत्वा सावधाना तनु, शृणु

भाग्यशालिके । केयं कृता भीता भूत्वा, त्वयात्पंता चारुंदता, मां वदस्व
कारणं, तन्धुदुलमृणालिके । त्वमसि विद्यावती, प्रभावती क्षमावती च, किं
वदामि त्वामहं, सद्गुणमणिमालिके । धैर्यं धृत्वा भूत्वा स्थिरा, कष्टं तु विनष्टं
कुरु, बुद्धिमती भव त्वं, प्रवीणे भूपबालिके ॥ ४२ ॥

इसके पश्चात् देवलोकवासिनी सखी कहने लगी कि, हे भाग्यशालिनी !
तेरे हित व सुख के लिए वचन कहती हूँ, तू सावधान होकर इसे सुन ।
तू अति विह्वल होकर रोती सूरत क्यों हो रही है ? हे कोमल मृणालिनी !
इसका कारण मुझे बता । तू विद्यावाली, कांतियुक्त तथा क्षमायुक्त है, मैं तुझ
सद्गुणमणिमालारूपिणी को क्या कहूँ ! धीरज धारण कर स्थिर होकर कष्ट
को नष्ट कर । हे राजकुमारी प्रवीण ! तू बुद्धिमती बन ॥ ४२ ॥

दोहा—इहि विधि बहु सखियन कही, सुनी न कउकी बात ।

तितनेमें आये तिहां, प्रबिन मात पुनि तात ॥ ४३ ॥

इस तरह से अनेक सखियों ने बहुत कुछ कहा, परन्तु प्रवीण ने किसी की
भी नहीं सुनी । इतने में उसके माता-पिता वहां आ गये ॥ ४३ ॥

सो लखिकें सखि एकही, नीर नेनमें लाय ।

प्रबिन पितरौ पासही, कही बात सब जाय ॥ ४४ ॥

यह देखकर एक सखी ने आंखों में आंसू भर कर प्रवीण के माता-पिता
के पास जा सब बातें कहीं ॥ ४४ ॥

प्रवीण के मातापिताप्रति सखीकी उक्ति, लाटानुग्रासालंकार—कविच.

चीरहिकों चीर डारी, अंगियां उतारी पुनि, फरियाकों फारी महा, दिलें
दुख दागिनी । तरौनाकों तोर डारी, हारकों उतारी पुनि, बेसरी बिसारी
उर, जानीकों अभागिनी । मंजु मौलवारी महा, दामिनी निकारी निज,
मनमें बिचारी वाकों, निर्गुनसी नागिनी । बिभव बिसारी ऐसे, सारी श्वेत
अंग धारी, पेखियें प्रवीन आज, बनीहे बिरागिनी ॥ ४५ ॥

वस्त्र को फाड़ डाला, अंगिया उतार दी, तथा मन में महादुःखदायक समझते हुए घाघरा भी फाड़ फेंका । कान का तरौना तोड़ दिया, हार उतार दिया, और नाक-बेसर को अभागिनी जानकर भुला दिया । सुन्दर और बहुमूल्यवाली अपनी दामिनी को भी निकाल कर उसे अपने मनमें बिना गुण की और नागिन सी समझ लिया है । हे राजन् ! देखिये, इस प्रकार सब वैभव त्याग, श्वेतवस्त्र पहिन, आज प्रवीण विरागिनी बन गई है ॥ ४५ ॥

कवित्त.

श्रृंगार उतारी सबे, वारमें बिभूती डारी, शैली कंठ धारी सोई, राजत ज्यों नागिनी । पलंग निकारी नीके, छितियें शयन धारी, खंडी कर धारी गिनि, और तें स्रभाभिनी । मृगाजिन डारी तापैं, आसनकों मारी पुनि, जपतहे जाप कछु, माला मनिका गिनी । योगिनी बनीकें ऐसैं, सारी श्वेत अंग धारी, पेखियें प्रवीन आज, बनीहे विरागिनी ॥ ४६ ॥

सब शृंगार उतार कर केशों में बिभूति डाल ली है, गले में शैली डाल रखी है जो नागिन की भांति दीखती है । अच्छे पलंग हटा दिये हैं, और भूमि पर शय्या की है । अन्य वस्तुओं से मौभाग्यशाली समझ कर कमण्डलु हाथ में ले लिया है । मृगचर्म बिछाकर उम पर बैठी हुई हाथ में माला की माणि लेकर कुछ जाप करती है । हे राजन् ! देखिये, इस प्रकार योगिनी बनकर और श्वेत वस्त्र पहिनकर प्रवीण विरागिनी बनी है ॥ ४६ ॥

दोहा—सो सुनिकें चित्ता धरी, मात पिता उठि धाय ।

कुंवरी पासैं आयकें, कहन लगे समझाय ॥ ४७ ॥

यह सुनकर चिंतित होकर माता-पिता दौड़कर राजकुमारी के पास आये, और उसे समझा कर कहने लगे ॥ ४७ ॥

प्रवीन प्रति पितामातृक शिवाकथन—पादाकुलक-छंद.

क्यों शिशुता तुम तनमें धारे, बोलत बोलहि बिना बिचारे । प्रथम कुमा-

री वृत्त तुम लीने, तबे कछु नही हमने कीने ॥ आज यह पुनि करत प्रकासा,
छोडीकें सब साज बिलासा । बामिल बख तनू तें टारी, बनी विरागन
बिभूती धारी ॥ यह नहि अपने कुलकी रीती, जानतहो तुम नृपकी नीती ।
चाहे इतने दुख कभि आवे, तौभी मधि मरियाद रहावे ॥ जो कदि कोउ
तजे कुल कानी, तो कुल नाशक वाको मानी । मारत माहुर पाई बाकों,
दोष गिने नहि रंचक ताकों ॥ पैं तुमपैं हम छोह अपारा, यातें होय न
और विचारा । बाते तुम क्यों विना विचारे, योगिनीको पन आजही धारे ॥
नारी नहि पन लेने पावे, धर्मशास्त्रमें योंहि कहावे । प्रमदा पिंड पराधिन
जानो, स्वाधिन सुपनेमें नहि आनो ॥ यों उचरे पुनि वेद पुराने, सो
समझाऊं तोहि प्रमानो । ज्यों लागि कोउ कुमारी होये, त्यों लागि पितु
आपसमें सोये ॥ ब्याह बने जब उनके आछे, पति आपस तब उरमें बाँछे ।
जो कभि वैधव्य वपुमें पावे, तो सुत शासनमाँहि रहावे ॥ वै पुनि स्वाधिन
है निज अंगे, काम करे नहि कोउ प्रमंगे । यातें छोडी यह सब आज,
चित्त धरो कछु कमनिय काजे ॥ ४८ ॥

आज क्यों शरीर में बालकपन धारण कर विना विचारे बात कहती है ?
पहिले तुमने कुमारी-व्रत लिया, तब भी हमने कुछ नहीं किया, किन्तु अब आज
सब साज-विलास छोड़ करके यह प्रकाशित कर रही है । सुन्दर वस्त्र शरीर
से हटाकर और विभूति लगाकर विरागिनी बनी है, यह अपने कुल की रीति
नहीं है । तुम राजनीति जानती हो कि चाहे कभी कितना भी दुःख आवे
तो भी मर्यादा में ही रहना चाहिये । यदि कभी कोई कुल-मर्यादा छोड़े, तो
उसे कुलनाशक समझकर विष देकर मार डालते हैं, इसमें किंचित भी दोष
नहीं मानते, परन्तु तुम्हारे ऊपर हमारा अपार प्रेम है, इसलिये और विचार
नहीं होता है । इसलिये तुम विना विचार किये योगिनीपन धारण करती हो ?
धर्मशास्त्र में कहा गया है कि स्त्री को कोई प्रण नहीं करना चाहिये । स्त्री का
शरीर सदा पराधीन रहता है, वह स्वप्न में भी स्वाधीन नहीं होती । वेद-
पुराणों में इस प्रकार कहा गया है, उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ । जब तक स्त्री कुमारी
होवे तब तक वह माता-पिता के आधीन रहे, जब उसका अच्छा विवाह हो

जाय, तो फिर वह पनि के आधीन रहे । यदि कभी वैश्वव्य को प्राप्त हो जाय, तो फिर अपने मन्तान के शासन में रहे । कभी भी स्वार्थीन होकर किसी प्रसंग पर भी कोई काम न करे । इसलिये आज ही यह सब छोड़कर स्त्रियो-चित्त सुन्दर कार्य्य को चित्त में धारण करो ॥ ४८ ॥

चोपाई.

जननि जनक कहे सुनहु सुबुद्धा, क्यों तुहि भइ कुल देश विरुद्धा ।
नृप कुल यों न किये कोउ आगे, इहि विधि किय कुल लांछन लागे ॥
प्रविन कहे नहि कछू नवाई, भइ वैरागिनी मीराबाई ।
में तप करं जो तुमहि लजाओ, मीरावत मोकुं बिस्व पाओ ॥
यह संसार असत्यहि जाने, जन तन फल तप करनहि ठाने ।
जो तुम मोकुं बर्जन करहु, नहि छांडो तप पुनिमें मरहुं ॥
जिहि कुलमें जन भक्त कहावे, तिहि कुल महिमा मुनिवर गावे ।
हरखित होहु हिये यों जानी, अब बर्जनकी कहो न वानी ॥
मात रु तात सुनी अस बेनां, कछु न कछो जल भर निज नेनां ॥ ४९ ॥

माता-पिता ने कहा कि, हे अच्छी बुद्धिवाली सुन, तू अपने कुल तथा देश के विरुद्ध क्यों कर हो रही है ? पहिले के राजाओं के कुल में किसी ने ऐसा कार्य्य नहीं किया, इस प्रकार करने से कुल में लांछन लगता है । तब प्रवीण ने कहा कि, यह कोई नवीन नहीं है । (राजकुल में) मीराबाई भी वैरागिनी हुई थी । मेरे तप करने से यदि आप लज्जित होते हो तो मीराबाई के समान मुझे भी विष पिलादो । मैं इस संसार को भूटा समझती हूं, इसलिये मनुष्य-देह की सफलता तप करने में है, ऐसा निश्चय किया है । यदि आप मुझे मारने का निश्चय करो, तो भी मैं तप नहीं छोड़ूंगी, वरन प्राण-त्याग करूंगी । जिस कुल का व्यक्ति भक्त कहा जावे उसकी महिमा बड़े २ ऋषि लोग गाते हैं, इसलिये आपको प्रसन्न होना चाहिये । और अब मुझे रोकने की बात न कहिये । यह सुनकर माता-पिता कुछ भी नहीं कह सके !!! और उनके आंखों में आंसू भर आये !!! ॥ ४९ ॥

मातपिता प्रति कलाप्रवीनोक्त-पादाकुलक-छंद.

शीश नमार्ई नीचें बाला, बोलि बचन धरि लाज विशाला । हमने न-
हि कुल कानि तजिहे, भाव धरी भव भक्ति सजीहे ॥ भक्ति करेको भवकी
भावे, यामें कुलकी कानि न जावे । भक्तिसैं भव जो मुदलावे, ते त्रय
पीढी ताकि तिरावे ॥ यातें जो हम करतहि काजा, वामेंहे कछु तुम्हरे साझा ।
या भवसागर दुस्तर कहियें । भव भक्ती विन पार न लहियें ॥ यों हमनैं
उर अंतर आनी, भावे भक्ती भवकी ठानी । वामें क्यों बरजत तुम आई,
वृथा विश्वमें लोभ लगाई ॥ व्यर्थ विश्व यह वेद बतावे, यामें सत चिद घन
कहावे । याकों भजन करे जो भावे, वाकों जन्म मरन मिट जावे ॥ अंतरमें
यह बात धरीकें, क्षणिक सांख्यको त्याग करीकें । संतत सुख निज चितमें
चाही, बनी योगिनी भभूत लगाही ॥ सो तनतें कभी नांहि तजोंगी, भाव
धरीकें ब्रह्म भजोंगी । यह अटलहे विचार हमारे, आप भलें निज
स्थान पधारो ॥ ५० ॥

प्रवीण शिर नीचा करके और आति लज्जा के साथ बोली कि, मैंने कुल
की मर्यादा नहीं छोड़ी, प्रत्युत भावपूर्वक भक्ति करने लगी हूं । भावपूर्वक जो
भगवान् की भक्ति करे, तो इसमें कुल की मर्यादा नहीं जाती है । जो भक्ति के
भावों से प्रसन्नता प्राप्त करे तो उसकी तीन पीढ़ी तर जाती है, इसलिये मैं जो
कुछ कार्य कर रही हूं इसमें आपका भी भाग है । यह संसार-ममुद्र दुस्तर
कहा गया है, भक्ति के बिना इससे कोई पार नहीं हो सकता । यही विचार
मन में लाकर मैंने भावपूर्वक भक्ति करने का निश्चय किया है । आप उससे मुझे
क्यों मना करते हो, और व्यर्थ संसार का क्यों लोभ दिलाते हो ? वेद बताता है
कि यह संसार मिथ्या है, इसमें सत्चिन्मयन नहीं प्राप्त होते । जो उस
सच्चिदानन्द का भावपूर्वक भजन करता है, उसका जन्म-मरण का बन्धन मिट
जाता है । यह बात अन्दर धारण करके और क्षणिक सुख को त्यागकर, सतत
सुख की चाहना मन में करके मैं योगिनी बनी हूं, और शरीर में विभूति
लगा ली है । अब इसे शरीर से कभी नहीं छोड़ूंगी, और भक्तिपूर्वक ब्रह्म का

भजन करूंगी । मेरा यह विचार अटल है, आप अब भलेही अपने स्थान को पधारो ॥ ५० ॥

दोहा.

यह सुनिक्कें अफसोस करि, उरमें बनी उदास ।

मात पिता निज स्थल गये, डारी दीर्घ निश्वास ॥ ५१ ॥

यह सुनकर माता-पिता ने शोक किया, और मन में उदास होकर दीर्घ-निश्वास डालते हुए अपने स्थान पर चले गये ॥ ५१ ॥

पूत्री गनी तपस्विनी, पुनि पुनि करी प्रनाम ।

मात पिता फिर उठ चलें, रहि सुजान वह ठाम ॥ ५२ ॥

पुत्री को तपस्विनी मानकर माता-पिता बार २ प्रणाम करके उठकर चल दिये, और वह चतुर वहीं बैठी रही ॥ ५२ ॥

देह दमन दिन दिन करे, वैरागिन व्रत धारि ।

अब कहूं सागर सिद्धकी, चरचा चित्त विचारि ॥ ५३ ॥ ❀

कलाप्रवीण वैरागिनी-व्रत लेकर दिन २ देह का दमन करने लगी । कवि कहता है कि, अब सागर और प्रभानाथ सिद्ध की चर्चा भी चित्त में विचार कर कहता हूं ॥ ५३ ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—बाला बनि बैरागिनी, साधत सतत योग ।

बात कहों बरनी सबे, सागर सिद्ध सँयोग ॥

कलाप्रवीण वैरागिनी बन कर सतत योग साधने लगी । अब सागर और सिद्ध के मिलन की बात वर्णन करता हूं ॥

(१०१८)

प्रवीणसागर

गाहा.

जोगिनी भइ नृपजाता, देसि देसि सखि दिये सिखामनही ।

सप्त सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥ ५४ ॥ *

राजकुमारी योगिनी बनी, उसे देश २ की सखियों ने शिखा दी, इस सम्बन्ध की प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह सतहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥ ५४ ॥



* पाठान्तर इस प्रकार है:—

गाहा.

दैव प्रतिकूल देखी, बाला बनी विरागन निज अंगे ।

सप्त सप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिन सागरो लहरं ॥

दैव को प्रतिकूल देखकर कलाप्रवीण वैरागिनी बनी, इस वर्णन वाली प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह सतहत्तरवीं लहर पूर्ण हुई ॥

७८ वीं लहर

सागर-सिद्ध-संवादे नारी-निंदा-प्रसंग—दोहा.

चारु सुघट लखि अंवतल, मंजु भृगाजिन डारि ।

बैठनकी वीनती करी, सिद्ध चरन शिर धारि ॥ १ ॥

आम के नीचे अच्छी घनी छाया देखकर मनोहर मृग-चर्म बिछा, सिद्ध के चरणों में मस्तक नवा, आसन पर बैठने के लिए उनसे विनति की ॥ १ ॥

आशिष देकें योगि तब, बैठे आसन जाहि ।

प्रेम परिचा के लिये, कहन लगे पुनि वांछि ॥ २ ॥

तब आशीर्वाद देकर योगी महाराज उस आसन पर बैठे, और सागर के प्रेम की परीक्षा के निमित्त उससे कहने लगे ॥ २ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त शिक्षाकथन—पादाकुलक-छंद.

क्यों अति कष्ट सहो निज काये, क्यों भगुवे सब वस्त्र बनाये । क्यों सुख साज तजे मन भाये, क्यों तन सुंदर राख लगाये ॥ क्यों सुख सेज तजी सुकुमारी, क्यों सोवतहो भूमि करारी । क्यों त्यागे निज दासरु दासी, क्यों फिरता बन बनी उदासी ॥ क्यों तजि दीने मंदिर खासा, क्यों गिरिपें किय निठुर निवासा । क्यों अति उत्तम अन्न न पावो, क्यों तनमें भुख प्यास सहावो ॥ क्यों तजिके गज हयकी खारी, पाय चलतहो राह करारी । क्यों तजि दीनी गुरुजन सेवा, क्यों त्यागे पुनि भुंजल मेवा ॥ क्यों गहना तनुतेंहि उतारी, माल गरे रुद्राक्षकि धारी । क्यों निज राजकाजकों त्यागी, आप भये वपुमें बैरागी ॥ आगें जो हमने कछु कीना, सोइ विसारी तुमने दीना । स्वप्न मंत्र सो याद करोंगे, तो दिलतें दुख दूर धरोंगे ॥ यातें अति जो लोभ लहेगे, तो दुखतें निज देह दहोंगे । या जगमें जे जीव कहावे, लक्ष चौराशी वांछि गिनावे ॥ यामें उत्तम मनुष कहावे, जामे सबही ज्ञान रहावे । सो सब जगके सुखकों जानी, चार अर्थकों उरमें आनी ॥ भोग-

बीकें अति भावे, परम प्रभुके पदकों पावे । पूर्व पुन्यतें सो तुम पाये,
वाकों व्यर्थ क्यों योंहि गुमाये ॥ ३ ॥

सिद्ध कहते हैं कि, हे सागर ! तुमने अपने सब बन्ध काषाय क्यों किये ? और शरीर से क्यों अतिकष्ट सहन करते हो ? मन को लुभाने वाले सब सुख के साज तुमने क्यों छोड़ दिये ? इस सुन्दर कोमल शरीर पर राख क्यों लगा रक्खी है ? सुकोमल और सुखमयी शय्या को छोड़ कर कठिन भूमि पर क्यों शयन करते हो ? अपने दाम-दासियों को छोड़कर उदासीन होकर बन २ क्यों फिरते हो ? अच्छे बड़िया राज-मंदिर को छोड़कर कठिन गिरि पर क्यों निवास किया ? उत्तम अन्न ग्रहण न कर शरीर को भूख व्यास से क्यों तपाते हो ? हाथी और घोड़े की उत्तम सवारी छोड़ कर कठिन मार्ग पर क्यों चलते हो ? गुरुजनों की सेवा तथा मंजुल मेवा का परित्याग क्यों किया ? शरीर से सब आभूषण उतार कर रुद्राक्ष की माला क्यों धारण की ? अपने राजकार्य को छोड़ कर आप विरागी क्यों हो रहे हो ? पहिले मैंने तुम्हें जो कुछ कहा था तुमने उसे भुला दिया ! जो उस स्वप्न-मंत्र का याद करोगे, तो दिलसे सब दुःखों को दूर कर दोगे । इससे बढ़ कर यदि लोभ करोगे, तो दुःख से अपने शरीर को जलाओगे । इस संसार में जो जीव कहे जाते हैं, उनकी चौरामी लाख योनियां हैं । इन सब में मनुष्य-योनि उत्तम है, जिसमें सब ज्ञान रहता है । वह (मनुष्य) संसार के सब सुखों को जानता है । और चारों अर्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को हृदय में समझ कर और प्रेमपूर्वक उनका भोग करता हुआ परम प्रभु परमात्मा के पद को प्राप्त करता है । वह मनुष्य-शरीर पूर्व पुण्य से तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ योंही क्यों गमाते हो ? ॥ ३ ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त-दोहा.

सो सुनिकें सागर कहे, परी सिद्धके पाय ।

पाय बिना परबीनकों, और न मोहि सुहाय ॥ ४ ॥

यह सुनकर सागर ने सिद्ध के पांवों में पड़ कर कहा कि, मुझे प्रबीण के बिना और कुछ अच्छा नहीं लगता है ॥ ४ ॥

भुजगी छंद.

उरं और सोहायना मोहि आगें, सुखंदाय सर्वे दुखं दाय लागें । नही नेनमें नेकही नींद आवे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ सुधासैं सलीलं लगे स्फार फीके, नही नेक सुहातहे न्यादनीके । नही राजके काज मोही सुहावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ शया शूलसी चित्तमें मोहि लागे, अलंकार हे आगिसैं देह दामे । सिरा चंदनं आगि अंगे लगावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ महा मंदिरं भाकमी संहि भासे, लगे शत्रुसैं चेट मेरे हियासैं । महा मिष्ट मेवा कटुता उपावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ सुखंपाल आदिक जे यान राजे, बडे बाघसे सोइमो चित्त छाजे । शिरेंताज म्हारराज बोझा बढावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ सुगंधी सदा सर्वके चित्त चोरे, कुगंधी बनी सोइ मो नाक तोरे । मनी मालसो व्याल व्हेकें डरावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ नही बागमें हर्षमो हीय पावे, नही रागमें रागमो चित्त लावे । बहु बात मो गति व्याधी बढावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ महा दीर्घ देहा मतंगा कहावे, भयंकरसो शैल जैसा सुहावे । सबे साज यों आज द्रष्टें दिखावे, बिना पाय प्रवीनना और भावे ॥ ५ ॥

मेरे चित्त को कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, सब सुखदायी वस्तुएं दुखदायी प्रतीत होती हैं । आखों में जरा भी निद्रा नहीं आती, प्रवीण को पाये बिना और कुछ अच्छा नहीं लगता ॥ अमृत समान जो जल है, वह भी मुझे फीका लगता है, और मनोहर भोजन मुझे जरा भी रुचिकर नहीं लगता । राज-काज में किंचित् भी मेरी रुचि नहीं है । प्रवीण को पाये बिना मुझे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥ सोने की शय्या मुझे शूल के समान लगती है, आभूषण अग्नि के समान होकर मेरे शरीर को जलाते हैं, शीतल चन्दन से मेरे शरीर में दाह उत्पन्न होता है, इस तरह प्रवीण के पाये बिना मुझे कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती ॥ विशाल राज-मन्दिर मुझे बंदीगृह के समान लगता है, और दास मुझे शत्रु प्रतीत होते हैं । महामधुर मेवा भी मुझे कटु लगती है, प्रवीण के पाये

विना मुझे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥ सुखपाल आदिक जो यान वाहन हैं वे मुझे विकराल व्याघ्र के समान लगते हैं, और रम्य राजमुकुट मुझे भाररूप प्रतीत होता है, प्रवीण के पाये विना मुझे अन्य कुछ भी नहीं रुचता ॥ जो सुगंध सदा सबके चित्त को मोहित करती है, वह मुझे दुर्गंधरूप होकर मेरा नाक को तोड़ती है । मणियों की माला मुझे सर्प के समान भयंकर लगती है, इस प्रकार प्रवीण के विना मुझे अन्य कुछ भी नहीं रुचता ॥ बगीचे में मेरे हृदय को आह्लाद नहीं होता, गान पर मेरे चित्त को मनोरंजन नहीं होता, बहुत सी बातों से थककर मेरे शरीर में रोग बढ़ता है, प्रवीण को पाये विना मुझे अन्य कुछ भी नहीं रुचता ॥ दीर्घकाय बड़ा जो हाथी है वह मुझे पर्वत के समान भयंकर लगता है । इस प्रकार सभी वस्तुएं मुझे आज उल्टी दिग्वाइ देती हैं, और प्रवीण के पाये विना अन्य कुछ भी मुझे अच्छा नहीं लगता !!! ॥ ५ ॥

कवित्त.

प्रेमकी प्रकाशी महा, हियकी हुलासी पुनि, रूपहिंकी राशि लखि, रंभा रूप भायना । मैनकासी रमासी, गंगासी गिरासी पुनि, मदनप्रियासी कभि, नेक निभ पायना । बानिमें सुधासी अरु, तेजकी जमासी पुनि, चारु चपलासी वाकी, दीपती करायना । ऐसी अभिराम वाम, प्रवीनकों पाये विन, सुंदर सुख साज आज, चित्तमां सुहायना ॥ ६ ॥

अत्यन्त प्रेम की प्रकाश करनेवाली. हृदय को उल्लासित करनेवाली, रूप की राशि, जिसे देखकर रंभा का भी रूप मन को नहीं मुहाता, मैनका अप्सरा के समान, लक्ष्मी के समान, गङ्गा के समान, सरस्वती के समान तथा कामदेव की स्त्री रति के समान, परन्तु जिसकी समता में ये जरा भी नहीं हैं । वाणी जिसकी अमृत है, तेज की जो राशि है, सुन्दर चपला के समान जिसकी दीप्ति है, ऐसी अभिराम प्रवीण प्रिया के पाये विना सब प्रकार के सुन्दर और सुख के साधन भी मुझे अच्छे नहीं लगते !!! ॥ ६ ॥

कवित्त.

जाके मुख मंजुलकी, समताकों पायबेकों, पद्म तप ताल करे, तोभी कहु

पायना । जाके द्रग देख मृग, वनमें बसेहे जाय, तदपि तनक द्रग, तासम दिखायना । जाके कंठ कान सुनि, कारी वनी कोकिलासो, उज्ज्वलता अजहंलों, पाये कभि कायना । ऐसी अभिराम वाम, प्रवीनकों पाये विन, सुंदर सुख साज आज, चित्तमों सुहायना ॥ ७ ॥

जिसके मनोहर मुख की समता को प्राप्त करने के लिये कमल तालाब में तप करता है, परन्तु फिर भी समता नहीं पाता, जिसके नेत्रों को देखकर मृग वन में जाकर बस गये हैं, किन्तु तो भी उसके नेत्रों के समान उनके नेत्र तनिक भी नहीं दीखते, जिसकी कंठध्वनि को सुनकर कोकिला काली हो गई है !!! और आज तक भी अपने शरीर में वैसी उज्ज्वलता न पा सकी, ऐसी अभिराम प्रवीणप्रिया के प्राप्त किये बिना सब सुन्दर सुख के साधन भी मेरे मन को आज रुचते नहीं ॥ ७ ॥

कवित्त.

जाके वार वामिलकी, साद्रस्यता पायवेकों, पन्नग घिसत पेट, तोभी कछु पायना । जाके कुच लखि कुंभ, कामाके कीकाल भरे, तोभी तिहि तूल्य तनू, सुघटता लायना । जाकी गति देखि हंस, विरंचिके वाहनभो, तदपि तनक ताकी, गिनतीमें आयना । ऐसी अभिराम वाम, प्रवीनकों पाये विन, सुंदर सुख साज आज, चित्तमों सुहायना ॥ ८ ॥

जिसके बालों की सदृशता पाने के लिए सर्प पेट घिसते हैं, किन्तु तो भी पा कुछ भी नहीं सके हैं, जिसके स्तनों को देखकर घड़ा स्त्रियों का पानी भरता है किन्तु तो भी उसके समान शरीर में सुघड़ता न प्राप्त कर सका, जिसकी चाल को देखकर हंस ने ब्रह्मा का वाहन होना स्वीकार किया, किन्तु तो भी उसकी गिनती में नहीं आ सका, ऐसी अभिराम प्रिया प्रवीण को प्राप्त किए बिना सारे मनोहर सुख के समान भी आज मेरे चित्त को नहीं सुहाते ॥ ८ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त शिचाकथन-दोहा.

सो सुनिकें निज भवनमें, सिद्ध कहत धरि प्रीत ।

महा मांसके मोटमें, मोह पाय क्यों मिच ॥ ९ ॥

अपने कानों से ऐसा सुनकर सिद्ध ने अति प्रेम से कहा कि, हे मित्र !
मांस के बड़े लोथड़े पर तुम्हें ऐसा मोह क्यों हो रहा है ? ॥ ९ ॥

सचैया.

मांस मजा मल मेद भरे पुनि, शोनिततें चहु और छावाये ।
कीकस के सब अंग बने पुनि, आंतरसें अतिही लिपटाये ।
चामहितें मटिकें पुनि बाहिकों, वाम विलोकन मांहि बनाये ।
ऐसैं तिथा तनमें रति लाइकें, सागर क्यों मनमांहि अमाये ॥ १० ॥

मांस, मज्जा, मल और मेद में भरा हुआ, तथा लोहू से चारों ओर से छाया हुआ, हाड से यह सब शरीर बना हुआ है, और अंतर्दियों से यह लिपटा हुआ है । चमड़े से ऊपर से मढ़ कर देखने में सुन्दर बना दिया है, ऐसे स्त्री के शरीर में प्रेम लगा कर हे सागर ! क्यों मनमें भ्रमित हो रहे हो ? ॥ १० ॥

कवित्त.

द्रव भरी दूषिकातें, नाशिका सिंहाने भरी, पिंजूपतें श्रव भरे, लपनमें लारीहे । दशनमें दंत्य भरे, कुलुकतें जीह भरी, प्रजन पेशाब भरे, अधम अपारीहे । रुधिरतें रग भरी, उदरें नरक भरे, मांस मेद मजा भरी, दिखाय देह सारीहे । ऐसैंही अशुद्ध महा, कामिनीकी काय ताकों, सागर चहत कैसैं, छोह चित्त धारीहे ॥ ११ ॥

आखें कीच से भरी हुई हैं ! नाक शोडा से भरी हुई है ! कान मैल से भरे हुए हैं ! और मुंह में लार भरी हुई है ! दांतों में कीट भरी हुई है ! जीभ पर भी मैल है ! जननेंद्रिय मूत्र से भरी हुई है, जो अति निकृष्ट है । ननों में रुधिर है, उदर में मल भरा हुआ है, शरीर सारा मांस, मेद और मज्जा से भरा हुआ है, केवल ऊपर से अच्छा दिखाई पड़ता है । स्त्री का इस प्रकार महा अशुद्ध शरीर है । हे सागर ! उसमें प्रेम लाने के लिए कैसे चित्त को लगाता है ? ॥ ११ ॥

सवैया.

संशयके सरखान लसे पुनि, साहसके पुट भेद प्रभायें ।
ऐन अनीतिके ओपतहें पुनि, दोषनके निधि नेक दिखायें ।
क्षेत्र लसे अविसासनको पुनि, कैतव के शुभ कुंड सुहायें ।
ऐसि जहे अबलापर सागर, क्यों मनमें धरि मोह लुभाये ॥ १२ ॥

स्त्री संशय का समुद्र और साहस के नगर जैसी हैं, अनीति का तो मानो घर ही है, दोषों का मानो भंडार है, अविश्वास का मानो क्षेत्र, और कपट का मानो कुंड ही है, ऐसी यह स्त्री की जाति है, इस पर मोह धर कर, हे सागर ! क्यों लुभाया हुआ है ? ॥ १२ ॥

सवैया.

कैतवसे रचि राखत कायहिं, मादुरकी मनभाइ मिठाइ ।
बाहिरतें वह राजतहै पुनि, अंदरमें विषतेंहि छावाइ ।
त्यो उर अंतर क्रूर महा पुनि, बाहिरतें शुभ देत दिखाइ ।
ऐसि यह अबलापर सागर, क्यों उरभे मनमें रति लाइ ॥ १३ ॥

यह कपट से शरीर को सुन्दर बना कर रखती है, परन्तु मनमें विषकी मिठाई है, जो बाहर से तो शोभायमान लगती है, परन्तु अन्दर से विष से भरी है । इसीप्रकार हृदय में महान् क्रूर है, और बाहर से पवित्र दिखाई देती है । हे सागर ! इस प्रकार की यह अबला जाति है, उस पर मनमें प्रेम लगा कर क्यों उरभ रहा है ? ॥ १३ ॥

सवैया.

साहस कारक मूढ महा पुनि, म्लान महा नित काय रहावे ।
देह दयाविन लोभि लसे पुनि, झूठहिमें सब जन्म गुमावे ।
पूर्ण प्रपंच भरी भ्रमजालहि, दोषमयी सब देह दिखावे ।
ऐसि यह अबलापर सागर, क्यों मन मोह धरी रति लावे ॥ १४ ॥

अत्यन्त साहसी, महामूर्ख, और शरीर से महा मलिन रहने वाली, दयाहीन, और अत्यन्त लोभी, सारा जन्म झूठ में गंवाने वाली, प्रपंच से पूर्ण भरी हुई, और जिसका सारा शरीर दोषमय ही दीखता है, ऐसी स्त्री पर मनमें मोह धारण करके, हे सागर ! कैसे प्रीति लगाता है ? ॥ १४ ॥

सवैया.

वारिधि बीच समानहि चंचल, जाहि स्वभाव विराजि रहै है ।

सांझ पयोधर के रंगसँ मन, रागधरी तजि और गहै है ।

चाक समान सदा फिरते रहि, मानस जाहिकों मोद लहै है ।

ऐसि तिया तरलापर सागर, छोह धरी किमि चित्त चहै है ॥ १५ ॥

समुद्र की तरंगों के समान जिसका चंचल स्वभाव है, संध्याकालीन बादल के रंग के समान जिसका मन है, अर्थात् जो क्षण २ में बदल जाता है, अभी एक पर अनुक्त है तो उसे छोड़कर दूसरे पर जा लगता है । जिसका मन चक्र के समान फिरते रहने में ही प्रसन्नता प्राप्त करता है, ऐसी चपला स्त्री पर, हे सागर ! कैसे प्रेम धारण कर मन से अनुरक्त हो रहा है ? ॥ १५ ॥

सवैया.

कोउनको लखि लोचनतँ पुनि, कोउनको बदि बैन सुधासँ ।

कोउनको रति लालचतँ पुनि, कोउनको वपुकेहि बिलासँ ।

बांधतहे बहु भांतिनसों पर, आप बँधाय न औरके पासँ ।

ऐसि यह छलिनी अबलापर, सागर क्यों तुम प्रेम प्रकासँ ॥ १६ ॥

यह किसी को अपने नेत्रों के कटाक्ष से, तो किसी को अमृत के समान वाणी बोल कर, किसी को रति के लालच से, और किसी को अपने विलासमय शरीर के सौंदर्य से, इस प्रकार बहुभांति से बांधती है, परन्तु स्वयं किसी के बन्धन में नहीं बंधती है । इस प्रकार की यह छलिनी नारी है, हे सागर ! तुम कैसे इस पर प्रेम करते हो ॥ ? १६ ॥

सवैया.

कबहू उरमें अति मोह करे, कबहू पुनि मत्त करे मनमें ।
कबहू दिलमें दुख देत घने, कबहू सुख साज सजे तनमें ।
कबहू उपजावत खेद उरें, कबहू कृत खुश निधू वनमें ।
यह रीत रमावत जे नरकों, तिनपें किमि राग धरो मनमें ॥ १७ ॥

जो कभी तो हृदय में अति मोह करती है, और कभी मन में उन्मत्तपना दिखाती है, कभी दिल में अति दुःख दिखाती है, तो कभी शरीर में सुख का साज सजती है, कभी मन में खेद प्रकट करती है, तो कभी कामक्रीड़ा में मग्न होती है । इस प्रकार से जो मनुष्य को रमाती है, हे सागर ! उस पर कैसे मनमें अनुराग करता है ? ॥ १७ ॥

रूपकालंकार—सवैया.

व्याध बडे तिनके तनमें अति, जानिवेकों निजकी चतुराइ ।
मुंड महा नर नीडज बंधन, वामिल बालहि जाल बनाइ ।
जामध जीव अनेक फसी पुनि, पावत पीर महा दुख दाइ ।
वा मधि छोह धरी अति सागर, चाहतहो गिरबो किमि धाइ ॥ १८ ॥

जिनके शरीर में कामदेवरूपी बड़ा भारी व्याध है, जिसने अपनी चतुराई जानने के लिए अति मूर्ख पुरुषरूपी पक्षी को फंसाने के लिए मनोहर स्त्रीरूपी जाल बिछा रक्खा है, जिसमें अनेक जीव फंस कर महा दुःख की यातना सहते हैं । हे सागर ! उसमें मोह धारण कर, दौड़ कर क्यों गिरना चाहते हो ? ॥ १८ ॥

सवैया.

दर्शहितें हरि चित्त लियें पुनि, पर्शहितें अति दाम हरे हैं ।
ध्यानहितें हरि धीरलिये पुनि, भूरि अभावन भाव भरे हैं ।
मैथुनतें हरि शक्ति लिये पुनि, संगहितें चित्त लाज हरे हैं ।
ऐसि पिशाचिनि योषितपें किमि, सागर छोहतें मोह धरे हैं ॥ १९ ॥

जो अपने दर्शन से चित्त को चुरा लेती है, स्पर्श करने से धन का हरण कर लेती है, ध्यान करने से धैर्य ले लेती है, और भ्रमाने के लिए जो अनेक भाव बनाती है, मैथुन से जो शक्ति हर लेती है, तथा संग से जो लज्जा हर लेती है । ऐसी पिशाचिन नारी पर, हे सागर ! क्यों प्रेमपूर्वक मोह करता है ? ॥ १९ ॥

सवैया.

ऊपरतें अभिराम लसे पुनि, अंदरमें विष प्राय प्रभाये ।
बोलनमें बहु सीधि लसे पुनि, कैवतसैं भरि कौंधत काये ।
ऐसि यह अवला घुंगुची सम, देखतही दिलमाहि सुहाये ।
वा पर मोह धरी बनि आतुर, सागर क्यों चित्तमाहि लुभाये ॥ २० ॥

यह ऊपर से ही मनोहर दीखती है किन्तु अन्दर से विषके सफ़न प्रभाव रखती है । बोलने में बहुत सीधी प्रतीत होती है, परन्तु इसका शरीर कपट से भरपूर है । यह अवला घुंगुची (रसिका) के समान है, जो देखते ही में दिल बस जाती है । हे सागर ! उस पर मोह धारण कर आतुर होकर क्यों चित्त में लुब्ध हो रहा है ? ॥ २० ॥

कवित्त.

एक अंग बात करे, उरमें उमंग धरी, दूसरेको देखे द्रग, छोह शुभ लाइकें । तीसरेको चितवन, चित्तमें करत पुनि, चातुरको चित्त हरे, शाने समुझाइकें । पांचममें प्रेम धरी, सुरत सकंत करे, सोवतहे शय्यापर, पछे संग जाइकें । ऐसी चर स्नेह धारी, योपापर सागर क्यों, मानसमें मोह पाइ, रहे हो लुभाइकें ॥ २१ ॥

जो हृदय में उमंग धारण कर एक के साथ बात करती है, तो नेत्र में प्रेम भर कर दूसरे को देखती है, और फिर तीसरे का चित्त में चिंतन करती है । चौथे को इशारे से समझा कर उसका चित्त हरती है, पांचवें में प्रेम धर कर मिलने का संकेत करती है, और छठे के साथ जाकर शय्या पर सोती है ।

हे सागर ! ऐसी चंचल स्नेह वाली स्त्री-जाति पर मनमें मुग्ध होकर क्यों लुभा रहा है ? ॥ २१ ॥

लाटानुप्रासालंकार-कवित्त.

धनकी हरन हारी, कष्टकी करन वारी, छोहकों छरन वारी, भावकी भरनहे । धोखाकी धरन वारी, लागीमें लरन वारी, सुरत स्मरन वारी, हियकी हरनहे । उरमें अरन वारी, कामकुं करन वारी, दिलमें डरन वारी, बँने विफरनहे । ऐसे आचरन वारी, स्पामा सुवरन लखि, चाहत नरन कैसैं, पाशमें परन हे ॥ २२ ॥

स्त्री, धन की हरण करने वाली, कष्ट की करने वाली, स्नेह में छल रखने वाली, तथा अनेक प्रकार से भावों की भरने वाली है । धोखा देने वाली, मित्रों में लड़ाई कराने वाली, मैथुन से स्मरण करने वाली, तथा हृदय को हरने वाली है । मन में अटकाने वाली, कामुकता में मग्न रहने वाली, दिल में डरने वाली, और कह कर फिर जाने वाली है । इस प्रकार के आचरण वाली सुन्दर स्त्री को देखकर मनुष्य कैसे चाह कर बन्धन में पड़ जाते हैं ? ॥ २२ ॥

कवित्त.

असित अपार महा, सर्पाकार बेनी ताकों, त्रिवेनी कहींकैं कैसैं, हियो हुलसातहो । भिञ्जुक के भिखनकी, खोपरी कपाल ताकों, भाग्यके भंडार कही, भाव भूरि लातहो । दूषिकाकी खानि द्रग, द्रष्टितें दिखात ताकों, कोमल कमल कही, आनंद उपातहो । ऐतेंही अशुभ महा, योपितके अंग ताकों, शुभ मानी सागर क्यों, मोह मन लातहो ॥ २३ ॥

अत्यन्त काली नागिन के समान बेणी को किस प्रकार त्रिवेणी कह कर हृदय में प्रसन्न होते हो ? भिञ्जुक की भिक्षा की खोपरिरूप कपाल को भाग्य का भंडार कह कर अनेक भाव कैसे लाते हो ? जो देखने में ही कीच की खान हैं, ऐसे नेत्रों को कोमल कमल जैसा कह कर कैसे आनंदित होते हो ? ऐसे

महा अशुभ स्त्री के अंग हैं, उन्हें शुभ मानकर, हे सागर ! क्यों मनमें मोह करते हो ? ॥ २३ ॥

कविच.

सेढाको सदन नाक, निरखिकें नेह धरि, सुंदर सुघट शुक, चंचु सम जानो हो । कीकसके कन महा, रदनकों लखि ताकों, कुंद कली सम सदा, उरही में आनो हो । अश्रम अपार महा, लपनकी लार ताकों, मुधासें सुभग महा, मनहीमें मानो हो । ऐसेही अशुभ महा, गोषितके अंग तापें, छोह धरी सागर क्यों, विमल बखानो हो ॥ २४ ॥

नाक जो कि मल (सेढा) का घर है, उसे देख प्रमन्न होकर सुन्दर सुघर शुक-तुंड के समान जानते हो । कीट के कण जो दांत हैं, उन्हें देखकर कुंद की कली के समान हृदय में मानते हो । आंठों की लार जो कि बहुत ही गन्दी है, उसे अमृत के समान मनमें मानते हो । हे सागर ! इस प्रकार स्त्री के महा अशुभ अंगों पर प्रेम करते हुए उन्हें कैसे पवित्र कहते हो ? ॥ २४ ॥

मृणिका श्रवन वारे, त्वचा टुक जीभ ताकों, अमृतकी खानि कही, उपमा बढात हो । मल मूत धारी महा, मल भरे पेट ताकों, सागर समान कहि, हिये हरखात हो । आमिष अमित भरे, उरु अवलोकि ताकों, मृदु मोचा समकही, शोभा सरसात हो । ऐसेही अशुभ महा, कामिनीकी काया ताकों, शुभ मानी सागर क्यों, मोह मन पात हो ॥ २५ ॥

लार गिराने वाली, चमड़े के छोटे से टुकड़े जीभ को अमृत की खान कह कर उपमा बढाते हो ! महा मल-मूत्र धारण करने वाला जो पेट है, उसे समुद्र के समान कह कर हृदय में प्रमन्न होते हो । बहुत से मांस से भरे हुए उरु को देखकर उसे कोमल कदली-स्तंभ कह कर शोभा बढाते हो । इसप्रकार महा अशुद्ध जो स्त्री का शरीर है, उसे शुभ मान कर, हे सागर ! क्यों मनमें मुग्ध होते हो ? ॥ २५ ॥

कवित्त.

मलमयी गर्त्त महा, नाभिकों निरखिख ताकों, जलभ्रम जैसी महा,
आभा अधिकातहो । मूत्रके मवास खास, सघन जघन ताकों, रतीश रदन-
भूमि, विमल बनातहो । मांस मेद मज्जा अरु, रक्तें भरि काय ताकों, कनक-
लतासी कही, प्रभा पसरातहो । ऐसैंही अशुभ महा, योषितके अंग ताकों,
शुभ मानी सागर क्यों, छोह चित्त लातहो ॥ २६ ॥

मल से पूर्ण महान् गर्त्त नाभि को देखकर उसे पानी का भंवर (जल-
चक्र) कह कर उमकी महान् आभा बढ़ाते हो । ग्वास मूत्र-स्थान को व
सघन जांघों को कामदेव की रंग-भूमि कह कर पवित्र बनाते हो । मांस,
मज्जा, मेद और रक्त से भरे हुए शरीर को स्वर्ण-लतिका कह कर
उसकी कान्ति फैलाते हो । हे सागर ! इस प्रकार नारी के महा अशुभ अंगों पर
मुग्ध होकर क्यों चित्त लगाते हो ? ॥ २६ ॥

भुजंगी छंद.

महा मोहकी जाल जोषा कहावे, उसीपैं उरें मोह क्यों आप लावे ।
कही आदि केते गये सिद्ध भावें, परे प्रेमदा पाश सो पीर पावें ॥ अहल्या
परे प्रेमजो इंद्र लायो, तबे तन्ममें छिद्र अनेक पायो । धरयो प्रेम सीता परे
लंकनार्थे, तबे नाश पायों सबे गोत्र साथें ॥ कियो छोह भस्मासुरं गौरि
गात्रें, तबे भस्म अंगे भयो छिन्न गात्रें । शचीपैं धरयो छोह नर्वोष राये,
तबे सर्प व्हेंकें सहे कष्ट काये ॥ कियो किंचके प्रेम पांचालि अंगे, तबे नाश
पायो सबे आत संगे । यही रीत जो कोउने नारी संगे, किये प्रेमतो पीर
पाये सुअंगे ॥ महा पीरके पाश नारी प्रमानो, लहे कष्ट कायें जही जे
फसानो । मृषा मूह बोले सदा नूर हारी, दिले दोष वारी महा धर्मधारी ॥
बडी बिश्वमें बंचिता वे कहावे, हियासैं हजारो प्रपंचो उपावे । अशुद्धा
अनंता उरें लोभधारी, सदा छोहिके चित्त संतापकारी ॥ हनी नेनके शैल
बाधा बढ़ावे, महा सिद्धके चित्त चोपैं चलावे । उरें जान ऐसी तिया कष्ट-
कारी, तजी घुर्त ताकों किते भस्मधारी ॥ २७ ॥

स्त्री महा-मोह की जाल कही जाती है, तुम उस पर हृदय में क्यों मोह लाते हो ? पूर्वकाल में कितने ही सिद्धों ने भावपूर्वक कहा है कि जो प्रमदा के पाश में पड़ता है वह दुख उठाता है । देखो अहिल्या के प्रेम में इन्द्र पड़ा तो शरीर में अनेकों छिद्रों को प्राप्त हुआ । लंका-पति रावण ने सीता पर प्रेम किया तो गोत्र-परिवार सहित विनष्ट हुआ । भस्मासुर ने पार्वती पर प्रेम किया तो उसका सारा शरीर भस्म हो गया । शची (इन्द्राणी) पर राजा नहुष ने प्रेम किया तो सर्प का शरीर प्राप्त कर अनेक कष्ट उठाये । कीचक ने पांचाली (द्रौपदी) पर प्रेम किया तो सब भाइयों समेत मारा गया । यही नियम है कि जिस किमी ने नारी पर प्रेम किया उसे ही अनेक कष्ट उठावे पड़े । स्त्री को महादुःख का बन्धन समझो, जो उसमें फंसा उसने ही दुख उठाया । वह सदा झूठ बोलने वाली, तेज का हरण करने वाली, हृदय में दूषण रखने वाली, धर्म का हरण करने वाली, और संसार में वड़ी ही ठगिनी कही जाती है । वह हृदय से ही हजारों प्रपंच उत्पन्न कर लेती है । अनन्त अशुद्धियों से युक्त, हृदय में लोभ रखने वाली, और प्रेमी के चित्त में संताप उत्पन्न करने वाली है । नेत्र-बाण मार कर बाधा उत्पन्न करती है, और महासिद्धों के चित्त को भी चंचल कर देती है । स्त्री को ऐसी कष्टकारिणी जान कितनों ही ने तुरन्त उसका त्याग कर वैराग्य ले लिया है ॥ २७ ॥

दोहा—साहस कृत अति छोहिमें, धवकी धूर्ता भाय ।

ऐसी अबला नीचपै, स्नेह चित्त क्यों लाय ॥ २८ ॥

स्नेही में अति साहस करनेवाली और पति को ठगने वाली, ऐसी नीच स्त्री पर, हे सागर ! मनमें कैसे प्रेम लगाया !!! ॥ २८ ॥

यातें यह उपदेशकों, मनन करी मनमांय ।

छोडीकें सब बातकों, गेह पधारो राय ॥ २९ ॥

इसलिए इस उपदेश को मन में मनन करके और सब बातों को छोड़ दो, और हे राजन् ! सुखपूर्वक घर पधारो ॥ २९ ॥

सागरोक्त नारी-प्रशंसा-कथन-दोहा.

सो सुनिके सागर कहे, सुनो सिद्ध महाराज ।

जानतहो तदपी तुमैं, क्यों उचरत इमि आज ॥ ३० ॥

यह सुनकर सागर ने कहा कि, हे सिद्ध महाराज ! सुनो । आप सब जानते हो, फिर भी इस प्रकार क्यों कर कहते हो !!! ॥ ३० ॥

नारी नौतम रतने, नारी तें सब होय ।

नार बिना यह विश्वमें, सुखदायक नहि कोय ॥ ३१ ॥

नारी एक नवीनतम रत्न है, नारी से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं । नारी के बिना इस संसार में कोई भी सुखदायक नहीं ॥ ३१ ॥

सवैया.

कामुकके मन कल्पलता अरु, व्याकुलकों अति धीर धरावन ।

कलांतहिकों विसराम विराजे, प्रेमिनके मन प्रेम बढ़ावन ।

या जगमें विधिने बनिता इसि, जो रचि होत न नेह निभावन ।

तौ भवसागर पैरनकों अति, दीरघ होनहि बलेश करावन ॥ ३२ ॥

कामुक के मन को यह कल्पलता के समान है, व्याकुल को अति धीरज देने वाली है, थके हुआओं को विश्राम देने वाली तथा प्रेमी के मन में प्रेम बढ़ाने वाली है । इस संसार में विधाता ने यदि स्नेह का निर्वाह करने के लिए नारी को न बनाया होता तो यह भव-सागर पार करना अति दुस्तर और कष्टकारक हो गया होता ॥ ३२ ॥

सवैया.

चंद्रसमान हि मोद करे पुनि, रेवतिसैं रतिकी रत्नवारी ।

मद्यसमान हि माद करे पुनि, मित्र समान सदा सहकारी ।

मोहनसैं मनकी हरत पुनि, चेट समान सदा अनुसारी ।

ऐसी तिया नहि होत कदापितो, क्यों करि काटत काल करारी ॥ ३३ ॥

यह चन्द्रमा के समान आह्लाद देने वाली, रेवती के समान प्रीति की रक्षा करने वाली, मय के समान मादक, मित्र के समान सदा सहकारिणी, मोहिनी के समान मन को हरण करने वाली, और चाकर के समान सदा अनुगामिनी है । यदि ऐसी नारी संसार में न होती तो यह कठिन समय क्यों कर कटता ? ॥ ३३ ॥

सवैया.

मंजुल मूरति जाकि लसे पुनि, प्रेममयी सब देह दिखावे ।
सीधि स्वभावहि मांहिलसे पुनि, वाम विलास अपार उपावे ।
एसि मृगाक्षि असार संसारमें, सुन्दर सार स्वरूप कहावे ।
वाहिकों नेक विचार किये बिन, निंदतहों किमि आप अभावे ॥ ३४ ॥

जिसकी मूर्ति अति मंजुल है, तथा सारा शरीर जिसका प्रेममय दिखाई पड़ता है । स्वभाव जिसका अति मरल, और अनेक प्रकार के उपायों से जो मनोहर विलासकारिणी है । इस असार संसार में ऐसी मृगनयनी सारमय सुन्दरी है । बिना विचार किए आप उसी की किस प्रकार निंदा करते हो ? ॥ ३४ ॥

येहि असार संसारनमें पुनि, सार नितंबिनी नेक निहारी ।

शंकरने धरि गोद शिवा पुनि, केशवने कमला ग्रह धारी ।

दानव मानव देव सबे पुनि, चाहत यों धरि छोड़ अपारी ।

एसि अनूपम योषितकों किमि, निंदत आप वनी अबचारी ॥ ३५ ॥

इस असार संसार में स्त्री को ही थोड़ा सा सुन्दर सार समझ कर शंकर ने पार्वती को गोद में धारण किया, और विष्णु भगवान् ने लक्ष्मी को घर में धारण किया है । मनुष्य, देव और दानव सब ही अपार प्रीतिपूर्वक इसे चाहते हैं । ऐसी अनुपम नारी की निंदा आप अविवचारी बन कर कैसे करते हो ? ॥ ३५ ॥

कवित्त.

सेजमें सुखद आराम, राजत रतिसी पुनि, काम शास्त्रें सोहे रूप,
साक्षात् समरकों । गुह्य समीप लसे, मूर्तिमान लाज पुनि, काज करिबमें

अर्थ, सोर अनुचरकों । इंदिरासी आलयमें, ओपेत अमित पुनि, सलाह सचिव सम, देत निज वरकों । ऐसी अभिराम वाम, कर्त्तें जो न कीनी होत, कैसे तो तिरत भव, सागर दुस्तरकों ॥ ३६ ॥

शय्या में मनोहर रति के समान सुख देने वाली, कामशास्त्र में साक्षात् कामदेव के समान शोभायमान, सास-ससुर के समक्ष साक्षात् लज्जा की मूर्ति, गृह-कार्य में नौकर चाकर के समान, घर में लक्ष्मी के समान शोभायमान, और अपने पति को मंत्री के समान सलाह देने वाली, ऐसी मनोहर स्त्री यदि विधाता ने न बनाई होती तो यह दुस्तर भव-सागर मनुष्य कैसे पार करता ? ॥ ३६ ॥

सास और ससुर लुकों, नम्रतासे नेह भरी, सेवत सदाय चाह, चित्तमें बढाइकें । स्वामीके सखानि साथ, विनीत रहत पुनि, सौतके हरत निच, मंद मुसकाइकें । आश्रितपें अनुकंपा, स्वजनमें छोह पुनि, वंछित करतकाज, दिये हरखाइकें । ऐसी वर बनिताके, गुननकों ग्राह बिन, निंदतहो आप कैसे, भूलमें भ्रमाइकें ॥ ३७ ॥

सास और ससुर की अति नम्रता तथा प्रेम से सदा सेवा करती है, अपने पति के मित्रों के साथ सदा विनम्र रहती है, सौत के घमंड को मंद मुसकान से हरण कर लेती है, अपने आश्रितों पर सदा दया-भाव रखती है, स्वजनों में प्रेम और उचित कार्य को हर्षित होकर करती है । ऐसी अष्ट स्त्री के गुणों को ग्रहण किए बिना आप भूल में अस्मित होकर कैसे निंदा करते हो ? ॥ ३७ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

भूलत नाहि भ्रमाइकें, स्यामा संगे काय ।
निर्बल बनिके नर सबे, व्याधि वपुमें पाय ॥ ३८ ॥

अश्वत्थ-सिद्ध ने सागर से कहा कि, 'हे सागर ! मैं अमरवश भूलता नहीं हूँ । स्त्री के संगे सोसभी पुरुष बलहीन होकर शरीर में रोग प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त—सवैया.

जो कुच मिजनेतें तनके सब, बात रुजा मिटजात अपारे ।
 पान किये अधरामृतके पुनि, पित्त प्रकोपकें पुंज प्रजारे ।
 काम किडा भ्रममें सबही कफ, नाशतहे नरके निरधारे ।
 एसि तिया गदहारिनों किमि, निंदतहो निज बीन बिचारे ॥ ३६ ॥

सागर ने कहा कि, हे सिद्ध महाराज ! जिसके कुच के मर्दन से शरीर की सब बात-व्याधि मिट जाती हैं, जिसके अधरामृत का पान करने से पित्त का सारा प्रकोप नष्ट हो जाता है, और काम-क्रीडा के भ्रम से निश्चित-रूप से मनुष्य के शरीर के सब कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं, ऐसी सब रोग शमन करनेवाली स्त्री की आप बिना बिचारे क्यों निंदा करते हो ? ॥ ३६ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त—दोहा.

नारी निंदन योग्यहे, आलममें यों जान ।
 कोविदने कीने नहीं, वाके विमल बखान ॥ ४० ॥

सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! स्त्री संसार में निंदा के ही योग्य है, ऐसा समझो । क्यों कि पंडितों ने कहीं उसकी बड़ाई नहीं की है ॥ ४० ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त—कवित्त.

स्यामाके चरित्र केते, कोविदने कीने पुनि, केते छवि साजतहे,
 उपमा अपार दी । केते गुन गावतहे, उरमें उमंग धरि, केते करि कीरतकों,
 विश्वमें विस्तार दी । केते कल्पलता जान, कविता करत पुनि, केते कहि
 गये आगे, विविध विहार दी । ऐसी जग जोषा जो न, कीनी होत कर्त्ताने
 तौ, कविता न होत एती, कवि होत दारदी ॥ ४१ ॥

तब सागर ने कहा कि, हे स्वामी ! कितने ही पंडितों ने स्त्रियों के चरित्र का बर्णन किया है । कितने ही पंडितों ने स्त्रियों के अंगों की अनेक सुन्दर उपमाएं दी हैं । कितनों ही ने अति उमंग युक्त हो उसका गुण-ज्ञान किया है ।

कितनों ही ने उस की कीर्ति का संसार में बिस्तार किया है । कितने ही उसे कल्प-रुता समझ कर काव्य करते हैं, और कितने ही उसे अनेक प्रकार की बिहार देने वाली कह गए हैं । यदि जगत्कर्ता ने ऐसी स्त्री की रचना न की होती तो इतनी कविता ही न होती, और कवि लोग सब दरिद्री होते अर्थात् स्त्री के बिना वे किस पर कविता करते ? ॥ ४१ ॥

कवित्त.

भगवती भागवत, भामिनी तें बने पुनि, जानकीतें रामायन, वाल्मीकें विस्तारदी । नाटक नबिन केते, रामातें रचाये पुनि, कथा केती कामिनीकी, पंडितें पसारदी । अरबीमें अलेफ लेली, बात बनितासैं बनि, विश्वमें विराजतहे, आनंद अपारदी । ऐसी जग जोषा जो न, कीनी होत कर्त्ताने तौ, कविता न होत एती, कवि होत दारदी ॥ ४२ ॥

भगवती भागवत (पुस्तक) स्त्री-चरित्र से ही बनी है, रामायण का विस्तार भी वाल्मीक ने सीताजी से ही किया है । कितने ही नवीन नाटक स्त्रियों से ही बने हैं, पंडितों ने कितनी ही कथाएं कामिनी के वर्णन से ही की हैं । अरबी में अलिफ-लैला की कथा भी स्त्री से ही बनी है, जो कि संसार में अपार आनन्द देती है । ऐसी स्त्रियों को यदि जगत्कर्त्ता ने न सृज्य होता तो इतनी कविता न होती, और काव्य-साहित्य तथा कवि लोग दरिद्री होते ॥ ४२ ॥

सवैया.

या दुखदाय संसारहिमें इक, सार तिया सुखदाय निहारी ।
केशव सेवतहै कमला पुनि, शंकरने गिरिजा ग्रह धारी ।
ऐसि अपूरव योषितकों पुनि, निंदत नाहक शोच बिनारी ।
जो वह निंदन योग्यहि होततों, चाहत क्यों हरि संछु सदारी ॥ ४३ ॥

इस दुखदायक संसार में साररूप एक स्त्री को ही समझ कर बिष्णु भगवान् ने लक्ष्मी को सेवन किया, और भगवान् शंकर ने पार्वतीजी को घर में

ग्रहण किया । ऐसी अपूर्व स्त्री की निन्दा बिना विचारे व्यर्थ ही करते हो, यदि वह निन्दा योग्य होती तो फिर विष्णु और शिव सदा उसे क्यों चाहते ? ॥४३॥

चोपाई.

सोहतहै यह आलममांय, साररूप इक नार सदाय ।
 नार बिना नव होये याग, नार बिना नव पाये राग ।
 नार बिना नव सोहे ओक, नार बिना नहि राजे लोक ।
 नार बिना नव करे विसास, नार बिना नव राखे पास ॥
 नार बिना नहि पित्र प्रसन्न, नार बिना को रांवे अन्न ।
 नार बिना नहि संतति होत, संतति बिन नहि बाढे गोत ॥
 गोत बिना नहि स्वरगे जाय, विबुध वदत योंशास्त्र बताय ।
 ऐनि अपूरव नार कहाय, कल्पलता सम भवमें भाय ॥ ४४ ॥

इस संपार में सदा साररूप एक स्त्री ही शोभित है । नारी के बिना अकेले पुरुष से यज्ञ नहीं होता । स्त्री के बिना राग यानी प्रेम अथवा गायन नहीं प्राप्त होता । स्त्री के बिना घर की शोभा नहीं । स्त्री के बिना संसार की शोभा नहीं । बिना स्त्री के पुरुष का कोई विश्वास नहीं करता । बिना स्त्री वाले पुरुष को कोई पड़ोस में नहीं रखता । स्त्री के बिना पितर प्रसन्न नहीं होते । स्त्री न हो तो अन्न कौन पकावे ? स्त्री के बिना संतान नहीं हो सकती, और संतान के बिना गोत्र-वृद्धि नहीं होती । बुद्धिमान लोग और शास्त्र यों कहते हैं कि गोत्र के बिना स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती । इस प्रकार यह स्त्री-जाति संसार में कल्पलता के समान है, और अपूर्व कही जाती है ॥ ४४ ॥

सारालंकार-सवैया.

छाजतहै छिति मंडलमें इक, सार मनोहर पूर प्रमानो ।
 पूरहिमें इक सार सुहावत, सुंदर सौंध महा महकानो ।
 सौंधहिमें इक सार लसे पुनि, सुंदर सेज सदा उर आनो ।
 सेजहिमें पुनि रत्न प्रभासम, सार सबे सुखको तिय जानो ॥ ४५ ॥

पृथ्वीमंडल में एक तेज का सार और मनोहर नगर है, उस नगर में एक अति सुन्दर विशाल और सुगन्धयुक्त अट्टालिका है, उस अट्टालिका में सदा एक सुन्दर साररूप शय्या शोभित है, और उस शय्या में रत्न की कान्ति के समान सब सुखों की आगर स्त्री को जानो ॥ ४५ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

मंजुल मान महेलिका, बहुविध करत बखान ।

पै न पिछानत पिंडमें, नारी नर्क निदान ॥ ४६ ॥

सिद्ध ने सागर से कहा कि, स्त्री को मनोहर मान कर अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हो, परन्तु शरीर में देखते नहीं कि वह नरक की मूल कारण है ॥ ४६ ॥

तृण तुल्य जानत तापसी, अघ सम जानत योगि ।

ऐसी अबला अधमकी, क्यों चाहत बनि भोगि ॥ ४७ ॥

जिसे तपस्वी तृण के समान और योगीजन पाप के समान समझते हैं, ऐसी अधम नारी-जाति को तुम भोगी बनकर क्यों चाहते हो ? ॥ ४७ ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त-सवैया.

त्यों लगि तापसके तपही पुनि, त्यों लगि मौन धुनी मुखमांड़ ।

त्यों लगि योगिन योग लसे पुनि, त्यों लगि सिद्धनकी सिधताइ ।

त्यों लगि ज्ञानिके ज्ञान लसे पुनि, त्यों लगि साधुनकी शुभताइ ।

ज्यों लगि कंकट्रगी शरकादाहि, आइ लगे नहि वा हियमांड़ ॥ ४८ ॥

सागर ने सिद्ध से कहा कि, तपस्वी की तपस्या तभी तक है, मुनियों के मुख में मौन तभी तक है, योगियों का योग भी तभी तक है, सिद्धों की सिद्धाई भी तभी तक है, ज्ञानियों का ज्ञान भी तभी तक है, और साधुजनों की शुभ साधुता भी तभी तक है, जब तक कि उनके हृदय में मृगनयनी के कटाक्षरूपी बाण आकर नहीं लगे हैं ॥ ४८ ॥

सवैया.

त्यों लागि धीरकी धैर्य रहे पुनि, त्यों लागि बुद्धि बसे मनमांइ ।
 त्यों लागि वेद पुरान पढे पुनि, त्यों लागि धर्म रहे उर छाइ ।
 त्यों लागि दक्ष कहावतहे पुनि, त्यों लागि चित्तमें सत्य सुहाइ ।
 ज्यों लागि चंद्रमुखी गजगामिनी, नार इकंत न द्रष्टें दिखाइ ॥ ४६ ॥

धीरवान् का धीरज तभी तक है, बुद्धिमान् की बुद्धिमत्ता तभी तक है, वेद-पुराण का पाठ भी तभी तक है, धर्म का वास भी हृदय में तभी तक है, तभी तक मनुष्य कार्य-कुशल कहा जाता है, और तभी तक चित्त में सत्य के प्रति प्रीति रहती है, जब तक कि चन्द्रमुखी गजगामिनी का एकान्त में दर्शन न होवे ॥ ४६ ॥

दोहा-एसि अपूरव योषिता, पूर्व पुन्यते पाय ।

विलसत वाके संगमें, सो नर धन्य कहाय ॥ ५० ॥

इसप्रकार की अत्युत्तम स्त्री पूर्व पुण्य से प्राप्त कर, उसके साथ में जो विलास करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं ॥ ५० ॥

सवैया.

स्नान करी शुचि रोज रहे पुनि, चारु सुगंध शरीर लगावे ।
 वत्सल बैन बदे मुखते पुनि, न्याद निते निज सूक्ष्म पावे ।
 सो नहि मानव देव समानहि, या छितिमें सुखदाय सुहावे ।
 एसि अपूरव योषितकों नर, पावत सो बड भागि कहावे ॥ ५१ ॥

जो हमेशा स्नान करके पवित्र रहती है, और शरीर पर सुन्दर सुगन्ध लगाती है, सुखमयी प्रेमयुक्त वाणी सुख से बोलती है, और सूक्ष्म आहार करने वाली है, वह इस पृथ्वी पर मानव नहीं है, प्रत्युत देवता के सगण सुखदायिनी सुशोभित है । ऐसी अपूर्व स्त्री को जो बडभागी पुरुष है, वही पाता है ॥ ५१ ॥

कवित्त.

आवत विलोकी नाथ, उठि चलि आगें पुनि, नम्रतासैं नेहभरे, बोलत वचनहे । आसन बिछाय अरु, चर्चा करि उमंगतैं, सेवत स्वअंगे धरी, द्रष्टि वा चरनहे । सोबत सुलाय पीछे, उठतहे आगें अरु, आछे रवि अन्न करे, पतिकों प्रसन्नहे । ऐसी अभिगम बाम, पाई पूर्व पुन्ये कोउ, भोगवत भर्ता सोई, धरनीमें धन्यहे ॥ ५२ ॥

स्वामी को आता हुआ देखकर आगे चल कर आती है, और नम्रता से स्नेहपूर्वक वचन बोलती है । आसन बिछाकर अति उल्लाम के साथ वार्तालाप करती और चरणों पर दृष्टि रखते हुए स्वयं सेवा करती है, और स्वामी को सुला कर पीछे स्वयं मोती तथा पहिले उठती है, सुन्दर भोजन बनाकर पति को प्रमन्न करती है । ऐसी मनोहर स्त्री को पूर्व पुण्य के प्रताप से ही जो कोई पत्नीरूप में पाकर भोग करता है, वह पति संसार में धन्य है ॥ ५२ ॥

सुन्दर स्वरूपवान, नागरी नीकाइ भरी, कोमल कुलीन लसे, शोभा सरसाइकें । प्रेम भरी प्रियवदे, वचन बिमल पुनि, सदा अनुकूल रहे, छोड़ चित्त लाइकें । आवत आलोकी कंत, आगें चलि आनंदसे, आदर करत अति, मंद सुसक्याइकें । ऐसी तिय संग सदा, बिलसी बितात आयु, यातैं अन्य धन्य कौन, ओपे अधिकाइकें ॥ ५३ ॥

सुन्दर स्वरूपवाली, चतुर एवं अनेक गुणों से भरी हुई, कोमलांगी और शोभा-युक्त, प्रेमपूर्ण प्रिय वचन बोलने वाली, हृदय में स्नेह रखते हुए अनुकूल रहने वाली, पति को आते हुए देख आगे चल कर आनन्द के साथ मुमकराती हुई स्वागत करने वाली, ऐसी स्त्री के साथ विलाम करते हुए आयु व्यतीत करने वाले से बढ़कर इस संसार में और कौन धन्य है ? ॥ ५३ ॥

जैसे जलधिके तीर, बीचि ना दिखातर, अंदरमें अनोपम, ओपे उफनाइकें । तैसें जिस द्रष्टि नाहि, बाह्यते चपलपर, ओपत उमंगमांहि, सुंदर सुहाइकें । जैसें कलिगंध रही, भीतर प्रभाय तैसें, जाकी मन वृति

लसे, मनमें समाइकें । ऐसी अभिराम सति, जाके ग्रह राजतहै, बाके बड-
भाग्य भूरि, सोहे सरसाइकें ॥ ५४ ॥

जैसे समुद्र के किनारे तरंगें नहीं दिखाई पड़ती, परन्तु मध्य में सुन्दर तरंगे
हिलोरें लेती रहती हैं, इसी प्रकार जो बाहर से दृष्टि में चपल नहीं दीखती है,
परन्तु अन्दर उमंगों से भरी हुई है, और जिस प्रकार पुष्प की कली का गंध
भीतर ही रहता है, उसी प्रकार जो अपनी प्रभा को भीतर रखने वाली तथा मन
की वृत्तियों को मन में ही रखने वाली है, ऐसी मनोहर स्त्री जिसके घर में
सुशोभित है, वह महान् भाग्यशाली होकर सरस शोभित होता है ॥ ५४ ॥

जाकी तिय जगतमें, पुनित प्रभाय पुनि, सर्वमें शयानी सदा, प्रेममें
प्रमानियें । कंतकी इच्छानुसार, करतहे काज पुनि, बोलत मधुर बैन, सुधा
सम जानियें । सोइ या संसार मांहि, राजतहे रमा पुनि, और रमा रमा
नहि, प्रज्ञातें पिछानियें । ऐसी अभिराम वाम, पाय पूर्व पुन्यहितें, यातें
अन्य सुखी कौन, विश्वमें बखानियें ॥ ५५ ॥

जिसकी स्त्री संसार में पवित्र है, सब से चतुर है, और मदा प्रेम से परिपूर्ण
है, अपने पति की इच्छानुसार कार्य करती है, और अमृत के समान मधुर
वचन बोलती है, वही स्त्री इस संसार में लक्ष्मी के समान शोभित है, और कोई
लक्ष्मी लक्ष्मी नहीं है, ऐसा बुद्धि से जानना चाहिए । ऐसी मनोहर स्त्री को
पूर्व पुण्य से प्राप्त करने वाले से अधिक सुखी संसार में और किसको वर्णन
करें ? ॥ ५५ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

नारीमें नौतम कहा, निरखी नीके अंग ।

बरनत बारंबार हो, उरमें धारि उमंग ॥ ५६ ॥

तब सिद्ध ने सागर से कहा कि, हे सागर ! स्त्री के अंग में ऐसी कौनसी
नवीनता और उत्तमता तुमने देखी, जिस पर हृदय में उमंग धार कर बार २
वर्णन करते हो ? ॥ ५६ ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त-कवित्त.

लोकमें विलोकनके, योग्य अभिराम महा, प्रेममें प्रसन्न मुख, प्यारीको प्रमानियें । सौरभमें चारु वाके, वदनकी वास पुनि, स्वादमें सुधामें ताके, ओष्ठरस आनियें । चितनमें अदायुत, यौवन अनूप पुनि, छुयेमें सुखद वाके, शरीरकों जानियें । ऐसी अभिराम वाम, त्यागीके विरागी बने, याते और अज्ञ कौन, विश्वमें बखानियें ॥ ५७ ॥

तब सागर ने सिद्ध से कहा कि, संसार में देखने योग्य अति सुन्दर प्रेम से प्रसन्न प्यारी का मुख ही है । सौरभ में उसके मनोहर मुख की गंध है, स्वाद में सुधा के समान उसके अधराऽमृत को ही समझिये । चितन करने में उसके हाव-भाव से युक्त यौवन की अनुपम छटा है, और स्पर्श करने में उसके शरीर का सुखद स्पर्श ही श्रेष्ठ समझिये । ऐसी मनोहर स्त्री को छोड़ कर जो विरागी बने, उससे बढ़ कर अज्ञानी संसार में और किसको कहा जाय ? ॥ ५७ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

अज्ञ नहीं यह सुझ है, छोरत जे तिय संग ।

वा छोरे बिन कोउदिन, पाय न प्रभुता अंग ॥ ५८ ॥

सागर से सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! जो स्त्री का संग छोड़ता है वह अज्ञ नहीं, प्रत्युत बुद्धिमान है, क्योंकि उसके छोड़े बिना कभी शरीर में प्रभुत्व नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ५८ ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त-दोहा.

प्रीट प्रभुता पाइके, सेवत नार सदाय ।

ऐसे या आलम विशे, तुमकों देहु दिखाय ॥ ५९ ॥

तब सागर ने सिद्ध से कहा कि, हे सिद्ध महाराज ! पूर्ण प्रभुता प्राप्त कर जो सदा स्त्री का सेवन करते हैं ऐसे व्यक्ति इस संसार में मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ ५९ ॥

कवित्त.

गिरजाकों गोद धरी, राखतहै रुद्र पुनि, रमाकों रमेश नित्य, सेवे
छोह धारकें । सावित्रीकों चाह धरी, सेवत स्वयंभु पुनि, शचीकों चहत
शक्र, नेहतें निहारकें । यातें उर जाने हम, मनमें विचार करि, सेवनके
योग्य यह, सबही संसारके । नारी होत निंदा तो या, व्रजमें विहारी बनि,
कान्ह क्यों करत संग, सोरह हजारके ॥ ६० ॥

देखिए भगवान् शंकर पार्वती को गोद में रखते हैं, विष्णु भगवान्
सदा प्रेमपूर्वक लक्ष्मी का सेवन करते हैं, ब्रह्मा सदा सावित्री की इच्छा चाह
से करते हैं, और इन्द्र हमेशा शची को प्रेम से देखते हैं । इससे मैंने मन में
विचार कर देखा कि यह (स्त्री) सारे संसार के सेवन-योग्य है । यदि स्त्री निंदा
के योग्य होती तो भगवान् श्री कृष्ण विहारी बन कर व्रज में सोलह हजार
गोपियों के साथ क्यों विहार करते ? ॥ ६० ॥

दोहा—यातें यह जाने हमें, योषा एक अनूप ।

नहि निंदनके योग्यहे, शामा शक्ति सरूप ॥ ६१ ॥

इसलिए मैं तो यह जानता हूं कि नारी एक अनुपम है, यह निन्दा के
योग्य नहीं, प्रत्युत साक्षात् शक्ति-रूप है ॥ ६१ ॥

पादाकुलक—छंद.

आदि शक्ति इक नार कहावे, शक्ति बिना नहि कोउ रहावे । शक्ति
घटतहे जिनके गातें, कर्म कछु नहि होवत बातें ॥ बोलत चालत जे तुम
नीके, सोइ प्रताप मनो उनहीके । याके रूप अनेक कहावे, यथायोग्य
सब ठौर रहावे ॥ ब्रह्म संगतें माया राजे, शंकरसैं पुनि शक्ति बिराजे ।
पूर्ण प्रकृती पूरूप संगे, सहित चंडी दानव दंगे ॥ अक्षपूग्णा व्हे निज
अंगे, पोषत सबही जीव उमंगे । धारारूप बनी सब धारे, जननी जेकें जने
अपारे ॥ बनिता बनिकें करत विहारा, प्रेम पसारी सर्व संसारा । सोइ सना-
तन शक्ति कहावे, सचराचरमें सोइ सुहावे ॥ सेवत हरिहर ब्रह्मा जाकों,

तदपी पार न पावत वाकों । एसि अपूरव नारि कहावे, जातें सर्व संसार
सुहावे ॥ निंदतहो किमि वा तरुनीकों, जातें जन्म भयो तुम नीको । देखो
दिलके मांहि विचारी, यातें आप बनत अपकारी ॥ ६२ ॥

स्त्री ही एक आदि-शक्ति कहाती हैं, और शक्ति के बिना कोई रह नहीं सकता ।
जिसके शरीर में शक्ति घट जाती है उससे कोई कार्य नहीं होता । आप जो
भलीप्रकार बोलते चालते हो, यह भी उसी का प्रताप है । इस (शक्ति) के अनेक रूप
हैं, और यह यथायोग्य सब स्थान पर वाम करती है । यह ब्रह्मा के साथ मायारूप
में, शंकर के साथ शक्ति के रूप में, पुरुष के साथ पूर्ण प्रकृति के रूप में,
दानव के साथ चंडी के रूप में, और शरीर में अन्नपूर्ण रूप होकर सब जीवों
का पालन-पोषण करती है । यही पृथ्वी रूप होकर सबको धारण करती है, जननी
होकर सबका जनन करती है, वनिता-रूप होकर विहार करती है, और सारे संसार
में प्रेम का प्रसार करती है । वही सनातन शक्ति कहलाती है, चराचर जगत्
में वही शोभित है । ब्रह्मा विष्णु, और महेश जिसका सेवन करते हैं, तथापि
जिसका पार नहीं पाते, ऐसी नारी-जाति अपूर्व है, जिससे कि सारा संसार शोभित
है । उस स्त्री-जाति की तुम किसप्रकार निन्दा करते हो जिससे कि आपने यह
सुन्दर जन्म धारण किया ? मन में विचार कर देखो कि ऐसा करने से आप
अपकारी बनते हो !!! ॥ ६२ ॥

दोहा.

सिद्ध सुनी सो कानमें, मंद मुखे मुसकाहि ।
सागर छोड़ सराहिकें, कहन लगे पुनि वांहि ॥ ६३ ॥

सिद्ध वे सब बातें सुनकर मन्द मुसकान के साथ सागर के प्रेम की सराहना
करते हुए उससे कहने लगे ॥ ६३ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

धन्य धरापें छोड़ तुम, धन्य तुम्हारी मात ।
जिसने जाये जगतमें, तोसें तनु अवदात ॥ ६४ ॥

इस पृथ्वी पर तुम्हारा प्रेम धन्य है ! तुम्हारी माता को धन्य है ! जिसने तुम जैसे अवदात गुणों वाले पुत्र-रत्न को इस जगत् में जन्म दिया ॥ ६४ ॥

दोहा.

सागर तुम सागर खरे, सत्य स्नेहके भाय ।

अन्य सागर सागर नहीं, द्रगतेँ जे दरसाय ॥ ६५ ॥

हे सागर ! वास्तव में तुम ही सत्य-स्नेह के सबे सागर हो । और जो यह दृष्टि से सागर दिखाई पड़ता है वह सागर, सागर नहीं है ॥ ६५ ॥

सोहत केती चित्तमें, अबलापर आसक्ति ।

काथ लसत पुनि केतनी, परम प्रेमकी भक्ति ॥ ६६ ॥

यह जानन उर आदिमें, उलटी किय कछु बात ।

पै प्रगटे पूरन तुमे, अनुरागी अवदात ॥ ६७ ॥

तुम्हारे मन में स्त्री पर कितनी आसक्ति है, तथा शरीर में परम प्रेम की कितनी भक्ति है, यह जानने के लिए मैंने प्रारंभ में कुछ उलटी बात की, परन्तु (अब ज्ञात हुआ कि) तुम्हारे अन्दर पूर्ण अवदात अनुराग प्रकट हो गया है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

जानत हो पुनि जगतकों, यथायोग्य निज गात ।

यातेँ हम हरखित भये, सोत्रे सुनि तुम बात ॥ ६८ ॥

और तुम संसार को अपने अन्दर यथायोग्य जानते हो । इसलिये तुम्हारी बातें कानों से सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई ॥ ६८ ॥

यों उचरी आनन्द तेँ, उरमें धरि अनुराग ।

सागरकों कहने लगे, दिल चाहे सो मांग ॥ ६९ ॥

हृदय में प्रेम धारण कर आनन्दपूर्वक इसप्रकार कहते हुए सागर से कहने लगे कि, जो इच्छा हो वह मांगो ॥ ६९ ॥

गाहा.

प्रमदाकी परशंसा, सिद्ध समीप कीनी शुभ सागरें ।

अष्टसप्तति अभिधानं, पूर्ण प्रबिन सागरों लहरं ॥ ७० ॥

सागर ने सिद्ध के समीप प्रमदा (स्त्री) की प्रशंसा की । इस वर्णनवाली प्रवीणसागर की यह अठहत्तरवीं लहर सम्पूर्णा हुई ॥ ७० ॥



७६ वीं लहर

सिद्धोक्त सातों मित्र का पूर्वभाव तथा भक्ति-
योगकथन प्रसंग—दोहा.

शीश नमाइ सिद्धकों, पुनि परसीकें पाय ।

कहन लगे सागर तबे, हर्ष धरी हियमांय ॥ १ ॥

तब सागर सिद्ध को मस्तक मुका और उनके चरणों का स्पर्शकर हृदय में हर्षित होकर कहने लगा ॥ १ ॥

प्रसन्न भयेहो प्रेमतें, मुंझपर जो महाराज ।

इक संशय हम उर बसे, सोइ मिटावहु आज ॥ २ ॥

हे महाराज ! यदि आप प्रेम से मुझपर प्रसन्न हुए हो, तो मेरे हृदय में एक संशय विद्यमान है, उसे आज मिटाइये ॥ २ ॥

सागर बूझे सिद्ध प्रति, अहो सिद्ध महाराज ।

अद्भुत संशय एकहे, सो तुम छेदहु आज ॥ ३ ॥

सागर ने सिद्ध से पूछा कि हे सिद्ध महाराज ! मेरे हृदय में एक अद्भुत संशय है, सो उसे आज मिटाइये ॥ ३ ॥

दोहा—स्वारथि सब संसारहे, बिन स्वारथी न कोय ।
सब अपनी मतलब लिये, मित्र अमित्रहि होय ॥ ४ ॥

यह संसार स्वार्थी है, बिना स्वार्थ के कोई नहीं । अपने २ मतलब को लेकर सब मित्र और शत्रु बनते हैं ॥ ४ ॥

सुखमें सब जन मित्रहे, रहे दुःखमें दूर ।
दूर न वहे दुःखमें, सत्यहि मित्र जरूर ॥ ५ ॥

सुख में तो सब ही मित्र होते हैं और दुःख में दूर हो जाते हैं । सच्चा मित्र वही है जो दुःख में दूर न होवे ॥ ५ ॥

मात तात सुत भ्रात तिय, सबही मिलिहे सेल ।
सत्य मित्र संसारमें, मिलन महा मुश्केल ॥ ६ ॥

मां-बाप, पुत्र, भाई और पत्नी सबका मिलना सहज है, परन्तु संसार में सच्चा मित्र मित्र मिलना कठिन है ॥ ६ ॥

पादाकुलक-छंद.

या जगमें सब स्वारथि कहावे, स्वार्थ बिना नहि कोउ सुहावे । जितनो जामें स्वार्थ रहावे, तितनो तापर प्रेम जनावे ॥ बिना स्वार्थ नहि चाहत कोउ, साथी चेट कहावत जोउ । संपत्तिमें सब मित्र सुहावे, आपत्तिमें नहि आश्रय बतावे ॥ आपत्तिमें दुखि देखि दुखाइ, आइ करत जे साह्य सदाइ । सो सत मित्र सदाय कहावे, पूर्व पून्यतैं को जन पावे ॥ भेरे यह षट संगी दाजे, सो सबही सत मित्र विराजे । हम सुखितें सब सुखिया होवे, हम दुखितें सब दुखिछे रोवे ॥ हम सोवत तो सोवत येही, हम बैठत तो बैठत वैही । हम पावत तों वे सब पावे, नांतर सब उपवासि रहावे ॥ हम

दुखि बे भगुवे तनु धारे, तौ दुखि बे भगुवे सब धारे । यों हम संग राजे
रहावे, प्रान एक तन भिन्न दिखावे ॥ ७ ॥

इस संसार में सब स्वार्थी कहे जाते हैं, बिना स्वार्थ के कोई भी नहीं है । जिसमें जितने स्वार्थ की आशा हांती है उसमें उतना ही प्रेम दर्शाते हैं । जो साथी या नौकर कहे जाते हैं बिना स्वार्थ के कोई किसी को नहीं चाहता । सम्पत्ति में सब मित्र होते हैं, परन्तु आपत्ति में कोई साथ नहीं देता । आपत्ति के समय दुःख दिखाई पड़ने पर जो आकर सहायता करते हैं वे ही सब मित्र कहे जाते हैं, और ऐसे मित्र किसी को पूर्व पुण्य से ही मिलते हैं । मेरे जो यह छः साथी हैं, वे हम सब सातों मित्र हैं । मेरे सुखी होने से वे सब सुखी और दुःखी होने से वे सब दुःखी हांते हैं । मैं सोता हूं तो वे सोते हैं । मैं बैठता हूं, तो वे बैठते हैं । मैं खाता हूं, तो वे खाते हैं, नहीं तो सब उपवास से रहते हैं । मैंने दुःखी हांकर भगवे कपड़े पहिने, तो उन सब ने भी दुःखी होकर भगवे वस्त्र परिधान कर लिए । हम सब इस प्रकार एक साथ रहते हैं, मानों सबका प्राण एक और केवल शरीर भिन्न २ हैं ॥ ७ ॥

दोहा—त्यागी सब मेरे लिये, श्यामा सुत सुखदाय ।

योगी व्हेकें अहरनिशि, कष्ट सहतहे काय ॥ ८ ॥

मेरे लिए ये सब लोग योगी बन सुखदायी पुत्र, स्त्री को छोड़ त्यागी होकर रात-दिन कष्ट सहन करते हैं ॥ ८ ॥

ऐसे यह कालि कालमें, मित्र मिले नहि कोय ।

तदपी तैसें पाय हम, यह संशय उर मोय ॥ ९ ॥

इस कलिकाल में ऐसे मित्र किसी को नहीं मिलते फिर भी ऐसे मित्र पाकर मेरे हृदय में संशय हांता है ॥ ९ ॥

हम संगे किमि कायमें, कष्ट सहतहे सोय ।

कारन वाके कीजियें, जैसा जेही होय ॥ १० ॥

ये लोग मेरे साथ क्यों शरीर पर कष्ट सहन करते हैं ? इसका कारण जैसा होवे कृपाकर कहिये ॥ १० ॥

दोहा—पूरव भवके प्रेमके, नाताहे कछु और ।

यथायोग्य सब कीजिये, दयाकरी शिरमोर ॥ ११ ॥

यह पूर्व जन्म का प्रेम है अथवा और कोई नाता है ? हे श्रेष्ठ ! दया करके सब याथातथ्य बताइये ॥ ११ ॥

हम सातों सत मित्रहे, प्रान एक तन भिन्न ।

एक दुखी जोगी भये, सब जोगीपन लीन ॥ १२ ॥

हम सातों सब मित्र हैं, हमारे प्राण एक और केवल शरीर भिन्न २ हैं । एक दुखी होकर योगी हुआ तो सबने यांग ले लिया ॥ १२ ॥

तोटक छंद.

धन धान्य पुनी तजि जन्मधरा, भगवा लिय अंग धरी कपरा । तजि पुत्र कलत्र सहोदरकुं, तजि लोकन लाजहुके डरकुं ॥ निज मित्र दुखे दिल दुःख धरी, बनवासकि पीर कबूल करी । सुखदायक सेन पलंग तजी, निज मित्र लिये मृगञ्जार भजी ॥ अम मित्र कलीजुगमें न मिले, यह संशय हे अति मोहि दिले । भव पूरवको ज्यु संबंध यह, मनमें हम यों अनुमान लहे ॥ कहहु यह पूर्व संबंध कहा, तुम जानतहो सब सिद्धमहा । करुना करिकें यह भेद कहो, करुनानिधि हो सुखकारी अहो ॥ १३ ॥

धन-धान्य और जन्म-भूमि छोड़ शरीर पर भगवा वस्त्र पहिन लिया । पुत्र स्त्री तथा भाई-बहिनों को छोड़, लोक-लज्जा का भय त्याग, अपने मित्र के दुःख से मन में दुखी हो बनवास का कष्ट स्वीकार किया । सुखदायक पलंग का शयन त्याग अपने मित्र के लिए मृगचर्म धारण किया । ऐसे मित्र कलियुग में नहीं मिल सकते, इसलिये मेरे मन में बड़ा भारी संशय होता है । मैं मन में अनुमान करता हूं कि ये पूर्व-जन्म के मेरे कोई सम्बन्धी हैं । आप बड़े

सिद्ध हो, सब बातें जानते हो, इसलिए दया करके बतलाइये कि क्या सम्बन्ध है । आप दया के समुद्र और बड़े सुखकारी हैं ॥ १३ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

सिद्ध कहे सागर सुनो, इर्ष धरी हियमांय ।

पूर्व जन्मके प्रेमी तुम, सोइत सर्व सदाय ॥ १४ ॥

तब सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! हृदय में हर्षित होकर सुनो । तुम सब पूर्व-जन्म के सदा सर्वदा प्रेमी रहे हो ॥ १४ ॥

सिद्ध कहे सागर सुनो, जब तुमकुं शिव शाप ।

भयो तबे तब मित्र पट, सब पाये संताप ॥ १५ ॥

सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! सुनो । जब तुम्हें शिवजी का शाप हुआ, तभी तुम्हारे ये छःओं मित्र बड़े संतप्त हुए ॥ १५ ॥

पूर्वभवं भव स्थानमें, तुमकों भो जब शाप ।

तबे तुम्हारे मित्र पट, चित्त पाये संताप ॥ १६ ॥

पूर्वजन्म में कैलाश में जब तुम्हें शङ्कर भगवान् ने श्राप दिया, तब तुम्हारे ये छःओं मित्र बड़े दुःखी हुए ॥ १६ ॥

सातों गन शिवके तुमे, जन्म लिये यह ठाम ।

बाके बरनी कहतहों, ईत उतके सब नाम ॥ १७ ॥*

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

शिवके गन सातों तुमें, लियो मनुज अवतार ।

तिनके नाम कहुं अबे, सुनि लेहू श्रुति धार ॥

तुम सातों शिव के गण हो और तुमने मनुष्य-अवतार लिया है । वहां के नाम मैं तुम से कहता हूं, कान धर कर सुनो ॥

तुम सातों शङ्कर के गण हो, और यहां तुम सातों ने जन्म लिया है ।
उसका वर्णन करके यहां के और वहां के (कैलाश के) नाम बतलाता
हूँ ॥ १७ ॥

सातों मित्रके पूर्व तथा इस जन्मके नाम कथन—पादाकुलक-छंद.
इत अभिधा तुम सागर छाजे, उतहि विचित्रानंद विराजे ।
इते भारती नंदहि जेहि, भृंगीगन उत आजत वेही ॥
इतें नाम रविजोति धरावे, नंदीगन उत येही कहावे ।
वीरभद्र इत ओपत नामा, वीरभद्र उत सोई ललामा ॥
सत्रसाल इत नाम कहावे, शिवानंद उत सोई सुहावे ।
रत्नप्रताप लसे इत जेही, मनीभद्र उत राजत वेही ॥
ओपत इत उमराव कुमारा, द्रष्टकेतु अभिधा उत धारा ।
सातों गन तुम शिवके येही, पूरव भवके पूर्ण सनेही ॥१८॥*

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

सात गनके अवतारके नाम—कवित्त.

वपुधारी सागर ज्यु, तुमहो विचित्रानन्द, भ्रंगीसो भारतीनंद, गन
भवदेवको । कवि रविजोती सो तो, शिव गन नंदी नाम, वीरभद्र नाम
वीर, भद्रके अभेवको । शिवानंद गनसो, शरीर धारी शत्रुसाल, रत्न प्रताप
नाम, मनीभद्र एवको । द्रष्टकेतु गन सो, कुमारउमराव कहे, एही विध सातों
मित्र, शंकरके सेवको ॥

हे सागर ! तुम देहधारी विचित्रानंद हो, और शिव का गण भ्रंगी सो वह
भारतीनन्द है । वे जो रविज्योति नाम के कवि हैं सो शिव के नंदी नाम के गण
हैं । वीरभद्र नाम के जो तुम्हारे मित्र हैं वे शिव के गण वीरभद्र हैं । ये
जो शत्रुसाल हैं वे शिवानंद नामक गण हैं । रत्नप्रताप नामक जो हैं वे मणिभद्र
नामक गण हैं । और द्रष्टकेतु नामक जो गण हैं वे ही कुमार उमराव कहे
जाते हैं । इस प्रकार तुम सातों मित्र शङ्कर के सेवक हो ॥

यहां तुम्हारा नाम सागर है, और वहां का तुम्हारा नाम विचित्रानन्द है ।
यहां जो भारतीनन्द नामक हैं, उनका वहां का नाम भुंगीगण है । यहां जिनका
नाम रविज्योति है, वहां का उनका नाम नंदीगण है । जिसे यहां वीरभद्र कहते हो,
वे वहां भी वीरभद्र नामक थे । यहां जो सत्रसाल कहे जाते हैं, वहां वे शिवानन्द
नाम से शोभित थे । जिनका नाम यहां रत्नप्रताप है, वे वहां मणिभद्ररूप में
शोभित थे । और जो ये उमरावकुमार नाम से यहां हैं, ये ही वहां दृष्टकेतु
नामधारी थे । तुम सातों शिवजी के गण थे, और पूर्व जन्म के पूर्ण स्नेही
हो ॥ १८ ॥

दोहा—यातें उर अंतर नही, एक प्राण तन भिन्न ।

रातों दिन सब रहतहो, आपसमें आधिन्न ॥ १९ ॥

इसीलिए हृदय में अन्तर न रखते हुए, भिन्न २ शरीर और एक प्राण
वाले तुम सातों आपस में अहर्निश परस्पर आधीन रहते हो ॥ १९ ॥

सत्य स्नेहि सातों तुमें, पूर्वहुके संबंध ।

तिहि विन कलिमें होत नहि, सत्य स्नेहको संग ॥ २० ॥

तुम सातों पूर्वजन्म के सम्बन्ध से सत्यस्नेही हो । इसके बिना कलियुग
में सच्चा स्नेह-सम्बन्ध नहीं होता ॥ २० ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त—चौपाई.

पूरव भवके सुनि निज नाम, हियमें हर्षित है अभिराम ।
शीश नमाई सिद्धके पाय, कहन लगे पुनि सागर वांय ॥
आप बडे योगीके ईश, सोहत छित्तिपें संभु सरीस ।
जानत सबही आगक बात, यातें अर्ज सुनो हम तात ॥
कष्ट सहे बहु सरवे काय, तदपी पार न हमरे जाय ।
यातें उरमें करुणा धार, उतारो भव सिंधु पार ॥
जातें पावे हम निज स्थान, ऐसैं आप बतावे ज्ञान ।
उरमें अति हम वादी आस, कब पावेंगे गिरि कैलास ॥

को विध बिनसे शिवके शाप, युक्ति येहि बतावो आप ।
 छोह सराहत हमरे साथ, आगे तुम उचरे थे गाथ ॥
 सगुन निगुनकों सेवे कोय, इच्छावत फल पावे सोय ।
 आगे उनके करि बिस्तार, सर्व कहेंगे दूजी वार ॥
 ऐमें आप बदे थे जेह, सोई बतावो करिकें नेह ।
 जातें मित्र मनोहर पाय, कष्ट सबे कायातें जाय ॥ २१ ॥ *

पूर्वजन्म के अपने नाम सुनकर, चित्त में अत्यन्त दर्पित हो और सिद्ध के चरणों में शिर नवाकर सागर फिर उनसे कहने लगे कि, हे महाराज ! आप बड़े भारी योगीश्वर हो, और पृथ्वी पर भगवान् शङ्कर के समान हो, आगे की सब बातें जानते हो । इसलिए हे तात ! आप हमारी विनय सुनिये । हम सबों ने शरीर से अनेक कष्ट उठाये हैं, तो भी हम पार नहीं पा सके । इसलिये हृदय में दया करके हमें संसाररूपी समुद्र से पार उतारिये । हमें वह उपाय बताइये, जिससे हमें अपना स्थान प्राप्त हो जाय । हमारे हृदय में बड़ी उत्कण्ठा लग रही है कि कैलास पर्वत हमें कब प्राप्त होवे । आप हमें वह उपाय बताइये,

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—सुनि हर्षित सातों भये, निज पूरव भव नाम ।

स्नेह सहित सो सिद्धकों, पुनि पुनि किये प्रनाम ॥

अपने पूर्व जन्म के नाम सुनकर सातों अति हर्षित हुए, और सबने स्नेह के साथ सिद्ध को बार २ प्रणाम किया ॥

सागरोक्त प्रश्न, छंद—कुंद.

बुझ्यो सागरे सिद्धकों नाइकें शीश, अहो सिद्ध हो आप जोगीन्द्रके ईश ।
 दयाके निधी दीनबंधू दयाकार, उनारो हमें सिंधु संसारके पार ॥ कृपा
 कीजिये दीजिये ज्ञान संबोध, बताओ हमें सत्य सिद्धीन को शोध । किहि
 भांति पावे हमें शैल कैलास, अतीहे अबे ऊर कैलासकी आस ॥ सहेहे
 हमें भूमिमें बोत संताप, अबे सद्य संताप टारो सबे आप । कहो ज्युं किमि

जिससे शिवजी का शाप नष्ट होवे । आपने हमारे प्रेम की सराहना करते हुए पहिले कहा था कि सगुण व निर्गुण का जो कोई सेवन करे वह इच्छित फल प्राप्त करता है । फिर आपने यह भी कहा था इनका आगे विस्तार करके दूसरी बार फिर कहेंगे । इस प्रकार आपने जो कहा था वही अब कृपा करके बताइये । जिससे हम अपने प्रिय मित्र को प्राप्त करें, और हमारा सब कष्ट दूर हो ॥ २१ ॥

एकावलि-अलंकार-सवैया.

करिये कृति कष्ट समापनकी, सुख प्रापनकी सुरता धरिये ।
धरिये मुधि शंकर जापनकी, ज्यु बिलापनकी बिपती हरिये ।
हरिये मति मोह अमापनकी, पुनि पापनकी सरिता तरिये ।
तरिये सरिता शिव शापनकी, धिर थापनकी करुना करिये ॥ २२ ॥

इस कष्ट की समाप्ति का कृत्य करिये, और जिससे सुख प्राप्त होवे ऐसा उपाय बताइये । शङ्कर के जप करने का ध्यान धरिये, जिसमें हम आपद्ग्रस्तों की

भांति साधे हमें ईश, लखी दासकों दीन कीजे कृपा शीश ॥ तुममें जो कहो तो कहेंगे अगे एह, कहीकं अबे सो हरो सर्व संदेह । कहा कीजिये तो मिटे शंभुको शाप, कहो बात संक्षेपसें इतनी आप ॥

सागर ने सिद्ध को मस्तक नम्रां कर पूछा कि, हे सिद्ध ! आप योगीन्द्र हो, दया के समुद्र, दीनों के बन्धु, और कृपा करने वाले हो, इस लिए हमें संसार-रूपी समुद्र से पार उतारो । दया करो और हमें ज्ञान का उपदेश देओ । हमें सिद्धि-प्राप्ति का सच्चा उपाय बताओ । हम किसप्रकार कैलास पर्वत का स्थान प्राप्त करें, क्योंकि हमारे मन में कैलास-प्राप्ति की अतिशय इच्छा है । हम पृथ्वी पर अति संताप सहन कर रहे हैं । अब आप शीघ्र ही सब संताप मिटाओ, और बताओ कि हम शंकर की साधना किस प्रकार करें । हम दासों पर गरीब जानकर दया करो । तुमने कहा था कि यह बात आगे कहूंगा, उसे अब कह कर सब संशय मिटाओ । हम क्या करें कि जिससे शिव जी का शाप मिटे ? वह बात आप संक्षेप में बताइए ॥

विपत्ति दूर हो । हमारी बुद्धि के मोह को हरण करके हमें पाप की नदी से पार करिये, तथा शिवजी के शाप की सरिता से भी पार लगाकर स्थिरता देने की दया कीजिये ॥ २२ ॥

दोहा—क्यों सर्वोपरि पाइयें, अविचल सुख अत्यंत ।

कहो सोइ करुना करी, सदय हृदय हो संत ॥ २३ ॥

अविचल और सर्वोपरि परमानन्द की प्राप्ति जिस प्रकार होवे ? हे महापुरुष ! हृदय में दया करके हमें बताइये ॥ २३ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त—दोहा.

सिद्ध कहे सागर सुनो, जो तुम चित्त चहाय ।

अविचल सुख संप्राप्तिके, अबही कहूं उपाय ॥ २४ ॥

सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! सुनो । जो तुम चाहते हो, उसी अविचल सुख की प्राप्ति के अब उपाय कहता हूं ॥ २४ ॥

मिलत सोइ सुख ग्यानसें, जानहु यह निःशंस ।

सागर ग्यान समुद्रहे, कहूं अब इनको अंश ॥ २५ ॥

यह निश्चितरूप से जानो कि वह सुख ज्ञान से प्राप्त होता है, और वह ज्ञान समुद्र के समान है जिसका कुछ अंश कहता हूं ॥ २५ ॥

अविचल सुख अत्यंतको, गुनातीत हे धाम ।

भक्ति योग अरु सांख्य तें, पावे जन निष्काम ॥ २६ ॥

उस अविचल परमानन्द का स्थान त्रिगुणातीत (सत्त्व, रज व तम इन तीन गुणों से परे) है । उसे निष्काम पुरुष ही भक्ति-योग और सांख्य से प्राप्त करते हैं ॥ २६ ॥

सो सुनि सिद्ध समोद हैं, कहन लगे पुनि वांछ ।

काज सरे सबके सपदि, ऐसैं कहूं उपाय ॥ २७ ॥

यह सुनकर सिद्ध प्रसन्न हो सागर से फिर कहने लगे कि, ऐसे उपाय कहता हूं कि जिससे तुम सबके कार्य शीघ्र पूर्ण हों ॥ २७ ॥

दोहा—प्रेम भेद भावे प्रथम, सगुन निगुन के जेह ।

सोई साविस्तर कहतहों, सुनो श्रवनमें येह ॥ २८ ॥

पहिले जो सगुण निर्गुण के भेद बताये थे, उन्हें ही अब विस्तार के साथ कहता हूं, ध्यान से सुनो ॥ २८ ॥

ईश्वरके दोउ रूप हे, निर्गुन सगुन विचार ।

निर्गुनहे आकार बिन, सगुन यहै साकार ॥ २९ ॥

ईश्वर के निर्गुण और सगुण भेद से दो रूप हैं, जिनमें निर्गुण निराकार और सगुण साकार है ॥ २९ ॥

वैकुण्ठ रु कैलाससे, धाम सगुनके बात ।

ताकूं चाहे चित्तमें, जो सकाम जन होत ॥ ३० ॥

सगुणरूप भगवान् के वैकुण्ठ और कैलास जैसे अनेक धाम हैं । जिनके मन सकाम (वासनायुक्त) हैं वे व्यक्ति इन धामों को चाहते हैं ॥ ३० ॥

दो पथ हे तित गमनके, अर्ची धूमहि होइ ।

अर्ची कहिये ज्ञान पथ, धूम क्रिया पथ सोइ ॥ ३१ ॥

वहां (सगुण व निर्गुण धाम में) जाने के दो मार्ग धूम्र व अर्चिगति के हैं, उनमें धूम्रगति कर्म-मार्ग की और अर्चिगति ज्ञान-मार्ग की है ॥ ३१ ॥

भक्ति करतहे भक्तजन, जोगी साधत जोग ।

कोउ निर्गुन कोउ सगुनको, इहि विधि पावत लोग ॥ ३२ ॥

भक्त लोग भक्ति करते हैं, और योगीजन योग-साधना करते हैं । इस प्रकार कोई निर्गुण व कोई सगुण को प्राप्त करते हैं ॥ ३२ ॥

दोहा—भ्यानी सांख्य विचारतें, पावत पद निर्बान ।

सो तिहुकी बिगती कहूं, सुनहू तुमें सुजान ॥ ३३ ॥

ज्ञानी लोग सांख्य के विचार से निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं । उन तीनों का विवरण कहता हूं, जिसे हे चतुर ! तुम सुनो ॥ ३३ ॥

भक्तिभेदाभिधान छंद—चौपाई.

निगुन सगुनकी भक्ति कहावे, सुनहू ताके भेद सुनावे । निगुन भक्ति मनमें धरि लीजे, सगुन भक्ति तन मनमें कीजे ॥ नवधा भक्ति प्रथमही जानो, सो कनिष्ठ भक्ति उर आनो । दसमी प्रेमलच्छना जोई, मध्यम भक्ति कहावत सोई ॥ पराभक्ति उत्तम श्रुति गावे, सेवक सेव्य भेद न रहावे । उनके भेद भिन्न समझाउं, शास्त्र कथित सो सार सुनाउं ॥ ३४ ॥

निर्गुण की और सगुण की जो भक्ति है, उसका भेद कहता हूं, सुनो । निर्गुण की भक्ति मन से होती है, और सगुण की भक्ति शरीर व मन से होती है । उसमें पहले नवधा-भक्ति को समझो, जो कनिष्ठ भक्ति कही गई है । दशमी जो प्रेम-लच्छना है वह मध्यम भक्ति है । परा-भक्ति वेद में सर्वोत्तम कही गई है, जहां सेव्य व सेवक का भेद नहीं रहता । शास्त्रों में वर्णित उनके भेद को संक्षेप से तुम्हें समझाता हूं ॥ ३४ ॥

दोहा—सगुन रूप साकारको, निर्गुन बिन आकार ।

ऐसे ईश्वर के उभय, रूप लसत निरधार ॥ ३५ ॥

सगुण रूप साकार का और निर्गुण रूप निराकार का है । इस प्रकार ईश्वर के दो रूप हैं ॥ ३५ ॥

हरि हर हिरण्यगर्भ औ, राम कृष्ण जे भाय ।

सोई सगुन परमेशके, रूप लसत सुखदाय ॥ ३६ ॥

उनमें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और राम, कृष्णादि जो हैं, वे परमेश्वर के सुखदायक सगुणरूप शोभित हैं ॥ ३६ ॥

दोहा-अद्वय अरु अव्यक्त पुनि, निरमल निरआकार ।

सोइ निगुन परमेशको, रूप लसत निरधार ॥ ३७ ॥

और जो अद्वितीय, अव्यक्त, निर्मल, निराकार और अविनाशी है, वह परमेश्वर का निर्गुणरूप समझता ॥ ३७ ॥

सगुन निगुनके नेहकों, भक्ति कहत सब लोक ।

सो समजावुं छोहते, समे सर्व तुम शोक ॥ ३८ ॥

इन सगुण और निर्गुण के प्रति जो स्नेह है उसे सब लोग भक्ति कहते हैं। उसे मैं प्रेमपूर्वक समझता हूँ, जिससे तुम्हारा सब शोक शमन हो जायगा ॥ ३८ ॥

नीकी निर्गुन भक्तिते, मोक्ष मिले सुखदाय ।

चारु सगुनकी भक्तिते, उरके इच्छित पाय ॥ ३९ ॥

सुन्दर निर्गुण भक्ति से सुखदायक मोक्ष प्राप्त होता है। और सुन्दर सगुण भक्ति से मनोवांछित फल प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

ये उभय अब भक्तिमें, चाहत तुम क्या चित्त ।

सोइ सुनावुं श्रवनमें, कहो मोदते मित्त ॥ ४० ॥

हे मित्र ! अब तुम इन दोनों भक्तियों में से किस भक्ति को चित्त से चाहते हो ? सो कहो। वही तुम्हें मैं श्रवण कराऊँ ॥ ४० ॥

सिद्ध प्रति सागरोक्त-दोहा.

चाह नही मन मोक्षको, उर इच्छितकी चाह ।

याते येह बताइये, सगुन भक्तिकी राह ॥ ४१ ॥

सागर ने सिद्ध से कहा कि, मेरे मन में मोक्ष की चाहना नहीं है। हृदय में इच्छित के प्राप्त करने की चाह है, इसलिये सगुण भक्ति का मार्ग आप बताइये ॥ ४१ ॥

जाते जग जंजालकों, वपुते करिय विनाश ।

पाई परम परबीनकों, बसिये गिरि कैलाश ॥ ४२ ॥

जिससे संसाररूपी जाल का शरीर से नाश करके परम प्रवीण को प्राप्त कर कैलास में निवास प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त भक्तिभेदाभिधान कथन-पादाकुलक-छंद.

भक्ति भली भवमाहि सुहावे, साधत सो सिद्धिकों पावे । निगुन भक्ति निज मनतें मानो, सगुन भक्ति तनमन तें जानो ॥ प्रथम भक्ति नव जेहि सुहावे, सोइ कनिष्ठा सर्व कहावे । दशमी प्रेम लच्छना जानो, मध्यम सो मनमाहि प्रमानो ॥ पराभक्ति पुनि और सुहावे, उत्तम याकों सर्व कहावे । सेवक सेव्य न भेद हियामें, राजत यों त्रयभेद ललामें । याके भेद सबे सुखकारी, कहे पुरानोंमें विस्तारी । वाके सार कहाँ तुम आगे, सोई सुनो सबही अनुरागे ॥ ४३ ॥

सिद्ध ने सागर से कहा कि, दुनियां में भक्ति ही अच्छी वस्तु है, जो इसकी साधना करता है वह सिद्धि को प्राप्त करता है । निर्गुण भक्ति निज मन से होती है और सगुण की भक्ति तन व मन से होती है । पहिले की जो नव भक्ति हैं वे सब कनिष्ठ कही जाती हैं । दशमी प्रेम-लक्षणा भक्ति है उसे मन में मध्यम समझो । परा-भक्ति एक और है जो सर्व-श्रेष्ठ कहाती है । उस समय हृदय में सेव्य और सेवक का भेद नहीं रह जाता । इस प्रकार भक्ति के ये सुन्दर तीन भेद हैं । इनके सभी भेद सुखदायक हैं, पुराणों में विस्तारपूर्वक इनका वर्णन है । उसी का सार संक्षेप में तुम्हारे सम्मुख कहता हूं, प्रेमपूर्वक सुनो ॥ ४३ ॥

नवधा-भक्ति के नामकथन-चौपाई.

श्रवण कीरतन सुमरन नाम, पदसेवन अरचन अभिराम ।

वंदन दास्य रु सख्य सुहाय, आत्मनिवेदन नवमी भाय ॥ ४४ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा.

श्रवण रु कीर्तन स्मरण पुनि, पदसेवन अरचन ।

वंदन दास्य रु सख्यता, नवम आत्मअर्पण ॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पदसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, और आत्मसमर्पण ये नवधा-भक्ति के नव नाम हैं ॥

अवण, कीर्तन, नामस्मरण, पदसेवन, अर्चना, वन्दना, दास्यभाव रखना, सखाभाव रखना, तथा नवमी आत्म-निवेदन यह नवधा-भक्ति है ॥ ४४ ॥

नवधा-भक्ति के संक्षेपतः एकत्र लक्षणकथन—कवित्त.

हरिगुन सुने सोई, श्रवन सुहात पुनि, इष्ट पद गुन गावे, सोई किर्तन प्रमानियें । मन वाचें स्मरत सो, सुमरन भक्ति पुनि, इष्ट पद सेवा पाद, सेवनसों जानियें । सोरह प्रकार पूजा, करे सोई अर्चन हे, बंदे तनमनं सोई, बंदना बखानियें । दासत्वसो दास्य अरु, सुहृत्ता सख्य पुनि, आप है अर्पन सोई, आत्मार्पन मानियें ॥ ४५ ॥ ❀

प्रभु के गुणों का सुनना 'श्रवण' कहलाता है । इष्टदेव के गुणों का गान करना 'कीर्तन' है । मन और वाणी से इष्टदेव का स्मरण करना 'स्मरण' कहाता है । इष्टदेव के पादसेवन को 'पदसेवन' कहते हैं । सोलहों उपचार से पूजा करने

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

कवित्त.

चित्त धरी सुने इष्ट कथा सो श्रवनभक्ति, इष्ट गुन गावे सोई किर्तन कहात हे । मन बानीसैं स्मरन करे सो स्मरनभक्ति, इष्ट पद सेवा पदसेवन प्रख्यात हे । षोडश प्रकार अर्चा करे सोई अर्चन हे, तन मन नमो सोई बंदन विख्यात हे । दासपनो दासभक्ति सखापनो सख्यभक्ति, सबही समर्पे आत्मअर्पन गिनात हे ॥

इष्टदेव की कथा को चित्त लगाकर सुनना 'श्रवण' भक्ति, और इष्ट के गुणानुवाद का गान करना 'कीर्तन' भक्ति कहाती है । मन और वाणी से इष्ट को स्मरण करने को 'स्मरण' भक्ति, और इष्ट के पाद की सेवा करने को 'पदसेवन' भक्ति कहते हैं । षोडशोपचार से अर्चन करने को 'अर्चन' भक्ति और तन, मन से नमन करने को 'वन्दन' भक्ति प्रसिद्ध किया है । दासपन को 'दास्य' भक्ति, सखापन को 'सख्य' भक्ति और सब कुछ समर्पण कर देने को 'आत्म समर्पण' भक्ति कहा गया है ॥

को 'अर्चन' कहते हैं । तन व मन से वन्दना करने को 'वन्दन' कहते हैं । प्रभु के प्रति दासभाव रखने को 'दास्यभाव' कहते हैं । मित्रता का भाव रखने को 'सखाभाव', और अपने आपको सर्वथा प्रभु के अर्पण कर देने को 'आत्म-समर्पण' कहते हैं ॥ ४५ ॥

नवधा-भक्ति-लक्षण-कथन, तत्र प्रथम श्रवण-भक्ति, पादाकुलक-छंद.

चाह धरी अति अपने चित्तें, संत वचन अरु हरिगुन नित्यें ।

सुनत श्रद्धासैं श्रुतिमें जेही, श्रवण भक्ति कदावत बेही ॥ ४६ ॥

अपने हृदय में अत्यन्त श्रद्धा व प्रीति धारण कर संत पुरुषों के वचन व हरिगुणानुवाद जो सुनता है, वह 'श्रवण' भक्ति कही जाती है ॥ ४६ ॥

कीर्त्तन-भक्ति.

चाह धरी निज चित्त अपारी, हरि गुन गाय सदा सुखकारी ।

ताकों पंडित सर्व पुकारी, कीर्त्तन भक्ति कहे अति भारी ॥ ४७ ॥

अपने चित्त में अत्यन्त चाहना धारण कर जो हरि के सुखदायक गुणों का गान करता है, उसे पंडित लोग पुकार कर मनोहर 'कीर्त्तन' भक्ति कहते हैं ॥ ४७ ॥

स्मरण-भक्ति.

स्मरण लसतहे दोय प्रकारे, इक रसना हरि नाम उच्चारै ।

द्वितीय हरि स्मरण हिय धारे, सुमरण भगतीसो सुखकारे ॥ ४८ ॥

स्मरण दो प्रकार से होता है, एक तो वाणी द्वारा हरिनाम का उच्चारण करना, दूसरा हृदय में हरिस्मरण करना, इसे सुखदायक 'स्मरण' भक्ति कहते हैं ॥ ४८ ॥

पदसेवन-भक्ति.

नित्यवसी निज इष्टकी आगें, पाय पलौटत अति अनुरागें ।

पदसेवन सो भक्ति कहावे, भक्त जनोंके मन बहु भावे ॥ ४९ ॥

अपने इष्टदेव के समक्ष रहकर सदा अति अनुराग से उनके पदसेवन करने को 'पदसेवन' भक्ति कहते हैं, यह भक्तजनों को अति रुचिकर है ॥ ४९ ॥

अर्चन-भक्ति.

प्रेम प्रभूपर धारि अपारा, पूजत सोरह करि उपचारा ।

याकों अरचन भक्ति कहीजे, भक्त किते वा रसमें भीजे ॥ ५० ॥

प्रभु के प्रति अपार प्रेम धारण कर षोडशोपचार से जो उसकी पूजा की जाती है, उसे 'अर्चन' भक्ति कहते हैं । अनेक भक्तजन उसके रस में बिभोर हो जाते हैं ॥ ५० ॥

वंदन-भक्ति.

वंदनका विय भेद प्रमानो, पहिला वंदन तनुका जानो ।

दूजा वंदन मनका मानो, भक्ति वंदना सोय बखानो ॥ ५१ ॥

वंदन के भी दो भेद हैं, पहिला वन्दन शरीर का है, दूसरा वन्दन मन का है । इसे ही 'वंदन' भक्ति कहते हैं ॥ ५१ ॥

दास्य-भक्ति.

हाथ जोर रहि हरिकी आगें, हुकम उठावत अति अनुरागें ।

सेव करत्यों अपने अंगा, दास्य भक्तिसे राजत चंगा ॥ ५२ ॥

प्रभु के समक्ष हाथ जोड़कर अति प्रेमपूर्वक उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए अपने शरीर से जो सेवा करता है, वह 'दास्य' भक्ति कही जाती है ॥ ५२ ॥

सख्य-भक्ति.

मित्र मनोहर हरिकों जानी, साथ रहे नित अनुरति ठानी ।

भिन्न भाव नहि उरमें आने, सख्य भक्ति सो सर्व बखाने ॥ ५३ ॥

प्रभु को मनोहर मित्र समझ कर अति प्रेमपूर्वक सदा उनके पास रहे, हृदय में कोई भिन्नता न जाने । इस प्रकार की भक्ति को 'सख्य' भक्ति वर्णन किया गया है ॥ ५३ ॥

आत्मनिवेदन-भक्ति.

तन मन धन अरु बालक वामा, सद्नादिक संपति अभिरामा ।

सोइ समर्पन हरिकों कीजे, आत्मनिवेदन याकों लीजे ॥ ५४ ॥

तन, मन, धन, बालक, स्त्री तथा मकान आदि सब अपनी सुन्दर सम्पत्ति जो प्रभु के अर्पण कर देता है, उसे 'आत्म-निवेदन' भक्ति कहते हैं ॥ ५४ ॥

प्रेमलच्छना-भक्ति-लछन-बर्नन, रूप घनाद्री.

नेहमें निमग्न वृहें, भूलि निज भान सवे, आनंदतें अहोनिश, हरि-
गुन गावतहि । उठत उसास सास, रोमही ललित पुनि, नेन वडे नीर वपु,
धीर ना धरावतहि । मत्तसैं बनिकें महा, डोलतहे जहां तहां, नेक न संभार
निज, शरीरकी लावतहि । लौकयि न लाज कछु, काज करतासैं रखे,
ऐसी यह भक्ति प्रेम-लच्छना कहावतहि ॥ ५५ ॥

प्रेम में निमग्न होकर और अपना भान भी भूलकर जो आनन्द विभोर हो रात-दिन प्रभु का गुण गान करता है, उसमें उठती हैं, रोमांच होता है, नेत्रों से जलधारा जाती है, शरीर अधीर हो उठता है, महा मतवाले के ममान बनकर जहां तहां डोलता है, अपने शरीर का भी तनिक संभार नहीं करता, लोक-लाज की कोई चिन्ता नहीं रखता, केवल प्रभु से प्रीति रखता है, ऐसी जो भक्ति है उसे 'प्रेम-लच्छना' भक्ति कहते हैं ॥ ५५ ॥

कवित्त.

पूरन प्रवाह प्रेम, उठे निज उर तवे, हरि विन और कछु, चित्त ना
सुहात हे । भूली घरबार सवे, विश्वके व्यौहार पुनि, आनंद अपार धरि,
हरिगुन गात हे । एक तन एक मन, एक रंग राग धरी, बनी तदाकार
तामें, सोहे दिन रात हे । ऐसे उर अंतरमें, भूरि विधि भाव धरे, भक्ति
प्रेम लच्छना सो, बिमल विख्यात हे ॥ ५६ ॥

जब अपने हृदय में प्रेम का पूर्ण प्रवाह उठता है, तब हरि के विनोचित में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता । घर-चार तथा संसार के सारे व्यवहारों को भूलकर अत्यन्त आनन्द के साथ हरिगुण गान करता है । एक तन, एक मन और एक एक रागरंग धारण करके तदाकार बनकर उसी में रात-दिन शोभायमान रहता है । जब इस प्रकार के उज्ज्वल भाव विधाता हृदय में उत्पन्न करे तो उसे प्रसिद्ध पवित्र 'प्रेम-लक्षणा' भक्ति कहते हैं ॥ ५६ ॥

कवित्त-कभि उठि नाचतहे, कभि काय राचतहे, कभि कंठे गद्गद हे, हियो भर लातहे । कभि हसि बोलतहे, कभि रोई डोलतहे, कभि मुख मौन धरी, रहे दिन रातहे । कभि होय मत्त पुनि, कभि सावधान होय, कभि उर उमंगी के, इष्टगुन गातहे । ऐसे हरि प्रेम पगी, रहताहे रातो दिन, भक्ति प्रेम-लच्छना सो, विमल विख्यातहे ॥ ५७ ॥

कभी उठकर नाचता है, कभी काया में मग्न होता है, कभी कण्ठ गद्गद हो जाता है, कभी हृदय भरजाता है, कभी हंसकर बोलने लगता है, कभी रोते हुए फिरने लगता है, कभी रात-दिन मौन होकर रहता है, कभी मत्तबाला हो जाता है, कभी होश में आ जाता है, कभी हृदय में उमंगित हो अपने इष्टदेव का गुण-गान करने लगता है । इस प्रकार प्रभु के प्रेम में मग्न होकर रात-दिन जो रहता है वह पवित्र 'प्रेम-लक्षणा' भक्ति प्रसिद्ध है ॥ ५७ ॥

कवित्त.

चंदकों चकोर जैसे, पंजकों भीर जैसे, मुदिरकों मोर जैसे, चित्तमें चाहतहे । दीपकों पतंग जैसे, पुंगीकों भुजंग जैसे, रागकों कुरंग जैसे, गातमें गहतहे । चंदनकों व्याल जैसे, मातहिकों बाल जैसे, मानकों मराल जैसे, मनमें लहतहे । ऐसैं उर चाह धरी, हरिकों भजत नित्य, भक्ति प्रेम-लच्छना सो, कोविद कहतहे ॥ ५८ ॥

चन्द्रमा को जैसे चकोर चाहता है, कमल को जैसे भीरा और बादल को जिस प्रकार चित्त में मोर चाहता है, दीपक को जैसे पतंग, बीन को जैसे सर्प और

वीणास्वर को जैसे हरिण चाहता है, जैसे चन्दन को सर्प, माता को जैसे बालक और मानसरोवर को जिस प्रकार हंस चाहता है, उसी प्रकार हृदय में प्रेम धरकर जो नित्य हरि का भजन करता है, उसे कोविद लोग 'प्रेम-लक्षणा' भक्ति कहते हैं ॥ ५८ ॥

प्रेमलच्छनाभक्ति वर्णन-कवित्त.

प्रेमको प्रवाह सो, अथाह बड़े अंतरमें, भूले तन भान ताकुं, कहा और इच्छना ॥ नहीं खान पान भान, गान करे भान बिन, कौन करे पूजन प्रणाम रु प्रदच्छना । नेननसैं नीर बहे, धीर न धरत उर, जाकि मती नांही व्यव, हारमें बिचच्छना । डोलत दिवाना जैसा, बोलत ही तुंही तुंही, सिद्ध कहे सो प्रसिद्ध, भक्ति प्रेमलच्छना ॥ ५९ ॥

जब अपार प्रेम का प्रवाह अन्तर में बड़े और शरीर का भान भी न रहे ! उसे और क्या इच्छा रहे ? खाने पीने का भान न रहे, और विभोर होकर गुण-गान करता रहे, फिर पूजन, प्रणाम और प्रदक्षिणा कौन करे ? अर्थात् इनकी चेतना भी न रहे, आँखों से प्रेमाश्रु चलें, हृदय अधीर रहे और व्यवहार-विचक्षणता जिसकी बुद्धि में न होवे, दिवाना की भांति इधर उधर डोलता हुआ 'तूही तूही' बोलता होवे, सिद्ध ने कहा कि, ऐसी भक्ति को 'प्रेमलक्षणा' भक्ति कहते हैं ॥ ५९ ॥

पराभक्ति लच्छन वर्णन-कवित्त.

बारिके बतासा जैसे, बामतहे भिन्नपर, जलसैं न जुदे सोई, शरीरमें छाजेहे । तैयें तन भासतहे, भृत्यभावे भिन्नपर, तन मन तदाकार, सोई रूप राजेहे । जैसे क्षीर नीर मिलि, ओपतहे एक रूप, तैसे हरी साथ मिलि, भूरि बिघ्न आजेहे । पैँन तजे सेवकता, सेव्यरूप बनि आप, सोई पराभक्ति भलि, विमल विराजेहे ॥ ६० ॥

जिस प्रकार पानी का बुदबुदा पानी से भिन्न प्रतीत होता है, परन्तु जल से भिन्न नहीं है, वैसे ही जो शरीर से जुदा रहते हुए भृत्यभाव से भिन्न है, परन्तु तन मन से तदाकार होकर प्रभु के ही रूप में रहता है । जैसे दूध और पानी

मिलकर एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् के साथ मिला हुआ होते हुए भी अनेकविध प्रतीत होता है परन्तु सेवक और सेव्यरूप को नहीं छोड़ता, ऐसी विमल भक्ति को 'परा' भक्ति कहते हैं ॥ ६० ॥

पराभक्ति वर्नन—कवित्त.

नेननमें पुतरी ज्यों, बारीमें ज्युं बुदबुदा, भिन्न भासे पुनि भिन्न, भाव नहीं जानिये । ऐसैं दासभाव धरी, इष्ट संग मिल रहे, भिन्न भासे तदपि अ, भिन्न पहिचानिये । एक रंग एक रूप, एक प्रकृति अनूप, मिश्र छीर नीरको, दृष्टांत उर आनिये । अनुभवं अर्चें नमे, अनुभवं गुन गाय, सोई पराभक्ति पर, प्रात्मकी प्रमानिये ॥ ६१ ॥

जिस प्रकार आंखों में पुतली और पानी में बुदबुदा भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में भिन्न नहीं हैं । इसी प्रकार अपने इष्ट के साथ दासभाव धारण कर मिलकर रहे, चाहे पृथक् प्रतीत हो, तो भी अभिन्न ही समझना चाहिये । एक ही रूप रंग, और एक प्रकृति तथा क्षीर नीर के समान मिले होते हुए अनुभव से ही अर्चना व नमन करते हैं, तथा अनुभव से ही गुणगान करते हैं, ऐसे भक्त की भक्ति परमात्मा की 'परा' भक्ति जाननी चाहिये ॥ ६१ ॥

कवित्त.

एक छिन अलग न, होय हरिहि तें पुनि, निवृत्तिसें नेह धरी, निकट रहतहे । एकतन एकमन, एक रंग रूप व्हैके, सेवकता भाव सदा, चित्तमें चहतहे । जैसें द्रग तारे भिन्न, भासैं पै हे द्रग रूप, तैसें तदाकार बनि, भिन्नता लहतहे । ऐसैं आप सेव्य बनि, भृत्य भाव तजे नहिं, वाकों पराभक्ति अब, कोविद कहतहे ॥ ६२ ॥

एक क्षण भी प्रभु से पृथक् न होते हुए निवृत्ति से प्रेम धारण कर प्रभु के पास ही रहता है । एक तन, एक मन और एक रंगरूप होकर सेवकताका भाव सदा चित्त में रखता है । जैसे आंखों की पुतली आंखों से अलग प्रतीत

होती है, परन्तु है अभिन्न !! उसी प्रकार तदाकार बनकर भी भिन्नता रखता है, और स्वयं सेव्य बनकर भी सेवकभाव नहीं छोड़ता, ऐसे भक्त की भक्ति को कोविदजन 'परा' भक्ति कहते हैं ॥ ६२ ॥

दोहा—उत्तम मध्यम अधम यों, भक्ति कही तिहु भात ।

यह विधि भक्ती योगसें, प्राणि परमपद पात ॥ ६३ ॥*

इस भांति उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार की भक्ति का वर्णन किया है । इस प्रकार भक्तियोग से प्राणी परमपद प्राप्त करते हैं ॥ ६३ ॥

सागरोक्त प्रश्न—दोहा.

भक्ति करी भल भावतें, मोद धरी मनमाय ।

कहो कौन या जगतमें, उर-इच्छित फल पाय ॥ ६४ ॥

सागर ने पूछा कि हे सिद्ध महाराज ! मन से उमंग धारण कर भले भावों से इस संसार में किसने भक्ति की, और मनोवांछित फल पाया ? सो मुझे कहो ॥ ६४ ॥

सिद्धोक्त उत्तर—दोहा.

भक्ति करी भगवानकी, बहु जन बंछित पाय ।

वामेंसें इक इक अवे, तुमकों देहुँ बताय ॥ ६५ ॥

तब सिद्ध ने उत्तर में कहा कि, बहुतों ने भगवान् की भक्ति करके मनो-वांछित फल पाया है, उनमें से एक २ करके तुम्हें बताता हूं ॥ ६५ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—उत्तम मध्यम अधम यह, भक्ति करी तिहु भात ।

जैसी जाकी चाहना, तैसा तिहि फल पात ॥

उत्तम, मध्यम और निष्कृष्ट यह तीन प्रकार की भक्ति कही गई है । जिस की जैसी चाहना है वह वैसा फल प्राप्त करता है ।

भक्त-अभिधान-कथन (रूपधनाक्षरी-कवित्त.)

श्रवण सुभक्ति करी, प्रेमतेँ परिचितने, कीरतन शुक्ल अरु, प्रह्लादें समरन । श्रीने पदन सेवन, रु पूजन प्रथुने किये, बंदना विशेष करी, अकूरने आप तन । दास हनुमाने अरु, सख्य अरजुनेँ करी, बहुरि बलिने किय, भक्ति आत्मअरपन । गोपिकाने प्रेम अरु, पराभक्ति संत जूने, ऐसे अति भक्ति करी, पाये फलकिते जन ॥ ६६ ॥

राजा परीक्षित ने प्रेमपूर्वक श्रवण भक्ति की, शुकदेवजी ने कीर्तन भक्ति, प्रह्लाद ने स्मरण भक्ति, लक्ष्मीजी ने पदसेवन भक्ति, और राजा पृथु ने पूजन भक्ति, तथा अकूर ने स्वशरीर से विशेष बन्दन भक्ति की । हनुमानजी ने दासभाव से, अर्जुन ने सखाभाव से, बलि ने आत्मसमर्पणरूप से, गोपिकाओं ने प्रेमरूप से, तथा प्राचीन संतों ने परा भक्ति की । इस प्रकार अनेकों ने भक्ति की और वाञ्छित फल प्राप्त किया ॥ ६६ ॥

जोगी जन हठजोगसेँ, ललित परमपद लेत ।

सो अब में तुमकुं कहूं, सुनहू होई सचेत ॥ ६७ ॥

योगीजन हठयोग का साधन कर सुन्दर परमपद प्राप्त करते हैं, उसे मैं अब तुम्हें बताता हूँ, सचेत होकर सुनो ॥ ६७ ॥

अष्टांगयोगे यमनियमासनकथनप्रसंग-दोहा.

भक्ति भेद सबही सुनी, हर्ष घरी हियमांय ।

सिद्ध प्रति सागर कहे, शीश नमाइ पाय ॥ ६८ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—भक्ति भेद सिद्धे कह्यो, सो सुनि मन छुद पाई ।

सागर स्तुति किय सिद्धकी, स्नेह सहित सिर नाई ॥

सिद्ध ने भक्ति का भेद कहा, जिसे सुनकर अति प्रसन्न हो सागर ने स्नेह के साथ मस्तक झुका कर सिद्ध की स्तुति की ॥

भक्ति के सब भेद सुनकर हृदय में प्रसन्न होकर सागर सिद्ध के चरणों में शिर मुका कर उनसे बोला ॥ ६८ ॥

सिद्धप्रति सागरोक्ति—पादाकुलक—छंद.

आज करुणा हम पर धारी, भक्ति भेद किये तुमने भारी ।
 सोइ करत बहु होवत देगी, वां तक रहे न काय हमेरी ॥
 बीतत पल इक पक्ष प्रमाने, पक्ष बन पुनि वर्ष समाने ।
 ऐसें मधि क्यों कगिं जौं, छिन छिनमें तनु जातहि छीजे ॥
 यातें करुना हमपर लाइ, सत्वर स्वामी करो उपाइ ।
 प्रसन्न पिनाकी होवे जैसें, आप उपाय बताओ तैसें ॥
 जातें भट हम सिद्धी पाइ, शीघ्र संभुके शाप नशाइ ।
 सर्व मिली पुनि हृदय हुलासें, फिर बसियें जा गिरि कैलासें ॥ ६९ ॥

आज आपने हम पर बड़ी करुणा करके भक्ति के भारी भेदों का वर्णन किया, परन्तु उसे करने में बहुत समय चाहिये, तब तक शायद हमारा यह शरीर ही न रहे, क्योंकि एक पल पक्ष के समान और पक्ष वर्ष के समान बीतता है । ऐसी अवस्था में कैसे जीवें ? क्षण २ में शरीर छीजता जाता है, इसलिये हे स्वामी ! हम पर दया करके शीघ्र कोई उपाय करो, और ऐसा उपाय बताओ जिससे भगवान् शङ्कर प्रसन्न हों । तथा हमें सिद्धि प्राप्त हो जाय और शङ्कर का शाप विनष्ट होवे । हम सब प्रसन्न होकर मिल जावें और कैलास में प्रसन्नतापूर्वक निवास करें ॥ ६९ ॥

सिद्धकी स्तुतिको—फवित्त.

भक्ति भेदके प्रकार, निद्वेने किये उचार, सातों मित्र श्रोत धार, सब सुनि लियोहे । अब अष्टयोग अंग, सुनन बढ्यो उमंग, रुदयकुं प्रेमरंग, रंजी-त सु कियोहे । सिद्धपे जनाइ स्नेह, फेर कही बानी एह, ग्यानको पियूष जेह, आज हमें पियोहे । अहो सिद्ध महाराज, उच्चम दे ग्यान आज, गरीब-निवाज नर, देह फल दियोहे ॥ ७० ॥

सिद्ध ने भक्ति-भेद के जो प्रकार वर्णन किये उसे सातों मित्रों ने ध्यानपूर्वक सुना, और अब अष्टांग योग का वर्णन सुनने के लिये हृदय को प्रेम रङ्ग से रंजित करके उद्यत हो गये । सिद्ध पर प्रेम करने के हेतु फिर उनमें कहा कि, हे शरीबनिवाज महाराज ! आपने जो आज उत्तम ज्ञान देकर हमें अमृतपान कराया है उससे हमारा नर-देह सफल हो गया ॥ ७० ॥

सद्गुरुकी दुर्लभता विषये—कवित्त.

मिले मात तात भ्रात, मिले पुनि सुख सात, मिले सात धात और, उत्तम आगारहे । दुर्लभमें दुर्लभ, मिलाप गुरुदेवहुको, सद्गुरु दया सिंधु, ग्यान के दातारहे । गुरु बिन ग्यान कौन, पावत या पृथिवीमें, गुरु बिन ग्यान हीन, सकल संसारहे । सद्गुरु बिना कौन, संशय मिटावे और, सद्गुरु मिले ताको, सुभाग्य अपारहे ॥ ७१ ॥

माता-पिता, भाई-बन्धु, सातों सुख, और सप्तधातु तथा उत्तम भवन भी संसार में मिल जाते हैं, परन्तु गुरुदेव का मिलना दुर्लभ से दुर्लभ है, क्योंकि सद्गुरु ही दया के समुद्र और ज्ञान के देनेवाले हैं । गुरु के बिना इस पृथ्वीतल पर कोई ज्ञान नहीं पा सकता, गुरु के बिना सारा संसार ज्ञानहीन है । सद्गुरु के बिना और कौन संशय मिटा सकता है ? जिसे सद्गुरु मिल जावे उसका अपार सौभाग्य है ॥ ७१ ॥

दोहा.

भेद भक्तिके तुम कहे, सो हम सुने सप्रीत ।

जुक्ति कहो अब जोगकी, सुनन चहत हम चित्त ॥ ७२ ॥

आपने जो भक्ति के भेद का वर्णन किया उसे हमने प्रीतिपूर्वक सुना । अब हम योग की युक्ति सुनना चाहते हैं, कृपा करके कहिये ॥ ७२ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त—दोहा.

सिद्ध कहे सागर सुनो, जो तुम चाहत चीत ।

जुक्ति कहूं अब जोगकी, धरि परिपूरन प्रीत ॥ ७३ ॥

सिद्ध ने कहा कि, हे सागर ! सुनो, जो तुम योग की युक्ति सुनना चाहते हो तो अब परमात्मा का ध्यानकर उसका वर्णन करता हूँ ॥ ७३ ॥

भेद सुनो हठयोगके, यह योग अष्टांग ।

साधत हे सो जोगिजन, सोई सुनाउं सांग ॥ ७४ ॥

हठ योग के भेद सुनो । यह योग आठ अङ्गों वाला है, इसकी साधना योगीजन करते हैं, इसका ही सांगोंपांग वर्णन करता हूँ ॥ ७४ ॥

सिद्ध बनी संसारमें, सत्वर सिद्धी पाय ।

ऐसी विद्या योगकी, और न एक उपाय ॥ ७५ ॥ ~

संसार में सिद्ध होकर जल्दी ही सिद्धि प्राप्त हो ऐसी विद्या योग की है, उसके सिवाय और कोई उपाय नहीं ॥ ७५ ॥

योग भेदाभिधान-दोहा.

योग लसत पुनि उभय विधि, हठ अरु राज ललाम ।

सोई सुनाऊं सर्व तुम, जातें है तुम काम ॥ ७६ ॥

यह योग दो प्रकार का है, हठ-योग और राज-योग । उसे ही तुम्हें सुनाता हूँ जिससे तुम्हारा काम हो जावे ॥ ७६ ॥

जोगीजन हठ योगतें, सिद्धी सत्वर पात ।

राज योगगत ज्ञानिजन, ज्ञान ग्रहत अवदात ॥ ७७ ॥

योगी लोग हठ-योग से शीघ्र सिद्धि पाते हैं, और राज-योग से ज्ञानीजन उत्तम ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥ ७७ ॥

अष्ट अंग हठ योगके, योगीजन उचरंत ।

सोई सबे संक्षेप तें, हम तुम पास कहंत ॥ ७८ ॥

योगी लोग हठ-योग के आठ अङ्ग कहते हैं । वह सब संक्षेपसे हम तुम्हारे पास कहते हैं ॥ ७८ ॥

इष्टयोगके अष्ट-अंग-नामकथन-छप्पय छंद.

प्रथम अंग यम लहो, नियम द्वा उर आनो ।
 तृतीय आसन अंग, सोई चौरासी जानो ॥
 चहुथा प्राणायाम, प्रत्याहार पुनि पंचम ।
 धरो धारना षष्ठ, ध्यान पुनि धारो सप्तम ॥
 पुनि अष्टम अंग समाधि शुभ, योगीजन सब उच्चरे ।
 सोई सुनो सब सचेत बनी, जानें तुम कारज सरे ॥ ७६ ॥*

पहिला अङ्ग यम है, दूसरा नियम को समझो, तीसरा अंग आसन जो कि चौरासी प्रकार का है, चौथा प्राणायाम, पांचवां प्रत्याहार, छठा धारणा, सातवां ध्यान और आठवां शुभ अंग समाधि है, ऐसा सब योगीजन कहते हैं । तुम सब उसे सावधान होकर सुनो, जिससे तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हों ॥ ७६ ॥

दोहा—दश विधियम अरु नियम दश, आसन चौरासीय ।

सोई प्रथम तुमकों कहो, ज्यों उतरे तुय हीय ॥ ८० ॥

यम और नियम के दस २ भेद हैं, और आसन के चौरासी भेद हैं । वही तुम्हें पहिले कहता हूं, जिससे तुम्हारी समझ में आ जावे ॥ ८० ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

यम नियम आसन और प्राणायाम प्रत्याहार हे ।

धारना ध्यान समाधि सो यह, अष्ट योग प्रकार हे ॥

कहुं प्रथम तिनमें यम नियम अरु, आसन मुनि ज्यों करे ।

मित मित कहेंछें ज्यों जथार्थ, भेद अंतर ऊतरे ॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं । इनमें से यम, नियम और आसन जिस प्रकार मुनि-जन करते हैं उन्हें पहिले कहता हूं, क्योंकि थोड़ा २ कहने से यथार्थ भेद हृदय-ङ्गम हो सकेगा ॥

प्रथम दशविधि यमकथन-चौपाई.

आदि अहिंसा सत्य सुहाय, अस्तेय अरु ब्रह्मचर्य कहाय ।

क्षमा धृति अरु दया दिल रोच, आर्जव मिताहार रु शौच ॥ ८१ ॥*

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार
और शौच ये दस यम के भेद हैं ॥ ८१ ॥

अहिंसा-लच्छन-दोहा.

मन बानी अरु कायतें, करे न किसिकी घात ।

सोई अहिंसा शास्त्रमें, वदत विबुध अवदात ॥ ८२ ॥ ‡

मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कष्ट न देना, शास्त्रों में तथा
विद्वानों द्वारा 'अहिंसा' कही गई है ॥ ८२ ॥

सत्य लच्छन-दोहा.

भूठ न बोले जीभतें, करे न जूटां काम ।

दीपत दोय प्रकारके, सोई सत्य ललाम ॥ ८३ ॥‡

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कहिये आहिंसा सत्य पुनि, अस्तेय अरु ब्रह्मचर्य हे ।

धृति क्षमा ओर दया रु आर्जव, मिताहार रु शौच ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, धृति, क्षमा, दया, आर्जव, मिताहार
और शौच ये दस 'यम' कहलाते हैं ॥

† मनसें तनसें वचनसें, करे न कौकी घात ।

यही अहिंसा धर्म हे, कहत वेद साक्षात ॥

तन, मन व वचन से किसी को कष्ट न देना यही 'अहिंसा' धर्म है, ऐसा
साक्षान् वेद कहते हैं ॥

‡ जिहमें असत्य नां कहे, करे न असत्य कर्म ।

दो प्रकारके जानिये, यहै सत्यही धर्म ॥

जिह्वा से झूठ न बोलना और झूठा काम न करना, यह दो प्रकार का सुन्दर 'सत्य' है ॥ ८३ ॥

अस्तेय-लच्छन-दोहा.

तन अरु मनतें कोउ दिन, करे न चोरी जेह ।

उभय भेद अस्तेयके, उचरत योगी येह ॥ ८४ ॥*

तन अथवा मन से कभी भी चोरी न करना, यह दो भेद 'अस्तेय' के योगीजन ने कहे हैं ॥ ८४ ॥

ब्रह्मचर्य-लच्छन-दोहा.

मन बानी अरु कायतें, तजि तिय संग सदाय ।

जीतें इंद्रिय आपकी, सो ब्रह्मचर्य कहाय ॥ ८५ ॥

मन, वाणी और शरीर से सदा स्त्री-संग त्यागकर अपनी इन्द्रिय को वश में रखना ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ ८५ ॥

अन्यमत्ते ब्रह्मचर्य-लच्छन-दोहा.

लखन हसन सुमरन छुवन, श्रवन कहन इकंत ।

रति गह तियकी अठ तजे, सो ब्रह्मचर्य कहंत ॥ ८६ ॥ †

जिह्वा से कभी असत्य न बोले, और नाहीं कोई असत्य कर्म करे । ऐसे दो प्रकार 'सत्य' धर्म के जानना ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

तनमें मनसैं काहुकी, चोरि न करनी चाहि ।

दो प्रकार अस्तेयके, जानत मुनिजन जाहि ॥

तन से और मन से किसी की चोरी न करना ये दो प्रकार 'अस्तेय' के हैं, जिसे मुनि लोग जानते हैं ॥

† सभरन श्रवन रु निरखैन नारी, भाखैत गुह्ये वृतांत उचारी ।

हार्य रंती स्पर्षन नहि सजनां, ब्रह्मचर्य अठ मैथुन तजनां ॥

स्त्री को देखना, उससे हंसी करना, उसका स्मरण करना, उसका स्पर्श करना, उससे सम्बन्ध की बात करना, स्त्री के साथ वार्तालाप करना और उसके साथ एकान्त में रहना, ये आठ मैथुन कहे गए हैं । इनका त्याग करना, ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ ८६ ॥

धृति-लच्छन-दोहा.

सुख दुखमें धीरज धरी, रहे सदा निज काय ।

डरे न कोतें दिल विशे, धृति सो चारु कहाय ॥ ८७ ॥*

सुख और दुःख में हमेशा अपने शरीर में धीरज धारण कर रहे, और किसी से मन में डरे नहीं, उसे 'धृति' कहते हैं ॥ ८७ ॥

क्षमा-लच्छन-छप्पय.

कोहु करे नुकशान, कोहु देवे मुख गारी ।

कोहु करे उपक्रोश, कोहु जाये काभ मारी ॥

कोहु करे अपमान, को कहे बैन करारी ।

ऐसें असह्य अपार, दुख देवे कौ भारी ॥

बिना खेद वपुसो सब सहे, सबलहुते निज गातही ।

याकों उचरतहे सब छमा, योगी जनं अवदातही ॥ ८८ ॥‡

आठ प्रकार के मैथुन—अर्थात् स्त्री का स्मरण, स्त्री-चर्चा का श्रवण, स्त्री को देखना, स्त्री के साथ बात करना, स्त्री को छिपकर बात कहलाना, हंसी करना, संभोग करना और स्पर्श करना—को त्याग करना 'ब्रह्मचर्य' कहा जाता है ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

सुख दुखमें आपत्तिमें, डरे न कउसें जेहि ।

धीरज सर्व समय धरे, धर्म धृतीको एहि ॥

सुख दुःख और आपत्ति में जो किसी से न डरता हुआ सदा धीरज रखे, उसे 'धृति' कहते हैं ॥

‡ कौ ताडन कर कौ दे गारी, कौ निंदा करिहे नर नारी ।

सो सब सहन करी ज्यों रहिये, ताको नाम क्षमाही कहिये ॥

कोई कुछ नुकसान करे अथवा कोई मुख से गाली दे, कोई निंदा करे अथवा कभी कोई मार दे, कोई अपमान करे अथवा कोई कठोर वचन कह दे, इसी प्रकार कोई भारी दुःख देकर असह्य यातना पहुंचावे । इन सबों को खेद किये बिना अपने शरीर पर सहन कर लेना, इसे सब भ्रेष्ठ योगीजन क्षमा कहते हैं ॥ ८८ ॥

दया-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

तन मन वचन बनी दयाला, करन सबे जियके प्रति पाला ।
कोदिन काहु न दिख दुखावे, सोय दया सब लोक कहावे ॥ ८९ ॥*

तन, मन और वचन से दयालु होकर सब जीवों का प्रतिपालन करना, कभी किसी का दिल न दुखाना, यही लोक में 'दया' कही जाती है ॥ ८९ ॥

आर्जव-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

कोमलता उर अंतर राखे, कोमल बैन बदनतें भाखे ।
कोमल नजरें सर्व निहारे, आर्जव याकों नाम उचारे ॥ ९० ॥†

कोई ताड़ना करे, कोई गाली दे अथवा कोई स्त्री-पुरुष निंदा करे, उस सबको सहन करके शान्त रहे, उसे 'क्षमा' कहते हैं ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

सब प्राणीको हित चहे, मन क्रम वचनहि जोय ।
वैर करे नहि काहुमें, दया कहत मुनि सोय ॥

जो मन वाणी और कर्म से सब प्राणियों का हित चाहे, और किसी से वैर न करे, उसे मुनिलोग 'दया' कहते हैं ॥

† निज अंतर कोमलता धारे, मुखतें कोमल वचन उचारे ।
सबपे कोमल दृष्टी राखे, आर्जव नाम ताहि मुनि भाखे ॥

अपने अन्दर कोमलता धारण करे, मुख से मधुर वाणी बोले, और सब पर कोमल दृष्टि रखे, उसे मुनिलोग 'आर्जव' कहते हैं ॥

हृदय में कोमलता रखना, मुख से कोमल वचन बोलना, तथा कोमल दृष्टि से सबको देखना, यह 'आर्जव' कहा जाता है ॥ ६० ॥

मिताहार-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

न्याद तामसी निकट न जावे, सात्विक भोजन नित्ये पावे ।
बातें चौथा भाग बचावे, मिताहार सो सर्व कहावे ॥६१॥

तमोगुणी अन्न के समीप न जाकर सदा सात्विक अन्न का भोजन करे, तथा भूख का चतुर्थांश शेष रहने दे, अर्थात् जितनी भूख हो उसका तीन चतुर्थांश भोजन करे और एक चतुर्थांश भूखा रहे, यह 'मिताहार' कहा जाता है ॥ ६१ ॥

मिताहार-लच्छन-चरनाकुल-छंद.

सात्विक अन्न सु भोजन करही, तिक्क मिष्ट स्वाद न अनुसरही ।
कछुक न्यून भोजन कृत रहही, मिताहार ताकों मुनि कहही ॥६२॥

तीखा और मीठा न चाहते हुए सात्विक भोजन सदा करना, तथा भूख से थोड़ा कम ही भोजन करना मुनिजनों द्वारा 'मिताहार' कहा गया है ॥ ६२ ॥

शौच-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

भृतिका जलतें तन शुचि कीजें, ज्ञानहितें मन मैल तजीजें ।
बाढांतर इमि शुद्ध रहीजें, शौच बाहिकों नाम कीजें ॥६३॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

भृतिका जलसैं तन सुध करिहे, ज्ञानहुसैं अंतर मल हरिहे ।
रागादिक तजि शुचि मन राखे, शौचाचार ताहि मुनि भाखे ॥

मिट्टी और जल से शरीर को शुद्ध रखना, ज्ञान से अन्दर के मल को निवृत्त करना, और रागादि छोड़कर मन को पवित्र रखने को मुनिलोग 'शौच' आचार कहते हैं ॥

मिट्टी और जल से शरीर को शुद्ध रखना, तथा ज्ञान से मन का मैल हटाना, इस प्रकार बाहर भीतर से शुद्ध रहने को 'शौच' कहते हैं ॥ ६३ ॥

दशविधि नियम वर्नन—चौपाई.

तप संतोष रु आस्तिक दान, पूजा श्रवन सिद्धांतहि कान ।

लाज मती जप होम लखाय, सो दश नियम भेद कहाय ॥ ६४ ॥ †

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, पूजा, सिद्धान्त वाक्य का श्रवण, लज्जा, मति, जप और होम ये दस नियम के भेद हैं ॥ ६४ ॥

प्रथम तप—लच्छन—चौपाई.

शब्द स्पर्श रसरूपहि गंध, पंच विषय इंद्रियके बंध ।

वाका त्याग करे जन कोष, साधु सबे तप कहतहि सोय ॥ ६५ ॥ ‡

शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध ये जो पांच विषय पांचों इंद्रियों के बन्धन हैं, इनके त्याग करने को साधु लोग 'तप' कहते हैं ॥ ६५ ॥

पाठान्तर इस प्रकार है:—

† तप संतोष रु आस्तिक्य लीजे, दाँन रु पूजन कथा सुनीजे ।

लज्जा जाप रु मौन रहावे, हेमं सहित दश नियम कहावे ॥

तप, संतोष, आस्तिकता (ईश्वर-विश्वास), दान, पूजन, कथा सुनना, लज्जा, जप, मौन और होम ये दस 'नियम' कहे जाते हैं ॥

‡ शब्द स्पर्श रूप रस गंधा, पंच विषय इंद्रिय संबंधा ।

सब विधि त्याग करे जब याको, तप अस नाम कहावत ताको ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये इंद्रियों के पांच विषय हैं । जब इनका सब प्रकार त्याग करे, तो उसका नाम 'तप' कहाता है ॥

संतोष-लच्छन-दोहा.

पावे जे प्रारब्धते, तामें माने तोष ।

लेश न राखे लालसा, सो जानो संतोष ॥ ६६ ॥*

जो कुछ प्रारब्ध से मिल जावे उसी में सन्तुष्ट रहना, लेशमात्र भी और की लालसा न रखना 'सन्तोष' समझना चाहिए ॥ ६६ ॥

आस्तिक्य-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

उर आस्तित्व ईश्वरका माने, सत्यशास्त्र अरु श्रुतिकों जाने ।

पूर्ण प्रतीति धर्मपर धारे, आस्तिक्य याकों सर्व उचारे ॥ ६७ ॥

परमेश्वर सत्य है ऐसा मन में मानकर वेद तथा सत्य शास्त्रों को समझना और धर्म पर पूर्ण विश्वास रखना, 'आस्तिक्य' कहा जाता है ॥ ६७ ॥

आस्तिक्य-लच्छन-चरनाकुल-छंद.

शास्त्र रु वेद पुरान उचारे, तामें द्रढ विश्वासहि धारे ।

तजे कुतर्क भजे नित्य ईशा, आस्तिक्य ताकुं कहे मुनीशा ॥ ६८ ॥

शास्त्र और वेद पुराण जो कुछ कहते हैं उस पर दृढ़ विश्वास रखना, कुतर्क छोड़कर ईश्वर का नित्य भजन करना, इसे मुनीश लोग 'आस्तिक्य' कहते हैं ॥ ६८ ॥

दान-लच्छन-दोहा.

धन धान्यादिक दान ईक, और दान उपदेश ।

दोय भेद यह दानके, कहत बड़े बिबुधेश ॥ ६९ ॥+

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

मिलही तन प्रारब्ध सम, तातें धरे ज्यु तोष ।

करे न मनसैं कल्पना, सो कहिये संतोष ॥

शरीर के प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ प्राप्त हो उस पर ही सन्तोष रखकर मन में अन्य कल्पना न करे, उसे 'सन्तोष' कहते हैं ॥

+ अन्न जलादिक दान इक, और ज्ञानको दान ।

दो प्रकारके दान यह, जानत बुद्धि निधान ॥

बड़े बुद्धिमानों ने धन-धान्य आदिका दान तथा उपदेश का दान, ये दो भेद 'दान' के कहे हैं ॥ ८९ ॥

पूजा-लच्छन-दोहा.

इक पूजाहे मानसिक, इक षोडश उपचार ।

ऐसे अरचाके उभय, भेद भनत नरनार ॥ १०० ॥*

इसी प्रकार अर्चा के दो भेद कहे जाते हैं, एक मानसिक पूजा, दूसरी षोडशोपचार द्वारा पूजन ॥ १०० ॥

सिद्धांतवाक्य-श्रवन-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

आगम अरु उपनिषद् बानी, वाकों वदत सिद्धांतही ज्ञानी ।

सोय सुने श्रवणे जन जेही, श्रवण सिद्धांत कहावत वेही ॥ १०१ ॥

वेद और उपनिषद् की वाणी को ज्ञानीजन सिद्धान्त कहते हैं, उसे जो श्रवण करता है उसे 'श्रवण सिद्धान्त' कहते हैं ॥ १०१ ॥

अथवा श्रवन-लच्छन.

दोहा—नित्य सुननको हरि-कथा, नियम रखे निरधार ।

श्रवन नियम ताकों कहें, मुनि जन परम उदार ॥ १०२ ॥

एक तो अन्न-जलादि का दान और दूसरा ज्ञान का दान, यह दो प्रकार का 'दान' है, जिसे बुद्धिमान् लोग जानते हैं ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

एकहि पूजन मानसिक, अरु शोडष उपचार ।

शास्त्र अरु मुनिजन कहे, पूजन दोइ प्रकार ॥

एक मानसिक पूजन और दूसरा षोडशोपचार से पूजन, ऐसे दो प्रकार के 'पूजन' शास्त्र और मुनि लोग कहते हैं ॥

जो नित्य हरिकथा सुनने का नियम रखता है, उसे परम-उदार मुनिजन 'श्रवण' नियम कहते हैं ॥ १०२ ॥

लज्जा-लच्छन-दोहा.

लाज गुरुन अरु लोककी, मनमें राखि सदाय ।

करे न निंदित कर्मकों, लज्जा सोय कहाय ॥ १०३ ॥

मन में सदा गुरुजनों तथा लोक की लज्जा रखकर निंदित कर्म न करना, 'लज्जा' कहा जाता है ॥ १०३ ॥

लज्जा-लच्छन-दोहा.

लज्जा लोक रु गुरुनकी, रखे जीयमें जेह ।

निंदित कर्म सु नां करे, लज्जा कहिये तेह ॥ १०४ ॥

लोक और गुरुजन की हृदय में लज्जा रखकर निंदित कर्म न करने को 'लज्जा' कहते हैं ॥ १०४ ॥

मति-लच्छन-पादाकुलक-छंद.

नाना सुख छिति स्वर्ग निहारी, असत अनित उर वाकों धारी ।

सत्य सदा परब्रह्म बिचारे, याकों मति सब लोक उचारे ॥ १०५ ॥

पृथ्वी पर के तथा स्वर्ग के नानाप्रकार के सुख को देखकर उन्हें अनित्य और असत्य मान जो सदा परब्रह्म के विचार में संलग्न रहता है, उसे सर्व लोग 'मति' कहते हैं ॥ १०५ ॥

जप-लच्छन—पादाकुलक-छंद.

मंत्र यथाविधि गुरुतें पाई, रटत करन सो जाप कहाई । याके भेद उभय परमानो, वाचिक और मानसिक मानो ॥ जपे जीहसों वाचिक धारो, मानसिक मनमांहि बिचारो । वाके पुनि हैं द्वै द्वै भेदा, सोइ सुनो सबही विन खेदा ॥ उच्चैःअरु उपांशु कहावे, वाचिक के सो भेद सुहावे । ध्यानयुक्त विन ध्यानहि कीजें, मानसिक के भेद सो लीजें ॥ दीर्घ उचार

सु उच्चैःमानो, मंद उच्चार उपांशु प्रमानो । ध्यानयुक्त सो ध्यान सहिता,
ध्यान बिना सो ध्यान रहिता ॥ १०६ ॥

गुरु से यथाविधि मन्त्र प्राप्त कर जो जप किया जाता है उसे 'जाप' कहते हैं । इसके वाचिक और मानसिक दो भेद हैं । जो जिह्वा से जप किया जावे उसे वाचिक और जो केवल मन में विचार कर किया जाय उसे मानसिक जप कहते हैं । फिर इनमें से प्रत्येक के दो २ भेद हैं, जिन्हें खेदरहित हो सुनो । "उच्चैः" और "उपांशु" ये दो वाचिक के, और ध्यान-सहित तथा ध्यानरहित ये दो मानसिक जप के भेद हैं । दीर्घ उच्चारण को "उच्चैः" और मंद उच्चारण को "उपांशु" कहते हैं । इसी प्रकार जो ध्यानयुक्त हो उसे ध्यानसहित तथा जो बिना ध्यान के हो उसे ध्यानरहित जप कहते हैं ॥ १०६ ॥

जप-लच्छन-दोहा.

मंत्र जाप मनमें करे, कर माला धरि कोय ।

प्रति श्वासे सोहं जपे, अजपाजप हे सोय ॥ १०७ ॥

कोई हाथ में माला लेकर मन में मन्त्र का जाप करता है, और कोई प्रत्येक श्वास के साथ 'सोऽहं' का जाप करता है, जो 'अजपाजप' कहाता है ॥ १०७ ॥

होम-लच्छन-दोहा.

आज्यादिको होम इक, श्रुतितें शुचिमें होय ।

अरपे इंद्रिय ब्रह्ममें, होम दूसरो सोय ॥ १०८ ॥+

+ पाठान्तर इस प्रकार है: —

एक होम हे अग्निको, वेदमंत्र वत जेह ।

ब्रह्माग्निमें गो दहे, होम दूसरो तेह ॥

एक होम तो वेद-मंत्रों द्वारा अग्नि में साकल्य का है, और दूसरा होम ब्रह्माग्नि (अपने आत्मा में) में इन्द्रियों को 'होम' करने का कहाता है ॥

पवित्र होकर वेद-मन्त्रों के साथ आज्यादि का होम करना एक प्रकार का होम है, तथा इन्द्रियों का ब्रह्म में अर्पण करना दूसरे प्रकार का होम है ॥ १०८ ॥

दोहा—यह दश विधिके नियम सो, लच्छन सहित सुनाय ।

अब आसनकी विधि कहूं, जो जानत मुनिराय ॥ १०९ ॥

इस प्रकार दस प्रकार के नियमों को लच्छण सहित सुनाया, अब आसनों की विधि कहता हूं, जिसे कि मुनि लोग जानते हैं ॥ १०९ ॥

योग अंग यम प्रथम कहि, दूजा नियम बताय ।

तीजा अब आसन कहों, सुनो सर्व श्रुति माय ॥ ११० ॥

योग के प्रथम अंग यम का वर्णन करके दूसरे अंग नियम को बतलाया, अब तीसरे अंग आसन का वर्णन करता हूं, सो तुम सब कान देकर सुनो ॥ ११० ॥

मौन-लच्छन-दोहा.

बिना प्रयोजन नां बदे, नहि अपशब्द उचार ।

मौन कहत मुनि ताड़िकुं, जाके शुद्ध विचार ॥ १११ ॥

जो बिना प्रयोजन कुछ कहना नहीं, तथा अपशब्द का उच्चारण न करना है उसे शुद्ध विचार वाले मुनिजन 'मौन' कहते हैं ॥ १११ ॥

योगका तीसरा अंग आसनवर्नन—चौपाई.

योग कलाके तीजा अंग, उचरत योगी आसन चंग ।

आसनतें मन स्थिरता पाय, व्याधि रहे नहिं वपुके माय ॥

बुधा त्रषा नहिं वृद्धी पाय, आलस्य अलगी रहे सदाय ।

ऐसे आसन उत्तम जेह, सोय कहूं तुमकों धरि नेह ॥

लख चौराशी जीव कहाय, एते आसन भेद लखाय ।

सो सब जाने शंकर देव, और न जाने उनके भेब ॥

लख प्रति आसन लेइ इकेक, किये प्रगट चौराशी जीव नेक ।

सो सब कहत न आवे पार, उनमें उत्तम सोहे चार ॥

सिद्ध पद्म अरु सिंह कहाय, भद्र सहित पुनि चार सहाय ।

सो तुमकों अब देहुँ बताय, सर्व सिखो तुम ध्यान लगाय ॥ ११२ ॥

योगकला के तीसरे अंग को योगीजन आसन कहते हैं । आसन से मन में स्थिरता होती है, तथा शरीर में रोग नहीं रहता है, लुधा और तृषा की वृद्धि नहीं होती, तथा आलस्य दूर होता है । इस प्रकार के जो उत्तम आसन हैं उन्हें मैं प्रेमपूर्वक तुमसे कहता हूँ । चौरासी लाख योनियां हैं उतने ही आसन हैं, उन सबको तो भगवान् शङ्कर जानते हैं । औरों को उनका भेद ज्ञात नहीं, परन्तु एक २ लक्ष प्रति एक २ आसन लेकर चौरासी आसन प्रकट हुए हैं । उन सबका वर्णन करना भी अपार है, इसलिये उनमें से श्रेष्ठ जो चार हैं उन्हें कहता हूँ । (१) मित्र, (२) पद्म, (३) सिंह और (४) भद्र ये चार आसन हैं, वह अब तुम्हें बताता हूँ, तुम सब ध्यान लगाकर सुनो ॥ ११२ ॥

आसन-कथन-चरनाकुल-छंद.

आसन द्रढ साधत मुनिराया, तातें रोग न व्यापत काया । जोगकला सब शंकर जाने, आसन साधी तन स्थिर आने ॥ शिवा समीपमें सदैव बसही, तउ पुनि हरको बुंद न खसही । सो आसन साधनतें जानो, आसन साधन उरमें आनो ॥ चौराशी लख जंतु कहावे, इतने आसन योग मुहावे । सब विधि जानत शंकर सोई, नहि जानतहे दुसरा कोई ॥ प्रति लख एकहि आसन लीना, यौ चौराशी प्रसिद्ध कीना । तामें पुनि उत्तमहे दोई, सिद्धासन पद्मासन सोई ॥ सुन अब याको कहूं विचारा, सो आसन शिखरु निरधारा ॥ ११३ ॥

मुनि लोग दृढ़ आसन की साधना करते हैं, जिससे उनके शरीर में रोग नहीं होता । योग की सब कलाओं को भगवान् शङ्कर जानते हैं, और आसन की साधना करके शरीर में स्थिरता ले आते हैं । सदा पार्वती के समीप में रहते हैं

फिर भी एक बूंद भी वीर्यपात नहीं होता । यह सब आसन-साधन का ही प्रभाव है, इसलिए आसन-साधना की हृदय में आकांक्षा करो । चौरासी लाख योनियां जीवों की हैं इतने ही योग के आसन हैं । उन सबों को सब भांति भगवान् शंकर जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता । परन्तु प्रति लक्ष पर एक २ लेकर चौरासी आसन प्रसिद्ध हुए हैं । उनमें से भी सिद्धासन तथा पद्मासन दो सर्वोत्तम हैं । अब उनका विचार कहता हूँ, तुम उन्हें निश्चित रूप से समझो ॥ ११३ ॥

सिद्धासन-लच्छन-कवित्त.

लिंग अरु गुदा बीच, शीवनो सुहात तापें, वामपाय एडी धरी,
दाबीकें द्रढाइयें । और पाय दहनकी, एडी धरी मेहनपें, हृदय समीप हनु
स्थिर करी ठाड़यें । इंद्रिय संयम करी, स्थानुमम स्थिर व्हेकें, भृकुटिके
मध्य महा, द्रष्टि द्रढ लाइयें । सिद्ध कहे सागर ये, सर्वतें सुभग महा, मोक्ष-
हिके देनवार, सिद्धासन गाइयें ॥ ११४ ॥

लिंग और गुदा (मूत्रेन्द्रिय और मलेन्द्रिय) के बीच जो सीवन है उस पर बायें पांव की एडी लिंगेन्द्रिय पर रख कर हृदय के पाम हनु (ठुड्डी) करके स्थिरता के साथ सामने दृष्टि करे । इंद्रियों का संयम करके और पत्थर के समान स्थिर होकर भृकुटि के बीच दृष्टि लावे । सिद्ध कहते हैं कि हे सागर ! सबने सुगम मोक्ष का देने वाला यह सिद्धासन है ॥ ११४ ॥

सिद्धासन-लच्छन-कवित्त.

वाम पाम एडी, मूलद्वार अग्र ठहराई, तिहिपर शिश्र रहे ऐसी रीति
आनिये । तिहिपर एडी धरि दच्छन चरनहुकी, औरही शरीर सब सरलही
ठानिये । एडीपर वाम कर सुलट धरिकें तापें, दच्छन सुलट कर, करि युक्ति
जानियें । अचल उरध द्रष्टि, भृके मध्य धारि रहे, इंद्रिय संयम करे,
सिद्धासन जानियें ॥ ११५ ॥

बायें पांव की एडी को मूलद्वार के आगे रखे ! जिससे कि उसके ऊपर शिशन (मूलेन्द्रिय) रहे और फिर उस पर (मूलेन्द्रिय पर) दाहिने पांव की

एडी रखे और शरीर को सीधा रखे । एडी के ऊपर बायें हाथ को सीधा रखे और ऊपर दाहिना हाथ सुलहा करके बुद्धिपूर्वक रखे । दृष्टि को भृकुटि के मध्य स्थिर और ऊर्ध्व गति से रखे और इंद्रियों को संयम में रखे, इसे सिद्धासन कहते हैं ॥ ११५ ॥

पद्मासन-लच्छन-कवित्त.

वाम उर मूल धरी, दच्छन चरन एडी, दछन उरु के पर, वामपाय ठानीकें । पीठपें फिराई पान, दछनतें दाहे अरु, वामेवाम पाग्रहो, अंगूठा ख जानीकें । छातीपें सुभग महा, ठोढी ठहराई ठीक, द्रष्टि द्रढ धारो नाशा, अग्रपरे आनीके । सोई सर्व योगी कहे, व्याधिके हरन हार, पुनीत पद्मासनही, बानीतें बखानीकें ॥ ११६ ॥

बायें पाँव के मध्य में दाहिने पाँव की एडी को रखे और दाहिने पाँव के मध्य में बाएं पाव की एडी रखे । हाथों को पीठ के पीछे फिराकर दाहिने हाथ से दाहिने पांव के अंगूठा को पकड़े । छाती के ऊपर ठोढी को स्थिर करे और दृष्टि को नाक के अग्रभाग पर स्थिर करे । इसे सब योगीजन व्याधि दूर करने वाला पवित्र पद्मासन वर्णित करते हैं ॥ ११६ ॥

पद्मासन-लच्छन-कवित्त.

दच्छन उरुके पर वाम पांव आवतहे, वाम उरु पर यों दच्छन पांव आनहे । दोउ कर पीठपें फेराइ तासैं पावहूके, दच्छन रु वाम दोउ अंगुष्ठ ग्रहातहे । चिबुकहुं वच पर धाकिं दो नेन खुल्ले, द्रष्टि बाकी नासा अग्रपर ठहरातहे । सब व्याधि हरे ऐसो जोगीजन साधनहे, आसन को नाम पद्मासन प्रख्यातहे ॥ ११७ ॥

दाहिने पिंडली व जंघा के बीच बाएं पाँव और दाहिने पग के । व जंघा के बीच बायां पांव आवे, फिर हाथों को पीठ पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से बाएं का और बाएं हाथ से दाहिने पग का अंगूठा पकड़े । ठुड़ी को छाती के ऊपर रखकर आंखों को खोले, नाक के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर कर

जो योगजिन साधते हैं उनके सब व्याधि को हरण करता है ऐसे इस आसन का नाम पद्मासन विख्यात है ॥ ११७ ॥

सिंहासन-लच्छन-कवित्त.

वृषण के नीचे नाड़ी, शीवनी लसत ताकें, दक्षिण तरफ वाम, पाय एड़ी धारियें । वाम और दाहि पद, एड़ीकों अचल धरी, पिंडीपें दो मान धरी, अंगुरि पसारियें । आनन उधारी जिह, बाहिर निकारी पुनि, नाशिकाके अग्रपर द्रष्टि द्रढ धारियें । ऐसैं अभिराम महा, योगिनकों अर्चनीय, सिद्ध कहें सिंहासन, आशयतें उचारियें ॥ ११८ ॥

अंडकोष के नीचे सीवनी नाड़ी रहती है उसके दाहिनी ओर बाएं पांव की एड़ी लगावे । इस प्रकार बायीं और दायीं एड़ी स्थिर करे, फिर पिंडी पर दोनों हाथ रखकर उंगलियों को फैला देवे । मुंह को खुला कर जीभ को बाहर निकाले और दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करे । ऐसा अभिराम और महा योगियों के साधन करना, सिद्ध कहते हैं, अपने नाम से युक्त आशय वाला सिंहासन है ॥ ११८ ॥

भद्रासन-लच्छन-कवित्त.

वृषण के नीचे नाड़ी, शीवनी रहत ताकें, वाम भागें वामपाय, एड़ी-नकों आनियें । दाहिने सुभागे पाय, दाहिनेकी एड़ी धरी, उभय अचल करी, मंजु मन मानियें । पार्श्वके समीप पाय, आई रहे आगें ताकें, दोष कर जोड़ी द्रढ, स्थिर करी ठानियें । सिद्ध कहे सोई सर्व, रोगकें हरन हारे, भद्रकारी भव मांही, भद्रासन जानियें ॥ ११९ ॥

वृषण के नीचे जो सीवनी नाड़ी है उसके दायीं ओर बायीं एड़ी और दाहिनी ओर दाहिने पग की एड़ी लगावे, दोनों को स्थिर करके प्रसन्न होवे, फिर पार्श्व के पास जो पाँव आजावे उन्हें दोनों हाथों से दृढ करके रक्खे । सिद्ध कहते हैं कि उसे सर्व रोगों का हरने वाला संसार में कल्याणकारी भद्रासन जानना चाहिये ॥ ११९ ॥

दोहा.

यम नियमासन वरनिकें, कहे सर्व यहि बेर ।
मनन करो मन वाहिकों, और कहेंगे फेर ॥ १२० ॥

यम नियम और आसन का वर्णन करके फिर कहा कि इनका मनन करो शेष फिर कहेंगे ॥ १२० ॥

यों यम नियम कहे हमें, कहि आसन विध और ।
मनन करहु मनमें यहै, कहिहों शेष बहोर ॥ १२१ ॥

इस प्रकार हमने यम और नियम का वर्णन करके फिर आसन का दो प्रकार बताया है, इनका मनमें मनन करो, शेष फिर कहेंगे ॥ १२१ ॥

प्राणायामादिशेषपंचांगकथन और सिद्ध प्रति सागरोक्त-दोहा.

यम नियमासन जे कहे, लहे सोय मनमांय ।
और योगके अंग सब, कहो सिद्ध सुखदाय ॥ १२२ ॥

सागर ने कहा कि, हे सिद्ध महाराज ! आपने जो यम, नियम और आसन के भेद बताये उन्हें तो समझ लिया, अब योग के अन्य सुखदायी अंगों का वर्णन कीजिये ॥ १२२ ॥

सागर प्रतिसिद्धोक्त योगका चौथा अंग प्राणायाम कथन-दोहा.

चौथा अंगहि योगका, प्राणायाम प्रभाय ।
सो सुखदा तुम सर्वकों, विधितें देहु बताय ॥ १२३ ॥

तब सिद्ध ने कहा कि, योग का चौथा अंग प्राणायाम है, उस सुखदायक अंग को तुम सबों को बताता हूं ॥ १२३ ॥

अथ प्राणायाम लच्छन कथन-पादाकुलक छंद.

पूरक रेचक कुंभक प्राणा, कृत नाडीतें जे मनमाना ।
प्राणायाम कहत उन नामा, तोहि बताऊं सो अभिरामा ॥ १२४ ॥

पूरक, रेचक और कुंभक जो प्राण हैं उन्हें स्वेच्छापूर्वक जो इडा पिंगला नाड़ी से चलाना है उसे प्राणायाम कहते हैं । उसे तुम्हें उभय प्रकार से बताता हूँ ॥ १२४ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

प्रानायामादिक कहुं, शेष योगके अंग ।

सिद्ध कहे सागर सुनो, मनमें धरी उमंग ॥ १२५ ॥

सिद्ध ने कहा कि हे सागर ! अब योग के शेष अंग प्राणायामादि का वर्णन करता हूँ, हृदय में उमंग धर कर सुनो ॥ १२५ ॥

प्रानायाम लच्छन-दोहा.

प्रानायाम किये हुमें, नाडी चक्र ठरात ।

पूरक कुंभक रेचकहि, करिकें पाप बिलात ॥ १२६ ॥

प्राणायाम के करने से नाड़ी चक्र स्थिर होता है और पूरक, कुंभक मध्य रेचक के करने से पाप नष्ट होते हैं ॥ १२६ ॥

नाड़ीकथन-दोहा.

नाड़ी बात प्रकारकी, वामें दश प्रख्यात ।

इडा, पिंगला, सुशुम्णा, यह त्रय सार कहात ॥ १२७ ॥

नाड़ी अनेक प्रकार की हैं, परन्तु उन में दस प्रसिद्ध हैं उनमें भी इडा, पिंगला और सुशुम्णा के तीन सार रूप कही जाती हैं ॥ १२७ ॥

त्रय नाड़ीभेद कथन-कवित्त.

वाम नासा इडा नाडी, ईदुहे अधीश ताको, पिंगला दच्छिन नासा, देव रवि ताहिको । मध्य बहे सुशुम्णा, ताको पति पावकहे, जानहु प्रताप सब काजहीमें जाहिको । प्रानायाम प्रभावतें इडा पिंगला दो थके, तब वेग उलट चले सुशुम्णाहिको । शरीर में सुख होत, दुःख जात दूर सब, ऐमो ही प्रभाव ज्युं बदत बेद वाहिको ॥ १२८ ॥

बायें नासिका का स्वर इडा नाड़ी है जिसका अधीश्वर चन्द्रमा है और दाहिने नासिका की पिंगला नाड़ी है जिसका अधिपति सूर्य है । जो मध्य गत नाड़ी है वह सुशुम्णा है और उसका अधीश्वर अग्नि है । सब कामों में उसी का प्रताप समझना । जब प्राणायाम के प्रभाव से इडा और पिंगला दोनों थक जाती हैं तब सुशुम्णा नाड़ी का वेग उलटा चलता है, इसका प्रभाव वेद ने यह बतलाया है कि, इससे शरीर में सुख होता है और सब दुःख इस से दूर होते हैं ॥ १२८ ॥

दश वायु वर्नन—छप्पय.

प्राण हृदयमें रहे, गुदास्थल अपान रहही ।
व्यान सबहि तन व्याप, नाभिथल समान कहही ॥
कंठहि रहे उदान, नाग उदगार करतहे ।
कूर्म उघारे पलक, क्रकल सो छुधा धरतहे ॥
पुनि देवदत्त जंभन करे, यों मुनिजन सब गातहे ।
फिर होत धनंजय बात जब, पंच प्राण मरजातहे ॥ १२९ ॥

‘प्राण’ हृदय में रहता है, ‘अपान’ गुदास्थल में रहता है । ‘व्यान’ सारे शरीर में व्याप्त है, ‘समान’ नाभिस्थल में रहता है, ‘उदान’ कंठ में रहता है, ‘नाग’ उद्गार करता है । ‘कूर्म’ से पलकें उछलती हैं, ‘क्रकल’ से भूख लगती है, ‘देवदत्त’ से जंभाई आती है, ऐसा सब मुनिजन गाते हैं । और जब ‘धनंजय’ वायु होता है तो पांचों प्राण मर जाते हैं ॥ १२९ ॥

षट्चक्र अनुक्रम—छंद चरनाकुल.

प्रथम चक्र आधार कहावे, मूलद्वार में ही सु रहावे । मुनिजन कहत चारि दल ताके, “व, श, ष, स” चारहि अच्छर जाके ॥ दुमरा चक्रहि स्वाधिष्ठाना ताको, गुह्येंद्रियहे स्थाना । षट् दलमें षट् वरन रहावे, “ब, भ, म, य, र, ल” उच्चार कहावे ॥ मनिपूरक तिमरेको नामा, नाभिस्थलहे इनको धामा । दश दलके दश अच्छर जानो, “ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ” प्रमानो ॥ अनहद चक्र

हृदयके मांही, द्वादश दल अच्छर पुनि वांही । कादिक ठांत सु बार गनीजे, सो चतुर्थ चक्रहि गनि लीजे ॥ पंचम विशुद्ध चक्र कहावे, कंठस्थलमें सोइ रहावे । शोडष दलमें शोडष अंका, अकार आदिक खरहि निशंका ॥ भ्रूमें आज्ञाचक्र कहीजे, द्वै दल अच्छर द्वै सुनि लीजे । हंसःअस उच्चार कहावे, यौं षट्चक्र मुनीश्वर गावे ॥ यह षट्चक्र भेदि जब जावे, तबहि सुशुमणा मांहि समावे । प्राणायाम सधे जन जबही, करे सुशुमणा में गति तबही ॥ १३० ॥ *

पहिला आधार चक्र है जो मूलद्वार में रहता है । मुनिजन कहते हैं कि उसके चार दल हैं और उसमें चार अक्षर “ब, श, प, स” हैं । दूसरा चक्र

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

शरीरस्थ षट्चक्र—अनुक्रमवर्नेन—पादाकुलक छंद.

प्रथम चक्र आधार बिराजे, मूलद्वारमें सोइ आजे । “वशपस” वर्ण वलित दल चारा, सोहत सबतनुके आधार ॥ स्वाधिष्ठान चक्रविय धारो, लिंग स्थान उतखे निरधारो । वाके षट्दल चारु सुहावे, “बममयरल” षट वर्ण रहावे ॥ तीजा मनिपुर चक्र कहावे, नाभिस्थलमें सोइ रहावे । दश-दलके दश वर्ण विचारो, “डढणतथदधनपफ” मन धारो ॥ अनाहत चक्र हृदयमें राजे, द्वादश दल अरु अक्षर आजे । कातें ठालग बाग्ह मानो, द्वादश दलमें सोइ प्रमानो ॥ पंचम चक्र विशुद्ध बिराजे, कंठ स्थानमें सोइ आजे । षोडश दल उनहीके राजे, सोरह “खर” पुनि वामें छाजे ॥ षष्ठम अज्ञा चक्र कहावे, दोय ओंहके मध्य रहावे । द्वै दल वाके विमल सुहावे, “हंस” वर्ण पुनि वांहि रहावे ॥ यह षट्चक्र बंधकें जावे, ब्रह्मरंध्र तब वेही पावे । सोइ सुपुम्ना गतितें लीजे, और उपाय न उनको कीजे ॥ यातें प्राणायाम अनूपा, आज शिखावों तुमकों भूपा । सोइ शिखो तुम सहृद-साते, सिद्ध बनेगो कारज बातें ॥

चक्र आधार है जो मूल द्वार में है, जिसमें ‘ब, श, प, स’ वर्ण सहित चार दल हैं, जो सारे शरीर का आधार है । दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है

स्वाधिष्ठान है जिसका स्थान गुह्येन्द्रिय है । उस के छः दलों में छः वर्ण 'ब भ म य र ल' कहे जाते हैं । तीसरे का नाम मणिपूरक है जिसका स्थान नाभिस्थल है । इसके दस दल के दस अक्षर 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' हैं । अनहद चक्र हृदय में है जिसके द्वादश दल और अक्षर हैं जो कि कंठ तक हैं । पांचवां विशुद्ध चक्र है जो कंठस्थल में रहता है । उसके सोलह पंखड़ियों में सोलह अक्षर अकारादि सोलह स्वर हैं । छठा आज्ञाचक्र दोनों भौंहों के बीच है । उसकी दो पंखड़ियों में दो अक्षर हैं जिसका उच्चारण "हंस" कहा जाता है । इस प्रकार मुनीश्वरों ने छः चक्र कहे हैं । इन छः चक्रों का भेदन कर जब आवे तब सुशुम्णा नाड़ी में प्राण समा जाते हैं । जब मनुष्य प्राणायाम का साधन करना है तब सुशुम्णा में गति करता है ॥ १३० ॥

प्रानायामकी क्रिया—दोहा.

शोडष प्रनवहि मन जगे, पुरे इडासैं प्रान ।

चोमठ जापत प्रनवलों, कुंभक करे निदान ॥ १३१ ॥

सोलह बार ओं का जप करते हुए इडा नाड़ी में श्वास भरे फिर चौंसठ बार ओंकार का जप करे तब तक कुंभक करे अर्थात् श्वास को रोकें रखे ॥ १३१ ॥

जिसका स्थान लिंग है, जिसमें छः दल हैं और 'ब भ म य र ल' ये छः वर्ण हैं । तीसरा मणिपुर चक्र है, जो नाभि-स्थल में है, उसके दस दल के दस वर्ण 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' हैं । चौथा अनाहत चक्र हृदय में है, जिसमें द्वादश दल और बारह ही वर्ण हैं, क से ठ तक (क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ) ये बारह वर्ण उस दल के हैं । पांचवां चक्र विशुद्ध है, जिसका स्थान कण्ठ है, और उसके सोलह दल हैं और सोलह वर्ण अ आ आदिक सोलहों स्वर उसमें विराजते हैं । छठा आज्ञा चक्र कहाता है, जो दोनों शृकुटि के मध्य रहता है, उसके दो दल हैं, और दो वर्ण 'हं स' उसमें रहते हैं । इन छः चक्रों का बन्धन करके जो जावे तब ब्रह्मरन्ध्र को प्राप्त करता है । उसे सुषुम्ना गति से प्राप्त करते हैं और कोई उपाय उसके लिये नहीं है । हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हें अनुपम प्राणायाम सिखाता हूं, उसे तुम सातों मित्र सीखो, उससे तुम्हारे कार्य सिद्ध होंगे ॥

पुनि बत्तीसहि जापलों, रेचक करही स्वासु ।

पुनि फिर करे विलोम अस, प्राणायाम क्रियासु ॥ १३२ ॥

फिर बत्तीस बार ओंकार का जाप करते हुए रेचक करे अर्थात् श्वास को बाहर निकाले, फिर इसी प्रकार उल्टा करे । इस प्रकार प्राणायाम किया करे ॥ १३२ ॥

चार बार ऐसैं करे, धरि अंतर दृढ टेक ।

सिद्ध कहे तब होतहे, प्राणायामहि एक ॥ १३३ ॥

सिद्ध कहते हैं कि इस प्रकार हृदय में दृढ़ता धारण कर जब चार बार करे तब एक प्राणायाम होता है ॥ १३३ ॥

ऐसैं प्राणायामको, अधिक करे अभ्यास ।

प्राण रोध करिकैं तबे, पावत ज्ञान प्रकाश ॥ १३४ ॥

ऐसा प्राणायाम अधिक अभ्यास करके प्राणों का अवरोध करे तब ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है ॥ १३४ ॥

पूरक लच्छन-दोहा.

बाह्य पवनकों ऐंचिकैं, भरे पेटके मांढि ।

पूरक वाकों कहतहे, योगी सर्व सराहि ॥ १३५ ॥

बाहर की वायु को खींच कर पेट में भरे उसे योगीजन पूरक बखान करते हैं ॥ १३५ ॥

रेचक-लच्छन-दोहा.

उदर भरे हुय पवनकों, बहिर निकासे मंद ।

रेचक वाकों कहतहे, जेहे बुद्धि बुलंद ॥ १३६ ॥

पेट में भरे हुए वायु को धीरे धीरे निकाले उसे ऊंची बुद्धि वाले रेचक कहते हैं ॥ १३६ ॥

कुंभकलच्छन—दोहा.

पूरक करिके पेटमें, कुंभ समाने कोय ।

रोकी राखत बातकों, कुंभक कहिये सोय ॥ १३७ ॥

पूरक करके पेट में घड़े के समान वायु को रोक रखे उसे कुंभक कहते हैं ॥ १३७ ॥

कुंभक अष्टभेदाभिधानकथन—छप्पय.

सूर्यभेद कहि प्रथम, द्वितीय उज्जायी मानो ।

तीजाहे सीत्कारि, शीतली चौथा जानो ॥

भस्त्रिका पंचम भाख, भ्रामरी षष्ठम लहिये ।

मूर्छा सप्तम गिनो, प्लाविनी अष्टम कहिये ॥

यह कुंभक अष्ट प्रकारतें, रोध करी निज प्रानको ।

पुनि मुद्राबंध लगाइके, सुद्ध करो हिय स्थानको ॥ १३८ ॥*

प्रथम कुंभक को सूर्य भेद, द्वितीय को उज्जायी, तीसरे को सत्कारी, चौथे को शीतली कुंभक, पांचवीं को भस्त्रिका, छठे को भ्रामरी, सातवीं को मूर्छा, और आठवीं को प्लाविनी कुंभक कहते हैं । इन आठ प्रकार के कुंभक से अपने प्राणों को अपरोध करके फिर मुद्राबन्ध लगा कर हृदय को शुद्ध करे ॥ १३८ ॥

प्रसंगावसात् दशमुद्रा नाम कथन—चौपाई.

महा मुद्रा अरु महा बंध, महा वेध लसे सुख संघ । खैचरी उडीयान

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कुम्भक अष्ट नामानि—चरनाकुल—छंद.

सूर्य भेदन अरु उज्जाई, शीतकार शीतली मुहाई ।

पुनि भद्रिका भ्रामरी जानो, मूर्छा पुनि केवला प्रमानो ॥

सूर्य-भेदन, उज्जाई, शीतकार, शीतली, भद्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवला ये कुंभक के आठ भेद हैं ॥

मुहाय, मूल बंध जालंधर भाय । विपरीत करनी वज्रोलीय, शक्ति चलन
दशमी कमनीय । वा दशमें त्रिप बंध कहाय, सो तुमको पुनि देहूँ बताय ।
उडियानह जालंधरबंध, लसत तीसरे पुनि मुलबंध । वातें कुंडली जाग्रत
होय, खुले सुषुम्ना मार्ग सोय ॥ १३६ ॥ *

महामुद्रा, महाबन्ध तथा सुवकारक महावेद्य, खेचरी, उड्यियान, मूल-
बन्ध, जालन्धर, विपरीतकरनी, वज्रोलीय तथा दसवीं कमनीय शक्ति चालन
है । इन दस मुद्राओं को भयबन्ध कहते हैं जो तुम्हें बताता हूं । उड्यियान
बन्ध, जालन्धर बन्ध और तीसरा मूल बन्ध इन से बढ़ कर कुंडलिनी जाग्रत
होती है और सुषुम्णा मार्ग खुल जाता है ॥ १३६ ॥

नाडीवर्नन-दोहा.

नाडी अति वषुमें लसे, वामें दश प्रधान ।

नाम कहूं उनके अवे, सुनो सबे निज कान ॥ १४० ॥

शरीर में अनेक नाडियां चलती हैं, परन्तु उनमें दस मुख्य हैं, अब उन
सबों के नाम कहता हूं, कान लगा कर सुनो ॥ १४० ॥

दश नाडी भेदभिधान कथन-कुंडलिया-छंद.

इंडा विंगला सुशुमना, गांधारी गिनगात । हस्तिजिह्वा पूषा अरु,

* पाठान्तर इस प्रकार है—

दश महापुद्रा कथन छंद-हरिगीत.

है महाबंधक महावेधक, खेचरी उड्योने ।

अरु मूलबंधक नामहे, जालंधरी पुनि जानहे ॥

विपरीत करनीहे अरु, वज्रोली चालनशक्तिहे ।

शशिकला सो दशमी कही, महामुद्रिकाकी व्यक्तिहे ॥

महाबंधक, महावेधक, खेचरी, उड्यान, मूलबंधक, जालंधरी, विपरीत-
करणी, वज्रोली, चालनशक्ति और शशिकला ये महामुद्रा के दस भेद हैं ॥

यशस्विनी अवदात ॥ यशस्विनी अवदात, अलंबुषा पुनि कीजे । कहूं कहो कमनीय, चारू शंखिनी लीजे ॥ यह दश नाड़ी चक्र, लखे सो त्यागे पीड़ा । वामें उत्तम तीन, सुषुम्ना पिंगला इंडा ॥ १४१ ॥

इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुटु और शंखिनी इन दस नाड़ीचक्र जो जाने वह दुःख से मुक्त होवे । इन दसों में भी इडा, पिंगला और सुषुम्णा मुख्य हैं ॥ १४१ ॥

दश नाड़ी के दशस्थान बर्नन—कवित्त.

नाशा वाम पुटे इडा, पिंगला दक्षिण पुटें, मध्यमें बसत सोय, सुषु-मना मानियें । गांधारी हे वाम द्रुगें, दाहि द्रुगें हस्ति जिहा, पूषाकान दक्षिणमें, प्रेम तें प्रमानियें । वाम कानें यशस्विनी, आननमें अलंबुषा, कहू लिंगे शंखिनीसो, मूलद्वारें मानियें । ऐसे दश नाड़ी दश, द्वारमें निवास करी, रहत सदाय सोय, चित्तहिमें जानियें ॥ १४२ ॥

नासिका के बाएं स्वर को इडा और दाएं स्वर को पिंगला तथा मध्य में चलने वाले स्वर को सुषुम्णा मानना । बाईं आंख में गांधारी, दाहिने नेत्र में हस्तिजिह्वा, दक्षिण कान में पूषा, बाएं कान में यशस्विनी, मुख में अलंबुषा, लिंग में कुटु और मूलद्वार में शंखिनी नाड़ी चलती है । इस प्रकार दस नाड़ियां दसों द्वार में निवास करती हैं ऐसा चित्त में समझो ॥ १४२ ॥

तत्र श्रेष्ठ नाड़ी-कथन—दोहा.

आदी यह दश नाड़िमें, कहत सबे परवीन ।

इडा पिंगला सुषुमना, उत्तम हे यह तीन ॥ १४३ ॥

इन दस नाड़ियों में सब चतुर पुरुषों ने कहा है कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये तीन उत्तम हैं ॥ १४३ ॥

तीननाड़ी स्थान देवकथन—कवित्त.

नाशा वाम विवरमें, रहतहे इंडा नाड़ी, चंद्रमाहे स्वामी ताकों, मन हीमें मानियें । दाहिने विवर बसे, पिंगलासो नाड़ी ताके, दिवाकर देवबर,

बानीतें बस्त्रानियें । मध्यमें रहत सोइ, सुषुम्ना नाड़ी ताके, पावक पुनीत,
देव प्रेमते प्रमानियें । वामें इडा पिंगलाकों, मंदकरी प्रायानामें, सुषुम्ना
चलावे तब, सिद्धकाज जानियें ॥ १४४ ॥

नासिका के वाम छिद्र में इडा नाड़ी रहती है उसका स्वामी चन्द्रमा समझ-
ना, तथा दाहिने छिद्र में पिंगला नाड़ी रहती है उसका स्वामी देवश्रेष्ठ मूर्त्य
भगवान् हैं ऐसा वर्णन है । जो मध्य में नाड़ी रहती है वह सुषुम्णा है और
उसका देवता पवित्र अग्नि है । इन इडा और पिंगला को प्राणायाम के द्वारा
मंद करके सुषुम्णा चलावे तो जानना कि यह सिद्धि के मार्ग पर है ॥ १४४ ॥

शरीरस्थ दशवायु-वर्नन-दोहा.

पवन रहतहे पिंडमें, वाके हे दश भेद ।

प्रसंग पाय वह कहतहों, सुनो सर्व तजि खेद ॥ १४५ ॥

शरीर में जो वायु रहती है उसके दस भेद हैं । प्रसंग आने से उसे कहता
हूं, खेद रहित होकर सुनो ॥ १४५ ॥

शरीर के दश वाताभिधान कथन-पादाकुलक-छंद.

प्राण अपान समान उदाना, व्यान सहित यह पंचहि प्राणा ।

नाग कूर्म कृकल देवदत्ता, दशम धनंजय वात भनंता ॥ १४६ ॥

प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान ये पांच प्राण हैं, नाग, कूर्म,
कृकल, देवदत्त और धनंजय को मिलाकर ये दस वायु कहे गए हैं ॥ १४६ ॥

शरीर के दश वायु के दशस्थान कथन-कवित्त.

हृदयमें प्राण पुनि, गुदामें अपान रहे, बहुरि रहत व्यान, व्यापी
सब गातहे । नाभिमें अपान अरु, कंठमें उदान रहे, नाग उदगार निज,
अंगे उपजातहे । पलक उघारे कूर्म, कृकल करत जुधा, देवदत्त देह मांहि,
जंभन जगातहे । दशमा दुखद वात, धनंजय होय तबे, प्रथम कथित पंच,
प्राण मरजातहे ॥ १४७ ॥

हृदय में प्राण और गुदा में अपान रहता है, और व्यान सारे शरीर में व्यापक रहता है । नाभि में समान वायु और कंठ में उदान वायु रहता है । नाग वायु से अंग में उद्गार उत्पन्न होता है, कूर्म वायु से पलकें चलती हैं । कृकल से भूख लगती है, देवदत्त से देह में जंभाई आती है । दसवीं दुःखद वायु धनंजय का जब उदय होता है तो प्रथम कथित पांचों प्राण विलीन हो जाते हैं ॥ १४७ ॥

प्राणायामकरनविधि कथन-पादकुलक छंद.

पूरक प्रान करी इडासें, यथाशक्ति करि कुंभक खासे ।
मंदमंद मनो मन भातें, करियें रेचक सो पिंगलातें ॥
पुनि पिंगलातें पूरक करियें, कुंभक काय यथाविधि धरियें ।
पुनि इडातें रेचक कीजें, सो विधि प्राणायाम भनीजें ॥१४८॥

इडा नाड़ी से प्राण को पेट में पूरक करके यथाशक्ति कुंभक करे फिर मनसुहाते मंद २ गति से पिंगला नाड़ी के द्वारा रेचक करे । फिर पिंगला से पूरक करे और यथाशक्ति कुंभक कर के इडा नाड़ी के द्वारा रेचक करे । यह प्राणायाम की विधि कही गई है ॥ १४८ ॥

प्राणायामनियमलच्छन-पादकुलक छंद.

जिति मात्राके पूरक कीजें, वातें चौगुनाँ कुंभक लीजें ।
कुंभरुतें अध रेचक जानो, नियम यह प्राणायाम मानो ॥ १४९ ॥

जितनी मात्रा में पूरक करे उसमे चौगुनी मात्रा कुंभक और कुंभक की आधी रेचक यह प्राणायाम का नियम है ॥ १४९ ॥

मात्रा लच्छन-दोहा.

मंद शिघ्र विन प्रानकों, जाजूषेहि फिराय ।
चुटकी दे इत कालकों, कहत मात्र मुनिराय ॥ १५० ॥

प्राणों को न अति मन्द गति से, न अति शीघ्र गति से फिरावे । चुटकी बजाने में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा मुनि लोग कहते हैं ॥ १५० ॥

प्राणायाम लच्छन-कवित्त.

सोरहसु मात्र तक, इडातें पूरक करी, चौसठलौं कुंभक, करत निज गातही । पिंगलातें रेचक करत, पुनि बत्तीसलौं, फेर पिंगलातें पुनि, ऐसैं उलठातही । ऐसैं चार बेर जवे, एक साथ करतहे, तवे प्राणायाम, एक होत अबदातही । ऐसे प्राणायाम नित्य, सांभ सुबो मध्य दिने, अस्सी अस्सी करे सोइ, पापकों बिलातही ॥ १५१ ॥

सोलह मात्रा तक इडा से पूरक करे और चौसठ मात्रा तक अपने शरीर में कुंभक करे फिर पिंगला नाड़ी से बत्तीस मात्रा तक रेचक करे, फिर पिंगला से पूरक, फिर कुंभक कर के इडा से रेचक करे । इस प्रकार जब चार बार करे तो एक प्राणायाम होता है । जब इस तरह नित्य प्रातः संध्या और मध्याह्न में अस्सी प्राणायाम करे तो उस के पाप दूर हो जाते हैं ॥ १५१ ॥

अन्यमत्ते अन्य प्राणायामलच्छनकथन-कवित्त.

सोरह प्रणव मन, जपे एते कालतक, इडातें पूरक करी, उदर भरत हे । चौसठ प्रणवलाग, कुंभक करीकें पुनि, बत्तीसलौं पिंगलातें, रेचक करतहे । फेर उलटाइ याकों, पिंगलातें पुरी प्राण, इडातें निकारे तैसैं, कुंभक करतहे । ऐसे चार बेर जवे, करे एक संग तवे, याकों एक प्राणायाम, योगी उचरतहे ॥ १५२ ॥

प्रणव का सोलह जप मन में करे तब तक इडा से पूरक करे, चौसठ प्रणव जपने तक कुंभक करे, फिर बत्तीस प्रणव जप करता हुआ पिंगला से रेचक करे । फिर उलटा करके पिंगला से पूरक करे और इडा से निकाले और कुंभक करे । इस प्रकार जब चार बार करे तो उसे एक प्राणायाम कहते हैं ॥ १५२ ॥

(योगका पंचम अंग) प्रत्याहारलच्छन-कवित्त.

शब्दकों ग्रहत श्रुति. रूपकों ग्रहत नैन, गंधकों ग्रहत नासा, विमल विख्यातहे । रसना ग्रहत रस, स्पर्शकों चहत त्वचा, ऐसो व्यवहार उन,

पंचकों प्रभातहे । याकों अटकाय सब, इंद्रिय संकोच करी, चित्तहीकी साथ सदा, स्थिरता ग्रहातहे । विबुध वदत वाकों, प्रीतें प्रत्याहार पुनि, कुर्म अंग सम सोई, वपुमें विभातहे ॥ १५३ ॥

शब्द को कान ग्रहण करते हैं, रूप को नयन ग्रहण करते हैं, गंध को नाभिका ग्रहण करती है ऐसा प्रसिद्ध है । रसना रस का ग्रहण करती है और स्पर्श को त्वचा ग्रहण करती है, ऐसा इन पांचों का व्यवहार प्रसिद्ध है । इन को रोक कर सब इन्द्रियों का संकोच करे और चित्त को सदा स्थिर करना है, इसे बुद्धिमान् जन प्रत्याहार कहते हैं । इस के द्वारा जिस प्रकार कच्छप अपने अंग में सिमट जाता है वैसे योगी जन अपने अन्दर ही इन्द्रियों का संकोच करते रहते हैं ॥ १५३ ॥

प्रत्याहार कथन—दोहा.

शब्द स्पर्श रु रूप रस, गंधहिमें जिहिवार ।

इन्द्रिय संकोचन करे, हे सो प्रत्याहार ॥ १५४ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पांच विषयों से इन्द्रियों का जब संकोच करे तो उसे प्रत्याहार कहते हैं ॥ १५४ ॥

(योग का अष्टम अंग) धारणालच्छन—दोहा.

इच्छा करी दृढ इष्टकी, वामय वनिकें कोय ।

मनन करी मन सोग्रहै, कहे धारणा सोय ॥ १५५ ॥

इष्ट की दृढ़ इच्छा करके तद्रूप हो जाय और उसमें तद्रूप होकर उसके मनन में लग जाने को धारणा कहते हैं ॥ १५५ ॥

धारणाभेद कथन—दोहा.

पंचतत्त्वकी पंच विधि, कहे धारणा सर्व ।

सो सबही तुमसैं कहूं, सुनो सबे तजि गर्व ॥ १५६ ॥

पाँचों तत्वों की पाँच प्रकार की धारणा कही गई है, यह सब तुम से कहता हूँ, निरभिमान होकर सुनो ॥ १५६ ॥

पंचतत्व के नामकथन—चौपाई.

भू जल तेज पवन आकाश, पंचतत्व यह जानो खास ।

वा पाँचोंकी पाँचहि भात, धरत धारणा सबही गात ॥ १५७ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के पाँच तत्व हैं । इन पाँचों की पाँच प्रकार की धारणा सब शरीर में धारण की जाती है ॥ १५७ ॥

पंचतत्व के शरीर में स्थानवर्णन—अलक छंद.

पंचतत्वके तनमें स्थानहि, सोइ करों अब तुमकों जानहि । पदतैं जानुलि भू स्थानहि, जानुतैं गुदलों जलमानहि ॥ गुदतैं हियलों अग्नि जानहि, हियतैं भ्रुवल्लों पवन प्रमानहि । भ्रुवतैं ब्रह्मरंध्रतके वातहि, यों पाँचोंके स्थानक गातहि ॥ वामें करो जिहि तत्वकी धारण, ता थलमें करि प्रान निवारण । देव बीज उन साथ विचारहि, करो धारणा या सुखकारिह ॥ १५८ ॥

पाँचों तत्वों का शरीर में स्थान है वह अब तुम्हें जानने के लिए कहता हूँ । पग से जंघा तक भू-तत्व है, जानु से गुदा तक जलतत्व है, गुदा से हृदय तक अग्नि-तत्व है, हृदय से भ्रू तक वायु-तत्व का स्थान है, और भ्रुकुटी से ब्रह्मरंध्र तक आकाश-तत्व का स्थान है । इस प्रकार पाँचों तत्वों के स्थान शरीर में हैं । इस में जिस तत्व को धारण करना हो उसी स्थान में प्राण वायु का निरोध करके विचारपूर्वक उसके वे साथ करदो तो वह धारणा सुखकारी होवे ॥ १५८ ॥

तत्र प्रथमपृथ्वीतत्व की धारणाकथन—पादाकुलक छंद.

चौकोना आकार अपारा, देव विधाता बीज मकारा ।

पीत वरन भूथल धरिप्राना, पंचघटी विरमी उन थाना ॥

ध्यान धरे विधिकामन मांही, स्थंभन करि मनका पुनि वांही ।

सो छिति तत्वहिको जय पावे, धरा धारणा सोय कहावे ॥ १५६ ॥*

चौकोना आकार, ब्रह्मदेव, बीजमंत्र, मकार अक्षर, तथा पीत वर्ण
ऐसा ध्यान पृथ्वीतत्व का है । इसमें प्राण और मन को स्थिर करके वहीं
पर पांच घड़ी तक रख कर ब्रह्म का ध्यान करे तो पृथ्वीतत्व को प्राप्त होवे ।
यह पृथ्वीतत्व की धारणा कहाती है ॥ १५६ ॥

जलतत्व की धारणाकथन—पादाकुलक छंद.

आकृति आध शशी सम छाजे, बीज बहुरि वकार विराजे ।

श्वेत वर्ण शुभ फटिक समाने, प्राण धरी पुनि जलके स्थानें ॥

पंच घटी विरभी उन थाना, चित्त धरे नारायण ध्याना ।

सो जल तत्वहिको जय पावे, अंबु धारणा सोय कहावे ॥ १६० ॥†

पाठान्तर इस प्रकार है:—

* पंचतत्वकी धारणा तत्र प्रथम पृथ्वीतत्वकी धारणा

कथन—छंद चरनाकुल.

हे यह चतुष्कोन आकारा, त्रिधि दैवत अरु बीजलकारा ।

पीत वर्ण पुनि हृदयस्थानं, घटिका पंच तिहां धरि प्राणं ॥

चित्त स्थंभन करे तहांही, भूमिधारणा जय प्रदाही ॥

यह चतुष्कोण आकार का है, देवता ब्रह्मा और बीज मंत्र लकार है, वर्ण
पीत और स्थान हृदय है । पांच घड़ी वहां प्राण को रोककर चित्त को स्थिर
करे तो जप प्रदान करने वाली भूमितत्व की धारणा प्राप्त हो ॥

† जलतत्वकी धारणा कथन—छंद हरिगीत.

शशि अर्धके आकारहे, वंबीज कंठ स्थानहे ।

रुषिकेश दैवत स्वेत वर्णहि, पारदं हि समानहे ॥

अर्द्ध चन्द्राकार आकृति, बीजमंत्र वकार अक्षर और शुभ्र स्फटिक के समान श्वेत वर्ण, इस प्रकार का ध्यान करके जलतत्व के स्थान में प्राण और मन को स्थिर करके पांच घड़ी तक स्थिर रह कर मनमें नारायण का ध्यान करे तो जलतत्व को प्राप्त होवे । यह जलतत्व की धारणा कहाती है ॥ १६० ॥

तेजतत्व की धारणाकथन—पादाकुलक छंद.

ओपतहे आकार त्रिकौना, बीजमंत्र रेंकार सलौना ।
लाल बरन माणिक्य समाने, प्रान धरी पावकके थाने ।
पंच घटी विरमी उन थाना, रुद्ररिके मन धारत ध्याना ।
तेज तत्वको सो जय पावे, तेज धारणा सोय कहावे ॥ १६१ ॥*

वां पंच घटिका चित्तधारी, प्रान पुनि ठहरातेह ।

महाविष तनुं व्यापे नहीं, जलधारना सु कहातेह ॥

अर्द्ध चन्द्राकार आकार है, वे बीजमंत्र तथा कंठस्थान हैं, विष्णु भगवान् देवता तथा पारद के समान श्वेत वर्ण हैं । पांच घड़ी प्राण को ठहरा कर चित्त वहां स्थिर करे तो महा विष भी शरीर में न व्याप्त होवे । इसे जलतत्व की धारणा कहते हैं ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

तेजतत्व की धारणा कथन—छंद चरनाकुल.

तालू ठोर त्रिकोनाकारं, दैवत रुद्र रु बीज रकारं ।

पद्मराग सम रक्कि बर्न, वहां पंच घटिका चित धरनं ॥

प्रान रोधि ईश्वर उर धारे, तेजधारना सब भय टारे ॥

तालू स्थान, त्रिकोणाकार, रुद्र देवता, रकार, बीज तथा पद्मराग के समान रक्त वर्ण हैं । यहां पांच घड़ी प्राणों को ठहरा कर, चित्त को स्थिर करके हृदय में ईश्वर का ध्यान करे तो यह तेजतत्व की धारणा भय को हटा देवे ॥

त्रिकोणाकार, बीजमंत्र रकार तथा माणिक के समान रक्त वर्ण का ध्यान करके अग्नितत्त्व में प्राण को स्थिर करे । पांच घड़ी तक वहीं मन को स्थिर कर मन में इन्द्र का ध्यान करे तो तेजतत्त्व को प्राप्त होवे । यह तेजतत्त्व की धारणा कहाती है ॥ १६१ ॥

वायुतत्त्व की धारणाकथन—पादाकुलक छंद.

षट् कौना आकार विराजे, बीज मंत्र यंकारहि छाजे ।

वर्ण विराजत मेघ समाने, प्रान धरी पुनि मारुत थानें ॥

पंच घटी विरमी उन थाना, ईश्वरके उर धारत ध्याना ।

वायु तत्त्वका सो जय पावे, वायु धारणा सोय कहावे ॥ १६२ ॥ ❀

षट्कोणाकार, बीजमंत्र यकार और मेघ वर्ण का ध्यान धर के वायु-तत्त्व में प्राण को स्थिर करे । पांच घड़ी तक वहीं मन को स्थिर करके ईश्वर का ध्यान करे तो वायुतत्त्व को प्राप्त होवे । यह वायुतत्त्व की धारणा कहाती है ॥ १६२ ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

वायुतत्त्वकी धारणा कथन—छंद हरिगीत.

भ्रूमध्यमें षट् कोनहे, यंबीज मेघाभासहे ।

खेचरीसिद्धि देतसो, ईश्वरहि दैवत तासहे ॥

वां पंच घटिका प्रान रोधी, चित्त पुनि ठहरातहे ।

कहे सिद्ध सागर सुनहु, वायुधारना सु कहातहे ॥

भ्रुकुटी के मध्य में स्थान, षट्कोण आकार, यकार बीजमंत्र, मेघ के समान वर्ण और ईश्वर दैवत है । वहां पांच घड़ी प्राणों को रोक कर चित्त को स्थिर करे, सिद्ध कहते हैं हे सागर ! सुनो यह वायु-धारणा कहाती है और यह आकाश में गति करने की सिद्धि देने वाली है ॥

आकाशतत्त्व की धारणाकथन—पादाकुलक छंद.

विमल विराजत गोलाकारा, बीज मंत्र पुनिहे हंकारा ।

श्वेत वर्ण मणिस्फटिक समाने, प्रान धरी अंबरके थानें ॥

पंच घटी विरमी उन थाना, चित्त धरत शंकरके ध्याना ।

व्योम तत्त्वका सो जय पावे, व्योम धारणा सोय कहावे ॥ १६३ ॥+

गोल आकार, बीजमंत्र हकार और स्फटिकमणि के समान श्वेत वर्ण का ध्यान कर आकाशतत्त्व में प्राण को स्थिर करे । पांच घड़ी तक वहीं मन को स्थिर करके भगवान् शंकर का ध्यान करे तो आकाशतत्त्व का स्थान प्राप्त होवे । यह आकाशतत्त्व की धारणा कहाती है ॥ १६३ ॥

पंचतत्त्व की पंचधारणा के नामकथन—स्रग्विणी छन्द.

स्तंभनी द्रावनी दाहनी कीजियें, औरही शोषनी भ्रमनी लीजियें ।

पंचये तत्त्वकी पंचहे धारणा, योगके साधकें रोज विचारणा ॥ १६४ ॥*

पाठान्तर इस प्रकार है:—

+ आकाशतत्त्वकी धारणा कथन—छंद चरनाकुल.

ब्रह्मरंध्र वरतुल आकारं, देव सदाशिव बीज हकारं ।

शुक्ल वर्ण महापुत्री दाता, घटिका पंच धरे चित्त ज्ञाता ॥

प्रान रोधिकें वहां रहावे, गगनधारणा सोइ कहावे ॥

ब्रह्मरंध्र स्थान, वरतुलकार, देवता सदाशिव हकार बीज और शुक्ल वर्ण महा मुक्ति की दाता है । वहां पांच घड़ी प्राणों को रोक कर चित्त स्थिर करे यह गगन (आकाश तत्त्व की) धारणा कहाती है ॥

पंचधारणा नाम—दोहा.

* स्तंभनि द्रावनि दाहनी, शोषनि भ्रामनि जेह ।

पंचतत्त्वकी धारणा, पंच कहावे तेह ॥

स्तंभनी, द्रावनी, दाहनी, शोषणी और भ्रामनी ये पंचतत्त्व ऊपर कहे हुए पांच धारणाओं के नाम हैं ॥

स्तम्भनी, द्रावनी, दाहनी, शोषनी और ब्रह्मणी ये पाँचों तत्त्वों की पाँच धारणा हैं । योगसाधन करने वालों को नित्य विचारने योग्य है ॥ १६४ ॥

योग का सप्तम अंग—ध्यानलच्छन—पादाकुलक छन्द.

सब संकल्प विकल्प तजीकें, अखंड वृत्ति हरिमांहि सजीकें ।

कृत समरन उन एकहि धारा, ध्यान कहत उनकों जग सारा ॥ १६५ ॥

सब संकल्प विकल्प छोड़ कर, प्रभु में अखंड वृत्ति स्थिर कर एक धारा-
रूप स्मरण करने को सब संसार ध्यान कहता है ॥ १६५ ॥

ध्यान के चतुर्भेदकथन—दोहा.

सोय ध्यान पुनि चार विधि, कहत महा मुनिराय ।

सो सबही तुममें कहूं, सुनो सब श्रुति मांय ॥ १६६ ॥

वह ध्यान चार प्रकार का महामुनियों द्वारा कहा गया है जिसे मैं तुम से कहता हूँ, श्रवण लगा कर सुनो ॥ १६६ ॥

ध्यान के चारनामकथन—चौपाई.

प्रथम ध्यान पादस्थ कहाय, दूजा पुनि पिंडस्थ सुहाय ।

तीजाहे रूपस्थ ललीत, चौथा ध्यानहि रूपातीत ॥ १६७ ॥

पहिला ध्यान पादस्थ कहाता है, दूसरा पिंडस्थ, तीसरा रूपस्थ और चौथा रूपातीत कहाता है ॥ १६७ ॥

तत्र प्रथमपदस्थ ध्यानकथन—सवैया.

श्रीपति पाय छबी सुखदायक, अंतरमें अवरोखि सदाही ।

चितन सोय विलोकि करे पुनि, चित्त अखंड धरी उन मांही ॥

और विचार वितर्क तजी सब, मंत्र जपे करि कुंभक बांही ।

यों निशिवासर ध्यान करे उर, सोइ पदस्थहि ध्यान कहाही ॥ १६८ ॥

श्री लक्ष्मीपति के चरणों की सुखदायक छवि अपने हृदय में सदा देखते हुए, उसी में अखंड चित्त लगाकर उसी का चिंतन करे । और सब विचार

और तर्क वितर्क छोड़ उसी का जाप करते हुए कुंभक करे । इस प्रकार अह-
निश हृदय में ध्यान करे तो उसे पादस्थ ध्यान कहते हैं ॥ १६८ ॥

पदस्थ ध्यानकथन—छंद हरिगीत.

कुंभक करी उर मंत्र जपही, ध्यान हरपदको धरे ।
निश्चल रखे मन ताहिपैं, कौ विधिहि टायो नां टरे ॥
यों योगि साधन योगको करि, सिद्धि बडिकुं पातहे ।
कहे सिद्ध सागर सुनहु, एहि पदस्थ ध्यान कहातहे ॥ १६९ ॥

कुंभक करते हुए हृदय में मन्त्र का जाप करे तथा श्री महादेवजी के चरणों
का ध्यान धरे । मन को उसी में स्थिर रखे, किसी प्रकार न डिगे । इस प्रकार
योगीजन योगसाधन करके महान् सिद्धि को प्राप्त करते हैं । सिद्ध कहते हैं कि
हे सागर ! सुनो यह पदस्थ ध्यान कहाता है ॥ १६९ ॥

पिंडस्थ ध्यानकथन—पादाकुलक छंद.

शोधन करि षट् चक्रस्व अंगा, काय पुनीत करी अनि चंगा ।
ध्यान उरें प्रभु तनका धारे, वाकों ध्यान पिंडस्थ उचारे ॥ १७० ॥

अपने शरीर में षट्चक्र शोधन कर अपने शरीर को पवित्र करे, फिर हृदय
में भगवान् का ध्यान करे । इसे पिंडस्थ ध्यान कहते हैं ॥ १७० ॥

पिंडस्थ ध्यान कथन दोहा.

शोधि चक्र षट् पिंडकों, स्वच्छ करे धरि ग्यान ।
ध्यान धरे प्रभु पिंडको, सो पिंडस्थहि ध्यान ॥ १७१ ॥

छः चक्र शोध कर और ज्ञान धारण कर शरीर को स्वच्छ करे तथा ईश्वर
के पिंड का ध्यान करे उसे पिंडस्थ ध्यान कहते हैं ॥ १७१ ॥

रूपस्थ ध्यानकथन—कवित्त.

भ्रुवमें धरीकें ध्यान, स्फुलिंग प्रथम पेखि, दीपकरु दीपमाला, विमल

विचारियें, उडु अभिराम अरु, दामिनीकी द्युति पुनि, चंद्र और सरजकों, यथाक्रम धारिये । यातें उर उपजत, प्रभाको प्रकाश तबें, जगत सबे ज्योतिमय, ध्यानमें निहारिये । ऐसैं हरि रूपद्विको, तेजोमय ध्यान धरी, लखे सो रूपस्थ ध्यान, आस्पतें उचारिये ॥ १७२ ॥

भू के मध्य में ध्यान करके प्रथम स्फुलिंग को देखे, फिर दीपक और दीपमाला का पवित्र विचार करे । इसके उपरान्त मनोहर तारागण का, फिर त्रिद्युत का और फिर क्रम से चन्द्रमा और सूर्य को ध्यान में लावे । इससे हृदय में एक नेत्र का प्रकाश होता है जिससे सारा संसार प्रकाशमय दीखने लगता है उसे ध्यान में देखे । इस प्रकार तेजोमय ध्यान धर कर प्रभु के रूप देखने को रूपस्थ ध्यान कहते हैं ॥ १७२ ॥

रूपस्थ ध्यानकथन—छंद भुजंगी.

शशी सूर्य तारा सबे तेज जाको, पुनि चंचला दीपमाला प्रभाको ।

त्रिकूटी महीं इष्टको रूप देखो, यही रीतसों रूपको ध्यान लेखो ॥ १७३ ॥*

चन्द्रमा, तारागण तथा सूर्य एवं त्रिद्युत, दीपमाला आदि सब जिसके नेत्र हैं उस इष्ट के प्रभामयरूप को त्रिकुटी में देखें । इस प्रकार के ध्यान को रूपस्थ ध्यान कहते हैं ॥ १७३ ॥

रूपातीतध्यानकथन—कवित्त.

निरंजन निराकार, वर्णतें वर्जित महा, व्योमके समान सबे, व्यापीके विभातहे । ऐसैं अभिराम उर, ईश्वरको रूप धारी, वामे मनोवृत्ति

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

ध्यानकथन—छंद चरनाकुल.

प्रथमहि ध्यान पदस्थ कहावे, ध्यान दुजो पिंडस्थ सुहावे ।

• यौ तिसरो रूपस्थ कहीजे, रूपातीत चतुर्थ लहीजे ॥

पहिला ध्यान पदस्थ, दूसरा पिंडस्थ, तीसरा रूपस्थ और चौथा रूपातीत ध्यान समझना ॥

द्रढ आपही लगातहे । तबे तन भान भूली, तदाकार बनि आप, सुखद समाधी मांदि, लीन होई जातहे । अखंड आनंद मय, योगनिद्रा याकों कहें, सोई रूपातीत ध्यान, परम प्रख्यातहे ॥ १७४ ॥

जो निरंजन, निराकार, वर्ण से सर्वथा पृथक्, आकाश के समान सर्वत्र व्यापक होकर स्थिर है, इस प्रकार से ईश्वर के अभिराम रूप में मनोवृत्ति को दृढ़ करके अपने शरीर के ध्यान को भूल कर तदाकार होकर सुखदायक समाधि में लीन हो जाता है और जिसे अखंड आनन्दमय योगनिद्रा कहते हैं वही परमविख्यात रूपातीत ध्यान है ॥ १७४ ॥

रूपातीत ध्यानकथन—कवित्त.

निराकार शून्य रूप, ईश्वर स्वरूप धारि, यामें दृढ निज मनोवृत्तिकुं लगातहे । जैसे पंच्छी नभ उडी जात सो देखात नांदि, पुनि सब ठौर यह पंच्छीकुं देखातहे । ऐसी गति योगीनकी होत ब्रह्मरूपहिमें, तब सो समाधि हुमें, लीन होई जातहे । ताकुं योगनिद्रा कहे अखंडानंदमें रहे, रूपातीत ध्यान यह परम प्रख्यातहे ॥ १७५ ॥

ईश्वर का निराकार स्वरूप शून्यरूप जान उस में अपने मनोवृत्ति को दृढ़ता से लगाता है । जैसे पक्षी आकाश में चला जाता है तो दिखाई नहीं पड़ता परन्तु उसे सब स्थान दिखाई पड़ता है, यही गति योगीजन की जब ब्रह्मरूप में होती है तो वे समाधि में लीन हो जाते हैं । उसे ही अखंड-आनन्द रूप योगनिद्रा कहते हैं, और यही परम प्रसिद्ध रूपातीत ध्यान है ॥ १७५ ॥

(योग का अष्टम अंग) समाधीलच्छन द्रष्टांतालंकार—कवित्त.

धाता ध्येय भाव तजी, बने एक रूप जैसे, नीरधिमें नदी मिलि, नीरधि व्हे जातहे । जलधिके जल जैसे, लुन व्हेके जुदे भये, फेर जलपाइ, जल रूप होई जातहे । तैसे आप अद्वैतते, अलगभे सोई फेर, अद्वैतकों मिलि रूप अद्वैतकों पातहे । विबुध वदत वाकों, उपाधि रहित सोई, अखंड आनंदमय समाधी सुहातहे ॥ १७६ ॥

जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिलकर समुद्र रूप हो जाती हैं और जिस प्रकार दूध में मिलकर पानी दूध के ही रूप में हो जाता है, इसी प्रकार मन से अद्वैत भाव छोड़ कर चिद्रूप ब्रह्म से मिलकर अनुपम अद्वैत रूप में लग जाने को, सिद्ध कहते हैं कि हे सागर ! निरुपाधि समाधि कहते हैं ॥ १७६ ॥

समाधीयोगकथन सवैया.

नीरहिमें ज्युंहि नीर मिले, अरु क्षीरहिमें ज्युंहि क्षीर मिलावे ।
ज्युं घृतमें घृतही मिलिजात, रु सागरमें सरिता मिलजावे ॥
लून सलीलहिमें मिल जात रु, दीपक ज्वालाहिमें लय पावे ।
सिद्ध मिले चिद सागरमें, सुनु सागर सोइ समाधि कहावे ॥ १७७ ॥

जिस प्रकार पानी में पानी मिलता है, दूध में दूध मिलता है और समुद्र में नदी मिलकर समुद्र रूप हो जाती हैं । जैसे घी में घी मिलकर अभेद रूप हो जाता है, और अग्नि की ज्वाला में दीपक मिल जाता है, तेल में तेल मिलकर एक रूप होकर रहता है, और पानी में नमक मिलकर पानी जैसा ही दीखता है, इसी प्रकार द्वैतभाव छोड़कर ब्रह्म में मन मिल जाता है उसे सुख-स्वरूप महा समाधि कहते हैं ॥ १७७ ॥

पुनः सवैया—द्रष्टांतालंकार.

सागरकों मिलिकें सरिता जिमि, सागरकों धरि रूप सुहावे ।
क्षीरहिकों मिलिकें जिमि नीरहि, क्षीरकों रूप ललीत धरावे ॥
त्यो चिदकों मिल द्वैत तजी मन, अद्वैतरूप अनूप उपावे ।
सिद्ध कहे सुन सागर सो शुभ, बीन उपाधि समाधि कहावे ॥ १७८ ॥

जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है और दूध में मिलकर पानी दूध का ही सुन्दर रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार सच्चिद्ब्रह्म को मिलकर मन से जब अद्वैत भाव त्यागकर अनुपम अद्वैतरूप हो जाता है, तो उसे सिद्ध कहता है हे सागर ! सुनो, उपाधि रहित समाधि कहते हैं ॥ १७८ ॥

पुनः कवित्त.

नीरमें मिलत नीर, क्षीरमें उ्यों क्षीर मिले, सिंधुमें सरिता मिल, सिंधु व्हे विभातहे । आज्यहिमें आज्य मिलि, ओषत अभेद पुनि, दहनकी ज्वाला मांदि, दीप मिल जातहे । तेलहिमें तेल मिलि, रहतहे एक रूप, नीरमें निमक मिलि, नीरसें दिखातहे । तैसें तजि द्वैत भाव, ब्रह्ममें मिलत मन, सोइ सुखरूप महा, समाधी कहातहे ॥ १७६ ॥

पानी में जैसे पानी मिलता है, जैसे दूध में दूध मिलता है और समुद्र में नदी जिस प्रकार मिलकर समुद्र रूप हो जाती है । घृत में घृत मिलकर अभेद रूप हो जाता है तथा अग्नि की ज्वाला में जैसे दीपक मिल जाता है तेल में तेल मिलकर एक रूप हो जाता है और पानी में मिलकर नमक जैसे पानी के रूप में होता है, उसी प्रकार जब मन द्वैतभाव छोड़कर ब्रह्म में मिल जाता है तो उसे सुखमय महासमाधि कहते हैं ॥ १७६ ॥

पुनः भुजंगी-छंद.

मिली क्षीरमें नीर वा रूप राजे, निदानंदमें त्यों मिली आप आजे । नहीं साधको सिद्ध भेदा रहावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥
 नहीं सीत उष्णादिहे ज्ञान वाकों, नहीं प्यास लुधा लगे अंग ताकों ।
 नहीं कर्मके धर्म वाकों रहावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥
 नहीं स्वप्न स्रक्षी अरू जागताहे, नहीं पंच बीषे अनुरागताहे ।
 नहीं ध्येय धाता वहांही सुहावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥
 नहीं दुःख सुखं रहे देह वाके, नहीं शोक रु हर्ष है हीय ताके ।
 नहीं ज्ञान अज्ञान वामें सुहावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥
 नहीं बांदि व्यापार इंद्रिय ओपे, नहीं राग औ द्वेषसो लात कोपें ।
 नहीं मोह मूर्छा तनूमें धरावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥
 नहीं भूत प्रेतादि संचार बांदि, नहीं बन्हीहुकों नहीं त्रास तांही ।
 नहीं सर्प सिंहादिकी शंक लावे, उपाधी विनासो समाधी कहावे ॥

नहीं शत्रु औ मित्रके भेद बांही, रहे एक अद्वैतरूपें सदाही ।

नहीं भिन्नभावा तनूमें धरावे, उपाधी बिनाओ समाधी कहावे ॥१८०॥

दूध में मिलकर पानी उसी रूप में हो जाता है, उसी तरह चिदानन्द में मिलकर योगी हो जाता है । उस समय साधक व सिद्ध का भेद नहीं रहता वह उपाधि बिना की समाधि कही जाती है ।

जब शीत उष्ण का ज्ञान नहीं रहे और अन्त में भूख व्यास भी न लगे, और कर्म का धर्म जब न रह जावे तो उसे बिना उपाधि की समाधि कहते हैं ।

जहां जाग्रत् स्वप्न वा सुषुप्ति नहीं है और जहां पांचों विषयों में अनुराग नहीं है और जहां ध्याता व ध्येय का विचार न रह जावे उसे निरुपाधि समाधि कहते हैं ।

जब शरीर में सुख दुःख का तथा हृदय में हर्ष शोक का प्रभाव न रहे और उसमें जब ज्ञान व अज्ञान का भी गम्य नहीं उसे निरुपाधि समाधि कहते हैं ।

जहां इन्द्रियों का कोई व्यापार नहीं और रागद्वेष का भी जहां प्रभाव नहीं इसी प्रकार मोहमूर्छा भी न होवे उसे निरुपाधि समाधि कहते हैं ।

जहां भूतप्रेतादि का संचार नहीं, जहां अग्नि का कोई भय नहीं और जहां सर्प, सिंहादिक की भी आशंका नहीं उसे निरुपाधि समाधि कहते हैं ॥ १८० ॥

सवैया.

बां नहिं शिष्य गुरु विगती न, उपास्य उपासक भेद रहावे ।

मानव दानव देव अरू नहिं, भूत पिशाचहु सें भय पावे ॥

राय रु रंककि शंक नहीं, नहिं ग्यान अग्यान गुमान धरावे ।

सिद्ध मिले चिद सागरमें, सुनु सागर सोइ समाधि कहावे ॥ १८१ ॥

वहां गुरु शिष्य का भेद नहीं और नाहीं उपास्य उपासक का भेद है, मनुष्य, देव, दैत्य अथवा भूत पिशाच किसी का भय नहीं रहे, राव अथवा रक्त की कोई शङ्का न रहे तथा ज्ञान अज्ञान का भेदभाव भी न रहे, हे सागर ! जब इस प्रकार सिद्ध चिद-सागर में मिल जाय तो उसे समाधि कहते हैं ॥ १८१ ॥

या.

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति नहीं, नहीं सुख न दुःख न भूखहि आवे ।
 बुद्धि मनो अहंकार नहीं, नहीं इंद्रिय और अवेव रहावे ॥
 पृथिवी पानिय पावक पौन, न पुष्करके परमानुं सुहावे ।
 सिद्ध मिले चिद सागरमें, सुनु सागर सोइ समाधि कहावे ॥ १८२ ॥

जहां जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था नहीं है, जहां सुख दुःख नहीं, भूख नहीं, मन, बुद्धि, अहंकार नहीं, इन्द्रिय अथवा अन्य अवयव नहीं और जहां पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के परिमाण नहीं हैं । इस प्रकार हे सागर ! जब चिद्रूप में मिल जाय उसे समाधि कहते हैं ॥ १८२ ॥

सवैया.

तात रु मात रु भ्रात नहीं, भगिनी सुत दार नहीं दरशावे ।
 शत्रु नहीं अरु मित्र नहीं, नहीं भ्रांति हुसैं कहु भांति भमावे ।
 एक अखंडित मंडित ब्रह्म, अपंडित पंडित भेद न पावे ।
 सिद्ध मिले चिद सागरमें, सुनु सागर सोइ समाधि कहावे ॥ १८३ ॥

माता-पिता, भाई नहीं, भगिनी, पुत्र वा स्त्री भी जहां नहीं दिखाई पड़े ।
 वहां शत्रु नहीं, मित्र नहीं, या किसी प्रकार की भ्रान्ति से वहां भ्रमाने वाला नहीं, वहां एक अखंड ब्रह्म शोभित है, वहां मूर्ख अथवा पंडित का कोई भेद नहीं । हे सागर ! इस प्रकार चिद्रूप में जब सिद्ध मिल जाय उसे समाधि कहते हैं ॥ १८३ ॥

साधन शुद्ध सुनाइ दियो हम, ज्यों सुं मिले जनकुं महायुक्ती ।
 आत्म मिले परमात्ममें ज्युं, जहां पहुंची न शके मन उक्ती ॥
 सो परमार्थ स्वारथको, पुनि है ज्युं जथार्थ नाहि अत्युक्ती ।
 जो सुख सागरकुं चाहिहो चित, सागर साधहु जोगकि जुक्ती ॥ १८४ ॥

सिद्ध ने कहा कि मनुष्य को जहां से महासुख की प्राप्ति होती है, आत्मा जिस प्रकार परमात्मा में मिल सकता है और जहां विचार पहुंच नहीं सकते हैं,

वह मैंने तुम्हें सुना दिया है । यही स्वार्थ व परमार्थ का यथार्थरूप है इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है । इसलिये हे सागर ! यदि चित्त में सुख के समुद्र की प्राप्ति की इच्छा है तो योग की युक्ति की साधना करो ॥ १८४ ॥

दोहा—अष्ट अंग यह योगके, तुमकों दिये बताय ।

जो चाहो निज चित्तमें, तो साधो मनलाय ॥ १८५ ॥

यह आठ अंग योग के तुम्हें मैंने बता दिये हैं, यदि तुम्हारे चित्त में चाहना हो, तो मन लगाकर साधन करो ॥ १८५ ॥

गाथा—सागरकों कहि सिद्धें, प्राणायामतें समाधि लों सबे ।

उन्नासीय अभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ १८६ ॥*

सिद्ध ने सागर को प्राणायाम से समाधि पर्यन्त सारे वर्णन वाली प्रवीण-सागर ग्रन्थ की यह उन्नासिवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ १८६ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

गाथा.

प्राणायामादि कही, समाधि लों सब विधी कही सिद्धे ।

इक उनाशि अभिधानं पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥

सिद्ध ने प्राणायाम से लेकर समाधि पर्यन्त सब रीतियां बताई इस संबंध की प्रवीणसागर की उन्नासिवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥

८० वीं लहर

सांख्ययोग तथा शिवरात्रिकी अवधि कथन प्रसंगो—दोहा.

जुक्ति कही हठजोगकी, पूरन धरिकें प्रीत ।

सांख्ययोगको सार सुन, राजयोगकी रीत ॥ १ ॥

सिद्ध कहते हैं कि हठयोग की युक्ति मैंने पूर्ण प्रीति के साथ कही, अब राजयोग की रीति और सांख्ययोग का सार कहता हूं सुनो ॥ १ ॥

हे यह चोविस तत्वके, पिंड अरु ब्रह्मंड ।

तातें भेद अनंत भय, आत्मा एक अखंड ॥ २ ॥

यह पिंड और ब्रह्माण्ड चौबीस तत्वों का है, उसी से अनेक भेद हो गए हैं । वास्तव में आत्मा एक अखंड है ॥ २ ॥

नित्य अनित्यहि वस्तुकी, संख्याकों जब जान ।

तब अनित्य मिथ्या गिने, पावे आत्मज्ञान ॥ ३ ॥

जब नित्य और अनित्य (अविनाशी और नाशवान) की गिनती जान लेवे तब अनित्य को मिथ्या जानता हुआ आत्मज्ञान की प्राप्ति कर सकता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोग ताकुं कहे, ताको बहु विस्तार ।

प्रथम शिवालयमें कहे, सोइ ग्यानको सार ॥ ४ ॥

सांख्ययोग उसे कहते हैं, उसका विस्तार बहुत है । पहिले जो मैंने शिवालय में कहा था वही ज्ञान का सार है ॥ ४ ॥

प्रपंच पंचीकरनको, समझे जब सिद्धांत ।

तबही आत्मस्वरूप है, सब विधि पावे शांत ॥ ५ ॥

यह सब संसार पंचभूत का बना हुआ है, जब यह सिद्धान्त समझ लिया जाय तब आत्मस्वरूप होकर सब प्रकार शान्ति प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

छप्पय.

सब व्यापक इक ब्रह्म, ओर सब असत्य भासे ।
जन्म मरन सुख दुःख, सबहि जाने सुपनासे ॥
इन्द्रिय अरु मन बुद्धि, और जागृत अरु सुपना ।
सुषुप्ति तुर्या पार, ब्रह्म सो आत्मा अपना ॥
वह स्थिती ग्यानहूसे मिले, सोइ परमपद जानहू ।
उत्तम पद इनसे और नहि, सागर सत्यहि मानहू ॥ ६ ॥

सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, शेष सब असत्य है, जन्ममरण, सुखदुःख सब स्वप्न के समान है । इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या से परे जो अवस्था है वही ब्रह्म है वही अपना आत्मा है, जो स्थिति अवस्था ज्ञान से प्राप्त होती है, वही परमपद है । हे सागर ! यह सत्य समझो कि इससे उत्तम और पद नहीं है ॥ ६ ॥

छंद भुजंगप्रयात.

कह्यो सागरे हो सुनो सिद्ध देवा, तुम्हें जो कहे सो सुने सर्व भेवा । सबे बात स्वामी कही आप सच्ची, पुनी हे हमारी मनी बात कच्ची ॥ कहे जोगके अष्टही अंग सोई, किते वर्षते साधते सिद्ध होई । कह्यो ओर सर्वोपरी जेहि स्थानं, स्थितीहे महा नीदकी सो समानं ॥ नहीं बुद्धि इंद्री नहीं सुख दुःखं, कहा मानिये याहिमें श्रेष्ठ सुखं । नहीं हे अकामी हमें हे सकामी, क्युंही चाहिये तो स्थिती ऐसि स्वामी ॥ हमें चाहिये चित्त कैलाशवासं, अरु नित्य प्रब्धान संगे बिलामं । मिले नांहि तोलों रहेंगे उदासी, अबेतो भयेहे अतीही निराशी ॥ ७ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

सिद्धप्रति सागरोक्त यथा—पादाकुलक छंद.

सुनो सिद्ध इक अरज हमारी, करि करुणा तुम हमपर भारी । अष्ट-योगके भेद बताये, सों सबही हम पूरन पाये ॥ साधत सो बहु कालहि जावे, त्यों लागि क्यों हम कष्ट सहावे । बीतत पल इक पक्ष प्रमाने, पक्ष

सागर ने कहा कि हे सिद्धदेव ! सुनिए, आपने जो कुछ कहा वह सब हमने सुना । हे स्वामिन् ! आपने सभी बातें सभी कहीं, परन्तु बुद्धि अभी हमारी परिपक्व नहीं है । आपने योगसाधन के आठ अंग बताए सो उनके साधन

बने पुनि वर्ष समाने ॥ यों आतुर भे चित्त हमारे, क्यों करिकें सो स्थिरता धारे । योग सधेमें स्थिरता चाहियें, सोपल एक न हमही लहियें ॥ और योगमें श्रेष्ठ बखाने, सोय समाधी नींद समाने । वामें सुख कुछ हम नहिं जाने, बाकों योगी क्यों शुभ माने ॥ सोइ सधे जे होय निकासी, हमतो हे दिन रात सकामी । याते उनकों हम नहिं साधे, हमतो एक प्रवीन अराधे ॥ पाइ प्रवीन बसी कैलास, रहिये रोज सदा शिव पासैं । जो न मिलेंगे सो मनमाने, तो हम हरपैं इत्या ठाने ॥ यों कहिकें मुख आह उचारी, दीर्घ निसासा मुखतें डारी । आप भये उरमाहि, उदासी, बिरह व्यथा तब वपुमें भासी ॥

हे सिद्ध ! हमारी एक विनती सुना । हम पर दया करके अष्टांगयोग का भेद बताया सो हमें सब प्राप्त हुआ, परन्तु उसके साधन में तो बहुत समय लगेगा तब तक हम कैसे कष्ट सहन करेंगे, क्योंकि एक २ पल पक्ष के समान और पक्ष वर्ष के समान हमें लगना है । हमारा चित्त इतना आतुर हो रहा है फिर हम किस प्रकार स्थिरता धरें ? योगसाधन में स्थिरता चाहिए और वह हममें एक पल भी नहीं प्राप्त होती । योग में आपने समाधि को श्रेष्ठ बताया है परन्तु वह तो निद्रा के समान है उसमें हमें कुछ भी सुख नहीं प्रतीत होता, उसे योगीजन क्योंकर अच्छा समझें ? उसकी साधना तो वे करें जो निष्कामी हो, हम तो रात दिन सकामी—कर्मि हैं, इसलिए हम उसकी साधना नहीं करेंगे । हम तो एक प्रवीन की आधारना करेंगे । प्रवीन को पाकर कैलास पर्वत पर नित्य शिवजी के पास रहेंगे । यदि यह मन-इच्छित प्राप्ति न हुई तो हम शिवजी पर आत्महत्या करेंगे । ऐसा कह कर और मुख से आह उच्चारण कर दीर्घ निःश्वास लेने लगा और हृदय में अति उदास हो गया तथा शरीर में बिरह व्यथा होने लगी ॥

के लिए कितने वर्ष लगते हैं ? आपने जो सर्वोपरि स्थान की स्थिति का वर्णन किया है सो वह अबस्था तो महानिन्द्रा के समान है कि जहां न इन्द्रिय है, न सुख दुःख है, उस में श्रेष्ठ सुख कैसे माने ? हम निष्कामना वाले नहीं हैं, हम तो कामना वाले हैं इसलिए हे स्वामिन् ! हमें ऐसी स्थिति क्यों चाहिए ? हमें तो नित्य कैलासवास और नित्य प्रवीण के साथ विलास चाहिए । जब तक यह न मिले हम तो उदासीन रहेंगे । अभी हम अतिनिराश हो रहे हैं ॥ ७ ॥

असंभवालंकार-सवैया.

जो धरनीकुं तजे धरनीधर, श्रीधर संग तजे उद्युं श्रियाको ।
छांडे सुधाकुं सुधाधर जो, गिरिजाधर संग तजे गिरिजाको ।
रत्नकि राशि तजे रतनाकर, त्योंहि प्रभाकर संग प्रभाको ।
तो पुनि ध्यान तजुं नहीं छीन, प्रवीन जसी मुझ प्रानप्रियाको ॥ ८ ॥

जो शेषनाग पृथ्वी को छोड़ दे, विष्णु लक्ष्मी को छोड़ दे, चन्द्रमा अमृत को छोड़ दे, महादेव पार्वती का संग छोड़ दें, समुद्र रत्न की राशि को छोड़ दे और सूर्य अपने प्रकाश को छोड़ दे, तो भी प्रवीण जैसी प्राणप्यारी का ध्यान मैं नहीं छोड़ सकता हूं ॥ ८ ॥

दोहा.

सब व्यापक ईश्वर तुमें, कहाँ सिद्ध गुरुदेव ।
प्रवीनमें ईश्वर बसे, जान्यो अवश्य मेव ॥ ९ ॥

हे गुरुदेव सिद्ध ! तुमने कहा है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है इससे मैंने निश्चय समझा कि प्रवीण में भी ईश्वर ही व्यापक है ॥ ९ ॥

तातें ताको ध्यान धरि, सदा चहों तिन संग ।
सार यूँहि सब ग्यानको, भास्यो हमहि अमंग ॥ १० ॥

मुझे तो समस्त ज्ञान का सार यही प्रतीत होता है कि निरंतर उसी का ध्यान धरते हुए उसका ही संग चाहूं ॥ १० ॥

कविवाक्य—दोहा.

जाके मन जो दृढ भई, छुटे न ग्रंथी लेष ।
ब्रह्मासे जो गुरु मिले, व्यर्थ जाय उपदेश ॥ ११ ॥

जिसके मन में जो दृढ़ धारणा हो जाय वह गांठ लेशमात्र भी नहीं छूटती,
उसे ब्रह्मा के समान गुरु मिले तो भी उपदेश व्यर्थ जाता है ॥ ११ ॥

दसहि दशा भइ विरहकी, सागरमें उतपन ।
ताकी विगती कहतहूं, सुनहू श्रोताजन ॥ १२ ॥

फिर सागर के शरीर में जो दश दशाएं विरह की कही गई हैं वह उत्पन्न हो
गईं । उनका वर्णन करते हैं, हे श्रोताजन ! सुनो ॥ १२ ॥

विरहकी दशावस्था नामनी—हरिगीत छंद.

अभिलाष स्मृति गुणकथन चिंता, और जड़ता जानिये ।
उद्वेग और प्रलाप व्याधि, अष्टमी उर आनिये ॥
उन्माद मरण समान दसमी, दशा तिनकी देखिये ।
विरही जनोंकी दश अवस्था, लक्ष्यमें लइ लेखिये ॥ १३ ॥

अभिलाष, स्मृति, गुणकथन, चिन्ता, जड़ता, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि,
उन्माद और मरण के समान की अवस्था ये दस दशाएं विरह में होती हैं ॥ १३ ॥

दोहा—यह दशहीके जानहू, लच्छन नाम प्रमान ।
ग्रंथ बढन शंका लिये, कहत नहीं यह ठान ॥ १४ ॥

इन दसों के लक्षण नाम के अनुसार समझना । ग्रन्थ-विस्तार भय से
उनका वर्णन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

सवैया.

धीरज छांड़ि अधीर भये, विरहागिकि पीर भई मन भारी ।
आंसु बहात दहात दिले, दुख बात मुखे नहीं जात उचारी ।

सागर सुद्धि बिहीन भये, मनु मीनहि दीन भये बिन वारी ।

छोभि छितीपें परे मुरझाइ, प्रवीण प्रवीण प्रवीण पुकारी ॥ १५ ॥

धीरज छोड़कर अधीर हो गये, और मन में विरहाग्नि की अपार पीड़ा उत्पन्न हो गई । आंखों से आंसू चलने लगे, दुःख से दिल जलने लगा, मुख से बात नहीं कही जाती । इस प्रकार सागर बेसुध हो गये मानो पानी के बिना मछली तड़प रही हो । प्रवीण, प्रवीण पुकार कर लुब्ध हो पृथ्वी पर मूर्च्छित हो पड़ गये ॥ १५ ॥

सागरविरहव्यथावर्जन-मोतीदाम छंद.

जगी वपुमें विरहानल ज्वाल, तन जरि स्याम भये तिहि काल ।
चली द्रुगतेँ असुवानकि धार, गरोभर आय गयो इहि बार ॥ वदी न शके
मुखतेँ कछु वैन, निमेष तजे तिहिं बेरहि नैन । भरे मुखतेँ अति सास
उसास, जरेँ उनतेँ सब आशहि पाश ॥ तपी तन तापहितेँ तलफंत, विना
जल ज्यों पृथुरोम भुरंत । मनो बिछुरेहि जुराफकि जोरि, किधों अथयो
शशि आज चकोरि ॥ किधों निज हारन काष्ट गुमाय, किधों विरहा
चक्रवा निशि पाय । किधों बिछुरे सरमान मराल, किधों मनि शीश गुमाइहि
व्याल ॥ यह गति सागरकी बनि वांछि, यथाविधिसों बरनी किमि जाहि ।
तजी तिहिमें तनके सब भान, गिरे छितिपें पुनि काठ समान ॥ तवे षट
मित्रहि सत्वर धाय, लिये गिरती ग्रहि सागर काप । क्षमाहि क्षमा मुख
बानि उचारि, लगे तन शिंच गुलाबके वारि ॥ भये इमि एक मुहूरत वाहि,
तब सुधि सागरकों कछु आहि । यह लखिके सबके मन मांछि, दया
उपजी ततकाल तहांहि ॥ १६ ॥

शरीर में विरह की अग्नि प्रज्वलित हो गई और सब शरीर जलकर श्याम वर्ण हो गया । आंखों से आंसुओं की धारा बह चली, गला भर आया, मुंह से कुछ बोला नहीं जाता, आंखों का उन्मीलन बन्द हो गया । मुख से उसास आने लगीं, सब आशाएं भस्मीभूत हो गईं । शरीर ताप से उत्तप्त हो गया । जैसे बिना पानी के मछली तड़प रही हो अथवा जुराफ पत्नी का जोड़ा बिछुड़

गया हो अथवा चकोर का चन्द्रमा छिप गया हो अथवा हारिल पक्षी की लकड़ी छूट गई हो, अथवा चक्रवाक् पक्षी को बिरह निशा प्राप्त हुई हो, अथवा हंस का मानसरोवर से बिछोह हो गया हो, अथवा मणिधर सर्प की मणि खोई गई हो । यह अवस्था सागर की वहां हो गई जिसका याथातथ्य वर्णन कैसे हो सकता है ? उस अवस्था में शरीर का सब भान त्याग काष्ठ के समान पृथ्वी पर गिर पड़े । तब छाओं मित्र जल्दी से दौड़कर गिरते हुए सागर के शरीर को पकड़ लिया और मुख से 'क्षमा क्षमा' पुकारने लगे । इस प्रकार जब एक मुहूर्त बीता तो सागर को कुछ सुध आई । यह दशा देखकर सबके मन में उस पर तत्काल दया आ गई ॥ १६ ॥

दोहा—जैसी गति इत अन्धिको, तैसी तित परबीन ।

सिद्ध लखी निज ज्ञानतें, आप भये दुख लीन ॥ १७ ॥*

जो दशा यहां सागर की है वही उधर प्रबीण की है यह बात सिद्ध ने अपने ज्ञानचक्षु से जानकर अति दुःखित हुआ ॥ १७ ॥

दंपतिके दुख देखिकें, ग्राव लगत तिहि ठौर ।

क्यों गले तब मनुष मन, ऐसैं कौन कठोर ॥ १८ ॥†

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

पुनि वह वहां प्रबीनकी, ऐसि दशा तब होइ ।

प्रभानाथ सर्वज्ञहे, सबहि जानि लिय सोइ ॥

फिर प्रबीण की भी वहां यही दशा होगी ऐसा प्रभानाथ ने सर्वज्ञ होने के कारण जान लिया ॥

† पाठान्तर इस प्रकार है:—

पाहन पुनि प्रगलन लगे, लखि दंपति दुख जोर ।

तो जन मन पिगले नहीं, ऐसो कौन कठोर ॥

उस दम्पति के दुःख को देखकर पत्थर भी पिघलने लगे तो फिर मनुष्य का मन न पसीजे ऐसा कौन कठोर होगा ॥

उस दम्पति के दुःख को देखकर पत्थर भी वहां गल जाय तब भला मनुष्य का मन क्यों न द्रवित हो ? ऐसा कौन कठोर है ? ॥ १८ ॥

कवित्त.

दंपतिको देखी दुख, दिग्गज डगन लगे । गति थीर भै गगनचरकी गगनमें ॥ धराधर शीश तें, धरनी धरकन लगी । जल छलकन लग्यो, सातों सागरनमें ॥ भूमी पुनि नभाभास, भासे भारी भयंकर । कंपत अटारभार, वनस्पति वनमें ॥ पुनि पाकसासनको, आसन डगन लग्यो । त्रासन बन्यो बनाव, मघवाके मनमें ॥ १९ ॥

उस दम्पति के दुःख को देखकर दिग्गज डगमगाने लगे, आकाशगामी सूर्य और चन्द्र की गति धीमी पड़ गई, शेषनाग के मस्तक पर पृथ्वी धकड़ने लगी, सातों समुद्रों में जल छलकने लगा, पृथ्वी और आकाश का आभास भयंकर प्रतीत होने लगा, वन में अटारभार वनस्पति कांपने लगीं और इन्द्र का इन्द्रासन डगमगाने लगा जिससे देवराज के मन में भय उत्पन्न हो गया ॥ १९ ॥

तोटक छंद.

लखि सागर पीर सबे द्रगही, नभमें स्थिर होइ गये खगही । पवमान भये पुनि थीर तहां, दुरदीन भइ दिशि अष्ट वहां ॥ नहिं घांस लिये पशुही मुखमें, सब जोवहि लीन भये दुखमें । सरिता सबनें गति मंद किये, विचि वारिधिके पुनि थीर भये ॥ जड़ चेतन सो सब थीर भये, इमि आलममें अति शोक छये । षट मित्र महा मन खेद करे, उनके द्रगतें अति नीर भरे ॥ वह सिद्ध बिलोकी वही छिनमें, अति लाय दया अपने मनमें । प्रति सागर यों मुख बैन कहे, तुम कष्ट नहीं हम जात सहे ॥ तिनके इक और उपाय करे, जिनतें तुम्हरे सब काज सरे । हम जाय उमा अरु संभु कने, तुम्हरे दुखकी सब बात भनैं ॥ सुनि सोय दया दिलमें धरिगे, पुनि शाप वृथा तुम्हरे करिगे । उत जाइ इते फिर आउ हमें, इति बेर धरो दिल धैर्य तुमें ॥ २० ॥

सागर की पीड़ा नजर से देखकर सभी पक्षी स्थिर हो गए, पवन की गति हीन हो गई और आठों दिशाओं में दुर्विन हो गया, पशुओं ने मुख में घास लेना बन्द कर दिया, सब दुःख में लीन हो देखने लगे । सब नदियों में जल की गति मन्द हो गई और समुद्र की लहरें भी स्थिर हो गई । जड़ चेतन जितने हैं सभी स्तब्ध हो गये । इस प्रकार सारे संसार में शोक छा गया । छत्रों मित्र मन में बहुत खेद करने लगे और उनकी आंखों से आंसू भरने लगे । तब सिद्ध ने यह दशा देख मन में अति करुणा लाकर सागर से कहने लगा कि तुम्हारा दुःख मुझसे नहीं सहा जाता, इसलिये अब एक और उपाय करो जिससे तुम्हारे सब काम सिद्ध हों । मैं भगवान् शङ्कर और पार्वतीजी के पास जाकर तुम्हारी सब दुःख-गाथा कहता हूँ, वह सुनकर दयाव्रित होंगे और तुमको जो शाप दिया है उससे मुक्त करेंगे । मैं वहां जाकर पीछा यहां आऊँ तब तक तुम धैर्य धारण करो ॥ २० ॥

दोहा—खेद भयो खट मित्रकों, अति अंतर अकुलाय ।

सागरको दुख देखिकें, लेश सखो नहिं जाय ॥ २१ ॥

सागर का दुःख देखकर छत्रों मित्रों के मन में अत्यन्त खेद हुआ और वे हृदय में अकुला उठे तनिक भी सहन नहीं होने लगा ॥ २१ ॥

प्रभानाथके नयनसें, बहने लगे तब बारि ।

सागरकुं क्रिय सांतवन, सीतल वचन उचारि ॥ २२ ॥

तब प्रभानाथ के आंखों से भी आंसू बहने लगे और वे शीतल वचनों से सागर को सान्त्वना देने लगे ॥ २२ ॥

अमरावलि छंद.

पुनि सिद्ध कहे मन सागर शांत करो ।

हम जात कैलास तहां लग धैर्य धरो ॥

तुम दुःख भवाभव पास प्रकाश करूं ।

इत आउ अबे ततकाल तिहां न ठरूं ॥

कहि यों विचरे यह सिद्ध अकाश पथं ।
 जित राजत हे गिरिजापति गोरि सथं ॥
 जित वासव आदिक देव मिले सबही ।
 तित जाय प्रनाम किये दुहुकुं तबही ॥
 कछु हे पृथिमें उतपात थुं देव कहे ।
 सुनिके सब बात सुनावत सिद्ध वहे ॥
 शिवदासकुं शंकर शाप अगेज्युं भयो ।
 तिन मानव देह धरीकें विजोग सहो ॥
 छिनहू न रहे इनकों बहु वर्ष बिते ।
 इनके दुखसैं उपज्यो उतपात तितैं ॥
 लघु दोषहुसैं बड़ दंड इतो न घटे ।
 दुख देखत देखनहारकि छाति फटे ॥
 सुनि बानि उमा उरमें करुना उपनी ।
 तब भीमहुपैं विनती भवभाम भनी ॥
 यह दंपतिकुं इत टेरहु ईश अहो ।
 करुनानिधि किकरपैं करुनालु रहो ॥
 सुनि शंकर बानि कही प्रभनाथ प्रती ।
 तुम जाकर दंपतिपैं कहहू उकती ॥
 अब आवहिंगे महारात्रि समे जबही ।
 यह दंपतिकों इत टेरिलहे तबही ॥
 शिवमंदिर नैनतरंग समीप जिहां ।
 हम भेजहिंगे युतिमान विमान तिहां ॥
 इतने दिन दंपति धीरज चित्त धरो ।
 कहिकें थुंहि दोहुनके दिल शांत करो ॥ २३ ॥ ❀

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

चौपाई.

यों कहि सिद्ध चले आकाश, जित राजतहे गिरि कैलास । वां कछु

सिद्ध ने कहा हे सागर ! मन को शान्त करो । मैं कैलाश जाता हूँ तब तक धैर्य धरो । तुम्हारे दुःख को पार्वतीनाथ शङ्कर के समक्ष प्रकाशित करूंगा और अभी यहां आता हूँ वहां ठहरूंगा नहीं । ऐसा कह कर सिद्ध ने आकाश मार्ग से जहां पर कि भगवान् शङ्कर पार्वती के साथ विराजते हैं वहां के लिए प्रस्थान किया । वहां इन्द्रादिक सभी देव मिले । आगे जाकर दोनों को

काज मिले सुर साथ, कृत आपसमें बैठे गाथ ॥ आज महीमें शोक छाया,
वातें दिशि दुरदीन लखाय । वामें सिद्ध गये तिहि ठौर, बात किये सब
करी निहोर ॥ आगे दिय तुम गनकों शाप, मानव देह धरी उन आप ।
पूरन प्रेमी राजत सोय, रही न शके पल जूदे दोय ॥ बाकों विरह दियो
बहु काल, क्यों करि सोय सहे विकराल । वातें कष्ट लहे यह काय, सो
नहिं सबतें देख्यो जाय ॥ यातें शोकहि छितिमें छाया, यह कारन हम
इतही आय । दोष लघुमें दीरघ दंड, देवों घटे न तुमें परशुखंड ॥ सो
सुनिकें उमया मन मांय, उपजीकें अति करुणा छाया । कहन लगे तब
शिवकों आप, क्षमा करो अब उनकों शाप ॥ टेर लेउ पुनि अपनी पास,
कृपा करीकें उनपें खाप । सो सुनि शंकर करुना लाय, सिद्ध प्रत्ये पुनि बोले
वांय ॥ जाओ कहो तुम उनकों येह, धीर धरो तुम अपनी देह । आवेंगी
अब जे शिवरात, तब बुलावेंगे साक्षात ॥ नैनतरंगे किय शिवेन, रहियो
जाय वहां उस रैन । महपूजा करियो महारात, मोद धरी मनमें अबदात ॥
वां भेजेंगे दिव्य विमान, उनपें चढ़ि आयो इस थान । सो सुनि सिद्ध
सुरा मुद पाय, सब सबके स्थानक प्रति धाय ॥

ऐसा कहकर सिद्ध आकाशमार्ग से उस ओर चले जिधर कैलाश पर्वत है । वहां किसी कार्यवश देवराज इन्द्र मिले जो आपस में बात कर रहे थे कि आज पृथ्वी पर शोक छा रहा है जिससे दिशाएं मलिन दीख रही हैं । उसी समय वहां सिद्ध भी पहुंचा और सब बातें बिनती पूर्वक कहीं । आपने पहिले अपने गण को शाप दिया जिससे कि उन्होंने मनुष्य-देह धारण कर रक्खा है । वे पूर्णप्रेमी हैं और पल भर भी पृथक् नहीं रह सकते । उन्हें बहुत समय का विरह दिया

प्रणाम किया । महादेव ने पूछा कि पृथ्वी पर क्या कुछ उत्पात है तब सिद्ध ने वह सब बात कह सुनाई कि भगवान् शिव के दास को जो पहिले शाप हुआ था, उसने मनुष्य-देह धारण कर वियोग प्राप्त किया है । वह क्षण भी अलग नहीं रहता था, परन्तु वर्षों व्यतीत हो गए हैं । उनके दुःख से वहां उत्पात हो रहा है । थोड़ी भूल से इतना कठिन दंड उचित नहीं । उनके दुःख देख कर देखने वाले की छाती फटती है । यह सुन कर पार्वतीजी के मन में दया उत्पन्न हुई और उन्होंने शिवजी से प्रार्थना की, कि हे ईश्वर ! उन स्त्री पुरुषों को अब यहां बुलाइए । हे दया के सागर ! अपने सेवक पर दया करो । यह सुनकर शिवजी ने प्रभानाथ से कहा कि तुम जाकर उन स्त्री पुरुष से कहो कि इस बार शिवरात्रि आवेगी तब उन्हें यहां बुला लेंगे । नैनतरंग शहर के पास जो मंदिर है वहां विमान भेजेंगे । “तुम स्त्री पुरुष तब तक धीरज रखो” ऐसा समझा कर उन दोनों के मन को शान्त करो ॥ २३ ॥

दोहा—सो मुनि सुरवर सिद्ध पुनि, मनमें अति मुद पाइ ।

तितसैं निज निज पंथ गय, शिव शिवाकुं शिरनाइ ॥ २४ ॥

है, सो कठिन विरह को क्योंकर सहन करें ? इससे वे शरीर से बहुत दुखी हो रहे हैं जो किसी से देखा नहीं जाता । इससे मही पर शोक छाया हुआ है, और इसलिए मैं यहां आया हूं । छोटे से दोप में इतना बड़ा दण्ड देना हे परशुखण्ड ! आपको उचित नहीं जंचता । यह सुनकर पार्वतीजी के हृदय में बहुत दया उत्पन्न हुई और शिवजी से कहने लगीं कि अब शाप क्षमा करो और उन पर खास कृपा करके उन्हें अपने पास बुला लो । यह सुनकर शिवजी ने दया करके सिद्ध को कहा कि तुम जाकर उनसे कहो कि धीरज धरें, अब की जो शिवरात्रि आवेगी, उन्हें अपने पास बुला लेंगे । नैनतरंग के पास जो शिवमन्दिर है वहां जाकर उस रात्रि में रहें और मन में उत्कट प्रेम धरकर उस रात्रि में महापूजन करें । वहां हम विमान भेजेंगे, उस पर चढ़कर यहां आवें । यह सुनकर सिद्ध और देवगण प्रसन्न होकर अपने २ स्थान को गये ॥

यह सुनकर सब देवगण तथा सिद्ध मन में अति प्रसन्न हुए और शिव पार्वती की वन्दना कर अपने २ मार्ग गए ॥ २४ ॥

चौपाई.

प्रभानाथ सागर प्रति आये, स्नेह सहित सब बात सुनाये ।
महारात्रिकी औधि उचारी, रहहु इते दिन धीरज धारी ॥
अब तुम मनछापुरहु विचरहु, दिय तुम वाक्य सत्य सो करहु ।
तुम कुसुमावलिकुं ज्युं कहै हे, हायन बीतत हम फिर ऐहे ॥
नैनतरंग शिवालय जाना, वहां तुमे किय एहि प्रमाना ।
सो सब सत्य करहु तुम जाई, सज्जन वचन न होत वृथाई ॥
जाको वचन वृथा कछु जावे, सो जगमें सज्जन न कहावे ।
अब में सुजान संनिध जाऊं, सब यहही संदेश सुनाऊं ॥
फिर वांसें मुज थानक जैहूं, महा रात्रिपर तुमपें ऐहूं ।
सुनि सागर मन भइ कछु शांती, भाखित सिद्ध रही नहिं आंती ॥ २५ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

चरनाकुल छंद.

सिद्ध आइ पुनि सागर पासे, कही हकीकत सर्व हुलासे । दूर करो
अब दिलकी चिंता, प्रमन्न भयै तुम शाप नियंता ॥ महारात्रि अब जेही
आवे, तादिन तुमकों पास बुलावे । यातें तुम मछनापुर जाओ,
सर्व प्रबिनको बात जनाओ ॥ आगे कुसुमावलिकों दीनें, वर्ष बिते आवनके
कीनें । सत्य करो अब जाकें सोइ, सज्जन वैन वृथा नहिं होइ ॥ बातें नेन-
तरंगहि जाई, रहो रात्रि शिवलों पुनि वांही । वां भेजगें शंभु विमाना,
उनतें गिरि कैलासं जाना ॥ अबमें जाय प्रबीन जनाऊं, तुम आनेकी खबरि
सुनाऊं । बातें पुनि मुक्त स्थानक जैहों, महा रात्रिपर वांही पैहो ॥ तोलों
यह शिवमंत्र उचारो, आदि पुनि ओंकारकों धारो । यों कहिकें सिद्धें
सुखदाये, शिवपंचाक्षर मंत्र सिखाये ॥

प्रभानाथ सागर के पास आए और स्नेहपूर्वक सब बातें सुनाई कि महा-शिवरात्रि की अवधि तक तुम धैर्य्य धारण कर कहो । अब तुम मनछापुर को जावो और जो तुम्हें वाक्य दिया है उसे सत्य रहो । तुमने कुसुमावलि से कहा था कि एक वर्ष बीतने पर पीछे आवेंगे, सो तुम नैनतरंग के पास जाओ वहां भी तुमने यही कहा था, सो वहां जाकर तुम सब बातें सत्य करो, क्योंकि सज्जन की बात वृथा नहीं होती । जिसकी बात वृथा जावे वह संसार में सज्जन नहीं होता । अब मैं प्रवीण के पास जाता हूं और वहां भी यह सब सन्देश सुनाता हूं । वहां से फिर मैं अपने स्थानक जाऊंगा और महाशिवरात्रि पर तुम्हारे पास आऊंगा । यह सुनकर सागर को कुछ शान्ति हुई और सिद्ध ने जो कुछ कहा उसमें भ्रान्ति न रही ॥ २५ ॥

दोहा—शिव पंचाक्षर मंत्रको, सिद्ध दियो उपदेश ।

नमःशिवाय प्रनव धुरे, जापहु यहै हमेश ॥ २६ ॥

फिर सिद्ध सागर के पास आकर प्रसन्नतापूर्वक सब समाचार कह सुनाया कि अब दिल की चिन्ता दूर करो, तुम्हारे पर शाप देने वाले प्रसन्न हो गए हैं, अब जब महाशिवरात्रि आवेगी उस दिन तुम्हें अपने पास बुलावेंगे, इसलिए अब तुम मनछापुरी जाओ और प्रवीण को सब बात सुनाओ, पहिले तुम ने कुसुमावलि को एक वर्ष बीतने पर आने की अवधि दी है, उसे अब जाकर सत्य करो, क्योंकि सज्जन की बात वृथा नहीं हुआ करती इसलिए अब नैनतरंग जाकर शिवरात्रि तक वहां रहा, वहां शिवजी विमान भेजेंगे, उससे कैलाश को जाना । अब मैं जाकर प्रवीण को कहता हूं और तुम्हारे आने की खबर उसे सुनाता हूं । वहां से फिर मैं अपने स्थानक को जाऊंगा और महारात्रि पर यहां आऊंगा तब तक तुम ओंकारपूर्वक शिवमन्त्र का जाप करो । ऐसा कहकर सिद्ध ने सुखदायक शिवपंचाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्र का उन्हें उपदेश दिया ॥

ॐ पाठान्तर इस प्रकार है:—

शिवके पंचाक्षरमंत्रकथन—दोहा.

“नमःशिवाय” शुभ मंत्र यह, आदि धरी ओंकार ।

जाप जपो निशिदिन सदा, हर्ष हृदयमें धार ॥

सिद्ध ने शिवपंचाक्षर मंत्र का उपदेश दिया और कहा कि इसी 'नमः शिवाय' मंत्र का हमेशा जप करो ॥ २६ ॥

सातों सज्जन सिद्धके, पुनि पुनि बंदे पाय ।

कृपा करी हमपैं बहू, अहो सिद्धगुरुराय ॥ २७ ॥

सातों सज्जनों ने बार २ सिद्ध के पांव बंदन किये और बोले हे सिद्ध ! आपन हम पर बड़ी कृपा की ॥ २७ ॥

कविवाच-दोहा.

शीखीकें सब मंत्र यह, परी सिद्धके पांय ।

कहन लगे करजोरि कें, मोद धरी मनमांय ॥ २८ ॥

यह मंत्र सीखकर सिद्ध के पांव पड़े और मन में प्रसन्न हो कर जोड़ कहने लगे ॥ २८ ॥

सिद्धप्रति सागरोक्त-दोहा.

अहो सिद्ध हम रंकपें, दया धरी दिलमांय ।

यत्न करीकें अमितविधि, शुद्धि सुखदायक लाय ॥ २९ ॥

हे सिद्ध महाराज ! हम दीन पर हृदय में दया करके अनेक प्रकार का यत्न करके सुखदायक समाचार आप लाये ॥ २९ ॥

महारात्रिकी ओधि कहि, इतने दिन पुनि मोहि ।

बड़े कष्टसैं बितीहे, इक दिन जुग सम होहि ॥ ३० ॥

आपने महारात्रि की अवधि कही । ये दिन मुझे बड़े कष्ट से बीतेंगे, क्योंकि एक २ दिन मुझे युग के समान हो रहा है ॥ ३० ॥

दसराको दिन आजहे, इत नवरात्री कीन ।

दुर्गादेवि प्रसादतें तब पद दर्शन लीन ॥ ३१ ॥

ओंकारपूर्वक 'नमः शिवाय' इस शुभ मंत्र का हृदय में प्रसन्नता रख निशि दिन जाप करो ॥

आज दशहरा का दिन है । हमने यहां नवरात्रि की और दुर्गादेवी के प्रसाद से आपके चरणों का दर्शन किया ॥ ३१ ॥

सागर प्रति सिद्धोक्त-दोहा.

जन्महितें अबलों जिते, जैसे वर्ष बिताय ।

तैसे थोरे दिन कढ़ो, धीर धरीकें काय ॥ ३२ ॥

तब सिद्ध ने कहा कि जन्म से लेकर अब तक इतने वर्ष जिस प्रकार बिताये हैं उसी प्रकार धीरज धरकर थोड़े दिन और निकालो ॥ ३२ ॥

कविवाच-दोहा.

यों कहि बातें सिद्ध पुनि, मनछापुरिमें जाय ।

प्रेम सहित परबीनकों, सबही बात सुनाय ॥ ३३ ॥*

ऐसा कहकर सिद्ध मनछापुरी में गये और प्रेमपूर्वक प्रवीण को सब बातें कह सुनाई ॥ ३३ ॥

ज्यों विषहरके मंत्रतें, विष उतरी शुद्धि पाय ।

त्यों सुनि वचनहि सिद्धके, पाय प्रबीन शुद्धि काय ॥ ३४ ॥+

जैसे विष उतारने वाले के मन्त्र से विष उतर जाता है और चेतना आ जाती है, उसी प्रकार सिद्ध के वचन सुनकर प्रवीण के शरीर में चेतना आ गई ॥ ३४ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

प्रभानाथ वासैं पुनी, मनछापुरिमें आय ।

स्नेह सहीत सुजानकों, सब संदेश सुनाय ॥

तब प्रभानाथ वहां से मनछापुरी में आकर स्नेहपूर्वक सब सन्देश प्रवीण को सुनाया ॥

+ पाठान्तर इस प्रकार है:—

ज्यों विषधर विषमंत्रसे, उतरत अरु सुधि आय ।

प्रभानाथके वचनतें, यों सुजान सुधि पाय ॥

सागरकी सुनि कुशलता, प्रसन्नदित भई प्रवीन ।

महारात्रिकी ओधि सुनि, भयो कछुक दुख छीन ॥ ३५ ॥*

सागर की कुशलता सुनकर प्रवीण प्रसन्न हुई और महाशिवरात्रि की अवधि सुनकर उसका दुःख कुछ कम हुआ ॥ ३५ ॥

ज्वालामुखि प्रति सिद्ध गये, दे पंचाक्षर मंत्र ।

पुनि वह मंत्र जपनहुको, सबहि बतायो तंत्र ॥ ३६ ॥

फिर सिद्ध उसे पंचाक्षर मन्त्र देकर तथा उसके जाप की सब विधि बताकर ज्वालामुखी की ओर गये ॥ ३६ ॥

शिवपंचाक्षर मंत्र पुनि, सिद्ध सुनाइ कान ।

विधि बताय सब जपनकी, आप गये निज स्थान ॥ ३७ ॥

फिर सिद्ध ने शिवपंचाक्षरी मंत्र कान में सुनाया और उसके जाप की सब विधि बताकर अपने स्थान को गये ॥ ३७ ॥

चौपाई.

सागरकी शुद्धि पाय प्रवीन, दान बहु दुरबलकों दीन ।

बंध्या जैसे पावे बाल, नंगा जैसे पावे शाल ॥

लोभी जैसे पावे धन्न, भाविक पावे ज्यों भगवन्न ।

आशक जैसे माशुक पाय, अंधाकों ज्यों अदी आय ॥

जिस प्रकार सर्प का विष मंत्र के प्रताप से उतरता है और सुधि आजाती है, इसी प्रकार प्रभानाथ के वचन से प्रवीण को सुधि आगई ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

सागरकी शुद्धि पायके, सुदित भई मन मांय ।

ओधि सुनी शिवरात्रिकी, फूल गई पुनि काय ॥

सागर का समाचार पाकर प्रवीण मन में प्रसन्न हुई और शिवरात्रि की अवधि सुनते ही तो फूली नहीं समाई ॥

प्यासा जैसे पावे नीर, भूख्या जैसे पावे खीर ।
जैसे किसिका नाव गुमाय, पीछा सोय अनामत आय ॥
तैसे शुद्धि सागरकी पाय, मुदित बनी बाला मनमांय ।
किये सदाव्रत गामे गाम, प्रपा बनाइ ठामे ठाम ॥
ईश मंत्रको जपती जाप, हर्ष धरी पुनि मनमें आप ।
सागर आवनकी लखि राह, हौंस धरी बैठी मनमांह ॥ ३८ ॥

सागर का समाचार पाकर प्रवीण ने दुर्बलों को बहुतसा दान दिया । जैसे बंध्या को पुत्र प्राप्त हो, जैसे नंगे को दुशाला मिल जाय, लोभी को जैसे धन मिल जाय, भक्त को जैसे भगवान् मिल जाय, प्रेमी को जैसे प्रेमिका मिल जाय, भूखे को जैसे क्षीरान्न मिल जाय अथवा जैसे किसी की खोई हुई अमानत पीछी प्राप्त हो जाय, उसी प्रकार सागर का समाचार पाकर प्रवीण प्रसन्न हुई । ग्राम २ में सदाव्रत खोल दिये तथा जगह २ मन्दिर बना दिये और आप मन में प्रसन्न हो भगवान् शङ्कर के मन्त्र का जाप करती हुई सागर के आने की अभिलाषा मन में रखकर वाट देखने लगी ॥ ३८ ॥

दोहा.

सुरतानंद पहारतें, मिलिकें साते मित्र ।
मनछापु रिपें गमनके, किय विचार निजचित्त ॥ ३९ ॥*

फिर सातों मित्र मिलकर सुरतानन्द पहाड़ से मनछापु की गमन करने का विचार किया ॥ ३९ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

सुरतानंद पहारतें, पुनि वह सातों मित्र ।
आये बद्दीनाथ प्रति, जित हरस्थान पवित्र ॥

फिर वह सातों मित्र सुरतानन्द पहाड़ से बद्दीनाथ की ओर आए जहां पर कि शिवजी का पवित्र स्थान है ॥

करि विचार वातें सबे, आये बट्टीनाथ ।
किय दर्शन हरदेवके, साते मिलिकें साथ ॥ ४० ॥

सबों ने विचार कर वहां से बट्टीनाथ आये और सातों ने साथ मिलकर
महादेव का दर्शन किया ॥ ४० ॥

पंच दिवस पुनि वां रही, करि दर्शन सब देव ।
मनछापुरिमें चलनकों, तत्पर ह्वे ततक्षेव ॥ ४१ ॥*

फिर वहां पांच दिन रहकर सब देवताओं का दर्शन किया और वहां से
मनछापुरी चलने में तत्पर हुये ॥ ४१ ॥

गाहा.

सांख्यजोगको सारं, पुनि शिव कथिता सु ओधि शिवरात्री ।
अशीतितम अभिधानं, पूर्न प्रवीनसागरो लहरं ॥ ४२ ॥

सांख्ययोग का सार तथा शिवजी की कही हुई शिवरात्रि की अवधि बताई
तत्सम्बन्धी यह प्रवीणसागर की अस्सीवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥



* पाठान्तर इस प्रकार है:—

पंचरात्रि तितही रहे, मित्र सहित महाराज ।
बहु देवालय देवके, तिनके दर्शन काज ॥

मित्रों के साथ महाराज सागर पांच रात्रि वहां के देवालयों के देवों के
दर्शन के लिए रहे ॥

८१ वीं लहर

गणितार्थ्य प्रसंगो छंद भुजंगप्रयात.

पुजे सागरे देव श्री बद्रीनाथ, नमायो शिरं हेतसें जोरि हाथं । वहू देव देवालयोंमें बिराजे, वहू दुंदभी झल्लरी घंट बाजे ॥ चितें चाहिकें जाइकें दर्श कीने, सबे भक्तिके भावके रंग भीने । किते देशके देशके संघ आवे, करी दर्शनं स्पर्शनं मोद पावे ॥ कऊ गेहके देहके दुःख बारे, उदासी हुए सो उहां देह गारे । तजे देह वां सो महा मुक्ति पावे, अरू जैसि इच्छा असो जन्म आवे ॥ तपे को तपस्वी वहां पंचतापं, कऊ जोग साधे प्रलेहोन पापं । जिही सत्य जाने, भितो सात पूजे, दुखी देखही ताहिको दुःख बूजे ॥ १ ॥

सागर ने श्री बद्रीनाथ देव की पूजा की, और प्रेम से हाथ जोड़कर मस्तक नवाया । देवालय में अनेक देव बिराजते हैं, वहां अनेक नौवत व घड़ियाल बजते हैं । मन में चाहनायुक्त हो वहां जाकर दर्शन किया । वे सब मित्र भक्ति-भाव के रंग में सराबोर हो रहे थे । वहां अनेक देशों के संघ आते हैं और दर्शन करके आनन्दित होते हैं । कोई घर के अथवा शरीर के दुःख से दुखित उदासीन हो वहां शरीर को गंवाते हैं और जो वहां शरीर छोड़ते हैं वे महा-मुक्ति प्राप्त करते हैं । अथवा जैसी इच्छा हो वैसा जन्म पाते हैं । वहां कोई तपस्वी पंचाग्नि तपते हैं और कोई पापों का प्रच्छालन करने के हेतु योग साधते हैं, उन में जिन्हें सच्चा योगी समझा उसकी सातों मित्रों ने पूजा की और किसी को दुखी देखते तो उससे दुख पूछते ॥ १ ॥

दोहा.

वां संन्यासी इक मिल्यो, देख्यो ताहि उदास ।

सागर बूझ्यो तिनहिपैं, क्यों तुम भये संन्यास ॥ २ ॥

वहां एक संन्यासी मिले जो उदास दिखाई पड़े तो सागर ने उनसे पूछा कि आप संन्यासी क्यों हुए ? ॥ २ ॥

वह संन्यासी उक्ति-सवैया.

कोउ कलत्र कुपात्र मिले, अरु कोउ कलत्र निरंत्र निरासी ।
कोउ दरिद्रि दरिद्रनके दुख, द्रव्य बिनां दिल होइ उदासी ॥
कोउ बिजोगि बिजोग व्यथा धरि, प्रानप्रिया पर प्रेम प्रकासी ।
सागर या कलिकालहि में जन, छोरि संसार सु होत संन्यासी ॥ ३ ॥

उन संन्यासी ने कहा कि कोई तो कुपात्र स्त्री मिलने से, कोई कभी स्त्री न मिलने की निराशा से, तो कोई दरिद्री दारिद्र्य दुःख के धन बिना मन में उदासी-न हो तो कोई वियोगी वियोग की पीड़ा धारण कर प्राणप्रिया के प्रेम में, हे सागर ! इस कलिकाल में संसार छोड़ संन्यासी होते हैं ॥ ३ ॥

हरिगीत छंद.

विद्या रु कविता याचना सेवा विदेश मुसाफरी ।
“धन पुत्रकी” इच्छा धरी यह पंच कांता में करी ॥
पुनि दैव भो प्रतिकूल तातें पंचहु बंभा रही ।
सागर सुनो ज्यु निरास है संन्यास दिच्छा हम लही ॥ ४ ॥

मैंने विद्या, कविता, याचना, चाकरी और परदेश की मुसाफिरी इन पांच भार्याओं से धनरूपी पुत्रकी इच्छा की परन्तु दैव उलटा रहा जिससे वे पांचों बंघ्या रहीं अर्थात् धन नहीं मिला । हे सागर ! सुनो, इससे उदास होकर मैंने संन्यास लिया ॥ ४ ॥

दोहा-सागर सुनके ताहिकुं, देन लगे धन दान ।
अब द्रव्यकुं क्या करों, यों कहि कियो प्रयान ॥ ५ ॥

यह सुनकर सागर उसे धन दान देने लगे तब उसने यह कह कर कि अब धन का क्या करूं, प्रयाण कर दिया ॥ ५ ॥

सूके पिछ वर्षा कहा, गत जोषन कांताहि ।
कहा मरन पिछ औषधी, गत औसर धन काहि ॥ ६ ॥

जाते २ उसने कहा—खेती सूखने पर वर्षा से क्या, युवावस्था बीत जाने के बाद नवयौवना स्त्री से क्या, मृत्यु के बाद ओषधि से क्या, और समय निकल जाने के बाद धन से क्या प्रयोजन है !!! ॥ ६ ॥

सन्यासी होकें रखे, जो कउ धन अरु नारि ।

तो तिनकुं धिक्कारहे, कहा भेख लिय धारि ॥ ७ ॥

संन्यासी होकर यदि कोई धन और स्त्री रखे तो उसे धिक्कार है, उसने यह भेष क्यों धारण किया !!! ॥ ७ ॥

पुनि दो द्विज आये तिते, डुबे करज दुख कूप ।

सागरकुं जान्यो इने, हे नृप जोगी रूप ॥ ८ ॥

फिर वहां दो ब्राह्मण आये जो ऋण के दुःख-कूप में डूबे हुए थे, उन्होंने समझ लिया कि सागर कोई ऐगीरूप में राजा है ॥ ८ ॥

वइ विप्रोक्त—सवैया.

बादरसैं न छुपे ज्युं विभाकर, छोनि छुपे न तरुवर छाये ।

अंजन अंजित नेन छुपे नहि, मेन छुपे नहि मौन रहाये ।

निंदकसैं न छुपे परकीरति, सांच छुपे नहि जूठ बताये ।

धूमहिमें ज्युंहि आग छुपे नहि, भाग्य छुपे न भभूत लगाये ॥ ९ ॥

क्योंकि, जिस प्रकार बादल से सूर्य नहीं छिपता, वृक्षों की छाया से पृथ्वी नहीं छिप सकती, अंजन लगाने से आंखें नहीं छिपती, चुप रहने से मन में कामदेव नहीं छिपता, निंदकों से परकीर्ति नहीं छिपती, झूठ बोलने से सत्य नहीं छिप सकता, और धूएं से आग नहीं छिप सकती उसी प्रकार भभूत लगाने से भाग्यशाली का भाग्य भी नहीं छिप सकता ॥ ९ ॥

दोहा.

द्विजने अशिर्वाद दिय, कही निज करज बिपत्त ।

सागर तिहि मोती दिय, जो हे प्रवीन प्रदत्त ॥ १० ॥

ब्राह्मणों ने सागर को आशीर्वाद दिया, और अपने ऋण की विपत्ति कही, तब सागर ने उन ब्राह्मणों को मोती दिये जो प्रवीण ने प्रथम दिए थे ॥ १० ॥

मोतीदानको कवित्त.

सातो मित्र समीप दो, दुखी द्विज आइ कहे, अहो अधिपती खनो, हमारी अरज हे । चारोस रुपैयाको, करज मेरे एक कहे, एक कहे मेरे शिर, लक्षको कज हे । एककुं एकेक मोती, दूसरेकुं दोनुंदोनुं, दिये सातों मित्र टारी, ओरकी गरज हे । कबो सवे मोती सम, मोल हे तथापी सम, होइहो श्रीमंत यामें, ऐसो अचिरज हे ॥ ११ ॥

सातों मित्रों के पास आकर दो दुखी ब्राह्मणों ने कहा, हे महाराज ! हमारी विनती सुनिये । एक ने कहा मेरे ऊपर चालीस रुपये का कर्ज है और दूसरे ने कहा मेरे ऊपर एक लक्ष का कर्ज है । तब सातों मित्रों ने एक को एक २ मोती और दूसरे को दो २ मोती देकर किसी अन्य के पास जाने की आवश्यकता मिटा दी और कहा कि इन सब मोतियों का मूल्य बराबर है । फिर भी तुम दोनों को समान धन प्राप्त हुआ है, अर्थात् कर्ज देने के बाद बराबर ही रुपये रहेंगे, इसमें ऐसा चमत्कार है ॥ ११ ॥

दोहा.

सुनि दूसरो दिलगीर भो, जूठ सु वायक जान ।

जब बेके ज्या शहरमें, भयो कब्लाहि प्रमान ॥ १२ ॥

यह सुनकर दूसरा ब्राह्मण जिस पर कि एक लाख का कर्ज था, इस बात को झूठी जानकर उदास हुआ, परन्तु जब शहर में जाकर मोती बेचे तो सागर के बताए अनुसार ही हुआ ॥ १२ ॥

मोल मोति प्रत्येकको, उपज्यो कहा निदान ।

करज कटत कितनो बच्यो, जाने चतुर सुजान ॥ १३ ॥

प्रत्येक मोती का मूल्य क्या मिला ? और दोनों को अपना २ कर्ज देने के बाद क्या बचा ? इसे तो कोई चतुर ही जाने ॥ १३ ॥

दोहा-भाखे भारतिनंद तब, सागरपें मुख बान ।

करज कटत कैमें हुवे, दो श्रीमंत समान ॥ १४ ॥

तब भारतीनन्द ने सागर से पूछा कि—कर्ज देने के बाद दोनों ब्राह्मणों को समान धन कैसे बचा ? ॥ १४ ॥

सागरोक्त मोती के मूलको कवित्त.

एक जनतें अधिक, जितने दुजेकुं मोती, तीनकी अढ़ाई गुनी, संख्या उर धारिये । छोटे कर्ज सो संख्याक, गुनो करते ज्युं होत, तासैं बड़ो कर्ज कलु, न्युन न बिचारिये । अंतर दो कर्जहूको, अधिक मोतीसैं इनो, प्रत्येक मोतीको मोल, इतनो उचारिये । बड़ो कर्ज कबो तातें, चाहे तेतो बड़ो होय, तदपी सो टारी पुंजी, इतनी निहारिये ॥ १५ ॥

तब सागर ने कहा कि एक जन में दूसरे को जितने अधिक मोती मिले उस संख्या का अढ़ाई गुना करके याद रखगें । छोटे कर्ज की संख्या से उस संख्या को गुणा करें । यह जो संख्या आवे इससे बड़े कर्जदार की कर्जराशि कम नहीं होनी चाहिए, और पहिले से दूसरे को जितने अधिक मोती दिये वह उसके बढ़ती कर्ज के मध्ये दिये हैं । इसलिए दोनों कर्ज में जो अन्तर होवे उसे मोती के अन्तर से भाग देने पर जो भागफल हो, वह एक २ मोती का मूल्य हुआ । वह अधिक कर्ज ऊपर कहा उसमें चाहे जितना अधिक होय तो भी कर्ज देने के बाद समान राशि बच रहेगी ॥ १५ ॥

कवित्त.

हे अधिक कर्ज जाकुं, लक्षमें चालीस कम, ताके लिये सात मोती, अधिक सु दियेहे । सो संख्याको सप्तमांश, प्रत्येक मोतीको मोल, चौदह सहस्र दुहुशतअसी कियेहे । काटतें करज एक, लक्षमहीं ऐसी न्युन, रहे सो प्रत्येक पास, लाभ जानी लियेहे । सागर कहत ऐसे, होतहे अनेक भेद, जानत चतुर, चतुराई जाके हियेहे ॥ १६ ॥

पहिले ब्राह्मण की अपेक्षा दूसरे ब्राह्मण पर जो एक लक्ष में चालीस रुपया कम ऐसा अधिक ऋण है, सो उस अधिक ऋण के लिए सात मोती उसे

अधिक दिये हैं । इसलिए उस संख्या का सप्तमांश जो चौदह हजार दो सौ अस्सी रुपये हुए यह एक मोती का मोल है । इसलिए दोनों जनों को अपना २ कर्ज चुकाने के बाद अस्सी रुपया कम एक लाख में जो बचा उसे अपना २ लाभ समझ लिया । सागर कहते हैं कि ऊपर बताई हुई रीति से ऐसे अनेक हिसाब होते हैं उन्हें जिसके मन में चतुराई होवे वही जाने ॥ १६ ॥

हरिगीत छन्द.

पुनि सात मालाकार पेखे, बाटिकाके पासही ।
तिहिकुं कउ सरदार दीने, मोति उन पंचासही ।
इक इक बढत धन मोल मोती, बांटतें लरने लगे ।
निधि कहे भारतिनंदकुं, तुम बांटी देहु यह जगे ॥ १७ ॥

फिर एक बाटिका के पास सात मालियों को उन्होंने देखा, उन्हें किसी सरदार ने उन्चास मोती दिये थे । उन में पहिला मोती एक रुपये का दूसरा दो का, इस प्रकार एक २ रुपया बढ़ते २ उन्चासवां मोती उन्चास रुपये का था । उनको बांटने में उनकी लड़ाई होने लगी । सागर ने भारतीनन्द से कहा कि उन्हें यहां आप बांट दो ॥ १७ ॥

दोहा.

जंत्र क्रियाकी रीतिसें, मोती वाटहु मीत ।
भाखे भारतिनंद तब, कहो जंत्रकृति रीत ॥ १८ ॥

सागर ने कहा कि हे मित्र ! यंत्र-क्रिया की रीति से मोती बांट दो । तब भारतीनन्द ने पूछा कि यंत्र-क्रिया की रीति बताइए ॥ १८ ॥

सागरोक्त-दोहा.

जंत्र क्रिया तें निधि कहे, उपजे जंत्र अनेक ।
तीर्यग उर्ध रु कोनतें, आवत संख्या एक ॥ १९ ॥

सागर ने कहा कि यंत्र-क्रिया की रीति से अनेक यंत्र बनते हैं, जिनमें कौनी कोना, ऊपर से और आड़े से एक जोड़ आता है ॥ १९ ॥

हरिगीत छन्द.

निधि तीर तिहु सुर पंच जन, रुषि सात नव नागहि गये ।
तब मोति पंद्र पचीस, उनपंचास एकाशी दये ।
प्रत्येक चढते मोलके, दिय भिन्न अवसर ऊपरी ।
प्रत्येक मंडल बांटी लिय, समभाग यंत्रक्रिया करी ॥ २० ॥

एक समय समुद्र के किनारे तीन देवता गए और दूसरी बार पांच मनुष्य गए, तीसरी बार सात ऋषि गए, चौथी बार नव नाग गए । तब पहिले समूह को पन्द्रह, दूसरे को पचीस, तीसरे को उनचास, चौथे को इक्यासी मोती समुद्र ने दिये । वे हरेक मोती एक २ रुपया चढ़ कर मूल्य के थे, और प्रत्येक मंडली को अलग २ समय में दिये थे । उनको प्रत्येक मंडली ने बराबर संख्या व बराबर मूल्य में यंत्र-क्रिया द्वारा बांट लिया ॥ २० ॥

विषमपंक्तिके यंत्र-करन विधि-कवित्त.

विषम पंक्तिके यंत्र, रचनकी विधि सुनो, पंक्ति संख्यामें भंजाय, ताको यंत्र करिये । घर संख्यामें मिलाइ, एक अर्ध करो ताकुं, पंक्ति गुनो कमीमें, कमी जुं उर धरिये । घर संख्या एक हीन, अर्ध करो सोइ अंक, इच्छांकके पंक्तिमांश, हुसैं परहरिये । शेष सोइ दूजे काव्य, में कहूं त्यों लिखो पुनि, एक एक बढ़त, सबही घर भरिये ॥ २१ ॥

अब विषम पंक्ति के यंत्र बनाने की विधि कहता हूं सो सुनो । जितनी पंक्ति होवें उसी संख्या से भाग करके उस संख्या का यंत्र बनाइए । उस यंत्र में जितने खाने हों उसमें एक मिलाकर उसका आधा करो, उसे खड़ी या आड़ी जितनी पंक्ति हों उससे गुणा करो । कम से कम इतनी संख्या का यंत्र बनाने की मन में धारणा करो । खाना की संख्या में से एक कम करके उसका आधा करो । इस अंक को जितनी संख्या का यंत्र करने का निश्चय किया है उसकी पंक्ति के भाग में से घटाओ, फिर जो बचे उसे अब जो दूसरे कवित्त में बताते हैं उसके अनुसार खाने में एक २ बढ़ाते हुए सब खानों में भर देवो ॥ २१ ॥

अंकलिखन विधिको-कवित्त.

प्रथमही 'पू' पंक्ति के, मध्य घर अंक लिखो, पु तें सदा 'प' मे सीधी, आजु पकरीजिये । प तें कोनाकोन सदा, चढिये 'द' पंगती लों, दते सिर पंगतीमें, 'उ' मही लखीजिये । उते कोनाकोन 'पू' लों, चढतें जो अटके तो, लिख्यो ताके नीचे लीखी, पू लों पहाँचीजिये । अधिकोन घर भरी, ता नीचे को घर भरो, चारों पंक्ति के नियम, रुदमें धरीजिये ॥ २२ ॥

पहिले 'पू' पंक्ति के बिचले खाने में अंक लिखें, और 'पू' पंक्ति में अंक लिखने के बाद प्रत्येक वार नीचे 'प' पंक्ति के एक दाहिने खाने में अंक भरें । 'प' पंक्ति से हरेक वार कोनीकोना 'द' पंक्ति तक ऊपर की ओर खाने भरें । 'द' पंक्ति से हर वार ऊपर की ओर 'उ' पंक्ति के खाने भरें और 'उ' पंक्ति से कोनीकोना 'पू' पंक्ति तक ऊपर चढ़ते हुए जो बीच में आके अटके तो आखिर में अंक जो लिखा होवे उसे नीचे के खाने में भरकर कोनाकोनी 'पू' पंक्ति तक चलें । अग्निकोण का खाना भरा जाय उसके बाद उसके नीचे के खाने भरें । इस प्रकार चार पंक्ति के नियम मनमें रक्खें ॥ २२ ॥

नोटः—ईशान कोण से अग्नि कोण की पंक्ति का नाम 'पू', वायव्य से नैऋत्य कोण की पंक्ति का नाम 'प' है, नैऋत्य कोण से ऊपर और अग्नि कोण के नीचे तक 'द' पंक्ति है और वायव्य कोण के ऊपर से ईशान कोण के नीचे तक 'उ' पंक्ति है । इन चारों पंक्तियों को तथा मध्य भाग को खूब याद रक्खो ।

त्रिपंक्ति पञ्चदश
संख्यांक यंत्र.

पू			अ
८	१	६	अ
३	५	७	द
बा			प

त्रिपंक्ति २४
संख्यांक यंत्र.

पू			अ
११	५	६	अ
३	६	८	द
बा			प

पञ्चपंक्ति पञ्चषष्टि संख्यांक यंत्र.

पू					अ
१७	२५	१	८	१५	अ
२३	५	७	१४	१६	
४	६	१३	२०	२२	द
बा	११	१८	२५	२	६
					प

सप्तपंक्ति १७५
संख्यांक यंत्र.

पू

३०	३६	४८	१	१०	१६	२८	अ
३८	४७	७	६	१८	२७	२६	
४६	६	८	१७	२६	३५	३७	
५	१५	१६	२५	३४	३६	५५	इ
१३	१५	२४	३३	४२	४४	४	
२१	२३	३२	४१	५३	३	१२	
१८	३१	४०	४६	२	११	२०	ने

प

नवपंक्ति ३६६ संख्यांक यंत्र.

पू

४७	५८	६६	८०	१	१२	२३	३४	४५	१
५७	६८	७६	९	११	२२	३३	४४	५५	२
६७	७८	८	१०	२१	३२	४३	५४	६५	३
७७	७	१८	२०	३१	४२	५३	६४	७५	४
८	१७	१६	३०	४१	५२	६३	७४	८५	५
१६	२७	२६	४०	५१	६२	७३	८४	९५	६
२६	२८	३६	५०	६१	७२	८३	९४	१५	७
३६	३८	४६	६०	७१	८२	९३	१४	२५	८
४७	४८	५६	७०	८१	९२	१३	२४	३५	९

वा

सागरोक्त चतुःपंक्ति में समसंख्यांक यंत्रक्रिया—दोहा.

चहु पंक्तीके यंत्र कहु, प्रसंग पाई एहु ।

समसंख्या तेतीसतें, अधिक चाहि सो लेहु ॥ २३ ॥

सागर ने कहा कि यह कहने का प्रसंग है इसलिए चार पंक्तियों का यंत्र बनाने की युक्ति भी कहता हूं, सो तैंतीस के ऊपर कोई भी समसंख्या ले सकते हो ॥ २३ ॥

हारिगीत छंद.

इच्छांकके अर्धांशतें, तजि आठ कहुं सो घर भरो ।

द्रग नव कला मुनि वसु तिथी दश, भूमि अब कहुं सो करो ।

मुनि दो त्रिखट इक आठ सर श्रुति, शेष घर भरि लीजिये ।

चहुपंक्ति समसंख्यांकके, शुभ यंत्र इहि विधि कीजिये ॥ २४ ॥

मन में की हुई संख्या का आधा करके उसमें से आठ घटाओ, और फिर उस अंक से एक २ अधिक करते हुए मैं कहता हूं इस प्रकार खानों में भरो । दूसरा, नववां, सोलवां, सातवां, आठवां, पन्द्रहवां, दसवां और पहिला खाना भरो । फिर तीसरे खाने में सात, चौथे में दो, पांचवें में तीन, छठे में छः, ग्यारहवें में एक, बारहवें में आठ, तेरहवें में पांच और चौदहवें में चार का अंक भरें । इस प्रकार चार पंक्तियों में समसंख्या का चाहे जो यंत्र बनाइए ॥ २४ ॥

(११४४)

प्रवीणसागर

चतुःपंक्ति ३४
सप्त संख्यांक यंत्र.

१६	६	७	२
३	६	१२	१३
१०	१५	१	८
५	४	१४	११

चतुःपंक्ति ६४
सप्त संख्यांक यंत्र.

३१	२४	७	२
३	६	२७	२८
२५	३०	१	८
५	४	२६	२६

दोहा.

सो सुनि भारतिनंद कवि, ओरहि कवि रविजोति ।
सात पंक्ति के यंत्र विधि, बांट दिये यह मोति ॥ २५ ॥

यह सुकनर कवि भारतीनन्द तथा कवि रविज्योति ने सात पंक्ति का यंत्र करने की रीति से उन मोतियों को बांट दिया, और हरेक को एकसौ पचहत्तर रुपया के मूल्य के सात २ मोती मिले ॥ २५ ॥

पुनि चहु मालाकार किय, इत इक भूपति आय ।
हमकुं अत्तर शीशि दिय, सो वयों बांटी जाय ॥ २६ ॥

तब उनमें से चार मालियों ने कहा कि यहां एक राजा आये थे, उन्होंने हमें इत्र की शीशियां दीं । उन्हें हम कांटा व तोल बिना किस प्रकार बांटें ? ॥ २६ ॥

अत्तर पूरित तिहु शिशी, बतिस बतिस तोलेहु ।
ठल्ली पचिस सातकी, चहुकों बांटी देहु ॥ २७ ॥

इत्र से भरी हुई तीन शीशियां बत्तीस २ तोले की और सात तोले व पचीस तोले की दो खाली शीशियां हैं, उन्हें चारों में बांट दो ॥ २७ ॥

सागरोक्त अत्तर बांटने को—रुचित.

चार बेर सात भर, डारकों पचीसमें, पचीसकी ठलाइ तामें, तीन सोइ डारिये । केर तीन बेर सात, डारकों चौबीस होत, पचसमें पूरी एक, तीस दूर

धारिये । दोनुमें ठलाइ पच्ची, फीर ऐसैं दूजे एक, तीस धरी पष्ठीसमें, चौबीस उतारिये । तीस रहे दस तामें, सात सात एकतीस, डारीकें सागर कहे, बांटन विचारिये ॥ २८ ॥

सागर ने कहा कि सात-भर की शीशी भर कर चार बार पष्ठीस-भर की शीशी में डालो तो तीन-भर बच जायगा, उसे रक्खो, और उस पष्ठीस-भर को वापिस बत्तीस-भर में खाली करके उसमें तीन-भर डाल दो और फिर उसमें सात-भर की शीशी से तीन बार डालो तो चौबीस-भर उसमें हो जायगा । उसमें फिर बत्तीस-भर खाली शीशी में से डाल दो तो वह भर जायगी और बत्तीस-भर खाली में इकतीस-भर रह जायगा । फिर दोनों में भरने से फिर दूसरी में इकतीस करे और पष्ठीस वाली शीशी में चौबीस करिए ! तब तीसरी शीशी में चौबीस-भर रहेगा । उसमें अलग रक्खी शीशियों में से सात-भर डालने से चारों भाग बराबर हो जायंगे, इस तरह से बांट दो ॥ २८ ॥

पुनः एक मालाकारको प्रश्न, निंबु विषे—कवित्त.

माली कहे मेरे नींबू तीस में बेकन चन्प्यो, परोसीहु तीस मोहुं, बेकनकों दीयही । मेरे तो पैसेके तीन, उनके पैसेके दोनुं, बेकाय तो बेकहू युं, परोसीने कीयही । दोनुं पैसे पांच पांच, साठिहु नींबु में बेके, बोत ग्राहकसैं पैसे, चहूबीस लीयही । मेरे पैसे दस लिये, वह पंचदश मंगे, एक पेसा न्यून रहा, तोतैं जरे जीयही ॥ २९ ॥

तब एक माली ने कहा कि मैं तीस नींबू बेचने जारहा था, कि मेरे पड़ोसी ने भी मुझे और तीस नींबू बेचने को दिए । उसमें मेरे नींबू तो पैसे में तीन बिकते थे, और उसने कहा कि मेरे नींबू पैसे के दो बिकें तो बेचना । मैंने उन साठ निंबुओं को दो पैसे के पांच के हिसाब से बेच दिया और सब ग्राहक ले गए । मुझे चौबीस पैसे मिले, उसमें से दस पैसे मैंने लिये और पड़ोसी ने अपने पन्द्रह पैसे मांगे, एक पैसा कम रहा सो मेरे जीव को संकट है ॥ २९ ॥

दोहा.

पैसेकी न बिसात कछु, जात बडो इतबार ।

कलंक लागे कपटकों, ताकी फिकर अपार ॥ ३० ॥

पैसे की कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु इतबार बड़ा भारी है वह जाता है और कपट का कलंक लगता है, इस की मुझे बड़ी फिकर है ॥ ३० ॥

सागरोक्त उत्तर—कवित्त.

सुनो स्रजकार स्नेहे, सागर सुनावे सही, बारह पंचक नींबू, तुमें बेक आयेहे । छत्तीस तो यामें एक, पेसेके बिकाये तीन, चौबीसही यामें पैसे, के दोनुं बेकायेहे । तीन पेसेके थुं खट, हुते सो दो पेसे बेके, तातें एक पेसा यामें, ऊन उपजायेहे । जो कोउ बडो व्यापारी, मोती यों बेके तो जानो, पचीस सहस्रे धन, सहस्र गुमायेहे ॥ ३१ ॥

सागर ने स्नेहपूर्वक कहा कि हे माली ! सुन, तूने बारह पंचक (६०) नींबू बेचे, उसमें से छत्तीस नींबू तो पैसे के तीन के भाव से गए और चौबीस नींबू पैसे के दो के भाव से गए । इस प्रकार तीन पैसे के छः नींबू जो थे वे दो पैसे में गए इससे एक पैसे का घाटा रहा । जो कोई बड़ा व्यापारी इस तरह मोती बेच दे तो समझो पचीस हजार रुपयों में से एक हजार खो देवे ॥ ३१ ॥

दोहा.

सो सुनिकें स्रजकारको, टयों रुदयतें रोष ।
दोष बडोहे कपटको, चुकको बडो न दोष ॥ ३२ ॥

यह सुनकर माली के हृदय से रोष मिटा, क्योंकि कपट का भारी पाप है, भूल का नहीं !!! ॥ ३२ ॥

पुनः मालाकारोक्त फल विषे प्रश्न—दोहा.

इत देवालयहे बहुत, में दर्शन करि आउं ।
इक इक बढते फल धरन, कितने फल लेजाउं ॥ ३३ ॥

फिर एक माली ने पूछा कि यहां देवालय बहुत हैं, वहां मैं दर्शन करने जाता हूं, परन्तु वहां एक को एक, दूसरे को दो, तीसरे को तीन इस प्रकार फल चढ़ाना चाहता हूं तो कितने फल ले जाऊं ? ॥ ३३ ॥

सागरोक्त उत्तर—दोहा.

अर्ध गुने अंत्यांकते, करहु सइक अंत्यांक ।
इतने फल ले जाहु तिच, याद रखी यह आंक ॥ ३४ ॥

सागर ने कहा कि मंदिर की अंतिम संख्या में एक मिलाकर उसके आधे से गुणा करो, जो अंक आवे उतने फल ले जाओ ॥ ३४ ॥

जो शत देवल होइतो, एक मिलाई तास ।
होत करत पंचास गुन, पंच सहस पंचास ॥ ३५ ॥

जो सौ देवल हों तो उसमें एक मिलाओ, और सौ के आधे पचास से गुणा करो, तो पांच हजार पचास होते हैं ॥ ३५ ॥

दो तिन चहु बढते धरो, तो तिन भेद सुनाउं ।
दुगुन त्रिगुन चहुगुन करी, सो संख्या ले जाउं ॥ ३६ ॥

जो पहिले मंदिर में दो फल चढ़ा कर दो दो अधिक चढ़ाना हो तो ऊपर कही हुई संख्या को द्विगुण करके ले जाओ और जो पहिले मंदिर में तीन फल चढ़ा कर तीन २ अधिक करना हो तो तीन गुणा करके ले जाओ और यदि चार फल चढ़ा कर आगे चार २ बढ़ाकर चढ़ाना हो तो चौगुणा फल ले जाओ ॥ ३६ ॥

गाहा.

बट्टीकाश्रम स्थाने, गणिताश्चर्य कृतं सु सागर ज्युं ।
एकाशित्यभिधानं, पूर्ण प्रवीनसागरो लहरं ॥ ३७ ॥

बट्टीकाश्रम में सागर ने गणित का चमत्कार बतलाया, उस संबंध की प्रवीण-सागर की इक्यासीवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

८१ वीं लहर

सागर मनछापुलि प्रति गमन, तथा नक्षत्र-

तारादि कथन प्रसंग-दोहा.

बद्रीनाथकुं बंदिक्के, चले सु सातों मीत ।

मनछापुलि को मग लियो, पूर्न धरी मन प्रीत ॥ १ ॥

सातों मित्र बद्रीनाथ का वन्दन करके चल पड़े और मन में पूर्ण प्रीति के साथ सबने मनछापुलि का मार्ग लिया ॥ १ ॥

वाँसे मनछापुलि सु पंथ, उर धारत अनुमान ।

कहत पंचशत कोश सब, तीन मास पथ जान ॥ २ ॥

यहां से मनछापुलि का मार्ग मन के अनुमान से पांचसौ कोस अर्थात् तीन मास का मार्ग सब कहते हैं ॥ २ ॥

द्वादश दिन जब पथ चले, गिरी बन गहन मभार ।

पंचसैमती कोश चलि, तब आये हरद्वार ॥ ३ ॥

पहाड़ों और घने जङ्गलों के बीच से बारह दिन जब चल चुके, तो पचहत्तर कोस चलने के उपरांत हरिद्वार आये । हरिद्वार को 'मायापुरी' कहते हैं ॥ ३ ॥

चोपाई.

वां दिन पंच मुकामहि कीने, पुनि हस्तिनापुरी पथ लीने ।

बां बिचमें इक अरन्य आयो, निशा प्रवास करन मन भायो ॥

चलत चलत अध रेनि बिहाई, पंथिक मंडलि सन्मुख आई ।

कृष्ण निशा नहि शशि नभ मांही, तरु संघट पथ स्रभत नांही ॥

कित पूरव कित पच्छिम होई, वह पंथिक नहि जानत कोई ।

हे उनकूं दच्छिन दिश जाने, पुनि उत्तर पथ लीन अजाने ॥

सागरपें बूझ्यो इन जबही, भूल गये दिश जान्यो तबही ।

उलट चली दो जोजन आये, पंथिक वह पुनि पुनि पिछताये ॥

पिछे चले सागरके संग, बात करत उर बढ्यो उमंगा ।

कहे पंथिक सागरपे बानी, दिनकर बिन हम दिशा न जानी ॥ ४ ॥

वहां पांच दिन मुकाम किया फिर हरिनापुर का मार्ग लिया । उसके बीच में एक वन आया । उसमें रात्रि में चलने की इच्छा हुई । चलते २ आधी रात बीती तो सामने एक यात्रियों की मंडली आई । आंधेरी रात थी, आकाश में चन्द्रमा नहीं था और सवन वृक्षों के कारण मार्ग दीखता नहीं था । उन यात्रियों को पूर्व पश्चिम का भी भान न रहा । उन्हें दक्षिण दिशा में जाना था, परन्तु उत्तर का मार्ग लिया । जब उन्होंने सागर से पूछा तो ज्ञात हुआ कि वे दिशा भूल गये हैं । उलटा चलकर वे दो योजन आ गये थे जिससे वह यात्री बार २ पछताने लगे । फिर सागर के साथ चले और बात करते २ आनन्दित हो गए । उन यात्रियों ने सागर से कहा कि सूर्य्य बिना हमें दिशा का ज्ञान नहीं रहा ॥ ४ ॥

दोहा.

नछत्र जाने निधि कहे, तो न दिशा भूलाइ ।

गइ रजनी कितनी घरी, सोई पुनि समजाइ ॥ ५ ॥

तब सागर ने कहा कि नक्षत्र को जो जानता होवे तो वह दिशा नहीं भूल सकता । इतना ही नहीं अपितु वह यह भी जान सकता है कि कितनी घड़ी रात्रि बीती है ॥ ५ ॥

बिनय करी पंथिक कहे, कहहू उडगन नाम ।

तब सागर नछत्रके, कहे कवित तिहि ठाम ॥ ६ ॥

यात्रियों ने बिनयपूर्वक कहा कि नक्षत्रों के नाम बताइये, तब सागर ने नक्षत्रों के नाम का कवित्त वहीं कह सुनाया ॥ ६ ॥

सागरोक्त नछत्र तारा संख्या—कवित्त.

अश्विनी के तीन तारे, तीन तारे भरणी के, कृत्तिकाके खट, रोहिणी के पंच जानिये । तीन मृगशिरषके, आर्द्राको एक पुनि, पुनर्वसु चहु तिहु,

पूर्यके प्रमानिये । अश्लेषाके पंच शुभ, मंधाके मंजुल पंच, पूरवा उत्तरा दोनुं, दोनुं पहिचानिये । हस्तके पंच चित्रा, स्वाति हूको एक एक, विषाखा के वेद अनु, राधां वेद आनिये ॥ ७ ॥

अश्विनी के तीन तारे हैं, भरणी के भी तीन तारे हैं, कृत्तिका के छः और रोहिणी के पांच तारे हैं । मृगशिरा के तीन, आर्द्रा का एक, पुनर्वसु के चार और पुष्य के तीन तारे हैं । अश्लेषा के पांच और मघा के पांच तथा पूर्वा और उत्तरा के दो २ तारे हैं । हस्त के पांच, चित्रा और स्वाती के एक २, विशाखा के चार और अनुराधा के भी चार तारे हैं ॥ ७ ॥

कवित्त.

ज्येष्ठा तीन धार मूल, ग्यांर पूर्वाषाढा दोनुं, उत्तराके दोनुं अंभि, जीत तारे तीन हे । अश्विणके तीन पुनी, धनिष्ठाके श्रुति सम, शतभिषा शत तारे, करतारे कीन हे । पूर्वाभाद्रपद दोनुं, उत्तराके उभय हे, रेवतीनें बत्तिश, ललीत तारे लीन हे । सब मिलि दोसैं और, एकबीस उडगन, नछत्र अठाइस, पिछानत प्रवीन हे ॥ ८ ॥

ज्येष्ठा के तीन, मूल के ग्यारह, पूर्वाषाढा के दो, उत्तरा के दो और अभिजित के तीन तारे हैं । अश्विण के तीन, धनिष्ठा के चार, शतभिषा के सौ तारे हैं । पूर्वाभाद्रपद के दो, उत्तरा के दो और रेवती के बत्तीस शुभ तारे हैं । सब मिलाकर दो सौ इक्कीस तारे और अठाइस नछत्र हैं, जिन्हें चतुर लोग जानते हैं ॥ ८ ॥

नछत्र आकार कथन—कवित्त.

अश्वमुख त्रिकोन रु, छुर अरु शकट हे, मृगमुख मनि रुई, बान चक्र मानिये । सदैम मंचक सज्या, पंभा मोती प्रवाल हे, तोरण रु बेलीदान, कुंडल पिछानिये । सिंहपुच्छ गजदंत, मंचक त्रिकोन शुभ, त्रिभुवन मृदंग रु, वतुल ज्यु जानिये । मंचक रु जुगल स्व, रूप और मृदंगहे, नछत्र अठाइस, आकृति उर आनिये ॥ ९ ॥

अश्विनी घोड़ा के मुख के आकार का, भरणी त्रिकोणाकार, कृत्तिका उस्तरे के आकार का, रोहिणी गाड़ी के आकार का, मृगशिरा हरिण के मुखाकार, आर्द्रा हीरा के समान, पुनर्वसु घर के आकार का, पुष्य बाण के आकार का, अश्लेषा चक्र के आकार का, मघा घर के छप्पर के आकार का (उसे गोमूत्रिका के आकार का भी कहते हैं), पूर्वा फाल्गुनी मंचान के आकार का, उत्तरा फाल्गुनी शय्या के आकार का, हस्त पंखा के आकार का, चित्रा मोती के आकार का, स्वाती प्रवाल (मूंगा) के आकार का, विशाखा तोरण के आकार का, अनुराधा का आकार बलिवैश्वदेव के समय बलि देते हैं उस प्रकार का, ज्येष्ठा कुंडल के तीन मोती का जैसा हार होता है उस आकार का, मूल सिंहपुच्छाकार, पूर्वाषाढा हाथी के दो दांतों के आकार का, उत्तराषाढा मंच के आकार का, अभिजित त्रिकोणाकार, श्रवण स्वर्ग, मृत्यु व पाताल की भांति ऊपर नीचे वाले आकार का, धनिष्ठा मृदंग के आकार का, और शतभिष को गोल वृत्ताकार समझना । पूर्वाभाद्रपद बड़े मंच के आकार का, उत्तराभाद्रपद दो तारों के जुड़े हुए के आकार का है, परन्तु इन दो नक्षत्रों के चारों तारे मिलकर बड़े चौक के समान दीखते हैं ? और रेवती बड़े मृदंग के आकार का है । इस प्रकार अठ्ठाईस नक्षत्रों के आकार समझना ॥ ६ ॥

दक्षिणचारी, मध्यचारी तथा उत्तरचारी कथन—कवित्त.

रोहिणी रु मृगशीर, आरद्रा रु हस्त पुनि, चित्रा विषाखा रु अनु, राधा जेष्ठा जानिये । मूल अरु शाढा दोउ, विश कला शतभिषा, बारह सो दच्छनचारी, यों उर आनिये । अश्वी भरनी कृत्तिका, पुनर्वसु फाल्गुनी दो, स्वाति अभिजीत अरु, श्रवन बखानिये । धनिष्ठा दो भाद्रपद, उत्तरचारी हे यह, मध्य पुष्य सार्य मघा, रेवती प्रमानिये ॥ १० ॥

रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, और शतभिषा की बीस कला ये बारह नक्षत्र दक्षिणचारी अर्थात् कुछ दक्षिण की ओर चलते प्रतीत होने वाले हैं, शतभिषा की शेष कला मध्यचारी हैं । अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, पुनर्वसु, पूर्वा फाल्गुनी,

उत्तरा फाल्गुनी, स्वाति, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद, ये बारह नक्षत्र उत्तरचारी हैं, तथा पुष्य, अश्लेषा, मघा व रेवती ये चार मध्यचारी हैं ॥ १० ॥

दोहा.

पेखो मृगाशिरके पीछे, पूर्व दिशा प्रति जेह ।

लुब्धकको तारो ललित, अति चलकत हे एह ॥ ११ ॥

देखो, मृगाशिर के पीछे पूर्व दिशा की ओर सुन्दर लुब्धक तारा है, जो बहुत चमकता है ॥ ११ ॥

सपाद दो नक्षत्रमें, हे मेषादिक राशि ।

ध्रुव तारा उत्तर दिशे, रहे सदैव प्रकाशि ॥ १२ ॥

सवा दो नक्षत्रों में मेष आदिक राशियां रहती हैं, तथा ध्रुव तारा सदा उत्तर दिशा में रहता है ॥ १२ ॥

मघा नक्षत्र उदीत तब, उदित होत रुषि सात ।

कर्क उदित तब दक्षिणे, रुषि अगस्त दरशात ॥ १३ ॥

जब मघा नक्षत्र उदय होता है तो सप्तऋषि भी उदय होते हैं, और जब कर्कराशि उगती है तो अगस्त तारा दिखाई देता है ॥ १३ ॥

कर्कराशिमें मकरमें, नभगंगा लखि लेहु ।

उत्तर दक्षिण बाहिनी, अविलोकहु पुनि एहु ॥ १४ ॥

कर्कराशि व मकरराशि पर आकाश गङ्गा देखिये, जो कि उत्तर दक्षिण-बाहिनी है, इसे भी देखिये ॥ १४ ॥

मंगल आदिक ग्रह जिते, यह ओसर देखात ।

सो सबकुं देखाइके, सागर नाम सुनात ॥ १५ ॥

मंगल आदिक जितने तारे उस समय दिखाई पड़ते थे उन सबों को दिखाकर सागर ने सबके नाम उन्हें सुनाये ॥ १५ ॥

नक्षत्रोपरि मास नाम कथन-छप्पय.

कृत्तिका मृगशिर पुष्य, मघा फाल्गुनि चित्रा पुनि ।
बिशाखा रु जेष्ठा और, वाढा रु श्रवण सुनि ॥
भाद्रपद रु अश्विनी, सोइ नक्षत्रहु बारे ।
बार मासके नाम, एहि ऊपरसे धारे ॥
सो मास पूर्णिमामें शशी, सो नक्षत्र ढिग आवही ।
गत रात्रि मान वह मासमें, सो नक्षत्रते पावही ॥ १६ ॥

कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मंगसर, पुष्य से पौष, मघा से माघ, फाल्गुनी से फाल्गुन, चित्रा से चैत्र, बिशाखा से बैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, अषाढा से आषाढ़, श्रवण से आश्विन, भाद्रपद से भाद्रपद और अश्विनी से आश्विन । इस प्रकार बारह नक्षत्रों से बारहों महीनों के नाम पड़े हैं । जिस मास की पूर्णिमा को चन्द्रमा जिस नक्षत्र के समीप आता है उस नक्षत्र पर से मास का नाम कहा जाता है और कितनी घड़ी रात्रि गई इसका पता भी उस मास के नक्षत्र से लगता है । मतलब यह है कि जिस प्रकार सूर्य को देखकर अनुमान लगाते हैं कि— कितनी घड़ी दिन चढ़ा, उसी प्रकार उस मास के नक्षत्र को देखकर अनुमान किया जा सकता है । यथा कार्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र को देखिये कि आकाश में कितना ऊंचा गया है, और सूर्य की भांति इससे रात्रि का अनुमान लगा लीजिये ॥ १६ ॥

कवित्त.

ऐसें हरद्वारहुसें, चले तीन द्योस तब, शाहरनपुर पंच, बीस कोश आयेहे ।
वासें दोउ दिन चली, आये सो अठारे कोस, मुझफरनगरमें, आई ठहरायेहे ।
वासें दुहु द्योस चली, आयेहे मिरतपुर, सो पुनि अठारे कोश, चले युं
कहायेहे । दोदिने गाजियाबाद, आये बिद्या कोस चली, सात कोस वासें
हस्ति, नापूरीकुं पायेहे ॥ १७ ॥ *

* पाठ-भेद इस प्रकार है:—

पादाकुलक-छंद.

वद्विनाथते द्वादश दीना, गिरि गहवरमांही पयकीना ।
आय तबे हरद्वारहि स्थाना, पंच सप्तमी कोश प्रमाना ॥
१४५

इस प्रकार हरिद्वार से तीन दिन चले तब पचीस कोस पर सहारनपुर पहुंचे । वहां से दो दिन चलकर अठारह कोस पर मुजफ्फरनगर में आकर ठहरे । फिर वहां से दो दिन चलकर अठारह कोस पर भेरठ पहुंचे । वहां से दो दिन में चौदह कोस चलकर गाजियाबाद पहुंचे जहां से कि सात कोस चलकर हस्तिनापुर (दिल्ली) में पहुंच गये ॥ १७ ॥

पंच दिवस पुनि वां ठहरीकें, देव सर्वके दर्श करीकें ।
 तीन दिवस लों चाले वातें, कोश पचीश भले मन भातें ॥
 शाहरनपुर तब पुनि आये, सो सबहि के मनमें भाये ।
 द्विदिने वातें कोश अठारा, मुजफ्फरनगरें आये सारा ॥
 वातें विचरे दो दिन जैसें, भिरतपुरमें आये तैसें ।
 कोस अठारह सोय कहावे, देखत दिलमें मोह उपावे ॥
 दो दिन वातें विचरे जैसें, आय गाजियाबादहि तैसें ।
 चौदह कोश कहावत सोई, लखिकें राजी ह्वे सब कोई ॥
 सात कोश चलि कें पुनि वातें, आय हस्तिनापुरमें सातें ।
 पंच दिवस पुनि वां ठहरीकें, जमनाजलके पान करीकें ॥
 वातें किय दिन पंच प्रयाना, पैतालीस पुनि कोश प्रमाना ।
 आय तब अलवरमें सोई, पेखि पतन अति हर्षित होई ॥
 वातें चलि पटवासर वेही, आय नगर जयपुर में येही ।
 कोश यह अठतालीस जानो, मंजु नगर यह मनमें मानो ॥
 पंच घोस गति वातें कीने, आय किशनगढ़ तब रस भीने ।
 सो पुनि बत्तीस कोश प्रमानो, मारवाड़में सोइ बखानो ॥
 वातें चलि इक दिन नव कोश, अजमेर आय धरि उर हौंस ।
 पुष्कर तीर्थ लसत उन ठामें, पंच दिवस बिरमें पुनि वामें ॥

दोहा.

वां दिन पंच मुकाम करि, किय जुमनाजल स्नान ।

तित बसु गुन भुमि कोस “१३८” पथ, पुष्कर कियो प्रयान ॥ १८ ॥

वहां पर पांच दिन मुकाम किया और यमुना में स्नान किया, वहां से एकसौ अड़तीस कोस पर स्थित पुष्कर के लिए प्रयाण किया ॥ १८ ॥

कवित्त.

दिल्लिहुसैं घोस पंच, आये चले अलवर, प्रान वेद कोस ‘४५’ यह,
पंथको प्रमानहे । वांसैं षट घोस चली, आये जयपुर प्रति, बसु वेद कोस
“४८” पंथ, करिकें प्रयानहे । वांसैं पंच घोस चली, गयेहे किसनगढ़, कहत

बद्रीनाथ से बारह दिन पहाड़ों और जंगलों में यात्रा की, तब हरिद्वार तीर्थ में पचहत्तर कोस पर पहुंचे । वहां पांच दिन ठहरे और सब देवों के दर्शन करके वहां से चले और तीन दिन में पच्चीस कोस चल कर सहारनपुर आये, जो सब को आह्लाददायक था । वहां से दो दिन में अठारह कोस चल कर के सब मुजफ्फरनगर आए । वहां से दो दिन चले और अठारह कोस मार्ग तय करके मेरठ नगर आए, जिसे देख कर सब का मन प्रसन्न हो गया । वहां से दो दिन चले तो गाजियाबाद पहुंचे, जो कि वहां से चौदह कोस कहा जाता है, उसे देख सब प्रसन्न हुए । वहां से सात कोस चल कर बे सातों हस्तिनापुर (दिल्ली) पहुंचे । वहां पांच दिन ठहरे और पवित्र यमुनाजल का पान किया । वहां से चल कर पांच दिन की यात्रा में पैतालीस कोस तय करके अलवर पहुंचे, जिसे देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई । वहां से छः दिन चल कर जयपुर पहुंचे । यह मार्ग अड़तालीस कोस का था । यह नगर महामुन्दर है । वहां से पांच दिन चले तब मनोहर नगर किशनगढ़ में आए, जो वहां से बत्तीस कोस है और मारवाड़ में है । वहां से एक दिन में नौ कोस चल कर चित्त में आकांक्षा लिए हुए अजमेर नगर पहुंचे, जहां कि पुष्करतीर्थ है । पांच दिन वहां विश्राम किया ॥

छैंतीस कोस, जानत सुजानहे । एक घोस चली नव, कोस अजमेर आये,
पुष्कर तीरथ जिहां, पवित्र संस्थानहे ॥ १६ ॥

दिल्ली से पांच दिन चलकर अलवर आये जो कि ४५ कोस की दूरी पर है । वहां से छः दिन चलकर और अड़तालीस कोस का मार्ग पूरा कर जयपुर पहुंचे । वहां से पांच दिन चलकर किशनगढ़ पहुंचे जो कि छत्तीस कोस है, ऐसा चतुर लोग जानते हैं । फिर एक दिन में नौ कोस चलकर अजमेर आये जहां पर कि पवित्र पुष्करराज तीर्थस्थान है ॥ १६ ॥

चामर छंद.

पंच घोस बां रही पुनि करी त्वरा चले । कोस '६५' बान भक्ति मान
आय अर्बुदाचले ॥ पच्छ एक पंथमें बहाय आयहे तिते । अर्बुदा भवाँनि शंभु
अचलेश हे जिते ॥ घोस दो रही चले जबेहि शास्त्र जोजनं । आय सिद्ध-
क्षेत्र तीर्थ स्नानके प्रयोजनं ॥ चार घोस पंथमें चलंत बां बिती गये । पंच
घोस बां रही सु देव दर्शनं किये ॥ फेर अष्ट जोजनं चली रखी सु यादमें ।
चार घोस सें गये अहंमदाहिवादमें ॥ बार जोजनं रही पूरी प्रबान बासकी ।
आय तीत पूर्णिमा भई ज्यु पोसमासकी ॥ शास्त्र संख्य घोस सोइ बाटमें
बिहाइकें । पूर्न मोद पाय सो पुरी प्रसिद्ध पाइकें ॥ २० ॥*

पांच दिन वहां रहे और फिर जल्दी करके वहां से खाना होकर पचानवें कोस का मार्ग काटा, और मार्ग में एक पक्ष बिताकर आबूजी पहुंचे, जहां अर्बुदा

पाठान्तर इस प्रकार है:—

चोपाई.

पुष्करतें पुनि सत्वर धाय, पक्ष एक मग मांहि बिताय ।
अर्बुद गिरिपें आये सोय, कोस पचानवे बातें होय ॥
दो दिन ठहरीकें वा देश, किय दर्शन अंबा अचलेश ।
बातें चाली चौबीस कोस, मगें बिताइ चार हि घोस ॥
सिद्धपूरमें सबही आय, नेह धरीकें नदिमें न्हाय ।

भवानी तथा अचलेश्वर महादेव हैं । वहां दो दिन रहकर वहां से छः योजन (चौबीस कोस) चलकर तीर्थ में स्नान करने के प्रयोजन से सिद्धपुर पहुंचे । मार्ग में चलते चार दिन लग गये और पांच दिन वहां रहकर देव-दर्शन किया, फिर आठ योजन या बत्तीस कोस चलकर चार दिन में अहमदाबाद गये, जहां से प्रवीण के रहने का स्थान मनछापुरी अड़तालीस कोस रहा । पौष महीना की पूर्णिमा आई तब मनछापुरी में पहुंचे । रास्ते में छः दिन बिताकर उस प्रसिद्ध पुरी को प्राप्त किया, जिससे पूर्ण प्रसन्नता हुई ॥ २० ॥

दोहा.

सायं समय भयो जबे, तब आये तिहि ठाम ।

सातों संन्यासी किये, नृप आराम मुकाम ॥ २१ ॥

जब संध्या हुई तब उस स्थान पर पहुंचे और सातों संन्यासियों ने राजा के वाग में मुकाम किया ॥ २१ ॥

सोरठा—पतन प्रविन आराम, उतरे थे आगें जहां ।

कीने बांंहि मुकाम, सांझ समे पुनि आईकें ॥ २२ ॥

वां विरमीकें पांचहि दीन, सर्व देवके दर्शन कीन ॥

वातें चाले जोजन अष्ट, चार दिवसलों भोगी कष्ट ।

आय अहमदाबादहि सोय, विरमे वासर पुनि वां दोग ॥

वातें चालीकें षट घोस, आय पुनि अड़तालीश कोस ।

पाय तबे परबीनके गाम, मनछापुरी जेह ललाम ॥

पुष्कर से फिर जल्दी चल कर एक पक्ष यात्रा करके आबूजी पहुंचे जो कि वहां से पचानवे कोस है । वहां दो दिन ठहरे और शम्बा तथा अचलेश्वर का दर्शन किया । वहां से चौबीस कोस चल कर चार दिन में सिद्धपुर पहुंचे, जहां प्रेमपूर्वक नदी में स्नान किया, और पांच दिन वहां ठहर कर सब देवों के दर्शन किए । वहां से आठ योजन (बत्तीस कोस) चलकर चार दिन कष्ट सहन कर अहमदाबाद पहुंचे, जहां कि दो दिन विश्राम किया । वहां से छः दिन में अड़तालीस कोस चले, तब प्रवीण के ग्राम मनछापुरी पहुंचे, जो महासुन्दर नगर है ॥

प्रवीण के बाग में जहाँ कि पहिले आकर उतरे थे, सन्ध्या के समय फिर वहीं आकर विश्राम किया ॥ २२ ॥

आंतापन्हति अलंकार—कवित्त.

सागर कहत प्रिय, मित्र पेखो पूर प्रति, जगमेग चंद्रबिंब, जेसो रूप जीनको । भरुखातें भांखतीहे, इत प्रानप्रिया मेरी, तातें तिहि दिशा प्रति, दीसे मुख तीनको । रुदन कियेसैं नेन, कज्जर बहायो तातें, दिसे यह श्याम दाग, आननमें इनको । एसैं सुनि उत्तर यों, भाखत भारतीनंद, वह बिधुबिंब नांहि, बदन प्रवीनको ॥ २३ ॥

सागर कहते हैं कि हे मित्र ! नगर की ओर देखो कि जिसका रूप चन्द्र-मण्डल की भांति जगमगा रहा है । वह मेरी प्राणप्रिया भरुखा में देख रही है जिससे उस दिशा में उसका मुख दिग्वाई पड़ रहा है । रुदन करने से आंख का काजल ढलक गया है जिसमे उसके मुख पर यह काली रेखा दीखती है । यह सुनकर भारतीनन्द ने कहा कि यह तो चन्द्रमण्डल है, प्रवीण का मुख नहीं !!! ॥ २३ ॥

हरिगीत छन्द.

मिलि मित्र साते बाग मांही, रात बिताइ बातमें ।
तब मालिनी फुल लेन जांही, प्रेम धरिकें प्रातमें ॥
उन पेखि योगी परखि लीने, आयथे आगे वही ।
इमि जान ऊरें जाय नेरे, वन्दना कीनी जही ॥
तब एक बोले मन्द हसिकें, कुशलहो तुम अंगमें ।
हम आय इतही अब्द एकें, स्नान करिकें गंगमें ॥
महिपाल आदिक कुशलहैं सब, लोक येही गामके ।
पुनि कुशलहेतन कुसुमके अरु, सर्व उनके धामके ॥
तुम जाव उनकी पासतो, असीस हमारी कीजियो ।

हम आयेहे चल जायंगे कल, खबर येही दीजियो ॥
 तब मालिनी मुख बोली ऐमें, बात कहुं सब जायकें ।
 फिर सोय कहिगे बेहि तुमकों, सर्व कहुंगी आयकें ॥
 इमि बोलि मुखतें मालिनी गइ, सुमन ले दरबारमें ।
 जब जाय नवमी देहरी, तब कुसुम आ उन द्वारमें ॥
 सब मालिनीके फूल लेकें, आपचलि अंदर जहीं ।
 तब योगि सातों आवने की, बात सरवे उन कहीं ॥ २४ ॥*

सातों मित्रों ने मिलकर बातें करते बाग में रात बिताई । प्रातःकाल मालिन प्रेम-पूर्वक फूल लेने आई, उसने देख कर योगियों को पहिचान लिया, कि पहिले भी ये आये थे । ऐसा जान समीप जाकर उन्हें वन्दन किया, तब उनमें से एक ने मंद मुस्करा कर पूछा 'तुम शरीर से कुशल तो हो न ? हम गंगा-स्नान करके एक वर्ष बाद यहां आये हैं । महाराजा तथा ग्राम के सब लोग कुशलपूर्वक हैं ? कुसुमावलि का शरीर तो आनन्द में है ? उनके घर के सब कुशल से हैं ? तुम

ॐ पाठान्तर इस प्रकार है:—

छन्द भुजंगप्रयात.

मिली मीत सातोहि चर्चा चलाई, रही बागमें रेन सारी बिताई ।
 प्रभाते पुनी मालिनीकुं बुलाई, कुसुमं प्रती ताहि बेगे पठाई ॥
 वहां मालिनी जाय संदेश दीनो, कुसुमं सुनी ऊर आनंद लीनो ।
 प्रबीनं प्रती ब्रह्मनी बात खोली, तब सो कुसुमं प्रती यौहि बोली ॥
 कहो बंदना बागमें जाय मेरी, दशा मेरि ताऊं कहेनां सबेरी ।
 अबे पानिमें लेखिनी नां ग्रहाती, प्रियंमित्र प्रत्ये लिखों कैसैं पाती ॥
 पुनी हंसको चित्र ब्रह्मीकुं दीनो, निधीकुं सु देहु मुखे यूंहि कीनो ।
 निधीकों मिली मुख संदेश ल्याओ, वहां जायके अत्रही सद्य आओ ॥
 चढी चक्रिपें सो कुसुमं सिधाई, निधी पास उद्यानमें आप आई ॥

उनके पास जाओ तो हमारी असीस कहना और उन्हें सूचना देना कि हम यहां आए हैं और कल चले जावेंगे।' तब मालिन ने कहा कि मैं जाकर सब बात कहूंगी और फिर वे जो कुछ कहेंगी वह यहां आकर कहूंगी। ऐसा कहकर मालिन सुमन (फूल) लेकर द्वार में गई। जब नवमी देहरी पर पहुंची तो कुसुमावलि ने आकर मालिन से फूल ले लिये और स्वयं अन्दर जाने लगी। जब अन्दर चली तब मालिन ने सातों योगियों के आने की सब बात उससे कही ॥ २४ ॥

दोहा—सोय मुनी कुसुमावली, किय मालिनकों वाय ।

हम आवत उन दरसकों, कहो योगिकों जाय ॥ २५ ॥

यह सुनकर कुसुमावलि ने मालिन को कहा कि योगियों को जाकर कहो कि हम उनके दर्शन को आते हैं ॥ २५ ॥

यों उचरी रनवास जा, कही प्रबिनकों बात ।

सागर आये कलइतें, हमकों सोय बुलात ॥ २६ ॥

ऐसा कह कर, और रनिवास में जाकर प्रवीण को कहा कि सागर कल से यहां आए हैं और हमको बुलाते हैं ॥ २६ ॥

इस प्रकार सातों मित्रों ने मिलकर चर्चा चलाई और उस बाग में रहकर रात व्यतीत की। फिर प्रातःकाल मालिन को बुलाकर उसे शीघ्र कुसुमावलि के पास भेजा। मालिन ने जाकर वहां संदेश दिया जिसे सुनकर कुसुमावलि मन में आनन्दित हुई और उस ब्रह्मकुमारी ने प्रवीण के पास जाकर सब विदित किया। तब प्रवीण ने कुसुमावलि से कहा कि तुम बाग में जाकर हमारी वन्दना कहना, और हे सखी ! मेरी सब दशा उनसे कहना। मेरे हाथ से लेखनी नहीं पकड़ी जाती, इसलिए प्रिय मित्र के लिए पत्र किस प्रकार लिखूं ? ऐसा कहकर एक हंस का चित्र उस ब्राह्मणी को दिया और जबानी कहा कि इसे सागर को देना। सागर से मिलकर उनके मुख से सन्देश ले आना। वहां जाओ और पीछे जल्दी यहीं आना। तब कुसुमावलि रथ में बैठकर गई और बाग में सागर के पास पहुंची ॥

तोटक छन्द.

सुनि सागर आवन बात जवे, मन मोदित है परवीन तवे ।
 अति फूल गइ तन दा छिनमें, नहि गात समातहि चोलिनमें ॥
 तनु सात्विक भाव भये तवही, अति रोम उठें वपुमें सबही ।
 बदले पुनि रंग सवे तनके, पुनि काय छुटे कन स्वेदनके ॥
 हृदके असुवां द्रग आय रहे, कलु कंपनता निज काय लहे ।
 तुतरान लगे मुख बोलनतें, तब शैन करे द्रग लोलनतें ॥
 कुसुमावलिकों समुझाइ तवे, नहि शुद्धि रही तन आप जवे ।
 तुम जाइ वहां हम हाल भँखो, हम क्यों करिकें अब पत्र लखों ॥
 हमरे करि बंदन सागरकों, कहियो लिख भेजन कागरकों ।
 मनुहार करी कहियो ठहरे, लिखिगे हम पत्र मिटे कहरे ॥
 कहियो हम हाल सबे दिनके, पुनि आई सँदेश कहो इनके ।
 सुनि चकि चढ़ी कुसुमा विचरी, जित सागरहे उत जा उतरी ॥ २७ ॥

जब प्रवीण ने सागर के आने की बात सुनी तो मनमें अति प्रसन्न हुई । शरीर प्रसन्नता से फूल गया और अंग वस्त्रों में नहीं समाने लगा । शरीर में सात्विक भाव हो गया और उसमें रोमांच हो गया । शरीर का सारा रंग बदल गया और पसीने के बूंद टपकने लगे । प्रसन्नता के आंसू आंखों में आगए, शरीर में कंपन होने लगा, मुख की वाणी में तोतलापन आ गया, और चंचल नेत्रों से इशारा करने लगी । इस प्रकार जब शरीर बेकाबू होने लगा तो कुसुमावलि को इशारे से समझाने लगी कि तुम वहां जाकर हमारा हाल कहो । हम अब पत्र कैसे लिखें ? सागर को हमारी वन्दना कहकर पत्र भेजने के लिए कहना । उनसे ठहरने के लिए मनुहार करना, तब जब कि मेरी पीड़ा मिटेगी मैं पत्र लिखूंगी । मेरा सब दिन का गुजरा हाल उनसे कहना और फिर लौटकर उनके सन्देश हमें सुनाना । यह सुनकर कुसुमावलि रथ पर चढ़कर चली, और जहां सागर थे वहां जाकर उतरी ॥ २७ ॥

दोहा.

आय योगिपैं मालिनी, आवन कुसुम सुनाय ।

पाछें फिरि त्यों कुसुम रथ, सागर सानिध आय ॥ २८ ॥

योगी के पास मालिन ने आकर कुसुमावलि के आने का समाचार दिया और लौटने लगी कि इतने में ही कुसुमावलि का रथ सागर के समीप पहुंच गया ॥ २८ ॥

कुसुम आय सागर कर्ने, अति दीनी आशीश ।

स्नेह सहित तब सागरें, निरखी नमाये शीश ॥ २९ ॥*

कुसुमावलि ने सागर के पास आकर बहुत आशीर्वाद दिया । तब सागर ने स्नेह के साथ देखकर शिर झुकाया ॥ २९ ॥

सागरकों तब स्नेहतें, कुशल बूझि कें काय ।

प्रेम धरी परबीनके, सब संदेश सुनाय ॥ ३० ॥

स्नेहपूर्वक सागर के शरीर की कुशलता पूछ कर प्रेमपूर्वक प्रवीण का सब सन्देश सुनाया ॥ ३० ॥

सागरने तब स्नेहतें, बूझे हाल प्रबीन ।

बलेशसहित कुसुमें तहां, यथायोग्य सब कीन ॥ ३१ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कुसुमें आशीषा कही, तब निधि किये प्रनाम ।

कुसुमें बूझी कुशलता, सागरकुं तिहि ठाम ॥

कुसुमावलि ने सागर को आशीर्वाद दिया तब सागर ने उसे प्रणाम किया और तब कुसुमावलि ने सागर की कुशलता पूछी ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कहि निधिये निज कुशलता, बूझि प्राबिनकी गाथ ।

चित्र हंसको तब उने, दियो निधीके हाथ ॥

तब सागर ने स्नेहपूर्वक प्रवीण का हाल पूछा, और कुसुमावलि ने दुःख के साथ यथायोग्य सब वर्णन किया ॥ ३१ ॥

सागर सुनि सो कानमें, उरमें बनी उदास ।

आह उचारी आस्यतें, डारे दीर्घ निसास ॥ ३२ ॥*

कानों से सब बातें सुनकर सागर हृदय में उदास हो गए और मुख से 'आह' उच्चारण कर उसासें छोड़ने लगे ॥ ३२ ॥

कहने लगे पुनि कुसुमकों, अब नहीं अमित विलंब ।

प्रभानाथतें प्रसन्न भे, शंकर अरु जगदंब ॥ ३३ ॥

फिर कुसुमावलि से कहने लगे कि अब कोई विलम्ब नहीं है । प्रभानाथ से भगवान शंकर और माता जगदम्बा प्रसन्न हो गये हैं ॥ ३३ ॥

यों कहि आदी अंतलों, बात कही विस्तार ।

महारात्रिके प्रातमें, हे अपनो उद्धार ॥ ३४ ॥

इतना कह कर आदि से अन्त तक सब बातें विस्तारपूर्वक कहीं, और बतलाया कि शिवरात्रि के प्रातःकाल में अपना उद्धार होगा ॥ ३४ ॥

सागर ने अपनी कुशलता कह कर प्रवीण के समाचार पूछे, तब कुसुमावलि ने हंस का चित्र सागर के हाथ में दिया ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कही दशा पुनि प्रबिनकी, निधि सुनि भये उदास ।

हंस उपरि धरि मदनफल, दियो कुसुम कर तास ॥

और प्रवीण की सब दशा कही जिसे सुनकर सागर अति उदास हुए, तब उन्होंने हंस के ऊपर मदनफल धर कर कुसुमावलि के हाथ में दिया ॥

दोहा-कहो पुनी हम जायँगे, नैनतरंग शिव थान ।

शिवरात्री पर सो स्थले, आवै कहहु सुजान ॥ ३५ ॥*

फिर कहा कि हम नैनतरंग शिवस्थानक पर जावेंगे । प्रवीण को कहना कि शिवरात्रि के अवसर पर वहां आवे ॥ ३५ ॥

भोर भये हम जायगें, इततें उतही स्थान ।

सज्ज करन सब साजकों, थोरे दिन अब जान ॥ ३६ ॥

सबेरा होते ही हम यहां से वहां जावेंगे, क्योंकि अब थोड़ा ही समय रहा है, वहां सब तैयारी करेंगे ॥ ३६ ॥

रजा लेई तब रायकी, कुसुम आय दरबार ।

प्रेम धरी परबीनकों, बात कही बिस्तार ॥ ३७ ॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

यातें यह उर राखिकें, उरमें धारि उमंग ।

आयो सब उन अबधिपें, नीके नैनतरंग ॥

इसलिए इस बात को हृदय में रख और प्रसन्नचित्त होकर उस अवसर पर सब सुन्दर नैनतरंग में आना ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

ब्रह्मी आयस मांगिकें, गई प्रबीन हजूर ॥

दियो हंस पुनि मदनफल, सुजान समजी ऊर ॥

ब्राह्मणी आज्ञा लेकर प्रवीण के पास गई और हंस तथा मदनफल उसे दिये, जिसका तात्पर्य प्रवीण ने हृदय में समझ लिया ॥

कुसुमें पुनी प्रबीनकों, कहि सागर की बान ।

शिवरात्री पर शिव-सदन, आनां करी प्रयान ॥

कुसुमावलि ने फिर प्रवीण को सागर का सन्देश सुनाया कि प्रयाण कर शिवरात्रि पर शिवमंदिर में आना ॥

तब कुसुमावलि सागर की आझा लेकर दर्बार में आई और प्रेमपूर्वक सारी बातें विस्तार के साथ प्रवीण को कहीं ॥ ३७ ॥

दोहा.

मुदित बनी महादेवमें, औधि किये शिवरात ।
उसदिन जाना आपने, नैनतरंग अवदात ॥ ३८ ॥

महादेवजी ने शिवरात्रि की अवधि दी है, यह जानकर प्रवीण बहुत प्रसन्न हुई और निश्चित किया कि उस दिन निश्चितरूप से अपने को नैनतरंग आम्ना है ॥ ३८ ॥

भव भेजेंगे भावतें, वा दिन वांछि विमान ।
वामें चढ़िकें सर्वकों, जानाहे शिवस्थान ॥ ३९ ॥

श्री महादेवजी उस दिन वहां पर प्रेमपूर्वक विमान भेजेंगे, जिनमें चढ़कर हम सबका शिवजी के स्थान जाना है ॥ ३९ ॥

सो सुनिकें परबीन मन, शिवनिशि राह निहार ।
शिव पंचाक्षर मंत्रकों, करती आस्य उच्चार ॥ ४० ॥

यह सुनकर प्रवीण शिवरात्रि की बात देखने लगी और बराबर शिव पंचाक्षर मंत्र का जाप करती रही ॥ ४० ॥

सोरठा.

सखियों कहे सुजान, कुसुमावलि मोकुं कहे ।
अब शिवरात्री आन, कितनी घरी बिलंबहे ॥ ४१ ॥

प्रवीण ने कुसुमावलि से पूछा कि हे सखी ! अब शिवरात्रि के आने में कितने दिन हैं, सो मुझे बता ॥ ४१ ॥

चपल चलत नहीं चाल, सूरज पुनि भुज शत्रु भो ।
बीतत जब वह काल, तब कछु काटत गगन पथ ॥ ४२ ॥

यह सूरज भी मेरा शत्रु हो रहा है जो जल्दी २ नहीं चलता, जब बहुत समय हो जाता है तब गगन में थोड़ासा मार्ग चलता है ॥ ४२ ॥

सोरठा—रूहे कुसुम सुनि बात, सदा चले रवि सम गती ।

दुख सुखमें देखात, जुग सम पल सम दिवस सो ॥ ४३ ॥

कुसुमावली ने कहा कि हे सखी ! सूर्य तो सदा समान गति से ही चलता है, परन्तु दुख और सुख में एक २ पल युग के समान और दिन पल के समान प्रतीत होता है ॥ ४३ ॥

गाहा.

निधी बद्रिकाश्रमते, मनछापुरिके उदान आगमनं ।

द्वयअशीति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनमागरो लहरं ॥ ४४ ॥

बद्रिकाश्रम से सागर का मनछापुरी के उद्यान को आना, इस वर्णनवाली प्रवीणसागर की यह बयासीवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४४ ॥



❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

गाहा.

औधि पाय शिवरात्री, बद्रिकाश्रमते मनछापुर आयें ।

द्वय अशीति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥

शिवरात्रि की अवधि पाकर बद्रिकाश्रम से मनछापुरी आने के वर्णन : प्रवीणसागर की यह बयासीवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥

८३ वीं लहर

सागरादि-कैलासवास-करन प्रसंग-छन्द तोटक.

बह भीत चले मनछापुरसें, गय नैनतरंग मुदा उरसें । शिवकुं धरि स्नेह प्रनाम किया, शिवपूजक आशिरवाद दिया ॥ तब सागर बूझत ताहि अहो, कुशलाइ सु नेहपुरीके कहो । सुनि पूजक यों मुखसें उचरे, जबतें तुम जोगि भई बिचरे ॥ तुम मात रु तात उदासि भये, जनुं पंखिनकी तनु पंख गये । स्वजनो सब अंतर शोक धरे, बहु चंद्रकलाहि बिलाप करे ॥ दिलगीर प्रजाजन सर्व दिसै, दुःख नां बिसरे यह घोस निसै । पुनि एक उछाहाकि बात भई, छितिमें तिनसें खुशि बोत छई ॥ बिचरे चहु मास भये जबही, सुत चंद्रकला प्रमव्यो तबही । उनसें सब ठोर उछाह भयो, पुनि नाम तिहि प्रजपाल ठयो ॥ सुनि सातहु मित मुदीत भये, इनकों तब मौक्तिक माल दये । पुनि बागहि जाय मुकाम कियो, शिवमंत्रहि साधन धारि लियो ॥ १ ॥ *

वे मित्र मनछापुरी से मन में अति सुदित हो नैनतरंग को गए । वहां स्नेहपूर्वक शिव को प्रणाम किया और शिवजी के पुजारी ने आशीर्वाद दिया । तब सागर ने उन से नेहनगर के कुशल-समाचार पूछे । यह सुन कर पुजारी ने कहा कि जब से तुम योगी बन कर चले गए तुम्हारे माता पिता अति उदास हो रहे हैं जैसे पंखी के पंख टूट गए हों । सब स्वजन भी शोकाकुल हैं, राणी चन्द्रकला भी अति विलाप करती है । चारों ओर सब प्रजा

* पाठान्तर इस प्रकार है—

प्रवीण-सागरादिक-कैलासवासकरन प्रसंग-चोपाई.

प्रात भये मनछापुरि मांय, नैनतरंग मग सातो धाय ।
थोरे दिनतें सोइ जाय, जित शङ्करके स्थान सुहाय ॥
आय उग्रकों वंदन कीन, अर्चकने तब आशिश दीन ।
सागरनें तब बूझी बात, कहो सु नेहनगर कुशलात ॥

खिन्नमन है। रात-दिन दुःख भुलाये से नहीं भूलता। फिर एक प्रसन्नता की बात हुई जिससे पृथ्वी पर खुशी छा गई। वह यह कि जब आप लोगों को गये हुए चार मास हुए तब चन्द्रकला ने पुत्र को जन्म दिया, इससे चारों ओर उन्साह हो गया। शिशु का नाम प्रजापाल रक्खा है। यह सुन कर सातों मित्र प्रसन्न हुए और पुजारी को मोती की माला दी। फिर बाग में जाकर मुकाम किया और शिवमंत्र की साधना में लीन होने का निश्चय किया ॥ १ ॥

अर्चकने तब कीनी बात, योगी हूँ जब गे तुम सात ।
तबहीतें तुम्हरे पितु मात, कष्टसहतहे अति निज गात ॥
भोजन भुक्त करे इक बार, तुम आवक आशा उर धार ।
पल प्रति डारे दीर्घ निसास, रहत सदा उर आप उदास ॥
तैसे चंद्रकला दिन रात, बहुधा वपुमांही बिलपात ।
और सबे तुम्हरे परिवार, शोक करत हे चित्त अपार ॥
सर्व प्रजा पुनि हूँ दिलगीर, याद करी द्रग लावत नीर ।
योहि करत जब गे चहुमास, रैयत सबही रहत उदास ॥
ऐसेमें इक भो आनंद, शशीकलाने जायो नंद ।
तातें तोष सबे तनु पाय, किंचित दुख तुम्हरे बिसराय ॥
सोय सुनीकें सातों भित्त, प्रसन्न भये अति अपने चित्त ।
उनकों दी तब मोती माल, उतरे जा निज बाग विशाल ॥
जान भये यह सरये लोक, आय तिहां तब थोके थोके ।
प्रणिधि पठाय रजा ले राज, नेहनगर शुद्धि देने काज ॥

मनझापुरी में सबेरा होते ही सातों मित्र नैनतरंग के मार्ग पर लगे। थोड़ा दिन चल कर वे वहां पहुंचे जहाँ शंकर का मंदिर था। वहां पहुंच कर शंकर की वंदना की और पुजारी ने आशीष दिया। तब सागर ने पुजारी से नेहनगर का कुशल-समाचार पूछा। पुजारी ने कहा कि जब तुम सातों योगी होकर चले गए तब से तुम्हारे माता-पिता अति कष्ट सहन करते हैं। तुम्हारे आने की आशा में एक बार ही भोजन करते हैं, प्रत्येक पल में दीर्घ-निश्वास डालते तथा हृदय में सदा उदास रहते हैं, इसी प्रकार चन्द्रकला रात-दिन रोती रहती है। तुम्हारे

विनोक्ति अलंकार—सवैया.

ध्यान प्रवीनहुको उर धारत, गान प्रवीनहुके गुन गावे ।
कान प्रवीन बिना न सुने कुछ, तान प्रवीनहुसँ ज्यु मिलावे ।
खान प्रवीन बिना नहि भावत, पान प्रवीन बिना नहि खावे ।
स्थान प्रवीनहुको सुमिरे उर, भान प्रवीन बिना भूल जावे ॥ २ ॥

हृदय में प्रवीण का ही ध्यान धरते हैं, गान में प्रवीण के ही गुण गाते हैं, कानों से प्रवीण के सिवाय और कुछ नहीं सुनते और तान भी प्रवीण में ही मिलाते हैं । प्रवीण के बिना खाना भी नहीं भाता तथा प्रवीण के बिना पान भी नहीं खावे हैं । हृदय में प्रवीण के ही स्थान का स्मरण करते रहते हैं, और प्रवीण के बिना शरीर का भान भी भूल जाते हैं ॥ २ ॥

कवित्त.

पूजाकारै पूतकुं, पठायो नेहपुर प्रति, बधाई सुनाई जाई, सागरके तातकुं ।
ताकुं सिरपाव दियो, अधिक उत्सव कियो, बांटी बोट साकर, शहरजन
प्रातकुं । तोरन बंधाई धुजा, पताका पुनि चढाई, दान दिये दुज भाट, चारनादि
जातकुं । सेना सजी पुरजन, सहित तरंगनेन, आये स्नेहे मिलन सो, सागर
साक्षातकुं ॥ ३ ॥ ❀

परिवार के और सब लोग भी चित्त में अपार शोक करते हैं । सारी प्रजा भी चित्त में उदास हो तुम्हें याद करके नैनो से नीर बहाती है । इस प्रकार जब प्रजादिक के उदास रहते चार मास बीत गए तो एक आनन्द की बात हुई और चन्द्रकला के पुत्र उत्पन्न हुआ । इससे सबको कुछ संतोष हुआ और तुम्हारा दुख कुछ २ भूल गए । यह सुन कर सारों मित्र अपने २ चित्त में अति प्रसन्न हुए और उसे मोती-माला भेंट में दी तथा अपने बड़े बाग में जाकर उतर गये । जब यह बात सबों को मालूम हुई तो झुंड के झुंड लोग आने लगे । फिर महाराज सागर की अनुमति ले नेहनगर में खबर करने के लिए एक दूत भेजा ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है—

दोहा—प्रणिधी पहुंची प्रेमतेँ, नेहनगर के मांय ।

सागरके पितु मातकों, सागर आय सुनाय ॥

पुजारी ने अपने पुत्र को नेहपुर भेजा । उसने जाकर सागर के पिता को बधाई (शुभ संवाद) सुनाई । उसे महाराज ने सिरोंपाव (इनाम) दिया, बड़ा भारी उत्सव किया और नगर-निवासियों को बहुतसी शकर (मिठाई) बांटी । नगर में तोरण, ध्वजा-पताकाएं और बंदनवारें लगाई गईं तथा ब्राह्मणों और भाट-चारणादि को दान दिया । तदनन्तर सेना सजा कर नगर-निवासियों सहित स्नेह के साथ सागर से साक्षात् मिलने के लिए नैनतरंग आए ॥ ३ ॥

दोहा.

सागरकी माता पुनी, मंत्रिनके समुदाय ।
सुत जुत आई शशिकला, पेखि महा मुद पाय ॥ ४ ॥

फिर सागर की माता, मंत्रियों के समुदाय तथा अपने पुत्र सहित शशिकला ये सब सागर के पास आये और उसे देख कर महा प्रसुदित हुए ॥ ४ ॥

दूत प्रेम के साथ नेहनगर पहुँचा, और सागर के माता-पिता को सागर के आने का समाचार सुनाया ॥

तोटक छन्द.

सुधि सागरकी पितु मात सुनी, मनमें मुदता प्रगटी दुगुनी ।
सरपाव दिये उनकों उमदा, बनि चंद्रकला सुनिकें समुदा ॥
अति उत्सव कीय सु हर्ष धरी, बहु बांटी वहां उरमें मिसरी ।
पुनि दीननकों अति दान दिये, प्रति द्वारन तोरन बांध लिये ॥
सब लोक अशोक भये मनमें, सुनि चारु बधाइ नृपांगनमें ।
सजि सैन चले परिवार सबे, लिय चंद्रकला सुत साथ तबे ॥
पुनि प्रेम धरी अति आप दिले, कितने उर लोकहि साथ चले ।
करतें दर मज्जल आय तहां, जित सागरके सब साथ रहा ॥
मिलि सागरकों परिवार सबे, मनमोद महा पुनि पाय तबे ।
लखि मात पिता सुत चंद्रकला, उपजे उर सागर हर्ष भला ॥
सागर के माता-पिता ने जब सागर की खबर सुनी तो मन में दूनी

भुजंगप्रयात छंद.

कहे सागरकुं सबे जोरि पानी, अगे ज्यों कहीती तुमें ऐसि बानी ।
 बिते हायनं भेख दैहों उतारी, करो सो अबे सत्य बाचा तुमारी ॥
 कह्यो सागरे साधना हे अधूरी, महारात्रिमें होइहे सोइ पूरी ।
 तबे जोगिको भेख हे सो तजेंगे, सुशोभीत सिंगार अंगे सजेंगे ॥
 वहांलौ हमें ठेरिहे ईत ठाउं, महादेव पूजी महासिद्धि पाउं ।
 कही सागरे युं सबेकुं बुझाये, महारात्रिलौं सो सबे वां ठराये ॥
 महारात्रिपे वां बहू संग आवे, तजी पापकुं सो महा पुन्य पावे ।
 प्रबीने पुनी तात प्रत्ये उचारी, वहां जात्रकों जान इच्छा हमारी ॥
 तबे ताहिकुं आयसा दीनि तातें, चली संग सेना लईकें प्रभातें ।
 कुसुमावलीकुं पुनी संग लीनी, बहू दास दासी नृपें संग दीनी ॥
 पितापे पुनी युंहि बोली सुजानां, लियो नेम मैं पाउसैं चालि जानां ।
 धरी यौनिका बोत मर्याद कीनी, युंही शंकर स्थानकी बाट लीनी ॥
 महारात्रि आगे रह्या घोस चारी, सुजानं पहाँची जहां शूलधारी ॥ ५ ॥*

प्रसन्नता उत्पन्न हुई और इनको उमदा सरोपाव (इनाम) दिया । जब चन्द्रकला ने यह समाचार सुना तो बहुत ही प्रसन्न होकर बड़ा उत्सव मनाया, लोगों को मिश्री (मिठाई) बांटी और दीनों को खूब दान दिया । प्रत्येक द्वार पर तोरण बांधे गए और राजमहल में बधाई की ध्वनि सुनकर सब लोग शोकरहित हो गए । सेना सजाकर सब परिवार और चन्द्रकला एवं पुत्र सहित सब चले । और भी कितने ही लोग प्रेमवश अपने आप साथ चले । इस प्रकार मंजिल तह करते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां सागर ने अपने साथियों सहित सुकाम किया था । सब परिवार सागर से मिलकर अति प्रसन्न हुआ और सागर के हृदय में भी माता पिता तथा पुत्रसहित चन्द्रकला को देख कर हर्ष उत्पन्न हुआ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—सागरकों मिलि सर्व जन, कहत करी आदेश ।

पूर्ण भइ तुम औधि अब, सबे उतारो भेष ॥

तब सब लोग हाथ जोड़ कर सागर से कहने लगे कि तुम ने पहिले कहा था कि एक वर्ष के उपरान्त योगी का वेश छोड़ देंगे, सो अब अपनी बात पूरी करो। तब सागर ने कहा कि अभी मेरी साधना अधूरी है, शिवरात्रि को पूरी होगी, तब योगी का वेश छोड़ देंगे और सब सुन्दर शृंगार शरीर पर धारण करेंगे। तब तक मैं यहां ही रहूंगा और महादेव का पूजन करके महासिद्धि प्राप्त करूंगा। ऐसा कह कर सागर ने सबको समझाया और सब लोग तब तक (शिवरात्रि तक) वहीं पर रहे। शिवरात्रि पर वहां बहुतसे लोग आते हैं और पाप से मुक्त

सब लोग सागर से मिलकर प्रणाम कर कहने लगे कि तुम्हारी अवधि अब पूरी हो गई इसलिए अब तुम सब यह वेश उतार दो ॥

अलक छन्द.

भेख उतारनकी सुनि सागर, कहन लगे सबकों रति लाकर। साधनहे हमरोहि अपूरन, शिव निशिके दिन होयेंगे पूरन ॥ वादिन बनिये भेख उतारन, और सजेंगे चारु सिंगारन। वां तक हम बसिये इत ठांवाहि, सिद्धि सुखद उर इच्छित पावहि ॥ यों कहिकें सबकों समुझायहि, रोक लिये उनकों पुनि बांयहि। आप उरें परवीन संभारत, और मुखें शिवमंत्र उचारत ॥

वेश उतारने की सुनकर सागर सब से प्रेमपूर्वक कहने लगे कि हमारा साधन अभी अपूर्ण है, शिवरात्रि को पूर्ण होगा। उस दिन वेश उतार देंगे और पूर्ण सुन्दर शृंगार सजेंगे। तब तक हम यहां ही रहेंगे और मनोवांछित सुखदायक सिद्धि प्राप्त करेंगे। ऐसे कहकर सबको समझाया और सब को वहां ही रोक लिया। आप हृदय में प्रवीण का ध्यान धरते हुए मुख से शिव-मन्त्र का जाप करने लगे ॥

दोहा—महस करत शिवरात्रिमें, सागर नेनतरंग ।

सोय सुनी उत आत जन, उरमें धरी उमंग ॥

सागर नेनतरंग ग्राम में शिवरात्रि महोत्सव कर रहे हैं, यह समाचार सुनकर लोग हृदय में उमंग धारण कर वहां आने लगे ॥

हो पुण्य लाभ करते हैं । प्रवीण ने भी अपने पिता से कहा कि नैनतरंग की यात्रा की मेरी इच्छा है । पिता ने उसे अनुमति दी, तब सेना साथ ले सबेरे वहां से चली और कुसुमावलि को भी साथ लिया । महाराज ने अनेक दास दासियों को भी साथ में कर दिया । प्रवीण ने पिता से कहा कि मैंने पैदल चलने का व्रत ले रक्खा है इसलिए सवारी पर नहीं जाऊंगी । तब महाराज ने मार्ग में कनात लगावा कर अदब का प्रबन्ध कर दिया । इस प्रकार प्रवीण ने शिवमंदिर का रास्ता लिया, और जब चार दिन रहे तब शिवमंदिर के स्थान पर पहुंची ॥ ५ ॥

भुजंगी छन्द.

महारात्रिमें सागरं मोद धारी, करे पूजनं प्रेमतें त्रीपुरारी । यह बात फैली सबे ठौर भारी, सुनी लोक वां आन लगने अपारी ॥ जबे आइ नेरे महारात्रि जानी, प्रवीनें तबे तातसों भांखि वानी । महा होत उद्धर्षनेनं तरंगा, वहां जानकि चित्त मेरे उमंगा ॥ करो शासनं तो हमें वां सिधावे, करी दर्श महादेवके मोद पावे । सुनी सोय आज्ञा दिये तुर्त तातें, चली सैन साथें लइकें प्रभाते ॥ संगमें दास दासी अपारी, लिये कार्यके काजही मंत्रि चारी । लिये पालकी स्पंदनं चारु केते, लिये ब्रह्मकन्या पुनी साथ हेंतें ॥ लइ साज एते चली रुद्रस्थाने, मिलेकों उरें नाम उत्साह ठाने । रहे घोस चारो महा-रात्रि आगें, पहुंचे तबे वां महा प्रेम पागें ॥

महारात्रि में सागर प्रसन्नचित्त हो प्रेम से शिवजी का पूजन करते हैं, यह बात सब जगह फैल गई और वहां पर लोगों की अपार भीड़ आने लगी । जब शिवरात्रि समीप आ गई तब प्रवीण ने अपने पिता से कहा कि नैनतरंग में महा उत्सव हो रहा है, मेरा भी जी वहां जाने को होता है, आप आज्ञा दो तो हम भी वहां जावें और महादेवजी के दर्शन कर आनन्द प्राप्त करें । यह सुनकर उसके पिता जी ने तुरन्त सहमति प्रदान की और प्रातःकाल सेना लेकर प्रवीण चल पड़ी । साथ में अनेक दास दासी ले लिये तथा काम-काज के लिए साथ में चार मंत्री भी लिये । कितने ही अच्छे २ रथ और पालकी लिये और साथ

दोहा.

शिविर तनाइ मुकाम किय, शिवमंदिर तें दूर ।

शिवरात्री आगमनकी, अति उत्कंठा ऊर ॥ ६ ॥*

शिवमंदिर से दूर तम्बू तना कर, शिवरात्रि के आगमन की हृदय में अति उत्कंठा लिये हुये, मुकाम किया ॥ ६ ॥

उपमालंकार—कवित्त.

दुलहनी दुलह ज्यों, दिलमें मुदित दीसै, ज्यों ज्यों पास भासतहि, बासर विवाहको । यों कलाप्रवीन रस, सागर रुदय रीझै, क्या कहूं कथन इन, उरके उत्साहको । नर जानें कबे कर, ग्रहों मेरी नारीहुको, नारी जाने कबे कर, ग्रहों मेरे नाहको । अंबकसे ज्यंबकको, निलय निहारे दोउ, धारे दोउ ध्यान मित्र, मिलनके राहको ॥ ७ ॥*

के लिए ब्रह्मकुमारी कुसुमावलि को भी लिया । यह सब सामान लेकर महादेवजी के स्थानक को चली । पति से मिलने के उत्साह को हृदय में लिए हुए चलते र शिवरात्रि के चार दिवस पूर्व अति प्रेम में पगी हुई वहां पहुंच गई ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

शिवमंदिर सान्निध्यमें, उतरे तम्बू तनाय ।

राह लखत शिवरात्रिकी, उर उत्कंठा लाय ॥

शिवालय के समीप में तम्बू तना कर उतरी और हृदय में उत्कंठा के साथ शिवरात्रि की राह देखने लगी ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

कवित्त.

ज्यों ज्यों निशि आत नेरे, औधिकी अनूप त्यों त्यों, आनंद अमित दोय, चित्तें सरसातहे । जैसे बनी बना लखि, वासर विवाह नेर, आपुसमें उर महा, बासना बढातहे । बना जाने कबे मेरी, बनरीको ग्रहों कर, बनी जाने कबे कर, बनाको ग्रहातहे । तैसें तिहि काल तहां, सागर सुजानहिकों, उमंग अपार महा, उरे अधिकातहे ॥

जिस प्रकार वर-कन्या के मन में ज्यों २ विवाह का दिन समीप आता है प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कलाप्रवीण और रससागर के हृदय आनन्द में मग्न हो रहे हैं । इनके हृदय के उत्साह का क्या वर्णन करें ? नर की अभिलाषा यह कि कब नारी का पाणिग्रहण करूं और नारी की अभिलाषा यह कि मैं मेरे नाथ का कर कब ग्रहण करूं ! नेत्रों से तो वे दोनों शिवमंदिर को देखते हैं, परन्तु ध्यान दोनों का परस्पर मिलने के मार्ग पर लगा हुआ है ॥ ७ ॥

उधोर छन्द.

आयो शिवनिशाको घोस, छायो संघ छिति चहु कोस ।
गायो जन मिली शिवगान, भायो सुनत सबके कान ॥
सोहे शंभुको संस्थान, मोहे देखि सुर तजि मान ।
जोहे ओहि थल आभास, कोहे ईन्द्रपुरि इन पास ॥
आये अमरके तित ब्रंद, गाये मुनि मिलीके छंद ।
धाये अप्सरा तजि धीर, पाये निरखि शांति शरीर ॥
बाजे बिबिध वां वाजित्र, गाजे ज्यों पयोद पवित्र ।
साजे प्रौढ पूजन बिप्र, त्याजे त्रिविध तापहि क्षिप्र ॥
आये सिद्ध वां प्रभनाथ, ल्याये बोल सिद्धहि साथ ।
भाये सात मितकुं सोय, नाये मस्तकहि पद दोय ॥ ८ ॥ *

ज्यों २ अवधि की अनुपम रात्रि समीप आने लगी त्यों २ दोनों के हृदय में अमित आनन्द होने लगा । जैसे दूल्हा और दुलहिन विवाह का दिन समीप देख दोनों परस्पर हृदय में वासना बढ़ाते हैं, और दूल्हा सोचता है कि मैं कब अपनी दुलहिन का हाथ पकड़ूं और दुलहिन सोचती है कि मैं कब अपने पति का हाथ पकड़ूं । इसी प्रकार उस समय वहां सागर और प्रवीण के हृदय में महा उमंग की लहरें हिलोरे लेने लगीं ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

पद्मरी छंद.

इमि करत घोस शिवरात आय, तब संघ चार कोसें छावाय । मिलि सोय मनुष शिव स्थान आय, शिव गान करत मन मोद धाय ॥ बहु वाद्य

जब शिवरात्रि का दिन आया तो चारों ओर भूमि पर चार कोस तक संघ (यात्रि-समुदाय) छा गया और सब मिलकर शिव-कीर्तन करने लगे, जिसे सुनकर सब के कान छक गए । उस समय शिवजी का स्थान ऐसा शोभित हुआ कि उसे देख कर देवता लोग गर्व भूल कर मुग्ध हो गए । उस स्थान का ऐसा आभास हुआ कि उसके सामने इन्द्रपुरी की क्या गणना ? देवताओं के मुँह वहां आए और मुनिलोग मिल कर वेद-गान करने लगे । अप्सराएं धैर्य छोड़ कर दौड़ी और दर्शन करके शान्ति प्राप्त की । वहां अनेक बाजे बजने लगे, मानों पवित्र बादल गरज रहे हों । ब्राह्मण जन महा-पूजन करते हैं जिससे तीनों प्रकार के ताप (आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक) नष्ट होते हैं । सिद्ध प्रभानाथ भी अनेक सिद्धों को साथ लिए हुए वहां आए, जिन्हें देख कर सातों मित्र प्रसन्न हुए और उनके युगल-चरणों में सबने मस्तक झुकाया ॥ ८ ॥

बीन आदिक बजाय, अरु अबिर गुलाल अतिहि उडाय । बहिं करत नाच वेस्या विचित्र, लखि सोय बनत केते ज्युं चित्र ॥ पुनि दीपमाल प्रगटी अमान, अति लसत सोय तारे समान । लखि सोय चित्त हरखाइ देव, कितनेक आय शिव करन शेव ॥ उस समय लसत शिव स्थान भास, जनु इंद्रपूर इत वहे प्रकाश । अति आय विप्र पूजा करंत, उरमें अपार उत्साह धरंत ॥ यह समय सिद्ध इत ठौर आय, लखि सोय मित्र सातें वहांय । कर जोरि शीश चरने नमाय, अति मोद आप मन माहि पाय ॥

इस तरह करते २ शिवरात्रि आ गई, और चारों ओर चार कोस तक वह स्थान यात्रिगण से भर गया । वे सब मनुष्य मिलकर शिव-स्थान पर आकर मन में प्रसन्न हो शिवजी का गान करने लगे । अनेक प्रकार के वीणादिक वाद्य बजने लगे और चारों ओर अबीर गुलाल उड़ाने लगे । वहां पर अप्सराएं विचित्र नृत्य करने लगीं, जिसे देखते ही अनेक व्यक्ति चित्रलिखित से हो गये । फिर सायंकाल दीपावली हुई जो तारों के समान सुहावनी दीखने लगी । इसे देखकर कितने ही देवता लोग चित्त में प्रसन्न हो शिवजी की सेवा करने को आये ।

दोहा.

सिद्ध समीपे ईशकी, मिलिके सातो मिष्ट ।

पूजा करिके पूर्ण पुनि, विनय करत धरि प्रीत ॥ ६ ॥

सिद्ध के समीप (साथ) सातों मित्रों ने मिल कर भगवान शंकर का पूजन किया और फिर प्रेमपूर्वक विनय करने लगे ॥ ६ ॥

शंकरस्तुति-त्रिभंगी छंद.

गिरिजाके स्वामी, अंतरयामी, निर्मल नामी, सुखकारी । लाइ रति अंगा, नाचत चंगा, धरी उमंगा, अति भारी । सुख संपत्तिदायक, पूजन लायक, भूतहि नायक, भयहारी । तनुपे गजखाला, औढ विशाला, मुंडन माला, गलधारी ॥ गौरे तन भारी, विभूती धारी, हर्ष अपारी, हिय धारी । विग्रह करि भारी, त्रीपुर जारी, कीर्ति भारी, विसतारी । दमके शशि भाला, वपु विकराला, बिलसत व्याला, भयकारी । नेंहे नित अंगा, रहतहि नंगा, पीवत भंगा, अति भारी ॥ अंधकके नाशन, उमा विलासन, मरघट आसन, नित धारी । तपसी तन धारन, अधम उद्धारन, प्रेम प्रसारन, सब ठारी । कीटादिक केते, प्रानी जेते, पोषत तेते, मुद धारी । बाहन वृषधारी, करुणाकारी, जटा अपारी, शिर धारी ॥ रतिनाथ प्रजारे, द्रयकी भारे, क्रोध अपारे, मन धारी । हरनौटा चाहक, त्रीपुर दाहक, नेह निवाहक, नरनारी । लक्ष्मिदिक सिद्धि, पुनि नवनिद्धि, आदिक ऋद्धि, अधिकारी । हठयोग प्रकाशी, विघन विनाशी, जन अभिलाशी, सुखकारी ॥ रजताचलवासी, तंत्र प्रकाशी, हृदय हुलासी, सब भारी । बरदान दिवैया, गंग धरैया, हूक हरैया, अति भारी । नाथनके नाथं, जोरी हाथं, सातो साथं, रति लारी । यह अरज उचारी, दिलसो धारी, लहो उधारी, कर धारी ॥ १० ॥

उस समय शिव-स्थानक ऐसा सुहावना प्रतीत होने लगा मानो इन्द्रपुरी यहां प्रकट हुई हो । अनेकों ब्राह्मण हृदय में उल्लास लेकर पूजा करने आये । इसी समय सिद्ध भी वहां आये, जिन्हें देखकर सातों मित्र भी वहां आये और हाथ जोड़कर उनके चरणों में शिर झुकाया और अपने २ हृदय में अति प्रसन्न हुये ॥

हे पार्वती के पति, अंतर्धामी, पवित्र नाम वाले, सुखदायक, हृदय में अति उमंग धारण कर तथा शरीर में रति धारण कर सुन्दर नृत्य करने वाले, सुख और सम्पत्ति के देने वाले, पूजनीय, भूतों के स्वामी, भय विनाशक, विशाल गज-चर्म शरीर पर धारण करने वाले, मुंडों की माला गले में पहिने वाले, गौर शरीर पर विभूति लगाने वाले, हृदय में अति प्रसन्नता वाले, महान् युद्ध कर त्रिपुर को जीतने वाले और बड़ी कीर्ति वाले, भाल में चन्द्रमा सहित, विकराल शरीर वाले, भयानक सर्पों वाले, शरीर से नित्य नग्न रहने वाले, बहुत ही भंग पीने वाले, अंधकासुर के नाशक, पार्वतीजी के साथ विहार करने वाले, नित्य स्मशानों में रहने वाले, तपस्वी शरीर वाले, पापियों के उद्धारक, सर्वत्र प्रेम का प्रसार करने वाले, कीटादिक जितने प्राणी हैं उन सबका प्रमत्ततापूर्वक पोषण करने वाले, बैल का वाहन रखने वाले, दयालु, अपार जटा शिर पर धारण करने वाले, अपार क्रोध मन में लाकर रतिनाथ (कामदेव) को भस्म करने वाले, हिरन के बबे को चाहने वाले, त्रिपुर को जलाने वाले, स्त्री-पुरुषों के प्रेम का निर्वाह कगने वाले, लक्ष्मी आदिक भिद्वि, नवनिधि और ऋद्धियों के अधिकारी, हठयोग के प्रकाश करने वाले, विघ्न-विनाशक, भक्तों पर प्रेम करने वाले, सुख-दाता, कैलास पर्वत के निवासी, हृदय को प्रसन्न करके सब महान् तंत्रों के प्रकाश करने वाले, वर-दायक, गंगा के धारण करने वाले, महान् दुःख के भिताने वाले, नाथों के नाथ ! हम सातों अत्यन्त प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर हृदय से यह विनती करते हैं, हाथ पकड़ कर हमारा उद्धार करो ॥ १० ॥

स्रवंगम छंद.

भई प्रार्थना पूर्ण, गये अध रातही । शिवा अरु शंभु, मुदित ह्वे गातही ॥
 भेजे धरिकें भाव, गिरि कैलासतें । ख बेस्या गन वृंद, कथत जय आम्यतें ॥
 लाये सोय विमान, साथे बहोत हे । वाकी छवि छितिमांय, झलाझल होत हे ॥
 सोय लखी सब लोक, अचंभ्य स्यकें । बेखत पुनि पुनि वांछि, मोद मन लायकें ॥ ११ ॥

आधी रात हुई और प्रार्थना पूरी हुई कि शिवजी व पार्वती जी प्रसन्न हुए और कैलास पर्वत से उन्होंने अपने गणों को और अप्सराओं को भेजा जो 'जय जय' कर करते हुए चले । वे अपने साथ बहुत से विमान ले आये जिनकी छवि पृथ्वी पर जगमगाते लगी । उन्हें देखकर सब लोग अचंभित और प्रसन्न मन हो बार २ उधर ही देखने लगे ॥ ११ ॥

दोहा.

नृत्य कर्त सुरनारिका, गान करत गांधर्व ।
यह उत्सव अवलोकिकें, सुमुदित भय जन सर्व ॥ १२ ॥

वहां देवांगनार्यें नृत्य करने लगीं और गंधर्व जन गान करने लगे । यह उत्सव देखकर सब लोग प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

जुगम जाम गत जामिनी, पेखत जन प्रत्येक ।
कांचन मय कैलासतें, आय विमान अनेक ॥ १३ ॥

दो प्रहर रात्रि व्यतीत होते २ सबों के देखते देखते कैलास से अनेक कांचनमय विमान आए ॥ १३ ॥

गन अगनित गंगेशके, पुनि अप्सरा अपर ।
शिव प्रेरित शिव सदनमें, कियो आई जयकार ॥ १४ ॥

शिवजी के भेजे हुए शिवजी के अनेक गणों तथा अनेकों अप्सराओं ने शिव-मंदिर पर आकर जय जयकार किया ॥ १४ ॥

अदभुत अचगिज देखिकें, भूले सब जन भान ।
तब आई शिव सदनमें, कुसुमावलि रु सुजान ॥ १५ ॥ *

* पाठान्तर इस प्रकार है: —

आय विमान अकाशतें, सब देखत समुदाय ।
तब पराबिन कुसुमावली, शंभू सदनमें आय ॥

यह अद्भुत आश्चर्य देख कर सब लोग विभोर हो गए । तब प्रवीण और कुसुमावलि शिवमंदिर में आई ॥ १५ ॥

उपमालंकार—कवित्त.

मकरीकी जाल तोरी, डारे ज्युं महा मरुत, तिमिगल तोरी डारे, ज्यों गति जहाजकी । गिरिवर तोरी डारे, गंगको प्रवाह जेसैं, तंतुबंध तोरी डारे, त्रिया गजराजकी । सुधरीको घर सो तो, तोरी डारे सिंहनी ज्यों, त्यों प्रबीने तोरी डारी, लीक लोकलाजकी । जवनिका बीना अव, निका उल्लंघन करी, संचरी समीप सातो, मित्रके समाजकी ॥ १६ ॥

जिस प्रवार बेगवान पवन मकड़ी के जाले को तोड़ डालता है, जैसे महान् मगर-मच्छ नाव की गति को तोड़ डालता है, जैसे गंगा का प्रवाह बड़े २ पहाड़ों को

सबके देखते २ आकाश से विमान आये, और उसी समय प्रवीण और कुसुमावलि शिवमंदिर में आई ॥

ॐ पाठान्तर इस प्रकार है: —

उपमालंकार-द्रष्टांतालंकार—कवित्त.

गिरिवर तौरी महा, तटिनीके तोय जैसे, मिलतहे बेगें महा, जलधिकों जायकें । तंतुहिके बंध तोरी, अंग में उमंग धरी, मतंगकों मिले जैसे, धेनुकाही धायकें । रावनके बंध तोरी, हरषतें हनु जैसैं, रामाहिकों मिले आय, लंककों जरायकें । तैसैं लोक लाज अरु, कुलहीकी कानि तोडी, प्रेमतें प्रबीन मिली, सागरकों आयकें ॥

जिस प्रकार नदी का जल बड़े २ पर्वतों को तोड़कर बड़े वेग के साथ समुद्र में जा मिलता है, तंतु के बन्धन को तोड़कर अति उमंग के साथ जिस प्रकार हथिनी हाथी से दौड़कर मिलती है, रावण के बंध को तोड़कर तथा लङ्का को जलाकर जिस प्रकार हर्ष के साथ हनुमानजी आकर रामचन्द्रजी को मिले, उसी प्रकार लोक-लज्जा तथा कुल-मर्यादा को तोड़कर प्रवीण प्रेमपूर्वक सागर से मिली ॥

तोड़ देता है, डोरे के बंधन को जिस प्रकार हथिनी तोड़ डालती है, और जिस प्रकार सिंहनी सुघरी के घर को तोड़ डालती है, इसी प्रकार प्रवीण ने लोक-लाज की मर्यादा को तोड़ दिया और पर्दे के बिना खुली जमीन पर से होकर सातों भित्रों की मंडली के पास पहुंच गई ॥ १६ ॥

दोहा.

प्रेम धरी परवीन जब, मिलि सागरकों आय ।

पान ग्रही तब परस्पर, शिव मंदिरमें जाय ॥ १७ ॥

जब प्रवीण प्रेमपूर्वक आकर सागर से मिली तो शिव-मंदिर में जाकर परस्पर पाणि-ग्रहण किया ॥ १७ ॥

षोडशदी उपचारतें, पूजा करी पुनी राय ।

हर्ष धरी निज हृदयमें, शिवकों शीश नमाय ॥ १८ ॥

फिर षोडशोपचारपूर्वक भगवान शंकर का पूजन किया और हृदय में अति प्रसन्न हो शिवजी को शिर नमाया ॥ १८ ॥

सात मित दो सखिनके, तनमें प्रगटी ज्योति ।

कोटि सूर्य शशि सम सिरी, जगमग जगमग होति ॥ १९ ॥ ❀

उस समय सातों मित्र और दोनों सखियों के शरीर में वह ज्योति प्रकट हुई कि करोड़ों सूर्य व चन्द्रमा के समान जगमगाहट होने लगी ॥ १९ ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

इतनेमें सत्वर तहां, सप्त मित्र सखि दोय ।

नवके नौतम तन भये, पेखतही सब कोय ॥

इतने ही में वहां तत्काल सातों मित्रों और दोनों सखियों के शरीर सबके देखते २ नवों के नवीनतम हो गये ॥

दोहा.

पारसमनि सम शिव कृपा, जन तन लोह समान ।

सो मिटि देवस्वरूप भय, कांचन करन प्रमान ॥ २० ॥

पारस-मणि के समान शिवजी कृपा के स्पर्श से उनका लोहे के समान शरीर मानवीयता को त्याग देवतारूप स्वर्ण के समान हो गया ॥ २० ॥

दिव्य वसन भूषण दिमे, चिंतामनि हिय हार ।

इन्द्र उतारत आरती, कहि मुख जयजयकार ॥ २१ ॥

उनके वस्त्राभूषण देवों के समान दीखने लगे, और हृदय पर चिंतामणि हार दीखने लगा, जिससे इन्द्र महाराज मुख से जय जयकार कह आरती उतारने लगे ॥ २१ ॥

दिव्य देह बनि देवसी, प्रगटी तनमें ज्योति ।

शीतल चंद्र समान सो, जगमग जगमग होति ॥ २२ ॥

उनका शरीर देवताओं के समान दिव्य हो गया, और उसमें एक ज्योति प्रकट हो गई, जिससे शीतल चन्द्रमा के समान जगमगाहट होने लगी ॥ २२ ॥

जेकरी छंद.

अरुणोदय इतनेमें भये, हर्ष धरी तब सबही हिये ।

सागर पितु माताको नये, आशिश तब उनहीने दिये ॥ २३ ॥

इतने में उषा की लाली आई, तब सब ही हृदय में हर्षित हुए । सागर ने माता-पिता को नमन किया और उन्होंने आशीर्वाद दिया ॥ २३ ॥

सवैया.

लोक समस्त बिलोकतही, निधि हस्तसें हस्त मिलापन कीनो ।

जाकर शंकर मंदिर अंदर, शीरा नमाइ महा मुद लीनो ।

दान दिये दुजको बहु द्रव्य, दुजे तब आशिरवाद सु दीनो ।

सागर और प्रवीणहुको तब, भो मन प्रेमप्रभा रस भीनो ॥ २४ ॥

सब लोगों के देखते हुए प्रवीण ने सागर के हाथ से अपने हाथ को मिलाया और शिवमंदिर में जाकर मस्तक मुकाकर सहा प्रसन्न हुए । ब्राह्मणों को खूब दान दिया और विप्रों ने आशीर्वाद दिया । तब सागर और प्रवीण के मन प्रेम के रस से सराबोर हो गये ॥ २४ ॥

दोहा.

षट मित्र रु कुसुमावली, शंकर सन्मुख आय ।

नेह धरीकें शीश निज, विनय सहीत नमाय ॥ २५ ॥

छाँओं मित्र और कुसुमावलि ने शङ्कर के सन्मुख आकर विनयपूर्वक प्रेम के साथ अपना २ शिर नमाया ॥ २५ ॥

सागरके पितु मातकुं, नव जन क्रिये प्रनाम ।

तब तिनकों आशीषदिय, पितु माते तिहि ठाम ॥ २६ ॥

नवों जनों ने सागर के माता-पिता को प्रणाम किया और उन्होंने वहां उन्हें आशीष दी ॥ २६ ॥

उत्तम एक विमानमें, सागर कलाप्रवीन ।

बैठे ताहि बिलोकिकें, भय जन अचरिज भीन ॥ २७ ॥*

तब एक उत्तम विमान में सागर और कलाप्रवीण बैठे, जिसे देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये ॥ २७ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

पीछे जाय विमानमें, बैठीकें सब साथ ।

सागर कछु कहने लगे, मात पिताकों साथ ॥

पीछे विमान में जाकर सबके साथ बैठ सागर माता-पिता से कुछ कथा कहने लगे ॥

हरिगीत छंद.

तब सागरे पितु मातकुं बदने युंही बानी कही ।

हम देवहे कैलासके, सुनु कोउ जनके सुत नहीं ।
दिलमें नहीं दिलगीर होनां, जात हम कैलासमें ।

तुम जाइ सुखसैं राज करहु, रहहु निज आवासमें ।
पुनि शशिकलाकों यों कबो, तुम रहहु मन धीरज धरी ।

सुत प्रजापालकुं पालनां, सु प्रयत्न परिपूरन करी ।
बह पुत्र होहि पराक्रमी, पूरन सु कीर्ती पाइहे ।

पालन प्रजाको करहि पुनि, सब शत्रु शीश नमाइहे ॥ ~
सब जन प्रती सागर कहे, हर भक्ति करिहो भावसैं ।

भवसिंधु तरि भवभुवन पैहो, ज्यौं तरे निधि नावमें ॥२८॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है—

पादाकुलक छंद.

देव हमें सब हरगिरिवासी, सेव करत शंकरकी स्वामी ।
चूक परी कछु करतही सेवा, शाप दिये तब उनही देवा ॥
तातें जन्म लिये तुम गेहें, पुत्र नहीं पर हम किसिकेहें ।
शाप औधि पूरन भइ आजे, आय विमान तब हम काजे ॥
यातें जात हमें कैलासैं, होहु उदास न आप हियासैं ।
राज करो तुम्हरे तुम जाइ, कष्ट धरो न कछु मन मांइ ॥
आपत्ति जो कबहु तुम आवे, याद करो हमकों तब भावे ।
आइ हमें दुख दूर करेंगे, धान्य धनैं भंडार भरेंगे ॥
चंद्रकला प्रति यों पुनि कीने, होहु नही तुम हिततें हीने ।
पुत्र तुम्हारा हे अब छोटा, पालन करिकें करहु मोटा ॥
ह्वे हे सोय बडा परतापी, कीर्ति लहेगा शत्रु उथापी ।
याकों राज्य तिलक तुम देंगे, पीछे हम बोला तुम लेंगे ॥

तब सागर ने अपने मा-आप को अपने मुख से यह कहा कि सुनो, “हम कैलास के देव हैं किसी मनुष्य के पुत्र नहीं हैं, और अब हम कैलास में जाते हैं, इसलिये कोई उदास न होना । अब तुम जाकर सुख से अपने महल में रहो और राज करो।” फिर चन्द्रकला से कहा कि, “तुम मन में धीरज रखकर राजकुमार प्रजापाल का पूरे यत्न से पालन करना । यह कुमार पराक्रमी होंगे और सम्पूर्ण कीर्ति पावेंगे, प्रजा का पालन करेंगे और सब शत्रु इन को शिर भुकावेंगे ।” फिर सब लोगों को सागर ने कहा, “आप लोग प्रेमपूर्वक शिवजी की भक्ति करोगे तो जिस प्रकार नौका से समुद्र तरते हैं उसी प्रकार इस संसार-समुद्र को शिव-भक्ति द्वारा पार कर शिव-लोक को प्राप्त करोगे ॥ २८ ॥

दोहा—कहे सुजान अमात्यकों, देखत दृग तुम जेह ।

मनछापुर्निमें जाइकें, सबकुं कहनां तेह ॥ २९ ॥*

हम सब कैलास के निवासी देव हैं, और श्रीशङ्कर भगवान् की सेवा किया करते थे । उनकी सेवा करते हुए कुछ भूल हुई जिससे उन्होंने हमें शाप दे दिया, इसलिए हमने तुम्हारे यहां जन्म लिया, वैसे हम किसी के पुत्र नहीं हैं । आज शाप की अवधि पूरी हो गई है इसलिए हमारे वास्ते विमान आये हैं और इसलिये हमारे कैलास जाने के कारण आप लोग हृदय में उदास मत होओ । तुम लोग जाकर अपने राज्य में राज करो, मन में किसी प्रकार भी कष्ट न करो । यदि कभी तुम्हारे ऊपर आपत्ति आवे तो हमें भावपूर्वक याद करना, हम आकर दुख दूर कर देंगे और धन-धान्य से भंडार पूरा कर देंगे । फिर चन्द्रकला की ओर फिर कर कहा, तुम हृदय में तनिक भी उदास मत होना । तुम्हारा पुत्र अभी छोटा है, उसका पालन करके उसे बड़ा करो । वह बड़ा प्रतापी होगा और शत्रुओं पर विजयी होकर कीर्ति प्राप्त करेगा । इसे राज्य-तिलक जब तुम देदोगी तो पीछे हम तुम्हें भी बुला लेवेंगे ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है—

प्रवीनोक्त-छप्पय.

प्रधान प्रति तब बैन, पढे परवीन वहांइ ।

द्रग देखत तुत जेह, सोय मनछापुर् जाइ ।

कलाप्रवीण ने अपने अमात्य से कहा कि यह सब कुछ जो तुम अपनी आंखों से देखते हो, मनछापुरी में जाकर कहना ॥ २९ ॥

भक्ति करहि भवदेवकी, सो पावहि शिव धाम ।
यौं मुज जननी जनकहुं, कहनां करी प्रनाम ॥ ३० ॥

मेरे माता-पिता को प्रणाम करके कहना कि जो भगवान् शङ्कर की भक्ति करते हैं वे शिव-धाम को पाते हैं ॥ ३० ॥

बानी सुनी सुजानकी, कष्ट न कहतहे कोय ।
अदृष्ट अचरज देखिकें, स्तब्ध भये सब सोय ॥ ३१ ॥

प्रवीण की वाणी सुनकर कोई कुछ कह नहीं सका । अपितु यह आश्चर्य देखकर सब स्तब्ध हो गये ॥ ३१ ॥

षट मित्रहु कुमुदवली, पारि मोद अपार ।
भिन्नहि भिन्न विमानमें, बैठी किये बिहार ॥ ३२ ॥

छात्रों भिन्नों और कुसुमावलि ने भी अति प्रसन्न हो भिन्न २ विमान में बैठकर विहार किया ॥ ३२ ॥

हम पितु माता पास, बात यथरथ कहियो ।
हम जावत कैलास, शोक न तुम चित लहियो ।
जब भक्ति करी हम भव भवा, तब पाये यह वासकों ।
तिमि भक्ति कर सो पायगे, हर गिरि कैलासकों ।

तब प्रवीण ने वहां पर प्रधान के प्रति कहा कि, तुम आंखों से जो देखते हो वही मनछापुर में जाकर कहना । हमारे माता-पिता के समक्ष यथार्थ बात कहना और कहना कि हम कैलास जाते हैं आप लोग शोक मत करना । जब हमने श्रीमहादेवजी व पार्वतीजी की भक्ति की तो हमें यह गति प्राप्त हुई है, इसी प्रकार जो भक्ति करेंगे वह भगवान् शङ्कर व कैलास को प्राप्त करेंगे ॥

भूतना छंद.

व्योम पथ सबहि बीमान सो बांचरे, दुंदुभी देवकी बोल बाजो ।
 पुष्पकी वृष्टि ब्रंदाका करतहे, पुनि रह्यो गगन जयकार गाजो ॥
 कामिनी कंत कैलाममें जाइके, वंदना शिव शिवाकुंहि कीनी ।
 हाथ धरि माथ तब नाथ उमयाहिके, ओर उमयाहि आशीष दीनी ॥
 पुनि कह्यो अब बसी बास कैलासमें, तुम चिरंकाल सुख पूर्ण पैहो ।
 भोगवो भोग मन भावने भलि बिधा, लक्ष्म्या ललित इत लाभ लैहो ॥
 अचल तुम नाम पुनि रहहि अचला त्रिपे, कीर्ति सब देशके लोक कहही ।
 चरित तुम ग्रंथमें बोल चरचायगो, चतुरजन चित्तमें धरन चहही ॥
 जाहि को ज्यौंलु हे नाम सो जगतमें, त्योंलु हे अमर यह यौहि मानो ।
 नाम भो नाश तब नाश ताको भयो, जीयमें जरुर यों आप जानो ॥
 नाम रखनेकुं जन जायकें जुद्धमें, पाव न धरे पिछा प्रान त्यागो ।
 नाम रखनेकुं बहु द्रव्यको दान दे, ललित सुरमंदिरों करन लागे ॥३३॥*

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

दोहा—ऐसे कहि इन ठौरनैं, व्योम चलाय विमान ।

सर्व गये कैलासमें, सिद्ध सहित शिव स्थान ॥

ऐसा कहवर वहां से आकाश में विमान चला वे सब लोग सिद्ध समेत
 ज्ञास में शिवजी के समीप गए ॥

चोपाई.

सर्व भवा भव पामें जाय, प्रेम धरीकें लागे पाय ।
 तब उसने आशीशहि दीन, रोज रहो तुम रसमें लीन ॥
 बहुरि बनीकें गिरि कैलास, रोज भोगबां भोग विलास ।
 फेर न पैहो बिरह बलाय, माथ रहोगें इतहि सदाय ॥
 जन्म धरी पुनि जगके मांय, किये चरित्र तुमें जिहि काय ।
 सोय चरित्रके ग्रंथ बनाय, गुनी गायगो मोद चढाय ॥

जब वे विमान आकाश मार्ग से चलने लगे तो देवगण की दुंदुभी बजने लगी और देवता लोग पुष्पवृष्टि करने लगे । आकाश में जय जयकार होने लगा । उन सब स्त्री-पुरुषों ने कैलास में जाकर भगवान् शङ्कर व पार्वतीजी को नमस्कार किया । तब शिवजी व पार्वतीजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा कि अब तुम लोग कैलास में रहकर चिरकाल पर्यन्त मन-इच्छित भोग भोगते हुये निवास करो, और लाखों प्रकार के सुन्दर लाभ यहां प्राप्त करो । तुम्हारे नाम पृथ्वी पर अमर रहेंगे और सारे लोकों में तुम्हारी कीर्ति होगी । तुम्हारे चरित्र की चर्चा ग्रन्थों में बहुत होगी और चतुर जन उसे चित्त में धारण करना चाहेंगे । संसार में जब तक जिसका नाम है तब तक उसे अमर समझना चाहिये, जब नाम का नाश हो जाय तब उसका नाश समझना चाहिये, इसीलिये योद्धागण नाम रखने के ही लिए युद्ध में जाकर प्राण देते हैं, परन्तु पीछे पांव नहीं धरते । नाम रखने ही के लिये लोग बहुतसा द्रव्य दान देते हैं तथा अच्छे २ मन्दिर बनाते हैं ॥ ३३ ॥

ऐसी सुनि हर उमया बानि, मोद सबे निज मनमें ठानि ।

सिद्धादिक आयथे जेह, करी प्रनाम गये सब गेह ॥

पीछे हर उमयाके पाय, नमी नवे जन लेहि रजाय ।

सब सबकेही स्थानक जाय, रहे सदा उर आनंद लाय ॥

उन सब ने शिवजी व पार्वतीजी के समीप जाकर प्रेम के साथ पग-वन्दन किया । तब उन्होंने आशीर्वाद दिया कि “तुम सदा रसलीन रहो, पुनः कैलास में रहकर नित्य भोग-विलास करो । अब तुम फिर विरह-व्यथा न सहोगे, अब तुम सदा यहीं साथ रहोगे । तुमने संसार में जन्म धारण कर काया से जो चरित्र किया है, उस चरित्र का ग्रन्थ बनाकर गुणीजन प्रसन्नतापूर्वक गान करेंगे ।” उमा व शिवजी की ऐसी बाणी सुनकर सब मन में प्रसन्न हुए और सिद्ध आदिक जो आये हुए थे वे सब प्रणाम कर अपने २ स्थान को चले गये । फिर नवों जनों ने भी शिवजी व पार्वतीजी के पग-वन्दन कर आज्ञा ली । सब अपने २ स्थान पर आये और आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥

दोहा.

शुभ कवितासैं रहतहे, बहु दिन निश्चल नाम ।

अनेक रूपे होइकें, प्रसरत ठामहि ठाम ॥ ३४ ॥

अच्छी कविता द्वारा भी बहुत दिन तक नाम रहता है, क्योंकि वह अनेक रूप में होकर स्थान २ पर फैलती है ॥ ३४ ॥

तुम चरित्रके ग्रंथसो, बांचहि सब संसार ।

तिन सदगुन जो संग्रहे, होहि पतिव्रत नार ॥ ३५ ॥

तुम्हारे चरित्र का ग्रन्थ सब संसार पढ़ेगा, और उसमें से जो सदगुण का ग्रहण करेगी वह पतिव्रता स्त्री हांगी ॥ ३५ ॥

पति प्रियाकों प्रेमको, पूरन होहि प्रकाश ।

भव भक्ती करि भावसैं, पावहि पद कैलास ॥ ३६ ॥

पति-पत्नी में पूर्ण प्रेम का प्रकाश होकर भाव से भगवान् शङ्कर की भक्ति करके वे कैलास पद पावेंगे ॥ ३६ ॥

यों वर दीनो भव भवा, दंपति किये प्रनाम ।

सदा अचल सुख भोगवै, धरी अचल निज धाम ॥ ३७ ॥

इस प्रकार शिवजी तथा पार्वतीजी ने वर दिया, तब स्त्री-पुरुष (प्रवीण व सागर) ने प्रणाम किया और वहां अपना अचल धाम करके नित्य अचल सुख भोगने लगे ॥ ३७ ॥

पुनि नव यह प्रभनाथकुं, पुनि पुनि किये प्रनाम ।

शिव शिवाकुं बंदन करी, सिध सुर गये स्वधाम ॥ ३८ ॥

फिर इन नवों ने सिद्ध प्रभानाथ को बार २ प्रणाम किया और सब देव तथा सिद्धगण शिवजी तथा पार्वतीजी को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को चले गये ॥ ३८ ॥

कुसुमावलि पुनि मित्र खट, शिव शङ्कीके पाय ।

बंदन करि निज बास प्रति, जाकर तित ठहराय ॥ ३९ ॥

फिर कुसुमावलि तथा छत्रों मित्रों ने शिवजी व पार्वतीजी को प्रणाम कर अपने २ स्थान पर जाकर निवास किया ॥ ३६ ॥

सुजानसें सागरहुसैं, सदा रखत अति स्नेह ।

बिबिध बिनोद करे पुनी, एक प्राण भिन्न देह ॥ ४० ॥ ❀

वे प्रवीण तथा सागर के साथ निरन्तर प्रेम रखते और आपस में मिलकर भांति २ के बिनोद करते । वे एक जीव व शरीर से भिन्न २ थे ॥ ४० ॥

चांपाई.

शिवगत्री गत भयो प्रभाता, तब सागरके पितु अरु माता ।
स्थापित शिवकुं शीश नमाई, जाइ रहे निज पुरमें आई ॥
सब जन निज निज सदन सिधाये, मनछागुरि जन निज पुर आये ।
भो नृपकुं सब बात सुनाई, कछु मुद पाये अचिरज पाई ॥
पुनि कछु दिलगिरि दिल देखाई, पवित्र पुत्री फिरि नहि आई ।
रससागर पुनि कलाप्रवीना, यह जगमें अविचल जम कीना ॥
तिनके जसको ग्रंथ रचायो, प्रवीनमागर सोई कहायो ।
धन्य प्रदीप नरेश कहायो, सागर जिनको सुगुत सुहायो ॥
धन्यहि नीतीपाल नरेशा, सुजान जिनकी सुता सुवेशा ।
यों मुख बंदत लोक सब बानी, या जगमें रहि अचल कहानी ॥ ४१ ॥ +

❀ पाठान्तर इस प्रकार है—

सागर और प्रवीन हिय, नित्य नवल धरि नेह ।

बिलसत रातो दिवसहि, बसी आपने गेह ॥

सागर और प्रवीण नित्य नये प्रेम के साथ अपने स्थान पर रह कर रात-दिन विलास करने लगे ॥

+ पाठान्तर इस प्रकार है—

चोगाई.

जब सागर कैलास सिधाय, तब उनके पितु माता जाय ।

स्थापित शिवको शीश नमाय, आप रहे निज पुरमें जाय ॥

शिवरात्रि बीती और प्रभात हुआ । तब सागर के माता-पिता स्थापित शिवजी को मस्तक नवाकर अपने नगर में आये । सब लोग भी अपने २ मकान को गये । मनछापुरी के लोग भी मनछापुरी आये और राजा को सब बात सुनाई । राजा कुछ आश्चर्यान्वित और कुछ प्रमत्त हुए, फिर कुछ उदास हुये कि पवित्र पुत्री लौटकर नहीं आई । रससागर व कलाप्रवीण ने इस संसार में अविचल यश प्राप्त किया । उनके यश का जो मन्थ बना वह 'प्रवीणसागर' कहलाया । राजा प्रदीप धन्य हुए कि जिनका पुत्र सागर हुआ । इसी प्रकार जिसकी राजकुमारी सुजान (प्रवीण) हुई वह राजा नीतिपाल भी धन्य हुये । इस प्रकार सब लोग मुख से बाणी बोलते हैं, और उनकी कथा जगत् में अचल हो गई ॥ ४१ ॥

उते मिलेथे जन पुनि और, सोय गये सब सबके ठौर ।
प्रबिन लँगाते जे जन जाय, सोय सबे मनछापुर जाय ॥
बात सबे नृप पासँ कीन, सोय सुनि वहे अचरज लीन ।
किंचित मोद धरी मन मांय, किंचित अंग उदासी लाय ॥
बोले ऐसँ मुखतँ सोय, होनहार मिथ्या नहि होय ।
हम उर सनु मिलनंकी आरा, सोय बसी पुनि जा कैलास ॥
काम न आवे इच्छा कोय, ईश्वर करे सोई होय ।
सागर और कला परवीन, गे कैलासँ सो रस लीन ॥
सोय सुनी सब पुरके लोक, बात करे मिलि थोके थोक ।
धन्य प्रदीप धरापँ भूप, जाके सागर पूत्र अनूप ॥
धन्य पुनि नीतिपालहि राय, बेटी जिस परवीन कहाय ।
अचल कीर्ति अवनीमें छाय, बसे बहुरि कैलासँ जाय ॥
ऐसी बात करिकँ लोक, गये सबे सबके ओक ।
सोय सबे हम उरमें भाय, तब हमें यह ग्रंथ बनाय ॥

जब सागर कैलास चले गये तो उनके माता-पिता स्थापित शिवजी की वन्दना कर अपने नगर में आये, तथा और लोग भी जो वहाँ आये हुये थे सब अपने २ स्थान को गये । प्रवीण के साथ जो लोग आये थे वे सब मनछापुर गये और

गाथा.

सात मीत दो सजनी, कैलासं प्रति गये विमान चढ़ी ।
त्रय अशीति अभिधानं, पूर्ण प्रबिनसागरो लहरं ॥ ४२ ॥

सात मित्र और दो साखियां विमान में चढ़ के कैलास को गये, इस वर्णन वाली प्रवीणसागर ग्रन्थ की यह तिरासीवीं लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥



महाराज से सब बातें निवेदन कीं, जिन्हें सुनकर राजा ने आश्चर्य किया, मन में कुछ प्रसन्न हुए और फिर कुछ उदास हो गये और मुख से इस प्रकार बोले 'होनहार मिथ्या नहीं होती' ! हमारे हृदय में पुत्री के मिलने की आशा थी सो वह कैलास चली गई । अपनी इच्छा कोई काम नहीं आती, जो ईश्वर करता है वही होता है । सागर और प्रवीण कैलास गये यह बात जब पुर के लोगों ने सुनी तो झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे होकर बात करने लगे—'प्रवीण धन्य है और महाराज धन्य है जिनके यहां सागर ने जन्म लिया । फिर राजा नीतिपाल धन्य है जिसके यहां प्रवीण ने जन्म लिया, जिसकी अविचल कीर्ति संसार में है और वह कैलास में बास करती है' । इस प्रकार की बातें करते हुए सब लोग अपने घर गये । यही सब बातें हमारे हृदय में भाई तब हमने यह ग्रन्थ बनाया ॥

८४ वीं लहर

ग्रन्थ-प्रयोजन तथा श्रुतिफल-कथन प्रसंग-दोहा.

मनछापुरि मन कल्पना, सुबुद्धि सोइ प्रवीन ।

स्वात्मा सागर मानिकें, निरम्यो ग्रन्थ नवीन ॥ १ ॥

मन की कल्पना सो मनछापुरी, सुबुद्धि है सो प्रवीण और अपनी आत्मा है वह सागर, इस प्रकार कल्पना करके यह नवीन ग्रन्थ बनाया है ॥ १ ॥

सति पतिसैं सतिसैं पती, सब विधि सजे सनेह ।

उभय लोक सुख अनुभवे, ग्रंथ प्रयोजन एह ॥ २ ॥

सती स्त्री अपने पति के प्रति और पति अपनी सती स्त्री के साथ सब प्रकार स्नेह करे, और दोनों लोकों में सुख पावे, यह इस ग्रन्थ का प्रयोजन है ॥ २ ॥

पर नरसैं पर नारिसैं, कबहु न जोरे प्रीत ।

सत्य तजे नहिं सङ्कटे, यह सज्जनकी रीत ॥ ३ ॥

सज्जन की यह रीति है कि परस्त्री से अथवा परपुरुष से कभी प्रीति न जोड़े तथा सङ्कट के समय भी धर्म का त्याग न करे ॥ ३ ॥

दंपति बिछुरे दैव वश, वर्ष बहुत बड़ि जाय ।

तो पुनि तजे न सत्यव्रत, ओर न चित्त चहाय ॥ ४ ॥

दैवयोग से यदि दम्पति में वियोग हो जाय और इस प्रकार बहुत समय हो जाय तो भी अपने सत्यव्रत को न छोड़े और दूसरे की मन में इच्छा न करे ॥ ४ ॥

सवैया.

खान रु पान विधान निधान, निमग्न सदा सुखकी तरनीमें ।
जोवन जोर भयो तउ कंत, मिल्यो नहि चूक परी करनीमें ।

रूपकि राशि प्रकाशित देह, नहीं तिय ता सामि निर्जरनीमें ।

ताँ पुनि धीरज धर्म तजी नहि, धन्य प्रवीन सती धरनीमें ॥ ५ ॥

प्रवीण के पास खाने-पीने का प्रसार और धन का भण्डार था और वह सुख की नदी में सदा निमग्न थी, परन्तु यौवन की जिस समय उमंगें आई उस समय पूर्व के खोटे कर्मानुसार पति प्राप्त नहीं हुआ । उसकी देह रूप की ऐसी राशि प्रकाशित थी कि वैसी रूपवती देवियों में भी नहीं, इतना हांते हुये भी धैर्य और धर्म को नहीं छोड़ा, इसलिए पृथ्वी पर वह सती धन्य हुई ॥ ५ ॥

दोहा.

चरित सु सती प्रवीनको, विमल विशाल विचित्र ।

पढहि सुनहि जन प्रेमसें, होवहि परम पवित्र ॥ ६ ॥

सती प्रवीण का चरित्र अति विमल, विस्तृत और विचित्र है, जो इन्से प्रेम से पढ़ेंगे और सुनेंगे वे परम पवित्र हो जावेंगे ॥ ६ ॥

पति रससागर नाम धरि, पतनी नाम प्रवीन ।

कवित लिखे यह परसपर, निपजे प्रेम नवीन ॥ ७ ॥

कोई पति-पत्नी अपने नाम सागर व प्रवीण रखकर इस ग्रन्थ की कविताएं परस्पर लिख भेजेंगे तो उनमें नवीन २ प्रेम की उत्पत्ति होगी ॥ ७ ॥

विद्या यह वाशि करनकी, मन आकर्षण मंत्र ।

प्रयोग शुचि मनसें करे, तो फलही यह तंत्र ॥ ८ ॥

यह वशीकरण की विद्या तथा चित्त के आकर्षण का मन्त्र है । इसका प्रयोग जो पवित्र मन से करेगा उसे यह तन्त्र फलीभूत होगा ॥ ८ ॥

दरशायो हे मित्रको, परम धर्म प्रख्यात ।

सुख दुखमें संमिल रहे, धन्य मित्र वह सात ॥ ९ ॥

इसमें मित्र का उत्तम प्रसिद्ध धर्म दिखलाया गया है, सुख व दुःख में एक होकर रहने वाले वे सातों मित्र धन्य हैं ॥ ९ ॥

मित्र परस्पर जो लिखे, यह ग्रन्थके कवित्त ।

बढ़े परस्पर मित्रता, चौगुनि दिन दिन चित्त ॥ १० ॥

यदि मित्रजन परस्पर इस ग्रन्थ के कवित्त लिखें तो दिनों-दिन चौगुनी मित्रता परस्पर चित्त में बढ़े ॥ १० ॥

निज मन वृत्ति प्रवीन गनि, रससागर रुषिकेश ।

भक्त भजे यह कवित्तसैं, हिय निज ईष्ट हमेश ॥ ११ ॥

भक्तजन अपने मन की वृत्ति को प्रवीण मानकर और परमेश्वर को रससागर मानकर इस ग्रन्थ की कविताओं से सदा हृदय में अपने इष्टदेव का भजन करें ॥ ११ ॥

रस नारायण रूपह, वेद करत उपदेश ।

जाने सोइ प्रवीन हे, रससागर रुषिकेश ॥ १२ ॥

वेद का ऐसा उपदेश है कि जो रस है वह नारायणरूप है, इस बात को जो जाने वही प्रवीण है, और रससागर परमात्मा है ॥ १२ ॥

किस्सा लेली मजनुंका, वार्ता ओर अनेक ।

बांची उर इच्छा भई, रचन ग्रन्थ अस एक ॥ १३ ॥ ❀

❀ पाठान्तर इस प्रकार है—

ग्रंथ-प्रयोजन कथन—दोहा.

ऐसैं यह अबनी पर, सागर और प्रवीन ।

ग्रंथ रचन करि कलाना, कीने ग्रंथ नवीन ॥

इस प्रकार इस पृथ्वी पर सागर और प्रवीण की कल्पना करके यह नवीन ग्रन्थ बनाया ॥

आशक माशुक के ओमत, किस्सा लखि सुखदाय ।

एक ग्रंथ अस रचनकी, चाह भई मन मांय ॥

आशिक व माशुक की सुखदायी कहानियों को देखकर एक इस प्रकार का ग्रन्थ बनाने की इच्छा मन में हुई ॥

लैली मजनूं की कहानी तथा अनेक अन्य वार्ताओं को पढ़कर एक ऐसा ग्रन्थ बनाने की इच्छा हुई ॥ १३ ॥

मित्र सात मिलिकें रच्यो, प्रवीणसागर ग्रन्थ ।

तिनमें दरसायो भलो, प्रेम नेमको पंथ ॥ १४ ॥*

इससे हम सात मित्रों ने मिलकर इस प्रवीणसागर ग्रन्थ की रचना की । इसमें भलीप्रकार प्रेम के नियम का मार्ग बतलाया है ॥ १४ ॥

ज्यों सागरमें मिलत हे, सरिता आइ अपार ।

सार त्योंहि बहु ग्रन्थको, हे यह ग्रन्थ मभार ॥ १५ ॥+

* पाठान्तर इस प्रकार है—

सात मित्र मिलिकें तबे, धारी हृदय हुलास ।

प्रेम प्रसारन के लिये, कीनो ग्रंथ प्रकाश ॥

तब सात मित्रों ने मिलकर हृदय में उल्लास धारण करके प्रेम-प्रसारणार्थ यह ग्रन्थ बनाया ॥

+ पाठान्तर इस प्रकार है—

जैसे जलधीके विशे, अति धुनिनीर समाय ।

तैसें ग्रंथ अनेकको, यामें सार समाय ॥

जिस प्रकार समुद्र में अनेकों नदियों का नीर समाया हुआ है, इसी प्रकार इस ग्रन्थ में अनेकों ग्रन्थों का सार है ॥

चिंतामनि सम सर्वकों, आवनकों अति काम ।

अमित ग्रंथ अवलोकि यह, रचना कीन ललाम ॥

चिंतामणि के समान सबके काम में आवे, इसलिये अनेकों ग्रन्थों को देखकर इसकी सुन्दर रचना की गई है ॥

जिस प्रकार समुद्र में अनेक नदियां आकर मिलती हैं, उसी प्रकार इसमें अनेक ग्रन्थों का सार निहित है ॥ १५ ॥

कवित्त.

भोग सिद्धि एहि ग्रन्थ, पंथ पावे भोगीजन, जोगीजन याते पुनि, जोग-सिद्धि पावही । चतुराई चाही चित्त, लाइ हे चतुर जन, उदासीके अन्तरमें, आनन्द बढ़ावही । रस अलंकार ओर, छंद हे अनेक जाति, कविजन काव्य-कला, चाहि चित्त लावही । राजसभा रंजन, करही जन अछी रीते, जो प्रवीन-मागरके, रत्नमें सुहावही ॥ १६ ॥*

भोगीजन इस ग्रन्थ के द्वारा भोग की सिद्धि प्राप्त करेंगे, और योगीजन इससे योग की सिद्धि पावेंगे, चतुराई चाहने वाले चतुरजन इसमें चतुराई की प्राप्ति के लिये मन लगावेंगे और उदासीन मनुष्यों के हृदय में यह आनन्द का बढ़ाने वाला होगा । कवि लोग इसमें रस, अलंकार तथा अनेक भाँति के छन्द की कविता के कारण काव्यकला की दृष्टि में मन लगावेंगे । जो कोई मनुष्य प्रवीणसागर के कवित्तरूपी रत्न से सुशोभित होगा (मोखा हुआ होगा) वह राजसभा का भली प्रकार रञ्जन करेगा ॥ १६ ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है ---

कवित्त.

जैसे कल्पतरुतर, चितवे सो पावे तहां, तैसे यह ग्रंथमाहि, चितवे सो पायगे । भोगी पावे भोग अरु, योगीजन योग पावे, प्रेमीजन पाइ प्रेम, मोद मन लायगे । रस अलंकार छंद, कवि के ते पावे अरु, चतुर सो पाइ चतुराई हरखायगे । ऐसे अभिराम यह, प्रवीनसागरमाहि, जोइ चित्त धारे सोइ, प्रेमहिते पायगे ॥

जिस प्रकार कल्पवृक्ष के नीचे जो इच्छा करे वही वहां मिलता है, उसी प्रकार इस में जो ढूंढे वही मिलता है । भोगी लोगों को भोग, योगियों को योग, और प्रेमियों को प्रसन्नता देनेवाला प्रेम इसमें मिलेगा । कविजनों को इसमें रस, अलंकार, छंद मिलेंगे और चतुरजन चतुराई की बातें पाकर प्रसन्न होंगे । इस प्रकार इस सुन्दर प्रवीणसागर में जो चित्त में चाहना होगी वही प्रेम से प्राप्त होगी ॥

दोहा.

कवित सवैया एक पुनि, कंठ धरहि जन कोइ ।
सभाविषे शोभित बनी, जन मन हरनहि होइ ॥ १७ ॥

जो इसमें का कोई एक भी कवित्त या सवैया कंठस्थ करेगा तो वह सभा में सुशोभित होकर मनुष्यों का मन आकर्षित करेगा ॥ १७ ॥

जिय चौरामी लक्ष हे, तिनके प्रेम अनेक ।
लहरी चौरासी रची, तत्व लक्ष प्रत्येक ॥ १८ ॥

चौरामी लक्ष योनियां हैं और उनमें अनेक प्रकार का प्रेम है, इसलिये प्रत्येक लक्ष का सार लेकर चौरामी लहरों में ग्रन्थ की रचना की है ॥ १८ ॥

कवित्त.

रस अलंकार छंद, जातिरूपी जलजिय, जाहीमें मिलेहे जाकी, गति अति गहरी । मूरखके मनकी, अजादमें न रहे यह, बुद्धिमान मनकी, अजादे रहे ठहरी । विवेकी विभाकरके, करमें अमृत ह्वेहे, अविवेकी अहि मूख, जाइ ह्वेहे जहरी । नागर नहीं सो जन, मर्म वाको जाने नाहीं, नागर जाने प्रवीन, सागरकी लहरी ॥ १९ ॥

इस सागर (प्रवीणसागर) में जिसकी गति अति गम्भीर है रस, अलंकार और छन्द के भेदरूपी जलचर जीव हैं । यह (सागर) मूर्ख के मन की मर्यादा में नहीं रहता, परन्तु बुद्धिमान के मन की मर्यादा में स्थिर रहता है । यह विवेकी-मनुष्यरूपी सूर्य के कर में जाकर अमृत होगा और अविवेकी-मनुष्यरूपी सर्प के मुख में जाकर यह विष होगा । जो जन चतुर नहीं हैं वे इसका मर्म नहीं समझेंगे, केवल चतुर मनुष्य ही इस प्रवीणसागर की लहरों का मर्म समझेंगे ॥ १९ ॥

सवैया.

खान रू पान बिमानसे यान, सुजान महान श्रिमान कुमारी ।
जोवनमें छनमें छनमें, तनमें मनमें अति मेन प्रजारी ।

अंत प्रयंत न कंत मिलयो, परकंत हुपें नहि दृष्टि पसारी ।
ऐसि प्रतिव्रत अन्य नहीं बहु, धन्य प्रवीन पतिव्रत धारी ॥ २० ॥

प्रवीण के पास खाने-पीने का पर्याप्त सामान तथा विमान जैसे वाहन थे और वह एक महान् चतुर श्रीमान् की कन्या थी । उसे युवावस्था में क्षण २ में शरीर तथा मन में कामदेव तप्त करता था और उसे अन्त समय तक पति प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी परपुरुष पर उसने कभी दृष्टि नहीं डाली । ऐसी पतिव्रता स्त्रियां अन्य बहुत नहीं हैं, इसलिये पतिव्रता प्रवीण को धन्य है ॥ २० ॥

कवित्त.

ईंद्र चंद्र चंद्रधर, नारद दुहीन जेसे, हार पाये मारहुतें, सुनी उर आनिये ।
ग्यानीको गुमायो ग्यान, ध्यानीको छोरायो ध्यान, मान तड्यो मार आगे, महा अभिमानिये ।
एक पतिव्रत ओर, पतिव्रता व्रत धरे, ऐसे नर नारीनकुं, विश्वमें बखानिये ।
देह धरी देहअंत, परीयंत जीते मार, जगमें सो जन जग, दीश जेसे जानिये ॥ २१ ॥

इन्द्र, चन्द्र, महादेव, नारद और ब्रह्मा जैसे कामदेव से हार गये ऐसा सुनते और समझते हैं । इसने (कामदेव ने) ज्ञानियों का ज्ञान गंवाया, ध्यानियों का ध्यान छुड़ाया और महा अभिमानियों का अभिमान चूर कर दिया । इसलिये एक पतिव्रत और पतिव्रता व्रत धारण करनेवाले पुरुष और स्त्री, संसार में धन्य हैं । जिमने देह धारण कर देहान्त पर्यन्त कामदेव को जीत रक्खा, ऐसे व्यक्ति को संसार में परमेश्वर समान जानना चाहिये ॥ २१ ॥

कवित्त.

चलबो गगन पंथ, मलबो मिहीर लोक, दलबो रिपुको दल, शस्त्रन विहीनहे ।
धरबो धराको भार, तरबो निधिको बार, हरबो हराको हरि, करबो आधीनहे ।
खायबो हलाहलकुं, ल्यायबो फनिशमनी, धायबो खगेश संग, बने कोउ दीनहे ।
रहबो अहार बिन, कहबो भविष्य होन, सबही सहल काम, दहबो कठीनहे ॥ २२ ॥

आकाश मार्ग में चलना, सूर्यलोक में जा मिलना, विना शस्त्र शत्रुदल को दमन करना, पृथ्वी का भार उठाना, समुद्र के जल को तिर जाना, पार्वती के सिंह को हरण कर वश में कर लेना, हलहल विष का पान करना, शेषनाग की मणि ले आना तथा गरुड़ के साथ दौड़ना कदाचित् सम्भव हो जाय और आहार बिना रहना तथा भविष्य की बात कह देना, यह सब भी महज है, परन्तु काम का दमन करना (वश में करना) महा कठिन है ॥ २२ ॥

दोहा.

जितनो ज्ञान मिले पढे, ओरहि ग्रंथ अनेक ।
इतनो ज्ञान मिले पढे, प्रवीणसागर एक ॥ २३ ॥

और अनेक ग्रन्थां क पढ़न स जितना ज्ञान मिल सकता ह् उतना ज्ञान केवल एक प्रवीणसागर ग्रन्थ के पढ़ने से हो सकता है ॥ २३ ॥

पति प्रियाकुं परस्पर, प्रेम बढ़ावन हार ।
वशीकरण विद्या यहै, एकहि छंद उचार ॥ २४ ॥

इसके एक छन्द का बोलना भी स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम का बढ़ानेवाला तथा वशीकरण विद्या के समान है ॥ २४ ॥

जो कौ रानी जानही, यह सु ग्रंथकी बानि ।
तो पतिकुं प्रिय होयगी, रानी मिटि पटरानि ॥ २५ ॥

जो कोई राणी इस ग्रन्थ की वाणी जानेगी तो वह अपने पति की प्रेयसी बनकर राणी से पटरानी हो जायगी ॥ २५ ॥

पुत्रवती भइ तो कहा, जो न पढी चतुराइ ।
चतुर नारि चतुराइसैं, पिय मन लेत मिलाइ ॥ २६ ॥

यदि चतुराई न जानती हो तो पुत्रवती होने मात्र से क्या हुआ ? चतुर स्त्री अपने चतुर्य से पति के मन को मिला लेती है ॥ २६ ॥

दोहा—धन जोवन कुल रूपतें, रिझै न पुरुष प्रवीन ।

जो जाने कविता कला, स्वामि होत स्वाधीन ॥ २७ ॥

चतुर पुरुष धन, यौवन, कुल तथा रूप से नहीं रीझता, जो कविता की कला जानती है उसका स्वामी उसके आधीन होता है ॥ २७ ॥

कामनि लोचन कवि वचन, मन वेधन दो ठोर ।

बेधूको मन बेधबो, वे कामनि कवि ओर ॥ २८ ॥

कहा है कि कामिनी के कटाक्ष और कवि के वचन ये दो मन विंधने के स्थान हैं, परन्तु बींधने वाले के मन को बेधने वाले कामिनी और कवि कोई और ही होते हैं !!! ॥ २८ ॥

परपति अरु परनारि प्रति, जो सजही अस स्नेह ।

सो पापी नरके परे, वामहि नहि संदेह ॥ २९ ॥

पर-पति और पर-स्त्री के प्रति जो स्नेह जोड़ते हैं वे पापी नरक में जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २९ ॥

कवित्त.

जेही पुरुषको पर, प्रमदासैं प्रेम लग्यो, पर पुरुषसैं नेह, लग्यो जेही नारीको । नरक निवास त्रास, दायक तेहिको होत, जगतमें जश न रहत, जारी कारीको । धिक अवतार ताको, होत धरनी तलमें, जिनही लजायो कुल, तात महतारीको । प्रवीन नहीं सो पुनि, नहीं रससागर सो, चुल्लिमें पर्यो चतुर, पनो व्यभिचारी को ॥ ३० ॥

जिस पुरुष का प्रेम पर-स्त्री से अथवा जिस स्त्री का प्रेम पर-पुरुष से लगा हो उसका निवास भयङ्कर नरक में होता है, और जारकर्म करने वाले का यश संसार में नहीं रहता । ऐसे व्यक्ति का जन्म संसार में धिक्कार योग्य होता है जो अपने माता-पिता के कुल को सज्जित करता है । वह स्त्री प्रवीण नहीं और वह पुरुष रससागर नहीं, ऐसे व्यभिचारी का चातुर्व्यूल में पड़ा !!! ॥ ३० ॥

दोहा.

रवि प्रकाश सबको करे, सो प्रकाशकुं पाई ।
धर्म कर्म धर्मी करे, करे कुकर्म कसाई ॥ ३१ ॥

सूर्य का प्रकाश सब पर पड़ता है, परन्तु उस प्रकाश को पाकर धर्मी धर्म का काम करता है और कसाई दुष्कर्म करता है ॥ ३१ ॥

त्यों गुनमय यह ग्रंथको, करहि भिन्न उपयोग ।
सो हमको कछु दोष नहि, लेखहि पंडित लोग ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार इस गुणमय ग्रन्थ का भिन्न २ उपयोग लोग करेंगे, उम्में हमारा कोई दोष पंडित लोग नहीं गिनेंगे ॥ ३२ ॥

पढ्यो सोइ पदवी चढ्यो, न पढ्यो चढ्यो न होत ।
न चढ्यो गिरत न बोत दुख, चढ्यो गिरत दुख बोत ॥ ३३ ॥

जिसने पढ़ा वही पदवी को प्राप्त हुआ और जो पढ़ा नहीं वह आगे नहीं बढ़ता । जो ऊंचा चढ़ा नहीं, यदि वह गिरे तो बहुत दुःख नहीं होता, परन्तु जो ऊंचा चढ़कर गिरता है उसे बहुत कष्ट होता है ॥ ३३ ॥

तुनिय लहरि आरम्भमें, कह्यो कहूं अब अंत ।
राधा सोइ प्रवीन है, सागर राधा कंत ॥ ३४ ॥

॥ पाठान्तर इस प्रकार है:—

सागर सो श्री कृष्ण है, राधा सोय प्रवीन ।
चातुर चित्त विनोदकों, ग्रंथ अनूठा कीन ॥

जो सागर है वह श्रीकृष्ण हैं और प्रवीण श्रीराधिकाजी हैं । चतुरों के चित्त-विनोद को यह एक अनूठा ग्रन्थ बनाया है ॥

आरंभे यह ग्रंथ के, लहर तीजितें बांय ।
चरित्र राधा कृष्णके, रचन हमे मनलाय ॥

तीसरी लहर के प्रारम्भ में मैंने कहा था और अब अन्त में भी कहना हूँ कि राधा ही प्रवीण है और राधापति ही सागर हैं ॥ ३४ ॥

राधेको वर्णन करत, जब मन शंका आई ।

तब शिवगन अरु अप्सरा, चरित्र बात बनाई ॥ ३५ ॥ ❀

जब राधिकजी का वर्णन करने हुए मन में शंका हुई तो शिवजी के गण व अप्सरा के चरित्र की बात बनाई ॥ ३५ ॥

कवित्त.

जबलों धरनधिग, धरनीकुं शिग धरे, जबलों भयो हे नीर, नीरके निधानमें। जबलों अचल अष्ट, कुल अचलामें रहे, जबलों आदित्य ईन्दु, रहे आशानामें। जबलों रवे सनेह, रमा रमारनमें, भग रवे भाव भलो, भवभगवानमें। तबलों सु ग्रंथ यह, सो प्रवीणसागरको, जपकार पाओ सदा, सगरी जहानमें ॥ ३६ ॥

इम ग्रन्थ की रचना के प्रारम्भ में तीसरी लहर से श्रीराधाकृष्ण के चरित्र रचने की मन में इच्छा हुई ॥

पै प्रभु कौ नहि योग्य हे, कष्ट भोगनो काय ।

यौ जानि निज उर विशे, यातैं नाम फिराय ॥

परन्तु प्रभु को शरीर का कष्ट भोगना उचित नहीं, ऐसा अपने हृदय में जानकर नाम पलट दिया ॥

❀ पाठान्तर इस प्रकार है:—

वर्नत राधा कृष्णकों, यह मन शंका लाय ।

शिव गनकी करि कल्पना, अभिनव ग्रंथ बनाय ॥

श्रीराधाकृष्ण का वर्णन करते हुए मन में यह बात विचार कर शिवजी के गण की कल्पना कर यह नवीन ग्रन्थ बनाया ॥

जब तक शेषनाग ने पृथ्वी को शिर पर धारण कर रक्खा है, जब तक समुद्र में जल भरा हुआ है, जब तक आठ कुल के पर्वत पृथ्वी पर हैं, जब तक सूर्य व चन्द्रमा आकाश में हैं, जब तक श्रीपार्वतीजी शिवजी में स्नेह रक्खें और श्रीलक्ष्मीजी विष्णु भगवान् में प्रीति रक्खें, तब तक यह प्रवीणसागर ग्रन्थ सारे संसार में जय जयकार प्राप्त करता रहे ॥ ३६ ॥

दोहा.

रमा रमाकोरमन पुनि, भवा रु भव भगवान् ।

करुनाकर करुना करी, सबको करहु कल्याण ॥ ३७ ॥

श्रीपार्वतीजी तथा श्रीमहादेवजी और श्रीलक्ष्मीजी तथा श्रीविष्णु भगवान् जो करुणा के सागर हैं करुणा करके सबका कल्याण करें ॥ ३७ ॥

ग्रन्थान्ति हरिस्मरन-सवैया.

जै जगबंदन नंदके नंदन, पांडव स्यंदन हांकन हारे ।

चर्चित चंदन कष्ट निकंदन, ग्राहि गयंदन ग्राह निदारे ।

इंद्र फनिंद कविंद मुनिंद रु, छंद गनी गुन ब्रंद उचारे ।

आनंदकंद मुकंद गोविंद, करोदुख द्वंद निकंद हमारे ॥ ३८ ॥

हे संसार के वन्दन करने योग्य, नन्द के पुत्र, पांडवों के रथ को हांकनेवाले, शरीर में चन्दन लगाये हुए, दुःखों के नाश करने वाले, गयन्द के पकड़नेवाले, ग्राह को मारनेवाले ! और जिनके गुणानुवाद इन्द्र, शेषनाग, बड़े २ कवि तथा मुनीन्द्र लोग छन्द बनाकर गाते हैं, ऐसे आनन्दकन्द मुकुन्द गोविन्द हमारे दुःख-द्वन्द्वों के समुदाय का नाश करो ॥ ३८ ॥

ग्रंथकर्त्ताकी नम्रता-दोहा.

जैसी अंतर उदित भै, ऐसी उक्ति उचारि ।

भूल चूक कहु जो परी, सुकवि सु लेहु सुधारि ॥ ३९ ॥ *

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

जैसी मति हम उर बसी, तैसी बानि उचारि ।

चुक होय जो बाहिमें, तो कवि लेहु सुधारि ॥

जैसा हृदय में उपजा वैसी कविता की है । इसमें यदि कुछ भूल-चूक हुई हो उसे सुकविजन सुधार लेवें ॥ ३६ ॥

काव्य नियम व्याकरणको, नहि हम पूरन ग्यान ।

रच्यो ग्रंथ निज मन रमन, शिशुके खेल समान ॥ ४० ॥*

काव्य के नियम तथा व्याकरण का हमें पूर्ण ज्ञान नहीं है । अपने मन को बहलाने के लिये बच्चों के खेल के समान इस ग्रन्थ की रचना की है ॥ ४० ॥

प्रभु प्रेरित जैसी मती, तैसी किय कविताई ।

जैसे बिचरत बासकन, नितहि पवन ले जाई ॥ ४१ ॥

परमेश्वर ने जैसी बुद्धि की प्रेरणा की वैसी कविता की है । जैसे सुगन्ध के परमाणु जिधर पवन ले जाय उधर ही बिचरण करते हैं ॥ ४१ ॥

कवित्त.

बड़े कविराईने, बनाई कविताइ बड़ी, जाकी बढताई बसु, धामें छवाइहे । बिना चतुराइ, कविताई पथ धाई, हम होयगी हसाई, शिशुताई यों देखाइहे । जैसी मति दाई, महामाईने बनाइ मति, तेसी मति पाई, कविताई या बनःइहे । धरि नमूनाई शिर, नाई स्तुति गाई कहुं, कछु चूरु आइ, कविराइ सो मिटाइहे ॥ ४२ ॥

जैसी हमारे हृदय में बुद्धि आई वैसी वाणी का उच्चारण किया । इसमें जो भूल होवे कविजन उसे सुधार लेवें ॥

* पाठान्तर इस प्रकार है:—

बोध नही कछु काव्य के, ज्ञान नही कछु और ।

तदपी कीनो ग्रंथ यह, निज मन रमन बहौर ॥

काव्य का कुछ बोध नहीं तथा और भी कोई ज्ञान नहीं, किन्तु फिर भी अपने मन बहलाने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की है ॥

बड़े २ कवियों ने बड़ी २ कविता की हैं जिनकी बड़ाई सारी वसुधा में फैल रही है, परन्तु हमने तो बिना चतुराई के ही कविता के मार्ग में दौड़ लगाई है, इसमें हँसी होगी क्योंकि हमने ऐसा करके बालकपन दिखलाया है । फिर भी बुद्धिदात्री महामाता ने जैसी मति दी उसके अनुसार हमने कविता की है और नम्रतापूर्वक शिर झुका कर स्तुति करके कहता हूँ कि जाँ कुछ भूल हो कविराट् उसे सुधार लेवें ॥ ४२ ॥

श्रोता प्रति उक्ति—दोहा.

स्वच्छ रहो तन मनहुमें, हरि हर रीमे दोय ।

सुख देवे जडता हनै, विद्वत्ता दे सोय ॥ ४३ ॥

तन और मन मे स्वच्छ रहने से भगवान् शङ्कर व विष्णु दोनों ही प्रसन्न होकर सुख देते हैं और अज्ञान का हरण कर विद्वत्ता प्रदान करते हैं ॥ ४३ ॥

कवित्त.

संग तजी अधमको, अंग पुनि कीजे स्वच्छ, वचनमें मनहुमें, तेमे तुम बनी रहो । द्वय लोक दाई सुख, लच्छिपति दहे दुख, सुखधाम वामदेव, हराको मिलन हो ॥ त्रिपुरांगी दयाधारी, रीझीके संपति दैहे, खंडिके सो मूरखता, विदवान् करे अहो । डर कोउका न रहे, दशौ दिशै राति घोम, भूतलमें महा सुख, सेवो ज्यों तुमही चहो ॥ ४४ ॥

नीच का संग त्यागकर शरीर मे स्वच्छ रहे तथा मन व वाणी से भी सदा स्वच्छ रहे तो दोनों लोकों में सुख देने वाले श्रीलक्ष्मीपति दुःखों का दहन करें और सुख के आगार भगवान् शङ्कर तथा श्रीपार्वतीजी की प्राप्ति होवे । और तब त्रिपुरासुर के शत्रु भगवान् शङ्कर दया करके सम्पत्ति देंगे तथा मूर्खता का नाश कर विद्वान् बनावेंगे । फिर दशों दिशा में और रात्रि तथा दिन में किसी का डर नहीं रहेगा तथा पृथ्वीतल पर मन-चाहा सुख प्राप्त होगा ॥ ४४ ॥

उपजाति वृत्त.

श्री राजदुर्गाख्यपुराधिनाथो, मेरामणख्यो यदुवंशजातः ।

ग्रंथो यमीशांधिरतेन तेन, कृतोस्ति रत्यै रसवज्जनानाम् ॥ ४५ ॥

श्री राजकोट नामक नगर के राजा, शिवजी के चरणों में प्रीति रखनेवाले
मेरामणजी यादव कुल में उत्पन्न हुए, उन्होंने रसिकजनों की प्रीति के वास्ते
यह ग्रन्थ बनाया ॥ ४५ ॥

गाहा.

ग्रंथ प्रयोजन कथनं, श्रुतिफल पुनि ग्रंथको कथनं ।

चतुराशित्यभिधानं, पूर्ण प्रवीणसागरो लहरं ॥ ४६ ॥

ग्रन्थ का प्रयोजन तथा ग्रन्थ के सुनने का फल कथन करने वाली प्रवीणसागर
ग्रन्थ की यह चौरासिवी लहर सम्पूर्ण हुई ॥ ४६ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः



लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मसूरी

MUSSOORIE

यह पुस्तक निर्मांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 891.431
PRA



H 891.431 अवाप्ति सं. ~~123943~~
 पुर्वीण ACC. No.....
 वर्ग सं. पुस्तक सं.
 Class No..... Book No.....
 लेखक
 Author.....
 शीर्षक
 Title..... पुर्वीण नगर +

H 891.431 हस्ताक्षर ~~123943~~

LIBRARY
भवीण LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 123943

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving